अर्हम्

गुरुदेवश्री फतेह-प्रताप स्मृति पुष्प आगम अनुयोग ग्रंथमाला-६

द्रव्यानुयोग

जैनागमों में वर्णित जीव-अजीव विषयक सामग्री
का विषयानुक्रम से प्रामाणिक संकलन
(मूल एवं हिन्दी अनुवाद)

प्रथम खण्ड (अध्ययन १-२४)

प्रधान सम्पादक :

अनुयोग प्रवर्तक उपाध्याय प्रवर पंडित-रत्न
मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल'

सहयोगी सम्पादक :

आगमरसिक श्री विनय मुनि जी, 'वागीश'
महासती डॉ. श्री मुक्तिप्रभा जी एम. ए., पी-एच. डी.
महासती डॉ. श्री दिव्यप्रभा जी, एम. ए., पी-एच. डी.

प्रधान परामर्शदाता :

पं. श्री दलसुखभाई मालवणिया

सह-सम्पादक :

पं. श्री देवकुमार जैन (बीकानेर)
श्री श्रीचन्द सुराना 'सरस'

विशिष्ट सहयोगी :

श्री [illegible]भाई [illegible] पटेल, अहमदाबाद
श्री [illegible]भाई [illegible] पटेल, अहमदाबाद

प्रकाशक :

आगम अनुयोग ट्रस्ट
अहमदाबाद-३८० ०१३

प्रस्तावना :
डॉ. सागरमल जी जैन, एम. ए., पी-एच. डी.
निदेशक :
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी

सम्पादन सहयोगी :
आगम मनीषी श्री तिलोक मुनि जी 'गीतार्थ'
महासती श्री अनुपमा जी, एम. ए., पी-एच. डी.
महासती श्री भव्यसाधना जी
महासती श्री विरतिसाधना जी
डॉ. श्री धर्मचन्द जी जैन, जोधपुर

पांडुलिपि सहयोगी :
श्री राजेश भंडारी, जोधपुर
श्री राजेन्द्र एवं सुनील मेहता, शाहपुरा
श्री मांगीलाल जी शर्मा, कुरड़ायाँ

प्रकाशक एवं प्राप्ति-स्थान :
आगम अनुयोग ट्रस्ट
१५, स्थानकवासी सोसायटी
नारायणपुरा क्रॉसिंग के पास,
अहमदाबाद-३८० ०१३

प्रकाशन वर्ष :
वीर निर्वाण संवत् २५२०
वि. सं. २०५१ महावीर जयन्ती
ईस्वी सन् १९९४, अप्रेल

मुद्रण :
राजेश सुराना द्वारा
दिवाकर प्रकाशन
ए-७, अवागढ़ हाउस, एम. जी. रोड
आगरा-२८२ ००२, फोन : (०५६२) ५४३२८

सम्पर्क सूत्र :
○ मंत्री : श्री जयंतिलाल चंदुलाल संघवी
सिद्धार्थ एपार्टमेन्ट
स्थानकवासी सोसायटी के पास
नारायणपुरा क्रॉसिंग
अहमदाबाद-३८० ०१३
○ श्री वर्धमान महावीर केन्द्र
सब्जी मण्डी के सामने,
आबू पर्वत-३०७ ५०१ (राज.)
○ डॉ. सोहनलाल जी संचेती, सहमंत्री
चाँदी हॉल, केसरवाड़ी
जोधपुर ३४२ ००२ (राज.)

मूल्य :
तीन सौ इक्यावन रुपये मात्र। (३५१ रुपया)

DRAVYANUYOGA

AN AUTHENTIC SUBJECTWISE COLLECTION OF DATA ON LIFE AND MATTER DETAILED IN JAIN SCRIPTURES

(TEXT AND HINDI TRANSLATION)

PART-I (CHAPTER 1 TO 24)

Editor :
Anuyog Pravartak, Upadhyaya Pravar, Pandit Ratna
Muni Shri Kanhiya Lal Ji 'Kamal'

Associate Editor :
Agam Rasik Shri Vinay Muni Ji 'Vageesh'
Mahasati Dr. Shri Mukti Prabha Ji, M.A., Ph.D.
Mahasati Dr. Shri Divya Prabha Ji, M.A., Ph.D.

Chief Consultant :
Pt. Shri Dalsukh Bhai Malvaniya

Co Editor :
Pt. Shri Dev Kumar Jain (Bikaner)
Shri Srichand Surana 'Saras'

Special Assistance :
Shri Baldev Bhai Dosa Bhai Patel, Ahmedabad
Shri Navneet Bhai Chuni Lal Patel, Ahmedabad

Publisher :
AGAM ANUYOG TRUST
AHMEDABAD 380 013

PREFACE :
Dr. Sagarmal Ji Jain, M.A., Ph.D.
DIRECTOR :
Shri Parshvanath Vidhyashram Shodh Sansthan Varanasi

CONTRIBUTING EDITORS :
Agam Maneeshi Shri Tilok Muni Ji 'Geetarth'
Mahasati Shri Anupama Ji, M.A., Ph.D.
Mahasati Shri Bhavya Sadhana Ji
Mahasati Shri Virati Sadhana Ji
Dr. Shri Dharm Chand Ji Jain, Jodhpur

MANUSCRIPT PREPARATION ASSISTANCE :
Shri Rajesh Bhandari, Jodhpur
Shri Rajendra and Sunil Mehta, Shahpura
Shri Mangi Lal Ji Sharma, Kurdayan

PUBLISHED AND MARKETED BY :
Agam Anuyog Trust
15, Sthanakvasi Society
Near Narayanpura Crossing,
Ahmedabad-380 013

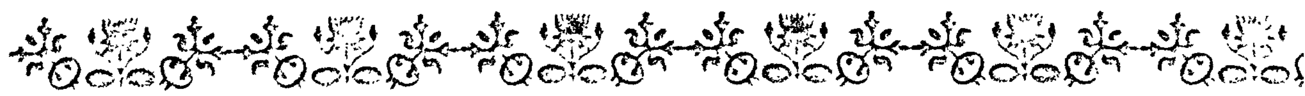
YEAR OF PUBLICATION :
Veer Nirvan S. 2520
V.S. 2051 Mahavir Jayanti
1994, April

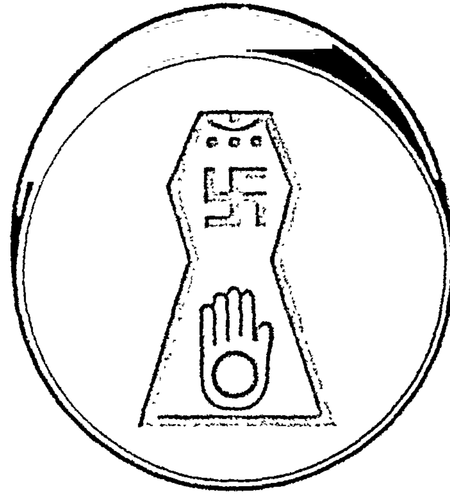
PRINTED BY RAJESH SURANA AT :
Diwakar Prakashan
A-7, Awagarh House, M.G. Road
Agra-282 002, Ph. : (0562) 54328

CONTACT :
- Secretary :
  Shri Jayanti Lal
  Chandu Lal Sanghavi
  Siddhartha Apartment
  Near Sthanakvasi Society
  Narayanpura Crossing
  Ahmedabad- 380 013
- Shri Vardhaman Mahavir Kendra
  Opp. Subji Mandi
  Mount Abu-307 501 (Raj.)
- Dr. Sohan Lal Ji Sancheti
  Co-secretary
  Chandi Hall, Kesarvadi
  Jodhpur-342 002 (Raj.)

PUBLISHER

PRICE :
Rupees Three Hundred Fifty One only (Rs. 351/-)

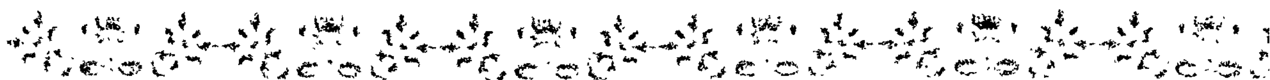




समर्पण

श्रुत सागर को कण्ठ-कुंभ में भरने वाले
अनेक आगमों के व्याख्याता,
श्रमण संघ के प्रथम आचार्य प्रवर!
श्री आत्माराम जी महाराज!
आपके इस दीक्षा शताब्दी वर्ष में
सादर श्रद्धापूर्वक समर्पित है
द्रव्यानुयोग का प्रथम खण्ड रूप श्रद्धांजलि

—उपाध्याय मुनि कन्हैयालाल 'कम
महत्तरी मुनि
महासती दिव्य





॥ अर्हम् ॥

ज्ञानयोगी उपाध्याय प्रवर अनुयोग प्रवर्तक गुरुदेव मुनिश्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल'

ज्ञान की उत्कट अगाध पिपासा लिये अहर्निश ज्ञानाराधना में तत्पर, जागरूक प्रज्ञा, सूक्ष्म ग्राहिणी मेधा, शब्द और अर्थ की तलछट गहराई तक पहुँच कर नये-नये अर्थ का अनुसंधान व विश्लेषण करने की क्षमता–यही परिचय है उपाध्याय मुनि श्री कन्हैयालाल जी म. कमल का।

७ वर्ष की लघु वय में वैराग्य जागृति होने पर गुरुदेव पूज्य श्री फतेहचन्द जी महाराज तथा प्रतापचन्द जी म. के सान्निध्य में १८ वर्ष की आयु में दीक्षा ग्रहण। आगम, व्याकरण, कोश, न्याय तथा साहित्य के विविध अंगों का गंभीर अध्ययन व अनुशीलन। आगमों की टीकाएँ व चूर्णि, भाष्य साहित्य का विशेष अनुशीलन। ज्ञानार्जन/विद्यार्जन की दृष्टि से–उपाध्याय श्री अमर मुनिजी, पं. बेचरदास जी दोशी, पं. दलसुख भाई मालवणिया तथा पं. शोभाचन्द जी भारिल्ल का विशेष सान्निध्य प्राप्त कर ज्ञान चेतना की परितृप्ति की। उनके प्रति विद्यागुरु का सम्मान आज भी मन में विद्यमान है। २८ वर्ष की अवस्था में किसी जर्मन विद्वान् के [illegible] से प्रेरणा प्राप्त कर आगमों का अधुनातन दृष्टि से अनुसंधान। फिर अनुयोग शैली से वर्गीकरण का भीष्म संकल्प। ३० वर्ष की अवस्था में अनुयोग वर्गीकरण कार्य प्रारम्भ। पं. प्रवर श्री दलसुख भाई मालवणिया, पं. अमृतलाल भाई भोजक, महासती डॉ. मुक्तिप्रभा जी, महासती डॉ. दिव्यप्रभा जी, सर्वात्मना समर्पित श्रुतसेवी विनय मुनि जी 'वागीश', श्रीचन्द जी सुराना, पं. धर्मचन्द जी जैन, त्यागी विद्वद्वर्य श्री जौहरीमल जी पारख, पं. देवकुमार जी जैन आदि का समय-समय पर मार्गदर्शन, सहयोग और सत्कार प्राप्त होता रहा। बीज रूप में प्रारम्भ किया गया अनुयोग कार्य आज [illegible] विशाल भाग में लगभग ६ हजार पृष्ठ की मुद्रित सामग्री के रूप में विशाल वट वृक्ष की भाँति श्रुतसेवा के रूप में [illegible] बन गया है।

गुरुदेव के जीवन की महत्वपूर्ण सूचनाएँ –

जन्म : वि. सं. [illegible] (रामनवमी) [illegible]

जन्मस्थल : केकीन्द (जसनगर) राजस्थान

पिता : [illegible]

माता : [illegible]

दीक्षा तिथि : [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]



गुरुसेवा एवं श्रुत-सेवा के लिए समर्पित साकार विनय मूर्त्ति श्री विनय मुनि जी 'वागीश'

श्री विनय मुनि जी यथानाम तथागुण सम्पन्न सरल-सहज जीवन शैलीयुक्त, गुरुसेवा-श्रुत-सेवा को ही जीवन का महान् उद्देश्य मानने वाले एक अतीव भद्रपरिणामी–'भद्दे णामे भद्द परिणामे'-आपात भद्र- संवास भद्र आदर्श श्रमण है।

आपश्री ने दीक्षा लेते ही स्वयं को मेघ मुनि की भाँति गुरु-चरणों में सर्वात्मना समर्पित कर दिया। साधु समाचारी के दैनिक कार्यक्रमों की साधना-आराधना के पश्चात् जो समय वचता है, उसमें सर्वप्रथम पूज्य गुरुदेव की सेवा, परिचर्या, औषधि आदि की व्यवस्था के पश्चात् जो भी समय रहता है उसमें पूज्य गुरुदेवश्री के साथ अनुयोग कार्य में जुट जाते हैं। हाथ से लिखी फाइलें अनेक मुद्रित आगम प्रतियां सामने रखकर पाठों का मिलान तथा विषय का वर्गीकरण करने में अनुभव के वल पर आप एक सुयोग्य आगम-सम्पादक वन गये हैं। गुरु-कृपा से तथा श्रुत-सेवाजन्य क्षयोपशम के कारण आपकी स्मरणशक्ति एवं ग्रहण शक्ति भी प्रखर है। आगमों की भाषा का ज्ञान, विषय आदि का परिज्ञान भी गंभीर है।

पौराणिक भाषा में अगर गुरुदेव श्री कन्हैयालाल जी म. अनुयोग कार्य के 'व्यास' हैं तो उसे लिपिवद्ध करके व्यवस्थित रूप देने वाले 'गणेश' हैं श्री विनय मुनि जी।

आपका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

जन्म स्थल	:	टोंक (राज.)
वैराग्य	:	सं.२०१८ में पूज्य गुरुदेव फतेहचन्द जी म. की सेवा में आये
वैराग्य काल	:	७ वर्ष
शिक्षण	:	संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी
दीक्षा-तिथि	:	माघ सुदी १५ रविवार, पुष्य नक्षत्र वि. सं. २०२५
दीक्षा-स्थल	:	पीह-मारवाड़
दीक्षा-दाता	:	मुनिश्री कन्हैयालाल जी म. "कमल"
दीक्षा-प्रदाता	:	मरुधरकेशरी श्री मिश्रीमलजी म.

पंडित श्री देवकुमार जी जैन, बीकानेर ने भी श्री विनय मुनि जी को सम्पादन कार्य में बहुत बड़ा सहयोग दिया है। आप बहुत ही अच्छे विद्वान् हैं। अतः आपके भी विशेष आभारी हैं।

जैन दर्शन के सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं अधिकारी लेखक डॉ. श्री सागरमल जी जैन ने ग्रन्थ की गरिमा के अनुरूप विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना लिखकर अनुगृहीत किया है, हम उनके कृतज्ञ हैं।

जैन धर्म तथा प्राकृत-संस्कृत भाषा के विद्वान् डॉ. धर्मचन्द जी जैन ने अपना महत्त्वपूर्ण समय निकालकर भावनापूर्वक सभी अध्ययनों के आमुख लिखकर अनुगृहीत किया है, हम उनके आभारी रहेंगे।

दुरूह आगम कार्यों को प्रेस दृष्टि से व्यवस्थित कर सुन्दर शुद्ध मुद्रण के लिए जैन दर्शन के अनुभवी विद्वान् दिवाकर प्रकाशन, आगरा के संचालक साहित्यसेवी श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' के हम आभारी हैं, जिन्होंने पूर्व अनुयोगों की भाँति इस ग्रन्थ के मुद्रण में भी पूर्ण सद्भाव के साथ आत्मीय सहयोग किया है।

ट्रस्ट के सहयोगी सदस्य मण्डल के भी हम आभारी हैं, जिनके आर्थिक अनुदान से इतना विशाल व्ययसाध्य कार्य हम सम्पन्न करने में समर्थ हुए हैं।

ज्ञानप्रेमी श्री नवनीतभाई चुन्नीलाल पटेल (चेयरमैन) पार्श्वनाथ कॉर्पोरेशन, अहमदावाद वाले इस महान् कार्य में विशेष सहयोगी बने हैं उनका इस कार्य को सम्पूर्ण कराने में विशेष योगदान प्राप्त हुआ है तथा इस ग्रन्थ के प्रथम भाग का विमोचन भी आपके करकमलों द्वारा हुआ है।

पंजाब जैन भ्रातृ सभा, बम्बई; श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, जोधपुर के कार्यकर्त्ताओं का तथा श्री रमणिकभाई मोहनलाल धानेरा, श्री माणकचन्द जी संचेती, जोधपुर; विजयराज जी बोहरा, अहमदावाद; प्रतापभाई भूरालाल गांधी, चाँदी वाले, बम्बई आदि ने सहयोग एकत्रित कराने में विशेष योगदान दिया है।

इस प्रसंग पर आगम अनुयोग प्रकाशन परिषद्, साण्डेराव के मान्य कार्यकर्त्ताओं का भी आभार स्मरण करते हैं जिन्होंने इस अति दुरूह कार्य के प्रारम्भ में अति उत्साहपूर्वक कदम बढ़ाया और हमारे कार्यशैली का मार्ग प्रशस्त किया। आगम अनुयोग ट्रस्ट, अहमदावाद को उनका सहयोग बराबर मिलता रहा और भविष्य में भी मिलता रहेगा ऐसा विश्वास है।

आगम वाणी के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान् बोटाद सम्प्रदाय के पंडित-रत्न श्री अमीचन्द जी म. एवं लिंबड़ी सम्प्रदाय के श्री भास्कर मुनि जी म. ने अनुयोग ग्रन्थों के प्रचार-प्रसार में विशेष अभिरुचिपूर्वक जो सहयोग प्रदान किया है, वह एक आदर्श और अनुकरणीय है।

प्रेस-कापी करने का विशाल कार्य श्री राजेश भंडारी, राजेन्द्रकुमार तथा सुनील मेहता एवं श्री मांगीलाल जी शर्मा ने श्रद्धाभक्ति एवं विवेकपूर्वक किया है। इसलिए ट्रस्ट की ओर से उनका हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

हमारे अनुभवी एवं सेवाभावी ट्रस्टी श्री हिम्मतभाई शामलदास शाह अब वृद्ध हो गये हैं, फिर भी समय-समय पर वे अपने अनुभव आदि का लाभ दे रहे हैं।

ट्रस्ट के मंत्री श्री जयन्तिभाई चन्दुलाल संघवी ट्रस्ट की सम्पूर्ण व्यवस्था व सहयोग एकत्रित करना आदि कार्यों के लिए बहुत ही परिश्रम कर रहे हैं। स्थानकवासी जैन संघ नगरसेठ का वंडा नारायणपुरा आदि अनेक संस्थाओं का संचालन करते हुए भी अपना अमूल्य समय प्रदान कर रहे हैं अतः हम आपके बहुत आभारी हैं।

इसी प्रकार हमारे सहमंत्री डॉ. सोहनलाल जी संचेती ने प्रचार-प्रसार एवं सारी व्यवस्था सँभालने में विशेष योगदान दिया है। अतः उनके भी आभारी हैं।

श्री शामजी भाई कार्यालय की सम्पूर्ण व्यवस्था सुचारू रूप से सँभाल रहे हैं। अतः धन्यवाद के पात्र हैं। अन्य सहयोगीजनों का स्मरण करते हुए भावना करते हैं कि श्रुतज्ञान की अमर ज्योति सबके जीवन को प्रकाशमय करे। इसी प्रकार भविष्य में भी आप लोगों का योगदान प्राप्त होता रहेगा जिससे हम गुजराती संस्करण व गुटकों आदि के प्रकाशन का कार्य कर सकेंगे।

धन्यवाद।

विनीत

बलदेवभाई डोसाभाई पटेल

(अध्यक्ष)

आगम अनुयोग ट्रस्ट, अहमदाबाद

स्व-कथन

द्रव्य का अर्थ है–वह ध्रुव स्वभावी तत्त्व, जो विभिन्न पर्यायों (अवस्थाओं) को प्राप्त करता हुआ भी अपने मूल गुण (स्वभाव) को नहीं छोड़ता।

विभिन्न दृष्टिकोणों तथा विभिन्न शैलियों से द्रव्यों की व्याख्या, वर्गीकरण एवं प्रस्तुति जिसमें की जाती है–उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं।

प्रस्तुत द्रव्यानुयोग

चार अनुयोगों में द्रव्यानुयोग का विषय सबसे विशाल है, जटिल तथा दुरूह भी है।

समस्त विश्व के मूल द्रव्य दो हैं–जीव और अजीव। भगवान की वाणी का मुख्य सूत्र है–**'अत्थि जीवा अत्थि अजीवा'** जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य की व्याख्या–संपूर्ण द्रव्यानुयोग का आधारभूत विषय है।

पंचास्तिकाय में एक जीव है "जीवास्तिकाय" तथा १. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय एवं ४. पुद्गलास्तिकाय–ये चार अस्तिकाय अजीव हैं। इसी प्रकार षड्द्रव्यों में जीव द्रव्य एक है, बाकी पाँच द्रव्य अजीव हैं।

दर्शन की भाषा में जीव को चैतन्य और अजीव को जड़ कहा जाता है। यह संपूर्ण संसार जड़-चेतन, जीव-अजीव से व्याप्त है।

तत्त्व जिज्ञासु जीव-अजीव के सम्बन्ध में, अर्थात् जड़ और चैतन्य के विषय में अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ रखता है और उसका समाधान खोजता है। जड़-चेतन की जिज्ञासा जितनी सहज है, उसका समाधान उतना ही जटिल और गहन है।

पहली बात–समाधान करने वाले ज्ञानी तत्त्वज्ञ पुरुष विरले ही मिलते हैं।

दूसरी बात–जीव-अजीव विषयक साहित्य का विस्तार और विविध आगमों में विकीर्णता। आगमों में अनेक स्थानों पर अनेक प्रसंगों पर प्रश्नोत्तर के रूप में जीव-अजीव विषयक चर्चाएँ हैं। वह चर्चाएँ कहीं विस्तार रूप में हैं, तो कहीं संक्षिप्त, अति संक्षिप्त रूप में। लगभग सभी आगमों में जीव-अजीव विषयक विभिन्न प्रकार की भिन्न-भिन्न सामग्री बिखरी हुई है। जीव के सैकड़ों विषय और उप-विषय भी आगमों में आते हैं। अनेक प्रकार के प्रश्नोत्तर तथा चर्चाएँ भी हैं। उन सब सम्बन्धित विषयों तथा प्रसंगों को, उन चर्चाओं तथा वर्णकों को स्मृति में रखना, धारणा में स्थिर कर पाना सामान्य बुद्धि वालों के लिए अत्यन्त कठिन है। आगमों के विशेषज्ञ ज्ञानी गुरु सर्वत्र नहीं मिलते, इसलिए उन विषयों को समझना और उनके पूर्वापर सम्बन्धों को मिलाकर चिन्तन-मनन करना अत्यन्त दुरूह है। इस बहुत विघ्नों वाले स्वल्प जीवन में ऐसा कर पाना बहुत ही कठिन है।

जीव आदि किसी विषय की समग्र जानकारी प्राप्त करने के लिए अनेक आगमों को देखना और उनमें से खोजकर निकालना बड़े-बड़े विद्वानों और आगमज्ञों के लिए भी संभव नहीं है। क्योंकि न तो इतना विपुल साहित्य सरलता से उपलब्ध होता है और साहित्य की उपलब्धि होने पर भी विशाल महासागर के आलोडन की तरह उन सभी आगमों का आलोडन (मन्थन) कर पाना बहुत श्रम व समय माँगता है। ऐसी स्थिति में द्रव्यानुयोग के जिज्ञासु व्यक्तियों के लिए प्रस्तुत संकलन अवश्य ही उपयोगी सिद्ध होगा।

इस सम्पादन में मैंने जिज्ञासुजनों की कठिनाइयों का अनुभव करते हुए अनेक प्रकार की सरल पद्धतियाँ अपनाई हैं। जीव-अजीव आदि विषयों को वर्गीकृत किया है और फिर प्रत्येक विषय के भेद-उपभेदों से सम्बन्धित जहाँ जिस आगम में जो पाठ उपलब्ध होते हैं, उनको अनेक अध्ययनों, शीर्षकों, उप-शीर्षकों में विभक्त किया है तथा आगम पाठों को सहज सरल पद्धति से इस प्रकार लिखा है कि पाठ को देखने पर ही विषय का क्रमबद्ध ज्ञान हो सकता है और वह विषय जिन-जिन आगमों में यथारूप या कुछ परिवर्तन के साथ आया है, उसकी सूचना भी प्राप्त हो सकती है। संकलन शैली में अनेक बार परिवर्तन करके, विषय-क्रम को अत्यधिक सरल और सुबोध बनाने का प्रयत्न किया है और इसी कारण द्रव्यानुयोग के संकलन, संपादन में बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया। अभी भी मुझे पूर्ण सन्तोष नहीं है, किन्तु अब वृद्धावस्था एवं शरीर की स्थिति को समझते हुए इस ग्रन्थ को अधिक लम्बाना उचित नहीं समझा अतः एक क्रमबद्ध व्यवस्थित रूप देकर जिज्ञासुओं के हाथों में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

अनुयोग का स्वरूप

जैन साहित्य में 'अनुयोग' के दो रूप मिलते हैं–

१. अनुयोग-व्याख्या
२. अनुयोग-वर्गीकरण

किसी भी पद आदि की व्याख्या करने, उसका हार्द समझने/समझाने के लिए १. उपक्रम, २. निक्षेप, ३. अनुगम और ४. नय–इन चार शैलियों का आश्रय लिया जाता है। **अनुयोजनमनुयोगः**–(अणुजोअणमणुओगो) सूत्र का अर्थ के साथ सम्बन्ध जोड़कर उसकी उपयुक्त व्याख्या करना, इसका नाम है–अनुयोग-व्याख्या (जम्बू. वृत्ति)।

अनुयोग-वर्गीकरण का अर्थ है–अभिधेय (विषय) की दृष्टि से शास्त्रों का वर्गीकरण करना। जैसे अमुक–अमुक आगम, अमुक अध्ययन, अमुक गाथा, अमुक विषय की है। इस प्रकार विषय-वस्तु की दृष्टि से वर्गीकरण करके आगमों का गम्भीर अर्थ समझने की शैली अनुयोग-वर्गीकरण पद्धति है।

प्राचीन आचार्यों ने आगमों के गम्भीर अर्थ को सरलतापूर्वक समझाने के लिए आगमों का चार अनुयोगों में वर्गीकरण किया है–

१. चरणानुयोग–आचार सम्बन्धी आगम।

२. धर्मकथानुयोग–उपदेशप्रद कथा एवं दृष्टान्त सम्बन्धी आगम।

३. गणितानुयोग–चन्द्र-सूर्य-अन्तरिक्ष विज्ञान तथा भू-ज्ञान के गणित विषयक आगम।

४. द्रव्यानुयोग–जीव-अजीव आदि तत्त्वों की व्याख्या करने वाले आगम।

अनुयोग वर्गीकरण के लाभ

यद्यपि अनुयोग वर्गीकरण पद्धति आगमों के उत्तरकालीन चिन्तक आचार्यों की देन है, किन्तु यह आगमपाठी श्रुताभ्यासी मुमुक्षु के लिए बहुत उपयोगी है। आज के कम्प्यूटर युग में तो इस पद्धति की अत्यधिक उपयोगिता है।

विशाल आगम साहित्य का अध्ययन कर पाना सामान्य व्यक्ति के लिए बहुत कठिन है। इसलिए जब जिस विषय का अनुशीलन करना हो, तब तद्‌विषयक आगम पाठ का अनुशीलन करके जिज्ञासा का समाधान करना–यह तभी सम्भव है, जब अनुयोग पद्धति से सम्पादित आगमों का शुद्ध संस्करण उपलब्ध हो।

अनुयोग पद्धति से आगमों का स्वाध्याय करने पर अनेक जटिल विषय स्वयं समाहित हो जाते हैं, जैसे–

१. आगमों का किस प्रकार विस्तार हुआ है–यह स्पष्ट हो जाता है?

२. कौन-सा पाठ आगम संकलन काल के पश्चात् प्रविष्ट हुआ है?

३. आगम पाठों में आगम लेखन से पूर्व तथा पश्चात् वाचना भेद के कारण तथा देश काल के व्यवधान के कारण लिपि काल में क्या अन्तर पड़ा है?

४. कौन-सा आगम पाठ स्व-मत का है, कौन-सा पर-मत की मान्यता वाला है तथा भ्रांतिवश पर-मत मान्यता वाला कौन-सा पाठ आगम में संकलित हो गया है?

इस प्रकार अनेक प्रश्नों के समाधान इस शैली से प्राप्त हो जाते हैं, जिनका आधुनिक शोध छात्रों/प्राच्य विद्या के अनुसन्धाता विद्वानों के लिए बहुत महत्त्व है।

अनुयोग कार्य का इतिहास

लगभग आज से ४५ वर्ष पूर्व मेरे मन में अनुयोग वर्गीकरण पद्धति से आगमों का संकलन करने की भावना जगी थी। आगमों के प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य श्री घासीलाल जी म., उपाध्याय कवि श्री अमरचन्द जी म., श्री दलसुखभाई मालवणिया ने उस समय मुझे मार्गदर्शन किया, प्रेरणा दी और आत्मीयभाव से सहयोग दिया। उनकी प्रेरणा व सहयोग का सम्बल पाकर मेरा संकल्प दृढ़ होता गया और मैं इस श्रुत-सेवा में जुट गया। आज के अनुयोग ग्रन्थ उसी बीज के मधुर फल हैं।

सर्वप्रथम गणितानुयोग का कार्य स्वर्गीय गुरुदेव श्री फतेहचन्द जी म. सा. के सान्निध्य में हरमाड़ा में प्रारम्भ किया था। आज द्रव्यानुयोग का सम्पादन कार्य हरमाड़ा में ही सम्पन्न हो रहा है। ४५ वर्ष की दीर्घ कालावधि में चारों अनुयोगों के वर्गीकरण का कार्य सम्पन्न हो गया है, यह मेरे लिए सुखद आत्म-सन्तोष का विषय है।

गणितानुयोग के सम्पादन पश्चात् धर्मकथानुयोग का सम्पादन प्रारम्भ किया। वह दो भागों में परिपूर्ण हुआ। तब तक गणितानुयोग का पूर्व संस्करण समाप्त हो चुका था तथा अनेक स्थानों से माँग आती रहती थी। इस कारण धर्मकथानुयोग के बाद पुनः गणितानुयोग का संशोधन प्रारम्भ किया, संशोधन क्या लगभग ५० प्रतिशत नया सम्पादन ही हो गया। उसका प्रकाशन पूर्ण होने के बाद चरणानुयोग का संकलन किया।

कहावत है–**'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'** शुभ व उत्तम कार्य में अनेक विघ्न आते हैं। विघ्न–बाधाएँ हमारी दृढ़ता व धीरता, संकल्प शक्ति व कार्य के प्रति निष्ठा की परीक्षा है। अनेक बार शरीर अस्वस्थ हुआ, कठिन बीमारियाँ आईं। सहयोगी भी कभी मिले, कभी नहीं, किन्तु मैं अपने कार्य में जुटा रहा।

सम्पादन में सेवाभावी विनय मुनि 'वागीश' भी मेरे साथ सहयोगी बने, वे आज भी शारीरिक सेवा के साथ-साथ मानसिक दृष्टि से भी मुझे परम साता पहुँचा रहे हैं और अनुयोग सम्पादन में भी सम्पूर्ण जागरूकता के साथ सहयोग कर रहे हैं। श्री मिश्रीमल जी म. 'मुमुक्षु' श्री चाँदमल जी म., पं. रत्न श्री रोशनलाल जी म. एवं श्री संजय मुनि जी ने भी सेवा-सुश्रूषा का पूरा ध्यान रखा, जिससे मैं इस कार्य में सफल रहा।

द्रव्यानुयोग की रूपरेखा

इसमें एक ओर मूल पाठ है व सामने शब्दानुलक्षी हिन्दी अनुवाद जाव व संक्षिप्त वाचना का पाठ भिन्न टाइप में दिया है। टिप्पण में समान पाठों के स्थल दिये हैं। अनेक अध्ययन हैं। द्रव्यानुयोग की सामग्री अति विशाल होने के कारण इसे तीन भागों में विभक्त किया है। प्रारम्भ में विषय-सूची व संकेत-सूची दी गई है, इसमें अनेक परिशिष्ट दिये हैं।

परिशिष्ट

१. जीव आदि अध्ययनों से सम्बन्धित विषय धर्मकथानुयोग, गणितानुयोग, चरणानुयोग व द्रव्यानुयोग के अन्य अध्ययनों में जहाँ-ज आये हैं उसकी सूची पृष्ठांक व सूत्रांक सहित देने का प्रयत्न किया है।

२. द्रव्यानुयोग से सम्बन्धित शब्दों का कोष पृष्ठांक सहित दिया गया है।

३. जहाँ से पाठ लिये गए हैं उन आगमों के स्थल निर्देश सहित पृष्ठांक के साथ स्थलों की सूची दी है। सूत्रांक सभी जगह आ समिति व्यावर के दिये हैं। स्थानांग के पाठों में महावीर विद्यालय की प्रति के सूत्रांक दिये हैं। कहीं-कहीं अंगसुत्ताणि के सूत्रांक है

४. अनुयोग संकलन का कार्य वहुत दुरूह व श्रमसाध्य है। पूरी सावधानी रखने पर भी गणितानुयोग, धर्मकथानुयोग, चरणानुयोग कुछ पाठ छूट गये हैं उन सवका संकलन इस परिशिष्ट में किया है सम्बन्धित विषयों के सूत्रांक व पृष्ठांक दिये गये हैं।

५. संकलन में प्रयुक्त आगम आदि ग्रन्थों की सूची दी है।

इस प्रकार पाँच परिशिष्ट दिये हैं इन सवका संकलन श्री विनय मुनि जी 'वागीश' ने किया है।

सहयोग के आधार

चरणानुयोग आदि की भाँति द्रव्यानुयोग के संकलन सम्पादन में विदुषी महासती मुक्तिप्रभा जी, श्री दिव्यप्रभा जी तथा उनका सुशिक्षि शिष्या परिवार सदा सहयोगी रहा है। अनेक वर्षों तक कठिन परिश्रम करके उन्होंने द्रव्यानुयोग की फाइलें तैयार कीं। उनके श्रम द्रव्यानुयोग की एक विस्तृत रूपरेखा और सामग्री संयोजित हो गई। इसके पश्चात् उनका विहार पंजाव की तरफ हो जाने से कार्य अवरोध आ गया। उनकी श्रुत-भक्ति तथा आगम-ज्ञान प्रसंशनीय है। सौभाग्य से आगमज्ञ श्री तिलोक मुनि जी का अप्रत्याशित सहयं प्राप्त हुआ। इसी के साथ पं. श्री देवकुमार जी जैन का सहयोग मिला और द्रव्यानुयोग का कार्य धीरे-धीरे सम्पन्नता के शिखर पहुँच गया।

अनुयोग सम्पादन कार्य में तो अनेक वाधाएँ आईं। जैसे आगम के शुद्ध संस्करण की प्रतियों का अभाव, प्राप्त पाठों में क्रम भंग अं विशेषकर "जाव" शव्द का अनपेक्षित/अनावश्यक प्रयोग। फिर भी धीरे-धीरे जैसे-जैसे आगम-सम्पादन कार्य में प्रगति हुई, वैसे-वै कठिनाइयाँ भी दूर हुईं। महावीर जैन विद्यालय वम्वई, जैन विश्व भारती लाडनूं तथा आगम प्रकाशन समिति व्यावर आदि आगम प्रकाश संस्थानों का यह उपकार ही मानना चाहिए कि आज आगमों के सुन्दर उपयोगी संस्करण उपलव्ध हैं और अधिकांश पूर्वापेक्षा शु सुसम्पादित हैं। यद्यपि आज भी उक्त संस्थाओं के निर्देशकों की आगम सम्पादन शैली पूर्ण वैज्ञानिक या जैसी चाहिए वैसी नहीं है, लि दोष, लिपिकार के मतिभ्रम व वाचना-भेद आदि कारणों से आगमों के पाठों में अनेक स्थानों पर व्युत्क्रम दिखाई देते हैं। पाठ-भेद तो हैं ह "जाव" शव्द कहीं अनावश्यक जोड़ दिया है जिससे अर्थ वैपरीत्य भी हो जाता है, कहीं लगाया ही नहीं है और कहीं पूरा पाठ देकर "जाव" लगा दिया गया है। प्राचीन प्रतियों में इस प्रकार के लेखन-दोष रह गये हैं, जिससे आगम का उपयुक्त अर्थ करने व प्राचीन प परम्परा का वोध कराने में कठिनाई होती है। विद्वान् सम्पादकों को इस ओर ध्यान देना चाहिए था। प्राचीन प्रतियों में उपलव्ध पाठ ज्यों त्यों रख देना अडिग आगम श्रद्धा का रूप नहीं है, हमारी श्रुत-भक्ति श्रुत को व्यवस्थित एवं शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने में है। कभी-कभी ए पाठ का मिलान करने व उपयुक्त पाठ निर्धारण करने में कई दिन व कई सप्ताह लग जाते हैं। किन्तु विद्वान् अनुसन्धाता उसको उपयु रूप में ही प्रस्तुत करता है, आज इस प्रकार के आगम सम्पादन की आवश्यकता है।

मैं अपनी शारीरिक अस्वस्थता के कारण, विद्वान् सहयोगी की कमी के कारण तथा परिपूर्ण साहित्य की अनुपलव्धि तथा समय अभाव के कारण जैसा संशोधित शुद्ध पाठ देना चाहता था वह नहीं दे सका, फिर भी मैंने प्रयास किया है कि पाठ शुद्ध रहे, लम्वे-ल समास पद जिनका उच्चारण दुरूह होता है, तथा उच्चारण करते समय अनेक आगमपाठी भी उच्चारण दोष से ग्रस्त हो जाते हैं। वैसे दुरू पाठों को सुगम रूप में प्रस्तुत कर छोटे-छोटे पद वनाकर दिया जाये व ठीक उनके सामने ही उनका अर्थ दिया जाये जिससे अर्थवोध सुग हो। यद्यपि जिस संस्करण का मूल पाठ लिया है, हिन्दी अनुवाद भी प्रायः उन्हीं का लिया है फिर भी अपनी जागरूकता वरती है, अने स्थानों पर उचित संशोधन भी किया है। उपर्युक्त तीन संस्थानों के अलावा आगमोदय समिति रतलाम तथा सुत्तागमे (पुप्फभिक्खुजी) के पा भी उपयोगी हुए हैं। पूज्य अमोलक ऋषि जी म., आचार्य श्री आत्माराम जी म. एवं आचार्य श्री घासीलाल जी म. द्वारा सम्पादित अनुदि आगमों का भी यथावश्यक उपयोग किया है।

मैं उक्त आगमों के सम्पादक विद्वानों व श्रद्धेय मुनिवरों के प्रति आभारी हूँ। प्रकाशन संस्थाएँ भी उपकारक हैं। उनका सहयोग कृत भाव से स्वीकारना मेरा कर्त्तव्य है।

'पं. अमृतलाल मोहनलाल भोजक, अहमदावाद वाले जो अनेक आगम ग्रन्थों के सम्पादक हैं उन्होंने इस ग्रन्थ के प्राकृत शीर्षक त पं. शोभाचन्द जी भारिल्ल व्यावर, पं. मोहनलाल जी मेहता, पूना तथा लक्ष्मणभाई भोजक आदि का भी मूल पाठ संशोधन अनुवाद लेख आदि में सहयोग देकर कार्य सफल करवाया है अतः मैं इनका आभारी हूँ।

जैन आगम तथा संस्कृत-प्राकृत भाषा के विद्वान् डॉ. धर्मचन्द जी जैन ने प्रत्येक विषय का आमुख लिखने का उत्तरदायित्व स्वीका किया और सुन्दर रूप में सम्पन्न किया है। उनका भी यह सहयोग स्मरणीय रहेगा।

आभार मानना मेरा कर्त्तव्य है।

पांडुलिपि तैयार करने में राजेश भंडारी, श्री मांगीलाल जी शर्मा तथा सुनील मेहता ने अच्छा सहयोग दिया है। ग्रंथ की पांडुलिपि तैयार करने पर मुद्रण विषय में भी अनेक कठिनाइयाँ आईं।

इतने महत्त्वपूर्ण विशाल ग्रंथ का मुद्रण भी सुन्दर, शुद्ध और हमारी दृष्टि के अनुरूप हो तभी उपयोगी हो सकता है। अतः इस कार्य के लिये मुद्रण कला विशेषज्ञ जैन साहित्य के विद्वान् श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' का सहयोग प्राप्त किया गया। उन्होंने न केवल मुद्रण दृष्टि से अपितु सम्पादन दृष्टि से भी ग्रन्थ को अधिकाधिक उपयोगी व सुन्दर, शुद्ध बनाने का प्रयास किया है।

अनुयोग के विशाल कार्य को सम्पन्न कराने में श्रमण सूर्य प्रवर्तक श्री मरुधर केसरी जी म., स्व. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म. की प्रेरणा एवं आशीर्वाद व आचार्यप्रवर श्री देवेन्द्र मुनि जी म. तथा प्रवर्तक श्री रूपचन्द जी म. का भी समय-समय पर उपयोगी सुझाव प्राप्त होता रहा है।

जब-जब अनुयोग कार्य सम्पादन में कठिनाइयाँ आतीं, तब-तब धैर्यपूर्वक कार्य करते रहने की प्रेरणा देने वाले श्री ताराचन्द जी प्रताप जी, श्री वृद्धिचन्द जी मेघराज जी, श्री कुन्दनमल जी मूलचन्द जी, श्री हिम्मतमल जी प्रेमचन्द जी, श्री केशरीमल जी शेषमल जी सोवटिया आदि साकरिया परिवार (साण्डेराव) व श्री चम्पालाल जी चोरड़िया मदनगंज का स्मरण करना भी मेरा कर्तव्य है जिनके प्रोत्साहन से यह कार्य पूर्ण हो सका।

आगम अनुयोग ट्रस्ट के उदारमना श्री बलदेवभाई, हिम्मतभाई, नवनीतभाई, विजयराज जी आदि ट्रस्टीगण तथा अन्य धर्मप्रेमी, ज्ञान-प्रसार में रुचि रखने वाले सद्गृहस्थों ने प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में जो सहयोग प्रदान किया है, मैं उन सभी के प्रति हार्दिक भाव से कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ और साथ ही यह अन्तर कामना करता हूँ कि जिनवाणी रूप ज्ञान-गंगा का यह अमृत-प्रवाह जन-मन को आत्मिक तृप्ति और शान्ति प्रदान करे।

—उपाध्याय मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

जैन स्थानक, हरमाड़ा
जि. अजमेर (राज.)
दि. २६ जनवरी ९४



आगम अनुयोग ट्रस्ट, अहमदाबाद

सहयोगी सदस्यों की नामावली

विशिष्ट सहयोगी

१. श्रीमती सूरज वेन चुन्नीभाई धोरीभाई पटेल, पार्श्वनाथ कॉरपोरेशन, अहमदावाद
हस्ते, सुपुत्र श्री नवनीतभाई, श्री प्रवीणभाई, जयन्तिभाई

२. श्री वलदेवभाई डोसाभाई पटेल पब्लिक चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदावाद
हस्ते, श्री वलदेवभाई, वच्चूभाई, वकाभाई

३. श्री गुलशनराय जी जैन, दिल्ली

४. श्रीचन्द जी जैन, जैन वन्धु, दिल्ली

५. श्री घेवरचंद जी कानुंगा, एल्कोवक्स प्रा. लि., जोधपुर

६. श्रीमती तारादेवी लालचंद जी सिंघवी, कुशालपुरा

प्रमुख स्तम्भ

१. श्री आत्माराम माणिकलाल पब्लिक चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदावाद
हस्ते, श्री वलवन्तलाल, महेन्द्रकुमार, शान्तिलाल शाह

२. श्री पार्श्वनाथ चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदावाद
हस्ते, श्री नवनीतभाई

३. श्री कालुपुर कॉमर्शियल को-ऑपरेटिव वैंक लि., अहमदावाद

४. श्री प्रेम ग्रुफ पीपलिया कलां, श्री प्रेमराज गणपतराज वोहरा
हस्ते, श्री पूरणचंद जी वोहरा, अहमदावाद

५. आइडियल सीट मेटल स्टैपिंग एण्ड प्रेसिंग प्रा. लि.
हस्ते, श्री आर. एम. शाह, अहमदावाद

६. सेठ श्री चुन्नीलाल नरभेराम मेमोरियल ट्रस्ट, वम्बई
हस्ते, श्री मन्नुभाई वेकरी वाला, रुवी मिल, वम्बई

७. श्री प्रभूदासभाई एन. वोरा, वम्बई

८. श्री पी. एस. लूंकड़ चेरिटेवल ट्रस्ट, वम्बई
हस्ते, श्री पुखराज जी लूंकड़

९. श्री गांधी परिवार, हैदरावाद

१०. श्री धानचंद जी मेहता फाउन्डेशन, जोधपुर
हस्ते, श्री नारायणचंद जी मेहता

११. श्रीमती उदयकंवर धर्मपत्नी श्री उम्मेदमल जी सांड, जोधपुर
हस्ते, श्री गणेशमल जी मोहनलाल जी सांड

१२. श्रीमती सोहनकंवर धर्मपत्नी डॉ. सोहनलाल जी संचेती एवं
सुपुत्र श्री शान्तिप्रकाश, महावीरप्रकाश, जिनेन्द्रप्रकाश व नगेन्द्रप्रकाश संचेती, जोधपुर

१३. श्री जेटमल जी चोरडिया, महावीर ड्रग हाउस, वैंगलोर

स्तम्भ

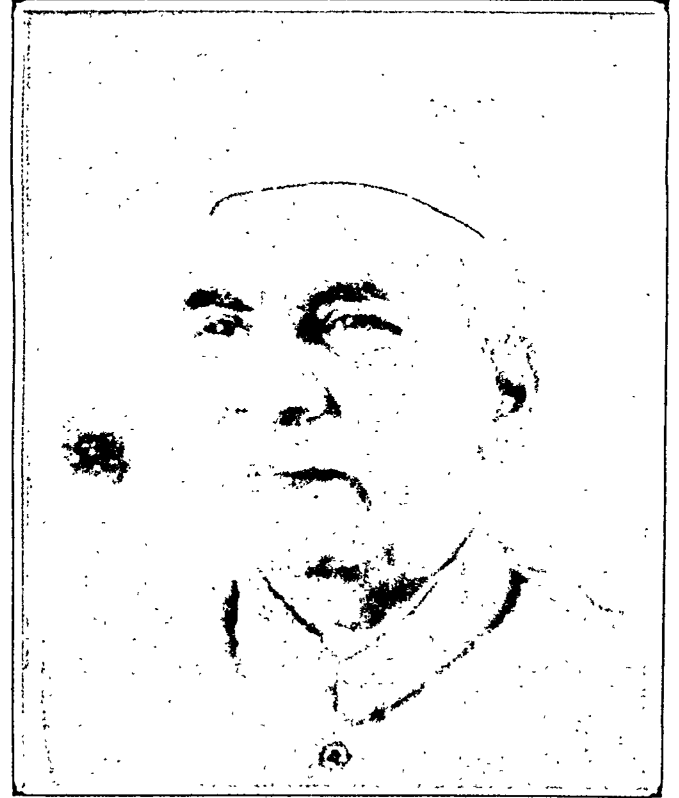
१. श्री रमणलाल माणिकलाल शाह, अहमदावाद
हस्ते, सुभद्रा वेन
२. श्री हिम्मतलाल सावलदास शाह, अहमदावाद
३. श्री मोहनलाल जी मुकनचंद जी वालिया, अहमदावाद
४. श्री विजयराज जी वालावक्स जी वोहरा सावरमती, अहमदावाद
५. श्री अजयराज जी के. मेहता ऐलिसव्रिज, अहमदावाद
६. श्री चिमनभाई डोसाभाई पटेल, अहमदावाद
७. श्री साणन्द सार्वजनिक ट्रस्ट
हस्ते, श्री वलदेवभाई, अहमदावाद
८. श्री पंजाव जैन भ्रातृ सभा खार, वम्बई
९. श्री रतनकुमार जी जैन, नित्यानन्द स्टील रोलर मिल, वम्बई
१०. श्री माणकलाल जी रतनशी वगड़ीया, वम्बई
११. श्री राजमल रिखवचंद मेहता चेरिटेवल ट्रस्ट, वम्बई
हस्ते, श्री सुशीला वेन रमणिकलाल मेहता, पालनपुर
१२. श्री हरीलाल जयचंद डोसी, विश्व वात्सल्य ट्रस्ट, वम्बई
१३. श्री तेजराज जी रूपराज जी वम्व, ईचलकरंजी (महाराष्ट्र)
हस्ते, श्री माणकचन्द जी रूपराज जी वम्व भादवा वाले
१४. श्रीमती सुगनीवाई मोतीलाल जी वम्व, हैदरावाद
हस्ते, श्री भीमराज जी वम्व पीह वाले
१५. श्री गुलावचंद जी मांगीलाल जी सुराणा, सिकन्द्रावाद
१६. श्री नेमीनाथ जी जैन, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
१७. श्री वावूलाल जी धनराज जी मेहता, सादड़ी (मारवाड़)
१८. श्री हुक्मीचंद जी मेहता (एडवोकेट), जोधपुर
१९. श्री केशरीमल जी हीराचंद जी तातेड़ समदड़ी वाले, हुवली
२०. श्री आर. डी. जैन, जैन तार उद्योग, दिल्ली
२१. श्री देशराज जी पूरणचंद जी जैन, अहमदावाद
२२. श्री रोयल सिन्थेटिक्स प्रा. लि., वम्बई
२३. श्री विरदीचंद जी कोठारी, किशनगढ़
२४. श्री मदनलाल जी कोठारी महामंदिर, जोधपुर
२५. श्री जंवतराज जी सोहनलाल जी बाफणा, बैंगलोर
२६. श्री धनराज जी विमलकुमार जी रूणबाल, बैंगलोर
२७. श्री जगजीवनदास रतनशी बगड़ीया, दामनगर (गुजरात)
२८. श्री सुगाल एण्ड दामाणी, नई दिल्ली
२९. श्री भींवराज जी हजारीमल जी साण्डेराव वाले, कोसम्बा

महासंरक्षक

१. श्री माणिकलाल सी. गांधी, अहमदाबाद
२. श्री स्वस्तिक कॉरपोरेशन, अहमदाबाद
हस्ते, श्री हंसमुखलाल कस्तूरचंद
३. श्री विजय कंस्ट्रक्शन कं., अहमदाबाद
हस्ते, श्री रजनीकान्त कस्तूरचंद
४. श्री करशनजीभाई लघुभाई निशर दादर, बम्बई
५. श्री जसवंन्तलाल शान्तिलाल शाह, बम्बई
६. श्री वाडीलाल छोटालाल डेली वाला, बम्बई
हस्ते, श्री चन्द्रकान्त वी. शाह

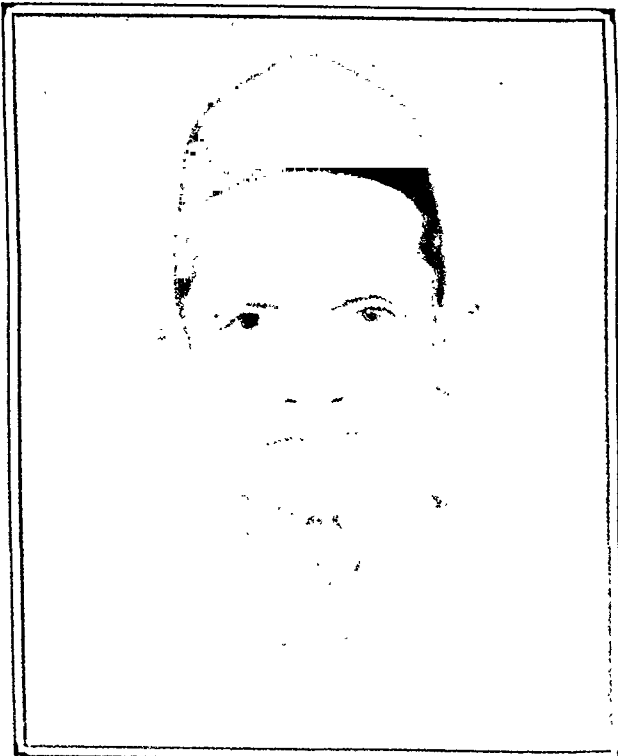
विशिष्ट सहयोगी

श्री वलदेवभाई डोसाभाई पटेल, अहमदावाद



आप मूलतः साणंद (गुजरात) के निवासी हैं। वहुत वर्षो से अहमदावाद में ही व्यापार व्यवसाय कर रहे हैं। व्यापारी समाज में आपकी महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठा है। आपके कॉटन का वहुत वड़ा व्यापार है। आप गुजरात व्यापारी महामण्डल के प्रमुख भी रहे हुए हैं। आप अखिल भारतीय शास्त्रोद्धार समिति के प्रमुख हैं एवं अनेक सामाजिक संस्थाओं के सक्रिय कार्यकर्त्ता हैं। लोक-कल्याण के कार्यों में सदा तत्पर रहते हैं। अनेक वर्षों से आप व्रह्मचर्य व्रत एवं रात्रि में चौविहार आदि का पालन करते हैं। प्रतिदिन सामायिक, प्रतिक्रमण तथा धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय ही आपकी दिनचर्या का प्रमुख अंग है। आप दृढ़धर्मी, उदार हृदयी श्रावक हैं अतः स्थानीय समाज के अग्रणी माने जाते हैं। कालूपुर वैंक के आप चेयरमैन हैं।

अनुयोग प्रवर्त्तक पूज्य गुरुदेव श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल' के सम्पर्क में आप सन् १९७६ में आये। उनके अनुयोग लेखन कार्य से प्रभावित होकर आपने आगम अनुयोग ट्रस्ट की स्थापना की। इस समय ट्रस्ट के प्रमुख भी आप ही हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती रुक्मणीवहिन भी धार्मिक भावना वाली हैं। आपके सुपुत्र वच्चूभाई, वकुलभाई में धर्म के सुसंस्कार दृढ़ हैं।



श्री हिम्मतलाल शामलभाई शाह, अहमदावाद

आप वहुत ही उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। शामलभाई अमरशी के आप सुपुत्र हैं। आपके घर पर एक विशाल पुस्तकालय है, उसमें अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का संग्रह है। शोध निवन्ध लेखकों के लिए यह संग्रह अत्यन्त उपादेय है। आप साधु-साध्वियों की ज्ञान-वृद्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप ट्रस्टी हैं। प्रकाशनों की प्रगति में आपका महत्त्वपूर्ण सक्रिय योगदान रहता है। वृद्धावस्था में भी आपका पुरुषार्थ, धर्म एवं स्वाध्याय की रुचि अनुकरणीय है।

अनुयोग प्रकाशन के प्रति आप विशेष प्रयत्नशील हैं।



[illegible] अहमदाबाद

[illegible] स्थानकों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान [illegible] का सम्मान करने में आपको [illegible] कॉर्पोरेशन के आप [illegible] संप्रदाय के आचार्य श्री [illegible] भक्त हैं। हरसिद्ध [illegible] हैं। अपनी जन्मभूमि [illegible] लिए पाँच लाख रुपये का महत्त्वपूर्ण दान दिया है। [illegible], नारायणपुरा, [illegible] एवं संस्थाओं के आप [illegible]

[illegible] मातुश्री [illegible] साधु-साध्वी जी की वैयावच्च [illegible]

[illegible]

विशिष्ट सहयोगी

स्व. श्री राजमल जी रिखबचंद जी मेहता
एवं
स्व. श्रीमती मणीबेन राजमल जी मेहता, पालनपुर

पूज्य मातुश्री तथा पिताश्री;

आपका हमारे ऊपर बहुत उपकार है। क्योंकि संस्कार सिंचन करने वाले एवं जीवन में धर्म रूप बीज डालने वाले माता-पिता ही होते हैं। हम आपके बहुत-बहुत ऋणी हैं।

विनीत–रमणिकलाल राजमल

सौ. सुशीलाबहिन रमणिकलाल

[श्रीमती सुशीलाबहिन मेहता–पालनपुर स्थानकवासी समाज की अग्रणी महिला हैं। वर्तमान में बालकेश्वर संघ की प्रमुख हैं। बहुत ही उदार दानवीर महिला हैं। उपाश्रय आदि के लिए आपका विशेष योगदान रहता है।]



श्री [illegible] जी [illegible]

आप मुख्यतः वड़लू (भोपालगढ़) [illegible] सरोजबेन भी बहुत धार्मिक भावना वाली हैं। आपका [illegible] फाइनेन्स का व्यवसाय है। आप बहुत ही भद्र, [illegible] हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के ट्रस्टी हैं।



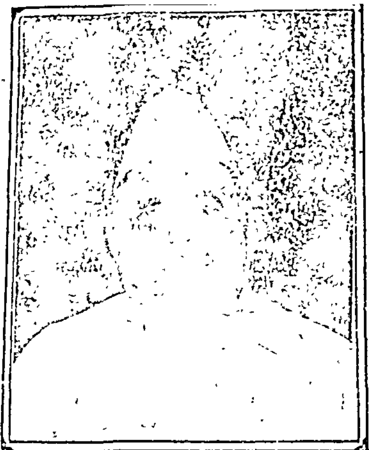
श्री [illegible] शाह, धानेरा

अनुयोग का कार्य प्रारम्भ कराने में आपका सर्वप्रथम सहयोग रहा। आपकी पूज्य गुरुदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा-भक्ति है।

स्वाध्याय में अधिक रुचि है। समय-समय पर आप अनुयोग के कार्य में सहयोग करते रहे। आपकी सार्वजनिक सेवाओं में भी बहुत रुचि है। स्वास्थ्य अधिक अनुकूल न होते हुए भी धानेरा के चिकित्सालय की देखरेख कर रहे हैं। आपका जयपुर व बम्बई में व्यवसाय है।

श्री विजयराज जी [illegible]

आप राणीवाल [illegible] सुपुत्र हैं। अहमदाबाद में आपका [illegible] बहुत बड़ा व्यापार है। [illegible] अहमदाबाद पधारे [illegible] अनन्य भक्त हैं। [illegible] [illegible]



पीपली वाला (अहमदाबाद) मंत्री—अनुयोग ट्रस्ट

अनेक शुभ कार्यों में तन-मन-धन से सहयोग करने वाले श्री जयन्तिभाई के नाम से सम्पन्न वर्ग सुपरिचित है। धार्मिक संस्थाओं की अनेक प्रवृत्तियाँ, दीक्षा महोत्सव जैसे धार्मिक प्रसंगों में सदा अग्रणी रहते हुए आप प्रेरणा के स्रोत बन जाते हैं। आपकी वाणी अपने माधुर्य और ओजस्विता से श्रोताओं को मनोमुग्ध कर जनता के लिये आर्थिक सहयोग प्रदान करने का आधार रूप हो जाती है। इस प्रकार संस्थाओं के लिये प्रबल स्तम्भ के रूप में अपने को प्रस्तुत कर देते हैं।

आपकी यह विशिष्टता है कि जो भी कार्य आप प्रारम्भ करते हैं उसे पूर्ण किये बिना विराम नहीं लेते। व्यावसायिक क्षेत्र में प्रमुख व्यवसायी होते हुए भी बिना किसी हिचक के शुभ कार्यों को महत्त्व देते हैं—यह आपका स्वाभाविक गुण है, जो आपके व्यक्तित्व को महान् बनाता है। आपके लिये कार्य महान् है—व्यक्ति नहीं। आप मिलनसार प्रवृत्ति के होने के कारण सबके लिये आशीर्वाद रूप हैं। बाल्यकाल से ही साधु-संतों की सेवा का अलभ्य लाभ लेते रहे हैं। इसलिये त्यागी वर्ग की दृष्टि में भी आप समादरणीय हैं।

यों तो आप धांग्रध्रा (सौराष्ट्र) के निवासी हैं किन्तु कर्मनिष्ठा, समाज-सेवा, धर्मशीलता एवं स्फूर्त चैतन्यता से आपने अपना विशाल क्षेत्र बना लिया है। सार्वजनिक जीवन बन जाने के कारण सर्वप्रिय वन गये हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट को आप प्रारम्भ से ही निःस्वार्थ सेवा प्रदान करते रहे हैं। अभी आप अनुयोग ट्रस्ट के मानद् मन्त्री हैं। सौराष्ट्र स्थानकवासी जैन संघ, नारायणपुरा संघ आदि अनेक संस्थाओं के आप पदाधिकारी हैं।

आगम सेवी, ज्ञान तपस्वी उपाध्यायप्रवर परम पूज्य श्री कन्हैयालाल जी म. सा. 'कमल' के प्रति आपकी अनन्य श्रद्धा-भक्ति है। गुरू सेवा का यथा प्रसंग लाभ लेते रहते हैं।



डॉ. श्री सोहनलाल जी सा. संचेती, जोधपुर
श्रीमती सोहनकुंवर जी संचेती, जोधपुर

आप श्री सुजानमल जी संचेती सा. के सुपुत्र हैं। प्रसिद्धवक्ता जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म. सा. के दो चातुर्मास आपके ही प्रयास से हुए। श्रमणसूर्य मरुधर केसरी जी म. के प्रति अनन्य श्रद्धा वनी रही जिससे आपका जीवन धार्मिक संस्कारों से सम्पन्न हुआ। आचार्य श्री हस्तीमल जी म. सा. के सदुपदेश से सामायिक-स्वाध्याय की रुचि वढ़ी।

आपका क्लोथ एक्सपोर्ट का वहुत बड़ा व्यवसाय है। आपने होम्योपैथिक डिस्पेन्सरी की स्थापना की एवं स्वयं निःशुल्क चिकित्सा कर रहे हैं। आपके श्री शांतिप्रकाशजी, महावीरप्रकाश जी जिनेन्द्रप्रकाशजी एवं नगेन्द्रप्रकाशजी चार सुपुत्र हैं। वे सब अपने-अपने व्यवसाय में संलग्न हैं।

उपाध्याय प्रवर पं. रत्न मुनि श्री कन्हैयालाल जी म. सा. के प्रति आपकी अनन्यश्रद्धा भक्ति है। आप आगम अनुयोग ट्रस्ट के सहमंत्री हैं और सुचारू रूप से अपना पद भार संभालते हैं।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सोहनकंवर बहुत ही धार्मिक एवं सन्त-सतियों की सेवा में सदा तत्पर रहती है। स्थानीय महिला मंडल का उपाध्यक्ष पद बड़े ही दायित्त्व के साथ संभालती हैं। अपने बनाये हुए भजनों को मधुर स्वर से गाती है।

आपका सम्पूर्ण परिवार धार्मिक संस्कारों से ओतप्रोत है।

श्रीमती नानदेवी लालचंद जी सिंघवी, कुशालपुरा

आचार्यसम्राट् श्री आनन्द ऋषि जी म. सा. की कुशालपुरा (राज.) पर विशेष कृपा रही है। जहाँ पर सन् १९८१ में ऐतिहासिक चातुर्मास कर उसे भारतवर्ष में विख्यात कर दिया। वहीं के निवासी सिंघवी परिवार हाल मुकाम मद्रास रायपेठ में रहते हैं। शुरू से ही धर्म-ध्यान, समाज-सेवा और दानवीरता में अग्रणी रहे हैं। श्री हेमराज जी [illegible] ने अपने जीवन- काल में अनेक संस्थाओं को दान देकर कीर्तिमान स्थापित किया [illegible] उन्हीं के भाई स्व. श्री लालचन्द जी सिंघवी की धर्मपत्नी श्रीमती [illegible] अनेक सुपुत्र श्री नेमीचन्द जी, धर्मीचन्द जी, महावीरचन्द जी, [illegible] जी सिंघवी ने भी अनेक संस्थाओं को दान दिया। सन् १९९४ में [illegible] श्री वर्धमान महावीर केन्द्र में आयंबिल ओली तप कराने का भी [illegible] लिया। अभी १५ जनवरी १९९५ को पूज्य गुरुदेव श्री मरुधर केशरी जी की [illegible] पुण्यतिथि व उपाध्याय चादर समारोह के अवसर पर सोजत सिटी में [illegible] म. सा. 'कमल' की प्रेरणा से उस "द्रव्यांनुयोग" भाग २ का [illegible] किया और विशिष्ट सहयोगी सदस्य बने। अतः सिंघवी परिवार के [illegible] आभारी हैं।



श्री घेवरचन्द जी कानूंगा, जोधपुर

आप प्रसिद्ध उद्योगपति हैं। आपका जन्म सन् १९३६ में गढ़ सिवाना में हुआ। आप बहुत ही धर्म श्रद्धालु, दयालु, उदार, दानवीर स्वभाव के हैं। आप एल्कोवेक्स प्रा. लि. जोधपुर व उदयपुर में स्थापित इन्डस्ट्रीज के डायरेक्टर हैं। देश-विदेश में अनेक स्थानों पर कार्यालय हैं। राजस्थान केसरी उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म. एवं मरुधर केसरी जी म. के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति रही। वर्तमान में आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म., उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल', प्रवर्त्तक श्री रूपचन्द जी म. के प्रति अनन्य भक्ति है।

सन् १९८६-८७ में पड़े भीषण अकाल के समय "अकाल सहायता समिति" के अध्यक्ष के रूप में ५ लाख पशुओं का संरक्षण किया। एक वर्ष तक ९० हजार गायों के लिए निःशुल्क गौशालाओं की व्यवस्था की।

आप ग्लोबल ईस्ट बैंक के निर्देशक हैं। ओसवाल सिंह सभा जोधपुर, सरदार हायर सेकेन्डरी स्कूल, नाकोड़ा कॉमर्शियल कॉलेज में जोधपुर के अध्यक्ष हैं। भ. महावीर विकलांग सहायता समिति, जयपुर के कार्याध्यक्ष हैं। भ. महावीर शिक्षण संस्थान के तत्त्वावधान में संचालित महिला महाविद्यालय के भी अध्यक्ष हैं।

अभी अनेक सामाजिक, व्यापारिक, धार्मिक संस्थाओं के पदाधिकारी हैं।

आपकी समाज-सेवा एवं उद्योगों के विकसित करने के उपलक्ष्य में नेशनल प्रेस ऑफ इंडिया के अनुमोदन पर सन् १९९२ में महामहिम राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल जी शर्मा ने "राष्ट्रीय पुरस्कार" प्रदान कर आपका विशेष सम्मान किया।

आप अनुयोग ट्रस्ट के विशिष्ट सहयोगी सदस्य हैं।



७. श्री चम्पालाल जी हरखचंद जी कोठारी पीपाड़ वाले, बम्बई
८. श्रीमती लीलावती बेन जयन्तिलाल चेरिटेबल ट्रस्ट, बम्बई
९. श्री मूलचंद जी सरदारमल जी, संचेती
हस्ते, उमरावमल जी, जोधपुर
१०. श्री उदयराज जी संचेती, जोधपुर
११. श्री मदनलाल जी संचेती, मनीष इन्डस्ट्रीज, जोधपुर
१२. श्री सूरजमल जी सा. गेहलोत सूरसागर, जोधपुर
१३. श्रीमती चन्द्रादेवी धर्मपत्नी गंभीरमल जी बम्ब, टौंक (राजस्थान)
१४. श्रीमती केली बेन चौधरी ट्रस्ट
हस्ते, श्री शान्तिलाल जी धर्मीचंद जी, तिरुपती (आ. प्र.)
१५. कृषिभूषण श्री विजयराज जी फतेहराज जी बरमेचा, नासिक सिटी
१६. श्री इन्दरचंद मेमोरियल चेरिटेबल ट्रस्ट, नासिक सिटी
हस्ते, श्री शान्तिलाल जी दूगड़
१७. श्रीमती ऊषादेवी गौतमचंद जी बोहरा, जैतारण
हस्ते, श्री जवन्तराज जी
१८. श्री भंवरलाल जी हीराचंद जी मेहता, पाली (मारवाड़)
१९. श्री मेघराज जी रूपा जी साण्डेराव वाले, जय सन्स अम्ब्रेला इण्डस्ट्रीज, हुबली
२०. श्रीमती पानीबाई बालचंद जी बाफना, सादड़ी (मारवाड़)
हस्ते, श्री रूपचन्द जी बाफना
२१. श्री एस. एस. जैन सभा, कोल्हापुर मार्ग, सब्जी मण्डी, दिल्ली
२२. श्री धीरजभाई धरमशीभाई मोरबिया, आबू रोड
२३. श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, हरमाड़ा
२४. श्री नरेन्द्रकुमार जी छाजेड़, उदयपुर
२५. श्री सुगनचन्द जी जैन, मद्रास
२६. श्री अमरचन्द मारु चेरिटेबल ट्रस्ट, दिल्ली
हस्ते, माणकचन्द जी, धर्मीचन्द, प्रेमचन्द जी लूणावत, हरमाड़ा
२७. तपस्वी चन्दुभाई मेहता, जामनगर
२८. श्री भोगीलाल कल्लभाई, धानेरा
२९. श्री जुहारमल जी दीपचन्द जी नाहटा
हस्ते, धनराज लालचन्द, केकड़ी
३०. श्री मोतीलाल वरदीचंद मूथा, खेड़ब्रह्मा
३१. श्री केवलचन्द जी जंवरीलाल जी बरमेचा, अटपड़ा

संरक्षक

१. श्री भंवरलाल जी मोहनलाल जी भंडारी, अहमदाबाद
२. श्री नवीनभाई दोशी, अहमदाबाद
३. श्री मूलचंद जी जवाहरलाल जी बरडिया, अहमदाबाद
४. श्री धिगड़मल जी मुलतानमल जी कानूंगा, अहमदाबाद
५. श्री [illegible] शाह, अहमदाबाद
६. श्री [illegible] डी. [illegible], अहमदाबाद
७. श्री [illegible], अहमदाबाद
हस्ते, श्री [illegible]
८. श्रीमती [illegible] ट्रस्ट, अहमदाबाद
हस्ते, श्री [illegible]
९. श्री [illegible], अहमदाबाद

१०. श्री कान्तिलाल मनसुखलाल शाह पालियाद वाला, अहमदाबाद
११. श्री गिरधरलाल पुरुषोत्तमदास ऐलिसब्रिज, अहमदाबाद
१२. श्री जयन्तिलाल भोगीलाल भावसार सरसपुर, अहमदाबाद
१३. श्री भोगोलाल एण्ड कं., अहमदाबाद
हस्ते, श्री दीनुभाई भावसार
१४. श्री अहमदाबाद स्टील स्टोर, अहमदाबाद
हस्ते, जयन्तिलाल मनसुखलाल
१५. श्री जादव जी मोहनलाल शाह, अहमदाबाद
१६. डॉ. श्री धीरजलाल एच. गोसलिया नवरंगपुरा, अहमदाबाद
१७. श्री सज्जनसिंह जी भंवरलाल जी कांकरिया पीपाड़ वाले, अहमदाबाद
१८. श्री कान्तिलाल प्रेमचंद शाह मूँगफली वाला, अहमदाबाद
१९. प्लाजा इन्डस्ट्रीज, अहमदाबाद
हस्ते, धनकुमार भोगीलाल पारीख
२०. श्री नगीनदास शिवलाल, अहमदाबाद
२१. श्रीमती कान्ता बेन भँवरलाल जी के वर्षीतप के उपलक्ष में
हस्ते, श्री सखीदास मनसुखभाई, अहमदाबाद
२२. श्री दलीचंदभाई अमृतलाल देसाई, अहमदाबाद
२३. श्री जयन्तिलाल के. पटेल साणन्द वाले, अहमदाबाद
२४. श्री रामसिंह जी चौधरी, अहमदाबाद
२५. श्री पोपटलाल मोहनलाल शाह पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट, अहमदाबाद
२६. श्री चिमनलाल डोसाभाई पटेल, अहमदाबाद
२७. श्री जादव जी लाल जी वेल जी, बम्बई
२८. श्री गेहरीलाल जी कोठारी, कोठारी ज्वैलर्स, बम्बई
२९. श्री हिम्मतभाई निहालचन्द जी दोषी, बम्बई
३०. श्री आर. आर. चौधरी, बम्बई
३१. स्व. श्री मणिलाल नेमचन्द अजमेरा तथा कस्तूरी बेन मणिलाल की स्मृति में
हस्ते, श्री चम्पकभाई अजमेरा, बम्बई
३२. श्रीमती समरथ बेन चतुर्भुज बेकरी वाला, बम्बई
हस्ते, कान्तिभाई
३३. श्री छगनलाल शामजीभाई विराणी राजकोट वाले, बम्बई
३४. श्री रसिकलाल हीरालाल जवेरी, बम्बई
३५. श्रीमती तरुलता बेन रमेशचंद दफ्तरी, बम्बई
३६. श्री ताराचंद चतुरभाई वोरा बालकेश्वर, बम्बई
हस्ते, नन्दलालभाई
३७. श्री चम्पकलाल एम. लाखाणी, बम्बई
३८. श्री हीर जी सोजपाल कच्छ कपाया वाला, बम्बई
३९. श्री अमृतलाल सोभागचंद जी की स्मृति में
हस्ते, राजेन्द्रकुमार गुणवन्तलाल, बम्बई
४०. श्री एच. के. गांधी मेमोरियल ट्रस्ट घाटकोपर, बम्बई
हस्ते, वज्जुभाई गांधी
४१. श्री वाडीलाल मोहनलाल शाह सायन, बम्बई
४२. श्री नगराज जी चन्दनमल जी मेहता सादड़ी वाले, बम्बई
४३. श्री हरीश सी. जैन खार, जय सन्स, बम्बई
४४. श्री छोटालाल धनजीभाई दोमड़िया, बम्बई

४५. श्रीमती शान्ता बेन कान्तिलाल जी गांधी, बम्बई
४६. श्रीमती शिमला रानी जैन की स्मृति में जितेन्द्रकुमार जैन, बम्बई
४७. श्रीमती पारसदेवी मोहनलाल जी पारख, हैदराबाद
४८. श्री नवरतमल जी कोटेचा बम्बी वाले, हैदराबाद
४९. श्रीमती दीदाम बेन घीसालाल जी कोठारी, हैदराबाद
५०. श्री पारसमल जी पारख, हैदराबाद
५१. श्री बाबूलाल जी कांकरिया, हैदराबाद
५२. श्री सज्जनराज जी कटारिया, सिकन्द्राबाद
५३. श्री दिनेशकुमार चन्द्रकान्त बैंकर, सिकन्द्राबाद
५४. श्री प्रेमचन्द जी पोमा जी साकरिया, साण्डेराव
५५. श्रीमती गंजाबाई प्रेमचंद जी साकरिया, साण्डेराव
५६. श्री बिरदीचंद मेगराज जी साकरिया, साण्डेराव
५७. श्री जुहारमल जी लुम्बा जी साकरिया, साण्डेराव
५८. श्री ताराचंद जी भगवान जी साकरिया, साण्डेराव
५९. श्री कस्तूरचंद जी प्रताप जी साकरिया, साण्डेराव
६०. श्री ताराचंद जी प्रताप जी साकरिया, साण्डेराव
६१. श्री सुमेरमल जी मेड़तिया (एडवोकेट), जोधपुर
६२. श्री अगरचंद जी फतेहचंद जी पारख, जोधपुर
६३. श्री मुन्नीलाल जी मदनराज जी गोलेच्छा, जोधपुर
६४. श्री लुम्बचंद जी गौतमचंद जी सांड, जोधपुर
६५. श्री कैलाशचंद्र जी भंसाली, जोधपुर
६६. श्री मूलचंद जी भंसाली, जोधपुर
६७. श्री शान्तिलाल जी मुन्नालाल जी मुणोत सूरसागर, जोधपुर
६८. श्री लालचंद जी गौतमचंद जी मुणोत सूरसागर, जोधपुर
६९. श्री गुलराज जी पूनमचंद जी मेहता, मदनगंज
७०. श्री गणेशदास शान्तिलाल संचेती, मदनगंज
७१. श्री चम्पालाल जी पारसमल जी धींगड़िया, मदनगंज
७२. श्री मूलचंद कनकमल, मदनगंज
फर्म, श्री महावीरचंद जी कोठारी
७३. श्री दूधसिंह जी पारसमल जी धीसुलाल जी बम्ब, मदनगंज
७४. श्री [illegible] जी चम्पालाल जी उत्तमचंद जी धींगड़िया, मदनगंज
७५. श्री [illegible] जी [illegible] जी मेड़तवाल, केकड़ी
७६. श्री [illegible] जी [illegible] (एडवोकेट), शाहपुरा
७७. श्री [illegible] जी सुमेरसिंह जी [illegible], रूपनगढ़
७८. श्री [illegible] जी [illegible], गर्वाड़ियाद
फर्म, श्री [illegible] जी [illegible]
७९. श्री [illegible] जी उत्तमचंद जी बम्ब, [illegible]
८०. श्री [illegible] जी [illegible], [illegible]
८१. श्री [illegible] जी [illegible] जी [illegible] जी [illegible] [illegible]
[illegible], [illegible] (मारवाड़)
८२. श्री [illegible] जी [illegible], [illegible]
८३. श्री [illegible] जी [illegible] जी [illegible], [illegible] ([illegible])
८४. श्री [illegible] जी [illegible] जी [illegible], [illegible] ([illegible])
८५. श्री [illegible] [illegible], [illegible] ([illegible])

८६. श्री कान्तिलाल जी रतनचंद जी बांठिया, पनवेल (महाराष्ट्र)
८७. मै. कन्हैयालाल माणकचंद एण्ड सन्स, बड़गाँव (पूणा)
८८. श्री रणजीतसिंह ओमप्रकाश जैन, कालावाली मण्डी (हरियाणा)
८९. श्री मदनलाल जी जैन, भटिण्डा (पंजाब)
९०. श्री भाईलाल जादव जी सेठ, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
९१. श्री सोहनराज जी चौथमल जी संचेती सोजत वाले, सुरगाणा (महाराष्ट्र)
९२. श्री जे. डी. जैन, ग़ाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)
९३. श्री प्रेमचंद जी जैन, आगरा
९४. श्री जी. एस. संघवी राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली
९५. श्री वी. अमोलकचंद अमरचंद मेहता, बैंगलोर
९६. श्री विजयराज जी पदमचन्द जी गादिया, कुड़की
९७. श्री शान्तिलाल जी बम्ब, पीह
९८. श्री रजनीकान्त भाई देसाई, बम्बई
९९. श्री छोगालाल जी बोहरा, पाली
१००. श्री हमीरमल दलीचंद श्रीश्रीमाल, ब्यावर
१०१. श्री अशोककुमार जी धीरजकुमार जी गादिया, बैंगलोर
१०२. श्री माणकचन्द जी ओसतवाल, बैंगलोर
१०३. श्री पूनमचन्द जी हरिशचन्द्र वडेर, जयपुर

सम्माननीय सदस्य

१. श्री पी. के. गांधी, बम्बई
२. श्री सुखलाल जी कोठारी खार, बम्बई
३. श्री नागरदास मोहनलाल खार, बम्बई
४. श्री आनन्दीलाल जी कटारिया वडाला, बम्बई
५. श्री बसन्तलाल के. दोसी विर्लेपाला, बम्बई
६. श्री प्रोसीसन टैक्सटाइल इन्जीनियरिंग एण्ड काम्पेन्ट्स, बम्बई
७. श्री मेहता इन्द्र जी पुरुषोत्तमदास दादर, बम्बई
८. श्री कोरसीभाई हीरजीभाई चेरिटेबल ट्रस्ट, बम्बई
९. श्री जयसुखभाई रामजीभाई शेठ कांदावाड़ी, बम्बई
१०. श्री चिमनलाल गिरधरलाल कांदावाड़ी, बम्बई
११. श्री मेघजीभाई धोबण कांदावाड़ी, बम्बई
हस्ते, मणिलाल वीरचंद
१२. श्री प्रितमलाल मोहनलाल दफ्तरी कांदावाड़ी, बम्बई
१३. मै. सीलमोहन एण्ड कं., बम्बई
हस्ते, रमणिकभाई धानेरा वाले
१४. श्री नरोत्तमदास मोहनलाल, बम्बई
१५. श्री वाडीलाल जेठालाल शाह वालकेश्वर, बम्बई
आचार्य यशोदेवसूरीश्वरजी की प्रेरणा से
१६. श्री जैन संस्कृति कला केन्द्र मरीनलाईन, बम्बई
१७. श्री मेघजी खीमजी तथा लक्ष्मी बेन मेघजी खीमजी, बम्बई
१८. श्री ताराचंद गुलाबचंद, बम्बई
१९. श्री गिरधरलाल मन्छाचंद जवेरी धानेरा वाले, बम्बई
२०. श्रीमती भूरीबाई भंवरलाल जी कोठारी सेमा वाले, बम्बई
हस्ते, सागरमल मदनलाल रमेशचंद

२१. श्री पुखराज जी कावड़ीया सादड़ी वाले, न्यू राजुमणि ट्रांसपोर्ट, वम्बई
२२. श्री रसीकलाल हीरालाल जवेरी, वम्बई
२३. श्री प्रवीणभाई के. मेहता, वम्बई
२४. श्री प्रभुदासभाई रामजीभाई सेठ, वम्बई
२५. श्रीमती लता वेन विमलचंद जी कोठारी, वम्बई
२६. श्री कमलेश एन. शाह, वम्बई
२७. श्री अरविन्दभाई धरमशी लुखी, वम्बई
२८. श्री चांपशीभाई देवशी नन्दू, वम्बई
२९. श्री लालजी लखमशी केमिकल्स प्रा. लि., वम्बई
३०. श्री मूलचंद जी गोलेछा, जोधपुर
३१. श्री चम्पालाल जी चौपड़ा, जोधपुर
३२. श्री माणकचंद जी अशोककुमार जी, जोधपुर
३३. श्री मदनराज जी कर्णावट, जोधपुर
३४. श्री जेठमल जी लुंकड़, जोधपुर
३५. श्री मेहन्द्रकुमार जी राजेन्द्रकुमार जी, जोधपुर
३६. श्रीमती विमलादेवी मोतीलाल जी गुलेछा, जोधपुर
३७. श्री जैन वुक डिपो पावटा, जोधपुर
३८. श्री सायरचंद जी वागरेचा, जोधपुर
३९. श्री घेवरचंद जी पारसमल जी टाटिया, जोधपुर
४०. श्री भंवरलाल जी गणेशमल जी टाटिया, जोधपुर
४१. श्री लाभचंद जी टाटिया, जोधपुर
४२. श्री तेजराज जी गोदावत, जोधपुर
४३. श्री महावीर स्टोर्स, जोधपुर
४४. श्री पारसमल जी सुमेरमल जी संखलेचा, जोधपुर
४५. श्री मोहनलाल जी वोथरा, जोधपुर
४६. श्री जवरचंद जी सेठिया, जोधपुर
४७. श्री मूलचंद जी भंसाली, जोधपुर
४८. श्री सोमचंद जी सर्राफ, जोधपुर
४९. श्री केशरीमल जी चौपड़ा, जोधपुर
५०. श्री कनकराज जी गोलिया, जोधपुर
५१. श्री चम्पालाल जी वाफना, जोधपुर
५२. श्री ताराचंद जी सायरचंद जी पारख, जोधपुर
५३. श्री घेवरचंद जी पारख, जोधपुर
५४. श्री उदयराज जी पारख, जोधपुर
५५. श्री हरखराज जी मेहता, जोधपुर
५६. श्री लालचंद जी वाफना, जोधपुर
५७. श्री जैन खतरगच्छ संघ, जोधपुर
५८. श्री दिलीपराज जी कर्णावट, जोधपुर
५९. श्री शम्भूदयाल जी भंसाली, जोधपुर
६०. श्री चम्पालाल जी भंसाली, जोधपुर
६१. श्री चन्द्रसागर जी कुंभट, जोधपुर
६२. श्री महेन्द्रकुमार जी झामड़, जोधपुर
६३. श्री सूरजमल जी रमेशकुमार जी श्रीश्रीमाल, जोधपुर
६४. श्री प्रसन्नमल जी डोसी प्रतापनगर, जोधपुर

६५. श्री सुगनचंद जी भंडारी, जोधपुर
६६. श्री मोहनलाल जी चम्पालाल जी गोठी महामन्दिर, जोधपुर
६७. श्री गुलाबचंद जी जैन, जोधपुर
६८. श्री नरसिंग जी दाधीच सूरसागर, जोधपुर
६९. श्री जीवराज जी कानूंगा, जोधपुर
७०. श्री भंवरलाल जी कानूंगा, जोधपुर
७१. श्री दलाल माणकचंद जी वोहरा, जोधपुर
७२. श्रीमती कमला सुराणा, जोधपुर
७३. श्री अशोककुमार जी वोहरा, जोधपुर
७४. श्रीमती मंजुदेवी अशोककुमार जी वोहरा, जोधपुर
७५. श्री सोहनलाल जी वडेर, जोधपुर
७६. श्री माणकचंद जी संचेती, जोधपुर
७७. श्री मदनचंद जी संचेती, जोधपुर
७८. श्री धनराज जी दिलीपचंद जी संचेती, जोधपुर
७९. श्री गौतमचंद जी संचेती, जोधपुर
८०. श्री प्रकाशचंद जी संचेती, जोधपुर
८१. श्री पुष्पचंद जी संचेती, जोधपुर
८२. श्री गणपतलाल जी संचेती, जोधपुर
८३. श्री भरतभाई जे. शाह, अहमदावाद
८४. श्री लालभाई दलपतभाई चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदावाद
८५. श्री महेन्द्रभाई सी. शाह नवरंगपुरा, अहमदाबाद
८६. श्री भींवराज जी भगवान जी धारीवाल, अहमदाबाद
८७. श्री पारसमल जी ओटरमल जी कावड़ीया, सादड़ी (मारवाड़)
८८. श्री हिम्मतमल जी प्रेमचंद जी साकरिया, साण्डेराव
८९. श्री रतीलाल विट्ठलदास गोसलिया, माधवनगर
९०. श्री हरखराज जी दौलतराज जी धारीवाल, हैदराबाद
९१. श्री एस. एन. भीकमचंद जी सुखाणी लाल बाजार, सिकन्द्राबाद
९२. श्री चुन्नीलाल जी बागरेचा, बालाघाट
९३. श्री प्रेमराज जी उत्तमचंद जी चौरड़िया, मदनगंज
९४. श्री मांगीलाल जी सोलंकी सादड़ी वाले, पूना
९५. श्री सोहनराज जी चौथमल जी संचेती सोजत वाले, सुरगाणा
९६. श्री लालचंद जी भंवरलाल जी संचेती, पाली
९७. श्रीमती कमला बेन मूलचंद जी गूगले, अहमदनगर
९८. श्रीमती लीला बेन पोपटलाल बोहरा, इचलकरंजी
९९. श्री पुखराज जी महावीरचंद जी मूथा पीह वाले, मद्रास
१००. श्री के. सी. जैन (एडवोकेट), हनुमानगढ़
१०१. श्रीमती मदनबाई खाबिया पादू वाले, मद्रास
१०२. श्री बाबूलाल जी कन्हैयालाल जी जैन, मालेगाँव
१०३. श्रीमती कमलाबाई केवलचंद जी आबड़, भटिण्डा (पंजाब)
१०४. श्री पारसमल जी सुखाणी, रायचूर
१०५. श्री प्रताप मुनि ज्ञानालय, बड़ी सादड़ी
१०६. श्री एच. अम्बालाल एण्ड सन्स, गुडियातम
हस्ते, श्री प्रेमराज जी पारसमल जी केवलचंद जी बगड़ी वाले
१०७. श्री यश. भंवरलाल जी श्रीश्रीमाल, बैंगलोर

१०८. श्री कल्याणमल जी कनकराज जी चौरड़िया ट्रस्ट, मद्रास
१०९. श्री कैलाशचंद जी दुगड़, मद्रास
११०. श्री मेहता विरदीचंद जुमचंद चेरिटेवल ट्रस्ट, मद्रास
१११. श्री दुलीचंद जी जैन, मद्रास
११२. श्री नेमीचंद जी उत्तमचंद जी संघवी, धुलिया
११३. श्री कपूरचंद जी कुलीश, राजस्थान पत्रिका, जयपुर
११४. श्री सन्मति जैन पुस्तकालय, वड़ोत मण्डी
११५. श्री विनोदकुमार जी हरीलाल जी गोसलिया, मुजफ्फरनगर
११६. श्री विजयकुमार जी जैन, अम्वाला शहर
११७. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, भोपालगढ़
११८. श्री हंसराज जी जैन, भटिण्डा (पंजाव)
११९. श्री कीमतीलाल जी जैन, मेरठ सिटी
१२०. श्री संजयकुमार कल्याणमल जी सर्राफ, शाहजहाँपुर
१२१. श्री कलवा स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, कलवा (थाना)
१२२. श्री ए. पी. जैन, दिल्ली
१२३. श्री चम्पालाल जी चपलोत, भीलवाड़ा
१२४. श्री तिलोकचंद जी पोखरणा, मदनगंज
१२५. श्री उम्मेदसिंह जी चौधरी की स्मृति में
हस्ते, श्री अनन्तसिंह जी, कैरोट
१२६. श्री पन्नालाल जी प्रेमचंद जी चौपड़ा, अजमेर
१२७. श्री गांग जी कुंवर जी वोरा, समागोगा कच्छ
१२८. श्री मोहनलाल जी वावूलाल जी कांकरिया, हैदरावाद
१२९. श्री हीराचन्द जी चौपड़ा, साण्डेराव
१३०. श्री सज्जनमल जी वोहरा, पीसांगन
१३१. श्री गजराजसिंह जी डांगी, भीलवाड़ा
१३२. श्री एस. भंवरलाल जी पारसमल जी गेलड़ा, आरकोणम्
१३३. शा. पोपटलाल मोहनलाल शाह पब्लिक चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदावाद
१३४. श्री आवू तलेटी तीर्थ मानपुर, आवू रोड

ज्ञान-दान

१. एन. जे. छेड़ा, बम्वई
२. तीर्थराम जी जैन, होशियारपुर
३. तेजमल जी वाफणा (एडवोकेट), भीलवाड़ा
४. सौभागमल जी वहादुरमल जी नागौरी, सिंगोली (मध्य प्रदेश)
५. श्री मोहनलाल जी जंवरीलाल जी वोहरा, शोलापुर (कर्णाटक)
६. श्री कस्तूरभाई भोगीलाल शाह, प्रान्तिज (गुजरात)
७. श्री शान्तिलाल जी माणकचंद जी कोठारी, अहमदावाद
८. श्री प्राणलाल वल्लभदास पाटलिया, वम्वई
९. श्री हजारीमल जी मोतीलाल जी कालूराम जी
माता धापूवाई वेटा पोता हस्ते, भूराराम जी उदयराम जी वागोर, भीलवाड़ा
१०. शा. फोजराज पुनीलाल वागरेचा जैन धार्मिक ट्रस्ट, वालाघाट



प्रयुक्त आगम आदि की संकेत सूची

१.	आ. आया.	आचारांग सूत्र	१७.	चंद.	चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र
२.	सूय.	सूत्रकृतांग सूत्र	१८.	सूर.	सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र
३.	ठाणं, ठा.	स्थानांग सूत्र	१९.	निर.	निरयावलिका सूत्र
४.	सम.	समवायांग सूत्र	२०.	कप्प., कप्पिया.	कल्पावतंसिका सूत्र
५.	विया., भग., वि.	व्याख्याप्रज्ञप्ति, भगवती सूत्र	२१.	पुप्फिया.	पुष्पिका सूत्र
६.	णाया.	ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र	२२.	पुप्फ.	पुष्पचूलिका सूत्र
७.	उवा.	उपासकदशांग सूत्र	२३.	वण्हि.	वृष्णिदशा सूत्र
८.	अंत.	अन्तकृद्दशांग सूत्र	२४.	दस.	दशवैकालिक सूत्र
९.	अणुत्तरो.	अनुत्तरोपपातिकदशा सूत्र	२५.	उत्त.	उत्तराध्ययन सूत्र
१०.	पण्ह., प.	प्रश्नव्याकरण सूत्र	२६.	नं.	नंदी सूत्र
११.	विपाक.	विपाक सूत्र	२७.	अणु.	अनुयोगद्वार सूत्र
१२.	उव.	औपपातिक सूत्र	२८.	दसा., आया.	दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र, आचारदशा
१३.	राय.	राजप्रश्नीय सूत्र	२९.	कप्प.	बृहत्कल्प सूत्र
१४.	जीवा.	जीवाभिगम सूत्र	३०.	वव.	व्यवहार सूत्र
१५.	पण्ण.	प्रज्ञापना सूत्र	३१.	नि.	निशीथ सूत्र
१६.	जंबू	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र	३२.	आव.	आवश्यक सूत्र

संक्षिप्त संकेत सूची

कप्प.	कल्पसूत्र	द.	दशा
पइ.	प्रकीर्णक	प.	पद
धम्म.	धर्मकथानुयोग	पडि.	प्रतिपत्ति
गणि.	गणितानुयोग	पा.	प्राभृत
चर.	चरणानुयोग	पृ.	पृष्ठ
दव्व.	द्रव्यानुयोग	भा.	भाग
अ.	अध्ययन	व.	वक्षस्कार
उ.	उद्देशक	स.	शतक
गा.	गाथा	सम.	समवाय
टि.	टिप्पण	सु.	श्रुतस्कन्ध
टी.	टीका	सू.	सूत्र
थ.	स्थविरावली	सं.	संपादक



प्रस्तावना

–डॉ. सागरमल जैन

यह द्रव्यानुयोग तीन खण्डों में प्रकाशित हो रहा है। प्रथम खण्ड में प्रकाशित अध्ययनों की सूची अनुक्रमणिका में उपलब्ध है। द्वितीय खण्ड में संयत, लेश्या, क्रिया, आश्रव, वेद, कर्म, वेदना, कषाय, गति, नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति एवं समुद्घात के अध्ययनों का निरूपण है। तृतीय खण्ड में व्युत्क्रान्ति, गर्भ, युग्म, गम्मा, आत्मा, चरमाचरम, अजीव, पुद्गल एवं प्रकीर्णक अध्ययन सम्मिलित हैं।

इन अध्ययनों के प्रारम्भ में डॉ. धर्मचन्द जैन, जोधपुर द्वारा लिखे गये आमुख उन अध्ययनों की विषय-वस्तु को स्पष्ट कर देते हैं। डॉ. सागरमल जी ने पर्याप्त श्रम करके द्रव्यानुयोग के मुख्य प्रतिपाद्य विषय जैसे षड्द्रव्य, इन्द्रिय, लेश्या, कषाय, कर्म सिद्धान्त आदि पर अपनी भूमिका में विशेष प्रकाश डाला है। डॉ. सागरमल जी ने अनेक प्रश्न उठाते हुए दार्शनिक शैली में उनका विस्तृत समाधान प्रस्तुत किया है। भूमिका में जैन दर्शन की तत्त्व-मीमांसा के प्रायः सभी पक्ष समाहित हो गए हैं।

यह भूमिका मात्र द्रव्यानुयोग के विभिन्न अध्ययनों की विषय-वस्तु को ही स्पष्ट नहीं करती अपितु सम्पूर्ण जैन दर्शन की तत्त्व-मीमांसा को प्रस्तुत करती है।

आशा है इससे विद्वज्जनों को तोष होगा। *–प्रधान सम्पादक*

जैन आगम साहित्य की व्याख्या एवं उनमें वर्णित विषय-वस्तु को मुख्य रूप से जिन चार विभागों में वर्गीकृत किया गया है, वे अनुयोग कहे जाते हैं। अनुयोग चार हैं–(१) द्रव्यानुयोग, (२) गणितानुयोग, (३) चरणकरणानुयोग और (४) धर्मकथानुयोग। इन चार अनुयोगों में से जिस अनुयोग के अन्तर्गत विश्व के मूलभूत घटकों के स्वरूप के सम्बन्ध में विवेचन किया जाता है उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं। खगोल-भूगोल सम्बन्धी विवरण गणितानुयोग के अन्तर्गत आते हैं। धर्म और सदाचरण संबंधी विधि-निषेधों का विवेचन चरणकरणानुयोग के अन्तर्गत होता है और धर्म एवं नैतिकता में आस्था को दृढ़ करने हेतु सदाचारी, सत्पुरुषों के जो आख्यानक (कथानक) प्रस्तुत किये जाते हैं, वे धर्मकथानुयोग के अन्तर्गत आते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन चार अनुयोगों में भी द्रव्यानुयोग का सम्बन्ध तात्त्विक या दार्शनिक चिन्तन से है। जहाँ तक हमारे दार्शनिक चिन्तन का प्रश्न है आज हम उसे तीन भागों में विभाजित करते हैं–१. तत्त्व-मीमांसा, २. ज्ञान-मीमांसा और ३. आचार-मीमांसा। इन तीनों में से तत्त्व-मीमांसा एवं ज्ञान-मीमांसा दोनों ही द्रव्यानुयोग के अन्तर्गत आते हैं। इनमें भी जहाँ तक तत्त्व-मीमांसा का सम्बन्ध है, उसका प्रमुख कार्य जगत् के मूलभूत घटकों, उपादानों या पदार्थों और उनके कार्यों की विवेचना करना है। तत्त्व-मीमांसा का आरम्भ तभी हुआ होगा जब मानव में जगत् के स्वरूप और उसके मूलभूत उपादान घटकों को जानने की जिज्ञासा प्रस्फुटित हुई होगी तथा उसने अपने और अपने परिवेश के संदर्भ में चिंतन किया होगा। इसी चिन्तन के द्वारा तत्त्व-मीमांसा का प्रादुर्भाव हुआ होगा। "मैं कौन हूँ", "कहाँ से आया हूँ", "यह जगत् क्या है", "जिससे यह निर्मित हुआ है, वे मूलभूत उपादान घटक क्या हैं", "यह किन नियमों से नियंत्रित एवं संचालित होता है" इन्हीं प्रश्नों के समाधान हेतु ही विभिन्न दर्शनों का और उनकी तत्त्व-विषयक गवेषणाओं का जन्म हुआ। जैन परम्परा में भी उसके प्रथम एवं प्राचीनतम आगम ग्रंथ आचारांग का प्रारम्भ भी इसी चिन्तना से होता है कि "मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, इस शरीर का परित्याग करने पर कहाँ जाऊँगा।"[१] वस्तुतः ये ही ऐसे प्रश्न हैं जिनसे दार्शनिक चिन्तन का विकास होता है और तत्त्व-मीमांसा का आविर्भाव होता है।

तत्त्व-मीमांसा वस्तुतः विश्व-व्याख्या का एक प्रयास है। इसमें जगत् के मूलभूत उपादानों तथा उनके कार्यों का विवेचन विभिन्न दृष्टिकोणों से किया जाता है। विश्व के मूलभूत घटक जो अपने अस्तित्व के लिये किसी अन्य घटक पर आश्रित नहीं हैं तथा जो कभी भी अपने स्व-स्वरूप का परित्याग नहीं करते हैं वे सत् या द्रव्य कहलाते हैं। विश्व के तात्त्विक आधार या मूलभूत उपादान ही सत् या द्रव्य कहे जाते हैं और जो इन द्रव्यों का विवेचन करता है वही द्रव्यानुयोग है।

विश्व के सन्दर्भ में जैनों का दृष्टिकोण यह है कि यह विश्व अकृत्रिम है (लोगो अकिट्टिमो खलु .... मूलाचार, गाथा [illegible])। इस लोक का कोई निर्माता या सृष्टिकर्ता नहीं है। अर्धमागधी आगम साहित्य में भी लोक को शाश्वत बताया गया है। उसमें कहा गया है कि यह लोक अनादिकाल से है और रहेगा। ऋषिभाषित के अनुसार लोक की शाश्वतता के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन भगवान पार्श्वनाथ ने किया

१. [illegible]

प्रयुक्त आगम आदि की संकेत सूची

१.	आ. आया.	आचारांग सूत्र	१७.	चंद.	चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र
२.	सूय.	सूत्रकृतांग सूत्र	१८.	सूर.	सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र
३.	ठाणं, ठा.	स्थानांग सूत्र	१९.	निर.	निरयावलिका सूत्र
४.	सम.	समवायांग सूत्र	२०.	कप्प., कप्पिया.	कल्पावतंसिका सूत्र
५.	विया., भग., वि.	व्याख्याप्रज्ञप्ति, भगवती सूत्र	२१.	पुप्फिया.	पुष्पिका सूत्र
६.	णाया.	ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र	२२.	पुप्फ.	पुष्पचूलिका सूत्र
७.	उवा.	उपासकदशांग सूत्र	२३.	वण्हि.	वृष्णिदशा सूत्र
८.	अंत.	अन्तकृद्दशांग सूत्र	२४.	दस.	दशवैकालिक सूत्र
९.	अणुत्तरो.	अनुत्तरोपपातिकदशा सूत्र	२५.	उत्त.	उत्तराध्ययन सूत्र
१०.	पण्ह., प.	प्रश्नव्याकरण सूत्र	२६.	नं.	नंदी सूत्र
११.	विपाक.	विपाक सूत्र	२७.	अणु.	अनुयोगद्वार सूत्र
१२.	उव.	औपपातिक सूत्र	२८.	दसा., आया.	दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र, आचारदशा
१३.	राय.	राजप्रश्नीय सूत्र	२९.	कप्प.	बृहत्कल्प सूत्र
१४.	जीवा.	जीवाभिगम सूत्र	३०.	वव.	व्यवहार सूत्र
१५.	पण्ण.	प्रज्ञापना सूत्र	३१.	नि.	निशीथ सूत्र
१६.	जंबू	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र	३२.	आव.	आवश्यक सूत्र

संक्षिप्त संकेत सूची

कप्प.	कल्पसूत्र	द.	दशा
पइ.	प्रकीर्णक	प.	पद
धम्म.	धर्मकथानुयोग	पडि.	प्रतिपत्ति
गणि.	गणितानुयोग	पा.	प्राभृत
चर.	चरणानुयोग	पृ.	पृष्ठ
दव्व.	द्रव्यानुयोग	भा.	भाग
अ.	अध्ययन	व.	वक्षस्कार
उ.	उद्देशक	स.	शतक
गा.	गाथा	सम.	समवाय
टि.	टिप्पण	सु.	श्रुतस्कन्ध
टी.	टीका	सू.	सूत्र
थ.	स्थविरावली	सं.	संपादक



प्रस्तावना

—डॉ. सागरमल जैन

यह द्रव्यानुयोग तीन खण्डों में प्रकाशित हो रहा है। प्रथम खण्ड में प्रकाशित अध्ययनों की सूची अनुक्रमणिका में उपलब्ध है। द्वितीय खण्ड में संयत, लेश्या, क्रिया, आश्रव, वेद, कर्म, वेदना, कषाय, गति, नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति एवं समुद्घात के अध्ययनों का निरूपण है। तृतीय खण्ड में व्युत्क्रान्ति, गर्भ, युग्म, गम्मा, आत्मा, चरमाचरम, अजीव, पुद्गल एवं प्रकीर्णक अध्ययन सम्मिलित हैं।

इन अध्ययनों के प्रारम्भ में डॉ. धर्मचन्द जैन, जोधपुर द्वारा लिखे गये आमुख उन अध्ययनों की विषय-वस्तु को स्पष्ट कर देते हैं। डॉ. सागरमल जी ने पर्याप्त श्रम करके द्रव्यानुयोग के मुख्य प्रतिपाद्य विषय जैसे षड्द्रव्य, इन्द्रिय, लेश्या, कषाय, कर्म सिद्धान्त आदि पर अपनी भूमिका में विशेष प्रकाश डाला है। डॉ. सागरमल जी ने अनेक प्रश्न उठाते हुए दार्शनिक शैली में उनका विस्तृत समाधान प्रस्तुत किया है। भूमिका में जैन दर्शन की तत्त्व-मीमांसा के प्रायः सभी पक्ष समाहित हो गए हैं।

यह भूमिका मात्र द्रव्यानुयोग के विभिन्न अध्ययनों की विषय-वस्तु को ही स्पष्ट नहीं करती अपितु सम्पूर्ण जैन दर्शन की तत्त्व-मीमांसा को प्रस्तुत करती है।

आशा है इससे विद्वज्जनों को तोष होगा। —**प्रधान सम्पादक**

जैन आगम साहित्य की व्याख्या एवं उनमें वर्णित विषय-वस्तु को मुख्य रूप से जिन चार विभागों में वर्गीकृत किया गया है, वे अनुयोग कहे जाते हैं। अनुयोग चार हैं–(१) द्रव्यानुयोग, (२) गणितानुयोग, (३) चरणकरणानुयोग और (४) धर्मकथानुयोग। इन चार अनुयोगों में से जिस अनुयोग के अन्तर्गत विश्व के मूलभूत घटकों के स्वरूप के सम्बन्ध में विवेचन किया जाता है उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं। खगोल-भूगोल सम्बन्धी विवरण गणितानुयोग के अन्तर्गत आते हैं। धर्म और सदाचरण संबंधी विधि-निषेधों का विवेचन चरणकरणानुयोग के अन्तर्गत होता है और धर्म एवं नैतिकता में आस्था को दृढ़ करने हेतु सदाचारी, सत्पुरुषों के जो आख्यानक (कथानक) प्रस्तुत किये जाते हैं, वे धर्मकथानुयोग के अन्तर्गत आते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन चार अनुयोगों में भी द्रव्यानुयोग का सम्बन्ध तात्त्विक या दार्शनिक चिन्तन से है। जहाँ तक हमारे दार्शनिक चिन्तन का प्रश्न है आज हम उसे तीन भागों में विभाजित करते हैं–१. तत्त्व-मीमांसा, २. ज्ञान-मीमांसा और ३. आचार-मीमांसा। इन तीनों में से तत्त्व-मीमांसा एवं ज्ञान-मीमांसा दोनों ही द्रव्यानुयोग के अन्तर्गत आते हैं। इनमें भी जहाँ तक तत्त्व-मीमांसा का सम्बन्ध है, उसका प्रमुख कार्य जगत् के मूलभूत घटकों, उपादानों या पदार्थों और उनके कार्यों की विवेचना करना है। तत्त्व-मीमांसा का आरम्भ तभी हुआ होगा जब मानव में जगत् के स्वरूप और उसके मूलभूत उपादान घटकों को जानने की जिज्ञासा प्रस्फुटित हुई होगी तथा उसने अपने और अपने परिवेश के संदर्भ में चिंतन किया होगा। इसी चिन्तन के द्वारा तत्त्व-मीमांसा का प्रादुर्भाव हुआ होगा। "मैं कौन हूँ", "कहाँ से आया हूँ", "यह जगत् क्या है", "जिससे यह निर्मित हुआ है, वे मूलभूत उपादान घटक क्या हैं", "यह किन नियमों से नियंत्रित एवं संचालित होता है" इन्हीं प्रश्नों के समाधान हेतु ही विभिन्न दर्शनों का और उनकी तत्त्व-विषयक गवेषणाओं का जन्म हुआ। जैन परम्परा में भी उसके प्रथम एवं प्राचीनतम आगम ग्रंथ आचारांग का प्रारम्भ भी इसी चिन्तना से होता है कि "मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, इस शरीर का परित्याग करने पर कहाँ जाऊँगा।"[१] वस्तुतः ये ही ऐसे प्रश्न हैं जिनसे दार्शनिक चिन्तन का विकास होता है और तत्त्व-मीमांसा का आविर्भाव होता है।

तत्त्व-मीमांसा वस्तुतः विश्व-व्याख्या का एक प्रयास है। इसमें जगत् के मूलभूत उपादानों तथा उनके कार्यों का विवेचन विभिन्न दृष्टिकोणों से किया जाता है। विश्व के मूलभूत घटक जो अपने अस्तित्व के लिये किसी अन्य घटक पर आश्रित नहीं हैं तथा जो कभी भी अपने स्व-स्वरूप का परित्याग नहीं करते हैं वे सत् या द्रव्य कहलाते हैं। विश्व के तात्त्विक आधार या मूलभूत उपादान ही सत् या द्रव्य कहे जाते हैं और जो इन द्रव्यों का विवेचन करता है वही द्रव्यानुयोग है।

विश्व के सन्दर्भ में जैनों का दृष्टिकोण यह है कि यह विश्व अकृत्रिम है (**लोगो अकिट्टिमो खलु .... मूलाचार, गाथा ७/२**)। इस लोक का कोई निर्माता या सृष्टिकर्ता नहीं है। अर्ध-मागधी आगम साहित्य में भी लोक को शाश्वत बताया गया है। उसमें कहा गया है कि यह लोक अनादिकाल से है और रहेगा। ऋषिभाषित के अनुसार लोक की शाश्वतता के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन भगवान पार्श्वनाथ ने किया

१. आचारांग, १/१/१/१

ागे चलकर भगवती में महावीर ने भी इसी सिद्धान्त का अनुमोदन किया।[1] जैन दर्शन लोक को जो अकृत्रिम और शाश्वत मानता है । तात्पर्य यह है कि लोक का कोई रचयिता एवं नियामक नहीं है वह स्वाभाविक है और अनादिकाल से चला आ रहा है, किन्तु मों में लोक के शाश्वत कहने का तात्पर्य कथमपि यह नहीं है कि इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। विश्व के सन्दर्भ में जैन चिन्तक नित्यता को स्वीकार करते हैं, वह नित्यता कूटस्थ नित्यता नहीं, परिणामी नित्यता है, अर्थात् वे विश्व को परिवर्तनशील मानकर भी वाह या प्रक्रिया की अपेक्षा से नित्य या शाश्वत कहते हैं।

भगवती सूत्र में लोक के स्वरूप की चर्चा करते हुए लोक को पंचास्तिकाय रूप कहा गया है।[2] जैन दर्शन में इस विश्व के मूलभूत न पाँच अस्तिकाय द्रव्य हैं–१. जीव (चेतन तत्त्व), २, पुद्गल (भौतिक तत्त्व), ३. धर्म (गति का नियामक तत्त्व), ४. अधर्म (स्थिति क तत्त्व) और ५. आकाश (स्थान या अवकाश देने वाला तत्त्व)।

ज्ञातव्य है कि यहाँ काल को स्वतन्त्र तत्त्व नहीं माना गया है। यद्यपि परवर्ती जैन विचारकों ने काल को भी विश्व के परिवर्तन के क कारण के रूप में या विश्व में होने वाले परिवर्तनों के नियामक तत्त्व के रूप में स्वतन्त्र द्रव्य माना है। इसकी विस्तृत चर्चा आगे तकायों और षट्द्रव्यों के प्रसंग में की जायेगी। यहाँ हमारा प्रतिपाद्य तो यह है कि जैन दार्शनिक विश्व के मूलभूत उपादानों के रूप में तकायों एवं षट्द्रव्यों की चर्चा करते हैं। विश्व के इन मूलभूत उपादानों को द्रव्य अथवा सत् के रूप में विवेचित किया जाता है। द्रव्य । सत् वह है जो अपने आप में परिपूर्ण, स्वतन्त्र और विश्व का मौलिक घटक है। जैन परम्परा में सामान्यतया सत्, तत्त्व, परमार्थ, स्वभाव, पर-अपर ध्येय, शुद्ध और परम इन सभी को एकार्थक या पर्यायवाची माना गया है। बृहद्नयचक्र में कहा गया है–

तत्तं तह परमट्ठं दव्वसहायं तहेव परमपरं।
धेयं सुद्धं परमं एयट्ठा हुंति अभिहणा॥ —*बृहद्नयचक्र, ४११*

जैनागमों में विश्व के मूलभूत घटक के लिए अस्तिकाय, तत्त्व और द्रव्य शब्दों का प्रयोग मिलता है। उत्तराध्ययन सूत्र में हमें तत्त्व और के, स्थानांग में अस्तिकाय और पदार्थ के, ऋषिभाषित, समवायांग और भगवती में अस्तिकाय के उल्लेख मिलते हैं। कुंदकुंद ने अर्थ, , तत्त्व, द्रव्य और अस्तिकाय–इन सभी शब्दों का प्रयोग किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि जैन आगम युग में तो विश्व के मूलभूत के लिए अस्तिकाय, तत्त्व, द्रव्य और पदार्थ शब्दों का प्रयोग होता था। 'सत्' शब्द का प्रयोग आगम युग में नहीं हुआ। उमास्वाति ही आचार्य हैं जिन्होंने आगमिक द्रव्य, तत्त्व और अस्तिकाय शब्दों के साथ-साथ द्रव्य के लक्षण के रूप में 'सत्' शब्द का प्रयोग किया है। अस्तिकाय शब्द प्राचीन और जैन दर्शन का अपना विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है। यह अपने अर्थ की दृष्टि से सत् के निकट है, क्योंकि ही अस्तित्व लक्षण के ही सूचक हैं। तत्त्व, द्रव्य और पदार्थ शब्द के प्रयोग सांख्य और न्याय-वैशेषिक दर्शनों में भी मिलते हैं।

तत्त्वार्थ सूत्र (५/२९) में उमास्वाति ने भी द्रव्य और सत् दोनों को अभिन्न बताया है। यहाँ हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि सत्, र्थ, परम तत्त्व और द्रव्य सामान्य दृष्टि से पर्यायवाची होते हुए भी विशेष दृष्टि से एवं अपने व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ की दृष्टि से भिन्न-भिन्न द, उपनिषद् और उनसे विकसित वेदान्त दर्शन की विभिन्न दार्शनिक धाराओं में सत् शब्द प्रमुख रहा है। ऋग्वेद में स्पष्ट उल्लेख है कि **सद् विप्रा बहुधा वदन्ति''** अर्थात् सत् (परम तत्त्व) एक ही है–विप्र (विद्वान्) उसे अनेक रूप से कहते हैं। किन्तु दूसरी ओर स्वतन्त्र । के आधार पर विकसित दर्शन परम्पराओं–विशेष रूप से वैशेषिक दर्शन में द्रव्य शब्द प्रमुख रहा है। ज्ञातव्य है कि व्युत्पत्तिपरक अर्थ ष्टि से सत् शब्द अस्तित्व का अथवा प्रकारान्तर से नित्यता का एवं द्रव्य शब्द परिवर्तनशीलता का सूचक है। सांख्यों एवं नैयायिकों ने लिए तत्त्व शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि न्याय सूत्र के भाष्यकार ने प्रमाण आदि १६ तत्त्वों के सत् शब्द का प्रयोग भी किया है फिर भी इतना स्पष्ट है कि न्याय और वैशेषिक दर्शन में क्रमशः तत्त्व और द्रव्य शब्द ही अधिक त रहे हैं। सांख्य दर्शन भी प्रकृति और पुरुष इन दोनों को तथा इनसे उत्पन्न बुद्धि, अहंकार, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों, पंच ाओं और पंच महाभूतों को तत्त्व ही कहता है। इस प्रकार स्वतन्त्र चिन्तन के आधार पर विकसित इन दर्शन परम्पराओं में तत्त्व, , अर्थ और द्रव्य का प्रयोग प्रमुख रूप से हुआ है। सामान्यतया तो तत्त्व, पदार्थ, अर्थ और द्रव्य शब्द पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त होते हैं इनमें अपने तात्पर्य को लेकर भिन्नता भी मानी गयी है। तत्त्व शब्द सबसे अधिक व्यापक है उसमें पदार्थ और द्रव्य भी समाहित है। दर्शन में जिन तत्त्वों को माना गया है उनमें द्रव्य का उल्लेख प्रमेय के अन्तर्गत हुआ है। वैशेषिक सूत्र में द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, और समवाय ये षट् पदार्थ और प्रकारान्तर से अभाव को मिलाकर सात पदार्थ कहे जाते हैं। इनमें भी द्रव्य, गुण और कर्म इन तीन । अर्थ संज्ञा है। अतः सिद्ध होता है कि अर्थ की व्यापकता की दृष्टि से तत्त्व की अपेक्षा पदार्थ और पदार्थ की अपेक्षा द्रव्य अधिक त है। तत्त्वों में पदार्थ का और पदार्थों में द्रव्य का समावेश होता है। सत् शब्द को इससे भी अधिक व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया तुतः जो भी अस्तित्ववान् है, वह सत् के अन्तर्गत आ जाता है। अतः सत् शब्द, तत्त्व, पदार्थ, द्रव्य आदि शब्दों की अपेक्षा भी अधिक क अर्थ का सूचक है।

उपर्युक्त विवेचन से एक निष्कर्ष यहं भी निकाला जा सकता है कि जो दर्शनधारायें अभेदवाद की ओर अग्रसर हुईं उनमें 'सत्' शब्द मुखता रही जबकि जो धारायें भेदवाद की ओर अग्रसर हुईं उनमें 'द्रव्य' शब्द की प्रमुखता रही।

अ) ऋषिभाषित, ३१/९, (ब) भगवती, ९/३३/२३३ २. भगवती, २/१०/१२४-१३०

जहाँ तक जैन दार्शनिकों का प्रश्न है उन्होंने सत् और द्रव्य में एक अभिन्नता सूचित की है। तत्त्वार्थ भाष्य में उमास्वाति ने 'सत् द्रव्य लक्षणं' कहकर दोनों में अभेद स्थापित किया है फिर भी हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि जहाँ 'सत्' शब्द एक सामान्य सत्ता का सूचक है वहाँ 'द्रव्य' शब्द विशेष सत्ता का सूचक है। जैन आगमों के टीकाकार अभयदेवसूरि ने और उनके पूर्व तत्त्वार्थ भाष्य (१/३५) में उमास्वाति ने 'सर्वं एकं सद् विशेषात्' कहकर सत् शब्द से सभी द्रव्यों के सामान्य लक्षण अस्तित्व को सूचित किया है। अतः यह स्पष्ट है कि सत् शब्द अभेद या सामान्य का सूचक है और द्रव्य शब्द विशेष का। यहाँ हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जैन दार्शनिकों की दृष्टि में सत् और द्रव्य शब्द में तादात्म्य सम्बन्ध है। सत्ता की अपेक्षा से वे अभिन्न हैं। उन्हें एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता क्योंकि सत् अर्थात् अस्तित्व के विना द्रव्य भी नहीं हो सकता। दूसरी ओर द्रव्य (सत्ता-विशेष) के विना सत् की कोई सत्ता ही नहीं होगी। अस्तित्व (सत्) के विना द्रव्य और द्रव्य के विना अस्तित्व नहीं हो सकते। अस्तित्व या सत्ता की अपेक्षा से तो सत् और द्रव्य दोनों अभिन्न हैं। यही कारण है कि उमास्वाति ने सत् को द्रव्य का लक्षण कहा था। यह स्पष्ट है कि लक्षण और लक्षित भिन्न-भिन्न नहीं होते हैं।

वस्तुतः सत् और द्रव्य दोनों में उनके व्युत्पत्तिपरक अर्थ की अपेक्षा से ही भेद है अस्तित्व या सत्ता की अपेक्षा से भेद नहीं है। हम उनमें केवल विचार की अपेक्षा से भेद कर सकते हैं सत्ता की अपेक्षा से नहीं। सत् और द्रव्य अन्योन्याश्रित है, फिर भी वैचारिक स्तर पर हमें यह मानना होगा कि सत् ही एक ऐसा लक्षण है जो विभिन्न द्रव्यों में अभेद की स्थापना करता है, किन्तु हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि सत् द्रव्य का एकमात्र लक्षण नहीं है। द्रव्य में अस्तित्व के अतिरिक्त अन्य लक्षण भी हैं जो एक द्रव्य को दूसरे से पृथक् करते हैं। अस्तित्व लक्षण की अपेक्षा से सभी द्रव्य एक हैं किन्तु अन्य लक्षणों की अपेक्षा से वे एक-दूसरे से पृथक् भी हैं। जैसे चेतना लक्षण जीव और अजीव में भेद करता है। सत्ता में सत् लक्षण की अपेक्षा से अभेद और अन्य लक्षणों से भेद मानना यही जैन दर्शन के अनेकान्तिक दृष्टि की विशेषता है।

अर्ध-मागधी आगम स्थानांग और समवायांग में जहाँ अभेद-दृष्टि के आधार पर जीव द्रव्य को एक कहा गया है,[1] वहीं उत्तराध्ययन में भेद-दृष्टि से जीव द्रव्य में भेद किये गये हैं।[2]

जहाँ तक जैन दार्शनिकों का प्रश्न है, वे सत् और द्रव्य दोनों ही शब्द को न केवल स्वीकार करते हैं, अपितु उनको एक-दूसरे से समन्वित भी करते हैं। यहाँ हम सर्वप्रथम सत् के स्वरूप का विश्लेषण करेंगे, उसके वाद द्रव्यों की चर्चा करेंगे तथा अन्त में तत्त्वों के स्वरूप पर विचार करेंगे।

सत् का स्वरूप

जैसा कि हमने पूर्व में सूचित किया है जैन दार्शनिकों ने सत्, तत्त्व और द्रव्य इन तीनों को पर्यायवाची माना है किन्तु इनके शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से इन तीनों में अन्तर है। सत् वह सामान्य लक्षण है जो सभी द्रव्यों और तत्त्वों में पाया जाता है एवं द्रव्यों के भेद में भी अभेद को प्रधानता देता है। जहाँ तक तत्त्व का प्रश्न है, वह भेद और अभेद दोनों को अथवा सामान्य और विशेष दोनों को स्वीकार करता है। सत् में कोई भेद नहीं किया जाता, जवकि तत्त्व में भेद किया जाता है। जैन आचार्यों ने तत्त्वों की चर्चा के प्रसंग पर न केवल जड़ और चेतन द्रव्यों अर्थात् जीव और अजीव की चर्चा की है, अपितु आस्रव, संवर आदि उनके पारस्परिक सम्बन्धों की भी चर्चा की है। तत्त्व की दृष्टि से न केवल जीव और अजीव में भेद माना गया अपितु जीवों में भी परस्पर भेद माना गया, वहीं दूसरी ओर आस्रव, बन्ध आदि के प्रसंग में उनके तादात्म्य या अभेद को भी स्वीकार किया गया, किन्तु जहाँ तक 'द्रव्य' शब्द का प्रश्न है वह सामान्य होते हुए भी द्रव्यों की लक्षणगत् विशेषताओं के आधार पर उनमें भेद करता है। 'सत्' शब्द सामान्यात्मक है, तत्त्व शब्द सामान्य-विशेष उभयात्मक है और द्रव्य विशेषात्मक है। पुनः सत् शब्द सत्ता के अपरिवर्तनशील पक्ष का, द्रव्य शब्द परिवर्तनशील पक्ष का और तत्त्व शब्द उभय-पक्ष का सूचक है। जैनों की नयों की पारिभाषिक शब्दावली में कहें तो सत् शब्द संग्रह नय का, तत्त्व नैगम नय का और द्रव्य शब्द व्यवहार नय का सूचक है। सत् अभेदात्मक है, तत्त्व भेदाभेदात्मक है और द्रव्य शब्द भेदात्मक है। चूँकि जैन दर्शन भेद, भेदाभेद और अभेद तीनों को स्वीकार करता है, अतः उसने अपने चिन्तन में इन तीनों को स्थान दिया है। इन तीनों शब्दों में हम सर्व प्रथम सत् के स्वरूप के सम्बन्ध में विचार करेंगे। यद्यपि अपने व्युत्पत्तिपरक अर्थ की दृष्टि से सत् शब्द सत्ता के अपरिवर्तनशील, सामान्य एवं अभेदात्मक पक्ष का सूचक है। फिर भी सत् के स्वरूप को लेकर भारतीय दार्शनिकों में मतैक्य नहीं है। कोई उसे अपरिवर्तनशील मानता है तो कोई उसे परिवर्तनशील, कोई उसे एक कहता है तो कोई अनेक, कोई उसे चेतन मानता है तो कोई उसे जड़। वस्तुतः सत्, परम तत्त्व या परमार्थ के स्वरूप सम्बन्धी इन विभिन्न दृष्टिकोणों के मूल में प्रमुख रूप से तीन प्रश्न रहे हैं। प्रथम प्रश्न उसके एकत्व अथवा अनेकत्व का है। दूसरे प्रश्न का सम्बन्ध उसके परिवर्तनशील या अपरिवर्तनशील का होने का है। तीसरे प्रश्न का विवेच्य उसके चित् या अचित् होने से है। ज्ञातव्य है कि अधिकांश भारतीय दर्शनों ने चित्-अचित्, जड़-चेतन या जीव-अजीव दोनों तत्त्वों को स्वीकार किया है अतः यह प्रश्न अधिक चर्चित नहीं बना। फिर भी इन सब प्रश्नों के दिये गये उत्तरों के परिणामस्वरूप भारतीय चिन्तन में सत् के स्वरूप में विविधता आ गयी।

सत् के परिवर्तनशील या अपरिवर्तनशील होने का प्रश्न

सत् के परिवर्तनशील अथवा अपरिवर्तनशील स्वरूप के सम्बन्ध में दो अतिवादी अवधारणाएँ हैं। एक धारणा यह है कि सत् निर्विकार एवं अव्यय है। त्रिकाल में उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। इन विचारकों का कहना है कि जो परिवर्तित होता है, वह सत् नहीं हो सकता।

---

१. एगे आया–स्थानांग, १/१

२. उत्तराध्ययन, ३६/४८-२११

परिवर्तन का अर्थ ही है कि पूर्व अवस्था की समाप्ति और जीवन अवस्था का ग्रहण। इन दार्शनिकों का कहना है कि जिसमें उत्पाद एवं व्यय की प्रक्रिया हो उसे सत् नहीं कहा जा सकता। जो अवस्थान्तर को प्राप्त हो उसे सत् कैसे कहा जाय? इस सिद्धान्त के विरोध में जो सिद्धान्त अस्तित्व में आया वह सत् की परिवर्तनशीलता का सिद्धान्त है। इन विचारकों के अनुसार परिवर्तनशील या अर्थक्रियाकारित्व की सामर्थ्य ही सत् का लक्षण है। जो गतिशील नहीं है दूसरे शब्दों में जो अर्थक्रियाकारित्व की शक्ति से हीन है उसे सत् नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक भारतीय दार्शनिक चिंतन का प्रश्न है कुछ औपनिषदिक चिन्तक और शंकर का अद्वैत वेदान्त सत् के अपरिवर्तनशील होने के प्रथम सिद्धान्त के प्रबल समर्थक हैं। आचार्य शंकर के अनुसार सत् निर्विकार और अव्यय है। वह उत्पाद और व्यय दोनों से रहित है। इसके विपरीत दूसरा सिद्धान्त बौद्ध-दार्शनिकों का है। वे सभी एकमत से स्वीकार करते हैं कि सत् का लक्षण अर्थक्रियाकारित्व है। उत्पत्ति और विनाश की प्रक्रिया से पृथक् कोई वस्तु सत् नहीं हो सकती। जहाँ तक भारतीय चिन्तकों में सांख्य दार्शनिकों का प्रश्न है वे चित् तत्त्व या पुरुष को अपरिवर्तनशील या कूटस्थनित्य मानते हैं किन्तु उनकी दृष्टि में प्रकृति कूटस्थनित्य नहीं है वह परिवर्तनशील तत्त्व है। इस प्रकार सांख्य दार्शनिक अपने द्वारा स्वीकृत दो तत्त्वों में एक को परिवर्तनशील और दूसरे को अपरिवर्तनशील मानते हैं।

वस्तुतः सत् को निर्विकार और अव्यय मानने में सवसे वड़ी वाधा यह है कि उसके अनुसार जगत् को मिथ्या या असत् ही मानना होता है, क्योंकि हमारी अनुभूति का जगत् तो परिवर्तनशील है इसमें कुछ भी ऐसा प्रतीत नहीं होता जो परिवर्तन से रहित हो। न केवल व्यक्ति और समाज अपितु भौतिक पदार्थ भी प्रति क्षण वदलते रहते हैं। सत् को निर्विकार और अव्यय मानने का अर्थ है जगत् की अनुभूतिगत विविधता को नकारना और कोई भी विचारक अनुभवात्मक परिवर्तनशीलता को नकार नहीं सकता। चाहे आचार्य शंकर कितने ही जोर से इस बात को रखें कि निर्विकार ब्रह्म ही सत्य है और परिवर्तनशील जगत् मिथ्या है किन्तु आनुभविक स्तर पर कोई भी विचारक इसे स्वीकार नहीं कर सकेगा। अनुभूति के स्तर पर जो परिवर्तनशील की अनुभूति है उसे कभी भी नकारा नहीं जा सकता। यदि सत् त्रिकाल में अविकारी और अपरिवर्तनशील हो तो फिर वैयक्तिक जीवों या आत्माओं के वंधन और मुक्ति की व्याख्या भी अर्थहीन हो जायेगी। धर्म और नैतिकता दोनों का ही उस दर्शन में कोई स्थान नहीं है, जो सत् को अपरिणामी मानते हैं। जैसे जीवन में बाल्यावस्था, युवावस्था और प्रौढ़ावस्था आती है, उसी प्रकार सत्ता में भी परिवर्तन घटित होते हैं। आज का हमारे अनुभव का विश्व वही नहीं है, जो हजार वर्ष पूर्व था, उसमें प्रति क्षण परिवर्तन घटित होते हैं। न केवल जगत् में अपितु हमारे वैयक्तिक जीवन में भी परिवर्तन घटित होते रहते हैं अतः अस्तित्व या सत्ता के सम्बन्ध में अपरिवर्तनशीलता की अवधारणा समीचीन नहीं है।

इसके विपरीत यदि सत् को क्षणिक या परिवर्तनशील माना जाता है तो भी कर्मफल या नैतिक उत्तरदायित्व की व्याख्या संभव नहीं होती। यदि प्रत्येक क्षण स्वतन्त्र है तो फिर हम नैतिक उत्तरदायित्व की व्याख्या नहीं कर सकते। यदि व्यक्ति अथवा वस्तु अपने पूर्व क्षण की अपेक्षा उत्तर क्षण में पूर्णतः बदल जाती है तो फिर हम किसी को पूर्व में किए गये चोरी आदि कार्यों के लिए कैसे उत्तरदायी बना पायेंगे?

सैद्धान्तिक दृष्टि से जैन दार्शनिकों का इस धारणा के विपरीत यह कहना है कि उत्पत्ति के बिना नाश और नाश के बिना उत्पत्ति संभव नहीं है। दूसरे शब्दों में पूर्व-पर्याय के नाश के बिना उत्तर-पर्याय की उत्पत्ति संभव नहीं है किन्तु उत्पत्ति और नाश दोनों का आश्रय कोई वस्तुतत्त्व होना चाहिये। एकान्तनित्य वस्तुतत्त्व/पदार्थ में परिवर्तन संभव नहीं है और यदि पदार्थों को एकान्त क्षणिक माना जाय तो परिवर्तित कौन होता है, यह नहीं बताया जा सकता। आचार्य समन्तभद्र आप्त-मीमांसा में इस दृष्टिकोण की समालोचना करते हुए कहते हैं कि "एकान्त क्षणिकवाद में प्रेत्यभाव अर्थात् पुनर्जन्म असंभव होगा और प्रेत्यभाव के अभाव में पुण्य-पाप के प्रतिफल और बंधन-मुक्ति की अवधारणायें भी संभव नहीं होंगी। पुनः एकान्त क्षणिकवाद में प्रत्यभिज्ञा भी संभव नहीं और प्रत्यभिज्ञा के अभाव में कार्यारम्भ ही नहीं होगा फिर फल कहाँ से?[१] इस प्रकार इसमें बंधन-मुक्ति और पुनर्जन्म का कोई स्थान नहीं है। "युक्त्यनुशासन" में कहा गया है कि क्षणिकवाद संवृत्ति सत्य के रूप में भी बन्धन-मुक्ति आदि की स्थापना नहीं कर सकता क्योंकि उसकी दृष्टि में परमार्थ या सत् निःस्वभाव है। यदि परमार्थ निःस्वभाव है तो फिर व्यवहार का विधान कैसे होगा।[२] आचार्य हेमचन्द्र ने 'अन्ययोगव्यवच्छेदिका' में क्षणिकवाद पर पाँच आक्षेप लगाये हैं—१. कृत-प्रणाश, २. अकृत-भोग, ३. भव-भंग, ४. प्रमोक्ष-भंग और ५. स्मृति-भंग।[३] यदि कोई नित्य सत्ता ही नहीं है और प्रत्येक सत्ता क्षणजीवी है तो फिर व्यक्ति के द्वारा किये हुए कर्म का फलभोग कैसे संभव होगा? क्योंकि फलभोग के लिये कर्तृत्वकाल और भोगकृत्वकाल में उसी व्यक्ति का होना आवश्यक है अन्यथा कार्य कौन करेगा और फल कौन भोगेगा? वस्तुतः एकान्त क्षणिकवाद में अध्ययन कोई और करेगा, परीक्षा कोई और देगा, उसका प्रमाण-पत्र किसी और को मिलेगा, उस प्रमाण-पत्र के आधार पर नौकरी कोई अन्य व्यक्ति प्राप्त करेगा और जो वेतन मिलेगा वह किसी अन्य को। इसी प्रकार ऋण कोई अन्य व्यक्ति लेगा और उसका भुगतान किसी अन्य व्यक्ति को करना होगा।

यह सत्य है कि बौद्ध दर्शन में सत् के अनित्य एवं क्षणिक स्वरूप पर अधिक बल दिया गया है। यह भी सत्य है कि भगवान बुद्ध सत् को एक प्रक्रिया (Process) के रूप में देखते हैं। उनकी दृष्टि में विश्व मात्र एक प्रक्रिया है उस प्रक्रिया (परिवर्तनशीलता) से पृथक् कोई सत्ता नहीं है। वे कहते हैं क्रिया है किन्तु क्रिया से पृथक् कोई कर्ता नहीं है। इस प्रकार प्रक्रिया से अलग कोई सत्ता नहीं है किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि बौद्ध दर्शन के इन मन्तव्यों का आश्रय एकान्त क्षणिकवाद या उच्छेदवाद नहीं है। आलोचकों ने उसे उच्छेदवाद समझकर जो आलोचना प्रस्तुत की है, चाहे उच्छेदवाद के संदर्भ में संगत हो किन्तु बौद्ध दर्शन के सम्बन्ध में नितान्त असंगत है। बुद्ध सत् के

---

१. आप्त-मीमांसा—समन्तभद्र, ४०-४१
२. युक्त्यनुशासन, १५-१६
३. अन्ययोगव्यवच्छेदिका, स्याद्वादमंजरी नामक टीका सहित, कारिका १८

परिवर्तनशील पक्ष पर बल देते हैं किन्तु इस आधार पर उन्हें उच्छेदवाद का समर्थक नहीं कहा जा सकता। बुद्ध के इस कथन का कि– "क्रिया है, कर्ता नहीं" का आशय यह नहीं है कि वे कर्ता या क्रियाशील तत्त्व का निषेध करते हैं। उनके इस कथन का तात्पर्य मात्र इतना ही है कि क्रिया से भिन्न कर्ता नहीं है। सत्ता और परिवर्तन में पूर्ण तादात्म्य है। सत्ता से भिन्न परिवर्तन और परिवर्तन से भिन्न सत्ता की स्थिति नहीं है। परिवर्तन और परिवर्तनशील अन्योन्याश्रित हैं, दूसरे शब्दों में वे सापेक्ष हैं, निरपेक्ष नहीं। वस्तुतः बौद्ध दर्शन का सत् सम्बन्धी यह दृष्टिकोण जैन दर्शन से उतना दूर नहीं है जितना माना गया है। बौद्ध दर्शन में सत्ता को अनुच्छेद और अशाश्वत कहा गया है अर्थात् वे न उसे एकान्त अनित्य मानते हैं और न एकान्त नित्य। वह न अनित्य है और न नित्य है जबकि जैन दार्शनिकों ने उसे नित्यानित्य कहा है, किन्तु दोनों परम्पराओं का यह अन्तर निषेधात्मक अथवा स्वीकारात्मक भाषा-शैली का अन्तर है। बुद्ध और महावीर के कथन का मूल उत्स एक-दूसरे से उतना भिन्न नहीं है, जितना कि हम उसे मान लेते हैं। भगवान बुद्ध का सत् के स्वरूप के सम्बन्ध में यथार्थ मन्तव्य क्या था, इसकी विस्तृत चर्चा हमने "जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन" भाग-१ (पृ. १९२-१९४) में की है। इच्छुक पाठक उसे वहाँ देख सकते हैं। सत् के स्वरूप के सम्बन्ध में प्रस्तुत विवेचना का मूल उद्देश्य मात्र इतना है कि सत् को अव्यय या अपरिवर्तनशील मानने का एकान्त पक्ष और सत् को परिवर्तनशील या क्षणिक मानने का एकान्त पक्ष जैन विचारकों को स्वीकार्य नहीं रहा है। इसी प्रकार सत् के सम्बन्ध में एकान्त अभेदवाद और एकान्त भेदवाद भी उन्हें मान्य नहीं रहे हैं।

सत् के सम्बन्ध में जैन दृष्टिकोण

सत् के सम्बन्ध में एकान्त परिवर्तनशीलता का दृष्टिकोण और एकान्त अपरिवर्तनशीलता का दृष्टिकोण इन दोनों में से किसी एक को अपनाने पर न तो व्यवहार जगत् की व्याख्या सम्भव है न धर्म और नैतिकता का कोई स्थान है। यही कारण था कि आचारमार्गीय परम्परा के प्रतिनिधि भगवान महावीर एवं भगवान बुद्ध ने उनका परित्याग आवश्यक समझा। महावीर की विशेषता यह रही कि उन्होंने न केवल एकान्त शाश्वतवाद का और एकान्त उच्छेदवाद का परित्याग किया अपितु अपनी अनेकान्तवादी और समन्वयवादी परम्परा के अनुसार उन दोनों विचारधाराओं में सामंजस्य स्थापित किया। परम्परागत दृष्टि से यह माना जाता है कि भगवान महावीर ने केवल "उपन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा" इस त्रिपदी का उपदेश दिया था। समस्त जैन दार्शनिक वाङ्मय का विकास इसी त्रिपदी के आधार पर हुआ है। परमार्थ या सत् के स्वरूप के सम्बन्ध में महावीर का यह उपर्युक्त कथन ही जैन दर्शन का केन्द्रीय तत्त्व है।

इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पत्ति, विनाश और ध्रौव्य ये तीनों ही सत् के लक्षण हैं। तत्त्वार्थ सूत्र में उमास्वाति ने सत् को परिभाषित करते हुए कहा है कि सत् उत्पाद, व्यय ध्रौव्यात्मक है (तत्त्वार्थ, ५/२९) उत्पाद और व्यय सत् के परिवर्तनशील पक्ष को बताते हैं तो ध्रौव्य उसके अविनाशी पक्ष को। सत् का ध्रौव्य गुण उसके उत्पत्ति एवं विनाश का आधार है, उनके मध्य योजक कड़ी है। यह सत्य है कि विनाश के लिए उत्पत्ति और उत्पत्ति के लिए विनाश आवश्यक है किन्तु उत्पत्ति और विनाश दोनों के लिए किसी ऐसे आधारभूत तत्त्व की आवश्यकता होती है जिसमें उत्पत्ति और विनाश की ये प्रक्रियायें घटित होती हों। यदि हम ध्रौव्य पक्ष को अस्वीकार करेंगे तो उत्पत्ति और विनाश परस्पर असम्बन्धित हो जायेंगे और सत्ता अनेक क्षणिक एवं असम्बन्धित क्षणजीवी तत्त्वों में विभक्त हो जायेगी। इन परस्पर असम्बन्धित क्षणिक सत्ताओं की अवधारणा से व्यक्तित्व की एकात्मकता का ही विच्छेद हो जायेगा, जिसके अभाव में नैतिक उत्तरदायित्व और कर्मफल-व्यवस्था ही अर्थविहीन हो जायेगी। इसी प्रकार एकान्त ध्रौव्यता को स्वीकार करने पर भी इस जगत् में चल रहे उत्पत्ति और विनाश के क्रम को समझाया नहीं जा सकेगा। जैन दर्शन में सत् के परिवर्तनशील पक्ष को द्रव्य और गुण तथा परिवर्तनशील पक्ष को पर्याय कहा जाता है। अग्रिम पृष्ठों में हम द्रव्य और पर्याय के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे।

द्रव्य की परिभाषा

हम यह पूर्व में सूचित कर चुके हैं कि जैन परम्परा में सत् और द्रव्य को पर्यायवाची माना गया है। मात्र यही नहीं, उसमें सत् के स्थान पर 'द्रव्य' ही प्रमुख रहा है। आगमों में सत् के स्थान पर 'अस्तिकाय' और 'द्रव्य' इन दो शब्दों का ही प्रयोग देखा गया है। जो अस्तिकाय हैं, वे द्रव्य ही हैं। सर्वप्रथम द्रव्य की परिभाषा उत्तराध्ययन सूत्र में है। उसमें 'गुणानां आसवो दव्वो' कहकर गुणों के आश्रय स्थल को द्रव्य कहा गया है। इस परिभाषा में द्रव्य का सम्बन्ध गुणों से माना गया है किन्तु इसके पूर्व गाथा में यह भी कहा गया है कि द्रव्य, गुण और पर्यायों सभी का ज्ञान ज्ञानियों के द्वारा देशित है। उत्तराध्ययन सूत्र (२८/६) में यह भी माना गया है कि गुण द्रव्य के आश्रित रहते हैं और पर्याय गुण और द्रव्य दोनों के आश्रित रहता है। इस परिभाषा का तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर हम यह पाते हैं कि इसमें द्रव्य, गुण और पर्याय में आश्रय-आश्रयी सम्बन्ध माना गया है। यह परिभाषा भेदवादी न्याय और वैशेषिक दर्शन के निकट है। द्रव्य की दूसरी परिभाषा 'गुणानां समूहो दव्वो' के रूप में भी की गयी है। इस परिभाषा का समर्थन तत्त्वार्थ सूत्र की 'सर्वार्थसिद्धि' नामक टीका (५/२/२६७/४) में आचार्य पूज्यपाद ने किया है। इसमें द्रव्य को 'गुणों का समुदाय' कहा गया है। जहाँ प्रथम परिभाषा द्रव्य और गुण में आश्रय-आश्रयी सम्बन्ध के द्वारा भेद का संकेत करती है, वहाँ यह दूसरी परिभाषा गुण और द्रव्य में अभेद स्थापित करती है। तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि जहाँ प्रथम परिभाषा वैशेषिक सूत्रकार महर्षि कणाद् के अधिक निकट है, वहाँ यह दूसरी परिभाषा बौद्ध परम्परा के द्रव्य लक्षण के अधिक समीप प्रतीत होती है। क्योंकि दूसरी परिभाषा के अनुसार गुणों से पृथक् द्रव्य का कोई अस्तित्व नहीं माना गया। इस द्वितीय परिभाषा में गुणों के समुदाय या स्कन्ध को ही द्रव्य कहा गया है। यह परिभाषा गुणों से पृथक् द्रव्य की सत्ता न मानकर गुणों के समुदाय को ही द्रव्य मान लेती है। इस प्रकार यद्यपि ये दोनों ही परिभाषायें जैन चिन्तनधारा में ही विकसित हैं किन्तु एक पर वैशेषिक दर्शन

का और दूसरी पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव है। ये दोनों परिभाषायें जैन दर्शन की अनेकान्तिक दृष्टि का पूर्ण परिचय नहीं देतीं, क्योंकि एक में द्रव्य और गुण में भेद माना गया है तो दूसरे में अभेद, जबकि जैन दृष्टिकोण भेद-अभेद मूलक है। उमास्वाति के तत्त्वार्थ सूत्र सर्वार्थसिद्धिमान्य पाठ में 'सत् द्रव्य लक्षण' (५/२९) कहकर सत् को द्रव्य का लक्षण बताया है। इस परिभाषा से यह फलित होता है कि द्रव्य का मुख्य लक्षण अस्तित्व है। जो अस्तित्ववान् है, वही द्रव्य है। इसी आधार पर यह कहा गया है कि जो त्रिकाल में अपने स्वभाव का परित्याग न करे उसे ही सत् या द्रव्य कहा जा सकता है। तत्त्वार्थ सूत्र (५/२९) में उमास्वाति ने एक ओर द्रव्य का लक्षण सत् बताया तो दूसरी ओर सत् को उत्पाद-व्यय, ध्रौव्यात्मक बताया। अतः द्रव्य को भी उत्पाद-व्यय ध्रौव्यात्मक कहा जा सकता है। साथ ही उमास्वाति ने तत्त्वार्थ सूत्र (५/३८) में द्रव्य को परिभाषित करते हुए उसे गुण, पर्याय से युक्त भी कहा है। आचार्य कुंदकुंद ने 'पंचास्तिकायसार' और 'प्रवचनसार' में इन्हीं दोनों लक्षणों को मिलाकर द्रव्य को परिभाषित किया है। 'पंचास्तिकायसार' (१०) में वे कहते हैं कि "द्रव्य सत् लक्षण वाला है।" इसी परिभाषा को और स्पष्ट करते हुए प्रवचनसार (९५-९६) में वे कहते हैं "जो अपरित्यक्त स्वभाव वाला उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य से युक्त तथा गुण पर्याय सहित है, उसे द्रव्य कहा जाता है।" इस प्रकार कुंदकुंद ने द्रव्य की परिभाषा के सन्दर्भ में उमास्वाति के सभी लक्षणों को स्वीकार कर लिया है। तत्त्वार्थ सूत्रकार उमास्वाति की विशेषता यह है कि उन्होंने 'गुण पर्यायवत् द्रव्य' कहकर जैन दर्शन के भेद-अभेदवाद को पुष्ट किया है। यद्यपि तत्त्वार्थ सूत्र में द्रव्य की यह परिभाषा भी वैशेषिक सूत्र के 'द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरं सत्ता' (१/२/८) नामक सूत्र के निकट ही सिद्ध होती है। उमास्वाति ने इस सूत्र में कर्म के स्थान पर पर्याय को रख दिया है। जैन दर्शन के सत् सम्बन्धी सिद्धान्त की चर्चा में हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि द्रव्य या सत्ता परिवर्तनशील होकर भी नित्य है। परिणमन यह द्रव्य का आधारभूत लक्षण है किन्तु इसकी प्रक्रिया में द्रव्य अपने स्वरूप का परित्याग नहीं करता है। स्व-स्वरूप का परित्याग किये बिना विभिन्न अवस्थाओं को धारण करना ही द्रव्य को नित्य कहा जाता है, किन्तु प्रति क्षण उत्पन्न होने वाले और नष्ट होने वाले पर्यायों की अपेक्षा से उसे अनित्य कहा जाता है। उसे इस प्रकार भी समझाया जाता है कि मृत्तिका अपने स्व-जातीय धर्म का परित्याग किये बिना घट आदि को उत्पन्न करती है। घट की उत्पत्ति में पिण्ड का विनाश होता है। जब तक पिण्ड विनष्ट नहीं होता तब तक घट उत्पन्न नहीं होता किन्तु इस उत्पाद और व्यय में भी मृत्तिका-लक्षण यथावत् बना रहता है। वस्तुतः कोई भी द्रव्य अपने स्व-लक्षण, स्व-स्वभाव अथवा स्व-जातीय धर्म का परित्याग नहीं करता है। द्रव्य अपने गुण या स्व-लक्षण की अपेक्षा से नित्य होता है, क्योंकि स्व-लक्षण का त्याग सम्भव नहीं है। अतः यह स्व-लक्षण ही वस्तु का नित्य पक्ष होता है। स्व-लक्षण का त्याग किये बिना वस्तु जिन विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त होती है, वे पर्याय कहलाती हैं। ये परिवर्तनशील पर्याय ही द्रव्य का अनित्य पक्ष है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि द्रव्य अपने स्व-लक्षण या गुण की अपेक्षा से नित्य और अपनी पर्याय की अपेक्षा से अनित्य कहा जाता है। उदाहरण के रूप में जीव, द्रव्य अपने चैतन्य गुण का कभी परित्याग नहीं करता, किन्तु इसके चेतना लक्षण का परित्याग के बिना वह देव, मनुष्य, पशु इन विभिन्न योनियों को अथवा बालक, युवा, वृद्ध आदि अवस्थाओं को प्राप्त होता है। जिन गुणों का परित्याग नहीं किया जा सकता वे ही गुण वस्तु के स्व-लक्षण कहे जाते हैं। जिन गुणों अथवा अवस्थाओं का परित्याग किया जा सकता है, वे पर्याय कहलाती हैं। पर्याय बदलती रहती हैं, किन्तु गुण वही बना रहता है। ये पर्याय भी दो प्रकार की कही गयी हैं—१. स्वभाव पर्याय और २. विभाव पर्याय। जो पर्याय या अवस्थायें स्व-लक्षण के निमित्त से होती हैं वे स्वभाव पर्याय कहलाती हैं और जो अन्य निमित्त से होती हैं वे विभाव पर्याय कहलाती हैं। उदाहरण के रूप में ज्ञान और दर्शन (प्रत्यक्षीकरण) सम्बन्धी विभिन्न अनुभूतिपरक अवस्थायें आत्मा की स्वभाव पर्याय हैं। क्योंकि वे आत्मा के स्व-लक्षण 'उपयोग' से फलित होती हैं, जबकि क्रोध आदि कषाय भाव कर्म के निमित्त से या दूसरों के निमित्त से होती हैं, अतः वे विभाव पर्याय हैं। फिर भी इतना निश्चित है कि इन गुणों और पर्यायों का अधिष्ठान या उपादान तो द्रव्य स्वयं ही है। द्रव्य गुण और पर्यायों से अभिन्न हैं, वे परस्पर सापेक्ष हैं।

गुण

द्रव्य को गुण और पर्यायों का आधार माना गया है। वस्तुतः गुण द्रव्य के स्वभाव या स्व-लक्षण होते हैं। तत्त्वार्थ सूत्र में उमास्वाति ने 'द्रव्याश्रया निर्गुणागुणाः' (५/४०) कहकर यह बताया है कि गुण द्रव्य में रहते हैं, पर वे स्वयं निर्गुण होते हैं। गुण निर्गुण होते हैं यह परिभाषा सामान्यतया आत्म-विरोधी सी लगती है। किन्तु इस परिभाषा की मूलभूत दृष्टि यह है कि यदि हम गुण को भी गुण मानेंगे तो फिर अनवस्था दोष का प्रसंग आयेगा। आगमिक दृष्टि से गुण की परिभाषा इस रूप में की गयी है कि गुण द्रव्य का विधान है यानि उसका स्व-लक्षण है जबकि पर्याय द्रव्य का विकार है। गुण भी द्रव्य के समान ही अविनाशी है। जिस द्रव्य का जो गुण है वह उसमें सदैव रहता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि द्रव्य का जो अविनाशी लक्षण है अथवा द्रव्य जिसका परित्याग नहीं कर सकता है वही गुण है। गुण वस्तु की सहभावी विशेषताओं का सूचक है।

वे विशेषताएँ या लक्षण जिनके आधार पर एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य से अलग किया जा सकता है वे विशिष्ट गुण कहे जाते हैं। उदाहरण के रूप में धर्म-द्रव्य का लक्षण गति में सहायक होना है। अधर्म-द्रव्य का लक्षण स्थिति में सहायक होना है। जो सभी द्रव्यों का अवगाहन करता है, उन्हें स्थान देता है, वह आकाश कहा जाता है। इसी प्रकार परिवर्तन काल का लक्षण है और उपयोग जीव का लक्षण है। अतः गुण वे हैं जिसके आधार पर हम किसी द्रव्य को पहचानते हैं और उसका अन्य द्रव्य से पृथक्त्व स्थापित करते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र (२८/११-१२) में जीव और पुद्गल के अनेक लक्षणों का भी चित्रण हुआ है। उसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य एवं उपयोग—ये जीव के

लक्षण बताये गये हैं और शब्द, प्रकाश, अंधकार, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि को पुद्गल का लक्षण कहा गया है। ज्ञातव्य है कि द्रव्य और गुण विचार के स्तर पर ही अलग-अलग माने गये हैं लेकिन अस्तित्व की दृष्टि से वे पृथक्-पृथक् सत्ताएँ नहीं हैं। गुणों के संदर्भ में हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि कुछ गुण सामान्य होते हैं और वे सभी द्रव्यों में पाये जाते हैं और कुछ गुण विशिष्ट होते हैं, जो कुछ ही द्रव्यों में पाये जाते हैं। जैसे--अस्तित्व लक्षण सामान्य है जो सभी द्रव्यों में पाया जाता है किन्तु चेतना आदि कुछ गुण ऐसे हैं जो केवल जीव द्रव्य में पाये जाते हैं, अजीव द्रव्य में उनका अभाव होता है। दूसरे शब्दों में कुछ गुण सामान्य और कुछ विशिष्ट होते हैं। सामान्य गुणों के आधार पर जाति या वर्ग की पहचान होती है। वे द्रव्य या वस्तुओं का एकत्व प्रतिपादित करते हैं, जबकि विशिष्ट गुण एक द्रव्य का दूसरे से अन्तर स्थापित करते हैं। गुणों के सन्दर्भ में चर्चा करते हुए हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अनेक गुण सहभावी रूप से एक ही द्रव्य में रहते हैं। इसीलिए जैन दर्शन में वस्तु को अनन्त धर्मात्मक कहा गया है। गुणों के सम्बन्ध में एक अन्य विशेषता है कि वे द्रव्य विशेष के विभिन्न पर्यायों में भी बने रहते हैं।

द्रव्य और गुण का सम्बन्ध

कोई भी द्रव्य गुण से रहित नहीं होता। द्रव्य और गुण का विभाजन मात्र वैचारिक स्तर पर किया जाता है सत्ता के स्तर पर नहीं। गुण से रहित होकर न तो द्रव्य की कोई सत्ता होती है न द्रव्य से रहित गुण की। अतः सत्ता के स्तर पर गुण और द्रव्य में अभेद है जबकि वैचारिक स्तर पर दोनों में भेद किया जा सकता है।

जैसा कि हमने पूर्व में सूचित किया है कि द्रव्य और गुण अन्योन्याश्रित है। द्रव्य के विना गुण का अस्तित्व नहीं है और गुण के बिना द्रव्य का अस्तित्व नहीं है। तत्त्वार्थ सूत्र (५/४०) में गुण की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि "स्व-गुण को छोड़कर जिनका अन्य कोई गुण नहीं होता अर्थात् जो निर्गुण है वही गुण है।" द्रव्य और गुण पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर जैन परम्परा में हमें तीन प्रकार के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। आगम ग्रंथों में द्रव्य और गुण में आश्रय-आश्रयी भाव माना गया है। उत्तराध्ययन सूत्र (२८/६) में द्रव्य को गुण का आश्रय स्थान माना गया है। उत्तराध्ययन सूत्रकार के अनुसार गुण द्रव्य में रहते हैं अर्थात् द्रव्य गुणों का आश्रय स्थल है किन्तु यहाँ आपत्ति यह हो सकती है कि जब द्रव्य और गुण की भिन्न-भिन्न सत्ता ही नहीं है तो उनमें आश्रय-आश्रयी भाव किस प्रकार होगा? वस्तुतः द्रव्य और गुण के सम्बन्ध को लेकर किया गया यह विवेचन मूलतः वैशेषिक परम्परा के प्रभाव का परिणाम है। जैनों के अनुसार सिद्धान्ततः तो आश्रय-आश्रयी भाव उन्हीं दो तत्त्वों में हो सकता है जो एक-दूसरे से पृथक् सत्ता रखते हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर पूज्यपाद आदि कुछ आचार्यों ने 'गुणानां समूहो दव्वो' अथवा 'गुणसमुदायो द्रव्यमिति' कहकर के द्रव्य को गुणों का संघात माना है। जब द्रव्य और गुण की अलग-अलग सत्ता ही मान्य नहीं है, तो वहाँ उनके तादात्म्य के अतिरिक्त अन्य कोई सम्बन्ध मानने का प्रश्न ही नहीं उठता है। अन्य कोई सम्बन्ध मानने का तात्पर्य यह है कि वे एक-दूसरे से पृथक् होकर अपना अस्तित्व रखते हैं। यह दृष्टिकोण वौद्ध अवधारणा से प्रभावित है। यह संघातवाद का ही अपररूप है जबकि जैन परम्परा संघातवाद को स्वीकार नहीं करती है। वस्तुतः द्रव्य के साथ गुण और पर्याय के सम्बन्ध को लेकर तत्त्वार्थ सूत्रकार ने जो द्रव्य की परिभाषा दी है, वही अधिक उचित जान पड़ती है। तत्त्वार्थ सूत्रकार के अनुसार जो गुण और पर्यायों से युक्त है, वही द्रव्य है। वैचारिक स्तर पर तो गुण द्रव्य से भिन्न है और उस दृष्टि से उनमें आश्रय-आश्रयी भाव भी देखा जाता है किन्तु अस्तित्व के स्तर पर द्रव्य और गुण एक-दूसरे से पृथक् (विविक्त) सत्ताएँ नहीं हैं। अतः उनमें तादात्म्य भी है। इस प्रकार गुण और द्रव्य में कथंचित् तादात्म्य सम्बन्ध हो सकता है। डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य जैन-दर्शन (पृ. १४४) में लिखते हैं कि गुण से द्रव्य को पृथक् नहीं किया जा सकता इसलिए द्रव्य से अभिन्न है। किन्तु प्रयोजन आदि भेद से उसका विभिन्न रूप से निरूपण किया जा सकता है, अतः वे भिन्न भी हैं। "एक ही पुद्गल परमाणु में युगपत् रूप से रूप, रस, गंध आदि अनेक गुण रहते हैं। अनुभूति के स्तर पर रूप, रस, गन्ध आदि पृथक्-पृथक् गुण हैं। अतः वैचारिक स्तर पर केवल एक गुण न केवल दूसरे गुण से भिन्न है अपितु उस स्तर पर वह द्रव्य से भी भिन्न कल्पित किया जा सकता है। पुनः गुण अपनी पूर्व पर्याय को छोड़कर उत्तर पर्याय को धारण करता है और इस प्रकार वह परिवर्तित होता रहता है किन्तु उसमें यह पर्याय परिवर्तन द्रव्य से भिन्न होकर नहीं होता। पर्यायों में होने वाले परिवर्तन वस्तुतः द्रव्य के ही परिवर्तन हैं। पर्याय और गुण को छोड़कर द्रव्य का कोई अस्तित्व ही नहीं है। पर्यायों और गुणों में होने वाले परिवर्तनों के बीच जो एक अविच्छिन्नता का नियामक तत्त्व है, वही द्रव्य है। उदाहरण के रूप में एक पुद्गल परमाणु के रूप, रस, गंध और स्पर्श के गुण बदलते रहते हैं और उस गुण परिवर्तन के परिणामस्वरूप उसकी पर्याय भी बदलती रहती है, किन्तु इन परिवर्तित होने वाले गुणों और पर्यायों के बीच भी एक तत्त्व है जो इन परिवर्तनों के बीच भी बना रहता है, वही द्रव्य है। प्रत्येक द्रव्य में प्रति समय स्वाभाविक गुण कृत और वैभाविक गुण कृत अर्थात् पर्यायकृत उत्पाद और व्यय होते रहते हैं। यह सब उस द्रव्य की सम्पत्ति या स्वरूप है। इसलिए द्रव्य को उत्पाद-व्यय और ध्रौव्यात्मक कहा जाता है। द्रव्य के साथ-साथ उसके गुणों में भी उत्पाद-व्यय होता रहता है। जीव का गुण चेतना है उसमें पृथक् होने पर जीव जीव नहीं रहेगा, फिर भी जीव की चेतन अनुभूतियाँ स्थिर नहीं रहती हैं, वे प्रति क्षण बदलती रहती हैं। अतः गुणों में भी उत्पाद-व्यय होता रहता है। पुनः वस्तु का स्व-लक्षण कभी बदलता नहीं है अतः गुण में ध्रौव्यत्व पक्ष भी है। अतः गुण भी द्रव्य के समान उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य लक्षण युक्त है।

पर्याय

जैन दार्शनिकों के अनुसार द्रव्य में घटित होने वाले विभिन्न परिवर्तन ही पर्याय कहलाते हैं। प्रत्येक द्रव्य प्रति समय एक विशिष्ट अवस्था को प्राप्त होता रहता है। अपने पूर्व क्षण की अवस्था का त्याग करता है और एक नूतन विशिष्ट अवस्था को प्राप्त होता है इन्हें ही

पर्याय कहा जाता है। जिस प्रकार जलती हुई दीपशिखा में प्रति क्षण जलने वाला तेल बदलता रहता है, फिर भी दीपक यथावत् जलता रहता है। उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य सतत रूप से परिवर्तन या परिणमन को प्राप्त होता रहता है। द्रव्य में होने वाला यह परिवर्तन या परिणमन ही उसकी पर्याय है। एक व्यक्ति जन्म लेता है, बालक से किशोर और किशोर से युवक, युवक से प्रौढ़ और प्रौढ़ से वृद्धावस्था को प्राप्त होता है। जन्म से लेकर मृत्यु काल तक प्रत्येक व्यक्ति के देह की शारीरिक संरचना में तथा विचार और अनुभूति की चैतसिक संरचना में परिवर्तन होते रहते हैं। उसमें प्रति क्षण होने वाले इन परिवर्तनों के द्वारा वह जो भिन्न-भिन्न अवस्थायें प्राप्त करता है, वे ही पर्याय हैं। ज्ञातव्य है कि 'पर्याय' जैन दर्शन का विशिष्ट शब्द है। जैन दर्शन के अतिरिक्त अन्य किसी भी भारतीय दर्शन में पर्याय की यह अवधारणा अनुपस्थित है।

यहाँ हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि बाल्यावस्था से युवावस्था और युवावस्था से वृद्धावस्था की यात्रा कोई ऐसी घटना नहीं है, जो एक ही क्षण में घटित हो जाती है। बल्कि यह सब क्रमिक रूप से घटित होता रहता है, हमें उसका पता ही नहीं चलता। यह प्रति समय होने वाला परिवर्तन ही पर्याय है। पर्याय शब्द का सामान्य अर्थ अवस्था विशेष है। दार्शनिक जगत् में पर्याय का जो अर्थ प्रसिद्ध हुआ है, उसमें आगम में किंचित् भिन्न अर्थ में पर्याय शब्द का प्रयोग हुआ है। दार्शनिक ग्रन्थों में द्रव्य के क्रमभावी परिणाम को पर्याय कहा गया है तथा गुण एवं पर्याय से युक्त पदार्थ को द्रव्य कहा गया है। वहाँ पर एक ही द्रव्य या वस्तु की विभिन्न पर्यायों की चर्चा है। आगम में पर्याय का निरूपण द्रव्य के क्रमभावी परिणमन के रूप में नहीं हुआ है। आगम में तो एक पदार्थ जितनी अवस्थाओं में प्राप्त होता है उन्हें उस पदार्थ की पर्याय कहा गया है। जैसे जीव की पर्याय है–नारक, देव, मनुष्य, तिर्यंच, सिद्ध आदि।

पर्याय द्रव्य की भी होती है और गुण की भी होती है। गुणों की पर्याय का उल्लेख अनुयोगद्वार सूत्र में इस प्रकार हुआ है–"एक गुण काला, द्विगुण काला यावत् अनन्त गुण काला।" काले गुण की अनन्त पर्याय होती हैं। इसी प्रकार नीले, पीले, लाल एवं सफेद वर्णों की पर्याय भी अनन्त होती हैं। वर्ण की भाँति गन्ध, रस, स्पर्श के भेदों की भी एक गुण से लेकर अनन्त गुण तक पर्याय होती हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में एकत्व, पृथक्त्व, संख्या, संस्थान, संयोग और विभाग को पर्याय का लक्षण कहा है। एक पर्याय का दूसरे पर्याय के साथ द्रव्य की दृष्टि से एकत्व (तादात्म्य) होता है, पर्याय की दृष्टि से दोनों पर्याय एक-दूसरे से पृथक् होती हैं। संख्या के आधार पर भी पर्यायों में भेद होता है। इसी प्रकार संस्थान अर्थात् आकृति की दृष्टि से भी पर्याय-भेद होता है। जिस पर्याय का संयोग (उत्पाद) होता है उसका वियोग (विनाश) भी निश्चित रूप से होता है। कोई भी द्रव्य कभी भी पर्याय से रहित नहीं होता। पर्याय स्थिर भी नहीं रहती है वह प्रति समय परिवर्तित होती रहती है। जैन दार्शनिकों ने पर्याय परिवर्तन की इन घटनाओं को द्रव्य में होने वाले उत्पाद और व्यय के माध्यम से स्पष्ट किया है। द्रव्य में प्रति क्षण पूर्ण पर्याय का नाश या व्यय तथा उत्तर पर्याय का उत्पाद होता रहता है। उत्पाद और व्यय की घटना जिसमें या जिसके आश्रित घटित होती है या जो परिवर्तित होता है, वही द्रव्य है। जैन दर्शन के अनुसार द्रव्य और पर्याय भी कथंचित् तादात्म्य इस अर्थ में है कि पर्याय से रहित होकर द्रव्य का कोई अस्तित्व ही नहीं है। द्रव्य की पर्याय बदलते रहने पर भी द्रव्य में एक क्षण के लिए भी ऐसा नहीं होता कि वह पर्याय से रहित हो। न तो पर्यायों से पृथक् होकर द्रव्य अपना अस्तित्व रख सकता है और न द्रव्य से पृथक् होकर पर्याय का ही कोई अस्तित्व होता है। सत्तात्मक स्तर पर द्रव्य और पर्याय अलग-अलग सत्ताएँ नहीं हैं। वे तत्वतः अभिन्न हैं। किन्तु द्रव्य के बने रहने पर भी पर्यायों की उत्पत्ति और विनाश का क्रम घटित होता रहता है। यदि पर्याय उत्पन्न होती है और विनष्ट होती है, तो उसे द्रव्य से कथंचित् भिन्न भी मानना होगा। जिस प्रकार बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था व्यक्ति से पृथक् कहीं नहीं देखी जाती। वे व्यक्ति में ही घटित होती हैं और व्यक्ति से अभिन्न होती हैं किन्तु एक ही व्यक्ति में बाल्यावस्था का विनाश और युवावस्था की प्राप्ति देखी जाती है। अतः अपने विनाश और उत्पत्ति की दृष्टि से वे पर्यायें व्यक्ति से पृथक् ही कही जा सकती हैं। वैचारिक स्तर पर प्रत्येक पर्याय द्रव्य से भिन्नता रखती है। संक्षेप में तात्विक स्तर पर या सत्ता की दृष्टि से हम द्रव्य और पर्याय को अलग-अलग नहीं कर सकते, अतः वे अभिन्न हैं। किन्तु वैचारिक स्तर पर द्रव्य और पर्याय को परस्पर पृथक् माना जा सकता है क्योंकि पर्याय उत्पन्न होती है और नष्ट होती है, जबकि द्रव्य बना रहता है, अतः वह द्रव्य से भिन्न भी है। जैन आचार्यों के अनुसार द्रव्य और पर्याय की यह कथंचित् अभिन्नता और कथंचित् भिन्नता अनेकांतिक दृष्टिकोण की परिचायक है।

पर्याय के प्रकार

पर्यायों के प्रकारों की आगमिक आधारों पर चर्चा करते हुए द्रव्यानुयोग (पृ. ३८) पर उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म. सा. 'कमल' लिखते हैं कि प्रज्ञापना सूत्र में पर्याय के दो भेद प्रतिपादित हैं–(१) जीव पर्याय और (२) अजीव पर्याय। ये दोनों प्रकार की पर्याय अनन्त होती हैं। जीव पर्याय किस प्रकार अनन्त होती है, इसका समाधान करते हुए कहा गया है कि नैरयिक, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और मनुष्य–ये सभी जीव असंख्यात हैं, किन्तु वनस्पतिकायिक और सिद्ध जीव तो अनन्त हैं, इसलिए जीव पर्याय अनन्त हैं।

पुनः पर्याय दो प्रकार की होती हैं–(१) अर्थ पर्याय और (२) व्यंजन पर्याय। एक ही पदार्थ की क्रमभावी पर्यायों को अर्थ पर्याय कहते हैं तथा पदार्थ की उसके विभिन्न प्रकारों एवं भेदों में जो पर्याय होती है उसे व्यंजन पर्याय कहते हैं। अर्थ पर्याय सूक्ष्म एवं व्यंजन पर्याय स्थूल होती हैं।

पर्याय को ऊर्ध्व पर्याय एवं तिर्यक् पर्याय के रूप में भी वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे भूत, भविष्य और वर्तमान के अनेक मनुष्यों की अपेक्षा से मनुष्य की जो अनन्त पर्याय होती हैं वे तिर्यक् पर्याय कही जाती हैं। यदि एक ही मनुष्य के प्रति क्षण होने वाले परिणमन को पर्याय कहें तो वह ऊर्ध्व पर्याय है।

ज्ञातव्य है कि पर्यायों में न केवल मात्रात्मक अर्थात् संख्या और अंशों (Degrees) की अपेक्षा से भेद होता है अपितु गुणों की अपेक्षा से भी भेद होते हैं। मात्रा की अपेक्षा से एक अंश काला, दो अंश काला, अनन्त अंश काला आदि भेद होते हैं जबकि गुणात्मक दृष्टि से काला, लाल, श्वेत आदि अथवा खट्टा-मीठा आदि अथवा मनुष्य, पशु, नारक, देवता आदि भेद होते हैं।

गुण और पर्याय की वास्तविकता का प्रश्न

जो दार्शनिक द्रव्य (सत्ता) और गुण में अभिन्नता या तादात्म्य के प्रतिपादक हैं और जो परम सत्ता को तत्वतः अद्वैत मानते हैं, वे गुण और पर्याय को वास्तविक नहीं, अपितु प्रतिभाषिक मानते हैं। उनका कहना है कि रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि गुणों की परम सत्ता से पृथक् कोई सत्ता ही नहीं है उनके अनुसार परम सत्ता (ब्रह्म) निर्गुण है। इसी प्रकार विज्ञानवादी या प्रत्ययवादी दार्शनिकों के अनुसार परमाणु भी एक ऐसा अविभागी पदार्थ है, जो विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा रूपादि विभिन्न गुणों की प्रतीति कराता है, किन्तु वस्तुतः उसमें इन गुणों की कोई सत्ता नहीं होती है। इन दार्शनिकों की मान्यता यह है कि रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि की अनुभूति हमारे मन पर निर्भर करती है। अतः वे वस्तु के सम्बन्ध में हमारे मनोविकल्प ही हैं। उनकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। यदि हमारी इन्द्रियों की संरचना भिन्न प्रकार की होती है तो उनसे हमें जो संवेदना होती वह भी भिन्न प्रकार की होती। यदि संसार के सभी प्राणियों की आँखों की संरचना में रंग-अंधता होती तो वे संसार की सभी वस्तुओं को केवल श्वेत-श्यामल रूप में ही देखते और उन्हें अन्य रंगों का कोई बोध नहीं होता। अतः लालादि रंगों के अस्तित्व का विचार ही नहीं होता है। जिस प्रकार इन्द्रधनुष के रंग मात्र प्रतीति है वास्तविक नहीं है अथवा जिस प्रकार हमारे स्वप्न की वस्तुएँ मात्र मनोकल्पनाएँ हैं, उसी प्रकार गुण और पर्याय भी मात्र प्रतिभास हैं। चित्त-विकल्प वास्तविक नहीं है।

किन्तु जैन दार्शनिक अन्य वस्तुवादी दार्शनिकों (Realist) के समान द्रव्य के साथ-साथ गुण और पर्याय को भी यथार्थ/वास्तविक मानते हैं। उनके अनुसार प्रतीति और प्रत्यय यथार्थ के ही होते हैं। जो अयथार्थ हो उसका कोई प्रत्यय (Idea) या प्रतीति ही नहीं हो सकती है। आकाश-कुसुम या परी आदि की अयथार्थ कल्पनाएँ भी दो यथार्थ अनुभूतियों का चैत्तसिक स्तर पर किया गया मिश्रण मात्र है। स्वप्न भी यथार्थ अनुभूतियों और उनके चैत्तसिक स्तर पर किये गये मिश्रणों से ही निर्मित होते हैं, जन्मान्ध को कभी रंगों के कोई स्वप्न नहीं होते हैं। अतः अयथार्थ की कोई प्रतीति नहीं हो सकती है। जैनों के अनुसार अनुभूति का प्रत्येक विषय अपनी वास्तविक सत्ता रखता है। इससे न केवल द्रव्य अपितु गुण और पर्याय भी वास्तविक (Real) हैं। सत्ता की इस वास्तविकता के कारण ही प्राचीन जैन आचार्यों ने उसे अस्तिकाय कहा है।

जैन दर्शन में अस्तिकाय की अवधारणा[१]

जैन दर्शन में 'द्रव्य' के वर्गीकरण का एक आधार अस्तिकाय और अनस्तिकाय की अवधारणा भी है। षट्द्रव्यों में धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और जीव ये पाँच अस्तिकाय माने गये हैं जबकि काल को अनस्तिकाय माना गया है। अधिकांश जैन दार्शनिकों के अनुसार काल का अस्तित्व तो है; किन्तु उसमें कायत्व नहीं है, अतः उसे अस्तिकाय के वर्ग में नहीं रखा जा सकता है। यद्यपि कुछ श्वेताम्बर आचार्यों ने काल को स्वतंत्र द्रव्य मानने के सम्बन्ध में भी आपत्ति उठाई है, किन्तु यह एक भिन्न विषय है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

अस्तिकाय का तात्पर्य

सर्वप्रथम तो हमारे सामने मूल प्रश्न यह है कि अस्तिकाय की इस अवधारणा का तात्पर्य क्या है? व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'अस्तिकाय' दो शब्दों के मेल से बना है—अस्ति+काय। 'अस्ति' का अर्थ है सत्ता या अस्तित्व और 'काय' का अर्थ है शरीर, अर्थात् जो शरीर-रूप से अस्तित्ववान् है वह अस्तिकाय है। किन्तु यहाँ 'काय' (शरीर) शब्द भौतिक शरीर के अर्थ में प्रयुक्त नहीं है जैसा कि जन-साधारण समझता है। क्योंकि पंच-अस्तिकायों में पुद्गल को छोड़कर शेष चार तो अमूर्त हैं, अतः यह मानना होगा कि यहाँ काय शब्द का प्रयोग लाक्षणिक अर्थ में ही हुआ है। पंचास्तिकाय का टीका में कायत्व शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा गया है—"कायत्वमाख्यं सावयवत्वम्" अर्थात् कायत्व का तात्पर्य सावयवत्व है। जो अवयवी द्रव्य हैं वे अस्तिकाय हैं और जो निरवयवी द्रव्य हैं वे अनस्तिकाय हैं। अवयवी का अर्थ है अंगों से युक्त। दूसरे शब्दों में जिसमें विभिन्न अंग, अंश या हिस्से (पार्ट) हैं, वह अस्तिकाय है। यद्यपि यहाँ यह शंका उठाई जा सकती है कि अखण्ड द्रव्यों में अंश या अवयव की कल्पना कहाँ तक युक्ति-संगत होगी? जैन दर्शन के पंच अस्तिकायों में से धर्म, अधर्म और आकाश ये तीन एक, अविभाज्य एवं अखण्ड द्रव्य हैं, अतः उनके सावयवी होने का क्या तात्पर्य है? पुनश्च, कायत्व का अर्थ सावयवत्व मानने में एक कठिनाई यह भी है कि परमाणु तो अविभाज्य, निरंश और निरवयवी हैं तो क्या वे अस्तिकाय नहीं हैं? जबकि जैन दर्शन के अनुसार तो परमाणु-पुद्गल को भी अस्तिकाय माना गया है। प्रथम प्रश्न का जैन दार्शनिकों का प्रत्युत्तर यह होगा कि यद्यपि धर्म, अधर्म और आकाश अविभाज्य एवं अखण्ड द्रव्य हैं, किन्तु क्षेत्र की अपेक्षा से ये लोकव्यापी हैं अतः क्षेत्र की दृष्टि से इनमें सावयवत्व की अवधारणा या विभाग की कल्पना की जा सकती है। यद्यपि यह केवल वैचारिक स्तर पर की गई कल्पना या विभाजन है। दूसरे प्रश्न का प्रत्युत्तर यह होगा कि यद्यपि परमाणु स्वयं में निरंश, अविभाज्य और निरवयव हैं अतः स्वयं तो कायरूप नहीं हैं किन्तु वे ही परमाणु-स्कन्ध बनकर कायत्व या सावयवत्व को धारण कर लेते हैं। अतः उपचार से उनमें भी कायत्व का सद्भाव मानना चाहिये। पुनः परमाणु में भी दूसरे परमाणु को स्थान

---

१. देखें—Studies in Jainism Editor M. P. Marathe में सागरमल जैन का लेख
जैन दर्शन में अस्तिकाय की अवधारणा : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, पृ. ४९-५५

देने की अवगाहन शक्ति है, अतः उसमें कायत्व का सद्भाव है। जैन दार्शनिकों ने अस्तिकाय और अनस्तिकाय के वर्गीकरण का एक आधार बहुप्रदेशत्व भी माना है। जो बहुप्रदेशी द्रव्य हैं, वे अस्तिकाय हैं और जो एक प्रदेशी द्रव्य हैं, वे अनस्तिकाय हैं। अस्तिकाय और अनस्तिकाय की अवधारणा में इस आधार को स्वीकार कर लेने पर भी पूर्वोक्त कठिनाइयाँ बनी रहती हैं। प्रथम तो धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों स्व-द्रव्य अपेक्षा से तो प्रदेशी हैं, क्योंकि अखण्ड हैं। पुनः परमाणु पुद्गल भी एक प्रदेशी है। व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र में तो उसे अप्रदेशी भी कहा गया है। क्या इन्हें अस्तिकाय नहीं कहा जायेगा ? यहाँ भी जैन दार्शनिकों का सम्भावित प्रत्युत्तर वही होगा जो कि पूर्व प्रसंग में दिया गया है : धर्म, अधर्म और आकाश में बहुप्रदेशत्व द्रव्यापेक्षा से नहीं, अपितु क्षेत्र की अपेक्षा से है।

द्रव्यसंग्रह में कहा गया है–

जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्ठद्धं।

तं खु पदेस जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं॥ –द्रव्यसंग्रह, २९

प्रो. जी. आर. जैन भी लिखते हैं–Pradeśa is the unit of space occupied by one indivisible atom of matter. अर्थात् प्रदेश आकाश की वह सबसे छोटी इकाई है जो एक पुद्गल परमाणु घेरता है। विस्तारवान् होने का अर्थ है क्षेत्र में प्रसारित होना। क्षेत्र अपेक्षा से ही धर्म और अधर्म को असंख्य प्रदेशी और आकाश को अनन्त प्रदेशी कहा गया है, अतः उनमें भी उपचार से कायत्व की अवधारणा की जा सकती है। पुद्गल का जो बहुप्रदेशीपन है वह परमाणु की अपेक्षा से न होकर स्कन्ध की अपेक्षा से है। इसीलिये पुद्गल को अस्तिकाय कहा गया है न कि परमाणु को। परमाणु तो स्वयं पुद्गल का एक अंश या प्रकार मात्र है। पुनः प्रत्येक पुद्गल परमाणु में अनन्त पुद्गल परमाणुओं के अवगाहन अर्थात् अपने में समाहित करने की शक्ति है–इसका तात्पर्य यह है कि पुद्गल परमाणु में प्रदेश-प्रचयत्व है–चाहे वह कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो। जैन आचार्यों ने स्पष्टतः यह माना है कि जिस आकाश प्रदेश में एक पुद्गल परमाणु रहता है, उसी में अनन्त पुद्गल परमाणु समाहित हो जाते हैं अतः परमाणु को भी अस्तिकाय माना जा सकता है।

वस्तुतः इस प्रसंग में कायत्व का अर्थ विस्तारयुक्त होना ही है। जो द्रव्य विस्तारवान् हैं वे अस्तिकाय हैं और जो विस्ताररहित हैं वे अनस्तिकाय हैं। विस्तार की यह अवधारणा, क्षेत्र की अवधारणा पर आश्रित है। वस्तुतः कायत्व के अर्थ के स्पष्टीकरण में सावयवत्व एवं सप्रदेशत्व की जो अवधारणा से प्रस्तुति की गई है वे सभी क्षेत्र के अवगाहन की संकल्पना से सम्बन्धित हैं। विस्तार का तात्पर्य है क्षेत्र का अवगाहन। जो द्रव्य जितने क्षेत्र का अवगाहन करता है वही उसका विस्तार (Extension) प्रदेश प्रचयत्व या कायत्व है। विस्तार या प्रचय दो प्रकार का माना गया है–ऊर्ध्व प्रचय और तिर्यक् प्रचय। आधुनिक शब्दावली में इन्हें क्रमशः ऊर्ध्व-एकरेखीय विस्तार (Longitudinal Extension) और बहुआयामी विस्तार (Multi-dimensional Extension) कहा जा सकता है। अस्तिकाय की अवधारणा में प्रचय या विस्तार को जिस अर्थ में ग्रहण किया जाता है वह बहुआयामी विस्तार है न कि ऊर्ध्व-एकरेखीय विस्तार। जैन दार्शनिकों ने केवल उन्हीं द्रव्यों को अस्तिकाय कहा है, जिनका तिर्यक् प्रचय या बहुआयामी विस्तार है। काल में केवल ऊर्ध्व-प्रचय या एक-आयामी विस्तार है, अतः उसे अस्तिकाय नहीं माना गया है। यद्यपि प्रो. जी. आर. जैन के काल को एक-आयामी (Mono-dimensional) और शेष को द्वि-आयामी (Two-dimensioanl) माना है किन्तु मेरी दृष्टि में शेष द्रव्य त्रि-आयामी हैं, क्योंकि वे स्कंधरूप हैं, अतः उनमें लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई के रूप में तीन आयाम होते हैं। अतः कहा जा सकता है कि जिन द्रव्यों में त्रि-आयामी विस्तार है, वे अस्तिकाय द्रव्य हैं।

यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि काल भी लोकव्यापी है फिर उसे अस्तिकाय क्यों नहीं माना गया ? इसका प्रत्युत्तर यह है कि यद्यपि लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर कालाणु स्थित हैं, किन्तु प्रत्येक कालाणु (Time grains) अपने आप में एक स्वतंत्र द्रव्य हैं. वे परस्पर निरपेक्ष हैं, स्निग्ध एवं रुक्ष गुण के अभाव के कारण उनमें बंध नहीं होता है, अर्थात् उनके स्कन्ध नहीं बनते हैं। स्कन्ध के अभाव में उनमें प्रदेश प्रचयत्व की कल्पना संभव नहीं है, अतः वे अस्तिकाय द्रव्य नहीं हैं। काल-द्रव्य को अस्तिकाय इसलिये नहीं कहा गया कि उसमें स्वरूपतः और उपचार दोनों ही प्रकार से प्रदेश प्रचय की कल्पना का अभाव है।

यद्यपि पाश्चात्य दार्शनिक देकार्त ने पुद्गल (Matter) का गुण विस्तार (Extension) माना है किन्तु जैन दर्शन की विशेषता तो यह है कि वह आत्मा, धर्म, अधर्म और आकाश जैसे अमूर्त्त-द्रव्यों में भी विस्तार की अवधारणा को स्वीकार करता है। इनके विस्तारवान् (कायत्व से युक्त) होने का अर्थ है वे दिक् (Space) में प्रसारित या व्याप्त हैं। धर्म एवं अधर्म तो एक महास्कन्ध के रूप में सम्पूर्ण लोकाकाश के सीमित असंख्य प्रदेशी क्षेत्र में प्रसारित या व्याप्त है। आकाश तो स्वतः ही अनन्त प्रदेश होकर लोक एवं अलोक में विस्तारित है, अतः इसमें भी कायत्व की अवधारणा सम्भव है। जहाँ तक आत्मा का प्रश्न है देकार्त उसमें 'विस्तार' को स्वीकार नहीं करता है, किन्तु जैन दर्शन उसे विस्तारयुक्त मानता है। क्योंकि आत्मा जिस शरीर को अपना आवास बनाता है उसमें वह समग्रतः व्याप्त हो जाता है। हम यह नहीं कह सकते हैं कि शरीर के अमुक भाग में आत्मा है और अमुक भाग में नहीं है, वह अपने चेतना लक्षण से सम्पूर्ण शरीर को व्याप्त करता है। अतः उसमें विस्तार है, वह अस्तिकाय है। हमें इस भ्रान्ति को निकाल देना चाहिये कि केवल मूर्त-द्रव्य का विस्तार होता है और अमूर्त्त का नहीं। आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि अमूर्त-द्रव्य का भी विस्तार होता है। वस्तुतः अमूर्त्त-द्रव्य के विस्तार की कल्पना उसके लक्षणों या कार्यों (Functions) के आधार पर की जा सकती है, जैसे धर्म-द्रव्य का कार्य गति को सम्भव बनाना है, वह गति का माध्यम माना गया है। अतः जहाँ-जहाँ गति है या गति सम्भव है, वहाँ-वहाँ धर्म-द्रव्य की उपस्थिति एवं विस्तार है यह माना जा सकता है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि किसी द्रव्य को अस्तिकाय कहने का तात्पर्य यह है कि वह द्रव्य दिक् में प्रसारित है या प्रसारण की क्षमता से युक्त है। विस्तार या प्रसार (Extension) ही कायत्व है क्योंकि विस्तार या प्रसार की उपस्थिति में ही प्रदेश प्रचयत्व तथा सावयवता की सिद्धि होती है। अतः जिन द्रव्यों में विस्तार या प्रसार का लक्षण है वे अस्तिकाय हैं।

अब एक प्रश्न यह शेष रहता है कि काल को अस्तिकाय क्यों नहीं माना जा सकता ? यद्यपि अनादि भूत से लेकर अनन्त भविष्य तक काल के विस्तार का अनुभव किया जा सकता है, किन्तु फिर भी उसमें कायत्व का आरोपण संभव नहीं है। क्योंकि काल का प्रत्येक घटक अपनी स्वतंत्र और पृथक् सत्ता रखता है। जैन दर्शन की पारम्परिक परिभाषा में कालाणुओं में स्निग्ध एवं रुक्ष गुण के अभाव होने से उनका कोई स्कन्ध या संघात नहीं बन सकता है। यदि उनके स्कन्ध की परिकल्पना भी कर ली जाय तो पर्याय-समय की सिद्धि नहीं होती है। पुनः काल के वर्तना लक्षण की सिद्धि केवल वर्तमान में ही है और वर्तमान अत्यन्त सूक्ष्म है। अतः काल में विस्तार (प्रदेश प्रचयत्व) नहीं माना जा सकता और इसलिए वह अस्तिकाय भी नहीं है।

अस्तिकायों के प्रदेश प्रचयत्व का अल्पबहुत्व

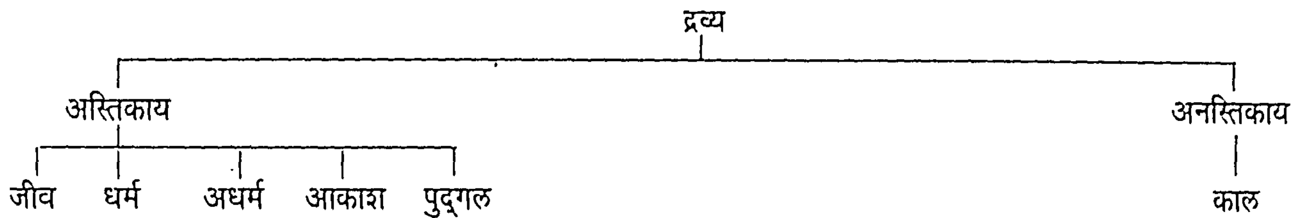
ज्ञातव्य है कि सभी अस्तिकाय द्रव्यों का विस्तार-क्षेत्र समान नहीं है, उसमें भिन्नताएँ हैं। जहाँ आकाश का विस्तार-क्षेत्र लोक और अलोक दोनों हैं वहाँ धर्म-द्रव्य और अधर्म-द्रव्य केवल लोक तक ही सीमित हैं। पुद्‌गल के प्रत्येक स्कन्ध और प्रत्येक जीव का विस्तार-क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न है। पुद्‌गल पिण्डों का विस्तार-क्षेत्र उनके आकार पर निर्भर करता है, जबकि प्रत्येक जीवात्मा का विस्तार-क्षेत्र उसके द्वारा गृहीत शरीर के आकार पर निर्भर करता है। इस प्रकार धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्‌गल और जीव अस्तिकाय होते हुए भी उनका विस्तार-क्षेत्र या कायत्व समान नहीं है। जैन दार्शनिकों ने उनमें प्रदेश दृष्टि से भिन्नता स्पष्ट की है। भगवती सूत्र में बताया गया है कि धर्म-द्रव्य और अधर्म के प्रदेश अन्य द्रव्यों की अपेक्षा सबसे कम हैं। वे लोकाकाश तक (Within the limits of universe) सीमित हैं और असंख्य प्रदेशी हैं। आकाश की प्रदेश संख्या इन दोनों की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक मानी गयी है। आकाश अनन्त प्रदेशी है। क्योंकि वह ससीम लोक (Finite universe) तक सीमित नहीं है। उसका विस्तार अलोक में भी है। पुनः आकाश की अपेक्षा जीव द्रव्य के प्रदेश अनन्त गुणा अधिक हैं क्योंकि प्रथम तो जहाँ धर्म-अधर्म और आकाश का एकल-द्रव्य है वहाँ जीव अनन्त-द्रव्य है क्योंकि जीव अनन्त हैं। पुनः प्रत्येक जीव के असंख्य प्रदेश हैं। प्रत्येक जीव में अपने आत्म-प्रदेशों से सम्पूर्ण लोक को व्याप्त करने की क्षमता है। जीव द्रव्य के प्रदेशों की अपेक्षा भी पुद्‌गल-द्रव्य के प्रदेश अनन्त गुणा अधिक हैं क्योंकि प्रत्येक जीव के साथ अनन्त कर्म-पुद्‌गल संयोजित हैं। यद्यपि काल की प्रदेश संख्या पुद्‌गल की अपेक्षा भी अनन्त गुणी मानी गयी, क्योंकि प्रत्येक जीव और पुद्‌गल-द्रव्य की वर्तमान, अनादि भूत और अनन्त भविष्य की दृष्टि से अनन्त पर्यायें होती हैं अतः काल की प्रदेश-संख्या सर्वाधिक होनी चाहिये फिर भी कालाणुओं का समावेश पुद्‌गल-द्रव्य के प्रदेशों में होने की वजह से अस्तिकाय में पुद्‌गल-द्रव्य के प्रदेशों की संख्या ही सर्वाधिक मानी गई है।

इस समग्र विवेचन से यह ज्ञात होता है कि अस्तिकाय की अवधारणा और द्रव्य की अवधारणा के वर्ण्य-विषय एक ही हैं।

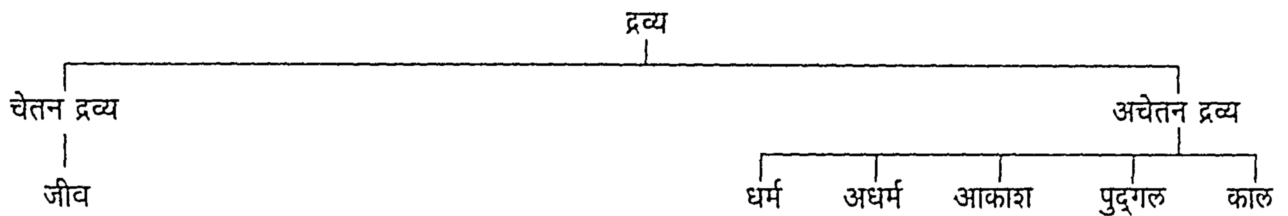
यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि प्रारम्भ में जैन दर्शन में अस्तिकाय की अवधारणा ही थी। अपने इतिहास की दृष्टि से यह अवधारणा पार्श्वयुगीन थी। 'इसिभासियाइ' के पार्श्व नामक इकत्तीसवें अध्याय में पार्श्व के जगत् सम्बन्धी दृष्टिकोण का प्रस्तुतीकरण करते हुए विश्व के मूल घटकों के रूप में पंचास्तिकायों का उल्लेख हुआ है। भगवती सूत्र में महावीर ने पार्श्व को इसी अवधारणा का पोषण करते हुए यह माना था कि लोक पंचास्तिकायरूप है। यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में जैन दर्शन में काल को स्वतन्त्र तत्त्व नहीं माना गया था। उसे जीव एवं पुद्‌गल की पर्याय के रूप में ही व्याख्यायित किया जाता था। प्राचीन स्तर के आगमों में उत्तराध्ययन ही ऐसा आगम है जहाँ काल को सर्वप्रथम एक स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में स्वीकार किया गया है। यह स्पष्ट है कि जैन परम्परा में उमास्वाति के काल तक, काल स्वतन्त्र द्रव्य है या नहीं–इस प्रश्न को लेकर मतभेद था। इस प्रकार जैन आचार्यों में तृतीय-चतुर्थ शताब्दी तक काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानने के सम्बन्ध में दो प्रकार की विचारधाराएँ चल रही थीं। कुछ विचारक काल को स्वतन्त्र द्रव्य नहीं मानते थे। तत्त्वार्थ सूत्र का भाष्यमान पाठ 'कालश्चेत्येके' का निर्देश करता है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि कुछ विचारक काल को भी स्वतन्त्र द्रव्य मानने लगे थे। लगता है कि लगभग पाँचवीं शताब्दी में आकर काल को स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया था और यही कारण था कि सर्वार्थसिद्धिकार ने 'कालश्चेत्येके' सूत्र के स्थान पर 'कालश्च' इस सूत्र को मान्य किया था। जब श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं में काल को एक स्वतन्त्र द्रव्य मान लिया गया, तो अस्तिकाय और द्रव्य शब्दों के वाच्य विषयों में एक अन्तर आ गया। जहाँ अस्तिकाय के अन्तर्गत जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्‌गल ये पाँच ही द्रव्य माने गये, वहाँ द्रव्य की अवधारणा के अन्तर्गत जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्‌गल और काल ये षट्द्रव्य माने गये। वस्तुतः अस्तिकाय की अवधारणा जैन परम्परा की अपनी मौलिक और प्राचीन अवधारणा थी। उसे जब वैशेषिक दर्शन की द्रव्य की अवधारणा के साथ स्वीकृत किया गया, तो प्रारम्भ में तो पाँच अस्तिकायों को ही द्रव्य माना गया किन्तु जब काल को एक स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई तो द्रव्यों की संख्या पाँच से बढ़कर छह हो गई। चूँकि आगमों में कहीं भी अस्तिकाय वर्ग के अन्तर्गत काल की गणना नहीं थी अतः काल को अनस्तिकाय वर्ग में रखा गया और यह मान लिया गया कि काल जीव और पुद्‌गल के परिवर्तनों का निमित्त है और कालाणु तिर्यक् प्रदेश प्रचयत्व से रहित हैं अतः वह अनस्तिकाय है। इस प्रकार द्रव्यों के वर्गीकरण में सर्वप्रथम दो प्रकार के वर्ग बने–१. अस्तिकाय द्रव्य और २. अनस्तिकाय द्रव्य। अस्तिकाय द्रव्यों के वर्ग के अन्तर्गत जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्‌गल इन पाँच द्रव्यों को रखा गया और अनस्तिकाय वर्ग के अन्तर्गत काल को रखा गया। आगे चलकर द्रव्यों के वर्गीकरण का आधार

चेतना-लक्षण और मूर्त्तता-लक्षण को भी माना गया। चेतना-लक्षण की दृष्टि से जीव को चेतन द्रव्य और शेष पाँच–धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल को अचेतन द्रव्य कहा गया। इसी प्रकार मूर्त्तता-लक्षण की अपेक्षा से पुद्गल को मूर्त्त-द्रव्य और शेष पाँच–जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल को अमूर्त्त-द्रव्य माना गया। इस प्रकार द्रव्यों के वर्गीकरण की तीन शैलियाँ अस्तित्व में आईं, जिन्हें हम निम्न सारणियों के आधार पर स्पष्टतया समझ सकते हैं–

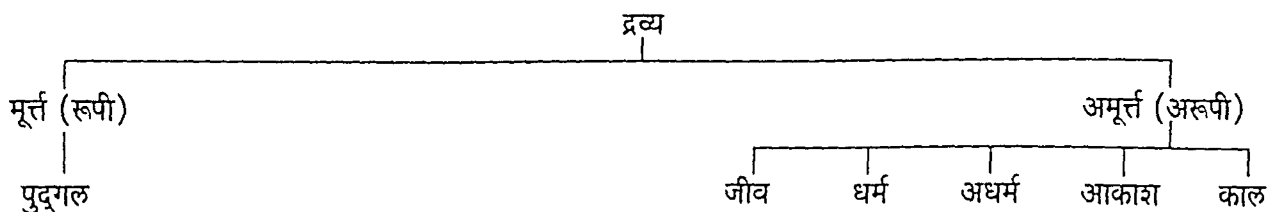
१. अस्तिकाय और अनस्तिकाय की अवधारणा के आधार पर द्रव्यों का वर्गीकरण :



२. चेतना लक्षण के आधार पर :



३. मूर्त्तता और अमूर्त्तता के लक्षण के आधार पर द्रव्यों का वर्गीकरण :



द्रव्यों के उपर्युक्त वर्गीकरण के पश्चात् इन षट्द्रव्यों के स्वरूप और लक्षण पर भी विचार कर लेना आवश्यक है।

जीव द्रव्य

जीव द्रव्य को अस्तिकाय वर्ग के अन्तर्गत रखा जाता है। जीव द्रव्य का लक्षण उपयोग या चेतना को माना गया है। इसीलिए इसे चेतन द्रव्य भी कहा जाता है। उपयोग या चेतना के दो प्रकारों की चर्चा ही आगमों में मिलती है–निराकार उपयोग और साकार उपयोग। इन दोनों को क्रमशः दर्शन और ज्ञान कहा जाता है। निराकार उपयोग को सामान्य स्वरूप का ग्रहण करने के कारण दर्शन कहा जाता है और साकार उपयोग को वस्तु के विशिष्ट स्वरूप का ग्रहण करने के कारण ज्ञान कहा जाता है। जीव द्रव्य के सन्दर्भ में जैन दर्शन की विशेषता यह है कि वह जीव द्रव्य को एक अखण्ड द्रव्य न मानकर अनेक द्रव्य मानता है। उसके अनुसार प्रत्येक जीव की स्वतन्त्र सत्ता है और विश्व में जीवों की संख्या अनन्त है। इस प्रकार संक्षेप में जीव अस्तिकाय, चेतन, अरूपी और अनेक द्रव्य हैं।

जीव को जैन दर्शन में आत्मा भी कहा गया है। आत्मा के सम्बन्ध में कुछ मौलिक प्रश्नों पर विचार किया जा रहा है।

आत्मा का अस्तित्व

जैन दर्शन में जीव या आत्मा को एक स्वतन्त्र तत्त्व या द्रव्य माना गया है। जहाँ तक हमारे आध्यात्मिक जीवन का प्रश्न है आत्मा के अस्तित्व पर शंका करके आगे बढ़ना असम्भव है। जैन दर्शन आध्यात्मिक विकास की पहली शर्त आत्म-विश्वास है। विशेषावश्यक भाष्य के गणधरवाद में आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए निम्न तर्क प्रस्तुत किये गये हैं–

(१) जीव का अस्तित्व जीव शब्द से ही सिद्ध है, क्योंकि असद् की कोई सार्थक संज्ञा ही नहीं बनती।[1]

(२) जीव है या नहीं, यह सोचना मात्र ही जीव की सत्ता को सिद्ध करता है। देवदत्त जैसा सचेतन प्राणी ही यह सोच सकता है कि वह स्तम्भ है या पुरुष।[2]

(३) शरीर स्थित जो यह सोचता है कि 'मैं नहीं हूँ', वही तो जीव है। जीव के अतिरिक्त संशयकर्त्ता अन्य कोई नहीं है। यदि आत्मा ही न हो तो ऐसी कल्पना का प्रादुर्भाव ही कैसे हो कि मैं हूँ ? जो निषेध कर रहा है वह स्वयं ही आत्मा है। संशय के लिए किसी ऐसे तत्त्व के

१. विशेषावश्यक भाष्य, १५७५   २. वही, १५७१

अस्तित्व की अनिवार्यता है जो उसका आधार हो। विना अधिष्ठान के कोई विचार या चिन्तन सम्भव नहीं हो सकता। संशय का अधिष्ठान कोई न कोई अवश्य होना चाहिए। महावीर गौतम से कहते हैं, हे गौतम ! यदि कोई संशयकर्त्ता ही नहीं है तो 'मैं हूँ' या 'नहीं हूँ' यह संशय कहाँ से उत्पन्न होता है ? यदि तुम स्वयं अपने ही विषय में सन्देह कर सकते हो तो फिर किसमें संशय न होगा। क्योंकि संशय आदि जितनी भी मानसिक और बौद्धिक क्रियाएँ हैं, वे सब आत्मा के कारण ही हैं। जहाँ संशय होता है, वहाँ आत्मा का अस्तित्व अवश्य स्वीकारना पड़ता है। वस्तुतः जो प्रत्यक्ष अनुभव से सिद्ध है, उसे सिद्ध करने के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं। आत्मा स्वयंसिद्ध है, क्योंकि उसी के आधार पर संशयादि उत्पन्न होते हैं। सुख-दुःखादि को सिद्ध करने के लिए भी किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं। ये सब आत्मपूर्वक ही हो सकते हैं।[१] आचारांग सूत्र में कहा गया है कि जिसके द्वारा जाना जाता है, वही आत्मा है।[२]

आचार्य शंकर ब्रह्मसूत्र भाष्य में ऐसे ही तर्क देते हुए कहते हैं कि जो निरसन कर रहा है वही तो उसका स्वरूप है।[३] आत्मा के अस्तित्व के लिए स्वतः बोध को आचार्य शंकर भी एक प्रबल तर्क के रूप में स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि सभी को आत्मा के अस्तित्व में भरपूर विश्वास है, कोई भी ऐसा नहीं है जो यह सोचता हो कि 'मैं नहीं हूँ'।[४] अन्यत्र शंकर स्पष्ट रूप से यह भी कहते हैं कि बोध से सत्ता को और सत्ता से बोध को पृथक् नहीं किया जा सकता।[५] यदि हमें आत्मा का स्वतः बोध होता है तो उसकी सत्ता निर्विवाद है।

पाश्चात्य विचारक देकार्त ने भी इसी तर्क के आधार पर आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध किया है। वह कहता है कि सभी के अस्तित्व में सन्देह किया जा सकता है, परन्तु सन्देहकर्ता में सन्देह करना तो सम्भव नहीं है, सन्देह का अस्तित्व सन्देह से परे है। सन्देह करना विचार करना है और विचारक के अभाव में विचार नहीं हो सकता। मैं विचार करता हूँ, अतः 'मैं हूँ' इस प्रकार देकार्त के अनुसार भी आत्मा का अस्तित्व स्वयंसिद्ध है।[६]

आत्मा अमूर्त्त है, अतः उसको उस रूप में तो नहीं जान सकते जैसे घट, पट आदि वस्तुओं का इन्द्रिय प्रत्यक्ष के रूप में ज्ञान होता है। लेकिन इतने मात्र से उसका निषेध नहीं किया जा सकता। जैन आचार्यों ने इसके लिए गुण और गुणी का तर्क दिया है। घट आदि जिन वस्तुओं को हम जानते हैं उनका भी यथार्थ बोध प्रत्यक्ष नहीं हो सकता क्योंकि हमें जिनका बोध प्रत्यक्ष होता है, वह घट के रूपादि गुणों का प्रत्यक्ष है। लेकिन घट मात्र रूप नहीं है, वह तो अनेक गुणों का समूह है जिन्हें हम नहीं जानते, रूप (आकार) तो उनमें से एक गुण है। जब रूपगुण के प्रत्यक्षीकरण को घट का प्रत्यक्षीकरण मान लेते हैं और हमें कोई संशय नहीं होता, तो फिर ज्ञानगुण से आत्मा का प्रत्यक्ष क्यों नहीं मान लेते।[७]

आधुनिक वैज्ञानिक भी अनेक तत्त्वों का वास्तविक बोध प्रत्यक्ष नहीं कर पाते हैं जैसे ईथर; फिर भी कार्यों के आधार पर उनका अस्तित्व मानते हैं एवं स्वरूप-विवेचन भी करते हैं। फिर आत्मा के चेतनात्मक कार्यों के आधार पर उसके अस्तित्व को क्यों न स्वीकार किया जाये ? वस्तुतः आत्मा या चेतना के अस्तित्व का प्रश्न महत्त्वपूर्ण होते हुए भी विवाद का विषय नहीं है। भारतीय चिन्तकों में चार्वाक् एवं बौद्ध तथा पाश्चात्य चिन्तकों में ह्यूम, जेम्स आदि विचारक आत्मा का निषेध करते हैं। वस्तुतः उनका निषेध आत्मा के अस्तित्व का निषेध नहीं, वरन् उसकी नित्यता का निषेध है। वे आत्मा को एक स्वतन्त्र नित्य द्रव्य के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं, लेकिन चेतन अवस्था या चेतना-प्रवाह के रूप में आत्मा का अस्तित्व तो उन्हें भी स्वीकार है। चार्वाक् दर्शन भी यह नहीं कहता कि आत्मा का सर्वथा अभाव है, उसका निषेध मात्र आत्मा को स्वतन्त्र मौलिक तत्त्व मानने से है। बौद्ध अनात्मवाद की प्रतिस्थापना में आत्मा (चेतना) का निषेध नहीं करते, वरन् उसकी नित्यता का निषेध करते हैं। ह्यूम भी अनुभूति से भिन्न किसी स्वतन्त्र आत्म-तत्त्व का ही निषेध करते हैं। उद्योतकर का 'न्यायवार्तिक' में यह कहना समुचित जान पड़ता है कि आत्मा के अस्तित्व के विषय में दार्शनिकों में सामान्यतः कोई विवाद ही नहीं है, यदि विवाद है तो उसका सम्बन्ध आत्मा के विशेष स्वरूप से है (न कि उसके अस्तित्व से)। स्वरूप की दृष्टि से कोई शरीर को ही आत्मा मानता है, कोई बुद्धि को, कोई इन्द्रिय या मन को, और कोई विज्ञान-संघात को आत्मा समझता है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो इन सबसे पृथक् स्वतन्त्र आत्म-तत्त्व के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं।[८] जैन दर्शन और गीता आत्मा को स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में स्वीकार करते हैं।

आत्मा एक मौलिक तत्त्व

आत्मा एक मौलिक तत्त्व है अथवा अन्य किसी तत्त्व से उत्पन्न हुआ है, यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। सभी दर्शन यह मानते हैं कि संसार आत्म और अनात्म का संयोग है, लेकिन इनमें मूल तत्त्व क्या है ? यह विवाद का विषय है। इस सम्बन्ध में चार प्रमुख धारणाएँ हैं– (१) मूल तत्त्व जड़ (अचेतन) है और उसी से चेतन की उत्पत्ति होती है। अजितकेशकम्बलिन्, चार्वाक् दार्शनिक एवं भौतिकवादी इस मत का प्रतिपादन करते हैं। (२) मूल तत्त्व चेतन है और उसी की अपेक्षा से जड़ की सत्ता मानी जा सकती है। बौद्ध विज्ञानवाद, शांकर वेदान्त तथा बर्कले इस मत का प्रतिपादन करते हैं। (३) कुछ विचारक ऐसे भी हैं जिन्होंने परम तत्त्व को एक मानते हुए भी उसे जड़-चेतन उभयरूप स्वीकार किया और दोनों को ही उसका पर्याय माना। गीता, रामानुज और स्पिनोजा इस मत का प्रतिपादन करते हैं। (४) कुछ विचारक जड़ और चेतन दोनों को ही परम तत्त्व मानते हैं और उनके स्वतंत्र अस्तित्व में विश्वास करते हैं। सांख्य, जैन और देकार्त इस धारणा में विश्वास करते हैं।

---

१. जैन दर्शन, पृ. १५४
२. आचारांग सूत्र, १/५/५/१६६
३. ब्रह्मसूत्र, शांकर भाष्य, ३/१/७
४. वही, १/१/२
५. वही, ३/२/२१; तुलना कीजिए–आचारांग, १/५/५
६. पश्चिमी दर्शन, पृ. १०६
७. विशेषावश्यक भाष्य, १५५८
८. न्यायवार्तिक, पृ. ३६६ (आत्म-मीमांसा, पृ. २ पर उद्धृत)

जैन विचारक स्पष्ट रूप से कहते हैं कि कभी भी जड़ से चेतन की उत्पत्ति नहीं होती। सूत्रकृतांग की टीका में इस मान्यता का निराकरण किया गया है। शीलांकाचार्य लिखते हैं कि "भूत समुदाय स्वतन्त्रधर्मी है, उसका गुण चैतन्य नहीं है, क्योंकि पृथ्वी आदि भूतों के अन्य पृथक्-पृथक् गुण हैं, अन्य गुणों वाले पदार्थों से या उनके समूह से भी किसी अपूर्व (नवीन) गुण की उत्पत्ति नहीं हो सकती, जैसे रुक्ष वालुका कणों के समुदाय में स्निग्ध तेल की उत्पत्ति नहीं होती। अतः चैतन्य आत्मा का ही गुण हो सकता है, भूतों का नहीं। जड़ भूतों से चेतन आत्मा की उत्पत्ति नहीं हो सकती।"[१] शरीर भी ज्ञानादि चैतन्य गुणों का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि शरीर भौतिक तत्त्वों का कार्य है और भौतिक तत्त्व चेतनाशून्य हैं। जब भूतों में ही चैतन्य नहीं है तो उनके कार्य में चैतन्य कहाँ से आ जायेगा ? प्रत्येक कार्य, कारण में अव्यक्त रूप से रहता है। जब वह कारण कार्यरूप में परिणत होता है, तब वह शक्ति रूप से रहा हुआ कार्य व्यक्त रूप में सामने आ जाता है। जब भौतिक तत्त्वों में चेतना नहीं है, तब यह कैसे सम्भव है कि शरीर चैतन्य गुण वाला हो जाय ? यदि चेतना प्रत्येक भौतिक तत्त्व में नहीं है तो उन तत्त्वों के संयोग से भी वह उत्पन्न नहीं हो सकती। रेणु के प्रत्येक कण में न रहने वाला तेल रेणु कणों के संयोग से उत्पन्न नहीं हो सकता। अतः यह कहना युक्ति-संगत नहीं कि चैतन्य चतुर्भुज के विशिष्ट संयोग से उत्पन्न होता है।[२] गीता भी कहती है कि असत् का प्रादुर्भाव नहीं होता और सत् का विनाश नहीं होता है।[३] यदि चैतन्य भूतों में नहीं है तो वह उनके संयोग से निर्मित शरीर में भी नहीं हो सकता। शरीर में चैतन्य की उपलब्धि होती है; अतः उसका आधार शरीर नहीं, आत्मा है। आत्मा की जड़ से भिन्नता सिद्ध करने के लिए शीलांकाचार्य एक दूसरी युक्ति प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि "पाँचों इन्द्रियों के विषय अलग-अलग हैं, प्रत्येक् इन्द्रिय अपने विषय का ही ज्ञान करती है, जबकि पाँचों इन्द्रियों के विषयों का एकत्रीभूत रूप में ज्ञान करने वाला अन्य कोई अवश्य है और वह आत्मा है।"[४]

इसी सम्बन्ध में शंकर की भी एक युक्ति है, जिसके सम्बन्ध में प्रो. ए. सी. मुकर्जी ने अपनी पुस्तक 'नेचर ऑफ सेल्फ' में काफी प्रकाश डाला है। शंकर पूछते हैं कि भौतिकवादियों के अनुसार भूतों से उत्पन्न होने वाली उस चेतना का स्वरूप क्या है ? उनके अनुसार या तो चेतना उन तत्त्वों की प्रत्यक्षकर्ता होगी या उनका ही एक गुण होगी। प्रथम स्थिति में यदि चेतना गुणों की प्रत्यक्षकर्ता होगी, तो वह उनसे प्रत्युत्पन्न नहीं होगी। दूसरे यह कहना भी हास्यास्पद होगा कि भौतिक गुण अपने ही गुणों को ज्ञान की विषय-वस्तु बनाते हैं। यह मानना कि चेतना जो भौतिक पदार्थों का ही एक गुण है, उनसे ही प्रत्युत्पन्न है, उन भौतिक पदार्थों को ही अपने ज्ञान का विषय बनाती है उतना ही हास्यास्पद है जितना यह मानना कि आग अपने को ही जलाती है अथवा नट अपने ही कंधों पर चढ़ सकता है। इस प्रकार शंकर का निष्कर्ष भी यही है कि चेतना (आत्मा) भौतिक तत्त्वों से व्यतिरिक्त और ज्ञानस्वरूप है।[५]

आक्षेप एवं निराकरण

सामान्य रूप से जैन विचारणा में आत्मा या जीव को अपौद्गलिक, विशुद्ध चैतन्य एवं जड़ से भिन्न स्वतन्त्र तत्त्व या द्रव्य माना जाता है। लेकिन अन्य दार्शनिकों का आक्षेप है कि जैन दर्शन के विचार में जीव का स्वरूप वहुत कुछ पौद्गलिक बन गया है। यह आक्षेप अजैन दार्शनिकों का ही नहीं, अनेक जैन चिन्तकों का भी है और उसके लिए आगमिक आधारों पर कुछ तर्क भी प्रस्तुत किये गये हैं। पं. जुगलकिशोर मुख्तार ने इस विषय में एक प्रश्नावली भी प्रस्तुत की थी।[६] यहाँ उस प्रश्नावली के कुछ प्रमुख मुद्दों पर ही चर्चा करना अपेक्षित है, जो जैन दार्शनिक मान्यताओं में ही पारस्परिक विरोध प्रकट करते हैं--

(१) जीव यदि पौद्गलिक नहीं है तो उसमें सौक्ष्म्य-स्थौल्य अथवा संकोच-विस्तार क्रिया और प्रदेश परिस्पन्द कैसे वन सकता है ? जैन विचारणा के अनुसार सौक्ष्म्य-स्थौल्य को पुद्गल का पर्याय माना गया है।

(२) जीव के अपौद्गलिक होने पर आत्मा में पदार्थों का प्रतिविम्वित होना भी कैसे वन सकता है ? क्योंकि प्रतिविम्व का ग्राहक पुद्गल ही होता है। जैन विचारणा में ज्ञान की उत्पत्ति पदार्थों के आत्मा में प्रतिविम्वित होने से ही मानी गयी है।

(३) अपौद्गलिक और अमूर्तिक जीवात्मा का पौद्गलिक एवं मूर्तिक कर्मों के साथ वद्ध होकर विकारी होना कैसे वन सकता है ? (इस प्रकार के वन्ध का कोई दृष्टान्त भी उपलव्ध नहीं है) स्वर्ण और पाषाण के अनादिवन्ध का जो दृष्टान्त दिया जाता है, वह विषय दृष्टान्त है और एक प्रकार से स्वर्णस्थानी जीव का पौद्गलिक होना ही सूचित करता है।

(४) रागादिक को पौद्गलिक कहा गया है और रागादिक जीव के परिणाम हैं--विना जीव के उनका अस्तित्व नहीं। (यदि जीव पौद्गलिक नहीं तो रागादिक पौद्गलिक कैसे सिद्ध हो सकेंगे ?) इसके सिवाय अपौद्गलिक जीवात्मा में कृष्ण नीलादि लेश्याएँ कैसे वन सकती हैं ?

जैन दर्शन जड़ और चेतन के द्वैत को और उनकी स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करता है। वह सभी प्रकार के अद्वैतवाद का विरोध करता है, चाहे वह शंकर का आध्यात्मिक अद्वैतवाद हो अथवा चार्वाक् एवं अन्य वैज्ञानिकों का भौतिकवाद हो। लेकिन इस सैद्धान्तिक मान्यता से उपर्युक्त शंकाओं का समाधान नहीं होता। इसके लिए हमें जीव के स्वरूप को उस सन्दर्भ में देखना होगा जिसमें उपर्युक्त शंकाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। प्रथमतः संकोच-विस्तार तथा उसके आधार पर होने वाले सौक्ष्म्य एवं स्थौल्य तथा वन्धन और रागादिभाव का होना सभी वद्ध जीवात्माओं या हमारे वर्तमान सीमित व्यक्तित्व के कारण हैं। जहाँ तक सीमित व्यक्तित्व या वद्ध जीवात्मा का प्रश्न है, वह एकान्त रूप से न तो भौतिक है और न अभौतिक। जैन चिन्तक मुनि नथमल जी इन्हीं प्रश्नों का समाधान करते हुए लिखते हैं कि "मेरी मान्यता यह है कि

---

१. सूत्रकृतांग टीका, १/१/८
२. जैन दर्शन, पृ. १५०
३. गीता, २/१६
४. सूत्रकृतांग टीका, १/१/८
५. दी नेचर ऑफ सेल्फ, पृ. १४१-१४३
६. अनेकान्त, जून १९४२

हमारा वर्तमान व्यक्तित्व न सर्वथा पौद्गलिक है और न सर्वथा अपौद्गलिक। यदि उसे सर्वथा पौद्गलिक मानें तो उसमें चैतन्य नहीं हो सकता और उसे सर्वथा अपौद्गलिक मानें तो उसमें संकोच-विस्तार, प्रकाशमय अनुभव, ऊर्ध्वगौरवधर्मिता, रागादि नहीं हो सकते। मैं जहाँ तक समझ सका हूँ, कोई भी शरीरधारी जीव अपौद्गलिक नहीं है। जैन आचार्यों ने उसमें संकोच-विस्तार बन्धन आदि माने हैं, अपौद्गलिकता उसकी अन्तिम परिणति है जो शरीर-मुक्ति से पहले कभी प्राप्त नहीं होती।"[१] मुनि जी के इस कथन को अधिक स्पष्ट रूप में यों कहा जा सकता है कि जीव के अपौद्गलिक स्वरूप की उपलब्धि नहीं, आदर्श है। जैन दर्शन का लक्ष्य इसी अपौद्गलिक स्वरूप की उपलब्धि है। जीव की अपौद्गलिकता आदर्श है, जागतिक तथ्य नहीं।

आत्मा और शरीर में सम्बन्ध

महावीर के सम्मुख जब यह प्रश्न उपस्थित किया गया कि "भगवन् ! जीव वही है जो शरीर है या जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है?" महावीर ने उत्तर दिया–"हे गौतम ! जीव शरीर भी है और शरीर भिन्न भी है।"[२] इस प्रकार महावीर ने आत्मा और देह के मध्य भिन्नत्व और एकत्व दोनों को स्वीकार किया। आचार्य कुन्दकुन्द ने आत्मा और शरीर के एकत्व और भिन्नत्व को लेकर यही विचार प्रकट किये हैं। आचार्य कुन्दकुन्द का कथन है कि व्यावहारिक दृष्टि से आत्मा और देह एक ही है, लेकिन निश्चय दृष्टि से आत्मा और देह कदापि एक नहीं हो सकते।[३] वस्तुतः आत्मा और शरीर में एकत्व माने बिना स्तुति, वंदन, सेवा आदि अनेक नैतिक आचरण की क्रियाएँ सम्भव नहीं। दूसरी ओर आत्मा और देह में भिन्नता माने बिना आसक्तिनाश और भेदविज्ञान की सम्भावना नहीं हो सकती। नैतिक और धार्मिक साधना की दृष्टि से आत्मा का शरीर से एकत्व और अनेकत्व दोनों अपेक्षित हैं। यही जैन नैतिकता की मान्यता है। महावीर ने एकान्तिक वादों को छोड़कर अनेकान्त दृष्टि को स्वीकार किया और दोनों वादों का समन्वय किया। उन्होंने कहा कि आत्मा और शरीर कथंचित् भिन्न हैं और कथंचित् अभिन्न हैं।

आत्मा परिणामी है

जैन दर्शन आत्मा को परिणामी मानता है और सांख्य एवं शांकर वेदान्त आत्मा को अपरिणामी (कूटस्थ) मानते हैं। बुद्ध के समकालीन विचारक पूर्णकाश्यप भी आत्मा को अपरिणामी मानते थे। आत्मा को अपरिणामी (कूटस्थ) मानने का तात्पर्य यह है कि आत्मा में कोई विकार, परिवर्तन या स्थित्यन्तर नहीं होता।

जैन आचारग्रन्थों में यह वचन बहुतायत से उपलब्ध होते हैं कि आत्मा कर्ता है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि आत्मा ही सुखों और दुःखों का कर्ता और भोक्ता है।[४] यह भी कहा गया है कि सिर काटने वाला शत्रु भी उतना अपकार नहीं करता जितना दुराचरण में प्रवृत्त अपनी आत्मा करती है।[५]

यही नहीं, सूत्रकृतांग में आत्मा को अकर्ता मानने वाले लोगों की आलोचना करते हुए स्पष्ट रूप में कहा गया है–"कुछ दूसरे (लोग) तो धृष्टतापूर्वक कहते हैं कि करना, कराना आदि क्रिया आत्मा नहीं करता, वह तो अकर्ता है। इन वादियों को सत्य ज्ञान का पता नहीं और न उन्हें धर्म का ही भान है।[६] उत्तराध्ययन सूत्र में शरीर को नाव और जीव को नाविक कहकर जीव पर नैतिक कर्मों का उत्तरदायित्व डाला गया है।[७]

आत्मा भोक्ता है

यदि आत्मा को कर्ता मानना आवश्यक है तो उसे भोक्ता भी मानना पड़ेगा। क्योंकि जो कर्मों का कर्ता है उसे ही उनके फलों का भोग भी करना चाहिए। जैसे आत्मा का कर्तृत्व कर्मपुद्गलों के निमित्त से सम्भव है, वैसे ही आत्मा का भोक्तृत्व भी कर्मपुद्गलों के निमित्त से ही सम्भव है। कर्तृत्व और भोक्तृत्व दोनों ही शरीरयुक्त बद्धात्मा में पाये जाते हैं, मुक्तात्मा या शुद्धात्मा में नहीं। भोक्तृत्व वेदनीय कर्म के कारण ही सम्भव है। जैन दर्शन आत्मा का भोक्तृत्व भी सापेक्ष दृष्टि से शरीरयुक्त बद्धात्मा में स्वीकार करता है।

१. व्यावहारिक दृष्टि से शरीरयुक्त बद्धात्मा भोक्ता है।

२. अशुद्धनिश्चयनय या पर्याय दृष्टि से आत्मा अपनी मानसिक अनुभूतियों या मनोभावों का वेदक है।

३. परमार्थ दृष्टि से आत्मा भोक्ता और वेदक नहीं, मात्र द्रष्टा या साक्षीस्वरूप है।[८]

आत्मा का भोक्तृत्व कर्म और प्रतिफल के संयोग के लिए आवश्यक है। जो कर्ता है, वह अनिवार्य रूप से उनके फलों का भोक्ता भी है अन्यथा कर्म और उसके फलभोग में अनिवार्य सम्बन्ध सिद्ध नहीं हो सकेगा। ऐसी स्थिति में नैतिकता का कोई अर्थ ही नहीं रह जायेगा। अतः यह मानना होगा कि आत्मा भोक्ता है, लेकिन आत्मा का भोक्ता होना बद्धात्मा या सशरीर के लिए ही समुचित है। अमुक्तात्मा भोक्ता नहीं है, वह तो मात्र साक्षीस्वरूप या द्रष्टा होता है।

---

१. तट दो प्रवाह एक, पृ. ५४
२. भगवती सूत्र, १३/७/४९५
३. समयसार, २७
४. उत्तराध्ययन सूत्र, २०/३७
५. वही, २०/४८
६. सूत्रकृतांग सूत्र, १/१/१३-२१
७. उत्तराध्ययन सूत्र, २३/७३, तुलना कीजिए– कठोपनिषद, १/३/३
८. समयसार, ८१-९२

आत्मा स्वदेह परिमाण है

यद्यपि जैन विचारणा में आत्माओं को रूप, रस, गन्ध, वर्ण, स्पर्श आदि से विवर्जित कहा गया है, तथापि आत्मा को शरीराकार स्वीकार किया गया है। आत्मा के आकार के सम्बन्ध में प्रमुख रूप से दो दृष्टियाँ हैं–एक के अनुसार आत्मा विभु (सर्वव्यापी) है, दूसरी के अनुसार अणु है। सांख्य, न्याय और अद्वैत वेदान्त आत्मा को विभु मानते हैं और रामानुज अणु मानते हैं। जैन दर्शन इस सम्बन्ध में मध्यस्थ दृष्टि अपनाता है। उसके अनुसार आत्मा अणु भी है और विभु भी है। वह सूक्ष्म है तो इतना है कि एक आकाश प्रदेश के अनन्तवें भाग में समा सकता है और विभु है तो इतना है कि समग्र लोक को व्याप्त कर सकता है।[१] जैन दर्शन आत्मा में संकोच विस्तार को स्वीकार करता है और इस आधार पर आत्मा को स्वदेह-परिमाण मानता है। जैसे दीपक का प्रकाश छोटे कमरे में रहने पर छोटे कमरे को और बड़े कमरे में रहने पर बड़े कमरे को प्रकाशित करता है वैसे ही आत्मा भी जिस देह में रहता है उसे चैतन्याभिभूत कर देता है।

आत्मा के विभुत्व की समीक्षा

१. यदि आत्मा विभु (सर्वव्यापक) है तो वह दूसरे शरीरों में भी होगा, फिर उन शरीरों के कर्मों के लिए उत्तरदायी होगा। यदि यह माना जाये कि आत्मा दूसरे शरीरों में नहीं है, तो फिर वह सर्वव्यापक नहीं होगा।

२. यदि आत्मा विभु है तो दूसरे शरीरों में होने वाले सुख-दुःख के भोग से कैसे बच सकेगा ?

३. विभु आत्मा के सिद्धान्त में कौन आत्मा किस शरीर का नियामक है, यह बताना कठिन है। वस्तुतः नैतिक और धार्मिक जीवन के लिए प्रत्येक शरीर में एक आत्मा का सिद्धान्त ही संगत हो सकता है, ताकि उस शरीर के कर्मों के आधार पर उसे उत्तरदायी ठहराया जा सके।

४. आत्मा की सर्वव्यापकता का सिद्धान्त अनेकात्मवाद के साथ कथमपि संगत नहीं हो सकता। साथ ही अनेकात्मवाद के अभाव में नैतिक जीवन की संगत व्याख्या सम्भव नहीं।

आत्माएँ अनेक हैं

आत्मा एक है या अनेक–यह दार्शनिक दृष्टि से विवाद का विषय रहा है। जैन दर्शन के अनुसार आत्माएँ अनेक हैं और प्रत्येक शरीर की आत्मा भिन्न है। यदि आत्मा को एक माना जाता है तो नैतिक दृष्टि से अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

एकात्मवाद की समीक्षा

१. आत्मा को एक मानने पर सभी जीवों की मुक्ति और बन्धन एक साथ होंगे। इतना ही नहीं सभी शरीरधारियों के नैतिक विकास एवं पतन की विभिन्न अवस्थाएँ भी युगपद् होंगी। लेकिन ऐसा तो दिखता नहीं। सब प्राणियों का आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास का स्तर अलग-अलग है। यह भी माना जाता है कि अनेक व्यक्ति मुक्त हो चुके हैं और अनेक अभी बंधन में हैं। अतः आत्माएँ एक नहीं अनेक हैं।

२. आत्मा को एक मानने पर वैयक्तिक नैतिक प्रयासों का मूल्य समाप्त हो जायेगा। यदि आत्मा एक ही है तो व्यक्तिगत प्रयासों एवं क्रियाओं से न तो उसकी मुक्ति सम्भव होगी न वह बन्धन में ही आयेगा।

३. आत्मा के एक मानने पर नैतिक उत्तरदायित्व तथा तज्जनित पुरस्कार और दण्ड की व्यवस्था का भी कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। सारांश में आत्मा को एक मानने पर वैयक्तिकता समाप्त हो जाती है और वैयक्तिकता के अभाव में नैतिक विकास, नैतिक उत्तरदायित्व और पुरुषार्थ आदि नैतिक प्रत्ययों का कोई अर्थ नहीं रह जाता। इसीलिये विशेषावश्यक भाष्य में कहा गया है कि सुख-दुःख, जन्म-मरण, बन्धन-मुक्ति आदि के सन्तोषप्रद समाधान के लिए अनेक आत्माओं की स्वतन्त्र सत्ता मानना आवश्यक है।[२] सांख्यकारिका में भी जन्म-मरण, इन्द्रियों की विभिन्नताओं, प्रत्येक की अलग-अलग प्रवृत्ति और स्वभाव तथा नैतिक विकास की विभिन्नता के आधार पर आत्मा की अनेकता सिद्ध की गयी है।[३]

अनेकात्मवाद की नैतिक कठिनाई

अनेकात्मवाद नैतिक जीवन के लिए वैयक्तिकता का प्रत्यय तो प्रस्तुत कर देता है, तथापि अनेक आत्माएँ मानने पर भी कुछ नैतिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन नैतिक कठिनाइयों में प्रमुखतम यह है कि नैतिकता का समग्र प्रयास जिस अहं के विसर्जन के लिए है उसी अहं (वैयक्तिकता) को ही यह आधारभूत बना देता है। अनेकात्मवाद में अहं कभी भी पूर्णतया विसर्जित नहीं हो सकता। इसी अहं से राग और आसक्ति का जन्म होता है। अहं तृष्णा का ही एक रूप है, 'मैं' भी बन्धन ही है।

जैन दर्शन का निष्कर्ष

जैन दर्शन ने इस समस्या का भी अनेकान्तदृष्टि से सुन्दर हल प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार आत्मा एक भी है और अनेक भी। समवायांग और स्थानांग सूत्र में कहा गया है कि आत्मा एक है।[४] अन्यत्र उसे अनेक भी कहा गया है।[५] टीकाकारों ने इसका समाधान इस

---

१. क्रमशः निगोद एवं केवली समुद्घात की अवस्था में
२. विशेषावश्यक भाष्य, १५८२
३. सांख्यकारिका, १८
४. समवायांग, १/१; स्थानांग सूत्र, १/१
५. भगवती सूत्र, २/१

प्रकार किया कि आत्मा द्रव्यापेक्षा से एक है और पर्यायापेक्षा से अनेक, जैसे सिन्धु का जल न एक है और न अनेक। वह जल-राशि की दृष्टि से एक है और जल-बिन्दुओं की दृष्टि से अनेक भी। समस्त जल-बिन्दु अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए उस जल-राशि से अभिन्न ही हैं। उसी प्रकार अनन्त चेतन आत्माएँ अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए भी अपने चेतना स्वभाव के कारण एक चेतन आत्मद्रव्य ही हैं।[१]

भगवान महावीर ने इस प्रश्न का समाधान बड़े सुन्दर ढंग से टीकाकारों के पहले ही कर दिया था। वे सोमिल नामक ब्राह्मण को अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहते हैं–"हे सोमिल ! द्रव्यदृष्टि से मैं एक हूँ, ज्ञान और दर्शन रूप दो पर्यायों की प्रधानता से मैं दो हूँ। कभी न्यूनाधिक नहीं होने वाले आत्म प्रदेशों की दृष्टि से मैं अक्षय हूँ, अव्यय हूँ, अवस्थित हूँ। तीनों कालों में बदलते रहने वाले उपयोग स्वभाव की दृष्टि से मैं अनेक हूँ।"[२]

इस प्रकार भगवान महावीर जहाँ एक ओर द्रव्यदृष्टि (Substantial view) से आत्मा के एकत्व का प्रतिपादन करते हैं, वहीं दूसरी ओर पर्यायार्थिक दृष्टि से एक ही जीवात्मा में चेतन पर्यायों के प्रवाह के रूप से अनेक व्यक्तियों की संकल्पना को भी स्वीकार कर शंकर के अद्वैतवाद और बौद्ध के क्षणिक आत्मवाद की खाई को पाटने की कोशिश करते हैं।

जैन विचारक आत्माओं में गुणात्मक अन्तर नहीं मानते हैं। लेकिन विचार की दिशा में केवल सामान्य दृष्टि से काम नहीं चलता, विशेष दृष्टि का भी अपना स्थान है। सामान्य और विशेष के रूप में विचार की दो दृष्टियाँ हैं और दोनों का अपना महत्त्व है। महासागर की जल-राशि सामान्य दृष्टि से एक है, लेकिन विशेष दृष्टि से वही जल-राशि अनेक जल-बिन्दुओं का समूह प्रतीत होती है। यही बात आत्मा के विषय में है। चेतना पर्यायों की विशेष दृष्टि से आत्माएँ अनेक हैं और चेतना द्रव्य की दृष्टि से आत्मा एक है। जैन दर्शन के अनुसार आत्म द्रव्य एक प्रकार का है। लेकिन उसमें अनन्त वैयक्तिक आत्माओं की सत्ता है। इतना ही नहीं, प्रत्येक वैयक्तिक आत्मा भी अपनी परिवर्तनशील चैतसिक अवस्थाओं के आधार पर स्वयं भी एक स्थिर इकाई न होकर प्रवाहशील इकाई है। जैन दर्शन यह मानता है कि आत्मा का चरित्र या व्यक्तित्व परिवर्तनशील है, वह देशकालगत परिस्थितियों में बदलता रहता है, फिर भी वही रहता है। हमारे में भी अनेक व्यक्तित्व बनते और बिगड़ते रहते हैं फिर भी वे हमारे ही अंग हैं इस आधार पर हम उनके लिए उत्तरदायी बने रहते हैं। इस प्रकार जैन दर्शन अभेद में भेद, एकत्व में अनेकत्व की धारणा को स्थान देकर धर्म और नैतिकता के लिए एक ठोस आधार प्रस्तुत करता है।

जैन दर्शन जिन्हें जीव की पर्याय अवस्थाओं की धारा कहता है, बौद्ध दर्शन उसे चित्त-प्रवाह कहता है। जिस प्रकार जैन दर्शन में प्रत्येक जीव अलग है, उसी प्रकार बौद्ध दर्शन में प्रत्येक चित्त-प्रवाह अलग है। जैसे बौद्ध दर्शन के विज्ञानवाद में आलयविज्ञान है वैसे जैन दर्शन में आत्म-द्रव्य है; यद्यपि हमें इन सबमें रहे हुए तात्त्विक अन्तर को विस्मृत नहीं करना चाहिए।

आत्मा के भेद

जैन दर्शन अनेक आत्माओं की सत्ता को स्वीकार करता है। इतना ही नहीं, वह प्रत्येक आत्मा की विभिन्न अवस्थाओं के आधार पर उसके भेद करता है। जैन आगमों में विभिन्न पक्षों की अपेक्षा से आत्मा के आठ भेद किये गये हैं[३]–

१. द्रव्यात्मा–आत्मा का तात्त्विक स्वरूप।

२. कषायात्मा–क्रोध, मान, माया आदि कषायों या मनोवेगों से युक्त चेतना की अवस्था।

३. योगात्मा–शरीर से युक्त होने पर चेतना की कायिक, वाचिक और मानसिक क्रियाओं की अवस्था।

४. उपयोगात्मा–आत्मा की ज्ञानात्मक और अनुभूत्यात्मक शक्तियाँ। यह आत्मा का चेतनात्मक व्यापार है।

५. ज्ञानात्मा–चेतना की विवेक और तर्क की शक्ति।

६. दर्शनात्मा–चेतना की भावात्मक अवस्था।

७. चरित्रात्मा–चेतना की संकल्पात्मक शक्ति।

८. वीर्यात्मा–चेतना की क्रियात्मक शक्ति।

उपर्युक्त आठ प्रकारों में द्रव्यात्मा, उपयोगात्मा, ज्ञानात्मा और दर्शनात्मा ये चार तात्त्विक आत्मा के स्वरूप के ही द्योतक हैं, शेष चार कषायात्मा, योगात्मा, चरित्रात्मा और वीर्यात्मा ये चारों आत्मा के अनुभवाधारित स्वरूप के निदर्शक हैं। तात्त्विक आत्मा द्रव्य की अपेक्षा से नित्य होती है यद्यपि उसमें ज्ञानादि की पर्यायें होती रहती हैं। अनुभवाधारित आत्मा चेतना की शरीर से युक्त अवस्था है। यह परिवर्तनशील एवं विकारयुक्त होती है। आत्मा के बन्धन का प्रश्न भी इसी अनुभवाधारित आत्मा से सम्बन्धित है। विभिन्न दर्शनों में आत्म-सिद्धान्त के सन्दर्भ में जो पारस्परिक विरोध दिखाई देता है, वह आत्मा के इन दो पक्षों में किसी पक्ष-विशेष पर बल देने के कारण होता है। भारतीय परम्परा में बौद्ध दर्शन ने आत्मा के अनुभवाधारित परिवर्तनशील पक्ष पर अधिक बल दिया, जबकि सांख्य और शांकर वेदान्त ने आत्मा के तात्त्विक स्वरूप पर ही अपनी दृष्टि केन्द्रित की। जैन दर्शन दोनों ही पक्षों को स्वीकार कर उनके बीच समन्वय का कार्य करता है।

---

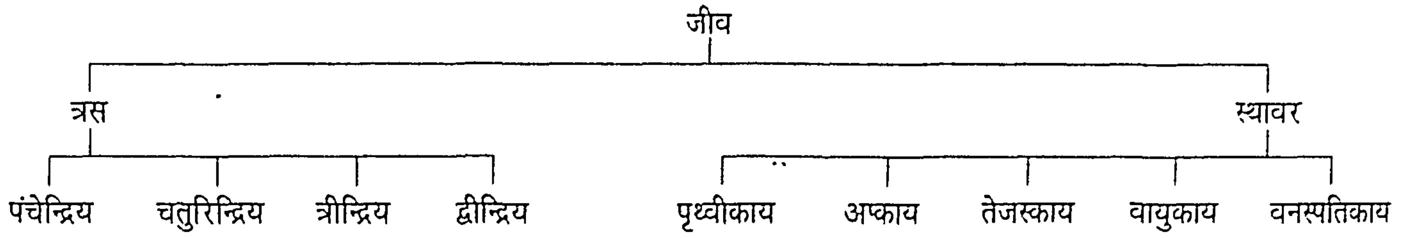
१. समवायांग टीका, १/१ २. भगवती सूत्र, १/८/१० ३. वही, १२/१०/४६७

विवेक-क्षमता के आधार पर आत्मा के भेद

विवेक-क्षमता की दृष्टि से आत्माएँ दो प्रकार की मानी गई हैं–(१) समनस्क, (२) अमनस्क। समनस्क आत्माएँ वे हैं जिन्हें विवेक-क्षमता से युक्त मन उपलब्ध है और अमनस्क आत्माएँ वे हैं जिन्हें ऐसा विवेक-क्षमता से युक्त मन उपलब्ध नहीं है। जहाँ तक नैतिक जीवन के क्षेत्र का प्रश्न है, समनस्क आत्माएँ ही नैतिक आचरण कर सकती हैं और वे ही नैतिक साध्य की उपलब्धि कर सकती हैं, क्योंकि विवेक-क्षमता से युक्त मन की उपलब्धि होने पर ही आत्मा में शुभाशुभ का विवेक करने की क्षमता होती है, साथ ही इसी विवेक-बुद्धि के आधार पर वे वासनाओं का संयमन भी कर सकती हैं। जिन आत्माओं में ऐसी विवेक-क्षमता का अभाव है, उनमें संयम की क्षमता का भी अभाव होता है, इसलिए वे नैतिक प्रगति भी नहीं कर सकतीं। नैतिक जीवन के लिए आत्मा में विवेक और संयम दोनों का होना आवश्यक है और वह केवल पंचेन्द्रिय जीवों में भी उन्हीं में सम्भव है जो समनस्क हैं। यहाँ जैविक आधार पर भी आत्मा के वर्गीकरण पर विचार अपेक्षित है, क्योंकि जैन धर्म का अहिंसा-सिद्धान्त बहुत कुछ उसी पर निर्भर है।

जैविक आधार पर प्राणियों का वर्गीकरण

जैन दर्शन के अनुसार जैविक आधार पर प्राणियों का वर्गीकरण निम्न तालिका से स्पष्ट हो सकता है–



जैविक दृष्टि से जैन परम्परा में दस प्राण शक्तियाँ मानी गयी हैं। स्थावर एकेन्द्रिय जीवों में चार शक्तियाँ होती हैं–(१) स्पर्श-अनुभव शक्ति, (२) शारीरिक शक्ति, (३) जीवन (आयु) शक्ति और (४) श्वसन शक्ति। द्वीन्द्रिय जीवों में इन चार शक्तियों के अतिरिक्त स्वाद और वाणी की शक्ति भी होती है। त्रीन्द्रिय जीवों में सूँघने की शक्ति भी होती है। चतुरिन्द्रिय जीवों में इन छह शक्तियों के अतिरिक्त देखने की सामर्थ्य भी होती है। पंचेन्द्रिय अमनस्क जीवों में इन आठ शक्तियों के साथ-साथ श्रवण शक्ति भी होती है और समनस्क पंचेन्द्रिय जीवों में इनके अतिरिक्त मनःशक्ति भी होती है। इस प्रकार जैन दर्शन में कुल दस जैविक शक्तियाँ या प्राण शक्तियाँ मानी गयी हैं। हिंसा-अहिंसा के अल्पत्व और बहुत्व आदि का विचार इन्हीं जैविक शक्तियों की दृष्टि से किया जाता है। जितनी अधिक प्राण शक्तियों से युक्त प्राणी की हिंसा की जाती है, वह उतनी ही भयंकर समझी जाती है।

गतियों के आधार पर जीवों का वर्गीकरण

जैन परम्परा में गतियों के आधार पर जीव चार प्रकार के माने गए हैं–(१) देव, (२) मनुष्य, (३) पशु (तिर्यंच) और (४) नारक। जहाँ तक शक्ति और क्षमता का प्रश्न है देव का स्थान मनुष्य से ऊँचा माना गया है। लेकिन जहाँ तक नैतिक साधना की बात है जैन परम्परा मनुष्य-जन्म को ही सर्वश्रेष्ठ मानती है। उसके अनुसार मानव-जीवन ही ऐसा जीवन है जिससे मुक्ति या नैतिक पूर्णता प्राप्त की जा सकती है। जैन परम्परा के अनुसार केवल मनुष्य ही सिद्ध हो सकता है, अन्य कोई नहीं। बौद्ध परम्परा में भी उपर्युक्त चारों जातियाँ स्वीकृत रही हैं लेकिन उनमें देव और मनुष्य दोनों में ही मुक्त होने की क्षमता को मान लिया गया है। बौद्ध परम्परा के अनुसार एक देव बिना मानव जन्म ग्रहण किये देव गति से ही निर्वाण लाभ कर सकता है, जबकि जैन परम्परा के अनुसार केवल मनुष्य ही निर्वाण का अधिकारी है। इस प्रकार जैन परम्परा मानव-जन्म को चरम मूल्यवान बना देती है।

आत्मा की अमरता

आत्मा की अमरता का प्रश्न नैतिकता की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पाश्चात्य विचारक कांट आत्मा की अमरता को नैतिक जीवन की संगत व्याख्या के लिए आवश्यक मानते हैं। भारतीय आचारदर्शनों के प्राचीन युग में आत्मा की अमरता का सिद्धान्त विवाद का विषय रहा है। उस युग में यह प्रश्न आत्मा की नित्यता एवं अनित्यता के रूप में अथवा शाश्वतवाद और उच्छेदवाद के रूप में बहुचर्चित रहा है। वस्तुतः आत्म-अस्तित्व को लेकर दार्शनिकों में इतना विवाद नहीं है, विवाद का विषय है–आत्मा की नित्यता और अनित्यता का। यह विषय तत्त्वज्ञान की अपेक्षा भी नैतिक दर्शन से अधिक सम्बन्धित है। जैन विचारकों ने नैतिक व्यवस्था को प्रमुख मानकर उसके आधार पर ही नित्यता और अनित्यता की समस्या का हल खोजने की कोशिश की। अतः यह देखना भी उपयोगी होगा कि आत्मा को नित्य अथवा अनित्य मानने पर नैतिक दृष्टि से कौन-सी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं।

आत्मा की नित्यानित्यात्मकता

जैन विचारकों ने संसार और मोक्ष की उपपत्ति के लिए न तो नित्य-आत्मवाद को उपयुक्त समझा और न अनित्य-आत्मवाद को। एकान्त नित्यवाद और एकान्त अनित्यवाद दोनों ही सदोष हैं। आचार्य हेमचन्द्र दोनों को नैतिक दर्शन की दृष्टि से अनुपयुक्त बताते हुए लिखते हैं,

यदि आत्मा को एकान्त नित्य मानें तो इसका अर्थ होगा कि आत्मा में अवस्थान्तर अथवा स्थित्यन्तर नहीं होता। यदि इसे मान लिया जाये तो सुख-दुःख, शुभ-अशुभ आदि भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ आत्मा में घटित नहीं होंगी। फिर स्थित्यन्तर या भिन्न-भिन्न परिणामों, शुभाशुभ भावों की शक्यता न होने से पुण्य-पाप की विभिन्न वृत्तियाँ एवं प्रवृत्तियाँ भी सम्भव नहीं होंगी, न बन्धन और मोक्ष की उपपत्ति ही सम्भव होगी। क्योंकि वहाँ एक क्षण के पर्याय ने जो कार्य किया था, उसका फल दूसरे क्षण के पर्याय को मिलेगा, क्योंकि वहाँ उन सतत परिवर्तनशील पर्यायों के मध्य कोई अनुस्यूत एक स्थायी तत्त्व (द्रव्य) नहीं है, अतः यह कहा जा सकेगा कि जिसने किया था उसे फल नहीं मिला और जिसने नहीं किया था उसे मिला, अर्थात् नैतिक कर्म सिद्धान्त की दृष्टि से अकृतागम और कृतप्रणाश का दोष होगा।[१] अतः आत्मा को नित्य मानकर भी सतत परिवर्तनशील (अनित्य) माना जाये तो उसमें शुभाशुभ आदि विभिन्न भावों की स्थिति मानने के साथ ही उसके फलों का भवान्तर में भोग भी सम्भव हो सकेगा। इस प्रकार जैन दर्शन सापेक्ष रूप से आत्मा को नित्य और अनित्य दोनों स्वीकार करता है।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि आत्मा अमूर्त्त होने के कारण नित्य है।[२] भगवती सूत्र में भी जीव को अनादि, अनिधन, अविनाशी, अक्षय, ध्रुव और नित्य कहा गया है।[३] लेकिन इन सब स्थानों पर नित्यता का अर्थ परिणामी नित्यता ही समझना चाहिए। भगवती सूत्र एवं विशेषावश्यक भाष्य में इस बात को स्पष्ट कर दिया गया है। भगवती सूत्र में भगवान महावीर ने गौतम के प्रश्न का उत्तर देते हुए आत्मा को शाश्वत और अशाश्वत दोनों कहा है–

"भगवन् ! जीव शाश्वत है या अशाश्वत ?"

"गौतम ! जीव शाश्वत (नित्य) भी है और अशाश्वत (अनित्य) भी।"

"भगवन् ! यह कैसे कहा गया कि जीव नित्य भी है, अनित्य भी ?"

"गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है, भाव की अपेक्षा से अनित्य।"[४]

आत्मा-द्रव्य (सत्ता) की अपेक्षा से नित्य है अर्थात् आत्मा न तो कभी अनात्म (जड़) से उत्पन्न होती है और न किसी भी अवस्था में अपने चेतना लक्षण को छोड़कर जड़ बनती है। इसी दृष्टि से उसे नित्य कहा जाता है। लेकिन आत्मा की मानसिक अवस्थाएँ परिवर्तित होती रहती हैं, अतः इस अपेक्षा से उसे अनित्य कहा गया है। आधुनिक दर्शन की भाषा में जैन दर्शन के अनुसार तात्त्विक आत्मा नित्य है और अनुभवाधारित आत्मा अनित्य है। जिस प्रकार स्वर्णाभूषण स्वर्ण की दृष्टि से नित्य और आभूषण की दृष्टि से अनित्य है, उसी प्रकार आत्मा आत्म-तत्त्व की दृष्टि से नित्य और विचारों और भावों की दृष्टि से अनित्य है।

जमाली के साथ हुए प्रश्नोत्तर में भगवान महावीर ने अपने इस दृष्टिकोण को स्पष्ट कर दिया है कि वे किस अपेक्षा से जीव को नित्य मानते हैं और किस अपेक्षा से अनित्य। भगवान महावीर कहते हैं–"हे जमाली, जीव शाश्वत है। तीनों कालों में ऐसा कोई समय नहीं है जब यह जीव (आत्मा) नहीं था, नहीं है, अथवा नहीं होगा। इसी अपेक्षा से यह जीवात्मा, नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अक्षय और अव्यय है। हे जमाली, जीव अशाश्वत है, क्योंकि नारक मरकर तिर्यंच होता है, तिर्यंच मरकर मनुष्य होता है, मनुष्य मरकर देव होता है। इस प्रकार इन नानावस्थाओं को प्राप्त करने के कारण उसे अनित्य कहा जाता है।"[५] नैतिक विचारणा की दृष्टि से आत्मा को नित्यानित्य (परिणामी नित्य) मानना ही समुचित है। नैतिकता की धारणा में जो विरोधाभास है, उसका निराकरण केवल परिणामी नित्य आत्मवाद में ही सम्भव है। नैतिकता का विरोधाभास यह है कि जहाँ नैतिकता के आदर्श के रूप में जिस आत्म-तत्त्व की विवक्षा है उसे नित्य, शाश्वत, अपरिवर्तनशील, सदैव समरूप में स्थित, निर्विकार होना चाहिए अन्यथा पुनः बन्धन एवं पतन की सम्भावनाएँ उठ खड़ी होंगी, वहीं दूसरी ओर नैतिकता की व्याख्या के लिए जिस आत्म-तत्त्व की विवक्षा है उसे कर्ता, भोक्ता, वेदक एवं परिवर्तनशील होना चाहिए अन्यथा कर्म और उनके प्रतिफल और साधना की विभिन्न अवस्थाओं की तरतमता की उपपत्ति नहीं होगी। जैन विचारकों ने इस विरोधाभास की समस्या के निराकरण का प्रयास किया है। प्रथमतः उन्होंने एकान्त नित्यात्मवाद और अनित्यात्मवाद के दोषों को स्पष्ट कर उनका निराकरण किया, फिर यह बताया है कि विरोधाभास तो तब होता है जब नित्यता और अनित्यता को एक ही दृष्टि से माना जाय। लेकिन जब विभिन्न दृष्टियों से नित्यता और अनित्यता का कथन किया जाता है, तो उसमें कोई विरोधाभास नहीं रहता है। जैन दर्शन आत्मा को पर्यायार्थिक दृष्टि (व्यवहारनय) की अपेक्षा से अनित्य तथा द्रव्यार्थिक दृष्टि (निश्चयनय) की अपेक्षा से नित्य मानकर अपनी आत्मा सम्बन्धी अवधारणा का प्रतिपादन करता है।

आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म

आत्मा की अमरता के साथ पुनर्जन्म का प्रत्यय जुड़ा हुआ है। भारतीय दर्शनों में चार्वाक को छोड़कर शेष सभी दर्शन पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। जब आत्मा को अमर मान लिया जाता है, तो पुनर्जन्म भी स्वीकार करना ही होगा। गीता कहती है–"जिस प्रकार मनुष्य वस्त्रों के जीर्ण हो जाने पर उनका परित्याग कर नये वस्त्र ग्रहण करता रहता है, वैसे ही आत्मा भी जीर्ण शरीर को छोड़कर नया शरीर ग्रहण करती रहती है।" न केवल गीता में, वरन् बौद्ध दर्शन में भी इसी आशय का प्रतिपादन किया गया है।[६] डॉ. रामानन्द तिवारी पुनर्जन्म के पक्ष में लिखते हैं कि "एक-जन्म के सिद्धान्त के अनुसार चिरन्तन आत्मा और नश्वर शरीर का सम्बन्ध एक-काल विशेष

---

१. वीतरागस्तोत्र, ८/२-३
२. उत्तराध्ययन सूत्र, १४/१९
३. भगवती सूत्र, ९/६/३/८७
४. वही, ७/२/२७३
५. वही, ९/६/३८७; १/४/४२
६. गीता, २/२२; तुलना करें–थेर गाथा, १/३८/६८८

में आरम्भ होकर एक-काल विशेष में ही अन्त हो जाता है, किन्तु चिरन्तन का कालिक सम्बन्ध अन्याय (तर्क विरुद्ध) है और इस (एक-जन्म के) सिद्धान्त से उसका कोई समाधान नहीं है-पुनर्जन्म का सिद्धान्त जीवन की एक न्यायसंगत और नैतिक व्याख्या देना चाहता है। एक-जन्म सिद्धान्त के अनुसार जन्मकाल में भागदेयों के भेद को अकारण एवं संयोगजन्य मानना होगा।"[१]

डॉ. मोहनलाल मेहता कर्म सिद्धान्त के आधार पर पुनर्जन्म के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। उनके शब्दों में-"कर्म सिद्धान्त अनिवार्य रूप से पुनर्जन्म के प्रत्यय से संलग्न है, पूर्ण विकसित पुनर्जन्म सिद्धान्त के अभाव में कर्म सिद्धान्त अर्थशून्य है।"[२] आचारदर्शन के क्षेत्र में यद्यपि पुनर्जन्म सिद्धान्त और कर्म सिद्धान्त एक-दूसरे के अति निकट हैं, फिर भी धार्मिक क्षेत्र में विकसित कुछ आचारदर्शनों ने कर्म सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए भी पुनर्जन्म को स्वीकार नहीं किया है। कट्टर पाश्चात्य निरीश्वरवादी दार्शनिक नित्शे ने कर्म-शक्ति और पुनर्जन्म पर जो विचार व्यक्त किये हैं, वे महत्त्वपूर्ण हैं। वे लिखते हैं-"कर्म-शक्ति के जो हमेशा रूपान्तर हुआ करते हैं, वे मर्यादित हैं तथा काल अनन्त हैं। इसलिए कहना पड़ता है कि जो नामरूप एक बार हो चुके हैं वही फिर आगे यथापूर्व कभी न कभी अवश्य उत्पन्न होते ही हैं।"[३]

ईसाई और इस्लाम आचारदर्शन यह तो मानते हैं कि व्यक्ति अपने नैतिक शुभाशुभ कृत्यों का फल अनिवार्य रूप से प्राप्त करता है और यदि वह अपने कृत्यों के फलों को इस जीवन में पूर्णतया नहीं भोग पाता है तो मरण के बाद उनका फल भोगता है, लेकिन फिर भी वे पुनर्जन्म को स्वीकार नहीं करते हैं। उनकी मान्यता के अनुसार, व्यक्ति को सृष्टि के अन्त में अपने कृत्यों की शुभाशुभता के अनुसार हमेशा के लिए स्वर्ग या किसी निश्चित समय के लिए नरक में भेज दिया जाता है, वहाँ व्यक्ति अपने कृत्यों का फल भोगता रहता है। इस प्रकार वे कर्म सिद्धान्त को मानते हुए भी पुनर्जन्म को स्वीकार नहीं करते हैं।

जो विचारणाएँ कर्म सिद्धान्त को स्वीकार करने पर भी पुनर्जन्म को नहीं मानती हैं, वे इस तथ्य की व्याख्या करने में समर्थ नहीं हो पाती हैं कि वर्तमान जीवन में जो नैसर्गिक वैषम्य है उसका कारण क्या है ? क्यों एक प्राणी सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित कुल में जन्म लेता है अथवा जन्मना ऐन्द्रिक एवं बौद्धिक क्षमता से युक्त होता है और क्यों दूसरा दरिद्र एवं हीन कुल में जन्म लेता है और जन्मना हीनेन्द्रिय एवं बौद्धिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ होता है ? क्यों एक प्राणी को मनुष्य-शरीर मिलता है और दूसरे को पशु-शरीर मिलता है ? यदि इसका कारण ईश्वरेच्छा है तो ईश्वर अन्यायी सिद्ध होता है। दूसरे, व्यक्ति को अपनी अक्षमताओं और उनके कारण उत्पन्न अनैतिक कृत्यों के लिये उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकेगा। खानाबदोश जातियों में जन्म लेने वाला बालक संस्कारवश जो अनैतिक आचरण का मार्ग अपनाता है, उसका उत्तरदायित्व किस पर होगा ? वैयक्तिक विभिन्नताएँ ईश्वरेच्छा का परिणाम नहीं, वरन् व्यक्ति के अपने कृत्यों का परिणाम है। वर्तमान जीवन में जो भी क्षमता एवं अवसरों की सुविधा उसे अनुपलब्ध है और जिनके फलस्वरूप उसे नैतिक विकास का अवसर प्राप्त नहीं होता है उनका कारण भी वह स्वयं ही है और उत्तरदायित्व भी उसी पर है।

नैतिक विकास केवल एक-जन्म की साधना का परिणाम नहीं है, वरन् उसके पीछे जन्म-जन्मान्तर की साधना होती है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त प्राणी को नैतिक विकास हेतु अनन्त अवसर प्रदान करता है। ब्रैडले नैतिक पूर्णता की उपलब्धि को अनन्त प्रक्रिया मानते हैं।[४] यदि नैतिकता आत्मपूर्णता एवं आत्म-साक्षात्कार की दिशा में सतत प्रक्रिया है तो फिर बिना पुनर्जन्म के इस विकास की दिशा में आगे कैसे बढ़ा जा सकता है ? गीता में भी नैतिक पूर्णता की उपलब्धि के लिए अनेक जन्मों की साधना आवश्यक मानी गयी है।[५] डॉ. टाटिया भी लिखते हैं कि "यदि आध्यात्मिक पूर्णता (मुक्ति) एक तथ्य है तो उसके साक्षात्कार के लिए अनेक जन्म आवश्यक हैं।"[६]

साथ ही आत्मा के बन्धन के कारण की व्याख्या के लिए पुनर्जन्म की धारणा को स्वीकार करना होगा, क्योंकि वर्तमान बन्धन की अवस्था का कारण भूतकालीन जीवन में ही खोजा जा सकता है।

जो दर्शन पुनर्जन्म को स्वीकार नहीं करते, वे व्यक्ति के साथ समुचित न्याय नहीं करते। अपराध के लिए दण्ड आवश्यक है, लेकिन इसका अर्थ यह तो नहीं कि विकास या सुधार का अवसर ही समाप्त कर दिया जाये। जैन दर्शन पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करके व्यक्ति को नैतिक विकास के अवसर प्रदान करता है तथा अपने को एक प्रगतिशील दर्शन सिद्ध करता है। पुनर्जन्म की धारणा दण्ड के सुधारवादी सिद्धान्त का समर्थन करती है, जबकि पुनर्जन्म को नहीं मानने वाली नैतिक विचारणाएँ दण्ड के बदला लेने के सिद्धान्त का समर्थन करती हैं, जो कि वर्तमान युग में एक परम्परागत किन्तु अनुचित धारणा है।

पुनर्जन्म के विरुद्ध यह भी तर्क दिया जाता है कि यदि वही आत्मा (चेतना) पुनर्जन्म ग्रहण करती है तो फिर उसे पूर्व-जन्मों की स्मृति क्यों नहीं रहती है। स्मृति के अभाव में पुनर्जन्म को किस आधार पर माना जाये ? लेकिन यह तर्क उचित नहीं है, क्योंकि हम अक्सर देखते हैं कि हमें अपने वर्तमान जीवन की अनेक घटनाओं की भी स्मृति नहीं रहती। यदि हम वर्तमान जीवन के विस्मरित भाग को अस्वीकार नहीं करते हैं तो फिर केवल स्मरण के अभाव में पूर्व-जन्मों को कैसे अस्वीकार कर सकते हैं। वस्तुतः जिस प्रकार हमारे वर्तमान जीवन की अनेक घटनाएँ अचेतन स्तर पर रहती हैं, वैसे ही पूर्व-जन्मों की घटनाएँ भी अचेतन स्तर पर बनी रहती हैं और विशिष्ट अवसरों पर चेतना के स्तर पर भी व्यक्त हो जाती हैं। यह भी तर्क दिया जाता है कि हमें अपने जिन कृत्यों की स्मृति नहीं है, हम क्यों उनके प्रतिफल

---

१. शंकर का आचारदर्शन, पृ. ६८
२. जैन साइकॉलॉजी, पृ. २६८
३. गीता रहस्य, पृ. २६८
४. एथिकल स्टडीज, पृ. ३१३
५. गीता, ६/४५
६. स्टडीज इन जैन फिलॉसॉफी, पृ. २२१

का भोग करें ? लेकिन यह तर्क भी समुचित नहीं है। इससे क्या फर्क पड़ता है कि हमें अपने कर्मों की स्मृति है या नहीं ? यदि हमने उन्हें किया है तो उनका फल भोगना ही होगा। यदि कोई व्यक्ति इतना अधिक मद्यपान कर ले कि नशे में उसे अपने किये हुए मद्यपान की स्मृति भी नहीं रहे, लेकिन इससे क्या वह उसके नशे से बच सकता है ? जो किया है, उसका भोग अनिवार्य है, चाहे उसकी स्मृति हो या न हो।[१]

जैन चिन्तकों ने इसीलिए कर्म सिद्धान्त की स्वीकृति के साथ-साथ आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। जैन विचारणा यह स्वीकार करती है कि प्राणियों में क्षमता एवं अवसरों की सुविधा आदि का जो जन्मना नैसर्गिक वैषम्य है, उसका कारण प्राणी के अपने ही पूर्व-जन्मों के कृत्य हैं। संक्षेप में वंशानुगत एवं नैसर्गिक वैषम्य पूर्व-जन्मों के शुभाशुभ कृत्यों का फल है। यही नहीं, वरन् अनुकूल एवं प्रतिकूल परिवेश की उपलब्धि भी शुभाशुभ कृत्यों का फल है। स्थानांग सूत्र में भूत, वर्तमान और भावी जन्मों में शुभाशुभ कर्मों के फल-सम्बन्ध की दृष्टि से आठ विकल्प माने गये हैं–(१) वर्तमान जन्म के अशुभ कर्म वर्तमान जन्म में ही फल देवें। (२) वर्तमान जन्म के अशुभ कर्म भावी जन्मों में फल देवें। (३) भूतकालीन जन्मों के अशुभ कर्म वर्तमान जन्म में फल देवें। (४) भूतकालीन जन्मों के अशुभ कर्म भावी जन्मों में फल देवें। (५) वर्तमान जन्म के शुभ कर्म वर्तमान जन्म में फल देवें। (६) वर्तमान जन्म के शुभ कर्म भावी जन्मों में फल देवें। (७) भूतकालीन जन्मों के शुभ कर्म वर्तमान जन्म में फल देवें। (८) भूतकालीन जन्मों के शुभ कर्म भावी जन्मों में फल देवें।[२]

इस प्रकार जैन दर्शन में वर्तमान जीवन का सम्बन्ध भूतकालीन एवं भावी जन्मों से माना गया है। जैन दर्शन के अनुसार चार प्रकार की योनियाँ हैं–(१) देव (स्वर्गीय जीवन), (२) मनुष्य, (३) तिर्यंच (वानस्पतिक एवं पशु जीवन) और (४) नारक (नारकीय जीवन)।[३] प्राणी अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार इन योनियों में जन्म लेता है। यदि वह शुभ कर्म करता है तो देव और मनुष्य के रूप में जन्म लेता है और अशुभ कर्म करता है तो पशु गति या नारकीय गति प्राप्त करता है। मनुष्य मरकर पशु भी हो सकता है और देव भी। प्राणी भावी जीवन में क्या होगा यह उसके वर्तमान जीवन के आचरण पर निर्भर करता है।

धर्म द्रव्य

धर्म द्रव्य की इस चर्चा के प्रसंग में सर्वप्रथम हमें यह स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए कि यहाँ 'धर्म' शब्द का अर्थ वह नहीं है जिसे सामान्यतया ग्रहण किया जाता है। यहाँ 'धर्म' शब्द न तो स्वभाव का वाचक है, न कर्तव्य का और न साधना या उपासना के विशेष प्रकार का, अपितु इसे जीव व पुद्गल की गति के सहायक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। जो जीव और पुद्गल की गति के माध्यम का कार्य करता है, उसे धर्म द्रव्य कहा जाता है। जिस प्रकार मछली की गति जल के माध्यम से ही सम्भव होती है अथवा जैसे–विद्युत् धारा उसके चालक द्रव्य तार आदि के माध्यम से ही प्रवाहित होती है, उसी प्रकार जीव और पुद्गल विश्व में प्रसारित धर्म द्रव्य के माध्यम से ही गति करते हैं। लोक में प्रसारित होने के कारण यह धर्म द्रव्य अस्तिकाय वर्ग के अन्तर्गत आता है। इसे लोकव्यापी माना गया है अर्थात् इसका प्रसार क्षेत्र लोक तक सीमित है। अलोक में धर्म द्रव्य का अभाव है। इसीलिए उसमें जीवन और पुद्गल की गति सम्भव नहीं होती और यही कारण है कि उसे अलोक कहा जाता है। अलोक का तात्पर्य हैं कि जिसमें जीव और पुद्गल का अभाव हो। धर्म द्रव्य प्रसरित स्वभाव वाला (अस्तिकाय) होकर भी अमूर्त्त (अरूपी) और अचेतन है। धर्म द्रव्य एक और अखण्ड द्रव्य है। जहाँ जीवात्माएँ अनेक मानी गई हैं वहाँ धर्म द्रव्य एक ही है। लोक तक सीमित होने के कारण इसे अनन्त प्रदेशी न कहकर असंख्य प्रदेशी कहा गया है। जैन दर्शन के अनुसार लोक चाहे कितना ही विस्तृत क्यों न हो वह असीम न होकर ससीम है और ससीम लोक में व्याप्त होने के कारण धर्म द्रव्य को आकाश के समान अनन्त प्रदेशी न मानकर असंख्य प्रदेशी मानना ही उपयुक्त है।

अधर्म द्रव्य

अधर्म द्रव्य भी अस्तिकाय वर्ग के अन्तर्गत आता है। इसका भी विस्तार क्षेत्र या प्रदेश-प्रचयत्व लोकव्यापी है। लोक से बाहर अलोक में इसका अस्तित्व नहीं है। अधर्म द्रव्य का लक्षण या कार्य जीव और पुद्गल की स्थिति में सहायक होना माना गया है। परम्परागत उदाहरण के रूप में यह कहा जाता है कि जिस प्रकार वृक्ष की छाया पथिक के विश्राम में सहायक होती है उसी प्रकार अधर्म द्रव्य जीव और पुद्गल की अवस्थिति में सहायक होता है। जहाँ धर्म द्रव्य गति का माध्यम (चालक) है वहाँ अधर्म द्रव्य गति का कुचालक है अतः उसे स्थिति का माध्यम कहा गया है। यदि अधर्म द्रव्य नहीं होता तो जीव व पुद्गल की गति का नियमन असम्भव हो जाता और वे अनन्त आकाश में बिखर जाते। जिस प्रकार वैज्ञानिक दृष्टि से गुरुत्वाकर्षण आकाश में स्थित पुद्गल पिण्डों को नियंत्रित करता है उसी प्रकार अधर्म द्रव्य भी जीव व पुद्गल की गति का नियमन कर उसे विराम देता है। संख्या की दृष्टि से अधर्म द्रव्य को एक और अखण्ड द्रव्य माना गया है। प्रदेश–प्रचयत्व की दृष्टि से इसका विस्तार क्षेत्र लोक तक सीमित होने के कारण इसे असंख्य प्रदेशी माना जाता है, फिर भी वह एक अखण्ड द्रव्य है क्योंकि उसका विखण्डन सम्भव नहीं है। धर्म और अधर्म द्रव्यों में देश-प्रदेश आदि की कल्पना मात्र वैचारिक स्तर पर ही होती है।

आकाश

आकाश द्रव्य भी अस्तिकाय वर्ग के अन्तर्गत ही आता है किन्तु जहाँ धर्म और अधर्म द्रव्यों का विस्तार क्षेत्र लोकव्यापी है वहाँ आकाश का विस्तार क्षेत्र लोक और अलोक दोनों है। आकाश का लक्षण 'अवगाहन' है। वह जीव और अजीव द्रव्यों को स्थान प्रदान करता है। लोक

---

१. जैन साइकॉलॉजी, पृ. १७५   २. स्थानांग सूत्र, ८/२   ३. तत्त्वार्थ सूत्र, ८/११

को भी अपने में समाहित करने के कारण आकाश का विस्तार क्षेत्र लोक के वाहर भी मानना आवश्यक है। यही कारण है कि जैन आचार्य आकाश के दो विभाग करते हैं–लोकाकाश और अलोकाकाश। विश्व में जो रिक्त स्थान है वह लोकाकाश है और इस विश्व से वाहर जो रिक्त स्थान है वह अलोकाकाश है। इस प्रकार जहाँ धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य असंख्य प्रदेशी माने गए हैं वहाँ आकाश को अनन्त प्रदेशी माना गया है। लोक की कोई सीमा हो सकती है किन्तु अलोक की कोई सीमा नहीं है–वह अनन्त है। चूँकि आकाश लोक और अलोक दोनों में है इसलिए वह अनन्त प्रदेशी है। संख्या की दृष्टि से आकाश को भी एक और अखण्ड द्रव्य माना गया है। उसके देश-प्रदेश आदि की कल्पना भी केवल वैचारिक स्तर तक ही सम्भव है। वस्तुतः आकाश में किसी प्रकार का विभाजन कर पाना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि उसे अखण्ड द्रव्य कहा जाता है। जैन आचार्यों की अवधारणा है कि जिन्हें हम सामान्यतया ठोस पिण्ड समझते हैं उनमें भी आकाश अर्थात् रिक्त स्थान होता है। एक पुद्गल परमाणु में भी दूसरे अनन्त पुद्गल परमाणुओं को अपने में समाविष्ट करने की शक्ति तभी सम्भव हो सकती है जबकि उनमें विपुल मात्रा में रिक्त स्थान या आकाश हो। अतः मूर्त्त द्रव्यों में भी आकाश तो निहित ही रहता है। लकड़ी में जव हम कील ठोंकते हैं तो वह वस्तुतः उसमें निहित रिक्त स्थान में ही समाहित होती है। इसका तात्पर्य है कि उसमें भी आकाश है। परम्परागत उदाहरण के रूप में यह कहा जाता है कि दूध या जल के भरे हुए ग्लास में यदि धीरे-धीरे शक्कर या नमक डाला जाय तो वह उसमें समाविष्ट हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि दूध या जल से भरे हुए ग्लास में भी रिक्त स्थान अर्थात् आकाश था। वैज्ञानिकों ने भी यह मान लिया है कि प्रत्येक परमाणु में पर्याप्त रूप से रिक्त स्थान होता है। अतः आकाश को लोकालोकव्यापी, एक और अखण्ड द्रव्य मानने में कोई बाधा नहीं आती है।

पुद्गल[१]

पुद्गल को भी अस्तिकाय द्रव्य माना गया है। यह मूर्त्त और अचेतन द्रव्य है। पुद्गल का लक्षण शब्द, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि माना जाता है। जैन आचार्यों ने हल्कापन, भारीपन, प्रकाश, अंधकार, छाया, आतप आदि को भी पुद्गल का लक्षण माना है। जहाँ धर्म, अधर्म और आकाश एक द्रव्य माने गये हैं वहाँ पुद्गल अनेक द्रव्य हैं। जैन आचार्यों ने प्रत्येक परमाणु को एक स्वतन्त्र द्रव्य या इकाई माना है। वस्तुतः पुद्गल द्रव्य समस्त दृश्य जगत् का मूलभूत घटक है।

यह दृश्य जगत् पुद्गल द्रव्य के ही विभिन्न संयोगों का विस्तार है। अनेक पुद्गल परमाणु मिलकर स्कंध की रचना करते हैं और इन स्कंधों से ही मिलकर दृश्य जगत् की सभी वस्तुयें निर्मित होती हैं। नवीन स्कंधों के निर्माण और पूर्व निर्मित स्कन्धों के संगठन और विघटन की प्रक्रिया के माध्यम से ही दृश्य जगत् में परिवर्तन घटित होते हैं और विभिन्न वस्तुएँ और पदार्थ अस्तित्व में आते हैं।

जैन आचार्यों ने पुद्गल को स्कंध और परमाणु इन दो रूपों में विवेचित किया है। विभिन्न परमाणुओं के संयोग से ही स्कंध वनते हैं। फिर भी इतना स्पष्ट है कि पुद्गल द्रव्य का अंतिम घटक तो परमाणु ही है। प्रत्येक परमाणु में स्वभाव से एक रस, एक रूप, एक गंध और शीत-उष्ण या स्निग्ध-रुक्ष में से कोई दो स्पर्श पाये जाते हैं।

जैन आगमों में वर्ण पाँच माने गये हैं–लाल, पीला, नीला, सफेद और काला; गंध दो हैं–सुगन्ध और दुर्गन्ध; रस पाँच हैं–तिक्त, कटु, कसैला, खट्टा और मीठा और इसी प्रकार स्पर्श आठ माने गये हैं–शीत और उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष, मृदु और कर्कश तथा हल्का और भारी। ज्ञातव्य है कि परमाणुओं में मृदु, कर्कश, हल्का और भारी चार स्पर्श नहीं होते हैं। ये चार स्पर्श तभी संभव होते हैं जव परमाणुओं से स्कंधों की रचना होती है और तभी उनमें मृदु, कठोर, हल्के और भारी गुण भी प्रकट हो जाते हैं। परमाणु एक प्रदेशी होता है जवकि स्कंध में दो या दो से अधिक असंख्य प्रदेश भी हो सकते हैं। स्कंध, स्कंध-देश, स्कंध-प्रदेश और परमाणु ये चार पुद्गल द्रव्य के विभाग हैं। इनमें परमाणु निरवयव है। आगम में उसे आदि, मध्य और अन्त से रहित बताया गया है जवकि स्कंध में आदि और अन्त होते हैं। न केवल भौतिक वस्तुएँ अपितु शरीर, इन्द्रियाँ और मन भी स्कंधों का ही खेल है।

स्कंधों के प्रकार

जैन दर्शन में स्कंध के निम्न ६ प्रकार माने गये हैं–

१. **स्थूल-स्थूल**–इस वर्ग के अन्तर्गत विश्व के समस्त ठोस पदार्थ आते हैं। इस वर्ग के स्कंधों की विशेषता यह है कि वे छिन्न-भिन्न होने पर मिलने में असमर्थ होते हैं, जैसे–पत्थर।

२. **स्थूल**–जो स्कंध छिन्न-भिन्न होने पर स्वयं आपस में मिल जाते हैं वे स्थूल स्कंध कहे जाते हैं। इसके अन्तर्गत विश्व के तरल द्रव्य आते हैं, जैसे–पानी, तेल आदि।

३. **स्थूल-सूक्ष्म**–जो पुद्गल स्कंध छिन्न-भिन्न नहीं किये जा सकते हों अथवा जिनका ग्रहण या लाना-ले जाना संभव नहीं हो किन्तु जो चक्षु इन्द्रिय के अनुभूति के विषय हों वे स्थूल-सूक्ष्म या बादर-सूक्ष्म कहे जाते हैं, जैसे–प्रकाश, छाया, अन्धकार आदि।

४. **सूक्ष्म-स्थूल**–जो विषय दिखाई नहीं देते हैं किन्तु हमारी ऐन्द्रिक अनुभूति के विषय बनते हैं, जैसे–सुगन्ध, शब्द आदि। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से विद्युत् धारा का प्रवाह और अदृश्य किन्तु अनुभूत गैस भी इस वर्ग के अन्तर्गत आती है। जैन आचार्यों ने ध्वनि तरंग

---

१. पुद्गल द्रव्य की विस्तृत विवेचना हेतु देखें–
Concept of Matter in Jain Philosophy—Dr. J. C. Sikadar, P. V. Research Institute, Varanasi

आदि को भी इसी वर्ग के अन्तर्गत माना है। वर्तमान युग में इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों द्वारा जो चित्र आदि का सम्प्रेषण किया जाता है उसे भी हम इसी वर्ग के अन्तर्गत रख सकते हैं।

५. सूक्ष्म–जो स्कंध या पुद्गल इन्द्रिय के माध्यम से ग्रहण नहीं किये जा सकते हों वे इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। जैनाचार्यों के कर्मवर्गणा, मनोवर्गणा जो-जो जीवों के बंधन का कारण है, को इसी वर्ग में माना है।

६. अति सूक्ष्म–द्वयणुक आदि अत्यन्त छोटे-स्कंध अति सूक्ष्म माने गये हैं।

स्कंध के निर्माण की प्रक्रिया

स्कंध की रचना दो प्रकार से होती है–एक ओर बड़े-बड़े स्कंधों के टूटने से छोटे-छोटे स्कंधों के संयोग से नवीन स्कंध बनते हैं तो दूसरी ओर परमाणुओं में निहित स्वाभाविक स्निग्धता और रुक्षता के कारण परस्पर बंध होता है, जिससे स्कंधों की रचना होती है। इसलिए यह कहा गया है कि संघात और भेद से स्कंध की रचना होती है। संघात का तात्पर्य एकत्रित होना और भेद का तात्पर्य टूटना है। किस प्रकार के परमाणुओं के परस्पर मिलने से स्कंध आदि की रचना होती है, इस प्रश्न पर जैनाचार्यों ने विस्तृत चर्चा की है किन्तु विस्तारभय से उसे यहाँ वर्णित करना संभव नहीं है। इस हेतु इच्छुक पाठक तत्त्वार्थ सूत्र के पाँचवें अध्याय की टीकाओं का अवलोकन करें।

जैनाचार्यों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने अंधकार, प्रकाश, छाया, शब्द, गर्मी आदि को पुद्गल द्रव्य का ही पर्याय माना है। इस दृष्टि से जैन दर्शन का पुद्गल विचार आधुनिक विज्ञान के बहुत अधिक निकट है।

जैन धर्म की ही ऐसी अनेक मान्यतायें हैं, जो कुछ वर्षों तक अवैज्ञानिक व पूर्णतः काल्पनिक लगती थीं, किन्तु आज विज्ञान से प्रमाणित हो रही हैं। उदाहरण के रूप में–प्रकाश, अन्धकार, ताप, छाया और शब्द आदि पौद्गलिक हैं। जैन आगमों की इस मान्यता पर कोई विश्वास नहीं करता था, किन्तु आज उनकी पौद्गलिकता सिद्ध हो चुकी है। जैन आगमों का यह कथन है कि शब्द न केवल पौद्गलिक है, अपितु वह ध्वनि रूप में उच्चरित होकर लोकान्त तक की यात्रा करता है, इस तथ्य को कल तक कोई भी स्वीकार नहीं करता था, किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक खोजों ने अब इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक ध्वनि उच्चरित होने के बाद अपनी यात्रा प्रारम्भ कर देती है और उसकी यह यात्रा, चाहे अत्यन्त क्षीण रूप में ही क्यों न हो, लोकान्त तक होती है। जैनों की केवलज्ञान सम्बन्धी यह अवधारणा कि केवली या सर्वज्ञ समस्त लोक के पदार्थों को हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष रूप से जानता है अथवा अवधिज्ञान सम्बन्धी यह अवधारणा है कि अवधिज्ञानी चर्म-चक्षु के द्वारा गृहीत नहीं हो रहे दूरस्थ विषयों का सीधा प्रत्यक्षीकरण कर लेता है–कुछ वर्षों पूर्व तक यह सब कपोलकल्पना ही लगती थी, किन्तु आज जब टेलीविजन का आविष्कार हो चुका है अब यह बात बहुत आश्चर्यजनक नहीं रही है। जिस प्रकार से ध्वनि की यात्रा होती है उसी प्रकार से प्रत्येक भौतिक पिण्ड से प्रकाश-किरणें परावर्तित होती हैं और वे भी ध्वनि के समान ही लोक में अपनी यात्रा करती हैं तथा प्रत्येक वस्तु या घटना का चित्र विश्व में संप्रेषित कर देती हैं। आज यदि मानव मस्तिष्क में टेलीविजन सेट की ही तरह चित्रों को ग्रहण करने का सामर्थ्य विकसित हो जाये, तो दूरस्थ पदार्थों एवं घटनाओं के हस्तामलकवत् ज्ञान में कोई बाधा नहीं रहेगी, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ से प्रकाश व छाया के रूप में जो किरणें परावर्तित हो रही हैं, वे तो हम सबके पास पहुँच ही रही हैं। आज यदि हमारे चैतन्य मस्तिष्क की ग्रहण शक्ति विकसित हो जाय तो दूरस्थ विषयों का ज्ञान असम्भव नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन धार्मिक कहे जाने वाले साहित्य में भी बहुत कुछ ऐसा है, जो या तो आज विज्ञान सम्मत सिद्ध हो चुका है अथवा जिसके विज्ञान सम्मत सिद्ध होने की सम्भावना अभी पूर्णतः निरस्त नहीं हुई है।

अनेक आगम वचन या सूत्र ऐसे हैं, जो कल तक अवैज्ञानिक प्रतीत होते थे, वे आज वैज्ञानिक सिद्ध हो रहे हैं। मात्र इतना ही नहीं, इन सूत्रों का वैज्ञानिक ज्ञान उनके प्रकाश में है जो व्याख्या की गयी, वह अधिक समीचीन प्रतीत होती है। उदाहरण के रूप में परमाणुओं के पारस्परिक वन्धन से स्कन्ध के निर्माण की प्रक्रिया को समझाने हेतु तत्त्वार्थ सूत्र के पाँचवें अध्याय का एक सूत्र आता है–**स्निग्धरुक्षत्वात् वन्धः।** इसमें स्निग्ध और रुक्ष परमाणुओं के एक-दूसरे से जुड़कर स्कन्ध बनाने की बात कही गयी है। सामान्य रूप से इसकी व्याख्या यह कहकर ही की जाती थी कि स्निग्ध (चिकने) एवं रुक्ष (खुरदुरे) परमाणुओं में बन्ध होता है, किन्तु आज जब हम इस सूत्र की वैज्ञानिक व्याख्या करते हैं कि स्निग्ध अर्थात् धनात्मक विद्युत् से आवेशित एवं रुक्ष अर्थात् ऋणात्मक विद्युत् से आवेशित सूक्ष्म-कण जैन दर्शन की भाषा में परमाणु परस्पर मिलकर स्कन्ध (Molecule) का निर्माण करते हों तो तत्त्वार्थ सूत्र का यह सूत्र अधिक विज्ञान सम्मत प्रतीत होता है।

जहाँ तक भौतिक तत्त्व के अस्तित्व एवं स्वरूप का प्रश्न है वैज्ञानिकों एवं जैन आचार्यों में अधिक मतभेद नहीं है। परमाणु या पुद्गल कणों में जिस अनन्त शक्ति का निर्देश जैन आचार्यों ने किया था वह अव आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषणों से सिद्ध हो रहा है। आधुनिक वैज्ञानिक इस तथ्य को सिद्ध कर चुके हैं कि एक परमाणु का विस्फोट भी कितनी अधिक शक्ति का सृजन कर सकता है। वैसे भी भौतिक पिण्ड या पुद्गल की अवधारणा ऐसी है जिस पर वैज्ञानिकों एवं जैन विचारकों में कोई अधिक मतभेद नहीं देखा जाता। परमाणुओं के द्वारा स्कन्ध (Molecule) की रचना का जैन सिद्धान्त कितना वैज्ञानिक है, इसकी चर्चा हम पूर्व में कर चुके हैं। विज्ञान जिसे परमाणु कहता था, वह अव टूट चुका है। वास्तविकता तो यह है कि विज्ञान ने जिसे परमाणु मान लिया था, वह परमाणु था ही नहीं, वह तो स्कन्ध ही था। क्योंकि जैनों की परमाणु की परिभाषा यह है कि जिसका विभाजन नहीं हो सके, ऐसा भौतिक तत्त्व परमाणु है। इस प्रकार आज हम देखते हैं कि विज्ञान का तथाकथित परमाणु खण्डित हो चुका है, जवकि जैन दर्शन का परमाणु अभी वैज्ञानिकों की पकड़ में आ ही नहीं पाया है। वस्तुतः जैन दर्शन में जिसे परमाणु कहा जाता है उसे आधुनिक वैज्ञानिकों ने क्वार्क नाम दिया है और वे आज भी उसकी खोज में लगे हुए

हैं। समकालीन भौतिकीविदों की क्वार्क की परिभाषा यह है कि जो विश्व का सरलतम और अन्तिम घटक है, वही क्वार्क है। आज भी क्वार्क को व्याख्यायित करने में वैज्ञानिक सफल नहीं हो पाये हैं।

आधुनिक विज्ञान प्राचीन अवधारणाओं को सम्पुष्ट करने में किस प्रकार सहायक हुआ है कि उसका एक उदाहरण यह है कि जैन तत्त्व-मीमांसा में एक ओर यह अवधारणा रही है कि एक पुद्गल परमाणु जितनी जगह घेरता है–वह एक आकाश प्रदेश कहलाता है। दूसरे शब्दों में मान्यता यह है कि एक आकाश प्रदेश में एक परमाणु ही रह सकता है, किन्तु दूसरी ओर आगमों में यह भी उल्लेख है कि एक आकाश प्रदेश में असंख्यात पुद्गल परमाणु समा सकते हैं। इस विरोधाभास का सीधा समाधान हमारे पास नहीं था। लेकिन विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि विश्व में कुछ ऐसे ठोस द्रव्य हैं जिनका एक वर्ग इंच का वजन लगभग ८ सौ टन होता है। इससे यह भी फलित होता है कि जिन्हें हम ठोस समझते हैं, वे वस्तुतः कितने पोले हैं। अतः सूक्ष्म अवगाहन शक्ति के कारण यह संभव है कि एक ही आकाश प्रदेश में अनन्त परमाणु भी समाहित हो जायें।[१]

काल

काल द्रव्य को अनस्तिकाय वर्ग के अन्तर्गत माना गया है। जैसा कि हम पूर्व में सूचित कर चुके हैं–आगमिक युग तक जैन परम्परा में काल को स्वतंत्र द्रव्य मानने के सन्दर्भ में पर्याप्त मतभेद था। आवश्यकचूर्णि (भाग-१, पृ. ३४०-३४१) में काल के स्वरूप के सम्बन्ध में निम्न तीन मतों का उल्लेख हुआ है–(१) कुछ विचारक काल को स्वतन्त्र द्रव्य न मानकर पर्याय रूप मानते हैं। (२) कुछ विचारक उसे गुण मानते हैं। (३) कुछ विचारक उसे स्वतन्त्र द्रव्य मानते हैं। श्वेताम्बर परम्परा में सातवीं शती तक काल के सम्बन्ध में उक्त तीनों विचारधाराएँ प्रचलित रहीं और श्वेताम्बर आचार्य अपनी-अपनी मान्यतानुसार उनमें से किसी एक का पोषण करते रहे, जबकि दिगम्बर आचार्यों ने एक मत से काल को स्वतन्त्र द्रव्य माना। जो विचारक काल को स्वतन्त्र द्रव्य नहीं मानते थे उनका तर्क यह था कि यदि धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और जीव द्रव्य अपनी-अपनी पर्यायों (विभिन्न अवस्थाओं) में स्वतः ही परिवर्तित होते रहते हैं तो फिर काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानने की क्या आवश्यकता है? आगम में भी जब भगवान महावीर से यह पूछा गया कि काल क्या है? तो इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था कि काल जीव-अजीवमय है अर्थात् जीव और अजीव की पर्यायें ही काल हैं।[२] विशेषावश्यक भाष्य में कहा गया है कि वर्तना अर्थात् परिणमन या परिवर्तन से भिन्न कोई काल द्रव्य नहीं है। इस प्रकार जीव और अजीव की परिवर्तनशील पर्याय को ही काल कहा गया है। कहीं-कहीं काल को पर्याय द्रव्य कहा गया है। इन सब विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि काल कोई स्वतन्त्र द्रव्य नहीं है। चूँकि आगम में जीव-काल और अजीव-काल ऐसे काल के दो वर्गों के उल्लेख मिलते हैं अतः कुछ जैन विचारकों ने यह माना कि जीव और अजीव द्रव्यों की पर्यायों से पृथक् काल द्रव्य का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। प्राचीन स्तर के आगमों में सर्वप्रथम उत्तराध्ययन सूत्र में काल का स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में उल्लेख पाया जाता है। जैसा कि हम पूर्व में संकेत कर चुके हैं कि न केवल उमास्वाति के युग तक अर्थात् ईसा की तृतीय-चतुर्थ शताब्दी तक अपितु चूर्णिकाल अर्थात् ईसा की सातवीं शती तक काल स्वतन्त्र द्रव्य है या नहीं–इस प्रश्न पर जैन दार्शनिकों में मतभेद था। इसीलिए तत्त्वार्थ सूत्र के भाष्यमान पाठ में उमास्वाति को यह उल्लेख करना पड़ा कि कुछ विचारक काल को भी द्रव्य मानते हैं (कालश्चेत्येक २५/३८)। इसका फलितार्थ यह भी है कि उस युग में कुछ जैन दार्शनिक काल को स्वतन्त्र द्रव्य नहीं मानते थे। इनके अनुसार सर्व द्रव्यों की जो पर्यायें हैं, वे ही काल हैं। इस मान्यता के विरोध में दूसरे पक्ष के द्वारा यह कहा गया कि अन्य द्रव्यों की पर्यायों से पृथक् काल स्वतन्त्र द्रव्य है क्योंकि किसी भी पदार्थ में बाह्य निमित्त अर्थात् अन्य द्रव्य के उपकार के बिना स्वतः ही परिणमन सम्भव नहीं होता है।[३] जैसे ज्ञान आत्मा का स्वलक्षण है, किन्तु ज्ञानरूप पर्यायें तो अपने ज्ञेय विषय पर ही निर्भर करती हैं। आत्मा को ज्ञान तभी हो सकता है जब ज्ञान के विषय अर्थात् ज्ञेय वस्तु तत्त्व की स्वतन्त्र सत्ता हो। अतः अन्य सभी द्रव्यों के परिणमन के लिए किसी बाह्य निमित्त को मानना आवश्यक है। जिस प्रकार गति को जीव और पुद्गल का स्वलक्षण मानते हुए भी गति के बाह्य निमित्त के रूप में धर्म द्रव्य की स्वतन्त्र सत्ता मानना आवश्यक है, उसी प्रकार चाहे सभी द्रव्यों में पर्याय परिवर्तन की क्षमता स्वतः हो, किन्तु उनके निमित्त कारण के रूप में काल द्रव्य को स्वतन्त्र द्रव्य मानना आवश्यक है। यदि काल को स्वतन्त्र द्रव्य नहीं माना जायेगा तो पदार्थों के परिणमन (पर्याय परिवर्तन) का कोई निमित्त कारण नहीं होगा। परिणमन के निमित्त कारण के अभाव में पर्यायों का अभाव होगा और पर्यायों के अभाव में द्रव्य का भी अभाव हो जायेगा क्योंकि द्रव्य का अस्तित्व भी पर्यायों से पृथक् नहीं है। इस प्रकार सर्वशून्यता का प्रसंग आ जायेगा। अतः पर्याय परिवर्तन (परिणमन) के निमित्त कारण के रूप में काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानना ही होगा। काल को स्वतन्त्र तत्त्व मानने वाले दार्शनिकों के इस तर्क के विरोध में यह प्रश्न उठाया गया कि यदि अन्य द्रव्यों के परिणमन (पर्याय परिवर्तन) के हेतु के रूप में काल नामक स्वतन्त्र द्रव्य का मानना आवश्यक है तो फिर अलोकाकाश में होने वाले पर्याय परिवर्तन का हेतु (निमित्त कारण) क्या है? क्योंकि अलोकाकाश में तो आगम में काल द्रव्य का अभाव माना गया है। यदि उसमें काल द्रव्य के अभाव में पर्याय परिवर्तन सम्भव है, तो फिर लोकाकाश में भी अन्य द्रव्यों के

१. जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान के सम्बन्धों की विस्तृत विवेचना के लिए देखें–

(अ) श्रमण, अक्टूबर-दिसम्बर, १९९२, पृ. १-१२

(ब) Cosmology : Old and New by G. R. Jain

२. उद्धृत Jain Conceptions of Space and Time by Nagin J. Shah, p. 374, Ref. No. 6, Studies in Jainism, Deptt. of Philosophy, University of Poona, 1994

३. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग-२, पृ. ८५-८७

पर्याय परिवर्तन हेतु काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानना आवश्यक नहीं है। पुनः अलोकाकाश में काल के अभाव में यदि पर्याय परिवर्तन नहीं मानोगे तो फिर पर्याय परिवर्तन के अभाव में आकाश द्रव्य में द्रव्य का सामान्य लक्षण 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य' सिद्ध नहीं हो सकेगा और यदि अलोकाकाश में पर्याय परिवर्तन माना जाता है तो उस पर्याय परिवर्तन का निमित्त काल तो नहीं हो सकता क्योंकि उसका वहाँ अभाव है। इस तर्क के प्रत्युत्तर में काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानने वाले आचार्यों का प्रत्युत्तर यह है कि आकाश एक अखण्ड द्रव्य है उसमें अलोकाकाश एवं लोकाकाश ऐसे जो दो भेद किए जाते हैं वे मात्र औपचारिक हैं। लोकाकाश में काल द्रव्य के निमित्त से होने वाला पर्याय परिवर्तन सम्पूर्ण आकाश द्रव्य का ही पर्याय परिवर्तन है। अलोकाकाश और लोकाकाश दोनों आकाश द्रव्य के ही अंश हैं, वे एक-दूसरे से पृथक् नहीं हैं। किसी भी द्रव्य के एक अंश में होने वाला परिवर्तन सम्पूर्ण द्रव्य का परिवर्तन माना जाता है, अतः लोकाकाश में जो पर्याय परिवर्तन होता है वह अलोकाकाश पर भी घटित होता है और लोकाकाश में पर्याय परिवर्तन काल द्रव्य के निमित्त से होता है। अतः लोकाकाश और अलोकाकाश दोनों के पर्याय परिवर्तन का निमित्त काल द्रव्य ही है। ज्ञातव्य है कि लगभग सातवीं शताब्दी से काल का स्वतन्त्र द्रव्य होना सर्वमान्य हो गया।

जैन दार्शनिकों ने काल को अचेतन, अमूर्त (अरूपी) तथा अनस्तिकाय द्रव्य कहा है। इसका कार्य या लक्षण वर्तना माना गया है। विभिन्न द्रव्यों में जो पर्याय परिवर्तन होता है उसका निमित्त कारण काल द्रव्य होता है यद्यपि उस पर्याय परिणमन का उपादान कारण तो स्वयं वह द्रव्य ही होता है, जिस प्रकार धर्म-द्रव्य जीव, पुद्गल आदि की स्वतः प्रसूत गति का निमित्त कारण है या जिस प्रकार बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था प्राणी की अपनी शारीरिक संरचना के परिणामस्वरूप ही घटित होती है फिर भी उनमें निमित्त कारण के रूप में काल भी अपना कार्य करता है। जैनाचार्यों ने स्वभाव, नियति, पुरुषार्थ, काल आदि जिस पंचक कारण की चर्चा की है उनमें काल को भी एक महत्त्वपूर्ण घटक माना गया है। जैन दार्शनिक साहित्य में काल द्रव्य की चर्चा अनेक प्रकार से की गई है। सर्वप्रथम व्यवहारकाल और निश्चयकाल ऐसे काल के दो विभाग किये गये हैं। निश्चयकाल अन्य द्रव्यों की पर्यायों के परिवर्तन का निमित्त कारण है। दूसरे शब्दों में सभी द्रव्यों की वर्तना या परिणमन की शक्ति ही द्रव्य काल या निश्चय काल है। व्यवहार काल को समय, आवलिका, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर आदि रूप कहा गया है। संसार में भूत, भविष्य और वर्तमान सम्बन्धी जो काल व्यवहार है वह भी इसी से होता है। जैन परम्परा में *व्यवहार काल का आधार सूर्य की गति ही मानी गई है, साथ ही यह भी माना गया है कि यह व्यवहार काल मनुष्य क्षेत्र तक ही सीमित है।* देवलोक आदि में इसका व्यवहार मनुष्य क्षेत्र की अपेक्षा से ही है। मनुष्य क्षेत्र में ही समय, आवलिका, घटिका, प्रहर, रात-दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी आदि का व्यवहार होता है। व्यक्तियों में बालक, युवा और वृद्ध अथवा नूतन, जीर्ण आदि का जो व्यवहार देखा जाता है वह सब भी काल के ही कारण हैं। वासना काल, शिक्षा काल, दीक्षा काल आदि की अपेक्षा से भी काल के अनेक भेद किये जाते हैं, किन्तु विस्तार भय से उन सबकी चर्चा यहाँ अपेक्षित नहीं है। इसी प्रकार कर्म सिद्धान्त के सन्दर्भ में प्रत्येक कर्म प्रकृति के सत्ता काल आदि की भी चर्चा जैनागमों में मिलती है।

संख्या की दृष्टि से अधिकांश जैन आचार्यों ने काल द्रव्य को एक नहीं, अपितु अनेक माना है। उनका कहना है कि धर्म, अधर्म, आकाश की तरह काल एक और अखण्ड द्रव्य नहीं हो सकता। काल द्रव्य अनेक हैं क्योंकि एक ही समय में विभिन्न व्यक्तियों में अथवा द्रव्यों में जो विभिन्न पर्यायों की उत्पत्ति होती है, उन सबकी उत्पत्ति का निमित्त कारण एक ही काल नहीं हो सकता। अतः काल द्रव्य को अनेक या असंख्यात द्रव्य मानना होगा। पुनः प्रत्येक पदार्थ की भूत, भविष्य की अपेक्षा से अनन्त पर्यायें होती हैं और उन अनन्त पर्यायों के निमित्त अनन्त कालाणु होंगे, अतः कालाणु अनन्त माने गये हैं। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि काल द्रव्य को असंख्य कहा गया किन्तु कालाणु अनन्त माने गये ऐसा क्यों? इसका उत्तर यह है कि काल द्रव्य लोकाकाश तक सीमित है और उसकी इस सीमितता की अपेक्षा से उसे अनन्त द्रव्य न कहकर असंख्यात द्रव्य कहा गया। किन्तु जीव अनन्त हैं और उन अनन्त जीवों की भूत, भविष्य की अनन्त पर्यायें होती हैं उन अनन्त पर्यायों में प्रत्येक का निमित्त एक कालाणु होता है अतः कालाणु अनन्त माने गये। सामान्य अवधारणा यह है कि प्रत्येक आत्म-प्रदेश, पुद्गल परमाणु और आकाश प्रदेश पर रत्नों की राशि के समान कालाणु स्थित रहते हैं—अतः कालाणु अनन्त हैं। राजवार्तिक आदि दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों में कालाणुओं को अन्योन्य प्रवेश से रहित पृथक्-पृथक् असंचित दशा में लोकाकाश में स्थित माना गया है।

किन्तु कुछ श्वेताम्बर आचार्यों ने इस मत का विरोध करते हुए यह भी माना है कि काल द्रव्य एक एवं लोकव्यापी है वह अणुरूप नहीं है।[१] किन्तु ऐसी स्थिति में काल में भी प्रदेश-प्रचयत्व मानना होगा और प्रदेश-प्रचयत्व मानने पर वह भी अस्तिकाय वर्ग के अन्तर्गत आ जायेगा। इसके उत्तर में यह कहा गया कि तिर्यक्-प्रचयत्व का अभाव होने से काल अनस्तिकाय है। ऊर्ध्व-प्रचयत्व एवं तिर्यक्-प्रचयत्व की चर्चा हम पूर्व में अस्तिकाय की चर्चा के अन्तर्गत कर चुके हैं।

सूक्ष्मता की अपेक्षा से कालाणुओं की अपेक्षा आकाश प्रदेश और आकाश प्रदेश की अपेक्षा पुद्गल परमाणु अधिक सूक्ष्म माने गये हैं। क्योंकि एक ही आकाश प्रदेश में अनन्त पुद्गल परमाणु समाहित हो सकते हैं। अतः वे सबसे सूक्ष्म हैं। इस प्रकार परमाणु की अपेक्षा आकाश प्रदेश और आकाश प्रदेश की अपेक्षा कालाणु स्थूल हैं।

संक्षेप में काल द्रव्य में वर्तना हेतुत्व के साथ-साथ अचेतनत्व, अमूर्त्तत्व, सूक्ष्मत्व आदि सामान्य गुण भी माने गये हैं। इसी प्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य लक्षण जो अन्य द्रव्य में हैं, वे भी काल द्रव्य में पाये जाते हैं। काल द्रव्य में यदि उत्पाद, व्यय लक्षण नहीं रहे तो वह

---

१. Studies in Jainism, Edt. M. P. Marathe, p. 69

अपरिवर्तनशील द्रव्य होगा और जो स्वतः अपरिवर्तनशील हो वह दूसरों के परिवर्तन में निमित्त नहीं हो सकेगा। किन्तु काल द्रव्य का विशिष्ट लक्षण तो उसका वर्तना नामक गुण ही है जिसके माध्यम से वह अन्य सभी द्रव्यों में पर्याय परिवर्तन में निमित्त कारण बनकर कार्य करता है। पुनः यदि काल द्रव्य में ध्रौव्यत्व का अभाव मानेंगे तो उसका द्रव्यत्व समाप्त हो जायेगा। अतः उसे स्वतन्त्र द्रव्य मानने पर उसमें उत्पाद-व्यय के साथ-साथ ध्रौव्यत्व भी मानना होगा।

कालचक्र[1]–अर्ध-मागधी आगम साहित्य में काल की चर्चा उत्सर्पिणी काल और अवसर्पिणी काल के रूप में भी उपलब्ध होती है। इनमें प्रत्येक के छह-छह विभाग किये जाते हैं, जिन्हें आरे कहा जाता है। ये छह आरे निम्न हैं–१. सुषमा-सुषमा, २. सुषमा, ३. सुषमा-दुषमा, ४. दुषमा-सुषमा, ५. दुषमा और ६. दुषमा-दुषमा। उत्सर्पिणी काल में इनका क्रम विपरीत होता है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल मिलकर एक कालचक्र पूरा होता है। जैनों की कालचक्र की यह कल्पना बौद्ध और हिन्दू कालचक्र की कल्पना से भिन्न है। किन्तु इन सभी में इस बात को लेकर समानता है कि इन सभी कालचक्र के विभाजन का आधार सुख-दुःख एवं मनुष्य के नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास की क्षमता को बनाया है।

जैनों के अनुसार उत्सर्पिणी काल में क्रमशः विकास और अवसर्पिणी काल में क्रमशः पतन होता है। ज्ञातव्य है कि कालचक्र का प्रवर्तन जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र आदि कुछ विभागों में ही होता है।

आत्मा एवं पुद्‌गल का सम्बन्ध

इस प्रकार पाँच अस्तिकाय द्रव्यों एवं एक अनस्तिकाय द्रव्य का विवेचन करने के पश्चात् संसार एवं मोक्ष को समझने के लिए आत्मा एवं पुद्‌गल द्रव्य के पारस्परिक सम्बन्ध को समझना आवश्यक है, आत्मा एवं पुद्‌गल का परस्पर विचित्र सम्बन्ध है।

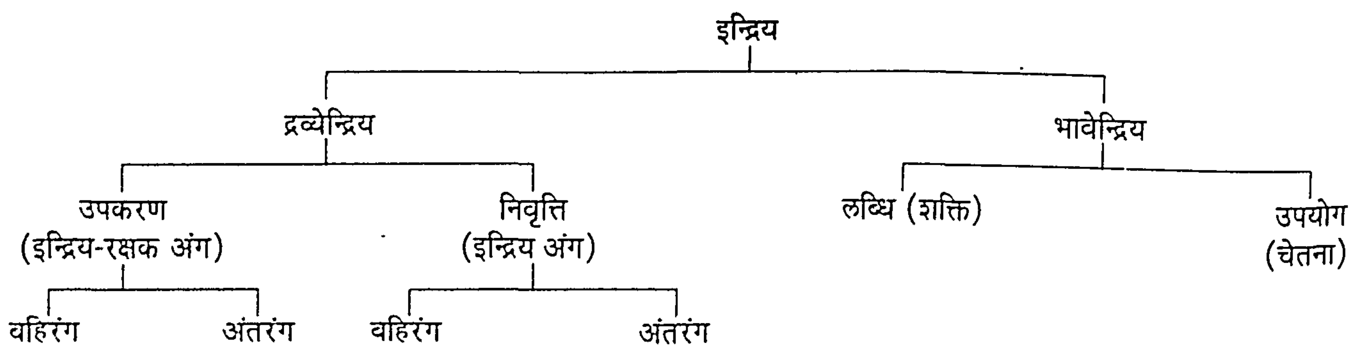
इनके सम्बन्ध से ही शरीर, इन्द्रिय, मन आदि प्राप्त होते हैं। इनके सम्बन्ध से ही जीव एक गति से दूसरी गति में गमन करता है। इनका यह सम्बन्ध लेश्या, कषाय एवं कर्म-बन्ध के रूप में भी व्यक्त होता है। द्रव्यानुयोग में वर्णित विविध विषय-वस्तु में से यहाँ पर इन्द्रिय, कषाय-सिद्धान्त, लेश्या-सिद्धान्त एवं कर्म-सिद्धान्त पर विशेष विचार किया जा रहा है।

इन्द्रिय

'इन्द्रिय' शब्द का अर्थ–'इन्द्रिय' शब्द के अर्थ की विशद विवेचना न करते हुए यहाँ हम केवल यही कहेंगे कि जिन-जिन साधनों की सहायता से जीवात्मा विषयों की ओर अभिमुख होता है अथवा विषयों के उपभोग में समर्थ होता है, वे इन्द्रियाँ हैं।[2] इस अर्थ को लेकर जैन बौद्ध और गीता की विचारणा में कहीं कोई विवाद नहीं पाया जाता।[3]

इन्द्रियों की संख्या–जैन दर्शन में इन्द्रियाँ पाँच मानी गयी हैं–(१) श्रोत्र, (२) चक्षु, (३) घ्राण, (४) रसना और (५) स्पर्शन (त्वचा)। जैन दर्शन में मन को नोइन्द्रिय (Quasi Sense Organ) कहा गया है। जैन दर्शन में कर्मेन्द्रियों का विचार उपलब्ध नहीं है, फिर भी पाँच कर्मेन्द्रियाँ उसके १० बल की धारणा में से वाक् बल, शरीर बल एवं श्वासोच्छ्‌वास बल में समाविष्ट हो जाती हैं।

इन्द्रिय-स्वरूप–जैन दर्शन में उक्त पाँचों इन्द्रियाँ दो प्रकार की हैं–(१) द्रव्येन्द्रिय, (२) भावेन्द्रिय। इन्द्रियों का बाह्य संरचनात्मक पक्ष (Structural Aspect) द्रव्येन्द्रिय है और उनका आन्तरिक क्रियात्मक पक्ष (Functional Aspect) भावेन्द्रिय है। इनमें से प्रत्येक के पुनः उपविभाग किये गये हैं, जैसा कि निम्न सारणी से स्पष्ट है–



इन्द्रियों के विषय–(१) श्रोत्रेन्द्रिय का विषय शब्द है। शब्द तीन प्रकार का माना गया है–जीव-शब्द, अजीव-शब्द और मिश्र-शब्द। कुछ विचारक ७ प्रकार के शब्द भी मानते हैं। (२) चक्षु-इन्द्रिय का विषय रूप-संवेदना है। रूप पाँच प्रकार का है–लाल, काला, नीला, पीला और श्वेत। शेष रंग इन्हीं के सम्मिश्रण के परिणाम हैं। (३) घ्राणेन्द्रिय का विषय गन्ध-संवेदना है। गन्ध दो प्रकार की है–(अ) सुगन्ध और (ब) दुर्गन्ध। (४) रसना का विषय रसास्वादन है। रस पाँच हैं–कटु, अम्ल, लवण, तिक्त और मधुर। (५) स्पर्शनेन्द्रिय का विषय स्पर्शानुभूति

---

१. उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल की विस्तृत विवेचना हेतु देखें– तिलोयपण्णत्ति, जीवराज ग्रंथमाला, शोलापुर, ४/३२०-३९४

२. अभिधान राजेन्द्र कोश, खण्ड २, पृ. ५४७

३. दर्शन और चिन्तन, भाग १, पृ. १३४-१३५

है। स्पर्श आठ प्रकार का है—उष्ण, शीत, रुक्ष, चिकना, हल्का, भारी, कर्कश, कोमल। इस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय के ३, चक्षुरिन्द्रिय के ५, घ्राणेन्द्रिय के २, रसना के ५ और स्पर्शेन्द्रिय के ८, कुल मिलाकर पाँचों के तेईस विषय हैं।

इन्द्रिय-निरोध—इन्द्रियों के ये विषय अपनी पूर्ति के प्रयास में किस प्रकार नैतिक पतन की ओर ले जाते हैं, इसका सजीव चित्रण उत्तराध्ययन के ३२वें अध्याय में मिलता है, यहाँ उसके कुछ अंश प्रस्तुत हैं।

रूप को ग्रहण करने वाली चक्षु-इन्द्रिय है और रूप चक्षु-इन्द्रिय का विषय है। प्रिय रूप राग का और अप्रिय रूप द्वेष का कारण है।[१] जिस प्रकार दृष्टि के राग में आतुर पतंग मृत्यु पाता है, उसी प्रकार रूप में अत्यन्त आसक्त होकर जीव अकाल में ही मृत्यु पाते हैं।[२] रूप की आशा के वश पड़ा हुआ अज्ञानी जीव, त्रस और स्थावर जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है, परिताप उत्पन्न करता है तथा पीड़ित करता है।[३] रूप में मूर्च्छित जीव भोग्य पदार्थों के उत्पादन रक्षण एवं व्यय में और वियोग की चिन्ता में लगा रहता है। उसे सुख कहाँ है? वह संभोग काल में ही अतृप्त रहता है।[४] रूप में आसक्त मनुष्य को थोड़ा भी सुख नहीं होता, जिस वस्तु की प्राप्ति में उसने दुःख उठाया, उसके उपभोग के समय भी वह दुःख ही पाता है।[५]

श्रोत्रेन्द्रिय शब्द को ग्रहण करने वाली और शब्द श्रोत्रेन्द्रिय का ग्राह्य विषय है। प्रिय शब्द राग का और अप्रिय शब्द द्वेष का कारण है।[६] जिस प्रकार शब्द-राग में गृद्ध मृग मारा जाता है, उसी प्रकार शब्दों के विषय में मूर्च्छित जीव अकाल में ही नष्ट हो जाता है।[७] मनोज्ञ शब्द की लोलुपता के वशवर्ती भारीकर्मी जीव अज्ञानी होकर त्रस और स्थावर जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है, परिताप उत्पन्न करता है और पीड़ा देता है।[८] शब्द में मूर्च्छित जीव मनोहर शब्द वाले पदार्थों की प्राप्ति, रक्षण एवं वियोग की चिंता में लगा रहता है। वह संभोग काल के समय में भी अतृप्त ही रहता है, फिर उसे सुख कहाँ है?[९] तृष्णा के वश में पड़ा हुआ वह जीव चोरी करता है तथा झूठ और कपट की वृद्धि करता हुआ अतृप्त ही रहता है और दुःख से नहीं छूट पाता।[१०]

गन्ध को नासिका ग्रहण करती है और गन्ध नासिका का ग्राह्य विषय है। सुगन्ध राग का कारण है और दुर्गन्ध द्वेष का कारण है।[११] जिस प्रकार सुगन्ध में मूर्च्छित सर्प बिल से बाहर निकलने पर मारा जाता है, उसी प्रकार गन्ध में अत्यन्त आसक्त जीव अकाल में ही मृत्यु को प्राप्त होता है।[१२] सुगन्ध के वशीभूत होकर बाल जीव अनेक प्रकार से त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करता है, उन्हें दुःख देता है। सुगन्ध में आसक्त जीव सुगन्धित पदार्थों की प्राप्ति, रक्षण, व्यय तथा वियोग की चिन्ता में लगा रहता है, यह संभोग काल में भी अतृप्त रहता है। फिर उसे सुख कहाँ है? गंध में आसक्त जीव को कोई सुख नहीं होता, वह सुगन्ध के उपभोग के समय भी दुःख एवं क्लेश ही पाता है।[१३]

रस को रसनेन्द्रिय ग्रहण करती है और रस रसनेन्द्रिय का ग्राह्य विषय है। मन-पसन्द रस राग का कारण और मन के प्रतिकूल रस द्वेष का कारण है।[१४] जिस प्रकार खाने के लालच में मत्स्य काँटे में फँसकर मारा जाता है, उसी प्रकार रसों में अत्यन्त गृद्ध जीव अकाल में मृत्यु का ग्रास बन जाता है।[१५] रसों में आसक्त जीव को कोई सुख नहीं होता, वह रसभोग के समय दुःख और क्लेश ही पाता है।[१६] इसी प्रकार अमनोज्ञ रसों में द्वेष करने वाला जीव भी दुःख-परम्परा बढ़ाता है और कलुषित मन से कर्मों का उपार्जन करके दुःखद फल भोगता है।[१७]

स्पर्श को शरीर ग्रहण करता है और स्पर्श, स्पर्शनेन्द्रिय (त्वक्) का ग्राह्य विषय है। सुखद स्पर्श राग का तथा दुःखद स्पर्श द्वेष का कारण है।[१८] जो जीव सुखद स्पर्शों में अति आसक्त होता है, वह जंगल के तालाब के ठंडे पानी में पड़े हुए मगर द्वारा ग्रसे हुए भैंसे की तरह अकाल में ही मृत्यु को प्राप्त होता है।[१९] स्पर्श की आशा में पड़ा हुआ भारी कर्मी जीव चराचर जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है, उन्हें दुःख देता है।[२०] सुखद स्पर्शों से मूर्च्छित प्राणी उन वस्तुओं की प्राप्ति, रक्षण, व्यय एवं वियोग की चिन्ता में ही घुला रहता है। भोग के समय भी वह तृप्त नहीं होता, फिर उसके लिए सुख कहाँ?[२१] स्पर्श में आसक्त जीवों को किंचित् भी सुख नहीं होता। जिस वस्तु की प्राप्ति क्लेश एवं दुःख से हुई, उसके भोग के समय भी उसे कष्ट ही मिलता है।[२२]

आचार्य हेमचन्द्र योगशास्त्र में कहते हैं कि स्पर्शनेन्द्रिय के वशीभूत होकर हाथी, रसनेन्द्रिय के वशीभूत होकर मछली, घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत होकर भ्रमर, चक्षु-इन्द्रिय के वशीभूत होकर पतंगा और श्रोत्रेन्द्रिय के वशीभूत होकर हरिण मृत्यु का ग्रास बनता है। जब एक इन्द्रिय के विषयों में आसक्ति मृत्यु का कारण बनती है तो फिर पाँचों इन्द्रियों के विषयों के सेवन में आसक्त मनुष्य की क्या गति होगी?

कषाय-सिद्धान्त

समूचा जगत् वासना से उत्पन्न कषाय की अग्नि से झुलस रहा है। अतएव शान्ति मार्ग के पथिक साधक के लिए कषाय का त्याग आवश्यक है। जैन-सूत्रों में साधक को कषायों से सर्वथा दूर रहने के लिए कहा गया है। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है कि अनिगृहीत

---

१. उत्तराध्ययन सूत्र, ३२/२३
२. वही, ३२/२४
३. वही, ३२/२७
४. वही, ३२/२८
५. वही, ३२/३२
६. वही, ३२/३६
७. वही, ३२/३७
८. वही, ३२/४०
९. वही, ३२/४१
१०. वही, ३२/४३
११. वही, ३२/४९
१२. वही, ३२/५०
१३. वही, ३२/५३-५४
१४. वही, ३२/६२
१५. वही, ३२/६३
१६. वही, ३२/७१
१७. वही, ३२/७२
१८. वही, ३२/७५
१९. वही, ३२/७६
२०. वही, ३२/७८
२१. वही, ३२/८०
२२. वही, ३२/८४

क्रोध और मान तथा बढ़ती हुई माया तथा लोभ–ये चारों संसार बढ़ाने वाली कषायें पुनर्जन्म रूपी वृक्ष का सिंचन करती हैं, दुःख का का हैं अतः शान्ति का साधक उन्हें त्याग दे।[1]

कषाय का अर्थ–कषाय जैन धर्म का पारिभाषिक शब्द है। यह 'कष' और 'आय' इन दो शब्दों के मेल से बना है। 'कष' का अर्थ संसार, कर्म अथवा जन्म-मरण एवं 'आय' का अर्थ है आगमन या प्राप्ति; अर्थात् जिसके द्वारा संसार किंवा जन्म-मरण की प्राप्ति हो अथ जिससे जीव पुनः-पुनः जन्म-मरण के चक्र में पड़ता है, वह कषाय है।[2] जो मनोवृत्तियाँ आत्मा को कलुषित करती हैं, उन्हें जैन-मनोवि की भाषा में कषाय कहा जाता है। कषाय अनैतिक मनोवृत्तियाँ हैं।

कषाय की उत्पत्ति–वासना या कर्म-संस्कार से राग-द्वेष और राग-द्वेष से कषाय उत्पन्न होते हैं। स्थानांग सूत्र में कहा गया है पाप-कर्म के दो स्थान हैं–राग और द्वेष। राग से माया और लोभ तथा द्वेष से क्रोध और मान उत्पन्न होते हैं।[3] राग-द्वेष का कषायों से व सम्बन्ध है इसका वर्णन विशेषावश्यक भाष्य में विभिन्न नयों (दृष्टिकोणों) के आधार पर किया गया है। संग्रह नय के विचार से क्रोध अ मान द्वेष-रूप हैं, जबकि माया और लोभ राग-रूप हैं। क्योंकि प्रथम दो में दूसरे की अहित-भावना है और अन्तिम दो में अपनी स्वार्थ-साध का लक्ष्य है। व्यवहार नय की दृष्टि से क्रोध, मान और माया तीनों रूप हैं, क्योंकि माया भी दूसरे के विघात का विचार ही है। केवल लो अकेला रागात्मक है, क्योंकि उसमें ममत्वभाव है। ऋजुसूत्र नय की दृष्टि से केवल क्रोध ही द्वेष-रूप है। शेष कषाय-त्रिक् (मान, माया अ लोभ) को ऋजुसूत्र नय की दृष्टि से न तो केवल राग-प्रेरित कहा जा सकता है और न केवल द्वेष-प्रेरित। राग-प्रेरित होने पर वे राग-रूप और द्वेष-प्रेरित होने पर द्वेष-रूप होते हैं।[4] चारों कषायें वासना के राग-द्वेषात्मक पक्षों की आवेगात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। वासना का तत् अपनी तीव्रता की विधेयात्मक अवस्था में राग और निषेधात्मक अवस्था में द्वेष हो जाता है। ये ही राग और द्वेष के भाव बाह्य आवेगात्म अभिव्यक्ति में कषाय कहे जाते हैं।

कषाय के भेद–आवेगों की अवस्थाएँ भी तीव्रता (Intensity) की दृष्टि से समान नहीं होती हैं, अतः तीव्र आवेगों को कषाय और म आवेग या तीव्र आवेगों के प्रेरकों को नो-कषाय (उप-कषाय) कहा गया है। कषाय चार हैं–(१) क्रोध, (२) मान, (३) माया और (४) लोभ आवेगात्मक अभिव्यक्तियों की तीव्रता के आधार पर इनमें से प्रत्येक को चार-चार भागों में बाँटा गया है–(१) तीव्रतम, (२) तीव्रतर (३) तीव्र और (४) अल्प। नैतिक दृष्टि से तीव्रतम क्रोध आदि व्यक्ति के सम्यक् दृष्टिकोण में विकार ला देते हैं। तीव्रतर क्रोध आदि आत्म-नियन्त्रण की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। तीव्र क्रोध आदि आत्म-नियन्त्रण की शक्ति के उच्चतम विकास में बाधक होते हैं अल्प क्रोध आदि व्यक्ति को पूर्ण वीतराग नहीं होने देते।[5] चारों कषायों के तीव्रता के आधार पर चार-चार भेद हैं। अतः कषायों की संख्य १६ हो जाती है। निम्न नौ उप-आवेग, उप-कषाय या कषाय-प्रेरक माने गये हैं–(१) हास्य, (२) रति, (३) अरति, (४) शोक, (५) भय (६) घृणा, (७) स्त्रीवेद (पुरुष-सम्पर्क की वासना), (८) पुरुषवेद (स्त्री-सम्पर्क की वासना), (९) नपुंसकवेद (दोनों के सम्पर्क की वासना) इस प्रकार कुल २५ कषायें हैं।[6]

क्रोध

यह एक मानसिक किन्तु उत्तेजक आवेग है। उत्तेजित होते ही व्यक्ति भावाविष्ट हो जाता है। उसकी विचार-क्षमता और तर्क-शक्ति लगभग शिथिल हो जाती है। भावात्मक स्थिति में बढ़े हुए आवेश की वृत्ति युयुत्सा को जन्म देती है। युयुत्सा से अमर्ष और अमर्ष से आक्रमण का भाव उत्पन्न होता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार क्रोध और भय में यही अन्तर है कि क्रोध के आवेश में आक्रमण का और भय के आवेश में आत्म-रक्षा का प्रयत्न होता है।

जैन-विचार में सामान्यतया क्रोध के दो रूप मान्य हैं–(१) द्रव्य-क्रोध, (२) भाव-क्रोध।[7] द्रव्य-क्रोध को आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से क्रोध का आंगिक पक्ष कहा जा सकता है। जिसके कारण क्रोध में होने वाले शारीरिक परिवर्तन होते हैं। भाव-क्रोध, क्रोध की मानसिक अवस्था है। क्रोध का अनुभूत्यात्मक पक्ष भाव-क्रोध है, जबकि क्रोध का अभिव्यक्त्यात्मक या शरीरात्मक पक्ष द्रव्य-क्रोध है। क्रोध के विभिन्न रूप हैं। भगवती सूत्र में इसके दस समानार्थक नाम वर्णित हैं[8]–(१) **क्रोध**–आवेग की उत्तेजनात्मक अवस्था, (२) **कोप**–क्रोध से उत्पन्न स्वभाव की चंचलता, (३) **दोष**–स्वयं पर या दूसरे पर दोष थोपना, (४) **रोष**–क्रोध का परिस्फुट रूप, (५) **संज्वलन**–जलन या ईर्ष्या की भावना, (६) **अक्षमा**–अपराध क्षमा न करना, (७) **कलह**–अनुचित भाषण करना, (८) **चण्डिक्य**–उग्र रूप धारण करना, (९) **मंडन**–हाथापाई करने पर उतारू होना, (१०) **विवाद**–आक्षेपात्मक भाषण करना।

क्रोध के प्रकार–क्रोध के आवेग की तीव्रता एवं मन्दता के आधार पर चार भेद किए गए हैं। वे इस भाँति हैं–

१. **अनन्तानुबंधी क्रोध (तीव्रतम क्रोध)**–पत्थर में पड़ी दरार के समान क्रोध जो किसी के प्रति एक बार उत्पन्न होने पर जीवन-पर्यन्त बना रहे, कभी समाप्त न हो।

---

१. दशवैकालिक सूत्र, ८/३९
२. अभिधान राजेन्द्र कोश, खण्ड ३, पृ. ३९५
३. स्थानांग सूत्र, २/२
४. विशेषावश्यक भाष्य, २६६८-२६७१
५. तुम अनन्त शक्ति के स्रोत हो, पृ. ४७
६. अभिधान राजेन्द्र कोश, खण्ड ३, पृ. ३९५
७. भगवती सूत्र, १२/५/२
८. भगवई, १२/५/१०३

२. अप्रत्याख्यानी क्रोध (तीव्रतर क्रोध)–सूखते हुए जलाशय की भूमि में पड़ी दरार जैसे आगामी वर्षा होते ही मिट जाती है, वैसे ही अप्रत्याख्यानी क्रोध एक वर्ष से अधिक स्थाई नहीं रहता और किसी के समझाने से शान्त हो जाता है।

३. प्रत्याख्यानी क्रोध (तीव्र क्रोध)–बालू की रेखा जैसे हवा के झोंकों से जल्दी ही मिट जाती है, वैसे ही प्रत्याख्यानी क्रोध चार मास से अधिक स्थायी नहीं होता।

४. संज्वलन क्रोध (अल्प क्रोध)–शीघ्र ही मिट जाने वाली पानी में खींची गयी रेखा के समान। इस क्रोध में स्थायित्व नहीं होता है।

मान (अहंकार)

अहंकार करना मान है। अहंकार कुल, बल, ऐश्वर्य, बुद्धि, जाति, ज्ञान आदि किसी भी विशेषता का हो सकता है। मनुष्य में स्वाभिमान की मूल प्रवृत्ति है ही, परन्तु जब स्वाभिमान की वृत्ति दम्भ या प्रदर्शन का रूप ले लेती है, तब मनुष्य अपने गुणों एवं योग्यताओं का बढ़े-चढ़े रूप में प्रदर्शन करता है और इस प्रकार उसके अन्तःकरण में मानवृत्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है। अभिमानी मनुष्य अपनी अहंवृत्ति का पोषण करता रहता है। उसे अपने से बढ़कर या अपनी वराबरी का गुणी व्यक्ति कोई दिखता ही नहीं।

जैन परम्परा में प्रकारान्तर से मान के आठ भेद मान्य हैं–(१) जाति, (२) कुल, (३) बल (शक्ति), (४) ऐश्वर्य, (५) बुद्धि (सामान्य बुद्धि), (६) ज्ञान (सूत्रों का ज्ञान), (७) सौन्दर्य और (८) अधिकार (प्रभुता)। इन आठ प्रकार की श्रेष्ठताओं का अहंकार करना गृहस्थ एवं साधु दोनों के लिए सर्वथा वर्जित है। इन्हें मद भी कहा गया है।

मान निम्न बारह रूपों में प्रकट होता है[1]–(१) मान–अपने किसी गुण पर अहंवृत्ति, (२) मद–अहंभाव में तन्मयता, (३) दर्प–उत्तेजनापूर्ण अहंभाव, (४) स्तम्भ–अविनम्रता, (५) गर्व–अहंकार, (६) अत्युक्रोश–अपने को दूसरे से श्रेष्ठ कहना, (७) परपरिवाद–परनिन्दा, (८) उत्कर्ष–अपना ऐश्वर्य प्रकट करना, (९) अपकर्ष–दूसरों को तुच्छ समझना, (१०) उन्नत नाम–गुणी के सामने भी न झुकना, (११) उन्नत्त–दूसरों को निम्न समझना, (१२) पुर्नाम–यथोचित रूप से न झुकना।

अहंभाव की तीव्रता और मन्दता के अनुसार मान के भी चार भेद हैं–

१. अनंतानुवन्धी मान–पत्थर के खम्भे के समान जो झुकता नहीं, अर्थात् जिसमें विनम्रता नाममात्र की भी नहीं है।

२. अप्रत्याख्यानी मान–हड्डी के समान कठिनता से झुकने वाला अर्थात् जो विशेष परिस्थितियों में बाह्य दवाव के कारण विनम्र हो जाता है।

३. प्रत्याख्यानी मान–लकड़ी के समान थोड़े से प्रयत्न से झुक जाने वाला अर्थात् जिसके अन्तर में विनम्रता तो होती है लेकिन जिसका प्रकटन विशेष स्थिति में ही होता है।

४. संज्वलन मान–बेंत के समान अत्यन्त सरलता से झुक जाने वाला अर्थात् जो आत्म-गौरव को रखते हुए भी विनम्र बना रहता है।

माया

कपटाचार माया कषाय है। भगवती सूत्र के अनुसार इसके पन्द्रह नाम हैं[2]–(१) माया–कपटाचार, (२) उपधि–ठगने के उद्देश्य से व्यक्ति के पास जाना, (३) निकृति–ठगने के अभिप्राय से अधिक सम्मान देना, (४) वलय–वक्रतापूर्ण वचन, (५) गहन–ठगने के विचार से अत्यन्त गूढ़ भाषण करना, (६) नूम–ठगने के हेतु निकृष्ट कार्य करना, (७) कल्क–दूसरों को हिंसा के लिए उभारना, (८) करूप–निन्दित व्यवहार करना, (९) निह्नता–ठगाई के लिए कार्य मन्द गति से करना, (१०) किल्विषिक–भांडों के समान कुचेष्टा करना, (११) आदरणता–अनिच्छित कार्य भी अपनाना, (१२) गूहनता–अपनी करतूत को छिपाने का प्रयत्न करना, (१३) वंचकता–ठगी, (१४) प्रति-कुंचनता–किसी के सरल रूप से कहे गये वचनों का खण्डन करना, (१५) सातियोग–उत्तम वस्तु में हीन वस्तु की मिलावट करना, यह सव माया की ही विभिन्न अवस्थाएँ हैं।

माया के चार प्रकार–(१) अनंतानुवन्धी माया (तीव्रतम कपटाचार)–अतीव कुटिल जैसे वाँस की जड़, (२) अप्रत्याख्यानी माया (तीव्रतर कपटाचार)–भैंस के सींग के समान कुटिल, (३) प्रत्याख्यानी माया (तीव्र कपटाचार)–गोमूत्र की धारा के समान कुटिल, (४) संज्वलन माया (अल्प-कपटाचार)–वाँस के छिलके के समान कुटिल।

लोभ

मोहनीय कर्म के उदय से चित्त में उत्पन्न होने वाली तृष्णा या लालसा लोभ कहलाती है। लोभ की सोलह अवस्थाएँ हैं[3]–(१) लोभ–संग्रह करने की वृत्ति, (२) इच्छा–अभिलाषा, (३) मूर्च्छा–तीव्र संग्रह-वृत्ति, (४) कांक्षा–प्राप्त करने की आशा, (५) गृद्धि–आसक्ति, (६) तृष्णा–जोड़ने की इच्छा, वितरण की विरोधी वृत्ति, (७) मिथ्या–विषयों का ध्यान, (८) अभिध्या–निश्चय से डिग जाना या चंचलता, (९) आशंसना–इष्ट-प्राप्ति की इच्छा करना, (१०) प्रार्थना–अर्थ आदि की याचना, (११) लालपनता–चाटुकारिता, (१२) कामाशा–काम की

---

१. भगवती सूत्र, १२/४३ २. वही, १२/५४ ३. वही, १५/५/५

इच्छा, (१३) भोगाशा–भोग्य-पदार्थों की इच्छा, (१४) जीविताशा–जीवन की कामना, (१५) मरणाशा–मरने की कामना[1], (१६) नन्दिराग–प्राप्त सम्पत्ति में अनुराग।

लोभ के चार भेद–(१) अनंतानुवन्धी लोभ–मजीठिया रंग के समान जो छूटे नहीं, अर्थात् अत्यधिक लोभ, (२) अप्रत्याख्यानी लोभ–गाड़ी के पहिये के औगन के समान मुश्किल से छूटने वाला लोभ, (३) प्रत्याख्यानी लोभ–कीचड़ के समान प्रयत्न करने पर छूट जाने वाला लोभ, (४) संज्वलन लोभ–हल्दी के लेप के समान शीघ्रता से दूर हो जाने वाला लोभ।

नोकषाय–नोकषाय शब्द दो शब्दों के योग से वना है नो+कषाय। जैन दार्शनिकों ने 'नो' शब्द को साहचर्य के अर्थ में ग्रहण किया है।[2] इस प्रकार क्रोध, मान, माया और लोभ इन प्रधान कषायों के सहचारी भावों अथवा उनकी उपयोगी मनोवृत्तियाँ जैन परिभाषा में नोकषाय कही जाती हैं।[3] जहाँ पाश्चात्य मनोविज्ञान में काम-वासना को प्रमुख मूल वृत्ति तथा भय को प्रमुख आवेग माना गया है, वहाँ जैन दर्शन में उन्हें सहचारी कषाय या उप-आवेग कहा गया है। इसका कारण यही हो सकता है कि जहाँ पाश्चात्य विचारकों ने उन पर मात्र मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया है, वहाँ जैन विचारणा में जो मानसिक तथ्य नैतिक दृष्टि से अधिक अशुभ थे, उन्हें कषाय कहा गया है और उनके सहचारी अथवा कारक मनोभाव को नोकषाय कहा गया है। यद्यपि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर नोकषाय वे प्राथमिक स्थितियाँ हैं, जिनसे कषायें उत्पन्न होती हैं, तथापि आवेगों की तीव्रता की दृष्टि से नोकषाय कम तीव्र होते हैं और कषाय अधिक तीव्र होती हैं। इन्हें कषाय कारक भी कहा जा सकता है। जैन ग्रन्थों में इनकी संख्या नौ मानी गई है–

१. हास्य–सुख या प्रसन्नता की अभिव्यक्ति हास्य है। जैन विचारणा के अनुसार हास्य का कारण पूर्व-कर्म या वासना-संस्कार है।

२. शोक–इष्टवियोग और अनिष्टयोग से सामान्य व्यक्ति में जो मनोभाव जाग्रत होते हैं, वे शोक कहे जाते हैं। शोक चित्तवृत्ति की विकलता का द्योतक है[4] और इस प्रकार मानसिक समत्व का भंग करने वाला है।

३. रति (रुचि)–अभीष्ट पदार्थों पर प्रीतिभाव अथवा इन्द्रिय-विषयों में चित्त की अभिरतता ही रति है। इसके कारण ही आसक्ति एवं लोभ की भावनाएँ प्रवल होती हैं।[5]

४. अरति–इन्द्रिय-विषयों में अरुचि ही अरति है। अरुचि का भाव ही विकसित होकर घृणा और द्वेष वनता है। राग और द्वेष तथा रुचि और अरुचि में प्रमुख अन्तर यही है कि राग और द्वेष मनस् की सक्रिय अवस्थाएँ हैं जबकि रुचि और अरुचि निष्क्रिय अवस्थाएँ हैं। रति और अरति पूर्व-कर्म–संस्कारजनित स्वाभाविक रुचि और अरुचि का भाव है।

५. घृणा–घृणा या जुगुप्सा अरुचि का ही विकसित रूप है। अरुचि और घृणा में केवल मात्रात्मक अन्तर ही है। अरुचि की अपेक्षा घृणा में विशेषता यह है कि अरुचि में पदार्थ-विशेष के भोग की अरुचि होती है, लेकिन उसकी उपस्थिति सह्य होती है, जबकि घृणा में उसका भोग और उसकी उपस्थिति दोनों ही असह्य होती है। अरुचि का विकसित रूप घृणा और घृणा का विकसित रूप द्वेष है।

६. भय–किसी वास्तविक या काल्पनिक तथ्य से आत्म-रक्षा के निमित्त वच निकलने की प्रवृत्ति ही भय है। भय और घृणा में प्रमुख अन्तर यह है कि घृणा के मूल में द्वेष-भाव रहता है, जवकि भय में आत्म-रक्षण का भाव प्रवल होता है। घृणा क्रोध और द्वेष का एक रूप है, जबकि भय लोभ या राग की ही एक अवस्था है। जैनागमों में भय सात प्रकार का माना गया है, जैसे–(१) इहलोक भय–यहाँ लोक शब्द संसार के अर्थ में न होकर जाति के अर्थ में भी गृहीत है। स्वजाति के प्राणियों से अर्थात् मनुष्यों के लिए मनुष्यों से उत्पन्न होने वाला भय। (२) परलोक भय–अन्य जाति के प्राणियों से होने वाला भय, जैसे–मनुष्यों के लिए पशुओं का भय। (३) आदान भय–धन की रक्षा के निमित्त चोर-डाकू आदि भय के वाह्य कारणों से उत्पन्न भय। (४) अकस्मात् भय–वाह्य-निमित्त के अभाव में स्वकीय कल्पना से निर्मित भय या अकारण भय। भय का यह रूप मानसिक ही होता है, जिसे मनोविज्ञान में असामान्य भय कहते हैं। (५) आजीविका भय–आजीविका या धनोपार्जन के साधनों की समाप्ति (विच्छेद) का भय। कुछ ग्रन्थों में इसके स्थान पर वेदना भय का उल्लेख है। रोग या पीड़ा का भय वेदना भय है। (६) मरण भय–मृत्यु का भय; जैन और वौद्ध विचारणा में मरण-धर्मता का स्मरण तो नैतिक दृष्टि से आवश्यक है, लेकिन मरण भय (मरणाशा एवं जीविताशा) को नैतिक दृष्टि से अनुचित माना गया है। (७) अश्लोक (अपयश) भय–मान-प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाने का भय।[6]

७. स्त्रीवेद–स्त्रीवेद का अर्थ है स्त्रीत्व संबंधी काम-वासना अर्थात् पुरुष से संभोग की इच्छा। जैन विचारणा में लिंग और वेद में अन्तर किया गया है। लिंग आंगिक संरचना का प्रतीक है, जबकि वेद तत्सम्बन्धी वासनाओं की अवस्था है। यह आवश्यक नहीं है कि स्त्री-लिंग होने पर स्त्रीवेद हो ही। जैन विचारणा के अनुसार लिंग (आंगिक रचना) का कारण नाम-कर्म है, जबकि वेद (वासना) का कारण चारित्रमोहनीय कर्म है।

८. पुरुषवेद–पुरुषत्व सम्बन्धी काम-वासना अर्थात् स्त्री संभोग की इच्छा पुरुषवेद है।

९. नपुंसकवेद–प्राणी में स्त्रीत्व सम्बन्धी और पुरुषत्व सम्बन्धी दोनों वासनाओं का होना नपुंसकवेद कहा जाता है। दोनों के संभोग की इच्छा ही नपुंसकवेद है।

---

१. तुलना कीजिए–जीवनवृत्ति और मृत्युवृत्ति (फ्रायड)
२. अभिधान राजेन्द्र कोश, खण्ड ४, पृ. २१६१
३. वही, खण्ड ४, पृ. २१६१
४. वही, खण्ड ७, पृ. ११५७
५. वही, खण्ड ६, पृ. ४६७
६. श्रमण आवश्यक सूत्र उपाध्याय अमर मुनि, भय सूत्र

काम-वासना की तीव्रता की दृष्टि से जैन विचारकों के अनुसार पुरुष की काम-वासना शीघ्र ही प्रदीप्त हो जाती है और शीघ्र ही शान्त हो जाती है। स्त्री की काम-वासना देरी से प्रदीप्त होती है लेकिन एक बार प्रदीप्त हो जाने पर काफी समय तक शान्त नहीं होती। नपुंसक की काम-वासना शीघ्र प्रदीप्त हो जाती है लेकिन शान्त देरी से होती है।[१] इस प्रकार भय, शोक, घृणा, हास्य, रति, अरति और काम-विकार ये उप-आवेग हैं। ये भी व्यक्ति के जीवन को बहुत प्रभावित करते हैं। क्रोध आदि की शक्ति तीव्र होती है, इसलिए वे आवेग हैं। ये व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक स्थिति को प्रभावित करने के अतिरिक्त उसके आन्तरिक गुणों–सम्यक् दृष्टिकोण, आत्म-नियन्त्रण आदि को भी प्रभावित करते हैं। भय आदि उप-आवेग व्यक्ति के आन्तरिक गुणों को उतना प्रत्यक्षतः प्रभावित नहीं करते, जितना शारीरिक और मानसिक स्थिति को करते हैं। उनकी शक्ति अपेक्षाकृत क्षीण होती है, इसलिए वे उप-आवेग कहलाते हैं।[२]

जैन सूत्रों में इन चार प्रमुख कषायों को "चंडाल चौकड़ी" कहा गया है। इनमें अनन्तानुबन्धी आदि जो विभाग हैं उनको सदैव ध्यान में रखना चाहिए और हमेशा यह प्रयत्न करना चाहिए कि कषायों में तीव्रता न आये, क्योंकि अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ के होने पर साधक अनन्तकाल तक संसार-परिभ्रमण करता है और सम्यग्दृष्टि नहीं बन पाता है। यह जन्म-मरण के रोग की असाध्यावस्था है। अप्रत्याख्यानी कषाय के होने पर साधक, श्रावक या गृहस्थ साधक के पद से गिर जाता है। यह साधक के आंशिक चरित्र का नाश कर देती है। यह विकारों की दुःसाध्यावस्था है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानी कषाय की अवस्था में साधुत्व प्राप्त नहीं होता। इसे विकारों की प्रयत्न-साध्यावस्था कहा जा सकता है। साधक को अपने जीवन में उपर्युक्त तीनों प्रकार के कषायों को स्थान नहीं देना चाहिए, क्योंकि इससे उसकी साधना या चारित्र धर्म का नाश हो जाता है। इतना ही नहीं, साधक को अपने अन्दर संज्वलन कषाय को भी स्थान नहीं देना चाहिए, क्योंकि जब तक चित्त में सूक्ष्मतम क्रोध, मान, माया और लोभ रहते हैं, साधक अपने लक्ष्य-निर्वाण की प्राप्ति नहीं कर सकता। संक्षेप में अनन्तानुबन्धी चौकड़ी या कषायों की तीव्रतम अवस्था यथार्थ दृष्टिकोण की उपलब्धि में बाधक है। अप्रत्याख्यानी चौकड़ी या कषायों की तीव्रतर अवस्था आत्म-नियन्त्रण में बाधक है। प्रत्याख्यानी चौकड़ी या कषायों की तीव्र अवस्था श्रमण जीवन की घातक है। इसी प्रकार संज्वलन चौकड़ी या अल्प-कषाय पूर्ण निष्काम या वीतराग जीवन की उपलब्धि में बाधक है। इसलिए साधक को सूक्ष्मतम कषायों को भी दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि इनके होने पर उसकी साधना में पूर्णता नहीं आ सकती। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है कि आत्म-हित चाहने वाला साधक पाप की वृद्धि करने वाले क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार दोषों को पूर्णतया छोड़ दें।[३]

लेश्या-सिद्धान्त

जैन विचारकों के अनुसार जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त होती है या बन्धन में आती है, वह लेश्या है।[४] जैनागमों में लेश्या दो प्रकार की मानी गयी है–(१) द्रव्य-लेश्या और (२) भाव-लेश्या।

१. द्रव्य-लेश्या–द्रव्य-लेश्या सूक्ष्म भौतिकी तत्त्वों से निर्मित वह आंगिक संरचना है, जो हमारे मनोभावों एवं तज्जनित कर्मों का सापेक्ष रूप में कारण अथवा कार्य बनती है जिस प्रकार पित्तद्रव्य की विशेषता से स्वभाव में क्रोधीपन आता है और क्रोध के कारण पित्त का निर्माण बहुल रूप में होता है, उसी प्रकार इन सूक्ष्म भौतिक तत्त्वों से मनोभाव बनते हैं और मनोभाव के होने पर इन सूक्ष्म संरचनाओं का निर्माण होता है। इनके स्वरूप के सम्बन्ध में पं. सुखलाल जी एवं राजेन्द्रसूरि जी ने निम्न तीन मतों को उद्धृत किया है–

१. लेश्या-द्रव्य कर्म-वर्गणा से बने हुए हैं। यह मत उत्तराध्ययन की टीका में है।

२. लेश्या-द्रव्य बध्यमान कर्म-प्रवाह रूप है। यह मत भी उत्तराध्ययन की टीका में वादिवैताल शान्तिसूरि का है।

३. लेश्या-योग परिणाम है अर्थात् शारीरिक, वाचिक और मानसिक क्रियाओं का परिणाम है। यह मत आचार्य हरिभद्र का है।[५]

२. भाव-लेश्या–भाव-लेश्या आत्मा का अध्यवसाय या अन्तःकरण की वृत्ति है। पं. सुखलाल जी के शब्दों में भाव-लेश्या आत्मा का मनोभाव विशेष है, जो संक्लेश और योग से अनुगत है। संक्लेश के तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मन्द, मन्दतर, मन्दतम आदि अनेक भेद होने से लेश्या (मनोभाव) वस्तुतः अनेक प्रकार की है। तथापि संक्षेप में छह भेद करके (जैन) शास्त्र में उसका स्वरूप वर्णन किया गया है।

उत्तराध्ययन सूत्र[६] में लेश्याओं के स्वरूप का निर्वचन विविध पक्षों के आधार पर विस्तृत रूप से हुआ है, लेकिन हम अपने विवेचन को लेश्याओं के भावात्मक पक्ष तक ही सीमित रखना उचित समझेंगे। मनोदशाओं में संक्लेश की न्यूनाधिकता अथवा मनोभावों की अशुभत्व से शुभत्व की ओर बढ़ने की स्थितियों के आधार पर ही उनके विभाग किये गये हैं। अप्रशस्त और प्रशस्त इन द्विविध मनोभावों से उनकी तारतम्यता के आधार पर छह भेद वर्णित हैं–

अप्रशस्त मनोभाव	प्रशस्त मनोभाव
१. कृष्ण-लेश्या–तीव्रतम अप्रशस्त मनोभाव	४. तेजो-लेश्या–प्रशस्त मनोभाव
२. नील-लेश्या–तीव्र अप्रशस्त मनोभाव	५. पद्म-लेश्या–तीव्र प्रशस्त मनोभाव
३. कापोत-लेश्या–अप्रशस्त मनोभाव	६. शुक्ल-लेश्या–तीव्रतम प्रशस्त मनोभाव

---

१. जैन साइकॉलोजी, पृ. १३१-१३४
२. तुम अनन्त शक्ति के स्रोत हो, पृ. ४७
३. दशवैकालिक सूत्र, ८/३७
४. अभिधान राजेन्द्र कोश, खण्ड ६, पृ. ६७५
५. (अ) दर्शन और चिन्तन, भाग २, पृ. २९७
(ब) अभिधान राजेन्द्र कोश, खण्ड ६, पृ. ६७५
६. उत्तराध्ययन सूत्र, ३४/३

लेश्याएँ एवं नैतिक व्यक्तित्व का श्रेणी-विभाजन–लेश्याएँ मनोभावों का वर्गीकरण मात्र नहीं हैं, वरन् ये चारित्र के आधार पर किये गये व्यक्तित्व के प्रकार भी हैं। मनोभाव अथवा संकल्प आन्तरिक तथ्य ही नहीं हैं, वरन् वे क्रियाओं के रूप में बाह्य अभिव्यक्ति भी चाहते हैं। वस्तुतः संकल्प ही कर्म में रूपान्तरित होते हैं। ब्रेडले का यह कथन उचित है कि कर्म संकल्प का रूपान्तरण है।[१] मनोभूमि या संकल्प व्यक्ति के आचरण का प्रेरक सूत्र है, लेकिन कर्म-क्षेत्र में संकल्प और आचरण दो अलग-अलग तत्त्व नहीं रहते। आचरण से संकल्पों की मनोभूमिका का निर्माण होता है और संकल्पों की मनोभूमिका पर ही आचरण स्थित होता है। मनोभूमि, आचरण अथवा चरित्र का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इतना ही नहीं, मनोवृत्ति स्वयं में भी एक आचरण है। मानसिक कर्म भी कर्म ही है। अतः जैन-विचारकों ने जब लेश्या-परिणाम की चर्चा की, तो वे मात्र मनोदशाओं की चर्चाओं तक ही सीमित नहीं रहे, वरन् उन्होंने उस मनोदशा से प्रत्युत्पन्न जीवन के कर्म-क्षेत्र में घटित होने वाले व्यवहारों की चर्चा भी की और इस प्रकार जैन लेश्या-सिद्धान्त व्यक्तित्व के नैतिक पक्ष के आधार पर व्यक्तित्व के नैतिक प्रकारों के वर्गीकरण का ही सिद्धान्त बन गया। जैन-विचारकों ने इस सिद्धान्त के आधार पर यह बताया कि नैतिक दृष्टि से व्यक्तित्व या तो नैतिक होगा या अनैतिक होगा और इस प्रकार दो वर्ग होंगे–(१) नैतिक और (२) अनैतिक। इन्हें धार्मिक और अधार्मिक अथवा शुक्ल-पक्षी और कृष्ण-पक्षी भी कहा गया है। वस्तुतः एक वर्ग वह है जो नैतिकता अथवा शुभ की ओर उन्मुख है। दूसरा वर्ग वह है जो अनैतिकता या अशुभ की ओर उन्मुख है। इस प्रकार नैतिक गुणात्मक अन्तर के आधार पर व्यक्तित्व के ये दो प्रकार बनते हैं। लेकिन जैन-विचारक मात्र गुणात्मक वर्गीकरण से सन्तुष्ट नहीं हुए और उन्होंने उन दो गुणात्मक प्रकारों को तीन-तीन प्रकार के मात्रात्मक अन्तरों (जघन्य, मध्यम एवं उत्कृष्ट) के आधार पर छह भागों में विभाजित किया। जैन लेश्या-सिद्धान्त का षट्विध वर्गीकरण इसी आधार पर हुआ है। यद्यपि जैन-विचारकों ने मात्रात्मक अन्तरों के आधार पर लेश्या के तीन, नव, इक्यासी और दो सौ तैंतालीस उपभेद भी गिनाये हैं, लेकिन हम अपनी इस चर्चा को षट्विध वर्गीकरण तक ही सीमित रखेंगे।

१. **कृष्ण-लेश्या (अशुभतम मनोभाव) से युक्त व्यक्तित्व के लक्षण**–यह नैतिक व्यक्तित्व का सबसे निकृष्ट रूप है। इस अवस्था में प्राणी के विचार अत्यन्त निम्न कोटि के एवं क्रूर होते हैं। वासनात्मक पक्ष जीवन के सम्पूर्ण कर्मक्षेत्र पर हावी रहता है। प्राणी अपनी शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक क्रियाओं पर नियन्त्रण करने में अक्षम रहता है। वह अपनी इन्द्रियों पर अधिकार न रख पाने के कारण बिना किसी प्रकार के शुभाशुभ विचार के उन इन्द्रिय-विषयों की पूर्ति में सदैव निमग्न बना रहता है। इस प्रकार भोग-विलास में आसक्त हो, वह उनकी पूर्ति के लिए हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार और संग्रह में लगा रहता है। स्वभाव से वह निर्दय एवं नृशंस होता है और हिंसक कर्म करने में उसे तनिक भी अरुचि नहीं होती तथा अपने स्वार्थ साधन के निमित्त दूसरे का बड़ा से बड़ा अहित करने में वह संकोच नहीं करता।[२] कृष्ण-लेश्या से युक्त प्राणी वासनाओं के अन्ध-प्रवाह से ही शासित होता है और इसलिए भावावेश में उसमें स्वयं के हिताहित का विचार करने की क्षमता भी नहीं होती। वह दूसरे का अहित मात्र इसलिए नहीं करता कि उससे उसका स्वयं का कोई हित होगा, वरन् वह तो अपने क्रूर स्वभाव के वशीभूत हो ऐसा किया करता है अपने हित के अभाव में भी वह दूसरे का अहित करता रहता है।

२. **नील-लेश्या (अशुभतर मनोभाव) से युक्त व्यक्तित्व के लक्षण**–यह नैतिक व्यक्तित्व का प्रकार पहले की अपेक्षा कुछ ठीक होता है लेकिन होता अशुभ ही है। इस अवस्था में भी प्राणी का व्यवहार वासनात्मक पक्ष से शासित होता है। लेकिन वह अपनी वासनाओं की पूर्ति में अपनी बुद्धि का उपयोग करने लगता है। अतः इसका व्यवहार प्रकट रूप में तो कुछ प्रमार्जित-सा रहता है, लेकिन उसके पीछे कुटिलता ही काम करती है। यह विरोधी का अहित अप्रत्यक्ष रूप से करता है। ऐसा प्राणी ईर्ष्यालु, असहिष्णु, असंयमी, अज्ञानी, कपटी, निर्लज्ज, लम्पट, द्वेष-बुद्धि से युक्त, रसलोलुप एवं प्रमादी होता है।[३] फिर भी वह अपनी सुख-सुविधा का सदैव ध्यान रखता है। यह दूसरे का अहित अपने हित के निमित्त करता है, यद्यपि यह अपने अल्प हित के लिए दूसरे का बड़ा अहित भी कर देता है। जिन प्राणियों से इसका स्वार्थ सधता है उन प्राणियों के हित का अज-पोषण-न्याय के अनुसार वह कुछ ध्यान अवश्य रखता है, लेकिन मनोवृत्ति दूषित ही होती है। जैसे, बकरा पालने वाला बकरे को इसलिए नहीं खिलाता कि उससे बकरे का हित होगा, वरन् इसलिए खिलाता है कि उसे मारने पर अधिक माँस मिलेगा। ऐसा व्यक्ति दूसरे का बाह्य रूप में जो भी हित करता-सा दिखाई देता है, उसके पीछे उसका गहन स्वार्थ छिपा रहता है।

३. **कापोत-लेश्या (अशुभ मनोवृत्ति) से युक्त व्यक्तित्व के लक्षण**–यह मनोवृत्ति भी दूषित है। इस मनोवृत्ति में प्राणी का व्यवहार, मन, वचन, कर्म से एकरूप नहीं होता। उसकी करनी और कथनी भिन्न होती है। मनोभावों में सरलता नहीं होती, कपट और अहंकार होता है। वह अपने दोषों को सदैव छिपाने की कोशिश करता है। उसका दृष्टिकोण अयथार्थ एवं व्यवहार अनार्य होता है। वह वचन से दूसरे की गुप्त बातों को प्रकट करने वाला अथवा दूसरे के रहस्यों को प्रकट कर उससे अपना हित साधने वाला, दूसरे के धन का अपहरण करने वाला एवं मात्सर्य भावों से युक्त होता है। ऐसा व्यक्ति दूसरे का अहित तभी करता है, जब उससे उसकी स्वार्थ-सिद्धि होती है।[४]

४. **तेजो-लेश्या (शुभ मनोवृत्ति) से युक्त व्यक्तित्व के लक्षण**–यह मनोदशा पवित्र होती है। इस मनोभूमि में प्राणी पापभीरु होता है अर्थात् वह अनैतिक आचरण की ओर प्रवृत्त नहीं होता । यद्यपि वह सुखापेक्षी होता है, लेकिन किसी अनैतिक आचरण द्वारा उन सुखों की प्राप्ति या अपना स्वार्थ साधन नहीं करता। धार्मिक एवं नैतिक आचरण में उसकी पूर्ण आस्था होती है। अतः उन कृत्यों के सम्पादन में आनन्द प्राप्त करता है, जो धार्मिक या नैतिक दृष्टि से शुभ हैं। इस मनोभूमि में दूसरे के कल्याण की भावना भी होती है। संक्षेप में इस मनोभूमि में स्थित प्राणी पवित्र आचरण वाला, नम्र, धैर्यवान्, निष्कपट, आकांक्षारहित, विनीत, संयमी एवं योगी होता है।[५] वह प्रिय एवं दृढ़धर्मी तथा

---

१. एथिकल स्टडीज, पृ. ६५
२. उत्तराध्ययन सूत्र, ३४/२१-२२
३. वही, ३४/२३-२४
४. वही, ३४/२५-२६
५. वही, ३४/२७-२८

पर-हितैषी होता है। इस मनोभूमि पर दूसरे का अहित तो सम्भव होता है, लेकिन केवल उसी स्थिति में जबकि दूसरा उसके हितों का हनन करने पर उतारू हो जाय।

५. पद्म-लेश्या (शुभतर मनोवृत्ति) से युक्त व्यक्तित्व के लक्षण–इस मनोभूमि में पवित्रता की मात्रा पिछली भूमिका की अपेक्षा अधिक होती है। इस मनोभूमि में क्रोध, मान, माया एवं लोभ रूप अशुभ मनोवृत्तियाँ अतीव अल्प अर्थात् समाप्तप्रायः हो जाती हैं। प्राणी संयमी तथा योगी होता है तथा योग-साधना के फलस्वरूप आत्मजयी एवं प्रफुल्लचित्त होता है। वह अल्पभाषी, उपशांत एवं जितेन्द्रिय होता है।[१]

६. शुक्ल-लेश्या (परम शुभ मनोवृत्ति) से युक्त व्यक्तित्व के लक्षण–यह मनोभूमि शुभ-मनोवृत्ति की सर्वोच्च भूमिका है। पिछली मनोवृत्ति के सभी शुभ गुण इस अवस्था में वर्तमान रहते हैं, लेकिन उनकी विशुद्धि की मात्रा अधिक होती है। प्राणी उपशांत, जितेन्द्रिय एवं प्रसन्नचित्त होता है। उसके जीवन का व्यवहार इतना मृदु होता है कि वह अपने हित के लिए दूसरे को तनिक भी कष्ट नहीं देना चाहता है, मन-वचन-कर्म से एकरूप होता है तथा उन पर उसका पूर्ण नियंत्रण होता है। उसे मात्र अपने आदर्श का बोध रहता है। बिना किसी अपेक्षा के वह मात्र स्व-कर्तव्य के परिपालन में सदैव जागरूक रहता है। सदैव स्व-धर्म एवं स्व-स्वरूप में निमग्न रहता है।[२]

कर्म-सिद्धान्त

कर्म-सिद्धान्त का उद्भव सृष्टि-वैचित्र्य वैयक्तिक-भिन्नताओं, व्यक्ति की सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों एवं शुभाशुभ मनोवृत्तियों के कारण की व्याख्या के प्रयासों में ही हुआ है। सृष्टि-वैचित्र्य एवं वैयक्तिक, भिन्नताओं के कारण की खोज के इन प्रयासों में विभिन्न विचारधारायें अस्तित्व में आयीं। श्वेताश्वेतरोपनिषद्, अंगुत्तरनिकाय और सूत्रकृतांग में हमें इन विभिन्न विचारधाराओं की उपस्थिति के संकेत मिलते हैं। महाभारत के शान्तिपर्व में इन विचारधाराओं की समीक्षा भी की गई है। इस सम्बन्ध में प्रमुख मान्यताएँ निम्न हैं–

१. कालवाद–यह सिद्धान्त सृष्टि-वैविध्य और वैयक्तिक-विभिन्नताओं का कारण काल को स्वीकार करता है। जिसका जो समय या काल होता है तभी वह घटित होता है, जैसे–अपनी ऋतु (समय) आने पर ही वृक्ष में फल लगते हैं।

२. स्वभाववाद–संसार में जो भी घटित होगा या होता है, उसका आधार वस्तुओं का अपना-अपना स्वभाव है। संसार में कोई भी स्वभाव का उल्लंघन नहीं कर सकता है।

३. नियतिवाद–संसार का समग्र घटना-क्रम पूर्व नियत है, जो जिस रूप में होना होता है वैसा ही होता है, उसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता।

४. यदृच्छावाद–किसी भी घटना का कोई नियत हेतु या कारण नहीं होता है। समस्त घटनाएँ मात्र संयोग का परिणाम हैं। यदृच्छावाद हेतु के स्थान पर संयोग (Chance) को प्रमुख बना देता है।

५. महाभूतवाद–समग्र अस्तित्व के मूल में पंचमहाभूतों की सत्ता रही है। संसार उनके वैविध्यमय विभिन्न संयोगों का ही परिणाम है।

६. प्रकृतिवाद–विश्व-वैविध्य त्रिगुणात्मक प्रकृति का ही खेल है। मानवीय सुख-दुःख भी प्रकृति के ही अधीन है।

७. ईश्वरवाद–ईश्वर इस जगत् का रचयिता एवं नियामक है, जो कुछ भी होता है, वह सब उसकी इच्छा या क्रियाशक्ति का परिणाम है।

८. पुरुषवाद–वैयक्तिक विभिन्नता और सांसारिक घटना-क्रम के मूल में पुरुष का पुरुषार्थ ही प्रमुख है।

वस्तुतः जगत्-वैविध्य और वैयक्तिक भिन्नताओं की तार्किक व्याख्या के इन्हीं प्रयत्नों में कर्म-सिद्धान्त का विकास हुआ है जिसमें पुरुषवाद की प्रमुख भूमिका रही है। कर्म-सिद्धान्त उपर्युक्त सिद्धान्तों का पुरुषवाद के साथ समन्वय का प्रयत्न है।

श्वेताश्वेतरोपनिषद् (१/१-२) के प्रारम्भ में ही यह प्रश्न उठाया गया है कि हम किसके द्वारा प्रेरित होकर संसार-यात्रा का अनुवर्तन कर रहे हैं। आगे ऋषि यह जिज्ञासा प्रकट करता है कि क्या काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, भूत-योनि अथवा पुरुष या इन सबका संयोग ही इसका कारण है। वस्तुतः इन सभी विचारधाराओं में पुरुषवाद को छोड़कर शेष सभी विश्व-वैचित्र्य और वैयक्तिक-वैविध्य की व्याख्या के लिए किसी न किसी बाह्य-तथ्य पर ही बल दे रही थी। हम इनमें से किसी भी सिद्धान्त को मानें, वैविध्य का कारण व्यक्ति से भिन्न ही मानना होगा, किन्तु ऐसी स्थिति में व्यक्ति पर नैतिक दायित्व का आरोपण सम्भव नहीं हो पाता है। यदि हम जो कुछ भी करते हैं और जो कुछ भी पाते हैं, उसका कारण बाह्य तथ्य ही है, तो फिर हम किसी भी कार्य के लिए नैतिक दृष्टि से उत्तरदायी ठहराये नहीं जा सकते। यदि व्यक्ति काल, स्वभाव, नियति अथवा ईश्वर की इच्छाओं का एक साधन मात्र है, तो वह उस कठपुतली के समान है, जो दूसरे के इशारों पर ही कार्य करती है। किन्तु ऐसी स्थिति में पुरुष में इच्छा-स्वातन्त्र्य का अभाव मानने पर नैतिक उत्तरदायित्व की समस्या उठती है। सामान्य मनुष्य को नैतिकता के प्रति आस्थावान् बनाने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति को उसके शुभाशुभ कर्मों के प्रति उत्तरदायी बनाया जा सके और यह तभी सम्भव है जब उसके मन में विश्वास हो कि उसे उसकी स्वतन्त्र इच्छा से किये गये अपने ही कर्मों का परिणाम प्राप्त होता है। यही कर्म-सिद्धान्त है। ज्ञातव्य है कि कर्म-सिद्धान्त ईश्वरीय कृपा या अनुग्रह के विरोध में जाता है, वह तो यह मानता है कि ईश्वर भी कर्मफल-व्यवस्था को अन्यथा नहीं कर सकता है। कर्म का नियम ही सर्वोपरि है।

---

१. उत्तराध्ययन सूत्र, ३४/२९-३०

२. वही, ३४/३१-३२

कर्म-सिद्धान्त और कार्यकारण का नियम

आचार के क्षेत्र में इस कर्म-सिद्धान्त की उतनी ही आवश्यकता है जितनी विज्ञान के क्षेत्र में कार्यकारण-सिद्धान्त की। जिस प्रकार कार्यकारण-सिद्धान्त के अभाव में वैज्ञानिक व्याख्यायें असम्भव होती हैं, उसी प्रकार कर्म-सिद्धान्त के अभाव में नीतिशास्त्र भी अर्थ-शून्य हो जाता है।

प्रो. वेंकटरमण के शब्दों में कर्म-सिद्धान्त कार्यकारण-सिद्धान्त के नियमों एवं मान्यताओं का मानवीय आचार के क्षेत्र में प्रयोग है, जिसकी उप-कल्पना यह है कि जगत् में सभी कुछ किसी नियम के अधीन है। मैक्समूलर लिखते हैं कि यह विश्वास कि कोई भी अच्छा-बुरा कर्म बिना फल दिए समाप्त नहीं होता, नैतिक जगत् का वैसा ही विश्वास है, जैसा भौतिक जगत् में ऊर्जा की अविनाशिता का नियम है।[१] यद्यपि कर्म-सिद्धान्त एवं वैज्ञानिक कार्यकारण-सिद्धान्त में सामान्य रूप से समानता प्रतीत होती है, किन्तु उनमें एक मौलिक अन्तर भी है, यह कि जहाँ कार्यकारण-सिद्धान्त का विवेच्य जड़ तत्त्व के क्रिया-कलाप हैं वहीं कर्म-सिद्धान्त का विवेच्य चेतना सत्ता के क्रिया-कलाप हैं। अतः कर्म-सिद्धान्त में वैसी पूर्ण नियतता नहीं होती, जैसी कार्यकारण-सिद्धान्त में होती है। यह नियतता एवं स्वतंत्रता का समुचित संयोग है। कर्म-सिद्धान्त की मौलिक स्वीकृति यही है कि प्रत्येक शुभाशुभ क्रिया का कोई प्रभाव या परिणाम अवश्य होता है। साथ ही उस कर्म-विपाक या परिणाम का भोक्ता वही होता है जो क्रिया का कर्ता होता है और कर्म एवं विपाक की यह परम्परा अनादिकाल से चल रही है।

कर्म-सिद्धान्त की उपयोगिता

कर्म-सिद्धान्त की व्यावहारिक उपयोगिता यह है कि वह न केवल हमें नैतिकता के प्रति आस्थावान् बनाता है, अपितु वह हमारे सुख-दुःख आदि का स्रोत हमारे व्यक्तित्व में ही खोजकर ईश्वर एवं प्रतिवेशी अर्थात् अन्य व्यक्तियों के प्रति कटुता का निवारण करता है। कर्म-सिद्धान्त की स्थापना का प्रयोजन यही है कि नैतिक कृत्यों के अनिवार्य फल के आधार पर उनके प्रेरक कारणों एवं अनुवर्ती परिणामों की व्याख्या की जा सके तथा व्यक्तियों को अशुभ या दुष्कर्मों से विमुख किया जा सके।

जैन कर्म-सिद्धान्त और अन्य दर्शन

ऐतिहासिक दृष्टि से वेदों में उपस्थित ऋत का सिद्धान्त कर्म-नियम का आदि स्रोत है। यद्यपि उपनिषदों के पूर्व के वैदिक साहित्य में कर्म-सिद्धान्त का कोई सुस्पष्ट विवेचन नहीं मिलता, फिर भी उसमें उपस्थित ऋत के नियम की व्याख्या इस रूप में की जा सकती है। प्रो. दलसुख मालवणिया के शब्दों में कर्म जगत् वैचित्र्य का कारण है, ऐसा वाद उपनिषदों का सर्व-सम्मतवाद हो, यह नहीं कहा जा सकता। भारतीय चिन्तन में कर्म-सिद्धान्त का विकास जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों परम्पराओं में हुआ है। यद्यपि यह एक भिन्न बात है कि जैनों ने कर्म-सिद्धान्त का जो गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया वह अन्य परम्पराओं में उपलब्ध नहीं है।[२] वैदिकों के लिए जो महत्त्व ऋत का, मीमांसकों के लिए अपूर्व का, नैयायिकों के लिए अदृष्ट का, वेदान्तियों के लिए माया का और सांख्यों के लिए प्रकृति का है, वही जैनों के लिए कर्म का है। यद्यपि सामान्य दृष्टि से देखने पर वेदों का ऋत, मीमांसकों का अपूर्व, नैयायिकों का अदृष्ट, अद्वैतियों की माया, सांख्यों की प्रकृति एवं बौद्धों की अविद्या या संस्कार पर्यायवाची से लगते हैं, क्योंकि व्यक्ति के बन्धन एवं उसके सुख-दुःख की स्थितियों में इनकी मुख्य भूमिका है, फिर भी इनके स्वरूप में दार्शनिक दृष्टि से अन्तर भी है, यह बात हमें दृष्टिगत रखनी होगी। ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म में भी कर्म-नियम को स्थान मिला है। फिर भी ईश्वरीय अनुग्रह पर अधिक बल देने के कारण उनमें कर्म-नियम के प्रति आस्था के स्थान पर ईश्वर के प्रति विश्वास ही प्रमुख रहा है। ईश्वर की अवधारणा के अभाव के कारण भारत की श्रमण परम्परा कर्म-सिद्धान्त के प्रति अधिक आस्थावान् रही है, बौद्ध दर्शन में भी जैनों के समान ही कर्म-नियम को सर्वोपरि माना गया। हिन्दू धर्म में भी ईश्वरीय व्यवस्था को कर्म-नियम के अधीन लाया गया, उसमें ईश्वर कर्म-नियम का व्यवस्थापक होकर भी उसके अधीन ही कार्य करता है।

जैन कर्म-सिद्धान्त का विकास किस क्रम में हुआ, इस प्रश्न का समाधान उतना सरल नहीं है, जितना कि हम समझते हैं। सामान्य विश्वास तो यह है कि जैन धर्म की तरह यह भी अनादि है, किन्तु विद्वत्-वर्ग इसे स्वीकार नहीं करता है। यदि जैन कर्म-सिद्धान्त के विकास का कोई समाधान देना हो तो, वह जैन आगम एवं कर्म-सिद्धान्त सम्बन्धी ग्रन्थों के कालक्रम के आधार पर ही दिया जा सकता है, उसके अतिरिक्त अन्य विकल्प नहीं है। जैन आगम साहित्य में आचारांग प्राचीनतम है। उस ग्रन्थ में जैन कर्म-सिद्धान्त का चाहे विकसित स्वरूप उपलब्ध न हो, किन्तु उसकी मूलभूत अवधारणाएँ अवश्य उपस्थित हैं। कर्म से उपाधि या बन्धन होता है, कर्म रज है, कर्म का आस्रव होता है, साधक को कर्म-शरीर को धुन डालना चाहिए आदि विचार उसमें परिलक्षित होते हैं। इससे यह फलित होता है कि आचारांग के काल में कर्म को स्पष्ट रूप से बन्धन का कारण माना जाता था और कर्म के भौतिक पक्ष की स्वीकृति के साथ यह भी माना जाता था कि कर्म की निर्जरा की जा सकती है। साथ ही आचारांग में शुभाशुभ कर्मों का शुभाशुभ विपाक होता है, यह अवधारणा भी उपस्थित है। उसके अनुसार बन्धन का मूल कारण ममत्व है। बन्धन से मुक्ति का उपाय ममत्व का विसर्जन और समत्व का सर्जन है।[३]

---

१. Maxmullar—Three Lectures on Vedanta Philosophy, p. 165

२. पं. दलसुखभाई मालवणिया, आत्म-मीमांसा (जैन संस्कृति संशोधन मण्डल)

३. रविन्द्रनाथ मिश्रा, जैन कर्म-सिद्धान्त का उद्भव एवं विकास (पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी-५, १९८५), पृ. ८

सूत्रकृतांग का प्रथमं श्रुतस्कन्ध भी आचारांग से किंचित् ही परवर्ती माना जाता है। सूत्रकृतांग के काल में यह प्रश्न बहुचर्चित था कि कर्म का फल संविभाग सम्भव है या नहीं ? इसमें स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया गया है कि व्यक्ति अपने स्वकृत कर्मों का विपाक अनुभव करता है। बन्धन के सम्बन्ध में सूत्रकृतांग स्पष्ट रूप से कहता है कि कुछ व्यक्ति कर्म और अकर्म को वीर्य (पुरुषार्थ) कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि कर्म के सन्दर्भ में यह विचार लोगों के मन में उत्पन्न हो गया था कि यदि कर्म ही बन्धन है तो फिर अकर्म अर्थात् निष्क्रियता ही बन्धन से बचने का उपाय होगा, किन्तु सूत्रकृतांग के अनुसार अकर्म का अर्थ निष्क्रियता नहीं है। इसमें प्रतिपादित है कि प्रमाद कर्म है और अप्रमाद अकर्म है। वस्तुतः किसी क्रिया की बन्धकता उसके क्रिया-रूप होने पर नहीं, अपितु उसके पीछे रही प्रमत्तता या अप्रमत्तता पर निर्भर है। यहाँ प्रमाद का अर्थ है आत्मचेतना (Self-awareness) का अभाव। जिस आत्मा का विवेक जाग्रत नहीं है और जो कषाययुक्त है, वही परिसुप्त या प्रमत्त है और जिसका विवेक जाग्रत है और जो वासना-मुक्त है, वही अप्रमत्त है। सूत्रकृतांग में ही हमें क्रियाओं के दो रूपों की चर्चा भी मिलती है–(१) साम्परायिक और (२) ईर्यापथिक।[१] राग, द्वेष, क्रोध आदि कषायों से युक्त क्रियायें साम्परायिक कही जाती हैं, जबकि इनसे रहित क्रियायें ईर्यापथिक कही जाती हैं। साम्परायिक क्रियायें बन्धक होती हैं, जबकि ईर्यापथिक बन्धनकारक नहीं होतीं। इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सूत्रकृतांग में कौन-सा कर्म-बन्धन का कारण होगा और कौन-सा कर्म-बन्धन का कारण नहीं होगा, इसकी एक कसौटी प्रस्तुत कर दी गई है। आचारांग सूत्र में प्रतिपादित ममत्व की अपेक्षा इसमें प्रमत्तता और कषाय को बन्धन का प्रमुख कारण माना गया है।

यदि हम बन्धन के कारणों का ऐतिहासिक दृष्टि से विश्लेषण करें, तो यह पाते हैं कि प्रारम्भ में ममत्व (मेरेपन) को बन्धन का कारण माना गया, फिर आत्म-विस्मृति या प्रमाद को। जब प्रमाद की व्याख्या का प्रश्न आया तो स्पष्ट किया गया कि राग-द्वेष की उपस्थिति ही प्रमाद है। अतः राग-द्वेष को बन्धन का कारण बताया गया। राग-द्वेष का कारण मोह माना गया, अतः उत्तराध्ययन में राग-द्वेष एवं मोह को बन्धन का कारण बताया गया है।[२] इनमें मोह मिथ्यात्व और कषाय का संयुक्त रूप है। प्रमाद के साथ इनमें अविरति एवं योग के जुड़ने पर जैन परम्परा में बन्धन के ५ कारण माने जाने लगे।[३] समयसार आदि में प्रमाद को कषाय का ही एक रूप मानकर बन्धन के चार कारणों का उल्लेख मिलता है।[४] इनमें योग बन्धनकारक होते हुए भी वस्तुतः जब तक कषाय के साथ युक्त नहीं होता है, बन्धन का कारण नहीं बनता है। अतः प्राचीन ग्रन्थों में बन्धन के कारणों की चर्चा में मुख्य रूप से राग-द्वेष (कषाय) एवं मोह (मिथ्या-दृष्टि) की ही चर्चा हुई है।

जैन कर्म-सिद्धान्त के इतिहास की दृष्टि से कर्म-प्रकृतियों का विवेचन भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। कर्म की अष्ट मूल-प्रकृतियों का सर्वप्रथम निर्देश ऋषिभाषित के पार्श्व नामक अध्ययन में उपलब्ध होता है।[५] इसमें ८ प्रकार की कर्म-ग्रन्थियों का उल्लेख है। यद्यपि वहाँ इनके नामों की कोई चर्चा उपलब्ध नहीं होती है। ८ प्रकार की कर्म-प्रकृतियों के नामों का स्पष्ट उल्लेख हमें उत्तराध्ययन के ३३वें अध्याय में और स्थानांग में मिलता है।[६] स्थानांग की अपेक्षा भी उत्तराध्ययन में यह वर्णन विस्तृत है, क्योंकि इसमें अवान्तर कर्म-प्रकृतियों की चर्चा भी हुई है। इसमें ज्ञानावरण कर्म की ५, दर्शनावरण की ९, वेदनीय की २, मोहनीय की २ एवं २८, नाम-कर्म की २ एवं अनेक, आयुष्य-कर्म की ४, गोत्र-कर्म की २ और अन्तराय-कर्म की ५ अवान्तर प्रकृतियों का उल्लेख मिलता है।[७] आगे जो कर्म-साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थ निर्मित हुए उनमें नाम-कर्म की प्रकृतियों की संख्या में और भी वृद्धि हुई, साथ ही उनमें आत्मा में किस अवस्था में कितनी कर्म-प्रकृतियों का उदय, सत्ता, बन्ध आदि होते हैं, इसकी भी चर्चा हुई। वस्तुतः जैन कर्म-सिद्धान्त ई. पू. आठवीं शती से लेकर ईस्वी सन् की सातवीं शती तक लगभग पन्द्रह सौ वर्ष की सुदीर्घ अवधि में व्यवस्थित होता रहा है। यह एक सुनिश्चित सत्य है कि कर्म-सिद्धान्त का जितना गहन विश्लेषण जैन परम्परा के कर्म-सिद्धान्त सम्बन्धी साहित्य में हुआ उतना अन्यत्र किसी भी परम्परा में नहीं हुआ है।

कर्म शब्द का अर्थ

जब हम जैन कर्म-सिद्धान्त की बात करते हैं, तो हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि उसमें कर्म शब्द एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वह अर्थ कर्म के उस सामान्य अर्थ की अपेक्षा अधिक व्यापक है। सामान्यतया कोई भी क्रिया कर्म कहलाती है, प्रत्येक हलचल चाहे वह मानसिक हो, वाचिक हो या शारीरिक हो कर्म है। किन्तु जैन परम्परा में जब हम कर्म शब्द का प्रयोग करते हैं, तो वहाँ ये क्रियायें तभी कर्म बनती हैं, जब ये बन्धन का कारण हों। मीमांसा-दर्शन में कर्म का तात्पर्य यज्ञ-याग आदि क्रियाओं से लिया जाता है। गीता आदि में कर्म का अर्थ अपने वर्णाश्रम के अनुसार किये जाने वाले कर्मों से लिया गया है। यद्यपि गीता एक व्यापक अर्थ में भी कर्म शब्द का प्रयोग करती है। उसके अनुसार मनुष्य जो भी करता है या करने का आग्रह रखता है, वे सभी प्रवृत्तियाँ कर्म की श्रेणी में आती हैं। बौद्ध-दर्शन में चेतना को ही कर्म कहा गया है। बुद्ध कहते हैं कि "भिक्षुओं कर्म, चेतना ही है", ऐसा मैं इसलिए कहता हूँ कि चेतना के द्वारा ही व्यक्ति कर्म को करता है, काया से, मन से या वाणी से।[८] इस प्रकार बौद्ध-दर्शन में कर्म के समुत्थान या कारक को ही कर्म कहा गया है। बौद्ध-दर्शन में

---

१. रविन्द्रनाथ मिश्रा, जैन कर्म-सिद्धान्त का उद्भव एवं विकास (पार्श्वनाथ शोधपीठ, वाराणसी-५, १९८५), पृ. ९-१०
२. रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, उत्तराध्ययन सूत्र, ३२/७
३. (अ) समवायांग सूत्र, ५१४
(ब) इसिभासियाइं, ९/५
(स) तत्त्वार्थ सूत्र, ८/१
४. कुन्दकुन्द, समयसार, १७१
५. (अ) अट्ठविहं कम्मगंथि–इसिभासियाइं, ३१
(ब) अट्ठविहं कम्मरयमलं–इसिभासियाइं, २३
६. उत्तराध्ययन सूत्र (सं. मधुकर मुनि), ३३/२-३
७. वही, ३३/४-१५
८. अंगुत्तर निकाय उपाध्याय भरतसिंह, बौद्ध-दर्शन व अन्य भारतीय-दर्शन, पृ. ४६३

आगे चलकर चेतना कर्म और चेतयित्वा कर्म की चर्चा हुई है। चेतना कर्म मानसिक कर्म है, चेतयित्वा कर्म वाचिक एवं कायिक कर्म है।[१] किन्तु हमें ध्यान रखना चाहिए कि जैन कर्म-सिद्धान्त में कर्म शब्द अधिक वाचिक अर्थ में गृहीत हुआ है। उसमें मात्र क्रिया को ही कर्म नहीं कहा गया, अपितु उसके हेतु (कारण) को भी कर्म कहा गया है। आचार्य देवेन्द्रसूरि लिखते हैं–जीव की क्रिया का हेतु ही कर्म है।[२] किन्तु हम मात्र हेतु को भी कर्म नहीं कह सकते हैं। हेतु उससे निष्पन्न क्रिया और उस क्रिया का परिणाम, सभी मिलकर जैन-दर्शन में कर्म की परिभाषा को स्पष्ट करते हैं। पं. सुखलाल जी संघवी लिखते हैं कि मिथ्यात्व, कषाय आदि कारणों से जीव द्वारा जो किया जाता है, वह कर्म कहलाता है। मेरी दृष्टि से इसके साथ ही साथ कर्म में उस क्रिया के विपाक को भी सम्मिलित करना होगा। इस प्रकार कर्म के हेतु, क्रिया और क्रिया-विपाक सभी मिलकर कर्म कहलाते हैं। जैन-दार्शनिकों ने कर्म के दो पक्ष माने हैं–(१) **राग-द्वेष एवं कषाय**–ये सभी मनोभाव, भाव-कर्म कहे जाते हैं। (२) **कर्म-पुद्‌गल**–ये द्रव्य-कर्म कहे जाते हैं। ये भाव-कर्म के परिणाम होते हैं, साथ ही मनोजन्य-कर्म की उत्पत्ति का निमित्त कारण भी होते हैं। यह भी स्मरण रखना होगा कि ये कर्म हेतु (भाव-कर्म) और कर्म-परिणाम (द्रव्य-कर्म) भी परस्पर कार्य-कारण भाव रखते हैं।

सभी आस्तिक दर्शनों ने एक ऐसी सत्ता को स्वीकार किया है, जो आत्मा या चेतना की शुद्धता को प्रभावित करती है। उसे वेदान्त में माया, सांख्य में प्रकृति, न्याय-दर्शन में अदृष्ट एवं मीमांसा में अपूर्व कहा गया है। बौद्ध-दर्शन में उसे ही अविद्या और संस्कार (वासना) के नाम से जाना जाता है। योग-दर्शन में इसे आशय कहा जाता है, तो शैव-दर्शन में यह पाश कहलाती है। जैन-दर्शन इसी आत्मा की विशुद्धता को प्रभावित करने वाली शक्ति को 'कर्म' कहता है। जैन-दर्शन में कर्म के निमित्त कारणों के रूप में कर्म-पुद्‌गल को भी स्वीकार किया गया है, जबकि इसके उपादान के रूप में आत्मा को ही माना गया है। आत्मा के बन्धन में कर्म-पुद्‌गल निमित्त-कारण है और स्वयं आत्मा उपादान-कारण होता है।

कर्म का भौतिक स्वरूप

जैन-दर्शन में कर्म चेतना से उत्पन्न क्रिया मात्र नहीं है, अपितु यह स्वतन्त्र तत्त्व भी है। आत्मा के बन्धन का कारण क्या है ? जब यह प्रश्न जैन दार्शनिकों के समक्ष आया तो उन्होंने बताया कि आत्मा के बन्धन का कारण केवल आत्मा नहीं हो सकती। वस्तुतः कषाय (राग-द्वेष) अथवा मोह (मिथ्यात्व) आदि जो बन्धक मनोवृत्तियाँ हैं, वे भी स्वतः उत्पन्न नहीं हो सकतीं, जब तक कि वे पूर्वबद्ध कर्म-वर्गणाओं के विपाक (संस्कार) के रूप में चेतना के समक्ष उपस्थित नहीं होती हैं। जिस प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शरीर-रसायनों के परिवर्तन से संवेग (मनोभाव) उत्पन्न होते हैं और उन संवेगों के कारण ही शरीर-रसायनों में परिवर्तन होता है। यही स्थिति आत्मा की भी है। पूर्व-कर्मों के कारण आत्मा में राग-द्वेष आदि मनोभाव उत्पन्न (उदित) होते हैं और इन उदय में आये मनोभावों के क्रिया-रूप परिणत होने पर आत्मा नवीन कर्मों का संचय करती है। बन्धन की दृष्टि से कर्म-वर्गणाओं के कारण मनोभाव उत्पन्न होते हैं और उन मनोभावों के कारण जड़ कर्म-वर्गणाएँ कर्म का स्वरूप ग्रहण कर आत्मा को बन्धन में डालती हैं। जैन विचारकों के अनुसार एकान्त रूप से न तो आत्मा स्वतः ही बन्धन का कारण है, न कर्म-वर्गणा के पुद्‌गल ही। दोनों निमित्त एवं उपादान के रूप से एक-दूसरे से संयुक्त होकर ही बन्धन की प्रक्रिया को जन्म देते हैं।

द्रव्य-कर्म और भाव-कर्म

कर्म-वर्गणाएँ या कर्म का भौतिक पक्ष, द्रव्य-कर्म कहलाता है। जबकि कर्म की चैतसिक अवस्थाएँ अर्थात् मनोवृत्तियाँ, भाव-कर्म हैं। आत्मा के मनोभाव या चेतना की विविध विकारित अवस्थाएँ भाव-कर्म हैं और ये मनोभाव जिस निमित्त से उत्पन्न होते हैं, वह पुद्‌गल-द्रव्य द्रव्य-कर्म है। आचार्य नेमिचन्द गोम्मटसार में लिखते हैं कि पुद्‌गल द्रव्य-कर्म है और उसकी चेतना को प्रभावित करने वाली शक्ति भाव-कर्म है।[३] आत्मा में जो मिथ्यात्व और कषाय अथवा राग-द्वेष आदि भाव हैं, वे ही भाव-कर्म हैं और उनकी उपस्थिति में कर्म-वर्गणा के जो पुद्‌गल परमाणु ज्ञानावरण आदि कर्म-प्रकृतियों के रूप में परिणत होते हैं, वे ही द्रव्य-कर्म हैं। द्रव्य-कर्म का कारण भाव-कर्म है और भाव-कर्म का कारण द्रव्य-कर्म है। आचार्य विद्यानन्दी ने अष्टसहस्री में द्रव्य-कर्म को आवरण व भाव-कर्म को दोष कहा है। चूँकि द्रव्य-कर्म आत्म-शक्ति के प्रकटन को रोकता है, इसलिए वह आवरण है और भाव-कर्म स्वयं आत्मा की विभाव अवस्था है, अतः वह दोष है।[४] कर्म-वर्गणा के पुद्‌गल तब तक कर्मरूप में परिणत नहीं होते हैं, जब तक ये भाव-कर्मों द्वारा प्रेरित नहीं होते हैं। किन्तु साथ ही यह भी स्मरण रखना होगा कि आत्मा में जो विभाव दशाएँ हैं, उनके निमित्त कारण के रूप में द्रव्य-कर्म भी अपना कार्य करते हैं। यह सत्य है कि दूषित मनोविकारों का जन्म आत्मा में ही होता है, किन्तु उसके निमित्त (परिवेश) के रूप में कर्म-वर्गणाएँ अपनी भूमिका का अवश्य निर्वाह करती हैं। जिस प्रकार हमारे स्वभाव में परिवर्तन का कारण हमारे जैव-रसायनों एवं रक्त-रसायनों का परिवर्तन है, उसी प्रकार कर्म-वर्गणाएँ हमारे मनोविकारों के सृजन में निमित्त कारण होती हैं। पुनः जिस प्रकार हमारे मनोभावों के आधार पर हमारे जैव-रसायन एवं रक्त-रसायन में परिवर्तन होता है, वैसे ही आत्मा में विकारी भावों के कारण जड़ कर्म-वर्गणा के पुद्‌गल कर्मरूप में परिणत हो जाते हैं। अतः द्रव्य-कर्म

---

१. देखें–आचार्य नरेन्द्रदेव, बौद्ध धर्म दर्शन, पृ. २५०

२. देवेन्द्रसूरि, कर्मग्रन्थ प्रथम, कर्म-विपाक

३. पं. सुखलाल संघवी, दर्शन व चिन्तन, पृ. २२५

४. आचार्य नेमिचन्द, गोम्मटसार, कर्मकाण्ड ६

और भाव-कर्म भी परस्पर सापेक्ष हैं। पं. सुखलाल जी लिखते हैं कि भाव-कर्म के होने में द्रव्य-कर्म निमित्त है और द्रव्य-कर्म के होने में भाव-कर्म निमित्त है।[१] दोनों आपस में वीजांकुर की तरह सम्बद्ध हैं। जिस प्रकार वीज से वृक्ष और वृक्ष से वीज उत्पन्न होता है, उनमें किसी को पूर्वापर नहीं कहा जा सकता है, वैसे इनमें भी किसी की पूर्वापरता का निश्चय नहीं हो सकता है। प्रत्येक द्रव्य-कर्म की अपेक्षा से भाव-कर्म पूर्व होगा तथा प्रत्येक भाव-कर्म की अपेक्षा से द्रव्य-कर्म पूर्व होगा।

द्रव्य-कर्म एवं भाव-कर्म की इस अवधारणा के आधार पर जैन कर्म-सिद्धान्त अधिक युक्ति-संगत वन गया है। जैन कर्म-सिद्धान्त कर्म के भावात्मक पक्ष पर समुचित वल देते हुए भी जड़ और चेतन के मध्य एक वास्तविक सम्वन्ध वनाने का प्रयास करता है। कर्म जड़-जगत् एवं चेतना के मध्य एक योजक कड़ी है। जहाँ एक ओर सांख्य-योग दर्शन के अनुसार कर्म-पूर्णतः जड़ प्रकृति से सम्वन्धित है। अतः उनके अनुसार वह प्रकृति ही है, जो वन्धन में आती है और मुक्त होती है। वहीं दूसरी ओर बौद्ध-दर्शन के अनुसार कर्म संस्कार रूप है अतः वे चैतसिक हैं। इसलिए उन्हें मानना पड़ा कि चेतना ही वन्धन एवं मुक्ति का कारण है। किन्तु जैन विचारक इन एकांगी दृष्टिकोणों से सन्तुष्ट नहीं हो पाये। उनके अनुसार संसार का अर्थ है–जड़ और चेतन का पारस्परिक वन्धन या उनकी पारस्परिक प्रभावशीलता तथा मुक्ति का अर्थ है–जड़ एवं चेतन की एक-दूसरे को प्रभावित करने की सामर्थ्य का समाप्त हो जाना।

मूर्त्त कर्म का अमूर्त्त आत्मा पर प्रभाव

यह भी सत्य है कि कर्म मूर्त्त है और वे हमारी चेतना को प्रभावित करते हैं। जैसे मूर्त्त भौतिक विषयों का चेतन व्यक्ति से सम्वन्ध होने पर सुख-दुःख आदि का अनुभव या वेदना होती है, वैसे ही कर्म के परिणामस्वरूप भी वेदना होती है, अतः वे मूर्त्त हैं। किन्तु दार्शनिक दृष्टि से यह प्रश्न किया जा सकता है कि यदि कर्म मूर्त्त है तो वह अमूर्त्त आत्मा पर प्रभाव कैसे डालेगा ? जिस प्रकार वायु और अग्नि अमूर्त्त आकाश पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डाल सकती है, उसी प्रकार कर्म का अमूर्त्त आत्मा पर भी कोई प्रभाव नहीं होना चाहिए। जैन-दार्शनिक यह मानते हैं कि जैसे अमूर्त्त ज्ञानादि गुणों पर मूर्त्त मदिरादि का प्रभाव पड़ता है, वैसे ही अमूर्त्त जीव पर भी मूर्त्त कर्म का प्रभाव पड़ता है। उक्त प्रश्न का दूसरा तर्क-संगत एवं निर्दोष समाधान यह भी है कि कर्म के सम्वन्ध से आत्मा कथंचित् मूर्त्त भी है। क्योंकि संसारी आत्मा अनादिकाल से कर्मद्रव्य से सम्वद्ध है, इस अपेक्षा से आत्मा सर्वथा अमूर्त्त नहीं है, अपितु कर्म से सम्वद्ध होने के कारण स्वरूपतः अमूर्त्त होते हुए भी वस्तुतः कथंचित् मूर्त्त है। इस दृष्टि से भी आत्मा पर मूर्त्त कर्म का उपघात, अनुग्रह और प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः जिस पर कर्म-सिद्धान्त का नियम लागू होता है, वह व्यक्तित्व अमूर्त्त नहीं है। हमारा वर्तमान व्यक्तित्व शरीर (भौतिक) और आत्मा (अभौतिक) का एक विशिष्ट संयोग है। शरीरी आत्मा भौतिक वाह्य तथ्यों से अप्रभावित नहीं रह सकता। जव तक आत्मा-शरीर (कर्म-शरीर) के वन्धन से मुक्त नहीं हो जाती, तव तक वह अपने को भौतिक प्रभावों से पूर्णतया अप्रभावित नहीं रख सकती। मूर्त्त शरीर के माध्यम से ही उस पर मूर्त्त कर्म का प्रभाव पड़ता है।

आत्मा और कर्म-वर्गणाओं में वास्तविक सम्वन्ध स्वीकार करने पर यह प्रश्न उठता है कि मुक्त अवस्था में भी जड़ कर्म-वर्गणाएँ आत्मा को प्रभावित किये विना नहीं रहेंगी, क्योंकि मुक्ति क्षेत्र में भी कर्म-वर्गणाओं का अस्तित्व तो है ही। इस सन्दर्भ में जैन आचार्यों का उत्तर यह है कि जिस प्रकार कीचड़ में रहा लोहा जंग खाता है, परन्तु स्वर्ण नहीं, उसी प्रकार जड़-कर्म पुद्‌गल उसी आत्मा को विकारी वना सकते हैं, जो राग-द्वेष से अशुद्ध है। वस्तुतः जव तक आत्मा भौतिक शरीर से युक्त होती है, तभी तक कर्म-वर्गणा के पुद्‌गल उसे प्रभावित कर सकते हैं। आत्मा में पूर्व से उपस्थित कर्म-वर्गणा के पुद्‌गल ही वाह्य-जगत् के कर्म-वर्गणाओं को आकर्षित कर सकते हैं। मुक्त अवस्था में आत्मा अशरीरी होती है अतः उसे कर्म-वर्गणा के पुद्‌गल प्रभावित करने में समर्थ नहीं होते हैं।

कर्म एवं उनके विपाक की परम्परा

कर्म एवं उनके विपाक की परम्परा से ही यह संसार-चक्र प्रवर्तित होता है। दार्शनिक दृष्टि से यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि कर्म और आत्मा का सम्वन्ध कव से हुआ यदि हम यह सम्वन्ध सादि अर्थात् काल विशेष में हुआ, ऐसा मानते हैं, तो यह मानना होगा कि उसके पहले आत्मा मुक्त थी और यदि मुक्त आत्मा को वन्धन में आने की सम्भावना हो तो फिर मुक्ति का कोई मूल्य ही नहीं रह जाता है। यदि यह माना जाय कि आत्मा अनादिकाल से वन्धन में है, तो फिर यह मानना होगा कि यदि वन्धन अनादि है तो वह अनन्त भी होगा, ऐसी स्थिति में मुक्ति की सम्भावना ही समाप्त हो जायेगी।

जैन दार्शनिकों ने इस समस्या का समाधान इस रूप में किया कि कर्म और विपाक की यह परम्परा कर्म विशेष की अपेक्षा से तो सादि और सान्त है, किन्तु प्रवाह की अपेक्षा से अनादि और अनन्त है। पुनः कर्म और विपाक की परम्परा का यह प्रवाह भी व्यक्ति विशेष की दृष्टि से अनादि तो है, अनन्त नहीं। क्योंकि प्रत्येक कर्म अपने वन्धन की दृष्टि से सादि है। यदि व्यक्ति नवीन कर्मों का आगमन रोक सके तो यह परम्परा स्वतः ही समाप्त हो जायेगी, क्योंकि कर्म-विशेष तो सादि है ही और जो सादि है, वह कभी समाप्त होगा ही।

जैन दार्शनिकों के अनुसार राग-द्वेष रूपी कर्मवीज के भुन जाने पर कर्म प्रवाह की परम्परा समाप्त हो जाती है। कर्म और विपाक की परम्परा के सन्दर्भ में यही एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसके आधार पर वन्धन का अनादित्व व मुक्ति से अनावृत्ति की समुचित व्याख्या सम्भव है।

---

१. आचार्य विद्यानन्दी, अष्टसहस्री, पृ. ५१, उद्धृत—Tatia N. M. Studies in Jaina Philosophy (P. V. Research Institute, Varanasi-5), p. 227

कर्मफल संविभाग का प्रश्न

क्या एक व्यक्ति अपने शुभाशुभ कर्मों का फल दूसरे को दे सकता है या नहीं अथवा दूसरे के कर्मों का फल उसे प्राप्त होता है या नहीं, यह दार्शनिक दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। भारतीय चिन्तन में हिन्दू परम्परा मानती है कि व्यक्ति के शुभाशुभ कर्मों का फल उसके पूर्वजों व सन्तानों को मिल सकता है। इस प्रकार वह इस सिद्धान्त को मानती है कि कर्मफल का संविभाग सम्भव है।[१] इसके विपरीत बौद्ध परम्परा कहती है कि व्यक्ति के पुण्यकर्म का ही संविभाग हो सकता है, पापकर्म का नहीं। क्योंकि पापकर्म में उसकी अनुमति नहीं होती है। पुनः उनके अनुसार पाप सीमित होता है उतः इसका संविभाग नहीं हो सकता, किन्तु पुण्य के अपरिमित होने से उसका ही संविभाग सम्भव है।[२] किन्तु इस सम्बन्ध में जैनों का दृष्टिकोण भिन्न है, उनके अनुसार व्यक्ति अपने कर्मों का फल-विपाक न तो दूसरों को दे सकता है और न दूसरे के शुभाशुभ कर्मों का फल उसे मिल सकता है। जैन दार्शनिक स्पष्ट रूप से यह कहते हैं कि कर्म और उसका विपाक व्यक्ति का अपना स्वकृत होता है।[३]

जैन कर्म-सिद्धान्त में कर्मफल संविभाग का अर्थ समझने के लिए हमें निमित्त कारण और उपादान कारण के भेद को समझना होगा। दूसरा व्यक्ति हमारे सुख-दुःख में और हम दूसरे के सुख-दुःख में निमित्त हो सकते हैं, किन्तु भोक्ता और कर्ता तो वही होता है। अतः उपादान की दृष्टि से तो कर्म और उसका विपाक अर्थात् सुख-दुःख का अनुभव स्वकृत है। निमित्त की दृष्टि से उन्हें परकृत कहा जा सकता है, किन्तु निमित्त अपने आप में महत्त्वपूर्ण नहीं है; क्योंकि कर्म संकल्प तो हमारा अपना ही होता है एवं कर्म के विपाक की अनुभूति भी हमारी ही होती है। अतः उपादान कारण की दृष्टि से तो कर्म एवं उसके विपाक में संविभाग सम्भव नहीं है। न तो दूसरा व्यक्ति हमें सुखी या दुःखी कर सकता है और न हम दूसरे को सुखी या दुःखी कर सकते हैं। हम अधिक से अधिक दूसरे के सुख-दुःख के निमित्त हो सकते हैं। लेकिन ऐसी निमित्तता तो भौतिक पदार्थों के सन्दर्भ में भी होती है। सत्य तो यह है कि कर्म और उसका विपाक दोनों ही व्यक्ति के अपने होते हैं।

कर्म-सिद्धान्त की दृष्टि से यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है कि क्या जिन कर्मों का वन्ध किया गया है, उनका विपाक व्यक्ति को भोगना ही होता है। जैन कर्म-सिद्धान्त में कर्मों को दो भागों में बाँटा गया है–१. नियत विपाकी और २. अनियत विपाकी। कुछ कर्म ऐसे होते हैं, जिनका जिस फल-विपाक को लेकर बन्ध किया गया है, उसी रूप में उनके फल के विपाक का वेदन करना होता है, किन्तु इसके अतिरिक्त कुछ कर्म ऐसे भी होते हैं, जिनके विपाक का वेदन उसी रूप में नहीं करना होता, जिस रूप में उनका वन्ध होता है। जैन कर्म-सिद्धान्त मानता है कि जो कर्म तीव्र कषायों से उद्भूत होते हैं उनका वन्ध भी प्रगाढ़ होता है और विपाक भी नियत होता है। पारम्परिक शब्दावली में उन्हें निकाचित कहते हैं। इसके विपरीत जिन कर्मों के सम्पादन के पीछे कषायभाव अल्प होता है, उनका वन्धन शिथिल होता है और उनके विपाक का संवेदन आवश्यक नहीं होता है। वे तप एवं पश्चात्ताप के द्वारा अपना फल-विपाक दिये विना ही समाप्त हो जाते हैं।

वैयक्तिक दृष्टि से सभी आत्माओं में कर्म-विपाक परिवर्तन करने की क्षमता नहीं होती है। केवल वे ही व्यक्ति जो आध्यात्मिक ऊँचाई पर स्थित हैं, कर्म-विपाक में परिवर्तन कर सकते हैं। पुनः वे भी उन्हीं कर्मों के विपाक को अन्यथा कर सकते हैं, जिनका बन्ध अनियत विपाकी कर्म के रूप में हुआ है। नियत विपाकी कर्मों का भोग तो अनिवार्य है। इस प्रकार जैन कर्म-सिद्धान्त अपने को नियतिवाद और यदृच्छावाद दोनों की एकांगिकता से बचाता है।

वस्तुतः कर्म-सिद्धान्त में कर्म-विपाक की नियतता और अनियतता की विरोधी धारणाओं के समन्वय के अभाव में नैतिक जीवन की यथार्थ व्याख्या सम्भव नहीं होती है। यदि एकान्त रूप से कर्म-विपाक की नियतता को स्वीकार किया जाता है तो नैतिक आचरण का चाहे निषेधात्मक रूप में कुछ सामाजिक मूल्य बना रहे, लेकिन उसका विधायक मूल्य तो पूर्णतया समाप्त हो जाता है, क्योंकि नियत भविष्य के बदलने का सामर्थ्य नैतिक जीवन में नहीं रह पाता है। दूसरे, यदि कर्मों को पूर्णतः अनियत विपाकी माना जाये, तो नैतिक व्यवस्था का ही कोई अर्थ नहीं रह जाता है। विपाक की पूर्ण नियतता मानने पर निर्धारणवाद और विपाक की पूर्ण अनियतता मानने पर अनिर्धारणवाद की सम्भावना होगी, लेकिन दोनों ही धारणाएँ एकान्तिक रूप में नैतिक जीवन की समुचित व्याख्या कर पाने में असमर्थ हैं। अतः कर्म-विपाक की आंशिक नियतता ही एक तर्क-संगत दृष्टिकोण है, जो नैतिक दर्शन की सम्यक् व्याख्या प्रस्तुत करता है।

कर्म की विभिन्न अवस्थाएँ[४]

जैन-दर्शन में कर्मों की विभिन्न अवस्थाओं पर चिन्तन हुआ है और बताया गया है कि कर्म के बन्ध और विपाक (उदय) के बीच कौन-कौन-सी अवस्थायें घटित हो सकती हैं, पुनः वे किस सीमा तक आत्म-स्वातन्त्र्य को कुण्ठित करती हैं अथवा किस सीमा तक आत्म-स्वातन्त्र्य को अभिव्यक्त करती हैं, इसकी चर्चा भी की गयी है। ये अवस्थाएँ निम्न हैं–

१. बन्ध–कषाय एवं योग के फलस्वरूप कर्म-वर्गणा के पुद्गलों का आत्म-प्रदेशों से जो सम्बन्ध स्थापित होता है, उसे बन्ध कहते हैं।

---

१. सागरमल जैन, कर्म-सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. १७-१८

२. (अ) महाभारत : शान्तिपर्व (गीता प्रेस, गोरखपुर), पृ. १२९
(व) तिलक, लोकमान्य बालगंगाधर, गीतारहस्य, पृ. २६८

३. आचार्य नरेन्द्रदेव, वौद्ध धर्म दर्शन, पृ. २७७

४. (अ) देखें–उत्तराध्ययन सूत्रः सम्पादक मधुकर मुनि, ४/४, २३/११
(ब) भगवती सूत्र, १/२/६४

२. संक्रमण–एक कर्म के अनेक अवान्तर भेद होते हैं। जैन कर्म-सिद्धान्त के अनुसार कर्म का एक भेद अपने सजातीय दूसरे भेद में वदल सकता है। अवान्तर कर्म-प्रकृतियों का यह अदल-वदल संक्रमण कहलाता है। संक्रमण में आत्मा पूर्ववद्ध कर्म-प्रकृति का नवीन कर्म-प्रकृति का वन्ध करते समय रूपान्तरण करता है। उदाहरण के रूप में पूर्ववद्ध दुःखद संवेदन रूप असातावेदनीय कर्म का नवीन सातावेदनीय कर्म का वन्ध करते समय सातावेदनीय कर्म के रूप में संक्रमण किया जा सकता है। संक्रमण की यह क्षमता आत्मा की पवित्रता के साथ ही वढ़ती जाती है। जो आत्मा जितनी पवित्र होती है, उसमें संक्रमण की क्षमता भी उतनी ही अधिक होती है। आत्मा में कर्म-प्रकृतियों के संक्रमण का सामर्थ्य होना यह वताता है, जहाँ अपवित्र आत्माएँ परिस्थितियों की दास होती हैं, वहीं पवित्र आत्मा परिस्थितियों की स्वामी होती हैं। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि प्रथम तो मूल कर्म-प्रकृतियों का एक-दूसरे में कभी भी संक्रमण नहीं होता है जैसे ज्ञानावरण दर्शनावरण में नहीं वदलता है। मात्र यही नहीं, दर्शनमोह कर्म, चारित्रमोह कर्म और आयुष्य कर्म की आवान्तर प्रकृतियों का भी परस्पर संक्रमण नहीं होता है।

३. उद्वर्तना–नवीन वन्ध करते समय आत्मा पूर्ववद्ध कर्मों की काल-मर्यादा (स्थिति) और तीव्रता (अनुभाग) को वढ़ा भी सकता है। काल-मर्यादा और तीव्रता को वढ़ाने की यह प्रक्रिया उद्वर्तना कहलाती है।

४. अपवर्तना–नवीन वन्ध करते समय पूर्ववद्ध कर्मों की काल-मर्यादा (स्थिति) तीव्रता (अनुभाग) को कम भी किया जा सकता है, इसे अपर्वतना कहते हैं।

५. सत्ता–कर्म के वद्ध होने के पश्चात् तथा उसके विपाक से पूर्व वीच की अवस्था सत्ता कहलाती है। सत्ता काल में कर्म अस्तित्व में तो रहता है, किन्तु वह सक्रिय नहीं होता।

६. उदय–जव कर्म अपना फल देना प्रारम्भ करते हैं तो वह अवस्था उदय कहलाती है। उदय दो प्रकार का माना गया है–(१) विपाकोदय और (२) प्रदेशोदय। कर्म का अपना अपने फल की चेतन अनुभूति कराये विना ही निर्जरित होना प्रदेशोदय कहलाता है। जैसे अचेतन अवस्था में शल्य क्रिया की वेदना की अनुभूति नहीं होती, यद्यपि वेदना की घटना घटित होती है। इसी प्रकार विना अपनी फलानुभूति करवाये जो कर्म परमाणु आत्मा से निर्जरित होते हैं, उनका उदय प्रदेशोदय होता है। इसके विपरीत जिन कर्मों की अपने विपाक के समय फलानुभूति होती है उनका उदय विपाकोदय कहलाता है। ज्ञातव्य है कि विपाकोदय में प्रदेशोदय अनिवार्य रूप से होता है, लेकिन प्रदेशोदय में विपाकोदय हो, यह आवश्यक नहीं है।

७. उदीरणा–अपने नियत काल से पूर्व ही पूर्ववद्ध कर्मों को प्रयासपूर्वक उदय में लाकर उनके फलों को भोगना उदीरणा है। ज्ञातव्य है कि जिस कर्म-प्रकृति का उदय या भोग चल रहा हो, उसकी सजातीय कर्म-प्रकृति की ही उदीरणा सम्भव होती है।

८. उपशमन–उदय में आ रहे कर्मों के फल देने की शक्ति को कुछ समय के लिए दवा देना अथवा काल-विशेष के लिए उन्हें फल देने से अक्षम वना देना उपशमन है। उपशमन में कर्म की सत्ता समाप्त नहीं होती, मात्र उसे काल विशेष के लिए फल देने में अक्षम वना दिया जाता है। इसमें कर्म राख से दवी अग्नि के समान निष्क्रिय होकर सत्ता में वने रहते हैं।

९. निधत्ति–कर्म की वह अवस्था निधत्ति है, जिसमें कर्म न तो अपने अवान्तर भेदों में रूपान्तरित या संक्रमित हो सकते हैं और न अपना फल प्रदान कर सकते हैं, लेकिन कर्मों की समय-मर्यादा और विपाक-तीव्रता (परिमाण) को कम-अधिक किया जा सकता है अर्थात् इस अवस्था में उत्कर्षण और अपकर्षण सम्भव है, संक्रमण नहीं।

१०. निकाचना–कर्मों के वन्धन का इतना प्रगाढ़ होना कि उनकी काल-मर्यादा एवं तीव्रता में कोई भी परिवर्तन न किया जा सके, न समय से पूर्व उनका भोग ही किया जा सके, वह निकाचना कहलाता है। इस दशा में कर्म का जिस रूप में वन्धन हुआ होता है उसको उसी रूप में अनिवार्यतया भोगना पड़ता है।

इस प्रकार जैन कर्म-सिद्धान्त में कर्म के फल-विपाक की नियतता और अनियतता को सम्यक् प्रकार से समन्वित करने का प्रयास किया गया है तथा यह वताया गया है कि जैसे-जैसे आत्मा कषायों से मुक्त होकर आध्यात्मिक विकास की दिशा में वढ़ता है, वह कर्म के फल-विपाक की नियतता को समाप्त करने में सक्षम होता जाता है। कर्म कितना वलवान होगा यह वात मात्र कर्म के वल पर निर्भर नहीं है, अपितु आत्मा की पवित्रता पर भी निर्भर है। इन अवस्थाओं का चित्रण यह भी वताता है कि कर्मों का विपाक या उदय एक अलग स्थिति है तथा उनसे नवीन कर्मों का वन्ध होना या न होना यह एक अलग स्थिति है। कषाय-युक्त प्रमत्त आत्मा कर्मों के उदय में नवीन कर्मों का वन्ध करता है, इसके विपरीत कषाय-मुक्त अप्रमत्त आत्मा कर्मों के विपाक में नवीन कर्मों का वन्ध नहीं करता है, मात्र पूर्ववद्ध कर्मों की निर्जरित करता है।

जैन दर्शन में कर्म-अकर्म विचार

कर्म के यथार्थ स्वरूप को समझने के लिए उस पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है–(१) उसकी वन्धनात्मक शक्ति के आधार पर और (२) उसकी शुभाशुभता के आधार पर। वन्धनात्मक शक्ति के आधार पर विचार करने पर हम पाते हैं कि कुछ कर्म वन्धन में डालते हैं और कुछ कर्म वन्धन में नहीं डालते हैं। वन्धक कर्मों को कर्म और अवन्धक कर्मों को अकर्म कहा जाता है। जैन दर्शन में कर्म और अकर्म के यथार्थ स्वरूप का विवेचन हमें सर्वप्रथम आचारांग एवं सूत्रकृतांग में मिलता है। सूत्रकृतांग में कहा गया है कि कुछ कर्म और

अकर्म को वीर्य (पुरुषार्थ) कहते हैं।[१] इसका तात्पर्य यह है कि कुछ विचारकों की दृष्टि में सक्रियता ही पुरुषार्थ या नैतिकता है, जबकि दूसरे विचारकों की दृष्टि में निष्क्रियता ही पुरुषार्थ या नैतिकता है। इस सम्बन्ध में महावीर अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं कि 'कर्म का अर्थ शरीरादि की चेष्टा एवं अकर्म का अर्थ शरीरादि की चेष्टा का अभाव' ऐसा नहीं मानना चाहिए। वे अत्यन्त सीमित शब्दों में कहते हैं कि प्रमाद कर्म है और अप्रमाद अकर्म है।[२] ऐसा कहकर महावीर यह स्पष्ट कर देते हैं कि अकर्म निष्क्रियता नहीं, वह तो सतत जागरूकता है। अप्रमत्त अवस्था या आत्म-जागृति की दशा में क्रियाशीलता भी अकर्म हो जाती है, जबकि प्रमत्त दशा या आत्म-जागृति के अभाव में निष्क्रियता भी कर्म (बन्धन) बन जाती है। वस्तुतः किसी क्रिया का बन्धकत्व मात्र क्रिया के घटित होने में नहीं, वरन् उसके पीछे रहे हुए कषाय-भावों एवं राग-द्वेष की स्थिति पर निर्भर है। जैन दर्शन के अनुसार, राग-द्वेष एवं कषाय (जो कि आत्मा की प्रमत्त दशा है) ही किसी क्रिया को कर्म बना देते हैं, जबकि कषाय एवं आसक्ति से रहित होकर किया हुआ कर्म अकर्म बन जाता है। महावीर ने स्पष्ट रूप से कहा है कि–जो आस्रव या बन्धनकारक क्रियाएँ हैं, वे ही अनासक्ति एवं विवेक से समन्वित होकर मुक्ति का साधन बन जाती हैं।[३] इस प्रकार जैन विचारणा में कर्म और अकर्म अपने बाह्य-स्वरूप की अपेक्षा कर्ता के विवेक और मनोवृत्ति पर निर्भर होते हैं।

ईर्यापथिक कर्म और साम्परायिक कर्म[४]

जैन-दर्शन में बन्धन की दृष्टि से क्रियाओं को दो भागों में बाँटा गया है–(१) ईर्यापथिक क्रियाएँ (अकर्म) और (२) साम्परायिक क्रियाएँ (कर्म)। ईर्यापथिक क्रियाएँ निष्काम वीतराग दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति की क्रियाएँ हैं, जो बन्धनकारक नहीं हैं और साम्परायिक क्रियाएँ आसक्त व्यक्ति की क्रियाएँ हैं, जो बन्धनकारक हैं। संक्षेप में वे समस्त क्रियाएँ जो आस्रव एवं बन्ध की कारण हैं वे कर्म हैं और वे समस्त क्रियाएँ जो संवर एवं निर्जरा की हेतु हैं वे अकर्म हैं। जैन दृष्टि में अकर्म या ईर्यापथिक कर्म का अर्थ है–राग-द्वेष एवं मोहरहित होकर मात्र कर्त्तव्य अथवा शरीर-निर्वाह के लिए किया जाने वाला कर्म। कर्म का अर्थ है–राग-द्वेष और मोह से युक्त कर्म, वह बन्धन में डालता है, इसलिए वह कर्म है। जो क्रिया व्यापार राग-द्वेष और मोह से रहित होकर कर्त्तव्य या शरीर निर्वाह के लिए किया जाता है, वह बन्धन का कारण नहीं है, अतः अकर्म है। जिन्हें जैन-दर्शन में ईर्यापथिक क्रियाएँ या अकर्म कहा गया है, उन्हें बौद्ध परम्परा अनुपचित, अव्यक्त या अकृष्ण-अशुक्ल कर्म कहती हैं और जिन्हें जैन परम्परा साम्परायिक क्रियाएँ या कर्म कहती हैं, उन्हें बौद्ध परम्परा उपचित कर्म या कृष्ण-शुक्ल कर्म कहती हैं। इस सम्बन्ध में विस्तार से विचार करना आवश्यक है।

बन्धन के कारणों में मिथ्यात्व और कषाय की प्रमुखता का प्रश्न[५]

जैन कर्म-सिद्धान्त के उद्भव व विकास की चर्चा करते हुए हमने बन्धन के पाँच सामान्य कारणों का उल्लेख किया था। वैसे जैन ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न कर्मों के बन्धन के भिन्न-भिन्न कारणों की विस्तृत चर्चाएँ भी उपलब्ध होती हैं। किन्तु सामान्य रूप से बन्धन के ५ कारण माने गए हैं–(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय और (५) योग।

इन पाँच कारणों में योग को अर्थात् मानसिक, वाचिक व शारीरिक क्रियाओं को बन्धन का कारण कहा गया है, किन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि यदि पूर्व के चार का अभाव हो, तो मात्र योग से कर्म-वर्गणाओं का आस्रव होकर, जो बन्ध होगा, वह ईर्यापथिक बन्ध कहलाता है। उसके सन्दर्भ में कहा गया है कि उसका प्रथम समय में बन्ध होता है और दूसरे समय में निर्जरा हो जाती है। ईर्यापथिक बन्ध ठीक वैसा ही है, जैसे चलते समय शुभ्र आर्द्रता से रहित कपड़े पर गिरे हुए बालू के कण, जो गति की प्रक्रिया में ही आते हैं और फिर अलग भी हो जाते हैं। वस्तुतः यह बन्ध वास्तविक बन्ध नहीं है। अतः हम समझते हैं कि इन पाँच कारणों में योग महत्त्वपूर्ण कारण नहीं है। यद्यपि अविरति, प्रमाद एवं कषाय को अलग-अलग कारण कहा गया है, किन्तु इनमें भी बहुत अन्तर नहीं है। जब हम प्रमाद को व्यापक अर्थ में लेते हैं तब कषायों का अन्तर्भाव प्रमाद में हो जाता है। दूसरे कषायों की उपस्थिति में ही प्रमाद सम्भव होता है। उनकी अनुपस्थिति में प्रमाद सामान्यतया तो रहता ही नहीं है और यदि रहे भी तो अति निर्बल होता है। इसी प्रकार अविरति के मूल में भी कषाय ही होते हैं। यदि हम कषाय को व्यापक अर्थ में लें तो अविरति और प्रमाद दोनों उसी में अन्तर्भावित हो जाते हैं। अतः बन्धन के दो ही प्रमुख कारण शेष रहते हैं–मिथ्यात्व और कषाय।

मिथ्यात्व एवं कषाय में कौन प्रमुख कारण है, यह वर्तमान युग में एक बहुचर्चित विषय है। इस सन्दर्भ में पक्ष व प्रतिपक्ष में पर्याप्त लेख लिखे गये हैं। आचार्य विद्यासागर जी एवं उनके समर्थक विद्वत् वर्ग का कहना है कि मिथ्यात्व अकिंचित्कर है और कषाय ही बन्धन का प्रमुख कारण है, क्योंकि कषाय की उपस्थिति के कारण ही मिथ्यात्व होता है। कानजीस्वामी समर्थक दूसरे वर्ग का कहना है कि मिथ्यात्व ही बन्धन का प्रमुख कारण है। वस्तुतः यह विवाद अपने-अपने एकांगी दृष्टिकोणों के कारण है। कषाय और मिथ्यात्व ये दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं। कषाय के अभाव में मिथ्यात्व की सत्ता नहीं रहती और न मिथ्यात्व के अभाव में कषाय ही रहते हैं। मिथ्यात्व तभी समाप्त होता है, जब अनन्तानुबन्धी कषायें समाप्त होते हैं और कषायें भी तभी समाप्त होने लगते हैं, जब मिथ्यात्व का प्रहाण होता है। वे ताप और

---

१. सूत्रकृतांग सूत्र, १/८/१-२
२. वही, १/८/३
३. आचारांग सूत्र, १/४/२/१
४. जैन कर्म-सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. सागरमल जैन, पृ. ५२-५५
५. वही, पृ. ६१-६७

प्रकाश के समान सहजीवी हैं। इनमें एक के अभाव में दूसरे की सत्ता क्षीण होने लगती है। वैसे मिथ्यात्व, अज्ञान एवं मोह का पर्यायवाची है। आवेगों अर्थात् कषायों की उपस्थिति में ही मोह या मिथ्यात्व सम्भव होता है। वास्तविकता यह है कि मोह (मिथ्यात्व) से कषाय उत्पन्न होते हैं और कषायों के कारण ही मोह (मिथ्यात्व) होता है। अतः कषाय और मिथ्यात्व अन्योन्याश्रित हैं और बीज एवं वृक्ष की भाँति इनमें से किसी की पूर्व कोटि निर्धारित नहीं की जा सकती है।

यदि हम इसी प्रश्न पर बौद्ध दृष्टि से विचार करें तो उसमें सामान्यतया लोभ (राग), द्वेष एवं मोह को बन्धन का कारण कहा गया है। बौद्ध परम्परा में भी इनको परस्पर सापेक्ष ही माना गया है। मोह को बौद्ध परम्परा में अविद्या भी कहा गया है। बौद्ध विचारणा यह मानती है कि अविद्या (मोह) के कारण तृष्णा (राग) होती है और तृष्णा के कारण मोह होता है। आचार्य नरेन्द्रदेव लिखते हैं कि लोभ एवं द्वेष का हेतु मोह है, किन्तु पर्याय से लोभ व मोह भी द्वेष के हेतु हैं। बौद्ध-दर्शन में भी जैन-दर्शन के समान ही अविद्या और तृष्णा को अन्योन्याश्रित माना गया है और कहा गया है कि इनमें से किसी की भी पूर्व कोटि निर्धारित करना सम्भव नहीं है। सांख्य एवं योग दर्शन में क्लेश या वन्धन के पाँच कारण हैं–अविद्या, अस्मिता (अहंकार), राग, द्वेष, अभिनिवेश। इनमें भी अविद्या प्रमुख है। शेष चारों उसी पर आधारित हैं। न्याय दर्शन भी जैन और बौद्धों के समान ही राग-द्वेष एवं मोह को वन्धन का कारण मानता है। इस प्रकार लगभग सभी दर्शन प्रकारान्तर से राग-द्वेष एवं मोह (मिथ्यात्व) को वन्धन का कारण मानते हैं।

वन्धन के चार प्रकारों से वन्धनों के कारण का सम्बन्ध[1]

जैन कर्म-सिद्धान्त में वन्धन के चार प्रारूप कहे गए हैं–(१) प्रकृति-वन्ध, (२) प्रदेश-वन्ध, (३) स्थिति-वन्ध एवं (४) अनुभाग-वन्ध।

१. प्रकृति-वन्ध–वन्धन के स्वभाव का निर्धारण प्रकृति-वन्ध करता है। वह यह निश्चय करता है कि कर्म-वर्गणा के पुद्गल आत्मा की ज्ञान, दर्शन आदि किस शक्ति को आवृत करेंगे।

२. प्रदेश-वन्ध–यह कर्म-परमाणुओं की आत्मा के साथ संयोजित होने वाली मात्रा का निर्धारण करता है। अतः यह मात्रात्मक होता है।

३. स्थिति-वन्ध–कर्म-परमाणु कितने समय तक आत्मा से संयोजित रहेंगे और कब निर्जरित होंगे, इस काल-मर्यादा का निश्चय स्थिति-वन्ध करता है। अतः यह वन्धन की समय-मर्यादा का सूचक है।

४. अनुभाग-वन्ध–कर्मों के वन्धन और विपाक की तीव्रता एवं मन्दता का निश्चय करना यह अनुभाग-वन्ध का कार्य है। दूसरे शब्दों में यह वन्धन की तीव्रता या गहनता का सूचक है।

उपर्युक्त चार प्रकार के वन्धनों में प्रकृति-वन्ध एवं प्रदेश-वन्ध का सम्वन्ध मुख्यतया योग अर्थात् कायिक, वाचिक एवं मानसिक क्रियाओं से है, जबकि वन्धन की तीव्रता (अनुभाग) एवं समयावधि (स्थिति) का निश्चय कर्म के पीछे रही हुई कषाय-वृत्ति और मिथ्यात्व पर आधारित होता है। संक्षेप में योग का सम्वन्ध प्रदेश एवं प्रकृति-वन्ध से है, जबकि कषाय का सम्वन्ध स्थिति एवं अनुभाग-वन्ध से है।

आठ प्रकार के कर्म और उनके वन्धन के कारण[2]

जिस रूप में कर्म-परमाणु आत्मा की विभिन्न शक्तियों के प्रकटन का अवरोध करते हैं और आत्मा का शरीर से सम्वन्ध स्थापित करते हैं–उनके अनुसार उनके विभाग किये जाते हैं। जैन-दर्शन के अनुसार कर्म आठ प्रकार के हैं–(१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयुष्य, (६) नाम, (७) गोत्र और (८) अन्तराय।

१. ज्ञानावरणीय कर्म

जिस प्रकार वादल सूर्य के प्रकाश को ढँक देते हैं, उसी प्रकार जो कर्म-वर्गणाएँ आत्मा की ज्ञान-शक्ति को ढँक देती हैं और ज्ञान की प्राप्ति में वाधक वनती हैं, वे ज्ञानावरणीय कर्म कही जाती हैं।

ज्ञानावरणीय कर्म के वन्धन के कारण–जिन कारणों से ज्ञानावरणीय कर्म के परमाणु आत्मा से संयोजित होकर ज्ञान-शक्ति को कुंठित करते हैं, वे छह हैं–

१. प्रदोष–ज्ञानी का अवर्णवाद (निन्दा) करना एवं उसके अवगुण निकालना।

२. निन्हव–ज्ञानी का उपकार स्वीकार न करना अथवा किसी विषय को जानते हुए भी उसका अपलाप करना।

३. अन्तराय–ज्ञान की प्राप्ति में वाधक वनना, ज्ञानी एवं ज्ञान के साधन पुस्तकादि को नष्ट करना।

४. मात्सर्य–विद्वानों के प्रति द्वेष-बुद्धि रखना, ज्ञान के साधन पुस्तक आदि में अरुचि रखना।

५. असातना–ज्ञान एवं ज्ञानी पुरुषों के कथनों को स्वीकार नहीं करना, उनका समुचित विनय नहीं करना।

---

१. जैन कर्म-सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. ५७

२. (अ) वही, पृ. ६७-६९

(ब) तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय ६ एवं ८, कर्मग्रन्थ प्रथम (कर्म-विपाक), पृ. ५४-६२, समवायांग सूत्र, ३० [illegible]

६. उपघात–विद्वानों के साथ मिथ्याग्रह-युक्त विसंवाद करना अथवा स्वार्थवश सत्य को असत्य सिद्ध करने का प्रयत्न करना। उप छह प्रकार का अनैतिक आचरण व्यक्ति की ज्ञान-शक्ति के कुंठित होने का कारण है।

ज्ञानावरणीय कर्म का विपाक–विपाक की दृष्टि से ज्ञानावरणीय कर्म के कारण पाँच रूपों में आत्मा की ज्ञान-शक्ति का आवरण ह है–(१) **मतिज्ञानावरण**–ऐन्द्रिक एवं मानसिक ज्ञान-क्षमता का अभाव, (२) **श्रुतज्ञानावरण**–बौद्धिक अथवा आगम ज्ञान की अनुपल (३) **अवधिज्ञानावरण**–अतीन्द्रिय ज्ञान-क्षमता का अभाव, (४) **मनःपर्याय ज्ञानावरण**–दूसरे की मानसिक अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त कर की शक्ति का अभाव, (५) **केवलज्ञानावरण**–पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता का अभाव।

कहीं-कहीं विपाक की दृष्टि से इसके १० भेद भी बताये गये हैं–(१) सुनने की शक्ति का अभाव, (२) सुनने से प्राप्त होने वाले इ की अनुपलब्धि, (३) दृष्टि शक्ति का अभाव, (४) दृश्यज्ञान की अनुपलब्धि, (५) गंधग्रहण करने की शक्ति का अभाव, (६) गन्ध सम्ब ज्ञान की अनुपलब्धि, (७) स्वाद ग्रहण करने की शक्ति का अभाव, (८) स्वाद सम्बन्धी ज्ञान की अनुपलब्धि, (९) स्पर्श-क्षमता का अभ और (१०) स्पर्श सम्वन्धी ज्ञान की अनुपलब्धि।

२. दर्शनावरणीय कर्म

जिस प्रकार द्वारपाल राजा के दर्शन में बाधक होता है, उसी प्रकार जो कर्म-वर्गणाएँ आत्मा की दर्शन-शक्ति में बाधक होती हैं, दर्शनावरणीय कर्म कहलाती हैं। ज्ञान से पहले होने वाला वस्तु-तत्त्व का निर्विशेष (निर्विकल्प) बोध, जिसमें सत्ता के अतिरिक्त किसी विशे गुण धर्म की प्राप्ति नहीं होती, दर्शन कहलाता है। दर्शनावरणीय कर्म आत्मा के दर्शन-गुण को आवृत करता है।

दर्शनावरणीय कर्म के बन्ध के कारण–ज्ञानावरणीय कर्म के समान ही छंह प्रकार के अशुभ आचरण के द्वारा दर्शनावरणीय कर्म व वन्ध होता है–(१) सम्यक्‌दृष्टि की निन्दा (छिद्रान्वेषण) करना अथवा उसके प्रति अकृतज्ञ होना, (२) मिथ्यात्व या असत् मान्यताओं व प्रतिपादन करना, (३) शुद्ध दृष्टिकोण की उपलब्धि में बाधक बनना, (४) सम्यक्‌दृष्टि का समुचित विनय एवं सम्मान नहीं करन (५) सम्यक्‌दृष्टि पर द्वेष करना, (६) सम्यक्‌दृष्टि के साथ मिथ्याग्रह सहित विवाद करना।

दर्शनावरणीय कर्म का विपाक–उपर्युक्त अशुभ आचरण के कारण आत्मा का दर्शन गुण नौ प्रकार से कुंठित हो जाता है (१) **चक्षुदर्शनावरण**–नेत्रशक्ति का अवरुद्ध हो जाना। (२) **अचक्षुदर्शनावरण**–नेत्र के अतिरिक्त शेष इन्द्रियों की सामान्य अनुभव-शक्ति क अवरुद्ध हो जाना। (३) **अवधिदर्शनावरण**–सीमित अतीन्द्रिय दर्शन की उपलब्धि में बाधा उपस्थित होना। (४) **केवलदर्शनावरण**–परिपू दर्शन की उपलब्धि का नहीं होना। (५) **निद्रा**–सामान्य निद्रा। (६) **निद्रानिद्रा**–गहरी निद्रा। (७) **प्रचला**–बैठे-बैठे आ जाने वाली निद्रा (८) **प्रचला-प्रचला**–चलते-फिरते भी आ जाने वाली निद्रा। (९) **स्त्यानगृद्धि**–जिस निद्रा में प्राणी बड़े-बड़े बल-साध्य कार्य कर डालता है अन्तिम दो अवस्थाएँ आधुनिक मनोविज्ञान के द्विविध व्यक्तित्व के समान मानी जा सकती हैं। उपर्युक्त पाँच प्रकार की निद्राओं के कारण व्यक्ति की सहज अनुभूति की क्षमता में अवरोध उत्पन्न हो जाता है।

३. वेदनीय कर्म

जिसके कारण सांसारिक सुख-दुःख की संवेदना होती है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं–(१) सातावेदनीय और (२) असातावेदनीय। सुख रूप संवेदना का कारण सातावेदनीय और दुःख रूप संवेदना का कारण असातावेदनीय कर्म कहलाता है।

सातावेदनीय कर्म के कारण–दस प्रकार का शुभाचरण करने वाला व्यक्ति सुखद-संवेदना रूप सातावेदनीय कर्म का वन्ध करता है– (१) पृथ्वी, पानी आदि के जीवों पर अनुकम्पा करना। (२) वनस्पति, वृक्ष, लतादि पर अनुकम्पा करना। (३) द्वीन्द्रिय आदि प्राणियों पर दया करना। (४) पंचेन्द्रिय पशुओं एवं मनुष्यों पर अनुकम्पा करना। (५) किसी को भी किसी प्रकार से दुःख न देना। (६) किसी भी प्राणी को चिन्ता एवं भय उत्पन्न हो ऐसा कार्य न करना। (७) किसी भी प्राणी को शोकाकुल नहीं वनाना। (८) किसी भी प्राणी को रुदन नहीं कराना। (९) किसी भी प्राणी को नहीं मारना और (१०) किसी भी प्राणी को प्रताड़ित नहीं करना। कर्मग्रन्थों में सातावेदनीय कर्म के वन्धन का कारण गुरुभक्ति, क्षमा, करुणा, व्रतपालन, योग-साधना, कपायविजय, दान और दृढ़श्रद्धा माना गया है। तत्त्वार्थसूत्रकार का भी यही दृष्टिकोण है।

सातावेदनीय कर्म का विपाक–उपर्युक्त शुभाचरण के फलस्वरूप प्राणी निम्न प्रकार की सुखद संवेदना प्राप्त करता है–(१) मनोहर, कर्णप्रिय, सुखद स्वर श्रवण करने को मिलते हैं। (२) सुस्वादु भोजन-पानादि उपलव्ध होते हैं। (३) वांछित सुखों की प्राप्ति होती है। (४) शुभ वचन, प्रशंसादि सुनने का अवसर प्राप्त होता है। (५) शारीरिक सुख मिलता है।

असातावेदनीय कर्म के कारण–जिन अशुभ आचरणों के कारण प्राणी को दुःखद संवेदना प्राप्त होती है, वे १२ प्रकार के हैं–(१) किसी भी प्राणी को दुःख देना, (२) चिन्तित बनाना, (३) शोकाकुल बनाना, (४) रुलाना, (५) मारना और (६) प्रताड़ित करना, इन छह क्रियाओं की मन्दता और तीव्रता के आधार पर इनके बारह प्रकार हो जाते हैं। तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार–(१) दुःख, (२) शोक, (३) ताप, (४) आक्रन्दन, (५) वध और (६) परिवेदन, ये छह असातावेदनीय कर्म के बंध के कारण हैं, जो 'स्व' और 'पर' की अपेक्षा से १२ प्रकार के हो जाते हैं। स्व एवं पर की अपेक्षा पर आधारित तत्त्वार्थ सूत्र का यह दृष्टिकोण अधिक संगत है। कर्मग्रन्थ में सातावेदनीय के वन्ध के

कारणों के विपरीत गुरु का अविनय, अक्षमा, क्रूरता, अविरति, योगाभ्यास नहीं करना, कषाययुक्त होना, तथा दान एवं श्रद्धा का अभाव असातावेदनीय कर्म के कारण माने गये हैं। इन क्रियाओं के विपाक के रूप में आठ प्रकार की दुःखद संवेदनाएँ प्राप्त होती हैं–(१) कर्ण-कटु, कर्कश स्वर सुनने को प्राप्त होते हैं, (२) अमनोज्ञ एवं सौन्दर्यविहीन रूप देखने को प्राप्त होता है, (३) अमनोज्ञ गन्धों की उपलब्धि होती है, (४) स्वादविहीन भोजनादि मिलता है, (५) अमनोज्ञ, कठोर एवं दुःखद संवेदना उत्पन्न करने वाले स्पर्श की प्राप्ति होती है, (६) अमनोज्ञ मानसिक अनुभूतियों का होना, (७) निन्दा अपमानजनक वचन सुनने को मिलते हैं और (८) शरीर में विविध रोगों की उत्पत्ति से शरीर को दुःखद संवेदनाएँ प्राप्त होती हैं।

४. मोहनीय कर्म

जैसे मदिरा आदि नशीली वस्तु के सेवन से विवेक-शक्ति कुंठित हो जाती है, उसी प्रकार जिन कर्म-परमाणुओं से आत्मा की विवेक-शक्ति कुंठित होती है और अनैतिक आचरण में प्रवृत्ति होती है, उन्हें मोहनीय (विमोहित करने वाले) कर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं– दर्शनमोह और चारित्रमोह।

मोहनीय कर्म के बन्ध के कारण–सामान्यतया मोहनीय कर्म का बन्ध छह कारणों से होता है–(१) क्रोध, (२) अहंकार, (३) कपट, (४) लोभ, (५) अशुभाचरण और (६) विवेकाभाव (विमूढ़ता)। प्रथम पाँच से चारित्रमोह का और अन्तिम से दर्शनमोह का बन्ध होता है। कर्मग्रन्थ में दर्शनमोह और चारित्रमोह के बन्धन के कारण अलग-अलग बताये गये हैं। दर्शनमोह के कारण हैं–उन्मार्ग देशना, सन्मार्ग का अपलाप, धार्मिक सम्पत्ति का अपहरण और तीर्थंकर, मुनि, चैत्य (जिन-प्रतिमाएँ) और धर्म-संघ के प्रतिकूल आचरण। चारित्रमोह कर्म के बन्धन के कारणों में कषाय, हास्य आदि तथा विषयों के अधीन होना प्रमुख है। तत्त्वार्थ सूत्र में सर्वज्ञ, श्रुत, संघ, धर्म और देव के अवर्णवाद (निन्दा) को दर्शनमोह का तथा कषायजनित आत्म-परिणाम को चारित्रमोह का कारण माना गया है। समवायांग सूत्र में तीव्रतम मोहकर्म के बन्धन के तीस कारण बताये गये हैं–(१) जो किसी त्रस प्राणी को पानी में डुबाकर मारता है। (२) जो किसी त्रस प्राणी को तीव्र अशुभ अध्यवसाय से मस्तक को गीला चमड़ा बाँधकर मारता है। (३) जो किसी त्रस प्राणी को मुँह बाँधकर मारता है। (४) जो किसी त्रस प्राणी को अग्नि के धुएँ से मारता है। (५) जो किसी त्रस प्राणी के मस्तक का छेदन करके मारता है। (६) जो किसी त्रस प्राणी को छल से मारकर हँसता है। (७) जो मायाचार करके तथा असत्य बोलकर अपना अनाचार छिपाता है। (८) जो अपने दुराचार को छिपाकर दूसरे पर कलंक लगाता है। (९) जो कलह बढ़ाने के लिए जानता हुआ मिश्र भाषा बोलता है। (१०) जो पति-पत्नी में मतभेद पैदा करता है तथा उन्हें मार्मिक वचनों से झेंपा देता है। (११) जो स्त्री में आसक्त व्यक्ति अपने आपको कुँवारा कहता है। (१२) जो अत्यन्त कामुक व्यक्ति अपने आपको ब्रह्मचारी कहता है। (१३) जो चापलूसी करके अपने स्वामी को ठगता है। (१४) जो जिनकी कृपा से समृद्ध बना है, ईर्ष्या से उनके ही कार्यों में विघ्न डालता है। (१५) जो प्रमुख पुरुष की हत्या करता है। (१६) जो संयमी को पथभ्रष्ट करता है। (१७) जो अपने उपकारी की हत्या करता है। (१८) जो प्रसिद्ध पुरुष की हत्या करता है। (१९) जो महान् पुरुषों की निन्दा करता है। (२०) जो न्यायमार्ग की निन्दा करता है। (२१) जो आचार्य, उपाध्याय एवं गुरु की निन्दा करता है। (२२) जो आचार्य, उपाध्याय एवं गुरु का अविनय करता है। (२३) जो अबहुश्रुत होते हुए भी अपने-आपको बहुश्रुत कहता है। (२४) जो तपस्वी न होते हुए भी अपने आपको तपस्वी कहता है। (२५) जो अस्वस्थ आचार्य आदि की सेवा नहीं करता। (२६) जो आचार्य आदि कुशास्त्र का प्ररूपण करते हैं। (२७) जो आचार्य आदि अपनी प्रशंसा के लिए मंत्रादि का प्रयोग करते हैं। (२८) जो इहलोक और परलोक में भोगोपभोग पाने की अभिलाषा करता है। (२९) जो देवताओं की निन्दा करता है या करवाता है। (३०) जो असर्वज्ञ होते हुए भी अपने आपको सर्वज्ञ कहता है।

(अ) दर्शनमोह–जैन-दर्शन में दर्शन शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है–(१) प्रत्यक्षीकरण, (२) दृष्टिकोण और (३) श्रद्धा। प्रथम अर्थ का सम्बन्ध दर्शनावरणीय कर्म से है, जबकि दूसरे और तीसरे अर्थ का सम्बन्ध मोहनीय कर्म से है। दर्शनमोह के कारण प्राणी में सम्यक् दृष्टिकोण का अभाव होता है और वह मिथ्या धारणाओं एवं विचारों का शिकार रहता है, उसकी विवेक बुद्धि असंतुलित होती है। दर्शन-मोह तीन प्रकार का है–(१) मिथ्यात्व मोह–जिसके कारण प्राणी असत्य को सत्य तथा सत्य को असत्य समझता है। शुभ को अशुभ और अशुभ को शुभ मानना मिथ्यात्व मोह है। (२) सम्यक्-मिथ्यात्व मोह–सत्य एवं असत्य तथा शुभ एवं अशुभ के सम्बन्ध में अनिश्चयात्मकता और (३) सम्यक्त्व मोह–क्षायिक सम्यक्त्व की उपलब्धि में बाधक सम्यक्त्व मोह है अर्थात् दृष्टिकोण की आंशिक विशुद्धता।

(ब) चारित्रमोह–चारित्रमोह के कारण प्राणी का आचरण अशुभ होता है। चारित्रमोहजनित अशुभाचरण २५ प्रकार का है– (१) प्रबलतम क्रोध, (२) प्रबलतम मान, (३) प्रबलतम माया (कपट), (४) प्रबलतम लोभ, (५) अति क्रोध, (६) अति मान, (७) अति माया (कपट), (८) अति लोभ, (९) साधारण क्रोध, (१०) साधारण मान, (११) साधारण माया (कपट), (१२) साधारण लोभ, (१३) अल्प क्रोध, (१४) अल्प मान, (१५) अल्प माया (कपट) और (१६) अल्प लोभ–ये सोलह कषाय हैं। उपर्युक्त कषायों को उत्तेजित करने वाली नौ मनोवृत्तियाँ (उपकषाय) हैं–(१) हास्य, (२) रति (स्नेह, राग), (३) अरति (द्वेष), (४) शोक, (५) भय, (६) जुगुप्सा (घृणा), (७) स्त्रीवेद (पुरुष-सहवास की इच्छा), (८) पुरुषवेद (स्त्री-सहवास की इच्छा), (९) नपुंसकवेद (स्त्री-पुरुष दोनों के सहवास की इच्छा)।

मोहनीय कर्म विवेकाभाव है और उसी विवेकाभाव के कारण अशुभ की ओर प्रवृत्ति की रुचि होती है। अन्य परम्पराओं में जो स्थान अविद्या का है, वही स्थान जैन परम्परा में मोहनीय कर्म का है। जिस प्रकार अन्य परम्पराओं में बन्धन का मूल कारण अविद्या है, उसी प्रकार जैन परम्परा में बन्धन का मूल कारण मोहनीय कर्म। मोहनीय कर्म का क्षयोपशम ही आध्यात्मिक विकास का आधार है।

५. आयुष्य कर्म

जिस प्रकार बेड़ी स्वाधीनता में बाधक है, उसी प्रकार जो कर्म परमाणु आत्मा को विभिन्न शरीरों में नियत अवधि तक कैद रखते उन्हें आयुष्य कर्म कहते हैं। यह कर्म निश्चय करता है कि आत्मा को किस शरीर में कितनी समयावधि तक रहना है। आयुष्य कर्म च प्रकार का है–(१) नरक आयु, (२) तिर्यंच आयु (वानस्पतिक एवं पशु जीवन), (३) मनुष्य आयु और (४) देव आयु।

आयुष्य कर्म के बन्ध के कारण–सभी प्रकार के आयुष्य कर्म के बन्ध का कारण शील और व्रत से रहित होना माना गया है। फिर किस प्रकार के आचरण से किस प्रकार का जीवन मिलता है, उसका निर्देश भी जैन आगमों में उपलब्ध है। स्थानांग सूत्र में प्रत्येक प्रकार आयुष्य कर्म के बन्ध के चार-चार कारण माने गये हैं।

(अ) नारकीय जीवन की प्राप्ति के चार कारण–(१) महारम्भ (भयानक हिंसक कर्म), (२) महापरिग्रह (अत्यधिक संचय वृत्ति (३) मनुष्य, पशु आदि का वध करना, (४) माँसाहार और शराब आदि नशीले पदार्थ का सेवन।

(ब) पाशविक जीवन की प्राप्ति के चार कारण–(१) कपट करना, (२) रहस्यपूर्ण कपट करना, (३) असत्य भाषण, (४) कम-ज्या तोल-माप करना। कर्मग्रन्थ में प्रतिष्ठा कम होने के भय से पाप का प्रकट न करना भी तिर्यंच आयु के बन्ध का कारण माना गया है। तत्त्वा सूत्र में माया (कपट) को ही पशुयोनि का कारण बताया है।

(स) मानव जीवन की प्राप्ति के चार कारण–(१) सरलता, (२) विनयशीलता, (३) करुणा और (४) अहंकार एवं मात्सर्य से रहि होना। तत्त्वार्थ सूत्र में–(१) अल्प आरम्भ, (२) अल्प परिग्रह, (३) स्वभाव की सरलता और (४) स्वभाव की मृदुता को मनुष्य आयु बन्ध का कारण कहा गया है।

(द) दैवीय जीवन की प्राप्ति के चार कारण–(१) सराग (सकाम) संयम का पालन, (२) संयम का आंशिक पालन, (३) सकाम तपस् (बाल-तप), (४) स्वाभाविक रूप में कर्मों के निर्जरित होने से। तत्त्वार्थ सूत्र में भी यही कारण माने गये हैं। कर्मग्रन्थ के अनुसार अविर सम्यक्दृष्टि मनुष्य या तिर्यंच, देशविरत श्रावक, सरागी-साधु, बाल-तपस्वी और इच्छा नहीं होते हुए भी परिस्थितिवश भूख-प्यास आदि क सहन करते हुए अकाम-निर्जरा करने वाले व्यक्ति देवायु का बन्ध करते हैं।

आकस्मिक मरण–प्राणी अपने जीवनकाल में प्रत्येक क्षण आयु-कर्म को भोग रहा है और प्रत्येक क्षण में आयु-कर्म के परमाणु भोग के पश्चात् पृथक् होते रहते हैं। जिस समय वर्तमान आयु-कर्म के पूर्वबद्ध समस्त परमाणु आत्मा से पृथक् हो जाते हैं उस समय प्राणी को वर्तमान शरीर छोड़ना पड़ता है। वर्तमान शरीर छोड़ने के पूर्व ही नवीन शरीर के आयु-कर्म का बन्ध हो जाता है। लेकिन यदि आयुष्य का भोग इस प्रकार नियत है तो आकस्मिक मरण की व्याख्या क्या ? इसके प्रत्युत्तर में जैन-विचारकों ने आयु-कर्म का भोग दो प्रकार का माना–(१) क्रमिक, (२) आकस्मिक। क्रमिक भोग में स्वाभाविक रूप से आयु का भोग धीरे-धीरे होता रहता है, जबकि आकस्मिक भोग में किसी कारण के उपस्थित हो जाने पर आयु एक साथ ही भोग ली जाती है। इसे ही आकस्मिक मरण या अकाल मृत्यु कहते हैं। स्थानांग सूत्र में इसके सात कारण बताये गये हैं–(१) हर्ष-शोक का अतिरेक, (२) विष अथवा शस्त्र का प्रयोग, (३) आहार की अत्यधिकता अथवा सर्वथा अभाव, (४) व्याधिजनित तीव्र वेदना, (५) आघात, (६) सर्पदंशादि और (७) श्वासनिरोध।

६. नाम-कर्म

जिस प्रकार चित्रकार विभिन्न रंगों से अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, उसी प्रकार नाम-कर्म विभिन्न कर्म परमाणुओं से जगत् के प्राणियों के शरीर की रचना करता है। मनोविज्ञान की भाषा में नाम-कर्म को व्यक्तित्व का निर्धारक तत्त्व कह सकते हैं। जैन-दर्शन में व्यक्तित्व के निर्धारक तत्त्वों को नाम-कर्म की प्रकृति के रूप में जाना जाता है, जिनकी संख्या १०३ मानी गई है लेकिन विस्तारभय से उनका वर्णन सम्भव नहीं है। उपर्युक्त सारे वर्गीकरण का संक्षिप्त रूप है–(१) शुभ नाम-कर्म (अच्छा व्यक्तित्व) और (२) अशुभ नाम-कर्म (बुरा व्यक्तित्व)। प्राणी जगत् में, जो आश्चर्यजनक वैचित्र्य दिखाई देता है, उसका आधार नाम-कर्म है।

शुभ नाम-कर्म के बन्ध के कारण

जैनागमों में अच्छे व्यक्तित्व की उपलब्धि के चार कारण माने गये हैं–(१) शरीर की सरलता, (२) वाणी की सरलता, (३) मन या विचारों की सरलता, (४) अहंकार एवं मात्सर्य से रहित होना या सामंजस्यपूर्ण जीवन।

शुभ नाम-कर्म का विपाक

उपर्युक्त चार प्रकार के शुभाचरण से प्राप्त शुभ व्यक्तित्व का विपाक १४ प्रकार का माना गया है–(१) अधिकारपूर्ण प्रभावक वाणी (इष्ट-शब्द), (२) सुन्दर सुगठित शरीर (इष्ट-रूप), (३) शरीर से निःसृत होने वाले मलों में भी सुगंधि (इष्ट-गंध), (४) जैवीय-रसों की समुचितता (इष्ट-रस), (५) त्वचा का सुकोमल होना (इष्ट-स्पर्श), (६) अचपल योग्य गति (इष्ट-गति), (७) अंगों का समुचित स्थान पर होना (इष्ट-स्थिति), (८) लावण्य, (९) यशःकीर्ति का प्रसार (इष्ट-यशःकीर्ति), (१०) योग्य शारीरिक शक्ति (इष्ट-उत्थान, कर्म, बलवीर्य, पुरुषार्थ और पराक्रम), (११) लोगों को रुचिकर लगे ऐसा स्वर, (१२) कान्त स्वर, (१३) प्रिय स्वर और (१४) मनोज्ञ स्वर।

अशुभ नाम-कर्म के कारण–निम्न चार प्रकार के अशुभाचरण से व्यक्ति (प्राणी) को अशुभ व्यक्तित्व की उपलब्धि होती है–(१) शरीर की वक्रता, (२) वचन की वक्रता, (३) मन की वक्रता और (४) अहंकार एवं मात्सर्य वृत्ति या असामंजस्यपूर्ण जीवन।

अशुभ नाम-कर्म का विपाक–(१) अप्रभावक वाणी (अनिष्ट शब्द), (२) असुन्दर शरीर (अनिष्ट स्पर्श), (३) शारीरिक मलों का दुर्गन्धयुक्त होना (अनिष्ट गंध), (४) जैवीय रसों की असमुचितता (अनिष्ट रस), (५) अप्रिय स्पर्श, (६) अनिष्ट गति, (७) अंगों का समुचित स्थान पर न होना (अनिष्ट स्थिति), (८) सौन्दर्य का अभाव, (९) अपयश, (१०) पुरुषार्थ करने की शक्ति का अभाव, (११) हीन स्वर, (१२) दीन स्वर, (१३) अप्रिय स्वर और (१४) अकान्त स्वर।

७. गोत्र-कर्म

जिसके कारण व्यक्ति प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित कुलों में जन्म लेता है, वह गोत्र-कर्म है। यह दो प्रकार का माना गया है–(१) उच्च गोत्र (प्रतिष्ठित कुल) और (२) नीच गोत्र (अप्रतिष्ठित कुल)। किस प्रकार के आचरण के कारण प्राणी का अप्रतिष्ठित कुल में जन्म होता है और किस प्रकार के आचरण से प्राणी का प्रतिष्ठित कुल में जन्म होता है, इस पर जैनाचार-दर्शन में विचार किया गया है। अहंकारवृत्ति ही इसका प्रमुख कारण मानी गई है।

उच्च गोत्र एवं नीच गोत्र के कर्म-बन्ध के कारण–निम्न आठ बातों का अहंकार न करने वाला व्यक्ति भविष्य में प्रतिष्ठित कुल में जन्म लेता है–(१) जाति, (२) कुल, (३) बल (शारीरिक शक्ति), (४) रूप (सौन्दर्य), (५) तपस्या (साधना), (६) ज्ञान (श्रुत), (७) लाभ (उपलब्धियाँ) और (८) स्वामित्व (अधिकार)। इसके विपरीत जो व्यक्ति उपर्युक्त आठ प्रकार का अहंकार करता है, वह नीच कुल में जन्म लेता है। कर्मग्रन्थ के अनुसार भी अहंकार-रहित गुणग्राही दृष्टि वाला, अध्ययन-अध्यापन में रुचि रखने वाला तथा भक्त उच्च गोत्र को प्राप्त करता है। इसके विपरीत आचरण करने वाला नीच गोत्र को प्राप्त करता है। तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार पर-निन्दा, आत्म-प्रशंसा, दूसरों के सद्गुणों का आच्छादन और असद्गुणों का प्रकाशन ये नीच गोत्र के बन्ध के हेतु हैं। इसके विपरीत पर-प्रशंसा, आत्म-निन्दा, सद्गुणों का प्रकाशन, असद्गुणों का गोपन और नम्र-वृत्ति एवं निरभिमानता ये उच्च गोत्र के बन्ध के हेतु हैं।

गोत्र-कर्म का विपाक–विपाक (फल) दृष्टि से विचार करते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि जो व्यक्ति अहंकार नहीं करता, वह प्रतिष्ठित कुल में जन्म लेकर निम्नोक्त आठ क्षमताओं से युक्त होता है–(१) निष्कलंक मातृ-पक्ष (जाति), (२) प्रतिष्ठित पितृ-पक्ष (कुल), (३) सबल शरीर, (४) सौन्दर्ययुक्त शरीर, (५) उच्च साधना एवं तप-शक्ति, (६) तीव्र बुद्धि एवं विपुलज्ञान राशि पर अधिकार, (७) लाभ एवं विविध उपलब्धियाँ और (८) अधिकार, स्वामित्व एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति। लेकिन अहंकारी व्यक्तित्व उपर्युक्त समग्र क्षमताओं से अथवा इनमें से किन्हीं विशेष क्षमताओं से वंचित रहता है।

८. अन्तराय कर्म

अभीष्ट की उपलब्धि में बाधा पहुँचाने वाले कारण को अन्तराय कर्म कहते हैं। यह पाँच प्रकार का है–

१. दानान्तराय–दान की इच्छा होने पर भी दान नहीं दिया जा सके,

२. लाभान्तराय–कोई वस्तु आदि की प्राप्ति होने वाली हो लेकिन किसी कारण से उसमें बाधा आ जाना,

३. भोगान्तराय–भोग में बाधा उपस्थित होना, जैसे–व्यक्ति सम्पन्न हो, भोजनगृह में अच्छा सुस्वादु भोजन भी बना हो लेकिन अस्वस्थता के कारण उसे मात्र खिचड़ी ही खानी पड़े,

४. उपभोगान्तराय–उपभोग की सामग्री के होने पर भी उपभोग करने में असमर्थता,

५. वीर्यान्तराय–शक्ति के होने पर भी पुरुषार्थ में उसका उपयोग नहीं किया जा सकना। (तत्त्वार्थ सूत्र, ८.१४)

जैन नीति-दर्शन के अनुसार जो व्यक्ति किसी भी व्यक्ति के दान, लाभ, भोग, उपभोग शक्ति के उपयोग में बाधक बनता है, वह भी अपनी उपलब्ध सामग्री एवं शक्तियों का समुचित उपयोग नहीं कर पाता है। जैसे कोई व्यक्ति किसी दान देने वाले व्यक्ति को दान प्राप्त करने वाली संस्था के बारे में गलत सूचना देकर या अन्य प्रकार से दान देने से रोक देता है अथवा किसी भोजन करते हुए व्यक्ति को भोजन पर से उठा देता है, तो उसकी उपलब्धियों में भी बाधा उपस्थित होती है अथवा भोग-सामग्री के होने पर भी वह उसके भोग से वंचित रहता है। कर्मग्रन्थ के अनुसार धर्म-कार्यों में विघ्न उत्पन्न करने वाला और हिंसा में तत्पर व्यक्ति भी अन्तराय कर्म का संचय करता है। तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार भी विघ्न या बाधा डालना ही अन्तराय-कर्म के बन्ध का कारण है।

घाती और अघाती कर्म

कर्मों के इस वर्गीकरण में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय–इन चार कर्मों को 'घाती' और नाम, गोत्र, आयुष्य और वेदनीय–इन चार कर्मों को 'अघाती' माना जाता है। घाती कर्म आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति नामक गुणों का आवरण करते हैं। ये कर्म आत्मा की स्वभाव दशा को विकृत करते हैं, अतः जीवन-मुक्ति में बाधक होते हैं। इन घाती कर्मों में अविद्या रूप मोहनीय कर्म ही आत्मस्वरूप की आवरण-क्षमता, तीव्रता और स्थितिकाल की दृष्टि से प्रमुख है। वस्तुतः मोहकर्म ही एक ऐसा कर्म-संस्कार है, जिसके कारण कर्म-बन्ध का प्रवाह सतत बना रहता है। मोहनीय कर्म उस बीज के समान है, जिसमें अंकुरण की शक्ति है। जिस प्रकार उगने योग्य बीज हवा, पानी आदि के सहयोग से अपनी परम्परा को बढ़ाता रहता है, उसी प्रकार मोहनीय रूपी कर्म-बीज, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय रूप हवा, पानी आदि के सहयोग से कर्म-परम्परा को सतत बनाये रखता है। मोहनीय कर्म ही [illegible] है, शेष घाती कर्म उसके सहयोगी मात्र हैं। इसे कर्मों का सेनापति कहा गया है। जिस प्रकार सेनापति के पराजित होने पर सारी सेना हतप्रभ

हो शीघ्र ही पराजित हो जाती है, उसी प्रकार मोहकर्म पर विजय प्राप्त कर लेने पर शेष सारे कर्मों को आसानी से पराजित कर आत्मशुद्धता की उपलब्धि की जा सकती है। जैसे ही मोह नष्ट हो जाता है, वैसे ही ज्ञानावरण और दर्शनावरण का पर्दा हट जाता है, अन्तराय या बाधकता समाप्त हो जाती है और व्यक्ति (आत्मा) जीवन-मुक्त बन जाता है।

अघाती कर्म वे हैं जो आत्मा के स्वभाव दशा की उपलब्धि और विकास में बाधक नहीं होते। अघाती कर्म भुने बीज के समान हैं, जिनमें नवीन कर्मों की उत्पादन-क्षमता नहीं होती। वे कर्म-परम्परा का प्रवाह बनाये रखने में असमर्थ होते हैं और समय की परिपक्वता के साथ ही अपना फल देकर सहज ही अलग हो जाते हैं।

सर्वघाती और देशघाती कर्म-प्रकृतियाँ—आत्मा के स्व-लक्षणों का आवरण करने वाले घाती कर्मों की ४५ कर्म-प्रकृतियाँ भी दो प्रकार की हैं—(१) सर्वघाती और (२) देशघाती। सर्वघाती कर्म-प्रकृति किसी आत्मगुण को पूर्णतया आवरित करती है और देशघाती कर्म-प्रकृति उसके एक अंश को आवरित करती है।

आत्मा के स्वाभाविक सत्यानुभूति नामक गुण को मिथ्यात्व (अशुद्ध दृष्टिकोण) सर्वरूपेण आच्छादित कर देता है। अनन्तज्ञान (केवलज्ञान) और अनन्तदर्शन (केवलदर्शन) नामक आत्मा के गुणों का आवरण भी पूर्ण रूप से होता है। पाँचों प्रकार की निद्राएँ भी आत्मा की सहज अनुभूति की क्षमता को पूर्णतया आवरित करती हैं। इसी प्रकार चारों कषायों के पहले तीनों प्रकार, जो कि संख्या में १२ होते हैं वे भी पूर्णतया बाधक बनते हैं। अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यक्त्व का, प्रत्याख्यानी कषाय देशव्रती चारित्र (गृहस्थ धर्म) का और प्रत्याख्यानी कषाय सर्वव्रती चारित्र (मुनिधर्म) का पूर्णतया बाधक बनता है। अतः ये २० प्रकार की कर्म-प्रकृतियाँ सर्वघाती कही जाती हैं। शेष ज्ञानावरणीय कर्म की ४, दर्शनावरणीय कर्म की ३, मोहनीय कर्म की १३, अन्तराय कर्म की ५, कुल २५ कर्म-प्रकृतियाँ देशघाती कही जाती हैं। सर्वघात का अर्थ मात्र इन गुणों के पूर्ण प्रकटन को रोकना है, न कि गुणों का अनस्तित्व। क्योंकि ज्ञानादि गुणों के पूर्ण अभाव की स्थिति में आत्म-तत्त्व और जड़-तत्त्व में अन्तर ही नहीं रहेगा। कर्म तो आत्म-गुणों के प्रकटन में बाधक तत्त्व हैं, वे आत्म-गुणों को विनष्ट नहीं कर सकते। नन्दीसूत्र में तो कहा गया है कि जिस प्रकार बादल सूर्य के प्रकाश को चाहे कितना ही आवरित क्यों न कर ले, फिर भी वह न तो उसकी प्रकाश-क्षमता को नष्ट कर सकता है और न उसके प्रकाश के प्रकटन को पूर्णतया रोक सकता है। उसी प्रकार चाहे कर्म ज्ञानादि आत्मगुणों को कितना ही आवृत क्यों न कर ले, फिर भी उनका एक अंश हमेशा ही अनावृत रहता है।

कर्म बन्धन से मुक्ति

जैन कर्म-सिद्धान्त की यह मान्यता है कि प्रत्येक कर्म अपना विपाक या फल देकर आत्मा से अलग हो जाता है। इस विपाक की अवस्था में यदि आत्मा राग-द्वेष अथवा मोह से अभिभूत होता है तो वह पुनः नये कर्म का संचय कर लेता है। इस प्रकार यह परम्परा सतत रूप से चलती रहती है। व्यक्ति के अधिकार क्षेत्र में यह नहीं है कि वह कर्म के विपाक के परिणामस्वरूप होने वाली अनुभूति से इंकार कर दे। अतः यह एक कठिन समस्या है कि कर्म के बन्धन व विपाक की इस प्रक्रिया से मुक्ति कैसे हो, यदि कर्म के विपाक के फलस्वरूप हमारे अन्दर क्रोधादि कषाय भाव अथवा कामादि भोग भाव उत्पन्न होना ही है तो फिर स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि हम विमुक्ति की दिशा में आगे कैसे बढ़ें ? इस हेतु जैन आचार्यों ने दो उपायों का प्रतिपादन किया है—(१) संवर और (२) निर्जरा। संवर का तात्पर्य है कि विपाक की स्थिति में प्रतिक्रिया से रहित रहकर नवीन कर्मास्रव एवं बन्ध को नहीं होने देना और निर्जरा का तात्पर्य है पूर्व-कर्मों के विपाक की समभावपूर्वक अनुभूति करते हुए उन्हें निर्जरित कर देना या फिर तप साधना द्वारा पूर्वबद्ध अनियत विपाकी कर्मों को समय से पूर्व उनके विपाक को प्रदेशोदय के माध्यम से निर्जरित करना।

यह सत्य है कि पूर्वबद्ध कर्मों के विपाकोदय की स्थिति में क्रोधादि आवेग अपनी अभिव्यक्ति के हेतु चेतना के स्तर पर आते हैं, किन्तु यदि आत्मा उस समय अपने को राग-द्वेष से ऊपर उठाकर साक्षीभाव में स्थित रखे और उन उदय में आ रहे क्रोधादि भावों के प्रति मात्र द्रष्टा भाव रखे, तो वह भावी बन्धन से बचकर पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा कर देता है और इस प्रकार वह बन्धन से विमुक्ति की ओर अपनी यात्रा प्रारम्भ कर देता है। वस्तुतः विवेक व अप्रमत्तता ऐसे तथ्य हैं जो हमें नवीन बन्धन से बचाकर विमुक्ति की ओर अभिमुख करते हैं। व्यक्ति में जितनी अप्रमत्तता या आत्म-चेतनता होगी, उसका विवेक उतना जाग्रत रहेगा। वह बन्धन से विमुक्ति की दिशा में आगे बढ़ेगा। जैन-कर्म सिद्धान्त बताता है कि कर्मों के विपाक के सम्बन्ध में हम विवश या परतन्त्र होते हैं, किन्तु उस विपाक की दशा में भी हम में इतनी स्वतन्त्रता अवश्य होती है कि हम नवीन कर्म परम्परा का संचय करें या न करें, ऐसा निश्चय कर सकते हैं। वस्तुतः कर्म-विपाक के सन्दर्भ में हम परतन्त्र होते हैं, किन्तु नवीन कर्म बन्ध के सन्दर्भ में हम आंशिक रूप में स्वतन्त्र हैं। इसी आंशिक स्वतन्त्रता द्वारा हम मुक्ति अर्थात् पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं। जो साधक विपाकोदय के समय साक्षी भाव या ज्ञाता-द्रष्टा भाव में जीवन जीना जानता है, वह निश्चय ही कर्म-विमुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

कर्मों से मुक्ति ही मोक्ष है। मोक्ष ही जैन धर्म-दर्शन का चरम साध्य है, इसलिए अब उसी का विवेचन किया जा रहा है।

मोक्ष तत्त्व

जैन तत्त्व-मीमांसा के अनुसार संवर के द्वारा कर्मों के आगमन का निरोध हो जाने पर और निर्जरा के द्वारा समस्त पुरातन कर्मों का क्षय हो जाने पर आत्मा की जो निष्कर्म शुद्ध अवस्था होती है उसे मोक्ष कहा जाता है।[1] कर्म-फल के अभाव में कर्म-जनित आवरण या

---

१. कृत्स्न कर्मक्षयान् मोक्षः —तत्त्वार्थ सूत्र, १०१

वंधन भी नहीं रहते और यही बंधन का अभाव ही मुक्ति है।[१] वस्तुतः मोक्ष आत्मा की शुद्ध स्वरूपावस्था है।[२] बंधन आत्मा की विरूपावस्था है और मुक्ति आत्मा की स्वरूपावस्था है। अनात्मा में ममत्व, आसक्ति रूप आत्माभिमान का दूर हो जाना यही मोक्ष है।[३] और यही आत्मा की शुद्धावस्था है। बन्धन और मुक्ति की यह समग्र व्याख्या पर्याय दृष्टि का विषय है। आत्मा की विरूप पर्याय बन्धन है और स्वरूप पर्याय मोक्ष है। पर पदार्थ, पुद्गल, परमाणु या जड़ कर्म-वर्गणाओं के निमित्त आत्मा में जो पर्यायें उत्पन्न होती हैं और जिनके कारण पर में आत्म-भाव (मेरापन) उत्पन्न होता है, यही विरूप पर्याय है, परपरिणति है, स्व की पर में अवस्थिति है, यही बन्धन है और इसका अभाव ही मुक्ति है। बन्धन और मुक्ति दोनों एक ही आत्म-द्रव्य या चेतना की दो अवस्थाएँ मात्र हैं, जिस प्रकार स्वर्ण मुकुट और स्वर्ण कुंडल स्वर्ण की ही दो अवस्थाएँ हैं। लेकिन यदि मात्र, विशुद्ध तत्त्व दृष्टि या निश्चय नय से विचार किया जाय तो बंधन और मुक्ति दोनों की व्याख्या संभव नहीं है क्योंकि आत्म-तत्त्व स्वरूप का परित्याग कर परस्वरूप में कभी भी परिणत नहीं होता। विशुद्ध तत्त्व दृष्टि से तो आत्मा नित्यमुक्त है। लेकिन जब तत्त्व की पर्यायों के संबंध में विचार प्रारम्भ किया जाता है तो बंधन और मुक्ति की संभावनाएँ स्पष्ट हो जाती हैं, क्योंकि बन्धन और मुक्ति पर्याय अवस्था में ही संभव होती हैं। मोक्ष को तत्त्व माना गया है, लेकिन वस्तुतः मोक्ष बंधन के अभाव का ही नाम है। जैनागमों में मोक्ष तत्त्व पर तीन दृष्टियों से विचार किया गया है–(१) भावात्मक दृष्टिकोण, (२) अभावात्मक दृष्टिकोण, (३) अनिर्वचनीय दृष्टिकोण।

मोक्ष पर भावात्मक दृष्टिकोण से विचार–जैन दार्शनिकों ने मोक्षावस्था पर भावात्मक दृष्टिकोण से विचार करते हुए उसे निर्बाध अवस्था कहा है।[४] मोक्ष में समस्त बाधाओं के अभाव के कारण आत्मा के निजगुण पूर्ण रूप से प्रकट हो जाते हैं। मोक्ष, बाधक तत्त्वों की अनुपस्थिति और पूर्णता का प्रकटन है। आचार्य कुन्दकुन्द ने मोक्ष की भावात्मक दशा का चित्रण करते हुए उसे शुद्ध, अनन्त चतुष्टययुक्त, अक्षय, अविनाशी, निर्बाध, अतीन्द्रिय, अनुपम, नित्य, अविचल, अनालम्ब कहा है।[५] आचार्य उसी ग्रंथ में आगे चलकर मोक्ष में निम्न बातों की विद्यमानता की सूचना करते हैं[६]–(१) पूर्ण ज्ञान, (२) पूर्ण दर्शन, (३) पूर्ण सौख्य, (४) पूर्ण वीर्य, (५) अमूर्त्तत्व, (६) अस्तित्व और (७) सप्रदेशता। आचार्य कुन्दकुन्द ने मोक्ष दशा के जिन सात भावात्मक तथ्यों का उल्लेख किया है, वे सभी भारतीय दर्शनों को स्वीकार नहीं हैं। वेदान्त को स्वीकार नहीं हैं, सांख्य सौख्य एवं वीर्य को और न्याय वैशेषिक ज्ञान और दर्शन को भी अस्वीकार कर देते हैं। बौद्ध शून्यवाद अस्तित्व का भी विनाश कर देता है और चार्वाक् दर्शन मोक्ष की धारणा को भी समाप्त कर देता है। वस्तुतः मोक्ष को अनिर्वचनीय मानते हुए भी विभिन्न दार्शनिक मान्यताओं के निराकरण के लिये ही मोक्ष की इस भावात्मक अवस्था का चित्रण किया गया है। भावात्मक दृष्टि से जैन विचारणा मोक्षावस्था में अनन्त चतुष्टय की उपस्थिति पर बल देती है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सौख्य और अनन्त शक्ति को जैन विचारणा में अनन्त चतुष्टय कहा जाता है। बीजरूप में यह अनन्त चतुष्टय सभी जीवात्माओं में उपस्थित है, मोक्ष दशा में इनके अवरोधक कर्मों का क्षय हो जाने से ये गुण पूर्ण रूप में प्रकट हो जाते हैं। ये प्रत्येक आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं जो मोक्षावस्था में पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो जाते हैं। अनन्त चतुष्टय में अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति और अनन्त सौख्य आते हैं। लेकिन अष्टकर्मों के प्रहाण के आधार पर सिद्धों के आठ गुणों की मान्यता भी जैन विचारणा में प्रचलित है–(१) ज्ञानावरणीय कर्म के नष्ट हो जाने से मुक्तात्मा अनन्त ज्ञान या पूर्ण ज्ञान से युक्त होता है। (२) दर्शनावरण कर्म के नष्ट हो जाने से अनन्त दर्शन से संपन्न होता है। (३) वेदनीय कर्म के क्षय हो जाने से विशुद्ध अनश्वर आध्यात्मिक सुखों से युक्त होता है। (४) मोहकर्म के नष्ट हो जाने से यथार्थ दृष्टि (क्षायिक सम्यक्त्व) से युक्त होता है। मोहकर्म के दर्शनमोह और चारित्रमोह ऐसे दो भाग किए जाते हैं। दर्शनमोह के प्रहाण से यथार्थ और चारित्रमोह के क्षय से यथार्थ चारित्र (क्षायिक चारित्र) का प्रकटन होता है। लेकिन मोक्ष दशा में क्रियारूप चारित्र नहीं होता मात्र दृष्टि रूप चारित्र ही होता है। अतः उसे क्षायिक सम्यक्त्व के अंतर्गत ही माना जा सकता है। वैसे आठ कर्मों की ३१ प्रकृतियों के प्रहाण के आधार से सिद्धों के ३१ गुण माने गये हैं, उसमें यथाख्यात चारित्र को स्वतंत्र गुण माना गया है। (५) आयु कर्म के क्षय हो जाने से मुक्तात्मा जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है वह अजर-अमर होता है। (६) नाम-कर्म का क्षय हो जाने से मुक्तात्मा अशरीरी एवं अमूर्त्त होता है अतः वह इन्द्रिय ग्राह्य नहीं होता है। (७) गोत्र-कर्म के नष्ट हो जाने से अगुरुलघुत्व से युक्त हो जाता है।[७] अर्थात् सभी सिद्ध समान होते हैं, उनमें छोटा-बड़ा या ऊँच-नीच का भाव नहीं होता। (८) अन्तराय कर्म का प्रहाण हो जाने से बाधारहित होता है अर्थात् अनन्त शक्ति संपन्न होता है।[८] अनन्त शक्ति का यह विचार मूलतः निषेधात्मक ही है। यह मात्र बाधाओं का अभाव है। लेकिन इस प्रकार अष्ट कर्मों के प्रहाण के आधार से मुक्तात्मा के आठ गुणों की व्याख्या की मात्र एक व्यावहारिक संकल्पना ही है। उसके वास्तविक स्वरूप का निर्वचन नहीं है यह व्यावहारिक दृष्टि से उसे समझाने का प्रयास मात्र है। इसका व्यावहारिक मूल्य है, वस्तुतः तो वह अनिर्वचनीय है आचार्य नेमीचन्द्र गोम्मटसार में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि सिद्धों के इन गुणों का विधान मात्र सिद्धात्मा के स्वरूप के संबंध में जो एकान्तिक मान्यताएँ हैं, उनके निषेध के लिये है।[९] मुक्तात्मा में केवलज्ञान और केवलदर्शन के रूप में ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग को स्वीकार करके मुक्तात्माओं को जड़ मानने वाली वैशेषिक, बौद्धों और न्याय-वैशेषिक की धारणा का प्रतिषेध किया गया है। मुक्तात्मा के अस्तित्व या अक्षयता को स्वीकार कर मोक्ष को अभाव रूप में मानने वाली जड़वादी तथा सौत्रान्तिक बौद्धों की मान्यता का निरसन किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मोक्ष दशा का समग्र भावात्मक चित्रण निषेधात्मक मूल्य ही रखता है। वह विधान भी निषेध के लिये है।

अभावात्मक दृष्टि से मोक्ष तत्त्व पर विचार–जैनागमों में मोक्षावस्था का चित्रण निषेधात्मक रूप से भी हुआ है। प्राचीनतम जैनागम आचारांग सूत्र में मुक्तात्मा का निषेधात्मक चित्रण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। मोक्षावस्था में समस्त कर्मों का क्षय हो जाने से मुक्तात्मा न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न वृत्ताकार है, न त्रिकोण है, न चतुष्कोण है, न परिमंडल संस्थान वाला है, न वह तीक्ष्ण है, वह कृष्ण, नील, पीत, रक्त और श्वेत वर्ण वाला भी नहीं है। वह सुगंध और दुर्गंध वाला भी नहीं है। कटु, खट्टा, मीठा एवं अम्ल रस वाला भी नहीं है। उसमें गुरु, लघु, कोमल, कठोर, स्निग्ध, रुक्ष, शीत एवं उष्ण आदि स्पर्श गुणों का भी अभाव है। वह न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है। इस प्रकार मुक्तामा में रस, रूप, वर्ण, गंध और स्पर्श भी नहीं है।[1] आचार्य कुन्दकुन्द नियमसार में मोक्ष दशा का निषेधात्मक चित्रण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं–"मोक्ष दशा में सुख है, न दुःख है, न पीड़ा है, न बाधा है, न जन्म है, न मरण है, न वहाँ इन्द्रियाँ हैं, न उपसर्ग है, न मोह है, न व्यामोह है, न निद्रा है, न वहाँ चिंता है, न आर्त्त और न रौद्र विचार ही है। वहाँ तो धर्म (शुभ) और शुक्ल (प्रशस्त) विचारों का भी अभाव है।"[2] मोक्षावस्था तो सर्व-संकल्पों का अभाव है। वह बुद्धि और विचार का विषय नहीं है, वह पक्षातिक्रान्त है। इस प्रकार मुक्तावस्था का निषेधात्मक विवेचन उसको अनिर्वचनीय बतलाने के लिये ही है।

मोक्ष का अनिर्वचनीय स्वरूप–मोक्ष का निषेधात्मक निर्वचन अनिवार्य रूप से हमें उसकी अनिर्वचनीयता की ओर ही ले जाता है। पारमार्थिक दृष्टि से विचार करते हुए जैन दार्शनिकों ने उसे अनिर्वचनीय ही माना है।

आचारांग सूत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि समस्त स्वर वहाँ से लौट आते हैं अर्थात् ध्वन्यात्मक किसी भी शब्द की प्रवृत्ति का वह विषय नहीं है, वाणी उसका निर्वचन करने में कथमपि समर्थ नहीं है। वहाँ वाणी मूक हो जाती है, तर्क की वहाँ तक पहुँच नहीं है, बुद्धि (मति) उसे ग्रहण करने में असमर्थ है अर्थात् वह वाणी, विचार और बुद्धि का विषय नहीं है। किसी उपमा के द्वारा भी उसे नहीं समझाया जा सकता क्योंकि उसे कोई उपमा नहीं दी जा सकती, वह अनुपम है, अरूपी सत्तावान् है। वह अ-पद कोई पद नहीं है अर्थात् ऐसा कोई शब्द नहीं है जिसके द्वारा उसका निरूपण किया जा सके।[3] उसके बारे में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह अरूप, अरस, अवर्ण और अस्पर्श है क्योंकि वह इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं है।

वस्तुतः मोक्ष ही ऐसा तत्त्व है जो सभी दर्शनों, धर्मों और साधना विधियों का चरम लक्ष्य है, प्राप्तव्य है। वह आत्मपूर्णता है–उसका केवल अनुभव किया जा सकता है। उसे शब्दों में बाँधा नहीं जा सकता। यह शाब्दिक विवरण उसका संकेत तो कर सकता है–किन्तु उसे अनुभूत नहीं करा सकता है। उसकी अनुभूति तो साधना के माध्यम से ही सम्भव है। आशा है प्रबुद्ध साधक उसकी स्वानुभूति कर अनन्त और असीम आनन्द को प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार द्रव्यानुयोग की इस भूमिका में हमने मुख्य रूप से पंचास्तिकायों, षट्द्रव्यों और नवतत्त्वों की अपनी दृष्टि से ऐतिहासिक और आगमिक परिप्रेक्ष्य में चर्चा की है।

यह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि उपाध्यायप्रवर मुनि श्री कन्हैयालाल जी म. सा. 'कमल' ने अपने सम्पूर्ण जीवन को अनुयोगों के इस वर्गीकरण के महान् कार्य में समर्पित कर दिया है। वे अपने जीवन के लगभग आठ दशक पूर्ण कर चुके हैं। उसमें लगभग पिछले पचास वर्षों में इसी कार्य में जुटे रहे हैं। उन्होंने यह श्रम करके अर्ध-मागधी आगमों के विषयों के अध्ययन के लिए शोधार्थियों और विद्वानों का जो उपकार किया है उसे कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकेगा।

उपाध्यायश्री ने द्रव्यानुयोग के इस संकलन में द्रव्य विवेचन, पर्याय विवेचन तथा जीवाजीव विवेचन के साथ-साथ जीव का आहार, भवसिद्धिक, संज्ञी, लेश्या, दृष्टि, संयत, कषाय, ज्ञान, योग, उपयोग, वेद, शरीर, पर्याप्त आदि अपेक्षाओं से भी विस्तृत विचार करते हुए तत्सम्बन्धी सभी आगमिक स्थलों को उपशीर्षकों के अन्तर्गत रखकर प्रस्तुत किया है। इस विषयानुक्रम से किये गये आगमिक स्थलों के प्रस्तुतीकरण का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि एक विषय से सम्बन्धित सभी आगमिक सन्दर्भ एक साथ प्राप्त हो जाते हैं। उनके द्वारा किये गये इस श्रम-साध्य कार्य से अनेकानेक लोगों को श्रम से मुक्ति मिली है। हम उनका आभार किन शब्दों में प्रकट करें, उनके सार्थक श्रम को शब्द की सीमा में बाँध पाना सम्भव नहीं है।

चरणानुयोग की भूमिका की तरह इस भूमिका के लिये भी मैंने उन्हें और पाठकों को पर्याप्त प्रतीक्षा करवायी, इस हेतु हृदय से क्षमा प्रार्थी हूँ।

पौष कृष्णा १०
पार्श्व जयंती
सम्वत् २०५१

–प्रो. डॉ. सागरमल जैन
निदेशक, पार्श्वनाथ शोधपीठ
वाराणसी-५

---

१. से न दीहे, न हस्से, न वट्टे, न तंसे, न चउरंसे, न परिमंडले, न किण्हे, न नीले, न लोहिए, न हालिद्दे, न सुकिल्ले, न सुरभिगन्धे, न दुरभिगन्धे, न तित्ते, न कडुए, न कसाए, न अंबिले, न महुरे, न कक्खड़े, न मउए, न गुरुए, न लहुए, न सीए, न उण्हे, न निद्धे, न लुक्खे, न काऊ, न रूहे, न संगे, न इत्थी, न पुरिसे, न अन्नहा–से न सद्दे, न रूवे, न गंधे, न रसे, न फासे।
–आचारांग सूत्र, १/५/६

२. णवि दुक्खं णवि सुक्खं णवि पीडा व णवि विज्जदे बाहा।
णवि मरणं णवि जणणं, तत्थेव य होई णिव्वाणं॥
णवि इंदिय उवसग्गा णवि मोहो विहियो ण णिद्दाय।
ण यं तिण्हा णेव छुहा तत्थेव हवदि णिव्वाणं॥ –नियमसार, १७८-१७९

३. सव्वेसरा नियट्टंति तक्का जत्थ न विज्जइ, गई तत्थ न, गहिया ओए अप्पइट्ठाणस्स खेयन्ने-उवमा न विज्जए-अरूवी सत्ता अपयस्स पयं नत्थि।
–आचारांग सूत्र, १/५/६/१७१

विषय-सूची

भाग १
अध्ययन १ से २४

● अध्ययनों का क्रम विषय सूची के अनुसार समझें।

विषयानुक्रमणिका

• भूल से एक सूत्रांक का अन्तर रह गया है। कुल सूत्र संख्या २९ होनी चाहिए।

विषयानुक्रमणिका

• भूल से एक सूत्रांक का अन्तर रह गया है। कुल सूत्र संख्या २९ होनी चाहिए।

२. अजीव पर्याय

५. परिणाम अध्ययन

६. जीव-अजीव अध्ययन

७. जीव अध्ययन

१. जीव सामान्य

सूत्र	विषय	पृष्ठांक
९८.	चौबीसदंडकों में समाहारादि सात द्वारों का प्ररूपण,	१९४
	१. आहार-शरीर-उच्छ्वास द्वार,	१९४
	२. कर्म द्वार,	१९५
	३. वर्ण द्वार,	१९५
	४. लेश्या द्वार,	१९५
	५. वेदना द्वार,	१९५-१९६
	६. क्रिया द्वार,	१९६
	७. आयु द्वार,	१९६-२००
९९.	चौबीसदंडकों में आहार-परिणामादि का प्ररूपण,	२००-२०१
१००.	चौबीसदंडकों में स्थिति स्थानादि दस द्वारों में क्रोधोपयुक्तादि भंगों का प्ररूपण,	२०१
	१. स्थिति स्थान द्वार,	२०१-२०२
	२. अवगाहन स्थान द्वार,	२०२-२०३
	३. शरीर द्वार,	२०३
	४. संहनन द्वार,	२०३
	५. संस्थान द्वार,	२०४
	६. लेश्या द्वार,	२०४
	७. दृष्टि द्वार,	२०४
	८. ज्ञान द्वार,	२०४
	९. योग द्वार,	२०५
	१०. उपयोग द्वार,	२०५-२०६
१०१.	चौबीसदंडकों में अध्यवसायों की संख्या और प्रशस्ता-प्रशस्तत्व का प्ररूपण,	२०६-२०७
१०२.	चौबीसदंडकों में सम्यक्त्वाभिगमादि का प्ररूपण,	२०७
१०३.	चौबीसदंडकों में सारम्भ सपरिग्रहत्व का प्ररूपण,	२०७-२०९
१०४.	चौबीसदंडकों में सत्कारादि विनयभाव का प्ररूपण,	२०९-२१०
१०५.	चौबीसदंडकों में उद्योत, अंधकार और उनके हेतु का प्ररूपण,	२१०-२११
१०६.	चौबीसदंडकों में समयादि के प्रज्ञान का प्ररूपण,	२११-२१२
१०७.	चौबीसदंडकों में गुरुत्व लघुत्वादि का प्ररूपण,	२१२
१०८.	चौबीसदंडकों में भवसिद्धिकत्व का प्ररूपण,	२१३
१०९.	उपधि और परिग्रह के भेद तथा चौबीसदंडकों में प्ररूपण,	२१३
११०.	वर्णादि निर्वृत्ति के भेद और चौबीसदंडकों में प्ररूपण,	२१३-२१४
१११.	विवक्षा से करण के भेद और चौबीसदंडकों में प्ररूपण,	२१४
११२.	उन्माद के भेद और चौबीसदंडकों में प्ररूपण,	२१४-२१५
११३.	चौबीसदंडकों में अनन्तराहारक तत्पश्चात् निर्वर्तन आदि का प्ररूपण,	२१५-२१६
११४.	चौबीसदंडकों का अग्निकाय के मध्य में होकर गमन का प्ररूपण,	२१६-२१८
११५.	चौबीसदंडकों में इष्टानिष्टों के अनुभव स्थानों की संख्या का प्ररूपण,	२१८-२१९

६. कायस्थिति

सूत्र	विषय	पृष्ठांक
११६.	जीवों में जीवत्व की कायस्थिति का प्ररूपण,	२१९
११७.	षड्विध विवक्षा से संसारी जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण,	२१९-२२०
११८.	नवविध विवक्षा से एकेन्द्रियादि जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण,	२२०
११९.	सकायिक-अकायिक जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण,	२२०-२२३
१२०.	त्रस और स्थावरों की कायस्थिति का प्ररूपण,	२२४
१२१.	पर्याप्तादि जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण,	२२४
१२२.	सूक्ष्मादि जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण,	२२४
१२३.	त्रसादि जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण,	२२४-२२५
१२४.	परीत आदि जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण,	२२५
१२५.	भवसिद्धिकादि जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण,	२२५-२२६

७. अन्तरकाल

सूत्र	विषय	पृष्ठांक
१२६.	नव प्रकार की विवक्षा से एकेन्द्रियादि जीवों के अंतरकाल का प्ररूपण,	२२६
१२७.	दस प्रकार की विवक्षा से जीवों के अंतरकाल का प्ररूपण,	२२६
१२८.	प्रथमाप्रथम समय की विवक्षा से जीवों के अंतरकाल का प्ररूपण,	२२७
१२९.	षड्जीवनिकायिकों के अंतरकाल का प्ररूपण,	२२७
१३०.	त्रस और स्थावरों के अंतरकाल का प्ररूपण,	२२७
१३१.	सूक्ष्मों के अंतरकाल का प्ररूपण,	२२७-२२८
१३२.	बादरों के अंतरकाल का प्ररूपण,	२२८
१३३.	त्रस आदि के अंतरकाल का प्ररूपण,	२२८
१३४.	सूक्ष्मादि के अंतरकाल का प्ररूपण,	२२८
१३५.	पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के अंतरकाल का प्ररूपण,	२२८

८. अल्पबहुत्व

सूत्र	विषय	पृष्ठांक
१३६.	सिद्ध-असिद्ध जीवों का अल्पबहुत्व,	२२८
१३७.	दिशाओं की अपेक्षा संसारी सिद्ध जीवों का अल्पबहुत्व,	२२८-२३२
१३८.	ओघ से संसारी जीवों का अल्पबहुत्व,	२३२-२३५
१३९.	दसविध विवक्षा से संसारी जीवों का अल्पबहुत्व,	२३५-२३६
१४०.	योगापेक्षा चौदह प्रकार के संसारी जीवों का अल्पबहुत्व,	२३६-२३७
१४१.	क्षेत्र की अपेक्षा जीवों और चातुर्गतिक जीवों का अल्पबहुत्व,	२३७-२३९
१४२.	क्षेत्र की अपेक्षा षड्जीव निकायों का अल्पबहुत्व,	२३९-२४३

८. प्रथम-अप्रथम अध्ययन

९. संज्ञी अध्ययन

१०. योनि अध्ययन

११. संज्ञा अध्ययन

१२. स्थिति अध्ययन

१. नैरयिक

१३. आहार अध्ययन

१४. शरीर अध्ययन

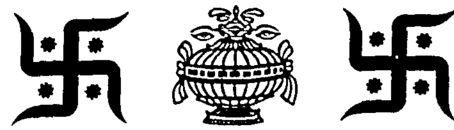
१. पाँच शरीर

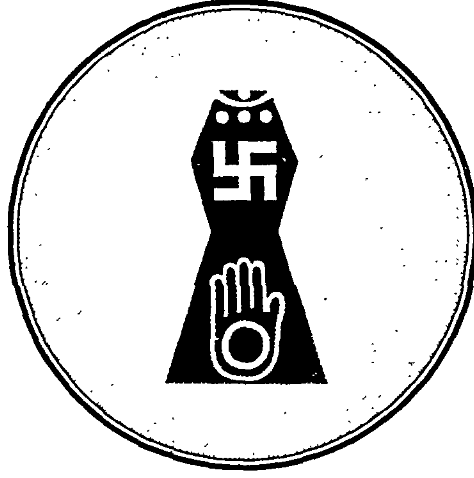
२. अवगाहना

१७. उच्छ्वास अध्ययन

१८. भाषा अध्ययन

ज्ञान अध्ययनं का अनुयोग प्रकरण





द्रव्यानुयोग

अध्ययन १ से २४

॥ अर्हम् ॥

दव्वाणुओगो

द्रव्यानुयोग : आमुख

जिसमें द्रव्यों एवं उनकी अवस्थाओं की विभिन्न दृष्टिकोणों से व्याख्या की जाती है, उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यकभाष्य में अनुयोग शब्द का प्रयोग व्याख्या के अर्थ में ही किया है, ऐसा उनके वृत्तिकार मल्लधारी हेमचन्द्र के कथन 'अनुयोगस्तु व्याख्यानम्' से विदित होता है। व्याख्या की भी विधि होती है। अनुयोगद्वारसूत्र में इस विधि का प्रतिपादन है। फल, सम्बन्ध, मंगल, समुदायार्थ आदि के अतिरिक्त उपक्रम, निक्षेप, अनुगम और नय द्वारों से व्याख्या की जाती है। उपक्रम के आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता, अर्थाधिकार और समवतार ये छह भेद हैं। निक्षेप तीन प्रकार का है–ओघनिष्पन्न, नामनिष्पन्न और सूत्रालापक निष्पन्न। सूत्र एवं निर्युक्ति के भेद से अनुगम दो प्रकार का होता है तथा नय के नैगम, संग्रह आदि सात भेद हैं। इनके अतिरिक्त व्याख्या में निरुक्त, क्रम एवं प्रयोजन का भी समावेश होता है।

प्रस्तुत अनुयोग का वैशिष्ट्य है–जैनागमों में द्रव्य सम्बन्धी समस्त सामग्री का विषयक्रम से व्यवस्थापन। यह व्यवस्थापन भी एक प्रकार की व्याख्या ही है क्योंकि इसका कोई फल है, प्रयोजन है, सम्बन्ध है तथा यह भी उपक्रम, निक्षेप आदि से सम्पन्न है। इस व्याख्या में प्राचीन शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण न करते हुए आधुनिक युग के पाठकों के अनुकूल पद्धति को अपनाया गया है।

द्रव्यानुयोग में प्रमुखरूपेण षड्द्रव्यों एवं उनकी अवस्थाओं से सम्बद्ध स्थितियों का विवेचन होता है। षड्द्रव्य हैं–१. धर्म, २. अधर्म, ३. आकाश, ४. काल, ५. पुद्गल और ६. जीव। इनमें प्रथम पाँच द्रव्यों के लिए एक अजीव संज्ञा दी जाती है क्योंकि ये सब अजीव हैं। इस प्रकार प्रधानतः दो द्रव्य हैं–जीव और अजीव। इन द्रव्यों तथा इनके पारस्परिक सम्बन्ध से क्या घटित होता है, यह सम्पूर्ण द्रव्यानुयोग का प्रतिपाद्य है। जीव एवं अजीव के सम्बन्ध से ही पुण्य, पाप, आश्रव, बन्ध तत्त्व घटित होते हैं तथा जब जीव कर्म (अजीव) से मुक्त होता है या मुक्त होने का प्रयास करता है तो संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्व घटित होते हैं।

जो जीव और अजीव इन दो तत्त्वों या द्रव्यों को भली भांति जान लेता है वह पुण्य, पाप, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष तत्त्वों को भी जान लेता है। जो इन समस्त तत्त्वों को जानता है और उन पर श्रद्धा करता है वही सम्यक् आचरण कर पाता है। इसीलिए दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है कि जो जीव एवं अजीव इन दो तत्त्वों को जानता है वही संयम को जानता है। जो जीव एवं अजीव को जानता है वही सब जीवों की बहुविध गति को जानता है तथा वही पुण्य, पाप, बंध और मोक्ष को जानकर भोगों से विरत होता है। वही प्रव्रजित होकर अनगार बनता है तथा उत्कृष्ट संवर धर्म का आराधन करता है जिससे नवीन कर्मों का बन्ध मंद पड़ जाता है। वही साधक फिर पूर्वबद्ध कर्मों को धुनकर उन्हें नष्ट कर देता है और केवलज्ञान तथा केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है।

जीव एवं अजीव द्रव्यों को जानने का यही सबसे बड़ा फल है कि इनको जानने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। आगम में इन द्रव्यों का प्ररूपण, द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव इन चार दृष्टियों से किया गया है।

द्रव्यानुयोग के स्थानाङ्ग सूत्र के अनुसार द्रव्यानुयोग, मातृकानुयोग आदि दस प्रकार हैं। ये सब द्रव्य का ही विभिन्न प्रकार से विवेचन करते हैं। श्रमण भगवान महावीर ने विभिन्न परिषदों में अर्द्धमागधी भाषा में इन द्रव्यों का विवेचन किया है। उनके द्वारा अर्थरूप में प्रतिपादित वाणी को ही गणधरों ने सूत्र रूप में गूंथा है। उसी का प्राप्त अंश भिन्न भिन्न सूत्रों से संकलित/वर्गीकृत करके इस अनुयोग में प्रस्तुत किया जाएगा। इस अनुयोग का नाम द्रव्यानुयोग है अतः इसी नाम के अध्ययन से इसका उपक्रम किया गया है।

दव्वाणुओगो

द्रव्यानुयोग

सूत्र

१. **मंगलाचरण-**

सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ।
अत्थ धम्मगइं तच्चं, अणुसट्ठिं सुणेह मे॥

-उत्तरा. अ. २०, गाथा १

१. **मंगलाचरण-**

सिद्धों और संयतों को भावपूर्वक नमस्कार करके मैं अर्थ (मोक्ष) और धर्म का बोध कराने वाली तथ्यपूर्ण शिक्षा का प्रतिपादन करता हूं, उसे मुझ से सुनो।

२. **जीवाजीव-णाणमाहप्पं-**

जीवाजीव-विभत्तिं, सुणेह मे एग-मणाइओ।
जं जाणिऊण समणे, सम्मं जयइ संजमे॥

-उत्तरा. अ. ३६, गाथा १

२. **जीवाजीव के ज्ञान का माहात्म्य-**

अब जीव और अजीव के विभाग को तुम एकाग्रमन होकर मुझ से सुनो, जिसे जानकर श्रमण सम्यक् प्रकार से संयम में यत्नशील होता है।

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे॥१॥

व्यक्ति सुनकर ही कल्याण को और पाप को जानता है। दोनों (पुण्य-पाप) को सुनकर ही जानता है अतएव जो कल्याण रूप हो उसी का आचरण करना चाहिए।

जो जीवे वि ण याणइ, अजीवे वि ण याणइ।
जीवा-ऽजीवे अयाणंतो, कहं सो णाहिइ संजमं?॥२॥

जो जीवों को भी नहीं जानता, अजीवों को भी नहीं जानता, जीव और अजीव दोनों को नहीं जानने वाला वह (साधक) संयम को कैसे जानेगा?

जो जीवे वि वियाणइ, अजीवे वि वियाणइ।
जीवा-ऽजीवे वियाणंतो, सो हु णाहिइ संजमं॥३॥

जो जीवों को भी विशेष रूप से जानता है, अजीवों को भी विशेष रूप से जानता है। जीव और अजीव दोनों को विशेष रूप से जानने वाला ही संयम को जान सकेगा।

जया जीवे अजीवे य, दो वि एए वियाणइ।
तया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ॥४॥

जब साधक जीव और अजीव दोनों को विशेष रूप से जान लेता है, तब वह समस्त जीवों की बहुविध गतियों को भी जान लेता है।

जया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ।
तया पुण्णं च पावं च, बंधं मोक्खं पि जाणइ॥५॥

जब साधक सर्व जीवों की बहुविध गतियों को जान लेता है, तब वह पुण्य और पाप तथा बन्ध और मोक्ष को भी जान लेता है।

जया पुण्णं च पावं च, बंधं मोक्खं पि जाणइ।
तया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे॥६॥

जब (मनुष्य) पुण्य और पाप तथा बन्ध और मोक्ष को जान लेता है, तब जो भी देव सम्बन्धी और मनुष्य सम्बन्धी भोग हैं, उनसे विरक्त हो जाता है।

जया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे।
तया जहइ संजोगं, सऽब्भिंतरबाहिरं॥७॥

जब साधक दैविक और मानुषिक भोगों से विरक्त हो जाता है, तब आभ्यंतर और बाह्य संयोग का परित्याग कर देता है।

जया जहइ संजोगं, सब्भिंतरबाहिरं।
तया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं॥८॥

जब साधक आभ्यंतर और बाह्य संयोगों का त्याग कर देता है, तब वह मुण्ड होकर अनगार धर्म में प्रव्रजित हो जाता है।

जया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं।
तया संवरमुक्कट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं॥९॥

जब साधक मुण्डित होकर अनगार वृत्ति में प्रव्रजित हो जाता है, तब उत्कृष्ट संवररूप अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है।

जया संवरमुक्कट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं।
तया धुणइ कम्मरयं, अबोहि-कलुसं कडं॥१०॥

जब साधक उत्कृष्ट-संवर रूप अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है, तब अबोधि रूप पाप द्वारा संचित किए हुए कर्मरज को आत्मा से झाड़ देता है अर्थात् पृथक् कर देता है।

जया धुणइ कम्मरयं, अबोहि-कलुसं कडं।
तया सव्वत्तगं णाणं, दंसणं चाभिगच्छइ॥११॥

जब साधक अबोधि रूप पाप द्वारा संचित कर्मरज को झाड़ देता है तब केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है।

जया सव्वत्तगं णाणं, दंसणं चाभिगच्छइ।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली॥१२॥

जब साधक केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है, तब वह जिन और केवली होकर लोक और अलोक को जान लेता है।

जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली।
तया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ॥१३॥

जब साधक जिन और केवली होकर लोक-अलोक को जान लेता है तब योगों का निरोध करके शैलेशी अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ।
तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ णीरओ ॥१४॥

जब साधक योगों का निरोध करके शैलेशी अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तब वह अपने समस्त कर्मों को क्षय करके रज-मुक्त बन कर सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ णीरओ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो भवइ सासओ ॥१५॥

—दस. अ. ४, गा. ३४-४८

जब साधक समस्त कर्मों को क्षय करके रज-मुक्त होकर सिद्धि को प्राप्त कर लेता है, तब वह लोक के मस्तक पर स्थित होकर शाश्वत सिद्ध हो जाता है।

३. जीवाजीवाणं अत्थित्तपण्णा परूवणं—

णत्थि जीवा अजीवा वा, णेवं सन्नं निवेसए।
अत्थि जीवा अजीवा वा, एवं सन्नं निवेसए ॥१॥

—सूय. सु. २, अ. ५, गाथा १३

दव्वओ खेत्तओ चेव कालओ भावओ तहा।
परूवणा तेसिं भवे जीवाणमजीवाण य ॥

—उत्त. अ. ३६, गा. ३

३. जीवाजीव के अस्तित्व की प्रज्ञा का प्ररूपण—

जीव और अजीव पदार्थ नहीं हैं, ऐसी संज्ञा नहीं रखनी चाहिए, अपितु जीव और अजीव पदार्थ हैं, ऐसी संज्ञा (बुद्धि) रखनी चाहिए।

द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव से उन जीवों और अजीवों की प्ररूपणा होती है।

४. दवियाणुओगस्स परूपण पगारा—

दसविहे दवियाणुओगे पन्नत्ते, तं जहा—

१. दवियाणुओगे, २. माउयाणुओगे,
३. एगट्ठियाणुओगे, ४. करणाणुओगे,
५. अप्पिताणप्पिते, ६. भाविताभाविते,
७. वाहिरा-वाहिरे, ८. सासतासासते,
९. तधणाणे, १०. अतधणाणे।

—ठाणं. अ. १०, सु. ७२६

४. द्रव्यानुयोग के प्ररूपण-प्रकार—

द्रव्यानुयोग (की प्ररूपणा के) दस प्रकार कहे गए हैं, यथा—

१. द्रव्यानुयोग २. मातृकानुयोग
३. एकार्थिकानुयोग ४. करणानुयोग
५. अर्पितानर्पित ६. भाविताभावित
७. वाह्यावाह्य ८. शाश्वत-अशाश्वत
९. तथाज्ञान १०. अतथाज्ञान[1]

५. दव्वाणुओगस्स उक्खेवो—

तए णं समणे भगवं महावीरे तीसे य महइ महालियाए परिसाए, मुणि परिसाए, जइ परिसाए, देव परिसाए, अणेगसयाए, अणेगसयवंदाए, अणेगसयवंदपरिवाराए, सारयणवत्थणिय महुर गम्भीर कोंचणिग्घोस दुंदुभिस्सरे,

उरे वित्थडाए, कंठे वट्टियाए,

सिरे समाइण्णाए, अगरलाए, अमम्मणाए,

सुवत्तक्खरसण्णिवाइयाए पुण्णरत्ताए सव्वभासाणुगामिणीए, सरस्सईए,

जोयण-णीहारिणा सरेणं,

अद्धमागहाए भासाए धम्मं परिकहेइ,

सा वि य णं अद्धमागहा भासा तेसिं सव्वेसिं आरिय-मणारियाणं अप्पणो सभासाए परिणमेणं परिणमइ—

तं जहा—अत्थि लोए, अत्थि अलोए।

५. द्रव्यानुयोग का उपोद्घात—

उस समय श्रमण भगवान् महावीर ने अनेक सौ, अनेक सौ वृन्द, अनेक सौ वृन्दों के परिवार वाली उस महान् परिषदा में, मुनि परिषदा में, यति परिषदा में, देव परिषदा में, शरद ऋतु के नवीन मेघ के गर्जन जैसे, क्रौंच पक्षी तथा दुन्दुभि के घोष जैसी मधुर ध्वनि में

हृदय में विस्तृत, कण्ठ में स्थित,

मस्तिष्क में व्याप्त, अस्पष्ट उच्चारण रहित, हकलाहट रहित,

व्यक्त अक्षरों के पूर्ण संयोजन सहित

सर्वभाषानुगामिनी वाणी,

जो योजन पर्यन्त सुनाई दे ऐसे स्वर से,

अर्धमागधी भाषा में धर्म कहा—

वह अर्धमागधी भाषा उन सब आर्य-अनार्य श्रोताओं की अपनी भाषा में परिणत हो गई।

यथा—लोक का अस्तित्व है, अलोक का अस्तित्व है।

---

१. द्रव्यों के द्रव्यत्व की व्याख्या करना,
२. उत्पाद आदि मातृकापदों के आधार से द्रव्यों की व्याख्या करना,
३. द्रव्यों के एकार्थक और पर्यायवाची शब्दों की व्याख्या करना,
४. द्रव्य की निष्पत्ति में साधकतम कारणों का विचार करना,
५. द्रव्य के मुख्य और गौण धर्मों का विचार करना,
६. द्रव्यांतर से प्रभावित और अप्रभावित होने का विचार करना,
७. एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य की भिन्नता अभिन्नता का विचार करना,
८. द्रव्यों के शाश्वत अशाश्वतता का विचार करना,
९. द्रव्यों के यथार्थ स्वरूप का विचार करना,
१०. द्रव्यों के अयथार्थ स्वरूप का विचार करना।

एवं जीवा, अजीवा, बंधे, मोक्खे, पुण्णे, पावे, आसवे, संवरे, वेयणा, णिज्जरा,
अरिहंता, चक्कवट्टी, बलदेवा, वासुदेवा,
नरगा, णेरइया,
तिरिक्खजोणिया, तिरिक्खजोणिणीओ
माया, पिया, रिसओ, देवा, देवलोया, सिद्धि, परिणिव्वाणे, परिणिव्वुया।
अत्थि १ पाणाइवाए जाव १८ मिच्छादंसणसल्ले

अत्थि १ पाणाइवायवेरमणे जाव १८ मिच्छादंसण- सल्लविवेगे सव्वं अत्थिभावं अत्थित्ति वयइ,

सव्वं णत्थिभावं णत्थित्ति वयइ,
सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवंति,
दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णफला भवंति,
फुसइ पुण्णपावे
पच्चायंति जीवा,
सफले कल्लाणपावए।

धम्ममाइक्खइ-इणमेव णिग्गंथे पावयणे सच्चं, अणुत्तरे, केवलिए, संसुद्धे, पडिपुण्णे, णेयाउए सल्लकत्तणे, सिद्धिमग्गे, मुत्तिमग्गे, णिव्वाणमग्गे, णिज्जाणमग्गे, अवितहमविसंदिद्ध, सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे।

इयट्ठिया जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

एकच्चा पुण एगे भयंतारो पुव्वकम्मावसेसेणं अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, महिड्ढिएसु **जाव** महासुक्खेसु दूरंगइएसु चिरट्ठिइएसु।

ते णं तत्थ देवा भवंति महिड्ढिया **जाव** महज्जुइया, महब्बला, महायसा, महासुखा चिरट्ठिइया।

हारविराइयवच्छा **जाव** पभासेमाणा कप्पोवगा, गइकल्लाणा, आगमेसिभद्दा **जाव** पडिरूवा।

-उव. सु. ५६



इसी प्रकार जीव, अजीव, वन्ध, मोक्ष, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, वेदना, निर्जरा,
अर्हन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव,
नरक, नैरयिक,
तिर्यञ्चयोनिक, तिर्यञ्चयोनिनी,
माता, पिता, ऋषि, देव, देवलोक, सिद्धि, परिनिर्वाण (कर्मक्षय), परिनिर्वृत्त (कर्मक्षय करने वाला) है।
१. प्राणातिपात यावत् १८ मिथ्यादर्शन शल्य ये अठारह पाप स्थान हैं।
१. प्राणातिपातविरमण-(हिंसा से विरत) यावत् १८ मिथ्यादर्शनशल्यविवेक ये पाप त्याग के अठारह स्थान हैं।
सभी अस्तिभाव-(अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव की अपेक्षा) अस्तित्व रूप कहे जाते हैं।
सभी नास्तिभाव-नास्तित्त्व रूप कहे जाते हैं।
अच्छी तरह आचरित कर्म अच्छे फल देने वाले होते हैं।
दुश्चीर्ण-पापमय कर्म अशुभ फल देने वाले हैं।
जीव पुण्य पाप कर्मों का वंध करता है।
(संसारी) जीव जन्म मरण करते हैं।
शुभ और अशुभ कर्म निष्फल नहीं होते हैं।

प्रकारान्तर से भगवान् धर्म का प्रतिपादन करते हैं-यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है, अनुत्तर (सर्वोत्तम) है, अद्वितीय है, अत्यन्त शुद्ध है, परिपूर्ण है, न्यायसंगत है, माया आदि शल्यों (कांटों) का निवारक है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्ति का मार्ग है, निर्वाण का मार्ग है, निर्याण का मार्ग है, यथार्थ है, पूर्वापर विरोध से रहित तथा सव दुःखों को सर्वथा क्षीण करने का मार्ग है।

इस निर्ग्रन्थ धर्म में स्थित सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं परिनिवृत्त होते हैं और सर्वदुःखों का अंत करते हैं।

जिनके एक मनुष्य-भव धारण करना शेष रहा है, ऐसे भदन्त निर्ग्रन्थ श्रमण पूर्व कर्मों के बाकी रहने से किन्हीं देवलोकों में देव रूप में उत्पन्न होते हैं। वे देवलोक महर्द्धिक **यावत्** अत्यन्त सुखमय दुरंगतिक-(मोक्ष गति से युक्त) एवं चिरस्थितिक लम्बी स्थिति वाले हैं।

वहां देवरूप में उत्पन्न वे जीव महान् ऋद्धिसम्पन्न यावत् महान् द्युतिसम्पन्न महान् बलसम्पन्न महान् यशस्वी अत्यन्त सुखी तथा दीर्घ आयुष्ययुक्त होते हैं।

उनके वक्षःस्थल हारों से सुशोभित होते हैं **यावत्** दसों दिशाओं को प्रभासित करते हैं। वे कल्पोपपन्न देव वर्तमान में उत्तम देवगति के धारक तथा भविष्य में भद्र-कल्याण तथा निर्वाण रूप अवस्था को प्राप्त करने वाले होते हैं **यावत्** असाधारण रूपवान् होते हैं।



१. द्रव्य अध्ययन : आमुख

तत्वार्थसूत्र में द्रव्य का लक्षण "गुणपर्यायवद् द्रव्यम्" (अ. ५ सू. ३७) देकर द्रव्य को गुण एवं पर्याययुक्त वतलाया गया है। आचार्य हेमचन्द्र ने प्रमाणमीमांसा (१.१.३०) की स्वोपज्ञवृत्ति में "द्रवति तांस्तान् पर्यायान् गच्छति इति द्रव्यं ध्रौव्यलक्षणम्" कथन के द्वारा विभिन्न पर्यायों को प्राप्त होने वाले ध्रौव्य स्वभावी को द्रव्य कहा है। उत्तराध्ययन सूत्र में गुणों के आश्रय को द्रव्य कहा है।

गुण तथा पर्याय के सम्बन्ध में जैन दार्शनिकों में मतभेद रहा है। सिद्धसेन, हरिभद्र, हेमचन्द्र, यशोविजय आदि जैन दार्शनिक गुण एवं पर्याय में अभेदता स्वीकार करते हैं, जवकि विद्यानन्द आदि कुछ दिगम्वर दार्शनिक तथा वादि देवसूरि आदि श्वेताम्वर दार्शनिक इनमें भेद प्रतिपादित करते हैं। देवसूरि के अनुसार गुण द्रव्य के सहभावी होते हैं तथा पर्यायों क्रमभावी होती हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में यह अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि गुण केवल द्रव्य के आश्रित होते हैं जवकि पर्याय द्रव्य और गुण दोनों के आश्रित होती हैं। द्रव्यपर्याय एवं गुणपर्याय शब्दों का प्रयोग जैन साहित्य में हुआ है। अनुयोगद्वार सूत्र एवं भगवती सूत्र में भी द्रव्य एवं पर्याय की भिन्नता का वोध होता है।

द्रव्य छह हैं–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल (अद्धासमय)। यह इनका पूर्वानुपूर्वी क्रम है। पश्चानुपूर्वी क्रम इसके विपरीत होता है जिसके अनुसार काल की गणना सवसे पहले तथा धर्मास्तिकाय की गणना सवके अन्त में होती है। धर्मास्तिकाय द्रव्य गति में हेतु वनता है, अधर्मास्तिकाय स्थिति में हेतु वनता है, आकाश समस्त द्रव्यों को स्थान देने के कारण उनका आश्रय है। काल का लक्षण वर्तना है। जीव का लक्षण उपयोग है। विस्तार से कहें तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य भी जीव के लक्षण हैं। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से युक्त द्रव्य पुद्गल है। शब्द, अंधकार, प्रकाश, छाया, प्रभा और आतप भी पौद्गलिक हैं।

संख्या की दृष्टि से धर्म, अधर्म एवं आकाश द्रव्य एक-एक है जवकि पुद्गल एवं काल अनन्त हैं। प्रदेश की अपेक्षा से धर्म, अधर्म, एवं जीव असंख्यात प्रदेशी हैं। आकाश अनन्त प्रदेशी है। उसमें से लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी है। पुद्गल संख्यात, असंख्यात एवं अनन्तप्रदेशी है जवकि काल अप्रदेशी है। ये छहों द्रव्य अपने ही स्वभाव में परिणमन करते हैं। कोई द्रव्य दूसरे के रूप में परिवर्तित नहीं होता। इसलिए धर्मास्तिकाय सदैव धर्मास्तिकाय वना रहता है। अधर्मास्तिकाय सदैव अधर्मास्तिकाय वना रहता है। इसी प्रकार अन्य द्रव्य भी अपने स्वरूप में सदैव वने रहते हैं।

इस अध्ययन में अनुयोगद्वार सूत्र के अनुसार छहों द्रव्यों के भेद-प्रभेदों का अविशेषित एवं विशेषित नामों के आधार पर भी वर्णन किया गया है जिसमें जीव द्रव्य का विस्तार से वर्णन हुआ है। अविशेषित शब्द का अर्थ है भेद रहित, सामान्य आदि। विशेषित शब्द का अर्थ है–भेद युक्त, विशेष आदि। किसी द्रव्य का संग्रहनय से अविशेषित (सामान्य) कथन होता है जवकि व्यवहार नय से उसके विशेषित (भेदों) का वर्णन किया जाता है, यथा–जीव द्रव्य को अविशेषित मानने पर नारक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देव ये चार विशेषित नाम होते हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय एवं आकाशास्तिकाय को अविशेषित मानकर उनके भेदों का वर्णन इस अध्ययन में नहीं हुआ जवकि पुद्गलास्तिकाय को अविशेषित मानकर उसके परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशिक स्कन्ध से अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध पर्यन्त विशेषित नामों का संकेत किया गया है।

छह द्रव्यों में द्रव्यार्थ एवं प्रदेशार्थ की अपेक्षा से कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज का भी इस अध्ययन में विचार हुआ है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय एवं आकाशास्तिकाय द्रव्यार्थ से कल्योज है। जीवास्तिकाय एवं काल द्रव्यार्थ से कृतयुग्म हैं, जवकि पुद्गलास्तिकाय द्रव्यार्थ से कदाचित् कृतयुग्म है, कदाचित् त्र्योज है, कदाचित् द्वापरयुग्म है तथा कदाचित् कल्योज है। प्रदेशार्थ की अपेक्षा सभी द्रव्य कृतयुग्म हैं। इन द्रव्यों की अवगाढ़ता के प्रसंग में प्रतिपादित किया गया है–धर्मास्तिकाय आदि सभी द्रव्य असंख्यात प्रदेशावगाढ़ है तथा उसमें भी कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ हैं।

धर्मास्तिकाय आदि के प्रदेश स्वयं अपने अन्य प्रदेशों से तथा अन्य द्रव्यों के प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं। इस अध्ययन में यह विचार हुआ है कि एक द्रव्य का कोई प्रदेश अन्य द्रव्यों के (या अपने अन्य) कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है। इसी प्रकार छहों द्रव्यों के परस्पर प्रदेशावगाढ़ पर विस्तृत विचार हुआ है।

समस्त द्रव्यों को दो भागों में विभक्त किया जाता है–जीव और अजीव। इनमें जीवास्तिकाय को छोड़कर पांच द्रव्य अजीव हैं। अजीव भी दो प्रकार के हैं–रूपी और अरूपी। रूपी अजीव में पुद्गलास्तिकाय का समावेश होता है जवकि अरूपी अजीव में धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल की गणना होती है। धर्म और अधर्म द्रव्य लोक प्रमाण हैं। आकाश लोक और अलोक में व्याप्त है। काल (व्यवहार काल) मनुष्य क्षेत्र अर्थात् अढ़ाई द्वीप में ही है। जीव एवं पुद्गल लोक में पाए जाते हैं।

क्षेत्र एवं दिशा के आधार पर इन षड्द्रव्यों के अल्प-वहुत्व का भी अध्ययन में वर्णन हुआ है जो विचारणीय है। अन्य अल्प-वहुत्वों की द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा से विचारणा हुई है। द्रव्य (संख्या) की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय ये तीनों तुल्य हैं तथा सवसे अल्प है, अद्धासमय सवसे अधिक है। प्रदेश की अपेक्षा धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय तुल्य है एवं सवसे अल्प हैं तथा आकाशास्तिकाय सवसे अधिक है।

१. दव्वऽज्झयणं

सूत्र

१. दव्वाण-णामाइं-

प. कइविहा णं भंते! दव्वा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा! दुविहा दव्वा पण्णत्ता, तं जहा-

१. जीवदव्वा य, २. अजीवदव्वा य।[१]

-विया. स. २५, उ. २, सु. १

प. से किं तं दव्व णामे ?

उ. दव्व णामे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. धम्मत्थिकाए, २. अधम्मत्थिकाए,
३. आगासत्थिकाए, ४. जीवत्थिकाए,
५. पोग्गलत्थिकाए, ६. अद्धासमए अ।

से तं दव्व णामे।[२]

-अणु सु. २१८

२. विविह विवक्खया दव्वाणं दुविहत्त परूवणं-

दुविहा दव्वा पण्णत्ता, तं जहा-

१. परिणया चेव २. अपरिणया चेव

दुविहा दव्वा पण्णत्ता, तं जहा-

१. गतिसमावन्नगा चेव २. अगतिसमावन्नगा चेव

दुविहा दव्वा पण्णत्ता, तं जहा-

१. अणंतरोगाढा चेव २. परम्परोगाढा चेव

-ठाणं. अ. २, उ.१, सु. ६३

३. आणुपुव्वी आइ कमेण दव्व णामाइं-

प. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

उ. पुव्वाणुपुव्वी, तं जहा-

१. धम्मत्थिकाए, २. अधम्मत्थिकाए,
३. आगासत्थिकाए, ४. ज़ीवत्थिकाए,
५. पोग्गलत्थिकाए, ६. अद्धासमए।

से तं पुव्वाणुपुव्वी।

प. से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

उ. पच्छाणुपुव्वी-

६. अद्धासमए, ५. पोग्गलत्थिकाए,
४. जीवत्थिकाए, ३. आगासत्थिकाए,
२. अधम्मत्थिकाए, १. धम्मत्थिकाए।

से तं पच्छाणुपुव्वी।

प. से किं तं अणाणुपुव्वी ?

१. द्रव्य अध्ययन

सूत्र

१. द्रव्यों के नाम-

प्र. भन्ते ! द्रव्य कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! द्रव्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. जीव द्रव्य, २. अजीव द्रव्य।

प्र. द्रव्य नाम का क्या स्वरूप है ?

उ. द्रव्य नाम छः प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय,
३. आकाशास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय,
५. पुद्गलास्तिकाय, ६. अद्धासमय (काल)।

यह द्रव्य नाम है।

२. विविध विवक्षा से द्रव्यों के द्विविधत्व का प्ररूपण-

द्रव्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. परिणत (रूपान्तरित) २. अपरिणत

द्रव्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. गति समापन्नक, २. अगतिसमापन्नक,

द्रव्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. अनंतरावगाढ २. परम्परावगाढ।

३. आनुपूर्वी आदि के क्रम से द्रव्यों के नाम-

प्र. भंते ! पूर्वानुपूर्वी का क्या क्रम है ?

उ. पूर्वानुपूर्वी का यह क्रम है, यथा-

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय,
३. आकाशास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय,
५. पुद्गलास्तिकाय, ६. अद्धाकाल।

यह पूर्वानुपूर्वी का क्रम हुआ।

प्र. पश्चानुपूर्वी का क्या क्रम है ?

उ. पश्चानुपूर्वी का यह क्रम है-

६. अद्धाकाल, ५. पुद्गलास्तिकाय,
४. जीवास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय,
२. अधर्मास्तिकाय, १. धर्मास्तिकाय।

यह पश्चानुपूर्वी का क्रम हुआ।

प्र. भंते! अनानुपूर्वी का क्या क्रम है ?

---

१. (क) प. से किं तं पण्णवणा ?
उ. पण्णवणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा
१. जीवपण्णवणा य २. अजीवपण्णवणा य।
-पण्ण. प. १, सु. ३

(ख) प. से किं तं जीवाजीवाभिगमे ?
उ. गोयमा! जीवाजीवाभिगमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-
१. जीवाभिगमे य, २.अजीवाभिगमे य। *-जीवा. पडि. १, सु. २*

(ग) दुवे रासी पण्णत्ता, तं जहा-
१. जीवरासी य, २. अजीवरासी य।
-सम. सु. १४९/१

(घ) उत्त.अ. ३६, गा. ४८

२. (क) विया. स. २५ उ. ४, सु. ८ (ख) अणु. सु. २६९

उ. अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए छ-गच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरुवूणो।

से तं अणाणुपुव्वी —अणु. सु. १३२-१३४

उ. एक से प्रारम्भ कर एक एक की वृद्धि करने पर छह पर्यन्त स्थापित श्रेणी के अंकों में परस्पर गुणा करने से प्राप्त राशि में से आदि और अन्त के दो रूपों (संख्या) को कम करने पर अनानुपूर्वी वनती है।

यह अनानुपूर्वी का क्रम हुआ।

४. विसेसाविसेस विवक्खया दव्व भेयप्पभेया—

अहवा दुनामे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. विसेसिए य २. अविसेसिए य।

अविसेसिए दव्वे,

विसेसिए १. जीव दव्वे य, २. अजीव दव्वे य।

अविसेसिए जीव दव्वे,

विसेसिए—१. णेरइए, २. तिरिक्खजोणिए, ३. मणुस्से, ४. देवे।

अविसेसिए णेरइए,

विसेसिए—१. रयणप्पभाए, २. सक्करप्पभाए, ३. वालुयप्पभाए, ४. पंकप्पभाए, ५. धूमप्पभाए ६. तमाए, ७. तमतमाए।

अविसेसिए—रयणप्पभापुढविणेरइए,

विसेसिए पज्जत्तए य अपज्जत्तए य

एवं जाव अविसेसिए तमतमापुढवि णेरइए,

विसेसिए पज्जत्तए य अपज्जत्तए य।

अविसेसिए तिरिक्ख-जोणिए,

विसेसिए—१. एगिंदिए, २. बेइंदिए, ३. तेइंदिए, ४. चउरिंदिए, ५. पंचिंदिए।

अविसेसिए एगिंदिए,

विसेसिए—१. पुढविकाइए, २. आउकाइए, ३. तेउकाइए, ४. वाउकाइए, ५. वणस्सइकाइए।

अविसेसिए— पुढविकाइए,

विसेसिए—१. सुहुमपुढविकाइए य, २. वायरपुढविकाइए य।

अविसेसिए सुहुमपुढविकाइए,

विसेसिए—१. पज्जत्तय-सुहुमपुढविकाइए य,

२. अपज्जत्तय-सुहुमपुढविकाइए य।

अविसेसिए वायरपुढविकाइए,

विसेसिए—१. पज्जत्तय-वायरपुढविकाइए य,

२. अपज्जत्तय-वायरपुढविकाइए य।

एवं २. आउकाइए य, ३. तेउकाइए य.

४. वाउकाइए य ५. वणस्सईकाइए य एवं अविसेसिए

विसेसिए य पज्जत्तय—अपज्जत्तयभेदेहिं भाणियव्वा।

अविसेसिए बेइंदिये,

विसेसिए १. पज्जत्तय बेइंदिए य, २. अपज्जत्तय बेइंदिए य।

एवं तेइंदिय- चउरिंदिय वि भाणियव्वा।

४. विशेष—अविशेष की विवक्षा से द्रव्यों के भेद प्रभेद—

अपेक्षादृष्टि से द्विनाम दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. विशेषित २. अविशेषित।

द्रव्य यह अविशेषित (सामान्य) नाम है और जीव द्रव्य एवं अजीवद्रव्य ये विशेषित (उत्तर) भेद होंगे।

जीवद्रव्य को अविशेषित मानने पर—

१. नारक, २. तिर्यञ्चयोनिक, ३. मनुष्य, ४. देव ये चार विशेषित नाम होंगे।

नारक को अविशेषित मानने पर—

१. रत्नप्रभा, २. शर्कराप्रभा, ३. वालुकाप्रभा, ४. पंकप्रभा, ५. धूमप्रभा, ६. तमःप्रभा, ७. तमस्तमप्रभा का नारक, ये सात विशेषित नाम होंगे।

रत्नप्रभा पृथ्वी नारक को अविशेषित मानने पर

उनके पर्याप्त और अपर्याप्त नारक ये दो प्रकार विशेषित नाम होंगे।

इसी प्रकार तमस्तमप्रभा पृथ्वी के नारक पर्यन्त को अविशेषित मानने पर

पर्याप्त और अपर्याप्त ये (चौदह प्रकार) विशेषित नाम होंगे।

तिर्यञ्चयोनिक को अविशेषित मानने पर—

१. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय, ५. पंचेन्द्रिय ये पांच विशेषित नाम होंगे।

एकेन्द्रिय को अविशेषित मानने पर—

१. पृथ्वीकाय, २. अप्काय, ३. तेजस्काय, ४. वायुकाय, ५. वनस्पतिकाय ये पांच विशेषित नाम होंगे।

पृथ्वीकाय को अविशेषित मानने पर

१. सूक्ष्म पृथ्वीकाय, २. बादर पृथ्वीकाय ये दो विशेषित नाम होंगे।

सूक्ष्म पृथ्वीकाय को अविशेषित मानने पर—

१. पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय, २. अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय ये दो विशेषित नाम होंगे।

वादरपृथ्वीकाय को अविशेषित मानने पर—

१. पर्याप्त वादरपृथ्वीकाय, २. अपर्याप्त वादर पृथ्वीकाय ये दो विशेषित नाम होंगे।

इसी प्रकार २ अप्काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय को अविशेषित मानने पर अनुक्रम से उनके पर्याप्त और अपर्याप्त ये (दस प्रकार) विशेषित नाम जानने चाहिए।

द्वीन्द्रिय को अविशेषित मानने पर—

१. पर्याप्त द्वीन्द्रिय, २. अपर्याप्त द्वीन्द्रिय ये दो विशेषित नाम होंगे।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के लिए भी जानना चाहिए।

अविसेसिए- पंचेंदिय तिरिक्खजोणिए,
विसेसिए–१. जलयर-पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए,
२. थलयर पंचेदिय तिरिक्खजोणिए, ३. खयहर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिए य।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक को अविशेषित मानने पर–
१. जलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, २. स्थलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, ३. खेचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक। ये तीन विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए–जलयर पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए,
विसेसिए–१. सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरक्ख जोणिए य
२. गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य।

जलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक को अविशेषित मानने पर–
१. सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक, २. गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक ये दो विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए - सम्मुच्छिम- जलयर - पंचेंदिय तिरिक्ख - जोणिए,
विसेसिए–१. पज्जत्तय - सम्मुच्छिम - जलयर - पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य,
२. अपज्जत्तय - सम्मुच्छिम - जलयर - पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य।

सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक को अविशेषित मानने पर–
१. पर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,
२. अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक ये दो विशेपित नाम होंगे।

अविसेसिए–गब्भवक्कंतिय - जलयर - पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए,
विसेसिए–१. पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य,
२. अपज्जत्तय गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य।

गर्भज जलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक को अविशेषित मानने पर–
१. पर्याप्त गर्भज जलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक,
२. अपर्याप्त गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक ये दो विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए–थलयर पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए,
विसेसिए–१. चउप्पय थलयर–पंचेंदिय तिरिक्खजोणिए य,
२. परिसप्प थलयर पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य।

स्थलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक को अविशेषित मानने पर–
१. चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,
२ परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक ये दो विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए–चउप्पय-थलयर - पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए।
विसेसिए–१. सम्मुच्छिम - चउप्पय - थलयर पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य, २. गब्भवक्कंतिय - चउप्पय थलयर - पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य।

चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक को अविशेषित मानने पर–
१. सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक, २. गर्भज चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक ये दो विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए – सम्मुच्छिम - चउप्पय थलयर पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए,
विसेसिए–१. पज्जत्तय सम्मुच्छिम - चउप्पय - थलयर - पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य,
२. अपज्जत्तय - सम्मुच्छिम - चउप्पय - थलयर पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य।

सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक को अविशेषित मानने पर–
१. पर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,
२. अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक ये दो विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए–गब्भवक्कंतिय - चउप्पय थलयर - पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए,
विसेसिए–१. पज्जत्तय - गब्भवक्कंतिय - चउप्पय - थलयर - पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य।
२. अपज्जत्तयगब्भवक्कंतिय - चउप्पय - थलयर - पंचेंदिय तिरिक्खजोणिए य।

गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक को अविशेषित मानने पर–
१. पर्याप्त गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,
२. अपर्याप्त गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक ये दो विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए–परिसप्प थलयर-पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए,
विसेसिए–१. उरपरिसप्प थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख जोणिए य,

परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक को अविशेषित मानने पर–
१. उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,

२. भुयपरिसप्प-थलयर पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य।

२. भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक ये दो विशेषित नाम होंगे।

एवं सम्मुच्छिमा पज्जत्ता अपज्जत्ता य, गब्भवक्कंतिया वि पज्जत्ता अपज्जत्ता य भाणियव्वा।

इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम के पर्याप्त और अपर्याप्त तथा गर्भज के पर्याप्त और अपर्याप्त प्रकारों का भी कथन कर लेना चाहिए।

अविसेसिए-खयहर पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए,
विसेसिए-१. सम्मुच्छिम खयहर पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य,
२. गब्भवक्कंतिय खयहर पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य।

खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक को अविशेषित मानने पर–
१. सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,
२ गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक ये दो विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए-सम्मुच्छिम खयहर पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए,
विसेसिए-१. पज्जत्तय सम्मुच्छिम खयहर पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य, २. अपज्जत्तय सम्मुच्छिमखयहरपंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य।

सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक को अविशेषित मानने पर–
१. पर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक, २. अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक ये दो विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए–गब्भवक्कंतिय खयहर पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए,
विसेसिए–१. पज्जत्तय गब्भवक्कंतिय - खयहरपंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए य,
२. अपज्जत्तय - गब्भवक्कंतिय - खयहर - पंचेंदियतिरिक्ख जोणिए य।

गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक को अविशेषित मानने पर–
१. पर्याप्त गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,
२. अपर्याप्त गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक ये दो विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए–मणुस्से,
विसेसिए १. सम्मुच्छिम मणुस्से य, २. गब्भवक्कंतिय मणुस्से य।[1]

मनुष्य को अविशेषित मानने पर–
१ सम्मूर्च्छिम मनुष्य, २. गर्भज मनुष्य ये दो विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए गब्भवक्कंतिय-मणुस्से,
विसेसिए–१. पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्से य,
२. अपज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्से य।

गर्भज मनुष्य को अविशेषित मानने पर–
१. पर्याप्त गर्भज मनुष्य,
२. अपर्याप्त गर्भज मनुष्य ये दो विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए-देवे,
विसेसिए–१. भवणवासी, २. वाणमंतरे ३. जोइसिए, ४. वेमाणिए य।

देव को अविशेषित मानने पर–
१. भवनवासी, २. वाणव्यन्तर, ३. ज्योतिष्क, ४. वैमानिक ये चार विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए–भवणवासी,
विसेसिए–१. असुरकुमारे, २. नागकुमारे, ३. सुवण्णकुमारे, ४. विज्जुकुमारे, ५. अग्गिकुमारे, ६. दीवकुमारे, ७. उदधिकुमारे, ८. दिसाकुमारे, ९. वाउकुमारे १०. थणियकुमारे।

भवनवासी को अविशेषित मानने पर–
१. असुरकुमार, २. नागकुमार, ३. सुपर्णकुमार, ४. विद्युत्कुमार, ५. अग्निकुमार, ६. द्वीपकुमार, ७. उदधिकुमार, ८. दिक्कुमार, ९. वायुकुमार, १०. स्तनितकुमार ये दस विशेषित नाम होंगे।

सव्वेसिं पि अविसेसिय-विसेसिय-पज्जत्तय- अपज्जत्तय-भेया भाणियव्वा।

इनमें से प्रत्येक को अविशेषित मानने पर उनके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो प्रकार के विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए-वाणमंतरे,
विसेसिए–१. पिसाए २. भूए, ३. जक्खे, ४. रक्खसे, ५. किण्णरे, ६. किंपुरिसे, ७. महोरगे, ८. गंधव्वे।

वाणव्यन्तर देव को अविशेषित मानने पर–
१. पिशाच, २. भूत, ३. यक्ष, ४. राक्षस, ५. किन्नर, ६. किंपुरुष, ७. महोरग, ८. गंधर्व ये आठ विशेषित नाम होंगे।

एएसिं पि अविसेसिय-विसेसिय-पज्जत्तय- अपज्जत्तय-भेया भाणियव्वा।

इनमें से प्रत्येक को अविशेषित मानने पर–उनके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो प्रकार के विशेषित नाम होंगे।

अविसेसिए-जोइसिए,
विसेसिए–१. चंदे, २. सूरे, ३. गहे, ४. नक्खत्ते, ५. ताराख्वे।

ज्योतिष्क देव को अविशेषित मानने पर–
१. चन्द्र, २. सूर्य, ३. ग्रह, ४. नक्षत्र, ५. तारे, ये पांच विशेषित नाम होंगे।

टिप्पणी– १. इस पाठ के बाद सभी प्रतियों में सम्मूर्च्छिम मनुष्य के पर्याप्त अपर्याप्त दो भेद लिखे हैं किन्तु यह पाठ अशुद्ध है क्योंकि आगमों में सम्मूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त ही कहे गये हैं, पर्याप्त नहीं कहे गये हैं।

एएसिं पि अविसेसिय - विसेसिय - पज्जत्तय - अपज्जत्तय भेया भाणियव्वा।

अविसेसिए-वेमाणिए,

विसेसिए–१. कप्पोवगे य २. कप्पातीतए य।

अविसेसिए-कप्पोवगए,

विसेसिए–१. सोहम्मए, २. ईसाणए, ३. सणंकुमारए, ४. माहिंदए, ५. बंभलोगए, ६. लंतयए, ७. महासुक्कए, ८. सहस्सारए, ९. आणयए १०. पाणयए ११. आरणए १२. अच्चुयए।

एएसिं पि अविसेसिय - विसेसिय - पज्जत्तय - अपज्जत्तय भेया भाणियव्वा।

अविसेसिए-कप्पातीतए,

विसेसिए –१. गेवेज्जए य, २. अणुत्तरोववाइए य।

अविसेसिए-गेवेज्जए,

विसेसिए–१. हेट्ठिमगेवेज्जए २. मज्झिमगेवेज्जए, ३. उवरिमगेवेज्जए।

अविसेसिए-हेट्ठिमगेवेज्जए,

विसेसिए–१. हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जए २. हेट्ठिममज्झिम गेवेज्जए, ३. हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जए।

अविसेसिए–मज्झिमगेवेज्जए,

विसेसिए– १. मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जए, २. मज्झिममज्झिमगेवेज्जए, ३. मज्झिमउवरिमगेवेज्जए।

अविसेसिए-उवरिमगेवेज्जए,

विसेसिए–१. उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जए, २. उवरिम-मज्झिमगेवेज्जए, ३. उवरिमउवरिमगेवेज्जए।

एएसिं पि सव्वेसिं अविसेसिय विसेसिय - पज्जत्तय - अपज्जत्तय - भेया भाणियव्वा।

अविसेसिए-अणुत्तरोववाइए,

विसेसिए–१. विजयए, २. वेजयंतए, ३. जयंतए, ४. अपराजियए, ५. सव्वट्ठसिद्धए।

एएसिं पि सव्वेसिं अविसेसिय - विसेसिय - पज्जत्तय - अपज्जत्तय - भेया भाणियव्वा।

अविसेसिए–अजीवदव्वे,

विसेसिए–१. धम्मत्थिकाए, २. अधम्मत्थिकाए, ३. आगासत्थिकाए, ४. पोग्गलत्थिकाए, ५. अद्धासमए य।

अविसेसिए-पोग्गलत्थिकाए,

विसेसिए–१. परमाणु पोग्गले दुपएसिए खंधे जाव अणंतपएसिए खंधे। से तं दु नामे। *–अणु. सु. २१६-(१-१९)*

५. गुणपज्जव दव्वलक्खणं–

गुणाणमासवो दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे॥

–उत्त. अ. २८, गा. ६

इनमें से प्रत्येक को अविशेषित मानने पर–उनके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो प्रकार के विशेषित नाम होंगे।

वैमानिक देव को अविशेषित मानने पर–

१. कल्पोपपन्न, २. कल्पातीत ये दो विशेषित नाम होंगे।

कल्पोपपन्न को अविशेषित मानने पर–

१. सौधर्म, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्मलोक, ६. लांतक, ७. महाशुक्र, ८. सहस्रार, ९. आनत, १०. प्राणत, ११. आरण, १२. अच्युत ये बारह विशेषित नाम होंगे।

इनमें से प्रत्येक को अविशेषित मानने पर– उनके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो प्रकार के विशेषित नाम होंगे।

कल्पातीत को अविशेषित मानने पर–

१. ग्रैवेयक, २. अनुत्तरोपपातिक देव ये दो विशेषित नाम होंगे।

ग्रैवयक देव को अविशेषित मानने पर–

१. अधस्तनग्रैवेयक, २. मध्यमग्रैवेयक, ३. उपरिमग्रैवेयक ये तीन विशेषित नाम होंगे।

अधस्तनग्रैवेयक को अविशेषित मानने पर–

१. अधस्तन अधस्तन ग्रैवेयक, २. अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक, ३. अधस्तन-उपरिम ग्रैवेयक ये तीन विशेषित नाम होंगे।

मध्यमग्रैवेयक को अविशेषित मानने पर–

१. मध्यम–अधस्तन ग्रैवेयक, २. मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक, ३. मध्यम–उपरिम ग्रैवेयक ये तीन विशेषित नाम होंगे।

उपरिम ग्रैवेयक को अविशेषित मानने पर–

१. उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयक, २. उपरिम-मध्यम ग्रैवेयक, ३. उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक ये तीन विशेषित नाम होंगे।

इनमें से प्रत्येक को अविशेषित मानने पर उनके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो प्रकार के विशेषित नाम होंगे।

अनुत्तरोपपातिक देव को अविशेषित मानने पर–

१. विजय, २. वैजयन्त, ३. जयन्त, ४. अपराजित, ५. सर्वार्थसि ये पाँच विशेषित नाम होंगे।

इनमें से प्रत्येक को अविशेषित मानने पर–
उनमें पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो प्रकार के विशेषित नाम होंगे।

अजीवद्रव्य को अविशेषित मानने पर–

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. पुद्गलास्तिकाय, ५. अद्धासमय, ये पाँच विशेषित नाम होंगे।

पुद्गलास्तिकाय को अविशेषित मानने पर–

१. परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशिक स्कन्ध से अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध पर्यन्त ये विशेषित नाम होंगे। *यह दुनाम का स्वरूप हुआ।*

५. द्रव्य-गुण-पर्याय के लक्षण–

जो गुणों का आश्रय है उसे द्रव्य कहते हैं, जो केवल द्रव्य के आश्रित रहते हैं, वे गुण कहलाते हैं और जो दोनों अर्थात् द्रव्य और गुणों के आश्रित हों उन्हे पर्याय कहते हैं।

६. छण्हं दव्वाणं लक्खणं–

गइ-लक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाण-लक्खणो।
भायणं सव्वदव्वाणं, नहं ओगाह-लक्खणं॥१॥

वत्तणा लक्खणो कालो, जीवो उवओग-लक्खणो।
नाणेणं दंसणेणं च, सुहेण य दुहेण य ॥२॥

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं॥३॥

सद्दंधयार उज्जोओ, पहा छाया तवे इ वा।
वण्ण-रस-गंध-फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥४॥

—उत्त. अ. २८ गा. ९-१२

६. छह द्रव्यों के लक्षण–

गति हेतु धर्मास्तिकाय का लक्षण है।
स्थिति में हेतु होना अधर्मास्तिकाय का लक्षण है।
सभी द्रव्यों का आधार आकाश है और उसका लक्षण आश्रय देना है॥१॥

वर्तना (परिवर्तन) काल का लक्षण है।
उपयोग जीव का लक्षण है, जो ज्ञान, दर्शन, सुख-दुःख से पहचाना जाता है॥२॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये जीव के लक्षण हैं॥३॥

शब्द, अंधकार, उद्योत, प्रभा, छाया और आतप तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श ये पुद्गल के लक्षण हैं॥४॥

७. सव्वदव्वाणं वण्णावण्णाई परूवणं–

प. सव्वदव्वाणं भंते ! कइवण्णा, कइगंधा, कइरसा, कइफासा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! १. अत्थेगइया सव्वदव्वा पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पण्णत्ता, २. अत्थेगइया सव्वदव्वा पंचवण्णा जाव चउफासा पण्णत्ता, ३. अत्थेगइया सव्वदव्वा एगवण्णा, एगगंधा, एगरसा, दुफासा पण्णत्ता, ४. अत्थेगइया सव्वदव्वा अवण्णा, अगंधा, अरसा, अफासा पण्णत्ता।

एवं सव्वपएसावि, सव्वपज्जवावि।

तीयद्धा अवण्णा जाव अफासा पण्णत्ता,
एवं अणागयद्धावि, एवं सव्वद्धावि।

—विया. स. १२, उ. ५, सु. ३३-३५

७. सर्व द्रव्यों के वर्ण-अवर्णादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! सभी द्रव्य कितने वर्ण, कितने गंध, कितने रस और कितने स्पर्श वाले कहे गये हैं?

उ. गौतम ! १. कितने ही सर्वद्रव्य पांच वर्ण यावत् आठ स्पर्श वाले कहे गये हैं। २. कितने ही सर्वद्रव्य पांच वर्ण यावत् चार स्पर्श वाले कहे गये हैं। ३. कितने ही सर्वद्रव्य एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श वाले कहे गये हैं। ४. कितने ही सर्वद्रव्य वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित कहे गए हैं।

इसी प्रकार सभी प्रदेशों और समस्त पर्यायों के विषय में भी (उपर्युक्त क्रम के अनुसार) कथन करना चाहिए।

अतीत काल वर्ण रहित यावत् स्पर्श रहित कहा गया है।
इसी प्रकार अनागतकाल और सर्वकाल भी वर्णादि रहित हैं।

८. छण्हं दव्वाणं अवट्ठिई काल-परूवणं–

प. धम्मत्थिकाए णं भंते ! धम्मत्थिकाए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं।

एवं जाव अद्धासमए।

—पण्ण. प. १८, सु. १३९५

८. षड्द्रव्यों के अवस्थिति काल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय धर्मास्तिकाय के रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! वह सर्वकाल रहता है।

इसी प्रकार (अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय (काल द्रव्य) पर्यन्त भी अवस्थानकाल कहना चाहिए।

९. छण्हं दव्वाणं अणाइत्तं–

प. से किं तं अणादिय-सिद्धंतेणं?

उ. अणादिय-सिद्धंतेण–

१. धम्मत्थिकाए, २. अधम्मत्थिकाए,
३. आगासत्थिकाए, ४. जीवत्थिकाए,
५. पोग्गलत्थिकाए, ६. अद्धासमए।

से तं अणादिय सिद्धंतेणं।

—अणु. सु. २६९

९. षट् द्रव्यों का अनादित्व–

प्र. अनादिसिद्धान्तनिष्पन्ननाम का क्या क्रम है?

उ. अनादिसिद्धान्त निष्पन्ननाम का क्रम इस प्रकार है–

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय,
३. आकाशास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय,
५. पुद्गलास्तिकाय, ६. अद्धासमय।

यह अनादि सिद्धान्त निष्पन्ननाम का क्रम हुआ।

१०. अत्थित्त नत्थित्तपरिणमन परूवणं–

प. से नूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ?

उ. हंता, गोयमा ! परिणमइ।

प. जं तं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तं किं पयोगसा वीससा ?

उ. गोयमा ! पयोगसा वि तं, वीससा वि तं।

प. जहा ते भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, तहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ?

जहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तहा ते अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, तहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ।

जहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ।

प. से नूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं ?

उ. गोयमा ! जहा परिणमइ दो आलावगा तहा गमणिज्जेण वि दो आलावगा भाणियव्वा जाव तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं।

प. जहा ते भंते ! एत्थं गमणिज्जं तहा ते इहं गमणिज्जं ?

जहा ते इहं गमणिज्जं तहा ते एत्थं गमणिज्जं ?

उ. हंता, गोयमा ! जहा मे एत्थं गमणिज्जं तहा ते इहं गमणिज्जं, जहा ते इहं गमणिज्जं तहा ते एत्थं गमणिज्जं।

–विया. स. १, उ. ३, सु. ७(१-५)

१०. अस्तित्व नास्तित्व के परिणमन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है ?

उ. हां, गौतम ! (अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में) परिणत होता है।

प्र. भंते ! जो अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है, तो क्या वह प्रयोग (जीव की क्रिया) से परिणत होता है या विश्रसा (स्वभाव) से परिणत होता है ?

उ. गौतम ! वह प्रयोग से भी परिणत होता है और स्वभाव से भी परिणत होता है।

प्र. भंते ! जैसे (आपके मत से) अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है क्या उसी प्रकार आपके मत से नास्तित्व नास्तित्व में भी परिणत होता है ?

जैसे आपके मत से नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है तो क्या उसी प्रकार आपके मत से अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है ?

उ. हां गौतम ! जैसे मेरे मत से अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है, उसी प्रकार मेरे मत से नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है।

जैसे मेरे मत से नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है, उसी प्रकार मेरे मत से अस्तित्व अस्तित्व में भी परिणत होता है।

प्र. भंते ! क्या अस्तित्व अस्तित्व में गमनीय है ?

उ. गौतम ! जैसे–परिणत होते हैं दो आलापक कहे हैं उसी प्रकार यहां गमनीय पद के साथ भी मेरे मत से अस्तित्व में गमनीय है पर्यन्त दो आलापक कहने चाहिए।

प्र. भंते ! जैसे आपके मत में वहां (स्वात्मा में) गमनीय है, उसी प्रकार (परात्मा में) गमनीय है,

जैसे आपके मत में इह (परात्मा में) गमनीय है, उसी प्रकार यहां (स्वात्मा में) भी गमनीय है ?

उ. हां, गौतम ! जैसे मेरे मत में यहां (स्वात्मा में) गमनीय है उसी प्रकार (परात्मा) में भी गमनीय है,

जैसे परात्मा में गमनीय है उसी प्रकार यहां स्वात्मा में भी गमनीय है।

११. छसु दव्वेसु दव्वट्ठ पएसट्ठयाएहि य कडजुम्माइ परूवणं–

दव्वट्ठविवक्खा–

प. धम्मत्थिकाए णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे, तेयोए, दावरजुम्मे, कलियोए ?

उ. गोयमा ! नो कडजुम्मे, नो तेओए, नो दावरजुम्मे कलियोए।

एवं अधम्मऽत्थिकाए वि,

एवं आगासत्थिकाए वि,

११. षट्द्रव्यों में द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा कृतयुग्मादि का प्ररूपण–

द्रव्य की अपेक्षा–

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय क्या द्रव्यार्थ से कृतयुग्म है, त्र्योज है, द्वापरयुग्म है और कल्योज है ?

उ. गौतम ! धर्मास्तिकाय द्रव्यार्थ से कृतयुग्म नहीं है, त्र्योज नहीं है और द्वापर युग्म भी नहीं है, किन्तु कल्योज है।

इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के विषय में समझना चाहिए।

इसी प्रकार आकाशास्तिकाय के विषय में भी कहना चाहिए।

प. जीवऽत्थिकाए णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलियोए ?

उ. गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेओए, नो दावरजुम्मे, नो कलियोए।

प. पोग्गलऽत्थिकाए णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलियोए ?

उ. गोयमा ! सिय कडजुम्मे जाव सिय कलियोए।

अद्धासमए जहा जीवत्थिकाए।

प्र. भंते ! जीवास्तिकाय द्रव्यार्थ से कृतयुग्म है यावत् कल्योज है ?

उ. गौतम ! वह द्रव्यार्थ से कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज नहीं है।

प्र. भंते ! पुद्गलास्तिकाय द्रव्यार्थ से कृतयुग्म है यावत् कल्योज है ?

उ. गौतम ! वह द्रव्यार्थ से कदाचित् कृतयुग्म है यावत् कदाचित् कल्योज है।

अद्धा-समय (काल) का कथन जीवास्तिकाय के समान है।

पएसट्ठ विवक्खा–

प. धम्मत्थिकाए णं भंते ! पएसट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलियोए ?

उ. गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेओए, नो दावरजुम्मे, नो कलियोए,

एवं जाव अद्धासमए। *–विया. स. २५, उ. ४, सु. १-१६*

प्रदेश की अपेक्षा–

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय प्रदेशार्थ से कृतयुग्म है यावत् कल्योज है ?

उ. गौतम ! वह कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज नहीं है।

इसी प्रकार अद्धासमय पर्यन्त जानना चाहिए।

१२. छण्हं दव्वाणं ओगाढ अणोगाढ परूवणं–

प. धम्मऽत्थिकाए णं भंते ! किं ओगाढे, अणोगाढे ?

उ. गोयमा ! ओगाढे, नो अणोगाढे।

प. जइ ओगाढे किं संखेज्जपएसोगाढे, असंखेज्जपएसोगाढे, अणंतपएसोगाढे ?

उ. गोयमा ! नो संखेज्जपएसोगाढे, असंखेज्जपएसोगाढे, नो अणंतपएसोगाढे।

प. जइ असंखेज्जपएसोगाढे किं कडजुम्मपएसोगाढे जाव कलियोयपएसोगाढे ?

उ. गोयमा ! कडजुम्मपएसोगाढे, नो तेयोयपएसोगाढे, नो दावरजुम्मपएसोगाढे, नो कलियोयपएसोगाढे।

एवं अधम्मत्थिकाए वि।

एवं आगासत्थिकाए वि।

जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए, अद्धासमए एवं चेव।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. १८-२३

१२. षट् द्रव्यों के अवगाढ-अनवगाढ का प्ररूपण–

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय अवगाढ है या अनवगाढ है ?

उ. गौतम ! वह अवगाढ है, अनवगाढ नहीं है।

प्र. भंते ! यदि वह (धर्मास्तिकाय) अवगाढ है, तो संख्यात प्रदेशावगाढ है, असंख्यात प्रदेशावगाढ है या अनन्त प्रदेशावगाढ है ?

उ. गौतम ! वह संख्यात प्रदेशावगाढ और अनन्त प्रदेशावगाढ नहीं है किन्तु असंख्यात प्रदेशावगाढ है।

प्र. भंते ! यदि वह असंख्यात प्रदेशावगाढ है तो क्या कृतयुग्म प्रदेशावगाढ है यावत् कल्योज प्रदेशावगाढ है ?

उ. गौतम ! वह कृतयुग्म प्रदेशावगाढ है, किन्तु त्र्योज प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ और कल्योज प्रदेशावगाढ नहीं है।

इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के लिए भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार आकाशास्तिकाय के लिए भी जानना चाहिए।

जीवास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

१३. असंखेज्जपएसे लोए अणंतपएसी दव्वाइं ओगाढत्त परूवणं–

प. से नूणं भंते ! असंखेज्जे लोए अणंताइं दव्वाइं आगासे भइयव्वाइं ?

उ. हंता, गोयमा ! असंखेज्जे लोए अणंताइं दव्वाइं आगासे भइयव्वाइं। *–विया. स. २५, उ. २, सु. ७*

१३. असंख्यात प्रदेशी लोक में अनन्त प्रदेशी द्रव्यों के अवगाढ का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश में अनन्त प्रदेशी द्रव्य रह सकते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! असंख्यात प्रदेशी लोक में अनन्त प्रदेशी द्रव्य रह सकते हैं।

१४. नरयपुढवीणं सोहम्माइ देवलोगाणं ईसिंपब्भाराए पुढवीए य ओगाढाऽणोगाढत्त परूवणं–

प. इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी किं ओगाढा, अणोगाढा ?

१४. नरक पृथ्वियों सौधर्मादि देवलोकों और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के अवगाढ अनवगाढ का प्ररूपण–

प्र. भंते ! यह रत्नप्रभापृथ्वी अवगाढ है या अनवगाढ है ?

१०. अत्थित्त नत्थित्तपरिणमन परूवणं–

प. से नूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ?

उ. हंता, गोयमा ! परिणमइ।

प. जं तं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तं किं पयोगसा वीससा ?

उ. गोयमा ! पयोगसा वि तं, वीससा वि तं।

प. जहा ते भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, तहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ?

जहा ते नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तहा ते अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, तहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ।

जहा मे नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ, तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ।

प. से नूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं ?

उ. गोयमा ! जहा परिणमइ दो आलावगा तहा गमणिज्जेण वि दो आलावगा भाणियव्वा जाव तहा मे अत्थित्तं अत्थित्ते गमणिज्जं।

प. जहा ते भंते ! एत्थं गमणिज्जं तहा ते इहं गमणिज्जं ?

जहा ते इहं गमणिज्जं तहा ते एत्थं गमणिज्जं ?

उ. हंता, गोयमा ! जहा मे एत्थं गमणिज्जं तहा ते इहं गमणिज्जं, जहा ते इहं गमणिज्जं तहा ते एत्थं गमणिज्जं।

–*विया. स. १, उ. ३, सु. ७(१-५)*

११. छसु दव्वेसु दव्वट्ठ पएसट्ठयाएहि य कडजुम्माइ परूवणं–

दव्वट्ठविवक्खा–

प. धम्मत्थिकाए णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे, तेयोए, दावरजुम्मे, कलियोए ?

उ. गोयमा ! नो कडजुम्मे, नो तेओए, नो दावरजुम्मे कलियोए।

एवं अधम्मऽत्थिकाए वि,

एवं आगासत्थिकाए वि,

१०. अस्तित्व नास्तित्व के परिणमन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है ?

उ. हां, गौतम ! (अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में) परिणत होता है।

प्र. भंते ! जो अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है, तो क्या वह प्रयोग (जीव की क्रिया) से परिणत होता है या विश्रसा (स्वभाव) से परिणत होता है ?

उ. गौतम ! वह प्रयोग से भी परिणत होता है और स्वभाव से भी परिणत होता है।

प्र. भंते ! जैसे (आपके मत से) अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है क्या उसी प्रकार आपके मत से नास्तित्व नास्तित्व में भी परिणत होता है ?

जैसे आपके मत से नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है तो क्या उसी प्रकार आपके मत से अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है ?

उ. हां गौतम ! जैसे मेरे मत से अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है, उसी प्रकार मेरे मत से नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है।

जैसे मेरे मत से नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है, उसी प्रकार मेरे मत से अस्तित्व अस्तित्व में भी परिणत होता है।

प्र. भंते ! क्या अस्तित्व अस्तित्व में गमनीय है ?

उ. गौतम ! जैसे–परिणत होते हैं दो आलापक कहे हैं उसी प्रकार यहां गमनीय पद के साथ भी मेरे मत से अस्तित्व में गमनीय है पर्यन्त दो आलापक कहने चाहिए।

प्र. भंते ! जैसे आपके मत में वहां (स्वात्मा में) गमनीय है, उसी प्रकार (परात्मा में) गमनीय है,

जैसे आपके मत में इह (परात्मा में) गमनीय है, उसी प्रकार यहां (स्वात्मा में) भी गमनीय है ?

उ. हां, गौतम ! जैसे मेरे मत में यहां (स्वात्मा में) गमनीय है उसी प्रकार (परात्मा) में भी गमनीय है,

जैसे परात्मा में गमनीय है उसी प्रकार यहां स्वात्मा में भी गमनीय है।

११. षट्द्रव्यों में द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा कृतयुग्मादि का प्ररूपण–

द्रव्य की अपेक्षा–

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय क्या द्रव्यार्थ से कृतयुग्म है, त्र्योज है, द्वापरयुग्म है और कल्योज है ?

उ. गौतम ! धर्मास्तिकाय द्रव्यार्थ से कृतयुग्म नहीं है, त्र्योज नहीं है और द्वापर युग्म भी नहीं है, किन्तु कल्योज है।

इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के विषय में समझना चाहिए।

इसी प्रकार आकाशास्तिकाय के विषय में भी कहना चाहिए।

प. जीवऽत्थिकाए णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलियोए ?

उ. गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेओए, नो दावरजुम्मे, नो कलियोए।

प. पोग्गलऽत्थिकाए णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलियोए ?

उ. गोयमा ! सिय कडजुम्मे जाव सिय कलियोए।

अद्धासमए जहा जीवत्थिकाए।

पएसट्ठ विवक्खा–

प. धम्मत्थिकाए णं भंते ! पएसट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलियोए ?

उ. गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेओए, नो दावरजुम्मे, नो कलियोए,

एवं जाव अद्धासमए। –विया. स. २५, उ. ४, सु. ९-१६

प्र. भंते ! जीवास्तिकाय द्रव्यार्थ से कृतयुग्म है यावत् कल्योज है ?

उ. गौतम ! वह द्रव्यार्थ से कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज नहीं है।

प्र. भंते ! पुद्गलास्तिकाय द्रव्यार्थ से कृतयुग्म है यावत् कल्योज है ?

उ. गौतम ! वह द्रव्यार्थ से कदाचित् कृतयुग्म है यावत् कदाचित् कल्योज है।

अद्धा-समय (काल) का कथन जीवास्तिकाय के समान है।

प्रदेश की अपेक्षा–

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय प्रदेशार्थ से कृतयुग्म है यावत् कल्योज है ?

उ. गौतम ! वह कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज नहीं है।

इसी प्रकार अद्धासमय पर्यन्त जानना चाहिए।

१२. छण्हं दव्वाणं ओगाढ अणोगाढ परूवणं–

प. धम्मऽत्थिकाए णं भंते ! किं ओगाढे, अणोगाढे ?

उ. गोयमा ! ओगाढे, नो अणोगाढे।

प. जइ ओगाढे किं संखेज्जपएसोगाढे, असंखेज्जपएसोगाढे, अणंतपएसोगाढे ?

उ. गोयमा ! नो संखेज्जपएसोगाढे, असंखेज्जपएसोगाढे, नो अणंतपएसोगाढे।

प. जइ असंखेज्जपएसोगाढे किं कडजुम्मपएसोगाढे जाव कलियोयपसोगाढे ?

उ. गोयमा ! कडजुम्मपएसोगाढे, नो तेयोयपएसोगाढे, नो दावरजुम्मपएसोगाढे, नो कलियोयपएसोगाढे।

एवं अधम्मत्थिकाए वि।

एवं आगासत्थिकाए वि।

जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए, अद्धासमए एवं चेव।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. १८-२३

१२. षट् द्रव्यों के अवगाढ-अनवगाढ का प्ररूपण–

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय अवगाढ है या अनवगाढ है ?

उ. गौतम ! वह अवगाढ है, अनवगाढ नहीं है।

प्र. भंते ! यदि वह (धर्मास्तिकाय) अवगाढ है, तो संख्यात प्रदेशावगाढ है, असंख्यात प्रदेशावगाढ है या अनन्त प्रदेशावगाढ है ?

उ. गौतम ! वह संख्यात प्रदेशावगाढ और अनन्त प्रदेशावगाढ नहीं है किन्तु असंख्यात प्रदेशावगाढ है।

प्र. भंते ! यदि वह असंख्यात प्रदेशावगाढ है तो क्या कृतयुग्म प्रदेशावगाढ है यावत् कल्योज प्रदेशावगाढ है ?

उ. गौतम ! वह कृतयुग्म प्रदेशावगाढ है, किन्तु त्र्योज प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ और कल्योज प्रदेशावगाढ नहीं है।

इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के लिए भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार आकाशास्तिकाय के लिए भी जानना चाहिए।

जीवास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

१३. असंखेज्जपएसे लोए अणंतपएसी दव्वाइं ओगाढत्त परूवणं–

प. से नूणं भंते ! असंखेज्जे लोए अणंताइं दव्वाइं आगासे भइयव्वाइं ?

उ. हंता, गोयमा ! असंखेज्जे लोए अणंताइं दव्वाइं आगासे भइयव्वाइं। –विया. स. २५, उ. २, सु. ७

१३. असंख्यात प्रदेशी लोक में अनन्त प्रदेशी द्रव्यों के अवगाढ का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश में अनन्त प्रदेशी द्रव्य रह सकते हैं ?

उ. हाँ. गौतम ! असंख्यात प्रदेशी लोक में अनन्त प्रदेशी द्रव्य रह सकते हैं।

१४. नरयपुढवीणं सोहम्माइ देवलोगाणं ईसीपब्भारा पुढवीण य ओगाढाऽणवगाढत्त परूवणं–

प. इमाणं भंते ! रयणप्पभापुढवी किं ओगाढा, अणोगाढा ?

१४. नरक पृथ्वियों सौधर्मादि देवलोकों और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के अवगाढ अनवगाढ का प्ररूपण–

प्र. भंते ! यह रत्नप्रभापृथ्वी अवगाढ है या अनवगाढ है ?

उ. गोयमा ! जहेव धम्मत्थिकाये।
एवं जाव अहेसत्तमा।
सोहम्मे एवं चेव।
एवं जाव ईसिपब्भारा पुढवी।
—विया. स. २५, उ. ४, सु. २४-२७

उ. गौतम ! धर्मास्तिकाय के समान इसका कथन करना चाहिए।
इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।
सौधर्म देवलोक के विषय में भी यही कथन करना चाहिये।
इसी प्रकार (ईशान देवलोक से) ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त भी कथन करना चाहिए।

१५. पंचत्थिकाय-पएस-अद्धासमयाणं परोप्परं पएसफुसणा परूवणं—

प. एगे भंते ! धम्मऽत्थिकाय-पएसे केवइएहिं धम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. गोयमा ! जहण्णपए तीहिं पएसेहिं पुट्ठे,
उक्कोसपए छहिं पएसेहिं पुट्ठे,
प. केवइएहिं अधम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. जहण्णपए चउहिं पएसेहिं पुट्ठे,
उक्कोसपए सत्तहिं पएसेहिं पुट्ठे,
प. केवइएहिं आगासऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. सत्तहिं पएसेहिं पुट्ठे,
प. केवइएहिं जीवऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. अणंतेहिं पएसेहिं पुट्ठे,
प. केवइएहिं पोग्गलऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. अणंतेहिं पएसेहिं पुट्ठे,
प. केवइएहिं अद्धासमएहिं पुट्ठे ?
उ. सिय पुट्ठे, सिय नो पुट्ठे, जइ पुट्ठे, नियमं अणंतेहिं पुट्ठे,
प. एगे भंते! अधम्मऽत्थिकाय - पएसे केवइएहिं धम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. गोयमा ! जहण्णपए चउहिं पएसेहिं पुट्ठे,
उक्कोसपए सत्तहिं पएसेहिं पुट्ठे,
प. केवइएहिं अधम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. जहण्णपए तीहिं पएसेहिं पुट्ठे,
उक्कोसपए छहिं पएसेहिं पुट्ठे,
सेसं जहा धम्मऽत्थिकायस्स,
प. एगे भंते ! आगासऽत्थिकाय-पएसे केवइएहिं धम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. गोयमा ! सिय पुट्ठे, सिय नो पुट्ठे,
जइ पुट्ठे जहण्णपए एक्केण वा, दोहिं वा, तीहिं वा, चउहिं वा पुट्ठे, उक्कोसपए सत्तहिं पुट्ठे,

१५. पंचास्तिकाय प्रदेशों और अद्धासमयों का परस्पर प्रदेश स्पर्श प्ररूपण—

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश, धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. गौतम ! वह जघन्य तीन प्रदेशों से,
उत्कृष्ट छह प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।
प्र. (धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश) अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. जघन्य चार प्रदेशों से,
उत्कृष्ट सात प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।
प्र. (धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश) आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. सात (आकाश) प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।
प्र. (धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. अनन्त (जीव) प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।
प्र. (धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश) पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।
प्र. (धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश) अद्धाकाल के कितने समयों से स्पृष्ट होता है?
उ. कदाचित् स्पृष्ट होता है और कदाचित् नहीं होता है। यदि स्पृष्ट होता है तो नियमतः अनन्त समयों से स्पृष्ट होता है।
प्र. भंते ! अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश, धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. गौतम ! वह जघन्य चार प्रदेशों से,
उत्कृष्ट सात प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।
प्र. (अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश) अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. जघन्य तीन प्रदेशों से,
उत्कृष्ट छह प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।
शेष सभी वर्णन धर्मास्तिकाय के वर्णन के समान समझना चाहिए।
प्र. भंते ! आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश, धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. गौतम ! कदाचित् स्पृष्ट होता है और कदाचित स्पृष्ट नहीं होता है।
यदि स्पृष्ट होता है तो जघन्य एक, दो, तीन या चार प्रदेशों से और उत्कृष्ट सात प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

एवं अधम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं वि,

प. केवइएहिं आगासऽत्थिकायपएसेहिं पुट्ठे ?

उ. छहिं पएसेहिं पुट्ठे,

प. केवइएहिं जीवऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?

उ. सिय पुट्ठे, सिय नो पुट्ठे, जइ पुट्ठे, नियमं अणंतेहिं,

एवं पोग्गलऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे, अद्धासमएहिं वि पुट्ठे,

प. एगे भंते ! जीवऽत्थिकाय-पएसे केवइएहिं धम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?

उ. गोयमा ! जहण्णपए चउहिं पएसेहिं पुट्ठे,
उक्कोसपए सत्तहिं पएसेहिं पुट्ठे,

एवं अधम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं वि पुट्ठे,

प. केवइएहिं आगासऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?

उ. सत्तहिं पएसेहिं पुट्ठे,

प. केवइएहिं जीवऽत्थिकाय पएसेहिं पुट्ठे ?

उ. अणंतेहिं।

सेसं जहा धम्मऽत्थिकायस्स;

प. एगे भंते! पोग्गलऽत्थिकाय-पएसे केवइएहिं धम्मत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?

उ. गोयमा! एवं जहेव जीवऽत्थिकायस्स,

प. दो भंते! पोग्गलऽत्थिकाय-पएसा केवइएहिं धम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठा ?

उ, गोयमा! जहण्णपए छहिं पएसेहिं पुट्ठा,
उक्कोसपए बारसहिं पएसेहिं पुट्ठा,

एवं अधम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं वि पुट्ठा,

प. केवइएहिं आगासऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठा ?

उ. बारसहिं पएसेहिं पुट्ठा,

सेसं जहा धम्मऽत्थिकायस्स,

प. तिण्णि भंते! पोग्गलऽत्थिकाय-पएसा केवइएहिं धम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठा ?

उ. गोयमा! जहण्णपए अट्ठहिं पएसेहिं पुट्ठा,
उक्कोसपए सत्तरसहिं पएसेहिं पुट्ठा,

एवं अधम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं वि पुट्ठा,

प. केवइएहिं आगासऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठा ?

इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट के विषय में जानना चाहिए।

प्र. *(आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश)* आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है ?

उ. छह प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

प्र. (आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है ?

उ. वह कदाचित् स्पृष्ट होता है, कदाचित् नहीं होता है। यदि स्पृष्ट होता है तो नियमतः अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

इसी प्रकार पुद्गलास्तिकाय के प्रदेशों से तथा अद्धाकाल के समयों से स्पृष्ट के विषय में जानना चाहिए।

प्र. भंते ! जीवास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य चार प्रदेशों से,
उत्कृष्ट सात प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

इसी प्रकार वह अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

प्र. (जीवास्तिकाय का एक प्रदेश) आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है ?

उ. वह सात प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

प्र. (जीवास्तिकाय का एक प्रदेश) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है ?

उ. अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

शेष कथन धर्मास्तिकाय के समान जानना चाहिए।

प्र. भंते ! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है ?

उ. गौतम ! **जिस प्रकार जीवास्तिकाय के एक प्रदेश के सम्बन्ध में कहा वैसा ही यहाँ जानना चाहिए।**

प्र. भंते ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश, धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य छह प्रदेशों से,
उत्कृष्ट बारह प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं।

इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों से भी व (पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश) स्पृष्ट होते हैं।

प्र. (वे दो प्रदेश) आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ?

उ. वे बारह प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं।

शेष सभी वर्णन धर्मास्तिकाय के समान जानना चाहिए।

प्र. भंते ! पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश, धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य आठ प्रदेशों से,
उत्कृष्ट सत्तरह प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं।

इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों से भी वे (तीन प्रदेश) स्पृष्ट होते हैं।

प्र. (वे तीन प्रदेश) आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ?

प. केवइएहिं आगासऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठा ?

उ. तेणेव संखेज्जएणं पंचगुणेणं दुरूवाहिएणं,

प. केवइएहिं जीवऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठा ?

उ. अणंतेहिं पएसेहिं पुट्ठा,

प. केवइएहिं पोग्गलऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठा ?

उ. अणंतेहिं पएसेहिं पुट्ठा,

प. केवइएहिं अद्धा-समएहिं, पुट्ठा ?

उ. सिय पुट्ठा, सिय नो पुट्ठा,
जइ पुट्ठा, नियमं अणंतेहिं समएहिं पुट्ठा,

प. असंखेज्जा भंते! पोग्गलऽत्थिकायप्पएसा केवइएहिं धम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठा ?

उ. गोयमा ! जहण्णपए तेणेव असंखेज्जपएणं दुगुणेणं दुरूवाहिएणं,
उक्कोसपए तेणेव असंखेज्जपएणं पंचगुणेणं दुरूवाहिएणं,

सेसं जहा संखेज्जाणं जाव नियमं अणंतेहिं पएसेहिं पुट्ठा।

प. अणंता भंते ! पोग्गलऽत्थिकायप्पएसा केवइएहिं धम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठा ?

उ. गोयमा । **जहा असंखेज्जा, तहा अणंता वि निरवसेसं।**

प. एगे भंते। अद्धासमए केवइएहिं धम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?

उ. गोयमा। सत्तहिं पएसेहिं पुट्ठे,

प. केवइएहिं अधम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?

उ. **एवं चेव,**
एवं आगासऽत्थिकाएहिं पएसेहिं वि,

प. केवइएहिं जीवऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?

उ. अणंतेहिं पएसेहिं पुट्ठे,

प. केवइएहिं पोग्गलऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?

उ. अणंतेहिं पएसेहिं पुट्ठे,

प. केवइएहिं अद्धासमएहिं पुट्ठे ?

उ. सिय पुट्ठे, सिय नो पुट्ठे,
जइ पुट्ठे नियमं अणंतेहिं समएहिं पुट्ठे,

प्र. भंते ! (पुद्गलास्तिकाय के संख्यात प्रदेश) आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ?

उ. उन्हीं संख्यात प्रदेशों को पाँच गुणे करके उनमें दो और अधिक जोड़ें, उतने प्रदेशों से वे स्पृष्ट होते हैं।

प्र. (पुद्गलास्तिकाय के संख्यात प्रदेश) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ?

उ. अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं।

प्र. (पुद्गलास्तिकाय के संख्यात प्रदेश) पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ?

उ. अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं।

प्र. (पुद्गलास्तिकाय के संख्यात प्रदेश) अद्धाकाल के कितने समयों से स्पृष्ट होते हैं ?

उ. कदाचित् स्पृष्ट होते हैं और कदाचित् स्पृष्ट नहीं होते हैं।
यदि स्पृष्ट होते हैं तो अनन्त समयों से स्पृष्ट होते हैं।

प्र. भंते! पुद्गलास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ?

उ. गौतम! जघन्य पद में उन्हीं असंख्यात प्रदेशों को दुगुने करके उनमें दो (संख्या) और जोड़ें, उतने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं।
उत्कृष्ट पद में उन्हीं असंख्यात प्रदेशों को पाँच गुणे करके उनमें दो और जोड़ दें, उतने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं।

शेष सभी वर्णन संख्यात प्रदेशों के समान यावत् नियमतः अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं।

प्र. भंते! पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ?

उ. गौतम! **जिस प्रकार असंख्यात प्रदेशों के विषय में कहा, उसी प्रकार अनन्त प्रदेशों के विषय में भी समस्त कथन कहना चाहिए।**

प्र. भंते! अद्धाकाल का एक समय धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है ?

उ. गौतम! वह सात प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

प्र. (अद्धाकाल का एक समय) अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है ?

उ. **पूर्ववत् (धर्मास्तिकाय के समान) जानना चाहिए।**
इसी प्रकार आकाशास्तिकाय के प्रदेशों के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. (अद्धाकाल का एक समय) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है ?

उ. अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

प्र. (अद्धाकाल का एक समय) पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है ?

उ. अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होता है.

प्र. (अद्धाकाल का एक समय) अद्धाकाल के कितने समयों से स्पृष्ट होता है ?

उ. कदाचित् स्पृष्ट होता है और कदाचित् स्पृष्ट नहीं होता है।
यदि स्पृष्ट होता है तो नियमतः अनन्त समयों से स्पृष्ट होता है।

प. धम्मत्थिकाए णं भंते ! केवइएहिं धम्मऽत्थिकाय- पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. गोयमा ! नत्थि एक्केण वि।
प. केवइएहिं अधम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. असंखेज्जेहिं पएसेहिं पुट्ठे,
प. केवइएहिं आगासऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. असंखेज्जेहिं पएसेहिं पुट्ठे,
प. केवइएहिं जीवऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. अणंतपएसेहिं पुट्ठे,
प. केवइएहिं पोग्गलऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. अणंतपएसेहिं पुट्ठे,
प. केवइएहिं अद्धासमएहिं पुट्ठे ?
उ. सिय पुट्ठे, सिय नो पुट्ठे
जइ पुट्ठे नियमा अणंतेहिं,
प. अधम्मऽत्थिकाएणं भंते ! केवइएहिं धम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. गोयमा ! असंखेज्जेहिं पएसेहिं पुट्ठे,
प. केवइएहिं अधम्मऽत्थिकाय-पएसेहिं पुट्ठे ?
उ. नत्थि एक्केण वि,
सेसं जहा धम्मऽत्थिकायस्स,
एवं एएणं गमेणं सव्वे वि, सट्ठाणए नत्थि एक्केण वि पुट्ठा
परट्ठाणए आइल्लएहिं तीहिं असंखेज्जेहिं भाणियव्वं,
पच्छिल्लएहिं तिसु अणंता भाणियव्वा जाव अद्धासमयो त्ति जाव
प. केवइएहिं अद्धासमएहिं पुट्ठे ?
उ. नत्थि एक्केण वि पुट्ठे, *–विया. स. १३, उ. ४, सु. २९-५१*

१६. पंचत्थिकाय पएस-अद्धासमयाणं परोप्परं पएसोवगाढ-परूवणं–
प. जत्थ णं भंते ! एगे धम्मऽत्थिकायपएसे ओगाढे, तत्थ केवइया धम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?
उ. गोयमा ! नत्थि एक्कोऽवि,
प. केवइया अधम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?
उ. एक्को ओगाढे।

प्र. भंते! धर्मास्तिकाय द्रव्य धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. गौतम! वह एक भी प्रदेश से स्पृष्ट नहीं होता है।
प्र. (धर्मास्तिकाय द्रव्य) अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. असंख्य प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।
प्र. (धर्मास्तिकाय द्रव्य) आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. असंख्य प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।
प्र. (धर्मास्तिकाय द्रव्य) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।
प्र. (धर्मास्तिकाय द्रव्य) पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।
प्र. (धर्मास्तिकाय द्रव्य) अद्धाकाल के कितने समयों से स्पृष्ट होता है?
उ. कदाचित् स्पृष्ट होता है और कदाचित् नहीं होता है।
यदि स्पृष्ट होता है तो-नियमतः अनन्त समयों से स्पृष्ट होता है।
प्र. भंते! अधर्मास्तिकाय द्रव्य धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. गौतम! असंख्यात प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।
प्र. (अधर्मास्तिकाय द्रव्य) अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?
उ. वह एक भी प्रदेश से स्पृष्ट नहीं होता।
शेष सभी (द्रव्यों के प्रदेशों) से स्पर्श के विषय में धर्मास्तिकाय के समान जानना चाहिए।
इसी प्रकार इसी आलापक द्वारा सभी द्रव्य स्वस्थान में एक भी प्रदेश से स्पृष्ट नहीं होते,
परस्थान में आदि के (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय) तीन असंख्यात प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं,
पीछे के (जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय) ये तीन अद्धासमय पर्यन्त अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं यावत्–
प्र. अद्धासमय कितने अद्धासमयों से स्पृष्ट होते हैं?
उ. एक भी समय से स्पृष्ट नहीं होता है।

१६. पंचास्तिकाय प्रदेशों का और अद्धासमयों का परस्पर प्रदेशावगाढ़ प्ररूपण–
प्र. भंते! जहां धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ (व्याप्त-स्थित) होता है वहाँ धर्मास्तिकाय के दूसरे कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?
उ. गौतम! वहां एक भी प्रदेश अवगाढ़ नहीं होता है।
प्र. (जहां धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है) वहां अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?
उ. वहाँ एक प्रदेश अवगाढ़ होता है।

प. केवइया आगासऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. एक्को ओगाढे।

प. केवइया जीवऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. अणंता ओगाढा।

प. केवइया पोग्गलऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. अणंता ओगाढा।

प. केवइया अद्धासमया ओगाढा ?

उ. सिय ओगाढा, सिय नो ओगाढा,
जइ ओगाढा अणंता।

प. जत्थ णं भंते ! एगे अधम्मऽत्थिकायपएसे ओगाढे,
तत्थ केवइया धम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. गोयमा ! एक्को ओगाढे।

प. केवइया अधम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. नत्थि एक्कोऽवि,
सेसं जहा धम्मऽत्थिकायस्स,

प. जत्थ णं भंते ! एगे आगासऽत्थिकायपएसे ओगाढे,
तत्थ केवइया धम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. गोयमा ! सिय ओगाढा, सिय नो ओगाढा,
जइ ओगाढा एक्को,
एवं अधम्मऽत्थिकायपएसा वि,

प. केवइया आगासऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. नत्थि एक्कोऽवि,

प. केवइया जीवऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. सिय ओगाढा, सिय नो ओगाढा,
जइ ओगाढा अणंता,
एवं जाव अद्धासमया,

प. जत्थ णं भंते ! एगे जीवऽत्थिकायपएसे ओगाढे,
तत्थ केवइया धम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. गोयमा ! एक्को ओगाढे।
एवं अधम्मऽत्थिकायपएसा वि,
एवं आगासऽत्थिकायपएसा वि,

प. केवइया जीवऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. अणंता ओगाढा।

प्र. (जहाँ धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है) वहाँ आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. एक प्रदेश अवगाढ़ है।

प्र. (जहाँ धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है) वहाँ जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. अनन्त प्रदेश अवगाढ़ होते हैं।

प्र. (जहाँ धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है) वहाँ पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. अनन्त प्रदेश अवगाढ़ होते हैं।

प्र. (जहाँ धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है) वहाँ कितने अद्धासमय अवगाढ़ होते हैं?

उ. कदाचित् अवगाढ़ होते हैं और कदाचित् नहीं होते हैं,
यदि होते हैं तो अनन्त अद्धासमय अवगाढ़ होते हैं।

प्र. भंते! जहाँ अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. वहाँ (धर्मास्तिकाय का) एक प्रदेश अवगाढ़ होता है।

प्र. (जहाँ अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है) वहाँ अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. वहाँ एक भी प्रदेश अवगाढ़ नहीं होता है।
शेष (कथन) धर्मास्तिकाय के समान समझना चाहिए।

प्र. भंते! जहाँ आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. गौतम! वहां (धर्मास्तिकाय के प्रदेश) कदाचित् अवगाढ़ होते हैं और कदाचित् नहीं होते हैं।
यदि होता है तो एक प्रदेश अवगाढ़ होता है।
इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. (जहाँ आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है) वहाँ आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. वहाँ एक भी प्रदेश अवगाढ़ नहीं होता है।

प्र. (जहाँ आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है) वहाँ जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. वे कदाचित् अवगाढ़ होते हैं और कदाचित् नहीं होते हैं
यदि होते हैं तो अनन्त प्रदेश अवगाढ़ होते हैं।
इसी प्रकार अद्धासमय पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते! जहाँ जीवास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. गौतम! वहाँ एक प्रदेश अवगाढ़ होता है।
इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों के विषय में जानना चाहिए।
इसी प्रकार आकाशास्तिकाय के प्रदेशों के विषय में भी जानना चाहिए।

प्र. (जहाँ जीवास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है वहाँ) जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. वहाँ अनन्त प्रदेश अवगाढ़ होते हैं।

सेसं जहा धम्मऽत्थिकायस्स,

प. जत्थ णं भंते ! एगे पोग्गलऽत्थिकायपएसे ओगाढे, तत्थ केवइया धम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. गोयमा ! एवं जहा जीवऽत्थिकायपएसे तहेव निरवसेसं भाणियव्वं।

प. जत्थ णं भंते ! दो पोग्गलऽत्थिकायपएसा ओगाढा, तत्थ केवइया धम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. सिय एक्को, सिय दोण्णि।

एवं अधम्मऽत्थिकायस्स वि,

एवं आगासऽत्थिकायस्स वि,

सेसं जहा धम्मऽत्थिकायस्स।

प. जत्थ णं भंते ! तिण्णि पोग्गलऽत्थिकायपएसा ओगाढा, तत्थ केवइया धम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. गोयमा ! सिय एक्को, सिय दोण्णि, सिय तिण्णि।

एवं अधम्मऽत्थिकायस्स वि,
एवं आगासऽत्थिकायस्स वि,
सेसं जहेव दोण्हं।

एवं एक्केक्को वड्ढियव्वो पएसो, आदिल्लएहिं तिहि अत्थिकाएहिं। सेसं जहेव दोण्हं जाव दसण्हं सिय एक्को जाव सिय दस,
संखेज्जाणं = सिय एक्को जाव सिय दस, सिय संखेज्जा।

असंखेज्जाणं = सिय एक्को जाव सिय संखेज्जा सिय-असंखेज्जा,

जहा असंखेज्जा तहा अणंता वि.।

प. जत्थ णं भंते ! एगे अद्धासमये ओगाढे, तत्थ केवइया धम्मऽत्थिकाय-पएसा ओगाढा ?

उ. गोयमा ! एक्को ओगाढे।

प. केवइया अधम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. एक्को ओगाढे।

प. केवइया आगासऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. एक्को ओगाढे।

प. केवइया जीवऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. अणंता ओगाढा।

एवं जाव अद्धासमया,

शेष सभी कथन धर्मास्तिकाय के समान समझना चाहिए।

प्र. भंते! जहाँ पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. गौतम ! जिस प्रकार जीवास्तिकाय के प्रदेश के विषय में कहा उसी प्रकार समस्त कथन करना चाहिए।

प्र. भंते! जहाँ पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश अवगाढ़ होते हैं, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. वहाँ कदाचित् एक या दो प्रदेश अवगाढ़ होते हैं।

इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेश के विषय में कहना चाहिए।

इसी प्रकार आकाशास्तिकाय के प्रदेश के विषय में जानना चाहिए।

शेष सभी कथन धर्मास्तिकाय के समान समझना चाहिए।

प्र. भंते! जहाँ पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश अवगाढ़ होते हैं, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. गौतम! वहाँ (धर्मास्तिकाय के) कदाचित् एक, दो या तीन प्रदेश अवगाढ़ होते हैं।

इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के विषय में भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार आकाशास्तिकाय के विषय में भी कहना चाहिए।

शेष (जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय (तीनों) के लिए जैसे दो पुद्गलप्रदेशों के विषय में कहा उसी प्रकार से तीन के विषय में भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार आदि के तीन अस्तिकायों के साथ एक-एक प्रदेश बढ़ाना चाहिए। शेष के लिए जिस प्रकार दो पुद्गल प्रदेशों के विषय में कहा उसी प्रकार दस प्रदेशों पर्यन्त कहना चाहिए।

जहाँ पुद्गलास्तिकाय के संख्यात प्रदेश अवगाढ़ होते हैं, वहाँ धर्मास्तिकाय के कदाचित् एक प्रदेश यावत् कदाचित् दस प्रदेश और कदाचित् संख्यात प्रदेश अवगाढ़ होते हैं।

जहाँ पुद्गलास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश अवगाढ़ होते हैं, वहाँ धर्मास्तिकाय के कदाचित् एक प्रदेश यावत् कदाचित् संख्यात प्रदेश और असंख्यात प्रदेश अवगाढ़ होते हैं।

जिस प्रकार असंख्यात के विषय में कहा उसी प्रकार अनन्त प्रदेशों के विषय में भी कहना चाहिए।

प्र. भंते! जहाँ एक अद्धासमय अवगाढ़ होता है, वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. गौतम! वहाँ (धर्मास्तिकाय का) एक प्रदेश अवगाढ़ होता है?

प्र. (जहाँ एक अद्धासमय अवगाढ़ होता है) वहाँ अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. वहाँ एक प्रदेश अवगाढ़ होता है।

प्र. (जहाँ एक अद्धासमय अवगाढ़ होता है) वहाँ आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. वहाँ (आकाशास्तिकाय का) एक प्रदेश अवगाढ़ होता है।

प्र. (जहाँ एक अद्धासमय अवगाढ़ होता है) वहाँ जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. वहाँ (जीवास्तिकाय के) अनन्त प्रदेश अवगाढ़ होते हैं।

इसी प्रकार अद्धासमय पर्यन्त कहना चाहिए।

प. जत्थ णं भंते ! धम्मऽत्थिकाये ओगाढे,
तत्थ केवइया धम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. गोयमा ! नत्थि एक्कोऽवि।

प. केवइया अधम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. असंखेज्जा ओगाढा।

प. केवइया आगासऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. असंखेज्जा ओगाढा।

प. केवइया जीवऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. अणंता ओगाढ़ा।
एवं जाव अद्धासमया,

प. जत्थ णं भंते ! अधम्मऽत्थिकाये ओगाढे,
तत्थ केवइया धम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा ओगाढ़ा।

प. केवइया अधम्मऽत्थिकायपएसा ओगाढा ?

उ. नत्थि एक्कोऽवि,
सेसं जहा धम्मऽत्थिकायस्स,
एवं सव्वे सट्ठाणे नत्थि एक्कोऽवि भाणियव्वं,

परट्ठाणे आदिल्लगा तिण्णि असंखेज्जा भाणियव्वा,
परट्ठाणे पच्छिल्लगा तिण्णि अणंता भाणियव्वा जाव।

प. केवइया अद्धासमया ओगाढा ?

उ. नत्थि एक्कोऽवि। *–विया. स. १३, उ. ४, सु. ५२-६३*

प्र. भंते! जहाँ धर्मास्तिकाय-द्रव्य अवगाढ़ होता है,
वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. गौतम! (धर्मास्तिकाय का) एक भी प्रदेश अवगाढ़ नहीं होता है।

प्र. (जहाँ धर्मास्तिकाय द्रव्य अवगाढ़ होता है) वहाँ अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. वहाँ (अधर्मास्तिकाय के) असंख्यात प्रदेश अवगाढ़ होते हैं।

प्र. (जहाँ धर्मास्तिकाय द्रव्य अवगाढ़ होता है) वहाँ आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. वहाँ असंख्यात प्रदेश अवगाढ़ होते हैं।

प्र. (जहाँ धर्मास्तिकाय द्रव्य अवगाढ़ होता है) वहाँ जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. वहाँ अनन्त प्रदेश अवगाढ़ होते हैं।
इसी प्रकार अद्धासमय पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते! जहाँ अधर्मास्तिकाय-द्रव्य अवगाढ़ होता है,
वहाँ धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. गौतम! वहाँ (धर्मास्तिकाय के) असंख्यात प्रदेश अवगाढ़ होते हैं।

प्र. (जहां अधर्मास्तिकाय द्रव्य अवगाढ़ होता है) वहाँ अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं?

उ. वहाँ एक भी प्रदेश अवगाढ़ नहीं होता है।
शेष सभी कथन धर्मास्तिकाय के समान करना चाहिए।
इसी प्रकार सभी द्रव्यों के लिए "स्वस्थान" में एक भी प्रदेश नहीं कहना चाहिए।
परस्थान में आदि के तीन द्रव्यों (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय) के लिए असंख्यात प्रदेश और पीछे के तीन द्रव्यों (जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय) के लिए अनन्त प्रदेश कहने चाहिए। यावत्–

प्र. अद्धाकाल द्रव्य में कितने अद्धासमय अवगाढ़ होते हैं?

उ. वहाँ एक भी अवगाढ़ नहीं होता है।

१७. तिण्हं दव्वाणं एगत्तं तिण्हं अणंतत्तं च–

धम्मो अधम्मो आगासं, दव्वं इक्किकमाहियं।
अणंताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल-जंतवो॥

–उत्त. अ. २८, गा. ८

१७. तीन द्रव्य एक-एक और तीन द्रव्य अनन्त–

धर्म, अधर्म और आकाश, ये तीनों द्रव्य एक-एक कहे गए हैं। काल, पुद्गल और जीव, ये तीनों द्रव्य अनन्त कहे गये हैं।

१८. लोगालोग विवक्खया दव्वाणं भेदप्पभेया–

जीवा चेव अजीवा य[१], एस लोए वियाहिए।
अजीवदेसमागासे, अलोए से वियाहिए॥ *–उत्त. अ. ३६, गा. २*

रूविणो चेव रूवी य, अजीवा दुविहा भवे[२]।
अरूवी दसहा वुत्ता, रूविणो य चउव्विहा॥

–उत्त. अ. ३६, गा. ४

१८. लोकालोक विवक्षा से द्रव्यों के भेद-प्रभेद–

यह लोक जीव-अजीवमय है और जहाँ अजीव का एक देश (भाग) केवल आकाश है उसे अलोक कहा गया है।

अजीव दो प्रकार का है–रूपी और अरूपी, अरूपी दस प्रकार का और रूपी चार प्रकार का कहा गया है।

१९. जीव दव्वस्स भेया–

संसारत्था य सिद्धा य, दुविहा जीवा वियाहिया।

–उत्त. अ. ३६, गा. ४८ (१)

१९. जीव द्रव्य के भेद–

जीव दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. संसारी, २. सिद्ध

---

१. अणु. सु. ३९९,

२. अणु सु. ४००,

२०. अरूवी-अजीव दव्वाणं भेया–

धम्मत्थिकाए तद्देसे, तप्पएसे य आहिए।
अधम्मे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए॥
आगासे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए।
अद्धासमए चेव, अरूवी दसहा भवे॥[1]

–उत्त. अ. ३६, गा. ५-६

अरूवी अजीव दव्वाणं पमाण परूवणं–

धम्माधम्मे य दो चेव, लोगमेत्ता वियाहिया।
लोगालोगे य आगासे, समए समयखेत्तिए॥
धम्माधम्मागासा, तिन्नि वि एए अणाइया।
अपज्जवसिया चेव, सव्वद्धं तु वियाहिया॥
समए वि संतइं पप्प, एवमेवं वियाहिए।
आएसं पप्प साईए सप्पज्जवसिए वि य॥

–उत्त. अ. ३६, गा. ७–९

२१. रूवी अजीव दव्वस्स भेया–

खंधा य खंध देसा य, तप्पएसा तहेव य।
परमाणुओ य बोद्धव्वा, रूविणो य चउव्विहा॥[2]

–उत्त. अ. ३६, गा. १०

२२. रूवी दव्वाणं अरूवी आकासदव्वेणं सह फुसण ओगाहण परूवणं–

प. कंबलसाडए णं भंते ! आवेढिय परिवेढिए समाणे जावइयं ओवासंतरं फुसित्ता णं चिट्ठइ विरल्लिए वि य णं समाणे तावइयं चेव ओवासंतरं फुसित्ता णं चिट्ठइ ?

उ. हंता, गोयमा ! कंबलसाडए णं आवेढिय परिवेढिए समाणे जावइयं ओवासंतरं फुसित्ता णं चिट्ठइ विरल्लिए वि य णं समाणे तावइयं चेव ओवासंतरं फुसित्ता णं चिट्ठइ।

प. थूणा णं भंते ! उड्ढं ऊसिया समाणी जावइयं खेत्तं ओगाहित्ता णं चिट्ठइ तिरियं पि य णं आयया समाणी तावइयं चेव खेत्तं ओगाहित्ता णं चिट्ठइ ?

उ. हंता, गोयमा ! थूणा णं उड्ढं ऊसिया समाणी जावइयं खेत्तं ओगाहित्ताणं चिट्ठइ, तिरियं पि य णं आयया समाणी तावइयं चेव खेत्तं ओगाहित्ता णं चिट्ठइ।

–पण्ण. प. १५ सु. १०००–१००१

२३. समयादीणं अच्छेज्जाइ परूवणं–

तओ अच्छेज्जा पण्णत्ता, तं जहा–

१. समये, २. पएसे, ३. परमाणु।

एवं–अभेज्जा, अडज्झा, अगिज्झा, अणद्धा, अमज्झा, अपएसा, अविभाइमा। –ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १७३

२०. अरूपी अजीव द्रव्यों के भेद–

१–३ धर्मास्तिकाय, उसका देश और प्रदेश,
४–६ अधर्मास्तिकाय, उसका देश और प्रदेश,
७–९ आकाशास्तिकाय, उसका देश और प्रदेश ये नौ और एक
१०. अद्धासमए (काल) ये दस अरूपी अजीव के भेद हैं।

अरूपी अजीव द्रव्यों का प्रमाण प्ररूपण–

धर्म और अधर्म, ये दोनों लोक प्रमाण कहे गए हैं।
आकाश लोक और अलोक में व्याप्त है।
काल (समय क्षेत्र) मनुष्य क्षेत्र में ही है।
धर्म, अधर्म और आकाश, ये तीनों द्रव्य अनादि अनन्त और सर्वकाल व्यापी (नित्य) कहे गए हैं।
काल भी प्रवाह की अपेक्षा से इसी प्रकार (अनादि-अनन्त) है। आदेश (एक-एक समय की अपेक्षा) से सादि और सान्त है।

२१. रूपी-अजीव द्रव्य के भेद–

रूपी अजीव द्रव्य चार प्रकार का जानना चाहिए।
१. स्कन्ध, २. स्कन्ध देश, ३. स्कन्ध प्रदेश, ४. परमाणु।

२२. मूर्त रूपी द्रव्यों का अरूपी आकाश द्रव्य के साथ स्पर्शन और अवगाहन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या आवेष्टित-परिवेष्टित किया हुआ (लपेटा हुआ, खूब लपेटा हुआ) कम्बल रूप (चादर या साड़ी) जितने अवकाशान्तर (आकाश प्रदेशों) को स्पर्श करके रहता है, क्या (वह) फैलाया हुआ भी उतने ही अवकाशान्तर (आकाश प्रदेशों) को स्पर्श करके रहता है ?

उ. हाँ, गौतम! आवेष्टित-परिवेष्टित किया हुआ कम्बलशाटक जितने अवकाशान्तर को स्पर्श करके रहता है, वह फैलाये जाने पर भी उतने ही अवकाशान्तर को स्पर्श करके रहता है।

प्र. भंते ! क्या ऊपर उठी हुई स्थूणा (ठूंठ) जितने क्षेत्र को अवगाहन करके रहती है क्या तिरछी लम्बी की हुई भी वह उतने ही क्षेत्र को अवगाहन करके रहती है ?

उ. हाँ, गौतम ! ऊपर (ऊँची) उठी हुई स्थूणा जितने क्षेत्र को अवगाहन करके रहती है उतने ही तिरछे आदि क्षेत्र को अवगाहन करके रहती है।

२३. समयादिकों का अच्छेद्यादि प्ररूपण–

तीन अछेद्य (छेदन के अयोग्य) कहे गये हैं। यथा–

१. समय, २. प्रदेश, ३. परमाणु।

इसी प्रकार ये तीनों अभेद्य, अदाह्य, अग्राह्य, अनर्ध, अमध्य, अप्रदेश और अविभाज्य हैं।

---

१. (क) पण्ण. प. १ सु. ५ (ख) जीवा. पडि. १ सु. ४
(ग) सम. सु. १४९ (घ) पण्ण. प. ५ सु. ५००
(ङ) अनु. सु. ४०१

२. रूपी अजीव द्रव्य (पुद्गल) का विस्तृत वर्णन पुद्गल विभाग में देखें। –पण्ण. प. ५ सु. ५०२
(ख) अनु. सु. ४०२ (ग) जीवा. पडि. १, सु. ५

२४. समय-अतीतद्धा अणागतद्धा सव्वद्धाणं अगुरुयलहुयत्त परूवणं–

प. समया णं भन्ते ! किं गरुया ? लहुया ? गरुयलहुया ? अगरुयलहुया ?

उ. गोयमा ! णो गरुया, णो लहुया, णो गरुयलहुया, अगरुयलहुया। –विया. स. १, उ. ९, सु. ९

तीतद्धा, अणागतद्धा, सव्वद्धा, चउत्थपएणं (अगरुयलहुयपएणं णेयव्वं) –विया. स. १, उ. ९, सु. १६

२४. समय-अतीत-अनागत और सर्वद्धा काल के अगुरुलघुत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! समय क्या गुरु है, लघु है, गुरुलघु है या अगुरुलघु है ?

उ. गौतम समय गुरु नहीं है, लघु नहीं और गुरुलघु भी नहीं है किन्तु अगुरुलघु है।

अतीतकाल, अनागत (भविष्य) काल और सर्वकाल चतुर्थ पद (अगुरुलघुपद) वाला जानना चाहिए।

२५. लोगागासस्स-जीवस्स य पएसाणं असंखेज्जत्त परूवणं–

प. केवइया णं भंते ! लोगागासपएसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा लोगागासपएसा पण्णत्ता।

प. एगमेगस्स णं भंते ! जीवस्स केवइया जीवपएसा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जावइया लोगागासपएसा एगमेगस्स णं जीवस्स-एवइया जीवपएसा पण्णत्ता। –विया. स. ८, उ. १०, सु. २९-३०

२५. लोकाकाश और जीव के प्रदेशों का असंखेयत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! लोकाकाश के कितने प्रदेश कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश कहे गये हैं।

प्र. भंते ! एक जीव के कितने जीव प्रदेश कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जितने लोकाकाश के प्रदेश हैं उतने ही एक जीव के जीव-प्रदेश कहे गये हैं।

२६. खेत्त-दिसाणुवाएणं दव्वाणं अप्पबहुत्तं–

खेत्ताणुवाएणं–

१. सव्वत्थोवा दव्वाइं तेलोक्के,
२. उड्ढलोयतिरियलोए अणंतगुणाइं,
३. अहेलोए तिरियलोए विसेसाहियाइं,
४. उड्ढलोए असंखेज्जगुणाइं,
५. अहेलोए अणंतगुणाइं,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणाइं।

दिसाणुवाएणं–

१. सव्वत्थोवाइं दव्वाइं अहेदिसाए,
२. उड्ढदिसाए अणंतगुणाइं,
३. उत्तरपुत्थिमेणं दाहिणपच्चत्थिमेण य दो वि तुल्लाइं असंखेज्जगुणाइं
४. दाहिणपुरत्थिमेणं उत्तरपच्चत्थिमेण य दो वि तुल्लाइं विसेसाहियाइं
५. पुरत्थिमेणं असंखेज्जगुणाइं,
६. पच्चत्थिमेणं विसेसाहियाइं,
७. दाहिणेणं विसेसाहियाइं,
८. उत्तरेणं विसेसाहियाइं। –पण्ण. प. ३, सु. ३२८-३२९

२६. क्षेत्र और दिशा के अनुसार द्रव्यों का अल्पबहुत्व–

क्षेत्र के अनुसार–

१. सबसे अल्प द्रव्य तीनों लोक में हैं।
२. (उससे) ऊर्ध्व लोक तिर्यक्लोक में अनन्तगुणे हैं,
३. (उससे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
४. (उससे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उससे) अधोलोक में अनन्तगुणे हैं,
६. (उससे) तिर्यग्लोक में संख्यातगुणे हैं।

दिशाओं के अनुसार–

१. सबसे अल्प द्रव्य अधोदिशा में हैं,
२. (उससे) ऊर्ध्वदिशा में अनन्तगुणे हैं,
३. (उससे) उत्तरपूर्व और दक्षिणपश्चिम दोनों में तुल्य हैं और असंख्यातगुणे हैं,
४. (उससे) दक्षिणपूर्व और उत्तरपश्चिम दोनों में तुल्य हैं तथा विशेषाधिक हैं,
५. (उससे) पूर्व दिशा में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उससे) पश्चिम दिशा में विशेषाधिक हैं,
७. (उससे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं,
८. (उससे) उत्तर दिशा में विशेषाधिक हैं।

२७. दव्वाणं दव्वट्ठ पएसट्ठयाए अप्पबहुत्तं–

दव्वट्ठयाए–

प. एएसि णं भंते! १. धम्मत्थिकाय, २. अधम्मत्थिकाय, ३. आगासत्थिकाय, ४. जीवत्थिकाय, ५. पोग्गलत्थिकाय, ६. अद्धासमयाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

२७. षड्द्रव्यों का द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा अल्पबहुत्व–

द्रव्य की अपेक्षा–

प्र. भंते ! १. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय, ५. पुद्‌गलास्तिकाय, ६. अद्धा-समय (काल) इनमें से, द्रव्य की अपेक्षा कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गोयमा ! १.-२.-३. धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए य एएणं तिण्णि वि तुल्ला दव्वट्ठयाए सव्वत्थोवा।

४-५. धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए य एएणं दोण्णि वि तुल्ला पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

६. जीवत्थिकाए दव्वट्ठयाए अणंतगुणे से चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणे,

७. पोग्गलत्थिकाए दव्वट्ठयाए अणंतगुणे से चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणे,

८. अद्धासमए दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए अणंतगुणे,

९. आगासत्थिकाए पएसट्ठयाए अणंतगुणे।[1]

–पण्ण. प. ३, सु. २७०-२७३

उ. गौतम ! १. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय और ३. आकाशास्तिकाय, ये तीनों तुल्य हैं तथा द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प हैं,

४–५ धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ये दोनों तुल्य हैं और प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

६. जीवास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणा है और प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणा है,

७, पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणा है वही प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणा है,

८. अद्धा–समय (काल) द्रव्य की ओर प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुणा है,

९. आकाशास्तिकाय प्रदेशों की अपेक्षा अनन्त गुणा है।

२८. जीव-पोग्गल-अद्धासमयाईणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं पोग्गलाणं अद्धासमयाणं सव्वदव्वाणं सव्वपदेसाणं सव्वपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा,
२. पोग्गला अणंतगुणा,
३. अद्धासमया अणंतगुणा,
४. सव्वदव्वा विसेसाहिया,
५. सव्वपदेसा अणंतगुणा,
६. सव्वपज्जवा अणंतगुणा[2]

–पण्ण. प. ३, सु. २७५

२८. जीव-पुद्गल-अद्धासमय आदि (सर्वप्रदेश और सब पर्यायों) के अल्पबहुत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! इन जीवों, पुद्गलों, अद्धा-समयों, सर्वद्रव्यों, सर्वप्रदेशों और सर्वपर्यायों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प जीव हैं,
२. (उनसे) पुद्गल अनन्तगुणे हैं,
३. (उनसे) अद्धासमय अनन्तगुणे हैं,
४. (उनसे) सर्वद्रव्य विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) सर्वप्रदेश अनन्तगुणे हैं,
६. (उनसे) सर्वपर्याय अनन्तगुणे हैं।

□ □

१. विया. स. २५, उ. ४, सु. १७

२. विया. स. २५, उ. ३, सु. १२०

अस्तिकाय अध्ययन : आमुख

काय अर्थात् शरीर की भांति जो बहुप्रदेशी द्रव्य हो, उसे अस्तिकाय कहा जाता है। धर्म, अधर्म, आकाश, जीव और पुद्गल ये पांच द्रव्य बहुप्रदेशी होने से अस्तिकाय कहे जाते हैं, इसलिए काल अस्तिकाय नहीं कहा जाता। पुद्गल का एक अणु भी अस्तिकाय के अन्तर्गत आता है क्योंकि उसमें बहुप्रदेशी होने की योग्यता है। वह कभी स्कन्ध रूप था या स्कन्ध रूप हो जाएगा, इस प्रकार भूत एवं भविष्यकाल की अपेक्षा भी वह अस्तिकाय है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और एक जीव में असंख्यात प्रदेश होते हैं। आकाश में अनन्त प्रदेश होते हैं तथा पुद्गलास्तिकाय में संख्यात, असंख्यात या अनन्त प्रदेश होते हैं। जितना आकाश एक परमाणु के द्वारा रोका जाता है उसे प्रदेश कहते हैं और वह प्रदेश समस्त द्रव्यों के अणुओं को स्थान देने में समर्थ होता है।

प्रस्तुत अध्ययन में धर्मास्तिकाय आदि के अनेक अभिवचन दिए हैं जो उनके विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करते हैं। धर्मास्तिकाय के जो धर्म, प्राणातिपातविरमण यावत् परिग्रह-विरमण, क्रोध-विवेक यावत् मिथ्यादर्शन शल्य-विवेक आदि अभिवचन दिए गए हैं वे धर्मास्तिकाय को धर्म के निकट ले आते हैं। अधर्मास्तिकाय के अधर्म, प्राणातिपातअविरमण यावत् परिग्रह-अविरमण, क्रोध-अविवेक यावत् मिथ्यादर्शन शल्य-अविवेक आदि अभिवचन दिए गए हैं वे अधर्मास्तिकाय को अधर्म या पाप के निकट ले आते हैं। आकाशास्तिकाय के गगन, नभ, सम, विषम आदि अनेक अभिवचन हैं। जीवास्तिकाय के अभिवचनों में जीव, प्राण, भूत, सत्त्व, चेता, आत्मा आदि के साथ पुद्गल को भी लिया गया है जो यह सिद्ध करता है कि पुद्गल शब्द का प्रयोग जीव के लिए भी होता रहा है, किन्तु यहां यह ज्ञातव्य है कि पुद्गल शब्द से पौद्गलिक देहधारी जीव का ही ग्रहण होता है, शुद्ध आत्मा का नहीं। पुद्गलास्तिकाय के अनेक अभिवचन हैं, यथा पुद्गल, परमाणु-पुद्गल, द्विप्रदेशी यावत् संख्यात प्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी, अनन्तप्रदेशी आदि।

पांच अस्तिकायों में जीवास्तिकाय को छोड़कर शेष चार अजीव हैं तथा पुद्गलास्तिकाय के अतिरिक्त शेष चार अरूपी हैं। पाँच अस्तिकायों में आकाश को छोड़कर शेष चारों लोक-व्यापी हैं। आकाश लोक एवं अलोक दोनों में व्याप्त हैं। गुरुत्व-लघुत्व की दृष्टि से पुद्गलास्तिकाय गुरुलघु भी हैं और अगुरुलघु भी, किन्तु धर्मास्तिकाय आदि शेष चार अगुरुलघु हैं। द्रव्य या संख्या की दृष्टि से पुद्गलास्तिकाय एवं जीवास्तिकाय अनन्त द्रव्य रूप हैं, जबकि धर्म, अधर्म और आकाश एक-एक द्रव्य रूप हैं। काल की अपेक्षा पांचों अस्तिकाय शाश्वत एवं नित्य हैं। वर्ण, रस, गंध और स्पर्श पुद्गलास्तिकाय में हैं अन्य में नहीं। गुण की अपेक्षा पांचों अस्तिकाय भिन्न हैं। धर्मास्तिकाय का गुण गति, अधर्मास्तिकाय का स्थिति, आकाशास्तिकाय का अवगाहन, जीवास्तिकाय का उपयोग (ज्ञान-दर्शन) और पुद्गलास्तिकाय का गुण ग्रहण करना है। इस प्रकार प्रत्येक अस्तिकाय का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण के आधार पर वर्णन किया गया है।

धर्मास्तिकाय से जीवों में आगमन, गमन, भाषा, उन्मेष और तीनों योग प्रवृत्त होते हैं। अधर्मास्तिकाय से उनमें स्थित होना, बैठना आदि की प्रवृत्ति होती है। आकाशास्तिकाय जीव एवं अजीव द्रव्यों का आश्रय रूप है। दो परमाणुओं से व्याप्त आकाश प्रदेश में सौ परमाणु तथा सौ करोड़ परमाणुओं से व्याप्त आकाशप्रदेश में एक हजार करोड़ परमाणु समा सकते हैं। जीवास्तिकाय से जीव आभिनिबोधिक आदि ज्ञानों, मतिअज्ञान आदि अज्ञानों तथा चक्षुदर्शन आदि दर्शनों की अनन्त पर्याय को प्राप्त होता है। पुद्गलास्तिकाय से जीवों के शरीर, इन्द्रिय योग और श्वासोच्छ्वास को ग्रहण करने की प्रवृत्ति होती है।

प्रश्न यह उठता है कि क्या धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को, दो, तीन, चार यावत् असंख्यात प्रदेशों को धर्मास्तिकाय कहा जा सकता है? इसके उत्तर में भगवान फरमाते हैं कि एक प्रदेश न्यून धर्मास्तिकाय को भी धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार चक्र का एक खण्ड; चक्र नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को यावत् एक प्रदेश न्यून तक को धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता। धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेशों का समग्र रूप से जब ग्रहण होता है तभी उसे धर्मास्तिकाय कहा जाता है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के भी समग्र प्रदेश गृहीत होने पर उन्हें उन-उन अस्तिकायों के रूप में कहा जाता है। पुद्गलास्तिकाय के प्रदेशों में द्रव्य, द्रव्यदेशादि आठ द्वारों का भी इस अध्ययन में विचार हुआ है।

□

२. अत्थिकाय-अज्झयणं

सूत्र

१. अत्थिकाय भेया–

प. कइ णं भंते! अत्थिकाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा! पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. धम्मत्थिकाए, २. अधम्मत्थिकाए,
३. आगासत्थिकाए, ४. जीवत्थिकाए,
५. पोग्गलत्थिकाए।[१]

–विया. स. २, उ. १०, सु. १

२. पंचऽत्थिकायाणं-पवत्ति–

प. धम्मऽत्थिकाए णं भंते! जीवाणं किं पवत्तइ ?

उ. गोयमा! धम्मऽत्थिकाए णं जीवाणं आगमण - गमण - भासुम्मेस-मणजोग - वइजोग - कायजोगा,

जे यावऽण्णे तहप्पगारा चलाभावा सव्वे ते धम्मऽत्थिकाए पवत्तंति,

गइलक्खणे णं धम्मऽत्थिकाए।

प. अधम्मऽत्थिकाए णं भंते! जीवाणं किं पवत्तइ?

उ. गोयमा! अधम्मऽत्थिकाए णं जीवाणं ठाण-निसीयण-तुयट्टण-मणस्स य एगत्तीभावकरणया,

जे यावऽण्णे तहप्पगारा, थिराभावा सव्वे ते अधम्मऽत्थिकाए पवत्तंति,

ठाणलक्खणे णं अधम्मऽत्थिकाए।

प. आगासत्थिकाए णं भंते! जीवाणं अजीवाण य किं पवत्तइ?

उ. गोयमा! आगासत्थिकाए णं जीवदव्वाणं, अजीव-दव्वाण य भायणभूंए,
एगेण वि से पुण्णे, दोहि वि पुण्णे, सयं पि माएज्जा।

कोडिसएण वि पुण्णे, कोडिसहस्सं पि माएज्जा।

अवगाहणालक्खणे णं आगासऽत्थिकाए,

प. जीवऽत्थिकाए णं भंते! जीवाणं किं पवत्तइ?

उ. गोयमा! जीवऽत्थिकाएणं जीवे अणंताणं आभिणिबोहिय नाण-पज्जवाणं
अणंताणं सुयनाणपज्जवाणं, अणंताणं ओहिनाणपज्ज-वाणं, अणंताणं मणपज्जवनाणपज्जवाणं,

अणंताणं केवलनाणपज्जवाणं,
अणंताणं मइअण्णाण पज्जवाणं, अणंताणं सुय-अण्णाण पज्जवाणं,

२. अस्तिकाय-अध्ययन

सूत्र

१. अस्तिकायों के भेद–

प्र. भंते ! अस्तिकाय कितने कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अस्तिकाय पांच कहे गए हैं, यथा–

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय,
३. आकाशास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय,
५. पुद्गलास्तिकाय।

२. पंचास्तिकायों की प्रवृत्ति–

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय से जीवों की क्या प्रवृत्ति होती है?

उ. गौतम ! धर्मास्तिकाय से जीवों के आगमन, गमन, भाषा, उन्मेष (पलक झपकना), मनोयोग, वचनयोग और काययोग प्रवृत्त होते हैं।
ये और इस प्रकार के जितने भी चल (गमनशील) भाव हैं वे सब धर्मास्तिकाय द्वारा प्रवृत्त होते हैं।
धर्मास्तिकाय का लक्षण गतिरूप है।

प्र. भंते ! अधर्मास्तिकाय से जीवों की क्या प्रवृत्ति होती है?

उ. गौतम ! अधर्मास्तिकाय से जीवों के स्थान (स्थित होना), निषीदन (बैठना), त्वग्वर्तन (करवट लेना) और मन को एकाग्र करना।
ये तथा इस प्रकार के जितने भी स्थिर भाव हैं, वे सब अधर्मास्तिकाय द्वारा प्रवृत्त होते हैं।
अधर्मास्तिकाय का लक्षण स्थिति रूप है।

प्र. भंते ! आकाशास्तिकाय से जीवों और अजीवों की क्या प्रवृत्ति होती है?

उ. गौतम ! आकाशास्तिकाय, जीवद्रव्यों और अजीवद्रव्यों का भाजन (आश्रय) रूप है।
क्योंकि एक परमाणु या दो परमाणुओं से व्याप्त आकाशप्रदेश में सौ परमाणु भी समा सकते हैं।
सौ करोड़ परमाणुओं से व्याप्त आकाश प्रदेश में एक हजार करोड़ परमाणु भी समा सकते हैं।
आकाशास्तिकाय का लक्षण अवगाहना रूप है।

प्र. भंते ! जीवास्तिकाय से जीवों की क्या प्रवृत्ति होती है?

उ. गौतम ! जीवास्तिकाय के द्वारा जीव अनन्त आभिनिबोधिक ज्ञान की पर्यायों के
अनन्त श्रुतज्ञान की पर्यायों के, अनन्त अवधिज्ञान की पर्यायों के, अनन्त मनःपर्यवज्ञान की पर्यायों के,

अनन्त केवलज्ञान की पर्यायों के,
अनन्त मति अज्ञान की पर्यायों के, अनन्त श्रुतअज्ञान की पर्यायों के,

१. (क) सम. सम. ५, सु. ८, (ख) विया. स. ७, उ. १०, सु. १-८

अणंताणं विभंगणाण पज्जवाणं,

अणंताणं चक्खुदंसणपज्जवाणं, अणंताणं अचक्खुदंसणपज्जवाणं,

अणंताणं ओहिदंसणपज्जवाणं, अणंताणं केवलदंसणपज्जवाणं उवओगं गच्छइ,

उवओगलक्खणे णं जीवे।

प. पोग्गलऽत्थिकाए णं भंते! जीवाणं किं पवत्तइ?

उ. गोयमा ! पोग्गलऽत्थिकाए णं जीवाणं ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेया-कम्मा-सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदिय-मणजोग-वइजोग-कायजोग-आणपाणूणं च गहणं पवत्तइ,

गहणलक्खणे णं पोग्गलऽत्थिकाए।

-विया. स. १३, उ. ४, सु. २४-२८

अनन्त विभंगज्ञान की पर्यायों के,

अनन्त चक्षुदर्शन की पर्यायों के, अनन्त अचक्षुदर्शन की पर्यायों के,

अनन्त अवधिदर्शन की पर्यायों के, अनन्त केवलदर्शन की पर्यायों के उपयोग को प्राप्त होता है,

जीव का लक्षण उपयोग रूप है।

प्र. भंते ! पुद्गलास्तिकाय से जीवों की क्या प्रवृत्ति होती है?

उ. गौतम ! पुद्गलास्तिकाय से जीवों के औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस्, कार्मण, श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, मनोयोग, वचनयोग, काययोग और श्वास-उच्छ्वास को ग्रहण करने की प्रवृत्ति होती है।

पुद्गलास्तिकाय का लक्षण ग्रहण रूप है।

३. पंचऽत्थिकायाणं पज्जाय सद्दा–

प. धम्मऽत्थिकायस्स णं भंते! केवइया अभिवयणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणेगा अभिवयणा पण्णत्ता, तं जहा–

धम्मे इ वा, धम्मऽत्थिकाए इ वा,

पाणाइवायवेरमणे इ वा जाव परिग्गहवेरमणे इ वा,

कोहविवेगे इ वा जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे इ वा,

इरियासमिई इ वा जाव उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल सिंघाण-पारिट्ठावणियासमिई इ वा,

मणोगुत्ती इ वा जाव कायगुत्ती इ वा।

जे यावऽन्ने तहप्पगारा, सव्वे ते धम्मऽत्थिकायस्स अभिवयणा,

प. अधम्मऽत्थिकायस्स णं भंते! केवइया अभिवयणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणेगा अभिवयणा पण्णत्ता, तं जहा–

अधम्मे इ वा, अधम्मऽत्थिकाए इ वा,

पाणाइवाय-अवेरमणे इ वा जाव परिग्गह-अवेरमणे इ वा,

कोह-अविवेगे इ वा जाव मिच्छादंसणसल्ल-अविवेगे इ वा,

ईरिया-असमिई इ वा जाव उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल - सिंघाण - पारिट्ठावणिया - असमिई वा मणअगुत्ती इ वा जाव काय-अगुत्ती इ वा,

जे यावऽन्ने तहप्पगारा, सव्वे ते अधम्मऽत्थिकायस्स अभिवयणा,

प. आगासऽत्थिकायस्स णं भंते! केवइया अभिवयणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणेगा अभिवयणा पण्णत्ता, तं जहा–

३. पंचास्तिकायों के पर्यायवाची शब्द–

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय के कितने अभिवचन (पर्यायवाची शब्द) कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनेक अभिवचन कहे गए हैं, यथा–

धर्म, या धर्मास्तिकाय,

प्राणातिपात-विरमण यावत् परिग्रह-विरमण

क्रोध-विवेक यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य-विवेक,

ईर्यासमिति यावत् उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-परिष्ठापनिका-समिति,

मनोगुप्ति यावत् कायगुप्ति

ये और इसी प्रकार के जितने भी दूसरे शब्द हैं वे सब धर्मास्तिकाय के अभिवचन हैं।

प्र. भंते ! अधर्मास्तिकाय के कितने अभिवचन कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनेक अभिवचन कहे गए हैं, यथा–

अधर्म या अधर्मास्तिकाय,

प्राणातिपात अविरमण यावत् परिग्रह अविरमण,

क्रोध अविवेक यावत् मिथ्यादर्शनशल्य अविवेक,

ईर्याअसमिति यावत् उच्चार-प्रस्रवण खेल-जल्ल-सिंघाण-परिष्ठापनिका असमिति,

मन-अगुप्ति यावत् काय-अगुप्ति,

ये और इसी प्रकार के जितने भी दूसरे शब्द हैं वे सब अधर्मास्तिकाय के अभिवचन हैं।

प्र. भंते ! आकाशास्तिकाय के कितने अभिवचन कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनेक अभिवचन कहे गए हैं, यथा–

आगासे इ वा, आगासऽत्थिकाए इ वा,
गगणे इ वा, नभे इ वा, समे इ वा, विसमे इ वा,
खहे इ वा, विहे इ वा, वीयी इ वा, विवरे इ वा,
अंबे इ वा, अंबरसे इ वा, छिड्डे इ वा, झुसिरे इ वा,
मग्गे इ वा, विमुहे इ वा, अद्दे इ वा, वियद्दे इ वा,
आधारे इ वा, वोमे इ वा, भायणे इ वा, अंतरिक्खे इ वा, सामे इ वा, ओवासंतरे इ वा, अगमे इ वा, फलिहे इ वा, अणंते इ वा,

जे यावऽन्ने तहप्पगारा, सव्वे ते आगासऽत्थिकायस्स अभिवयणा।

प. जीवऽत्थिकायस्स णं भंते! केवइया अभिवयणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणेगा अभिवयणा पण्णत्ता, तं जहा–
जीवे इ वा, जीवऽत्थिकाए इ वा,
पाणे इ वा, भूए इ वा, सत्ते इ वा, विण्णू इ वा,
चेया इ वा, जेया इ वा, आया इ वा, रंगणे इ वा,
हिंडुए इ वा, पोग्गले इ वा, माणवे इ वा,
कत्ता इ वा, विकत्ता इ वा, जए इ वा, जंतू इ वा,
जोणी इ वा, सयंभू इ वा, ससरिरी इ वा, नायए इ वा, अंतरप्पा इ वा,

जे यावऽन्ने तहप्पगारा, सव्वे ते जीवऽत्थिकायस्स अभिवयणा।

प. पोग्गलऽत्थिकायस्स णं भंते! केवइया अभिवयणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणेगा अभिवयणा पण्णत्ता, तं जहा–
पोग्गले इ वा, पोग्गलऽत्थिकाए इ वा,
परमाणुपोग्गले इ वा, दुपएसिए इ वा, तिपएसिए इ वा जाव-संखेज्जपएसिए इ वा, असंखेज्जपएसिए इ वा, अणंतपएसिए इ वा खंधे,

जे यावऽन्ने तहप्पगारा, सव्वे ते पोग्गलऽत्थिकायस्स अभिवयणा,

–विया, स. २०, उ. २, सु. ४-८

आकाश या आकाशास्तिकाय.
गगन, नभ, सम, विषम,
खह, विहायस्, वीचि, विवर,
अम्बर, अम्बरस, छिद्र, शुषिर,
मार्ग, विमुख, अर्द, व्यर्द,
आधार, व्योम, भाजन, अन्तरिक्ष,
श्याम, अवकाशान्तर अगम, स्फटिक और अनन्त

ये और इसी प्रकार के जितने भी दूसरे शब्द हैं वे सब आकाशास्तिकाय के अभिवचन हैं।

प्र. भंते ! जीवास्तिकाय के कितने अभिवचन कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनेक अभिवचन कहे गए हैं, यथा–
जीव या जीवास्तिकाय,
प्राण, भूत, सत्व, विज्ञ,
चेता, जेता, आत्मा, रंगण,
हिण्डुक, पुद्गल, मानव,
कर्त्ता, विकर्त्ता, जगत्, जन्तु,
योनि, स्वयम्भू, सशरीरी, नायक और अन्तरात्मा,

ये और इसी प्रकार के जितने भी दूसरे शब्द हैं वे सब जीवास्तिकाय के अभिवचन हैं।

प्र. भंते ! पुद्गलास्तिकाय के कितने अभिवचन कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनेक अभिवचन कहे गए हैं, यथा–
पुद्गल या पुद्गलास्तिकाय,
परमाणु-पुद्गल, द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् संख्यातप्रदेशी असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध,

ये और इसी प्रकार के जितने भी दूसरे शब्द हैं वे सब पुद्गलास्तिकाय के अभिवचन हैं।

४. पंचण्हमत्थिकायाणं पमाणं–

प. धम्मत्थिकाएणं भंते! के महालए पण्णत्ते?

उ. गोयमा! लोए, लोयमेत्ते, लोयप्पमाणे, लोयफुडे, लोयं चेव फुसित्ताणं चिट्ठइ,

एवं १. अधम्मत्थिकाए, २. लोयागासे,
३. जीवत्थिकाए, ४. पोग्गलत्थिकाए,
पंचवि एक्काभिलावा।[1]

–विया. स. २, उ. १०, सु. १३,

४. पांचों अस्तिकायों का प्रमाण–

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय कितना बड़ा कहा गया है?

उ. गौतम ! धर्मास्तिकाय लोकरूप है, लोकमात्र है, लोक-प्रमाण है, लोकस्पृष्ट है और लोक को ही स्पर्श करके रहा हुआ है।
इसी प्रकार १. अधर्मास्तिकाय, २. लोकाकाश, ३. जीवास्तिकाय और ४. पुद्गलास्तिकाय।
इन पांचों के सम्बन्ध में एक समान अभिलाप (पाट) जानना चाहिए।

१. विया. स. २०, उ. २, सु. २ (ख)

५. अत्थिकायाणं अजीव-अरूवि पगारा–

चत्तारि अत्थिकाया अजीवकाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. धम्मत्थिकाए, २. अधम्मत्थिकाए,
३. आगासत्थिकाए, ४. पोग्गलत्थिकाए।

चत्तारि अत्थिकाया अरूविकाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. धम्मत्थिकाए, ३. अधम्मत्थिकाए,
३. आगासत्थिकाए, ४. जीवत्थिकाए।[1]

–ठाणं. अ ४, उ. १, सु. २५२

५. अस्तिकायों के अजीव अरूपी प्रकार–

चार अस्तिकाय अजीव कहे गये हैं, यथा–

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय,
३. आकाशास्तिकाय, ४. पुद्‌गलास्तिकाय।

चार अस्तिकाय अरूपी कहे गये हैं, यथा–

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय,
३. आकाशास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय।

६. पंचत्थिकायाणं गरुयत्त-लहुयत्त परूवणं–

प. धम्मत्थिकाए णं भंते! किं गरुए? लहुए? गरुयलहुए? अगरुयलहुए?

उ. गोयमा! णो गरुए, णो लहुए, णो गरुयलहुए, अगरुयलहुए।

अधम्मत्थिकाये वि जाव जीवत्थिकाये वि एवं चेव।

प. पोग्गलत्थिकाए णं भंते! किं गरुए, लहुए, गरुय-लहुए, अगरुय-लहुए?

उ. गोयमा! णो गरुए, णो लहुए, गरुय-लहुए वि, अगरुय-लहुए वि।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-
पोग्गलत्थिकाए णो गरुए, णो लहुए, गरुय-लहुए वि, अगरुय-लहुए वि?

उ. गोयमा! गरुय-लहुयदव्वाइं पडुच्च-नो गरुए, नो लहुए, गरुय-लहुए, नो अगरुय-लहुए, अगरुय-लहुयदव्वाइं पडुच्चनो गरुए, नो लहुए, नो गरुय-लहुए, अगरुय-लहुए।

–विया. स. १, उ. ९, सु. ७-८

सव्वदव्वा सव्वपदेसा सव्वपज्जवा जहा पोग्गलत्थिकाओ।

–विया. स. १, उ. ९, सु. १५

६. पंचास्तिकायों का गुरुत्व-लघुत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय क्या गुरु है, लघु है या गुरुलघु है या अगुरुलघु है?

उ. गौतम ! धर्मास्तिकाय न गुरु है, न लघु है, न गुरु लघु है किन्तु अगुरुलघु है।

अधर्मास्तिकाय से जीवास्तिकाय पर्यन्त भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्र. भंते ! पुद्‌गलास्तिकाय क्या गुरु है, लघु है, गुरुलघु है या अगुरुलघु है?

उ. गौतम ! पुद्‌गलास्तिकाय न गुरु है, न लघु है, किन्तु गुरुलघु है और अगुरुलघु भी है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-
"पुद्‌गलास्तिकाय न गुरु है, न लघु है, किन्तु गुरुलघु है और अगुरुलघु भी है।"

उ. गौतम ! गुरुलघु द्रव्यों की अपेक्षा पुद्‌गलास्तिकाय गुरु नहीं है, लघु नहीं है, अगुरुलघु नहीं है किन्तु गुरुलघु है।
अगुरुलघु द्रव्यों की अपेक्षा-पुद्‌गलास्तिकाय गुरु नहीं है, लघु नहीं है, गुरु-लघु नहीं है, किन्तु अगुरु-लघु है।

सर्वद्रव्य, सर्वप्रदेश और सर्वपर्याय पुद्‌गलास्तिकाय के समान समझना चाहिए।

७. पंचण्हमत्थिकायाणं दव्वाइं पडुच्च वण्णाइ परूवणं–

प. धम्मत्थिकाए णं भंते! कइ वण्णे, कइ गंधे, कइ रसे, कइ फासे पण्णत्ते?

उ. गोयमा! अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे,
अरूवी, अजीवे, सासए, अवट्ठिए लोगदव्वे,

से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दव्वओ, २. खेत्तओ, ३. कालओ, ४. भावओ, ५. गुणओ,

१. दव्वओ धम्मत्थिकाए एगे दव्वे,

७. पंचास्तिकायों का द्रव्यादि की अपेक्षा वर्णादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श कहे गए हैं?

उ. गौतम ! धर्मास्तिकाय वर्णरहित, गन्धरहित, रसरहित और स्पर्शरहित है,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोक द्रव्य है।
संक्षेप में वह पाँच प्रकार का कहा गया है–यथा–
१.द्रव्य से, २. क्षेत्र से, ३. काल से, ४. भाव से, ५. गुण से।

१. द्रव्य की अपेक्षा धर्मास्तिकाय एक द्रव्य रूप है,

---

१. विया. स. ७, उ. १०, सु. ८,

२. खेत्तओ लोगप्पमाणमेत्ते।

३. कालओ न कयायि नासि, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ,
भुविं च, भवइ अ, भविस्सइ अ,
धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अवट्ठिए, निच्चे।

४. भावओ अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे।

५. गुणओ गमणगुणे।

अधम्मत्थिकाए वि एवं चेव,

णवरं–गुणओ ठाणगुणे,

प. आगासत्थिकाए णं भंते! कइ वण्णे जाव कइ फासे पण्णत्ते?

उ. गोयमा! अवण्णे जाव अवट्ठिए लोग दव्वे।
ते समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१.-४. दव्वओ जाव ५. गुणओ,
१. दव्वओ आगासत्थिकाए एगे दव्वे।
२. खेत्तओ लोयालोयप्पमाणमेत्ते अणंते।
३. कालओ न कयाइ नासि जाव निच्चे।
४. भावओ अवण्णे जाव अफासे।
५. गुणओ अवगाहणा गुणे।

प. जीवत्थिकाए णं भंते! कइ वण्णे जाव कइ फासे पण्णत्ते?

उ. गोयमा! अवण्णे जाव अवट्ठिए लोगदव्वे,
से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१.-४. दव्वओ जाव ५. गुणओ,
१. दव्वओ णं जीवत्थिकाए अणंताइं जीवदव्वाइं,
२. खेत्तओ णं लोगप्पमाणमेत्ते,
३. कालओ णं न कयाइ नासि जाव निच्चे,
४. भावओ णं अवण्णे जाव अफासे,
५. गुणओ णं उवओगगुणे,

प. पोग्गलत्थिकाए णं भंते! कइ वण्णे जाव कइ फासे पण्णत्ते?

उ. गोयमा! पंचवण्णे, दुगंधे, पंचरसे, अट्ठफासे[1]
रूवी, अजीवे, सासए, अवट्ठिए लोगदव्वे,
से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१-४. दव्वओ जाव गुणओ,

२. क्षेत्र की अपेक्षा लोकप्रमाण मात्र है।

३. काल की अपेक्षा कभी नहीं था, कभी नहीं है,
और कभी नहीं रहेगा,
ऐसा भी नहीं है किन्तु वह था, है और रहेगा,
वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

४. भाव की अपेक्षा वर्णरहित, गन्धरहित, रसरहित और स्पर्शरहित है।

५. गुण की अपेक्षा गमन (सहयोगी) गुण वाला है।

अधर्मास्तिकाय का कथन भी इसी प्रकार है।

विशेष–गुण की अपेक्षा स्थित (सहयोगी) गुण वाला है।

प्र. भंते ! आकाशास्तिकाय में कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अवर्ण यावत् अवस्थित लोकद्रव्य है।
संक्षेप में वह पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. -४ द्रव्यतः यावत् ५. गुणतः।
१. द्रव्य की अपेक्षा आकाशास्तिकाय एक द्रव्य रूप है।
२. क्षेत्र की अपेक्षा लोकालोक प्रमाण और अनन्त है।
३. काल की अपेक्षा कभी नहीं था ऐसा नहीं है यावत् नित्य है।
४. भाव की अपेक्षा अवर्ण यावत् अस्पर्श रूप है।
५. गुण की अपेक्षा अवगाहना गुण वाला है।

प्र. भंते ! जीवास्तिकाय में कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श कहे गये हैं?

उ. गौतम ! अवर्ण यावत् अवस्थित लोक द्रव्य है।
संक्षेप में वह पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१-४ द्रव्यतः यावत् ५. गुणतः।
१. द्रव्य की अपेक्षा जीवास्तिकाय अनन्त जीव-द्रव्यरूप है।
२. क्षेत्र की अपेक्षा लोक प्रमाण मात्र है।
३. काल की अपेक्षा कभी नहीं था ऐसा नहीं है यावत् नित्य है।
४. भाव की अपेक्षा अवर्ण यावत् अस्पर्श रूप है।
५. गुण की अपेक्षा उपयोग गुण वाला है।

प्र. भंते ! पुद्गलास्तिकाय में कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श कहे गए हैं?

उ. गौतम ! पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस, आठ स्पर्श वाला, रूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोकद्रव्य है,
संक्षेप में वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१-४ द्रव्यतः यावत् ५. गुणतः।

---

१. वियाः स. १२, उ. ५, सु. २६

१. दव्वओ णं पोग्गलत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं,
२. खेत्तओ णं लोगप्पमाणमेत्ते,
३. कालओ णं न कयाइ नासि जाव निच्चे,
४. भावओ णं वण्णमंते जाव फासमंते,
५. गुणओ णं गहणगुणे।[1]

–विया. स. २, उ. १०, सु. २-६

१. द्रव्य की अपेक्षा पुद्‌गलास्तिकाय अनन्त द्रव्य रूप है।
२. क्षेत्र की अपेक्षा लोक प्रमाण मात्र है।
३. काल की अपेक्षा कभी नहीं था ऐसा नहीं है यावत् नित्य है।
४. भाव की अपेक्षा वह वर्ण वाला यावत् स्पर्श वाला है।
५. गुण की अपेक्षा ग्रहण गुण वाला है।

८. चत्तारि अत्थिकाय दव्वा पएसग्गं पडुच्च तुल्ला–

चत्तारि पएसग्गेणं तुल्ला पण्णत्ता, तं जहा–

१. धम्मत्थिकाए, २. अधम्मत्थिकाए, ३. लोगागासे, ४. एगजीवे।

–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३३४/१

८. चार अस्तिकाय द्रव्य प्रदेशाग्र की अपेक्षा तुल्य–

चार (द्रव्य) प्रदेशाग्र (प्रदेश-समूह) की अपेक्षा तुल्य कहे गये हैं, यथा–
१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. लोकाकाश, ४. एक जीव।

९. धम्मत्थिकायाईणं मज्झपएससंखा परूवणं–

प. कइ णं भंते! धम्मत्थिकायस्स मज्झपएसा पण्णत्ता?
उ. गोयमा! अट्ठ धम्मत्थिकायस्स मज्झपएसा पण्णत्ता।
प. कइ णं भंते! अधम्मत्थिकायस्स मज्झपएसा पण्णत्ता?
उ. गोयमा! एवं चेव।
प. कइ णं भंते! आगासत्थिकायस्स मज्झपएसा पण्णत्ता?
उ. गोयमा! एवं चेव।
प. कइ णं भंते! जीवत्थिकायस्स मज्झपएसा पण्णत्ता?
उ. गोयमा! अट्ठ जीवत्थिकायस्स मज्झपएसा पण्णत्ता।[2]

–विया. स. २५, उ. ४, सु. २४६-२४९

९. धर्मास्तिकायादिकों के मध्य-प्रदेशों की संख्या का प्ररूपण–

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय के मध्य-प्रदेश कितने कहे गये हैं?
उ. गौतम ! धर्मास्तिकाय के मध्य-प्रदेश आठ कहे गये हैं।
प्र. भंते ! अधर्मास्तिकाय के मध्य-प्रदेश कितने कहे गये हैं?
उ. गौतम ! इसी प्रकार पूर्ववत् आठ कहे गये हैं।
प्र. भंते ! आकाशास्तिकाय के मध्य-प्रदेश कितने कहे गये हैं?
उ. गौतम ! इसी प्रकार पूर्ववत् आठ कहे गये हैं।
प्र. भंते ! जीवास्तिकाय के मध्य-प्रदेश कितने कहे गये हैं?
उ. गौतम ! जीवास्तिकाय के मध्य-प्रदेश आठ कहे गये हैं।

१०. जीवत्थिकायमज्झपएसाणं आगासत्थिकायपदेसोगाहण परूवणं–

प. एए णं भंते! अट्ठ जीवत्थिकायस्स मज्झपएसा कइसु आगासपएसेसु ओगाहंति?
उ. गोयमा! जहन्नेणं एक्कंसि वा, दोहिं वा, तीहिं वा, चउहिं वा, पंचहिं वा, छहिं वा, उक्कोसेणं अट्ठसु, नो चेव णं सत्तसु।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. २५०

१०. जीवास्तिकाय के मध्य प्रदेशों का आकाशास्तिकाय के प्रदेशो में अवगाहन प्ररूपण–

प्र. भंते ! जीवास्तिकाय के ये आठ मध्य-प्रदेश कितने आकाशप्रदेशों में अवगाहित हो सकते हैं?
उ. गौतम ! वे जघन्य एक, दो, तीन, चार, पांच या छह तथा उत्कृष्ट आठ आकाशप्रदेशों में अवगाहित हो सकते हैं, किन्तु सात प्रदेशों में अवगाहित नहीं होते हैं।

११. दिट्ठंतपुव्वं धम्माइसु पडिपुन्न पएसेहिं अत्थिकायत्त परूवणं–

प. एगे भंते! धम्मऽत्थिकाय-पदेसे "धम्मऽत्थिकाए" त्ति वत्तव्वं सिया?
उ. गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे,

११. दृष्टांतपूर्वक धर्मादिकों में परिपूर्ण प्रदेशों से अस्तिकायत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को "धर्मास्तिकाय" कहा जा सकता है?
उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। (अर्थात्-धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता।)

---

१. ठाणं. अ. ५, उ. ३, सु. ४४१
२. ठाणं अ. ८ सु. ६२६

प. दोण्णि, तिण्णि, चत्तारि, पंच, छ, सत्त, अट्ठ, नव, दस, संखेज्जा, असंखेज्जा भंते! धम्मऽत्थिकाय-पदेसा "धम्मऽत्थिकाए" त्ति वत्तव्वं सिया?

उ. गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. एगपदेसूणे वि य णं भंते! धम्मऽत्थिकाए "धम्मऽत्थिकाए" त्ति वत्तव्वं सिया?

उ. गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

"एगे धम्मऽत्थिकाय-पदेसे नो धम्मऽत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया जाव एगपदेसूणे वि य णं धम्मऽत्थिकाए नो धम्मऽत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया?"

उ. से नूणं गोयमा! खंडे चक्के? सगले चक्के?

भगवं! नो खंडे चक्के, सगले चक्के,

एवं छत्ते, चम्मे, दंडे, दूसे, आयुहे, मोयए।

से तेणट्ठे णं गोयमा! एवं वुच्चइ–

"एगे धम्मऽत्थिकाय-पदेसे, नो धम्मऽत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया जाव एग-पदेसूणे वि य णं धम्मऽत्थिकाए, नो धम्मऽत्थिकाए त्ति वत्तव्वं सिया।

प. से किं खाइए णं भंते! "धम्मऽत्थिकाए" त्ति वत्तव्वं सिया?

उ. गोयमा! असंखेज्जा धम्मऽत्थिकाय-पदेसा, ते सव्वे कसिणा पडिपुण्णा, निरवसेसा एगग्गहण-गहिया,

एस णं गोयमा! "धम्मऽत्थिकाए" त्ति वत्तव्वं सिया,

एवं अधम्मऽत्थिकाए वि,

आगासऽत्थिकाय-जीवऽत्थिकाय पोग्गलऽत्थिकाया वि एवं चेव,

णवरं–पएसा अणंता भाणियव्वा,

सेसं तं चेव। *–विया. स. २, उ. १०, सु. ७-८*

प्र. भंते ! क्या धर्मास्तिकाय के दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ, नौ, दस, संख्यात और असंख्यात प्रदेशों को "धर्मास्तिकाय" कहा जा सकता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! एक प्रदेश न्यून धर्मास्तिकाय को क्या "धर्मास्तिकाय" कहा जा सकता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। (अर्थात्–एक प्रदेश कम धर्मास्तिकाय को भी धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता।)

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि

"धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता यावत् एक प्रदेश न्यून तक को भी धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता?"

उ. गौतम ! (यह बतलाओ कि) चक्र का खण्ड (टुकड़ा) चक्र कहलाता है या सम्पूर्ण को चक्र कहते हैं?

(गौतम) भंते ! चक्र के खण्ड को चक्र नहीं कहते, किन्तु सम्पूर्ण को चक्र कहते हैं।

इसी प्रकार छत्र, चर्म, दण्ड, वस्त्र, शस्त्र और मोदक के विषय में भी जानना चाहिए।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता है यावत् एक प्रदेश न्यून तक को भी धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता।"

प्र. भंते ! तब फिर धर्मास्तिकाय किसे कहा जा सकता है?

उ. गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, जब वे कृत्स्न, परिपूर्ण, निरवशेष एक के ग्रहण से सब ग्रहण हो जाए।

तब गौतम ! उसे "धर्मास्तिकाय" कहा जा सकता है।

इसी प्रकार "अधर्मास्तिकाय" के विषय में जानना चाहिए।

इसी प्रकार आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के विषय में भी जानना चाहिए।

विशेष–इन तीनों द्रव्यों के अनन्तप्रदेश कहने चाहिए।

शेष सारा वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।

१२. पोग्गलत्थिकाय पएसेसु दव्व-दव्वदेसाइ परूवणं–

प. एगे भंते! पोग्गलत्थिकायपएसे किं–

१. दव्वं, २. दव्वदेसे, ३. दव्वाइं, ४. दव्वदेसा,

५. उदाहु दव्वं च दव्वदेसे य,

६. उदाहु दव्वं च दव्वदेसा य,

७. उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसे य,

८. उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसा य ?

१२. पुद्गलास्तिकाय के प्रदेशों में द्रव्य, द्रव्यदेशादि की प्ररूपणा–

प्र. भंते ! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश अर्थात् परमाणु क्या १. (एक) द्रव्य है, २. (एक) द्रव्यदेश है, ३. (अनेक) द्रव्य हैं, ४. (अनेक) द्रव्यदेश हैं,

५. अथवा (एक) द्रव्य और (एक) द्रव्यदेश है,

६. अथवा (एक) द्रव्य और (अनेक) द्रव्यदेश है,

७. अथवा (अनेक) द्रव्य और (एक) द्रव्यदेश है,

८. अथवा (अनेक) द्रव्य और (अनेक) द्रव्यदेश है?

उ. गोयमा! सिय दव्वं, सिय दव्वदेसे, नो दव्वाइं, नो दव्वदेसा,

नो दव्वं च दव्वदेसे य **जाव** नो दव्वाइं च दव्वदेसा य।

प. दो भंते! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्वं, दव्वदेसे जाव उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसा य?

उ. गोयमा! १. सिय दव्वं,
२. सिय दव्वदेसे,
३. सिय दव्वाइं,
४. सिय दव्वदेसा,
५. सिय दव्वं च दव्वदेसे य,
६. नो दव्वं च दव्वदेसा य,

सेसा पडिसेहेयव्वा।

प. तिन्नि भंते! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्वं, दव्वदेसे जाव उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसा य?

उ. गोयमा! सिय दव्वं, सिय दव्वदेसे,

एवं सत्त भंगा भाणियव्वा जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसे य,

नो दव्वाइं च दव्वदेसा य।

प. चत्तारि भंते! पोग्गलत्थिकाय पएसा किं दव्वं, दव्वदेसे जाव उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसा य?

उ. गोयमा! सिय दव्वं, सिय दव्वदेसे,

अट्ठवि भंगा भाणियव्वा जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसा य,

जहा चत्तारि भणिया,

एवं पंच छ सत्त जाव **असंखेज्जा।**

प. अणंता भंते! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्वं, दव्वदेसे जाव उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसा य?

उ. गोयमा! **एवं चेव जाव** सिय दव्वाइं च दव्वदेसा य। *-विया. स. ८, उ. १०, सु. २३-२८*

उ. गौतम ! परमाणु कथंचित् द्रव्य है कथंचित् द्रव्यदेश है किन्तु (अनेक) द्रव्य नहीं है (अनेक) द्रव्यदेश नहीं है।

(एक) द्रव्य और (एक) द्रव्यदेश नहीं है-यावत् (अनेक) द्रव्य और (अनेक) द्रव्यदेश नहीं है।

प्र. भंते ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश क्या (एक) द्रव्य है या (एक) द्रव्यदेश है **यावत्** अथवा (अनेक) द्रव्य और अनेक द्रव्यदेश है?

उ. गौतम ! १. कथंचित् (एक) द्रव्य है,
२. कथंचित् (एक) द्रव्यदेश है,
३. कथंचित् (अनेक) द्रव्य हैं,
४. कथंचित् (अनेक) द्रव्यदेश हैं,
५. कथंचित् (एक) द्रव्य और (एक) द्रव्यदेश हैं किन्तु
६. (एक) द्रव्य और (अनेक) द्रव्यदेश नहीं है।

शेष विकल्पों का निषेध करना चाहिए।

प्र. भंते ! पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश क्या (एक) द्रव्य है या (एक) द्रव्यदेश है **यावत्** अथवा (अनेक) द्रव्य और (अनेक) द्रव्यदेश हैं?

उ. गौतम ! १. कथंचित् (एक) द्रव्य है, २. कथंचित् (एक) द्रव्य देश है।

इस प्रकार सात भांगे कहने चाहिए-यावत् कथंचित् (अनेक) द्रव्य और (एक) द्रव्यदेश है,

किन्तु ८ (अनेक) द्रव्य और (अनेक) द्रव्यदेश नहीं हैं।

प्र. भंते ! पुद्गलास्तिकाय के चार प्रदेश क्या (एक) द्रव्य है-या (एक) द्रव्यदेश हैं यावत् अथवा (अनेक) द्रव्य और (अनेक) द्रव्यदेश हैं?

उ. गौतम ! १. कथंचित्? (एक) द्रव्य है, २. कथंचित् (एक) द्रव्य देश है।

इस प्रकार आठों भांग कहने चाहिए यावत् (अनेक) द्रव्य और (अनेक) द्रव्यदेश हैं।

जिस प्रकार चार प्रदेशों के लिए कहा,

उसी प्रकार पांच, छह, सात यावत् असंख्यात प्रदेशों के **लिए भी कहना चाहिए।**

प्र. भंते ! पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेश क्या (एक) द्रव्य हैं-या (एक) द्रव्यदेश हैं यावत् अथवा (अनेक) द्रव्य और अनेक द्रव्यदेश हैं?

उ. गौतम ! पहले के समान यावत् ८ कथंचित् (अनेक) द्रव्य और (अनेक) द्रव्यदेश हैं **पर्यन्त कहना चाहिए।**

१३. किण्हं अत्थिकाएहिं लोगे फुडे-

चउहिं अत्थिकाएहिं लोगे फुडे पण्णत्ते, तं जहा-

१. धम्मऽत्थिकाएणं, २. अधम्मऽत्थिकाएणं,
३. जीवऽत्थिकाएणं, ४. पोग्गलऽत्थिकाएणं।

-ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३३३/१

१३. कितने अस्तिकायों से लोक स्पृष्ट है-

चार अस्तिकायों से पूरा लोक स्पृष्ट कहा गया है, यथा-

१. धर्मास्तिकाय से, २. अधर्मास्तिकाय से
३. जीवास्तिकाय से, ४. पुद्गलास्तिकाय से।

१४. दिट्ठंतपुव्वं धम्म - अधम्म - आगासत्थिकाएसु आसणा - दिनिसेहो–

प. एयंसि णं भंते! धम्मत्थिकायंसि, अधम्मत्थिकायंसि, आगासत्थिकायंसि चक्किया केई आसइत्तए वा, सइत्तए वा, चिट्ठित्तए वा, निसीइत्तए वा, तुयट्टित्तए वा?

उ. गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।[1]
अणंता पुण तत्थ जीवा ओगाढा।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–
"एयंसि णं धम्मत्थिकायंसि जाव आगासत्थिकायंसि नो चक्किया केई आसइत्तए वा जाव तुयट्टित्तए वा- अणंता पुण तत्थ जीवा ओगाढा?"

उ. गोयमा! से जहानामए–कूडागारसाला सिया दुहओ लित्ता, गुत्ता, गुत्तदुवारा, जहा रायप्पसेणइज्जे जाव दुवारवयणाइं पिहेइ, पिहेत्ता तीसे कूडागारसालाए बहुमज्झदेसभाए जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं पईवसहस्सं पलीवेज्जा,

से नूणं गोयमा! ताओ पईवलेस्साओ अण्णमण्णसंबद्धाओ अण्णमण्णपुट्ठाओ जाव अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठंति?
"हंता! चिट्ठंति।"
"चक्किया णं गोयमा! केई तासु पईवलेस्सासु आसइत्तए वा जाव तुयट्टित्तए वा?"
"भगवं ! नो इणट्ठे समट्ठे,
अणंता पुण तत्थ जीवा ओगाढा।"
से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–
'एयंसि णं धम्मत्थिकायंसि जाव आगासत्थिकायंसि नो चक्किया केई आसइत्तए वा जाव तुयट्टित्तए वा अणंता पुण तत्थ जीवा ओगाढा।'

–विया. स. १३, उ. ४, सु. ६६



१४. दृष्टांतपूर्वक धर्म-अधर्म आकाशास्तिकायों पर आसनादि का निषेध–

प्र. भंते ! इस धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय पर कोई व्यक्ति बैठने, सोने, खड़ा होने, नीचे बैठने और करवट बदलने में समर्थ हो सकता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
उस स्थान पर अनन्त जीव अवगाढ (स्थित) होते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि
इस धर्मास्तिकाय यावत् आकाशास्तिकाय पर कोई भी व्यक्ति ठहरने यावत् करवट बदलने में समर्थ नहीं हो सकता यावत् वहां अनन्त जीव अवगाढ होते हैं?

उ. गौतम ! जैसे कोई कूटागारशाला हो, जो बाहर और भीतर दोनों ओर से लीपी हुई हो, चारों ओर से सुरक्षित हो, उसके द्वार भी गुप्त हों इत्यादि राजप्रश्नीय सूत्रानुसार यावत् द्वार के कपाट ढक देता है और कपाट ढक कर उस कूटागारशाला के ठीक बीचोंबीच में कोई जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट एक हजार दीपक जला दें तो

हे गौतम ! (उस समय) उन दीपकों की प्रभाएं परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध होकर, एक दूसरे की प्रभा को छूकर यावत् परस्पर एक रूप होकर रहती हैं न?

(गौतम) हां, रहती हैं।

(भगवन्) हे गौतम ! क्या कोई व्यक्ति उन दीपक की प्रभाओं पर बैठने, सोने यावत् करवट बदलने में समर्थ हो सकता है?

(गौतम) भन्ते ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
उन प्रभाओं पर अनन्त जीव अवगाढ होते हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'इस धर्मास्तिकाय यावत् आकाशास्तिकाय पर कोई व्यक्ति ठहरने यावत् करवट बदलने में समर्थ नहीं हो सकता है यावत् वहां अनन्त जीव अवगाढ होते हैं।'

---

१. विया. स. ८, उ. १०, सु. ९.

पर्याय-अध्ययन : आमुख

दार्शनिक जगत् में पर्याय का जो अर्थ प्रसिद्ध हुआ है, उससे आगम में किञ्चित् भिन्न अर्थ में पर्याय शब्द का प्रयोग हुआ है। दर्शन ग्रन्थों में द्रव्य के क्रमभावी परिणाम को पर्याय कहा है तथा गुण एवं पर्याय से युक्त पदार्थ को द्रव्य कहा है। वहाँ पर एक ही द्रव्य या वस्तु की विभिन्न पर्यायों की चर्चा है। आगम में पर्याय का निरूपण द्रव्य के क्रमभावी परिणमन के रूप में नहीं हुआ है। आगम में तो एक पदार्थ जितनी अवस्थाओं में प्राप्त होता है उन्हें उस पदार्थ की पर्याएं कहा है। जैसे जीव की पर्याय हैं—नारक, देव, मनुष्य, तिर्यञ्च या सिद्ध।

पर्याय द्रव्य की भी होती है और गुण की भी होती है। गुणों की पर्याय का उल्लेख अनुयोगद्वार सूत्र में इस प्रकार हुआ है—एकगुण काला, द्विगुण काला यावत् अनन्तगुण काला। एक पदार्थ में काले गुण की अनन्त पर्याय होती हैं। इसी प्रकार नीले, पीले, लाल एवं सफेद वर्णों की पर्याय भी अनन्त होती हैं। वर्ण की भांति गन्ध, रस एवं स्पर्श के भेदों की भी एकगुण से लेकर अनन्तगुण पर्याय होती है। उत्तराध्ययन सूत्र में एकत्व पृथक्त्व, संख्या, संस्थान, संयोग और विभाग को पर्याय को लक्षण कहा है। एक पर्याय का दूसरी पर्याय के साथ द्रव्य की दृष्टि से एकत्व (एकता) होता है, पर्याय की दृष्टि से दोनों पर्याय पृथक् (भिन्न) होती हैं। संख्या के आधार पर भी पर्याय-भेद होता है। संस्थान अर्थात् आकृति की दृष्टि से भी पर्याय-भेद होता है। जिस पर्याय का संयोग (उत्पाद) होता है उसका वियोग (विनाश) भी निश्चित रूप से होता है।

प्रज्ञापना सूत्र में पर्याय के दो भेद प्रतिपादित हैं—१. जीव पर्याय और २. अजीव पर्याय। ये दोनों प्रकार की पर्यायें अनन्त होती हैं। जीव पर्याय किस प्रकार अनन्त होती हैं इसका समाधान करते हुए कहा गया है कि—'नैरयिक, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्य' ये सब असंख्यात हैं किन्तु वनस्पतिकायिक और सिद्ध जीव अनन्त हैं इसलिए जीव पर्याय अनन्त हैं।

पर्याय दो प्रकार की होती हैं—अर्थ पर्याय और व्यंजन पर्याय। एक ही पदार्थ की क्रमभावी पर्यायों को अर्थ पर्याय कहते हैं तथा एक पदार्थ की उसके विभिन्न प्रकारों एवं भेदों में जो पर्याय होती है उसे व्यंजन पर्याय कहते हैं। अर्थ पर्याय सूक्ष्म एवं व्यंजन पर्याय स्थूल होती है। पर्याय को ऊर्ध्व पर्याय एवं तिर्यक् पर्याय के रूप में भी जाना जा सकता है। जैसे अनेक मनुष्यों को पर्याय-भेद से हम मनुष्य की अनन्त पर्याय कहते हैं वह तिर्यक् पर्याय या व्यंजन पर्याय है। यदि एक ही मनुष्य के प्रतिक्षण होने वाले परिणमन को पर्याय कहें तो वह अर्थ पर्याय या ऊर्ध्व पर्याय है।

इस अध्ययन में जीव एवं अजीव की अनन्त पर्यायों का निरूपण हुआ है। जीव की भी अनन्त पर्याय हैं और अजीव की भी अनन्त पर्याय हैं। जीवों में भी प्रत्येक दण्डक के जीवों की अनन्त पर्याय होती हैं। इन पर्यायों की अनन्तता का कथन १ द्रव्य, २ प्रदेश, ३ अवगाहना, ४ स्थिति, ५ वर्ण, ६ गन्ध, ७ रस, ८ स्पर्श, ९ ज्ञान, 10 अज्ञान और 11 दर्शन इन ग्यारह द्वारों के आधार पर किया गया है। जब नैरयिक की अनन्त पर्याय का कथन होता है, तब एक नैरयिक की तुलना दूसरे नैरयिक से इन द्रव्य, प्रदेश आदि ग्यारह द्वारों के आधार पर की जाती है और परिणामस्वरूप नैरयिक की अनन्त पर्याय सिद्ध होती हैं। इसी प्रकार भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की भी अनन्त पर्याय सिद्ध होती हैं। पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक के स्थावर दण्डकों, विकलेन्द्रियों, तिर्यञ्च योनिक पंचेन्द्रिय जीवों और मनुष्यों में प्रत्येक की ग्यारह द्वारों के माध्यम से अनन्त पर्याय सिद्ध होती हैं। इनमें द्रव्य की अपेक्षा और प्रदेश की अपेक्षा एक नैरयिक दूसरे नैरयिक के तुल्य होता है। इसी प्रकार अन्य तेबीस दण्डकों में भी एक दण्डक का जीव उस दण्डक के अन्य जीव से द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा तुल्य होता है किन्तु स्थिति, अवगाहना आदि में भिन्नता पायी जाती है।

द्रव्य की अर्थ संख्या भी होती है और पदार्थ भी। संख्या की दृष्टि से एक जीव दूसरे जीव के समान होता है तथा पदार्थ की दृष्टि से भी नैरयिक नैरयिक के तुल्य होता है, मनुष्य मनुष्य के तुल्य होता है। प्रदेश का आशय यहां जीव प्रदेशों से है। वे दण्डक विशेष के जीवों में परस्पर समान होते हैं। स्थिति एवं अवगाहना में कदाचित् हीनता, कदाचित् तुल्यता और कदाचित् अधिकता रहती है। तुल्यता के तो भंग नहीं बनते किन्तु हीनता एवं अधिकता के अनन्त भाग, असंख्यातभाग, संख्यातभाग, संख्यातगुण, असंख्यातगुण और अनन्तगुण ये छह भंग बनते हैं। इनमें प्रत्येक दण्डक में यथायोग्य भंग पाए जाते हैं। गन्ध, रस, स्पर्श, ज्ञान, अज्ञान एवं दर्शन के आधार पर भी कदाचित् तुल्यता, कदाचित् हीनता, एवं कदाचित् अधिकता होती है जिसमें भी तीन से लेकर छह भेद तक हो जाते हैं।

जीव पर्याय का वर्णन द्रव्य एवं प्रदेश को छोड़कर अवगाहना, स्थिति आदि के जघन्य, उत्कृष्ट एवं मध्यम रूपों के आधार पर भी हुआ है। इस आधार पर भी पर्यायों की अनन्तता ही सिद्ध होती है। जैसे जघन्य अवगाहना वाला एक नैरयिक द्रव्य, प्रदेश एवं अवगाहना की दृष्टि से दूसरे नैरयिक के तुल्य होता है किन्तु स्थिति, वर्ण, गन्ध, रसादि के आधार पर भिन्नता होने के कारण पर्याय की अनन्तता सिद्ध होती है। इसी प्रकार सभी दण्डकों में जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट अवगाहना, स्थिति, वर्ण, गंध, रस आदि के आधार पर पर्याय का विचार हुआ है। अज्ञान द्वार से विचार वहां ही अभीष्ट है जहां अज्ञान उपलब्ध है।

अजीव पर्याय दो प्रकार की है–रूपी अजीव पर्याय और अरूपी अजीव पर्याय। अरूपी अजीव पर्याय के दस भेद हैं १. धर्मास्तिकाय, २. उसके देश और ३. प्रदेश ४. अधर्मास्तिकाय ५. उसके देश और ६. प्रदेश ७. आकाशास्तिकाय ८. उसके देश और ९. प्रदेश और १०. अद्धासमय।

रूपी अजीव पर्याय के चार भेद हैं–१. स्कन्ध, २. देश, ३. प्रदेश और ४. परमाणु पुद्गल।

रूपी अजीव पर्याय अनन्त हैं क्योंकि परमाणु पुद्गल अनन्त हैं, द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं यावत् दशप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, संख्यातप्रदेशिक, असंख्यातप्रदेशिक और अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध भी अनन्त हैं।

परमाणु पुद्गलों से लेकर अनन्तप्रदेशिक स्कन्धों की पर्यायों की अनन्तता पर विचार १. द्रव्य २. प्रदेश ३. अवगाहना ४. स्थिति ५. वर्ण ६. गन्ध ७. रस और ८. स्पर्श इन द्वारों से किया गया है। इसमें ज्ञान, अज्ञान और दर्शन द्वारों से विचार नहीं किया गया क्योंकि अजीव में ये तीनों नहीं पाए जाते हैं। एक परमाणु पुद्गल दूसरे परमाणु पुद्गल से द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा तुल्य होता है किन्तु अन्य द्वारों से उसमें भिन्नता रहती है। द्विप्रदेशिक स्कन्धों से लेकर दशप्रदेशिक स्कन्धों में यही विशेषता है। संख्यातप्रदेशिक, असंख्यातप्रदेशिक और अनन्तप्रदेशिक स्कन्धों में प्रत्येक में अपने वर्ण के स्कन्ध से द्रव्य की तुल्यता है, प्रदेशादि की नहीं। हीनता एवं अधिकता के संख्यात भाग, असंख्यात भाग, संख्यात गुण, असंख्यातगुण, अनन्त भाग, अनन्तगुण आदि भंग बनते हैं, वे यथायोग्य योजित होते हैं।

प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श में से प्रत्येक द्वार को लेकर भी पुद्गल की अनन्त पर्यायों का विचार हुआ है, यथा–प्रदेश में एक प्रदेश में अवगाढ़, द्विप्रदेश में अवगाढ़ यावत् असंख्यात प्रदेश में अवगाढ़ पुद्गलों में इन्हीं द्वारों से अनन्त पर्याय का कथन हुआ है। इसी प्रकार एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों की अनन्त पर्याय का वर्णन है यावत् असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों की अनन्त पर्याय कही गयी हैं। एकगुण काले आदि वर्णों से लेकर अनन्तगुण रूक्ष स्पर्श पर्यन्त जो वर्णन हुआ है उसमें भी प्रत्येक की अनन्त पर्याय सिद्ध हुई हैं। जघन्य, उत्कृष्ट एवं मध्यम अवगाहना व स्थिति के आधार पर भी विभिन्न पुद्गलों में पर्याय की अनन्तता का प्रतिपादन हुआ है। द्विप्रदेशी स्कन्धों से लेकर अनन्त प्रदेशी स्कन्धों पर पर्याय के आनन्त्य का भी विचार हुआ है।

यह सम्पूर्ण अध्ययन अनेकान्तदृष्टि को लिए हुए है। विविध दृष्टिकोणों से इस अध्ययन में जीव एवं पुद्गल की अनन्त पर्यायों का विवेचन हुआ है। धर्म, अधर्म आदि अरूपी द्रव्यों की अनन्त पर्यायों पर इस अध्ययन में विचार नहीं हुआ है। आधुनिक जैनदार्शनिकों के लिए आगम में विवेचित पर्याय की दृष्टि का यह अध्ययन स्रोत रूप में कार्य करेगा।

□

३. पज्जवऽज्झयणं

सूत्र

१. पज्जवनामा–

प. से किं तं पज्जवनामे ?

उ. पज्जवनामे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–

एगगुणकालए दुगुणकालए जाव अणंतगुणकालए।

एगगुणनीलए दुगुणनीलए जाव अणंतगुणनीलए।

एवं लोहिय-हालिद्द-सुक्किला वि भाणियव्वा।

एगगुणसुरभिगंधे दुगुणसुरभिंगधे जाव अणंतगुण-सुरभिगंधे।

एवं दुरभिगन्धो वि भाणियव्वो।

एगगुणतित्ते दुगुणतित्ते जाव अणंतगुणतित्ते।

एवं कडुय-कसाय-अंबिल-महुरा वि भाणियव्वा।

एगगुणकक्खडे दुगुणकक्खडे जाव अणंतगुणकक्खडे।

एवं मउय-गरुय-लहुय-सीत-उसिण-णिद्ध-लुक्खा वि भाणियव्वा।

से तं पज्जवणामे।

–अणु. सु. २२५,

२. पज्जव लक्खणाइं–

एगत्तं च पुहत्तं च, संखासंठाणमेव य।

संजोगा य विभागा य, पज्जवाणं तु लक्खणं॥१॥

–उत्त. अ. २८, गा. १३

३. दुविहा पज्जवभेया–

प. कइविहा णं भंते ! पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पज्जवा पण्णत्ता, तं जहा–

१. जीवपज्जवा य, २. अजीवपज्जवा य।[1]

–पण्ण. प. ५. सु. ४३८

४. जीवपज्जवाणं पमाणं

प. जीवपज्जवा णं भंते ! किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?

उ. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जीवपज्जवा नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ?"

उ. गोयमा ! दं. १. असंखेज्जा नेरइया,

दं. २.-११. असंखेज्जा असुरकुमारा जाव असंखेज्जा थणियकुमारा,

३. पर्याय–अध्ययन

सूत्र

१. पर्याय नाम–

प्र. पर्यायनाम का क्या स्वरूप है ?

उ. पर्यायनाम (अवस्था) अनेक प्रकार के कहे गये हैं यथाः–

एकगुण (अंश) काला, द्विगुणकाला यावत् अनन्तगुणकाला,

एकगुण नीला, द्विगुण नीला यावत् अनन्तगुण नीला।

इसी प्रकार लाल, पीले और शुक्लवर्ण की पर्यायों के नाम भी समझना चाहिए।

एकगुण सुरभिगन्ध, द्विगुण सुरभिगन्ध यावत् अनन्तगुण सुरभिगन्ध।

इसी प्रकार दुरभिगन्ध के विषय में भी कहना चाहिए।

एकगुण तिक्त द्विगुण तिक्त यावत् अनन्तगुण तिक्त,

इसी प्रकार कषाय, अम्ल एवं मधुर रस की पर्यायों के लिए भी कहना चाहिए।

एकगुण कर्कश, द्विगुण कर्कश यावत् अनन्तगुण कर्कश।

इसी प्रकार कोमल, हल्का, भारी, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष स्पर्श की पर्यायों के लिए भी कहना चाहिए।

यह पर्यायनाम का स्वरूप है।

२. पर्यायों के लक्षण–

एकत्व, पृथक्त्व, संख्या, संस्थान, संयोग और वियोग–ये पर्यायों के लक्षण हैं।

३. पर्याय के दो प्रकार–

प्र. भंते ! पर्याय कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! (पर्याय) दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. जीवपर्याय, २. अजीवपर्याय।

४. जीव पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! जीव-पर्याय क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ. गौतम ! वे संख्यात और असंख्यात नहीं हैं, किन्तु अनन्त हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'जीवपर्याय संख्यात और असंख्यात नहीं हैं किन्तु अनन्त हैं ?'

उ. गौतम ! दं. १. असंख्यात नैरयिक हैं,

दं. २-११. असंख्यात असुरकुमार हैं यावत् असंख्यात स्तनितकुमार हैं,

१. विया. स. २५, उ. ५, सु. १

दं.१२. असंखेज्जा पुढविकाइया,
दं.१३. असंखेज्जा आउकाइया,
दं.१४. असंखेज्जा तेउकाइया,
दं.१५. असंखेज्जा वाउकाइया,
दं.१६. अणंता वणस्सइकाइया,
दं.१७. असंखेज्जा वेइंदिया,
दं.१८. असंखेज्जा तेइंदिया,
दं.१९. असंखेज्जा चउरिंदिया,
दं.२०. असंखेज्जा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया,
दं.२१. असंखेज्जा मणुस्सा,
दं.२२. असंखेज्जा वाणमंतरा,
दं.२३. असंखेज्जा जोइसिया,
दं.२४. असंखेज्जा वेमाणिया,
अणंतासिद्धा,

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–
"जीवपज्जवा नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।"

–पण्ण. प. ५, सु. ४३८-४३९

दं.१२. असंख्यात पृथ्वीकायिक हैं,
दं.१३. असंख्यात अप्कायिक हैं,
दं.१४. असंख्यात तैजस्कायिक हैं,
दं.१५. असंख्यात वायुकायिक हैं,
दं.१६. अनन्त वनस्पतिकायिक हैं,
दं.१७. असंख्यात द्वीन्द्रिय हैं,
दं.१८. असंख्यात त्रीन्द्रिय हैं,
दं.१९. असंख्यात चतुरिन्द्रिय हैं,
दं.२०. असंख्यात पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक हैं,
दं.२१. असंख्यात मनुष्य हैं,
दं.२२. असंख्यात वाणव्यन्तर देव हैं,
दं.२३. असंख्यात ज्योतिष्क देव हैं
दं.२४. असंख्यात वैमानिक देव हैं,
अनन्त सिद्ध हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'वे संख्यात और असंख्यात नहीं है किन्तु अनन्त हैं।'

५. चउवीसदंडएसु दव्वाइं पडुच्च एक्कारसठाणेहिं पज्जवपमाण परूवणं–

दं.१ . नेरइयाणं पज्जव पमाणं–

प. नेरइयाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?
उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"
उ. गोयमा ! नेरइए नेरइयस्स
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए, १. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए,

जइ हीणे–
१. असंखेज्जइभागहीणे वा, २. संखेज्जइभागहीणे वा,
३. संखेज्जगुणहीणे वा, ४. असंखेज्जगुणहीणे वा।

अह अब्भहिए–
१. असंखेज्जभागमब्भहिए वा,
२. संखेज्जभागमब्भहिए वा,
३. संखेज्जगुणमब्भहिए वा,
४. असंखेज्जगुणमब्भहिए वा।[1]

(४) ठिईए – सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए–

५. चौबीस दंडकों में द्रव्यादि की अपेक्षा ग्यारह स्थानों द्वारा पर्यायों के परिमाण का प्ररूपण–

दं.१. नैरयिकों के पर्याय का परिमाण–

प्र. भंते ! नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं?
उ. गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?"
उ. गौतम ! एक नारक दूसरे नारक से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा, १. कथंचित् हीन (नीचा) २. कथंचित् तुल्य, ३. कथंचित् अधिक (ऊँचा) है।

यदि हीन है तो–
१. असंख्यातवें भाग हीन है, २. संख्यातवें भाग हीन है,
३. संख्यातगुण हीन है, ४. असंख्यातगुण हीन है।

यदि अधिक है तो–
१. असंख्यातवें भाग अधिक है,
२. संख्यातवें भाग अधिक है,
३. संख्यातगुण अधिक है,
४. असंख्यातगुण अधिक है।

(४) स्थिति की अपेक्षा से–(एक नारक दूसरे नारक से) कदाचित् हीन है कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है।

---

१. [illegible]

जइ हीणे–

१. असंखेज्जइभागहीणे वा, २. संखेज्जइभागहीणे वा,

३. संखेज्जगुणहीणे वा, ४. असंखेज्जगुणहीणे वा,

अह अब्भहिए–

१. असंखेज्जइभागमब्भहिए वा,

२. संखेज्जइभागमब्भहिए वा,

३. संखेज्जगुणमब्भहिए वा,

४. असंखेज्जगुणमब्भहिए वा।

(५) वण्ण विवक्खा–

१. कालवण्णपज्जवेहिं सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए,

जइ हीणे–

१. अणंतभागहीणे वा, २. असंखेज्जइभागहीणे वा,

३. संखेज्जइभागहीणे वा, ४. संखेज्ज गुणहीणे वा,

५. असंखेज्ज गुणहीणे वा, ६. अणंतगुणहीणे वा।[1]

अह अब्भहिए–

१. अणंतभागमब्भहिए वा,

२. असंखेज्जइभागमब्भहिए वा,

३. संखेज्जइभागमब्भहिए वा,

४. संखेज्जगुणमब्भहिए वा,

५. असंखेज्जगुणमब्भहिए वा,

६. अणंतगुणमब्भहिए वा।

एवं २. णीलवण्णपज्जवेहिं, ३. लोहियवण्णपज्जवेहिं, ४. हालिद्दवण्णपज्जवेहिं, ५. सुक्किल्लवण्णपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

(६) गंध विवक्खा–

१. सुब्भिगंधपज्जवेहिं, (२) दुब्भिगंधपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए,

(७) रस विवक्खा–

१. तित्तरसपज्जवेहिं, (२) कडुयरसपज्जवेहिं,

३. कसायरसपज्जवेहिं, (४) अंबिलरसपज्जवेहिं,

५. महुररसपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

(८) फास विवक्खा–

१. कक्खडफासपज्जवेहिं, २. मउयफासपज्जवेहिं,

३. गरुयफासपज्जवेहिं, ४. लहुयफासपज्जवेहिं,

५. सीयफासपज्जवेहिं, ६. उसिणफासपज्जवेहिं,

७. निद्धफासपज्जवेहिं,

८. लुक्खफासपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए।

यदि हीन हैं तो–

१. असंख्यातवें भाग हीन है, २. संख्यातवें भाग हीन है,

३. संख्यातगुण हीन है, ४. असंख्यातगुण हीन है।

यदि अधिक है तो–

१. असंख्यातवें भाग अधिक हैं,

२. संख्यातवें भाग अधिक हैं,

३. संख्यातगुण अधिक हैं,

४. असंख्यातगुण अधिक हैं।

(५) वर्ण की अपेक्षा से–

१. कृष्णवर्ण-पर्यायों–(एक नारक दूसरे नारक) से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है।

यदि हीन है तो–

१. अनन्तवें भाग हीन है, २. असंख्यातवें भाग हीन हैं,

३. संख्यातवें भाग हीन है, ४. संख्यातगुण हीन है

५. असंख्यातगुण हीन है, ६. अनन्तगुण हीन है।

यदि अधिक है तो–

१. अनन्तवें भाग अधिक है,

२. असंख्यातवें भाग अधिक है,

३. संख्यातवें भाग अधिक है,

४. संख्यातगुण अधिक है,

५. असंख्यातगुण अधिक है,

६. अनन्तगुण अधिक है।

इसी प्रकार २. नीलवर्ण पर्यायों, ३. रक्तवर्णपर्यायों ४. हारिद्रवर्णपर्यायों और ५. शुक्लवर्णपर्यायों की अपेक्षा (एक नारक, दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

(६) गंध की अपेक्षा–

१. सुरभिगन्धपर्यायों और २ दुरभिगन्ध पर्यायों की अपेक्षा से भी षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

(७) रस की अपेक्षा–

१. तिक्तरसपर्यायों, २. कटुरसपर्यायों, ३. कषायरसपर्यायों, ४. आम्लरसपर्यायों, ५. मधुररसपर्यायों की अपेक्षा से भी षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

(८) स्पर्श की अपेक्षा–

१. कर्कशस्पर्श-पर्यायों, २. मृदु-स्पर्शपर्यायों,

३. गुरुस्पर्श पर्यायों, ४. लघुस्पर्शपर्यायों,

५. शीतस्पर्शपर्यायों, ६. उष्णस्पर्शपर्यायों,

७. स्निग्धस्पर्श पर्यायों,

८. रुक्षस्पर्शपर्यायों की अपेक्षा से भी षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

१. षट्स्थानपतित का सर्वत्र यह अर्थ जानना चाहिए।

(९) नाण विवक्खा–

१. आभिणिवोहियणाणपज्जवेहिं,

२. सुयणाणपज्जवेहिं,

३. ओहिणाणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए।

(१०) अण्णाण विवक्खा–

१. मइअण्णाणपज्जवेहिं, २. सुयअण्णाणपज्जवेहिं,

३. विभंगणाणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए।

(११) दंसण विवक्खा–

१. चक्खुदंसणपज्जवेहिं, २. अचक्खुदंसणपज्जवेहिं,

३. ओहिदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"नेरइयाणं नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

दं.२-११. असुरकुमाराईणं पज्जवपमाणं–

प. असुरकुमाराणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! असुरकुमारे असुरकुमारस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पएसट्ठयाए तुल्ले,

(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए।

(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए।

(५) कालवण्णपज्जवेहिं जाव सुक्किल्लवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

(६) सुब्भिगंधपज्जवेहिं, २.दुब्भिगंधपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

(७) तित्तरसपज्जवेहिं जाव महुररसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

(८) कक्खडफासपज्जवेहिं जाव लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

(९) १. आभिणिवोहियणाणपज्जवेहिं, २. सुयणाणपज्जवेहिं, ३.ओहिणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

(१०) १. मइअण्णाणपज्जवेहिं, २. सुयअण्णाणपज्जवेहिं, ३. विभंगणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

(११) १. चक्खुदंसणपज्जवेहिं, २. अचक्खुदंसणपज्जवेहिं, ३. ओहिदंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

(९) ज्ञान की अपेक्षा–

१. आभिनिवोधिकज्ञान पर्यायों,

२. श्रुतज्ञानपर्यायों,

३. अवधिज्ञान पर्यायों,

(१०) अज्ञान की अपेक्षा–

१. मति-अज्ञानपर्यायों, २. श्रुत-अज्ञानपर्यायों,

३. विभंगज्ञानपर्यायों।

(११) दर्शन की अपेक्षा–

१. चक्षुदर्शनपर्यायों, २. अचक्षुदर्शनपर्यायों,

३. अवधिदर्शनपर्यायों की अपेक्षा से भी षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"नारकों के पर्याय संख्यात और असंख्यात नहीं हैं किन्तु अनन्त कहे गये हैं।"

दं. २-११. असुरकुमारादि के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! असुरकुमारों के कितने पर्याय कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'असुरकुमारों के अनन्त पर्याय हैं ?'

उ. गौतम ! एक असुरकुमार दूसरे असुरकुमार से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा से चार स्थानपतित (हीनाधिक) है,

(४) स्थिति की अपेक्षा से भी चार स्थानपतित है।

(५) कृष्ण वर्ण पर्यायों से शुक्लवर्ण-पर्यायों पर्यन्त छः छः स्थान पतित है।

(६) १. सुरभिगन्ध और २. दुरभिगन्ध के पर्यायों की अपेक्षा से छः छः स्थानपतित है।

(७) तिक्तरस पर्यायों से यावत् मधुररस- पर्यायों की अपेक्षा से छः छः स्थानपतित है।

(८) कर्कशस्पर्श-पर्यायों से यावत् रूक्षस्पर्श पर्यायों की अपेक्षा से छः छः स्थानपतित है।

(९) १. आभिनिबोधिकज्ञान-पर्यायों, २. श्रुतज्ञान-पर्यायों, ३. अवधिज्ञान-पर्यायों की अपेक्षा से छः छः स्थानपतित है।

(१०) १. मति-अज्ञान पर्यायों, २. श्रुत-अज्ञान पर्यायों, ३. विभंगज्ञान-पर्यायों की अपेक्षा से छः छः स्थानपतित है।

(११) १. चक्षुदर्शन-पर्यायों २. अचक्षुदर्शन-पर्यायों, ३. अवधिदर्शन-पर्यायों की अपेक्षा से छः छः स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"असुरकुमारों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।"

एवं जाव थणियकुमारा।

दं. १२. पुढविकाइयाणं पज्जवमाणं[१]–

प. पुढविकाइयाणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! पुढविकाइए पुढविकाइयस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए–
१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए–

जइ हीणे–
१. असंखेज्जइभागहीणे वा, २. संखेज्जइभागहीणे वा,
३. संखेज्जगुणहीणे वा, ४. असंखेज्जगुणहीणे वा।
अह अब्भहिए–
१. असंखेज्जइभागअब्भहिए वा,
२. संखेज्जइभागअब्भहिए वा,
३. संखेज्जगुणअब्भहिए वा,
४. असंखेज्जगुणअब्भहिए वा।
(४) ठिईए-तिट्ठाण वडिए[२]–
१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए–

जइ हीणे–
१. असंखेज्जभागहीणे वा, २. संखेज्जभागहीणे वा, ३. संखेज्जगुणहीणे वा।
अह अब्भहिए–
१. असंखेज्जभागअब्भहिए वा,
२. संखेज्जभागअब्भहिए वा,
३. संखेज्जगुणअब्भहिए वा।
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फास पज्जवेहिं–
(९) मइअण्णाणपज्जवेहिं,
(१०) सुयअण्णाणपज्जवेहिं,
(११) अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

दं. १३. आउकाइयाणं पज्जव पमाणं–

प. आउकाइयाणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त (प्रत्येक के अनन्त पर्याय) कहने चाहिए।

दं. १२. पृथ्वीकायिकों के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा भी तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा,
१. कदाचित् हीन है, २. कदाचित् तुल्य है, ३. कदाचित् अधिक है।
यदि हीन है तो–
१. असंख्यातवें भाग हीन है, २. संख्यातवें भाग हीन है,
३. संख्यातगुण हीन है, ४. असंख्यातगुण हीन है।
यदि अधिक है तो–
१. असंख्यातवें भाग अधिक है
२. संख्यातवें भाग अधिक है,
३. संख्यात गुण अधिक है,
४. असंख्यात गुण अधिक है।
(४) स्थिति की अपेक्षा–त्रिस्थान पतित हैं।
१. कदाचित् हीन है, २. कदाचित् तुल्य है, ३. कदाचित् अधिक है।
यदि हीन है तो–
१. असंख्यातवें भाग हीन है, २. संख्यातवें भाग हीन है, ३. संख्यातगुण हीन है।
यदि अधिक है तो–
१. असंख्यातवें भाग अधिक है,
२. संख्यातवें भाग अधिक है,
३. संख्यातगुण अधिक है।
(५) वर्ण (६) गंध, (७) रस, (८) स्पर्श,
(९) मति-अज्ञान
(१०) श्रुत-अज्ञान एवं
(११) अचक्षुदर्शन पर्यायों की अपेक्षा से (एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से) छः स्थान पतित हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"पृथ्वीकायिकों के अनन्त पर्याय हैं।"

दं. १३. अप्कायिकों के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! अप्कायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

---

१. पृथ्वीकाय से वनस्पतिकाय पर्यन्त ९वां ज्ञान स्थान नहीं है। अतः इनमें दस स्थान हैं।
२. त्रिस्थानपतित का सर्वत्र यह अर्थ जानना चाहिए।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

"आउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा! आउकाइए आउकाइयस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,

(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,

(४) ठिईए-तिट्ठाणवडिए,

(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फास, (९) मइअण्णाण, (१०) सुयअण्णाण, (११) अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–

"आउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

प्र. भंते! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"अप्कायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं?"

उ. गौतम! एक अप्कायिक दूसरे अप्कायिक से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा (भी) तुल्य है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है,

(४) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थान-पतित है।

(५) वर्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) स्पर्श, (९) मति-अज्ञान, (१०) श्रुत-अज्ञान और (११) अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से छः छः स्थानपतित (हीनाधिक) है।

इस कारण से गौतम! ऐसा कहा है कि–

"अप्कायिकों के अनन्त पर्याय हैं।"

दं. १४. तेउकाइयाणं पज्जवपमाणं–

दं. १४. तेजस्कायिकों के पर्यायों का परिमाण–

प. तेउकाइयाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

"तेउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा! तेउकाइए तेउकाइयस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,

(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,

(४) ठिईए तिट्ठाणवडिए,

(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फास, (९) मइअण्णाण, (१०) सुयअण्णाण, (११) अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–

"तेउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

प्र. भंते! तेजस्कायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"तेजस्कायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं?"

उ. गौतम! एक तेजस्कायिक दूसरे तेजस्कायिक से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा (भी) तुल्य है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है।

(४) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) है,

(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श, (९) मति-अज्ञान, (१०) श्रुत-अज्ञान और (११) अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से छः छः स्थानपतित (हीनाधिक) है।

इस कारण से गौतम! ऐसा कहा जाता है कि–

"तेजस्कायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं।"

दं. १५. वाउकाइयाणं पज्जवपमाणं–

दं. १५. वायुकायिकों के पर्यायों का परिमाण–

प. वाउकाइयाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! वाउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

"वाउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा! वाउकाइए वाउकाइयस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,

(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,

(४) ठिईए तिट्ठाणवडिए,

(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फास, (९) मइअण्णाण, (१०) सुयअण्णाण, (११) अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–

प्र. भंते! वायुकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"वायुकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं?"

उ. गौतम! एक वायुकायिक दूसरे वायुकायिक से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित (हीनाधिक) है।

(४) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) है,

(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श, (९) मति-अज्ञान, (१०) श्रुत-अज्ञान और (११) अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से छः छः स्थानपतित (हीनाधिक) है।

इस कारण से गौतम! ऐसा कहा जाता है कि–

"वाउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

दं. १६. वणस्सइकाइयाणं पज्जवपमाणं-

प. वणस्सइकाइयाणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-

"वणस्सइकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! वणस्सइकाइए वणस्सइकाइयस्स-

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,

(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,

(४) ठिईए तिट्ठाणवडिए,

(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फास, (९) मइअण्णाण (१०) सुयअण्णाण, (११) अचक्खु-दंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-

"वणस्सइकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

दं. १७-१९. विगलिंदियाईणं पज्जवपमाणं-

प. बेइंदियाणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-

"बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! बेइंदिए बेइंदियस्स-

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,

(३) ओगाहणट्ठयाए-१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए-

जइ हीणे-

१. असंखेज्जइभागहीणे वा, २. संखेज्जइभागहीणे वा,

३. संखेज्जगुणहीणे वा, ४. असंखेज्जगुणहीणे वा।

अह अब्भहिए-

१. असंखेज्जभागमब्भहिए वा,

२. संखेज्जभागमब्भहिए वा,

३. संखेज्जगुणमब्भहिए वा,

४. असंखेज्जगुणमब्भहिए वा।

(४) ठिईए तिट्ठाणवडिए।

(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फास, (९) आभिणिबोहियणाण, (१०) सुयणाण (११) मइअण्णाण, (१२) सुयअण्णाण, (१३) अचक्खुदंसण-पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

"वायुकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं।"

दं. १६. वनस्पतिकायिकों के पर्यायों का परिमाण-

प्र. भंते ! वनस्पतिकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-

'वनस्पतिकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं ?'

उ. गौतम ! एक वनस्पतिकायिक दूसरे वनस्पतिकायिक से,

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा (भी) तुल्य है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,

(४) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है।

(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श, (९) मति-अज्ञान (१०) श्रुत-अज्ञान और (११) अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से छः छः स्थान-पतित (हीनाधिक) है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-

'वनस्पतिकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं।'

दं. १७-१९. बेन्द्रिय आदि के पर्यायों का परिमाण-

प्र. भंते ! द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण ऐसा कहा जाता है कि-

"द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! एक द्वीन्द्रिय जीव दूसरे द्वीन्द्रिय जीव से-

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा -१. कदाचित् हीन है, २. कदाचित् तुल्य है, ३. कदाचित् अधिक है।

यदि हीन है तो-

१. असंख्यातवें भाग हीन है, २. संख्यातवें भाग हीन है,

३. संख्यातगुण हीन है, ४. असंख्यातगुण हीन है।

यदि अधिक है तो-

१. असंख्यातवें भाग अधिक है,

२. संख्यातवें भाग अधिक है,

३. संख्यातगुण अधिक है,

४. असंख्यातगुण अधिक है।

(४) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थान पतित (हीनाधिक) है,

(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श, (९) आभिनिबोधिक ज्ञान, (१०) श्रुत-ज्ञान, (११) मति-अज्ञान, (१२) श्रुत अज्ञान और (१३) अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा छः छः स्थानपतित (हीनाधिक) है।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं तेइंदिया वि।

एवं चउरिंदिया वि।

णवरं–दो दंसणा–१. चक्खुदंसणं, २. अचक्खुदंसणं च।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय हैं।"

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीवों के पर्यायों के लिए जानना चाहिए।

इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों के पर्यायों के लिए जानना चाहिए।

विशेष–उनमें १. चक्षुदर्शन और २. अचक्षुदर्शन ये दो दर्शन भी होते हैं।

दं. २०. पंचेंदिय–तिरिक्खजोणियाणं पज्जवपमाणं–

पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं पज्जवा–

जहा नेरइयाणं तहा भाणियव्वा।

दं. २०. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के पर्यायों का परिमाण–

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों के पर्यायों का कथन नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

दं. २१. मणुस्साणं पज्जवपमाणं–

प. मणुस्साणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! मणुस्से मणुस्सस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,

(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,

(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,

(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फास, (९) आभिणिबोहियणाण-सुयणाण-ओहिणाण-मणपज्जवणाणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

केवलणाणपज्जवेहिं तुल्ले,

(१०) तिहिं अण्णाणपज्जवेहिं,

(११) तिहिं दंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,

केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

दं. २१. मनुष्यों के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्तपर्याय कहे गये हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं ?

उ. गौतम ! एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा भी तुल्य है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(४) स्थिति की अपेक्षा भी चतुःस्थानपतित है,

(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श, (९) आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान एवं मनःपर्यवज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,

(१०) तीन अज्ञान तथा

(११) तीन दर्शन (के पर्यायो) की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,

केवलदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा तुल्य है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं।"

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं पज्जवपमाणं–

वाणमंतरा (३) ओगाहणट्ठयाए (४) ठिईए य चउट्ठाणवडिए,

५.-११. वण्णादीहिं छट्ठाणवडिए।

जोइसिया-वेमाणिया वि एवं चेव।

णवरं–ठिईए–[illegible]

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर-ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के पर्यायों का परिमाण–

वाणव्यन्तर देव (३) [illegible] और (४) [illegible] चतुःस्थानपतित हैं।

(५-११) वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा [illegible] हैं।

ज्योतिष्क और वैमानिक देवों (के पर्यायों) की (हीनाधिकता) भी इसी प्रकार जाननी चाहिए।

विशेष–[illegible]

अवसेसेहिं वण्णाइउवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए।

अवशिष्ट वर्ण आदि तथा अन्तिम चार स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–

"जहण्णगुणकालयाणं संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य गुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

एवं उक्कोसगुणकालए वि,

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कहने चाहिए।

अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव,

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

प. जहण्णगुणकालयाणं भंते! असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

"जहण्णगुणकालयाणं असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा! जहण्णगुणकालए असंखेज्जपदेसिए खंधे जहण्णगुणकालयस्स असंखेज्जपदेसियस्स खंधस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले,

अवसेसेहिं वण्णाइ उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–

"जहण्णगुणकालयाणं असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसगुणकालए वि।

अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव,

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

प्र. भंते ! जघन्यगुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य गुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्यगुण काला असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,
(५-८) कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,

शेष वर्ण आदि तथा अन्तिम चार स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्यगुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों का कथन है।

इसी प्रकार अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय भी कहने चाहिए।

विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

प. जहण्णगुणकालयाणं भंते ! अणंतपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

"जहण्णगुणकालयाणं अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा! जहण्णगुणकालए अणंतपदेसिए खंधे जहण्णगुणकालयस्स अणंतपदेसियस्स खंधस्स–

प्र. भंते ! जघन्यगुण काले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्यगुण काला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले,
अवसेसेहिं वण्णाइअट्ठफासेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकालयाणं अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं उक्कोसगुणकालए वि।

अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव,

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।
एवं नील-लोहिय-हालिद्द-सुक्किल्ल-सुब्भिगंध-दुब्भिगंध-तित्त-कडु-कसाय-अंबिल-महुररसपज्जवेहि य वत्तव्वया भाणियव्वा।
णवरं–परमाणुपोग्गलस्स-सुब्भिगंधस्स दुब्भिगंधो न भण्णइ,
दुब्भिगंधस्स सुब्भिगंधो न भण्णइ,
तित्तस्स अवसेसा न भण्णइ,
एवं कडुयाईण वि,
सेसं तं चेव।

प. जहण्णगुणकक्खडाणं भंते! अणंतपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?
उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।
प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकक्खडाणं अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"
उ. गोयमा! जहण्णगुणकक्खडे अणंतपदेसिए खंधे जहण्णगुणकक्खडस्स अणंतपदेसियस्स खंधस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) वण्ण-गंध-रसेहिं छट्ठाणवडिए,
कक्खडफासपज्जवेहिं तुल्ले,
अवसेसेहिं सत्तफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकक्खडाणं अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं उक्कोसगुणकक्खडे वि।

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५-८) कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,
अवशिष्ट वर्ण आदि एवं आठ स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"
इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कहने चाहिए।
इसी प्रकार अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों का कथन करना चाहिए।
विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।
इसी प्रकार नील, रक्त, हारिद्र (पीत), शुक्ल, सुगन्ध, दुर्गन्ध, तिक्त (तीखा), कटु, कषाय, अम्ल (खट्टा), मधुर रस के पर्यायों का कथन करना चाहिए।
विशेष–सुगन्ध वाले परमाणुपुद्गल में दुर्गन्ध नहीं कहें,
दुर्गन्ध वाले परमाणुपुद्गल में सुगन्ध नहीं कहें।
तिक्त (तीखे) रस वाले में शेष रसों का कथन नहीं करें।
कटु आदि रसों के लिए इसी प्रकार जानना चाहिए।
शेष कथन पूर्ववत् है।

प्र. भंते ! जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ?"
उ. गौतम ! एक जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५-८) वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
कर्कश स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।
अवशिष्ट सात स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुणकर्कश अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"
इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण कर्कश (अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय जानने चाहिए।)

अजहण्णमणुक्कोसगुणकक्खडे वि एवं चेव,

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

एवं मउय-गुरुय-लहुए वि भाणियव्वे।

प. जहण्णगुणसीयाणं भंते! परमाणुपोग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणसीयाणं परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा! जहण्णगुणसीए परमाणुपोग्गले जहण्णगुणसीयस्स परमाणुपोग्गलस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) वण्ण-गंध-रसेहिं छट्ठाणवडिए
सीयफासपज्जेवहि य तुल्ले,
उसिणफासो न भण्णइ,
निद्धलुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणसीयाणं परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसगुणसीए वि।

अजहण्णमणुक्कोसगुणसीए वि एवं चेव,

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

प. जहण्णगुणसीयाणं भंते! दुपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणसीयाणं दुपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा! जहण्णगुणसीए दुपदेसिए खंधे जहण्णगुणसीयस्स दुपदेसियस्स खंधस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए–१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए।

अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण कर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार मृदु, गुरु (भारी) और लघु (हल्के) स्पर्श वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय भी कहने चाहिए।

प्र. भंते ! जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गल से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५–८) वर्ण, गन्ध और रसों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
शीतस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।
इसमें उष्णस्पर्श का कथन नहीं करना चाहिए।
स्निग्ध और रूक्षस्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुणशीत (परमाणुपुद्गलों) के पर्याय कहने चाहिए।

अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण शीत (परमाणुपुद्गलों) के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

प्र. भंते ! जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशिक स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशी स्कन्ध से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा–१. कदाचित् हीन, २. कदाचित् तुल्य, और ३. कदाचित् अधिक है।

जइ हीणे–पदेसहीणे,
अह अब्भहिए–पदेसअब्भहिए।
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) वण्ण-गंध-रसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,

सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले,
उसिणनिद्धलुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणसीयाणं दुपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसगुणसीए वि,

अजहण्णमणुक्कोसगुणसीए वि एवं चेव,

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।
एवं जाव दसपदेसिए,
णवरं–ओगाहणट्ठयाए पदेसपरिवुड्ढी कायव्वा जाव दसपदेसियस्स नव पदेसा वुड्ढिज्जंति।

यदि हीन है तो–एक प्रदेश हीन है,
यदि अधिक है तो–एक प्रदेश अधिक है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५–८) वर्ण, गन्ध और रस के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,

शीत स्पर्श पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।
उष्ण, स्निग्ध तथा रुक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य गुण शीत द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण शीत द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय जानने चाहिए।

अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों का कथन भी इसी प्रकार है।
विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।
इसी प्रकार दशप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त पर्याय कहने चाहिए।
विशेष–अवगाहना की अपेक्षा उत्तरोत्तर प्रदेश की वृद्धि करनी चाहिए यावत् दशप्रदेश पर्यन्त यह वृद्धि नौ प्रदेशों की होती है।

प. जहण्णगुणसीयाणं भंते! संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?
उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।
प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणसीयाणं संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"
उ. गोयमा! जहण्णगुणसीए संखेज्जपदेसिए खंधे जहण्णगुणसीयस्स संखेज्जपदेसियस्स खंधस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) वण्णाईहिं छट्ठाणवडिए,
सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले,
उसिणनिद्धलुक्खेहिं छट्ठाणवडिए

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुण सीयाणं संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं उक्कोसगुणसीए वि।

प्र. भंते ! जघन्यगुणशीत संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?
उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुणशीत संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"
उ. गौतम ! एक जघन्यगुणशीत संख्यात प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है।
(२) प्रदेशों की अपेक्षा द्विस्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा द्विस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५–८) वर्णादि की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
शीतस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,
उष्ण, स्निग्ध एवं रुक्ष स्पर्श की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुण शीत संख्यातप्रदेशों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"
इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण शीत संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कहने चाहिए।

अजहण्णमणुक्कोसगुणसीए वि एवं चेव,

णवरं-सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

प. जहण्णगुणसीयाणं भंते! असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-

"जहण्णगुणसीयाणं असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा! जहण्णगुणसीए असंखेज्जपदेसिए खंधे जहण्णगुणसीयस्स असंखेज्जपदेसियस्स खंधस्स-

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,

(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,

(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,

(५-८) वण्णाइपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,

सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले,

उसिण-निद्ध-लुक्ख-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-

"जहण्णगुणसीयाणं असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसगुणसीए वि।

अजहण्णमणुक्कोसगुणसीए वि एवं चेव,

णवरं-सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

प. जहण्णगुणसीयाणं भंते! अणंतपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-

"जहण्णगुणसीयाणं अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा! जहण्णगुणसीए अणंतपदेसिए खंधे जहण्णगुणसीयस्स अणंतपदेसियस्स खंधस्स-

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,

(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,

(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,

(५-८) वण्णाइपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,

सीयफासपज्जवेहिं तुल्ले,

अवसेसेहिं सत्तफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण शीत संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों का कथन भी इसी प्रकार है।

विशेष-स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

प्र. भंते ! जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-

"जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध से-

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा चतुस्थानपतित है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(५-८) वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,

शीत स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,

उष्ण, स्निग्ध एवं रुक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-

"जघन्यगुण शीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कहने चाहिए।

अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुणशीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों का कथन भी इसी प्रकार है।

विशेष-स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

प्र. भंते ! जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-

"जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्यगुणशीत अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य गुण शीत अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से-

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(५-८) वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,

शीतस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,

शेष सात स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–

"जहण्णगुणसीयाणं अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसगुणसीए वि।

अजहण्णमणुक्कोसगुणसीए वि एवं चेव,

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

एवं उसिणनिद्धलुक्खे जहा सीए।

परमाणुपोग्गलस्स तहेव पडिवक्खो सव्वेसिं न भण्णइ त्ति भाणियव्वं।

–पण्ण. प. ५, सु. ५३८-५५३

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य गुण शीत अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुणशीत अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कहने चाहिए।

अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों का कथन भी इसी प्रकार है।

विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

जिस प्रकार शीतस्पर्श-स्कन्धों के पर्याय कहे उसी प्रकार उष्ण स्निग्ध और रुक्ष स्पर्शों के पर्याय भी कहने चाहिए।

इसी प्रकार परमाणुपुद्गल में इन सभी का प्रतिपक्ष नहीं कहा जाता है यह कहना चाहिए।

१६. जहण्णाइपदेसियाणं खंधाणं पज्जव पमाणं–

प. जहण्णपदेसियाणं भंते! खंधाणं केवइया पज्जवा-पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

"जहण्णपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा! जहण्णपदेसिए खंधे जहण्णपदेसियस्स खंधस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले।

(३) ओगाहणट्ठयाए–१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए।

जइ हीणे–पदेसहीणे,

अह अब्भहिए–पदेसअब्भहिए।

(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,

(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस,

(८) उवरिल्लचउफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–

"जहण्णपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

प. उक्कोसपदेसियाणं भंते! खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

"उक्कोसपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा! उक्कोसपदेसिए खंधे उक्कोसपदेसियस्स खंधस्स–

१६. जघन्यादि प्रदेश वाले स्कन्धों के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! जघन्यप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्यप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्यप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य प्रदेशी स्कन्ध से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है।

(३) अवगाहना की अपेक्षा–१. कदाचित् हीन है, २. कदाचित् तुल्य है, ३. कदाचित् अधिक है।

यदि हीन है तो–एक प्रदेश हीन है

यदि अधिक है तो–एक प्रदेश अधिक है।

(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस तथा

(८) अन्तिम चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थान-पतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

प्र. भंते ! उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम ! एक उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्ध से–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले।
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) वण्णाइ अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–
"उक्कोसपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

प. अजहण्णमणुक्कोसपदेसियाणं भंते! खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?
उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।
प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–
"अजहण्णमणुक्कोसपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"
उ. गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसपदेसिए खंधे अजहण्णमणुक्कोसपदेसियस्स खंधस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) वण्णाइअट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–
"अजहण्णमणुक्कोसपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

–पण्ण. प. ५, सु. ५५४

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,
(५-८) वर्णादि तथा आठ स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

प्र. भंते ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) प्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?
उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"
उ. गौतम ! एक मध्यमप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे मध्यमप्रदेशी स्कन्ध से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,
(५-८) वर्णादि तथा आठ स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

१७. जहण्णाइओगाहणगाणं पोग्गलाणं पज्जव पमाणं–

प. जहण्णोगाहणगाणं भंते! पोग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?
उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।
प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–
"जहण्णोगाहणगाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"
उ. गोयमा! जहण्णोगाहणए पोग्गले जहण्णोगाहणगस्स पोग्गलस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,
(३) *ओगाहणट्ठयाए तुल्ले,*
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) वण्णाइ उवरिल्लफासेहि य छट्ठाणवडिए।

१७. जघन्यादि अवगाहना वाले पुद्गलों के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! जघन्य अवगाहना वाले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?
उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य अवगाहना वाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"
उ. गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला पुद्गल, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पुद्गल से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(३) *अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है,*
(४) स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,
(५-८) वर्णादि और अन्तिम (चार) स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–

"जहण्णोगाहणगाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव,

णवरं–ठिईए तुल्ले।

प. अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं भंते! पोग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

"अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए पोग्गले अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगस्स पोग्गलस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) वण्णाइअट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–

"अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

–पण्ण. प. ५, सु. ५५५

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य अवगाहना वाले पुद्‌गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

उत्कृष्ट अवगाहना वाले पुद्‌गलों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

विशेष–स्थिति की अपेक्षा तुल्य है।

प्र. भंते ! अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले पुद्‌गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले पुद्‌गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम ! एक मध्यम अवगाहना वाला पुद्‌गल, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले पुद्‌गल से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है.
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५-८) वर्णादि तथा आठ स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले पुद्‌गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

१८. जहण्णाइठिईयाणं पोग्गलाणं पज्जव पमाणं–

प. जहण्णठिईयाणं भंते! पोग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

"जहण्णठिईयाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा! जहण्णठिईए पोग्गले जहण्णठिईयस्स पोग्गलस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए तुल्ले,
(५-८) वण्णाइ अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–

"जहण्णठिईयाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसठिईए वि।

१८. जघन्यादि स्थिति वाले पुद्‌गलों के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! जघन्य स्थिति वाले पुद्‌गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य स्थिति वाले पुद्‌गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला पुद्‌गल, दूसरे जघन्य स्थिति वाले पुद्‌गल से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा तुल्य है,
(५-८) वर्णादि तथा आठ स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य स्थिति वाले पुद्‌गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले पुद्‌गलों के पर्याय भी कहने चाहिए।

अजहण्णमणुक्कोसठिईए वि एवं चेव,

णवरं–ठिईए चउट्ठाणवडिए।

–पण्ण. प. ५, सु. ५५६

१९. जहण्णाइगुणवण्ण-गंध-रस-फासयाणं पोग्गलाणं पज्जव पमाणं–

प. जहण्णगुणकालयाणं भंते! पोग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

"जहण्णगुणकालयाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा! जहण्णगुणकालए पोग्गले जहण्णगुणकालयस्स पोग्गलस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले,

अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाण-वडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–

"जहण्णगुणकालयाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसगुणकालए वि।

अजहण्णमणुकोसगुणकालए वि एवं चेव,

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

एवं जहा कालवण्णपज्जवाणं वत्तव्वया भणिया तहा सेसाण वि वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवाणं वत्तव्वया भाणियव्वा जाव अजहण्णमणुक्कोसलुक्खे सट्ठाण छट्ठाणवडिए।

सेत्तं रूविअजीवपज्जवा।

सेत्तं अजीव पज्जवा।

–पण्ण. प. ५, सु. ५५७-५५८

□

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले पुद्गलों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

विशेष–स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है।

१९. जघन्यादिगुण वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श वाले पुद्गलों के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते! जघन्यगुण काले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्यगुण काले पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम! एक जघन्यगुण काला पुद्गल, दूसरे जघन्यगुण काले पुद्गल से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५-८) कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,

शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्यगुण काले पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण काले पुद्गलों के पर्याय कहने चाहिए।

अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले पुद्गलों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

जिस प्रकार कृष्णवर्ण के पर्याय कहे उसी प्रकार शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्याय भी कहने चाहिए यावत् अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण रूक्षस्पर्श पर्याय स्वस्थान में षट्स्थानपतित है यहाँ तक कहना चाहिए।

यह रूपी-अजीव-पर्यायों का कथन है।

इस प्रकार यह अजीव पर्यायों का वर्णन भी पूर्ण हुआ।

□

परिणाम अध्ययन : आमुख

जीव एवं अजीव द्रव्यों की विभिन्न अवस्थाओं या पर्यायों में परिणमन को परिणाम कहते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में जीव के गति, इन्द्रिय, कषाय, लेश्या, योग, उपयोग, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वेद इन दस परिणामों का तथा अजीव के बंधन, गति, संस्थान, भेद, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु और शब्द सहित दस परिणामों का वर्णन है।

प्रज्ञापना सूत्र में जीवादि तत्वों की विभिन्न द्वारों से व्याख्या करने की शैली है जिससे उस तत्व के सन्दर्भ में सहज रूप से सूक्ष्म एवं गूढ ज्ञान प्राप्त हो जाता है। परिणाम अध्ययन भी प्रज्ञापना सूत्र का ही एक अंश है। इसमें जीव एवं अजीव के विभिन्न पक्षों को उपर्युक्त दस-दस द्वारों से समझाया गया है।

जीव के जिन दस परिणामों का कथन है वह प्रायः संसारी जीवों की अपेक्षा से है। इन परिणामों के भेदों का वर्णन करते हुए प्रस्तुत अध्ययन में इन्हें २४ दण्डकों में घटित किया गया है। मनुष्य का दण्डक ही एक ऐसा दण्डक है जिसमें केवली की अपेक्षा मनुष्य को अनिन्द्रिय, अकषायी, अलेश्यी, अयोगी और अवेदी भी कहा गया है। सिद्धों की अपेक्षा से वर्णन नहीं है।

अजीव के वन्धन आदि दस परिणाम प्रायः पुद्‌गल द्रव्य की अपेक्षा से है। इन परिणामों के भेदों का भी यहां वर्णन किया गया है किन्तु इन्हें धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल द्रव्यों में घटित करने का उपक्रम नहीं किया गया। पुद्‌गल को छोड़कर सभी अजीव द्रव्य वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एवं शब्द से रहित हैं, अगुरुलघु परिणाम भी उनमें पाया जाता है। इस प्रकार पुद्‌गल से भिन्न धर्मादि द्रव्यों में भी वर्णादि कुछ द्वार घटित किए जा सकते हैं।

□

४. परिणामऽज्झयणं

सूत्र

१. परिणाम भेया–

प. कइविहे णं भंते ! परिणामे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे परिणामे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जीवपरिणामे य, २. अजीवपरिणामे य।

–पण्ण. प. १३, सु. ९२५

२. जीव परिणाम भेयप्पभेय परूवणं–

प. जीवपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दसविहे पन्नत्ते, तं जहा–

१. गइपरिणामे, २. इंदियपरिणामे,
३. कसायपरिणामे, ४. लेस्सापरिणामे,
५. जोगपरिणामे, ६. उवओगपरिणामे,
७. णाणपरिणामे, ८. दंसणपरिणामे,
९. चरित्तपरिणामे, १०. वेयपरिणामे।[1]

प. १. गइपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउव्विहे पन्नत्ते, तं जहा–

१. निरयगइपरिणामे, २. तिरियगइपरिणामे,
३. मणुयगइपरिणामे, ४. देवगइपरिणामे।

प. २. इंदियपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सोइंदियपरिणामे, २. चक्खिंदियपरिणामे,
३. घाणिंदियपरिणामे, ४. जिब्भिंदियपरिणामे,
५. फासिंदियपरिणामे।

प. ३. कसायपरिणामे, णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कोहकसायपरिणामे, २. माणकसायपरिणामे,
३. मायाकसायपरिणामे, ४. लोभकसायपरिणामे।

प. ४. लेस्सापरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कण्हलेसापरिणामे, २. नीललेसापरिणामे,
३. काउलेसापरिणामे, ४. तेउलेसापरिणामे,
५. पम्हलेसापरिणामे, ६. सुक्कलेसापरिणामे।

प. ५. जोगपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणजोगपरिणामे, २. वइजोगपरिणामे,
३. कायजोगपरिणामे।

४. परिणाम - अध्ययन

सूत्र

१. परिणाम के भेद–

प्र. भंते ! परिणाम कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! परिणाम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. जीव-परिणाम, २. अजीव परिणाम।

२. जीव-परिणाम के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जीव परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (जीवपरिणाम) दस प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. गतिपरिणाम, २. इन्द्रियपरिणाम,
३. कषायपरिणाम, ४. लेश्यापरिणाम,
५. योगपरिणाम, ६. उपयोगपरिणाम,
७. ज्ञानपरिणाम, ८. दर्शनपरिणाम,
९. चारित्रपरिणाम, १०. वेदपरिणाम।

प्र. १. भंते ! गतिपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (गतिपरिणाम) चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. निरयगतिपरिणाम, २. तिर्यग्गतिपरिणाम,
३. मनुष्यगतिपरिणाम, ४. देवगतिपरिणाम,

प्र. २. भंते ! इन्द्रियपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रियपरिणाम, २. चक्षुरिन्द्रियपरिणाम,
३. घ्राणेन्द्रियपरिणाम, ४. जिह्वेन्द्रियपरिणाम,
५. स्पर्शेन्द्रियपरिणाम।

प्र. ३. भंते ! कषायपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! कषायपरिणाम चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. क्रोधकषायपरिणाम, २. मानकषायपरिणाम,
३. मायाकषायपरिणाम, ४. लोभकषायपरिणाम।

प्र. ४. भंते ! लेश्यापरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (लेश्यापरिणाम) छह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कृष्णलेश्यापरिणाम, २. नीललेश्यापरिणाम,
३. कापोतलेश्यापरिणाम, ४. तेजोलेश्यापरिणाम,
५. पद्मलेश्यापरिणाम, ६. शुक्ललेश्यापरिणाम।

प्र. ५. भंते ! योगपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (योगपरिणाम) तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मनोयोगपरिणाम, २. वचनयोगपरिणाम,
३. काययोगपरिणाम।

---

१. ठाणं. अ. १०, सु. ७१३/१

प. ६. उवओगपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सागारोवओगपरिणामे,

२. अणागारोवओगपरिणामे।

प. ७. क. णाणपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आभिणिवोहियणाणपरिणामे,

२. सुयणाणपरिणामे,

३. ओहिणाणपरिणामे,

४. मणपज्जवणाणपरिणामे,

५. केवलणाणपरिणामे।

प. ७. ख. अण्णाणपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मइअण्णाणपरिणामे, २. सुयअण्णाणपरिणामे,

३. विभंगणाणपरिणामे।

प. ८. दंसणपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सम्मद्दंसणपरिणामे, २. मिच्छादंसणपरिणामे,

३. सम्मामिच्छादंसणपरिणामे।

प. ९. चरित्तपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सामाइयचरित्तपरिणामे,

२. छेदोवट्ठावणियचरित्तपरिणामे,

३. परिहारविसुद्धियचरित्तपरिणामे,

४. सुहुमसंपरायचरित्तपरिणामे,

५. अहक्खायचरित्तपरिणामे।

प. १०. वेयपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. इत्थिवेयपरिणामे, २. पुरिसवेयपरिणामे,

३. णपुंसगवेयपरिणामे।

–पण्ण. प. १३, सु. ९२६-९३७

प्र. ६. भंते ! उपयोगपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (उपयोगपरिणाम) दो प्रकार का कहा है, यथा–

१. साकारोपयोगपरिणाम,

२. अनाकारोपयोगपरिणाम।

प्र. ७. क. भंते ! ज्ञानपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (ज्ञानपरिणाम) पांच प्रकार का कहा गया है यथा–

१. आभिनिवोधिकज्ञानपरिणा,

२. श्रुतज्ञानपरिणाम,

३. अवधिज्ञानपरिणाम,

४. मनःपर्यवज्ञानपरिणाम,

५. केवलज्ञानपरिणाम।

प्र. ७. ख. भंते ! अज्ञानपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (अज्ञानपरिणाम) तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मति-अज्ञानपरिणाम, २. श्रुत-अज्ञानपरिणाम,

३. विभंगज्ञानपरिणाम।

प्र. ८. भंते ! दर्शनपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (दर्शनपरिणाम) तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सम्यग्दर्शनपरिणाम, २. मिथ्यादर्शनपरिणाम,

३. सम्यग्मिथ्यादर्शनपरिणाम।

प्र. ९. भंते ! चारित्रपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (चारित्रपरिणाम) पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सामायिकचारित्रपरिणाम,

२. छेदोपस्थापनीयचारित्रपरिणाम,

३. परिहारविशुद्धिचारित्रपरिणाम,

४. सूक्ष्मसम्परायचारित्रपरिणाम,

५. यथाख्यातचारित्रपरिणाम।

प्र. १०. भंते ! वेदपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (वेदपरिणाम) तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. स्त्रीवेदपरिणाम, २. पुरुषवेदपरिणाम,

३. नपुंसकवेदपरिणाम।

[गति आदि) (१० जीव) परिणामों के अवान्तर भेद कुल ४३ हैं।]

३. चउवीसदंडएसु जीव परिणाम भेय परूवणं–

दं. १. १. नेरइया–गइपरिणामेणं निरयगइया,

२. इंदियपरिणामेणं–पंचेंदिया,

३. कसायपरिणामेणं-कोहकसाई वि जाव लोभकसाई वि,

४. लेस्सापरिणामेणं-कण्हलेस्सा वि, नीललेस्सा वि, काउलेस्सा वि.

५. जोगपरिणामेणं-मणजोगी वि, वइजोगी वि, कायजोगी वि,

६. उवओगपरिणामेणं-सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि,

३. चौवीस दंडकों में जीव परिणाम के भेदों का प्ररूपण–

दं. १. १. नैरयिक जीव गति-परिणाम से नरकगति वाले हैं,

२. इन्द्रियपरिणाम से पंचेन्द्रिय हैं,

३. कषाय-परिणाम से क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी हैं,

४. लेश्या-परिणाम से कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी और कापोतलेश्यी हैं,

५. योग-परिणाम से मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी हैं,

६. उपयोग-परिणाम से साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त हैं।

७. (क) णाणपरिणामेणं–आभिणिबोहियणाणी वि, सुयणाणी वि, ओहिणाणी वि,

७. (ख) अण्णाणपरिणामेणं–मइ अण्णाणी वि, सुय अण्णाणी वि, विभंगणाणी वि,

८. दंसणपरिणामेणं-सम्मदि्दट्ठी वि, मिच्छदि्दट्ठी वि, सम्मामिच्छदि्दट्ठी वि,

९. चरित्तपरिणामेणं - नो चरित्ती, नो चरित्ताचरित्ती, अचरित्ती,

१०. वेदपरिणामेणं–नो इत्थिवेयगा, नो पुरिसवेयगा, णपुंसगवेयगा।

दं. २-११ असुरकुमारा वि एवं चेव,

१. णवरं–गइपरिणामेणं-देवगइया,

४. लेस्सा परिणामेणं- कण्हलेस्सा वि जाव तेउलेस्सा वि,

१०. वेद परिणामेणं - इत्थि वेयगा वि, पुरिस वेयगा वि, नो नपुंसगवेयगा,

सेसं तं चेव

एवं जाव थणियकुमारा।

दं. १२-१६. पुढविकाइया

१. गइपरिणामेणं-तिरियगइया,

२. इंदियपरिणामेणं-एगिंदिया,

३. कसायपरिणामेणं-जहा नेरइयाणं,

४. लेस्सा परिणामेणं कण्हलेस्सा वि जाव तेउलेस्सा वि,

५. जोगपरिणामेणं-कायजोगी,

६. उवओग परिणामेणं-जहा नेरइयाणं,

७. (क) नाण परिणामो नत्थि,

(ख) अण्णाणपरिणामेणं-मइ अण्णाणी वि, सुय अण्णाणी वि,

८. दंसणपरिणामेणं-मिच्छदि्दट्ठी,

९. चरित्तपरिणामेणं-अचरित्ती,

१०. वेदपरिणामेणं -नपुंसगवेयगा,

एवं आउ-वणस्सइकाइया वि,

तेऊ-वाऊ एवं चेव

णवरं–लेस्सा परिणामेणं, जहा नेरइया

दं. १७-१९ बेइंदिया

१. गइ परिणामेणं तिरियगइया,

२. इंदिय परिणामेणं-बेइंदिया,

३. कसाय-परिणामेणं जहा नेरइयाणं,

४. लेस्सा-परिणामेणं जहा नेरइयाणं,

५. जोगपरिणामेणं-वइजोगी वि, कायजोगी वि,

६. उवओगपरिणामेणं-जहा नेरइयाणं,

---

७. (क) ज्ञानपरिणाम से आभिनिबोधिक (मति) ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी हैं,

७. (ख) अज्ञानपरिणाम से मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभंगज्ञानी हैं,

८. दर्शन-परिणाम से सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि है,

९. चारित्रपरिणाम से चारित्री और चारित्राचारित्री नहीं हैं, किन्तु अचारित्री हैं,

१०. वेद-परिणाम से (नारकजीव) स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी नहीं हैं किन्तु नपुंसकवेदी हैं।

दं. २-११ असुरकुमारों का कथन (२, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९) भी इसी प्रकार है

१. विशेष–वे गतिपरिणाम से देवगति वाले हैं,

४. लेश्यापरिणाम से कृष्णलेश्यी यावत् तेजोलेश्यी हैं,

१०. वेदपरिणाम से स्त्रीवेदी और पुरूषवेदी हैं, किन्तु नपुंसकवेदी नहीं हैं।

शेष (परिणामों का कथन) पूर्ववत् (नैरयिकों के समान) है।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

द. १२.१६. पृथ्वीकायिकजीव

१. गतिपरिणाम से तिर्यञ्चगति वाले हैं,

२. इन्द्रियपरिणाम से एकेन्द्रिय हैं,

३. कषायमय परिणाम से नैरयिकों के समान हैं।

४. लेश्यापरिणाम से कृष्णलेश्यी यावत् तेजोलेश्यी हैं।

५. योगपरिणाम से काययोगी हैं।

६. उपयोग परिणाम से नैरयिकों के समान हैं।

७. (क) ज्ञानपरिणाम नहीं होता है

(ख) अज्ञानपरिणाम से मति-अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी हैं (किन्तु विभंगज्ञानी नहीं होते)

८. दर्शनपरिणाम से मिथ्यादृष्टि होते हैं,

९. चारित्र परिणाम से ये अचरित्री (पांच चारित्र रहित) होते हैं।

१०. वेद परिणाम से नपुंसकवेदी हैं।

इसी प्रकार अप्कायिकों और वनस्पतिकायिकों के परिणामों का कथन करना चाहिए।

तेजस्कायिकों एवं वायुकायिकों का कथन भी इसी प्रकार है।

विशेष–लेश्यापरिणाम से नैरयिकों के समान (तीन लेश्याएं) हैं।

दं. १७.१९ द्वीन्द्रियजीव

१. गतिपरिणाम से तिर्यञ्चगति वाले हैं,

२. इन्द्रियपरिणाम से दो इन्द्रियों वाले हैं,

३. कषाय परिणाम से नैरयिकों के समान हैं,

४. लेश्या परिणाम से नैरयिकों के समान हैं,

५. योगपरिणाम से वचनयोगी और काययोगी हैं,

६. उपयोग परिणाम से नैरयिकों के समान हैं,

७. (क) णाणपरिणामेणं-आभिणिवोहियणाणी वि, सुयनाणी वि,
(ख) अण्णाणपरिणामेणं-मइ अण्णाणी वि, सुय अण्णाणी वि, नो विभंगनाणी।

८. दंसण परिणामेणं- सम्मद्दिट्ठी वि, मिच्छद्दिट्ठी वि, नो सम्मामिच्छद्दिट्ठी।

९. चरित्तपरिणामेणं-अचरित्ती,

१०. वेदपरिणामेणं-नपुंसगवेयगा,
एवं जाव चउरिंदिया,
णवरं–इंदियपरिवुड्ढी कायव्वा,

दं.२० पंचेंदियतिरिक्खजोणिया

१. गइपरिणामेणं तिरिय गइया,
२. इंदिय, ३. कसाय परिणामेणं जहा नेरइयाणं,
४. लेस्सा परिणामेणं-कण्हलेस्सा वि जाव सुक्कलेस्सा वि,
५. जोग, ६. उवओग, ७. णाण, अण्णाण,
८. दंसण परिणामेणं जहा नेरइयाणं,
९. चरित्त परिणामेणं-नो चरित्ती, अचरित्ती वि, चरित्ताचरित्ती वि,
१०. वेद परिणामेणं-इत्थिवेयगा वि, पुरिसवेयगा वि, नपुंसगवेयगा वि।

दं.२१.१. मणुस्स गइपरिणामेणं-मणुयगइया,
२. इंदियपरिणामेणं-पंचेन्दिया, अणिंदिया वि,
३. कसाय परिणामेणं कोहकसाई वि जाव लोभकसाई वि, अकसाई वि,
४. लेस्सा परिणामेणं-कण्हलेस्सा वि. जाव सुक्कलेस्सा वि, अलेस्सा वि,
५. जोग परिणामेणं-मणजोगी वि, वइजोगी वि, कायजोगी वि, अजोगी वि,
६. उवओगपरिणामेणं-जहा नेरइयाणं,
७. (क) णाणपरिणामेणं-आभिणिवोहियणाणी वि जाव केवलणाणी वि,
(ख) अण्णाणपरिणामेणं -तिण्णि वि अण्णाणा,
८. दंसण परिणामेणं-तिन्नि वि दंसणा,
९. चरित्तपरिणामेणं-चरित्ती वि, अचरित्ती वि, चरित्ताचरित्ती वि,
१०. वेदपरिणामेणं-इत्थिवेयगा वि, पुरिसवेयगा वि, नपुंसगवेयगा वि, अवेयगा वि,

दं.२२ वाणमंतरा जहा असुरकुमारा,

दं.२३ जोइसिया वि,

णवरं–लेस्सापरिणामेणं तेउलेस्सा,
दं.२४ वेमाणिया वि एवं चेव।

७. (क) ज्ञानपरिणाम से आभिनिवोधिक ज्ञानी और श्रुत-ज्ञानी हैं।
(ख) अज्ञानपरिणाम से मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी हैं किन्तु विभंगज्ञानी नहीं हैं।

८. दर्शनपरिणाम से सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि हैं (किन्तु) सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं हैं।

९. चारित्र परिणाम से अचारित्री (पांच चारित्र रहित) हैं।

१०. वेद परिणाम से नपुंसकवेदी हैं।
इसी प्रकार चतुरिन्द्रियजीवों पर्यन्त परिणाम जानना चाहिए।
विशेष–त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय में उत्तरोत्तर एक-एक इन्द्रिय की वृद्धि कर लेनी चाहिए।

दं.२० पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक

१. जीव गतिपरिणाम से तिर्यञ्चगति वाले हैं।
२. इन्द्रिय परिणाम ३. कषाय परिणाम नैरयिकों के समान हैं।
४. लेश्यापरिणाम से कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होते हैं।
५. योग परिणाम ६. उपयोग परिणाम ७. ज्ञान-अज्ञान परिणाम
८. दर्शन परिणाम नैरयिकों के समान हैं।
९. चारित्रपरिणाम से वे (सर्व) चारित्री नहीं होते किन्तु अचारित्री और चारित्राचारित्री (देशचारित्री) होते हैं।
१०. वेदपरिणाम से स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी होते हैं।

दं.२१.१. मनुष्य गतिपरिणाम से मनुष्यगति वाले हैं,
२. इन्द्रियपरिणाम से पंचेन्द्रिय भी हैं और अनिन्द्रिय भी हैं,
३. कषायपरिणाम से क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी हैं तथा अकषायी हैं,
४. लेश्यापरिणाम से कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी हैं तथा अलेश्यी हैं,
५. योगपरिणाम से मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी तथा अयोगी भी हैं।
६. उपयोगपरिणाम से नैरयिकों के समान हैं,
७. (क) ज्ञानपरिणाम से आभिनिबोधिकज्ञानी यावत् केवलज्ञानी हैं।
(ख) अज्ञानपरिणाम से तीनों ही अज्ञान वाले हैं,
८. दर्शनपरिणाम से तीनों ही दर्शन वाले हैं।
९. चारित्रपरिणाम से चारित्री, अचारित्री और चारित्राचारित्री हैं,
१०. वेदपरिणाम से स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी एवं नपुंसकवेदी तथा अवेदी हैं

दं.२२ वाणव्यंतरों के परिणामों का कथन असुरकुमारों के समान है।

दं.२३. इसी प्रकार ज्योतिष्कों के परिणामों का कथन करना चाहिए।

विशेष–लेश्यापरिणाम से सिर्फ तेजोलेश्या वाले हैं।

दं.२४. वैमानिकों के परिणामों का कथन भी इसी प्रकार है।

णवरं-लेस्सा परिणामेणं तेउलेस्सा वि, पम्हलेस्सा वि, सुक्कलेस्सा वि,

सेत्तं जीव परिणामे।

-पण्ण. प. १३, सु. ९३८-९४६

विशेष-लेश्यापरिणाम से तेजोलेश्यी, पद्मलेश्यी और शुक्ललेश्यी हैं।

यह जीव परिणामों की प्ररूपणा है।

४. अजीव परिणामभेयप्पभेय परूवणं-

प. अजीवपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दसविहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. बंधणपरिणामे, २. गइपरिणामे,
३. संठाणपरिणामे, ४. भेदपरिणामे,
५. वण्णपरिणामे, ६. गंधपरिणामे,
७. रसपरिणामे, ८. फासपरिणामे,
९. अगुरुलहुयपरिणामे, १०. सद्दपरिणामे।[1]

प. १. बंधपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. णिद्धबंधपरिणामे य, २. लुक्खबंधपरिणामे य।

गाहाओ-

समणिद्धयाए बंधो न होई, समलुक्खयाए वि न होइ।

वेमायणिद्ध-लुक्खत्तणेण, बंधो उ खंधाणं ॥ १ ॥

णिद्धस्स णिद्धेण दुयाहिएणं, लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिएणं।

णिद्धस्स लुक्खेण उवेइ बंधो, जहण्णवज्जो विसमो समो वा ॥ २ ॥

प. २. गइपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. फुसमाणगइपरिणामे य,
२. अफुसमाणगइपरिणामे य,

अहवा १. दीहगइपरिणामे य, २. हस्सगइ परिणामे य,

प. ३. संठाणपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. परिमंडल संठाणपरिणामे,
२. वट्टसंठाण परिणामे,
३. तंससंठाण परिणामे,
४. चउरंससंठाण परिणामे,
५. आययसंठाण परिणामे।[2]

४. अजीव परिणामों के भेद प्रभेदों का प्ररूपण-

प्र. भंते ! अजीवपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (अजीवपरिणाम) दस प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. वन्धनपरिणाम, २. गतिपरिणाम,
३. संस्थानपरिणाम, ४. भेदपरिणाम,
५. वर्णपरिणाम, ६. गंध परिणाम,
७. रस परिणाम, ८. स्पर्श परिणाम,
९. अगुरुलघु परिणाम, १०. शब्द परिणाम।

प्र. १. भंते ! वन्धनपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (वन्धनपरिणाम) दो प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. स्निग्धवन्धपरिणाम २. रुक्षवन्धपरिणाम।

गाथार्थ-

समान स्निग्ध गुण वालों का वन्ध नहीं होता और समान रुक्ष गुण वालों का भी वन्ध नहीं होता।

विमात्रा (विषम) गुण वाले स्निग्ध और रूक्ष से स्कन्धों का वन्ध होता है।

दो गुण अधिक स्निग्ध के साथ स्निग्ध तथा दो गुण अधिक रुक्ष के साथ रुक्ष का वंध होता है।

इसी प्रकार जघन्य गुण को छोड़कर चाहे वह सम हो या विषम हो स्निग्ध का रुक्ष के साथ वन्ध होता है,

प्र. २. भंते ! गतिपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (गतिपरिणाम) दो प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. स्पृशद्गतिपरिणाम,
२. अस्पृशद्गतिपरिणाम,

अथवा १. दीर्घगतिपरिणाम, २. ह्रस्वगतिपरिणाम।

प्र. ३. भंते ! संस्थानपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (संस्थानपरिणाम) पांच प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. परिमण्डलसंस्थानपरिणाम,
२. वृत्तसंस्थानपरिणाम,
३. त्र्यंशसंस्थानपरिणाम,
४. चतुरश्रसंस्थानपरिणाम,
५. आयतसंस्थानपरिणाम।

---

१. ठाणं अ. १०, सु. ७१३/२

२. (क) एगे वट्टे, एगे तंसे, एगे चउरंसे, एगे पिहुले, एगे परिमंडले, -ठाणं अ. १, सु. ३८

(ख) प. से किं तं संठाणणामे ?

उ. संठाणणामे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. परिमंडलसंठाणणामे जाव ५. आयतसंठाणणामे, सेत्तं संठाणणामे, -अणु. सु. २२४

प. ४. भेयपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. खंडाभेयपरिणामे, २. पयरभेए परिणामे,

३. चुण्णियाभेय परिणामे,

४. अणुतडियाभेय परिणामे,

५. उक्करियाभेयपरिणामे।

प. ५. वण्णपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कालवण्णपरिणामे, २. नीलवण्ण परिणामे,

३. लोहियवण्ण परिणामे, ४. पीयवण्णपरिणामे,

५. सुक्किलवण्णपरिणामे।

प. ६. गंधपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सुब्भिगंधपरिणामे य, २. दुब्भिगंधपरिणामे य।

प. ७. रसपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. तित्तरसपरिणामे जाव ५. महुररसपरिणामे।

प. ८. फासपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णते?

उ. गोयमा ! अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कक्खडफासपरिणामे य जाव ८. लुक्खफासपरिणामे य।

प. ९. अगरुयलहुयपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते।

प. १०. सद्दपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सुब्भिसद्दपरिणामे य,

२. दुब्भिसद्दपरिणामे य।

से त्तं अजीवपरिणामे।

–पण्ण. प. १३, सु. ९४७-९५७



प्र. ४. भंते ! भेदपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! (भेदपरिणाम) पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. खण्डभेदपरिणाम, २. प्रतरभेदपरिणाम,

३. चूर्णिका भेद परिणाम,

४. अनुतटिकाभेदपरिणाम,

५. उत्कटिका भेद परिणाम।

प्र. ५. भंते ! वर्णपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! (वर्णपरिणाम) पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कृष्णवर्णपरिणाम, २. नीलवर्णपरिणाम,

३. रक्तवर्णपरिणाम, ४. पीतवर्णपरिणाम,

५. शुक्ल वर्ण परिणाम।

प्र. ६. भंते ! गन्धपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! (गन्धपरिणाम) दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सुगन्ध परिणाम, २. दुर्गन्धपरिणाम।

प्र. ७. भंते ! रसपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! (रसपरिणाम) पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. तिक्तरसपरिणाम यावत् ५. मधुररसपरिणाम।

प्र. ८. भंते ! स्पर्शपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! (स्पर्शपरिणाम) आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कर्कश स्पर्शपरिणाम यावत् ८. रुक्षस्पर्शपरिणाम।

प्र. ९. भंते ! अगुरुलघुपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! (अगुरुलघुपरिणाम) एक प्रकार का कहा गया है।

प्र. १०. भंते ! शब्दपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! (शब्दपरिणाम) दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. शुभ-मनोज्ञ शब्द परिणाम,

२. अशुभ-अमनोज्ञ शब्द परिणाम।

यह अजीवपरिणामों की प्ररूपणा है।



जीवाऽजीव अध्ययन : आमुख

यद्यपि पारमार्थिक दृष्टि से जीव और अजीव एकदम पृथक् द्रव्य हैं, तथापि व्यवहारतः ये एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। जीव और पुद्‌गल (अजीव) का सम्बन्ध न हो तो शरीर आदि की प्राप्ति ही न हो; और हमें संसार में चेतन प्राणी दृष्टिगोचर ही न हों। जीव और पुद्‌गल परस्पर सम्बद्ध हैं, स्निग्धता से प्रतिबद्ध हैं तथा गाढ होकर रह रहे हैं। भोजन की आवश्यकता शरीर को होती है या जीव को? यदि इस प्रश्न का समाधान सोचा जाय तो ज्ञात हो जाएगा कि जीव और पुद्‌गल एक दूसरे से कितने सम्बद्ध हैं।

यह एक प्रश्न होता है कि जीव और अजीव में से पहले कौन उत्पन्न हुआ? इस प्रश्न का उत्तर व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र में मुर्गी एवं अण्डे के दृष्टान्त से दिया गया है। जिस प्रकार मुर्गी अण्डे से पूर्व भी रहती है और अण्डा मुर्गी से पूर्व भी रहता है इसी प्रकार जीव-अजीव दोनों एक-दूसरे से पूर्व भी हैं और पश्चात भी है। जीव और अजीव शाश्वत भाव हैं। इनमें पहले-पीछे का क्रम मानना त्रुटिपूर्ण है।

कभी-कभी जीव और अजीव का कथन अपेक्षा दृष्टि से किया जाता है। ग्राम, नगर, निगम, राजधानी, खेट, कर्वट आदि। ये यद्यपि पौद्‌गलिक होने से अजीव हैं तथापि इनमें मनुष्य आदि जीव निवास करते हैं इसलिए इन्हें इस अपेक्षा से स्थानांग सूत्र में जीव भी कहा गया है। बिना जीव के ग्राम, नगर आदि नहीं हो सकते। वन, वनखण्ड आदि में वनस्पति एवं अन्य तिर्यञ्च जीव निवास करते हैं इसलिए इन्हें भी एक अपेक्षा से जीव कहा गया है। इसी प्रकार द्वीप, समुद्र, पृथ्वी आदि भी एक अपेक्षा से अजीव हैं तो दूसरी अपेक्षा से जीव हैं।

जैनदर्शन छाया, अंधकार आदि को पौद्‌गलिक होने से अजीव प्रतिपादित करता है किन्तु स्थानांग सूत्र में इन्हें भी किसी अपेक्षा से जीव कहा गया है।

काल भी एक द्रव्य माना गया है किन्तु कुछ आचार्य इसे पृथक् द्रव्य नहीं मानते हैं। जीव एवं अजीव द्रव्यों के पर्याय परिणमन में यह काल निमित बनता है इसलिए इसे जीव एवं अजीव दोनों कहा गया है। स्थानाङ्ग सूत्र में इसीलिए समय, आवलिका, आनाप्राण, स्तोक, क्षण, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन आदि जीव एवं अजीव दोनों प्रतिपादित किए गए हैं। इस अध्ययन में काल गणना को दर्शाने वाले संवत्सर, युग, पूर्वाङ्ग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक आदि अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो अपने विशिष्ट अर्थ रखते हैं।

प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शनशल्य पर्यन्त जो अठारह पाप हैं, वे जीव भी हैं और अजीव भी हैं।

पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय जीव भी हैं और (अचित्त होने पर) अजीव भी हैं।

इस प्रकार अनेक पदार्थ जीव एवं अजीव दोनों हैं किन्तु इनमें से कुछ पदार्थ जीव के परिभोग में आते हैं तथा कुछ नहीं आते हैं।

□

५. जीवाजीवऽज्झयणं

सूत्र

१. समयाईणं जीवाजीवरूव परूवणं–

१. समयाइ वा, आवलियाइ वा, जीवाइ या अजीवाइ या पवुच्चइ।

२. आणापाणूइ वा, थोवेइ वा, जीवाइ या अजीवाइ या पवुच्चइ।

३. खणाइ वा, लवाइ वा, जीवाइ या अजीवाइ या पवुच्चइ।

४. एवं–मुहुत्ताई वा, अहोरत्ताइ वा,

५. पक्खाइ वा, मासाइ वा,

६. उडूइ वा, अयणाइ वा,

७. संवच्छराइ वा, जुगाइ वा,

८. वाससयाइ वा, वाससहस्साइ वा,

९. वाससयसहस्साइ वा, वासकोडीइ वा,

१०. पुव्वंगाइ वा, पुव्वाइ वा,

११. तुडियंगाइ वा, तुडियाइ वा,

१२. अडडंगाइ वा, अडडाइ वा,

१३. अववंगाइ वा, अववाइ वा,

१४. हूहूअंगाइ वा, हूहूयाइ वा,

१५. उप्पलंगाइ वा, उप्पलाइ वा,

१६. पउमंगाइ वा, पउमाइ वा,

१७. णलिणंगाइ वा, णलिणाइ वा,

१८. अत्थणिकुरंगाइ वा, अत्थणिकुराइ वा,

१९. अउअंगाइ वा, अउआइ वा,

२०. णउअंगाइ वा, णउआइ वा,

२१. पउयंगाइ वा, पउयाइ वा,

२२. चूलियंगाइ वा, चूलियाइ वा,

२३. सीसपहेलियंगाइ वा, सीसपहेलियाइ वा,

२४. पलिओवमाइ वा, सागरोवमाइ वा,

२५. उस्सप्पिणीइ वा, ओसप्पिणी वा, जीवाइ या अजीवाइ या पवुच्चइ। –ठाणं अ. २, उ. ४, सु. १०६(१)

२. गामाईयाणं जीवाजीवरूव परूवणं–

१. गामाइ वा, णगराइ वा, जीवाइ या अजीवाइ या पवुच्चइ।

२. एवं णिगमाइ वा, रायहाणीइ वा,

३. खेडाइ वा, कब्बडाइ वा,

४. मडंबाइ वा, दोणमुहाइ वा,

५. पट्टणाइ वा, आगराइ वा,

६. आसमाइ वा, संबाहाइ वा,

७. सण्णिवेसाइ वा, घोसाइ वा,

५. जीव-अजीव अध्ययन

सूत्र

१. समयादिकों का जीव-अजीवरूप प्ररूपण–

१. समय और आवलिका, ये जीव और अजीव कहे जाते हैं।

२. आनप्राण और स्तोक, ये जीव और अजीव कहे जाते हैं।

३. क्षण और लव, ये जीव और अजीव कहे जाते हैं।

४. इसी प्रकार–मुहूर्त और अहोरात्र,

५. पक्ष और मास,

६. ऋतु और अयन,

७. संवत्सर और युग,

८. सौ वर्ष और हजार वर्ष,

९. लाख वर्ष और करोड़ वर्ष,

१०. पूर्वांग और पूर्व,

११. त्रुटितांग और त्रुटित,

१२. अटटांग और अटट,

१३. अववांग और अवव,

१४. हूहूकांग और हूहूक,

१५. उत्पलांग और उत्पल,

१६. पद्मांग और पद्म,

१७. नलिनांग और नलिन,

१८. अर्थनिकुरांग और अर्थनिकुर,

१९. अयुतांग और अयुत,

२०. नयुतांग और नयुत,

२१. प्रयुतांग और प्रयुत,

२२. चूलिकांग और चूलिका,

२३. शीर्षप्रहेलिकांग और शीर्षप्रहेलिका,

२४. पल्योपम और सागरोपम,

२५. अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी, ये सभी जीव और अजीव कहे जाते हैं।

२. ग्रामादिकों का जीव-अजीव रूप प्ररूपण–

१. ग्राम और नगर, ये जीव और अजीव कहे जाते हैं।

२. इसी प्रकार निगम और राजधानी,

३. खेट और कर्वट,

४. मडंब और द्रोणमुख,

५. पत्तन और आकर,

६. आश्रम और संबाध,

७. सन्निवेश और घोष,

जीवाऽजीव अध्ययन : आमुख

यद्यपि पारमार्थिक दृष्टि से जीव और अजीव एकदम पृथक् द्रव्य हैं, तथापि व्यवहारतः ये एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। जीव और पुद्गल (अजीव) का सम्बन्ध न हो तो शरीर आदि की प्राप्ति ही न हो; और हमें संसार में चेतन प्राणी दृष्टिगोचर ही न हों। जीव और पुद्गल परस्पर सम्बद्ध हैं, स्निग्धता से प्रतिबद्ध हैं तथा गाढ होकर रह रहे हैं। भोजन की आवश्यकता शरीर को होती है या जीव को? यदि इस प्रश्न का समाधान सोचा जाय तो ज्ञात हो जाएगा कि जीव और पुद्गल एक दूसरे से कितने सम्बद्ध हैं।

यह एक प्रश्न होता है कि जीव और अजीव में से पहले कौन उत्पन्न हुआ? इस प्रश्न का उत्तर व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र में मुर्गी एवं अण्डे के दृष्टान्त से दिया गया है। जिस प्रकार मुर्गी अण्डे से पूर्व भी रहती है और अण्डा मुर्गी से पूर्व भी रहता है इसी प्रकार जीव-अजीव दोनों एक-दूसरे से पूर्व भी हैं और पश्चात भी है। जीव और अजीव शाश्वत भाव हैं। इनमें पहले-पीछे का क्रम मानना त्रुटिपूर्ण है।

कभी-कभी जीव और अजीव का कथन अपेक्षा दृष्टि से किया जाता है। ग्राम, नगर, निगम, राजधानी, खेट, कर्वट आदि। ये यद्यपि पौद्गलिक होने से अजीव हैं तथापि इनमें मनुष्य आदि जीव निवास करते हैं इसलिए इन्हें इस अपेक्षा से स्थानांग सूत्र में जीव भी कहा गया है। बिना जीव के ग्राम, नगर आदि नहीं हो सकते। वन, वनखण्ड आदि में वनस्पति एवं अन्य तिर्यञ्च जीव निवास करते हैं इसलिए इन्हें भी एक अपेक्षा से जीव कहा गया है। इसी प्रकार द्वीप, समुद्र, पृथ्वी आदि भी एक अपेक्षा से अजीव हैं तो दूसरी अपेक्षा से जीव हैं।

जैनदर्शन छाया, अंधकार आदि को पौद्गलिक होने से अजीव प्रतिपादित करता है किन्तु स्थानांग सूत्र में इन्हें भी किसी अपेक्षा से जीव कहा गया है।

काल भी एक द्रव्य माना गया है किन्तु कुछ आचार्य इसे पृथक् द्रव्य नहीं मानते हैं। जीव एवं अजीव द्रव्यों के पर्याय परिणमन में यह काल निमित्त बनता है इसलिए इसे जीव एवं अजीव दोनों कहा गया है। स्थानाङ्ग सूत्र में इसीलिए समय, आवलिका, आनाप्राण, स्तोक, क्षण, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन आदि जीव एवं अजीव दोनों प्रतिपादित किए गए हैं। इस अध्ययन में काल गणना को दर्शाने वाले संवत्सर, युग, पूर्वाङ्ग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक आदि अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो अपने विशिष्ट अर्थ रखते हैं।

प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शनशल्य पर्यन्त जो अठारह पाप हैं, वे जीव भी हैं और अजीव भी हैं।

पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय जीव भी हैं और (अचित्त होने पर) अजीव भी हैं।

इस प्रकार अनेक पदार्थ जीव एवं अजीव दोनों हैं किन्तु इनमें से कुछ पदार्थ जीव के परिभोग में आते हैं तथा कुछ नहीं आते हैं।

□

५. जीवाजीवऽज्झयणं

सूत्र

१. समयाईणं जीवाजीवरूव परूवणं–

१. समयाइ वा आवलियाइ वा, जीवाइ या अजीवाइ या पवुच्चइ।
२. आणापाणूइ वा, थोवेइ वा, जीवाइ या अजीवाइ या पवुच्चइ।
३. खणाइ वा, लवाइ वा, जीवाइ या अजीवाइ या पवुच्चइ।
४. एवं–मुहुत्ताई वा, अहोरत्ताइ वा,
५. पक्खाइ वा, मासाइ वा,
६. उडूइ वा, अयणाइ वा,
७. संवच्छराइ वा, जुगाइ वा,
८. वाससयाइ वा, वाससहस्साइ वा,
९. वाससयसहस्साइ वा, वासकोडीइ वा,
१०. पुव्वंगाइ वा, पुव्वाइ वा,
११. तुडियंगाइ वा, तुडियाइ वा,
१२. अडडंगाइ वा, अडडाइ वा,
१३. अववंगाइ वा, अववाइ वा,
१४. हूहूअंगाइ वा, हूहूयाइ वा,
१५. उप्पलंगाइ वा, उप्पलाइ वा,
१६. पउमंगाइ वा, पउमाइ वा,
१७. णलिणंगाइ वा, णलिणाइ वा,
१८. अत्थणिकुरंगाइ वा, अत्थणिकुराइ वा,
१९. अउअंगाइ वा, अउआइ वा,
२०. णउअंगाइ वा, णउआइ वा,
२१. पउयंगाइ वा, पउयाइ वा,
२२. चूलियंगाइ वा, चूलियाइ वा,
२३. सीसपहेलियंगाइ वा, सीसपहेलियाइ वा,
२४. पलिओवमाइ वा, सागरोवमाइ वा,
२५. उस्सप्पिणीइ वा, ओसप्पिणी वा, जीवाइ या अजीवाइ या पवुच्चइ। *–ठाणं अ. २, उ. ४, सु. १०६ (१)*

२. गामाईयाणं जीवाजीवरूव परूवणं–

१. गामाइ वा, णगराइ वा, जीवाइ या अजीवाइ या पवुच्चइ।
२. एवं णिगमाइ वा, रायहाणीइ वा,
३. खेडाइ वा, कब्बडाइ वा,
४. मडंबाइ वा, दोणमुहाइ वा,
५. पट्टणाइ वा, आगराइ वा,
६. आसमाइ वा, संबाहाइ वा,
७. सण्णिवेसाइ वा, घोसाइ वा,

५. जीव-अजीव अध्ययन

सूत्र

१. समयादिकों का जीव-अजीवरूप प्ररूपण–

१. समय और आवलिका, ये जीव और अजीव कहे जाते हैं।
२. आनप्राण और स्तोक, ये जीव और अजीव कहे जाते हैं।
३. क्षण और लव, ये जीव और अजीव कहे जाते हैं।
४. इसी प्रकार–मुहूर्त और अहोरात्र,
५. पक्ष और मास,
६. ऋतु और अयन,
७. संवत्सर और युग,
८. सौ वर्ष और हजार वर्ष,
९. लाख वर्ष और करोड़ वर्ष,
१०. पूर्वांग और पूर्व,
११. त्रुटितांग और त्रुटित,
१२. अटटांग और अटट,
१३. अववांग और अवव,
१४. हूहूकांग और हूहूक,
१५. उत्पलांग और उत्पल,
१६. पद्मांग और पद्म,
१७. नलिनांग और नलिन,
१८. अर्थनिकुरांग और अर्थनिकुर,
१९. अयुतांग और अयुत,
२०. नयुतांग और नयुत,
२१. प्रयुतांग और प्रयुत,
२२. चूलिकांग और चूलिका,
२३. शीर्षप्रहेलिकांग और शीर्षप्रहेलिका,
२४. पल्योपम और सागरोपम,
२५. अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी, ये सभी जीव और अजीव कहे जाते हैं।

२. ग्रामादिकों का जीव-अजीव रूप प्ररूपण–

१. ग्राम और नगर, ये जीव और अजीव कहे जाते हैं।
२. इसी प्रकार निगम और राजधानी,
३. खेट और कर्बट,
४. मडंब और द्रोणमुख,
५. पत्तन और आकर,
६. आश्रम और संवाह,
७. सन्निवेश और घोष,

८. आरामाइ वा, उज्जाणाइ वा,
९. वणाइ वा, वणसंडाइ वा,
१०. वावीइ वा, पुक्खरणीइ वा,
११. सराइ वा, सरपंतीइ वा,
१२. अगडाइ वा, तलागाइ वा,
१३. दहाइ वा, णदीइ वा,
१४. पुढवीइ वा, उदहीइ वा,
१५. वातखंधाइ वा, उवासंतराइ वा,
१६. वलयाइ वा, विग्गहाइ वा,
१७. दीवाइ वा, समुद्दाइ वा,
१८. वेलाइ वा, वेइयाइ वा,
१९. दारगाइ वा, तोरणाइ वा,
२०-४३. णेरइयाइ वा, णेरइयावासाइ वा जाव
वेमाणियाइ वा, वेमाणियावासाइ वा,
४४. कप्पाइ वा, कप्पविमाणावासाइ वा,
४५. वासाइ वा, वासधरपव्वयाइ वा,
४६. कूडाइ वा, कूडागाराइ वा,
४७. विजयाइ वा, रायहाणीइ वा, जीवाइ या अजीवाइ या पवुच्चइ। *—ठाणं अ. २, उ. ४, सु. १०६(२)*

३. छायाईणं जीवाजीव रूव परूवणं–

१. छायाइ वा, आतवाइ वा,
२. दोसिणाइ वा, अंधकाराइ वा,
३. ओमाणाइ वा, उम्माणाइ वा,
४. अइयाणगिहाइ वा, उज्जाणगिहाइ वा,
५. अवलिंबाइ वा, सणिप्पवायाइ वा, जीवाइ या अजीवाइ या पवुच्चइ। *—ठाणं अ. २, उ. ४, सु. १०६(३)*

४. जीवाजीव दव्वेसु जीवाणं परिभोगापरिभोगत्त परूवणं–

८. आराम और उद्यान,
९. वन और वन खंड,
१०. वापी और पुष्करिणी
११. सर और सरपंक्ति,
१२. अगड (कूप) और तालाव,
१३. द्रह और नदी,
१४. पृथ्वी और उदधि,
१५. वातस्कन्ध और अवकाशान्तर,
१६. वलय और विग्रह,
१७. द्वीप और समुद्र,
१८. वेला और वेदिका,
१९. द्वार और तोरण,
२०-४३. नैरयिक और नैरयिकावास यावत्,
वैमानिक और वैमानिकावास,
४४. कल्प और कल्पविमानावास,
४५. वर्ष और वर्षधर पर्वत,
४६. कूट और कूटागार,
४७. विजय और राजधानी ये सभी जीव और अजीव कहे जाते हैं।

३. छायादिकों का जीव-अजीव रूप प्ररूपण–

१. छाया और आतप,
२. ज्योत्स्ना और अन्धकार,
३. अवमान और उन्मान,
४. अतियानगृह और उद्यानगृह,
५. अवलिम्ब और सनिप्रपात, ये सभी जीव और अजीव कहे जाते हैं।

४. जीव-अजीव द्रव्यों में जीवों के परिभोग अपरिभोगत्व का

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

पाणाइवाए जाव सव्वे य बायरबोंदिधरा कलेवरा एए णं दुविहा जीवदव्वा य अजीवदव्वा य अत्थेगइया जीवाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, अत्थेगइया जीवाणं परिभोगत्ताए नो हव्वमागच्छंति ?

उ. गोयमा ! पाणाइवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले,

पुढविकाइए जाव वणस्सकाइए सव्वे य बायरबोंदिधरा कलेवरा एए णं दुविहा जीवदव्वा य अजीवदव्वा य, जीवाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति।

पाणाइवायवेरमणे जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे, धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए जाव परमाणुपोग्गले, सेलेसिं पडिवन्नए अणगारे, एए णं दुविहा जीवदव्वा य अजीवदव्वा य जीवाणं परिभोगत्ताए नो हव्वमागच्छंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

पाणाइवाए जाव सव्वे य बायर बोंदिधरा कलेवरा एएणं दुविहा जीवदव्वा य अजीवदव्वा य अत्थेगइया जीवाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति अत्थेगइया जीवाणं परिभोगत्ताए नो हव्वमागच्छंति।

–विया. स. १८, उ. ४, सु. २

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

प्राणातिपात से सर्व स्थूलकाय धारक कलेवर पर्यन्त जो जीव द्रव्य और अजीवद्रव्य रूप दो प्रकार हैं इनमें से कई द्रव्य तो जीवों के परिभोग में आते हैं और कई जीवों के परिभोग में नहीं आते हैं ?

उ. गौतम ! प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्य,

पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक और सभी स्थूलकाय धारक कलेवर ये सब जीवद्रव्य और अजीव द्रव्य रूप दोनों प्रकार के हैं और जीवों के परिभोग में आते हैं।

प्राणातिपात विरमण यावत् मिथ्यादर्शनशल्य विवेक, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, यावत् परमाणु पुद्गल एवं शैलेशी अवस्था प्राप्त अनगार ये सब जीवद्रव्य और अजीवद्रव्य रूप दोनों प्रकार के हैं और जीवों के परिभोग में नहीं आते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

प्राणातिपात से सर्वस्थूलकाय धारक कलेवर पर्यन्त जो जीवद्रव्य और अजीव द्रव्य रूप दो प्रकार के हैं इनमें से कई द्रव्य तो जीवों के परिभोग में आते हैं और कई जीवों के परिभोग में नहीं आते हैं।

५. रोहाअणगारपण्हुत्तरे जीवाजीवाइ दव्वाणं सासयत्तं अणाणुपुव्वित्त परूवणं–

प. पुव्विं भंते ! जीवा ? पच्छा अजीवा ? पुव्विं अजीवा ? पच्छा जीवा ?

उ. रोहा ! जीवा य अजीवा य पुव्विं पेते, पच्छा पेते दो वि एते सासया भावा अणाणुपुव्वी एसा रोहा !

एवं भवसिद्धिया य अभवसिद्धियां य, सिद्धि असिद्धि, सिद्धा असिद्धा।

प. पुव्विं भंते ! अंडए ? पच्छा कुक्कुडी ? पुव्विं कुक्कुडी ? पच्छा अंडए ?

उ. रोहा ! से णं अंडए कओ ?

भगवं ! तं कुक्कुडीओ।

सा णं कुक्कुडी कओ ?

भंते ! अंडगाओ।

एवामेव रोहा से य अंडए सा य कुक्कुडी, पुव्विं पेते, पच्छा पेते, दो वि एते सासया भावा

अणाणुपुव्वी एसा रोहा। *–विया. स. १., उ. ६, सु. १४-१६*

५. रोह अणगार के प्रश्नोत्तरों में जीव-अजीव आदि के शाश्वतत्व और अनानुपूर्वत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या पहले जीव और पीछे अजीव हैं या पहले अजीव और पीछे जीव हैं ?

उ. रोहा ! जीव और अजीव पहले भी हैं और पीछे भी हैं, ये दोनों शाश्वतभाव हैं। हे रोहा ! इन दोनों में पहले पीछे का क्रम नहीं है।

इसी प्रकार भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक, सिद्धि और असिद्धि तथा सिद्ध और असिद्ध (संसारी) जीवों के विषय में भी जानना चाहिए।

प्र. भंते ! पहले अण्डा और फिर मुर्गी है ? या पहले मुर्गी और फिर अण्डा है ?

उ. (भगवान्) हे रोहा ! यह अण्डा कहां से आया है ?

(रोह-) भंते ! वह मुर्गी से आया।

(भगवान्) वह मुर्गी कहां से आई ?

(रोहा) भंते ! वह अण्डे से हुई।

(भगवान्) इसी प्रकार हे रोहा ! मुर्गी और अण्डा पहले भी हैं और पीछे भी हैं। ये दोनों शाश्वतभाव हैं।

हे रोहा ! इन दोनों में पहले पीछे का क्रम नहीं हैं।

६. हरयगत नावा दिट्ठंतेण जीवपोग्गलाणमन्नोन्नबद्धत्ता परूवणं–

प. अत्थि णं भंते ! जीवा य पोग्गला य अन्नमन्नबद्धा, अन्नमन्नपुट्ठा, अन्नमन्नमोगाढा, अन्नमन्नसिणेहपडिबद्धा, अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति ?

६. हदगत नौका के दृष्टान्त द्वारा जीव और पुद्गलों के अन्योन्यबद्धत्वादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव और पुद्गल परस्पर संवद्ध हैं ? परस्पर एक दूसरे से स्पृष्ट हैं ? परस्पर गाढ़ सम्बद्ध हैं, परस्पर स्निग्धता से प्रतिवद्ध हैं, परस्पर घट्टित (गाढ) हो कर रहे हुए हैं ?

उ. हंता, गोयमा ! चिट्ठंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ –

"अत्थि णं जीवा य पोग्गला य अन्नमन्नबद्धा जाव अन्नमन्न घडत्ताए चिट्ठंति ?"

उ. गोयमा ! से जहानामए हरए सिया पुण्णे पुण्णप्पमाणे वोलट्टमाणे वोसट्टमाणे समभरघडत्ताए चिट्ठइ, अहे णं केइ पुरिसे तंसि हरदंसि एगं महं नावं सयासवं सयछिड्डं ओगाहेज्जा।

से नूणं गोयमा ! सा णावा तेहिं आसवद्दारेहिं आपूरमाणी आपूरमाणी पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठइ ?

हंता, गोयमा ! चिट्ठइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-

'अत्थि णं जीवा य पोग्गला य अन्नमन्नबद्धा जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति।

–विया स. १, उ. ६, सु. २६

उ. हां, गौतम ! ये परस्पर इसी प्रकार रहे हुए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जीव और पुद्गल परस्पर सम्बद्ध हैं यावत् परस्पर गाढ़ होकर रहे हुए हैं ?"

उ. गौतम ! जैसे कोई एक तालाब हो वह जल से पूर्ण हो, पानी से लबालब भरा हुआ हो, पानी से छलक रहा हो, पानी बढ़ रहा हो और घड़े के समान पानी से भरा हुआ हो। उस तालाब में कोई पुरुष जिसमें छोटे और बड़े सैकड़ों छिद्र हों ऐसी बड़ी नौका को डाल दे तो–

हे गौतम ! ऐसी वह नौका उन छिद्रों द्वारा पानी से भरती हुई जल से परिपूर्ण पानी से लबालब पानी से छलकती बढ़ती हुई क्या भरे हुए घड़े के समान हो जाती है ?

हां गौतम ! हो जाती है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि

'-जीव और पुद्गल परस्पर सम्बद्ध हैं यावत् परस्पर गाढ़ होकर रहे हुए हैं।

□

जीव अध्ययन : आमुख

षड्द्रव्यों में जीव द्रव्य प्रमुख है। आगम में इसके विविध लक्षण प्रदत्त हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है के जो चेतनामय होता है वह जीव है, जिसमें ज्ञान एवं दर्शन उपयोग होता है वह जीव है, जिसे सुख-दुःख का अनुभव होता है वह जीव है। जीव ही कर्मों से बद्ध रहा है और वही इनसे मुक्त होता है। जीव का जब अजीव कर्म पुद्गलों से सम्बन्ध होता है तो वह विभिन्न गतियों में भ्रमण करता रहता है तथा जब वह इनसे रहित हो जाता है तो उसका यह भ्रमण समाप्त हो जाता है, फिर उसे सिद्ध जीव कहा जाता है।

इस प्रकार जीव दो प्रकार के कहे जा सकते हैं १. संसार समापन्नक और २. असंसारसमापन्नक। जो संसार की चार गतियों में भ्रमणशील है वह जीव संसार समापन्नक है तथा जो इस भव भ्रमण से विरत होकर सिद्ध बन गया है वह असंसारसमापन्नक कहलाता है। जो भवसिद्धिक जीव हैं वे मुक्ति प्राप्ति के पूर्व ही असंसारसमापन्नक जीवों की श्रेणी में आ जाते हैं तथा जो अभवसिद्धिक हैं वे सदैव संसारसमापन्नक ही बने रहते हैं। सभी भवसिद्धिक जीवों में सिद्ध होने की योग्यता होती है, वे सिद्ध बन सकते हैं तथापि भवसिद्धिक जीवों से यह लोक रहित नहीं होता। जयन्ती के प्रश्न के उत्तर में भगवान् महावीर ने यह बात कही है।

जीव अनन्त हैं, वे नये उत्पन्न नहीं होते तथा पहले के नष्ट नहीं होते। उनमें घटत या बढ़त नहीं होती। संख्या की दृष्टि से वे अनन्त हैं और अनन्त ही रहते हैं। नैरयिक जीवों में घटत-बढ़त हो सकती है, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवों में घटत-बढ़त हो सकती है किन्तु सम्पूर्ण जीवों की दृष्टि से वे घटते-बढ़ते नहीं है, अवस्थित रहते हैं। इस अवस्थिति में अनन्त सिद्ध एवं अनन्त संसारी जीव सम्मिलित हैं। यद्यपि अनन्त जीवों के सिद्ध हो जाने पर भी अनन्त संसारी जीव विद्यमान रहते हैं, उनका कभी अन्त नहीं होता।

असंसारसमापन्नक सिद्ध जीवों को निराबाध शाश्वत सुख प्राप्त है, वह सुख मनुष्यों और देवों को भी प्राप्त नहीं है। औपपातिक सूत्र में सिद्धों के अनुपम सुख का वर्णन हुआ है। ये सिद्ध दो प्रकार के हैं—अनन्तरसिद्ध और परम्परसिद्ध। जिन्हें सिद्ध हुए अभी प्रथम समय भी व्यतीत नहीं हुआ है वे अनन्तरसिद्ध हैं तथा जिन्हें सिद्ध हुए प्रथम समय व्यतीत हो गया है वे परम्पर सिद्ध कहलाते हैं। सिद्धों के तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध, तीर्थङ्करसिद्ध, अतीर्थङ्करसिद्ध आदि जो पन्द्रह भेद हैं वे अनन्तरसिद्ध की अपेक्षा से हैं। अप्रथमसमय सिद्ध, द्विसमयसिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, यावत् संख्यात समय सिद्ध, असंख्यातसमय सिद्ध और अनन्तसमय सिद्ध आदि भेद परम्परसिद्ध की अपेक्षा से हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में समवायांगसूत्र के अनुसार सिद्धों के इकत्तीस गुणों का भी उल्लेख हुआ है, जो आठ कर्मों के क्षय से प्रकट होते हैं। आठ कर्मों के क्षय से अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, क्षायिक सम्यक्त्व आदि आठ गुणों का प्रकट होना भी बताया गया है। इन्हीं आठ गुणों के विस्तार में वे इकत्तीस गुण प्रतिपादित हैं। अनन्तज्ञान आदि गुणों से युक्त और अनन्त सुख से सम्पन्न ये सिद्ध पुनः किसी गति में अवतरित नहीं होते हैं। ये लोक कल्याण के लिए भी पुनः देहधारण नहीं करते हैं। सभी सिद्ध जीव लोक के अग्रभाग में अवस्थित रहते हैं। इनकी अपनी अवगाहना भी होती है किन्तु एक सिद्ध की अवगाहना से दूसरे सिद्ध के आत्म प्रदेशों की अवगाहना प्रभावित नहीं होती। जिस प्रकार रेडियो एवं दूरदर्शन के विभिन्न केन्द्रों की तरंगें एक स्थान पर अवगाहित होकर भी भिन्न-भिन्न ही रहती हैं इसी प्रकार प्रत्येक सिद्ध की अवगाहना भिन्न भिन्न होती है। एक अन्तर यह अवश्य है कि रेडियो एवं दूरदर्शन की तरंगें जहां पौद्गलिक होने से मूर्त हैं वहाँ सिद्धों के आत्मप्रदेश अमूर्त हैं। इसलिए उनके परस्पर अवगाढ़ होने में कोई बाधा नहीं है।

असंसारसमापन्नक या सिद्ध जीव जहाँ अशरीरी, अकायिक, अयोगी और निरिन्द्रिय होते हैं। वहाँ संसारसमापन्नक या संसारी जीव सशरीरी, सकायिक, सयोगी और सेन्द्रिय होते हैं।

संसारी जीव नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन चार गतियों तथा चौरासी लाख जीवयोनियों में जन्म लेते रहते हैं। इनके विविध प्रकार से भेद किए जाते हैं। दो प्रमुख भेद हैं—त्रस और स्थावर। स्थितिशील को स्थावर तथा गति करने में सक्षम जीवों को त्रस कहते हैं।

समस्त संसारी जीवों को स्त्री, पुरुष और नपुंसक इन तीन भेदों में भी विभक्त किया जाता है। स्त्रियां भी तीन प्रकार की होती हैं—तिर्यक्योनिक स्त्रियाँ, मनुष्यस्त्रियां और देवस्त्रियां। तिर्यक्योनिक स्त्रियां जलचर, स्थलचर और खेचर के भेद से तीन प्रकार की होती हैं। फिर इनके भी भेदोपभेद होते हैं। मनुष्य स्त्रियां कर्मभूमि, अकर्मभूमि एवं अन्तर्द्वीप में होने से तीन प्रकार की होती हैं। देव स्त्रियां चार प्रकार की होती हैं—भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषिक और वैमानिक। पुरुष भी स्त्रियों की भांति तिर्यक्योनिक, मनुष्य और देव के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। तिर्यक्योनिकस्त्रियों, मनुष्य-स्त्रियों और देवस्त्रियों की भांति तिर्यक्योनिक पुरुष, मनुष्य पुरुष और देव पुरुषों के वे ही तीन, तीन एवं चार भेद होते हैं। नपुंसक भी तीन प्रकार के कहे गए हैं—नैरयिक, तिर्यक्योनिक और मनुष्ययोनिक। नरक गति के सारे नैरयिक नपुंसक होते हैं जबकि देवगति का कोई भी देव नपुंसक नहीं होता। तिर्यञ्च में एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय पूर्णतः नपुंसक होते हैं किन्तु पंचेन्द्रियों में भी नपुंसक पाए जाते हैं। मनुष्य स्त्री व पुरुष की तरह नपुंसक भी होते हैं। इनके भी विभिन्न भेदोपभेदों का निरूपण इस अध्ययन में हुआ है।

नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देव के भेद से संसारी जीव चार प्रकार के हैं। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के आधार पर ये पांच प्रकार के हैं। पृथ्वीकाय आदि षट्कायों के आधार पर ये छह प्रकार के हैं। कुछ आधारों पर इन जीवों को सात, आठ, नौ एवं दस

भेदों में भी विभक्त किया गया है। यह विभाजन एक तकनीक है जिससे इन भेदों को विविध प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है। इन जीवों के चौदह भेद भी किए जाते हैं, जो प्रसिद्ध हैं। इन चौदह भेदों में सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय इन सात भेदों के पर्याप्तक एवं अपर्याप्तकों की गणना की जाती है। जीवों के भेदों की गणना करते-करते इनके ५६३ भेद तक किए गए हैं।

इन समस्त संसारी जीवों को २४ दण्डकों में भी विभक्त किया गया है। ये चौवीस दण्डक जीवों की २४ वर्गणाओं के द्योतक है। वर्गणा का अर्थ यहाँ समूह (Group) है। विभिन्न समान विशेषताओं के आधार पर ये जीव इन वर्गणाओं एवं दण्डकों में विभक्त होते हैं। इन दण्डकों का आगम में एक निश्चित क्रम है जिसके अनुसार नैरयिकों का एक दण्डक है, दस भवनपति देवों के दस दण्डक (२-११) हैं, पांच स्थावरों के पाँच (१२-१६), तीन विकलेन्द्रियों के तीन (१७-१९) तथा तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का एक दण्डक (२०) है। मनुष्यों का एक दण्डक (२१) है। वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के एक एक कर तीन दण्डक (२२-२४) हैं। इस प्रकार चार गति के जीव चौबीस दण्डकों में विभक्त होते हैं।

इन चौबीस ही दण्डकों के जीव भवसिद्धिक भी हैं और अभवसिद्धिक भी हैं, अनन्तरोपपन्नक भी हैं और परम्परोपपन्नक भी हैं, गतिसमापन्नक भी हैं और अगतिसमापन्नक भी हैं, प्रथमसमयोपपन्नक भी हैं और अप्रथमसमयोपपन्नक भी हैं, आहारक भी हैं और अनाहारक भी हैं, पर्याप्तक भी हैं और अपर्याप्तक भी हैं, परीत संसारी भी हैं और अपरीतसंसारी भी हैं, सुलभ-बोधिक भी हैं और दुर्लभ बोधिक भी हैं।

प्रज्ञापनासूत्र में संसारसमापन्नक जीवों की प्रज्ञापना पांच प्रकार की कही गई है—एकेन्द्रिय संसार समापन्नक जीव प्रज्ञापना से लेकर पंचेन्द्रिय संसार समापन्नक जीव प्रज्ञापना तक। उसमें फिर इन पांच प्रकारों के विभिन्न भेदोपभेदों का विस्तृण निरूपण है जो सब इस अध्ययन में समाविष्ट है। इन भेदोपभेदों से विविध प्रकार की विशिष्ट जानकारी होती है जैसे—पृथ्वीकाय के श्लक्ष्ण आदि भेद तथा काली मिट्टी आदि प्रदेश, बादर आदि अफाय के ओस, हिम आदि भेद, बादर तेजस्काय के अंगार, ज्वाला आदि भेद, बादर वायुकाय के पूर्वी वायु आदि तथा झंझावात आदि भेद, प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पति काय के वृक्ष, गुच्छ, गुल्म आदि १२ भेद तथा फिर इनके उपभेद, साधारण शरीर बादर वनस्पतिकाय के अवक, पनक, शैवाल आदि भेद। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के विविध जीव जातियों का जो परिचय इस अध्ययन में दिया गया है वह वैज्ञानिक दृष्टि से भी शोध का विषय है। वनस्पति के भेदों एवं उनके विभिन्न नामों की लम्बी सूची गिनाई गई है जो वनस्पतिविशेषज्ञों एवं आयुर्वेद चिकित्सकों के लिए उपयोगी प्रतीत होती है। बहुत से आगमिक नामों को आधुनिक प्रचलित नामों से जोड़ने की भी आवश्यकता है।

निगोद के जीवों का समावेश भी एकेन्द्रिय वनस्पतिकाय के जीवों में होता है। निगोद दो प्रकार के कहे गए हैं—निगोद एवं निगोद-जीव। ये दोनों ही सूक्ष्म एवं बादर के भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं। सूक्ष्म एवं बादर पुनः पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक भेदों में विभक्त होते हैं। संख्या की दृष्टि से ये सभी अनन्त हैं।

इस अध्ययन में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय जीवों के विविध प्रकारों एवं नामों का भी उल्लेख हुआ है।

पंचेन्द्रिय जीव चार प्रकार के हैं—नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि सात नरक पृथ्वियों के आधार पर नैरयिक सात प्रकार के होते हैं। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीव जलचर, स्थलचर और खेचर के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। फिर इनके भी अनेक भेदोपभभें द हैं। जलचरों में मच्छ, कच्छप, ग्राह, मगर एवं सुंसुमार ये पांच भेद प्रमुख हैं। स्थलचर जीव चतुष्पद एवं परिसर्प के भेद से दो प्रकार के हैं। चतुष्पद जीव एक खुर, दो खुर, गण्डीपद एवं सनखपद के आधार पर चार प्रकार के हैं। एक खुर में—अश्व, गधा जैसे, दो खुर में—गाय, भैंस, जैसे, गण्डीपद में—ऊँट, हाथी, गेंडा जैसे तथा सनखपद में—सिंह, व्याघ्र जैसे जानवरों की गणना की जाती है। परिसर्प जीव दो प्रकार के हैं उर से चलने वाले उरपरिसर्प तथा भुजा से चलने वाले भुजपरिसर्प। उरपरिसर्प में फन वाले एवं बिना फन वाले सर्प, अजगर, आसालिक और महोरग की गणना होती है। सर्पों के विभिन्न प्रकारों का आगम में उल्लेख सर्प-जिज्ञासुओं के लिए महत्व का विषय है। भुजपरिसर्प नकुल, गोह, सरट आदि विभिन्न प्रकार के होते हैं। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीव सम्मूर्च्छिम भी होते हैं तथा गर्भज भी होते हैं। सम्मूर्च्छिम जीव नपुंसक होते हैं तथा गर्भज जीव स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। भुजपरिसर्प और उरपरिसर्प जीव अंडज, पोतज और सम्मूर्च्छिम के भेद से भी तीन प्रकार के निरूपित हैं।

खेचर पंचेन्द्रिय जीव चार प्रकार के हैं—चर्मपक्षी, रोमपक्षी, समुद्गपक्षी और विततपक्षी। इनमें से समुद्गपक्षी और विततपक्षी मनुष्य-क्षेत्र में नहीं होते, मनुष्यक्षेत्र के बाहर द्वीप-समुद्रों में होते हैं। पक्षी तीन प्रकार के माने गए हैं-अंडज, पोतज और सम्मूर्च्छिम।

मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—सम्मूर्च्छिम और गर्भज। सम्मूर्च्छिम मनुष्य असंज्ञी, मिथ्यादृष्टि एवं सभी प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त नहीं होते हैं। ये अन्तर्मुहूर्त की आयु भोग कर मर जाते हैं। इनकी उत्पत्ति के चौदह स्थान माने गए हैं जिनमें गर्भज मनुष्य के उच्चार, प्रस्रवण (पेशाव), कफ आदि सम्मिलित हैं। गर्भज मनुष्य तीन प्रकार के हैं—कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक और अन्तर्द्वीपक। एकोरुक, आभासिक, वैषाणिक आदि २८ अन्तर्द्वीपक हैं। पांच हैमवंत, पांच हैरण्यवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यक्वर्ष, पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु क्षेत्रों में उत्पन्न होने से अकर्मभूमिज मनुष्य ३० प्रकार के हैं। कर्मभूमियां १५ हैं—पांच भरत, पांच ऐरवत और पांच महाविदेह। इनमें उत्पन्न कर्मभूमिज मनुष्य संक्षेप में दो प्रकार के हैं—१. आर्य और २. म्लेच्छ। प्रज्ञापना सूत्र में शक, यवन, किरात, शबर आदि अनेक प्रकार के म्लेच्छों का उल्लेख है।

आर्यों को दो भागों में विभक्त किया गया है—१. ऋद्धि प्राप्त आर्य और २. ऋद्धि अप्राप्त आर्य। ऋद्धि प्राप्त अर्हन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, चारण और विद्याधर के भेद से छह प्रकार के प्रतिपादित हैं। ऋद्धि अप्राप्त आर्य क्षेत्र, जाति, कुल, कर्म, शिल्प, भाषा, ज्ञान, दर्शन और चारित्र के आधार पर नौ प्रकार के निरूपित हैं। मगध आदि साढ़े पच्चीस (२५.५) देश आर्य क्षेत्र कहे गए हैं। इसी प्रकार छह जातियां, छह कुल, कुछ कर्म और

कुछ शिल्प आर्य माने जाते हैं। अर्द्धमागधी भाषा में बोलने वाले और ब्राह्मी लिपि का प्रयोग करने वालों को भाषार्य कहा गया है। इसी के साथ ब्राह्मी लिपि में अठारह प्रकार के लेख का विधान किया गया है।

आभिनिबोधिक आदि पांच ज्ञानों के आधार पर पांच ज्ञानार्य निरूपित हैं। दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं–१. सराग दर्शनार्य और २. वीतराग दर्शनार्य। निसर्गरुचि, उपदेशरुचि आदि सम्यक्त्व की दस रुचियों से सम्पन्न आर्यों को दस प्रकार का सरागार्य माना गया है। वीतराग दर्शनार्य दो प्रकार का प्रतिपादित है–१. उपशान्त कषाय और २. क्षीण कषाय। इनके भी तात्विक दृष्टि से अनेक भेदोपभेदों का निरूपण है। चारित्रार्य भी दर्शनार्य की भांति सराग चारित्रार्य और वीतराग चारित्रार्य भेदों में विभक्त हैं।

देव चार प्रकार के होते हैं–१. भवनवासी २. वाणव्यन्तर ३. ज्योतिष्क और ४. वैमानिक। भवनवासी के असुरकुमार, नागकुमार आदि दस भेद हैं। वाणव्यन्तर के किन्नर, किंपुरुष आदि आठ प्रकार हैं। ज्योतिष्क देव चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारों के भेद से पांच प्रकार के हैं। वैमानिक देव कल्पोपन्न और कल्पातीत के भेद से दो प्रकार के हैं। कल्पोपन्न देव सौधर्म, ईशान आदि के भेद से १२ प्रकार के होते हैं। कल्पातीत देव दो प्रकार के होते हैं–ग्रैवेयकवासी और अनुत्तरौपपातिक। ग्रैवेयक देवों के नौ भेद हैं। अनुत्तरौपपातिक देवों के विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध –ये पांच भेद हैं। पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद तो सभी जीवों के समान देवों में भी लागु होते हैं।

जीवद्रव्य के इस अध्ययन में जीव से सम्बद्ध अनेक दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक बिन्दुओं पर विचार हुआ है। प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं–

(१) उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम वाला जीव आत्मभाव से जीवभाव (चैतन्य) को प्रकट करता है। वह पाँच ज्ञान, तीन अज्ञान और चार दर्शन की अनन्त पर्यायों को प्राप्त करता हुआ उत्थान आदि से जीव-भाव को प्रकट करता है।

(२) द्रव्य की अपेक्षा जीव अतीत अनन्त शाश्वत काल में था, वर्तमान शाश्वत काल में है और अनन्त शाश्वत भविष्यत्काल में रहेगा। अर्थात् जीव कभी नष्ट नहीं होता। जीव को कोई अजीव रूप में परिणत भी नहीं कर सकता। इसी प्रकार अजीव को भी कोई जीव रूप में परिणत नहीं कर सकता।

(३) जीव को जैसी देहं मिलती है वह उसके अनुरूप ही आत्म-प्रदेशों का संकोच एवं विस्तार कर लेता है। इस दृष्टि से हाथी एवं कुंथु का जीव समान है। इसे जैनदर्शन में जीव का देह परिमाणत्व कहा जाता है। इसके लिए दीपक के छोटे-बड़े कमरे में रखने पर प्रकाश के संकोच एवं विस्तार का उदाहरण दिया जाता है।

(४) कूर्म, कूर्मावली, गोह, गोह पंक्ति आदि के दो, तीन या संख्यात टुकड़े किए जाएं तो उनके बीच का भाग जीव प्रदेशों से स्पृष्ट होता है किन्तु हाथ, पैर या शस्त्र आदि का प्रयोग करके उन जीव प्रदेशों को कोई पीड़ा नहीं पहुँचा सकता, न ही उन्हें भंग कर सकता है, क्योंकि जीव प्रदेशों पर शस्त्रादि का प्रभाव नहीं पड़ता।

(५) ओदन, कुल्माष एवं सुरा में पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से वनस्पति जीव के शरीर हैं तथा जब ये ओदनादि द्रव्य शस्त्रातीत यावत् अग्नि परिणमित हो जाते हैं तब वे अग्नि के शरीर वाले कहे जाते हैं। सुरा में जो तरल द्रव्य है, वह पूर्वभाव प्रज्ञापना से अप्कायिक जीवों का शरीर है तथा शस्त्रातीत यावत् अग्नि परिणामित होने पर अग्निकाय शरीर कहा जाता है।

लोहा, ताम्बा, शीशा आदि द्रव्य पूर्वभाव की प्रज्ञापना से पृथ्वीकायिक जीवों के शरीर हैं तथा शस्त्रातीत यावत् अग्निपरिणामित होने पर अग्निकायिक जीवों के शरीर कहे जाते हैं।

हड्डी, चमड़ा, रोम, सींग, खुर और नख ये सब पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा त्रसजीवों के शरीर हैं किन्तु बाद में शस्त्रातीत यावत् अग्नि परिणामित होने पर ये अग्निकायिक जीवों के शरीर कहे जाते हैं।

अंगारे, राख, भूसा और गोबर ये पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय जीवों तक के शरीर कहे जा सकते हैं किन्तु शस्त्रातीत यावत् अग्निकाय परिणामित होने पर अग्निकायिक जीवों के शरीर कहे जाते हैं।

(६) विभिन्न अपेक्षाओं से जीवों को सादि-सान्त, सादि-अनन्त, अनादि-सान्त और अनादि-अनन्त भी कहा जा सकता है। व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र में भगवान् ने बताया है कि नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गति एवं आगति की अपेक्षा सादि-सान्त हैं। सिद्ध जीव गति की अपेक्षा से सादि-अनन्त हैं। लब्धि की अपेक्षा भवसिद्धिक जीव अनादि-सान्त हैं और संसार की अपेक्षा से अभवसिद्धिक जीव अनादि-अनन्त हैं।

(७) बौद्ध दर्शन में जहां आत्मा (चेतना) के अर्थ में पुद्गल शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ जैन दर्शन में भगवती सूत्र को छोड़कर सर्वत्र आत्मा (जीव) एवं पुद्गल शब्द का भिन्न अर्थ में प्रतिपादन हुआ है। मात्र भगवती सूत्र के आठवें शतक में जीव को पुद्गली एवं पुद्गल दोनों कहा है। जीव पौद्गलिक इन्द्रियों की अपेक्षा पुद्गली कहा जाता है तथा जीव की अपेक्षा पुद्गल। सिद्धजीव निरन्द्रिय होने से पुद्गल तो हैं किन्तु पुद्गली नहीं हैं।

(८) जीव चैतन्यरूप है तथा चैतन्य भी निश्चित रूप से जीव है। नैरयिक जीव होता है किन्तु जीव नैरयिक ही हो यह आवश्यक नहीं। इसी प्रकार प्राण धारण करने वाला जीव होता है किन्तु जीव प्राण धारण करे ही यह आवश्यक नहीं है। इस प्रकार की दार्शनिक एवं अनेकान्तिक शैली में भी विभिन्न तथ्यों को स्पष्ट किया गया है।

(९) ज्ञान एवं दर्शन नियमतः आत्मा हैं तथा आत्मा भी नियमतः ज्ञान-दर्शन रूप है।

(१०) जीव सुप्त भी हैं, जागृत भी हैं और सुप्त-जागृत भी हैं। इनमें नैरयिक, भवनपति, स्थावर एवं विकलेन्द्रिय जीव सुप्त हैं, वे न जागृत हैं और न सुप्त-जागृत हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव सुप्त हैं और सुप्त-जागृत हैं किन्तु जागृत नहीं है। मनुष्य सामान्य जीवों की तरह तीनों प्रकार का होता है, जबकि वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देव नैरयिकों की भांति सुप्त होते हैं। यहां पर सुप्त, जागृत आदि शब्द आध्यात्मिक अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

(११) द्रव्य की दृष्टि से जीव शाश्वत है और पर्याय की दृष्टि से जीव अशाश्वत है।

(१२) जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं। श्रोत्रेन्द्रिय और चक्षु इन्द्रिय की अपेक्षा जीव कामी हैं तथा घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा वे भोगी हैं।

(१३) अजीव द्रव्य जीवद्रव्यों के परिभोग में आते हैं किन्तु जीव द्रव्य अजीव द्रव्यों के परिभोग में नहीं आते हैं। जीव द्रव्य अजीव द्रव्य (पुद्गल) को ग्रहण करके उन्हें शरीर, इन्द्रिय, योग एवं श्वासोच्छ्वास में परिणत करते हैं, जबकि अजीव द्रव्य जीव द्रव्य का परिभोग नहीं करते।

जैन आगमों की यह पद्धति रही है कि इनमें जीव से सम्बद्ध विभिन्न तथ्यों को २४ दण्डकों में घटित किया जाता है। इस अध्ययन में ऐसे अनेक तथ्य हैं जिन्हें २४ दण्डकों में घटित किया गया है। अधिकरण और अधिकरणी, आत्मारम्भी, परारम्भी, तदुभयारम्भी और अनारम्भी, सकम्प और निष्कम्प आदि तथ्यों को इन दण्डकों में प्रदर्शित करना इसका प्रमाण है।

कालादेश से २४ दण्डकों में १. सप्रदेश, २. आहारक, ३. भव्य, ४. संज्ञी, ५. लेश्या, ६. दृष्टि, ७. संयत, ८. कषाय, ९. ज्ञान, १०. योग, ११. उपयोग, १२. वेद, १३. शरीर और १४. पर्याप्ति इन चौदह द्वारों का भी यहाँ निरूपण हुआ है।

१. समाहार, समशरीर और समश्वासोच्छ्वास, २. कर्म, ३. वर्ण, ४. लेश्या, ५. समवेदना, ६. समक्रिया तथा ७. समायुष्क इन सात द्वारों का भी २४ दण्डकों में निरूपण किया गया है। नैरयिकादि जिन जीवों में आहार, शरीर एवं श्वासोच्छ्वास की भिन्नता होती है इसमें प्रमुख कारण उनके शरीर का छोटा-वड़ा होना है। चौवीस ही दण्डकों में इन सात द्वारों का अध्ययन विभिन्न जीवों की भिन्न-भिन्न विशेषताओं को जानने के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

१. स्थिति, २. अवगाहना, ३. शरीर, ४. संहनन, ५. संस्थान, ६. लेश्या, ७. दृष्टि, ८. ज्ञान, ९. योग और १०. उपयोग इन दस स्थानों या द्वारों से २४ दण्डकों में क्रोधोपयुक्त आदि भंगों के निरूपण का अध्ययन भी जीवों के सम्बन्ध में विशिष्ट जानकारी प्रदान करता है। इनके अतिरिक्त प्रस्तुत अध्ययन में २४ दण्डकों में अध्यवसायों, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व एवं सम्यक्मिथ्यात्वाभिगामियों, सारम्भ एवं सपरिग्रहियों, सत्कार-विनयादि भावों, उद्योत एवं अंधकार, समयादि के प्रज्ञान, गुरुत्व-लघुत्वादि विषयक विचारों, भवसिद्धिकत्व, उपधि और परिग्रह, वर्णनिवृत्ति, करण के भेदों, उन्माद के भेदों आदि विविध विषयों का विशद निरूपण हुआ है। यह सारा निरूपण एक विशेष दृष्टि प्रदान करता है।

जीवों के साथ कायस्थिति का वर्णन भी विशिष्ट महत्त्व रखता है। एक ही प्रकार की अवस्था जितने काल तक बनी रहती है उसे उसकी कायस्थिति कहते हैं। इस दृष्टि से जीव सदा काल जीव ही बना रहता है। एकेन्द्रिय जीव एकेन्द्रिय के रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक बना रहता है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय जीव की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यातकाल तक होती है। नैरयिक की कायस्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम होती है। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम होती है। इसी प्रकार मनुष्यों की कायस्थिति कही गई है। देवों की कायस्थिति नैरयिकों के तुल्य जघन्य १० हजार वर्ष और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम होती है। सिद्ध जीव सिद्ध रूप में सादि एवं अपर्यवसित काल तक रहते हैं। कायस्थिति का निरूपण सकायिक-अकायिक, त्रस-स्थावर, पर्याप्त-अपर्याप्त, सूक्ष्म-वादर, परीत-अपरीत, भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक आदि के अनुसार भी किया गया है।

कायस्थिति के साथ अन्तरकाल का भी सम्बन्ध है। इस अध्ययन में अन्तरकाल का भी निरूपण हुआ है। एकेन्द्रिय का अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है। विकलेन्द्रिय, नैरयिक, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देव इन सबका अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। सिद्ध सादि अपर्यवसित होते हैं अतः उनका अन्तरकाल नहीं होता। अन्तरकाल से तात्पर्य है एक दण्डक को छोड़कर पुनः उस दण्डक में जन्म ग्रहण करने के बीच का काल। इस अन्तरकाल का प्रस्तुत अध्ययन में विविध विवक्षाओं से निरूपण हुआ है।

अल्प-बहुत्व की दृष्टि से विचार करें तो सिद्ध जीव सबसे अल्प हैं, असिद्ध या संसारी जीव उनसे अनन्त गुणे हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि सिद्ध जीव भी अनन्त होते हैं और संसारी जीव भी अनन्त होते हैं फिर भी वे समान संख्यक नहीं है, अपितु सिद्धों की अपेक्षा संसारी जीव अनन्तगुणे हैं। इस प्रकार अनन्त भी अनन्तगुणा हो सकता है। दिशा की दृष्टि से सबसे अल्प जीव पश्चिम दिशा में हैं और उत्तर दिशा में सबसे अधिक हैं। पृथ्वीकायिक आदि सभी जीवों का भी अल्प-बहुत्व विभिन्न दिशाओं की दृष्टि से इस अध्ययन में निरूपित हुआ है। समस्त संसारी जीवों में सबसे अल्प गर्भज मनुष्य हैं तथा वनस्पतिकाय के जीव सबसे अधिक हैं। अल्प-बहुत्व का इस अध्ययन में विभिन्न दृष्टियों से विचार हुआ है। योग की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यक्लोक एवं त्रैलोक्य की अपेक्षा भी अल्प-बहुत्व का प्रतिपादन हुआ है। सूक्ष्म-बादर की अपेक्षा से कहें तो सबसे अल्प जीव नोसूक्ष्म-नोबादर हैं, उनसे बादर जीव अनन्तगुणे हैं और उनसे सूक्ष्म जीव असंख्यात गुणे हैं। पर्याप्तक-अपर्याप्तक, सकायिक-अकायिक, त्रस-स्थावर, परीत-अपरीत आदि अपेक्षाओं से भी अल्प-बहुत्व का निरूपण है।

इस प्रकार यह जीव द्रव्य अध्ययन जीव से सम्बद्ध विभिन्न पक्षों की विशिष्ट आगमिक जानकारी से सम्पन्न है। □

६. जीवऽज्झयणं

सूत्र

१. जीवेणं आयभावेण जीवभाव उवदंसण परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! सउट्ठाणे सकम्मे सबले सवीरिए सपुरिसक्कारपरक्कमे आयभावेणं जीवभावं उवदंसेतीति वत्तव्वं सिया?

उ. हंता, गोयमा ! जीवे णं सउट्ठाणे जाव परक्कमेणं आयभावेणं जीवभावं उवदंसेतीति वत्तव्वं सिया।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"सउट्ठाणे जाव परक्कमेणं आयभावेणं जीव भावं उवदंसेतीति वत्तव्वं सिया?"

उ. गोयमा ! जीवे णं अणंताणं आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं सुयनाणपज्जवाणं, ओहिनाणपज्जवाणं, मणपज्जवनाणपज्जवाणं, केवलनाणपज्जवाणं,

मइअण्णापज्जवाणं, सुयअण्णाणपज्जवाणं, विभंगणाणपज्जवाणं,

चक्खुदंसणपज्जवाणं अचक्खुदंसणपज्जवाणं, ओहिदंसणपज्जवाणं, केवलदंसणपज्जवाणं उवओगं गच्छेइ,

उवओगलक्खणे णं जीवे।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जीवे णं सउट्ठाणे जाव परक्कमे णं आयभावेणं जीवभावं उवदंसतीति वत्तव्वं सिया।"

–विया. स. २, उ. १०, सु. ९ (१-२)

२. जीवाणं तिकालवत्तित्त परूवणं–

प. एस णं भंते ! जीवे तीयमणंतं सासयं समयं "भुवि" इति वत्तव्वं सिया?

उ. हंता, गोयमा ! एस णं जीवे तीयमणंतं सासयं समयं "भुवि" इति वत्तव्वं सिया।

प. एस णं भंते ! जीवे पडुप्पन्नं सासयं समयं "भवइ" इति वत्तव्वं सिया?

उ. हंता, गोयमा ! तं चेव उच्चारेयव्वं।

प. एस णं भंते ! जीवे अणागयमणंतं सासयं समयं "भविस्सइ" इति वत्तव्वं सिया?

उ. हंता, गोयमा ! तं चेव उच्चारेयव्वं।

–विया. स. १, उ. ४, सु. ११

३. जीवाणं वोहसण्णया दुविहत्तं–

सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं–

इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ, तं जहा–

६. जीव अध्ययन

सूत्र

१. जीव द्वारा आत्मभाव से जीवभाव के उपदर्शन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! उत्थान, कर्म, वल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम वाला जीव आत्मभाव से जीवभाव (चैतन्य) को प्रदर्शित करता है, क्या ऐसा कहा जा सकता है?

उ. हां, गौतम ! उत्थान यावत् पराक्रम वाला आत्मभाव से जीव भाव को उपदर्शित करता है, ऐसा कहा जा सकता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"उत्थान यावत् पराक्रम वाला आत्मभाव से जीवभाव को उपदर्शित करता है, ऐसा कहा जा सकता है?"

उ. गौतम ! जीव आभिनिवोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान एवं केवलज्ञान के अनन्त पर्यायों के तथा–

मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान, विभंग-ज्ञान के अनन्तपर्यायों के,

एवं चक्षु-दर्शन, अचक्षु-दर्शन, अवधि-दर्शन और केवल दर्शन के अनन्तपर्यायों के उपयोग को प्राप्त करता है, क्योंकि–

जीव का लक्षण उपयोग है।

इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"उत्थान यावत् पराक्रम वाला आत्मभाव से जीवभाव (चैतन्य) को उपदर्शित (प्रकट) करता है ऐसा कहा जा सकता है।"

२. जीवों के त्रिकालवर्तित्त्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या वह जीव अतीत, अनन्त शाश्वत काल में था ऐसा कहा जा सकता है?

उ. हां गौतम ! (द्रव्य की अपेक्षा) यह जीव अतीत, अनन्त शाश्वतकाल में था ऐसा कहा जा सकता है।

प्र. भंते ! क्या यह जीव वर्तमान शाश्वतकाल में है ऐसा कहा जा सकता है?

उ. हां गौतम ! यह जीव वर्तमान काल में है ऐसा पूर्ववत् कहा जा सकता है।

प्र. भंते ! क्या यह जीव अनन्त शाश्वत भविष्यकाल में रहेगा, ऐसा कहा जा सकता है?

उ. हां गौतम ! यह जीव अनन्त शाश्वत भविष्यकाल में रहेगा, ऐसा पूर्ववत् कहा जा सकता है।

३. जीवों की बोध संज्ञा के दो प्रकार–

हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है, उन भगवान् (महावीर स्वामी) ने कहा है–यहां (इस) संसार में किन्हीं जीवों को यह संज्ञा (ज्ञान) नहीं होता है, यथा–

पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
दाहिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
अहाओ दिसाओ वा आगओ अहमंसिं,
अन्नयरीओ दिसाओ वा अणुदिसाओ वा आगओ अहंमसि।
एवमेगेसिं णो णायं भवइ–
अत्थि मे आया उववाइए,
णत्थि मे आया उववाइए,
के अहं आसी,
के वा इओ चुओ पेच्चा भविस्सामि।

मैं पूर्व दिशा से आया हूँ,
अथवा दक्षिण दिशा से आया हूँ,
अथवा पश्चिम दिशा से आया हूँ,
अथवा उत्तर दिशा से आया हूँ,
अथवा ऊर्ध्व दिशा से आया हूँ,
अथवा अधोदिशा से आया हूँ,
अथवा किसी अन्य दिशा से या अनुदिशा (विदिशा) से आया हूँ।
इसी प्रकार कुछ प्राणियों को यह भी ज्ञान नहीं होता–
मेरी आत्मा जन्म धारण करने वाली है, अथवा–
मेरी आत्मा जन्म धारण करने वाली नहीं है,
मैं (पूर्व जन्म में) कौन था?
मैं यहां से च्युत होकर (आयुष्य पूर्ण करके) अगले जन्म में क्या होऊँगा?

सेज्जं पुण जाणेज्जा–सहसम्मुइयाए, परवागरणेणं, अण्णेसिं वा अंतिए सोच्चा, तं जहा–
पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि एवं दक्खिणाओ वा, पच्चत्थिमाओ वा, उत्तराओ वा, उड्ढाओ वा, अहाओ वा, अन्नयरीओ दिसाओ वा अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि।
एवमेगेसिं जं णायं भवइ–अत्थि मे आया उववाइए, जो इमाओ दिसाओ वा अणुदिसाओ वा अणुसंचरइ, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ जो आगओ अणुसंचरइ सोऽहं।

से आयावाई लोगावाई कम्मावाई किरियावाई।
–आया. सु. १, अ. १, सु. १-३

कोई प्राणी अपनी स्वमति से, दूसरे के कहने से अथवा दूसरे से सुनकर के यह जान लेता है, यथा–
मैं पूर्वदिशा से आया हूँ इसी प्रकार दक्षिण दिशा से, पश्चिम दिशा से, उत्तर दिशा से, ऊर्ध्व दिशा से, अधोदिशा से अथवा अन्य किसी दिशा या विदिशा से आया हूँ।

कुछ प्राणियों को यह भी ज्ञात होता है कि–मेरी आत्मा भवान्तर में अनुसंचरण करने वाली है, जो इन दिशाओं और अनुदिशाओं में कर्मानुसार परिभ्रमण करती है। जो इन सव दिशाओं और विदिशाओं में गमनागमन करती है, वही मैं (आत्मा) हूँ।
जो ऐसा जानता है वही आत्मावादी, लोकवादी, कर्मवादी एवं क्रियावादी है।

४. दिट्ठंतपुव्वं लोगपएसा जीवस्स जम्म-मरणेणं पुट्ठत्त परूवणं–

प. एयंसि णं भंते ! एमहालयंसि लोगंसि अत्थि केइ परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे जत्थ णं अयं जीवे न जाए वा, न मए वा वि?
उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।
प. से केणट्ठे णं भंते ! एवं वुच्चइ–
'एयंसि णं एमहालयंसि लोगंसि नत्थि केइ परमाणु पोग्गलमेत्ते वि पएसे जत्थ णं अयं जीवे न जाए वा न मए वा वि?
उ. गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे अयासयस्स एगं महं अयावयं करेज्जा,
से णं तत्थ जहन्नेणं एक्कं वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं अयासहस्सं पक्खिवेज्जा,
ताओ णं तत्थ पउरगोयराओ, पउरपाणियाओ,
जहन्नेणं एगाहं वा, दुयाहं वा, तियाहं वा उक्कोसेणं छम्मासे परिवसेज्जा,

४. दृष्टांतपूर्वक लोक के प्रदेश में जीव के जन्म मरण द्वारा स्पृष्टत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! इतने बड़े लोक में क्या कोई परमाणु पुद्गल जितना भी आकाशप्रदेश ऐसा है, जहां पर इस जीव ने जन्म-मरण न किया हो?
उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"इतने बड़े लोक में परमाणु पुद्गल जितना कोई भी आकाश प्रदेश ऐसा नहीं है, जहाँ इस जीव ने जन्म मरण न किया हो?
उ. गौतम ! जैसे कोई पुरुष सौ वकरियों के लिए एक बड़ा वकरियों का वाड़ा वनाए।
उसमें वह एक, दो या तीन और अधिक से अधिक एक हजार वकरियों को रखे।
वहाँ उनके लिए घास-चारा चरने की प्रचुर भूमि और पानी की व्यवस्था हो।
यदि ये वकरियां वहां कम से कम एक, दो या तीन दिन और अधिक से अधिक छह महीने तक रहें तो–

अत्थि णं गोयमा ! तस्स अयावयस्स केइ परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे जे णं तासिं अयाणं उच्चारेण वा, पासवणेण वा, खेलेण वा, सिंघाणएण वा, वंतेण वा, पित्तेण वा, पूएण वा, सुक्केण वा, सोणिएण वा, चम्मेहि वा, रोमेहि वा, सिंगेहि वा, खुरेहि वा, नहेहिं वा अणोक्कंतपुव्वे भवइ ? णो इणट्ठे समट्ठे,

होज्जा वि णं गोयमा ! तस्स अयावयस्स केइ परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे जे णं तासिं अयाणं उच्चारेण वा **जाव** नहेहिं वा अणोक्कंतपुव्वे,

नो चेव णं एयंसि एमहालयंसि लोगंसि लोगस्स य सासयभाव संसारस्स य अणादिभावं जीवस्स य निच्चभावं कम्मबहुत्तं जम्मण मरणाबाहुल्लं च पडुच्च नत्थि केइ परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे जत्थ णं अयं जीवे न जाए वा, न मए वा वि।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'एयंसि णं एमहालयंसि लोगंसि नत्थि केइ परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे जत्थ णं अयं जीवे न जाए वा, न मए वा वि।' *–विया. स. १२, उ. ७, सु. ३*

हे गौतम ! क्या उस बकरियों के बाड़े का कोई भी परमाणु पुद्गल जितना प्रदेश ऐसा रह सकता है जो उन बकरियों के मल, मूत्र, श्लेष्म (कफ) नाक के मैल (लींट) वमन, पित्त, शुक्र, रूधिर, चर्म, रोम, सींग, खुर और नखों से अस्पृष्ट न रहा हो ? (गौतम ! भंते !) यह अर्थ समर्थ नहीं हैं।

(भगवान् ने कहा–) हे गौतम ! कदाचित् उस बाड़े में कोई एक परमाणु पुद् गल जितना प्रदेश ऐसा भी रह सकता है जो उन बकरियों के मल-मूत्र **यावत्** नखों से अस्पृष्ट रहा हो।

किन्तु इतने बड़े इस लोक में लोक के शाश्वतभाव की दृष्टि से संसार के अनादि होने के कारण जीव की नित्यता, कर्म-बहुलता तथा जन्म मरण की बहुलता की अपेक्षा से कोई परमाणु पुद्गल जितना प्रदेश भी ऐसा नहीं है जहाँ इस जीव ने जन्म-मरण नहीं किया हो।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"इतने बड़े लोक में परमाणु पुद्गल जितना कोई भी आकाश प्रदेश ऐसा नहीं है, जहां इस जीव ने जन्म-मरण न किया हो।"

५. संसार परिब्भमणस्स णवठाणाणि–

जीवाणं णवहिं ठाणेहिं संसारवत्तिंसु वा, वत्तंति वा, वत्तिस्संति वा, तं जहा–

१. पुढविकाइयत्ताए, २. आउकाइयत्ताए,
३. तेउकाइयत्ताए, ४. वाउकाइयत्ताए,
५. वणस्सइकाइयत्ताए, ६. बेइंदियत्ताए,
७. तेइंदियत्ताए, ८. चउरिंदियत्ताए,
९. पंचिंदियत्ताए, *–ठाणं अ. ९ सु. ६६६*

५. संसार परिभ्रमण के नौ स्थान–

जीवों ने नौ स्थानों से संसार में परिभ्रमण किया था, करते हैं और करेंगे, यथा–

१. पृथ्वीकाय के रूप में, २. अप्काय के रूप में,
३. तेजस्काय के रूप में, ४. वायुकाय के रूप में,
५. वनस्पतिकाय के रूप में, ६. द्वीन्द्रिय के रूप में,
७. त्रीन्द्रिय के रूप में, ८. चतुरिन्द्रिय के रूप में,
९. पञ्चेन्द्रिय के रूप में।

६. छ ठाणेसु जीवाणं असामत्थ परूवणं–

छहिं ठाणेहिं सव्वजीवाणं णत्थि इड्ढी इ वा, जुइ इ वा, जसे इ वा, बले इ वा, वीरिए इ वा, पुरिसक्कार परक्कमे इ वा, तं जहा–

१. जीवं वा अजीवं करणयाए,
२. अजीवं वा जीवं करणयाए,
३. एगसमएणं वा दो भासाओ भासित्तए,
४. सयं कडं वा कम्मं वेदेमि वा, मा वा वेदेमि,
५. परमाणुपोग्गलं वा छिंदित्तए वा, भिंदित्तए वा, अगणिकाएण वा समोदहित्तए,
६. बहिया वा लोगंता गमणयाए। *–ठाणं. अ. ६, सु. ४७९*

६. छ स्थानों में जीवों के असामर्थ्य का प्ररूपण–

सब जीवों में इन छह कार्यों को करने की ऋद्धि, द्युति, यश, वल, वीर्य पुरुषकार पराक्रम नहीं होता, यथा–

१. जीव को अजीव में परिणत करने की,
२. अजीव को जीव में परिणत करने की,
३. एक समय में दो भाषा वोलने की,
४. अपने द्वारा किए हुए कर्मो का वेदन करूं या नहीं करूं इस भाव की,
५. परमाणु पुद्गल का छेदन भेदन करने और उसे अग्निकाय में जलाने की,
६. लोकान्त से वाहर जाने की।

७. जीवदव्वाणं अणंतत्त परूवणं–

प. जीवदव्वा णं भंते ! किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?

उ. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।

७. जीव द्रव्यों के अनन्तत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव द्रव्य संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ. गौतम ! जीवद्रव्य संख्यात नहीं हैं, असंख्यात नहीं हैं, किन्तु अनन्त हैं।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जीवदव्वा णं, नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ?"

उ. गोयमा ! असंखेज्जा णेरइया, असंखेज्जा असुरकुमारा जाव असंखेज्जा थणियकुमारा, असंखेज्जा पुढवीकाइया जाव असंखेज्जा वाउकाइया, अणंता वणस्सइकाइया,

असंखेज्जा बेइन्दिया, असंखेज्जा तेइंदिया, असंखेज्जा चउरिंदिया, असंखेज्जा पंचेन्दियतिरिक्खजोणिया,

असंखेज्जा मणूसा, असंखेज्जा वाणमंतरिया, असंखेज्जा जोइसिया, असंखेज्जा वेमाणिया, अणंता सिद्धा,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जीवदव्वा णं नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।"[1]

–अणु. सु. ४०४

८. खुड्ड पाणाणं छव्विहत्तं–

छव्विहा खुड्डा पाणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. बेइंदिया, २. तेइंदिया, ३. चउरिंदिया,

४. संमुच्छिमपंचेन्दियतिरिक्खजोणिया,[2]

५. तेउकाइया, ६. वाउकाइया।

–ठाणं. अ. ६, सु. ५१३

९. हत्थिस्स य कुंथुस्स य सम जीव पएसत्त परूवणं–

प. से नूणं भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे ?

उ. हंता, गोयमा ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे।

प. कम्हाणं भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए कूडागारसाला सिया जाव गंभीरा, अह णं केइ पुरिसे जोइं व दीवं व गहाय तं कूडागारसालं अंतो-अंतो अणुपविसइ, तीसे कूडागारसालाए सव्वओ समंता घणनिचिय निरंतर निच्छिड्डाइं दुवार-वयणाइं पिहेइ पिहेत्ता तीसे कूडागारसालाए बहुमज्झदेसभाए तं पईवं पलीवेज्जा।

तए णं से पईवे तं कूडागारसालं अंतो-अंतो ओभासइ, उज्जोवेइ, तवइ, पभासेइ नो चेव णं बाहिं। अह णं से पुरिसे तं पईवं इड्डरएणं पिहेज्जा, तए णं से पईवे तं इड्डरयं अंतो अंतो ओभासेइ जाव पभासेइ, नो चेव णं इड्डरगस्स बाहिं, नो चेव णं कूडागारसालं, नो चेव णं कूडागारसालाए बाहिं।

[illegible] गोकिलिंजेणं पच्छिपिडएणं गंडमाणियाए आढएणं [illegible] कुडवेणं अद्धकुडवेणं [illegible] चउभाइयाए [illegible] पिहेज्जा। तए णं से पईवे [illegible]

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कह जाता है कि–

"जीवद्रव्य संख्यात नहीं हैं, असंख्यात नहीं हैं, किन्तु अनन्त हैं ?"

उ. गौतम ! असंख्यात नारक हैं, असंख्यात असुरकुमार यावत असंख्यात स्तनितकुमार देव हैं, असंख्यात पृथ्वीकायिक जीव हैं यावत् असंख्यात वायुकायिक जीव हैं, अनन्त वनस्पतिकायिक जीव हैं,

असंख्यात द्वीन्द्रिय हैं, असंख्यात त्रीन्द्रिय हैं, असंख्यात चतुरिन्द्रिय हैं, असंख्यात पंचेन्द्रियतिर्यञ्च योनिक हैं,

असंख्यात मनुष्य हैं, असंख्यात वाणव्यंतर देव हैं, असंख्यात ज्योतिष्क देव हैं, असंख्यात वैमानिक देव हैं और अनन्त सिद्ध हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि

"जीवद्रव्य संख्यात नहीं हैं, असंख्यात भी नहीं हैं किन्तु अनन्त हैं।"

८. क्षुद्र प्राणियों के छह प्रकार–

क्षुद्र प्राणी छह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. द्वीन्द्रिय, २. त्रीन्द्रिय, ३. चतुरिन्द्रिय,

४. सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक,

५. तेजस्कायिक, ६. वायुकायिक।

९. हाथी और कुंथु के सम जीव प्रदेशत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या वास्तव में हाथी और कुंथुए का जीव समान है ?

उ. हां, गौतम ! हाथी और कुंथुए का जीव समान है।

प्र. भंते ! हाथी और कुंथुए का जीव समान कैसे हो सकता है ?

उ. गौतम ! जैसे कोई कूटागारशाला हो, जो यावत् विशाल और गंभीर हो और कोई एक पुरुष उस कूटागारशाला में अग्नि और दीपक के साथ घुसकर उसके ठीक मध्य भाग में खड़ा हो जाए। तत्पश्चात् उस कूटागारशाला के सभी द्वारों के किवाड़ों को इस प्रकार सटाकर अच्छी तरह बंद कर दे कि जिससे किंचित्मात्र भी सांध छिद्र न रहे। फिर उस कूटागारशाला के बीचोबीच उस प्रदीप को जलाये।

तब जलाने पर वह दीपक उस कूटागारशाला के अन्तर्वर्ती भाग को ही प्रकाशित, उद्योतित, तापित और प्रभासित करता है किन्तु बाहरी भाग को प्रकाशित नहीं करता है। अब यदि वही पुरुष उस दीपक को एक विशाल पिटारे से ढक दे तो दीपक कूटागारशाला की तरह उस पिटारे के भीतरी भाग को ही प्रकाशित करेगा किन्तु पिटारे के बाहरी भाग को प्रकाशित नहीं करेगा।

इसी प्रकार गोकिलिंज (गाय को घास रखने का [illegible]) पच्छिकापिटक (पिटारी) (गंडमाणिका) अनाज को मापने [illegible] चर्तन (आढक) (चार सेर धान्य मापने का पात्र) [illegible] प्रस्थक, अर्धप्रस्थक कुडव, अर्धकुडव, चतुर्भागिका [illegible]

[1] [illegible]

[2] ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३५५ (३)

दीवचंपगस्स अंतो-अंतो ओभासेइ जाव पभासंइ, नो चेव णं दीवचंपगस्स बाहिं, नो चेव णं चउसट्ठियाए बाहिं, नो चेव कूडागारसालं, नो चेव णं कूडागारसालाए बाहिं

एवामेव गोयमा ! जीवे वि जं जारिसयं पुव्वकम्मनिबद्धं बोद्धिं निव्वत्तेइ तं असंखेज्जेहिं जीवपएसेहिं सचित्तं करेइ खुड्डियं वा महालियं वा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-
"हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे।"

–विया. स. ७, उ. ८, सु. २

अष्टभागिका, षोडशिका, द्वात्रिंशतिका, चतुष्षष्टिका और दीपचम्पक (दीपक का ढकना) से ढके तो वह दीपक उस ढक्कन के भीतरी भाग को ही प्रकाशित यावत् प्रभासित करेगा किन्तु ढक्कन के बाहरी भाग को प्रकाशित नहीं करेगा तथा न चतुष्षष्टिका के बाहरी भाग को, न कूटागारशाला को, न कूटागारशाला के बाहरी भाग को प्रकाशित करेगा।

इसी प्रकार गौतम ! पूर्वभवोपार्जित कर्म के निमित्त से जीव को क्षुद्र (छोटे) या महत् (बड़े) जैसे भी शरीर की प्राप्ति होती है, उसी के अनुसार आत्मप्रदेशों को संकुचित और विस्तृत करने के स्वभाव के कारण वह उस शरीर को अपने असंख्यात आत्मप्रदेशों से व्याप्त करता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'हाथी और कुंथु का जीव समान प्रदेश वाला है।'

१०. जीवपएसेसु सत्थपओगाभाव परूवणं–

प. अह भंते ! कुम्मे कुम्मावलिया, गोहे गोहावलिया, गोणे गोणावलिया, मणुस्से मणुस्सावलिया, महिसे महिसावलिया, एएसि णं दुहा वा, तिहा वा, संखेज्जहा वा, छिन्नाणं जे अंतरा ते वि णं तेहिं जीवपएसेहिं फुडा ?

उ. हंता, गोयमा ! फुडा।

प. पुरिसे णं भंते ! ते अंतरे हत्थेण वा, पाएण वा, अंगुलियाए वा, सलागाए वा, कट्ठेण वा, किलिंचेण वा, आमुसमाणे वा, सम्मुसमाणे वा, आलिहमाणे वा, विलिहमाणे वा, अन्नयरेण वा तिक्खेणं सत्थजाएणं आच्छिदेमाणे वा, विच्छिदेमाणे वा, अगणिकाएणं वा समोडहमाणे तेसिं जीवपएसाणं किंचि आबाहं वा, वाबाहं वा, उप्पाएइ ? छविच्छेदं वा करेइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं संकमइ।

–विया. स. ८, उ. ३, सु. ६

१०. जीवप्रदेशों में शस्त्र प्रयोगाभाव का प्ररूपण–

प्र. भंते ! कूर्म (कछुआ) कूर्मावली (कछुओं की श्रेणी) गोधा (गोह) गोधा की पंक्ति (गोधावलिका) गाय, गायों की पंक्ति, मनुष्य, मनुष्यों की पंक्ति, भैंसा, भैंसों की पंक्ति इन सबके दो या तीन अथवा संख्यात टुकड़े किये जाएं तो उनके बीच का भाग (अन्तर) क्या जीवप्रदेशों से स्पृष्ट होता है ?

उ. हां, गौतम ! वह (बीच का भाग जीवप्रदेशों से) स्पृष्ट होता है।

प्र. भंते ! कोई पुरुष उन कछुए आदि के खण्डों के बीच भाग को हाथ से, पैर से, अंगुलि से, शलाका (सलाई) से, काष्ठ से या लकड़ी के छोटे टुकड़े से थोड़ा स्पर्श करे, विशेष स्पर्श करे, थोड़ा सा खींचे या विशेष खींचे या किसी तीक्ष्ण शस्त्रसमूह से थोड़ा छेदे या विशेष छेदे अथवा अग्निकाय से उसे जलाए तो क्या उन जीवप्रदेशों को थोड़ी या अधिक बाधा उत्पन्न होती है या उसके किसी भी अवयव का छेदन होता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है (अर्थात् वह जरा सी भी पीड़ा नहीं पहुँचा सकता और न अंगभंग कर सकता है) क्योंकि उन जीवप्रदेशों पर शस्त्र (आदि) का प्रभाव नहीं होता।

११. ओदणाइ जीवाणं पुव्वपच्छा भाव पण्णवणया सरीर परूवणं–

प. अह णं भंते ! ओदणे, कुम्मासे, सुरा एए णं किं सरीरा ति वत्तव्वयं सिया ?

उ. गोयमा ! ओदणे, कुम्मासे, सुराए य जे घणे दव्वे एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च वणस्सइजीवसरीरा,
तओ पच्छा सत्थातीया सत्थपरिणामिया अगणिज्झामिया अगणिज्झुसिया अगणिपरिणामिया अगणिजीवसरीरा त्ति वत्तव्वं सिया।

सुराए य जे दव्वे एए णं पुव्वभाव पण्णवणं पडुच्च आउजीवसरीरा, तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिसरीरा त्ति वत्तव्वं सिया॥

–विया. स. ५, उ. २, सु. १४

११. ओदन आदि जीवों के पूर्व पश्चात् भाव प्रज्ञापना से शरीर की प्ररूपणा–

प्र. भंते ! ओदन, कुल्माष, सुरा इन तीनों द्रव्यों को किन जीवों का शरीर कहना चाहिए ?

उ. गौतम ! ओदन, कुल्माष और सुरा में जो घन द्रव्य हैं, वे पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से वनस्पति जीव के शरीर हैं।
इसके पश्चात् जब वे ओदनादि द्रव्य शस्त्रातीत हो जाते हैं, शस्त्रपरिणत हो जाते हैं, अग्निध्यामित, अग्निझुषित (अग्निसेवित) और अग्निपरिणमित हो जाते हैं, तब वे द्रव्य अग्नि के शरीर वाले कहे जा सकते हैं।
सुरा में जो तरल द्रव्य (पदार्थ) है वह पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा अप्कायिक जीवों का शरीर है तत्पश्चात् शस्त्रातीत यावत् (अग्निपरिणमित हो जाता है) तब वह अग्निकाय शरीर कहा जा सकता है।

१२. अयाइ जीवाणं सरीर परूवणं–

प. अह णं भंते ! अये, तंबे, तउए, सीसए, उवले, कसट्टिया एए णं किं सरीरा ति वत्तव्वं सिया ?

१२. लोह आदि के जीवों की शरीर प्ररूपणा–

प्र. भन्ते ! लोहा, ताम्बा, त्रपुप्, शीशा, उपल और कसौटी ये सब द्रव्य किन जीवों के शरीर कहलाते हैं ?

उ. गोयमा ! अए, तंबे, तउए, सीसए, उवले, कसट्टिया एए णं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च पुढविजीवसरीरा,

तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिपरिणामिया अगणिजीवसरीरा त्ति वत्तव्वं सिया।

–विया. स. ५, उ. २, सु. १५

उ. गौतम ! लोहा, ताम्बा, कलई, शीशा, उपल और लोहे का काट ये सब द्रव्य पूर्वप्रज्ञापना की अपेक्षा से पृथ्वीकायिक जीवों के शरीर कहे जा सकते हैं,

और उसके बाद शस्त्रातीत यावत् अग्नि परिणामित होने पर ये अग्निकायिक जीवों के शरीर कहे जा सकते है।

१३. अट्ठिचम्माईणं जीवाणं सरीर परूवणं–

प. अह णं भंते ! अट्ठी अट्ठिज्झामे, चम्मे चम्मज्झामे, रोमे रोमज्झामे, सिंगे सिंगज्झामे, खुरे खुरज्झामे, नखे नखज्झामे, एए णं किं सरीरा ति वत्तव्वं सिया ?

उ. गोयमा ! अट्ठी, चम्मे, रोमे, सिंगे, खुरे, नहे, एए णं तसपाण जीवसरीरा अट्ठिज्झामे, चम्मज्झामे, रोमज्झामे, सिंगज्झामे खुरज्झामे, नखज्झामे एएणं पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च तसपाणजीवसरीरा तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्वं सिया।

–विया. स. ५, उ. २, सु. १६

१३. अस्थि चर्म आदि के जीवों की शरीर प्ररूपणा–

प्र. भंते ! हड्डी, अग्निप्रज्वलित हड्डी, चमड़ा, अग्निप्रज्वलित चमड़ा, रोम, अग्निप्रज्वलित रोम, सींग, अग्निप्रज्वलित सींग, खुर, अग्निप्रज्वलित खुर, नख, अग्निप्रज्वलित नख, ये सब किन जीवों के शरीर कहे जा सकते हैं ?

उ. गौतम ! हड्डी, चमड़ा, रोम, सींग, खुर और नख ये सब त्रसजीवों के शरीर कहे जा सकते हैं। अग्निप्रज्वलित हड्डी, चमड़ा, रोम, सींग और नख ये सब पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से तो त्रसजीवों के शरीर हैं किन्तु उसके पश्चात् शस्त्रातीत यावत् अग्निपरिणामित होने पर ये अग्निकायिक जीवों के शरीर कहे जा सकते हैं।

१४. इंगालाइ जीवाणं सरीर परूवणं–

प. अह णं भंते ! इंगाले, छारिए, भुसे, गोमए एएणं किं सरीरा ति वत्तव्वं सिया ?

उ. गोयमा ! इंगाले, छारिए, भुसे, गोमए एए णं पुव्वभावपण्णवणाए एगिंदियजीवसरीरप्पओग-परिणामिया वि जाव पंचिंदियजीवसरीरप्पओग-परिणामिया वि,

तओ पच्छा सत्थातीया जाव अगणिजीवसरीरा ति वत्तव्वं सिया।

–विया. स. ५, उ. २, सु. १७

१४. अंगार आदि के जीवों की शरीर प्ररूपणा–

प्र. भन्ते ! अंगारे, राख, भूसा और गोवर इन सवको किन जीवों के शरीर कहे जा सकते हैं ?

उ. गौतम ! अंगारे, राख, भूसा और गोवर, ये सव पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से एकेन्द्रियजीवों द्वारा अपने शरीर रूप प्रयोगों से (अपने व्यापार से) अपने साथ परिणामित एकेन्द्रिय शरीर यावत् पंचेन्द्रिय जीवों तक के शरीर भी कहे जा सकते हैं।

तत्पश्चात् शस्त्रातीत यावत् अग्निकाय परिणामित हो जाने पर वे अग्निकायिक जीवों के शरीर कहे जा सकते हैं।

१५. चंद दिट्ठंतेण जीव गुणाणं वड्ढोऽवड्ढि परूवणं–

प. कहं णं भंते ! जीवा वड्ढंति वा हायंति वा ?

उ. गोयमा ! से जहाणामए वहुलपक्खस्स पाडिवयाचंदे पुण्णिमाचंदं पणिहाय हीणे वण्णेणं, हीणे सोम्मयाए, हीणे निद्धयाए, हीणे कंतीए

एवं दित्तीए जुत्तीए छायाए पभाए ओयाए लेस्साए मंडलेणं,

तयाणंतरं च णं बीयाचंदे पाडिवयं चंदं पणिहाय हीणतराए वण्णेणं जाव मंडलेणं,

तयाणंतरं च णं तइयाचंदे बिइयाचंदं पणिहाय हीणतराए वण्णेणं जाव मंडलेणं,

एवं खलु एएणं कमेणं परिहायमाणे-परिहायमाणे जाव अमावस्साचंदे चाउद्दसिचंदं पणिहाय नट्ठे वण्णेणं जाव नट्ठे मंडलेणं।

१५. चन्द्र के दृष्टांत द्वारा जीवगुणों की वृद्धि-हानि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जीव किस कारण से वृद्धि को प्राप्त होते हैं और किस कारण से हानि को प्राप्त होते हैं ?

उ. गौतम ! जैसे कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्र पूर्णिमा के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण से हीन होता है, सौम्यता से हीन होता है, स्निग्धता से हीन होता है, कान्ति से हीन होता है, इसी प्रकार दीप्ति (चमक) से, युक्ति (आकाश मंडल के साथ संयोग) से, छाया (प्रतिविम्व) से, प्रभा से, ओज से, लेश्या से और मण्डल (गोलाई) से हीन होता है,

तदनन्तर कृष्णपक्ष की द्वितीया का चन्द्रमा प्रतिपदा के चन्द्रमा की अपेक्षा वर्ण से हीनतर होता है यावत् मण्डल से भी हीनतर होता है,

तत्पश्चात् तृतीया का चन्द्र द्वितीया के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण से हीनतर होता है यावत् मंडल से भी हीनतर होता है।

इसी प्रकार इसी क्रम से हीन-हीन होता हुआ यावत् अमावस्या का चन्द्र चतुर्दशी के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण यावत् मण्डल से सर्वथा नष्ट होता है,

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा **जाव** पव्वइए समाणे हीणे खंतीए-**एवं** मुत्तीए गुत्तीए अज्जवेणं मद्दवेणं लाघवेणं सच्चेणं तवेणं चियाए अकिंचणयाए बंभचेरवासेणं तयाणंतरं च णं हीणे हीणतराए खंतीए **जाव** हीणे हीणतराए बंभचेरवासेणं खलु एएणं कमेणं परिहीयमाणे परिहीयमाणे णट्ठे खंतीए **जाव** णट्ठे बंभचेरवासेणं।

इसी प्रकार हे आयुष्मन श्रमणों ! जो हमारा साधु या साध्वी **यावत्** प्रव्रजित होकर क्षान्ति क्षमा से हीन होता है, **इसी प्रकार** मुक्ति (निर्लोभता) गुप्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य वास से हीन होता है और उसके पश्चात् क्षान्ति से हीन **यावत्** ब्रह्मचर्यवास से हीन हीनतर होता जाता है इसी प्रकार इसी क्रम से हीन हीनतर होते हुए उसके क्षमा आदि गुण **यावत्** उसका ब्रह्मचर्यवास नष्ट हो जाता है।

से जहा वा सुक्कपक्खस्स पाडिवयाचंदे अमावासाए चंदं पणिहाय अहिए वण्णेणं **जाव** अहिए मंडेलणं।

जैसे शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा का चन्द्र अमावस्या के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण **यावत्** मंडल से अधिक होता है,

तयाणंतरं च णं बिइयाचंदे पाडिवयाचंदं पणिहाय अहियतराए वण्णेणं **जाव** अहियतराए मंडेलणं।

तदनंतर द्वितीया का चन्द्र प्रतिपदा के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण मण्डल से अधिक अधिकतर होता है।

एवं खलु एएणं कमेणं-परिवुड्ढेमाणे **जाव** पुण्णिमाचंदे चाउद्दसिं चंदं पणिहाय पडिपुण्णे वण्णेणं **जाव** पडिपुण्णे मंडलेणं।

इसी प्रकार इसी क्रम से बढ़ते हुए **यावत्** पूर्णिमा का चन्द्र चतुर्दशी के चन्द्र की अपेक्षा वर्ण **यावत्** मंडल से परिपूर्ण होता है।

एवामेव समणाउसो ! जो अम्हे निग्गंथो वा निग्गंथी वा **जाव** पव्वइए समाणे अहिए खंतीए **जाव** बंभचेरवासेणं तयाणंतरं च णं अहियतराए खंतीए **जाव** बंभचेरवासेणं।

इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो हमारा साधु या साध्वी प्रव्रजित होकर क्षमा **यावत्** ब्रह्मचर्य से अधिक होता है, तदनंतर क्षमा **यावत्** ब्रह्मचर्यवास में अधिक वृद्धि करता जाता है।

एवं खलु एएणं कमेणं-परिवड्ढेमाणे परिवड्ढेमाणे **जाव** पडिपुण्णे बंभचेरवासेणं,

इसी प्रकार इसी **क्रम से** बढ़ते बढ़ते क्षमा **यावत्** ब्रह्मचर्य वास से परिपूर्णता को प्राप्त हो जाते हैं।

एवं खलु जीवा वड्ढंति वा हायंति वा।

इस प्रकार जीव वृद्धि और हानि को प्राप्त होते हैं।

–णाया. सु. १, अ. १०, सु. ४-६

१६. वत्थस्स य जीवाण य साइ-सपज्जवसियाइ परूवणं

१६. वस्त्र और जीवों की सादि सपर्यवसितादि का प्ररूपण–

प. वत्थे णं भंते ! किं साइए सपज्जवसिए साइए अपज्जवसिए, अणाइए सपज्जवसिए अणाइए अपज्जवसिए ?

प्र. भंते ! क्या वस्त्र सादि-सान्त है ? सादि-अनन्त है ? अनादि-सान्त है ? या अनादि-अनंत है ?

उ. गोयमा ! वत्थे साइए सपज्जवसिए,

अवसेसा तिण्णि वि पडिसेहेयव्वा।

उ. गौतम ! वस्त्र सादि-सान्त है,

शेष तीन भंगों का (वस्त्र में) निषेध करना चाहिए।

प. जहा णं भंते ! वत्थे साइए सपज्जवसिए णो साइए अपज्जवसिए, णो अणाइए सपज्जवसिए, णो अणाइए अपज्जवसिए तहा णं जीवा किं साइया सपज्जवसिया **जाव** अणाइया अपज्जवसिया ?

प्र. भंते ! जिस प्रकार वस्त्र सादि-सान्त है, सादि-अनंत नहीं है, अनादि-सान्त नहीं है और अनादि-अनंत नहीं है क्या वैसे ही जीव सादि-सान्त है **यावत्** अनादि-अनंत है ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया साइया सपज्जवसिया **जाव** अत्थेगइया अणाइया अपज्जवसिया।

उ. गौतम ! कितने ही जीव सादि सान्त हैं **यावत्** कितने ही जीव अनादि अनंत हैं।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइया साइया सपज्जवसिया **जाव** अत्थेगइया अणाइया अपज्जवसिया ?'

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"कितने ही जीव सादि सान्त हैं **यावत्** कितने ही जीव अनादि अनन्त हैं ?"

उ. गोयमा ! नेरइया, तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा, देवा, गइरागइं पडुच्च साइया सपज्जवसिया,

सिद्धा गइं पडुच्च साइया अपज्जवसिया,

भवसिद्धिया लद्धिं पडुच्च अणाइया सपज्जवसिया,

अभवसिद्धिया संसारं पडुच्च अणाइया अपज्जवसिया भवंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

उ. गौतम ! नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देव, गति और आगति की अपेक्षा सादि सान्त है,

गति की अपेक्षा से सिद्धजीव सादि अनंत है,

लब्धि की अपेक्षा भवसिद्धिक जीव अनादि सान्त हैं,

संसार की अपेक्षा अभवसिद्धिक जीव अनादि अनन्त हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

उ. गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता; तं जहा–

१. पज्जत्तगसव्वट्ठसिद्ध अणुत्तरोववाइय-कप्पाईय वेमाणिय देवपंचेंदियजीवनिव्वत्तीय य,

२. अपज्जत्तगसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय-कप्पाईय-वेमाणिय देवपंचेंदियजीवनिव्वत्ती य।

–विया. स. १९, उ. ८, सु. १-४

उ. गौतम ! यह निर्वृत्ति दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. पर्याप्तसर्वार्थसिद्धअनुत्तरौपपातिक वैमानिक देव-पंचेन्द्रिय जीवनिर्वृत्ति,

२. अपर्याप्तसर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक वैमानिक देवपंचेन्द्रियजीव निर्वृत्ति।

१९. संसारी सिद्ध जीवेसु सोवचयाइत्तं कालमान य परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं सोवचया, सावचया, सोवचयसावचया, निरुवचयनिरवचया?

उ. गोयमा ! जीवा णो सोवचया, नो सावचया, नो सोवचयसावचया, निरुवचयनिरवचया।

एगिंदिया तइयपयदे, सेसा जीवा चउहिं वि पएहिं भाणियव्वा।

प. सिद्धा णं भंते ! किं सोवचया जाव निरुवचयनिरवचया?

उ. गोयमा ! सिद्धा सोवचया, णो सावचया, णो सोवचयसावचया, निरुवचयनिरवचया।

प. जीवा णं भंते ! केवइयं कालं निरुवचयनिरवचया?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं।

प. नेरइया णं भंते ! केवइयं कालं सोवचया?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं।

प. केवइयं कालं सावचया?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

प. नेरइया णं भंते ! केवइयं कालं सोवचयसावचया?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

प. नेरइया णं भंते ! केवइयं कालं निरुवचयनिरवचया?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

एगिंदिया सव्वे सोवचयसावचया सव्वद्धं।

सेसा सव्वे सोवचया वि, सावचया वि, सोवचयसावचया वि, निरुवचयनिरवचया वि

जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइ भागं,

अवट्ठिएहिं वक्कंतिकालो भाणियव्वो।[1]

प. सिद्धा णं भंते ! केवइयं कालं सोवचया?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अट्ठ समया।

प. सिद्धा णं भंते ! केवइयं कालं निरुवचयनिरवचया ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा।

–विया. स. ५, उ. ८, सु. २१-२८

१९. संसारी और सिद्ध जीवों में सोपचयादित्व और कालमान का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव सोपचय (उपचयसहित) हैं, सापचय (अपचयसहित) हैं, सोपचय-सापचय (उपचय-अपचय सहित) हैं या निरुपचय निरपचय (उपचय अपचय-रहित) हैं?

उ. गौतम ! जीव सोपचय, सापचय और सोपचय-सापचय नहीं है किन्तु निरुपचयनिरुपचय हैं।

एकेन्द्रिय जीवों में तीसरा विकल्प सोपचय-सापचय कहना चाहिए। शेष सब जीवों में चारों विकल्प कहने चाहिए।

प्र. भंते ! क्या सिद्ध सोपचय यावत् निरुपचय-निरपचय हैं?

उ. गौतम ! सिद्ध सोपचय हैं, निरुपचय-निरपचय हैं किन्तु सापचय और सोपचय-सापचय नहीं हैं।

प्र. भंते ! जीव कितने काल तक निरुपचय-निरपचय रहते हैं?

उ. गौतम ! जीव सर्वकाल तक (निरुपचय-निरपचय) रहते हैं।

प्र. भंते ! नैरयिक कितने काल तक सोपचय रहते हैं?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यात भाग तक नैरयिक सोपचय रहते हैं।

प्र. भंते ! नैरयिक कितने काल तक सापचय रहते हैं?

उ. गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए।

प्र. भंते ! नैरयिक सोपचय-सापचय कितने काल तक रहते हैं?

उ. गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए।

प्र. भंते ! नैरयिक कितने काल तक निरुपचय-निरपचय रहते हैं?

उ. गौतम ! नैरयिक जीव जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वारह मुहूर्त तक निरुपचय-निरपचय रहते हैं।

सभी एकेन्द्रिय जीव सर्वकाल सोपचय-सापचय रहते हैं।

शेष सभी जीव सोपचय भी हैं, सापचय भी हैं, सोपचय सापचय भी है और निरुपचय निरपचय भी हैं।

इन चारों का काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका का असंख्यातवां भाग है।

अवस्थिति का काल व्युत्क्रांति पद के अनुसार जानना चाहिए।

प्र. भंते ! सिद्ध कितने काल तक सोपचय रहते हैं?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आठ समय तक वे सोपचय रहते हैं।

प्र. भंते ! सिद्ध निरुपचय-निरपचय कितने काल तक रहते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक निरुपचय-निरपचय रहते हैं।

१. वक्कंति अध्ययन देखें। –पण्ण, प. ६

एगिंदिया वड्ढंति वि, हायंति वि, अवट्ठिया वि।

एकेन्द्रिय जीव बढ़ते भी हैं, घटते भी हैं और अवस्थित भी रहते हैं।

एएहिं तिहि वि जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइ भागं।

इन तीनों की वृद्धि, हानि अवस्थिति का काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका का असंख्यातवां भाग है।

बेइंदिया वड्ढंति हायंति तहेव, अवट्ठिया जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दो अंतोमुहुत्ता।

द्वीन्द्रिय जीव भी इसी प्रकार बढ़ते-घटते हैं। इनका अवस्थिति-काल एक समय और उत्कृष्ट दो अन्तर्मुहूर्त्त है।

एवं जाव चउरिंदिया।

इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों पर्यन्त कहना चाहिए।

अवसेसा सव्वे वड्ढंति, हायंति तहेव।

शेष सब जीवों (पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से वैमानिकों तक) के वृद्धि हानि का कथन पूर्व की तरह करना चाहिए।

अवट्ठियाणं णाणत्तं इमं, तं जहा–
सम्मुच्छिम पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं दो अंतोमुहुत्ता।
गब्भवक्कंतियाणं चउव्वीसं मुहुत्ता।
सम्मुच्छिममणुस्साणं अट्ठचत्तालीसं मुहुत्ता।
गब्भवक्कंतियमणुस्साणं चउव्वीसं मुहुत्ता।
वाणमंतर जोइस सोहम्मीसाणेसु अट्ठचत्तालीसं मुहुत्ता।
सणंकुमारे अट्ठारस राइंदियाइं चालीस य मुहुत्ता,
माहिंदे चउवीसं राइंदियाइं वीस य मुहुत्ता,
बंभलोए पंच चत्तालीसं राइंदियाइं
लंतए नउइं राइंदियाइं।
महासुक्के सट्ठं राइंदिय सयं।
सहस्सारे दो राइंदियसयाइं।
आणय-पाणयाणं संखेज्जा मासा।
आरणऽच्चुयाणं संखेज्जाइ वासाइं।

उनके अवस्थान काल में यह भिन्नता है, यथा–
सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों का दो अन्तर्मुहूर्त,
गर्भजपंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों का चौवीस मुहूर्त,
सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का अड़चालीस (४८) मुहूर्त,
गर्भज मनुष्यों का चौवीस मुहूर्त,
वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और सौधर्म, ईशान देवों का अड़चालीस (४८) मुहूर्त,
सनत्कुमार देवों का अठारह रात दिन और चालीस मुहूर्त,
माहेन्द्र देवलोक के देवों का चौवीस रातदिन और वीस मुहूर्त,
ब्रह्मलोक के देवों का पैंतालीस रातदिन,
लान्तक देवों का नव्वे रातदिन,
महाशुक्र के देवों का एक सौ साठ दिन,
सहस्रार कल्प के देवों का दो सौ रातदिन,
आनत और प्राणत देवलोक के देवों का संख्यात मास,
आरण और अच्युत देवलोक के देवों का संख्यात वर्षों का अवस्थान काल है।

एवं गेवेज्जगदेवाणं।

इसी प्रकार इतना ही नौ ग्रैवेयक देवों का भी अवस्थान काल जान लेना चाहिए।

विजय–वेजयंत-जयंत-अपराजियाणं असंखेज्जाइं वाससहस्साइं।
सव्वट्ठसिद्धे य पलिओवमस्स संखेज्जेइभागो।

विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजित विमानवासी देवों का अवस्थान काल असंख्यात हजार वर्षों का है।
सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवों का अवस्थानकाल पल्योपम का संख्यातवाँ भाग है।

एवं भाणियव्वं-वड्ढंति हायंति जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइ भागं, अवट्ठियाणं जं भणियं।

ये सब जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग तक बढ़ते घटते हैं, इस प्रकार कहना चाहिए और इनका अवस्थानकाल जो ऊपर कहा गया है वही है।

प. सिद्धाणं भंते ! केवइयं कालं वड्ढंति ?
उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अट्ठ समया।
प. केवइयं कालं अवट्ठिया ?
उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा।

–विया. स. ५, उ. ८, सु. १०-२०

प्र. भंते ! सिद्ध कितने काल तक बढ़ते हैं ?
उ. गौतम ! सिद्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आठ समय तक बढ़ते हैं।
प्र. भंते ! सिद्ध कितने काल तक अवस्थित रहते हैं ?
उ. गौतम ! सिद्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक अवस्थित रहते हैं।

२१. विहिह-विवक्खया सव्व जीवाणं भेया–

(१) दुविहत्तं–

तत्थ णं जे ते एवामाहंसु–दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा–ते एवमाहंसु,

२१. विविध विवक्षा से सभी जीवों के भेद–

(१) दो प्रकार–

१. उनमें से जो सभी जीवों को दो प्रकार का कहते हैं, यथा–वे इस प्रकार कहते हैं।

१. सिद्धा चेव, २. असिद्धा चेव।

—जीवा. पडि.९, सु. २३१

१. सिद्ध, २. असिद्ध।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सइंदिया चेव, २. अणिंदिया चेव।[1]

—जीवा पडि. ९, सु. २३२

२. अथवा सभी जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. सइंद्रिय, २. अनिंद्रिय।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सकाइया चेव, २. अकाइया चेव।

—जीवा. पडि. ९ सु. २३२

३. अथवा सभी जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. सकायिक, २. अकायिक।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सजोगी चेव, २. अजोगी चेव।

—जीवा पडि. ९ सु. २३२

४. अथवा सभी जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. सयोगी, २. अयोगी।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सवेदगा चेव, २. अवेदगा चेव।[2]

—जीवा. पडि. ९, सु. २३२

५. अथवा सभी जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. सवेदक, २. अवेदक।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सकसाई चेव २. अकसाई चेव।

—जीवा. पडि. ९, सु. २३२

६. अथवा सभी जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. सकषायी, २. अकषायी।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सलेसा य, २. अलेसा य।

—जीवा. पडि. ९, सु. २३२

७. अथवा सभी जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. सलेश्य, २. अलेश्य।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. णाणी चेव, २. अण्णाणी चेव।

—जीवा. पडि. ९, सु. २३२

८. अथवा सभी जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. ज्ञानी, २. अज्ञानी।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सागारोवउत्ता य, २. अणागारोवउत्ता या।

—जीवा. पडि. ९, सु. २३३

९. अथवा सभी जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. साकारोपयुक्त, २. अनाकारोपयुक्त।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. आहारगा चेव, २. अणाहारगा चेव।

—जीवा. पडि. ९, सु. २३४

१०. अथवा सभी जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. आहारक, २. अनाहारक।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सभासगा य, २. अभासगा य।

—जीवा. पडि. ९, सु. २३५

११. अथवा सभी जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. सभाषक, २. अभाषक।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. चरिमा चेव, २. अचरिमा चेव।

—जीवा. पडि. ९ सु. २३६

१२. अथवा सभी जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. चरम, २. अचरम।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. ससरीरी य, २. असरीरी य।[3]

—जीवा. पडि. ९, सु. २३७

१३. अथवा सभी जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. सशरीरी २. अशरीरी।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

एवं एगा गाहा णायव्वा जाव ससरीरी चेव असरीरी चेव—
सिद्ध[1], सइंदिया[2], काए[3], जोए[4], वेए[5] कसाय[6], लेसा[7] य।
णाणुवओग[8,9] आहार[10], भासग[11], चरिम[12], सरीरी[13]।

—ठाणं अ. २, उ. ४, सु. [illegible]

(२) तिविहत्तं–

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु–"तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता" ते एवमाहंसु, तं जहा–

१. सम्मदि्दट्ठी, २. मिच्छादि्दट्ठी,
३. सम्मामिच्छादिट्ठी।

–जीवा पडि. ९, सु. २३७

अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा–

१. परित्ता, २. अपरित्ता,
३. नो परित्ता नो अपरित्ता।

–जीवा. पडि. ९, सु. २३८

अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तया, २. अपज्जत्तया,
३. नो पज्जत्तया नो अपज्जत्तया।

–जीवा. पडि. ९, सु. २३९

अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुहुमा, २. बायरा
३. नो सुहुमा नो बायरा।

–जीवा. पडि. ९, सु. २४०

अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सण्णी, २. असण्णी,
३. नो सण्णी नो असण्णी।

–जीवा. पडि. ९, सु. २४१

अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा–

१. भवसिद्धिया २. अभवसिद्धिया,
३. नो भवसिद्धिया नो अभवसिद्धिया।[1]

–जीवा. पडि. ९, सु. २४२

अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा–

१. तसा, २. थावरा,
३. नो तसा नो थावरा।

–जीवां पडि. ९, सु. २४३

(३) चउव्विहत्तं–

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु–"चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता", ते एव माहंसु, तं जहा–

१. मणजोगी, २. वइजोगी,
३. कायजोगी, ४. अजोगी।

–जीवा पडि. ९, सु. २४४

अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा–

१. इत्थिवेयगा, २. पुरिसवेयगा,
३. नपुंसगवेगया, ४. अवेयगा।

–जीवा. पडि. ९, सु. २४५

अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा–

(२) तीन प्रकार–

उनमें से जो सर्व जीवों को तीन प्रकार का कहते हैं वे इस प्रकार कहते हैं, यथा–

१. सम्यग्दृष्टि, २. मिथ्यादृष्टि,
३. सम्यग् मिथ्यादृष्टि।

अथवा सभी जीव तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. परित्त, २. अपरित्त,
३. नो परित्त नो अपरित्त।

अथवा सभी जीव तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक,
३. नो पर्याप्तक नो अपर्याप्तक।

अथवा सभी जीव तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सूक्ष्म, २. बादर,
३. नो सूक्ष्म नो बादर।

अथवा सभी जीव तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. संज्ञी, २. असंज्ञी,
३. नो संज्ञी नो असंज्ञी।

अथवा सभी जीव तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. भवसिद्धिक, २. अभवसिद्धिक,
३. नो भवसिद्धिक नो अभवसिद्धिक।

अथवा सभी जीव तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. त्रस, २. स्थावर,
३. नो त्रस, नो स्थावर।

(३) चार प्रकार–

उनमें से जो सर्व जीवों को चार प्रकार का कहते हैं वे इस प्रकार कहते हैं, यथा–

१. मनयोगी, २. वचनयोगी,
३. काययोगी, ४. अयोगी।

अथवा सभी जीव चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. स्त्रीवेदक, २. पुरुषवेदक,
३. नपुंसकवेदक, ४. अवेदक।

अथवा सभी जीव चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

---

१. ठाणं अ. ३ उ. २, सु. १७०

१. चक्खुदंसणी, २. अचक्खुदंसणी,
३. अवधिदंसणी, ४. केवलदंसणी।

—जीवा पडि. ९, सु. २४६

१. चक्षुदर्शनी, २. अचक्षुदर्शनी,
३. अवधिदर्शनी, ४. केवलदर्शनी।

अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. संजया, २. असंजया,
३. संजयासंजया,
४. नो संजया नो असंजया नो संजयासंजया।[1]

—जीवा. पडि. ९, सु. २४७

अथवा सभी जीव चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. संयत, २. असंयत,
३. संयतासंयत
४. नो संयत, नो असंयत, नो संयतासंयत।

(४) पंचविहत्तं—

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—"पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता", ते एवमाहंसु, तं जहा—

१. कोहकसायी, २. माणकसायी,
३. माया कसायी, ४. लोभकसायी,
५. अकसायी।[2]

—जीवा. पडि. ९, सु. २४८

(४) पांच प्रकार—

उनमें से जो सर्व जीवों को पांच प्रकार का कहते हैं वे इस प्रकार कहते हैं, यथा—

१. क्रोधकषायी, २. मानकषायी,
३. माया कषायी, ४. लोभकषायी,
५. अकषायी।

अहवा पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. नेरइया, २. तिरिक्खजोणिया,
३. मणुस्सा, ४. देवा
५. सिद्धा।

—जीवा. पडि. ९, सु. २४९

अथवा सभी जीव पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. नैरयिक, २. तिर्यंचयोनिक,
३. मनुष्य, ४. देव,
५. सिद्ध।

(५) छव्विहत्तं—

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—"छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता" ते एवमाहंसु, तं जहा—

१. आभिणिबोहियणाणी, २. सुयनाणी,
३. ओहिणाणी, ४. मणपज्जवणाणी,
५. केवलणाणी, ६. अण्णाणी।

—जीवा. पडि. ९, सु. २५०

(५) छः प्रकार—

उनमें से जो सर्व जीवों को छः प्रकार का कहते हैं वे इस प्रकार कहते हैं, यथा—

१. आभिनिबोधिक ज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी,
३. अवधिज्ञानी, ४. मनःपर्यवज्ञानी,
५. केवलज्ञानी, ६. अज्ञानी।

अहवा छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. एगिंदिया, २. बेइंदिया,
३. तेइंदिया, ४. चउरिंदिया,
५. पंचेंदिया, ६. अणिंदिया।

—जीवा. पडि. ९, सु. २५०

अथवा सभी जीव छः प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय,
३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय,
५. पंचेन्द्रिय, ६. अनिन्द्रिय।

अहवा छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. ओरालियसरीरी, २. वेउव्वियसरीरी,
३. आहारगसरीरी, ४. तेयगसरीरी,
५. कम्मगसरीरी, ६. असरीरी।[3]

—जीवा. पडि. ९, सु. २५१

अथवा—सभी जीव छः प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. औदारिकशरीरी, २. वैक्रियशरीरी,
३. आहारकशरीरी, ४. तैजसशरीरी,
५. कार्मणशरीरी, ६. अशरीरी।

---

१. [illegible]
२. [illegible]
३. ठाणं. अ. ६, सु. ४८३

(६) सत्तविहत्तं–

तत्थ जे ते एवमाहंसु 'सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता',
ते एवमाहंसु, तं जहा–

१. पुढविकाइया २. आउकाइया,
३. तेउकाइया, ४. वाउकाइया,
५. वणस्सइकाइया, ६. तसकाइया,
७. अकाइया।[१]

–जीवा. पडि.९, सु. २५२

अहवा सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कण्हलेस्सा, २. नीललेस्सा,
३. काउलेस्सा, ४. तेउलेस्सा,
५. पम्हलेस्सा, ६. सुक्कलेस्सा,
७. अलेस्सा।

–जीवा. पडि. ९ सु. २५३

(६) सात प्रकार–

उनमें से जो सर्व जीवों को सात प्रकार का कहते हैं, वे इस प्रकार कहते हैं, यथा–

१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक,
३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक,
५. वनस्पतिकायिक, ६. त्रसकायिक,
७. अकायिक।

अथवा सभी जीव सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कृष्णलेशी, २. नीललेशी,
३. कापोतलेशी, ४. तेजस्लेशी,
५. पद्मलेशी, ६. शुक्ललेशी,
७. अलेशी।

(७) अट्ठविहत्तं–

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु 'अट्ठविहा सव्वजीवा' पण्णत्ता,
ते एवमाहंसु, तं जहा–

१. आभिणिबोहियणाणी, २. सुयणाणी,
३. ओहिणाणी, ४. मणपज्जवणाणी,
५. केवलणाणी, ६. मइअण्णाणी,
७. सुयअण्णाणी, ८. विभंगणाणी।[२]

–जीवा. पडि. ९, सु. २५४

अहवा अट्ठविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा–

१. नेरइया, २. तिरिक्खजोणिया,
३. तिरिक्खजोणिणीओ, ४. मणुस्सा,
५. मणुस्सीओ, ६. देवा,
७. देवीओ, ८. सिद्धा।[३]

–जीवा. पडि. ९, सु. २५५

(७) आठ प्रकार–

उनमें से जो सर्व जीवों को आठ प्रकार का कहते हैं, वे इस प्रकार कहते हैं, यथा–

१. आभिनिवोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी,
३. अवधिज्ञानी, ४. मनःपर्यवज्ञानी,
५. केवलज्ञानी, ६. मतिअज्ञानी,
७. श्रुतअज्ञानी, ८. विभंगज्ञानी।

अथवा सभी जीव आठ प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. नैरयिक, २. तिर्यंचयोनिक,
३. तिर्यंचयोनिकी, ४. मनुष्य,
५. मानुषी, ६. देव,
७ देवी, ८. सिद्ध।

(८) नवविहत्तं–

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु–"नवविहा सव्वजीवा"
ते एवमाहंसु, तं जहा–

१. एगिंदिया, २. बेइंदिया,
३. तेइंदिया, ४. चउरिंदिया,
५. नेरइया, ६. पंचेन्दिय तिरिक्खजोणिया,
७. मणूसा, ८. देवा,
९. सिद्धा।[४]

–जीवा. पडि. ९, सु. २५६

अहवा नवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पढमसमयणेरइया,

(८) नौ प्रकार–

उनमें से जो सर्व जीवों को नौ प्रकार का कहते हैं
वे इस प्रकार कहते हैं, यथा–

१. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय,
३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय,
५. नैरयिक, ६. पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक,
७. मनुष्य, ८. देव,
९. सिद्ध।

अथवा सभी जीव नौ प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. प्रथम समय नैरयिक,

---

१. ठाणं. अ. ७, सु. ५६२
२. ठाणं. अ. ८, सु. ६४६/१
३. ठाणं. अ. ८, सु. ६४६/२
४. ठाणं. अ. ९, सु. ६६६/११

२. अपढमसमयणेरइया,
३. पढमसमय तिरिक्खजोणिया,
४. अपढमसमयतिरिक्खजोणिया,
५. पढमसमयमणूसा,
६. अपढमसमयमणूसा,
७. पढमसमयदेवा,
८. अपढमसमयदेवा,
९. सिद्धा य।[1]

—जीवा. पडि. ९, सु. २५७

२. अप्रथम समय नैरयिक,
३. प्रथम समय तिर्यञ्च योनिक,
४. अप्रथम समय तिर्यञ्च योनिक,
५. प्रथम समय मनुष्य,
६. अप्रथम समय मनुष्य,
७. प्रथम समय देव,
८. अप्रथम समय देव,
९. सिद्ध।

(९) दसविहत्तं—

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—"दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता", ते एवमाहंसु, तं जहा—

१. पुढविकाइया, २. आउकाइया,
३. तेउकाइया, ४. वाउकाइया,
५. वणस्सइकाइया, ६. बेइंदिया,
७. तेइंदिया, ८. चउरिंदिया,
९. पंचेंदिया, १०. अणिंदिया।[2]

—जीवा. पडि. ९, सु. २५८

अहवा दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—

१. पढमसमयणेरइया,
२. अपढमसमयणेरइया,
३. पढमसमयतिरिक्खजोणिया,
४. अपढमसमयतिरिक्खजोणिया,
५. पढमसमयमणूसा,
६. अपढमसमयमणूसा,
७. पढमसमयदेवा,
८. अपढमसमयदेवा,
९. पढमसमयसिद्धा,
१०. अपढमसमयसिद्धा।[3]

—जीवा. पडि. ९, सु. २५९

(९) दस प्रकार—

उनमें से जो सर्व जीवों को दस प्रकार का कहते हैं वे इस प्रकार कहते हैं, यथा—

१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक,
३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक,
५. वनस्पतिकायिक, ६. द्वीन्द्रिय,
७. त्रीन्द्रिय, ८. चतुरिन्द्रिय,
९. पंचेन्द्रिय १०. अनिन्द्रिय।

अथवा सभी जीव दस प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. प्रथम समय नैरयिक,
२. अप्रथम समय नैरयिक,
३. प्रथम समय तिर्यञ्च,
४. अप्रथम समय तिर्यञ्च,
५. प्रथम समय मनुष्य,
६. अप्रथम समय मनुष्य,
७. प्रथम समय देव,
८. अप्रथम समय देव,
९. प्रथम समय सिद्ध,
१०. अप्रथम समय सिद्ध।

२२. जीवपण्णवणाया दुविहत्तं—

प. से किं तं जीवपण्णवणा?

उ. जीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. संसारसमावण्णजीवपण्णवणा य,
२. असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा य।[4]

—पण्ण. प. १, सु. १४

२२. जीव प्रज्ञापना के दो प्रकार—

प्र. वह जीव प्रज्ञापना क्या है?

उ. जीवप्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है, यथा—

१. संसारसमापन्न (संसारी) जीवों की प्रज्ञापना,
२. असंसार समापन्न (मुक्त) जीवों की प्रज्ञापना।

२३. असंसारसमावण्ण जीवपण्णवणाया भेयप्पभेया—

प. से किं तं असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा?

२३. असंसार समापन्न जीव प्रज्ञापना के भेद प्रभेद—

प्र. वह असंसारसमापन्नजीव प्रज्ञापना क्या है?

---

१. [illegible]
२. [illegible]
३. [illegible]
४. (क) जीवा. पडि. १, सु. ८
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. ४८
(ग) सम. सम. सु. [illegible]

उ. असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अणंतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा य,
२. परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा य।

प. से किं तं अणंतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

उ. अणंतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा - पन्नरस-विहा पन्नत्ता, तं जहा–

१. तित्थसिद्धा, २. अतित्थसिद्धा,
३. तित्थगरसिद्धा, ४. अतित्थगरसिद्धा,
५. सयंबुद्धसिद्धा, ६. पत्तेयबुद्धसिद्धा,
७. बुद्धबोहियसिद्धा, ८. इत्थीलिंगसिद्धा,
९. पुरिसलिंगसिद्धा, १०. नपुंसकलिंगसिद्धा,
११. सलिंगसिद्धा, १२. अण्णलिंगसिद्धा,
१३. गिहिलिंगसिद्धा,[1] १४. एगसिद्धा,
१५. अणेगसिद्धा।

से तं अणंतरसिद्ध असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।

प. से किं तं परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

उ. परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अपढमसमयसिद्धा,
२. दुसमयसिद्धा,
३. तिसमयसिद्धा,
४. चउसमयसिद्धा जाव संखेज्जसमयसिद्धा, असंखेज्जसमयसिद्धा अणंतसमयसिद्धा

से त्तं परंपरसिद्धअसंसारमावण्णजीवपण्णवणा।

से त्तं असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।[2]

–पण्ण. प. १, सु. १५-१७

उ. असंसारसमापन्नजीव प्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. अनन्तरसिद्ध असंसार समापन्नजीव प्रज्ञापना,
२. परम्परसिद्ध असंसार समापन्नजीव प्रज्ञापना।

प्र. वह अनन्तरसिद्ध असंसारसमापन्नजीव प्रज्ञापना क्या है ?

उ. अनन्तर सिद्ध असंसारसमापन्नजीव प्रज्ञापना पन्द्रह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. तीर्थसिद्ध, २. अतीर्थसिद्ध,
३. तीर्थंकरसिद्ध, ४. अतीर्थंकरसिद्ध,
५. स्वयंबुद्धसिद्ध, ६. प्रत्येकबुद्धसिद्ध,
७. बुद्धबोधितसिद्ध, ८. स्त्रीलिंगसिद्ध,
९. पुरुषलिंगसिद्ध, १०. नपुंसकलिंगसिद्ध
११. स्वलिंगसिद्ध, १२. अन्यलिंगसिद्ध,
१३. गृहस्थलिंगसिद्ध, १४. एकसिद्ध,
१५. अनेकसिद्ध।

यह अनन्तरसिद्ध असंसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना है।

प्र. वह परम्परसिद्ध असंसारसमापन्न जीव प्रज्ञापना क्या है ?

उ. परम्परसिद्ध असंसारसमापन्न जीव प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है, यथा–

१. अप्रथमसमयसिद्ध,
२. द्विसमयसिद्ध,
३. त्रिसमयसिद्ध,
४. चतुःसमयसिद्ध यावत्–संख्यातसमयसिद्ध, असंख्यातसमयसिद्ध और अनन्तसमयसिद्ध।

यह परम्परसिद्ध असंसारसमापन्न जीव प्रज्ञापना है।

इस प्रकार यह असंसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना का वर्णन पूर्ण हुआ।

२४. विविह विवक्खया वग्गणा पगारेण सिद्धाणं भेय परूवणं–

१. एगा तित्थसिद्धाणं वग्गणा।
२. एगा अतित्थसिद्धाणं वग्गणा।
३. एगा तित्थगरसिद्धाणं वग्गणा।
४. एगा अतित्थगरसिद्धाणं वग्गणा।
५. एगा सयंबुद्धसिद्धाणं वग्गणा।
६. एगा पत्तेयबुद्धसिद्धाणं वग्गणा।
७. एगा बुद्धबोहियसिद्धाणं वग्गणा।
८. एगा इत्थीलिंगसिद्धाणं वग्गणा।
९. एगा पुरिसलिंगसिद्धाणं वग्गणा।
१०. एगा णपुंसकलिंगसिद्धाणं वग्गणा।
११. एगा सलिंगसिद्धाणं वग्गणा।

२४. विविध विवक्षा से वर्गणा प्रकार के द्वारा सिद्धों के भेदों का प्ररूपण–

१. तीर्थ–सिद्धों की वर्गणा एक है।
२. अतीर्थ–सिद्धों की वर्गणा एक है।
३. तीर्थंकर–सिद्धों की वर्गणा एक है।
४. अतीर्थंकर–सिद्धों की वर्गणा एक है।
५. स्वयंबुद्ध–सिद्धों की वर्गणा एक है।
६. प्रत्येकबुद्ध–सिद्धों की वर्गणा एक है।
७. बुद्धबोधित–सिद्धों की वर्गणा एक है।
८. स्त्रीलिंग–सिद्धों की वर्गणा एक है।
९. पुरुषलिंग–सिद्धों की वर्गणा एक है।
१०. नपुंसकलिंग–सिद्धों की वर्गणा एक है।
११. स्वलिंग–सिद्धों की वर्गणा एक है।

१. उत्त.अ.३६ गा.४९
२. जीवा.पडि.१, सु.७

तिण्णि सया तेत्तीसा, धणुत्तिभागो य होइ बोद्धव्वो।
एसा खलु सिद्धाणं, उक्कोसोगाहणा भणिया।[१]

चत्तारि य रयणाओ, रयणितिभागूणिया य बोद्धव्वा।
एसा खलु सिद्धाणं मज्झिमओगाहणा भणिया॥

एक्का य होइ रयणी, साहिया अंगुलाइं अट्ठ भवे।
एसा खलु सिद्धाणं जहण्णोगाहणा भणिया॥

ओगाहणाए सिद्धा, भवत्तिभागेण होंति परिहीणा।
संठाणमणित्थत्थं, जरामरण-विप्पमुक्काणं॥

—उव. सु. १७०-१७५

सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना तीन सौ तैंतीस धनुष और एक धनुष का तिहाई भाग (वत्तीस अंगुल) होती है, ऐसा सर्वज्ञों ने कहा है।

सिद्धों की मध्यम अवगाहना चार हाथ और तिहाई भाग कम एक हाथ (सोलह अंगुल) होती है, ऐसा सर्वज्ञों ने कहा है।

सिद्धों की जघन्य अवगाहना आठ अंगुल अधिक एक हाथ होती है, ऐसा सर्वज्ञों द्वारा भाषित है।

सिद्ध अन्तिम भव की अवगाहना से तिहाई भाग कम अवगाहना युक्त होते हैं और जन्म जरा मरणादि से विप्रमुक्त सिद्धों का संस्थान अनित्थंथ (शरीर के आकारों से भिन्न) कहा गया है।

२८. सिद्धाणं अवट्ठाण परूवणं–

प. कहिं पडिहया सिद्धा? कहिं सिद्धा पइट्ठिया?
कहिं बोंदि चइत्ताणं, कत्थं गंतूण सिज्झई॥

उ. अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।
इहं बोंदि चइत्ताणं तत्थ गंतूण सिज्झई॥[२]

—उव. गा. १६८-१६९

जत्थ य एगो सिद्धो, तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का।
अण्णोण्णसमोगाढा, पुट्ठा सव्वे य लोगंते॥

फुसइ अणंते सिद्धे, सव्वपएसेहिं णियमसो सिद्धो।
ते वि असंखेज्जगुणा देसपएसेहिं जे पुट्ठा॥

—उव. गा. १७६-१७७

लोएगदेसे ते सव्वे नाणदंसण सन्निया।
संसारपार निथिन्ना सिद्धिं वरगइं गया।

—उत्त. अ. ३६, गा. ६७

२८. सिद्धों के अवस्थान का प्ररूपण–

प्र. सिद्ध किस स्थान पर प्रतिहत (रुक जाते) हैं? वे कहां प्रतिष्ठित हैं? वे वहां इस लोक में देह को त्याग कर कहां जाकर सिद्ध होते हैं?

उ. सिद्ध अलोक से प्रतिहत हैं, वे लोक के अग्रभाग में प्रतिष्ठित हैं, इस मनुष्यक्षेत्र में देह का त्याग कर वे सिद्ध स्थान में जाकर सिद्ध होते हैं।

जहां एक सिद्ध स्थित हैं वहां भवक्षय और कर्ममल से विमुक्त अनन्त सिद्ध स्थित हैं, जो परस्पर अवगाढ हैं अर्थात् एक दूसरे में मिले हुए हैं। वे सव लोकाग्र भाग का संस्पर्श किये हुए हैं।

(एक-एक) सिद्ध समस्त आत्म प्रदेशों द्वारा सिद्धों का सम्पूर्ण रूप से संस्पर्श किये हुए हैं और उनसे भी असंख्यातगुणे सिद्ध ऐसे हैं जो देश और प्रदेशों से एक दूसरे को संस्पर्श किये हुए हैं।

ज्ञान और दर्शन से युक्त, संसार के पार पहुंचे हुए, सिद्धि नामक श्रेष्ठ गति को प्राप्त वे सभी सिद्ध लोक के एक देश में स्थित हैं।

२९. सिद्धाणं लक्खणं–

असरीरा जीवघणा, उवउत्ता दंसणे य णाणे य।
सागारमणागारं, लक्खणमेयं तु सिद्धाणं॥[३]

केवलणाणुवउत्ता, जाणंती सव्वभावगुणभावे।
पासंति सव्वओ खलु, केवलदिट्ठीहिणंताहिं॥

—उव. सु. १७८-१७९

२९. सिद्धों का लक्षण–

सिद्ध शरीर रहित, सघन् आत्म-प्रदेशों से युक्त तथा दर्शन एवं ज्ञानोपयोग से युक्त हैं। साकार (ज्ञान) तथा अनाकार (दर्शन) उपयोग सिद्धों का लक्षण है।

केवल ज्ञानोपयोग द्वारा सभी पदार्थों के गुणों एवं पर्यायों को जानते हैं तथा अनन्त केवलदर्शन द्वारा समस्त भावों को देखते हैं।

३०. एगत्त पुहत्तेण सिद्धाणं साई अणाईत्त परूवणं–

एगत्तेण साईया अपज्जवसिया वि य।
पुहुत्तेण अणाईया अपज्जवसिया वि य॥

—उत्त. अ. ३६, गा. ६५

३०. एकत्व बहुत्व की अपेक्षा सिद्धों के सादि अनादित्व का प्ररूपण–

एक (मुक्त जीव) की अपेक्षा से सिद्ध सादि अनन्त हैं और अनेक (मुक्त जीवों) की अपेक्षा से वे अनादि अनन्त हैं।

---

१. सम. सु. १०४
२. उत्त. अ. ३६ गा. ५५-५६
३. अरूविणो जीवघणा, नाणदंसण सन्निया।
अउलं सुहं संपत्ता, उवमा जस्स नत्थि उ॥ —उत्त. अ. ३६ गा. ६६

३१. सिज्झमाणजीवाणं संघयण संठाण ओगाहणा आउ परूवणं—

प. जीवा णं भंते ! सिज्झमाणा कयरंमि संघयणे सिज्झंति ?

उ. गोयमा ! वइरोसभणारायसंघयणे सिज्झंति।

प. जीवाणं भंते ! सिज्झमाणा कयरंमि संठाणे सिज्झंति ?

उ. गोयमा ! छण्हं संठाणाणं अण्णयरे संठाणे सिज्झंति।

प. जीवा णं भंते ! सिज्झमाणा कयरंमि उच्चत्ते सिज्झंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरयणीए, उक्कोसेणं पंचधणुसइए सिज्झंति।

प. जीवाणं भंते ! सिज्झमाणा कयरम्मि आउए सिज्झंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगट्ठवासाउए, उक्कोसेणं पुव्वकोडियाउए सिज्झंति।[1]

—उव. सु. १५६-१५९

३१. सिद्ध होते हुए जीवों के संहनन संस्थान अवगाहना और आय का प्ररूपण—

प्र. भंते ! सिद्ध होते हुए जीव किस संहनन से सिद्ध होते हैं ?

उ. गौतम ! वे वज्रऋषभनाराच संहनन से सिद्ध होते हैं।

प्र. भंते ! सिद्ध होते हुए जीव किस संस्थान (दैहिक आकार) से सिद्ध होते हैं ?

उ. गौतम ! छह संस्थानों में से किसी एक संस्थान से सिद्ध होते हैं।

प्र. भंते ! सिद्ध हुए जीव कितनी शरीर अवगाहना (ऊंचाई) से सिद्ध होते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य सात हाथ और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की अवगाहना से सिद्ध होते हैं।

प्र. भंते ! सिद्ध होते हुए जीव किस आयु से सिद्ध होते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य साधिक आठ वर्ष की आयु से तथा उत्कृष्ट पूर्व कोटि की आयु से सिद्ध होते हैं।

३२. विविह विवक्खया एगसमए सिज्झमाणाणं जीवाणं संखा परूवणं—

उक्कोसोगाहणाए य जहन्नमज्झिमाइ य।
उड्ढं अहे य तिरियं च, समुद्दम्मि जलम्मि य॥

दस चेव नपुंसेसु, वीसे इत्थियासु य।
पुरिसेसु य अट्ठसयं, समएणेगेण सिज्झई॥

चत्तारि य गिहिलिंगे अन्नलिंगे दसेव य।
सलिंगेण य अट्ठसयं, समएणेगेण सिज्झई॥

उक्कोसोगाहणाए य, सिज्झन्ते जुगवं दुवे।
चत्तारि जहन्नाए, जवमज्झऽट्ठुत्तरं सयं॥

चउरुड्ढलोए य दुवे समुद्दे, तओ जले वीसमहे तहेव।
सयं च अट्ठुत्तर तिरियलोए, समएणेगेण उ सिज्झई॥

—उत्त. अ. ३६ गा. ४९-५४

३२. विविध विवक्षाओं से एक समय में सिद्ध होने वाले जीवों की संख्या का प्ररूपण—

उत्कृष्ट, जघन्य और मध्यम अवगाहना में तथा ऊर्ध्वलोक अधोलोक और तिर्यक्लोक में, एवं समुद्र तथा अन्य जलाशयों में जीव सिद्ध होते हैं।

एक समय में (अधिक से अधिक) नपुंसकों में से दस, स्त्रियों में से वीस और पुरुषों में से एक सौ आठ जीव सिद्ध होते हैं।

एक समय में चार गृहस्थलिंग से, दस अन्यलिंग से तथा एक सौ आठ जीव स्वलिंग से सिद्ध हो सकते हैं।

(एक समय में) उत्कृष्ट अवगाहना में दो, जघन्य अवगाहना में चार और मध्यम अवगाहना में एक सौ आठ जीव सिद्ध हो सकते हैं।

एक समय में ऊर्ध्वलोक में चार, समुद्र में दो, जलाशय में तीन, अधोलोक में वीस एवं तिर्यक् लोक में एक सौ आठ जीव सिद्ध हो सकते हैं।

३३. संसारसमापन्नग जीवाणं भेय परूवणस्स उक्खेवो—

प. से किं तं संसारसमापन्नकजीवाभिगमे ?

उ. संसारसमावण्णएसु णं जीवेसु इमाओ णव पडिवत्तीओ एवमाहिज्जंति, तं जहा—

१. एगे एवमाहंसु—दुविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता,

२. एगे एवमाहंसु—तिविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता,

३. एगे एवमाहंसु—चउव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता,

३३. संसार समापन्नक जीवों के भेद प्ररूपण का उत्क्षेप—

प्र. संसारसमापन्नक जीवाभिगम क्या है ?

उ. संसारसमापन्नक जीवों की ये नौ प्रतिपत्तियां कही गई हैं, यथा—

१. कोई ऐसा कहते हैं कि—संसारसमापन्नक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं,

२. कोई ऐसा कहते हैं कि—संसार समापन्नक जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं।

३. कोई ऐसा कहते हैं कि—संसारसमापन्नक जीव चार प्रकार के कहे गये हैं।

---

१. विया. स. ११, उ. ९, सु. ३३

४. एगे एवमाहंसु-पंचविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता,

५-९. एएणं अभिलावेणं जाव

१०. दस विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता।

-जीवा. पीडि.१ सु. ८

४. कोई ऐसा कहते हैं कि-संसारसमापन्नक जीव पांच प्रकार के कहे गये हैं।

५-९. इसी प्रकार के अभिलाप से यावत्-

१०. कोई ऐसा कहते हैं कि-संसारसमापन्नक जीव दस प्रकार के कहे गये हैं।

३४. संसारसमावण्णगा जीवाणं वित्थरओ भेय परूवणं-

(१) दुविहा जीवा-

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु दुविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तं जहा-

२. तसा चेव २. थावरा चेव[1]।

-जीवा. पडि. १, सु. ९

(२) तिविहा जीवा-

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु तिविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु-तं जहा-

१. इत्थी, २. पुरिसा, ३. णपुंसगा[2]।

-जीवा. पडि. २, सु. ४४

३४. संसार समापन्नक जीवों के भेदों का विस्तार से प्ररूपण-

(१) दो प्रकार के जीव

जो यह कहते हैं कि-संसार समापन्नक जीव दो प्रकार के हैं, उनका कथन इस प्रकार है, यथा-

१. त्रस २. स्थावर।

(२) तीन प्रकार के जीव-

जो यह कहते हैं कि संसारसमापन्नक जीव तीन प्रकार के हैं, उनका कथन इस प्रकार है, यथा-

१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।

३५. इत्थीणं भेयप्पभेया-

प. से किं तं इत्थीओ?

उ. इत्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

१. तिरिक्खजोणित्थीओ,

२. मणुस्सित्थीओ,

३. देवित्थीओ[3]। *-जीवा. पडि. १, सु. ४५(१)*

(१) तिरिक्खजोणित्थीओ-

प. से किं तं तिरिक्खजोणित्थीओ?

उ. तिरिक्खजोणित्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

१. जलयरीओ, २. थलरीओ, ३. खहयरीओ[4]।

प. से किं तं जलयरीओ?

उ. जलयरीओ पंचविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

१ मच्छीओ जाव ५ सुंसमारीओ।

प. से किं तं थलयरीओ?

उ. थलयरीओ दुविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

१. चउप्पईओ य, २. परिसप्पीओ य।

प. से किं तं चउप्पईओ?

उ. चउप्पईओ चउव्विहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

१ एगखुरीओ जाव ४ सणप्फईओ।

३५. स्त्रियों के भेद प्रभेद-

प्र. स्त्रियां कितने प्रकार की हैं?

उ. स्त्रियां तीन प्रकार की कही गई हैं, यथा-

१. तिर्यक्योनिक स्त्रियाँ,

२. मनुष्यस्त्रियां,

३. देवस्त्रियां।

(१) तिर्यक्योनिकस्त्रियां-

प्र. तिर्यक्योनिकस्त्रियां कितने प्रकार की हैं?

उ. तिर्यक्योनिकस्त्रियां तीन प्रकार की कही गई हैं, यथा-

१. जलचरस्त्रियां, २. स्थलचरस्त्रियां, ३. खेचरस्त्रियां।

प्र. जलचरियां कितने प्रकार की है?

उ. जलचरियां पांच प्रकार की कही गई हैं, यथा-

१ मच्छियां यावत् ५ सुंसमारिकाएं।

प्र. थलचरियां कितने प्रकार की हैं?

उ. थलचरियां दो प्रकार की कही गई हैं, यथा-

१. चतुष्पदियां, २. परिसर्पिणीयां।

प्र. चतुष्पदीयां कितने प्रकार की हैं?

उ. चतुष्पदीयां चार प्रकार की कही गई हैं, यथा-

१ एक खुर वाली यावत् ४ नख वाली।

---

१. (क) ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. ११२/१ (ख) उत्त. अ. ३६, गा. ६८
२. (क) जीवा. पडि. १, सु. १० (ख) उत्त. अ. ३६, गा. ६९-१०६
३. (क) जीवा. पडि. १, सु. २२ (ख) उत्त. अ. ३६, गा. १०७
४. (क) ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १७० (ख) ठाणं. अ. ३, उ. १ सु. १३९ (१-२)

प. से किं तं परिसप्पीओ ?

उ. परिसप्पीओ दुविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. उरपरिसप्पीओ य, २. भुयपरिसप्पीओ य।

प. से किं तं उरपरिसप्पीओ ?

उ. उरपरिसप्पीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. अहीओ, २. अयगरीओ, ३. महोरगीओ य।

प. से किं तं भुयपरिसप्पीओ ?

उ. भुयपरिसप्पीओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
गोहीओ, णउलीओ, सेधाओ, सल्लीओ, सरडीओ, सरंधीओ, साराओ, खाराओ, पचलाइयाओ, चउप्पइयाओ, मूसियाओ, मुगुंसियाओ, घरोलियाओ, जाहियाओ, छीरविरालियाओ।

प. से किं तं खहयरीओ ?

उ. खहयरीओ चउव्विहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१ चम्मपक्खीओ जाव ४ विततपक्खीओ।

–जीवा. पडि. २ सु. ४५ (१)

प्र. परिसर्पियां कितने प्रकार की हैं ?

उ. परिसर्पियां दो प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१. उरपरिसर्पियां, २. भुजपरिसर्पियां।

प्र. उरपरिसर्पियां कितने प्रकार की हैं ?

उ. उरपरिसर्पियां तीन प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१. सर्पिणियां, २. अजगरियां, ३. महोरगियां।

प्र. भुजपरिसर्पियां कितने प्रकार की हैं ?

उ. भुजपरिसर्पियां अनेक प्रकार की कही गई हैं, यथा–
गोधिकाएं, नकुलिकाएं, सेहाएं, सलिकाएं, किरकोटिकाएं, खरगोशिकाएं, सेरेन्ध्रियां, खाराएं, पंचलौकिकाएं, चतुष्पदिकाएं, चुहियाएं, मुंगुसिकाएं, घरोलिकाएं, जाहिकाएं, खीरविरालिकाएं।

प्र. खेचरियां कितने प्रकार की हैं ?

उ. खेचरियां चार प्रकार की कही गई हैं, यथा–
१ चर्म पक्षिकाएं यावत् ४ वितत पक्षिकाएं।

(२) मणुस्सित्थियाओ–

प. से किं तं मणुस्सित्थियाओ ?

उ. मणुस्सित्थियाओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. कम्मभूमियाओ, २. अकम्मभूमियाओ,
३. अंतरदीवियाओ[1]।

प. से किं तं अंतरदीवियाओ ?

उ. अंतरदीवियाओअट्ठावीसइविहाओपण्णत्ताओ, तं जहा–
१ एगोरुइयाओ जाव २८ सुद्धदंताओ।

प. से किं तं अकम्मभूमियाओ ?

उ. अकम्मभूमियाओ तीसइविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
पंचसु हेमवएसु, पंचसु एरण्णवएसु, पंचसु हरिवासेसु, पंचसु रम्मगवासेसु, पंचसु देवकुरासु, पंचसु उत्तरकुरासु।

प. से किं तं कम्मभूमियाओ ?

उ. कम्मभूमियाओ पण्णरसविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
पंचसु भरहेसु, पंचसु एरवएसु, पंचसु महाविदेहेसु।

–जीवा. पडि. २. सु. ४५ (२)

(२) मनुष्य स्त्रियां–

प्र. मनुष्य स्त्रियां कितने प्रकार की हैं ?

उ. मनुष्य स्त्रियां तीन प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१. कर्मभूमिकाएं, २. अकर्मभूमिकाएं,
३. अन्तरद्वीपिकाएं।

प्र. अन्तरद्वीपिकाएं कितने प्रकार की हैं ?

उ. अन्तरद्वीपिकाएं अट्ठाईस प्रकार की कही गई हैं, यथा–
१ एकोरुकीकाएं यावत् २८ शुद्धदन्ताएं।

प्र. अकर्मभूमिकाएं कितने प्रकार की हैं ?

उ. अकर्मभूमिकाएं तीस प्रकार की कही गई है, यथा–
पांच हेमवतों में, पांच ऐरण्यवतों में, पांच हरिवर्षों में, पांच रम्यक् वर्षों में, पांच देवकुरुओं में, पांच उत्तरकुरुओं में।

प्र. कर्मभूमिकाएं कितने प्रकार की हैं ?

उ. कर्मभूमिकाएं पन्द्रह प्रकार की कही गई हैं, यथा–
पांच भरतों में, पांच एरवतों में, पांच महाविदेहों में।

(३) देवित्थियाओ–

प. से किं तं देवित्थियाओ ?

उ. देवित्थियाओ चउव्विहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. भवणवासिदेवित्थियाओ,
२. वाणमंतरदेवित्थियाओ,
३. जोइसियदेवित्थियाओ,

(३) देव स्त्रियां–

प्र. देव स्त्रियां कितने प्रकार की हैं ?

उ. देव स्त्रियां चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. भवनवासी देव स्त्रियां,
२. वाणव्यन्तर देव स्त्रियां,
३. ज्योतिषिक देव स्त्रियां,

---

१. ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १३९/१

४. वेमाणियदेवित्थियाओ।

प. से किं तं भवणवासिदेवित्थियाओ ?

उ. भवणवासिदेवित्थियाओदसविहाओपण्णत्ताओ, तं जहा–

१ असुरकुमारभवणवासिदेवित्थियाओ जाव

१० थणियकुमार- भवणवासिदेवित्थियाओ।

प. से किं तं वाणमंतरदेवित्थियाओ ?

उ. वाणमंतरदेवित्थियाओअट्ठविहाओपण्णत्ताओ, तं जहा–

१ पिसायवाणमंतरदेवित्थियाओ जाव

८ गंधव्ववाणमंतर- देवित्थियाओ।

प. से किं तं जोइसियदेवित्थियाओ ?

उ. जोइसियदेवित्थियाओ पंचविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१ चंदविमाणजोइसियदेवित्थियाओ जाव

५ ताराविमाण- जोइसिय देवित्थियाओ।

प. से किं तं वेमाणियदेवित्थियाओ ?

उ. वेमाणियदेवित्थियाओ दुविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. सोहम्मकप्पवेमाणियदेवित्थियाओ,

२. ईसाणकप्पवेमाणिय- देवित्थियाओ।

–जीवा. पडि. २, सु. ४५ (३)

४. वैमानिक देव स्त्रियां।

प्र. भवनवासी देव स्त्रियां कितने प्रकार की हैं ?

उ. भवनवासी देव स्त्रियां दस प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१ असुरकुमार भवनवासी देव स्त्रियां यावत्

१० स्तनित कुमार भवनवासी देव स्त्रियां।

प्र. वाणव्यन्तर देव स्त्रियां कितने प्रकार की हैं ?

उ. वाणव्यन्तर देव स्त्रियां आठ प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१ पिशाचवाणव्यन्तर देव स्त्रियां यावत्

८ गन्धर्ववाणव्यन्तर देव स्त्रियां।

प्र. ज्योतिषिक देव स्त्रियां कितने प्रकार की हैं ?

उ. ज्योतिषिक देव स्त्रियां पांच प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१ चन्द्र विमान ज्योतिषिक देव स्त्रियां यावत्

५ तारा विमान ज्योतिषिक देव स्त्रियां।

प्र. वैमानिक देव स्त्रियां कितने प्रकार की हैं ?

उ. वैमानिक देव स्त्रियां दो प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१. सौधर्मकल्प वैमानिक देव स्त्रियां,

२. ईशानकल्प वैमानिक देव स्त्रियां।

३६. पुरिसेहिंतो इत्थियाणं अहिगत्त परूवणं–

तिरिक्खजोणित्थियाओ तिरिक्खजोणियपुरिसेहिंतो तिगुणाओ तिरूवाहियाओ,

मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसेहिंतो सत्तावीसइगुणाओ सत्तावीसइरूवाहियाओ,

देवित्थियाओ देवपुरिसेहिंतो बत्तीसइगुणाओ बत्तीसइरूवाहियाओ। *–जीवा. पडि. २, सु. ६४*

३६. पुरुषों से स्त्रियों की अधिकता का प्ररूपण–

तिर्यक्योनिकी स्त्रियाँ तिर्यक्योनि के पुरुषों से तीन गुणी और त्रिरूप अधिक हैं।

मनुष्यस्त्रियाँ मनुष्यपुरुषों से सत्तावीसगुनी और सत्तावीसरूप अधिक हैं।

देवस्त्रियाँ देवपुरुषों से बत्तीसगुनी और बत्तीसरूप अधिक हैं।

३७. पुरिसाणं भेयप्पभेया–

प. से किं तं पुरिसा ?

उ. पुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. तिरिक्खजोणियपुरिसा, २. मणुस्सपुरिसा,

३. देवपुरिसा। *–जीवा. पडि. २ सु. ५२*

(१) तिरिक्खजोणियपुरिसा–

प. से किं तं तिरिक्खजोणियपुरिसा ?

उ. तिरिक्खजोणियपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. जलयरा, २. थलयरा, ३. खहयरा।

इत्थिभेओ भाणियव्वो जाव खहयरा।

–जीवा. पडि. २ सु. ५२

(२) मणुस्सपुरिसा–

प. से किं तं मणुस्सपुरिसा ?

३७. पुरुषों के भेद प्रभेद–

प्र. पुरुष कितने प्रकार के हैं ?

उ. पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. तिर्यंचयोनिक पुरुष, २. मनुष्य पुरुष,

३. देव पुरुष।

(१) तिर्यञ्चयोनिक पुरुष–

प्र. तिर्यञ्चयोनिक पुरुष कितने प्रकार के हैं ?

उ. तिर्यञ्चयोनिक पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. जलचर, २. थलचर, ३. खेचर।

(खेचरों पर्यंत स्त्री भेदों के समान पुरुषों के भेद कहने चाहिए।)

(२) मनुष्य पुरुष–

प्र. मनुष्य पुरुष कितने प्रकार के हैं ?

उ. मणुस्सपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कम्मभूमगा, २. अकम्मभूमगा, ३. अंतरदीवगा[1]।

–जीवा. पडि. २, सु. ५२

(३) देवपुरिसा–

प. से किं तं देवपुरिसा?

उ. देवपुरिसा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

इत्थीभेओ, भाणियव्वो जाव सव्वट्ठसिद्धा।[2]

–जीवा. पडि. २, सु. ५२

३७. णपुंसगाण भेयप्पभेया–

प. से किं तं नपुंसगा?

उ. नपुंसगा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. नेरइयनपुंसगा,

२. तिरिक्खजोणियनपुंसगा,

३. मणुस्सजोणियनपुंसगा।[3] *–जीवा. पडि. २, सु. ५८*

(१) नेरइयनपुंसगा–

प. से किं तं नेरइयनपुंसगा?

उ. नेरइयनपुंसगा सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१ रयणप्पभापुढविनेरइयनपुंसगा जाव

७ अहेसत्तमपुढविनेरइयनपुंसगा। *–जीवा. पडि. २. सु. ५८*

(२) तिरिक्खजोणियनपुंसगा–

प. से किं तं तिरिक्खजोणियनपुंसगा?

उ. तिरिक्खजोणियनपुंसगा पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१ एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसगा जाव

५ पंचेंदिय- तिरिक्खजोणियनपुंसगा।

प. से किं तं एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसगा?

उ. एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसगा पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१ पुढविकाइया जाव ५ वणस्सइकाइया।

प. से किं तं बेइंदियतिरिक्खजोणियनपुंसगा?

उ. बेइंदियतिरिक्खजोणियनपुंसगा अणेगविहा पण्णत्ता,

एवं तेइंदिया वि, चउरिंदिया वि।

प. से किं तं पंचेंदियतिरिक्खजोणियनपुंसगा?

उ. पंचेंदियतिरिक्खजोणियनपुंसगा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. जलयरा, २. थलयरा, ३. खहयरा[4]।

प. से किं तं जलयरा?

उ. सो चेव पुव्वुत्त भेओ आसालियवज्जिओ भाणियव्वो।

–जीवा. पडि. २, सु. ५८

(३) मणुस्सनपुंसगा–

प. से किं तं मणुस्सनपुंसगा?

उ. मनुष्य पुरुष तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कर्मभूमज, २. अकर्मभूमज, ३. अन्तरद्वीपज।

(३) देव पुरुष–

प्र. देव पुरुष कितने प्रकार के हैं?

उ. देव पुरुष चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

स्त्रियों के समान देव पुरुषों के भेद सर्वार्थसिद्ध पर्यंत कहने चाहिए।

३७. नपुंसकों के भेद-प्रभेद–

प्र. नपुंसक कितने प्रकार के हैं?

उ. नपुंसक तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. नैरयिक नपुंसक,

२. तिर्यंचयोनिक नपुंसक,

३. मनुष्ययोनिक नपुंसक।

(१) नैरयिक नपुंसक–

प्र. नैरयिक नपुंसक कितने प्रकार के हैं?

उ. नैरयिक नपुंसक सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१ रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक यावत्

७ अधः सप्तम पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक।

(२) तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक–

प्र. तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक कितने प्रकार के हैं?

उ. तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१ एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक यावत्

५ पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक।

प्र. एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक कितने प्रकार के हैं?

उ. एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक पांच प्रकार के कहे गए हैं। यथा–

१ पृथ्वीकायिक यावत् ५ वनस्पतिकायिक।

प्र. बेइंदिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक कितने प्रकार के है?

उ. बेइंदिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक अनेक प्रकार के कहे गए हैं।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिंद्रिय भी जानना चाहिए।

प्र. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक कितने प्रकार के है?

उ. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. जलचर, २. थलचर, ३. खेचर।

प्र. जलचर नपुंसक कितने प्रकार के है?

उ. आशालिक को छोड़कर वही पूर्वोक्त भेद कहने चाहिए।

(३) मनुष्य नपुंसक–

प्र. मनुष्य नपुंसक कितने प्रकार के है?

---

१. ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १३९/२

२. देवस्त्री के भेद दूसरे देवलोक तक ही कहे गये है अतः तीसरे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध तक की [illegible] सम्बन्धी देवो के भेद अन्यत्र देखें।

३. ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १३९/३

४. ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १३९/३

उ. मणुस्सनपुंसगा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. कम्मभूमगा, २. अकम्मभूमगा, ३. अंतरदीवगा[1]।
–जीवा. पडि. २, सु. ५८

उ. मनुष्य नपुंसक तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कर्मभूमज, २. अकर्मभूमज, ३. अन्तरद्वीपज।

३९. चउव्विहा जीवा–
चउव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा–
१. नेरइया, २. तिरिक्खजोणिया, ३. मणुस्सा, ४. देवा[2]।
–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३६५

३९. चार प्रकार के जीव–
संसार समापन्नक जीव चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. नैरयिक, २. तिर्यञ्चयोनिक, ३. मनुष्य, ४. देव।

४०. पंचविहा जीवा–
पंचविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा–
१ एगिंदिया जाव ५ पंचेंदिया[3]।
–ठाणं. अ. ५, उ. ३, सु. ४५८/१

४०. पांच प्रकार के जीव–
संसारसमापन्नक जीव पांच प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१ एकेन्द्रिय **यावत्** ५ पंचेन्द्रिय।

४१. छव्विहा जीवा–
छव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा–
१ पुढविकाइया **जाव** ६ तसकाइया।[4]
–ठाणं. अ. ६, सु. ४८२/१

४१. छः प्रकार के जीव–
संसारसमापन्नक जीव छः प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१ पृथ्वीकायिक **यावत्** ६ त्रसकायिक।

४२. सत्तविहा जीवा–
सत्तविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा–
१. नेरइया, २. तिरिक्खा,
३. तिरिक्खजोणिणीओ, ४. मणुस्सा,
५. मणुस्सीओ, ६. देवा,
७. देवीओ[5]।
–ठाणं. अ. ७, सु. ५६०

४२. सात प्रकार के जीव–
संसारसमापन्नक जीव सात प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. नैरयिक, २. तिर्यञ्चयोनिक,
३. तिर्यञ्चयोनिकी, ४. मनुष्य,
५. मनुष्यणी (मानुषी) ६. देव,
७. देवी।

४३. अट्ठविहा जीवा–
अट्ठविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पढमसमयनेरइया,
२. अपढमसमयनेरइया,
३. पढमसमयतिरिक्खजोणिया,
४. अपढमसमयतिरिक्खजोणिया,
५. पढमसमयमणुस्सा,
६. अपढमसमयमणुस्सा,
७. पढमसमयदेवा,
८. अपढमसमयदेवा[6]।
–ठाणं. अ. ८, सु. ६४६/१

४३. आठ प्रकार के जीव–
संसारसमापन्नक जीव आठ प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. प्रथम समय नैरयिक,
२. अप्रथम समय नैरयिक,
३. प्रथम समय तिर्यञ्चयोनिक,
४. अप्रथम समय तिर्यञ्चयोनिक,
५. प्रथम समय मनुष्य,
६. अप्रथम समय मनुष्य,
७. प्रथम समय देव,
८. अप्रथम समय देव।

४४. णवविहा जीवा–
णवविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुढविकाइया, २. आउक्काइया,
३. तेउक्काइया, ४. वाउक्काइया,
५. वणस्सइकाइया, ६. बेइंदिया,
७. तेइंदिया, ८. चउरिंदिया,
९. पंचेंदिया[7]
–ठाणं. अ. ९. सु. ६६६/१

४४. नौ प्रकार के जीव–
संसारसमापन्नक जीव नौ प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक,
३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक,
५. वनस्पतिकायिक, ६. द्वीन्द्रिय,
७. त्रीन्द्रिय, ८. चतुरिन्द्रिय,
९. पंचेन्द्रिय।

---

१. ठाणं. अ. ३, उ. १, सु.१३९/३
२. जीवा. पडि. ३, सु. ६५
३. क. जीवा. पडि. ४, सु. २०७
　ख. पण्ण. प. १, सु. १८
४. क. जीवा. पडि. ३, सु. १००
　ख. जीवा. पडि. ५, सु. २१०
　ग. विया. स. ७, उ. ४, सु. २
५. जीवा. पडि. ६, सु. २२५
६. जीवा. पडि. ७, सु. २२६
७. जीवा. पडि. ८, सु. २२८

४५. दसविहा जीवा–

दसविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पढमसमयएगिंदिया,
२. अपढमसमयएगिंदिया,
३. पढमसमय बेइंदिया,
४. अपढमसमय बेइंदिया,
५. पढमसमय तेइंदिया,
६. अपढमसमय तेइंदिया,
७. पढमसमय चउरिंदिया,
८. अपढमसमय चउरिंदिया,
९. पढमसमय पंचेंदिया,
१०. अपढमसमय पंचेंदिया[1]।

–ठाणं. अ. १०, सु. ७७१/१

४५. दस प्रकार के जीव–

संसारसमापन्नक जीव दस प्रकार के कहे गये है, यथा–

१. प्रथम समय एकेन्द्रिय,
२. अप्रथम समय एकेन्द्रिय,
३. प्रथम समय द्वीन्द्रिय,
४. अप्रथम समय द्वीन्द्रिय,
५. प्रथम समय त्रीन्द्रिय,
६. अप्रथम समय त्रीन्द्रिय,
७. प्रथम समय चतुरिन्द्रिय,
८. अप्रथम समय चतुरिन्द्रिय,
९. प्रथम समय पंचेन्द्रिय,
१०. अप्रथम समय पंचेन्द्रिय।

४६. चोद्दसविहा जीवा–

प. कइविहा णं भंते ! संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चोद्दसविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुहुमा अपज्जत्तया,
२. सुहुमा पज्जत्तया,
३. बायरा अपज्जत्तया,
४. बायरा पज्जत्तया,
५. बेइंदिया अपज्जत्तया,
६. बेइंदिया पज्जत्तया,
७. तेइंदिया अपज्जत्तया,
८. तेइंदिया पज्जत्तया,
९. चउरिंदिया अपज्जत्तया,
१०. चउरिंदिया पज्जत्तया,
११. असन्निपंचेंदिया अपज्जत्तया,
१२. असन्निपंचेंदिया पज्जत्तया,
१३. सन्निपंचेंदिया अपज्जत्तया,
१४. सन्निपंचेंदिया पज्जत्तया[2]।

- विया. स. २५, उ. १, सु. ४

४६. चौदह प्रकार के जीव–

प्र. भन्ते ! संसारसमापन्नक (संसारी) जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! (संसारसमापन्नक जीव) चौदह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सूक्ष्म अपर्याप्तक,
२. सूक्ष्म पर्याप्तक,
३. बादर अपर्याप्तक,
४. बादर पर्याप्तक,
५. द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक,
६. द्वीन्द्रिय पर्याप्तक,
७. त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक,
८. त्रीन्द्रिय पर्याप्तक,
९. चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक,
१०. चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक,
११. असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक,
१२. असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक,
१३. संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक,
१४. संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक।

४७. चउवीसदंडगा विवक्खया संसारसमावण्णगा जीवाणं भेया–

दं. १, एगा णेरइयाणं वग्गणा।
दं. २, एगा असुरकुमाराणं वग्गणा।
दं. ३, एगा णागकुमाराणं वग्गणा।
दं. ४, एगा सुवण्णकुमाराणं वग्गणा।
दं. ५, एगा विज्जुकुमाराणं वग्गणा।
दं. ६, एगा अग्गिकुमाराणं वग्गणा।

४७. चौवीस दंडकों की विवक्षा से संसार समापन्नक जीवों के भेद–

दं. १. नैरयिकों की वर्गणा (समूह) एक है।
दं. २. असुरकुमार देवों की वर्गणा एक है।
दं. ३. नागकुमार देवों की वर्गणा एक है।
दं. ४. सुवर्णकुमार देवों की वर्गणा एक है।
दं. ५. विद्युत्कुमार देवों की वर्गणा एक है।
दं. ६. अग्निकुमार देवों की वर्गणा एक है।

---

१. जीवा. पडि. ९, सु. २२९

२. सम. सम. १४, सु. १

दं. ७, एगा दीवकुमाराणं वग्गणा।
दं. ८, एगा उदहिकुमाराणं वग्गणा।
दं. ९, एगा दिसाकुमाराणं वग्गणा।
दं. १०, एगा वायुकुमाराणं वग्गणा।
दं. ११, एगा थणियकुमाराणं वग्गणा।
दं. १२, एगा पुढविकाइयाणं वग्गणा।
दं. १३, एगा आउकाइयाणं वग्गणा।
दं. १४, एगा तेउकाइयाणं वग्गणा।
दं. १५, एगा वाउकाइयाणं वग्गणा।
दं. १६, एगा वणस्सइकाइयाणं वग्गणा।
दं. १७, एगा बेइंदियाणं वग्गणा।
दं. १८, एगा तेइंदियाणं वग्गणा।
दं. १९, एगा चउरिंदियाणं वग्गणा।
दं. २०, एगा पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं वग्गणा।
दं. २१, एगा मणुस्साणं वग्गणा।
दं. २२, एगा वाणमंतराणं वग्गणा।
दं. २३, एगा जोइसियाणं वग्गणा।
दं. २४, एगा वेमाणियाणं वग्गणा।

–ठाणं. अ. १, सु. ४१ (१)

दं. ७. द्वीपकुमार देवों की वर्गणा एक है।
दं. ८. उदधिकुमार देवों की वर्गणा एक है।
दं. ९. दिशाकुमार देवों की वर्गणा एक है।
दं. १०. वायुकुमार देवों की वर्गणा एक है।
दं. ११. स्तनितकुमार देवों की वर्गणा एक है।
दं. १२. पृथ्वीकायिक जीवों की वर्गणा एक है।
दं. १३. अप्कायिक जीवों की वर्गणा एक है।
दं. १४. तेजस्कायिक जीवों की वर्गणा एक है।
दं. १५. वायुकायिक जीवों की वर्गणा एक है।
दं. १६. वनस्पतिकायिक जीवों की वर्गणा एक है।
दं. १७. द्वीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
दं. १८. त्रीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
दं. १९. चतुरिन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
दं. २०. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की वर्गणा एक है।
दं. २१. मनुष्यों की वर्गणा एक है।
दं. २२. वाणव्यंतर देवों की वर्गणा एक है।
दं. २३. ज्योतिष्क देवों की वर्गणा एक है।
दं. २४. वैमानिक देवों की वर्गणा एक है।

४८. चउवीसदंडग विवक्खया जीवाणं दुविहत्त परूवणं–

दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–
१. भवसिद्धिया चेव, २. अभवसिद्धिया चेव।
एवं जाव वेमाणिया
दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अणंतरोववण्णग्गा चेव, २. परंपरोववण्णगा चेव।
एवं जाव वेमाणिया
दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–
१. गतिसमावण्णगा चेव, २. अगतिसमावण्णग्गा चेव।
एवं जाव वेमाणिया।
दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–
१. पढमसमओववण्णगा चेव,
२. अपढमसमओववण्णगा चेव।
एवं जाव वेमाणिया।
दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–
१. आहारगा चेव, २. अणाहारगा चेव।
एवं जाव वेमाणिया।
दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–
१. उस्सासगा चेव, २. णो उस्सासगा चेव।
एवं जाव वेमाणिया।
दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सइंदिया चेव, २. अणिंदिया चेव।

४८. चौबीसदंडक की विवक्षा से जीवों के द्विविधत्व का प्ररूपण–

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. भवसिद्धिक, २. अभवसिद्धिक।
इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।
नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. अनन्तरोपपन्नक, २. परम्परोपपन्नक।
इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।
नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. गतिसमापन्नक, २. अगतिसमापन्नक।
इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।
नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. प्रथमसमयोपपन्नक,
२. अप्रथमसमयोपपन्नक।
इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।
नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. आहारक, २. अनाहारक।
इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।
नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. उच्छ्वासक, २. नोउच्छ्वासक।
इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।
नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं–यथा–
१. सइन्द्रिय, २. अनिन्द्रिय।

एवं जाव वेमाणिया।

दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तगा चेव, २. अपज्जत्तगा चेव।

एवं जाव वेमाणिया।

दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–

१. सण्णी चेव, २. असण्णी चेव,

एवं सव्वे विगलिंदियवज्जा जाव वाणमंतरा।

दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–

१. भासगा चेव, २. अभासगा चेव।

एवमेगिंदियवज्जा सव्वे।

दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मद्दिट्ठिया चेव, २. मिच्छद्दिट्ठिया चेव।

एवमेगिंदियवज्जा सव्वे।

दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–

१. परित्तसंसारिया चेव, २. अणंतसंसारिया चेव।

एवं जाव वेमाणिया।

दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–

१. संखेज्जकालसमयट्ठिइया चेव,

२. असंखेज्जकालसमयट्ठिइया चेव।

एवं–पंचेंदिया एगिंदियविगलिंदियवज्जा जाव वाणमंतरा।

दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुलभबोहिया चेव, २. दुलभबोहिया चेव।

एवं जाव वेमाणिया।

दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–

१. कण्हपक्खिया चेव, २. सुक्कपक्खिया चेव।

एवं जाव वेमाणिया।

दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–

१. चरिमा चेव २. अचरिमा चेव।

एवं जाव वेमाणिया। –ठाणं. अ. २, सु. ६१

४९. संसारसमापन्न जीवपण्णवणाया भेया–

प. से किं तं संसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

उ. संसारसमावण्णजीवपण्णवणा पंचविहा पन्नत्ता, तं जहा–

१. एगिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा,
२. बेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा,
३. तेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा,
४. चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा,
५. पंचेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।

–पण्ण. प. १, सु. १८

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. संज्ञी, २. असंज्ञी।

इसी प्रकार विकलेन्द्रियों को छोड़कर वाणव्यंतर पर्यन्त सभी पंचेन्द्रिय जीवों के लिए जानना चाहिए।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. भाषक, २. अभाषक।

इसी प्रकार एकेन्द्रियों को छोड़कर सभी जीवों के लिए जानना चाहिए।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं–यथा–

१. सम्यग्दृष्टि, २. मिथ्यादृष्टि।

इसी प्रकार एकेन्द्रियों को छोड़कर सभी जीवों के लिए जानना चाहिए।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. परीतसंसारी, २. अनन्तसंसारी।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. संख्यातकाल की स्थिति वाले,

२. असंख्यातकाल की स्थिति वाले।

इसी प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों को छोड़कर सभी पंचेन्द्रिय जीवों के लिए जानना चाहिए।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सुलभबोधिक, २. दुर्लभबोधिक।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कृष्णपाक्षिक, २. शुक्लपाक्षिक।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. चरम २. अचरम।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

४९. संसारसमापन्नक जीव प्रज्ञापना के भेद–

प्र. वह संसारसमापन्नक जीव प्रज्ञापना क्या है ?

उ. संसारसमापन्नक जीव प्रज्ञापना पांच प्रकार की कही गई है, यथा–

१. एकेन्द्रिय संसारसमापन्नक जीव प्रज्ञापना,
२. द्वीन्द्रिय संसारसमापन्नक जीव प्रज्ञापना,
३. त्रीन्द्रिय संसारसमापन्नक जीव प्रज्ञापना,
४. चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्नक जीव प्रज्ञापना,
५. पंचेन्द्रिय संसारसमापन्नक जीव प्रज्ञापना।

प. से किं तं खरवादरपुढविकाइयां ?

उ. खरवादरपुढविकाइया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१.पुढवी य, २, सक्करा, ३, वालुया य,
४.उवले, ५.सिया य, ६-७, लोणूसे।

८.अय, ९.तंव, १०.तउय,
११.सीसय, १२.रुप्प, १३.सुवण्णे य, १४.वइरे य॥

१५.हरियाले, १६.हिंगुलुए,
१७.मणोसिला, १८-१९.सासगंजण, २०.पवाले।
२१.अब्भपडल, २२.ऽब्भवालुय,
वादरकाए मणिविहाणा॥

२३.गोमेज्जए य, २४.रुयए,
२५.अंके २६.फलिहे य, २७.लोहियक्खे य।
२८.मरगय, २९.मसारगल्ले,
३०.भुयमोयग, ३१.इंदनीले य॥
३२.चंदण, ३३.गेरूय, ३४.हंसे,
३५.पुलए, ३६.सोगंधिए य वोद्धव्वे।
३७.चंदप्पभ, ३८.वेरूलिए
३९.जलकंते, ४०.सूरकंते य॥
जे यावऽण्णे तहप्पगारा।[1]

१. ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तया य, २. अपज्जत्तगा य।[2]

२. तत्थ णं जे ते अपज्जत्तया ते णं असंपत्ता।

३. तत्थ णं जे ते पज्जत्तया एएसि णं वण्णादेसेणं, गंधादेसेणं, रसादेसेणं, फासादेसेणं, सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं।

पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तया वक्कमंति–जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेज्जा।

से तं खरवादरपुढविकाइया य।[3]
से तं वायरपुढविकाइया।
से तं पुढविकाइया।

प्र. खर बादरपृथ्वीकायिक कितने प्रकार के हैं ?

उ. खर बादरपृथ्वीकायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पृथ्वी, २. शर्करा (कंकर), ३. वालुका (वालू-रेत), ४. उपल (पाषाण-पत्थर), ५. शिला (चट्टान), ६. लवण (नमक), ७. ऊष (ऊषर, बंजरभूमि),

८. अयस् (लोहा), ९. ताम्बा, १०. त्रपुष् (रांगा), ११. सीसा, १२. रौप्य (चांदी), १३. सुवर्ण (सोना), १४. वज्र (हीरा),

१५. हरताल, १६. हिंगलू, १७. मेनसिल, १८. सासग (पारा), १९. अंजन (सौवीर आदि), २०. प्रवाल (मूँगा).

२१. अभ्रपटल (अभ्रक-भोड़ल), २२. अभ्रवालुका (अभ्रक-मिश्रित वालू)। बादरकाय में मणियों के प्रकार निम्न हैं–

२३. गोमेज्जक (गोमेदरत्न), २४. रुचकरत्न, २५. अंकरत्न, २६. स्फटिकरत्न, २७. लोहिताक्षरत्न,

२८. मरकतरत्न, २९. मसारगल्लरत्न, ३०. भुजगोचकरत्न, ३१. इन्द्रनीलमणि,

३२. चन्दनरत्न, ३३. गैरिकरत्न, ३४. हंसरत्न (हंसगर्भरत्न), ३५. पुलकरत्न, ३६. सौगन्धिकरत्न,

३७. चन्द्रप्रभरत्न, ३८. वैडूर्यरत्न, ३९. जलकान्तमणि, ४०. सूर्यकान्तमणि।

इनके अतिरिक्त जो अन्य भी तथाप्रकार के वैसे पद्मराग आदि मणिभेद हैं, वे भी खर बादरपृथ्वीकायिक समझने चाहिए।

१. वे पूर्वोक्त सामान्य बादरपृथ्वीकायिक संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

२. उनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे स्वयोग्य पर्याप्तियों को प्राप्त नहीं हैं।

३. उनमें से जो पर्याप्तक हैं, इनके वर्णादेश (वर्ण की अपेक्षा) से, गन्ध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों (सहस्रशः) भेद (विधान) हैं। (उनके) संख्यात लाख योनिप्रमुख (योनि-द्वार) हैं।

पर्याप्तकों के निश्राय (आश्रय) में, अपर्याप्तक (उत्पन्न) उत्पन्न होते हैं। जहां एक (पर्याप्तक) होता है, वहां (उसके आश्रय से) नियम से असंख्यात अपर्याप्तक (उत्पन्न होते हैं)।

यह (पूर्वोक्त) खर बादरपृथ्वीकायिकों का निरूपण है।
(उसके साथ ही) बादरपृथ्वीकायिकों का वर्णन हुआ है।

पृथ्वीकायिकों की प्ररूपणा समाप्त हुई।

५२. आउक्कायजीवपण्णवणा

प. से किं तं आउक्काइया ?

उ. आउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुहुमआउक्काइया य, २. बायरआउक्काइया य।[1]

प. से किं तं सुहुमआउक्काइया ?

उ. सुहुमआउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तं ज

१. पज्जत्तसुहुमआउक्काइया य,

२. अपज्जत्तसुहुमआउक्काइया य।

से तं सुहुमआउक्काइया।[2]

प. से किं तं बायरआउक्काइया ?

उ. बायरआउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

ओसा, हिमए, महिया, करए, हरतणूए, सुद्धोदए, सीतोदए, उसिणोदए, खारोदए, अंबिलोदए, लवणोदए, वारुणोदए, खीरोदए, घओदए, खोओदए, रसोदए, जे याऽवण्णे तहप्पगारा।

२. ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तया य, २. अपज्जत्तया य[3]।

३. तत्थ णं जे ते अपज्जत्तया ते णं असंपत्ता।

४. तत्थ णं जे ते पज्जत्तया एएसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणीपमुहसयसहस्साइं।

पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तया वक्कमंति–जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेज्जा।

से तं बायर आउक्काइया। से तं आउक्काइया।[4]

–पण्ण. प. १, सु. २६-२८

५२. अप्कायिक जीवों की प्रज्ञापना

प्र. अप्कायिक जीव कितने प्रकार के हैं ?

उ. अप्कायिक जीव दो प्रकार के हैं, यथा–

१. सूक्ष्म अप्कायिक, २. बादर अप्कायिक।

प्र. सूक्ष्म अप्कायिक कितने प्रकार के हैं ?

उ. सूक्ष्म अप्कायिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिक,

२. अपर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिक।

इस प्रकार सूक्ष्म अप्कायिक की प्ररूपणा हुई।

प्र. बादर अप्कायिक कितने प्रकार के हैं ?

उ. बादर-अप्कायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

ओस, हिम, महिका, ओले, हरतनु, शुद्धोदक, शीतोदक, उष्णोदक, क्षारोदक, अम्लोदक, लवणोदक, वारुणोदक, क्षीरोदक, घृतोदक, क्षोदोदक, रसोदक।

ये तथा इसी प्रकार के और भी (रस-स्पर्शादि के भेद से) जितने प्रकार हों, (वे सब बादर-अप्कायिक समझने चाहिए।)

२. बादर अप्कायिक संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

३. उनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे असम्प्राप्त (अपनी पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं कर पाए) हैं।

४. उनमें से जो पर्याप्तक हैं, उनके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों भेद होते हैं। उनके संख्यात लाख योनि प्रमुख हैं।

पर्याप्तक जीवों के आश्रय से अपर्याप्तक आकर उत्पन्न होते हैं। जहां एक पर्याप्तक हैं, वहाँ नियम से (उसके आश्रय से अथवा उसके अनुपात में) असंख्यात अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं।

यह बादर अप्कायिकों (का वर्णन हुआ साथ ही) अप्कायिक जीवों की (प्ररूपणा पूर्ण हुई।)

५३. तेउक्कायजीवपण्णवणा–

प. से किं तं तेउक्काइया ?

उ. तेउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुहुमतेउक्काइया य, २. बायरतेउक्काइया य।[5]

प. से किं तं सुहुमतेउक्काइया ?

उ. सुहुमतेउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तया य, २. अपज्जत्तया य।[6]

५३. तेजस्कायिक जीवों की प्रज्ञापना–

प्र. तेजस्कायिक जीव कितने प्रकार के हैं ?

उ. तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सूक्ष्म तेजस्कायिक, २. बादर तेजस्कायिक।

प्र. सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव कितने प्रकार के हैं ?

उ. सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

---

१. (क) उत्त. अ. ३६, गा. ८४
(ख) जीवा. पडि. १, सु. १६
(ग) ठाणं. अ. २ उ. १, सु. ६३

२. (क) उत्त. अ. ३६, गा. ८४
(ख) जीवा. पडि. १, सु. १६
(ग) जीवा. पडि. ५, सु. २१०

३. ठाणं अ. २ उ. १ सु. ६३

४. (क) उत्त. अ. ३६, गा. ८५
(ख) जीवा. पडि. १, सु. १७

५. (क) उत्त. अ. ३६, गा. १०८
(ख) जीवा. पडि. १, सु. २३
(ग) ठाणं अ. २, उ. १, सु. ६३

६ (क) उत्त. अ. ३६, गा. १०८
(ख) जीवा. पडि. १, सु. २४
(ग) जीवा. पडि. ५, सु. २१०

प. से किं तं बायरतेउक्काइया ?

उ. १. बायरतेउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–
इंगाले, जाला, मुम्मुरे, अच्ची, अलाए,[1] सुद्धागणी, उक्का, विज्जू, असणी, णिग्घाए, संघरिससमुट्ठिए सूरकंतमणिणिस्सिए,
जेयावऽण्णे तहप्पगारा।

२. ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पज्जत्तया य, २. अपज्जत्तया य।[2]

३. तत्थ णं जे ते अपज्जत्तया ते णं असंपत्ता।

४. तत्थ णं जे ते पज्जत्तया एएसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तया वक्कमंति–जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेज्जा।

से तं बायरतेउक्काइया। से तं तेउक्काइया।[3]

-पण्ण. प. १, सु. २९ ३१

प्र. बादर तेजस्कायिक कितने प्रकार के हैं ?

उ. १. बादर तेजस्कायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
अंगार, ज्वाला, मुर्मुर, अर्चि, अलात, शुद्ध अग्नि, उल्का, विद्युत, अशनि, निघात, संघर्ष-समुत्थित और सूर्यकान्तमणिनिःसृत।
इसी प्रकार की अन्य जो भी अग्नियां हैं उन्हें बादर तेजस्कायिकों के रूप में समझना चाहिए।

२. ये (उपर्युक्त बादर तेजस्कायिक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

३. उनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे (पूर्ववत्) असम्प्राप्त (अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्णतया अप्राप्त) हैं।

४. उनमें से जो पर्याप्तक हैं, उनके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की *अपेक्षा से हजारों भेद होते हैं। उनके संख्यात लाख योनि-प्रमुख* हैं। पर्याप्तक (तेजस्कायिकों) के आश्रय से अपर्याप्त (तेजस्कायिक) आकर उत्पन्न होते हैं। जहां एक पर्याप्तक होता है, वहां नियम से असंख्यात अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं।

यह हुई बादर तेजस्कायिक जीवों की प्ररूपणा। (साथ ही) तेजस्कायिक जीवों की भी प्ररूपणा हुई।

५४. वाउकायजीवपण्णवणा–

प. से किं तं वाउक्काइया ?

उ. वाउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुहुमवाउक्काइया य, २. बायरवाउक्काइया य।[4]

प. से किं तं सुहुमवाउक्काइया ?

उ. सुहुमवाउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पज्जत्तयसुहुमवाउक्काइया य,
२. अपज्जत्तयसुहुमवाउक्काइया य।
से तं सुहुमवाउक्काइया।[5]

प. से किं तं बायरवाउक्काइया ?

उ. १. बायरवाउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–
पाईणवाए, पडीणवाए, दाहिणवाए, उदीणवाए, उड्ढवाए, अहोवाए, तिरियवाए, विदिसीवाए,[6] वाउब्भामे, वाउक्कलिया, वायमंडलिया, उक्कलियावाए, मंडलियावाए, गुंजावाए, झंझावाए, संवट्टगवाए, घणवाए, तणुवाए, सुद्धवाए,
जे यावऽण्णे तहप्पगारे।

५४. वायुकायिक जीवों की प्रज्ञापना–

प्र. वायुकायिक जीव कितने प्रकार के हैं ?

उ. वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सूक्ष्म वायुकायिक, २. बादर वायुकायिक।

प्र. सूक्ष्म वायुकायिक कितने प्रकार के हैं ?

उ. सूक्ष्म वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक,
२. अपर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक।
यह (पूर्वोक्त) सूक्ष्म वायुकायिकों का वर्णन है।

प्र. बादर वायुकायिक कितने प्रकार के हैं ?

उ. १. बादर वायुकायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
पूर्वी वायु, पश्चिमी वायु, दक्षिणी वायु, उत्तरी वायु, ऊर्ध्ववायु, अधोवायु, तिर्यग्वायु, विदिग्वायु, वातोद्भ्राम, वातोत्कलिका, वातमण्डलिका, उत्कलिकावात, मण्डलिकावात, गुंजावात, झंझावात, संवर्तकवात, घनवात, तनुवात और शुद्धवात।
अन्य जितनी भी इस प्रकार की हवाएं हैं, उन्हें भी बादर वायुकायिक ही समझना चाहिए।

२. ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तया य, २. अपज्जत्तया य।[1]

३. तत्थ णं जे ते अपज्जत्तया ते णं असंपत्ता।

४. तत्थ णं जे ते पज्जत्तया एएसि णं वण्णादेसेणं गंधादेसेणं रसादेसेणं फासादेसेणं सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं। पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तया वक्कमंति–जत्थ एगो तत्थ णियमा असंखेज्जा।

से तं बायरवाउक्काइया। से तं वाउक्काइया।[2]

–पण्ण. प. १, सु. ३२-३४

२. बादर वायुकायिक संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

३. इनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे असम्प्राप्त (अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं किए) हैं।

४. इनमें से जो पर्याप्तक हैं, उनके वर्ण की अपेक्षा से, गन्ध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों प्रकार होते हैं। इनके संख्यात लाख योनिप्रमुख होते हैं। पर्याप्तक वायुकायिक के आश्रय से अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं। जहां एक (पर्याप्तक वायुकायिक) होता है वहां नियम से असंख्यात (अपर्याप्तक वायुकायिक) होते हैं।

यह बादर वायुकायिक का वर्णन हुआ। (साथ ही), वायुकायिक जीवों की (प्ररूपणा पूर्ण हुई।)

५५. वणस्सइकायजीवपण्णवणा–

प. से किं तं वणस्सइकाइया ?

उ. वणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुहुमवणस्सइकाइया य,

२. बायरवणस्सइकाइया य।[3]

प. से किं तं सुहुमवणस्सइकाइया ?

उ. सुहुमवणस्सइकाइया दुविहा पणत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तसुहुमवणस्सइकाइया य,

२. अपज्जत्तसुहुमवणस्सइकाइया य।

से तं सुहुमवणस्सइकाइया।[4]

प. से किं तं बायरवणस्सइकाइया ?

उ. बायरवणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइया य,

२. साहारणसरीरबायरवणस्सइकाइया य।[5]

प. से किं तं पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइया ?

उ. पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइया दुवालसविहा पण्णत्ता, तं जहा–गाहा–

१. रूक्खा, २. गुच्छा, ३. गुम्मा,
४. लया य, ५. वल्ली य, ६. पव्वगा चेव।
७. तण, ८. वलय, ९. हरिय,
१०. ओसहि, ११. जलरुह, १२. कुहणा य, बोधव्वा॥[6]

–पण्ण. प. १, सु. ३५-३८

५५. वनस्पतिकायिकों की प्रज्ञापना–

प्र. वे (पूर्वोक्त) वनस्पतिकायिक जीव कितने प्रकार के हैं ?

उ. वनस्पतिकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सूक्ष्म वनस्पतिकायिक,

२. बादर वनस्पतिकायिक।

प्र. वे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव कितने प्रकार के हैं ?

उ. सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्याप्तक सूक्ष्म वनस्पतिकायिक,

२. अपर्याप्तक सूक्ष्म वनस्पतिकायिक।

यह हुआ सूक्ष्म वनस्पतिकायिक (का निरूपण)।

प्र. बादर वनस्पतिकायिक कितने प्रकार के हैं ?

उ. बादर वनस्पतिकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक,

२. साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक।

प्र. प्रत्येक शरीर-बादर वनस्पतिकायिक जीव कितने प्रकार के हैं ?

उ. प्रत्येक शरीर-बादर वनस्पतिकायिक जीव बारह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–**गाथार्थ**–

१. वृक्ष, २. गुच्छ, ३. गुल्म,
४. लता, ५. वल्ली, ६. पर्वग,
७. तृण, ८. वलय, ९. हरित,
१०. औषधि, ११. जलरुह, १२. कुहण।

ये बारह प्रकार के प्रत्येक शरीर-बादर वनस्पतिकायिक जीव समझने चाहिए।

---

१. (क) जीवा. पडि. ५, सु. २१०
(ख) ठाणं अ. २, उ. १, सु. ६३

२. (क) उत्त. अ. ३६, गा. ११८, ११९
(ख) जीवा. पडि. १, सु. २६
(ग) ठाणं अ. २, उ. १, सु. ६३

३. (क) उत्त. अ. ३६, गा. ९२
(ख) जीवा. पडि. १, सु. १८

४. (क) उत्त. अ. ३६, गा. ९२
(ख) जीवा. पडि. १, सु. १९
(ग) जीवा. पडि. ५, सु. २१०
(घ) ठाणं अ. २, उ. १, सु. ६३

५. (क) उत्त. अ. ३६, गा. ९३
(ख) जीवा. पडि. १, सु. १९

६. (क) उत्त. अ. ३६, गा. ९४-९५
(ख) जीवा. पडि. १, सु. २०

(१) रुक्खप्पगारा–

प. से किं तं रुक्खा ?

उ. रुक्खा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. एगट्ठिया य, २. बहुबीयगा य।[1]

(क) एगट्ठिया–

प. से किं तं एगट्ठिया ?

उ. एगट्ठिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

णिंबंब जंबु कोसंब साल अंकोल्ल पीलु सेलू य।
सल्लइ मोयइ मालुय बउल पलासे करंजे य॥
पुत्तजीवय रिट्ठे विभेलए हरडए य भल्लाए।
उंबेभरिया खीरिणि बोधव्वे धायइ पियाले॥
पूईकरंज सेण्हा (सण्हा) तह सीसवा य असणे य।
पुण्णाग णागरुक्खे सीवण्णि तहा असोगे य॥
जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

एएसि णं मूला वि असंखेज्जजीविया, कंदा वि, खंधा वि, तया वि, साला वि, पवाला वि।
पत्ता पत्तेयजीविया।
पुप्फा अणेगजीविया। फला एगट्ठिया।

(१) वृक्ष के प्रकार–

प्र. वे वृक्ष कितने प्रकार के हैं ?

उ. वृक्ष दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. एकास्थिक, २. बहुबीजक।

(क) एकास्थिक–(एक गुठली वाले)–

प्र. एकास्थिक (प्रत्येक फल में एक बीज-गुठली वाले) वृक्ष कितने प्रकार के हैं ?

उ. एकास्थिक वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

नीम, आम, जामुन, कोशम्ब, शाल, अंकोल्ल, पीलू, शेलु, सल्लकी, मोचकी, मालुक, बकुल, पलाश, करंज।

पुत्रजीवक, अरिष्ट, विभीतक, हरड, भल्लातक, उम्बेभरिया, क्षीरणि, धातकी और प्रियाल।

पूतिक, करन्ज, श्लक्ष्ण तथा शींशपा, अशन और पुन्नाग, नागवृक्ष, श्रीपर्णी और अशोक; (ये एकास्थिक वृक्ष हैं।)

इसी प्रकार के अन्य जितने भी वृक्ष हों, (जो विभिन्न देशों में उत्पन्न होते हैं तथा जिनके फल में एक ही गुठली हो; उन सबको एकास्थिक ही समझना चाहिए।)

इन (एकास्थिक वृक्षों) के मूल असंख्यात जीवों वाले होते हैं, तथा कन्द भी, स्कन्ध भी, त्वचा भी, शाखा भी और प्रवाल भी असंख्यात जीव वाले हैं, किन्तु इनके पत्ते प्रत्येक जीव वाले होते हैं। फूल अनेक जीव वाले होते हैं। इनके फल एकास्थिक होते हैं।

(२) गुच्छा-

प. से किं तं गुच्छा ?

उ. गुच्छा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा-
वाइंगण सल्लइ बोंडई य, तह कच्छुरी य जासुमणा।
रूवि आढइ नीली, तुलसी तह माउलिंगी य॥
कत्थुंभरि पिप्पलिया, अयसी बिल्ली य कायमाई य।
चुच्चु पडोला कंदलि, वाउच्चा वत्थुले बदरे॥
पत्तउर सीयउरए हवइ, तहा जवसए य बोधव्वे।
णिग्गुंडि अक्क तूवरि, आट्टई चेव तलऊडा॥
सण वाण कास मद्दग, अगघाडग साम सिंदुवारे य।
करमद्द अद्दरूसग, करीर एरावण महित्थे॥
जाउलग माल परिली, गयमारिणि कुच्च कारिया भंडी।
जावइ केयइ तह गंज पाडला दासि, अंकोल्ले॥१९-२३॥
जे यावऽण्णे तहप्पगारा,
से तं गुच्छा।

(२) गुच्छ-

प्र. गुच्छ कितने प्रकार के हैं?

उ. गुच्छ अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
बेंगन, शल्यकी, बोंडी (अथवा थुण्डकी) तथा कच्छुरी, जासुमना, रूपी, आढकी, नीली, तुलसी तथा मातुलिंगी।
कस्तुम्भरी, पिप्पलिका, अलसी, बिल्वी, कायमादिका, चुच्चू, पटोला, कन्दली, बाउच्चा, बस्तुल तथा बादर।
पत्रपूर, शीतपूरक तथा जवसक एवं निर्गुण्डी, अर्क, तूवरी, अट्टकी और तलपुटा भी समझना चाहिए।
सण, वाण, काश, मद्रक, आघ्रातक, श्याम, सिन्दुवार और करोंदा, आर्द्रडूसक, करीर, ऐरावण तथा महित्थ।
जातुलक, मोल, परिली, गजमारिणी, कुज्जकारिका, भंडी, जावकी, केतकी तथा गंज, पाटला, दासी और अंकोल्ल।
अन्य जो भी इसी प्रकार के हैं, (वे सब गुच्छ समझने चाहिए।)
यह गुच्छ का वर्णन हुआ।

(३) गुम्मा-

प. से किं तं गुम्मा ?

उ. गुम्मा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा-
सेरियए णोमालिय, कोरंटय बंधुजीवग मणोज्जे।
पीईय पाण कणइर, कुज्जय तह सिंदुवारे य॥
जाई मोग्गर तह जूहिया य तह मल्लिया य वासंती।
वत्थुल कच्छुल सेवाल गंठि मगदंतिया चेव॥
चंपग जाती वणणीइया य कुंदो तहा महाजाई।
एवमणेगागारा हवंति गुम्मा मुणेयव्वा॥२४-२६॥
जे यावऽण्णे तहप्पगारा,
से तं गुम्मा।

(३) गुल्म-

प्र. गुल्म कितने प्रकार के हैं ?

उ. गुल्म अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
सेरितक, नवमालती, कोरण्टक, बन्धुजीवक, मनोद्य, पीतिक, पान, कनेर, कुर्जक तथा सिन्दुवार।
जाइ, मोगरा, जूही तथा मल्लिका और वासन्ती, वस्तुल, कच्छुल, शैवाल, ग्रन्थि एवं मृगदन्तिका।
चम्पक, जाई, नवनीतिका, कुन्द तथा मजाजाति;
इस प्रकार अनेक आकार-प्रकार के होते हैं, (उन सबको) गुल्म समझना चाहिए।
यह गुल्मों की प्ररूपणा हुई।

(४) लया-

प. से किं तं लयाओ ?

उ. लयाओ अणेगविहाओ[1] पण्णत्ताओ, तं जहा-
पउमलता नागलता असोग-चंपयलता य चूयलता।
वणलय वासंतिलता अइमुत्तय-कुंद-सामलता॥२७॥
जे यावऽण्णे तहप्पगारा,
से तं लयाओ।

(४) लता-

प्र. लताएं कितने प्रकार की हैं ?

उ. लताएं अनेक प्रकार की कही गई हैं, यथा-
पद्मलता, नागलता, अशोकलता, चम्पकलता चूतलता (आम्रलता) वनलता, वासन्तीलता, अतिमुक्तकलता, कुन्दलता और श्यामलता।
और जितनी भी इस प्रकार की हैं, (उन्हें लता समझना चाहिए।)
यह लताओं का वर्णन हुआ।

(५) वल्ली-

प. से किं तं वल्लीओ ?

उ. वल्लीओ अणेगविहाओ[2] पण्णत्ताओ, तं जहा-
पूसफली कालिंगी, तुंबी तउसी य एलवालुंकी।
घोसाडई पडोला, पंचंगुलिया य णालीया।

(५) वल्ली-

प्र. वल्लियां कितने प्रकार की हैं ?

उ. वल्लियां अनेक प्रकार की कही गई हैं, यथा-
पूसफली, कालिंगी, तुम्बी, त्रपुषी, एलवालुकी, घोषातकी, पटोला, पंचांगुलिका और नालीका।

---

१. प. कइ णं भंते ! लयाओ, कइ लया सया पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! अट्ठ लयाओ, अट्ठ लया सया पण्णत्ता।
जीवा. पडि. ३, सु. १८

२. जीवा. पडि. ३, सु १८
प. कइ णं भंते ! वल्लीओ, कइ वल्लीसया पण्णत्ता।
उ. गोयमा ! चत्तारि वल्लीओ, चत्तारि वल्लीसया पण्णत्ता।
-जीवा. पडि, ३, सु. १८

कंगूया कद्दुइया कक्कोडइ कारियल्लई सुभगा।
कुवधा (या) य वागली पाववल्लि तह देवदारू य॥
अप्फोया अइमुत्तय णागलया कण्ह-सूरवल्ली य।
संघट्ट सुमणसा वि य जासुवण कुविंदवल्ली य॥
मुद्दिय अप्पा भल्ली छीरविराली जियंति गोवाली।
पाणी मासावल्ली गुंजावल्ली य वच्छाणी॥
ससबिंदु गोत्तफुसिया गिरिकण्णइ मालुया य अंजणई।
दहफुल्लइ कागणि मोगली य तह अक्कबोंदि य॥२८-३२॥
जे यावऽण्णे तहप्पगारा,

से तं वल्लीओ।

(६) पव्वगा–

प. से किं तं पव्वगा ?

उ. पव्वगा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

इक्खू य इक्खुवाडी वीरण तह एक्कडे भमासे य॥
सुंठ सरे य वेत्ते तिमिरे सयपोरग णले य॥
वंसे वेलू कणए कंकावंसे य चाववंसे य।
उदए कुडए विमए कंडावेलू य कल्लाणे॥३३-३४॥
जे यावऽण्णे तहप्पगारा,

से तं पव्वगा।

(७) तण–

प. से किं तं तणा ?

उ. तणा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

सेडिय भंतिय होत्तिय डब्भ कुसे पव्वए य पोडइला।
अज्जुण असाढए रोहियंसे सुय वेय खीर भुसे॥
एरंडे कुरुविंदे करकर सुंठे तहा विभंगू य।
महुरतण लुणय सिप्पिय बोधव्वे सुंकलितणा य॥३५-३६॥
जे यावऽण्णे तहप्पगारा,

से तं तणा।

कंगुका, कद्दुकिका, कर्कोटकी, कारवेल्लकी, सुभगा, कुवधा वागली, पापवल्ली तथा देवदारु।

अफोया, अतिमुक्तका, नागलता, कृष्णसूरवल्ली, संघट्टा, सुमनसा, जासुवन और कुविन्दवल्ली।

मुद्गीका, अप्पा, भल्ली, क्षीरविराली, जयंती, गोपाली, पाणी, मासावल्ली, गुंजावल्ली और वच्छाणी।

शशबिंदु, गोत्रस्पृष्टा, गिरिकर्णकी, मालुका, अंजनकी, दहस्फोटकी, काकणी, मोकली, अर्कबोन्दी।

इसी प्रकार की अन्य जितनी भी वनस्पतियां हैं, उन सबको वल्लियां समझना चाहिए।

यह वल्लियों की प्ररूपणा हुई।

(६) पर्वक–

प्र. पर्वक वनस्पतियां कितने प्रकार की हैं ?

उ. पर्वक वनस्पतियां अनेक प्रकार की कही गई हैं, यथा–

इक्षु और इक्षुवाटी, वीरण तथा एक्कड़, भमास, सूंठ (सुंठ) शर और वेत्र, तिमिर, शतपर्वक और नल।

वंश, वेलू, कनक, कंकावंश और चापवंश, उदक, कुटज, विमक, कण्डा, वेलू और कल्याण।

और भी जो इसी प्रकार की वनस्पतियां हैं, (उन्हें पर्वक में ही समझना चाहिए।)

यह पर्वकों की प्ररूपणा हुई।

(७) तृण–

प्र. तृण कितने प्रकार के हैं ?

उ. तृण अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

सेंडिक, भंतिक, होत्रिक, दर्भ, कुश और पर्वक, पोटकिला, अर्जुन, आषाढ़क, रोहितांश, शुकवेद और क्षीरतुष।

एरण्ड, कुरुविन्द, करकर, सूंठ, विभंगु और मधुरतृण, लवणक, शिल्पिक और सुंकलीतृण, (इन्हें तृण समझना चाहिए।)

जो अन्य इसी प्रकार के हैं उन्हें भी तृण समझना चाहिए।

यह तृणों की प्ररूपणा हुई।

(९) हरिय-

प. से किं तं हरिया ?

उ. हरिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा-

अज्जोरूह वोडाणे हरितग तह तंदुलेज्जग तणे य।
वत्थुल पारग मज्जार पाइ बिल्ली य पालक्का॥
दगपिप्पली य दव्वी सोत्थियसाए तहेव मंडुक्की।
मूलग सरिसव अंबिलसाए य जियंतए चेव॥
तुलसी कण्ह उराले फणिज्जए अज्जए य भूयणए॥
चोरग दमणग मरूयग सयपुप्फिंदीवरे य तहा॥३९-४१॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा,

से तं हरिया। *-पण्ण. प. १, सु. ४३-४९*

प. कइ णं भंते ! हरियकाया ? कइ हरियकायसया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तओ हरियकाया तओ हरियकायसया पण्णत्ता।
फलसहस्सं च बेंटबद्धाणं फलसहस्सं च णालबद्धाणं।
ते सव्वे-हरितकायमेव समोयरंति।

ते एवं समणुगम्ममाणा-समणुगम्ममाणा
समणुगाहिज्जमाणा - समणुगाहिज्जमाणा
समणुपेहिज्जमाणा - समणुपेहिज्जमाणा
समणुचिंतिज्जमाणा-समणुचिंतिज्जमाणा एएसु चेव
दोसु काएसु समोयरंति, तं जहा-
तसकाए चेव, थावरकाए चेव।
एवामेव सपुव्वावरेणं आजीवदिट्ठंतेण चउरासीत्ति
जातिकुलकोडी - जोणीपमुहसयसहस्सा
भवंतीतिमक्खाया।[1] *-जीवा. पडि. ३, सु. ९८*

(१०) ओसहि-

प. से किं तं ओसहीओ ?

उ. ओसहीओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-
साल, वीही, गोधूम, जवजवा, कल, मसूर, तिल, मुग्गा।
मास, निप्फाव, कुलत्थ, अलिसंद, सतीण, पलिमंथा,
अयसी, कुसुंभ, कोद्दव, कंगू, रालग, वरसामग, कोदूसा,
सण, सरिसव, मूलग, वीय,
जे यावऽण्णा तहप्पगारा॥

से तं ओसहीओ।

(११) जलरुह-

प. से किं तं जलरुहा ?

उ. जलरुहा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा-

(९) हरित-

प्र. हरित (वनस्पतियां) कितने प्रकार की हैं ?

उ. हरित वनस्पतियां अनेक प्रकार की कही गई हैं, यथा-
अध्यावरोह, व्युदान, हरितक तथा तान्दुलेयक, तृण, वस्तुल, पारक, मार्जार, पाती, बिल्वी और पालक।

दकपिप्पली, दर्वी, स्वस्तिक, शाक, माण्डुकी, मूलक, सर्षप, अम्लशाक और जीवान्तक।

तुलसी, कृष्ण, उदार, फानेयक और आर्यक, भुजनक, चोरक, दमनक, मरुचक, शतपुष्पी तथा इन्दीवर।

अन्य जो भी इस प्रकार की वनस्पतियां हैं वे सब हरित (हरी या लिलोती) के अन्तर्गत समझनी चाहिए।

यह हरित वनस्पतियों की प्ररूपणा हुई।

प्र. भन्ते ! हरितकाय कितने प्रकार के हैं ? तथा हरितकाय कितने सौ प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! हरितकाय तीन प्रकार के हैं एवं प्रभेदों की अपेक्षा हरितकाय तीन सौ प्रकार के कहे गये हैं।
वृन्तबद्ध फल हजार प्रकार के हैं। नालबद्ध फल हजार प्रकार के हैं। ये सब हरितकाय में ही सम्मिलित हैं।
इस प्रकार सम्यग् जानने पर, सम्यग् विचारने पर, सम्यग् प्रकार से देखने पर, सम्यग् प्रकार से चिन्तन करने पर, वे इन दो कायों में ही सम्मिलित होते हैं, यथा-

त्रसकाय में और स्थावरकाय में।
इस प्रकार पूर्वापर विचार करने पर समस्त जीवों की अपेक्षा से चौरासी लाख योनियां प्रमुख हैं, ऐसा कहा है।

(१०) औषधी-

प्र. औषधियां कितने प्रकार की होती हैं ?

उ. औषधियां अनेक प्रकार की कही गई हैं, यथा-
शाली, व्रीहि, गोधूम (गेहूं), जौ, कलाय (चणा), मसूर, तिल, मूंग, माष, निष्पाव, कुलत्थ, अलिसन्द, सतीण, पलिमन्थ।
अलसी, कुसुम्भ, कोदों, कंगू, राल, वरश्यामाक और कोदूस, शण, सरसों, मूलक बीज;
ये और इसी प्रकार की अन्य जो भी (वनस्पतियां) हैं, (उन्हें भी औषधियों में गिनना चाहिए।)
यह औषधियों का वर्णन हुवा।

(११) जलरुह-

प्र. जलरुह (वनस्पतियां) कितने प्रकार की हैं ?

उ. जल में उत्पन्न होने वाली (जलरुह) वनस्पतियां अनेक प्रकार की कही गई हैं, यथा-

१. सम. ८४, सु. ३३

उदए अवए पणए सेवाले कलंबुया हढे कसेरुया कच्छा भाणी उप्पले पउमे कुमुदे नलिणे सुभए सोगंधिए पोंडरीए महापोंडरीए सयपत्ते सहस्सपत्ते कल्हारे कोकणदे अरविंदे तामरसे भिसे भिसमुणाले पोक्खले पोक्खलत्थिभए,

जे यावऽण्णे तहप्पगारा,

से तं जलरुहा।

उदक, अवक, पनक, शैवाल, कलम्बुका, हढ, कसेरुका, कच्छा, भाणी, उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, कल्हार, कोकनद, अरविन्द, तामरस, कमल, भिस, भिसमृणाल, पुष्कर और पुष्करास्तिभज।

इस प्रकार और भी (जल में उत्पन्न होने वाली जो वनस्पतियां हैं, उन्हें जलरुह के अन्तर्गत समझना चाहिए।)

यह जलरुहों का निरूपण हुआ।

(१२) कुहण—

प. से किं तं कुहणा?

उ. कुहणा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—

आए काए कुहणे कुणक्के दव्वहलिया सप्फाए सज्जाए सित्ताए वंसी णहिया कुरए,

जे यावऽण्णे तहप्पगारा,

से तं कुहणा। — पण्ण. प. १, सु. ५०-५२

(१२) कुहण—

प्र. कुहण वनस्पतियां कितने प्रकार की हैं?

उ. कुहण वनस्पतियां अनेक प्रकार की कही गई हैं, यथा—

आय, काय, कुहण, कुनक्क, द्रव्यहलिका, शफाय, सद्यात, सित्राक और वंशी, नहिता, कुरक।

इसी प्रकार की जो अन्य वनस्पतियां हैं। उन सबको कुहण के अन्तर्गत समझना चाहिए।

यह कुहण वनस्पतियों का वर्णन हुआ।

५६. पत्तेय सरीरी वणस्सइ जीवाणं सरूव परूवणं—

णाणाविहसंठाणा रुक्खाणं एगजीविया पत्ता।
खंधो वि एगजीवो ताल-सरल-नालिएरीणं॥

जह सगलसरिसवाणं सिलेसमिस्साण वट्टिया वट्टी।
पत्तेयसरीराणं तह होंति सरीरसंघाया॥

जह वा तिलपप्पडिया बहुएहिं तिलेहिं संहिया संती।
पत्तेयसरीराणं तह होंति सरीरसंघाया॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा,

से तं पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया।[1] — पण्ण. प. १, सु. ५३

५६. प्रत्येक शरीरी वनस्पति जीवों के स्वरूप का प्ररूपण—

वृक्षों की आकृतियां नाना प्रकार की होती हैं। इनके पत्ते एकजीवक होते हैं, और स्कन्ध भी एक जीव वाला होता है। ताल, सरल, नारिकेल वृक्षों के पत्ते और स्कन्ध एक-एक जीव वाले होते हैं।

जैसे श्लेष द्रव्य से मिश्रित किए हुए समस्त सर्षपों की वट्टी (में सरसों के दाने पृथक्-पृथक् होते हुए भी) एक रूप प्रतीत होती है, वैसे ही (रागद्वेष से उपचित विशिष्टकर्मश्लेष से) एकत्र हुए प्रत्येक शरीरी जीवों के शरीरसंघात रूप होते हैं।

जैसे तिलपपड़ी (तिलपट्टी) में (प्रत्येक तिल अलग-अलग प्रतीत होते हुए भी) बहुत से तिलों के संघात (एकत्र) होने पर एक होती है। वैसे ही प्रत्येक-शरीरी जीवों के शरीरसंघात होते हैं।

अन्य ऐसे और भी [illegible]।

इस प्रकार उन (पूर्वोक्त) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक जीवों की प्रज्ञापना पूर्ण हुई।

५७. साहारण सरीरी वणस्सइ जीवाणं सरूव परूवणं—

प. से किं तं साहारणसरीरबादर वणस्सइकाइया?

५७. साधारण शरीरी वनस्पति जीवों के स्वरूप का प्ररूपण—

प्र. साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं?

(९) हरिय-

प. से किं तं हरिया ?

उ. हरिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा-

अज्जोरूह वोडाणे हरितग तह तंदुलेज्जग तणे य।
वत्थुल पारग मज्जार पाइ बिल्ली य पालक्का॥
दगपिप्पली य दव्वी सोत्थियसाए तहेव मंडुक्की।
मूलग सरिसव अंबिलसाए य जियंतए चेव॥
तुलसी कण्ह उराले फणिज्जए अज्जए य भूयणए॥
चोरग दमणग मरूयग सयपुप्फिंदीवरे य तहा॥३९-४१॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा,

से तं हरिया। *-पण्ण. प. १, सु. ४३-४९*

प. कइ णं भंते ! हरियकाया ? कइ हरियकायसया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तओ हरियकाया तओ हरियकायसया पण्णत्ता।

फलसहस्सं च बेंटबद्धाणं फलसहस्सं च णालबद्धाणं।

ते सव्वे-हरितकायमेव समोयरंति।

ते एवं समणुगम्ममाणा-समणुगम्ममाणा
समणुगाहिज्जमाणा – समणुगाहिज्जमाणा
समणुपेहिज्जमाणा – समणुपेहिज्जमाणा
समणुचिंतिज्जमाणा-समणुचिंतिज्जमाणा एएसु चेव दोसु काएसु समोयरंति, तं जहा-

तसकाए चेव, थावरकाए चेव।

एवामेव सपुव्वावरेणं आजीवदिट्ठंतेण चउरासीत्ति जातिकुलकोडी – जोणीपमुहसयसहस्सा भवंतीतिमक्खाया।[1] *-जीवा. पडि. ३, सु. ९८*

(९) हरित-

प्र. हरित (वनस्पतियां) कितने प्रकार की हैं ?

उ. हरित वनस्पतियां अनेक प्रकार की कही गई हैं, यथा-

अध्यावरोह, व्युदान, हरितक तथा तान्दुलेयक, तृण, वस्तुल, पारक, मार्जार, पाती, बिल्वी और पालक।

दकपिप्पली, दर्वी, स्वस्तिक, शाक, माण्डुकी, मूलक, सर्षप, अम्लशाक और जीवान्तक।

तुलसी, कृष्ण, उदार, फानेयक और आर्यक, भुजनक, चोरक, दमनक, मरुचक, शतपुष्पी तथा इन्दीवर।

अन्य जो भी इस प्रकार की वनस्पतियां हैं वे सब हरित (हरी या लिलोती) के अन्तर्गत समझनी चाहिए।

यह हरित वनस्पतियों की प्ररूपणा हुई।

प्र. भन्ते ! हरितकाय कितने प्रकार के हैं ? तथा हरितकाय कितने सौ प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! हरितकाय तीन प्रकार के हैं एवं प्रभेदों की अपेक्षा हरितकाय तीन सौ प्रकार के कहे गये हैं।

वृन्तबद्ध फल हजार प्रकार के हैं। नालबद्ध फल हजार प्रकार के हैं। ये सब हरितकाय में ही सम्मिलित हैं।

इस प्रकार सम्यग् जानने पर, सम्यग् विचारने पर, सम्यग् प्रकार से देखने पर, सम्यग् प्रकार से चिन्तन करने पर, वे इन दो कायों में ही सम्मिलित होते हैं, यथा-

त्रसकाय में और स्थावरकाय में।

इस प्रकार पूर्वापर विचार करने पर समस्त जीवों की अपेक्षा से चौरासी लाख योनियां प्रमुख हैं, ऐसा कहा है।

(१०) ओसहि-

प. से किं तं ओसहीओ ?

उ. ओसहीओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

साल, वीही, गोधूम, जवजवा, कल, मसूर, तिल, मुग्गा।
मास, निप्फाव, कुलत्थ, अलिसंद, सतीण, पलिमंथा,
अयसी, कुसुंभ, कोद्दव, कंगू, रालग, वरसामग, कोदूसा,
सण, सरिसव, मूलग, वीय,
जे यावऽण्णा तहप्पगारा॥

से तं ओसहीओ।

(१०) औषधी-

प्र. औषधियां कितने प्रकार की होती हैं ?

उ. औषधियां अनेक प्रकार की कही गई हैं, यथा-

शाली, व्रीहि, गोधूम (गेहूं), जौ, कलाय (चणा), मसूर, तिल, मूंग, माष, निप्पाव, कुलत्थ, अलिसन्द, सतीण, पलिमन्थ।

अलसी, कुसुम्भ, कोदों, कंगू, राल, वरश्यामांक और कोद्रूस, शण, सरसों, मूलक बीज;

ये और इसी प्रकार की अन्य जो भी (वनस्पतियां) हैं, (उन्हें भी औषधियों में गिनना चाहिए।)

यह औषधियों का वर्णन हुवा।

(११) जलरुह-

प. से किं तं जलरुहा ?

उ. जलरुहा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा-

(११) जलरुह-

प्र. जलरुह (वनस्पतियां) कितने प्रकार की हैं ?

उ. जल में उत्पन्न होने वाली (जलरुह) वनस्पतियां अनेक प्रकार की कही गई हैं, यथा-

---

1. सम. ८४, सु. १३

उदए अवए पणए सेवाले कलंबुया हढे कसेरुया कच्छा भाणी उप्पले पउमे कुमुदे नलिणे सुभए सोगंधिए पोंडरीए महापोंडरीए सयपत्ते सहस्सपत्ते कल्हारे कोकणदे अरविंदे तामरसे भिसे भिसमुणाले पोक्खले पोक्खलत्थिभए,

जे यावऽण्णे तहप्पगारा,

से तं जलरुहा।

(१२) कूहण–

प. से किं तं कुहणा?

उ. कुहणा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

आए काए कुहणे कुणक्के दव्वहलिया सप्फाए सज्जाए सित्ताए वंसी णहिया कुरए,

जे यावऽण्णे तहप्पगारा,

से तं कुहणा। *–पण्ण. प. १, सु. ५०-५२*

उदक, अवक, पनक, शैवाल, कलम्बुका, हढ, कसेरूका, कच्छा, भाणी, उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, कल्हार, कोकनद, अरविन्द, तामरस, कमल, भिस, भिसमृणाल, पुष्कर और पुष्करास्तिभज।

इस प्रकार और भी (जल में उत्पन्न होने वाली जो वनस्पतियां हैं, उन्हें जलरुह के अन्तर्गत समझना चाहिए।)

यह जलरुहों का निरूपण हुवा।

(१२) कूहण–

प्र. कुहण वनस्पतियां कितने प्रकार की हैं ?

उ. कुहण वनस्पतियां अनेक प्रकार की कही गई हैं, यथा–

आय, काय, कुहण, कुनक्क, द्रव्यहलिका, शफाय, सद्यात, सित्राक और वंशी, नहिता, कुरक।

इसी प्रकार की जो अन्य वनस्पतियां हैं। उन सबको कुहण के अन्तर्गत समझना चाहिए।

यह कुहण वनस्पतियों का वर्णन हुवा।

५६. पत्तेय सरीरी वणस्सइ जीवाणं सरूव परूवणं–

णाणाविहसंठाणा रुक्खाणं एगजीविया पत्ता।
खंधो वि एगजीवो ताल-सरल-नालिएरीणं॥

जह सगलसरिसवाणं सिलेसमिस्साण वट्टिया वट्टी।
पत्तेयसरीराणं तह होंति सरीरसंघाया॥

जह वा तिल पप्पडिया बहुएहिं तिलेहिं संहिया संती।
पत्तेयसरीराणं तह होंति सरीरसंघाया॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा,
से तं पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया।[1]

–पण्ण. प. १, सु. ५३

५६. प्रत्येक शरीरी वनस्पति जीवों के स्वरूप का प्ररूपण–

वृक्षों की आकृतियां नाना प्रकार की होती हैं। इनके पत्ते एकजीवक होते हैं, और स्कन्ध भी एक जीव वाला होता है। ताल, सरल, नारिकेल वृक्षों के पत्ते और स्कन्ध एक-एक जीव वाले होते हैं।

जैसे श्लेष द्रव्य से मिश्रित किए हुए समस्त सर्षपों की वट्टी (में सरसों के दाने पृथक्-पृथक् होते हुए भी) एक रूप प्रतीत होती है, वैसे ही (रागद्वेष से उपचित विशिष्टकर्मश्लेष से) एकत्र हुए प्रत्येक शरीरी जीवों के शरीरसंघात रूप होते हैं।

जैसे तिलपपड़ी (तिलपट्टी) में (प्रत्येक तिल अलग-अलग प्रतीत होते हुए भी) बहुत से तिलों के संहत (एकत्र) होने पर एक होती हैं। वैसे ही प्रत्येक–शरीरी जीवों के सरीरसंघात होते हैं।

अन्य ऐसे और भी जान लेना चाहिए।

इस प्रकार उन (पूर्वोक्त) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक जीवों की प्रज्ञापना पूर्ण हुई।

५७. साहारण सरीरी वणस्सइ जीवाणं सरूव परूवणं–

प. से किं तं साहारणसरीरबायर वणस्सइकाइया?

उ. साहारणसरीर बायर वणस्सइकाइया अणेगविहा पण्णत्ता तं जहा–

अवए पणए सेवाले लोहिणी णिहु त्थिहू त्थिभगा।
असकण्णी सीहकण्णी सिउंढि तत्तो मुसुंढी य॥
रूरू कंडुरिया जारू छीरविराली तहेव किट्ठीया।
हलिद्दा सिंगबेरे य आलूगा मूलए इ य॥[2]

५७. साधारण शरीरी वनस्पति जीवों के स्वरूप का प्ररूपण–

प्र. साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

अवक, पनक, शैवाल, लोहिनी, स्निहूपुष्प, स्तिहू, हस्तिभगा और अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, सिउण्डी,, तदनन्तर मुसुण्ढी।

रूरू कण्डुरिका, जीरू, क्षीरविराली ; तथा किट्टिका, हरिद्रा, शृंगबेर और आलू एवं मूला।

१. (क) उत्त. अ. ३६, गा. ९७-१००
(ख) जीवा. पडि. १, सु. २०
२. उत्त. अ. ३६ गा. ९६-९९

कंबू य कण्हकडबू महुओ वलई तहेव महुसिंगी।
णिरूहा सप्पसुयंधा छिण्णरूहा चेव बीयरूहा।।

कम्बू और कृष्णकटबू, मधुक, वलकी तथा मधुश्रृंगी, नीरूह, सर्पसुगन्धा, छिन्नरूह और बीजरूह।

पाढा मियवालुंकी महुररसा चेव रायवल्ली य।
पउमा य माढरी दंती चंडी किट्टि त्ति यावरा।।

पाढा, मृगवालुंकी, मधुररसा और राजपत्री तथा पद्मा, माठरी, दन्ती, इसी प्रकार चण्डी और इसके बाद किट्टी।

मासपण्णी मुग्गपण्णी जीविय रसभेय रेणुया चेव।
काओली खीरकाओली तहा भंगी णही इ य।।

माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवित, रसभेद और रेणुका, काकोली, क्षीरकाकोली तथा भृंगी, इसी प्रकार नखी।

किमिरासि भद्दमुत्था णंगलई पलुगा इ य।
किण्हे पउले य हढे हरतणुया चेव लोयाणी।।

कृमिराशि, भद्रमुस्ता, नांगलकी, पलुका, इसी प्रकार कृष्णप्रकुल और हड, हरतनुका तथा लोयाणी।

कण्हे कंदे वज्जे सूरणकंदे तहेव खल्लूडे।
एए अणंतजीवा, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

कृष्णकन्द, वज्रकन्द, सूरणकन्द तथा खल्लूर, ये (पूर्वोक्त) अनन्तजीव वाले हैं। इनके अतिरिक्त और जितने भी इसी प्रकार के हैं, (वे सब अनन्त जीवात्मक हैं।)

तणमूले कंदमूले वंसमूले त्ति यावरे।
संखेज्जमसंखेज्जा बोधव्वाऽणंतजीवा य।।

तृणमूल, कन्दमूल और वंशीमूल, ये और इसी प्रकार के दूसरे संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त जीव वाले समझने चाहिए।

सिंघाडगस्स गुच्छो अणेगजीवो उ होइ नायव्वो।
पत्ता पत्तेयजिया, दोण्णि य जीवा फले भणिया।।
—पण्ण. प. १, सु. ५४(१-२)

सिंघाड़े का गुच्छ अनेक जीव वाला होता है यह जानना चाहिए और इसके पत्ते प्रत्येक जीव वाले होते हैं। इसके फल में दो-दो जीव कहे गए हैं।

५८. पत्तेय साहारण वणस्सई सरीराणं लक्खणाणि—

जस्स मूलस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से मूले, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

जस्स कंदस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवो उ से कंदे, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

जस्स खंधस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से खंधे, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

जीसे तयाए भग्गाए, समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवा तया सा उ, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

जस्स सालस्स भग्गस्स, समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से साले, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

जस्स पवालस्स भग्गस्स, समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे पवाले, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

जस्स पत्तस्स भग्गस्स, समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से पत्ते, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

जस्स पुप्फस्स भग्गस्स, समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से पुप्फे, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

जस्स फलस्स भग्गस्स, समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे फले से उ, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

५८. प्रत्येक साधारण वनस्पति शरीरी जीवों के लक्षण—

जिस मूल का भंग भाग समान दिखाई दे, वह मूल अनन्त जीव वाला है। इसी प्रकार के दूसरे जितने भी मूल हों, उन्हें भी अनन्तजीव वाला समझना चाहिए।

जिस टूटे या तोड़े हुए कन्द का भंग भाग समान दिखाई दे, वह कन्द अनन्त जीव वाला है। इसी प्रकार के दूसरे जितने भी कन्द हों, उन्हें अनन्तजीव वाला समझना चाहिए।

जिस टूटे हुए स्कन्ध का भंग भाग समान दिखाई दे, वह स्कन्ध अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के दूसरे स्कन्धों को (भी अनन्तजीव वाला समझना चाहिए।)

जिस टूटी हुई छाल का भंग भाग समान दिखाई दे, वह छाल भी अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य छाल भी (अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए।)

जिस टूटी हुई शाखा का भंग भाग समान दृष्टिगोचर हो वह शाखा भी अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की जो अन्य (शाखाएं) हों, (उन्हें भी अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए।)

टूटे हुए जिस प्रवाल का भंग भाग समान दीखे, वह प्रवाल भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के जितने भी अन्य (प्रवाल) हों (उन्हें अनन्तजीव वाले समझने चाहिए।)

टूटे हुए जिस पत्ते का भंग भाग समान दिखाई दे, वह पत्ता (पत्र) भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार जितने भी अन्य पत्र हों, (उन्हें अनन्तजीव वाले समझने चाहिए।)

टूटे हुए जिस फूल का भंग समान भाग दिखाई दे, वह अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी पुष्प हों, (उन्हें अनन्तजीव वाले समझने चाहिए।)

जिस टूटे हुए फल का भंग भाग समान दिखाई दे, वह फल भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी फल हों (उन्हें अनन्तजीव वाले समझने चाहिए।)

जस्स बीयस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणंतजीवे उ से बीए, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

जिस टूटे हुए बीज का भंग भाग समान दिखाई दे, वह बीज भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी बीज हों, (उन्हें अनन्तजीव वाले समझने चाहिए।)

जस्स मूलस्स भग्गस्स, हीरो भंगो पदीसई।
परित्तजीवे उ से मूले, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

टूटे हुए जिस मूल का भंग भाग हीर (विषम) दिखाई दे, वह मूल प्रत्येक जीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी मूल हों, (उन्हें भी प्रत्येक जीव वाले समझने चाहिए।)

जस्स कंदस्स भग्गस्स, हीरो भंगो पदीसई।
परित्तजीवे उ से कंदे, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

टूटे हुए जिस कन्द का भंग भाग हीर (विषम) दिखाई दे, वह कन्द प्रत्येक जीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी कन्द हों, (उन्हें भी प्रत्येक जीव वाले समझने चाहिए।)

जस्स खंधस्स भग्गस्स, हीरो भंगो पदीसई।
परित्तजीवे उ से खंधे, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

टूटे हुए जिस स्कन्ध का भंग भाग हीर (विषम) दिखाई दे, वह स्कन्ध प्रत्येक जीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य भी जितने स्कन्ध हों, (उन्हें भी प्रत्येक जीव वाले समझने चाहिए।)

जीसे तयाए भग्गाए, हीरो भंगो पदीसई।
परित्तजीवा तया सा उ, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

टूटी हुई छाल का भंग भाग हीर (विषम) दिखाई दे, वह छाल प्रत्येक जीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य जितनी भी छालें हों, (उन्हें भी प्रत्येक जीव वाली समझना चाहिए।)

जस्स सालस्स भग्गस्स, हीरो भंगो पदीसई।
परित्तजीवे उ से साले, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

टूटी हुई शाखा का भंग भाग हीर (विषम) दिखाई दे, वह शाखा प्रत्येक जीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य जितनी भी शाखाएँ हों, (उन्हें भी प्रत्येक जीव वाली समझनी चाहिए।)

जस्स पवालस्स भग्गस्स, हीरो भंगो पदीसई।
परित्तजीवे पवाले उ, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

टूटे हुए प्रवाल का भंग भाग हीर (विषम) दिखाई दे, वह प्रवाल भी प्रत्येक जीव वाला है। इसी प्रकार के और भी जितने प्रवाल हो, (उन्हें प्रत्येक जीव वाले समझना चाहिए।)

जस्स पत्तस्स भग्गस्स, हीरो भंगो पदीसई।
परित्तजीवे उ से पत्ते, ये यावऽण्णे तहाविहा।।

जिस टूटे हुए पत्ते के भंग भाग हीर (विषम) दिखाई दे, वह पत्ता प्रत्येक जीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य भी जितने पत्ते हों, (उन्हें भी प्रत्येक जीव वाले समझना चाहिए।)

जस्स पुप्फस्स भग्गस्स, हीरो भंगो पदीसई।
परित्तजीवे उ से पुप्फे, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

टूटे हुए पुष्प का भंग भाग हीर (विषम) दिखाई दे, वह पुष्प प्रत्येक जीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य भी जितने पुष्प हों, (उन्हें प्रत्येक जीव वाला समझना चाहिए।)

जस्स फलस्स भग्गस्स, हीरो भंगो पदीसई।
परित्तजीवे फले से उ, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

टूटे हुए फल का भंग भाग हीर (विषम) दिखाई दे, वह फल भी प्रत्येक जीव वाला है। ऐसे अन्य भी जितने फल हों, (उन्हें प्रत्येक जीव वाले समझने चाहिए।)

जस्स बीयस्स भग्गस्स, हीरो भंगो पदीसई।
परित्तजीवे उ से बीए, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

टूटे हुए बीज का भंग भाग हीर (विषम) दिखाई दे, वह बीज प्रत्येक जीव वाला है। ऐसे अन्य जितने भी बीज हों, (वे भी प्रत्येक जीव वाले जानने चाहिए।)

जस्स मूलस्स कट्ठाओ, छल्ली बहलयरी भवे।
अणंतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा।।

जिस मूल के काष्ठ की अपेक्षा उसकी छल्ली (छाल) अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है। इस प्रकार की जो भी अन्य छालें हों, (उन्हें अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए।)

जस्स कंदस्स कट्ठाओ, छल्ली बहलयरी भवे।
अणंतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा।

जिस कन्द के काष्ठ से उसकी छाल अधिक मोटी हो, वह अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की जो भी अन्य छालें हों, (उन्हें अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए।)

जस्स खंधस्स कट्ठाओ, छल्ली बहलयरी भवे।
अणंतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा।।

जिस स्कन्ध के काष्ठ से उसकी छाल अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य जितनी भी छालें हों, (उन सबको अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए।)

जीसे सालाए कट्ठाओ, छल्ली बहलयरी भवे।
अणंतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा।।

जिस शाखा के काष्ठ की अपेक्षा उसकी छाल अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य भी छालें हों, (उन सबको अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए।)

जस्स मूलस्स कट्ठाओ, छल्ली तणुयरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा।।

जिस मूल के काष्ठ की अपेक्षा उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येक जीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य भी छालें हों, उन्हें (प्रत्येक जीव वाली समझनी चाहिए।)

जस्स कंदस्स कट्ठाओ, छल्ली तणुयरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा।।

जिस कन्द के काष्ठ से उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येक जीव वाली है। इस प्रकार की जितनी भी अन्य छालें हों, (उन्हें प्रत्येक जीव वाली समझनी चाहिए।)

जस्स खंधस्स कट्ठाओ, छल्ली तणुयरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा।।

जिस स्कन्ध के काष्ठ की अपेक्षा उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येक जीव वाली है। इस प्रकार की अन्य जो भी छालें हों, (उन्हें प्रत्येक जीव वाली समझनी चाहिए।)

जीसे सालाए कट्ठाओ, छल्ली तणुयरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा।।

जिस शाखा के काष्ठ की अपेक्षा, उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येक जीव वाली है। इस प्रकार की अन्य जो भी छालें हों, (उन्हें प्रत्येक जीव वाली समझनी चाहिए।)

चक्कागं भज्जमाणस्स, गंठी चुण्णघणो भवे।
पुढविसरिसेण भेएण, अणंतजीवं वियाणह।।

जिस (मूल, कन्द, स्कन्ध, छाल, शाखा, पत्र और पुष्प आदि) का चक्राकार तोड़ने पर उसके खण्ड सम हों तथा जिसकी गांठ के स्थान पर खंड करने से पृथ्वी के समान सघन चूर्ण हो जाए। उसे अनन्तजीवों वाला जानो।

गूढछिरागं पत्तं सच्छीरं जं च होइ णिच्छीरं।
जं पि य पणट्ठसंधिं, अणंतजीवं वियाणह।।

जिस पत्र की शिराएं गूढ़ हों, वह दूधवाला हो अथवा दूध-रहित हो तथा जिसकी सन्धि नहीं दिखती हो, उसे अनन्तजीवों वाला जानो।

पुप्फा जलया थलया य, वेंटबद्धा य णालबद्धा य।
संखेज्जमसंखेज्जा बोधव्वाऽणंतजीवा य।।

जो जलज और स्थलज पुष्प हों, वे यदि वृन्तबद्ध हो या नालबद्ध हों वे कोई संख्यात जीवों वाले, कोई असंख्यात जीवों वाले और कोई-कोई अनन्त जीवों वाले भी होते हैं ऐसा समझना चाहिए।

जे केइ नालियाऽबद्धा पुप्फा संखेज्जजीविया भणिया।
णिहुया अणंतजीवा, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

जो कोई पुष्प नालिकाबद्ध न हों, वे संख्यात जीव वाले कहे गए हैं। थूहर के फूल अनन्त जीवों वाले हैं। इसी प्रकार के जो अन्य फूल हों, उन्हें भी अनन्त जीवों वाले समझने चाहिए।

पउमुप्पलिणीकंदे, अंतरकंदे तहेव झिल्ली य।
एए अणंतजीवा, एगो जीवो भिस-मुणाले।।

पद्मकन्द उत्पलिनीकन्द और अन्तरकन्द, इसी प्रकार झिल्ली, ये सब अनन्त जीवों वाले हैं ; किन्तु भिस और मृणाल में एक-एक जीव है।

पलंडू-ल्हसणकंदे य, कंदली य कुसुंबए।
एए परित्तजीवा, जे यावऽण्णे तहाविहा।।

पलाण्डुकन्द, लहसुनकन्द, कन्दली नामक कन्द और कुसुम्बक ये प्रत्येक जीवाश्रित हैं। अन्य जो भी इस प्रकार की वनस्पतियां हैं, उन्हें प्रत्येक जीव वाली समझनी चाहिए।

पउमुप्पल-नलिणाणं, सुभग-सोगंधियाण य।
अरविंद-कोकणाणं सयपत्त-सहस्सपत्ताणं।।
वेंट बाहिरपत्ता य, कण्णिया चेव एगजीवस्स।
अब्भिंतरगा पत्ता, पत्तेयं केसरा मिंजा।।

पद्म, उत्पल, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, अरविन्द, कोकनद, शतपत्र और सहस्रपत्र—कमलों के वृन्त, बाहर के पत्ते और कर्णिका, ये सब एक जीव रूप हैं। इनके भीतर पत्ते, केसर और मिंजा भी प्रत्येक जीव वाले होते हैं।

वेणु णल इक्खुवाडियसमासइक्खू य इक्कडेरंडे।
करकर सुंठि विहुंगु, तणाण तह पव्वगाणं च।।
अच्छिं पव्वं बलिमोडओ य, एगस्स होंति जीवस्स।
पत्तेयं पत्ताइं पुप्फाइं, अणेगजीवाइं।।

वेणु, नल, इक्षुवाटिका, समासेक्षु और इक्कड़, रंड, करकर, सुंठी, विहुंगु एवं दूब आदि तृणों तथा पर्व वाली वनस्पतियों के जो अक्षि, पर्व तथा बलिमोटक हों, वे सब एकजीवात्मक हैं। इनके पत्र प्रत्येक जीवात्मक होते हैं और इनके पुष्प अनेक जीवात्मक होते हैं।

पुस्सफलं कालिंगं, तुंबं तउसेलवालु वालुंकं।
घोसाडगं पडोलं, तिंदुयं चेव तेंदूसं।।

पुष्यफल, कालिंग, तुम्ब, त्रपुष, एकवालुक, वालुक तथा घोषातक, पटोल, तिन्दूक, तिन्दूस फल, इनके सब पत्ते प्रत्येक जीव से अधिष्ठित होते हैं।

विंट समंस-कडाहं एयाहं होंति एगजीवस्स।
पत्तेयं पत्ताइं सकेसरमकेसरं मिंजा॥

वृन्त, गुद्दा और गिर के सहित तथा केसर सहित या अकेसर, मिंजा, ये सब एक-एक जीव से अधिष्ठित होते हैं।

सप्फास सज्जाए उव्वेहलिया य कुहण कंदुक्के।
एए अणंतजीवा, कंडुक्के होइ भयणा उ॥

सप्फाक, सद्यात, उव्वेहलिका और कुहण तथा कन्दुक्य ये सब वनस्पतियां अनन्तजीवात्मक होती हैं किन्तु कन्दुक्य वनस्पति में भजना है।

जोणिब्भूए बीए जीवो, वक्कमइ सो व अण्णो वा।
जो वि य मूले जीवो, सो वि य पत्ते पढमयाए॥

योनिभूत बीज में जीव उत्पन्न होता है, वही बीज का जीव मरकर अथवा अन्य कोई जीव उत्पन्न होता है। जो जीव मूल में होता है प्रथम पत्र के रूप में भी वही जीव परिणत होता है।

सव्वो वि किसलओ खलु, उग्गममाणो अणंतओ भणिओ।
सो चेव विवड्ढंतो होइ, परित्तो अणंतो वा॥

सभी किसलय (प्रथम पत्र) ऊगता हुआ अवश्य ही अनन्तकाय कहा गया है। वही (किसलयरूप अनन्तकायिक) वृद्धि पाता हुआ प्रत्येक शरीरी या अनन्तकायिक हो जाता है।

समयं वक्कंताणं समयं, तेसिं सरीरनिव्वत्ती।
समयं आणुग्गहणं, समयं ऊसास-नीसासे॥

एक साथ उत्पन्न हुए उन (साधारण वनस्पतिकायिक जीवों की शरीर-निष्पत्ति) एक ही काल में होती है, एक साथ ही श्वासोच्छ्वास ग्रहण होता है। एक काल में ही उच्छ्वास और निःश्वास होता है।

एक्कस्स उ जं गहणं, बहूण साहारणाण तं चेव।
जं बहुयाणं गहणं, समासओ तं पि एगस्स॥

एक जीव का जो ग्रहण करना है, वही बहुत-से जीवों का ग्रहण करना है और जो ग्रहण बहुत-से जीवों का होता है, वही एक का ग्रहण होता है।

साहारणमाहारो, साहारणमाणुपाणगहणं च।
साहारणजीवाणं, साहारणलक्खणं एयं॥

साधारण जीवों का आहार भी साधारण ही होता है, श्वासोच्छ्वास का ग्रहण साधारण होता है। यह साधारण का लक्षण समझना चाहिए।

जह अयगोलो धंतो, जाओ तत्ततवणिज्जसंकासो।
सव्वो अगणिपरिणओ, निगोयजीवे तहा जाण॥

जैसे अग्नि में अत्यन्त तपाया हुआ लोहे का गोला, तपे हुए तपनीय सोने के समान सारा का सारा अग्नि में परिणत हो जाता है, उसी प्रकार निगोद जीवों का निगोदरूप एक शरीर में परिणमन होना समझ लेना चाहिए।

एगस्स दोण्ह तिण्ह व, संखेज्जाण व न पासिउं सक्का।
दीसंति सरीराइं णिओयजीवाणऽणंताणं॥

एक, दो, तीन, संख्यात अथवा (असंख्यात) निगोदों (के पृथक्-पृथक् शरीरों) का देखना शक्य नहीं है। केवल अनन्त–निगोदजीवों के शरीर ही दिखाई देते हैं।

लोगागासपएसे णिओयजीवं ठवेहि एक्केक्कं।
एवं मवेज्जमाणा हवंति लोया अणंता उ॥

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में यदि एक-एक निगोदजीव को स्थापित किया जाए और उनका माप किया जाए तो ऐसे-ऐसे अनन्त लोकाकाश हो जाते हैं, (किन्तु लोकाकाश तो एक ही है, वह भी असंख्यात-प्रदेशी है।)

लोगागासपएसे परित्तजीवं ठवेहि एक्केक्कं।
एवं मविज्जमाणा हवंति लोया असंखेज्जा॥

एक-एक लोकाकाश-प्रदेश में, प्रत्येक वनस्पतिकाय के एक-एक जीव को स्थापित किया जाए और उन्हें मापा जाए तो ऐसे-ऐसे असंख्यात लोकाकाश हो जाते हैं।

पत्तेया पज्जत्ता पयरस्स असंखभागमेत्ता उ।
लोगाऽसंखाऽपज्जत्तगाण साहारणमणंता॥

प्रत्येक वनस्पतिकाय के पर्याप्तक जीव घनीकृत लोक प्रतर में असंख्यातभाग मात्र होते हैं तथा अपर्याप्तक प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीवों का प्रमाण असंख्यात लोक के बराबर है और साधारण जीवों का परिमाण अनन्तलोक के बराबर हैं।

(एएहिं सरीरेहिं पच्चक्खं ते परूविया जीवा।
सुहुमा आणागेज्झा चक्खुप्फासं ण तं एसिं॥)

(इन पूर्वोक्त शरीरों के द्वारा स्पष्ट रूप से उन बादरनिगोद जीवों की प्ररूपणा की गई है। सूक्ष्म निगोदजीव केवल आज्ञाग्राह्य हैं। क्योंकि ये आंखों से दिखाई नहीं देते।)

जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तया य, २. अपज्जत्तया य।

तत्थ णं जे ते अपज्जत्तया ते णं असंपत्ता।

तत्थ णं जे ते पज्जत्तया तेसिं वण्णादेसेणं, गंधादेसेणं, रसादेसेणं, फासादेसेणं, सहस्सग्गसो विहाणाइं, संखेज्जाइं, जोणिप्पमुहसयसहस्साइं। पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तया वक्कमति जत्थ एगो तत्थ सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता।[1]

एएसिं णं इमाओ गाहाओ अणुगंतव्वाओ, तं जहा–

१. कंदा य, २. कंदमूला य, ३. रूक्खमूलाइ यावरे।
४. गुच्छा य, ५. गुम्म, ६. वल्ली य,
७. वेलुयाणि, ८. तणाणि य।[2]
९-१०. पउमुप्पल, ११. संघाडे
१२. हडे य, १३. सेवाल, १४. किण्हए ॥
१५. पणए, १६. अवए य।
१७. कच्छ, १८. भाणी, १९. कंडुक्केक्कूणवीसइमे ॥

तय- छल्लि-पवालेसु य पत्त-पुप्फ-फलेसु य।
मूल-ग्ग-मज्झ-बीएसु जोणी कस्स य कित्तिया ॥[3]

से तं साहारणसरीरबायरवणस्सइकाइया।

से तं बायरवणस्सइकाइया।

से तं वणस्सइकाइया।

से तं एगिंदिया। –पण्ण. प. १, सु. ५४ (२-११) ५५

अन्य जो भी इस प्रकार की वनस्पतियां हों, (उन्हें लक्षणानुसार यथायोग्य समझ लेनी चाहिए।)

वे संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्याप्तक २. अपर्याप्तक।

उनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे पूर्ण विकास को प्राप्त नहीं होते हैं।

उनमें से जो पर्याप्तक हैं उनके वर्ण की अपेक्षा से, गन्ध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारों प्रकार हो जाते हैं। उनके संख्यात लाख योनिप्रमुख होते है। पर्याप्तकों के आश्रय से अपर्याप्तक उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक पर्याप्तक जीव होता है, वहाँ कदाचित् संख्यात, कदाचित् अल्पसंख्यात और कदाचित् अनन्त अपर्याप्तक जीव उत्पन्न होते हैं।

इन (साधारण और प्रत्येक वनस्पति-विशेष) के विषय में जानने के लिए इन गाथाओं का अनुसरण करना चाहिए, यथा–

१. कन्द, २. कन्दमूल और ३. वृक्षमूल,
४. गुच्छ, ५. गुल्म, ६. वल्ली,
७. वेणु और, ८. तृण।
९. पद्म, १०. उत्पल, ११. श्रृंगाटक,
१२. हडे, १३. शैवाल १४. कृष्णक,
१५. पनक, १६. अवक,
१७. कच्छ, १८. भाणी और १९. कन्दुक्य।

इन उपर्युक्त उन्नीस प्रकार के वनस्पतियों की त्वचा, छल्ली, प्रवाल (किसलय) पत्र, पुष्प, फल, मूल, अग्र, मध्य और बीज इनमें से किसी की योनि कुछ और किसी की कुछ कही गई है।

यह साधारण शरीर वनस्पतिकायिक का स्वरूप हुआ।

यह बादर वनस्पतिकायिक का वर्णन हुआ।

यह वनस्पतिकायिकों का वर्णन भी पूर्ण हुआ।

इस प्रकार एकेन्द्रियसंसारसमापन्नक जीवों की प्ररूपणा पूर्ण हुई।

५९. निगोयाणं भेयप्पभेय परूवणं–

प. कइविहा णं भंते! णिगोदा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! दुविहा णिगोदा पण्णत्ता, तं जहा–

१. निगोदा य २. निगोदजीवा य।

प. णिगोदा णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

५९. निगोदों के भेद प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते! निगोद कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. गौतम! निगोद दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. निगोद २. निगोदजीव।

प्र. भंते! निगोद कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. गौतम! दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

---

१. प. (क) से किं तं साहारणसरीर-बायरवणस्सइकाइया?
उ. (क) साहारणसरीर बायरवणस्सइकाइया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–१. अलुए मूलए सिंगबेरे, हिरिलि, सिरिलि, सिस्सिरिलि, किट्टिया, छिरिया, छीरविरालिया, कण्हकंदे, वज्जकंदे, सूरणकंदे, खेलूडे, भद्दमोत्था, पिंडहलिद्दा लोही, णीहू थीहू, अस्सकण्णी, सीहकण्णी सीउंढी, मुसंढी।
जे यावऽण्णे तहप्पगारा, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पज्जत्तगा य २. अपज्जत्तगा य।
तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं असंपत्ता।
तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा तेसिं वण्णादेसेणं, गंधादेसेणं, रसादेसेणं, फासादेसेणं, सहस्सग्गसो, विहाणाइं, संखेज्जाइं जोणिप्पमुहसयसहस्साइं।
पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमति जत्थ एगो तत्थ सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा, सिय अणंता।
जीवा. पडि. १, सु. २१
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. १३५
२. (क) उत्त. अ. ३६ गा. ९६
(ख) जीवा. पडि. १, सु. २१
३. जीवा. पडि. १ सु. २१

१. सुहुमणिगोदा य, २. बादरणिगोदा य।

प. सुहुमणिगोदा णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तगा य, २. अपज्जत्तगा य।

बायरणिगोदा वि दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तगा य, २. अपज्जत्तगा य।

प. निगोदजीवा णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुहुमणिगोदजीवा य, २. बादरणिगोदजीवा य।

सुहुमणिगोदजीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तगा य, २. अपज्जत्तगा य

बायरणिगोदजीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तगा य, २. अपज्जत्तगा य।[1]

–जीवा. पडि. ३, सु. २२४

१. सूक्ष्मनिगोद, २. बादरनिगोद।

प्र. भंते! सूक्ष्मनिगोद कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. गौतम! दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

बादरनिगोद भी दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

प्र. भंते! निगोदजीव कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. गौतम! दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. सूक्ष्मनिगोदजीव, २. बादरनिगोदजीव।

सूक्ष्मनिगोदजीव दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

बादरनिगोदजीव भी दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

६०. निगोयाणं दव्वट्ठपएसट्ठयाए संखा परूवणं–

प. णिगोदा णं भंते! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता?

उ. गोयमा! णो संखेज्जा, असंखेज्जा, णो अणंता।

एवं पज्जत्तगा वि अपज्जत्तगा वि।

प. सुहुमणिगोदा णं भंते! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा, असंखेज्जा अणंता?

उ. गोयमा! णो संखेज्जा, असंखेज्जा, णो अणंता।

एवं पज्जत्तगा वि अपज्जत्तगा वि।

एवं बायरा वि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगा वि णो संखेज्जा, असंखेज्जा, णो अणंता।

प. णिगोदजीवा णं भंते! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता?

उ. गोयमा! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।

एवं पज्जत्तगा वि अपज्जत्तगा वि।

एवं सुहुमणिगोदजीवा वि पज्जत्तगा वि अपज्जत्तगा वि।

बायरणिगोदजीवा वि पज्जत्तगा वि अपज्जत्तगा वि।

प. णिगोदा णं भंते! पएसट्ठयाए किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता?

६०. निगोदों की द्रव्यप्रदेश की अपेक्षा संख्या का प्ररूपण–

प्र. भंते! निगोद द्रव्य की अपेक्षा क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

उ. गौतम! संख्यात नहीं हैं, असंख्यात हैं, अनन्त नहीं हैं।

इसी प्रकार इनके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद भी कहने चाहिए।

प्र. भंते! सूक्ष्मनिगोद क्या द्रव्य की अपेक्षा संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

उ. गौतम! संख्यात नहीं, असंख्यात हैं, अनन्त नहीं हैं।

इसी प्रकार इनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त भेद भी कहने चाहिए।

इसी प्रकार बादरनिगोदों और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त भेद भी कहने चाहिये कि वे संख्यात नहीं, असंख्यात हैं और अनंत नहीं हैं।

प्र. भंते! निगोदजीव क्या द्रव्य की अपेक्षा संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनंत हैं?

उ. गौतम! संख्यात नहीं हैं, असंख्यात नहीं हैं, किन्तु अनंत हैं।

इसी प्रकार इनके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद भी जानने चाहिए।

इसी प्रकार सूक्ष्मनिगोद जीवों और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त तथा बादरनिगोद जीवों और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद भी कहने चाहिए।

(ये द्रव्य की अपेक्षा से निगोद के तथा निगोदजीव के कुल अठारह सूत्र हुए।)

प्र. भंते! प्रदेश की अपेक्षा निगोद क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं, या अनन्त हैं?

१. विया. स. २५, उ. ५, सु. ४५-४६

उ. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।

एवं पज्जत्तगा वि अपज्जत्तगा वि।

एवं सुहुमणिगोदा वि पज्जत्तगा वि अपज्जत्तगा वि।

पएसट्ठयाए सव्वे अणंता।

एवं बायरनिगोदा वि पज्जत्तगा वि अपज्जत्तगा वि।

पएसट्ठयाए सव्वे अणंता।

एवं णिगोदजीवा नवविहा वि पएसट्ठयाए सव्वे अणंता।

—जीवा. पडि. ५, सु. २२२-२२३

उ. गौतम ! संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, किन्तु अनन्त हैं।

इसी प्रकार इनके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद भी कहने चाहिए।

इसी प्रकार सूक्ष्मनिगोद और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त भेद भी कहने चाहिए।

ये सब प्रदेश की अपेक्षा अनन्त हैं।

इसी प्रकार बादरनिगोद और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त भेद भी जानने चाहिए।

ये सब प्रदेश की अपेक्षा अनंत हैं।

इसी प्रकार प्रदेशों की अपेक्षा निगोदजीवों के सभी नौ भेद अनंत कहने चाहिए।

६१. चउव्विहा तसा—

प. से किं तं ओराला तसा ?

उ. ओराला तसा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. बेइंदिया　　२. तेइंदिया,

३. चउरिंदिया,　　४. पंचेंदिय।[1]

—जीवा. पडि. १ सु. २७

प. से किं तं तसकाइया ?

उ. तसकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. पज्जत्तगा य,　　२. अपज्जत्तगा य।

—जीवा. पडि. ५, सु. २१०

६१. चार प्रकार के त्रस—

प्र. औदारिक त्रस कितने प्रकार के हैं ?

उ. औदारिक त्रस चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. द्वीन्द्रिय,　　२. त्रीन्द्रिय,

३. चतुरिन्द्रिय,　　४. पंचेन्द्रिय।

प्र. त्रसकाय कितने प्रकार के हैं ?

उ. त्रसकाय दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. पर्याप्तक,　　२. अपर्याप्तक।

६२. बेइंदियजीवपण्णवणा—

प. से किं तं बेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

उ. बेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—

पुलाकिमिया कुच्छिकिमिया गंडूयलगा गोलोमा णेउरा सोमंगलगा वंसीमुहा सूईमुहा गोजलोया जलोया, जलोउया संख संखणगा घुल्ला खुल्ला गुलया, खंधा वराडा सोत्तिया मोत्तिया कलुयावासा एगओवत्ता दुहओवत्ता णंदियावत्ता संबुक्कावत्ता, माईवाहा सिप्पिसंपुडा चंदणा समुद्दलिक्खा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। सव्वे ते सम्मुच्छिमा, नपुंसगा।

ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. पज्जत्तगा य, २. अपज्जत्तगा य।[2]

एएसि णं एवमाइयाणं बेइंदियाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्त जाइकुलकोडिजोणीपमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खायं।

से तं बेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।[3]

पण्ण. प. १, सु. ५६

६२. द्वीन्द्रिय जीवों की प्रज्ञापना—

प्र. द्वीन्द्रिय संसारसमापन्नक जीवों की प्रज्ञापना कितने प्रकार की है ?

उ. द्वीन्द्रिय संसारसमापन्नक जीवों की प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है, यथा—

पुलाकृमिक कुक्षिकृमिक, गण्डूयलग, गोलोम, नूपुर, सौमंगलक, वंशीमुख, सूचीमुख, गोजलोका, जलोका, जलोयुक, शंख, शंखनक, घुल्ला, खुल्ला, गुडज, स्कन्ध, वराटा, सौक्तिक, मौक्तिक, कलुकावास, एकतोवृत्त, द्विधातोवृत्त, नन्दिकावर्त्त, शम्बूकावर्त, मातृवाह, शुक्तिसम्पुट, चन्दनक, समुद्रलिक्षा अन्य जितने भी इस प्रकार के हैं, उन्हें द्वीन्द्रिय समझना चाहिए। ये सभी सम्मूर्च्छिम और नपुंसक हैं।

ये द्वीन्द्रिय संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक द्वीन्द्रियों के सात लाख जाति-कुलकोटियोनि प्रमुख होते हैं ऐसा कहा गया है।

यह द्वीन्द्रिय संसारसमापन्नक जीवों की प्रज्ञापना हुई।

---

१. उत्त. अ. ३६, गा. १२६
२. जीवा. पडि. १, सु. २८
३. उत्त. अ. ३६, गा. १२९-१३०

६३. तेइंदियजीवपण्णवणा–

प. से किं तं तेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा?

उ. १. तेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

ओवइया रोहिणिया कुंथू पिपीलिया उद्दंसगा उद्देहिया उक्कलिया उप्पाया उक्कडा उप्पडा तणाहारा कट्ठाहारा मालुया पत्ताहारा तणविंटिया पत्तविंटिया पुप्फविंटिया फलविंटिया बीयविंटिया तेदुरणमज्जिया तउसमिंजिया कप्पासट्ठिसमिंजिया हिल्लिया झिल्लिया झिंगिरा किंगिरिडा पाहुया सुभगा सोवच्छिया सुयविंटा इंदिकाइया इंदगोवया उरूलुंचगा कोत्थलवाहगा जूया हालाहला पिसुआ ततवाइया गोम्ही हत्थिसोंडा।

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। सव्वे ते सम्मुच्छिमा, नपुंसगा।

२. ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तया य, २. अप्पज्जत्तया य।

एएसि णं एवमाइयाणं तेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं अट्ठ जाइकुलकोडिजोणिप्पमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खायं।

से तं तेइंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।[1]

–पण्ण. प. १, सु. ५७

६३. त्रीन्द्रिय जीवों की प्रज्ञापना–

प्र. त्रीन्द्रिय संसारसमापन्नक जीवों की प्रज्ञापना कितने प्रकार की है?

उ. १. त्रीन्द्रिय संसारसमापन्नक जीवों की प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है, यथा–

औपयिक, रोहिणीक, कुन्थु, पिपीलिका, उद्दंशक, उद्देहिका, उत्कलिक, उत्पाद, उत्कट, उत्पट, तृणाहार, काष्ठाहार, मालुक, पत्राहार, तृणवृन्तिक, पत्रवृन्तिक, पुष्पवृन्तिक, फलवृन्तिक, बीजवृन्तिक, तेदुरणज्जिक, त्रपुषमिजिक, कार्पासास्थिमिजिक, हिल्लिक, झिल्लिक, झिंगिरा, किंगिरिट, बाहुक, लघुक, सुभग, सौवस्तिक, शुकवृन्त, इन्द्रिकायिक, इन्द्रगोपक, उरूलुंचक, कुस्थलवाहक, यूका, हालाहल, पिशुक, वतपादिका, गोम्ही और हस्तिशोण्ड।

इसी प्रकार के जितने भी अन्य जीव हो, उन्हें त्रीन्द्रिय संसार समापन्नक समझना चाहिए। ये सब सम्मूर्च्छिम और नपुंसक हैं।

२. ये (पूर्वोक्त त्रीन्द्रिय जीव) संक्षेप में, दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवों के आठ लाख जाति कुल-कोटि-योनि प्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है।

यह त्रीन्द्रिय संसारसमापन्नक जीवों की प्रज्ञापना हुई।

६४. चउरिंदियजीवपण्णवणा–

प. से किं तं चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा?

उ. १. चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

अंधिय णेत्तिय मच्छिय मगमिगकीडे तहा पयंगे य।
ढिंकुण कुक्कुड कुक्कुह णंदावत्ते य सिंगिरिडे॥

किण्हपत्ता नीलपत्ता लोहियपत्ता हलिद्दपत्ता सुक्किलपत्ता चित्तपक्खा विचित्तपक्खा ओभंजलिया जलचरिया गंभीरा णीणिया तंतवा अच्छिरोडा अच्छिवेहा सारंगा णेउला दोला भमरा भरिली जरूला तोट्ठा विच्छुया पत्तविच्छुया छाणविच्छुया जलविच्छुया पियंगाला कणगा गोमयकीडगा।

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। सव्वेते सम्मुच्छिमा, नपुंसगा।

२. ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

६४. चतुरिन्द्रिय जीवों की प्रज्ञापना–

प्र. चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्नक जीवों की प्रज्ञापना कितने प्रकार की है?

उ. १. चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्नक जीवों की प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है, यथा–

अंधिक, नेत्रिक, मक्खी, मगमृगकीट तथा पतंगा, ढिंकुण, कुक्कुड, कुक्कुह, नन्द्यावर्त और श्रृंगिरिट।

कृष्णपत्र, नीलपत्र, लोहितपत्र हारिद्रपत्र, शुक्लपत्र, चित्रपक्ष, विचित्रपक्ष, अवभांजलिक, जलचारिक, गम्भीर, नीनिक, तन्तव, अक्षिरोट, अक्षिवेध, सारंग, नेवल, दोला, भ्रमर, भरिली, जरूला, तोट्ट, विच्छू, पत्रवृश्चिक, छाणवृश्चिक, जलवृश्चिक, प्रियंगाल, कनक और गोमयकीट।

इसी प्रकार के जितने भी अन्य प्राणी हैं, उन्हें भी चतुरिन्द्रिय समझना चाहिए। ये (पूर्वोक्त) सभी चतुरिन्द्रिय सम्मूर्च्छिम और नपुंसक हैं।

२. वे संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. (क) उत्त. अ. ३६, गा. १३६-१३९
(ख) जीवा. पडि. १, सु. २९

१. पज्जत्तया य २. अपज्जत्तया य।

एएसि णं एवमाइयाणं चउरिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं णव जाइकुलकोडिजोणिप्पमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खायं।

से तं चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवण्णा।[1]

—पण्ण. प. १ सु. ५८

१. पर्याप्तक २. अपर्याप्तक।

इस प्रकार चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के नौ लाख जाति–कुलकोटि-योनि प्रमुख होते हैं, ऐसा (तीर्थंकरों ने) कहा है।

यह चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्नक जीवों की प्रज्ञापना हुई।

६५. पंचेंदियजीवपण्णवणा भेया–

प. से किं तं पंचेंदिय संसारसमावण्णजीवपण्णवणा?

उ. पंचेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. नेरइय पंचेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।
२. तिरिक्खजोणियपंचेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।
३. मणुस्सपंचेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।
४. देवपंचेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।[2]

—पण्ण. प. १, सु. ५९

६५. पंचेन्द्रिय जीवों की प्रज्ञापना के भेद–

प्र. पंचेन्द्रिय-संसार समापन्नक जीवों की प्रज्ञापना कितने प्रकार की हैं?

उ. पंचेन्द्रिय-संसार समापन्नक जीवों की प्रज्ञापना चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. नैरयिक-पंचेन्द्रिय-संसार समापन्नक-जीव प्रज्ञापना,
२. तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-संसार समापन्नक-जीव प्रज्ञापना,
३. मनुष्य-पंचेन्द्रिय-संसार समापन्नक-जीव प्रज्ञापना,
४. देव-पंचेन्द्रिय-संसार समापन्नक-जीव प्रज्ञापना।

६६. नेरइयजीवपण्णवणा–

प. से किं तं नेरइया?

उ. नेरइया सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. रयणप्पभापुढविनेरइया,
२. सक्करप्पभापुढविनेरइया,
३. वालुयप्पभापुढविनेरइया,
४. पंकप्पभापुढविनेरइया,
५. धूमप्पभापुढविनेरइया,
६. तमप्पभापुढविनेरइया,
७. तमतमप्पभापुढविनेरइया।

ते समासओ दुविहा पण्णत्ता[3], तं जहा–

१. पज्जत्तया य, २. अपज्जत्तया य।

से तं नेरइया[4]। —पण्ण. प. १, सु. ६०

६६. नैरयिक जीवों की प्रज्ञापना–

प्र. नैरयिक कितने प्रकार के हैं?

उ. नैरयिक सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक,
२. शर्कराप्रभापृथ्वी-नैरयिक,
३. वालुकाप्रभापृथ्वी-नैरयिक,
४. पंकप्रभापृथ्वी-नैरयिक,
५. धूमप्रभापृथ्वी-नैरयिक,
६. तमःप्रभापृथ्वी-नैरयिक,
७. तमस्तमःप्रभापृथ्वी-नैरयिक।

वे (सातों प्रकार के नैरयिक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

यह नैरयिकों की प्ररूपणा हुई।

६७. तिरिक्खजोणियभेया–

तिविहा तिरिक्खजोणिया पण्णत्ता, तं जहा–

१. इत्थी २. पुरिसा, ३. णपुंसगा

- ठाणं अ. ३, उ. १ सु. १४०

प. से किं तं तिरिक्खजोणिया?

उ. तिरिक्खजोणिया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. एगिंदियतिरिक्खजोणिया,
२. बेइंदियतिरिक्खजोणिया,

६७. तिर्यञ्चयोनिकों के भेद–

तिर्यञ्चयोनिक तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।

प्र. तिर्यञ्चयोनिक कितने प्रकार के हैं?

उ. तिर्यञ्चयोनिक पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,
२. द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,

---

१. (क) उत्त. अ. ३६, गा. १४५-१४[illegible]
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३०
(ग) [illegible] अ. ९, सु. ७०१
२. (क) उत्त. अ. ३६, गा. १५५
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३१
३. जीवा. पडि. ३, सु. ६६
४. (क) उत्त. अ. ३६, गा. १५६-१५७
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३२

३. तेइंदियतिरिक्खजोणिया,
४. चउरिंदियतिरिक्खजोणिया,
५. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया य।

(१) प. से किं तं एगिंदियतिरिक्खजोणिया?
उ. एगिंदियतिरिक्खजोणिया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१ पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया जाव
५ वणस्स- इकाइयएगिंदिय तिरिक्खजोणिया।
प. से किं तं पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया?
उ. पुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–
१. सुहुमपुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया,
२. बादरपुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया य।
प. से किं तं सुहुमपुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया?
उ. सुहुमपुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियादुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पज्जत्तसुहुमपुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया,
२. अपज्जत्त–सुहुम पुढविकाइय-एगिंदिय-तिरिक्ख-जोणिया।
से तं सुहुमा।
प. से किं तं वादरपुढविकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिया?
उ. बादर-पुढविकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणियादुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पज्जत्त-बादर-पुढविकाइय-एगिंदिय-तिरिक्ख-जोणिया,
२. अपज्जत्त-बादर-पुढविकाइय-एगिंदिय-तिरिक्ख-जोणिया।
से तं वादरपुढविकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिया।

से तं पुढविकाइय-एगिंदिया।
प. से किं तं आउक्काइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिया?
उ. आउक्काइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–एवं जहेव पुढविकाइयाणं तहेव चउक्कओ भेओ जाव वणस्सइकाइया।

से तं वणस्सइकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिया।
प. (२) से किं तं वेइंदिय-तिरिक्खजोणिया?
उ. वेइंदिय-तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पज्जत्तग-वेइंदिय-तिरिक्खजोणिया,
२. अपज्जत्तग-वेइंदिय-तिरिक्खजोणिया।
से तं वेइंदिय-तिरिक्खजोणिया।
एवं तेइन्दिया चउरिंदिया वि।

–जीवा. पडि. ३, सु. ९६(१)

३. त्रीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,
४. चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,
५. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक।

(१) प्र. एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कितने प्रकार के हैं?
उ. एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१ पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक यावत्
२ वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक।
प्र. पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कितने प्रकार के हैं?
उ. पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक।
२. बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक।
प्र. सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कितने प्रकार के हैं?
उ. सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,
२. अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक।

इस प्रकार सूक्ष्म का वर्णन पूरा हुआ।
प्र. बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कितने प्रकार के हैं?
उ. बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पर्याप्त वादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,

२. अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक।

यह वादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक का वर्णन हुआ।
इस प्रकार पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय का वर्णन पूर्ण हुआ।
प्र. अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कितने प्रकार के हैं?
उ. अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं।
यथा–जिस प्रकार पृथ्वीकायिकों के भेद कहे, उसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त (सूक्ष्म वादर पर्याप्त और अपर्याप्त) चार-चार भेद कहने चाहिए।
यह वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक का वर्णन हुआ।
प्र. (२) द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कितने प्रकार के हैं?
उ. द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पर्याप्तक द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक,
२. अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक।
यह द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक का वर्णन हुआ।
इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय का वर्णन भी जानना चाहिए।

६८. पंचेंदिय तिरिक्खजोणियजीवपण्णवणा भेया–

प. से किं तं पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया ?

उ. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. जलयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया,
२. थलयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया,
३. खहयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया[1]।

–पण्ण. प. १, सु. ६१

१. जलयराणं पण्णवणा–

प. से किं तं जलयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया ?

उ. जलयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा– १. मच्छा, २. कच्छहा, ३. गाहा, ४. मगरा, ५. सुंसुमारा[2]।

प. (१) से किं तं मच्छा ?

उ. मच्छा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

सण्हमच्छा खवल्लमच्छा जुगमच्छा विज्झिडियमच्छा हलिमच्छा मग्गरिमच्छा रोहियमच्छा हलीसागारा गागरा वडा वडगरा तिमी तिमिंगिला णक्का तंदुलमच्छा कणिक्कामच्छा सालिसमिच्छयामच्छा लंभणमच्छा पडाग-पडागातिपडागा।

जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

से तं मच्छा[3]। -पण्ण. प. १, सु. ६२ ६३

तिविहा मच्छा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अंडया, २. पोतया, ३. संमुच्छिमा।

अंडया मच्छा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. इत्थी, २. पुरिसा, ३. णपुंसगा।

पोतया मच्छा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. इत्थी, २. पुरिसा, ३. णपुंसगा।

- ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १३८/१-३

प. (२) से किं तं कच्छभा ?

उ. कच्छभा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अट्ठिकच्छभा य, २. मंसकच्छभा य।

से तं कच्छभा।

प. (३) से किं तं गाहा ?

उ. गाहा पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. दिली, २. वेढला, ३. मुद्धया, ४. पुलगा, ५. सीमागारा।

से तं गाहा।

प. (४) से किं तं मगरा ?

उ. मगरा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

६८. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की प्रज्ञापना के भेद–

प्र. पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक कितने प्रकार के हैं ?

उ. पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक,
२. स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक,
३. खेचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक।

१. जलचर जीवों की प्रज्ञापना–

प्र. जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक कितने प्रकार के हैं ?

उ. जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक पांच प्रकार के कहे गए हैं। यथा– १. मत्स्य, २. कच्छप, ३. ग्राह, ४. मगर, ५. सुंसुमार।

प्र. (१) मत्स्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. मत्स्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

श्लक्ष्णमत्स्य, खवल्लमत्स्य, युगमत्स्य, विज्झिडियमत्स्य, हलिमत्स्य, मकरीमत्स्य, रोहितमत्स्य, हलीसागर, गागर, वट, वटकर, तिमि, तिमिंगल, नक्र, तन्दुलमत्स्य, कणिक्कामत्स्य, शालिशस्त्रिक मत्स्य, लंभनमत्स्य, पताका और पताकातिपताका।

इसी प्रकार के जो भी अन्य प्राणी हैं, वे सब मत्स्यों के अन्तर्गत समझने चाहिए।

यह मत्स्यों की प्ररूपणा हुई।

मत्स्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अंडज, २. पोतज, ३. संमूर्च्छिम।

अंडज मत्स्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।

पोतज मत्स्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।

प्र. (२) कच्छप कितने प्रकार के कहे हैं ?

उ. कच्छप दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अस्थिकच्छप, २. गांसकच्छप।

यह कच्छप की प्ररूपणा हुई।

प्र. (३) ग्राह कितने प्रकार के हैं ?

उ. ग्राह (घड़ियाल) पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. दिली, २. वेढल, ३. मूर्धज, ४. पुलक, ५. सीमाकार।

यह ग्राह की प्ररूपणा हुई।

प्र. (४) मगर कितने प्रकार के गये कहे हैं ?

उ. मगर (मगरमच्छ) दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

---

१. (क) [illegible]
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३५
२. (क) [illegible]
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३५ (?)
(ग) जीवा. पडि. १, सु. ३८
३. (क) [illegible]
जीवा. पडि. १, सु. ३५

१. सोंड़मगरा य, २. मट्ठमगरा य।

से तं मगरा। —पण्ण. प. १, सु. ६४-६६

प. (५) से किं तं सुंसुमारा?

उ. सुंसुमारा एगागारा पण्णत्ता।

से तं सुंसुमारा।

जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सम्मुच्छिमा य, २. गब्भवक्कंतिया य[1]।

२. तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे नपुंसगा।

३. तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते तिविहा पण्णत्ता,

तं जहा—१. इत्थी, २. पुरिसा, ३. नपुंसगा।

४. एएसि णं एवमाइयाणं जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं अद्धतेरस जाइकुल-कोडि-जोणिप्पमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खायं[2]।

से तं जलयर पंचेंदियातिरिक्खजोणिया। —पण्ण. प. १ सु. ६७-६८

१. शौण्डमगर, २. मृष्टमगर।

यह मगर की प्ररूपणा हुई।

प्र. (५) सुंसुमार कितने प्रकार के हैं?

उ. सुंसुमार एक ही आकार-प्रकार के कहे गए हैं।

यह सुंसुमार का निरूपण हुआ।

अन्य जो इस प्रकार के हों वे भी समझ लेना चाहिए।

ये सभी (उपर्युक्त सभी प्रकार के जलचर तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

१. सम्मूर्च्छिम २. गर्भज।

२. इनमें से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सब नपुंसक होते हैं।

३. इनमें से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं।

यथा— १. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।

४. इस प्रकार (मत्स्य इत्यादि) इन (पांचों प्रकार के) पर्याप्तक और अपर्याप्तक जलचर-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों के साढ़े बारह लाख जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है।

यह जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की प्ररूपणा हुई।

२. थलयराणं पण्णवणा—

प. से किं तं थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?

उ. थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य,

२. परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य[3]।

प. से किं तं चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?

उ. चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. एगखुरा, २. दुखुरा, ३. गंडीपया, ४. सणप्फया[4]।

प. (१) से किं तं एगखुरा?

उ. एगखुरा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—

अस्सा, अस्सतरा, घोडगा, गद्दभा, गोरक्खरा, कंदलगा, सिरिकंदलगा, आवत्ता, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

से तं एगखुरा।

प. (२) से किं तं दुखुरा?

उ. दुखुरा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—

२. स्थलचर जीवों की प्रज्ञापना—

प्र. स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक कितने प्रकार के हैं?

उ. स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक,

२. परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक।

प्र. चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक कितने प्रकार के हैं?

उ. चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. एकखुरा, २. द्विखुरा, ३. गण्डीपद, ४. सनखपद।

प्र. (१) एकखुरा कितने प्रकार के हैं?

उ. एकखुरा अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

अश्व, अश्वतर, घोटक, गधा, गोरक्षर, कन्दलक, श्रीकन्दलक और आवर्त्त। इसी प्रकार के अन्य जितने भी प्राणी हैं, उन्हें एकखुर समझना चाहिए।

यह एकखुरों का प्ररूपण हुआ।

प्र. (२) द्विखुर कितने प्रकार के हैं?

उ. द्विखुर अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

---

१. जीवा. पडि. १, सु. ३३, ३४, ३७
२. जीवा. पडि. ३, सु. ९६ (२)
३. (क) उत्त. अ. ३६, गा. १७९
   (ख) जीवा. पडि. ३, सु. ९६ (२)
   (ग) जीवा. पडि. १, सु. ३९
४. (क) उत्त. अ. ३६, गा. १८०
   (ख) जीवा. पडि. १, सु. ३९
   (ग) ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३५१/१

उट्टा, गोणा, गवया, रोज्झा, पसया, महिसा, मिया, संवरा, वराहा, अय, एलग-रूरू-सरभ-चमर-कुरंग-गोकण्णमाई। जेयाबऽण्णे तहप्पगारा।

से तं दुखुरा।

प. (३) से किं तं गंडीपया?

उ. गंडीपया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

हत्थी, पूयणसा, मंकुणहत्थी, खग्गा, गंडा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

से तं गंडीपया।

प. (४) से किं तं सणप्फया?

उ. सणप्फया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

सीहा, वग्घा, दीविया, अच्छा, तरच्छा, परस्सरा, सियाला, बिडाला, सुणगा, कोलसुणगा, कोकंतिया, ससगा, चित्तगा, चित्तलगा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

से तं सणप्फया।

से समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मुच्छिमा य, २. गब्भवक्कंतिया य[1]।

२. तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे णपुंसगा।

३. तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. इत्थी, २. पुरिसा, ३. णपुंसगा।

४. एएसि णं एवमाइयाणं चउप्पयथलयरपंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं दस जाईकुलकोडिजोणिप्पमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खायं[2]।

से तं चउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया।

–पण्ण. प. १, सु. ६९-७५

परिसप्पाण पण्णवणा–

प. से किं तं परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?

उ. परिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य,

२. भुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया य[3]।

–पण्ण. प. १ सु. ७६

उरपरिसप्पाण पण्णवणा–

प. से किं तं उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया?

ऊंट, गाय, गवय, रोझ, पशुक, महिष, मृग, सांभर, अज, एलक, रूरू, सरभ, चमर, कुरंग, गोकर्ण आदि प्रकार के जो भी अन्य प्राणी हों उन्हें द्विखुर जानना चा

यह दो खुर वालों की प्ररूपणा हुई।

प्र. (३) गण्डीपद कितने प्रकार के हैं?

उ. गण्डीपद अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

हाथी, हरितपूतनक, मत्कुणहस्ती, खड्गी और गेंडा। इसी के जो भी अन्य प्राणी हों, उन्हें गण्डीपद में जान लेना च

यह गण्डीपद जीवों की प्ररूपणा हुई।

प्र. (४) सनखपद कितने प्रकार के हैं?

उ. सनखपद अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

सिंह, व्याघ्र, द्वीपिक, रीछ, तरक्ष, पाराशर, शृगाल, वि श्वान, कोलश्वान, कोकन्तिक, शशक, चीता और चित इसी प्रकार के जो भी प्राणी हैं, वे सब सनखपदों के अ समझने चाहिए।

यह सनखपदों का निरूपण हुआ।

ये सभी प्रकार के (चतुष्पद-स्थलचर पंचे तिर्यञ्चयोनिक) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा

१. सम्मूर्च्छिम, २. गर्भज।

२. उनमें जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सब नपुंसक हैं।

३. उनमें जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं, य

१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।

४. इस प्रकार (एकखुर इत्यादि) इन स्थलचर-पंचे तिर्यञ्चयोनिकों के पर्याप्तक-अपर्याप्तकों के दस जाति-कुल-कोटि-योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है।

यह चतुष्पद-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों का नि हुआ।

परिसर्पों की प्रज्ञापना–

प्र. परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक कितने प्रकार के

उ. परिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के गए हैं, यथा–

१. उरःपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक,

२. भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक।

उरपरिसर्पों की प्रज्ञापना–

प्र. उरःपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक कितने प्र के हैं?

---

१. जीवा. पडि. ३, सु. ९६ (२)
२. ठाणं. अ. १०, सु. ७८२
३. (क) उत्त. अ. ३६ गा. १८१
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३९
(ग) जीवा. पडि. ३, सु. ९६ (२)

उ. उरपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अही, २. अयगरा, ३. आसालिया, ४. महोरगा।

प. (१) से किं तं अही?

उ. अही दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. दव्वीकरा य, २. मउलिणो य[1]।

प. से किं तं दव्वीकरा?

उ. दव्वीकरा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

आसीविसा, दिट्ठीविसा, उग्गविसा, भोगविसा, तयाविसा, लालाविसा, उस्सासविसा, निस्सासविसा, कण्हसप्पा, सेदसप्पा, काओदरा, दज्झपुप्फा, कोलाहा, मेलिमिंदा सेसिंदा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

से तं दव्वीकरा[2]।

प. से किं तं मउलिणो?

उ. मउलिणो अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

दिव्वागा, गोणसा, कसाहीया, वइउल्ला, चित्तलिणो, मंडलिणो, माउलिणो अही अहिसलागा वायपडागा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

से तं मउलिणो।

से तं अही[3]।

प. (२) से किं तं अयगरा?

उ. अयगरा एगागारा पण्णत्ता।

से तं अयगरा[4]।

प. (३) से किं तं आसालिया?

कह णं भंते! आसालिया सम्मुच्छइ?

उ. गोयमा! अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवेसु निव्वाघाएणं–पण्णरससु कम्मभूमीसु,

वाघायं पडुच्च पंचसु महाविदेहेसु चक्कवट्टि-खंधावारेसु वा, वासुदेवखंधावारेसु बलदेवखंधावारेसु मंडलियखंधावारेसु महामंडलियखंधावारेसु वा, गामनिवेसेसु नगरनिवेसेसु निगमनिवेसेसु खेडनिवेसेसु कब्बडनिवेसेसु मडंबनिवेसेसु दोणमुहनिवेसेसु पट्टणनिवेसेसु आगरनिवेसेसु आसमनिवेसेसु संवाहनिवेसेसु रायहाणीनिवेसेसु।

एएसि णं चेव णिवेसेसु एत्थ णं आसालिया सम्मुच्छिइ, जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए उक्कोसेणं बारसजोयणाइं तयणुरूवं

उ. उरःपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गये हैं। यथा–

१. अहि (सर्प), २. अजगर, ३. आसालिक, ४. महोरग।

प्र. (१) अहि कितने प्रकार के हैं?

उ. अहि दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. दर्वीकर (फन वाले), २. मुकुली (बिना फन वाले)।

प्र. दर्वीकर सर्प कितने प्रकार के हैं?

उ. दर्वीकर सर्प अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

आशीविष, दृष्टिविष, उग्रविष, भोगविष, त्वचाविष, लालाविष, उच्छ्वासविष, निःश्वासविष, कृष्णसर्प, श्वेतसर्प, काकोदर, दह्यपुष्प, कोलाह, मेलिमिन्द और शेषेन्द्र।

इसी प्रकार के और भी जितने सर्प हों, वे सब दर्वीकर के अन्तर्गत समझना चाहिए।

यह दर्वीकर सर्पों की प्ररूपणा हुई।

प्र. मुकुली सर्प कितने प्रकार के हैं?

उ. मुकुलि सर्प अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

दिव्याक, गोनस, कषाधिक, व्यतिकुल, चित्रली, मण्डली, मालीनी, अहि, अहिशलाका और वातपताका। अन्य जितने भी इसी प्रकार के सर्प हैं, वे सब मुकुली सर्प की जाति के समझने चाहिए।

यह मुकुली सर्पों का वर्णन हुआ।

अहि (सर्पों) की प्ररूपणा पूर्ण हुई।

प्र. (२) अजगर कितने प्रकार के कहे हैं?

उ. अजगर एक ही आकार-प्रकार का कहा गया है।

यह अजगर की प्ररूपणा हुई।

प्र. (३) भंते! आसालिक कितने प्रकार के होते हैं और वे कहां उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! वे (आसालिक उरःपरिसर्प) मनुष्य क्षेत्र के अन्दर अढाई द्वीपों में, निर्व्याघातरूप से पन्द्रह कर्मभूमियों में,

व्याघात की अपेक्षा से पांच महाविदेह क्षेत्रों में, अथवा चक्रवर्ती के स्कन्धावारों में, या वासुदेवों के स्कन्धावारों में, बलदेवों के स्कन्धावारों में, माण्डलिकों के स्कन्धावारों में, महामाण्डलिकों के स्कन्धावारों में, ग्रामनिवेशों में, नगरनिवेशों में, निगम-निवेशों में, खेटनिवेशों में, कर्वटनिवेशों में, मडम्बनिवेशों में, द्रोणमुखनिवेशों में, पट्टण-निवेशों में, आकरनिवेशों में, सम्बाधनिवेशों में और राजधानीनिवेशों में।

इन (चक्रवर्ती-स्कन्धावार आदि स्थानों) का विनाश होने वाला हो तब इन (पूर्वोक्त) स्थानों में आसालिक सम्मूर्च्छिमरूप से उत्पन्न होते हैं। वे जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग-मात्र की अवगाहना से और उत्कृष्ट बारह योजन की अवगाहना तक के उत्पन्न होते हैं। उसके अनुरूप ही उनका विष्कम्भ और बाहल्य होता है।

१. जीवा. पडि. १, सु. ३६
२. जीवा. पडि. १, सु. ३६
३. जीवा. पडि. १, सु. १०८
४. जीवा. पडि. १, सु. १०९

च णं विक्खंभबाहल्लेणं भूमिं दालित्ताणं समुट्ठेइ-ऽअसण्णी मिच्छद्दिट्ठी अण्णाणी अंतोमुहुत्तद्धाउया चेव कालं करेइ।

से तं आसालिया[1]।

प. (४) से किं तं महोरगा?

उ. १. महोरगा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

अत्थेगइया अंगुलं वि, अंगुलपुहत्तिया वि, वियत्थिं वि, वियत्थिपुहत्तिया वि, रयणिं वि, रयणिपुहत्तिया वि, कुच्छिं वि, कुच्छिपुहत्तिया वि, धणुं वि, धणुपुहत्तिया वि, गाउयं वि, गाउयपुहत्तिया वि, जोयणं वि, जोयणपुहत्तिया वि, जोयणसयं वि, जोयणसयपुहत्तिया वि जोयणसहस्सं वि।

ते णं थले जाता जले वि चरंति, थले वि चरंति। ते णंत्थि इहं, बाहिरएसु दीव-समुद्दएसु हवंति, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

से तं महोरगा।

ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मुच्छिमा य, २. गब्भवक्कंतिया य[2]।

२. तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे नपुंसगा।

३. तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते णं तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. इत्थी, २. पुरिसा, ३. नपुंसगा।

४. एएसि णं एवमाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं उरपरिसप्पाणं दस जाइ-कुल-कोडीजोणिप्पमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खायं।

से तं उरपरिसप्पा। –पण्ण. प. १, सु. ७६-८४

वह चक्रवर्ती के स्कन्धावार आदि के नीचे की भूमि को फाड़ कर प्रादुर्भूत होता है। वह असंज्ञी, मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी होता है, तथा अन्तर्मुहूर्त्त काल की आयु भोग कर मर जाता है।

यह आसालिक की प्ररूपणा हुई।

प्र. (४) महोरग कितने प्रकार के हैं?

उ. १. महोरग अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

कई महोरग एक अंगुल के कई, अंगुलपृथक्त्व के, कई वितस्ति के कई वितस्तिपृथक्त्व के, कई एक रत्नि भर के, कई रत्निपृथक्त्व के, कई कुक्षिप्रमाण के, कई कुक्षिपृथक्त्व के भी, कई धनुष प्रमाण, कई धनुषपृथक्त्व के भी, कई गव्यूति-प्रमाण के, कई गव्यूति-पृथक्त्व के , कई योजनप्रमाण के, कई योजनपृथक्त्व के, कई सौ योजन के, कई योजनशत-पृथक्त्व के और कई हजार योजन के भी होते हैं।

वे महोरग भूमि पर उत्पन्न होते हैं, किन्तु जल और स्थल दोनों में विचरते हैं। वे यहां (मनुष्य क्षेत्र में) नहीं होते हैं, किन्तु मनुष्यक्षेत्र के बाहर के द्वीप समुद्रों में होते हैं। इसी प्रकार के अन्य जो भी उरःपरिसर्प हों, उन्हें भी महोरग-जाति के समझने चाहिए।

यह महोरगों की प्ररूपणा हुई।

वे (उरःपरिसर्प) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सम्मूर्च्छिम, २. गर्भज।

२. इनमें से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सभी नपुंसक होते हैं।

३. इनमें से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. स्त्री, २. पुरुष ३. नपुंसक।

४. इस प्रकार (अहि इत्यादि) इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक उरःपरिसर्पों के दस लाख जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख होते हैं ऐसा कहा है।

यह उरःपरिसर्पों की प्ररूपणा हुई।

भुयपरिसप्पाण पण्णवणा–

प. से किं तं भुयपरिसप्पा?

उ. १. भुयपरिसप्पा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

णउला, गोहा, सरडा, सल्ला, सरंठा, सारा, खारा, घरोइला, विस्संभरा, मूसा, मंगुसा, पयलाइया, छीरविरालिया जहा चउप्पाइया, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

२. ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मुच्छिमा य, २. गब्भवक्कंतिया य।

भुजपरिसर्पों की प्रज्ञापना–

प्र. भुजपरिसर्प कितने प्रकार के हैं?

उ. १. भुजपरिसर्प अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

नकुल, गोह, सरट, शल्य, सरंठ, सार, खार, गृहकोकिला, विषम्भरा, मूषक, मंगुसा, पयोलातिक, क्षीरविडालिका हैं। जैसे चतुष्पद स्थलचर का कथन किया है वैसे ही इनका समझना चाहिए। इसी प्रकार के अन्य जितने भी भुजा से चलने वाले प्राणी हों, उन्हें भुजपरिसर्प समझना चाहिए।

२. वे (नकुल आदि पूर्वोक्त भुजपरिसर्प) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. सम्मूर्च्छिम, २. गर्भज।

---

१. जीवा. पडि. १, सु. ११०

२. (क) ठाणं. अ. ९, सु. ७०१

(ख) ठाणं. अ. १०, सु. ७८२

(ग) जीवा. पडि. १, सु. ३६

(घ) जीवा. पडि. १, सु. ३९

३. तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे णपुंसगा।

४. तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते णं तिविहा पण्णत्ता,
तं जहा–१. इत्थी, २. पुरिसा, ३. णपुंसगा।

एएसि णं एवमाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं भुयपरिसप्पाणं णवजाइकुलकोडिजोणिपमुहसयसहस्सं हवंतीति मक्खायं।

से तं भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेन्दिय-तिरिक्खजोणिया।

से तं परिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया[1]।

–पण्ण. प. १, सु. ८५

तिविहा उरपरिसप्पा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अंडया, २. पोयया, ३. संमुच्छिमा।
अंडया उरपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. इत्थी, २. पुरिसा, ३ णपुंसगा।
पोयया उरपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. इत्थी, २. पुरिसा, ३. णपुंसगा।
तिविहा भुजपरिसप्पा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अंडया, २. पोयया, ३. संमुच्छिमा।
अंडया भुजपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. इत्थी, २. पुरिसा, ३. णपुंसगा।
पोयया भुजपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. इत्थी, २. पुरिसा, ३. णपुंसगा।

–ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १३८

३. इनमें से जो सम्मूर्च्छिम हैं वे सभी नपुंसक होते हैं।

४. इनमें से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं।
यथा–१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।

इस प्रकार (नकुल) इत्यादि इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक भुजपरिसर्पों के नौ लाख जाति कुलकोटि योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है।

यह भुजपरिसर्प-स्थलचर पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों का प्ररूपण हुआ। परिसर्प-स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों का प्ररूपण हुआ।

उरपरिसर्प तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अंडज, २. पोतज, ३. संमूर्च्छिम।
अंडज उरपरिसर्प तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।
पोतज उरपरिसर्प तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।
भुजपरिसर्प तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अंडज, २. पोतज, ३. संमूर्च्छिम।
अंडज भुजपरिसर्प तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।
पोतज भुजपरिसर्प तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।

३. खहयराणं पण्णवणा–

प. से किं तं खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया?

उ. खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया चउव्विहा पण्णत्ता,
तं जहा–१. चम्मपक्खी, २. लोमपक्खी,
३. समुग्गपक्खी, ४. वियतपक्खी[2]।

प. (१) से किं तं चम्मपक्खी?

उ. चम्मपक्खी अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–
वग्गुली, जलोया, अडिया, भारंडपक्खी, जीवंजीवा, समुद्दवायसा, कण्णत्तिया, पक्खिविराली,
जे यावऽण्णे तहप्पगारा।
से तं चम्मपक्खी[3]।

प. (२) से किं तं लोमपक्खी?

उ. लोमपक्खी अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–
ढंका कंका कुरला वायसा चक्कागा हंसा कलहंसा पायहंसा रायहंसा अडा सेडी बगा बलागा पारिप्पवा कोंचा सारसा

३. खेचर जीवों की प्रज्ञापना–

प्र. खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कितने प्रकार के हैं?

उ. खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गए हैं,
यथा–१. चर्मपक्षी, २. रोमपक्षी,
३. समुद्गकपक्षी, ४. विततपक्षी।

प्र. (१) चर्मपक्षी खेचर कितने प्रकार के हैं?

उ. चर्मपक्षी अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
वल्गुली, जलौका, अडिल्ल, भारण्डपक्षी, जीवंजीव, समुद्रवायस, कर्णत्रिक, और पक्षिविडाली। अन्य जो भी इस प्रकार के पक्षी हों उन्हें चर्मपक्षी समझना चाहिए।
यह चर्मपक्षियों की प्ररूपणा हुई।

प्र. (२) रोमपक्षी कितने प्रकार के हैं?

उ. रोमपक्षी अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
ढंक, कंक, कुरल, वायस, चक्रवाक, हंस, कलहंस, पादहंस, राजहंस, आड, सेडी, बक, बलाका, पारिप्लव, क्रौंच, सारस,

---

१. जीवा. पडि. १, सु. ३९
जीवा. पडि. ३, सु. ९६ (२)
२. (क) जीवा. पडि. १, सु. ३६
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. १८८
(ग) ठाणं. अ. ४, सु. ३४५ [illegible]
३. जीवा. पडि. १, सु. ३६

मेसरा मसूरा मयूरा सयवच्छा गहरा पोंडरीया कागा कामंजुगा वंजुलगा तित्तिरा वट्टगा लावगा कवोया कविंजला पारेवया चिडगा चासा कुक्कुडा सुगा बरहिणा मयणसलागा कोइला सेहा वरेल्लगमाइं।

से तं लोमपक्खी[1]।

प. (३) से किं तं समुग्गपक्खी?

उ. समुग्गपक्खी एगागारा पण्णत्ता,
ते णं णत्थि इहं, बाहिरएसु दीव-समुद्दएसु भवंति।

से तं सम्मुग्गपक्खी[2]।

प. (४) से किं तं विततपक्खी?

उ. विततपक्खी एगागारा पण्णत्ता,
ते णं णत्थि इहं, बाहिरएसु दीवसमुद्दएसु भवंति।

से तं विततपक्खी।

ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मुच्छिमा य, २. गब्भवक्कंतिया य।

तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे नपुंसगा।

तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते णं तिविहा पण्णत्ता,

तं जहा–१. इत्थी, २. पुरिसा, ३. नपुंसगा।

एएसि णं एवमाइयाणं खहयरपंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं बारस जाइकुलकोडि जोणिप्पमुहसयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं।

सत्तट्ठ जाइकुलकोडि, लक्ख नव अद्धतेरसाइं च।
दस दस य होंति णवगा, तह बारसे चेव बोधव्वा।

से तं खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया।
से तं पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया[3]।
से तं तिरिक्खोजणिया।

–पण्ण. प. १, सु. ८६-९१

तिविहा पक्खी पण्णत्ता, तं जहा–

१. अंडया, २. पोयया, ३. संमुच्छिमा।

अंडया पक्खी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. इत्थी, २. पुरिसा, ३. णपुंसगा।

पोयया पक्खी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. इत्थी, २. पुरिसा, ३. णपुंसगा।

–ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १३८/१-३

गेसर, मसूर, मयूर, शतवत्स, गहर, पोण्डरीक, काक, कामंजुक, वंजुलक, तित्तिर, वर्त्तक, लावक, कपोत, कपिंजल, पारावत, चिडी, चास, कुक्कुट, शुक, बर्ही, मदनशलाका, (मैना) कोकिल, सेह और वरिल्लक आदि।

यह रोमपक्षियों का वर्णन हुआ।

प्र. (३) समुद्गपक्षी कितने प्रकार के हैं?

उ. समुद्गपक्षी एक ही आकार-प्रकार का कहा गया है।
वे यहां (मनुष्यक्षेत्र में) नहीं होते। वे मनुष्यक्षेत्र से बाहर के द्वीप-समुद्रों में होते हैं।

यह समुद्गपक्षियों की प्ररूपणा हुई।

प्र. (४) विततपक्षी कितने प्रकार के हैं?

उ. विततपक्षी एक ही आकार-प्रकार के होते हैं।
वे यहां (मनुष्यक्षेत्र में) नहीं होते। (मनुष्यक्षेत्र से) बाहर के द्वीप-समूहों में होते हैं।

यह विततपक्षियों की प्ररूपणा हुई।

ये खेचरपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सम्मूर्च्छिम, २. गर्भज।

इनमें से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सभी नपुंसक होते हैं।

इनमें से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं,

यथा–१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक

१. इस प्रकार चर्मपक्षी इत्यादि इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक खेचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के बारह लाख कुलकोटि योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है।

२. सात लाख जाति कुलकोटि, ३. आठ लाख, ४. नौ लाख, ५. साढ़े बारह लाख, दस लाख; दस लाख तथा बारह लाख (तीन चिकलेन्द्रिय और पांच तिर्यन्च पंचेन्द्रिय तक की क्रमशः) जाति कुलकोटि समझनी चाहिए।

यह खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की प्ररूपणा हुई।
यह पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों की प्ररूपणा हुई।
यह तिर्यञ्चयोनिक जीवों की प्ररूपणा हुई।

पक्षी तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. अंडज, २. पोतज, ३. संमूर्च्छिम।

अंडज पक्षी तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. स्त्री, २. पुरुष, ३. नपुंसक।

पोतज पक्षी तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. स्त्री, २. पुरुष ३. नपुंसक।

---

१. जीवा. पडि. १, सु. ३६
२. (क) जीवा. पडि. १, सु. ३६
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ४०
३. जीवा. पडि. ३, सु. ९६ (२)

६९. मणुस्सजीवपण्णवणा–

प. से किं तं मणुस्सा ?

उ. मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मुच्छिममणुस्सा य,

२. गब्भवक्कंतियमणुस्सा[1] य। –पण्ण. प. १, सु. ९२

६९. मनुष्य जीवों की प्रज्ञापना के भेद–

प्र. मनुष्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. मनुष्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सम्मूर्च्छिम मनुष्य,

२. गर्भज मनुष्य।

७०. सम्मुच्छिम मणुस्साण पण्णवणा–

प. से किं तं संमुच्छिममणुस्सा ?

उ. संमुच्छिममणुस्सा एगागारा पण्णत्ता। –जीवा. पडि. ३, सु. १०६

प. से किं तं सम्मुच्छिममणुस्सा ?

कइ णं भंते ! सम्मुच्छिममणुस्सा सम्मुच्छंति ?

उ. गोयमा ! अंतोमणुस्सखेत्ते पणयालीसाए जोयण-सयसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमीसु, तीसाए अकम्मभूमीसु, छप्पण्णाए अंतरदीवएसु, गब्भक्कंतियमणुस्साणं चेव

१. उच्चारेसु वा, २. पासवणेसु वा,
३. खेलेसु वा, ४. सिंघाणेसु वा,
५. वंतेसु वा, ६. पित्तेसु वा,
७. पूएसु वा, ८. सोणिएसु वा,
९. सुक्केसु वा,
१०. सुक्कपोग्गलपरिसाडेसु वा,
११. विगयजीवकलेवरेसु वा,
१२. थी-पुरिससंजोएसु वा,
१३. गामणिद्धमणेसु वा,
१४. णगरणिद्धमणेसु वा।

सव्वेसु चेव असुइएसु ठाणेसु एत्थ णं सम्मुच्छिममणुस्सा सम्मुच्छंति।

अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए असण्णी मिच्छद्दिट्ठी सव्वाहिं पज्जतीहिं अपज्जत्तवा अंतोमुहुत्ताउया चेव कालं करेइ।

से तं सम्मुच्छिम मणुस्सा[2]।

७०. सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की प्रज्ञापना–

प्र. सम्मूर्च्छिम मनुष्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. सम्मूर्च्छिम मनुष्य एक प्रकार का कहा गया है।

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कैसे होते हैं ? वे कहां उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! मनुष्य क्षेत्र के अन्दर, पैंतालीस लाख योजन विस्तृत द्वीप-समुद्रों में, पन्द्रह कर्मभूमियों में, तीस अकर्मभूमियों में एवं छप्पन अन्तर्द्वीपों में गर्भज मनुष्यों के–

१. उच्चारों में, २. पेशाबों में,
३. कफों में, ४. सिंघाण-नाक के मैलों में,
५. वमनों में, ६. पित्तों में,
७. मवादों में, ८. रक्तों में,
९. शुक्रों-वीर्यों में,
१०. पहले सूखे हुए शुक्र के पुद्गलों को गीला करने में,
११. मरे हुए जीवों के कलेवरों में,
१२. स्त्री-पुरुष के संयोगों में,
१३. ग्राम की गटरों में या मोरियों में,
१४. नगर की गटरों में या मोरियों में।

इन सभी अशुचि स्थानों में सम्मूर्च्छिम मनुष्य (माता-पिता के संयोग के बिना स्वतः) उत्पन्न होते हैं।

इन सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र की होती है। ये असंज्ञी मिथ्यादृष्टि एवं सभी पर्याप्तियों अर्थात् सभी प्रकार की पर्याप्त अवस्थाओं से अपर्याप्त होते हैं। ये अन्तर्मुहूर्त की आयु भोग कर मर जाते हैं।

यह सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की प्ररूपणा हुई।

७१. गब्भवक्कंतिय मणुस्साण पण्णवणा–

प. से किं तं गब्भवक्कंतियमणुस्सा ?

उ. गब्भवक्कंतियमणुस्सा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कम्मभूमया, २. अकम्मभूमया, ३. अंतरदीवया[3]।

७१. गर्भज मनुष्यों की प्रज्ञापना–

प्र. गर्भज मनुष्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. गर्भज मनुष्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कर्मभूमिज, २. अकर्मभूमिज, ३. अन्तर्द्वीपज।

---

१. (क) जीवा. पडि. १, सु. ४१
(ख) जीवा. पडि. ३, सु. १०५
(ग) उत्त. अ. ३६ गा. १९५

२. (क) जीवा. पडि. १, सु. ४१
(ख) जीवा. पडि. ३, सु. १०६
(ग) पण्ण. प. १, सु. [illegible]

३. (क) उत्त. अ. ३६, गा. १९६-१९७
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ४१
(ग) जीवा. पडि. ३, सु. [illegible]
(घ) जीवा. पडि. ३, सु. [illegible]
(ङ) ठाणं अ. ३, सु. [illegible]

(१) अंतरदीवग–

प. से किं तं अंतरदीवया?

उ. अंतरदीवया अट्ठावीसइविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. एगोरूया, २. आभासिया, ३. वेसाणिया,
४. णंगोली, ५. हयकण्णा, ६. गयकण्णा,
७. गोकण्णा, ८. सक्कुलिकण्णा, ९. आयंसमुहा,
१०. मेंढमुहा, ११. अयोमुहा, १२. गोमुहा,
१३. आसमुहा, १४. हत्थिमुहा, १५. सीहमुहा,
१६. वग्घमुहा, १७. आसकण्णा, १८. सीहकण्णा,
१९. अकण्णा, २०. कण्णपाउरणा, २१. उक्कामुहा,
२२. मेहमुहा, २३. विज्जुमुहा, २४. विज्जुदंता,
२५. घणदंता, २६. लट्ठदंता, २७. गूढदंता,
२८. सुद्धदंता।

से तं अंतरदीवया[1]।

(२) अकम्मभूमग–

प. से किं तं अकम्मभूमया?

उ. अकम्मभूमया तीसइविहा पण्णत्ता, तं जहा–
पंचहिं हेमवएहिं, पंचहिं हिरण्णवएहिं,
पंचहिं हरिवासेहिं, पंचहिं रम्मगवासेहिं,
पंचहिं देवकुरूहिं, पंचहिं उत्तरकुरूहिं,
से तं अकम्मभूमया[2]।

(३) कम्मभूमग–

प. से किं तं कम्मभूमया?

उ. कम्मभूमया पण्णरसविहा पण्णत्ता, तं जहा–
पंचहिं भरहेहिं, पंचहिं एरवएहिं,
पंचहिं महाविदेहेहिं।
ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. आरिया य, २. मिलक्खू य[3]।

–पण्ण. प. १, सु. ९४-९७

(१) अणेगविहा मिलक्खू–

प. से किं तं मिलक्खू?

उ. मिलक्खू अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–
सग, जवण, चिलाय, सबर, बब्बर, काय, मुरुंडोड्ढ, भडग, णिण्णग, पक्कणिय, कुलक्ख, गोंड, सिंहल, पारस, गांधोडंब, दमिल, चिल्लल, पुलिंद, हारोस, डोंब, वोक्काण, गंधाहारग्ग, बहलिय, अज्जल, रोम, पास, पउसा, मलया य, चुंचुया य, मूयलि, कोंकणग, मेय, पल्हव, मालव, गयग्गर, आभासिय, णक्क, चीणा,

(१) अंतरद्वीपक–

प्र. अन्तरद्वीपज कितने प्रकार के हैं ?

उ. अन्तरद्वीपक अट्ठाईस प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. एकोरुक, २. आभासिक, ३. वैषाणिक,
४. नांगोलिक, ५. हयकर्ण, ६. गजकर्ण,
७. गोकर्ण, ८. शष्कुलिकर्ण, ९. आदर्शमुख,
१०. मेण्ढमुख, ११. अयोमुख, १२. गोमुख,
१३. अश्वमुख, १४. हस्तिमुख, १५. सिंहमुख,
१६. व्याघ्रमुख, १७. अश्वकर्ण, १८. सिंहकर्ण,
१९. अकर्ण, २०. कर्णप्रावरण, २१. उल्कामुख,
२२. मेघमुख, २३. विद्युन्मुख, २४. विद्युद्दन्त,
२५. घनदन्त, २६. लष्टदन्त, २७. गूढ़दन्त,
२८. शुद्धदन्त।

यह अन्तरद्वीपजों की प्ररूपणा हुई।

(२) अकर्मभूमिज–

प्र. अकर्मभूमज मनुष्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. अकर्मभूमज मनुष्य तीस प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
पांच हैमवत क्षेत्रों में, पांच हेरण्यवत क्षेत्रों में,
पांच हरिवर्ष क्षेत्रों में, पांच रम्यक्वर्ष क्षेत्रों में,
पांच देवकुरुक्षेत्रों में, पांच उत्तरकुरु क्षेत्रों में,
इस प्रकार यह अकर्मभूमज मनुष्य की प्ररूपणा हुई।

(३) कर्मभूमिज–

प्र. कर्मभूमज मनुष्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. कर्मभूमज मनुष्य पन्द्रह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
पांच भरत क्षेत्रों में, पांच ऐरवत क्षेत्रों में,
पांच महाविदेह क्षेत्रों में।
वे (पन्द्रह प्रकार के कर्मभूमज मनुष्य) संक्षेप में दो प्रकार के हैं, यथा–

१. आर्य, २. म्लेच्छ।

(१) अनेक प्रकार के म्लेच्छ–

प्र. म्लेच्छ मनुष्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. म्लेच्छ मनुष्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
शक, यवन, किरात, शबर, बर्बर, काय, मरुण्ड, उड्ड, भण्डक, निन्नक, पक्कणिक, कुलाक्ष, गोंड, सिंहल, पारस्य, आन्ध्र, उडम्ब, तमिल, चिल्लल, पुलिन्द, हारोस, डोंब, पोक्काण, गन्धाहारक, बहलिक, अज्जल, रोम, पास, प्रदुष, मलय और चंचूक तथा मूयली, कोंकणक, मेद, पल्हव, मालव, गग्गर, आभाषिक, णक्क, चीना,

१. जीवा. पडि. ३, सु. १०८
२. जीवा. पडि. ३, सु. ११३
३. जीवा. पडि. ३, सु. ११३

ल्हासिय, खस, खासिय, णेडूर, मंढ, डोंबिलग, लउस, वउस, केक्कया, अरवागा, हूण, रोसग, भरूग, रूय, विलायविसयवासी य एवमाई।

से तं मिलक्खू। —पण्ण. प. १, सु. ९८

(२) अणेगविहा आरिया–

प. १. से किं तं आरिया ?

उ. आरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. इड्ढिपत्तारिया य, २. अणिड्ढिपत्तारिया य।

प. (क) से किं तं इड्ढिपत्तारिया ?

उ. इड्ढिपत्तारिया छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अरहंता, २. चक्कवट्टी, ३. वलदेवा, ४. वासुदेवा, ५. चारणा, ६. विज्जाहरा।

से तं इड्ढिपत्तारिया।

प. (ख) से किं तं अणिड्ढिपत्तारिया ?

उ. अणिड्ढिपत्तारिया णवविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. खेत्तारिया, २. जाइआरिया, ३. कुलारिया, ४. कम्मारिया, ५. सिप्पारिया, ६. भासारिया, ७. णाणारिया, ८. दंसणारिया, ९. चरित्तारिया।

प. १. से किं तं खेत्तारिया ?

उ. अद्धछव्वीसइविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. रायगिह मगह २. चंपा अंगा ३. तामलित्ति वंगा य।
४. कंचणपुर कलिंगा ५. वाणारसि चेव कासी य॥

६. साएय कोसला ७. गयपुरं च कुरु ८. सोरियं कुसट्टा य।

९. कंपिल्लं पंचाला १०. अहिछत्ता जंगला चेव॥

११. वारवई य सुरट्ठा, १२. मिहिल विदेहा य १३. वच्छ कोसंबी।

१४. णंदिपुरं संडिल्ला १५. भद्दिलपुरमेव मलया य॥

१६. वइराड वच्छ १७. वरणा अच्छा १८. तह मत्तियावइ दसण्णा।

१९. सुत्तीमई य चेदी, २०. वीइभयं सिंधुसोवीरा॥

२१. महुरा य सूरसेणा २२. पावा भंगी य २३. मासपुरि वट्टा।

२४. सावत्थी य कुणाला २५. कोडीवरिसं च लाढा य॥
सेयविया वि य णयरी, केयइअद्धं च आरियं भणियं।
एत्थुप्पत्ति जिणाणं, चक्कीणं राम-कण्हाणं॥

से तं खेत्तारिया।

प. २. से किं तं जाइआरिया ?

उ. जाइआरिया छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

ल्हासिक, खस, खासिक, नेडूर, मंढ, डोम्बिलक, लओस, वकुश, कैकय, अरवाक, हूण, रोसक, मरूक, रुत और विलात, देशवासी इत्यादि।

यह म्लेच्छों का वर्णन हुआ।

(२) अनेक प्रकार के आर्य–

प्र. आर्य कितने प्रकार के है ?

उ. आर्य दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा–

१. ऋद्धिप्राप्त आर्य, २. ऋद्धिअप्राप्त आर्य।

प्र. (क) ऋद्धिप्राप्त आर्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. ऋद्धिप्राप्त आर्य छह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अर्हन्त, २. चक्रवर्ती, ३. वलदेव, ४. वासुदेव, ५. चारण, ६. विद्याधर।

यह ऋद्धिप्राप्त आर्यो की प्ररूपणा हुई।

प्र. (ख) ऋद्धिअप्राप्त आर्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. ऋद्धिअप्राप्त आर्य नौ प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. क्षेत्रार्य, २. जात्यार्य, ३. कुलार्य, ४. कर्मार्य, ५. शिल्पार्य, ६. भाषार्य, ७. ज्ञानार्य, ८. दर्शनार्य, ९. चारित्रार्य।

प्र. १. क्षेत्रार्य कितने प्रकार के कहे हैं ?

उ. क्षेत्रार्य साढ़े पच्चीस प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. मगध देश में राजगृह नगर, २. अंग देश में चम्पा नगरी, ३. वंग देश में ताम्रलिप्ती, ४. कलिंग देश में कांचनपुर और ५. काशी देश में वाराणसी नगरी।

६. कौशल देश में साकेत नगर, ७. कुरु देश में गजपुर (हस्तिनापुर), ८. कुशार्त्त (कुशावर्त्त देश में) सौरियपुर,

९. पंचाल देश में काम्पिल्य, १०. जांगल देश में अहिच्छत्रा।

११. सौराष्ट्र में द्वारावती (द्वारिका), १२. विदेह (जनपद में) मिथिला नगरी, १३. वत्स देश में कौशाम्बी नगरी,

१४. शाण्डिल्य देश में नन्दिपुर, १५. मलय देश में भद्दिलपुर।

१६. मत्स्य देश में वैराट नगर, १७. वरण देश में अच्छापुरी, १८. दशार्ण देश में मृत्तिकावती नगरी,

१९. चेदि देश में शुक्तिमती (शौक्तिकावती), २०. सिन्धु-सौवीर देश में वीतभय नगर।

२१. शूरसेन देश में मथुरा नगरी, २२. भंग नामक जनपद में पावापुरी नगरी, २३. पुरिवर्त (नामक जनपद में) मासपुरी (मासनगरी),

२४. कुणाल देश में श्रावस्ती, २५. लाढ देश में कोटिवर्ष (नगर) और २५½ केकयार्द्ध (जनपद में) श्वेताम्बिका नगरी, यह सब २५½ देश आर्य क्षेत्र कहे गए हैं। इनमें तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों, बलदेव-वासुदेवों का जन्म होता है।

यह क्षेत्रार्यों का वर्णन हुआ।

प्र. २. जात्यार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. जात्यार्य छह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अंबट्ठा य, २. कलिंदा, ३. विदेहा,
४. वेदगाइ य। ५. हरिया, ६. चुंचुणा चेव,
छ एया इब्भजाइओ।
से तं जाइआरिया।

प. ३. से किं तं कुलारिया ?
उ. कुलारिया छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. उग्गा, २. भोगा, ३. राइण्णा,
४. इक्खागा, ५. णाया, ६. कोरव्वा[1]।
से तं कुलारिया।

प. ४. से किं तं कम्मारिया ?
उ. कम्मारिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–
दोसिया, सोत्तिया, कप्पासिया, सुत्तवेयालिया, भंडवेयालिया, कोलालिया, णरवाहणिया, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।
से तं कम्मारिया।

प. ५. से किं तं सिप्पारिया ?
उ. सिप्पारिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–
तुण्णागा, तंतुवाया, पट्टगारा, देयडा, वरणा, छव्विया, कट्ठपाउयारा, मुंजपाउयारा, छत्तारा, वज्झारा, पोत्थारा, लेप्पारा, चित्तारा, संखारा, दंतारा, भंडारा, जिज्झगारा, सेल्लगारा कोडिगारा। जे यावऽण्णे तहप्पगारा।
से तं सिप्पारिया।

प. ६. से किं तं भासारिया ?
उ. भासारिया जे णं अद्धमागहाए भासाए भासेंति जत्थ वि य णं बंभी लिवी पवत्तइ। बंभीए णं लिवीए अट्ठारसविहे लेक्खविहाणे पण्णत्ते, तं जहा–
१. बंभी, २. जवणालिया,
३. दोसापुरिया, ४. खरोट्ठी,
५. पुक्खरसारिया, ६. भोगवइया,
७. पहराइया, ८. अंतक्खरिया,
९. अक्खरपुट्ठिया, १०. वेणइया,
११. णिण्हइया, १२. अंकलिवी,
१३. गणियलिवी, १४. गंधव्वलिवी,
१५. आयंसलिवी, १६. माहेसरी,
१७. दामिलिवी, १८. पोलिंदी।
से तं भासारिया।

प. ७. [illegible]
उ. [illegible]

१. अम्बष्ठ, २. कलिन्द, ३. वैदेह,
४. वेदग, ५. हरित, ६. चुंचुण:
ये छह इभ्य (अर्चनीय-माननीय) जातियां हैं।
यह जात्यार्यों का निरूपण हुआ।

प्र. ३. कुलार्य कितने प्रकार के हैं ?
उ. कुलार्य छह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. उग्र, २. भोग, ३. राजन्य,
४. इक्ष्वाकु, ५. ज्ञात, ६. कौरव्य।
यह कुलार्यों का निरूपण हुआ।

प्र. ४. कर्मार्य कितने प्रकार के हैं ?
उ. कर्मार्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
दोषिक, सौत्रिक, कार्पासिक, सूत्रवैतालिक, भाण्डवैतालिक, कौलालिक और नरवाहिनिक-इसी प्रकार के अन्य जितने भी आर्यकर्म वाले हों, (उन्हें कर्मार्य समझना चाहिए।)
यह कर्मार्यों की प्ररूपणा हुई।

प्र. ५. शिल्पार्य कितने प्रकार के हैं ?
उ. शिल्पार्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
तुन्नाक (दर्जी), जुलाहा, पटवा, मशक बनाने वाला, मोर पिंछि बनाने वाला, छावड़ी बनाने वाला, काष्ठपादुकाकार, गुंजपादुकाकार, छत्रकार, वज्झार-वाह्यकार, पुस्तकार, पुस्तककार, लेप्यकार, चित्रकार, शंखकार, दन्तकार, भाण्डकार, सेल्लकार और कोडिकार। इसी प्रकार के अन्य जितने भी शिल्पकार हैं, (उन सबको) शिल्पार्य समझना चाहिए।
यह शिल्पार्यों की प्ररूपणा हुई।

प्र. ६. भाषार्य किन्हें कहते हैं ?
उ. भाषार्य वे हैं, जो अर्धमागधी भाषा बोलते हैं और जहां भी ब्राह्मी लिपि प्रचलित है। (अर्थात्–जिनमें ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया जाता है।) ब्राह्मी लिपि में अठारह प्रकार का लेख विधान बताया गया है, यथा–
१. ब्राह्मी, २. यवनानी,
३. दोषापुरिका, ४. खरोष्ठी,
५. पुष्करशारिका, ६. भोगवतिका,
७. प्रहरादिका, ८. अन्ताक्षरिका,
९. अक्षरपुष्टिका, १०. वैनयिका,
११. निह्नविका, १२. अंकलिपि,
१३. गणितलिपि, १४. गन्धर्वलिपि,
१५. आदर्शलिपि, १६. माहेश्वरी,
१७. दामिलिपि, १८. पौलिन्दी।
यह भाषार्यों का वर्णन हुआ।

प्र. ७. [illegible]
उ. [illegible]

[1] [illegible]

१. आभिणिवोहियणाणारिया, २. सुयणाणारिया,
३. ओहिणाणारिया, ४. मणपज्जवणाणारिया,
५. केवलणाणारिया।

से तं णाणारिया। —*पण्ण. प. १, सु. १०८*

प. ८. से किं तं दंसणारिया ?

उ. दंसणारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. सरागदंसणारिया य, २. वीयरायदंसणारिया य।

प. ८. किं तं सरागदंसणारिया ?

उ. सरागदंसणारिया दसविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१-२. निस्सग्गुवएसरुई ३. आणारुइ ४. सुत्त ५. वीयरुइ गेव।
६. अहिगम ७. वित्थाररुई ८. किरिया ९. संखेव १०. धम्मरुई॥[1]

से तं सरागदंसणारिया —*पण्ण. प. १, सु. १०९ ११०(१)*

प. ९. से किं तं वीयराय-दंसणारिया ?

उ. वीयराय-दंसणारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. उवसंतकसाय-वीयराय-दंसणारिया,
२. खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया।

प. से किं तं उवसंतकसाय-वीयराय-दंसणारिया ?

उ. उवसंतकसाय-वीयराय-दंसणारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. पढमसमय-उवसंतकसाय-वीयराय-दंसणारिया,
२. अपढमसमय-उवसंतकसाय-वीयराय-दंसणारिया।

अहवा १. चरिमसमय-उवसंतकसाय-वीयराय-दंसणारिया य,
२. अचरिमसमय-उवसंतकसाय-वीयराय-दंसणारिया य।

प. से किं तं खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया ?

उ. खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. छउमत्थखीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया य,
२. केवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया य[2]।

प. से किं तं छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया ?

उ. छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. सयंबुद्ध-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया य,
२. बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया य।

प. से किं तं सयंबुद्ध-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया ?

उ. सयंबुद्ध-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. आभिनिबोधिकज्ञानार्य, २. श्रुतज्ञानार्य,
३. अवधिज्ञानार्य, ४. मनःपर्यवज्ञानार्य,
५. केवलज्ञानार्य।

यह ज्ञानार्यों की प्ररूपणा हुई।

प्र. ८. दर्शनार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—
१. सरागदर्शनार्य, २. वीतरागदर्शनार्य।

प्र. ८. सरागदर्शनार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. सरागदर्शनार्य दस प्रकार के कहे गए हैं, यथा—
१. निसर्गरुचि, २. उपदेशरुचि, ३. आज्ञारुचि, ४. सूत्ररुचि, ५. बीजरुचि,
६. अभिगमरुचि, ७. विस्ताररुचि, ८. क्रियारुचि, ९. संक्षेपरुचि, १०. धर्मरुचि।

यह सराग दर्शनार्यों की प्ररूपणा हुई।

प्र. ९. वीतराग-दर्शनार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. वीतराग-दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—
१. उपशान्तकषाय-वीतराग-दर्शनार्य,
२. क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य।

प्र. उपशान्तकषाय-वीतराग-दर्शनार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. उपशान्तकषाय-वीतराग-दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—
१. प्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-दर्शनार्य,
२. अप्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-दर्शनार्य।

अथवा १. चरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-दर्शनार्य,
२. अचरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-दर्शनार्य।

प्र. क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—
१. छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य,
२. केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य।

प्र. छद्मस्थ क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. छद्मस्थ क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—
१. स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य,
२. बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य।

प्र. स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

---

१. (क) [illegible]
(ख) [illegible]

[illegible]
२. [illegible]

१. पढमसमय - सयंबुद्ध - छउमत्थ - खीणकसाय-वीयराय- दंसणारिया य,

२. अपढमसमय - सयंबुद्ध - छउमत्थ - खीणकसाय-वीयराय- दंसणारिया य।

अहवा १. चरिमसमय - सयंबुद्ध - छउमत्थ - खीणकसाय-वीयराय- दंसणारिया य,

२. अचरिमसमय - सयंबुद्ध - छउमत्थ - खीणकसाय-वीयराय- दंसणारिया य।

से तं सयंबुद्ध-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया।

प. से किं तं बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया ?

उ. बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पढमसमय-बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय- दंसणारिया य,

२. अपढमसमय-बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय- दंसणारिया य।

अहवा १. चरिमसमय-बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया य,

२. अचरिमसमय-बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय- दंसणारिया य।

से तं बुद्धबोहिय - छउमत्थ - खीणकसाय - वीयराय-दंसणारिया।

से तं छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया।

प. से किं तं केवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया ?

उ. केवलि - खीणकसाय - वीयराय - दंसणारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया य।

२. अजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया य।

प. से किं तं सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया ?

उ. सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पढमसमय-सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया य,

२. अपढमसमय-सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया य।

अहवा १. चरिमसमय-सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया य,

२. अचरिमसमय-सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय- दंसणारिया य।

१. प्रथमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य,

२. अप्रथमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य।

अथवा १. चरमसमय स्वयंबुद्ध - छद्मस्थ - क्षीणकषाय - वीतराग-दर्शनार्य,

२. अचरमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य।

यह स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्यों का वर्णन हुआ।

प्र. बुद्धबोधित - छद्मस्थ - क्षीणकषाय - वीतराग - दर्शनार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. प्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य,

२. अप्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य।

अथवा– १. चरमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य,

२. अचरमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य,

यह बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य का निरूपण हुआ।

यह छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य का निरूपण हुआ।

प्र. केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य,

२. अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य।

प्र. सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. प्रथमसमय-सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य,

२. अप्रथमसमय-सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य।

अथवा १. चरमसमय-सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य,

२. अचरसमय-सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य।

से तं सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया।

प. से किं तं अजोगिकेवलि - खीणकसाय - वीयराय-दंसणारिया ?

उ. अजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पढमसमय-अजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया य,

२. अपढमसमय-अजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया य,

अहवा १. चरिमसमय-अजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया य,

२. अचरिमसमय-अजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया य।

से तं अजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया।

से तं केवलि-खीणकसाय-वीयराय-दंसणारिया।

से तं खीणकसाय-वीयराग-दंसणारिया।

से तं वीयराय-दंसणारिया।

से तं दंसणारिया। –पण्ण. प. १, सु. ११०(३)-११९

प. ९. से किं तं चरित्तारिया ?

उ. चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सराग-चरित्तारिया य, २. वीयराय-चरित्तारिया य।

प. से किं तं सराग-चरित्तारिया ?

उ. सराग-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुहुम-संपराय-सराग-चरित्तारिया य,

२. बायर-संपराय-सराग-चरित्तारिया य।

प. से किं तं सुहुम-संपराय-सराग-चरित्तारिया ?

उ. सुहुम-संपराय-सराग-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पढमसमय-सुहुम-संपराय-सराग-चरित्तारिया य,

२. अपढमसमय-सुहुम-संपराय-सराग-चरित्तारिया य।

अहवा १. चरिमसमय-सुहुम-संपराय-सराग-चरित्तारिया य,

२. अचरिमसमय-सुहुम-संपराय-सराग-चरित्तारिया य।

अहवा १. सुहुम-संपराय-सराग-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. संकिलिस्समाणा य, २. विसुज्झमाणा य।

से तं सुहुम-संपराय-सराग-चरित्तारिया।

प. से किं तं बायर-संपराय-सराग-चरित्तारिया ?

उ. बायर-संपराय-सराग-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

यह सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य की प्ररूपणा हुई।

प्र. अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. प्रथमसमय-अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य,

२. अप्रथमसमय-अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य।

अथवा १. चरमसमय - अयोगि - केवलि - क्षीणकषाय - वीतराग-दर्शनार्य,

२. अचरमसमय-अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य।

यह अयोगि-केवलि क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्यों का वर्णन पूर्ण हुआ।

यह केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्यों का वर्णन पूर्ण हुआ।

यह क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्यों का वर्णन हुआ।

यह वीतराग-दर्शनार्यों का वर्णन हुआ।

यह दर्शनार्य (मनुष्यों) का वर्णन हुआ।

प्र. ९. चारित्रार्य (मनुष्य) कितने प्रकार के हैं ?

उ. चारित्रार्य (मनुष्य) दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सराग-चारित्रार्य, २. वीतराग-चारित्रार्य।

प्र. सराग-चारित्रार्य मनुष्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. सराग-चारित्रार्य मनुष्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सूक्ष्म-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य,

२. बादर-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य।

प्र. सूक्ष्म-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. सूक्ष्म-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. प्रथमसमय-सूक्ष्म-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य,

२. अप्रथमसमय-सूक्ष्म-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य।

अथवा १. चरमसमय-सूक्ष्म-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य,

२. अचरमसमय-सूक्ष्म-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य।

अथवा १. सूक्ष्म-सम्पराय सराग चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. संक्लिश्यमान, २. विशुद्धमान

यह सूक्ष्म-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य की प्ररूपणा हुई।

प्र. बादर-सम्पराय सराग चारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. बादर सम्पराय सराग चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पढमसमय-बायर-संपराय-सराग-चरित्तारिया य,
२. अपढमसमय-बायर-संपराय-सराग-चरित्तारिया य।

अहवा १. चरिमसमय-बायर-संपराय-सराग-चरित्तारिया य,
२. अचरिमसमय-बायर-संपराय-सराग-चरित्तारिया य।

अहवा बायर-संपराय-सराग-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पडिवाई य, २. अपडिवाई य।

से तं बायर-संपराय-सराग-चरित्तारिया।

से तं सराग-चरित्तारिया।

प. से किं तं वीयराय-चरित्तारिया ?

उ. वीयराय-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. उवसंतकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य,
२. खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य।

प. से किं तं उवसंतकसाय-वीयराय-चरित्तारिया ?

उ. उवसंतकसाय-वीयराय-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पढमसमय-उवसंतकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य,
२. अपढमसमय-उवसंतकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य।

अहवा १. चरिमसमय-उवसंतकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य,
२. अचरिमसमय-उवसंतकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य।

से तं उवसंतकसाय-वीयराय-चरित्तारिया।

प. से किं तं खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया ?

उ. खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य,
२. केवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य।

प. से किं तं छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया ?

उ. छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सयंबुद्ध-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य,
२. बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य।

प. से किं तं सयंबुद्ध-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया ?

उ. सयंबुद्ध-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पढमसमय-सयंबुद्ध-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य,
२. अपढमसमय-सयंबुद्ध-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य।

१. प्रथमसमय-बादर-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य,
२. अप्रथमसमय-बादर-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य।

अथवा– १. चरमसमय-बादर-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य,
२. अचरमसमय-बादर-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य।

अथवा– १. बादर-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. प्रतिपाती, २. अप्रतिपाती।

यह बादर-सम्पराय-सराग-चारित्रार्य का वर्णन हुआ।

यह सराग-चारित्रार्य का वर्णन हुआ।

प्र. वीतराग-चारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य,
२. क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

प्र. उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. प्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य,
२. अप्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य;

अथवा १. चरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य,
२. अचरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

यह उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य का निरूपण हुआ।

प्र. क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य,
२. केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

प्र. छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य,
२. बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

प्र. स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ - क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. प्रथमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य,
२. अप्रथमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

अहवा १. चरिमसमय-सयंबुद्ध-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य,

२. अचरिमसमय-सयंबुद्ध-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य।

से तं सयंबुद्ध-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया।

प. से किं तं बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया ?

उ. बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पढमसमय-बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकमाय-वीयराय-चरित्तारिया य,

२. अपढमसमय-बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य।

अहवा १. चरिमसमय-बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य,

२. अचरिमसमय-बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य।

से तं बुद्धबोहिय-छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया।

से तं छउमत्थ-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया।

प. से किं तं केवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया ?

उ. केवलि - खीणकसाय - वीयराय - चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य,

२. अजोगिकेवलि-खीणकमाय-वीयराय-चरित्तारिया य।

प. से किं तं सजोगिकेवलि - खीणकसाय - वीयराय - चरित्तारिया ?

उ. सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पढमसमय-सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य,

२. अपढमसमय-सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य।

अहवा १. चरिमसमय-सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य,

२. अचरिमसमय-सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य।

से तं सजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया।

अथवा– १. चरमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य,

२. अचरमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

यह स्वयंबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य का वर्णन हुआ।

प्र. बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. प्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-चारित्रार्य,

२. अप्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

अथवा– १. चरमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य,

२. अचरमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

यह बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्यों का वर्णन हुआ।

यह छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्यों का वर्णन हुआ।

प्र. केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य,

२. अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

प्र. सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. प्रथमसमय-सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य,

२. अप्रथमसमय-सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

अथवा– १. [illegible] चारित्रार्य

२. [illegible] चारित्रार्य

यह सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्यों का निरूपण हुआ।

प. से किं तं अजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया ?

उ. अजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पढमसमय-अजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य।

२. अपढमसमय-अजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य।

अहवा– १. चरिमसमय-अजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया य,

२. अचरिमसमय - अजोगिकेवलि - खीणकसाय - वीयराय - चरित्तारिया य।

से तं अजोगिकेवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया।

से तं केवलि-खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया।

से तं खीणकसाय-वीयराय-चरित्तारिया।

से तं वीयराय-चरित्तारिया।

अहवा– चरित्तारिया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सामाइय-चरित्तारिया,

२. छेदोवट्ठावणिय-चरित्तारिया,

३. परिहारविसुद्धिय-चरित्तारिया,

४. सुहुम-संपराय-चरित्तारिया,

५. अहक्खाय-चरित्तारिया।

प. से किं तं सामाइय-चरित्तारिया ?

उ. सामाइय-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. इत्तरिय-सामाइय-चरित्तारिया य,

२. आवकहिय-सामाइय-चरित्तारिया य।

से तं सामाइय-चरित्तारिया।

प. से किं तं छेदोवट्ठावणिय-चरित्तारिया ?

उ. छेदोवट्ठावणिय-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. साइयार-छेदोवट्ठावणिय-चरित्तारिया य,

२. णिरइयार-छेदोवट्ठावणिय-चरित्तारिया य।

से तं छेदोवट्ठावणिय-चरित्तारिया।

प. से किं तं परिहार-विसुद्धिय-चरित्तारिया ?

उ. परिहार-विसुद्धिय-चरित्तारिया दुविहा पण्णता, तं जहा–

१. निव्विसमाण-परिहार-विसुद्धिय-चरित्तारिया य,

२. निव्विट्ठकाइय-परिहार-विसुद्धिय-चरित्तारिया य।

से तं परिहार-विसुद्धिय-चरित्तारिया।

प. से किं तं सुहुम-संपराय-चरित्तारिया ?

उ. सुहुम-संपराय-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

प्र. अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कितने प्र[कार] के हैं ?

उ. अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रका[र के] कहे गए हैं, यथा–

१. प्रथमसमय-अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीत[राग-]चारित्रार्य,

२. अप्रथमसमय-अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीत[राग-]चारित्रार्य।

अथवा– १. चरमसमय-अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीत[राग-]चारित्रार्य,

२. अचरमसमय- अयोगि- केवलि- क्षीणकषाय- वीत[राग-]चारित्रार्य।

यह अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्यों का [वर्णन] पूर्ण हुआ।

यह केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्यों का वर्णन हु[आ।]

यह क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्यों का वर्णन हुआ।

यह वीतराग-चारित्रार्यों का वर्णन हुआ।

अथवा– चारित्रार्य पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सामायिक-चारित्रार्य,

२. छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य,

३. परिहारविशुद्धिक-चारित्रार्य,

४. सूक्ष्म-सम्पराय-चारित्रार्य,

५. यथाख्यात-चारित्रार्य।

प्र. सामायिक-चारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. सामायिक-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अल्पकालीन सामायिक चारित्रार्य,

२. यावज्जीवन सामायिक-चारित्रार्य।

यह सामायिक-चारित्रार्य का निरूपण हुआ।

प्र. छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सदोष छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य,

२. निर्दोष छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य।

यह छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्यों का वर्णन हुआ।

प्र. परिहार-विशुद्धिकचारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. परिहार-विशुद्धिकचारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. निर्विश्यमानक-परिहार-विशुद्धि-चारित्रार्य,

२. निर्विष्टकायिक-परिहार-विशुद्धि-चारित्रार्य।

यह परिहार-विशुद्धिकचारित्रार्यों का वर्णन हुआ।

प्र. सूक्ष्म-सम्पराय-चारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. सूक्ष्म-सम्पराय-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. संकिलिस्समाण-सुहुम-संपराय-चरित्तारिया य,

२. विसुज्झमाण-सुहुम-संपराय-चरित्तारिया य।

से तं सुहुम-संपराय-चरित्तारिया।

प. से किं तं अहक्खाय-चरित्तारिया ?

उ. अहक्खाय-चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. छउमत्थ-अहक्खाय-चरित्तारिया य,

२. केवलि-अहक्खाय-चरित्तारिया य।

से तं अहक्खाय-चरित्तारिया।

से तं चरित्तारिया।

से तं अणिड्ढिपत्तारिया। से तं आरिया।

से तं कम्मभूमगा।

से तं गब्भवक्कंतिया।

से तं मणुस्सा[1]। — पण्ण प. १, सु. १२० १३८

१. संक्लिश्यमान (हायमान परिणाम वाला) सूक्ष्म सम्पराय-चारित्रार्य,

२. विशुद्ध्यमान (वर्धमान परिणाम वाला) सूक्ष्म-सम्पराय-चारित्रार्य।

यह सूक्ष्म-सम्पराय-चारित्रार्यों का निरूपण हुआ।

प्र. यथाख्यात-चारित्रार्य कितने प्रकार के हैं ?

उ. यथाख्यात-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. छद्मस्थ-यथाख्यात-चारित्रार्य,

२. केवलि-यथाख्यात-चारित्रार्य।

यह यथाख्यात-चारित्रार्यों का वर्णन हुआ।

यह चारित्रार्यों का वर्णन पूर्ण हुआ।

यह आर्यों का वर्णन हुआ।

यह कर्मभूमिजों का वर्णन हुआ।

यह गर्भजों का वर्णन हुआ।

यह मनुष्यों का वर्णन पूर्ण हुआ।

७२. देवाणं पण्णवणा—

प. से किं तं देवा ?

उ. देवा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. भवणवासी, २. वाणमंतरा,

३. जोइसिया, ४. वेमाणिया[2]।

प. से किं तं भवणवासी ?

उ. भवणवासी दसविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. असुरकुमारा, २. नागकुमारा,

३. सुवण्णकुमारा, ४. विज्जुकुमारा,

५. अग्गिकुमारा, ६. दीवकुमारा,

७. उदधिकुमारा, ८. दिसाकुमारा,

९. वाउकुमारा, १०. थणियकुमारा[3]।

ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. पज्जत्तगा य, २. अपज्जत्तगा य।

से तं भवणवासिणो।

प. से किं तं वाणमंतरा ?

उ. वाणमंतरा अट्ठविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. पिसाया, २. किंपुरिसा, ३. महोरगा,

४. गंधव्वा, ५. जक्खा, ६. रक्खसा,

७. भूया, ८. किन्नरा[4]।

७२. देवों की प्रज्ञापना—

प्र. देव कितने प्रकार के हैं ?

उ. देव चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. भवनवासी, २. वाणव्यन्तर,

३. ज्योतिष्क, ४. वैमानिक।

प्र. भवनवासी देव कितने प्रकार के हैं ?

उ. भवनवासी देव दस प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. असुरकुमार, २. नागकुमार,

३. सुपर्णकुमार, ४. विद्युत्कुमार,

५. अग्निकुमार, ६. द्वीपकुमार,

७. उदधिकुमार, ८. दिशाकुमार,

९. वायुकुमार, १०. स्तनितकुमार।

वे संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

यह भवनवासी देवों का वर्णन हुआ।

प्र. वाणव्यन्तर देव कितने प्रकार के हैं ?

उ. वाणव्यन्तर देव आठ प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. पिशाच, २. किम्पुरुष, ३. महोरग,

४. गन्धर्व, ५. यक्ष, ६. राक्षस,

७. भूत, ८. किन्नर।

---

१. जीवा. पडि. ३, सु. [illegible]
२. (क) [illegible]
(ख) [illegible]
(ग) जीवा. पडि. ३, सु. [illegible]
(घ) [illegible]
(ङ) [illegible]
(च) [illegible]
(छ) [illegible]
(ज) [illegible]
३. (क) [illegible]
(ख) जीवा. पडि. ३, सु. [illegible]
(ग) [illegible]
४. (क) [illegible]
(ख) [illegible]

१. पज्जत्तया य, २. अपज्जत्तया य।

से तं गेवेज्जगा।

प. से किं तं अणुत्तरोववाइया?

उ. अणुत्तरोववाइया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. विजया, २. वेजयंता, ३. जयंता, ४. अपराजिता,

५. सव्वट्ठसिद्धा।

ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तया य, २. अपज्जत्तया य।

से तं अणुत्तरोववाइया।

से तं कप्पाईया।

से तं वेमाणिया।

से तं देवा।

से तं पंचेंदिया।

से तं संसारसमावण्णजीवपण्णवणा।

से तं जीवपण्णवणा।

से तं पण्णवणा। पण्ण. प. १, सु. १४६-१४७

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

यह ग्रैवेयकों का वर्णन हुआ।

प्र. अनुत्तरौपपातिक देव कितने प्रकार के हैं?

उ. अनुत्तरौपपातिक देव पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. विजय, २. वैजयन्त, ३. जयन्त, ४. अपराजित,

५. सर्वार्थसिद्ध।

ये संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

यह अनुत्तरौपपातिक देवों का वर्णन हुआ।

यह कल्पातीत देवों का वर्णन हुआ।

यह वैमानिक देवों का वर्णन हुआ।

यह देवों का वर्णन हुआ।

यह पंचेन्द्रिय जीवों का वर्णन हुआ।

यह संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना हुई।

यह जीव प्रज्ञापना हुई।

यह प्रथम प्रज्ञापना पद पूर्ण हुआ।

७३. जीव-चउवीसदंडएसु चेयण्णत्त परूवणं–

प. जीवे णं भंते! जीवे? जीवे जीवे?

उ. गोयमा! जीवे ताव नियमा जीवे, जीवे वि नियमा जीवे।

प. दं. १. जीवे णं भंते! नेरइए? नेरइये जीवे?

उ. गोयमा! नेरइए ताव नियमा जीवे, जीवे पुण सिय नेरइये, सिय अनेरइए।

प. दं. २. जीवे णं भंते! असुरकुमारे? असुरकुमारे जीवे?

उ. गोयमा! असुरकुमारे ताव नियमा जीवे, जीवे पुण सिय असुरकुमारे सिय णो असुरकुमारे।

दं. ३-२४. एवं दंडओ णेयव्वो जाव वेमाणियाणं।

विया. स. ६, उ. १०, सु. ५

७३. जीव चौबीस दंडकों में चैतन्यत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते! क्या जीव चैतन्य है या चैतन्य जीव है?

उ. गौतम! जीव तो नियमतः (निश्चितरूप से) चैतन्य रूप है और चैतन्य भी निश्चितरूप से जीव है।

प्र. दं. १. भंते! क्या जीव नैरयिक है या नैरयिक जीव है?

उ. गौतम! नैरयिक तो नियमतः जीव है किन्तु जीव तो कदाचित् नैरयिक भी हो सकता है और कदाचित् नैरयिक से भिन्न भी हो सकता है।

प्र. दं. २. भंते! क्या जीव असुरकुमार है या असुरकुमार जीव है?

उ. गौतम! असुरकुमार तो नियमतः जीव है, किन्तु जीव तो कदाचित् असुरकुमार भी होता है और कदाचित् असुरकुमार नहीं भी होता है।

दं. ३-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त सभी दण्डक (आलापक) कहने चाहिए।

७४. जीव-चउवीसदंडएसु 'जीवति' पदस्स परूवणं–

प. जीवइ भंते! जीवे? जीवे जीवइ?

उ. गोयमा! जीवइ ताव नियमा जीवे, जीवे पुण सिय जीवइ सिय नो जीवइ।

प. दं. १. [illegible]

७४. जीव-चौबीस दंडकों में प्राण धारण करने का प्ररूपण–

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

प्र. दं. १. [illegible]

[illegible]

उ. गोयमा ! नेरइए ताव नियमा जीवइ, जीवइ पुण सिय नेरइए सिय अनेरइए।

दं. २-२४ एवं दंडओ नेयव्वो जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. ६, उ. १०, सु. ६-८

उ. गौतम ! नैरयिक तो निश्चित रूप से प्राण धारण करता है किन्तु जो प्राण धारण करता है वह कदाचित् नैरयिक होता है और कदाचित् नैरयिक नहीं भी होता है।

दं.२-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त सभी दण्डक (आलापक) कहने चाहिए।

७५. जीव-चउवीसदंडएसु पच्चक्खाणी आइ परूवणं–

प. जीवाणं भंते ! किं पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?

उ. गोयमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि

एवं मणुस्साण वि।

पंचेंदियतिरिक्खजोणिया आइल्लविरहिया।

सेसा सव्वे अपच्चक्खाणी जाव वेमाणिया।

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं पच्चक्खाणीणं अपच्चक्खाणीणं पच्चक्खाणा-पच्चक्खाणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा पच्चक्खाणी,

२. पच्चक्खाणापच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा,

३. अपच्चक्खाणी अणंतगुणा,

पंचेंदियतिरिक्खजोणिया-सव्वत्थोवा पच्चक्खाणा-पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा।

मणुस्सा-सव्वत्थोवा पच्चक्खाणी, पच्चक्खाणा-पच्चक्खाणी संखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा।[1] *–विया. स. ७, उ. २ सु. २९-३५*

७५. जीव-चौवीस दंडकों में प्रत्याख्यानी आदि का परूपण–

प. भंते ! क्या जीव प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं या प्रत्याख्यानाप्रत्याखानी हैं ?

उ. गौतम ! जीव प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी भी हैं।

इसी प्रकार मनुष्य भी तीनों ही प्रकार के हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव प्रारम्भ के विकल्प से रहित हैं, वे प्रत्याख्यानी नहीं होते हैं।

शेष सभी जीव वैमानिकों पर्यंत अप्रत्याख्यानी हैं।

प. भंते ! इन प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प जीव प्रत्याख्यानी हैं।

२. (उनसे) प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी असंख्यातगुणे हैं।

३. (उनसे) अप्रत्याख्यानी अनन्तगुणे हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों में प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी जीव सबसे अल्प हैं और (उनसे) अप्रत्याख्यानी असंख्यातगुणे हैं।

मनुष्यों में प्रत्याख्यानी मनुष्य सबसे अल्प हैं, (उनसे) प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी संख्यातगुणे हैं और (उनसे भी) अप्रत्याख्यानी असंख्यातगुणे हैं।

७६. जीव-चउवीसदंडएसु मूलोत्तरगुण पच्चक्खाणीआइ परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुण-पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी ?

उ. गोयमा ! जीवा मूलगुणपच्चक्खाणी वि, उत्तरगुण-पच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि।

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी ?

उ. गोयमा। नेरइया नो मूलगुणपच्चक्खाणी, नो उत्तरगुण-पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी।

दं. २–१९. एवं जाव चउरिंदिया।

दं. २०–२१. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य जहा जीवा।

दं. २२–२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया।

७६. जीव-जौवीसदंडकों में मूलोत्तरगुण प्रत्याख्यानी आदि का प्ररूपण–

प. भंते ! क्या जीव मूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी हैं या अप्रत्याख्यानी हैं ?

उ. गौतम ! जीव (समुच्चयरूप में) मूलगुणप्रत्याख्यानी भी हैं, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी भी हैं और अप्रत्याख्यानी भी हैं।

प. द. १. भंते ! क्या नैरयिक जीव मूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, उत्तर गुण प्रत्याख्यानी हैं या अप्रत्याख्यानी हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक जीव मूलगुणप्रत्याख्यानी और उत्तरगुणप्रत्याख्यानी नहीं हैं किन्तु अप्रत्याख्यानी हैं ?

दं.२-१९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. २०-२१. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों और मनुष्यों के लिए (औधिक) जीवों के समान कहना चाहिए।

दं.२२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए नैरयिक जीवों के समान कहना चाहिए।

---

१. विया. स. ६ उ. ४ सु. २१

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं मूलगुणपच्चक्खाणीणं, उत्तरगुणपच्चक्खाणीणं अपच्चक्खाणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मूलगुणपच्चक्खाणी,

उत्तरगुणपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा,

अपच्चक्खाणी अणंतगुणा।

प. एएसि णं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं मूलगुण-पच्चक्खाणीणं, उत्तरगुणपच्चक्खाणीणं, अपच्चक्खाणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मूलगुणपच्चक्खाणी,

उत्तरगुण पच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! मणुस्साणं मूलगुणपच्चक्खाणीणं, उत्तरगुणपच्चक्खाणीणं, अपच्चक्खाणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवा मणुस्सा मूलगुणपच्चक्खाणी,

उत्तरगुणपच्चक्खाणी संखेज्जगुणा,

अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा।

— विया. स. ७ उ. २ सु. १९

प. भंते ! मूलगुणप्रत्याख्यानी, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी इन जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! सबसे अल्प जीव मूलगुणप्रत्याख्यानी हैं,

(उनसे) उत्तरगुणप्रत्याख्यानी असंख्यातगुणे हैं,

(उनसे) अप्रत्याख्यानी अनन्तगुणे हैं।

प. भंते ! इन मूलगुणप्रत्याख्यानी, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवों में पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! मूलगुणप्रत्याख्यानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव सबसे अल्प हैं,

(उनसे) उत्तरगुणप्रत्याख्यानी असंख्यातगुणे हैं। (उनसे) अप्रत्याख्यानी असंख्यातगुणे हैं।

प. भंते ! इन मूलगुणप्रत्याख्यानी, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवों में मनुष्य कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! मूलगुणप्रत्याख्यानी मनुष्य सबसे अल्प हैं,

(उनसे) उत्तरगुणप्रत्याख्यानी संख्यातगुणे हैं।

(उनसे) अप्रत्याख्यानी असंख्यातगुणे हैं।

७७. जीव-चउवीसदंडएसु सव्वदेसमूलोत्तरगुण पच्चक्खाणी आइ परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, देसमूलगुण-पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी ?

उ. गोयमा ! जीवा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी वि, देसमूलगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि।

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी ?

उ. गोयमा ! नेरइया नो सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, नो देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी।

दं. २-१९. एवं जाव चउरिंदिया।

प. दं. २०. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! किं सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी ?

उ. गोयमा ! पंचेंदियतिरिक्खजोणिया, नो सव्वमूलगुण-पच्चक्खाणी, देसमूलगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि।

दं. २१. मणुस्सा जहा जीवा।

दं. २२-२४. [illegible]

प. [illegible]

७७. जीव-चौबीस दंडकों में सर्वदेश मूलोत्तरगुण प्रत्याख्यानी आदि का प्ररूपण–

प. भंते ! क्या जीव सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी, देशमूलगुण-प्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी हैं ?

उ. गौतम ! जीव (समुच्चय में) सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी भी हैं, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी भी हैं और अप्रत्याख्यानी भी हैं।

प. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक जीव सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक जीव [illegible]

दं. २-१९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जानना चाहिए।

प. दं. २०. भंते ! [illegible]

उ. [illegible]

दं. २१. [illegible]

दं. २२-२४. [illegible]

प. [illegible]

[illegible]

निर्देश— [illegible]

[illegible]

[illegible] और [illegible] करना चाहिए।

[illegible]

[illegible] चाहिए।

[illegible]

"नेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं सवीरिया वि, अवीरिया वि?

उ. गोयमा ! जेसि णं नेरइयाणं अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए-पुरिसक्कार परक्कमे।

ते णं नेरइया लद्धिवीरिएण वि सवीरिया, करणवीरिएण वि सवीरिया,

जेसि णं नेरइयाणं नत्थि उट्ठाणे जाव पुरिसक्कार परक्कमे ते णं नेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं अवीरिया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"नेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं सवीरिया वि, अवीरिया वि।"

दं. २-२० जहा नेरइया एवं जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया।

दं. २१ मणुस्सा जहा ओहिया जीवा।

णवरं–सिद्धवज्जा भाणियव्वा।

दं. २२-२४ वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया जहा नेरइया।

–विया. स. १, उ. ८, सु. १०-११

"नैरयिक लब्धि वीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं और करणवीर्य की अपेक्षा सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं?"

उ. गौतम ! जिन नैरयिकों में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम है।

वे नारक लब्धिवीर्य और करणवीर्य दोनों की अपेक्षा सवीर्य हैं।

जो नारक उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम से रहित हैं वे नैरयिक लब्धिवीर्य से सवीर्य हैं किन्तु करणवीर्य से अवीर्य हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक लब्धिवीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं और करणवीर्य की अपेक्षा सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं।

दं. २-२० जिस प्रकार नैरयिकों के विषय में कथन किया गया है उसी प्रकार पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक पर्यन्त के जीवों के लिए समझना चाहिए।

दं. २१ मनुष्यों के लिए सामान्य जीवों के समान समझना चाहिए।

विशेष–सिद्धों को छोड़कर कथन करना चाहिए।

दं. २२-२४ वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के विषय में नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

५९. जीव चउवीसदंडएसु पच्चक्खाणाइ परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी?

उ. गोयमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि।

प. सव्वजीवाणं भंते ! किं पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी?

उ. गोयमा ! नेरइया अपच्चक्खाणी जाव चउरिंदिया, सेसा दो पडिसेहेयव्वा।

पंचेंदियतिरिक्खजोणिया नो पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि।

मणुस्सा तिण्णि वि।

सेसा जहा नेरइया। [illegible]

५९. जीव चौबीस दंडकों में प्रत्याख्यानादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं?

उ. गौतम ! जीव प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी भी हैं।

प्र. भंते ! क्या सभी जीव प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं?

उ. गौतम ! नैरयिकों से [illegible]

[illegible]

मनुष्य में तीनों भंग पाये जाते हैं।

शेष जीवों का कथन नैरयिकों के समान करना चाहिए।

६०. जीव चउवीसदंडएसु पच्चक्खाणाइ [illegible] परूवणं–

[illegible]

६०. जीव-चौबीस दंडकों में प्रत्याख्यानादि के [illegible]

[illegible]

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, देसमूलगुणपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी अणंतगुणा।

णवरं– सव्वत्थोवा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया देसमूलगुण पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा।

प. जीवा णं भंते ! किं सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी, देसुत्तरगुण-पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी ?

उ. गोयमा ! जीवा सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, देसुत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि, पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य एवं चेव।

सेसा अपच्चक्खाणी जाव वेमाणिया।

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणीणं, देसुत्तरगुणपच्चक्खाणीणं, अपच्चक्खाणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! तिण्णि वि जहा पढमे दंडए (सू. १४-१६) जाव मणूस्साणं। *–विया. स. ७ उ. २ सु. १७-२७*

उ. गौतम ! सबसे अल्प सर्वमूलप्रत्याख्यानी जीव हैं। (उनसे) देशमूलगुणप्रत्याख्यानी जीव असंख्यातगुणे हैं। (उनसे) अप्रत्याख्यानी जीव अनन्तगुणे हैं।

विशेष– देशमूलगुणप्रत्याख्यानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च सबसे अल्प हैं और अप्रत्याख्यानी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च उनसे असंख्यातगुणे हैं।

प. भंते ! जीव क्या सर्वउत्तरगुणप्रत्याख्यानी हैं, देश उत्तरगुण-प्रत्याख्यानी हैं या अप्रत्याख्यानी हैं ?

उ. गौतम ! जीव सर्वउत्तरगुणप्रत्याख्यानी भी हैं, देशउत्तरगुण-प्रत्याख्यानी भी हैं और अप्रत्याख्यानी भी हैं।

पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों और मनुष्यों का कथन भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

वैमानिक पर्यन्त शेष सभी जीव अप्रत्याख्यानी हैं।

प. भंते ! इन सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानी, देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! इन तीनों का अल्पबहुत्व प्रथम दण्डक में कहे अनुसार मनुष्यों पर्यन्त जानना चाहिए।

७८. जीव-चउवीसदंडएसु सवीरियावीरियत्त परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं सवीरिया ? अवीरिया ?

उ. गोयमा ! सवीरिया वि, अवीरिया वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ– "जीवा सवीरिया वि ? अवीरिया वि ?"

उ. गोयमा ! जीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. संसारसमावन्नगा य, २. असंसारसमावन्नगा य।

१. तत्थ णं जे ते असंसारसमावन्नगा ते णं सिद्धा, सिद्धा णं अवीरिया।

२. तत्थ णं जे ते संसारसमावन्नगा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सेलेसिपडिवन्नगा य, २. असेलेसिपडिवन्नगा य।

१. तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवन्नगा ते णं लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं अवीरिया।

२. तत्थ णं जे ते असेलेसिपडिवन्नगा ते णं लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं सवीरिया वि, अवीरिया वि।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ– "जीवा सवीरिया वि, अवीरिया वि।"

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं सवीरिया ? अवीरिया ?

उ. गोयमा ! नेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं सवीरिया वि, अवीरिया वि,

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

७८. जीव-चौवीस दंडकों में सवीर्यत्व-अवीर्यत्व का प्ररूपण–

प. भंते ! क्या जीव सवीर्य हैं या अवीर्य हैं ?

उ. गौतम ! जीव सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं।

प. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि– जीव सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं ?

उ. गौतम ! जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. संसारसमापन्नक (संसारी) २. असंसारसमापन्नक (सिद्ध)

१. इनमें से जो जीव असंसारसमापन्नक हैं, वे सिद्ध जीव हैं और वे अवीर्य हैं।

२. इनमें से जो जीव संसारसमापन्नक हैं वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. शैलेशी प्रतिपन्नक २. अशैलेशी प्रतिपन्नक।

१. इनमें से जो शैलेशी प्रतिपन्नक हैं, वे लब्धिवीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं। करणवीर्य की अपेक्षा अवीर्य हैं।

२. जो अशैलेशी प्रतिपन्नक हैं वे लब्धिवीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं। करणवीर्य की अपेक्षा सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि– 'जीव सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं।'

प. दं. १. भंते ! क्या नारक जीव सवीर्य हैं या अवीर्य हैं ?

उ. गौतम ! नारक जीव लब्धिवीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं, करणवीर्य की अपेक्षा सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं।

प. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"नेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं सवीरिया वि, अवीरिया वि?

उ. गोयमा ! जेसि णं णेरइयाणं अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए-पुरिसक्कार परकम्मे।

ते णं नेरइया लद्धिवीरिएण वि सवीरिया, करणवीरिएण वि सवीरिया,

जेसि णं नेरइयाणं नत्थि उट्ठाणे जाव पुरिसक्कार परकम्मे ते णं नेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं अवीरिया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"नेरइया लद्धिवीरिएणं सवीरिया, करणवीरिएणं सवीरिया वि, अवीरिया वि।"

दं. २-२० जहा नेरइया एवं जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया।

दं. २१ मणुस्सा जहा ओहिया जीवा।

णवरं–सिद्धवज्जा भाणियव्वा।

दं. २२-२४ वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया जहा नेरइया।

–*विया. स. १, उ. ८, सु. १०-११,*

"नैरयिक लब्धि वीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं और करणवीर्य की अपेक्षा सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं ?"

उ. गौतम ! जिन नैरयिकों में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम हैं।

वे नारक लब्धिवीर्य और करणवीर्य दोनों की अपेक्षा सवीर्य हैं।

जो नारक उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम से रहित हैं वे नैरयिक लब्धिवीर्य से सवीर्य हैं किन्तु करणवीर्य से अवीर्य हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक लब्धिवीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं और करणवीर्य की अपेक्षा सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं।"

दं. २-२० जिस प्रकार नैरयिकों के विषय में कथन किया गया है उसी प्रकार पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक पर्यन्त के जीवों के लिए समझना चाहिए।

दं. २१ मनुष्यों के लिए सामान्य जीवों के समान समझना चाहिए।

विशेष–सिद्धों को छोड़कर कथन करना चाहिए।

दं. २२-२४ वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के विषय में नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

७९. जीव-चउवीसदंडएसु पच्चक्खाणित्ताइ परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?

उ. गोयमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि।

प. सव्वजीवाणं भंते ! किं पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?

उ. गोयमा ! नेरइया अपच्चक्खाणी जाव चउरिंदिया, सेसा दो पडिसेहेयव्वा।

पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया नो पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी वि।

मणुस्सा तिण्णि वि।

सेसा जहा नेरइया। –*विया. स. ६, उ. ४, सु. २१*

७९. जीव चौवीस दंडकों में प्रत्याख्यानादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं ?

उ. गौतम ! जीव प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी भी हैं।

प्र. भंते ! क्या सभी जीव प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिकों से चतुरिन्द्रिय पर्यन्त के जीव अप्रत्याख्यानी हैं, शेष दो (प्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी) भंगों का निषेध करना चाहिए।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक प्रत्याख्यानी नहीं हैं, किन्तु अप्रत्याख्यानी भी हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी भी हैं।

मनुष्य में तीनों भंग पाये जाते हैं।

शेष जीवों का कथन नैरयिकों के समान करना चाहिए।

८०. जीव-चउवीसदंडएसु पच्चक्खाणाइ जाणण-कुव्वण परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणं जाणंति, अपच्चक्खाणं जाणंति, पच्चक्खाणापच्चक्खाणं जाणंति ?

उ. गोयमा ! जे पंचेंदिया ते तिण्णि वि जाणंति,

अवसेसा पच्चक्खाणं न जाणंति।

प. जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणं कुव्वंति, अपच्चक्खाणं कुव्वंति, पच्चक्खाणापच्चक्खाणं कुव्वंति ?

उ. गोयमा ! जहा ओहिया तहा कुव्वणा।

–*विया. स. ६, उ., ४ सु. २२-२३*

८०. जीव–चौवीस दंडकों में प्रत्याख्यानादि के जानने और करने का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव प्रत्याख्यान को जानते हैं, अप्रत्याख्यान को जानते हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान को जानते हैं ?

उ. गौतम ! पंचेन्द्रिय जीव तीनों भंगों को जानते हैं, शेष जीव प्रत्याख्यान को नहीं जानते (अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान को भी नहीं जानते।)

प्र. भंते ! क्या जीव प्रत्याख्यान करते हैं, अप्रत्याख्यान करते हैं या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान करते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्वोक्त सामान्य कथन के समान प्रत्याख्यान करने के लिए भी कहना चाहिए।

८१. जीव-चउवीसदंडएसु पच्चक्खाणाइ निव्वत्तियायुत्त परूवणं-

प. जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया, अप्पच्चक्खाण-निव्वत्तियाउया, पच्चक्खाणापच्चक्खाण-निव्वत्तियाउया?

उ. गोयमा ! जीवा य वेमाणिया य पच्चक्खाण-निव्वत्तियाउया, तिण्णि वि।

अवसेसा अपच्चक्खाणनिव्वत्तियाउया।

-विया. स. ६, उ. ४, सु. २४

८२. जीव-चउवीसदंडएसु सुत्त-जागरा संवुडा-संवुडाइ य परूवणं-

प. जीवाणं भंते ! किं सुत्ता, जागरा, सुत्त-जागरा?

उ. गोयमा ! जीवा सुत्ता वि, जागरा वि, सुत्तजागरा वि।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! किं सुत्ता, जागरा, सुत्तजागरा?

उ. गोयमा ! नेरइया सुत्ता, नो जागरा, नो सुत्तजागरा।

दं. २-१९ एवं जाव चउरिंदिया।

प. दं.२०. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! किं सुत्ता, जागरा, सुत्तजागरा?

उ. गोयमा ! सुत्ता, नो जागरा, सुत्तजागरा वि।

दं. २१. मणुस्सा जहा जीवा।

दं.२२-२४ वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया।

-विया. स. १६, उ. ६, सु. ३-८

प. जीवा णं भंते ! किं संवुडा, असंवुडा, संवुडासंवुडा?

उ. गोयमा ! जीवा संवुडा वि, असंवुडा वि, संवुडासंवुडा वि।

एवं जहेव सुत्ताणं दंडओ तहेव भाणियव्वो।

-विया. स. १६, उ. ६, सु. १०

८३. जीव-चउवीसदंडएसु आयारंभाइ परूवणं-

प. जीवाणं भंते ! किं आयारंभा, परारंभा, तदुभयारंभा, अणारंभा?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया जीवा आयारंभा वि, परारंभा वि, तदुभयारंभा वि, नो अणारंभा, अत्थेगइया जीवा नो आयारंभा, नो परारंभा, नो तदुभयारंभा, अणारंभा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-

'अत्थेगइया जीवा आयारंभा वि जाव नो अणारंभा। अत्थेगइया जीवा नो आयारंभा जाव अणारंभा।'

उ. गोयमा ! जीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-

१. संसारसमावन्नगा य। २. असंसारसमावन्नगा य।

८१. जीव चौवीसदंडकों में प्रत्याख्यानादि से निर्वर्तित आयुत्व का प्ररूपण-

प्र. भंते ! जीव प्रत्याख्यान से निवर्तित आयुष्य वाले हैं, अप्रत्याख्यान से निवर्तित आयुष्य वाले हैं या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान से निवर्तित आयुष्य वाले हैं?

उ. गौतम ! जीव और वैमानिक देव प्रत्याख्यान से निवर्तित आयु वाले आदि तीनों विकल्पों से युक्त हैं।

शेष सभी जीव अप्रत्याख्यान से निवर्तित आयुष्य वाले हैं।

८२. जीव-चौवीस दंडकों में सुप्त-जागृत और संवृत-असंवृत आदि का प्ररूपण-

प्र. भंते ! जीव सुप्त हैं, जागृत हैं या सुप्त-जागृत हैं?

उ. गौतम ! जीव सुप्त भी हैं, जागृत भी हैं और सुप्तजागृत भी हैं।

प्र. दं.१. भंते ! नैरयिक सुप्त हैं, जागृत हैं या सुप्त-जागृत हैं?

उ. गौतम ! नैरयिक सुप्त हैं किन्तु जागृत नहीं हैं और सुप्तजागृत भी नहीं है।

दं. २-१९ इसी प्रकार चतुरिन्द्रियों पर्यन्त जीवों के लिए कहना चाहिए।

प्र. दं. २-२०. भंते ! क्या पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव सुप्त हैं, जागृत हैं या सुप्त जागृत हैं?

उ. गौतम ! वे सुप्त हैं, जागृत नहीं हैं, सुप्त-जागृत हैं।

दं.२१. मनुष्यों का कथन सामान्य जीवों के समान करना चाहिए।

दं.२२-२४ वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का कथन नैरयिकों के समान (सुप्त) जानना चाहिए।

प्र. भंते ! जीव संवृत हैं असंवृत हैं या संवृतासंवृत हैं?

उ. गौतम ! जीव संवृत भी हैं, असंवृत भी हैं और संवृतासंवृत भी हैं।

जिस प्रकार सुप्त जीवों के दण्डक (आलापक) कहे उसी प्रकार इनका भी आलापक कहना चाहिए।

८३. जीव-चौबीस दंडकों में आत्मारंभादि का प्ररूपण-

प्र. भंते ! क्या जीव आत्मारम्भी हैं, परारम्भी हैं, तदुभयारम्भी हैं या अनारम्भी हैं?

उ. गौतम ! कितने ही जीव आत्मारम्भी हैं, परारम्भी हैं और तदुभयारम्भी भी हैं, किन्तु अनारम्भी नहीं हैं। कितने ही जीव आत्मारंभी नहीं हैं, परारम्भी भी नहीं हैं और तदुभयारम्भी भी नहीं हैं किन्तु अनारम्भी हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-

'कितने ही जीव आत्मारम्भी हैं **यावत्** अनारम्भी नहीं है तथा कितने ही जीव आत्मारम्भी नहीं हैं **यावत्** अनारम्भी हैं।

उ. गौतम ! जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. संसारसमापन्नक २. असंसारसमापन्नक।

१. तत्थ णं जे ते असंसारसमावन्नगा ते णं सिद्धा, सिद्धा णं नो आयारंभा जाव अणारंभा

२. तत्थ णं जे ते संसारसमावन्नगा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. संजया य २. असंजया।

१. तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पमत्तसंजया य २. अप्पमत्तसंजया य

१. तत्थ णं जे ते अप्पमत्तसंजया ते णं नो आयारंभा जाव अणारंभा।

२. तत्थ णं जे ते पमत्तसंजया ते सुभं जोगं पडुच्च नो आयारंभा जाव अणारंभा।

असुभं जोगं पडुच्च आयारंभा वि जाव नो अणारंभा।

तत्थ णं जे ते असंजया ते अविरइं पडुच्च आयारंभा वि जाव नो अणारंभा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइया जीवा आयारंभा वि जाव नो अणारंभा, अत्थेगइया जीवा नो आयारंभा जाव अणारंभा।'

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं आयारंभा, परारंभा, तदुभयारंभा, अणारंभा ?

उ. गोयमा ! अविरइं पडुच्च नेरइया आयारंभा वि जाव नो अणारंभा।

दं. २-२०. एवं जाव असुरकुमारा वि जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिया।

दं. २१. मणुस्सा जहा जीवा।

णवरं–सिद्धविरहिया भाणियव्वा।

दं. २२-२४. वाणमंतरा-जोइसिया-वेमाणिया जहा नेरइया। –विया. स. १, उ. १, सु. ७८

१. उनमें से जो जीव असंसारसमापन्नक हैं, वे सिद्ध (मुक्त) हैं और सिद्ध भगवान् न तो आत्मारम्भी हैं यावत् अनारम्भी हैं।

२. उनमें से जो संसारसमापन्नक जीव हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. संयत २. असंयत।

१. उनमें से जो संयत हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. प्रमत्तसंयत २. अप्रमत्तसंयत।

१. उनमें से जो अप्रमत्तसंयत हैं वे आत्मारम्भी नहीं हैं, यावत् अनारम्भी हैं।

२. उनमें से जो प्रमत्तसंयत हैं, वे शुभ योग की अपेक्षा आत्मारम्भी नहीं हैं यावत् अनारम्भी हैं।

अशुभयोग की अपेक्षा वे आत्मारम्भी हैं यावत् अनारम्भी नहीं हैं।

उनमें से जो असंयत हैं, वे अविरति की अपेक्षा आत्मारम्भी हैं यावत् अनारम्भी नहीं हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'कितने ही जीव आत्मारम्भी हैं यावत् अनारम्भी नहीं हैं, कितने ही जीव आत्मारम्भी नहीं हैं यावत् अनारम्भी हैं।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक जीव क्या आत्मारम्भी हैं, परारम्भी हैं, तदुभयारम्भी हैं या अनारम्भी हैं ?

उ. गौतम ! अविरति की अपेक्षा 'नैरयिक जीव आत्मारम्भी हैं यावत् अनारम्भी नहीं हैं।

दं. २-२०. इसी प्रकार असुरकुमारों से पंचेन्द्रियतिर्यञ्च योनिक पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. २१. मनुष्यों का कथन सामान्य जीवों की तरह करना चाहिए।

विशेष–सिद्धों को छोड़कर कहना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों का कथन नैरयिकों के समान करना चाहिए।

८४. जीव-चउवीसदंडगाणं अहिगरणाइ पदेहिं परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! किं अधिकरणी, अधिकरणं ?

उ. गोयमा ! जीवे अधिकरणी वि, अधिकरणं वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जीवे अधिकरणी वि, अधिकरणं वि ?"

उ. गोयमा ! अविरइं पडुच्च।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जीवे अधिकरणी वि, अधिकरणं वि।"

प. दं. १. नेरइए णं भंते ! किं अधिकरणी अधिकरणं ?

उ. गोयमा ! अधिकरणी वि, अधिकरणं वि।
एवं जहेव जीवे तहेव नेरइए वि।

८४. जीव–चौवीस दंडकों का अधिकरणी आदि पदों द्वारा प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव अधिकरणी है या अधिकरण है ?

उ. गौतम ! जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है।

प्र. भंते ! किस कारण से यह कहा जाता है–
कि जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है ?

उ. गौतम ! अविरति की अपेक्षा (जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है)
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक जीव क्या अधिकरणी है या अधिकरण है ?

उ. गौतम ! वह अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है।
जिस प्रकार जीव (सामान्य) के विषय में कहा उसी प्रकार नैरयिक के विषय में भी कहना चाहिए।

दं.२-२४. एवं निरंतरं जाव वेमाणिए।

प. जीवे णं भंते ! किं साहिकरणी, निरधिकरणी ?

उ. गोयमा ! साहिकरणी, नो निरधिकरणी।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जीवे साहिकरणी, नो निरधिकरणी ?"

उ. गोयमा ! अविरइं पडुच्च।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जीवे साहिकरणी नो निरधिकरणी।"
दं. १-२४. एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

प. जीवे णं भंते ! किं आयाहिकरणी पराहिकरणी तदुभयाहिकरणी ?

उ. गोयमा ! आयाहिकरणी वि, पराहिकरणी वि, तदुभयाहिकरणी वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जीवे किं आयाहिकरणी जाव तदुभयाहिकरणी वि ?"

उ. गोयमा ! अविरइं पडुच्च।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जीवे आयाहिकरणी जाव तदुभयाहिकरणी वि।"
दं. १-२४. एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

प. जीवा णं भंते ! अहिकरणे किं आयप्पयोगनिव्वत्तिए, परप्पयोग-निव्वत्तिए, तदुभयप्पयोगनिव्वत्तिए ?

उ. गोयमा ! आयप्पयोगनिव्वत्तिए वि, परप्पयोगनिव्वत्तिए वि तदुभयप्पयोगनिव्वत्तिए वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जीवाणं अहिकरणे आयप्पयोगनिव्वत्तिए जाव तदुभयप्पयोगनिव्वत्तिए ?

उ. गोयमा ! अविरइं पडुच्च।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जीवाणं आयप्पयोगनिव्वत्तिए वि जाव तदुभयप्पयोग-निव्वत्तिए वि।
दं. १-२४. एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

–विया स. १६, उ. १, सु. ९-१७

दं.२-२४. इसी प्रकार निरन्तर वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या जीव साधिकरणी है या निरधिकरणी है ?

उ. गौतम ! जीव साधिकरणी है, निरधिकरणी नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'जीव साधिकरणी है, निरधिकरणी नहीं है' ?

उ. गौतम ! अविरति की अपेक्षा (जीव साधिकरणी है, निरधिकरणी नहीं है)
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'जीव साधिकरणी है निरधिकरणी नहीं है।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! जीव आत्माधिकरणी है, पराधिकरणी है या तदुभयाधिकरणी है ?

उ. गौतम ! जीव आत्माधिकरणी भी है, पराधिकरणी भी है और तदुभयाधिकरणी भी है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'जीव आत्माधिकरणी भी है यावत् तदुभयाधिकरणी भी है ?

उ. गौतम ! अविरति की अपेक्षा से जीव (आत्माधिकरणी भी है यावत् तदुभयाधिकरणी भी है)।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'जीव आत्माधिकरणी भी है, यावत् तदुभयाधिकरणी भी है।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! जीवों का अधिकरण क्या आत्म-प्रयोग निष्पन्न है, पर-प्रयोग निष्पन्न है या तदुभयप्रयोग निष्पन्न है ?

उ. गौतम ! जीवों का अधिकरण आत्मप्रयोग निष्पन्न भी है, परप्रयोग निष्पन्न भी है और तदुभयप्रयोग निष्पन्न भी है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जीवों का अधिकरण आत्मप्रयोग निष्पन्न भी है यावत तदुभयप्रयोग निष्पन्न भी है ?"

उ. गौतम ! अविरति की अपेक्षा से (आत्मप्रयोग निष्पन्न भी है यावत् तदुभयप्रयोग निष्पन्न भी है)।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'जीवों का अधिकरण आत्म-प्रयोग निष्पन्न भी है यावत् तदुभय-प्रयोग निष्पन्न भी है ?'
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

८५. सरीर निव्वत्तेमाणेसु जीवेसु अहिकरणि अहिकरण परूवणं–

प. कति णं भंते ! सरीरगा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंच सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. ओरालिए जाव ५ कम्मए। *–विया. स. १६, उ. १, सु. १८*

८५. शरीर निष्पन्न करने वाले जीवों में अधिकरणी अधिकरण का प्ररूपण–

प्र. भंते ! शरीर कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! पांच शरीर कहे गए हैं, यथा–
१. औदारिक यावत् ५ कार्मण।

प. जीवे णं भंते ! ओरालियसरीरं निव्वत्तेमाणे किं अहिकरणी, अहिकरणं ?

उ. गोयमा ! अहिकरणी वि, अहिकरणं वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'ओरालियसरीरं निव्वत्तेमाणे अहिकरणी वि, अहिकरणं वि ?'

उ. गोयमा ! अविरइं पडुच्चं।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

ओरालियसरीरं निव्वत्तेमाणे अहिकरणी वि, अहिकरणं वि।

प. पुढविकाइए णं भन्ते ! ओरालियसरीरं निव्वत्तेमाणे किं अहिकरणी अहिकरणं ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव मणुस्से।

एवं वेउव्वियसरीरं वि।

णवरं–जस्स अत्थि।

प. जीवे णं भन्ते ! आहारगसरीरं निव्वत्तेमाणं किं अहिकरणी अहिकरणं ?

उ. गोयमा ! अहिकरणी वि अहिकरणं वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"आहारगसरीरं निव्वत्तेमाणे अहिकरणी वि अहिकरणं वि ?"

उ. गोयमा ! पमाइं पडुच्च।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'आहारग सरीरं निव्वत्तेमाणे अहिकरणी वि अहिकरणं वि।'

एवं मणुस्से वि।

तेयासरीरं जहा ओरालियं,

णवरं–सव्वजीवाणं भाणियव्वं।

एवं कम्मगसरीरं वि। *–विया. स. १६, उ. १, सु. २१-२८*

८६. इंदिय निव्वत्तेमाणेसु जीवेसु अहिकरणी अहिकरण परूवणं–

प. कति णं भंते ! इंदिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंच इंदिया पण्णत्ता, तं जहा–

१. सोइंदिए जाव ५. फासिंदिए। *–विया. स. १६, उ. १, सु. १९*

प. जीवे णं सोइंदियं निव्वत्तेमाणे किं अहिकरणी अहिकरणं ?

उ. गोयमा ! एवं जहेव ओरालियसरीरं तहेव सोइंदिय पि भाणियव्वं।

प्र. भंते ! औदारिक शरीर को निष्पन्न करता (बांधता) हुआ जीव अधिकरणी है या अधिकरण है ?

उ. गौतम ! वह अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'औदारिक शरीर को बांधता हुआ जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है ?'

उ. गौतम ! अविरति की अपेक्षा (जीव अधिकरणी भी है अधिकरण भी है।)

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'औदारिक शरीर को बांधता हुआ जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है।'

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव औदारिक शरीर को निष्पन्न करता हुआ अधिकरणी है या अधिकरण है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए।

इसी प्रकार मनुष्य पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार वैक्रिय शरीर के विषय में भी जानना चाहिए।

विशेष–जिस जीव के वह शरीर हो उसके लिए कहना चाहिए।

प्र. भंते ! आहारक शरीर को निष्पन्न करता हुआ जीव अधिकरणी है या अधिकरण है ?

उ. गौतम ! वह अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'जीव आहारक शरीर निष्पन्न करता हुआ अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है ?

उ. गौतम ! प्रमाद की अपेक्षा (वह अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है।)

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'आहारक शरीर को निष्पन्न करता हुआ जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी है।'

इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी जानना चाहिए।

तैजस्‌शरीर का कथन औदारिक शरीर के समान जानना चाहिए।

विशेष–तैजस्‌शरीर सम्बन्धी कथन सभी जीवों के लिए करना चाहिए।

इसी प्रकार कार्मण शरीर के लिए भी जानना चाहिए।

८६. इन्द्रिय निष्पन्न करने वाले जीवों के अधिकरणी अधिकरण का प्ररूपण–

प्र. भंते ! इन्द्रियां कितनी कही गई हैं ?

उ. गौतम ! इन्द्रियां पांच कही गई हैं, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय यावत् ५ स्पर्शेन्द्रिय।

प्र. भंते ! श्रोत्रेन्द्रिय को निष्पन्न करता हुआ जीव अधिकरणी है या अधिकरण है ?

उ. गौतम ! औदारिक शरीर के समान श्रोत्रेन्द्रिय के लिए भी कहना चाहिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'सिय सासया, सिय असासया'।

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं सासया असासया।

उ. गोयमा ! एवं जहा जीवा तहा नेरइया वि।

दं. २-२४. एवं जहा वेमाणिया सिय सासया सिय असासया। –विया. स. ७, उ. २, सु. ३६-३८

प. नेरइया भंते ! किं सासया असासया ?

उ. गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'नेरइया सिय सासया, सिया असासया ?'

उ. गोयमा ! अव्वोच्छित्तिणयट्ठयाए सासया, वोच्छित्तिणयट्ठयाए असासया।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'नेरइया सिय सासया, सिय असासया।'

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणिया सिय सासया सिय असासया। –विया. स. ७, उ. ३, सु. २३-२४

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'जीव कदाचित् शाश्वत है और कदाचित् अशाश्वत है।'

प्र. दं. १. भन्ते ! क्या नैरयिक जीव शाश्वत हैं या अशाश्वत हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार (औधिक) जीवों का कथन किया उसी प्रकार नैरयिकों का भी कथन करना चाहिए।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए कि वे जीव कदाचित् शाश्वत हैं और कदाचित् अशाश्वत हैं।

प्र. भन्ते ! क्या नैरयिक जीव शाश्वत हैं या अशाश्वत हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक जीव कदाचित् शाश्वत हैं और कदाचित् अशाश्वत हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'नैरयिक जीव कदाचित् शाश्वत हैं और कदाचित् अशाश्वत हैं ?

उ. गौतम ! अव्युच्छित्ति (द्रव्यार्थिक) नय की अपेक्षा से नैरयिक जीव शाश्वत हैं और व्युच्छित्ति (पर्यायार्थिक) नय की अपेक्षा से नैरयिक जीव अशाश्वत हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'नैरयिक जीव कदाचित् शाश्वत हैं और कदाचित् अशाश्वत हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए कि वे कदाचित् शाश्वत हैं और कदाचित् अशाश्वत हैं।

१०. जीव-चउवीसदंडएसु सेय-निरेयत्त परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं सेया, निरेया ?

उ. गोयमा ! जीवा सेया वि, निरेया वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'जीवा सेया वि, निरेया वि ?'

उ. गोयमा ! जीवा दुविहा पन्नत्ता, तं जहा–
१. संसारसमावन्नगा य २. असंसारसमावन्नगा य
१. तत्थ णं जे ते असंसारसमावन्नगा ते णं सिद्धा।
सिद्धाणं दुविहा पन्नत्ता, तं जहा–
१. अणंतरसिद्धा य, २. परम्परसिद्धा य
१. तत्थ णं जे ते परम्परसिद्धा ते णं निरेया।
२. तत्थ णं जे ते अणंतरसिद्धा ते णं सेया।

प. ते णं भंते ! किं देसेया सव्वेया ?

उ. गोयमा ! नो देसेया, सव्वेया।
२. तत्थ णं जे ते संसारसमावन्नगा ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहा–
१. सेलेसिपडिवन्नगा य २. असेलेसिपडिवन्नगा य।
१. तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवन्नगा ते णं निरेया।
२. तत्थ णं जे ते असेलेसिपडिवन्नगा ते णं सेया।

प. ते णं भंते ! किं देसेया, सव्वेया ?

१०. जीव–चौवीस दंडकों में सकम्प निष्कम्पत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! जीव सैज (सकम्प) हैं या निरेज (निष्कम्प) हैं ?

उ. गौतम ! जीव सकम्प भी हैं और निष्कम्प भी हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'जीव सकम्प भी हैं और निष्कम्प भी हैं ?'

उ. गौतम ! जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. संसार समापन्नक २. असंसारसमापन्नक।
१. उनमें से जो असंसारसमापन्नक हैं, वे सिद्ध हैं।
सिद्ध दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अनन्तर सिद्ध २. परम्पर सिद्ध।
१. जो परम्पर सिद्ध हैं, वे निष्कम्प है,
२. जो अनन्तर सिद्ध हैं वे सकम्प हैं।

प्र. भन्ते ! वे (सकम्प अनन्तर सिद्ध) देशकम्पक हैं या सर्व कम्पक हैं ?

उ. गौतम ! वे देशकम्पक नहीं हैं, सर्व कम्पक हैं।
२. उनमें से जो संसारसमापन्नक जीव हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. शैलेशी प्रतिपन्नक २. अशैलेशी प्रतिपन्नक
१. जो शैलेशी प्रतिपन्नक हैं, वे निष्कम्प हैं,
२. जो अशैलेशी प्रतिपन्नक हैं, वे सकम्प हैं।

प्र. भन्ते ! वे (अशैलेशी प्रतिपन्नक) देशकम्पक हैं या सर्वकम्पक हैं ?

उ. गोयमा ! देसेया वि, सव्वेया वि।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'जीवा सेया वि, निरेया वि।'

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं देसेया, सव्वेया ?

उ. गोयमा ! देसेया वि, सव्वेया वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'नेरइया देसेया वि, सव्वेया वि ?

उ. गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नता, तं जहा–
१. विग्गहगइसमावन्नगा य,
२. अविग्गहगइसमावन्नगा य।
१. तत्थ णं जे ते विग्गहगइसमावन्नगा ते णं सव्वेया
२. तत्थ णं जे ते अविग्गहगइसमावन्नगा ते णं देसेया,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'नेरइया देसेया वि, सव्वेया वि।'
दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. ८१-८६

उ. गौतम ! वे देशकम्पक भी हैं और सर्वकम्पक भी हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'जीव सकम्प भी हैं और निष्कम्प भी हैं।'

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक देशकम्पक हैं या सर्वकम्पक हैं ?

उ. गौतम ! वे देशकम्पक भी हैं और सर्वकम्पक भी हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'नैरयिक देशकम्पक भी हैं और सर्वकम्पक भी हैं ?'

उ. गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. विग्रहगति समापन्नक,
२. अविग्रहगति समापन्नक।
१. उनमें से जो विग्रहगति समापन्नक हैं वे सर्वकम्पक हैं।
२. जो अविग्रहगति समापन्नक हैं वे देशकम्पक हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'नैरयिक देशकम्पक भी हैं और सर्वकम्पक भी हैं।'
दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त समझना चाहिए।

९१. जीव-चउवीसदंडएसु कालादेसेण सप्पएसाइ चउद्दसदार परूवणं–

१-२ सपदेसाहारग, ३. भविय,
४. सण्णि, ५. लेस्सा ६. दिट्ठी, ७. संजय, ८. कसाए।
९. णाणे, १०-११ जोगुवओगे,
१२. वेदे, य १३. सरीर १४. पज्जत्ती।

-विया. स. ६, उ. ४, सु. २०

९१. जीव–चौबीस दंडकों में कालादेश से सप्रदेशादि चौदह द्वारों का प्ररूपण–

१. सप्रदेश, २. आहारक, ३. भव्य, ४. संज्ञी, ५. लेश्या, ६. दृष्टि, ७. संयत, ८. कषाय, ९. ज्ञान, १०. योग, ११. उपयोग, १२. वेद, १३. शरीर, १४. पर्याप्ति। इन चौदह द्वारों का कथन इस प्रकार है–

१. सपएस दारं–

प. जीवे णं भंते ! कालादेसेणं किं सपदेसे, अपदेसे ?

उ. गोयमा ! नियमा सपदेसे।

प. दं. १. नेरइए णं भंते ! कालादेसेणं किं सपदेसे, अपदेसे ?

उ. गोयमा ! सिय सपदेसे, सिय अपदेसे।
दं. २-२४. एवं जाव सिद्धे।

प. जीवा णं भंते ! कालादेसेणं किं सपदेसा, अपदेसा ?

उ. गोयमा ! नियमा सपदेसा।

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! कालादेसेण किं सपदेसा अपदेसा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा सपदेसा,
२. अहवा सपदेसा य, अपदेसे य,
३. अहवा सपदेसा य, अपदेसा य।
दं. २-११. एवं जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! किं सपदेसा, अपदेसा ?

उ. गोयमा ! सपदेसा वि, अपदेसा वि।

१. सप्रदेश द्वार–

प्र. भन्ते ! क्या (एक) जीव कालादेश (काल की अपेक्षा) से सप्रदेश है या अप्रदेश है ?

उ. गौतम ! कालादेश से जीव नियमतः (निश्चित रूप से) सप्रदेश है।

प्र. दं. १. भन्ते ! क्या (एक) नैरयिक कालादेश से सप्रदेश है या अप्रदेश है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् सप्रदेश है और कदाचित् अप्रदेश है।
दं. २-२४. इसी प्रकार एक सिद्ध जीव पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! कालादेश से अनेक जीव सप्रदेश हैं या अप्रदेश हैं ?

उ. गौतम ! नियमतः सप्रदेश हैं।

प्र. दं. १. भन्ते ! क्या (अनेक) नैरयिक जीव कालादेश से सप्रदेश हैं या अप्रदेश हैं ?

उ. गौतम ! १. सभी (नैरयिक) सप्रदेश हैं,
२. बहुत से सप्रदेश हैं और एक अप्रदेश है।
३. बहुत से सप्रदेश और अप्रदेश हैं।
दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! अनेक पृथ्वीकायिक जीव सप्रदेश हैं या अप्रदेश हैं ?

उ. गौतम ! वे सप्रदेश भी हैं और अप्रदेश भी हैं।

दं. १३-१६. एवं जाव वणप्फइकाइया।

दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. १७-२४. सेसा जहा नेरइया तहा जाव सिद्धा।

दं. १७-२४. शेष जीवों का कथन सिद्धों पर्यन्त नैरयिकों के समान करना चाहिए।

२. आहारग दारं–

आहारगाणं जीवेगेंदियवज्जो तियभंगो।

२. आहारक द्वार–

जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर शेष सभी आहारक जीवों के लिए तीन भंग कहने चाहिए

[(१) सभी सप्रदेश, (२) अनेक सप्रदेश और एक अप्रदेश (३) अनेक सप्रदेश और अनेक अप्रदेश]

अणाहारगाणं जीवेगिंदियवज्जा छब्भंगा एवं भाणियव्वा–, तं जहा–

१. सपएसा वा, २. अपएसा वा,
३. अहवा सपदेसे य अपदेसे य,
४. अहवा सपदेसे य अपदेसा य,
५. अहवा सपदेसा य अपदेसे य,
६. अहवा सपदेसा य अपदेसा य

सिद्धेहिं तियभंगो।

अनाहारकों के लिए जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर छह भंग इस प्रकार कहने चाहिए–यथा–

१. सभी सप्रदेश, २. सभी अप्रदेश,
३. अथवा एक सप्रदेश और एक अप्रदेश,
४. अथवा एक सप्रदेश और अनेक अप्रदेश,
५. अथवा अनेक सप्रदेश और एक अप्रदेश,
६. अथवा अनेक सप्रदेश और अनेक अप्रदेश।

सिद्धों के लिए तीन भंग कहने चाहिए ।

३. भविय द्वारं–

भवसिद्धिया अभवसिद्धिया जहा ओहिया।

नोभवसिद्धिया नोअभवसिद्धिया जीव सिद्धेहिं तियभंगो।

३. भव्यद्वार–

भवसिद्धिक (भव्य) और अभवसिद्धिक (अभव्य) जीवों के लिए औधिक (सामान्य) जीवों की तरह कहना चाहिए।

नोभवसिद्धिक नोअभवसिद्धिक जीव और सिद्धों में (पूर्ववत्) तीन भंग कहने चाहिए।

४. सण्णि दारं–

१. सण्णीहिं जीवादिओ तियभंगो।
२. असण्णीहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो।
   नेरइय देव मणुएहिं छब्भंगा।
३. नोसण्णि नोअसण्णि जीव-मणुय-सिद्धेहिं तियभंगो।

४. संज्ञी द्वार–

१. संज्ञी जीवों में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए।
२. असंज्ञी जीवों में एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए और नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग कहने चाहिए।
३. नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव, मनुष्य और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिए।

५. लेस्सादारं–

सलेस्सा जहा ओहिया।

कण्हलेस्सा नीललेस्सा काउलेस्सा जहा आहारओ

णवरं–जस्स अत्थि एयाओ।

तेउलेस्साए जीवाइओ तियभंगो

णवरं–पुढविकाइएसु आउ-वणस्सईसु छब्भंगा।

पम्हलेसा सुक्कलेसाए जीवाइओ तियभंगो।

अलेसेहिं जीव-सिद्धेहिं तियभंगो।

मणुस्सेसु छब्भंगा।

५. लेश्या द्वार–

सलेश्य जीवों का कथन सामान्य जीवों के समान करना चाहिए।

कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या वाले जीवों का कथन आहारक जीव के समान करना चाहिए।

विशेष–जिसके जो लेश्या हो उसके वह लेश्या कहनी चाहिए।

तेजोलेश्या में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए,

विशेष–पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों में छह भंग कहने चाहिए।

पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए।

अलेश्य (लेश्या रहित) जीव और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिए।

(अलेश्य) मनुष्यों में (पूर्ववत्) छह भंग कहने चाहिए।

६. दिट्ठीदारं–

१. सम्मदिट्ठीहिं जीवाइओ तियभंगो।
विगलिंदिएसु छब्भंगा।

२. मिच्छदिट्ठीहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो।

३. सम्मामिच्छादिट्ठीहिं छब्भंगा।

७. संजय-दारं–

१. संजतेहिं जीवाइओ तियभंगो।

२. असंजतेहिं एगिंदियवज्जो तियभंगो।

३. संजतासंजतेहिं जीवाइओ तियभंगो।

४. नोसंजय-नो असंजय-नो संजयासंजय-जीव-सिद्धेहिं तियभंगो।

८. कसाय-दारं–

१. सकसाईहिं जीवाइओ तियभंगो।

एगिंदिएसु अभंगयं।

कोहकसाईहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

देवेहिं छब्भंगा।

माणकसाई मायाकसाई जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

नेरइय-देवेहिं छब्भंगा।

लोभकसायीहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

नेरइएसु छब्भंगा।

२. अकसाई जीव-मणुएहिं सिद्धेहिं तियभंगो।

९. णणदारं–

१. ओहियनाणे आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे जीवाइओ तियभंगो।

विगलिंदिएहिं छब्भंगा।

ओहिनाणे मणपज्जवणाणे केवलनाणे जीवाइओ तियभंगो।

२. ओहिएअण्णाणे मइअण्णाणे सुयअण्णाणे एगिंदियवज्जो तियभंगो।

३. विभंगनाणे जीवाइओ तियभंगो।

१०. जोग दारं–

१. सजोगी जहा ओहिओ।

मणजोगी वयजोगी कायजोगी जीवाइओ तियभंगो,

णवरं–कायजोगी एगिंदिया तेसु अभंगयं।

६. दृष्टि द्वार–

१. सम्यग्दृष्टि जीवों में जीवादिक तीन भंग कहने चाहिए।
विकलेन्द्रियों में छह भंग कहने चाहिए।

२. मिथ्यादृष्टि जीवों में एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए।

३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों में छह भंग कहने चाहिए।

७. संयत द्वार–

१. संयतों में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए।

२. असंयतों में एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भंग कहने चाहिए।

३. संयतासंयत जीवों में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए।

४. नोसंयत, नोअसंयत, नोसंयतासंयत जीव और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिए।

८. कषायद्वार–

१. सकषायी (कषाययुक्त) जीवों में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए।

एकेन्द्रिय में अभंगक (एक भंग) कहना चाहिए।

क्रोधकषायी जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए।

(क्रोध कषायी) देवों में छह भंग कहने चाहिए।

मानकषायी और मायाकषायी जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए।

नैरयिकों और देवों में छह भंग कहने चाहिए।

लोभकषायी जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए।

नैरयिक जीवों में छह भंग कहने चाहिए।

२. अकषायी जीवों, मनुष्यों और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहिए।

९. ज्ञान द्वार–

१. औधिक (सामान्य) ज्ञान, आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए।

विकलेन्द्रियों में छह भंग कहने चाहिए।

अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए।

२. औधिक (सामान्य) अज्ञान, मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान में एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए।

३. विभंगज्ञान में भी जीवादि तीन भंग कहने चाहिए।

१०. योग द्वार–

१. सयोगी जीवों का कथन औधिक जीवों के समान करना चाहिए।

मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए।

विशेष–काययोगी एकेन्द्रियों में अभंगक (केवल एक भंग) होता है।

२. अजोगी जहा अलेसा।

२. अयोगी जीवों का कथन अलेश्य जीवों के समान करना चाहिए।

११. उवओगदारं–

सागारोवउत्त-अणागारोवउत्तेहिं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

११. उपयोग द्वार–

१. साकारोपयोग और अनाकारोपयोग वाले जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए।

१२. वेददारं–

१. सवेयगा य जहा सकसाई।

इत्थिवेयग-पुरिसवेयग-नपुंसगवेदगेसु जीवाइओ तियभंगो।

णवरं–नपुंसगवेदे एगिंदिएसु अभंगयं।

२. अवेयगा जहा अकसाई।

१२. वेद द्वार–

१. सवेदक जीवों का कथन सकषायी जीवों के समान करना चाहिए।

स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवों में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए।

विशेष–नपुंसकवेदी एकेन्द्रिय अभंगक (एक भंग) वाले होते हैं।

२. अवेदक जीवों का कथन अकषायी जीवों के समान करना चाहिए।

१३. सरीरदारं–

ससरीरा जहा ओहिओ।

ओरालिय-वेउव्वियसरीरीणं जीव एगिंदियवज्जो तियभंगो।

आहारगसरीरे जीव-मणुएसु छब्भंगा।

तेयग-कम्मगाणं जहा ओहिया।

असरीरेहिं जीव-सिद्धेहिं तियभंगो।

१३. शरीर द्वार–

सशरीरी जीवों का कथन सामान्य जीवों के समान करना चाहिए।

औदारिक और वैक्रियशरीर वालों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भंग कहने चाहिए।

आहारक शरीर वाले जीव और मनुष्य में छह भंग कहने चाहिए।

तैजस् और कार्मण शरीर वाले जीवों का कथन औधिक के समान करना चाहिए।

अशरीरी जीव और सिद्धों के लिए तीन भंग कहने चाहिए।

१४. पज्जत्तीदारं–

१. आहारपज्जत्तीए सरीरपज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए आणापाण-पज्जत्तीए जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

भासामणपज्जत्तीए जहा सण्णी।

२. आहार अपज्जत्तीए जहा अणाहारगा।

सरीर-अपज्जत्तीए इंदिय-अपज्जत्तीए आणापाण अपज्जत्तीए जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

नेरइय-देव-मणुएहिं छब्भंगा।

भासामणअपज्जत्तीए जीवादिओ तियभंगो,

णेरइय-देव-मणुएहिं छब्भंगा।

–विया. स. ६, उ. ४ सु. १-१९

१४. पर्याप्ति द्वार–

१. आहारपर्याप्ति, २. शरीरपर्याप्ति, ३. इन्द्रियपर्याप्ति और ४. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति वाले जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए।

५. भाषापर्याप्ति और ६. मनःपर्याप्ति वाले जीवों का कथन संज्ञीजीवों के समान करना चाहिए।

२. आहार अपर्याप्ति वाले जीवों का कथन अनाहारक जीवों के समान करना चाहिए।

शरीर अपर्याप्ति, इन्द्रिय अपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास अपर्याप्ति वाले जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए।

(अपर्याप्तक) नैरयिक, देव तथा मनुष्यों में छह भंग कहने चाहिए।

भाषा अपर्याप्ति और मनःअपर्याप्ति वाले जीवों में जीवादि तीन भंग कहने चाहिए।

नैरयिक, देव तथा मनुष्यों में छह भंग कहने चाहिए।

९२. जीव-चउवीसदंडएसु अजीवदव्वस्स परिभोगत्त परूवणं–

प. जीवदव्वाणं भंते ! अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, अजीवदव्वाणं जीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति?

९२. जीव-चौबीस दंडकों में अजीवद्रव्य के परिभोगत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! अजीव-द्रव्य जीवद्रव्यों के परिभोग में आते हैं या जीवद्रव्य अजीवद्रव्यों के परिभोग में आते हैं?

उ. गोयमा ! जीवदव्वाणं अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, नो अजीवदव्वाणं जीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जीवदव्वाणं अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति,
नो अजीवदव्वाणं जीवदव्वा परिभोगत्ताए
हव्वमागच्छंति ?"

उ. गोयमा ! जीवदव्वा णं अजीवदव्वा परियादियंति,
अजीवदव्वे परियादिइत्ता ओरालियं वेउव्वियं आहारगं तेयगं कम्मगं सोइंदिय जाव फासिंदिय मणजोगं वइजोगं कायजोगं आणापाणुत्तं च निव्वत्तयंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जीवदव्वाणं अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति,
नो अजीवदव्वाणं जीवदव्वा परिभोगत्ताए
हव्वमागच्छंति।"

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, अजीवदव्वाणं नेरइया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ?

उ. गोयमा ! नेरइयाणं अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, नो अजीवदव्वाणं नेरइया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"नेरइयाणं अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति,
नो अजीवदव्वाणं नेरइया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ?"

उ. गोयमा ! नेरइए अजीवदव्वे परियादियंति–
अजीवदव्वे परियादिइत्ता वेउव्विय-तेयग-कम्मग सोइंदिय जाव फासिंदिय, मणजोगं वइजोगं कायजोगं आणापाणुत्तं च निव्वत्तयंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'नेरइयाणं अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति
नो अजीवदव्वाणं नेरइया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति।'
दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया,
णवरं–सरीर-इंदिय-जोगा भाणियव्वा जस्स जे अत्थि।
विया. स. २५, उ. २, सु. ४-६

उ. गौतम ! अजीवद्रव्य जीवद्रव्यों के परिभोग में आते हैं, किन्तु जीवद्रव्य अजीवद्रव्य के परिभोग में नहीं आते हैं.

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'अजीवद्रव्य जीवद्रव्यों के परिभोग में आते हैं किन्तु जीवद्रव्य अजीवद्रव्यों के परिभोग में नहीं आते हैं ?

उ. गौतम ! जीवद्रव्य, अजीवद्रव्य को ग्रहण करते हैं,
अजीवद्रव्य (पुद्गल) को ग्रहण करके औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस् और कार्मण इन पांच शरीरों तथा श्रोत्रेन्द्रिय से स्पर्शेन्द्रिय पर्यन्त पांच इन्द्रियों, मनोयोग, वचनयोग और काययोग तथा श्वासोच्छ्वास के रूप में निष्पन्न करते हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'अजीवद्रव्य जीवद्रव्यों के परिभोग में आते हैं,
किन्तु जीवद्रव्य अजीवद्रव्यों के परिभोग में नहीं आते हैं।'

प्र. दं. १. भन्ते ! अजीवद्रव्य नैरयिकों के परिभोग में आते हैं या नैरयिक अजीवद्रव्यों के परिभोग में आते हैं ?

उ. गौतम ! अजीव द्रव्य नैरयिकों के परिभोग में आते हैं, किन्तु नैरयिक अजीवद्रव्यों के परिभोग में नहीं आते हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'अजीवद्रव्य नैरयिकों के परिभोग में आते हैं
किन्तु नैरयिक अजीवद्रव्यों के परिभोग में नहीं आते हैं ?'

उ. गौतम ! नैरयिक अजीवद्रव्यों को ग्रहण करते हैं।
अजीवद्रव्यों को ग्रहण करके वैक्रिय तैजस् और कार्मणशरीर के रूप में, श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय के रूप में, मनोयोग वचनयोग और काययोग तथा श्वासोच्छ्वास के रूप में निष्पन्न करते हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"अजीवद्रव्य नैरयिकों के परिभोग में आते हैं
किन्तु नैरयिक अजीवद्रव्यों के परिभोग में नहीं आते हैं।"
दं.२-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।
विशेष–जिसके जितने शरीर, इन्द्रियां तथा योग हों, उसके उतने (यथायोग्य) कहने चाहिए।

१३. जीव-चउवीसदंडएसु कामित्तं भोगित्तं अप्पबहुत्तं य परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं कामी ? भोगी ?
उ. गोयमा ! जीवा कामी वि, भोगी वि।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
[illegible]
उ. [illegible]

१३. जीव-चौबीसदंडकों में कामित्व भोगित्व और अल्पबहुत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! जीव कामी हैं या भोगी हैं ?
उ. गौतम ! जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं।
प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं ?'
उ. गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय की अपेक्षा [illegible]

घाणिंदिय जिब्भिंदिय फासिंदियाइं पडुच्च भोगी।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'जीवा कामी वि, भोगी वि।'

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं कामी ? भोगी ?
उ. गोयमा ! नेरइया कामी वि, भोगी वि।
दं. २-११. एवं जाव थणियकुमारा।
प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! किं कामी ? भोगी ?
उ. गोयमा ! पुढविकाइया नो कामी, भोगी।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'पुढविकाइया नो कामी, भोगी ?'
उ. गोयमा ! फासिंदियं पडुच्च भोगी,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'पुढविकाइया नो कामी, भोगी।'
दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइया।

दं. १७. बेइंदिया एवं चेव।
णवरं–जिब्भिंदिय फासिंदियाइं पडुच्च भोगी।
दं. १८. तेइंदिया वि एवं चेव।
णवरं–घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च भोगी।
प. दं. १९. चउरिंदियाणं भंते ! किं कामी ? भोगी ?
उ. गोयमा ! चउरिंदिया कामी वि, भोगी वि।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'चउरिंदिया कामी वि भोगी वि ?'
उ. गोयमा ! चक्खिंदियं पडुच्च कामी,
घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिन्दियाइं पडुच्च भोगी।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'चउरिंदिया कामी वि, भोगी वि'।
दं. २०-२४. अवसेसा जहा जीवा जाव वेमाणिया।

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं काम भोगीणं, नोकामीणं-नोभोगीणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा भोगीणं जाव विसेसाहिया वा ?
उ. गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा कामभोगी,
नोकामी नोभोगी अणंतगुणा,
भोगी अणंतगुणा। *–विया. स. ७, उ. ७, सु. १३-१९*

घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय एवं स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा जीव भोगी हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं।'

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक जीव क्या कामी हैं या भोगी हैं ?
उ. गौतम ! नैरयिक जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं।
दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।
प्र. दं. १२. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव क्या कामी हैं या भोगी हैं ?
उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव कामी नहीं हैं किन्तु भोगी हैं।
प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'पृथ्वीकायिक जीव कामी नहीं हैं किन्तु भोगी हैं ?'
उ. गौतम ! स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'पृथ्वीकायिक जीव कामी नहीं हैं किन्तु भोगी हैं।'
दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवों पर्यन्त कहना चाहिए।
दं. १७. इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीव भी भोगी हैं।
विशेष–वे जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं।
दं. १८. त्रीन्द्रिय जीव भी इसी प्रकार भोगी हैं।
विशेष–वे घ्राणिन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं।
प्र. दं. १९. भंते ! चतुरिन्द्रिय जीव कामी हैं या भोगी हैं ?
उ. गौतम ! चतुरिन्द्रिय जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'चतुरिन्द्रिय जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं ?'
उ. गौतम ! चक्षुइन्द्रिय की अपेक्षा कामी हैं,
घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'चतुरिन्द्रिय जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं।'
दं. २०-२४. वैमानिकों पर्यन्त शेष सभी जीव औधिक जीवों के समान (कामी भी हैं, भोगी भी हैं) कहना चाहिए।
प्र. भंते ! कामभोगी, नोकामी नोभोगी और भोगी इन (तीन प्रकार के) जीवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?
उ. गौतम ! कामभोगी जीव सबसे अल्प हैं,
(उनसे) नोकामी नोभोगी जीव उनसे अनन्तगुणे हैं,
(उनसे) भोगी जीव अनन्तगुणे हैं।

९५. जीव-चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य पोग्गलि पोग्गलित्त परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! किं पोग्गली पोग्गले ?
उ. गोयमा ! जीवे पोग्गली वि, पोग्गले वि।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'जीवे पोग्गली वि, पोग्गले वि ?'

९५. जीव–चौवीसदंडक और सिद्धों में पुद्गली और पुद्गलत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जीव पुद्गली हैं या पुद्गल हैं ?
उ. गौतम ! जीव पुद्गली भी हैं और पुद्गल भी हैं।
प्र. भंते ! किस कारण ऐसा कहा जाता है कि–
'जीव पुद्गली भी हैं और पुद्गल भी हैं ?'

उ. गोयमा ! से जहानामए छत्तेणं छत्ती, दंडेणं दंडी, घडेणं घडी, पडेणं पडी, करेणं करी एवामेव गोयमा ! जीवे वि सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च पोग्गली, जीवं पडुच्च पोग्गले।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'जीवे पोग्गली वि, पोग्गले वि।'

प. दं. १. नेरइए णं भंते ! किं पोग्गली, पोग्गले ?
उ. गोयमा ! एवं चेव।
दं.२-२४. एवं जाव वेमाणिए।

णवरं–जस्स जइ इंदियाइं तस्स तइ वि भाणियव्वाइं।

प. सिद्धे णं भंते ! किं पोग्गली, पोग्गले ?
उ. गोयमा ! नो पोग्गली, पोग्गले।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"सिद्धे णं नो पोग्गली, पोग्गले ?"
उ. गोयमा ! जीवं पडुच्च।

ते तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"सिद्धे नो पोग्गली, पोग्गले।"

–विया. स. ८ उ. १०, सु. ५९-६१

९६. चउवीसदंडग जीवाणं विविह विवक्खया वग्गणा परूवणं–

(२) एगा भवसिद्धियाणं वग्गणा।
एगा अभवसिद्धियाणं वग्गणा।
दं. १. एगा भवसिद्धियाणं नेरइयाणं वग्गणा।
एगा अभवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा।
दं. २-२४. एवं जाव एगा भवसिद्धियाणं अभवसिद्धियाणं वेमाणियाणं वग्गणा।

(३) १. एगा सम्मद्दिट्ठीयाणं वग्गणा,
२. एगा मिच्छद्दिट्ठीयाणं वग्गणा,
३. एगा सम्मामिच्छद्दिट्ठीयाणं वग्गणा.
दं. १. १. एगा सम्मद्दिट्ठीयाणं णेरइयाणं वग्गणा,
२. एगा मिच्छद्दिट्ठीयाणं णेरइयाणं वग्गणा,
३. एगा सम्मामिच्छद्दिट्ठीयाणं णेरइयाणं वग्गणा।
दं. २-११. एवं एगा असुरकुमाराणं वग्गणा जाव थणियकुमाराणं वग्गणा।
दं. १२. एगा मिच्छद्दिट्ठीयाणं पुढविकाइयाणं वग्गणा,
दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइयाणं वग्गणा।

दं. १७. एगा सम्मद्दिट्ठीयाणं बेइंदियाणं वग्गणा,
एगा मिच्छद्दिट्ठीयाणं बेइंदियाणं वग्गणा,
दं. १८. एवं तेइंदियाण वि

उ. गौतम ! जैसे कोई पुरुष के पास छत्र हो उसे छत्री, दण्ड हो उसे दण्डी, घट होने से घटी, पट होने से पटी एवं कर होने से करी कहा जाता है, इसी तरह हे गौतम ! जीव श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, (सरूप पुद्गल वाला होने) की अपेक्षा से पुद्गली कहलाता है और जीव की अपेक्षा पुद्गल कहलाता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी है।'

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक जीव पुद्गली हैं या पुद्गल हैं ?
उ. गौतम ! पूर्ववत् कथन करना चाहिए।
दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष–जिस जीव के जितनी इन्द्रियाँ हो उतनी इन्द्रियाँ कहनी चाहिए।

प्र. भंते ! सिद्धजीव पुद्गली हैं या पुद्गल हैं ?
उ. गौतम ! सिद्धजीव पुद्गली नहीं हैं, किन्तु पुद्गल हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'सिद्धजीव पुद्गली नहीं हैं, किन्तु पुद्गल हैं ?"
उ. गौतम ! जीव की अपेक्षा सिद्धजीव पुद्गल हैं (किन्तु उनके इन्द्रियाँ न होने से वे पुद्गली नहीं हैं)
इस कारण से गौतम ऐसा कहा जाता है कि–
'सिद्धजीव पुद्गली नहीं हैं किन्तु पुद्गल है।'

९६. चौवीस दंडक जीवों की विविध विवक्षाओं से वर्गणा का प्ररूपण–

(२) भवसिद्धिक जीवों की वर्गणा एक है।
अभवसिद्धिक जीवों की वर्गणा एक है।
दं. १. भवसिद्धिक नैरयिकों की वर्गणा एक है।
अभवसिद्धिक नैरयिकों की वर्गणा एक है।
दं. २-२४. इसी प्रकार यावत् भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक वैमानिकों की वर्गणा एक है।

(३) १. सम्यक्दृष्टि जीवों की वर्गणा एक है,
२. मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है,
३. सम्यक्मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है।
दं. १. १. सम्यक्दृष्टि नैरयिकों की वर्गणा एक है,
२. मिथ्यादृष्टि नैरयिकों की वर्गणा एक है,
३. सम्यक्मिथ्यादृष्टि नैरयिकों की वर्गणा एक है।
दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त प्रत्येक की एक-एक वर्गणा है।
दं. १२. पृथ्वीकायिक मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है।
दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त प्रत्येक की वर्गणा एक-एक है।
दं. १७. सम्यक्दृष्टि द्वीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
मिथ्यादृष्टि द्वीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।
दं. १८. इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है।

दं. १९. एवं चउरिंदियाण वि,

दं. २०-२४. सेसा जहा नेरइया जाव एगा सम्ममिच्छादिट्ठीयाणं वेमाणियाणं वग्गणा।

(४) एगा कण्हपक्खियाणं वग्गणा।

एगा सुक्कपक्खियाणं वग्गणा।

दं. १. एगा कण्हपक्खियाणं णेरइयाणं वग्गणा।

एगा सुक्कपक्खियाणं णेरइयाणं वग्गणा।

दं. २-२४. एवं चउवीसदंडओ भाणियव्वो।

(५) एगा कण्हलेस्साणं वग्गणा

एवं जाव एगा सुक्कलेस्साणं वग्गणा।

एगा कण्हलेसाणं णेरइयाणं वग्गणा।

एगा णीललेसाणं णेरइयाणं वग्गणा।

एगा काउलेसाणं णेरइयाणं वग्गणा।

एवं जस्स जइ लेसाओ, तं जहा–

भवणवइ-वाणमंतर-पुढवि-आउ-वणस्सइकाइयो य चत्तारि लेसाओ,

तेउ-वाउ-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं तिण्णि लेसाओ,

पंचिंदिय-तिरिक्खोजोणियाणं-मणुस्साणं छल्लेसाओ,

जोइसियाणं एगा तेउलेसा,

वेमाणियाणं तिण्णि उवरिमलेसाओ।

(६) एगा कण्हलेसाणं भवसिद्धियाणं वग्गणा।

एगा कण्हलेसाणं अभवसिद्धियाणं वग्गणा।

एवं-छसुवि लेसासु दो दो पयाणि भाणियव्वाणि।

एगा कण्हलेसाणं भवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा।

एगा कण्हलेसाणं अभवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा।

एवं जस्स जइ लेसाओ तस्स तइयाओ भाणियव्वाओ जाव वेमाणियाणं।

(७) एगा कण्हलेसाणं सम्मदिट्ठीयाणं वग्गणा।

एगा कण्हलेसाणं मिच्छदिद्दिट्ठियाणं वग्गणा।

एगा कण्हलेसाणं सम्मिमिच्छदिट्ठियाणं वग्गणा।

एवं छसुवि लेसासु जाव वेमाणियाणं जेसिं जइ दिट्ठीओ।

(८) एगा कण्हलेसाणं कण्हपक्खियाणं वग्गणा।

एगा कण्हलेसाणं सुक्कपक्खियाणं वग्गणा।

दं. १९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रियों की भी वर्गणा एक है,

दं. २०-२४. सम्यक्‌मिथ्यादृष्टि की वैमानिकों पर्यन्त वर्गणा एक है, शेष जीवों की वर्गणा का कथन नैरयिकों के समान करना चाहिए।

(४) कृष्ण-पाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है।

शुक्ल-पाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है।

दं. १. कृष्ण-पाक्षिक नैरयिकों की वर्गणा एक है।

शुक्ल-पाक्षिक नैरयिकों की वर्गणा एक है।

दं. २-२४. इसी प्रकार चौवीस दण्डकों में वर्गणा कहनी चाहिए।

(५) कृष्ण लेश्या वाले जीवों की वर्गणा एक है।

इसी प्रकार यावत् शुक्ल लेश्या वाले जीवों की वर्गणा एक है।

कृष्ण लेश्या वाले नैरयिकों की वर्गणा एक है।

नीललेश्या वाले नैरयिकों की वर्गणा एक है।

कापोतलेश्या वाले नैरयिकों की वर्गणा एक है।

इसी प्रकार जिनमें जितनी लेश्याएँ होती हैं उन प्रत्येक की एक-एक वर्गणा जाननी चाहिए, यथा–

भवनपति, वाणव्यंतर, पृथ्वी, जल और वनस्पतिकायिक जीवों में आदि की चार लेश्याएँ होती हैं।

अग्नि, वायु, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में आदि की तीन लेश्याएँ होती हैं।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्यों के छहों लेश्याएं होती हैं।

ज्योतिष्क देवों के एक तेजोलेश्या होती है।

वैमानिक देवों के अन्तिम तीन लेश्याएँ होती हैं।

(६) कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक जीवों की वर्गणा एक है।

कृष्णलेश्या वाले अभवसिद्धिक जीवों की वर्गणा एक है।

इसी प्रकार छहों लेश्याओं में दो-दो पद (भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक) का कथन करना चाहिए।

कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक नैरयिकों की वर्गणा एक है।

कृष्णलेश्या वाले अभवसिद्धिक नैरयिकों की वर्गणा एक है।

इसी प्रकार भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक वैमानिकों पर्यन्त जिनके जितनी लेश्याएं हैं, उनके अनुपात से सभी दण्डकों में एक-एक वर्गणा कहनी चाहिए।

(७) कृष्णलेश्या वाले सम्यक्‌दृष्टि जीवों की वर्गणा एक है।

कृष्णलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है।

कृष्णलेश्या वाले सम्यक्‌मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है।

इसी प्रकार छहों लेश्या वाले वैमानिक पर्यन्त जिन जीवों में जितनी दृष्टियां हैं, उनके अनुपात से उनकी एक-एक वर्गणा कहनी चाहिए।

(८) कृष्णलेश्या वाले कृष्ण पाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है।

कृष्णलेश्या वाले शुक्ल पाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है।

जाव वेमाणियाणं जस्स जइ लेसाओ।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यंत जिनमें जितनी लेश्याएं हैं उनक अनुपात से कृष्ण पाक्षिक और शुक्ल पाक्षिक जीवों की वर्गणा एक-एक है।

एए अट्ठ, चउवीसदंडया।[1] *–ठाणं, अ. १, सु. ४१ (१-८)*

इन आठ प्रकारों से चौवीस दंडकों की वर्गणा का कथन किया गया है।

९६. चउवीसदंडग जीवाणं अणंतर-परंपरोववन्नगाइ दस पगारा–

दं. १. दसविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा–
१. अणंतरोववण्णा,
२. परंपरोववण्णा,
३. अणंतरावगाढा,
४. परंपरावगाढा,
५. अणंतराहारगा,
६. परंपराहारगा,
७. अणंतरपज्जत्ता,
८. परंपरपज्जत्ता,
९. चरिमा,
१०. अचरिमा।

दं. २-२४. एवं णिरंतरं जाव वेमाणिया।

–ठाणं, अ. १०, सु. ७५७

९६. चौवीस दंडकों के जीवों के अनन्तर परंपरोपपन्नकादि दस प्रकार–

दं. १. नैरयिक दस प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अनन्तरोपपन्नक–जिन्हें उत्पन्न हुए एक समय हुआ।
२. परम्परोपपन्नक–जिन्हें उत्पन्न हुए दो आदि समय हुए हों।
३. अनन्तरावगाढ–विवक्षित क्षेत्र में अवस्थित होने का प्रथम समय।
४. परम्परावगाढ–विवक्षित क्षेत्र में अवस्थित होने का द्वितीयादि समय।
५. अनन्तराहारक–प्रथम समय के आहारक।
६. परम्पराहारक–दो आदि समयों के आहारक।
७. अनन्तरपर्याप्तक–प्रथम समय के पर्याप्तक।
८. परम्पर पर्याप्तक–दो आदि समयों के पर्याप्तक।
९. चरम–नरकगति में अन्तिम वार उत्पन्न होने वाले।
१०. अचरम–जो भविष्य में फिर नरकगति में उत्पन्न होंगे।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त सभी दण्डकों के दस-दस प्रकार कहने चाहिए।

९७. चउवीसदंडएसु महासवाइचउपयाणं परूवणं–

प. दं. (१) सिय भंते ! नेरइया महासवा, महाकिरिया, महावेयणा, महानिज्जरा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (२) सिय भंते ! नेरइया महासवा, महाकिरिया, महावेयणा, अप्पनिज्जरा?

उ. हंता, गोयमा ! सिया।

प. (३) सिय भंते ! नेरइया महासवा, महाकिरिया, अप्पवेयणा, महानिज्जरा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (४) सिय भंते ! नेरइया महासवा, महाकिरिया, अप्पवेयणा अप्पनिज्जरा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (५) सिय भंते ! नेरइया महासवा, अप्पकिरिया, महावेयणा, महानिज्जरा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (६) सिय भंते ! नेरइया महासवा, अप्पकिरिया, महावेयणा, अप्पनिज्जरा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

९७. चौवीसदंडकों में महास्रवादि चार पदों का परूपण–

प. दं. (१) भंते ! क्या नैरयिक जीव महास्रव, महाक्रिया, महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. (२) भंते ! क्या नैरयिक जीव महास्रव, महाक्रिया, महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं?

उ. हां, गौतम हैं।

प. (३) भंते ! क्या नैरयिक जीव महास्रव, महाक्रिया, अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. (४) भंते ! क्या नैरयिक जीव महास्रव, महाक्रिया, अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. (५) भंते ! क्या नैरयिक महास्रव, अल्पक्रिया, महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. (६) भंते ! क्या नैरयिक महास्रव, अल्पक्रिया, महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

---

१. प्रथम वर्गणा जीव प्रज्ञापना अध्ययन के प्रारंभ में है।

प. (७) सिय भंते ! नेरइया महासवा, अप्पकिरिया, अप्पवेयणा, महानिज्जरा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (८) सिय भंते ! नेरइया महासवा, अप्पकिरिया, अप्पवेयणा, अप्पनिज्जरा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (९) सिय भंते ! नेरइया अप्पासवा, महाकिरिया, महावेयणा, महामनिज्जरा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (१०) सिय भंते ! नेरइया अप्पासवा, महाकिरिया, महावेयणा, अप्पनिज्जरा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (११) सिय भंते ! नेरइया अप्पासवा, महाकिरिया, अप्पवेयणा, महानिज्जरा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (१२) सिय भंते ! नेरइया अप्पासवा, महाकिरिया, अप्पवेयणा, अप्पनिज्जरा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (१३) सिय भंते ! नेरइया अप्पासवा, अप्पकिरिया, महावेयणा, महानिज्जरा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (१४) सिय भंते ! नेरइया अप्पासवा, अप्पकिरिया, महावेयणा, अप्पनिज्जरा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (१५) सिय भंते ! नेरइया अप्पासवा, अप्पकिरिया, अप्पवेयणा, महानिज्जरा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. (१६) सिय भंते ! नेरइया अप्पासवा, अप्पकिरिया, अप्पवेयणा, अप्पनिज्जरा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एए सोलस भंगा।

प. दं. २. सिय भंते ! असुरकुमारा महासवा, महाकिरिया, महावेयणा, महानिज्जरा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एवं चउत्थो भंगो भाणियव्वो,

सेसा पन्नरस भंगा खोडेयव्वा।

दं. ३-११ एवं जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२-(१). सिय भंते ! पुढविकाइया महासवा, महाकिरिया, महावेयणा, महानिज्जरा ?

उ. हंता, गोयमा ! सिया।

(२-१५) एवं जाव—

प. (७) भंते ! क्या नैरयिक महास्रव, अल्पक्रिया, अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. (८) भंते ! क्या नैरयिक महास्रव, अल्पक्रिया, अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. (९) भंते ! क्या नैरयिक अल्पास्रव, महाक्रिया, महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. (१०) भंते ! क्या नैरयिक अल्पास्रव, महाक्रिया, महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. (११) भंते ! क्या नैरयिक अल्पास्रव, महाक्रिया, अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. (१२) भंते ! क्या नैरयिक अल्पास्रव, महाक्रिया, अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. (१३) भंते ! क्या नैरयिक अल्पास्रव, अल्पक्रिया, महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. (१४) भंते ! क्या नैरयिक अल्पास्रव, अल्पक्रिया, महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. (१५) भंते ! क्या नैरयिक अल्पास्रव, अल्पक्रिया, अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. (१६) भंते ! क्या नैरयिक अल्पास्रव, अल्पक्रिया, अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

यह सोलह भंग (विकल्प) हैं।

प. दं. २. भंते ! क्या असुरकुमार महास्रव, महाक्रिया, महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इस प्रकार यहां (पूर्वोक्त सोलह भंगों में से) केवल चतुर्थ भंग कहना चाहिए।

शेष पन्द्रह भंगों का निषेध करना चाहिए।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त समझना चाहिए।

प. दं. १२-(१). भंते ! क्या पृथ्वीकायिक जीव महास्रव, महाक्रिया, महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं ?

उ. हां, गौतम ! कदाचित् होते हैं।

(२-१५) इसी प्रकार यावत्—

प. (१६) सिया भंते ! पुढविकाइया अप्पासवा, अप्पकिरिया, अप्पवेयणा, अप्पनिज्जरा ?

उ. हंता, गोयमा ! सिया।

दं. १३-२१ एवं जाव मणुस्सा।

दं. २२-२४ वाणमंतर जोइसिय वेमाणिया जहा असुरकुमारा। *–विया. स. १९, उ. ४, सु. १-२२*

प. (१६) भंते ! क्या पृथ्वीकायिक अल्पास्रव, अल्पक्रिया, अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा (पर्यन्त सोलह भंगों) वाले हैं?

उ. हां, गौतम ! वे कदाचित् सोलह भंगों वाले हैं।

दं. १३-२१. इसी प्रकार मनुष्यों पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर-ज्योतिष्क एवं वैमानिकों के विषय में असुरकुमारों के समान जानना चाहिए।

९८. चउवीसदंडएसु समाहाराइ सत्तदाराणं परूवणं–

गाहा– १. आहार-सम-सरीरा-उस्सास
२. कम्म ३. वण्ण ४. लेस्सासु।
५. समवेदण ६. समकिरिया
७. समाउया-चेव- वोधव्वा॥

९८. चौवीस दंडकों में समाहारादि सात द्वारों का प्ररूपण–

गाथार्थ–१. समाहार सम-शरीर और समश्वासोच्छ्वास
२. कर्म ३. वर्ण, ४. लेश्या,
५. समवेदना, ६. समक्रिया तथा
७. समायुष्क इन सात द्वारों का चौवीस दंडकवर्ती जीवों में वर्णन करते हैं।

(१) आहार-सरीर-उस्सास-दारं–

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! सव्वे समाहारा सव्वे समसरीरा सव्वे समुस्सासणिस्सासा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'णेरइया णो सव्वे समाहारा णो सव्वे समसरीरा णो सव्वे समुस्सासणिस्सासा ?'

उ. गोयमा ! णेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. महासरीरा य २. अप्पसरीरा य।

१. तत्थ णं जे ते महासरीरा ते णं बहुतराए पोग्गले आहारेंति, बहुतराए पोग्गले परिणामेंति, बहुतराए पोग्गले ऊससंति, बहुतराए पोग्गले णीससंति

अभिक्खणं आहारेंति, अभिक्खणं परिणामेंति, अभिक्खणं ऊससंति, अभिक्खणं णीससंति।

२. तत्थ णं जे ते अप्पसरीरा ते णं अप्पतराए पोग्गले आहारेंति, अप्पतराए पोग्गले परिणामेंति, अप्पतराए पोग्गले ऊससंति, अप्पतराए पोग्गले णीससंति।

आहच्च आहारेंति, आहच्च परिणामेंति, आहच्च ऊससंति, आहच्च णीससंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"णेरइया णो सव्वे समाहारा, णो सव्वे सम सरीरा णो सव्वे समुस्सास णिस्सासा।"[1]

(१) आहार-शरीर-उच्छ्वास द्वार–

प्र. दं. १. भन्ते ! क्या सभी नारक समान आहार वाले हैं, सभी समान शरीर वाले हैं तथा सभी समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी नैरयिक समान आहार वाले नहीं हैं, सभी समान शरीर वाले नहीं हैं और सभी समान उच्छ्वास निःश्वास वाले नहीं हैं ?"

उ. गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. महाशरीर वाले २. अल्पशरीर वाले।

१. उनमें से जो महाशरीर वाले नारक हैं, वे बहुत अधिक पुद्गलों का आहार करते हैं, बहुत अधिक पुद्गलों को परिणमाते हैं, बहुत अधिक पुद्गलों का उच्छ्वास लेते हैं और बहुत अधिक पुद्गलों का निःश्वास छोड़ते हैं।

वे बार-बार आहार करते हैं, बार-बार पुद्गलों को परिणमाते हैं, बार-बार उच्छ्वसन करते हैं, बार-बार निःश्वसन करते हैं।

२. उनमें से जो अल्प शरीर वाले नारक हैं, वे अल्पपुद्गलों का आहार करते हैं, अल्प पुद्गलों को परिणमाते हैं, अल्प पुद्गलों का उच्छ्वास लेते हैं और अल्प पुद्गलों का निःश्वास छोड़ते हैं।

वे कदाचित् आहार करते हैं, कदाचित पुद्गलों को परिणमाते हैं, कदाचित् उच्छ्वसन करते हैं और कदाचित् निःश्वसन करते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'सभी नारक समान आहार वाले नहीं हैं, सभी समान शरीर वाले नहीं हैं और सभी समान उच्छ्वास निःश्वास वाले नहीं हैं।"

---

१. (क) विया. स. १, उ. २, सु. ५/१

(ख) प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं केरिसया पोग्गला उसासत्ताए परिणंमति ?

उ. गोयमा ! जे पोग्गला अणिट्ठा जाव अमणामा ते तेसिं उसासत्ताए परिणमंति। एवं जाव अहेसत्तमाए। एवं आहारस्सवि सत्तसु वि।

–जीवा पडि. ३, सु. ८८(१)

(२) कम्म दारं–

प. णेरइया णं भंते ! सव्वे समकम्मा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"णेरइया णो सव्वे समकम्मा ?"

उ. गोयमा ! णेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुव्वोववण्णगा य, २. पच्छोववण्णगा य।
१. तत्थ णं जे ते पुव्वोववण्णगा, ते णं अप्पकम्मतरागा।
२. तत्थ णं जे ते पच्छोववण्णगा, ते णं महाकम्मतरागा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"णेरइया णो सव्वे समकम्मा।[1]

(३) वण्ण दारं–

प. णेरइया णं भंते ! सव्वे समवण्णा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"णेरइया णो सव्वे समवण्णा ?

उ. गोयमा ! णेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुव्वोववण्णगा य २. पच्छोववण्णगा य।
१. तत्थ णं जे ते पुव्वोववण्णगा, ते विसुद्धवण्णतरागा।
२. तत्थ णं जे ते पच्छोववण्णगा, ते णं अविसुद्धवण्णतरागा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"णेरइया णो सव्वे समवण्णा।[2]"

(४) लेस्सा दारं–

प. णेरइया णं भंते ! सव्वे समलेसा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'णेरइया णो सव्वे समलेसा ?

उ. गोयमा ! णेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुव्वोववण्णगा य, २. पच्छोववण्णगा य।
१. तत्थ णं जे ते पुव्वोववण्णगा ते णं विसुद्धलेसतरागा।
२. तत्थ णं जे ते पच्छोववण्णगा, ते णं अविसुद्धलेसतरागा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"णेरइया णो सव्वे समलेसा।[3]"

(५) वेयणा दारं–

प. णेरइया णं भंते ! सव्वे समवेयणा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

(२) कर्म द्वार–

प्र. भन्ते ! क्या सभी नारक समान कर्म वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी नारक समान कर्म वाले नहीं हैं ?"

उ. गौतम ! नारक दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा–
१. पूर्वोपपन्नक, २. पश्चादुपपन्नक।
१. उनमें से जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे अल्प कर्म वाले हैं
२. उनमें से जो पश्चादुपपन्नक हैं, वे महाकर्म वाले हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी नारक समान कर्म वाले नहीं हैं।"

(३) वर्ण द्वार–

प्र. भन्ते ! क्या सभी नारक समान वर्ण वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी नारक समान वर्ण वाले नहीं हैं ?"

उ. गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पूर्वोपपन्नक, २. पश्चादुपपन्नक।
१. उनमें से जो पूर्वोपपन्नक हैं वे अधिक विशुद्ध वर्ण वाले हैं,
२. उनमें से जो पश्चादुपपन्नक हैं वे अविशुद्ध वर्ण वाले हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी नारक समान वर्ण वाले नहीं हैं।"

(४) लेश्या द्वार–

प्र. भन्ते ! क्या नैरयिक सभी समान लेश्या वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक सभी समान लेश्या वाले नहीं हैं ?"

उ. गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पूर्वोपपन्नक, २. पश्चादुपपन्नक।
१. उनमें से जो पूर्वोत्पन्न हैं, वे अधिक विशुद्धतर लेश्या वाले हैं।
२. उनमें से जो पश्चात् उत्पन्न होने वाले हैं वे अविशुद्ध लेश्या वाले हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा गया है कि–
"सभी नैरयिक समान लेश्या वाले नहीं हैं।"

(५) वेदना द्वार–

प्र. भन्ते ! क्या सभी नारक समान वेदना वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

---

१. विया. स. १, उ. २, सु. ५/२ २. विया. स. १, उ. २, सु. ५/३ ३. विया. स. १, उ. २, सु. ५/४

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"णेरइया णो सव्वे समवेयणा ?"

उ. गोयमा ! णेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सण्णिभूया य २. असण्णिभूया य।
१. तत्थ णं जे ते सण्णिभूया ते णं महावेयणतरागा।
२. तत्थ णं जे ते असण्णिभूया ते णं अप्पवेयणतरागा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"णेरइया नो सव्वे समवेयणा।[1]"

(६) किरिया दारं–

प. णेरइया णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"णेरइया णो सव्वे समकिरिया ?"

उ. गोयमा ! णेरइया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सम्मदिट्ठी २. मिच्छादिट्ठी
३. सम्मामिच्छादिट्ठी।
१. तत्थ णं जे ते सम्मदिट्ठी तेसि णं चत्तारि किरियाओ कज्जंति, तं जहा–
१. आरंभिया, २. परिग्गहिया
३. मायावत्तिया, ४. अपच्चक्खाणकिरिया।
२. तत्थ णं जे ते मिच्छादिट्ठी तेसि णं पंच किरियाओ कज्जंति, तं जहा–
१. आरंभिया २. परिग्गहिया,
३. मायावत्तिया, ४. अपच्चक्खाणकिरिया
५. मिच्छादंसणवत्तिया।

३. **सम्ममिच्छादिट्ठी वि एवं चेव**
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"णेरइया णो सव्वे समकिरिया।[2]"

(७) आउ दारं–

प. णेरइया णं भंते ! सव्वे समाउया ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"णेरइया णो सव्वे समाउया ?"

उ. गोयमा ! णेरइया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अत्थेगइया समाउया समोववण्णगा,
२. अत्थेगइया समाउया विसमोववण्णगा,
३. अत्थेगइया विसमाउया समोववण्णगा,

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी नारक समान वेदना वाले नहीं हैं ?"

उ. गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. संज्ञीभूत, २. असंज्ञीभूत।
१. उनमें से जो संज्ञीभूत हैं, वे महान् वेदना वाले हैं,
२. उनमें से जो असंज्ञीभूत हैं, वे अल्प वेदना वाले हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी नारक समान वेदना वाले नहीं हैं।"

(६) क्रिया द्वार–

प्र. भन्ते ! क्या सभी नारक समान क्रिया वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी नारक समान क्रिया वाले नहीं हैं ?"

उ. गौतम ! नारक तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सम्यग्दृष्टि, २. मिथ्यादृष्टि,
३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि।
१. उनमें से जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे चार क्रियाएं करते हैं, यथा–
१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी,
३. मायाप्रत्यया, ४. अप्रत्याख्यानक्रिया।
२. उनमें से जो मिथ्यादृष्टि हैं, वे नियमतः पांच क्रियाएँ करते हैं– यथा–
१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी,
३. मायाप्रत्यया, ४. अप्रत्याख्यानक्रिया,
५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

३. **सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी इसी प्रकार पांच क्रियाएं करते हैं।**
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी नारक समान क्रिया वाले नहीं हैं।"

(७) आयु द्वार–

प्र. भन्ते ! क्या सभी नारक समान आयु वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी नारक समान आयु वाले नहीं हैं ?"

उ. गौतम ! नैरयिक चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कई नारक समान आयु वाले हैं और एक साथ उत्पन्न होने वाले हैं,
२. कई नारक समान आयु वाले हैं किन्तु पहले पीछे उत्पन्न हुए हैं,
३. कई नारक विषम आयु वाले हैं किन्तु एक साथ उत्पन्न हुए हैं,

---

१. विया. स. १, उ. २, सु. ५/५

२. विया. स. १, उ. २, सु. ५/६

४. अत्थेगइया विसमाउया विसमोववण्णगा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"णेरइया णो सव्वे समाउया।"[1]

प. दं. २. असुरकुमारा णं भंते ! सव्वे समाहारा? सव्वे समसरीरा? सव्वे समुस्सासणिस्सासा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।
जहा णेरइया तहा भाणियव्वा।

प. असुरकुमारा णं भंते ! सव्वे समकम्मा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"असुरकुमारा णो सव्वे समकम्मा?"

उ. गोयमा ! असुरकुमारा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुव्वोववण्णगा य २. पच्छोववण्णगा य।
१. तत्थ णं जे ते पुव्वोववण्णगा ते णं महाकम्मतरागा।
२. तत्थ णं जे ते पच्छोववण्णगा ते णं अप्पकम्मतरागा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"असुरकुमारा णो सव्वे समकम्मा।"

प. असुरकुमारा णं भंते ! सव्वे समवण्णा?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"असुरकुमारा णो सव्वे समवण्णा?"

उ. गोयमा ! असुरकुमारा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुव्वोववण्णगा य २. पच्छोववण्णगा य।
१. तत्थ णं जे ते पुव्वोववण्णगा ते णं अविसुद्धवण्णतरागा,
२. तत्थ णं जे ते पच्छोववण्णगा ते णं विसुद्धवण्णतरागा,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"असुरकुमारा णो सव्वे समवण्णा"
एवं लेस्साए वि।
वेयणाए जहा णेरइया।
अवसेसं जहा णेरइयाणं।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमारा।[2]

दं. १२. पुढविक्काइया आहार कम्म-वण्ण लेस्साहिं जहा णेरइया।

प. पुढविक्काइया णं भंते ! सव्वे समवेयणा?

४. कई नारक विषम आयु वाले हैं और पहले पीछे उत्पन्न हुए हैं,

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी नारक समान आयु वाले नहीं हैं।"

प्र. दं. २. भन्ते ! सभी असुरकुमार क्या समान आहार वाले हैं? सभी समान शरीर वाले हैं? सभी समान उच्छ्वास निःश्वास वाले हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
शेष सब वर्णन नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या सभी असुरकुमार समान कर्म वाले हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी असुरकुमार समान कर्म वाले नहीं हैं?"

उ. गौतम ! असुरकुमार दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पूर्वोपपन्नक २. पश्चादुपपन्नक
१. उनमें से जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे महाकर्म वाले हैं।
२. उनमें से जो पश्चादुपपन्नक हैं, वे अल्पतरकर्म वाले हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी असुरकुमार समान कर्म वाले नहीं हैं।"

प्र. भंते ! असुरकुमार क्या सभी समान वर्ण वाले हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी असुरकुमार समान वर्ण वाले नहीं हैं?"

उ. गौतम ! असुरकुमार दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पूर्वोपपन्नक २. पश्चादुपपन्नक
१. उनमें से जो पूर्वोपपन्नक हैं वे अविशुद्धतर वर्ण वाले हैं।
२. उनमें से जो पश्चादुपपन्नक हैं, वे विशुद्धतर वर्ण वाले हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी असुरकुमार समान वर्ण वाले नहीं हैं।"
इसी प्रकार लेश्या के विषय में भी कहना चाहिए।
वेदना का कथन नैरयिकों के समान करना चाहिए।
शेष द्वारों (क्रिया और आयु) का कथन नैरयिकों के समान करना चाहिए।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त (समाहारादि सात द्वार) समझना चाहिए।

दं. १२. पृथ्वीकायिकों के आहार, कर्म, वर्ण, और लेश्या का कथन नैरयिकों के समान करना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या सभी पृथ्वीकायिक समान वेदना वाले हैं?

---

१. विया. स. १, उ. २, सु. ५/७
२. (क) विया. स. १, उ. २, सु. ६
(ख) विया. स. १६, उ. ११, सु. १
(ग) विया. स. १६, उ. १२-१४
(घ) विया. स. १७, उ. १३-१७।

उ. हंता, गोयमा ! सव्वे समवेयणा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"पुढविक्काइया सव्वे समवेयणा ?"

उ. गोयमा ! पुढविक्काइया सव्वे असण्णी असण्णीभूयं अणिययं वेयणं वेदेंति।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"पुढविक्काइया सव्वे समवेयणा।

प. पुढविक्काइया णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?

उ. हंता, गोयमा ! पुढविक्काइया सव्वे समकिरिया।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"पुढविक्काइया सव्वे समकिरिया ?"

उ. गोयमा ! पुढविक्काइया सव्वे माइमिच्छादिट्ठी तेसिं णेयइयाओ पंच किरियाओ कज्जंति, तं जहा–
१. आरंभिया, २. परिग्गहिया,
३. मायावत्तिया, ४. अपच्चक्खाणकिरिया,
५. मिच्छादंसणवत्तिया।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"पुढविक्काइया सव्वे समकिरिया।"
(समाउया जहा नेरइया तहा भाणियव्वा।[1])

दं. १३-१९. जहा पुढविक्काइया तहा जाव चउरिंदिया।[2]

दं. २०. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा णेरइया।

णवरं–नाणत्तं किरियासु।

प. पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया णं भंते ! सव्वे समकिरिया ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया नो सव्वे समकिरिया ?"

उ. गोयमा ! पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सम्मद्दिट्ठी, २. मिच्छादिट्ठी
३. सम्मामिच्छादिट्ठी।
१. तत्थ णं जे ते सम्मद्दिट्ठी ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. असंजया य २. संजयासंजया य।
१. तत्थ णं जे ते संजयासंजया तेसि णं तिण्णि किरियाओ कज्जंति, तं जहा–
१. आरंभिया २. परिग्गहिया ३. मायावत्तिया।

उ. हाँ गौतम ! सभी समान वेदना वाले हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी पृथ्वीकायिक समान वेदना वाले हैं ?"

उ. गौतम ! सभी पृथ्वीकायिक असंज्ञी हैं, वे असंज्ञीभूत होने से अनियत वेदना वेदते हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी पृथ्वीकायिक समान वेदना वाले हैं।"

प्र. भंते ! क्या सभी पृथ्वीकायिक समान क्रिया वाले हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! सभी पृथ्वीकायिक समान क्रिया वाले हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी पृथ्वीकायिक समान क्रिया वाले हैं ?"

उ. गौतम ! सभी पृथ्वीकायिक मायी-मिथ्यादृष्टि होते हैं, वे निश्चित रूप से पांचों क्रियाएं करते हैं। यथा–
१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी,
३. मायाप्रत्यया, ४. अप्रत्याख्यान क्रिया
५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"सभी पृथ्वीकायिक समान क्रिया वाले हैं।"
(सभी समान आयु वाले हैं, का कथन नैरयिकों के समान करना चाहिए।)

दं. १३-१९. पृथ्वीकायिकों के समान अप्कायिकों से लेकर चतुरिन्द्रियों पर्यन्त (आहारादि द्वार) कहने चाहिए।

दं. २०. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों (आहारादि द्वारों) का कथन नैरयिक जीवों के समान है।

विशेष–क्रियाओं में अंतर है।

प्र. भंते ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक क्या सभी समान क्रिया वाले हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक सभी समान क्रिया वाले नहीं है ?"

उ. गौतम ! पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सम्यग्दृष्टि २. मिथ्यादृष्टि
३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि
१. उनमें से जो सम्यग्दृष्टि हैं वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. असंयत २. संयतासंयत
१. उनमें से जो संयतासंयत हैं, वे तीन क्रियाएं करते हैं यथा–
१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी, ३. मायाप्रत्यया,

---

१. (क) वियां. स. १, उ. २, सु. ७
(ख) विया. स. १७, उ. १२, सु. १

२. विया. स. १, उ. २, सु. ८

२. तत्थ णं जे ते असंजया तेसि णं चत्तारि किरियाओ कज्जंति, तं जहा–

१. आरंभिया, २. परिग्गहिया,

३. मायावत्तिया, ४. अपच्चक्खाणकिरिया।

३. तत्थ णं जे ते मिच्छादिट्ठी जे य सम्मामिच्छादिट्ठी तेसिं णेयइयाओ पंच किरियाओ कज्जंति, तं जहा–

१. आरंभिया जाव २. मिच्छादंसणवत्तिया।

सेसं तं चेव।[1]

प. दं. २१. मणूसाणं भंते ! सव्वे समाहारा? सव्वे समसरीरा? सव्वे समुस्सास णिस्सासा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'मणूसाणं णो सव्वे समाहारा, णो सव्वे समसरीरा, णो सव्वे समुस्सास णिस्सासा?

उ. गोयमा ! मणूसा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. महासरीरा य २. अप्पसरीरा य।

१. तत्थ णं जे ते महासरीरा ते णं बहुतराए पोग्गले आहारेंति जाव बहुतराए पोग्गले णीससंति,

आहच्च आहारेंति जाव आहच्च णीससंति।

२. तत्थ णं जे ते अप्पसरीरा ते णं अप्पतराए पोग्गले आहारेंति जाव अप्पतराए पोग्गले णीससंति,

अभिक्खणं आहारेंति जाव अभिक्खणं णीससंति,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"मणूसा णो सव्वे समाहारा, णो सव्वे समसरीरा, णो सव्वे समुस्सासणिस्सासा।"

सेसं जहा णेरइयाणं।

णवरं–किरियाहिं मणूसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मद्दिट्ठी, २. मिच्छादिट्ठी,

३. सम्मामिच्छादिट्ठी।

१. तत्थ णं जे ते सम्मद्दिट्ठी ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. संजया २. असंजया ३. संजयासंजया।

१. तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सरागसंजया य २. वीयरागसंजया य।

१. तत्थ णं जे ते वीयरागसंजया, ते णं अकिरिया।

२. उनमें से जो असंयत हैं वे चार क्रियाएं करते हैं, यथा–

१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी,

३. मायाप्रत्यया, ४. अप्रत्याख्यानक्रिया।

३. उनमें से जो मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं वे निश्चित रूप से पांच क्रियाएं करते हैं, यथा–

१. आरम्भिकी यावत् ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

शेष–सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

प्र. दं. २१. भंते ! क्या मनुष्य सभी समान आहार वाले हैं? सभी समान शरीर वाले हैं? सभी समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी मनुष्य समान आहार वाले नहीं हैं? सभी समान शरीर वाले नहीं हैं? सभी समान उच्छ्वास निःस्वास वाले नहीं है?"

उ. गौतम ! मनुष्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. महाशरीर वाले २. अल्प शरीर वाले।

१. उनमें से जो महाशरीर वाले हैं, वे बहुत से पुद्गलों का आहार करते हैं यावत् बहुत से पुद्गलों का निःश्वास छोड़ते हैं।

कदाचित् आहार करते हैं यावत् कदाचित् नि-श्वास छोड़ते हैं।

२. उनमें से जो अल्पशरीर वाले हैं वे अल्पतर पुद्गलों का आहार करते हैं यावत् अल्पतर पुदगलों का निःश्वास छोड़ते हैं।

वार-वार आहार लेते हैं यावत् वार-वार निःश्वास छोड़ते हैं,

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जता है कि–

"सभी मनुष्य समान आहार वाले नहीं हैं, सभी समान शरीर वाले नहीं हैं और सभी समान उच्छ्वास निःश्वास वाले नहीं हैं।"

शेष सब वर्णन (छः द्वार) नैरयिकों के समान कहने चाहिए।

विशेष–क्रियाओं में मनुष्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सम्यग्दृष्टि, २. मिथ्यादृष्टि

३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि।

१. इनमें से जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. संयत २. असंयत ३. संयतासंयत

१. इनमें से जो संयत हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सरागसंयत २. वीतरागसंयत।

१. इनमें से जो वीतरागसंयत हैं वे अक्रिय (क्रियारहित) होते हैं,

---

१. विया. स. १, उ. २, सु. ९

२. तत्थ णं जे ते सरागसंजया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पमत्तसंजया य, २. अपमत्तसंजया य,

१. तत्थ णं जे ते अपमत्तसंजया तेसिं एगा मायावत्तिया किरिया कज्जंति,

२. तत्थ णं जे ते पमत्तसंजया तेसिं दो किरियाओ कज्जंति, तं जहा–

१. आरंभिया २. मायावत्तिया य।

२. तत्थ णं जे ते संजयासंजया तेसिं तिण्णि किरियाओ कज्जंति, तं जहा–

१. आरंभिया, २. परिग्गहिया, ३. मायावत्तिया।

३. तत्थ णं जे ते असंजया तेसिं चत्तारि किरियाओ कज्जंति, तं जहा–

१. आरंभिया, २. परिग्गहिया,
३. मायावत्तिया, ४. अपच्चक्खाणकिरिया।

तत्थ णं जे ते मिच्छादिट्ठी जे य सम्मामिच्छादिट्ठी तेसिं णेयइयाओ पंचकिरियाओ कज्जंति, तं जहा–

१. आरंभिया **जाव** ५. मिच्छादंसणवत्तिया।

सेसं जहा णेरइयाणं।[1]

दं. २२. वाणमंतराणं जहा असुरकुमाराणं।[2]

दं. २३-२४. एवं जोइसिय वेमाणियाण वि।

णवरं–ते वेयणाए दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. माइमिच्छादिट्ठी उववण्णगा य
२. अमाइसम्मद्दिट्ठी उववण्णगा य।

१. तत्थ णं जे ते माइमिच्छादिट्ठी उववण्णग्गा ते णं अप्पवेयणतरागा।

२. तत्थ णं जे ते अमाइसम्मद्दिट्ठी उववण्णगा ते णं महावेयणतरागा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'जोइसिय वेमाणिया णो सव्वे समवेयणा।'

सेसं तहेव।[3]

–पण्ण. प. १७, उ. १, सु. ११२३-११४४

२. इनमें से जो सरागसंयत हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. प्रमत्तसंयत २. अप्रमत्तसंयत।

१. इनमें से जो अप्रमत्तसंयत हैं वे एक मात्र मायाप्रत्यया क्रिया करते हैं।

२. इनमें से जो प्रमत्तसंयत हैं, वे दो क्रियाएं करते हैं, यथा–

१. आरम्भिकी २. मायाप्रत्यया।

२. इनमें से जो संयतासंयत हैं, वे तीन क्रियाएं करते हैं, यथा–

१. आरम्भिकी, २. पारिग्राहिकी ३. मायाप्रत्यया।

३. इनमें से जो असंयत हैं वे चार क्रियाएं करते हैं, यथा–

१. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी,
३. मायाप्रत्यया, ४. अप्रत्याख्यानक्रिया।

इनमें से जो मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं वे निश्चितरूप से पांचों क्रियाएं करते हैं, यथा–

१. आरम्भिकी **यावत्** ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

शेष कथन नैरयिकों के समान करना चाहिए।

दं. २२ वाणव्यन्तरों (के आहारादि ७ द्वारों) का कथन नैरयिकों के समान करना चाहिए।

दं. २३-२४ इसी प्रकार ज्योतिष्क और वैमानिक देवों का कथन करना चाहिए।

विशेष–वेदना की अपेक्षा से वे देव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. मायीमिथ्यादृष्टि उपपन्नक,
२. अमायी-सम्यग्दृष्टिउपपन्नक।

१. उनमें से जो मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक हैं, वे अल्पतर वेदना वाले हैं।

२. उनमें से जो अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक हैं, वे महावेदना वाले हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"सभी ज्योतिष्क और वैमानिक समान वेदना वाले नहीं हैं।

शेष (आहार वर्ण, कर्म आदि सब पूर्ववत् कहना चाहिए।)

९९. चउवीस दंडएसु आहार-परिणामाइ परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किमाहारा, किंपरिणामा, किंजोणीया, किंठिईया पण्णत्ता ?

९९. चौबीस दंडकों में आहार-परिणामादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक जीव किन द्रव्यों का आहार करते हैं? किस तरह परिणमाते हैं? उनकी योनि (उत्पत्तिस्थान) क्या है? उनकी स्थिति का क्या कारण है?

१. विया. स. १, उ. २ सु. १०
२. विया. स. १, उ. २ सु. ११
३. विया. स. १९, उ. १०, सु. १

उ. गोयमा ! नेरइया णं पोग्गलाहारा, पोग्गलपरिणामा, पोग्गलजोणीया, पोग्गलट्ठिईया, कम्मोवगा।

कम्मनियाणा कम्मट्ठिईया, कम्मुणामेव विप्परियासमेंति।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

–विया. स. १४, उ. ६, सु. २-३

उ. गौतम ! नैरयिक जीव पुद्गलों का आहार करते हैं, पुद्गल रूप में परिणमाते हैं। उनकी योनि (शीतादि स्पर्शमय) पुद्गल रूप है। उनकी स्थिति पुद्गल रूप है वे (ज्ञानावरणीयादि) कर्मरूपी पुद्गलों से युक्त हैं।

उनके नारकत्व आदि की प्राप्ति पौद्गलिक कर्म निमित्तक है, उनकी स्थिति के कारण कर्मपुद्गल हैं। कर्म पुद्गलों के कारण ही वे विपर्यास (अन्य पर्याय) को प्राप्त होते हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

१००. चउवीस दंडएसु ठिइट्ठाणाइ दसदारेहिं कोहोवउत्ताइ भंग परूवणं–

गाहा–१. पुढविट्ठिइ २. ओगाहण ३. सरीर ४. संघयणमेव ५. संठाणे।

६. लेसा ७. दिट्ठी ८. णाणे ९-१०. जोगुवओगे य दस ठाणा॥

(१) ठिइट्ठाण दारं–

प. दं. १. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइयाणं केवइया ठिइठाणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा ठिइठाणा पण्णत्ता, तं जहा–
जहण्णिया ठिई,
समयाहिया जहण्णिया ठिई,
दुसमयाहिया जहण्णिया ठिई,
तिसमयाहिया जहिण्णिया ठिई जाव असंखेज्ज-समयाहिया जहण्णिया ठिई, तप्पाउग्गुक्कोसिया ठिई।

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि जहन्नियाए ठिईए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता, माणोवउत्ता, मायोवउत्ता, लोभोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! सव्वे वि ताव होज्जा कोहोवउत्ता।

१. अहवा कोहोवउत्ता य माणोवउत्ते य।

२. अहवा कोहोवउत्ता य माणोवउत्ता य।

३. अहवा कोहोवउत्ता य मायोवउत्ते य।

४. अहवा कोहोवउत्ता य मायोवउत्ता य।

५. अहवा कोहोवउत्ता य लोभोवउत्ते य।

६. अहवा कोहोवउत्ता य लोभोवउत्ता य।

१००. चौबीस दंडकों में स्थिति स्थानादि दस द्वारों में क्रोधोपयुक्तादि भंगों का प्ररूपण–

गाथार्थ– १. स्थिति २. अवगाहना ३. शरीर ४. संहनन ५. संस्थान ६. लेश्या ७. दृष्टि ८. ज्ञान ९. योग १०. उपयोग इन दस स्थानों (द्वारों) द्वारा नरकादि पृथ्वीवर्ती जीवों का वर्णन करते हैं–

(१) स्थिति स्थान द्वार–

प्र. दं. १. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से एक-एक नारकवास में रहने वाले नारक जीवों के कितने स्थिति स्थान कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! उनके असंख्यात स्थिति स्थान कहे गए हैं, यथा–
जघन्य स्थिति (दस हजार वर्ष की है)
एक समय अधिक जघन्य स्थिति,
दो समय अधिक जघन्य स्थिति।
तीन समय अधिक जघन्य स्थिति यावत् असंख्यात समय अधिक जघन्य स्थिति तथा उसके योग्य उत्कृष्ट स्थिति ये सब मिलकर असंख्यात स्थिति स्थान हैं।

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से एक-एक नारकावास में जघन्य स्थिति में वर्तमान नारक क्या क्रोधोपयुक्त हैं, मानोपयुक्त हैं, मायोपयुक्त हैं या लोभोपयुक्त हैं ?

उ. गौतम ! वे सभी क्रोधोपयुक्त होते हैं।

१. अथवा बहुत से नारक क्रोधोपयुक्त होते हैं और एक नारक मानोपयुक्त होता है।

२. अथवा बहुत से क्रोधोपयुक्त भी होते हैं और बहुत मानोपयुक्त भी होते हैं।

३. अथवा बहुत से क्रोधोपयुक्त होते हैं और एक मायोपयुक्त होता हैं।

४. अथवा बहुत से क्रोधोपयुक्त और बहुत से मायोपयुक्त होते हैं।

५. अथवा बहुत से क्रोधोपयुक्त होते हैं और एक लोभोपयुक्त होता है।

६. अथवा बहुत से क्रोधोपयुक्त और बहुत से लोभोपयुक्त होते हैं (ये द्विक संयोगी भंग हैं)

१. अहवा कोहोवउत्ता य माणोवउत्ते य मायोवउत्ते य।

२. कोहोवउत्ता य माणोवउत्ते य मायोवउत्ता य।

३. कोहोवउत्ता य माणोवउत्ता य मायोवउत्ते य।

४. कोहोवउत्ता य माणोवउत्ता य मायोवउत्ता य।

५-८. एवं कोह-माण-लोभेण वि चउ।

९-१२. एवं कोह-माया-लोभेण-वि चउ १ = (१२)

पच्छा माणेण मायाए लोभेण य कोहो भइयव्वो, ते कोहं अमुंचता।

एवं सत्तावीसं भंगा णेयव्वा।

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि समयाहियाए जहन्नट्ठिइए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता, माणोवउत्ता, मायोवउत्ता, लोभोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! कोहोवउत्ते य, माणोवउत्ते य, मायोवउत्ते, य, लोभोवउत्ते य,

कोहोवउत्ता य, माणोवउत्ता य, मायोवउत्ता य, लोभोवउत्ता य।

अहवा कोहोवउत्ते य माणोवउत्ते य,

अहवा कोहोवउत्ते य माणोउत्ता य,

एवं असीति भंगा नेयव्वा,

एवं जाव संखिज्ज समयाहिया ठिई।

असंखेज्जसमयाहियाए ठिईए तप्पाउग्गुक्कोसियाए ठिईए सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा।

(२) ओगाहणठाणा दारं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइयाणं केवइया ओगाहणठाणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा ओगाहणठाणा पण्णत्ता, तं जहा–

जहण्णिया ओगाहणा,

पएसाहिया जहन्निया ओगाहणा,

१. अथवा बहुत से क्रोधोपयुक्त होते हैं एक मानोपयुक्त और एक मायोपयुक्त होता है।

२. अथवा बहुत से क्रोधोपयुक्त होते हैं एक मानोपयुक्त होता है और बहुत से मायोपयुक्त होते हैं।

३. अथवा बहुत से क्रोधोपयुक्त और बहुत से मानोपयुक्त होते हैं और एक मायोपयुक्त होता है।

४. अथवा बहुत से क्रोधोपयुक्त, बहुत से मानोपयुक्त और बहुत से मायोपयुक्त होते हैं।

५-८. इसी प्रकार क्रोध, मान और लोभ के (त्रिकसंयोगी) चार भंग कहने चाहिए।

९-१२. इसी प्रकार क्रोध, माया और लोभ के (त्रिकसंयोगी) चार भंग कहने चाहिए।

इस प्रकार कुल १२ भंग होते हैं। (ये त्रिक संयोगी भंग हैं) तत्पश्चात् मान, माया और लोभ के साथ क्रोध को नहीं छोड़ते हुए (एक वचन, बहुवचन के साथ चतुष्कसंयोगी) ८ भंग होते हैं।

इस प्रकार कुल २७ भंग समझ लेने चाहिए।

प्र. भंते ! रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से एक-एक नारकावास में एक समय अधिक जघन्य स्थिति में प्रवर्तमान नारक क्या क्रोधोपयुक्त होते हैं, मानोपयुक्त होते हैं, मायोपयुक्त होते हैं या लोभोपयुक्त होते हैं ?

उ. गौतम ! उनमें से कोई क्रोधोपयुक्त, कोई मानोपयुक्त, कोई मायोपयुक्त और कोई लोभोपयुक्त होता है।

अथवा बहुत से क्रोधोपयुक्त, बहुत से मानोपयुक्त, बहुत से मायोपयुक्त और बहुत से लोभोपयुक्त होते हैं।

अथवा कोई एक क्रोधोपयुक्त और मानोपयुक्त होता है।

अथवा कोई एक क्रोधोपयुक्त होता है और बहुत से मानोपयुक्त होते हैं।

इस प्रकार, (असंयोगी ८ भंग द्विसंयोगी २४ भंग, त्रिक संयोगी ३२ भंग, चतुष्क संयोगी १६ भंग के) कुल अस्सी भंग समझने चाहिए।

इसी प्रकार दो समयाधिक जघन्य स्थिति से संख्यात समयाधिक जघन्य स्थिति पर्यन्त भी अस्सी भंग समझने चाहिए।

असंख्यात समयाधिक जघन्य स्थिति वालों से लेकर उनके योग्य उत्कृष्ट स्थिति वाले नारकों पर्यन्त सत्ताईस भंग कहने चाहिए।

(२) अवगाहन स्थान द्वार–

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से एक-एक नारकावास में रहने वाले नारकों के कितने अवगाहना स्थान कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके अवगाहना स्थान असंख्यात कहे गए हैं, यथा–

१. जघन्य अवगाहना (अंगुल के असंख्यातवें भाग)

एक प्रदेशाधिक जघन्य अवगाहना,

दुप्पएसाहिया जहन्निया ओगाहणा जाव
असंखेज्जपएसाहिया जहन्निया ओगाहणा,
तप्पाउग्गुक्कोसिया ओगाहणा।

द्विप्रदेशाधिक जघन्य अवगाहना यावत्
असंख्यात प्रदेशाधिक जघन्य अवगाहना,
तथा उनके योग्य उत्कृष्ट अवगाहना।
(इस प्रकार असंख्यात अवगाहना स्थान होते हैं।)

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि जहन्नियाए ओगाहणाए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता जाव लोभोवउत्ता?

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से एक-एक नारकावास में जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त हैं यावत् लोभोपयुक्त हैं?

उ. गोयमा ! **असीति भंगा भाणियव्वा जाव-संखेज्जपएसाहिया जहन्निया ओगाहणा,**
असंखेज्जपएसाहियाए जहन्नियाए ओगाहणाए वट्टमाणाणं तप्पाउग्गुक्कोसियाए ओगाहणाए वट्टमाणाणं नेरइयाणं दोसु वि सत्तावीसं भंगा।

उ. गौतम ! **जघन्य अवगाहना से संख्यात प्रदेशाधिक जघन्य अवगाहना पर्यन्त नैरयिकों में अस्सी भंग कहने चाहिए।**
असंख्यातप्रदेशाधिक जघन्य अवगाहना में विद्यमान से लेकर योग्य उत्कृष्ट अवगाहना में विद्यमान नारकों तक सत्ताईस भंग कहने चाहिए।

(३) सरीरदारं–

(३) शरीर द्वार–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइयाणं कइ सरीरगा पण्णत्ता?

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से एक-एक नारकावास में रहने वाले नारकों के कितने शरीर कहे गए हैं?

उ. गोयमा ! तिण्णि सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. वेउव्विए, २. तेयए ३. कम्मए।

उ. गौतम ! उनके तीन शरीर कहे गए हैं, यथा–
१. वैक्रिय २. तैजस् ३. कार्मण।

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि वेउव्वियसरीरे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता जाव लोभोवउत्ता?

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से प्रत्येक नारकावास में रहने वाले वैक्रियशरीरी नारक क्या क्रोधोपयुक्त हैं यावत् लाभोपयुक्त हैं?

उ. गोयमा ! **सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा।**
एएणं गमेणं तिण्णि सरीरा भाणियव्वा।

उ. गौतम ! **उनके (क्रोधोपयुक्त आदि) २७ भंग कहने चाहिए।**
इस प्रकार तैजस् और कार्मण सहित तीनों शरीरों के सम्बन्ध में यह आलापक कहना चाहिए।

(४) संघयण दारं–

(४) संहनन द्वार–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि नेरइयाणं सरीरगा किं संघयणा पण्णत्ता?

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से प्रत्येक नारकावास में रहने वाले नैरयिकों के शरीरों का कौन-सा संहनन कहा गया है?

उ. गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी,
नेवऽट्ठी, नेव छिरा, नेव ण्हारूणि,
जे पोग्गला अणिट्ठा अकंता अप्पिया असुभा अमणुण्णा अमणामा ते तेसिं सरीरसंघायत्ताए परिणमंति।

उ. गौतम ! छह संहननों में से कोई भी संहनन न होने से संहनन रहित है।
क्योंकि उनके शरीर में हड्डी, शिरा (नस) और स्नायु नहीं होती।
जो पुद्गल अनिष्ट, अकान्त अप्रिय अशुभ अमनोज्ञ और अमनोहर हैं, वे पुद्गल उनके शरीर संघातरूप में परिणत होते हैं।

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि छण्हं संघयणाणं असंघयणे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता जाव लोभोवउत्ता?

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से प्रत्येक नारकावास में रहने वाले और छह संहननों में से जिनके एक भी संहनन नहीं है वे नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त हैं यावत् लोभोपयुक्त हैं?

उ. गोयमा ! सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा।

उ. गौतम ! इनके सत्ताईस भंग कहने चाहिए।

(५) संठाण दारं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाणं सरीरगा किंसंठिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. भवधारणिज्जा य २. उत्तरवेउव्विया य।

१. तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया पण्णत्ता।

२. तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते वि हुंडसंठिया पण्णत्ता।

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए जाव हुंडसंठाणे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता जाव लोभोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा।

(६) लेसा दारं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाणं कइ लेसाओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! एक्का काउलेसा पण्णत्ता।

प. इमीसे णं भंते ! रणप्पभाए पुढवीए जाव काउलेस्साए वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता जाव लोभोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा।

(७) दिट्ठि दारं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया किं सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी ?

उ. गोयमा ! तिण्णि वि।

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए सम्मद्दंसणे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता जाव लोभोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा।

एवं मिच्छद्दंसणे वि।

सम्मामिच्छद्दंसणे असीति भंगा।

(८) नाण दारं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया किं णाणी अण्णाणी ?

उ. गोयमा ! णाणी वि, अण्णाणी वि।

तिण्णि नाणा वि नियमा

तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पहाए पुढवीए जाव आभिणिवोहियणाणे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता जाव लोभोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा।

एवं तिण्णि णाणाइं तिण्णि य अण्णाणाइं भाणियव्वाइं।

(५) संस्थान द्वार–

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नारकावासों में से प्रत्येक नारकावास में रहने वाले नैरयिकों के शरीर किस संस्थान वाले कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनका संस्थान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. भवधारणीय २. उत्तरवैक्रिय।

१. उनमें से जो भवधारणीय शरीर वाले हैं, वे हुण्डक संस्थान वाले कहे गए हैं,

२. उनमें से उत्तरवैक्रिय शरीर वाले हैं, वे भी हुण्डक संस्थान वाले कहे गए हैं।

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी में यावत् हुण्डक संस्थान में प्रवर्त्तमान नारक क्या क्रोधोपयुक्त हैं यावत् लोभोपयुक्त हैं ?

उ. गौतम ! इनके भी क्रोधोपयुक्त आदि २७ भंग कहने चाहिए।

(६) लेश्या द्वार–

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में रहने वाले नैरयिकों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! उनमें केवल एक कापोतलेश्या कही गई है।

प्र. भंते ! इन रत्नप्रभा पृथ्वी में यावत् कापोतलेश्या में प्रवर्त्तमान नारक क्या क्रोधोपयुक्त हैं यावत् लोभोपयुक्त हैं ?

उ. गौतम ! इनके भी सत्ताईस भंग कहने चाहिए।

(७) दृष्टि द्वार–

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी में रहने वाले नारक जीव क्या सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि हैं, या सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं ?

उ. गौतम ! वे तीनों दृष्टि वाले हैं।

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में रहने वाले सम्यग्दृष्टिनारक क्या क्रोधोपयुक्त हैं यावत् लोभोपयुक्त हैं ?

उ. गौतम ! इनके क्रोधोपयुक्त आदि सत्ताईस भंग कहने चाहिए।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि के भी २७ भंग कहने चाहिए।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि के अस्सी भंग होते हैं।

(८) ज्ञान द्वार–

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी में रहने वाले नारक जीव क्या ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।

जो ज्ञानी हैं उनमें नियमतः तीन ज्ञान होते हैं,

जो अज्ञानी हैं, उनमें तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते हैं।

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में यावत् आभिनिवोधिकज्ञान में प्रवर्त्तमान नारक क्या क्रोधोपयुक्त हैं यावत् लोभोपयुक्त हैं ?

उ. गौतम ! क्रोधोपयुक्त आदि २७ भंग कहने चाहिए।

इस प्रकार तीनों ज्ञान और तीनों अज्ञान वालों में २७-२७ भंग कहने चाहिए।

(९) जोगदारं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया किं मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी ?

उ. गोयमा ! तिण्णि वि।

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए जाव मणजोए वट्टमाणा किं कोहोवउत्ता जाव लोभोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा।

एवं वइजोए, एवं कायजोए।

(९) योग द्वार–

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में रहने वाले नारक जीव मनोयोगी हैं, वचनयोगी हैं या काययोगी हैं ?

उ. गौतम ! वे तीनों योगों वाले हैं।

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में यावत् मनोयोग में प्रवर्त्तमान नारक जीव क्या क्रोधोपयुक्त हैं यावत् लोभोपयुक्त हैं ?

उ. गौतम ! क्रोधोपयुक्त आदि २७ भंग कहने चाहिए।

इस प्रकार वचनयोगी और काययोगी के भी २७ भंग कहने चाहिए।

(१०) उवओगदारं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि।

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए जाव सागारोवओगे वट्टमाणा नेरइया किं कोहोवउत्ता जाव लोभोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! सत्तावीसं भंगा भाणियव्वा।

एवं अणागारोवउत्ते वि सत्तावीसं भंगा।

एवं सत्त पुढवीओ णेयव्वाओ।

णवरं–णाणत्तं लेसासु-गाहा–

काऊ य दोसु, तइयाए मीसिया, नीलिया चउत्थीए।
पंचमीयाए मीसा कण्हा तत्तो परम कण्हा ॥१ ॥

(१०) उपयोग द्वार–

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नारक जीव क्या साकारोपयोग से युक्त हैं या अनाकारोपयोग से युक्त हैं ?

उ. गौतम ! वे साकारोपयोग से भी युक्त हैं और अनाकारोपयोग से भी युक्त हैं।

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में यावत् साकारोपयोग में प्रवर्त्तमान नारक क्या क्रोधोपयुक्त हैं यावत् लोभोपयुक्त हैं ?

उ. गौतम ! क्रोधोपयुक्त आदि २७ भंग कहने चाहिए।

इस प्रकार अनाकारोपयोग से युक्त में भी सत्ताईस भंग कहने चाहिए।

इसी प्रकार सातों नरक पृथ्वियों के लिए जानना चाहिए।

विशेष–लेश्याओं में अंतर है–गाथार्थ

पहली और दूसरी नरक पृथ्वी में कापोतलेश्या है, तीसरी नरक पृथ्वी में मिश्र (कापोत और नील) है, चौथी में नील लेश्या है पांचवीं में मिश्र (नील और कृष्ण) हैं छट्ठी में कृष्ण लेश्या है और सातवीं में परम कृष्ण लेश्या होती है।

प. दं. २-११. चउसट्ठीए णं भंते! असुरकुमारा-वाससयसहस्सेसु एगमेगंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमाराणं केवइया ठिइठाणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा ठिइठाणा पण्णत्ता, तं जहा–

जहन्निया ठिई जहा नेरइया तहा,

णवरं–पडिलोमा भंगा भाणियव्वा, तं जहा–

१. सव्वे वि ताव होज्जा लोभोवउत्ता,

२. अहवा लोभोवउत्ता य मायोवउत्ते य,

३. अहवा लोभोवउत्ता य मायोवउत्ता य,

एएणं गमेणं नेयव्वं जाव थणियकुमारा,

णवरं–णाणत्तं भाणियव्वं।

प्र. दं.२-११. भंते ! चौंसठ लाख असुरकुमारावासों में से प्रत्येक असुरकुमारावास में रहने वाले असुरकुमारों के कितने स्थिति स्थान कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके असंख्यात स्थिति स्थान कहे गये हैं, यथा–

जघन्य स्थिति स्थान एक समय अधिक जघन्य स्थिति स्थान आदि सब वर्णन नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

विशेष–इनमें सत्ताईस भंग प्रतिलोम (उल्टे) समझने चाहिए, यथा–

१. सभी असुरकुमार लोभोपयुक्त होते हैं,

२. अथवा बहुत से लोभोपयुक्त होते हैं और एक मायोपयुक्त होता है,

३. अथवा बहुत से लोभोपयुक्त और बहुत से मायोपयुक्त होते हैं।

इसी आलापक के अनुसार स्तनितकुमारों पर्यन्त (क्रोधोपयुक्तादि भंग) जानने चाहिए।

विशेष–(लेश्या आदि में) जो-जो भिन्नता है वह जाननी चाहिए।

प. दं.१३-१६. असंखेज्जेसु णं भंते ! पुढविकाइया-वाससयसहस्सेसु एगमेगंसि पुढविकाइयावासंसि पुढविकाइयाणं केवइया ठिइठाणा पण्णत्ता ?

प्र. दं. १३-१६. भंते ! पृथ्वीकायिक जीवों के असंख्यात लाख आवासों में से एक-एक आवास में रहने वाले पृथ्वीकायिकों के कितने स्थिति स्थान कहे गये हैं ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा ठिइठाणा पण्णत्ता, तं जहा– जहन्निया ठिई जाव तप्पाउग्गुक्कोसिया ठिई।

उ. गौतम ! उनके असंख्यात स्थिति स्थान कहे गये हैं, यथा– जघन्य स्थिति से लेकर उनके योग्य उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त असंख्यात स्थिति स्थान होते हैं।

प. असंखेज्जेसु णं भंते ! पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि पुढविकाइयावाससंसि जहन्नठिईए वट्टमाणा पुढविकाइया किं कोहोवउत्ता जाव लोभोवउत्ता ?

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक जीवों के असंख्यात लाख आवासों में से एक-एक आवास में रहने वाले और जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक क्या क्रोधोपयुक्त हैं यावत् लोभोपयुक्त हैं?

उ. गोयमा ! कोहोवउत्ता वि, माणोवउत्ता वि, मायोवउत्ता वि, लोभोवउत्ता वि।

उ. गौतम ! क्रोधोपयुक्त भी हैं, मानोपयुक्त भी हैं, मायोपयुक्त भी हैं और लोभोपयुक्त भी हैं।

एवं पुढविक्काइयाणं सव्वेसु ठाणेसु अभंगयं,

इस प्रकार पृथ्वीकायिकों के सब स्थान अभंगक (विकल्प रहित) हैं।

णवरं–तेउलेस्साए असीति भंगा।

विशेष–तेजोलेश्या में अस्सी भंग कहने चाहिए।

एवं आउक्काइया वि।

इसी प्रकार अप्काय के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।

तेउक्काय–वाउक्काइयाणं सव्वेसु वि ठाणेसु अभंगयं।

तेजस्काय और वायुकाय के सब स्थानों में अभंगक है।

वणस्सइकाइया जहा पुढविकाइया।

वनस्पतिकायिकों के लिए पृथ्वीकायिक के समान समझना चाहिए।

दं. १७-१९. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं-जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीइ भंगा तेहिं ठाणेहिं असीइ चेव।

दं. १७-१९. जिन स्थानों में नैरयिक जीवों के अस्सी भंग कहे गये हैं उन स्थानों में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के भी अस्सी भंग कहने चाहिए।

णवरं–अब्भहिया सम्मत्ते, आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे य एएहिं असीइ भंगा,

विशेष–(इतनी वात नारक जीवों से अधिक है कि) सम्यग्दर्शन, आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान इन में अस्सी भंग होते हैं,

जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं सत्तावीसं भंगा तेसु ठाणेस सव्वेसु भंगयं।

जिन स्थानों में नारक जीवों के सत्ताईस भंग कहे हैं, उन सभी स्थानों में अभंगक (विकल्प रहित) हैं।

दं. २०. पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिया जहा नेरइया तहा भाणियव्वा।

दं. २०. जैसा नैरयिक के विषय में कहा, वैसा ही पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों के भंगों के विषय में भी कहना चाहिए।

णवरं–जेहिं सत्तावीसं भंगा तेहिं अभंगयं कायव्वं।

विशेष–जिन-जिन स्थानों में नारक जीवों के सत्ताईस भंग कहे गये हैं, उन-उन स्थानों में यहां अभंगक कहना चाहिए।

जत्थ असीइ तत्थ असीतिं चेव।

जिन स्थानों में नारकों के अस्सी भंग कहे हैं उसी प्रकार इनके भी अस्सी भंग कहने चाहिए।

दं. २१. जेहिं ठाणेहिं नेरइयाणं असीइ भंगा, तेहिं ठाणेहिं मणुस्साणं वि असीइ भंगा भाणियव्वा।

दं. २१. नारक जीवों में जिन-जिन स्थानों में अस्सी भंग कहे गए हैं, उन-उन स्थानों में मनुष्यों के भी अस्सी भंग कहने चाहिए।

जेसु ठाणेसु सत्तावीसा भंगा तेसु ठाणेसु सव्वेसु अभंगयं,

नारक जीवों के जिन-जिन स्थानों में सत्ताईस भंग कहे गए हैं, वहां मनुष्यों में अभंगक कहना चाहिए।

णवरं–मणुस्साणं अब्भहियं–जहन्नियाए ठिईए आहारए य असीति भंगा।

विशेष–मनुष्यों में यह अधिकता है कि जघन्य स्थिति और आहारक शरीर में अस्सी भंग होते हैं,

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया जहा भवणवासी,

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों का कथन भवनवासी देवों के समान समझना चाहिए।

णवरं–णाणत्तं जाणियव्वं जं जस्स जाव अणुत्तरा।

विशेष–अनुत्तरविमानों में जिसकी जो भिन्नता हो वह जान लेना चाहिए।

–*विया. स. १, उ. ५, सु. ६-३६*

१०१. चउवीसदंडएसु अज्झवसाणाणं संखा पसत्थापसत्थत्त य परूवणं–

१०१. चौवीस दंडकों में अध्यवसायों की संख्या और अप्रशस्ताप्रशस्तत्व का प्ररूपण–

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! केवइया अज्झवसाणा पण्णत्ता ?

प्र. दं. १. भंते ! नारकों के कितने अध्यवसाय (आत्म परिणाम) कहे गए हैं ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा अज्झवसाणा पण्णत्ता।

प. ते णं भंते ! किं पसत्था अप्पसत्था ?

उ. गोयमा ! पसत्था वि अप्पसत्था वि।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

–पण्ण. प. ३४, सु. २०४७-२०४८

उ. गौतम ! उनके असंख्यात अध्यवसाय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! वे अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं या अप्रशस्त होते हैं ?

उ. गौतम ! वे प्रशस्त भी होते हैं और अप्रशस्त भी होते हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

१०२. चउवीसदंडएसु सम्मत्ताभिगमाइ परूवणं–

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! किं सम्मत्ताभिगमी मिच्छत्ताभिगमी सम्मामिच्छत्ताभिगमी ?

उ. गोयमा ! सम्मत्ताभिगमी वि, मिच्छत्ताभिगमी वि, सम्मामिच्छत्ताभिगमी वि।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

णवरं–एगिंदिय-विगलिंदिया णो सम्मत्ताभिगमी, मिच्छत्ताभिगमी, णो सम्मामिच्छत्ताभिगमी।

–पण्ण. प. ३४, सु. २०४९-२०५०

१०२. चौबीसदंडकों में सम्यक्त्वाभिगमादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नारक सम्यक्त्वाभिगमी होते हैं, मिथ्यात्वाभिगमी होते हैं या सम्यग्मिथ्यात्वाभिगमी होते हैं ?

उ. गौतम ! वे सम्यक्त्वाभिगमी, मिथ्यात्वाभिगमी और सम्यग्मिथ्यात्वाभिगमी होते हैं।

दं. २-२४ इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय केवल मिथ्यात्वाभिगमी होते हैं, वे सम्यक्त्वाभिगमी और सम्यग्मिथ्यात्वाभिगमी नहीं होते हैं।

१०३. चउवीसदंडएसु सारंभ सपरिग्गहत्त परूवणं–

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! किं सारंभा सपरिग्गहा ? उदाहु अणारंभा अपरिग्गहा ?

उ. गोयमा ! नेरइया सारंभा सपरिग्गहा, नो अणारंभा नो अपरिग्गहा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"नेरइया सारंभा सपरिग्गहा, नो अणारंभा अपरिग्गहा ?"

उ. गोयमा ! नेरइया णं पुढविकायं समारंभंति जाव तसकायं समारंभंति, सरीरा परिग्गहिया भवंति,

कम्मा परिग्गहिया भवंति,

सचित्त-अचित्त मीसयाइं दव्वाइं परिग्गहियाइं भवंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"नेरइया सारंभा सपरिग्गहा, उदाहु नो अणारंभा नो अपरिग्गहा।"

प. दं. २. असुरकुमारा णं भंते ! किं सारंभा सपरिग्गहा ? उदाहु अणारंभा अपरिग्गहा ?

उ. गोयमा ! असुरकुमारा सारंभा सपरिग्गहा, नो अणारंभा, नो अपरिग्गहा ?

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'असुरकुमारा सारंभा सपरिग्गहा ? नो अणारंभा नो अपरिग्गहा ?'

उ. गोयमा ! असुरकुमाराणं पुढविकाइयं समारंभंति जाव तसकायं समारंभंति,

सरीरा परिग्गहिया भवंति,

कम्मा परिग्गहिया भवंति,

भवणा परिग्गहिया भवंति।

१०३. चौबीस दंडकों में सारम्भ सपरिग्रहत्व का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक आरम्भ और परिग्रह से सहित होते हैं अथवा आरम्भ और परिग्रह से रहित होते हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक आरम्भ और परिग्रह से सहित होते हैं किन्तु आरम्भ और परिग्रह से रहित नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक आरंभ एवं परिग्रह से सहित होते हैं किन्तु आरम्भ एवं परिग्रह से रहित नहीं होते हैं ?"

उ. गौतम ! नैरयिक पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हैं यावत् त्रसकाय का समारम्भ करते हैं। शरीर को परिगृहीत (ग्रहण) किये हुए हैं।

कर्मों को परिगृहीत किये हुए हैं,

सचित्त अचित्त एवं मिश्र द्रव्यों को परिगृहीत किये हुए हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक आरंभ एवं परिग्रह से सहित होते हैं किन्तु आरंभ एवं परिग्रह से रहित नहीं होते हैं।

प्र. दं. २. भंते ! असुरकुमार क्या आरम्भ एवं परिग्रह से सहित होते हैं, अथवा आरंभ एवं परिग्रह से रहित होते हैं ?

उ. गौतम ! असुरकुमार भी सारंभ एवं सपरिग्रही होते हैं, किन्तु अनारंभी एवं अपरिग्रही नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"असुरकुमार सारंभ एवं सपरिग्रही होते हैं, किन्तु अनारम्भी एवं अपरिग्रही नहीं होते हैं ?"

उ. गौतम ! असुरकुमार पृथ्वीकाय से त्रसकाय पर्यन्त का समारंभ करते हैं

शरीर को परिगृहीत किये हुए हैं,

कर्मों को परिगृहीत किये हुए हैं,

भवनों को परिगृहीत किये हुए हैं।

देवा, देवीओ, मणुस्सा, मणुस्सीओ, तिरिक्खजोणिया, तिरिक्खजोणिणीओ, परिग्गहियाओ भवंति,
आसण-सयण-भंडमत्तोवगरणा परिग्गहिया भवंति,

सचित्त-अचित्त मीसियाइं दव्वाइं परिग्गहियाइं भवन्ति,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"असुरकुमारा सारंभा सपरिग्गहा, नो अणारंभा अपरिग्गहा।
दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमारा।
दं. १२-१६. एगिंदिया जहा नेरइया।

प. दं. १७. वेइंदिया णं भंते ! किं सारंभा सपरिग्गहा? उदाहु अणारंभा अपरिग्गहा?
उ. गोयमा ! वेइंदिया सारंभा सपरिग्गहा, नो अणारंभा अपरिग्गहा।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"बेइंदिया सारंभा सपरिग्गहा, नो अणारंभा अपरिग्गहा?"
उ. गोयमा ! बेइंदिया णं पुढविकाइयं समारंभंति जाव तसकायं समारंभंति,
सरीरा परिग्गहिया भवंति,
बाहिरया भंडमत्तोवगरणा परिग्गहिया भवंति।

सचित्त-अचित्त-मीसयाइं दव्वाइं परिग्गहियाइं भवंति।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"बेइंदिया सारंभा सपरिग्गहा, नो अणारंभा अपरिग्गहा।"
दं. १८-१९. एवं जाव चउरिंदिया।

प. दं. २०. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! किं सारंभा सपरिग्गहा, उदाहु अणारंभा अपरिग्गहा?
उ. गोयमा ! पंचिंदियतिरिक्खजोणिया सारंभा सपरिग्गहा नो अणारंभा अपरिग्गहा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"पंचिंदियतिरिक्खजोणिया सारंभा सपरिग्गहा, नो अणारंभा अपरिग्गहा?
उ. गोयमा ! पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णं पुढविकाइयं समारंभंति जाव तसकायं समारंभंति,
सरीरा परिग्गहिया भवंति।
कम्मा परिग्गहिया भवंति,
टंका कूडा सेला सिहरी, पब्भारा परिग्गहिया भवंति,

जल-थल-बिल-गुह-लेणा परिग्गहिया भवंति,

देव, देवियों, मनुष्य मनुष्यणियों तिर्यञ्चयोनि[illegible] तिर्यञ्चयोनिनीयों (तिर्यंचनीओं) को परिगृहीत किए हुए [illegible]
वे आसन, शयन, भाण्ड (मिट्टी के वर्तन) मात्रक (धातु[illegible] के पात्र) एवं विविध उपकरणों को परिगृहीत किये हुए [illegible]
सचित्त अचित्त तथा मिश्र द्रव्यों को परिगृहीत किये हुए [illegible]
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
वे आरम्भयुक्त एवं परिग्रहसहित हैं, किंतु अनारंभी औ[illegible] अपरिग्रही नहीं हैं।
दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहि[illegible]
दं. १२-१६. एकेन्द्रियों के (आरंभ परिग्रह का वर्णन[illegible]) नैरयिकों के समान कहना चाहिए।
प्र. दं. १७. भंते ! द्वीन्द्रिय जीव क्या सारम्भ सपरिग्रही होते ह[illegible] अथवा अनारंभी एवं अपरिग्रही होते हैं?
उ. गौतम ! द्वीन्द्रिय जीव सारंभ सपरिग्रही होते हैं, कि[illegible] अनारंभी एवं अपरिग्रही नहीं होते हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'द्वीन्द्रिय जीव सारंभ सपरिग्रही होते हैं, किन्तु अनारम्भ[illegible] अपरिग्रही नहीं होते हैं?'
उ. गौतम ! द्वीन्द्रिय जीव पृथ्वीकाय से त्रसकाय पर्यन्त क[illegible] समारंभ करते हैं।
शरीर को परिगृहीत किये हुए हैं,
वे वाह्य भाण्ड मात्रक तथा विविध उपकरण परिगृहीत किय[illegible] हुए हैं,
सचित्त अचित्त तथा मिश्र द्रव्यों को परिगृहीत किये हुए हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'द्वीन्द्रिय जीव सारंभ सपरिग्रही होते हैं किन्तु अनारंभी एवं अपरिग्रही नहीं होते हैं।'
दं. १८-१९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों पर्यन्त कहना चाहिए।
प्र. दं. २०. भंते ! पञ्चेंन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव क्या आरंभ परिग्रहयुक्त हैं अथवा आरम्भ परिग्रहरहित हैं?
उ. गौतम ! पञ्चेंन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव, आरम्भ परिग्रह युक्त हैं किन्तु आरम्भ परिग्रहरहित नहीं है। (क्योंकि उन्होंने शरीर कर्मों को परिगृहीत किये हैं)
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
पंञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव आरम्भ परिग्रह युक्त हैं किन्तु आरंभ परिग्रह रहित नहीं है?
उ. गौतम ! पंञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव पृथ्वीकाय से त्रसकाय पर्यन्त का समारंभ करते हैं,
शरीर को परिगृहीत किये हुए हैं।
कर्म को परिगृहीत किये हुए हैं।
टंक (पर्वत से विच्छिन्न टुकड़ा) कूट, शैल (पर्वत), शिखर एवं प्राग्भार (तलहटी) परिगृहीत किये हुए हैं।
जल, स्थल, विल, गुफा, लयन परिगृहीत किये हुए हैं।

उज्झर-निज्झर-चिल्लल-पल्लल-वप्पिणा परिग्गहिया भवंति,

उज्झर (जलप्रपात) निर्झर (झरना) चिल्लत (कीचड़ युक्त जलाशय) पल्लव (आनन्ददायकजलाशय) तथा वप्रीण (क्यारियों वाला जलस्थान) परिगृहीत किये हुए हैं।

अगड-तडाग-दह-नदीओ वावी-पुक्खरिणी-दीहिया गुंजालिया सरा सरपंतियाओ सरसरपंतियाओ बिलपंतियाओ परिग्गहियाओ भवंति,

कूप, तड़ाग (तालाब), द्रह (झील) नदी, वापी (बावड़ी) पुष्करिणी (कमलों से युक्त बावड़ी), दीर्घिका (हौज) सरोवर, सर पंक्ति, सरसरपंक्ति एवं बिलपंक्ति को परिगृहीत किये हुए हैं,

आराम-उज्जाणा काणणा वणाइं वणसंडाइं वणराईओ परिग्गहियाओ भवंति,

आराम (गृह उद्यान), उद्यान, (सार्वजनिक बगीचा) कानन, वन, वनखण्ड वनराजि को परिगृहीत किये हुए हैं।

देवउल-सभा-पवा-थूभा-खाइय-परिखाओ परिग्गहियाओ भवंति,

देवकुल (देवमन्दिर), सभा, आश्रम, प्रपा (प्याऊ) स्तूप, खाई, परिखा को परिगृहीत किये हुए हैं,

पागारऽट्टालग-चरिया-दार-गोपुरा परिग्गहिया भवंति,

प्राकार (किला), अट्टालक (अटारी) चरिका, द्वार, गोपुर (नगरद्वार) को परिगृहीत किये हुए हैं,

पासाद-घर-सरण-लेण-आवणा परिग्गहिया भवंति,

प्रासाद (राजमहल), घर, सरण (झोंपड़ा) लयन (पर्वतगृह), आपण (दुकान) को परिगृहीत किये हुए हैं।

सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहा परिग्गहिया भवंति,

श्रृंगाटक (त्रिकोण मार्ग), त्रिक (तिराहा), चतुष्क (चौराहा) चत्वर (चौक) चतुर्मुख (चार द्वारों वाला मकान या देवालय), महापथ को परिगृहीत किये हुये हैं।

सगड-रह-जाण-जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीय- संदमाणियाओ परिग्गहियाओ भवंति,

शकट (गाड़ी), रथ यान (वाहन), युग्य (पालखी) गिल्ली (अम्बाड़ी) थिल्ली (घोड़े का पलान), शिविका (डोली) स्यन्दमानिका को परिगृहीत किये हुए हैं।

लोही-लोहकडाह कडच्छुया परिग्गहिया भवंति,

लोही (लोहे की डेगची), लोहे की कड़ाही, कुड़छी आदि को परिगृहीत किये हैं,

भवणा परिग्गहिया भवंति,

भवनों को परिगृहीत किये हुए हैं।

देवा देवीओ मणुस्सा मणुस्सीओ तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणिणीओ आसण-सयण-खंड-भंड- सचित्त-अचित्त- मीसयाइं दव्वाइं परिग्गहियाइं भवंति।

देव, देवियों, मनुष्य, मनुष्यनियों तिर्यञ्च, तिर्यञ्चनियों, आसन, शयन, खण्ड, (क्षेत्रखंड) भाण्ड (वर्तन) एवं सचित्त अचित्त और मिश्र द्रव्यों को परिगृहीत किये हुए हैं।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"पंचिंदियतिरिक्खजोणिया सारंभा सपरिग्गहा, नो अणारंभा अपरिग्गहा।"

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'पंञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव आरम्भ परिग्रह से युक्त हैं, किन्तु अनारम्भी अपरिग्रही नहीं हैं।'

दं. २१. जहा तिरिक्खजोणिया तहा मणुस्सा वि भाणियव्वा।

दं. २१. जिस प्रकार तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय जीवों के लिए कहा, उसी प्रकार मनुष्यों के लिए भी कहना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणमंतर जोइसिय वेमाणिया जहा भवणवासी तहा नेयव्वा।

–विया. स. ५, उ. ७, सु. ३०-३६

दं. २२-२४. जिस प्रकार भवनवासी देवों के लिए कहा, वैसे ही वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के लिए भी कहना चाहिए।

१०४. चउवीसदंडएसु सक्काराइ विणयभाव परूवणं–

प. दं. १. अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं सक्कारे इ वा, सम्माणे इ वा, किइकम्मे इ वा, अब्भुट्ठाणे इ वा, अंजलिपग्गहे इ वा, आसणाभिग्गहे इ वा, आसणाणुप्पयाणे इ वा, एयस्स पच्चुग्गच्छणया ठियस्स पज्जुवासणया, गच्छंतस्स पडिसंसाहणया ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. दं. २. अत्थि णं भंते ! असुरकुमाराणं सक्कारे इ वा, सम्माणे इ वा जाव गच्छंतस्स पडिसंसाहणया ?

१०४. चौवीसदंडकों में सत्कारादि विनयभाव का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! क्या नारकजीवों में (परस्पर) सत्कार, सम्मान, कृतिकर्म (वन्दन), अभ्युत्थान, अंजलिप्रग्रह, आसनाभिग्रह, आसनानुप्रदान या आते हुए के सम्मुख (स्वागतार्थ) जाना, बैठे हुए की सेवा (पर्युपासना) करना, उठ कर जाते हुए के पीछे चलना इत्यादि विनय भक्ति है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. दं. २. भंते ! असुरकुमारों में (परस्पर) सत्कार, सम्मान यावत् जाते हुए के पीछे जाना आदि विनयभक्ति है ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

दं. १२-१९. पुढविकाइयाणं जाव चउरिंदियाणं एएसिं जहा नेरइयाणं।

प. दं. २०. अत्थि णं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं सक्कारे इ वा जाव गच्छंतस्स पडिसंसाहणया ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि, नो चेव णं आसणाभिग्गहे इ वा, आसणाणुप्पणाणे इ वा।

दं. २१-२४. मणुस्साणं जाव वेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं।

—विया. स. १४, उ. ३, सु. ४-९

उ. हां, गौतम ! (विनय भक्ति) है।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. १२-१९. जिस प्रकार नैरयिकों के लिए कहा है, उसी प्रकार पृथ्वीकाय से चतुरिन्द्रिय पर्यन्त के जीवों के लिए जानना चाहिए।

प्र. दं. २०. भंते ! क्या पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों में सत्कार, सम्मान यावत् जाते हुए के पीछे जाना आदि विनयभक्ति है ?

उ. हां, गौतम ! है, परन्तु इनमें आसनाभिग्रह या आसनाऽनुप्रदान रूप विनय भक्ति नहीं है।

दं. २१-२४. जिस प्रकार असुरकुमारों के विषय में कहा, उसी प्रकार मनुष्यों से वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

१०५. चउवीसदंडएसु उज्जोय-अंधयारं तेसिं हेउ य परूवणं—

प. से नूणं भंते ! दिया उज्जोए, राइं अंधकारे ?

उ. हंता, गोयमा ! दिया उज्जोए, राइं अंधकारे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—
'दिया उज्जोए, राइं अंधकारे ?'

उ. गोयमा ! दिया सुभा पोग्गला, सुभे पोग्गलपरिणामे, राइं असुभा पोग्गला, असुभे पोग्गलपरिणामे

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—
'दिया उज्जोए, राइं अंधकारे।'

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! किं उज्जोए, अंधकारे ?

उ. गोयमा ! नेरइयाणं नो उज्जोए, अंधकारे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—
'नेरइयाणं नो उज्जोए, अंधकारे ?'

उ. गोयमा ! नेरइयाणं असुभा पोग्गला, असुभे पोग्गलपरिणामे,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—
"नेरइयाणं नो उज्जोए, अंधकारे।

प. दं. २. असुरकुमाराणं भंते ! किं उज्जोए, अंधकारे ?

उ. गोयमा ! असुरकुमाराणं उज्जोए, नो अंधकारे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—
'असुरकुमाराणं उज्जोए, नो अंधकारे ?'

१०५. चौवीसदंडकों में उद्योत, अंधकार और उनके हेतु का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! क्या दिन में उद्योत (प्रकाश) और रात्रि में अंधकार होता है ?

उ. हां, गौतम ! दिन में उद्योत और रात्रि में अंधकार होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि—
'दिन में उद्योत और रात्रि में अंधकार होता है ?'

उ. गौतम ! दिन में शुभ पुद्‌गल होते हैं और शुभ पुद्‌गल परिणाम होता है किन्तु रात्रि में अशुभ पुद्‌गल होते हैं और अशुभ पुद्‌गल परिणाम होता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—
'दिन में उद्योत और रात्रि में अंधकार होता है।'

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों के (निवासस्थान में) उद्योत होता है या अंधकार होता है ?

उ. गौतम ! नैरयिक जीवों के (स्थान में) उद्योत नहीं होता, (किन्तु) अंधकार होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि—
'नैरयिकों के (स्थान में) उद्योत नहीं होता किन्तु अंधकार होता है ?'

उ. गौतम ! नैरयिक जीवों के अशुभ पुद्‌गल होते हैं और अशुभ पुद्‌गल परिणाम होता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—
'नैरयिकों के उद्योत नहीं होता किन्तु अंधकार होता है।'

प्र. दं. २. भंते ! असुरकुमारों के क्या उद्योत होता है या अंधकार होता है ?

उ. गौतम ! असुरकुमारों के उद्योत होता है, अंधकार नहीं होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि—
'असुरकुमारों के उद्योत होता है अंधकार नहीं होता है।'

उ. गोयमा ! असुरकुमाराणं सुभा पोग्गला, सुभे पोग्गलपरिणामे,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'असुरकुमाराणं उज्जोए, नो अंधकारे।'
दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

दं. १२-१८. पुढविकाइया जाव तेइंदिया जहा नेरइया।

प. दं. १९. चउरिंदियाणं भंते ! किं उज्जोए, अंधकारे ?

उ. गोयमा ! उज्जोए वि, अंधकारे वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'चउरिंदियाणं उज्जोए वि, अंधकारे वि ?'

उ. गोयमा ! चउरिंदियाणं सुभासुभा पोग्गला, सुभासुभे पोग्गलपरिणामे,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'चउरिंदियाणं उज्जोए वि, अंधकारे वि।'

दं. २०-२१. एवं जाव मणुस्साणं।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइस वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

–विया. स. ५, उ. ९, सु. ३-९

उ. गौतम ! असुरकुमारों के शुभ पुद्गल होते हैं और शुभ पुद्गल परिणाम होता है,
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'असुरकुमारों के उद्योत होता है, अंधकार नहीं होता है।
दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।
दं. १२-१८. जिस प्रकार नैरयिक जीवों के (उद्योत अंधकार के) विषय में कथन किया, उसी प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों से त्रीन्द्रिय जीवों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १९. भंते ! चतुरिन्द्रिय जीवों के क्या उद्योत या अंधकार होता है ?

उ. गौतम ! चतुरिन्द्रिय जीवों के उद्योत भी होता है और अंधकार भी होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'चतुरिन्द्रिय जीवों के उद्योत भी होता है और अंधकार भी होता है ?,

उ. गौतम ! चतुरिन्द्रिय जीवों के शुभ अशुभ पुद्गल होते हैं और शुभ अशुभ पुद्गल परिणाम होता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'चतुरिन्द्रिय जीवों के उद्योत भी होता है और अंधकार भी होता है।'
दं. २०-२१. इसी प्रकार मनुष्यों पर्यन्त जानना चाहिए।
दं. २२-२४. जिस प्रकार असुरकुमारों (उद्योत-अंधकार) के विषय में कहा उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के विषय में भी कहना चाहिए।

१०६. चउवीसदंडएसु समयाइ पण्णाण परूवणं–

प. दं. १. अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं तत्थगयाणं एवं पण्णायइ, तं जहा–
समया इ वा, आवलिया इ वा जाव ओसप्पिणी इ वा उस्सप्पिणी इ वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'नेरइयाणं तत्थगयाणं नो एवं पण्णायए, तं जहा–
समया इ वा, आवलिया इ वा जाव उस्सप्पिणी इ वा ?

उ. गोयमा ! इहं तेसिं माणं, इहं तेसिं पमाणं इहं तेसिं एवं पण्णायइ, तं जहा–

समया इ वा जाव उस्सपिणी इ वा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

१०६. चौवीसदंडकों में समयादि के प्रज्ञान का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! क्या वहां (नरकक्षेत्र में) रहे हुए नैरयिकों को इस प्रकार का प्रज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) होता है, यथा–
यह समय, आवलिका यावत् उत्सर्पिणी काल या अवसर्पिणी काल है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। (नैरयिकों को समयादि का प्रज्ञान नहीं होता)

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'नरकों में रहे हुए नैरयिकों को समय, आवलिका यावत् उत्सर्पिणी-काल का प्रज्ञान नहीं होता है ?'

उ. गौतम ! यहीं (मनुष्यलोक में ही) उन (समयादि) का मान हैं, यही उनका प्रमाण है, इसीलिए यहीं उनका ऐसा प्रज्ञान होता है, यथा–
यह समय है यावत् यह उत्सर्पिणीकाल है।
(किन्तु नरक में न तो समयादि का मान है, न प्रमाण है और न ही प्रज्ञान है)
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'नेरइयाणं तत्थगयाणं नो एवं पण्णायइ, तं जहा–
समया इ वा जाव उरसप्पिणी इ वा।'

दं. २-२० . एवं जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं।

प. दं. २१. अत्थि णं भंते ! मणुस्साणं इहगयाणं एवं पण्णायइ, तं जहा–
'समया इ वा जाव उस्सप्पिणी इ वा ?'

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'मणुस्साणं इहगयाणं एवं पण्णायइ, तं जहा–
समया इ वा जाव उस्सप्पिणी इ वा ?

उ. गोयमा ! इहं तेसिं माणं, इहं तेसिं पमाणं, इहं चेव तेसिं एवं पण्णायइ, तं जहा–
समया इ वा जाव उस्सप्पिणी इ वा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'मणुस्साणं इहगयाणं एवं पण्णायइ, तं जहा–
समया इ वा जाव उस्सप्पिणी इ वा।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइस-वेमाणियाणं जहा नेरइयाणं। *–विया. स. ५, उ. ९, सु. १०-१३*

'नरकस्थित नैरयिकों को इस प्रकार से, यथा–
समय आवलिका यावत् उत्सर्पिणी काल, प्रज्ञान नहीं होता,

दं. २-२०. इसी प्रकार (भवनपति देवों, स्थावर जीवों, तीन विकलेन्द्रियों से पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों पर्यन्त समयादि का ज्ञान नहीं होता।

प्र. दं. २१. भंते ! क्या यहां (मनुष्यलोक में) रहे हुए मनुष्यों को इस प्रकार का प्रज्ञान होता है, यथा–
'यह समय यावत् उत्सर्पिणी काल है ?'

उ. हां गौतम ! (मनुष्यों को प्रज्ञान) होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'यहाँ रहे हुए मनुष्यों को इस प्रकार का प्रज्ञान होता है, यथा–
यह समय यावत् उत्सर्पिणी काल है ?'

उ. गौतम ! यहां (मनुष्यलोक में) उन समयादि का मान है, यहां उनका प्रमाण है, इसी कारण यहां उनका प्रज्ञान होता है, यथा–
यह समय है यावत् यह उत्सर्पिणीकाल है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'यहां रहे हुए मनुष्यों को इस प्रकार का प्रज्ञान होता है, यथा–
यह समय यावत् उत्सर्पिणी काल है।'

दं. २२-२४. जिस प्रकार नैरयिक जीवों (समयादि प्रज्ञान) के लिए कहा उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के विषय में भी कहना चाहिए।

१०७. चउवीसदंडएसु गरुयत्त लहुयत्ताइ परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं गरुया, लहुया, गरुयलहुया, अगरुयलहुया ?

उ. गोयमा ! नो गरुया, नो लहुया, गरुयलुहया वि, अगरुयलहुया वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'नेरइया नो गरुया, नो लहुया, गरुयलहुया वि, अगरुयलहुया वि।'

उ. गोयमा ! वेउव्विय तेयाइं पडुच्च नो गरुया, नो लहुया, गरुयलहुया, नो अगरुयलहुया।
जीवं च कम्मणं च पडुच्च नो गरुया, नो लहुया, नो गरुयलहुया, अगरुयलहुया।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'नेरइया नो गरुया, नो लहुया, गरुयलहुया वि, अगरुयलहुया वि।'
दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।
णवरं–णाणत्तं जाणियव्वं सरीरेहिं। *–विया. स. १, उ. ९, सु. ६*

१०७. चौवीसदंडकों में गुरुत्व लघुत्वादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नारक जीव गुरु है, लघु है, गुरुलघु हैं या अगुरुलघु हैं ?

उ. गौतम ! नारक जीव गुरु नहीं है, लघु नहीं है, किन्तु गुरुलघु भी हैं और अगुरुलघु भी है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'नैरयिक गुरु नहीं है, लघु नहीं है किन्तु गुरुलघु भी है और अगुरुलघु भी है ?'

उ. गौतम ! वैक्रिय तैजस शरीर की अपेक्षा नारक जीव गुरु नहीं है, लघु नहीं है, गुरुलघु है, किन्तु अगुरुलघु नहीं है।
जीव और कार्मण शरीर की अपेक्षा गुरु नहीं है, लघु नहीं है, गुरुलघु नहीं है किन्तु अगुरुलघु हैं।
इस कारण से गौतम! ऐसा कहा जाता है कि–
'नैरयिक गुरु नहीं है, लघु नहीं है, किन्तु गुरुलघु भी है और अगुरुलघु भी हैं।
दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।
विशेष–शरीरों में भिन्नता कहनी चाहिए।

१०८. चउवीस दंडएसु भवसिद्धियत्त परूवणं–

प. दं. १. भवसिद्धिए णं भंते ! नेरइए? नेरइए भवसिद्धिए?

उ. गोयमा ! भवसिद्धिए सिय नेरइए, सिय अनेरइए,

नेरइए वि य सिय भवसिद्धिए, सियं अभवसिद्धिए।

दं. २-२४. एवं दंडओ जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. ६, उ. १०, सु. ९-१०

१०८. चौबीसदंडकों में भवसिद्धिकत्व का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! जो भवसिद्धिक होता है, वह नैरयिक होता है, या जो नैरयिक होता है, वह भवसिद्धिक होता है?

उ. गौतम ! भवसिद्धिक कदाचित् नैरयिक होता है और कदाचित् नैरयिक नहीं भी होता है।

नैरयिक कदाचित् भवसिद्धिक होता है और कदाचित् भवसिद्धिक नहीं भी होता है।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकपर्यन्त सभी दण्डक (आलापक) कहने चाहिए।

१०९. उवही परिग्गह भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! उवही पन्नत्ते?

उ. गोयमा ! तिविहे उवही पन्नत्ते, तं जहा–

१. कम्मोवही, २. सरीरोवही,

३. बाहिरभंडमत्तोवगरणोवही।

प. नेरइया णं भंते ! कइविहे उवही पन्नत्ते?

उ. गोयमा ! दुविहे उवही पन्नत्ते, तं जहा–

१. कम्मोवही य, २. सरीरोवही य।

सेसाणं तिविहा उवही एगिंदियवज्जाणं जाव वेमाणियाणं।

एगिंदियाणं दुविहे, तं जहा–

१. कम्मोवही य, २. सरीरोवही य।

प. कइविहे णं भंते ! उवही पन्नत्ते?

उ. गोयमा ! तिविहे उवही पन्नत्ते, तं जहा–

१. सचित्ते, २. अचित्ते, ३. मीसए।

एवं नेरइयाण वि।

एवं निरवसेसं जाव वेमाणियाणं।

प. कइविहे णं भंते! परिग्गहे पन्नत्ते?

उ. गोयमा ! तिविहे परिग्गहे पन्नत्ते, तं जहा–

१. कम्मपरिग्गहे, २. सरीरपरिग्गहे,

३. बाहिरग- भंडमत्तोवगरणपरिग्गहे।

प. नेरइयाणं भंते ! कइविहे परिग्गहे पण्णत्ते,

उ. गोयमा ! एवं जहा उवहिणा दो दंडगा भणिया, तहा परिग्गहेण वि दो दंडगा भाणियव्वा।[1]

–विया. स. १८, उ. ७, सु. ३-११

१०९. उपधि और परिग्रह के भेद तथा चौबीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! उपधि कितने प्रकार की कही गई हैं?

उ. गौतम ! उपधि तीन प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१. कर्मोपधि, २. शरीरोपधि

३. वाह्यभाण्डमात्रोपकरणोपधि।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों के कितने प्रकार की उपधि कही गई है?

उ. गौतम ! उनके दो प्रकार की उपधि कही गई हैं, यथा–

१. कर्मोपधि, २. शरीरोपधि।

एकेन्द्रिय जीवों को छोड़कर वैमानिकों पर्यन्त शेष सभी जीवों के तीन प्रकार की उपधि होती है।

एकेन्द्रिय जीवों के दो प्रकार की उपधि होती है, यथा–

१. कर्मोपधि, २. शरीरोपधि।

प्र. भंते ! उपधि कितने प्रकार की कही गई है?

उ. गौतम ! उपधि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. सचित्त, २. अचित्त, ३. मिश्र।

इसी प्रकार नैरयिकों के भी तीन प्रकार की उपधि होती है।

इसी प्रकार अवशिष्ट सभी जीवों के वैमानिकों पर्यन्त तीनों प्रकार की उपधि होती है।

प्र. भंते ! परिग्रह कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! परिग्रह तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कर्म-परिग्रह, २. शरीर-परिग्रह,

३. वाह्यभाण्ड मात्रोपकरण परिग्रह।

प्र. भंते ! नैरयिकों के कितने प्रकार का परिग्रह कहा गया है?

उ. गौतम ! जिस प्रकार उपधि के विषय में दो दण्डक कहे हैं उसी प्रकार परिग्रह के विषय में भी दो दण्डक कहने चाहिए।

११०. वण्णाइनिव्वत्ति भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! वण्णनिव्वत्ती पन्नत्ता?

उ. गोयमा ! पंचविहा वण्णनिव्वत्ती पन्नत्ता, तं जहा–

१. कालवण्णनिव्वत्ती जाव ५. सुक्किलवण्णनिव्वत्ती।

११०. वर्णादि निर्वृत्ति के भेद और चौबीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! वर्णनिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है?

उ. गौतम ! वर्णनिर्वृत्ति पांच प्रकार की कही गई है, यथा–

१. कृष्णवर्णनिर्वृत्ति यावत् ५. शुक्लवर्णनिर्वृत्ति।

---

१. ठाणं अ. ३, उ. १, सु. १४६

एवं निरवसेसं जाव वेमाणियाणं।

एवं गंधनिव्वत्ती दुविहा जाव वेमाणियाणं।

रसनिव्वत्ती पंचविहा जाव वेमाणियाणं।

फासनिव्वत्ती अट्ठविहा जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. १९, उ. ८, सु. २१-२५

इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त वर्णनिर्वृति का कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार दो प्रकार की गन्ध निर्वृत्ति का वैमानिकों पर्यन्त वर्णन करना चाहिए।

पांच प्रकार की रस निर्वृति का वैमानिकों पर्यन्त वर्णन करना चाहिए।

आठ प्रकार की स्पर्श निर्वृति का वैमानिकों पर्यन्त वर्णन करना चाहिए।

१११. विवक्खया करणस्स भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

तिविहे करणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मण करणे, २. वइ करणे, ३. काय करणे।

एवं णेरइयाणं विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

तिविहे करणे पन्नत्ते, तं जहा–

१. आरंभकरणे, २. संरंभकरणे, ३. समारंभकरणे।

एवं निरंतरं जाव वेमाणियाणं।

–ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १३२/४

प. कइविहे णं भंते ! करणे पन्नत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे करणे पन्नत्ते, तं जहा–

१. दव्वकरणे, २. खेत्तकरणे,
३. कालकरणे, ४. भवकरणे,
५. भावकरणे।

प. नेरइयाणं भंते ! कइविहे करणे पन्नत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे करणे पन्नत्ते, तं जहा–

१. दव्वकरणे जाव ५-भावकरणे।

एवं जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. १९, उ. ९, सु. १-३

प. कइविहे णं भंते ! पाणाइवायकरणे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पाणाइवायकरणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. एगिंदियपाणाइवायकरणे जाव
५. पंचेंदियपाणाइवायकरणे।

एवं निरवसेसं जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. १९, उ. ९, सु. ९-१०

१११. विवक्षा से करण के भेद और चौबीस दंडकों में प्ररूपण–

करण तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. मनः करण, २. वचन करण, ३. काय करण।

विकलेन्द्रियों (एक से चार इन्द्रियों वाले जीवों) को छोड़कर नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त तीनों करण होते हैं।

(प्रकारान्तर से) करण तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. आरम्भ करण, २. संरंभ करण, ३. समारंभ करण।

वैमानिकों पर्यन्त सभी दंडकों में ये करण पाये जाते हैं।

प्र. भंते ! करण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! करण पांच प्रकार का कहा गया है। यथा–

१. द्रव्य करण, २. क्षेत्रकरण,
३. काल करण, ४. भव-करण,
५. भाव-करण।

प्र. भंते ! नैरयिकों के कितने करण कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! पांच प्रकार के करण कहे गए हैं, यथा–

१. द्रव्यकरण यावत् ५. भावकरण।

वैमानिकों पर्यन्त इसी प्रकार करण कहने चाहिए।

प्र. भंते ! प्राणातिपात करण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! प्राणातिपातकरण पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. एकेन्द्रिय प्राणातिपातकरण यावत्
५. पंञ्चेन्द्रिय प्राणातिपातकरण।

इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त (प्राणातिपात करणों का) कथन करना चाहिए।

११२. उम्मायस्स भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! उम्मादे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे उम्मादे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जक्खाएसे य,
२. मोहणिज्जस्स य कम्मस्स उदएणं।

१. तत्थ णं जे से जक्खाए से णं सुहवेयणतराए चेव, सुहविमोयणतराए चेव।

११२. उन्माद के भेद और चौबीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! उन्माद कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! उन्माद दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. यक्षावेश से,
२. मोहनीय कर्म के उदय से (होने वाला)।

१. इनमें से जो यक्षावेशरूप उन्माद है, उसका सुखपूर्वक वेदन किया जा सकता है और सुखपूर्वक उससे छुटकारा पाया जा सकता है।

२. तत्थ णं जे से मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं से णं दुहवेयणतराए चेव, दुहविमोयणतराए चेव[1]।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! कइविहे उम्मादे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे उम्मादे पण्णत्ते, तं जहा–
१. जक्खाएसे य,
२. मोहणिज्जस्स य कम्मस्स उदएणं।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'नेरइयाणं दुविहे उम्मादे पण्णत्ते, तं जहा–
१. जक्खाएसे य,
२. मोहणिज्जस्स य कम्मस्स उदएणं ?'

उ. गोयमा ! देवे वा से असुभे पोग्गले पक्खिवेज्जा से णं तेसिं असुभाणं पोग्गलाणं पक्खिवणयाए जक्खाएसं उम्मायं पाउणिज्जा।

मोहणिज्जस्स वा कम्मस्स उदएणं मोहणिज्जं उम्मायं पाउणेज्जा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'नेरइयाणं दुविहे उम्मादे पण्णत्ते, तं जहा–
१. जक्खाएसे य, २. मोहणिज्जस्स य कम्मस्स उदएणं।'

प. दं. २. असुरकुमाराणं भंते ! कइविहे उम्मादे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एवं जहेव नेरइयाणं,

णवरं–देवे वा से महिड्ढियतराए असुभे पोग्गले पक्खिवेज्जा, से णं तेसिं असुभाणं पोग्गलाणं पक्खिवणयाए जक्खाएसं पाउणेज्जा, मोहणिज्जस्स वा कम्मस्स उदएणं मोहणिज्जं उम्मायं पाउणिज्जा।

सेसं तं चेव।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

दं. १२-२१. पुढविकाइयाणं जाव मणुस्साणं एएसिं जहा नेरइयाणं।

दं. २२-२४. वाणमंतर जोइसिय वेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं। *–विया. स. १४, उ. २, सु. १-६*

११३. चउवीसदंडएसु अणंतराहार तओ पच्छा निव्वत्तणाइ परूवणं–

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! अणंतराहारा तओ निव्वत्तणया तओ परियाइयणया तओ परिणामणया तओ परियारणया, तओ पच्छा विउव्वणया ?

२. इनमें से जो मोहनीयकर्म के उदय से होने वाला उन्माद है, उसका दुःखपूर्वक वेदन होता है और दुःखपूर्वक ही उससे छुटकारा पाया जा सकता है।

प्र. दं. १. भंते ! नारक जीवों में कितने प्रकार का उन्माद कहा गया है ?

उ. गौतम ! उनमें दो प्रकार का उन्माद कहा गया है, यथा–
१. यक्षावेशरूप उन्माद,
२. मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'नारकों में उन्माद दोनों प्रकार का पाया जाता है,' यथा–
१. यक्षावेशरूप उन्माद,
२. मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला।'

उ. गौतम ! यदि कोई देव, नैरयिक जीव पर अशुभ पुद्गलों का प्रक्षेपण करता है तो उन अशुभ पुद्गलों के प्रक्षेपण से वह नैरयिक जीव यक्षावेशरूप उन्माद को प्राप्त होता है।

मोहनीयकर्म के उदय से मोहनीयकर्मजन्य उन्माद को प्राप्त होता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
नैरयिकों में दो प्रकार का उन्माद कहा गया है, यथा–
१. यक्षावेश रूप उन्माद, २. मोहनीयकर्मोदय से होने वाला उन्माद।

प्र. दं. २. भंते ! असुरकुमारों में कितने प्रकार का उन्माद कहा गया है ?

उ. गौतम ! नैरयिकों के समान उनमें भी दो प्रकार का उन्माद कहा गया है।

विशेष–असुरकुमारों की अपेक्षा महर्द्धिक देव उन असुरकुमारों पर अशुभ पुद्गलों का प्रक्षेप करता है और वह उन अशुभ पुद्गलों के प्रक्षेप से यक्षावेशरूप उन्माद को प्राप्त हो जाता है तथा मोहनीयकर्म के उदय से मोहनीयकर्मजन्य उन्माद को प्राप्त हो जाता है।

शेष सब कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त उन्माद विषयक कथन करना चाहिए।

दं. १२-२१. पृथ्वीकायिकों से मनुष्यों पर्यन्त नैरयिकों के समान वर्णन करना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकदेवों के उन्माद के लिए भी असुरकुमारों के समान कहना चाहिए।

११३. चौवीसदंडकों में अनन्तराहारक तत्पश्चात् निर्वर्तन आदि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! क्या नारक अनन्तराहारक होते हैं ? उनके पश्चात् (उनके शरीर की) निर्वर्तना होती है ? फिर पर्यादानता (ग्रहण योग्य पदार्थों को ग्रहण करना) तदनन्तर परिणामना (परिणमाते) हैं ? तत्पश्चात् परिचारणा करते हैं और तब विकुर्वणा करते हैं ?

---

१. ठाणं अ. २, उ. १, सु. ५७

उ. हंता, गोयमा ! णेरइया णं अणंतराहारा, तओ निव्वत्तणया, तओ परियाइयणया, तओ परिणामणया तओ परियारणया तओ पच्छा विउव्वणया।

प. दं. २. असुरकुमाराणं भंते ! अणंतराहारा तओ णिव्वत्तणया, तओ परियाइयणया, तओ परिणामणया तओ विउव्वणया तओ पच्छा परियारणया ?

उ. गोयमा ! असुरकुमारा अणंतराहारा तओ णिव्वत्तया जाव तओ पच्छा परियारणया।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! अणंतराहारा तओ णिव्वत्तणया, तओ परियाइयणया तओ परिणामणया, तओ परियारणया, तओ विउव्वणया ?

उ. हंता, गोयमा ! पुढविकाइया परियारणया अणंतराहारा जाव णो चेव णं विउव्वणया।

दं. १३-२१. एवं जाव चउरिंदिया।

णवरं—वाउक्काइया पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य जहा णेरइया।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा। —पण्ण. प. ३४, सु. २०३३-२०३७

उ. हां, गौतम ! नैरयिक अनन्तराहारक होते हैं, फिर उनके शरीर की निष्पत्ति होती है, तत्पश्चात् पर्यादानता और परिणामना होती है, पश्चात् वे परिचारणा करते हैं और तब वे विकुर्वणा करते हैं।

प्र. दं. २. भंते ! क्या असुरकुमार अनन्तराहारक होते हैं, फिर उनके शरीर की निष्पत्ति होती है, फिर वे क्रमशः पर्यादान और परिणामना करते हैं, तत्पश्चात् विकुर्वणा और फिर परिचारणा करते हैं ?

उ. हां गौतम ! असुरकुमार अनन्तराहारी होते हैं फिर उनके शरीर की निष्पत्ति होती है यावत् उसके बाद वे परिचारणा करते हैं।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! क्या पृथ्वीकायिक अनन्तराहारक होते हैं, फिर उनके शरीर की निष्पत्ति होती है तत्पश्चात् पर्यादानता, परिणामना फिर परिचारणा और उसके बाद क्या विकुर्वणा करते हैं ?

उ. हां, गौतम ! पृथ्वीकायिक अनन्तराहारक होते हैं यावत् परिचारणा करते हैं किन्तु विकुर्वणा नहीं करते हैं।

दं. १३-२१. इसी प्रकार चतुरिन्द्रियों पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष—वायुकायिक, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक और मनुष्यों के लिए अनन्तराहारक आदि का कथन नैरयिकों के समान करना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का कथन असुरकुमारों के समान करना चाहिए।

११४. चउवीसदंडयाणं अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं गमण परूवणं—

प. दं. १. नेरइए णं भंते ! अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए वीईवएज्जा, अत्थेगइए नो वीईवएज्जा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—
'अत्थेगइए वीईवएज्जा, अत्थेगइए नो वीईवएज्जा ?'

उ. गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—
१. विग्गहगइसमावन्नगा य,
२. अविग्गहगइसमावन्नगा य।
१. तत्थ णं जे ते विग्गहगइसमावन्नए नेरइए से णं अगणिकायस्स मज्झंज्झेणं वीईवएज्जा।

प. भंते ! से णं तत्थ झियाएज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

२. तत्थ णं जे से अविग्गहगइसमावन्नए नेरइए से णं अगणिकायस्स मज्झंज्झेणं णो वीईवएज्जा।

११४. चौवीसदंडकों का अग्निकाय के मध्य में होकर गमन का प्ररूपण—

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक जीव अग्निकाय के मध्य में होकर जा सकता है ?

उ. गौतम ! कोई नैरयिक जा सकता है और कोई नहीं जा सकता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि—
'कोई नैरयिक जा सकता है और कोई नहीं जा सकता है ?'

उ. गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—
१. विग्रहगति समापन्नक,
२. अविग्रहगति समापन्नक।
१. उनमें से जो विग्रहगति समापन्नक नैरयिक हैं, वे अग्निकाय के मध्य में होकर जा सकते हैं।

प्र. भंते ! क्या (वे अग्नि के मध्य में से होकर जाते हुए) अग्नि से जल जाते हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि उन पर अग्निरूप शस्त्र नहीं चल सकता।

२. उनमें से जो अविग्रहगतिसमापन्नक नैरयिक हैं वे अग्निकाय के मध्य में होकर नहीं जा सकते, (क्योंकि नरक में बादर अग्नि नहीं होती)

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइए वीईवएज्जा, अत्थेगइए नो वीईवएज्जा।'

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'कोई नैरयिक जा सकता है और कोई नहीं जा सकता है।'

प. दं. २. असुरकुमारे णं भंते ! अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा ?

प्र. दं. २. भंते ! असुरकुमार देव अग्निकाय के मध्य में होकर जा सकता है ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए वीईवएज्जा, अत्थेगइए नो वीईवएज्जा।

उ. गौतम ! कोई जा सकता है और कोई नहीं जा सकता है।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगइए वीईवएज्जा, अत्थेगइए नो वीईवएज्जा ?'

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'कोई असुरकुमार अग्नि के मध्य में होकर जा सकता है और कोई नहीं जा सकता है ?'

उ. गोयमा ! असुरकुमारा दुविहा पन्नत्ता, तं जहा–

१. विग्गहगइसमावन्नगा य,

२. अविग्गहगइसमावन्नगा य।

१. तत्थ णं जे से विग्गहगइसमावन्नए असुरकुमारे से णं अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा।

उ. गौतम ! असुरकुमार दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. विग्रहगति समापन्नक,

२. अविग्रहगति समापन्नक।

१. उनमें से जो विग्रहगति समापन्नक असुरकुमार हैं, वे अग्निकाय के मध्य में होकर जा सकते हैं,

प. भंते ! से णं तत्थ झियाएज्जा ?

प्र. भंते ! क्या वे अग्नि से जल जाते हैं ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

उ. 'गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि उन पर अग्नि रूप शस्त्र असर नहीं करता।

२. तत्थ णं जे से अविग्गहगइसमावन्नए असुरकुमारे से णं अत्थेगइए अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा, अत्थेगइए नो वीईवएज्जा।

२. उनमें से जो अविग्रहगति समापन्नक असुरकुमार हैं, उनमें से कोई अग्नि के मध्य में होकर जा सकता है और कोई नहीं जा सकता है।

प. भंते ! जे णं वीईवएज्जा से णं तत्थ झियाएज्जा ?

प्र. भंते ! जो (असुरकुमार) अग्नि के मध्य में होकर जाता है तो क्या वह जल जाता है ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि उन पर अग्नि रूप शस्त्र का असर नहीं होता।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'अत्थेगईए वीईवएज्जा, अत्थेगईए नो वीईवएज्जा ?'

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'कोई असुरकुमार जा सकता है और कोई नहीं जा सकता है।'

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमारे,

दं. ३-११. इसी प्रकार (नागकुमार से) स्तनितकुमार पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. १२-१६. एगिंदिया जहा नेरइया,

दं. १२-१६. (पृथ्वीकाय से वनस्पतिकाय पर्यन्त) एकेन्द्रिय के लिए नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

प. दं. १७. बेइंदिया णं भंते ! अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा ?

प्र. दं. १७. भंते ! द्वीन्द्रिय जीव अग्निकाय के मध्य में से होकर जा सकते हैं ?

उ. गोयमा ! जहा असुरकुमारे तहा बेइंदिए वि, नवरं–

उ. गौतम ! जिस प्रकार असुरकुमारों के विषय में कहा उसी प्रकार द्वीन्द्रियों के लिए भी कहना चाहिए, विशेष–

प. भंते ! जे णं वीईवएज्जा से णं तत्थ झियाएज्जा ?

प्र. भंते ! जो द्वीन्द्रिय जीव अग्नि के बीच में होकर जाते हैं, क्या वे जल जाते हैं ?

उ. हंता, गोयमा ! झियाएज्जा।

सेसं तं चेव।

दं. १८-१९. एवं तेइंदिए चउरिंदिए वि।

उ. हाँ, गौतम ! वे जल जाते हैं।

शेष सभी पूर्ववत् जानना चाहिए।

दं. १८-१९. इसी प्रकार त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय के लिए भी जानना चाहिए।

प. दं. २०. पंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा ?

प्र. दं. २०. भंते ! पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव अग्नि के मध्य में से होकर जा सकता है ?

उ. गोयमा ! अत्थेगईए वीईवएज्जा, अत्थेगईए नो वीईवएज्जा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
पंचेंदियतिरिक्खजोणिए अत्थेगइए वीईवएज्जा, अत्थेगइए नो वीईवएज्जा?

उ. गोयमा ! पंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. विग्गहगइसमावन्नगा य,
२. अविग्गहगइतसमावन्नगा य।
विग्गहगइसमावन्नए जहेव नेरइए जाव नो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

अविग्गहगइसमावन्नगा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पन्नत्ता, तं जहा–
१. इड्ढिप्पत्ता य, २. अणिड्ढिप्पत्ता य।
१. तत्थ णं जे से इड्ढिप्पत्ते पंचेंदियतिरिक्खजोणिए से णं अत्थेगइए अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा, अत्थेगईए नो वीईवएज्जा।

प. भंते ! जे णं वीईवएज्जा से णं तत्थ झियाएज्जा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

२. तत्थ णं जे से अणिड्ढिप्पत्ते पंचेंदियतिरिक्खजोणिए से णं अत्थेगइए अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीईवएज्जा, अत्थेगईए नो वीईवएज्जा।

प. भंते ! जे णं वीईवएज्जा से णं तत्थ झियाएज्जा?

उ. हंता, गोयमा ! झियाएज्जा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'अत्थेगइए वीईवएज्जा अत्थेगईए नो वीईवएज्जा'।

दं. २१. एवं मणुस्से वि।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिए जहा असुरकुमारे। *–विया. स. १४, उ. ५, सु. १-९*

उ. गौतम ! कोई जा सकता है और कोई नहीं जा सकता है

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'कोई पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जा सकता है और कोई न जा सकता है।'

उ. गौतम ! पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव दो प्रकार के क गए हैं, यथा–
१. विग्रहगति समापन्नक,
२. अविग्रहगति समापन्नक।
विग्रहगति समापन्नक पञ्चेन्द्रिय तिर्यन्चयोनिकों का कथ नैरयिकों के समान उन पर शस्त्र असर नहीं करता पर्य कहना चाहिए।

अविग्रहगति समापन्नक पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दो प्रक के कहे गए हैं, यथा–
१. ऋद्धिप्राप्त २. अनृद्धिप्राप्त (ऋद्धिअप्राप्त
१. जो ऋद्धिप्राप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक हैं, उनमें कोई अग्नि के मध्य में होकर जा सकता है और को नहीं जा सकता है।

प्र. भंते ! जो अग्नि में होकर जाता है क्या वह जल जाता है

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है क्योंकि उस पर अग्नि रू शस्त्र असर नहीं करता।

२. जो ऋद्धि अप्राप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव उनमें से कोई अग्नि में होकर जा सकता है कोई नह जा सकता है।

प्र. भंते ! जो अग्नि में से होकर जा सकता है, क्या वह जल जाता है?

उ. हां गौतम ! वह जल जाता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'कोई अग्नि में से होकर जा सकता है और कोई नहीं जा सकता है।'

दं. २१. इसी प्रकार मनुष्य के लिए भी कहना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का कथन असुरकुमारों के समान करना चाहिए।

११५. चउवीसदंडएसु इट्ठाणिट्ठ पच्चणुभवमाण ठाणाणं संखा परूवणं–

दं. १. नेरइया दस ठाणाइं पच्चणुभवमाणा विहंरति, तं जहा–
१. अणिट्ठा सद्दा, २. अणिट्ठा रूवा, ३. अणिट्ठा गंधा,
४. अणिट्ठा रसा, ५. अणिट्ठा फासा, ६. अणिट्ठा गई,
७. अणिट्ठा ठिई, ८. अणिट्ठे लावण्णे, ९. अणिट्ठे जसोकित्ती,
१०. अणिट्ठे उट्ठाण-कम्म-बल-वीरिय-पुरिसक्कार परक्कमे।

११५. चौबीसदंडकों में इष्टानिष्टों के अनुभव स्थानों की संख्या का प्ररूपण–

दं. १. नैरयिक जीव इन दस स्थानों का अनुभव करते रहते हैं, यथा–
१. अनिष्ट शब्द २. अनिष्ट रूप ३. अनिष्ट गन्ध,
४. अनिष्ट रस, ५. अनिष्ट स्पर्श ६. अनिष्ट गति,
७. अनिष्ट स्थिति, ८. अनिष्ट लावण्य, ९. अनिष्ट यशः कीर्ति,
१०. अनिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम।

दं. २. असुरकुमारा दस ठाणाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा–

१. इट्ठा सद्दा, २. इट्ठा रूवा जाव

१० इट्ठे उट्ठाण-कम्म-बल-वीरिय-पुरिसक्कारपरक्कमे।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमारा।

दं. १२. पुढविकाइया छट्ठाणाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा–

१. इट्ठाणिट्ठा फासा, २. इट्ठाणिट्ठा गइ,

३. इट्ठाणिट्ठा ठिई, ४. इट्ठाणिट्ठे लावण्णे,

५. इट्ठाणिट्ठे जसोकित्ती,

६. इट्ठाणिट्ठे उट्ठाणे जाव परक्कमे।

दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइया।

दं. १७. वेइंदिया सत्तट्ठाणाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा–

१. इट्ठाणिट्ठा रसा, सेसं जहा एगिंदियाणं।

दं. १८. तेइंदिया णं अट्ठट्ठाणाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा–

१. इट्ठाणिट्ठा गंधा, सेसं जहा वेइन्दियाणं।

दं. १९. चउरिंदिया नवट्ठाणाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा–

इट्ठाणिट्ठा रूवा, सेसं जहा तेइंदियाणं।

दं. २०. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया दसट्ठाणाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा–

१. इट्ठाणिट्ठा सद्दा जाव १० इट्ठाणिट्ठे उट्ठाण-कम्म-बल-वीरिय पुरिसक्कारपरक्कमे

दं. २१. एवं मणुस्सा वि।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा। *–विया. स. १४, उ. ५, सु. १०-२०*

११६. जीवाणं जीवत्तस्स कायट्ठिई परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! जीवे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं।[1] *–पण्ण. प. १८, सु. १२६०*

११७. छव्विहविवक्खया संसारीजीवाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. पुढविकाइएणं भंते ! पुढविकाइएत्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं।

दं. २. असुरकुमार दस स्थानों का अनुभव करते रहते हैं, यथा–

१. इष्ट-शब्द, २. इष्ट रूप यावत्

१० इष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त (स्थान) जानना चाहिए।

दं. १२. पृथ्वीकायिक जीव छह स्थानों का अनुभव करते रहते हैं, यथा–

१. इष्ट अनिष्ट स्पर्श २. इष्ट-अनिष्ट गति,

३. इष्टानिष्ट स्थिति, ४. इष्टानिष्ट लावण्य,

५. इष्टानिष्ट यशःकीर्ति,

६. इष्टानिष्ट उत्थान यावत् पराक्रम।

दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवों पर्यन्त (छह स्थान) जानना चाहिए।

दं. १७. द्वीन्द्रिय जीव सात स्थानों का अनुभव करते रहते हैं, यथा–

१. इष्टानिष्ट रस और शेष छह स्थान पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीवों के समान कहना चाहिए।

दं. १८. त्रीन्द्रिय जीव आठ स्थानों का अनुभव करते रहते हैं, यथा–

१. इष्टानिष्ट गंध और शेष सात स्थान द्वीन्द्रिय जीवों के समान कहना चाहिए।

दं. १९. चतुरिन्द्रिय जीव नौ स्थानों का अनुभव करते रहते हैं। यथा–

इष्टानिष्ट रूप और शेष आठ स्थान त्रीन्द्रिय जीवों के समान कहना चाहिए।

दं. २०. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव दस स्थानों का अनुभव करते रहते हैं, यथा–

इष्टानिष्ट शब्द यावत् १० इष्टानिष्ट उत्थान कर्म, बल, वीर्य पुरुषकार पराक्रम।

दं. २१. इसी प्रकार मनुष्यों में (१० स्थान) कहने चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का कथन असुरकुमारों के समान करना चाहिए।

११६. जीवों के जीवत्व की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जीव कितने काल तक जीव रूप में रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) सदा काल रहता है।

११७. षड्विध विवक्षा से संसारी जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! सर्वकाल रहता है।

१. जीवा. पडि. ३, सु. १०१

एवं जाव तसकाइए --जीवा. पडि. ३, सु. १०१

११८. नवविह विवक्खया एगिंदियाइ जीवाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. एगिंदिए णं भंते ! एगिंदिएत्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

प. बेइंदिए णं भंते ! बेइंदिए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं[1] उक्कोसेणं संखेज्जं कालं।

एवं तेइंदिए वि[2] चउरिंदिए वि[3]।

प. णेरइए णं भंते ! णेरइए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।[4]

प. पंचेंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! पंचेंदियतिरिक्खजोणिए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडि पुहुत्तमब्भहियाइं।

एवं मणूसे वि।

देवा जहा णेरइया।

प. सिद्धे णं भंते ! सिद्धे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! साइए अपज्जवसिए। –जीवा. पडि. १, सु. २५६

११९. सकाइय अकाइय जीवाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. सकाइए णं भंते ! सकाइए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सकाइए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अणाईए वा अपज्जवसिए,

२. अणाईए वा सपज्जवसिए।

प. पुढविकाए णं भंते ! पुढविकाइए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा।

एवं आउ-तेउ-वाउक्काइया वि।

प. वणप्फइकाइया णं भंते ! वणप्फइकाए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं[5] अणंताओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ,

इसी प्रकार त्रसकाय पर्यन्त जानना चाहिए।

११८. नवविध विवक्षा से एकेन्द्रियादि जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय एकेन्द्रिय रूप में कितने काल तक रहता हो ?

उ. गौतग ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक रहता है।

प्र. भंते ! द्वीन्द्रिय द्वीन्द्रिय के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात काल तक रहता है।

त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

प्र. भंते! नैरयिक नैरयिक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतग ! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेंतीस सागरोपम तक रहता है।

प्र. भंते ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रहता है।

इसी प्रकार मनुष्य के लिए भी कहना चाहिए।

देवों का कथन नैरयिकों के समान करना चाहिए।

प्र. भंते ! सिद्ध, सिद्ध के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! सादि अपर्यवसित काल पर्यन्त रहता है।

११९. सकायिक-अकायिक जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! सकायिक जीव सकायिक रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! सकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अनादिअनन्त,

२. अनादि सान्त।

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिक रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक (अर्थात्) काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक और क्षेत्र से असंख्यात लोक तक रहता है।

इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. भंते ! वनस्पतिकायिक जीव वनस्पतिकायिक रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक अर्थात् कालतः अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी पर्यन्त

१. उत्त. अ. ३६, गा. १३३
२. उत्त. अ. ३६, गा. १४२
३. उत्त. अ. ३६, गा. १५२
४. उत्त. अ. ३६, गा. १६७
५. जीवा. पडि. ९. सु. २५८

खेत्तओ अणंता लोगा, असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागे[1]।

एवं क्षेत्रतः अनन्त लोक प्रमाण या असंख्यात पुद्गलपरावर्त समझना चाहिए। वे पुद्गलपरावर्त आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

प. तसकाइए णं भंते ! तसकाइए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भइयाइं[2]।

प. अकाइए णं भंते ! अकाइए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! अकाइए साईए अपज्जवसिए।

प. सकाइयअपज्जत्तए णं भंते ! सकाइय अपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

एवं जाव तसकाइय अपज्जत्तए।

प. सकाइय पज्जत्तए णं भंते ! सकाइय पज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहत्तं साइरेगं।

प. पुढविक्काइयपज्जत्तए णं भंते ! पुढविकाइयपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं वाससहस्साइं।

एवं आऊ वि।

प. तेउक्काइयपज्जत्तए णं भंते ! तेउक्काइय पज्जत्तएत्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं राइंदियाइं।

प. वाउक्काइय पज्जत्तए णं भंते ! वाउक्काइय पज्जत्तएत्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं वाससहस्साइं।

प. वणप्फइकायपज्जत्तए णं भंते ! वणप्फइकाइयपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं वाससहस्साइं।

प. तसकाइयपज्जत्तए णं भंते ! तसकाइयपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहत्तं।

प्र. भंते ! त्रसकायिक जीव त्रसकायिक रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट संख्यातवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम तक रहता है।

प्र. भंते ! अकायिक अकायिक रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! अकायिक सादि अनन्त काल तक रहता है।

प्र. भंते ! सकायिक अपर्याप्तक सकायिक अपर्याप्तक रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

इसी प्रकार त्रसकायिक अपर्याप्तक पर्यन्त समझना चाहिए।

प्र. भंते ! सकायिक पर्याप्तक सकायिक पर्याप्तक के रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपमशतपृथक्त्व तक रहता है।

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक पर्याप्तक पृथ्वीकायिक पर्याप्तक के रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों तक रहता है।

इसी प्रकार अप्कायिक पर्याप्तक के विषय में भी समझना चाहिए।

प्र. भंते ! तेजस्कायिक पर्याप्तक तेजस्कायिक पर्याप्तक के रूप में कितने काल रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट संख्यात रात्रि दिन तक रहता है।

प्र. भंते ! वायुकायिक पर्याप्तक वायुकायिक पर्याप्तक के रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों तक रहता है।

प्र. भंते ! वनस्पतिकायिक पर्याप्तक वनस्पतिकायिक पर्याप्तक के रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों तक रहता है।

प्र. भंते ! त्रसकायिक पर्याप्तक त्रसकायिक पर्याप्तक के रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम शतपृथक्त्व तक रहता है।

---

१. जीवा. पडि. ८, सु. २२८

२. जीवा. पडि. ५, सु. [illegible]

प. सुहुमे णं भंते ! सुहुमे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा।

सुहुमपुढविकाइए, सुहुमआउकाइए, सुहुमतेउकाइए, सुहुमवाउकाइए, सुहुमवणप्फइकाइए, सुहुमणिगोए वि जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, असंखेज्जाओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ खेत्तओ असंखेज्जा लोगा।

प. सुहुमे अपज्जत्तए णं भंते ! सुहुम अपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पुढविकाइय, आउकाइय, तेउकाइय, वाउकाइय वणस्सइकाइयाण य एवं चेव।

पज्जत्तयाण वि एवं चेव[1]।

प. बादरे णं भंते ! बादरे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, असंखेज्जाओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइ भागं।

प. बादरपुढविकाइए णं भंते ! बादरपुढविकाइए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ।

एवं बादर आउकाइए वि, बादर तेउकाइए वि, बादर वाउकाइए वि।

प. बादरवणस्सइकाइए णं भंते ! बादर वणस्सइकाइए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, असंखेज्जाओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

प. पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइए णं भंते ! पत्तेयसरीर बादरवणप्फइकाइए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ।

प्र. भंते ! सूक्ष्म जीव सूक्ष्म रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट असंख्यातकाल तक (अर्थात्) कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक और क्षेत्रतः असंख्यातलोक तक सूक्ष्म जीव सूक्ष्मपर्याय में रहता है।

इसी प्रकार सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एवं सूक्ष्म निगोद भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट असंख्यातकाल तक (अर्थात्) कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक एवं क्षेत्रतः असंख्यात लोक तक ये सूक्ष्म पृथ्वी आदि के रूप में रहते हैं।

प्र. भंते ! सूक्ष्म अपर्याप्तक, सूक्ष्म अपर्याप्तक रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

(सूक्ष्म) पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक (अपर्याप्तक की कायस्थिति) के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

(इन पूर्वोक्त) सूक्ष्म पृथ्वीकायिकादि के (पर्याप्तकों के विषय में भी ऐसा ही) समझना चाहिए।

प्र. भंते ! बादर जीव बादर जीव के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक (अर्थात्) कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक, क्षेत्रतः अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र प्रमाण है ?

प्र. भंते ! बादर पृथ्वीकायिक बादर पृथ्वीकायिक के रूप में कितने काल तक रहता है।

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट सत्तर कोटाकोटी सागरोपम तक रहता है।

इसी प्रकार बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक, बादर वायुकायिक के विषय में भी समझना चाहिए।

प्र. भंते ! बादर वनस्पतिकायिक बादर वनस्पतिकायिक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक (अर्थात्) कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक, क्षेत्रतः अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र प्रमाण है।

प्र. भंते ! प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर बादरवनस्पतिकायिक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट सत्तर कोटाकोटी सागरोपम तक रहता है।

१. जीवा. पडि. ५, सु. २१५

प. णिगोए णं भंते ! णिगोए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं अणंताओ उस्सप्पिणी ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अड्ढाइज्जा पोग्गलपरियट्टा।

प. बादर निगोदे णं भंते ! बादर निगोदे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ[1]।

प. बादरतसकाइए णं भंते ! बादरतसकाइए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भइयाइं।

एएसिं चेव अपज्जत्तगा सव्वे वि जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. बादरपज्जत्तए णं भंते ! बादरपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवम-सयपुहुत्तं साइरेगं।

प. बादरपुढविकाइय पज्जत्तए णं भंते ! बादर पुढविकाइय पज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं वाससहस्साइं।

एवं आउकाइए वि।

प. तेउकाइयपज्जत्तए णं भंते ! तेउकाइयपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं राइंदियाइं।

प. वाउक्काइए वणप्फइकाइए पत्तेयसरीरबायरवणप्फइ-काइए णं भंते ! वाउक्काइए त्ति वणप्फइकाइए त्ति पत्तेयसरीरबायर वणप्फइकाइए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं वाससहस्साइं।

प. णिगोयपज्जत्तए बादर णिगोयपज्जत्तए णं भंते ! णिगोयपज्जत्तए त्ति बादर णिगोय पज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! दोण्णि वि जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. बादरतसकाइयपज्जत्तए णं भंते ! बादरतसकाइय-पज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवम-सयपुहुत्तं साइरेगं[2]।

पण्ण. प. १८, सु. १२८५-१३२०

प्र. भंते ! निगोद का जीव निगोद के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक कालतः अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक, क्षेत्रतः अढाई पुद्गलपरावर्त्त पर्यन्त रहता है।

प्र. भंते ! बादर निगोद जीव बादर निगोद के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट सत्तर कोटाकोटी सागरोपम तक रहता है।

प्र. भंते ! बादर त्रसकायिक बादर त्रसकायिक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट संख्यातवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम तक रहता है।

इन (पूर्वोक्त) सभी (बादर जीवों) के अपर्याप्तक जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त काल तक उसी रूप में रहते हैं।

प्र. भंते ! बादर पर्याप्तक बादर पर्याप्तक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपमशतपृथक्त्व तक रहता है।

प्र. भंते ! बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों तक रहता है।

इसी प्रकार (बादर) अप्कायिक के विषय में भी समझना चाहिए।

प्र. भंते ! तेजस्कायिक पर्याप्तक तेजस्कायिक पर्याप्तक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट संख्यात रात्रि दिवस तक रहता है।

प्र. भंते ! वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक (पर्याप्तक) वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों तक रहता है।

प्र. भंते ! निगोद पर्याप्तक और बादर निगोद पर्याप्तक कितने काल तक निगोद पर्याप्तक और बादर निगोद पर्याप्तक के रूप में कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! ये दोनों जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं।

प्र. भंते ! बादर त्रसकायिक पर्याप्तक बादर त्रसकायिक पर्याप्तक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम शत पृथक्त्व तक रहता है।

---

1. जीवा. पडि. ५, सु. २९९
2. जीवा. पडि ५, सु २४१

१२०. तस थावराणं कायट्ठिई परूवणं–

प. थावरे णं भंते ! थावरे त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतकालं अणंताओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ कालओ खेत्तओ अणंता लोया असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, तेणं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो।

प. तसे णं भंते ! तसे त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जकालं, असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा[1]।

–जीवा. पडि, १, सु. ४३

१२०. त्रस और स्थावरों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! स्थावर जीव स्थावर के रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट अनंतकाल तक अर्थात् अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल, क्षेत्र से अनन्त लोक, असंख्यात पुद्‌गलपरावर्तन अर्थात् आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय होते हैं, उतने पुद्‌गलपरावर्तन पर्यन्त रहता है।

प्र. भंते ! त्रस जीव त्रस के रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट से असंख्यात काल अर्थात् असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल, क्षेत्र से असंख्यात लोक प्रमाण है। (तेउकाय वाउकाय की अपेक्षा)

१२१. पज्जत्ताइ जीवाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. पज्जत्तए णं भंते ! पज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहत्तं साइरेगं।

प. अपज्जत्तए णं भंते ! अपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. णोपज्जत्तए णोअपज्जत्तए णं भंते ! णो पज्जत्तए णो अपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! साईए अपज्जवसिए[2]।

–पण्ण. प. १८, सु. १३८३-१३८५

१२१. पर्याप्तादि जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! पर्याप्तक जीव पर्याप्तक रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम शतपृथक्त्व तक रहता है।

प्र. भंते ! अपर्याप्तक जीव अपर्याप्तक रूप में कितने तक रहता है?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

प्र. भंते ! नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव नोपर्याप्तक नो-अपर्याप्तक रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! सादि अपर्यवसित काल तक रहता है।

१२२. सुहुमाई जीवाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. सुहुमे णं भंते ! सुहुमे त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुढविकालो।

प. बादरे णं भंते ! बादरे त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्ज कालं, असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओ ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागे।

प. णो सुहुम णो बायरे णं भंते ! णो सुहुम णो बायरे त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! साईए अपज्जवसिए[3]।

–पण्ण. प. १८, सु. १३८६-१३८८

१२२. सूक्ष्मादि जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! सूक्ष्म जीव सूक्ष्म रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट पृथ्वीकाल तक रहता है।

प्र. भंते ! बादर जीव बादर रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट असंख्यातकाल तक अर्थात् कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल तथा क्षेत्रतः अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र प्रमाण है।

प्र. भंते ! नो सूक्ष्म नो बादर जीव नो सूक्ष्म नो बादर रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! सादि अपर्यवसित काल तक रहता है।

१२३. तसाई जीवाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. तसे णं भंते ! तसेत्ति कालओ केवचिरं होइ?

१२३. त्रसादि जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! त्रस जीव त्रस के रूप में कितने काल तक रहता है?

---

१. यहाँ त्रस की कायस्थिति में तेउकाय वायुकाय भी शामिल गिने गये हैं।

२. जीवा. पडि. ९, सु. २३९

३. जीवा. पडि. ९, सु. २४०

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं साइरेगाइं।

थावरस्स संचिट्ठणा वणस्सइकालो।

णोतसा-णोथावरा साइअपज्जवसिया।

–जीवा. पडि. ९, सु. २४३

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो हजार सागरोपम तक रहता है।

स्थावर, स्थावर के रूप में वनस्पतिकाल पर्यन्त रहता है।

नोत्रस-नोस्थावर सादि अपर्यवसित हैं।

१२४. परित्ताइ जीवाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. परित्ते णं भंते ! परित्ते त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! परित्ते दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कायपरित्ते य २. संसारपरित्ते य।

प. कायपरित्ते णं भंते ! कायपरित्ते त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुढविकालो असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी ओसप्पिणीओ।

प. संसारपरित्ते णं भंते ! संसार परित्ते त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतकालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।

प. अपरित्ते णं भंते ! अपरित्ते त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! अपरित्ते दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कायअपरित्ते य, २. संसारअपरित्ते य।

प. कायअपरित्ते णं भंते ! कायअपरित्ते त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणप्फइकालो।

प. संसारअपरित्ते णं भंते ! संसार अपरित्ते त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! संसार अपरित्ते दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अणाइए अपज्जवसिए,

२. अणाईए सपज्जवसिए।

प. णोपरित्ते णोअपरित्ते णं भंते ! णो परित्ते णो अपरित्ते त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! साईए अपज्जवसिए।[1]

–पण्ण. प. १८, सु. १३७८-१३८२

१२४. परीत आदि जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परीत (परिमित करने वाला) जीव कितने काल तक परीतरूप में रहता है?

उ. गौतम ! परीत दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कायपरीत, २. संसारपरीत।

प्र. भंते ! कायपरीत कितने काल तक कायपरीत रूप में रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट पृथ्वीकाल तक, (अर्थात्) असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल तक रहता है।

प्र. भंते ! संसारपरीत जीव कितने काल तक संसारपरीत रूप में रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक यावत् देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्तन पर्यंत रहता है।

प्र. भंते ! अपरीत जीव कितने काल तक अपरीत रूप में रहता है?

उ. गौतम ! अपरीत दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. काय अपरीत, २. संसार अपरीत।

प्र. भंते ! काय अपरीत कितने काल तक काय अपरीत रूप में रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल अर्थात् अनन्त काल तक रहता है।

प्र. भंते ! संसार अपरीत कितने काल तक संसार अपरीत रूप में रहता है?

उ. गौतम ! संसार अपरीत दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अनादि अपर्यवसित,

२. अनादि सपर्यवसित।

प्र. भंते ! नोपरीत नोअपरीत कितने काल तक नोपरीत नोअपरीत रूप में रहता है?

उ. गौतम ! वह सादि अपर्यवसित काल तक रहता है।

१२५. भवसिद्धिया जीवाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. भवसिद्धिए णं भंते ! भवसिद्धिए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! अणाईए सपज्जवसिए।

१२५. भवसिद्धिकादि जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! भवसिद्धिक (भव्य) जीव कितने काल तक भवसिद्धिक रूप में रहता है?

उ. गौतम ! (वह) अनादि सपर्यवसित काल तक रहता है।

---

१. जीवा. पडि. ९, सु. २४८

प. अभवसिद्धिए णं भंते ! अभवसिद्धिए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! अणाईए अपज्जवसिए।

प. णोभवसिद्धिए णोअभवसिद्धिए णं भंते ! णोभवसिद्धिए णो अभवसिद्धिए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! साईए अपज्जवसिए[1]।

–पण्ण. प. १८, सु. १३९२-१३९४

प्र. भंते ! अभवसिद्धिक (अभव्य) जीव कितने काल तक अभवसिद्धिकरूप में रहता है?

उ. गौतम ! (वह) अनादि अपर्यवसित काल तक रहता है।

प्र. भंते ! नोभवसिद्धिक नोअभवसिद्धिक जीव कितने काल तक नोभवसिद्धिक नोअभवसिद्धिक रूप में रहता है?

उ. गौतम ! (वह) सादि अपर्यवसित काल तक रहता है।

१२६. नवविह विवक्खया एगिंदियाइ जीवाणं अन्तरकाल-परूवणं–

प. एगिंदियस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं।

प. बेइंदियस्स णं भंते ! अंतरं कालो केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो[2]।

एवं तेइदियस्सवि[3] चउरिंदियस्सवि[4] णेरइयस्सवि[5] पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्सवि[6] मणूसस्सवि[7] देवस्सवि[8] सव्वेसिं एवं अंतरं भाणियव्वं।

प. सिद्धस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

–जीवा. पडि. ९, सु. २५६

१२६. नव प्रकार की विवक्षा से एकेन्द्रियादि जीवों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय का काल की अपेक्षा अन्तर कितना है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है।

प्र. भंते ! द्वीन्द्रिय का काल की अपेक्षा अन्तर कितना है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नैरयिक, पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्च योनिक, मनुष्य और देव सबका अंतर इतना ही कहना चाहिए।

प्र. भंते ! सिद्ध का काल की अपेक्षा अंतर कितना है?

उ. गौतम ! सादि अपर्यवसित होने से उनका अन्तर नहीं है।

१२७. जीवाणं दसविह विवक्खया अन्तर काल-परूवणं–

प. पुढविकाइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

एवं आउकाइयस्स तेउकाइयस्स वाउकाइयस्स।

प. वणस्सइकाइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं जाव असंखेज्जा लोया।

बिय-तिय-चउरिंदिया पंचेंदियाणं एएसिं चउण्हंपि अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

प. अणिंदियस्स णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

१२७. दस प्रकार की विवक्षा से जीवों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक का काल की अपेक्षा अंतर कितना है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक, और वायुकायिक का भी अन्तर जानना चाहिए।

प्र. भंते! वनस्पतिकायिक का काल की अपेक्षा अंतर कितना है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल यावत् असंख्यात लोक प्रमाण है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय इन चारों का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

प्र. भंते ! अनिन्द्रिय का काल की अपेक्षा अंतर कितना है?

उ. गौतम ! सादि अपर्यवसित होने से अन्तर नहीं है।

---

१. जीवा. पडि. ९, सु. २४२
२. उत्त. अ. ३६, गा. १३४
३. उत्त. अ. ३६, गा. १४३
४. उत्त. अ. ३६, गा. १५३
५. उत्त. अ. ३६, गा. १६८
६. (क) उत्त. अ. ३६, गा. १७७
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. १८६
(ग) उत्त. अ. ३६, गा. १९३
७. उत्त. अ. ३६, गा. २०२
८. उत्त. अ. ३६, गा. २४६

१२८. जीवाणं पढमापढमसमय विवक्खया अंतरकाल परूवणं–

प. पढमसमय एगिंदियाणं केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समयूणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

अपढमसमय एगिंदियाणं अंतरं जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणाइं समयाहियं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्महियाइं।

सेसाणं सव्वेसिं पढमसमयिकाणं अंतरं जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं समयूणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

अपढमसमयिकाणं सेसाणं जहण्णेणं खुड्डाग भवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

–जीवा पडि. ९, सु. २३०

१२८. प्रथमाप्रथम समय की विवक्षा से जीवों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! प्रथमसमयएकेन्द्रियों का कितने काल का अंतर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयएकेन्द्रिय का जघन्य अन्तर एक समय अधिक एक क्षुल्लकभव ग्रहण और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है।

शेष सब प्रथमसमयिकों का अन्तर जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

शेष अप्रथमसमयिकों का अन्तर जघन्य समयाधिक एक क्षुल्लकभव ग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

१२९. छज्जीवनिकायाणं अंतरकाल परूवणं–

प. पुढविकाइयस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणप्फइकालो।[1]

एवं आउ[2]-तेउ[3]-वाउकाइयाणं वणस्सइकालो[4]।

तसकाइयाण वि वणस्सइकाइयस्स पुढवीकाइयकालो[5]।

एवं अपज्जत्तगाणंवि वणस्सइकालो,

वणस्सईणं पुढविकालो। पज्जत्तगाणवि एवं चेव वणस्सइकालो, पज्जत्तवणस्सईणं पुढविकालो।

–जीवा. पडि. ५, सु. २१२

१२९. षड्जीवनिकायिकों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! पृथ्वीकाय का कितने काल का अंतर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

इसी प्रकार अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय का भी अन्तर वनस्पतिकाल है।

त्रसकायिकों का अन्तर भी वनस्पतिकाल है। वनस्पतिकाय का अंतर पृथ्वीकायिक (कायस्थिति) कालप्रमाण है।

इसी प्रकार अपर्याप्तकों का अन्तरकाल वनस्पतिकाल है।

अपर्याप्त वनस्पति का अन्तर पृथ्वीकाल है। पर्याप्तकों का अन्तर वनस्पतिकाल है। पर्याप्त वनस्पति का अन्तर पृथ्वीकाल है।

१३०. तस थावराणं अंतरकाल परूवणं–

प. थावरस्स णं भंते ! केवइकालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा।

प. तसस्स णं भंते ! केवइकालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो। –जीवा. पडि. १, सु. ४३

१३०. त्रस और स्थावरों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! स्थावर का कितने काल का अन्तर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल अर्थात् असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल, क्षेत्र से असंख्यातलोक प्रमाण है। (तेउकाय वायुकाय की अपेक्षा)

प्र. भंते ! त्रस का कितने काल का अन्तर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

१३१. सुहुमाणं अंतरकाल परूवणं–

प. सुहुमस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, कालओ असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी ओसप्पिणीओ, खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागो।

१३१. सूक्ष्मों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! सूक्ष्म का कितने काल का अन्तर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल है [illegible]

---

१. उत्त. अ. ३६, गा. ८२
२. उत्त. अ. ३६, गा. ९०
३. उत्त. अ. ३६, गा. ११५
४. उत्त. अ. ३६, गा. १२४
५. (क) [illegible]
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. [illegible]

प. अभवसिद्धिए णं भंते ! अभवसिद्धिए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! अणाईए अपज्जवसिए।

प. णोभवसिद्धिए णोअभवसिद्धिए णं भंते ! णोभवसिद्धिए णो अभवसिद्धिए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! साईए अपज्जवसिए[1]।

—पण्ण. प. १८, सु. १३१२-१३१४

प्र. भंते ! अभवसिद्धिक (अभव्य) जीव कितने काल तक अभवसिद्धिकरूप में रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) अनादि अपर्यवसित काल तक रहता है।

प्र. भंते ! नोभवसिद्धिक नोअभवसिद्धिक जीव कितने काल तक नोभवसिद्धिक नोअभवसिद्धिक रूप में रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) सादि अपर्यवसित काल तक रहता है।

१२६. नवविह विवक्खया एगिंदियाइ जीवाणं अन्तरकाल-परूवणं–

प. एगिंदियस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं।

प. बेइंदियस्स णं भंते ! अंतरं कालो केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो[2]।

एवं तेइंदियस्सवि[3] चउरिंदियस्सवि[4] णेरइयस्सवि[5] पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्सवि[6] मणूसस्सवि[7] देवस्सवि[8] सव्वेसिं एवं अंतरं भाणियव्वं।

प. सिद्धस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

—जीवा. पडि. ९, सु. २५६

१२६. नव प्रकार की विवक्षा से एकेन्द्रियादि जीवों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय का काल की अपेक्षा अन्तर कितना है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है।

प्र. भंते ! द्वीन्द्रिय का काल की अपेक्षा अन्तर कितना है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नैरयिक, पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्च योनिक, मनुष्य और देव सबका अंतर इतना ही कहना चाहिए।

प्र. भंते ! सिद्ध का काल की अपेक्षा अंतर कितना है ?

उ. गौतम ! सादि अपर्यवसित होने से उनका अन्तर नहीं है।

१२७. जीवाणं दसविह विवक्खया अन्तर काल-परूवणं–

प. पुढविकाइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

एवं आउकाइयस्स तेउकाइयस्स वाउकाइयस्स।

प. वणस्सइकाइयस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं जाव असंखेज्जा लोया।

बिय-तिय-चउरिंदिया पंचेंदियाणं एएसिं चउण्हंपि अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

प. अणिंदियस्स णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।

१२७. दस प्रकार की विवक्षा से जीवों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक का काल की अपेक्षा अंतर कितना है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक, और वायुकायिक का भी अन्तर जानना चाहिए।

प्र. भंते! वनस्पतिकायिक का काल की अपेक्षा अंतर कितना है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल यावत् असंख्यात लोक प्रमाण है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय इन चारों का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

प्र. भंते ! अनिन्द्रिय का काल की अपेक्षा अंतर कितना है ?

उ. गौतम ! सादि अपर्यवसित होने से अन्तर नहीं है।

---

१. जीवा. पडि. ९, सु. २४२
२. उत्त. अ. ३६, गा. १३४
३. उत्त. अ. ३६, गा. १४३
४. उत्त. अ. ३६, गा. १५३
५. उत्त. अ. ३६, गा. १६८
६. (क) उत्त. अ. ३६, गा. १७७
   (ख) उत्त. अ. ३६, गा. १८६
   (ग) उत्त. अ. ३६, गा. १९३
७. उत्त. अ. ३६, गा. २०२
८. उत्त. अ. ३६, गा. २४६

१२८. जीवाणं पढमापढमसमय विवक्खया अंतरकाल परूवणं–

प. पढमसमय एगिंदियाणं केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समयूणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

अपढमसमय एगिंदियाणं अंतरं जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणाइं समयाहियं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं।

सेसाणं सव्वेसिं पढमसमयिकाणं अंतरं जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं समयूणाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

अपढमसमयिकाणं सेसाणं जहण्णेणं खुड्डाग भवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

–जीवा पडि. ९, सु. २३०

१२८. प्रथमाप्रथम समय की विवक्षा से जीवों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! प्रथमसमयएकेन्द्रियों का कितने काल का अंतर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

अप्रथमसमयएकेन्द्रिय का जघन्य अन्तर एक समय अधिक एक क्षुल्लकभव ग्रहण और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है।

शेष सब प्रथमसमयिकों का अन्तर जघन्य एक समय कम दो क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

शेष अप्रथमसमयिकों का अन्तर जघन्य समयाधिक एक क्षुल्लकभव ग्रहण और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

१२९. छज्जीवनिकायाणं अंतरकाल परूवणं–

प. पुढविकाइयस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणप्फइकालो।[1]

एवं आउ[2]-तेउ[3]-वाउकाइयाणं वणस्सइकालो[4]।

तसकाइयाण वि वणस्सइकाइयस्स पुढवीकाइयकालो[5]।

एवं अपज्जत्तगाणंवि वणस्सइकालो,

वणस्सईणं पुढविकालो। पज्जत्तगाणवि एवं चेव वणस्सइकालो, पज्जत्तवणस्सईणं पुढविकालो।

–जीवा. पडि. ५, सु. २१२

१२९. षड्जीवनिकायिकों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! पृथ्वीकाय का कितने काल का अंतर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

इसी प्रकार अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय का भी अन्तर वनस्पतिकाल है।

त्रसकायिकों का अन्तर भी वनस्पतिकाल है। वनस्पतिकाय का अंतर पृथ्वीकायिक (कायस्थिति) कालप्रमाण है।

इसी प्रकार अपर्याप्तकों का अन्तरकाल वनस्पतिकाल है।

अपर्याप्त वनस्पति का अन्तर पृथ्वीकाल है। पर्याप्तकों का अन्तर वनस्पतिकाल है। पर्याप्त वनस्पति का अन्तर पृथ्वीकाल है।

१३०. तस थावराणं अंतरकाल परूवणं–

प. थावरस्स णं भंते ! केवइकालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा।

प. तसस्स णं भंते ! केवइकालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

–जीवा. पडि. १, सु. ४३

१३०. त्रस और स्थावरों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! स्थावर का कितने काल का अन्तर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल अर्थात् असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल, क्षेत्र से असंख्यातलोक प्रमाण है। (तेउकाय वायुकाय की अपेक्षा)

प्र. भंते ! त्रस का कितने काल का अन्तर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

१३१. सुहुमाणं अंतरकाल परूवणं–

प. सुहुमस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, कालओ असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी ओसप्पिणीओ, खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागो।

१३१. सूक्ष्मों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! सूक्ष्म का कितने काल का अंतर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल है। अर्थात् असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल प्रमाण है तथा क्षेत्र की अपेक्षा अंगुल के असंख्यातवें भाग जितना आकाश प्रदेशों प्रमाण है।

---

१. उत्त. अ. ३६, गा. ८२
२. उत्त. अ. ३६, गा. ९०
३. उत्त. अ. ३६, गा. ११५
४. उत्त. अ. ३६, गा. १२४
५. (क) अंतरं सव्वेसिं अणंतकालं वणस्सइकाइयाणं असंखेज्जकालं –जीवा. पडि. ६ सु. २२८
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. १०४

सुहुमवणस्सइकाइयस्स सुहुमणिगोदस्सवि एवं चेव जाव खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागो।

पुढविकाइयाईणं वणस्सइकालो।

एवं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाण वि।

–जीवा. पडि. ५, सु. २१६

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोद का अन्तर भी इतना ही है यावत् क्षेत्र की अपेक्षा अंगुल के असंख्यातवें भाग जितना आकाश प्रदेशों प्रमाण है।

पृथ्वीकायिकों आदि का अंतर वनस्पतिकाल है।

इसी प्रकार अपर्याप्तकों पर्याप्तकों का अंतर काल जानना चाहिए।

१३२. बायराणं अंतरकाल परूवणं–

अंतरं बायरस्स, बायरवणस्सइस्स, णिओदस्स, बादरणिओदस्स एएसिं चउण्हवि पुढविकालो जाव असंखेज्जा लोया,

सेसाणं वणस्सइकालो।

एवं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाण वि अंतरं[1]।

–जीवा. पडि. ५, सु. २२०

१३२. वादरों के अंतरकाल का प्ररूपण–

औधिक वादर, वादर वनस्पति, निगोद और वादर निगोद इन चारों का अन्तरकाल पृथ्वीकाल के बराबर है यावत् क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात लोकाकाश के प्रदेशों प्रमाण है।

शेष–(वादर पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक इन छहों) का अन्तर वनस्पतिकाल जानना चाहिए।

इसी प्रकार वादर पृथ्वीकायिकों के पर्याप्तक और अपर्याप्तकों का अंतर जानना चाहिए।

१३३. तसाईणं अंतरकाल परूवणं–

तसस्स अंतरं वणस्सइकालो।

थावरस्स अंतरं दो सागरोवमसहस्साइं साइरेगाइं।

णोतस-णोथावरस्स णत्थि अंतरं।

–जीवा. पडि. ९, सु. २४३

१३३. त्रस आदि के अंतरकाल का प्ररूपण–

त्रस का अन्तर वनस्पतिकाल है।

स्थावर का अन्तर कुछ अधिक दो हजार सागरोपम है।

नोत्रस-नोस्थावर का अन्तर नहीं है।

१३४. सुहुमाईणं अंतरकाल परूवणं–

सुहुमस्स अंतरं बायरकालो।

बायरस्स अंतरं सुहुमकालो।

तइयस्स नो सुहुम नो बायरस्स णत्थि अंतरं।

–जीवा. पडि. ९, सु. २४०

१३४. सूक्ष्मादि के अंतरकाल का प्ररूपण–

सूक्ष्म का अन्तर बादरकाल है।

बादर का अन्तर सूक्ष्मकाल है।

तीसरे नोसूक्ष्म नोबादर का अन्तर नहीं है।

१३५. पज्जत्तगाईणं अंतरकाल परूवणं–

पज्जत्तगस्स अंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

अपज्जत्तगस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं,

तइयस्स णत्थि अंतरं। *–जीवा. पडि. ९, सु. २३९*

१३५. पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के अंतरकाल का प्ररूपण–

पर्याप्तक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त है।

अपर्याप्तक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साधिक सागरोपम शतपृथक्त्व है।

तृतीय (नोपर्याप्तक) नोअपर्याप्तक का अन्तर नहीं है।

१३६. सिद्धासिद्ध जीवाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! सिद्धाणं असिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सिद्धा,

२. असिद्धा अणंतगुणा।

–जीवा. पडि. ९, सु. २३१

१३६. सिद्ध-असिद्ध जीवों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन सिद्धों और असिद्धों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सिद्ध हैं,

२. उनसे असिद्ध अनन्तगुणे हैं।

१३७. दिसाणुवाएणं संसारीसिद्ध जीवाणं अप्पबहुत्तं–

दिसाणुवाए णं–

१. सव्वत्थोवा जीवा पच्चत्थिमेणं,

१३७. दिशाओं की अपेक्षा संसारी सिद्ध जीवों का अल्पबहुत्व–

दिशाओं की अपेक्षा–

१. सबसे अल्प जीव पश्चिम दिशा में हैं,

---

१. ओहे य वायरतरु, ओघनिगोदे बायरणिओए य।
कालमसंखेज्जं अंतरं, सेसाणं वणस्सइकालो ॥१॥

२. पुरत्थिमे णं विसेसाहिया,
३. दाहिणे णं विसेसाहिया,
४. उत्तरे णं विसेसाहिया।

१. दिसाणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा पुढविकाइया दाहिणे णं,
२. उत्तरे णं विसेसाहिया,
३. पुरत्थिमे णं विसेसाहिया,
४. पच्चत्थिमे णं विसेसाहिया।

२. दिसाणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा आउक्काइया पच्चत्थिमे णं,
२. पुरत्थिमे णं विसेसाहिया,
३. दाहिणे णं विसेसाहिया,
४. उत्तरे णं विसेसाहिया।

३. दिसाणुवाए णं–
१-२. सव्वत्थोवा तेउक्काइया दाहिणुत्तरे णं,
३. पुरत्थिमे णं संखेज्जगुणा,
४. पच्चत्थिमे णं विसेसाहिया।

४. दिसाणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा वाउक्काइया पुरत्थिमे णं,
२. पच्चत्थिमे णं विसेसाहिया,
३. उत्तरे णं विसेसाहिया,
४. दाहिणे णं विसेसाहिया।

५. दिसाणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा वणस्सइक्काइया पच्चत्थिमे णं,
२. पुरत्थिमे णं विसेसाहिया,
३. दाहिणे णं विसेसाहिया,
४. उत्तरे णं विसेसाहिया।

१. दिसाणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा बेइंदिया पच्चत्थिमे णं,
२. पुरत्थिमे णं विसेसाहिया,
३. दाहिणे णं विसेसाहिया,
४. उत्तरे णं विसेसाहिया।

२. दिसाणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा तेइंदिया पच्चत्थिमे णं,
२. पुरत्थिमे णं विसेसाहिया,
३. दाहिणे णं विसेसाहिया,
४. उत्तरे णं विसेसाहिया।

३. दिसाणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा चउरिंदिया पच्चत्थिमे णं,
२. पुरत्थिमे णं विसेसाहिया,

२. (उनसे) पूर्वदिशा में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) दक्षिणदिशा में विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) उत्तरदिशा में विशेषाधिक हैं।

१. दिशाओं की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प पृथ्वीकायिक जीव दक्षिणदिशा में हैं,
२. (उनसे) उत्तरदिशा में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) पूर्वदिशा में विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) पश्चिम दिशा में विशेषाधिक है।

२. दिशाओं की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प अप्कायिक जीव पश्चिम दिशा में हैं,
२. (उनसे) पूर्वदिशा में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) उत्तरदिशा में विशेषाधिक हैं।

३. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२. सबसे अल्प तेजस्कायिक जीव दक्षिण और उत्तर दिशा में हैं,
३. (उनसे) पूर्व में संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) पश्चिम में विशेषाधिक हैं।

४. दिशाओं की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प वायुकायिक जीव पूर्वदिशा में हैं।
२. (उनसे) पश्चिम दिशा में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) उत्तर दिशा में विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं।

५. दिशाओं की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प वनस्पतिकायिक जीव पश्चिम दिशा में हैं।
२. (उनसे) पूर्व दिशा में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) उत्तर दिशा में विशेषाधिक हैं।

१. दिशाओं की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प द्वीन्द्रिय जीव पश्चिम दिशा में हैं।
२. (उनसे) पूर्व दिशा में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) उत्तर दिशा में विशेषाधिक हैं।

२. दिशाओं की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प त्रीन्द्रिय जीव पश्चिम दिशा में हैं।
२. (उनसे) पूर्व दिशा में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) उत्तर दिशा में विशेषाधिक हैं।

३. दिशाओं की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय जीव पश्चिम दिशा में हैं।
२. (उनसे) पूर्व दिशा में विशेषाधिक हैं,

३. दाहिणे णं विसेसाहिया,
४. उत्तरे णं विसेसाहिया।

१. दिसाणुवाए णं–
१-२-३. सव्वत्थोवा नेरइया पुरत्थिमे-पच्चत्थिमे-उत्तरे णं,
४. दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

२. दिसाणुवाए णं–
१-२-३. सव्वत्थोवा रयणप्पभापुढविणेरइया पुरत्थिमे-पच्चत्थिमे-उत्तरे णं,
४. दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

३. दिसाणुवाए णं–
१-२-३. सव्वत्थोवा सक्करप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिमे- पच्चत्थिमे-उत्तरे णं,
४. दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

४. दिसाणुवाए णं–
१-२-३. सव्वत्थोवा बालुयप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिमे-पच्चत्थिमे-उत्तरे णं,
४. दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

५. दिसाणुवाए णं–
१-२-३. सव्वत्थोवा पंकप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिमे-पच्चत्थिमे-उत्तरे णं,
४. दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

६. दिसाणुवाए णं–
१-२-३. सव्वत्थोवा धूमप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिमे-पच्चत्थिमे-उत्तरे णं,
४. दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

७. दिसाणुवाए णं–
१-२-३.. सव्वत्थोवा तमप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिमे-पच्चत्थिमे-उत्तरे णं,
४. दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

८. दिसाणुवाए णं–
१-२-३. सव्वत्थोवा अहेसत्तमापुढविनेरइया पुरत्थिमे-पच्चत्थिमे-उत्तरे णं,
४. दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

दाहिणिल्लेहिंतो अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो **छट्ठीए तमाए पुढवीए** नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरे णं असंखेज्जगुणा, दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

दाहिणिल्लेहिंतो तमापुढविनेरइएहिंतो **पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए** नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरे णं असंखेज्जगुणा, दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

३. (उनसे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) उत्तर दिशा में विशेषाधिक हैं।

१. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२-३. सबसे अल्प नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं।

२. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२-३. सबसे अल्प रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में असंख्यातगुणे हैं।

३. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२-३. सबसे अल्प शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में असंख्यातगुणे हैं।

४. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२-३. सबसे अल्प वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में असंख्यातगुणे हैं।

५. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२-३. सबसे अल्प पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं।
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में असंख्यातगुणे हैं।

६. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२-३. सबसे अल्प धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में है।
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में असंख्यातगुणे हैं।

७. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२-३. सबसे अल्प तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं।
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में असंख्यातगुणे हैं।

८. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२-३. सबसे अल्प अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं।
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में असंख्यातगुणे हैं।

दक्षिणदिशावर्ती अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिकों से छठी **तमःप्रभापृथ्वी** के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और (उनसे भी) असंख्यातगुणे दक्षिणदिशा में हैं।

दक्षिणदिशावर्ती तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से पाँचवी **धूमप्रभापृथ्वी** के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और (उनसे भी) असंख्यातगुणे दक्षिणदिशा में हैं।

दाहिणिल्लेहिंतो धूमप्पभापुढविनेरइएहिंतो **चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए** नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरे णं असंखेज्जगुणा, दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

दक्षिणदिशावर्ती धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से **चौथी पंकप्रभापृथ्वी** के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और (उनसे भी) असंख्यातगुणे दक्षिणदिशा में हैं।

दाहिणिल्लेहिंतो पंकप्पभापुढविनेरइएहिंतो **तइयाए बालुयप्पभाए पुढवीए** नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरे णं असंखेज्जगुणा, दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

दक्षिणदिशावर्ती पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से **तीसरी बालुकाप्रभापृथ्वी** के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और (उनसे भी) असंख्यातगुणे दक्षिणदिशा में हैं।

दाहिणिल्लेहिंतो बालुयप्पभापुढविनेरइएहिंतो **दुइयाए सक्करप्पभाए पुढवीए** नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरें णं असंखेज्जगुणा, दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

दक्षिणदिशावर्ती वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से **दूसरी शर्कराप्रभापृथ्वी** के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और (उनसे भी) असंख्यातगुणे दक्षिणदिशा में हैं।

दाहिणिल्लेहिंतो सक्करप्पभापुढविनेरइएहिंतो **इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए** नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरे णं असंखेज्जगुणा, दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

दक्षिणदिशावर्ती शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से **पहली रत्नप्रभा पृथ्वी** के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर में असंख्यातगुणे हैं और (उनसे भी) असंख्यातगुणे दक्षिणदिशा में हैं।

१. दिसाणुवाए णं–

१. सव्वत्थोवा पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया पच्चत्थिमे णं,
२. पुरत्थिमे णं विसेसाहिया,
३. दाहिणे णं विसेसाहिया,
४. उत्तरे णं विसेसाहिया।

१. दिशाओं की अपेक्षा–

१. सबसे अल्प पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव पश्चिम दिशा में हैं।
२. (उनसे) पूर्व दिशा में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) उत्तर दिशा में विशेषाधिक हैं।

१. दिसाणुवाए णं–

१-२. सव्वत्थोवा मणुस्सा दाहिण-उत्तरे णं,
३. पुरत्थिमे णं विसेसाहिया,
४. पच्चत्थिमे णं विसेसाहिया।

१. दिशाओं की अपेक्षा–

१-२. सबसे अल्प मनुष्य दक्षिण एवं उत्तर दिशा में हैं,
३. (उनसे) पूर्व दिशा में विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) पश्चिम दिशा में विशेषाधिक हैं।

१. दिसाणुवाए णं–

१-२. सव्वत्थोवा भवणवासी देवा पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं,
३. उत्तरे णं असंखेज्जगुणा,
४. दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

१. दिशाओं की अपेक्षा–

१-२. सबसे अल्प भवनवासी देव पूर्व और पश्चिम में हैं,
३. (उनसे) उत्तर दिशा में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में असंख्यातगुणे हैं।

२. दिसाणुवाए णं–

१. सव्वत्थोवा वाणमंतरा देवा पुरत्थिमे णं,
२. पच्चत्थिमे णं विसेसाहिया,
३. उत्तरे णं विसेसाहिया,
४. दाहिणे णं विसेसाहिया।

२. दिशाओं की अपेक्षा–

१. सबसे अल्प वाणव्यन्तर देव पूर्व दिशा में हैं,
२. (उनसे) पश्चिम दिशा में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) उत्तर दिशा में विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं।

३. दिसाणुवाए णं–

१-२. सव्वत्थोवा जोइसिया देवा पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं,
३. दाहिणे णं विसेसाहिया,
४. उत्तरे णं विसेसाहिया।

३. दिशाओं की अपेक्षा–

१-२. सबसे अल्प ज्योतिष्क देव पूर्व एवं पश्चिम दिशा में हैं,
३. (उनसे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) उत्तर दिशा में विशेषाधिक हैं।

४. दिसाणुवाए णं–

१-२. सव्वत्थोवा देवा सोहम्मे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं,

४. दिशाओं की अपेक्षा–

१-२. सबसे अल्प देव सौधर्म कल्प में पूर्व तथा पश्चिम दिशा में हैं,

३. उत्तरे णं असंखेज्जगुणा,
४. दाहिणे णं विसेसाहिया।

५. दिसाणुवाए णं–
१-२. सव्वत्थोवा देवा ईसाणे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं,
३. उत्तरे णं असंखेज्जगुणा,
४. दाहिणे णं विसेसाहिया।

६. दिसाणुवाए णं–
१-२. सव्वत्थोवा देवा सणंकुमारे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं,
३. उत्तरे णं असंखेज्जगुणा,
४. दाहिणे णं विसेसाहिया।

७. दिसाणुवाए णं–
१-२. सव्वत्थोवा देवा माहिंदे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं,
३. उत्तरे णं असंखेज्जगुणा,
४. दाहिणे णं विसेसाहिया।

८. दिसाणुवाए णं–
१-२-३. सव्वत्थोवा देवा बंभलोए कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम उत्तरे णं,
४. दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

९. दिसाणुवाए णं–
१-२-३. सव्वत्थोवा देवा लंतए कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरे णं,
४. दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

१०. दिसाणुवाए णं–
१-२-३. सव्वत्थोवा देवा महासुक्के कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरे णं,
४. दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।

११. दिसाणुवाए णं–
१-२-३. सव्वत्थोवा देवा सहस्सारे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरे णं,
४. दाहिणे णं असंखेज्जगुणा।
तेण परं बहुसमोववण्णगा समणाउसो !

१२. दिसाणुवाए णं–
१-२. सव्वत्थोवा सिद्धा दाहिणुत्तरे णं,
३. पुरत्थिमे णं संखेज्जगुणा,
४. पच्चत्थिमे णं विसेसाहिया।

–पण्ण. प. ३, सु. २१३-२२४

३. (उनसे) उत्तर दिशा में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं।

५. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२. सबसे अल्प देव ईशान कल्प में पूर्व एवं पश्चिम दिशा में हैं,
३. (उनसे) उत्तर दिशा में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं।

६. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२. सबसे अल्प देव सनत्कुमारकल्प में पूर्व और पश्चिम दिशा में हैं,
३. (उनसे) उत्तर दिशा में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं।

७. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२. सबसे अल्प देव माहेन्द्रकल्प में पूर्व तथा पश्चिम दिशा में हैं,
३. (उनसे) उत्तर दिशा में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं।

८. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२-३. सबसे अल्प देव ब्रह्मलोककल्प में पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में असंख्यातगुणे हैं।

९. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२-३. सबसे अल्प देव लान्तककल्प में पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में असंख्यातगुणे हैं।

१०. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२-३. सबसे अल्प देव महाशुक्रकल्प में पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में असंख्यातगुणे हैं।

११. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२-३. सबसे अल्प देव सहस्रारकल्प में पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा में हैं,
४. (उनसे) दक्षिण दिशा में असंख्यातगुणे हैं।
हे आयुष्मन् श्रमणों ! इसके बाद के प्रत्येक कल्प ग्रैवेयक और अनुत्तर देवलोकों में चारों दिशाओं में (बहुत बिलकुल) सम उत्पन्न होने वाले हैं।

१२. दिशाओं की अपेक्षा–
१-२. सबसे अल्प सिद्ध दक्षिण और उत्तर दिशा में हैं,
३. (उनसे) पूर्व में संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) पश्चिम दिशा में विशेषाधिक हैं।

१३८. ओहेण संसारी जीवाणं अप्पबहुत्तं–

अह भंते ! सव्वजीवप्पबहुं महादंडयं वत्तइस्सामि,

१३८. ओघ से संसारी जीवों का अल्पबहुत्व–

भंते ! अब मैं समस्त जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले महादण्डक का वर्णन करूँगा (करता हूँ)।

१. सव्वत्थोवा गब्भवक्कंतिया मणुस्सा,
२. मणुस्सीओ संखेज्जगुणाओ,
३. बायरतेउक्काइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा,
४. अणुत्तरोववाइया देवा असंखेज्जगुणा,
५. उवरिमगेवेज्जगा देवा संखेज्जगुणा,
६. मज्झिमगेवेज्जगा देवा संखेज्जगुणा,
७. हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा संखेज्जगुणा,
८. अच्चुए कप्पे देवा संखेज्जगुणा,
९. आरणे कप्पे देवा संखेज्जगुणा,
१०. पाणए कप्पे देवा संखेज्जगुणा,
११. आणए कप्पे देवा संखेज्जगुणा,
१२. अहेसत्तमाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा,
१३. छट्ठीए तमाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा,
१४. सहस्सारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
१५. महासुक्के कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
१६. पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा,
१७. लंतए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
१८. चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा,
१९. बंभलोए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
२०. तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा,
२१. माहिंदकप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
२२. सणंकुमारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
२३. दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा,
२४. सम्मुच्छिमणुस्सा असंखेज्जगुणा,
२५. ईसाणे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
२६. ईसाणे कप्पे देवीओ संखेज्जगुणाओ,
२७. सोहम्मे कप्पे देवा संखेज्जगुणा,
२८. सोहम्मे कप्पे देवीओ संखेज्जगुणाओ,
२९. भवणवासी देवा असंखेज्जगुणा,
३०. भवणवासिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ,
३१. इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा,
३२. खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया पुरिसा असंखेज्जगुणा,
३३. खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,
३४. थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया पुरिसा संखेज्जगुणा,
३५. थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,
३६. जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया पुरिसा संखेज्जगुणा,

१. सबसे अल्प गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य हैं,
२. (उनसे) मनुष्यस्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
३. (उनसे) बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अनुत्तरोपपातिक देव असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) उपरिम ग्रैवेयकदेव संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) मध्यम ग्रैवेयकदेव संख्यातगुणे हैं,
७. (उनसे) अधःस्तन ग्रैवेयक देव संख्यातगुणे हैं,
८. (उनसे) अच्युतकल्प के देव संख्यातगुणे हैं,
९. (उनसे) आरणकल्प के देव संख्यातगुणे हैं,
१०. (उनसे) प्राणतकल्प के देव संख्यातगुणे हैं,
११. (उनसे) आनतकल्प के देव संख्यातगुणे हैं,
१२. (उनसे) अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं,
१३. (उनसे) छठी तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं,
१४. (उनसे) सहस्रारकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं,
१५. (उनसे) महाशुक्रकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं,
१६. (उनसे) पांचवीं धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं,
१७. (उनसे) लान्तककल्प के देव असंख्यातगुणे हैं,
१८. (उनसे) चौथी पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं,
१९. (उनसे) ब्रह्मलोककल्प के देव असंख्यातगुणे हैं,
२०. (उनसे) तीसरी वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं,
२१. (उनसे) माहेन्द्रकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं,
२२. (उनसे) सनत्कुमारकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं,
२३. (उनसे) दूसरी शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं,
२४. (उनसे) सम्मूर्च्छिम मनुष्य असंख्यातगुणे हैं,
२५. (उनसे) ईशानकल्प के देव असंख्यातगुणे हैं,
२६. (उनसे) ईशानकल्प की देवियां संख्यातगुणी हैं,
२७. (उनसे) सौधर्मकल्प के देव संख्यातगुणे हैं,
२८. (उनसे) सौधर्मकल्प की देवियां संख्यातगुणी हैं,
२९. (उनसे) भवनवासी देव असंख्यातगुणे हैं,
३०. (उनसे) भवनवासी देवियां संख्यातगुणी हैं,
३१. (उनसे) इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक असंख्यातगुणे हैं,
३२. (उनसे) खेचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक पुरुष असंख्यातगुणे हैं,
३३. (उनसे) खेचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
३४. (उनसे) स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक पुरुष संख्यातगुणे हैं,
३५. (उनसे) स्थलचर पंचेंद्रिय-तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,
३६. (उनसे) जलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक पुरुष संख्यातगुणे हैं,

३७. जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिणीओ संखेज्जगुणाओ,

३८. वाणमंतरा देवा संखेज्जगुणा,

३९. वाणमंतरीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ,

४०. जोइसिया देवा संखेज्जगुणा,

४१. जोइसिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ,

४२. खहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णपुंसगा संखेज्जगुणा,

४३. थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णपुंसगा संखेज्जगुणा,

४४. जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया णपुंसगा संखेज्जगुणा,

४५. चउरिंदिया पज्जत्तया संखेज्जगुणा,

४६. पंचेंदिया पज्जत्तया विसेसाहिया,

४७. बेइंदिया पज्जत्तया विसेसाहिया,

४८. तेइंदिया पज्जतया विसेसाहिया,

४९. पंचिंदिया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा.

५०. चउरिंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया,

५१. तेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया,

५२. बेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया,

५३. पत्तेयसरीरबायर वणस्सइकाइया पज्जत्तया असंखेज्ज-गुणा,

५४. बायरणिगोया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा,

५५. बायर पुढविकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा,

५६. बायर आउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा,

५७. बायरवाउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा,

५८. बायरतेउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा,

५९. पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

६०. बायरणिगोया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

६१. बायर पुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

६२. बायर आउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

६३. बायर वाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

६४. सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

६५. सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,

६६. सुहुमआउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,

६७. सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,

६८. सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा,

६९. सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,

७०. सुहुमआउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,

७१. सुहुमवाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,

७२. सुहुमणिगोया अपज्जगा असंखेज्जगुणा,

७३. सुहुमणिगोया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा,

३७. (उनसे) जलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियां संख्यातगुणी हैं,

३८. (उनसे) वाणव्यन्तर देव संख्यातगुणे हैं,

३९. (उनसे) वाणव्यन्तर देवियां संख्यातगुणी हैं,

४०. (उनसे) ज्योतिष्क देव संख्यातगुणे हैं,

४१. (उनसे) ज्योतिष्क देवियां संख्यातगुणी हैं,

४२. (उनसे) खेचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक संख्यातगुणे हैं,

४३. (उनसे) स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक संख्यातगुणे हैं,

४४. (उनसे) जलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक नपुंसक संख्यातगुणे हैं,

४५. (उनसे) चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,

४६. (उनसे) पंचेंद्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक है,

४७. (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

४८. (उनसे) त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

४९. (उनसे) पंचेंद्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

५०. (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

५१. (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

५२. (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

५३. (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

५४. (उनसे) बादर निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

५५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

५६. (उनसे) बादर अप्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

५७. (उनसे) बादर वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

५८. (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

५९. (उनसे) प्रत्येक शरीर-बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

६०. (उनसे) बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

६१. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

६२. (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

६३. (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

६४. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

६५. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

६६. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

६७. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

६८. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,

६९. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

७०. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

७१. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

७२. (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

७३. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,

७४. अभवसिद्धिया अणंतगुणा,
७५. परिवडियसम्मत्ता अणंतगुणा,
७६. सिद्धा अणंतगुणा,
७७. बायरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा,
७८. बायरपज्जत्तया विसेसाहिया,
७९. बायरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
८०. बायर अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
८१. बायरा विसेसाहिया,
८२. सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
८३. सुहुमा अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
८४. सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा,
८५. सुहुमपज्जत्तगा विसेसाहिया,
८६. सुहुमा विसेसाहिया,
८७. भवसिद्धिया विसेसाहिया,
८८. निगोदजीवा विसेसाहिया,
८९. वणप्फइजीवा विसेसाहिया,
९०. एगिंदिया विसेसाहिया,
९१. तिरिक्खजोणिया विसेसाहिया,
९२. मिच्छदिट्ठी विसेसाहिया,
९३. अविरया विसेसाहिया,
९४. सकसाई विसेसाहिया,
९५. छउमत्था विसेसाहिया,
९६. सजोगी विसेसाहिया,
९७. संसारत्था विसेसाहिया,
९८. सव्वजीवा विसेसाहिया,

—पण्ण. प. ३ सु. ३३४

७४. (उनसे) अभवसिद्धिक अनन्तगुणे हैं,
७५. (उनसे) सम्यक्त्व से भ्रष्ट अनन्तगुणे हैं,
७६. (उनसे) सिद्ध अनन्तगुणे हैं,
७७. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,
७८. (उनसे) बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
७९. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
८०. (उनसे) बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
८१. (उनसे) बादर विशेषाधिक हैं,
८२. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
८३. (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
८४. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,
८५. (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
८६. (उनसे) सूक्ष्म विशेषाधिक हैं,
८७. (उनसे) भवसिद्धिक विशेषाधिक हैं,
८८. (उनसे) निगोद के जीव विशेषाधिक हैं,
८९. (उनसे) वनस्पतिजीव विशेषाधिक हैं,
९०. (उनसे) एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं,
९१. (उनसे) तिर्यञ्चयोनिक विशेषाधिक हैं,
९२. (उनसे) मिथ्यादृष्टि जीव विशेषाधिक हैं,
९३. (उनसे) अविरत जीव विशेषाधिक हैं,
९४. (उनसे) सकषायी जीव विशेषाधिक हैं,
९५. (उनसे) छद्मस्थ जीव विशेषाधिक हैं,
९६. (उनसे) सयोगी जीव विशेषाधिक हैं,
९७. (उनसे) संसारस्थ जीव विशेषाधिक हैं,
९८. (उनसे) सर्वजीव विशेषाधिक हैं।

१३९. दसविह विवक्खया संसारी जीवाणं अप्पबहुत्तं—

प. एएसि णं भंते ! पुढविकाइयाणं, आउकाइयाणं, तेउकाइयाणं, वाउकाइयाणं, वणस्सइकाइयाणं, बेइंदियाणं, तेइंदियाणं, चउरिंदियाणं, पंचेंदियाणं, अणिंदियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पंचेंदिया,
२. चउरिंदिया विसेसाहिया,
३. तेइंदिया विसेसाहिया,
४. बेइंदिया विसेसाहिया,
५. तेउकाइया असंखेज्जगुणा,
६. पुढविकाइया विसेसाहिया,
७. आउकाइया विसेसाहिया,
८. वाउकाइया विसेसाहिया,

१३९. दसविध विवक्षा से संसारी जीवों का अल्पबहुत्व—

प्र. भंते ! इन पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेंद्रिय और अनिन्द्रियों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प पंचेंद्रिय हैं,
२. (उनसे) चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) तेजस्कायिक असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं,
७. (उनसे) अप्कायिक विशेषाधिक हैं,
८. (उनसे) वायुकायिक विशेषाधिक हैं,

९. अणिंदिया अणंतगुणा,

१०. वणस्सइकाइया अणंतगुणा[1]।

–जीवा. पडि. ९, सु. २५८

९. (उनसे) अनिन्द्रिय अनन्तगुणे हैं,

१०. (उनसे) वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं।

१४०. जोगं पडुच्च चोद्दसविहं संसारी जीवाणं अप्पवहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! चोद्दसविहाणं संसारसमावन्नगाणं जीवाणं जहन्नुक्कोसगस्स जोगस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवे सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नए जोए,

२. बायरस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे,

३. बेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे,

४. तेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे,

५. चउरिंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे,

६. असन्निस्स पंचेंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे,

७. सन्निस्स पंचेंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे,

८. सुहुमस्स पज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे,

९. बायरस्स पज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे,

१०. सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसेए जोए असंखेज्जगुणे।

११. बायरस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे,

१२. सुहुमस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे,

१३. बायरस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे,

१४. बेइंदियस्स पज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे,

१५-१८. तेइंदियस्स एवं जाव सन्निस्स पंचेंदियस्स पज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे।

१९. बेइंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे,

२०-२३. एवं तेइंदियस्स वि एवं जाव सण्णिपंचेंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे,

१४०. योगापेक्षा चौदह प्रकार के संसारी जीवों का अल्पवहुत्व–

प्र. भंते ! इन चौदह प्रकार के संसारसमापन्नक जीवों का योग जघन्य और उत्कृष्ट की अपेक्षा कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. अपर्याप्तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय का जघन्य योग सबसे अल्प है,

२. (उनसे) वादर अपर्याप्तक एकेन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा है,

३. (उनसे) अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा है,

४. (उनसे) अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा है,

५. (उनसे) अपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा है,

६. (उनसे) अपर्याप्तक असंज्ञी पंचेंद्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा है,

७. (उनसे) अपर्याप्तक संज्ञी पंचेंद्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा है,

८. (उनसे) पर्याप्तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा है,

९. (उनसे) पर्याप्तक बादर एकेन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा है,

१०. (उनसे) अपर्याप्तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।

११. (उनसे) अपर्याप्तक बादर एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है,

१२. (उनसे) पर्याप्तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है,

१३. (उनसे) बादर पर्याप्तक एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है,

१४. (उनसे) पर्याप्तक द्वीन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुणा है,

१५-१८. (उनसे) पर्याप्तक त्रीन्द्रिय इसी प्रकार यावत (पर्याप्तक चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक असंज्ञी पंचेंद्रिय) पर्याप्तक संज्ञी पंचेन्द्रिय का जघन्य योग उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा है,

१९. (उनसे) अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है,

२०-२३. (उनसे) अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय इसी प्रकार यावत् (अपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय, अपर्याप्तक असंज्ञी पंचेंद्रिय) और अपर्याप्तक संज्ञी पंचेंद्रिय का उत्कृष्ट योग उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा है,

१. जीवा. पडि. ८, सु. २२८

२४. बेइंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे,

२५. तेइंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे,

२६. चउरिंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे,

२७. असन्नि पंचिंदिय पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे,

२८. सण्णिस्स पंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे।

–विया. स. २५, उ. १, सु. ५

२४. (उनसे) पर्याप्तक द्वीन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है,

२५. (उनसे) पर्याप्तक त्रीन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है,

२६. (उनसे) पर्याप्तक चतुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है,

२७. (उनसे) पर्याप्तक असंज्ञी पंचेंद्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है,

२८. (उनसे) पर्याप्तक संज्ञी पंचेद्रिय का उत्कृष्ट, योग असंख्यातगुणा है।

१४१. खेत्ताणुवाए णं जीवाणं चाउग्गई जीवाण य अप्पबहुत्तं–

१. खेत्ताणुवाए णं–

१. सव्वत्थोवा जीवा उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

२. खेत्ताणुवाए णं–

१. सव्वत्थोवा नेरइया तेलोक्के,
२. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. अहोलोए असंखेज्जगुणा।

३. खेत्ताणुवाए णं–

१. सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणिया उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

४. खेत्ताणुवाए णं–

१. सव्वत्थोवाओ तिरिक्खजोणिणीओ उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ,
३. तेलोक्के संखेज्जगुणाओ,
४. अहोलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणाओ,
५. अहोलोए संखेज्जगुणाओ,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणाओ।

५. खेत्ताणुवाए णं–

१. सव्वत्थोवाओ मणुस्सा तेलोक्के,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. अहोलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणा,

१४१. क्षेत्र की अपेक्षा जीवों और चातुर्गतिक जीवों का अल्पबहुत्व–

१. क्षेत्र की अपेक्षा–

१. सबसे अल्प जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यग्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यग्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यग्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य (तीनों लोकों) में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

२. क्षेत्र की अपेक्षा–

१. सबसे अल्प नैरयिक जीव त्रैलोक्य में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) अधोलोक में असंख्यातगुणे हैं।

३. क्षेत्र की अपेक्षा–

१. सबसे अल्प तिर्यञ्चयोनिक ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

४. क्षेत्र की अपेक्षा–

१. सबसे अल्प तिर्यंचिनी (तिर्यञ्चस्त्री) ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणी हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं।

५. क्षेत्र की अपेक्षा–

१. सबसे अल्प मनुष्य त्रैलोक्य में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,

४. उड्ढलोए संखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणा।

६. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवाओ मणुस्सीओ तेलोक्के,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणाओ,
३. अहोलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणाओ,
४. उड्ढलोए संखेज्जगुणाओ,
५. अहोलोए संखेज्जगुणाओ,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणाओ।

७. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवाओ देवा उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. तेलोक्के संखेज्जगुणा,
४. अहोलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणा।

८. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवाओ देवीओ उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ,
३. तेलोक्के संखेज्जगुणाओ,
४. अहोलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणाओ,
५. अहोलोए संखेज्जगुणाओ,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणाओ।

९. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवाओ भवणवासी देवा उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. तेलोक्के संखेज्जगुणा,
४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
५. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए असंखेज्जगुणा।

१०. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवाओ भवणवासिणीओ देवीओ उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ,
३. तेलोक्के संखेज्जगुणाओ,
४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ,
५. तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ,
६. अहोलोए असंखेज्जगुणाओ।

११. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवाओ वाणमंतरा देवा उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. तेलोक्के संखेज्जगुणा,

४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

६. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प मनुष्यस्त्रियां त्रैलोक्य में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं,
३. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं,
४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणी हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं।

७. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प देव ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

८. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प देवियां ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं।

९. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प भवनवासी देव ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में असंख्यातगुणे हैं।

१०. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प भवनवासिनी देवियां ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं,
५. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में असंख्यातगुणी हैं।

११. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प वाणव्यन्तर देव ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं,

४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणा।

१२. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवाओ वाणमंतरीओ देवीओ उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ,
३. तेलोक्के संखेज्जगुणाओ,
४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ,
५. अहोलोए संखेज्जगुणाओ,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणाओ।

१३. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा जोइसिया देवा उड्ढलोए,
२. उड्ढलोए-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. तेलोक्के संखेज्जगुणा,
४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए असंखेज्जगुणा।

१४. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवाओ जोइसिणीओ देवीओ उड्ढलोए,
२. उड्ढलोए-तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ,
३. तेलोक्के संखेज्जगुणाओ,
४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ,
५. अहोलोए संखेज्जगुणाओ,
६. तिरियलोए असंखेज्जगुणाओ।

१५. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. तेलोक्के संखेज्जगुणा,
३. अहोलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणा,
४. अहोलोए संखेज्जगुणा,
५. तिरियलोए संखेज्जगुणा,
६. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा।

१६. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा वेमाणिणीओ देवीओ उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. तेलोक्के संखेज्जगुणाओ,
३. अहोलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणाओ,
४. अहोलोए संखेज्जगुणाओ,
५. तिरियलोए संखेज्जगुणाओ,
६. उड्ढलोए असंखेज्जगुणाओ।

–पण्ण. प. ३, सु. २७६-२९१

४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

१२. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प वाणव्यन्तर देवियां ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं।

१३. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प ज्योतिष्क देव ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक् लोक में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

१४. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प ज्योतिष्क देवियां ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक् लोक में असंख्यातगुणी हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणी हैं।

१५. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं।

१६. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प वैमानिक देवियां ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणी हैं,
३. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं,
४. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणी हैं,
५. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणी हैं,
६. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणी हैं।

१४२. खेत्ताणुवाए णं छण्हजीवणिकायाणं अप्पबहुत्तं–
१. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा पुढविकाइया उड्ढलोय-तिरियलोए,

१४२. क्षेत्र की अपेक्षा षड्जीवनिकायों का अल्पबहुत्व–
१. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प पृथ्वीकायिक जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,

२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

२. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा पुढविकाइया अपज्जत्तगा उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

३. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा पुढविकाइया पज्जत्तगा उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

४. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा आउकाइया उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

५. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा आउकाइया अपज्जत्तगा उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

६. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा आउकाइया पज्जत्तगा उड्ढलोय-तिरियलोए,

२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

२. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

३. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

४. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प अप्कायिक जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

५. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प अप्कायिक अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

६. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प अप्कायिक पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,

२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

७. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा तेउकाइया उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

८. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा तेउकाइया अपज्जत्तगा उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

९. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा तेउकाइया पज्जत्तगा उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३ तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

१०. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा वाउकाइया उड्ढलोय- तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

११. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा वाउकाइया अपज्जत्तगा उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,

२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

७. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प तेजस्कायिक जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

८. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प तेजस्कायिक अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

९. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प तेजस्कायिक पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

१०. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प वायुकायिक ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

११. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प वायुकायिक अपर्याप्तक ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,

५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

१२. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा वाउकाइया पज्जत्तगा उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

१३. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया उड्ढलोय- तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

१४. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया अपज्जत्तगा उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए संखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

१५. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया पज्जत्तगा उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

१६. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा तसकाइया तेलोक्के,
२. उड्ढलोए-तिरियलोए संखेज्जगुणा,
३. अहोलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणा,
४. उड्ढलोए संखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए असंखेज्जगुणा।

५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

१२. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प वायुकायिक पर्याप्तक ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

१३. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प वनस्पतिकायिक जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

१४. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

१५. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प वनस्पतिकायिक पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

१६. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प त्रसकायिक जीव त्रैलोक्य में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

१७. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा तसकाइया अपज्जत्तगा तेलोक्के,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणा,
३. अहोलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणा,
४. उड्ढलोए संखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए असंखेज्जगुणा।

१८. खेत्ताणुवाए णं–
१. सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा तेलोक्के,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणा,
३. अहोलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणा,
४. उड्ढलोए संखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए असंखेज्जगुणा।

–पण्ण. प. ३, सु. ३०७-३२४

१७. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प त्रसकायिक अपर्याप्तक जीव त्रैलोक्य में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

१८. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प त्रसकायिक पर्याप्तक जीव त्रैलोक्य में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

१४३. सुहुम-बायर जीवाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं सुहुमाणं बायराणं नोसुहुमनोबायराण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा णोसुहुम णोबायरा,
२. बायरा अणंतगुणा,
३. सुहुमा असंखेज्जगुणा[1]। –पण्ण. प. ३, सु. २६७

१४३. सूक्ष्म और बादर जीवों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म, बादर और नोसूक्ष्म नोबादर जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प नोसूक्ष्म नोबादर जीव हैं,
२. (उनसे) बादर जीव अनन्तगुणे हैं,
३. (उनसे भी) सूक्ष्म जीव असंख्यातगुणे हैं।

१४४. सुहुम-बायर विवक्खया छण्हं जीवणिकाइयाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! सुहुमाणं, सुहुमपुढविकाइयाणं, सुहुमआउकाइयाणं, सुहुमतेउक्काइयाणं, सुहुम वाउकाइयाणं, सुहुमवणस्सइकाइयाणं, सुहुम- णिगोदाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया,
२. सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया,
३. सुहुमआउकाइया विसेसाहिया,
४. सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया,
५. सुहुमनिगोदा असंखेज्जगुणा,
६. सुहुमवणस्सइकाइया अणंतगुणा,
७. सुहुमा विसेसाहिया।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमअपज्जत्तगाणं, सुहुमपुढविकाइयापज्जत्तगाणं, सुहुमआउकाइयापज्जत्तगाणं, सुहुमतेउकाइयापज्जत्तगाणं सुहुमवाउकाइयापज्जत्तगाणं, सुहुम-वणस्सइकाइयापज्जत्तगाणं, सुहुमणिगोदापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

१४४. सूक्ष्म-बादर की विवक्षा से षड्कायिक जीवों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एवं सूक्ष्म निगोदों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सूक्ष्म तेजस्कायिक हैं,
२. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) सूक्ष्म निगोद असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं,
७. (उनसे) सूक्ष्म जीव विशेषाधिक हैं।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म अपर्याप्तक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

१. जीवा. पडि. ९, सु. २४०

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा,
२. सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
३. सुहुमआउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
४. सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
५. सुहुमनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
६. सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा,
७. सुहुमा अपज्जत्तगा विसेसाहिया।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमपज्जत्तगाणं, सुहुमपुढविकाइय-पज्जत्तगाणं, सुहुमआउकाइय- पज्जत्तगाणं, सुहुमतेउकाइयपज्जत्तगाणं, सुहुमवाउकाइय-पज्जत्त-गाणं, सुहुमवणस्सइकाइय पज्जत्तगाणं, सुहुमनिगोद-पज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा,
२. सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,
३. सुहुमआउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,
४. सुहुमवाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,
५. सुहुमनिगोदा पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
६. सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा,
७. सुहुमा पज्जत्तगा विसेसाहिया।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमाणं पज्जत्तापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सुहुमा अपज्जत्तगा,
२. सुहुमा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमपुढविकाइयाणं पज्जत्तापज्जत्त-गाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा,
२. सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमआउकाइयाणं पज्जत्तापज्जत्त-गाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सुहुमआउकाइया अपज्जत्तगा,
२. सुहुमआउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमतेउकाइयाणं पज्जत्तगापज्जत्त-गाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,
७. (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक और सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,
७. (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव हैं,
२. (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक जीव हैं,
२. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक जीव हैं,
२. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा,

२. सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमवाउकाइयाण पज्जत्तापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तगा,

२. सुहुमवाउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगा-पज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा,

२. सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमनिगोदाणं पज्जत्तगापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सुहुमनिगोदा अपज्जत्तगा,

२. सुहुमनिगोदा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं, सुहुमआउकाइयाणं, सुहुमतेउकाइयाणं, सुहुमवाउ-काइयाणं सुहुवणस्सइकाइयाणं, सुहुमनिगोदाणं पज्जत्तगापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा,

२. सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,

३. सुहुमआउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,

४. सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,

५. सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा,

६. सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,

७. सुहुमआउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,

८. सुहुमवाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,

९. सुहुमनिगोदाअपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

१०. सुहुमनिगोदा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा,

११. सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा,

१२. सुहुमा अपज्जत्तगा विसेसाहिया,

१३. सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा संखेज्जगुणा,

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एवं सूक्ष्म निगोदों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं,

३. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

५. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,

६. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

७. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

८. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

९. (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

१०. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,

११. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,

१२. (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

१३. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,

१४. सुहुमा पज्जत्तगा विसेसाहिया,[1]

१५. सुहुमा विसेसाहिया।

प. एएसि णं भंते ! बादराणं, बादरपुढविकाइयाणं, बादरआउकाइयाणं, बादरतेउकाइयाणं, बादरवाउ-काइयाणं, बादरवणस्सइकाइयाणं, पत्तेयसरीरबादर-वणस्सइकाइयाणं, बादरनिगोदाणं, बादर तसकाइयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरा तसकाइया,

२. बादरा तेउकाइया असंखेज्जगुणा,

३. पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया असंखेज्जगुणा,

४. बादरा निगोदा असंखेज्जगुणा,

५. बादरा पुढविकाइया असंखेज्जगुणा,

६. बादरा आउकाइया असंखेज्जगुणा,

७. बादरा वाउकाइया असंखेज्जगुणा,

८. बादरा वणस्सइकाइया अणंतगुणा,

९. बादरा विसेसाहिया।

प. एएसि णं भंते ! बादर अपज्जत्तगाणं, बादर पुढविकाइय अपज्जत्तगाणं, बादर आउकाइय अपज्जत्तगाणं, बादरतेउकाइय अपज्जत्तगाणं, बादरवाउकाइय अपज्जत्तगाणं, बादरवणस्सइकाइय अपज्जत्तगाणं, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइय अपज्जत्तगाणं, बादरनिगोदा अपज्जत्तगाणं, बादरतसकाइय अपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरतसकाइया अपज्जत्तगा,

२. बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

३. पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

४. बादर निगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

५. बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

६. बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

७. बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

८. बादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा,

९. बादरअपज्जत्तगा विसेसाहिया।

१४. (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

१५. (उनसे) सूक्ष्म जीव विशेषाधिक हैं।

प्र. भंते ! इन बादर जीवों, बादर पृथ्वीकायिकों, बादर अप्कायिकों, बादर तेजस्कायिकों, बादर वायुकायिकों, बादर वनस्पतिकायिकों, प्रत्येक शरीर-बादर-वनस्पतिकायिकों, बादर निगोदों और बादर त्रसकायिकों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर त्रसकायिक हैं,

२. (उनसे) बादर तेजस्कायिक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) बादर निगोद असंख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक असंख्यातगुणे हैं,

६. (उनसे) बादर अप्कायिक असंख्यातगुणे हैं,

७. (उनसे) बादर वायुकायिक असंख्यातगुणे हैं,

८. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं,

९. (उनसे) बादर विशेषाधिक हैं।

प्र. भंते ! इन बादर अपर्याप्तकों, बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तकों, बादर अप्कायिक अपर्याप्तकों, बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तकों, बादर वायुकायिक अपर्याप्तकों, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तकों, प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तकों, बादर निगोद एवं बादर त्रसकायिक अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

६. (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

७. (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

८. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,

९. (उनसे) बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

---

१. जीवा. पडि. ९, सु. २१७

प. एएसि णं भंते! बादरपज्जत्तगाणं, बादरपुढविकाइयपज्जत्तगाणं, बादरआउकाइय-पज्जत्तगाणं, बादरतेउकाइयपज्जत्तगाणं, बादर-वाउकाइयपज्जत्तगाणं, बादरवणस्सइकाइय-पज्जत्तगाणं, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइय-पज्जत्तगाणं, बादरनिगोदपज्जत्तगाणं, बादर-तसकाइयपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तगा,

२. बादरतसकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

३. पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

४. बादर निगोदा पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

५. बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

६. बादरआउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

७. बादरवाउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

८. बादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा,

९. बादरपज्जत्तगा विसेसाहिया।

प. एएसि णं भंते ! बादराणं पज्जत्तापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरा पज्जत्तगा,

२. बादरा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते! बादरपुढविकाइयाणं पज्जत्तापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा,

२. बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते! बादरआउकाइयाणं पज्जत्तापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरआउकाइया पज्जत्तगा,

२. बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! बादरतेउकाइयाणं पज्जत्तापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तगा,

२. बादरतेउकाइयाा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते! बादरवाउकाइयाणं पज्जत्तापज्जत्त-गाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

प्र. भंते ! इन बादर पर्याप्तकों, बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तकों, बादर अप्कायिक पर्याप्तकों, बादर तेजस्कायिक पर्याप्तकों, बादर वायुकायिक पर्याप्तकों, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों, प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों, बादर निगोद पर्याप्तकों एवं बादर त्रसकायिक पर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) बादर निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यात-गुणे हैं,

६. (उनसे) बादर अप्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

७. (उनसे) बादर वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

८. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,

९. (उनसे) बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

प. भंते ! इन बादर पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर पर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) बादर अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

प्र. भंते ! इन बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

प्र. भंते ! इन बादर अप्कायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर अप्कायिक पर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

प्र. भंते ! इन बादर तेजस्कायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

प्र. भंते ! इन बादर वायुकायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरवाउकाइया पज्जत्तगा,

२. बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते! बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा! १. सव्वत्थोवा बादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा,

२. बादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा! १. सव्वत्थोवा पत्तेयसरीरबादर-वणस्सइकाइया पज्जत्तगा,

२. पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! बादरनिगोदाणं पज्जत्तापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरनिगोदा पज्जत्तगा,

२. बादर निगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! बादरतसकाइयाणं पज्जत्तापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरतसकाइया पज्जत्तगा,

२. बादरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! बादराणं, बादरपुढविकाइयाणं, बादरआउकाइयाणं, बादरतेउकाइयाणं, बादरवाउकाइयाणं, बादरवणस्सइकाइयाणं, पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइयाणं, बादरनिगोदाणं, बादरतसकाइयाणं पज्जत्तापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तगा,

२. बादरतसकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

३. बादरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

४. पत्तेयसरीर बादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

५. बादरनिगोदा पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

६. बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

७. बादरआउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर वायुकायिक पर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

प्र. भंते ! इन बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

प्र. भंते ! इन प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

प्र. भंते ! इन बादर निगोद पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर निगोद पर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं

प्र. भंते ! इन बादर त्रसकायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर त्रसकायिक पर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन बादर जीवों, बादर पृथ्वीकायिकों, बादर अप्कायिकों, बादर तेजस्कायिकों, बादर वायुकायिकों, बादर वनस्पतिकायिकों, प्रत्येक शरीर-बादर वनस्पतिकायिकों, बादर निगोदों और बादर त्रसकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) बादर निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

६. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

७. (उनसे) बादर अप्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

८. बादरवाउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

८. (उनसे) बादर वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

९. बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

९. (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

१०. पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

१०. (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

११. बादरनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

११. (उनसे) बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

१२. बादर पुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

१२. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

१३. बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

१३. (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

१४. बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

१४. (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

१५. बादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा,

१५. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,

१६. बादरपज्जत्तगा विसेसाहिया,

१६. (उनसे) बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

१७. बादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

१७. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

१८. बादर अपज्जत्तगा विसेसाहिया[1],

१८. (उनसे) बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

१९. बादरा विसेसाहिया।

१९. (उनसे) बादर विशेषाधिक हैं।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमाणं, सुहुमपुढविकाइयाणं, सुहुमआउकाइयाणं, सुहुमतेउकाइयाणं, सुहुमवाउकाइयाणं, सुहुमवणस्सइकाइयाणं, सुहुमनिगोदाणं, बादराणं, बादरपुढविकाइयाणं, बादरआउकाइयाणं, बादरतेउकाइयाणं, बादरवाउकाइयाणं, बादरवणस्सइकाइयाणं, पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइयाणं, बादरनिगोदाणं, बादरतसकाइयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म जीवों, सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों, सूक्ष्म अप्कायिकों, सूक्ष्म तेजस्कायिकों, सूक्ष्म वायुकायिकों, सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों, सूक्ष्म निगोदों तथा बादर जीवों, बादर पृथ्वीकायिकों, बादर अप्कायिकों, बादर तेजस्कायिकों, बादर वायुकायिकों, बादर वनस्पतिकायिकों, प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिकों, बादर निगोदों और बादर त्रसकायिकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरतसकाइया,

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर त्रसकायिक हैं,

२. बादरतेउकाइया असंखेज्जगुणा,

२. (उनसे) बादर तेजस्कायिक असंख्यातगुणे हैं,

३. पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया असंखेज्जगुणा,

३. (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणे हैं,

४. बादरनिगोदा असंखेज्जगुणा,

४. (उनसे) बादर निगोद असंख्यातगुणे हैं,

५. बादरपुढविकाइया असंखेज्जगुणा,

५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक असंख्यातगुणे हैं,

६. बादरआउकाइया असंखेज्जगुणा,

६. (उनसे) बादर अप्कायिक असंख्यातगुणे हैं,

७. बादरवाउकाइया असंखेज्जगुणा,

७. (उनसे) बादर वायुकायिक असंख्यातगुणे हैं,

८. सुहुमतेउकाइया असंखेज्जगुणा,

८. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक असंख्यातगुणे हैं,

९. सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया,

९. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं,

१०. सुहुमआउकाइया विसेसाहिया,

१०. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक विशेषाधिक हैं,

११. सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया,

११. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक विशेषाधिक हैं,

१२. सुहुमनिगोदा असंखेज्जगुणा,

१२. (उनसे) सूक्ष्म निगोद असंख्यातगुणे हैं,

१३. बादरवणस्सइकाइया अणंतगुणा,

१३. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं,

---

१. जीवा. पडि. ५, सु. २२१ (अ)

१४. बादरा विसेसाहिया,
१५. सुहुमवणस्सइकाइया असंखेज्जगुणा,
१६. सुहुमा विसेसाहिया।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमअपज्जत्तगाणं, सुहुमपुढविकाइयाणं अपज्जत्तगाणं, सुहुमआउकाइयाणं अपज्जत्तगाणं, सुहुमतेउकाइयाणं अपज्जत्तगाणं, सुहुमवाउकाइयाणं अपज्जत्तगाणं, सुहुमवणस्सइकाइयाणं अपज्जत्तगाणं, सुहुमणिगोदाऽपज्जत्तगाणं, बादरापज्जत्तगाणं, बादरपुढविकाइयापज्जत्तगाणं बादरआउकाइया-पज्जत्तगाणं, बादरतेउकाइया-पज्जत्तगाणं, बादरवाउकाइयापज्जत्तगाणं, बादर-वणस्सइकाइयपज्जत्तगाणं, पत्तेयसरीरबादरवणस्स-इकाइया-पज्जत्तगाणं, बादरणिगोदापज्जत्तगाणं, बादरतसकाइयापज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरतसकाइया अपज्जत्तगा,
२. बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
३. पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
४. बादरनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
५. बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
६. बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
७. बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
८. सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
९. सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
१०. सुहुमआउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
११. सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
१२. सुहुमनिगोदाअपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
१३. बादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा,
१४. बादर अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
१५. सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
१६. सुहुमा अपज्जत्तगा विसेसाहिया।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमपज्जत्तगाणं, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगाणं, सुहुमआउकाइया पज्जत्तगाणं,

१४. (उनसे) बादर विशेषाधिक हैं,
१५. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणे हैं,
१६. (उनसे) सूक्ष्म विशेषाधिक हैं।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म अपर्याप्तकों, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तकों, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तकों, सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तकों, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तकों, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तकों, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तकों, बादर अपर्याप्तकों, बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तकों, बादर अप्कायिक अपर्याप्तकों, बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तकों, बादर वायुकायिक अपर्याप्तकों, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तकों, प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तकों, बादर निगोद अपर्याप्तकों एवं बादर त्रसकायिक अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं।

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
७. (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
८. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
९. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
१०. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
११. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
१२. (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
१३. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,
१४. (उनसे) बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
१५. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
१६. (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म पर्याप्तकों, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तकों, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तकों,

सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगाणं, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तगाणं, सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तगाणं, सुहुमणिगोद पज्जत्तगाणं, बादरपज्जत्तगाणं, बादरपुढविकाइयपज्जत्तगाणं, बादरआउकाइय-पज्जत्तगाणं, बादरतेउकाइयपज्जत्तगाणं, बादरवाउकाइयपज्जत्तगाणं, बादरवणस्सइकाइय-पज्जत्तगाणं, पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइय-पज्जत्तगाणं, बादरणिगोदपज्जत्तगाणं, बादरतसकाइय-पज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तकों, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तकों, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों, सूक्ष्म निगोद पर्याप्तकों, बादर पर्याप्तकों, बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तकों, बादर अप्कायिक पर्याप्तकों, बादर तेजस्कायिक पर्याप्तकों, बादर वायुकायिक पर्याप्तकों, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों, प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों, बादर निगोद पर्याप्तकों और बादर त्रसकायिक पर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तगा,
२. बादरतसकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
३ पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
४. बादरनिगोदा पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
५. बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
६. बादरआउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
७. बादरवाउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
८. सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
९. सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,
१०. सुहुमआउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,
११. सुहुमवाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,
१२. सुहुमनिगोदा पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
१३. बादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा,
१४. बादरा पज्जत्तगा विसेसाहिया,
१५. सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
१६. सुहुमा पज्जत्तगा विसेसाहिया।

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) बादर निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) बादर अप्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
७. (उनसे) बादर वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
८. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
९. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
१०. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
११. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
१२. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
१३. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,
१४. (उनसे) बादर पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
१५. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
१६. (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमाणं बादराण य पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म और बादर जीवों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरा पज्जत्तगा,
२. बादरा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
३. सुहुमा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
४. सुहुमा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर पर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) बादर अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमपुढविकाइयाणं बादरपुढविकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और बादर पृथ्वीकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा,
२. बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

३. सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

४. सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते! सुहुमआउकाइयाणं बादरआउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरआउकाइया पज्जत्तगा,

२. बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

३. सुहुमआउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

४. सुहुमआउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमतेउकाइयाणं बादरतेउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तगा,

२. बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

३. सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

४. सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा

प. एएसि णं भंते ! सुहुमवाउकाइयाणं बादरवाउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरवाउकाइया पज्जत्तगा,

२. बादरवाउकाइगा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

३. सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

४. सुहुमवाउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमवणस्सइकाइयाणं बादरवणस्सइकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा,

२. बादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

३. सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

४. सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमनिगोदाणं बादरनिगोदाण य पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरनिगोदा पज्जत्तगा,

३. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे है।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म अप्कायिकों और बादर अप्कायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर अप्कायिक पर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे है।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म तेजस्कायिकों और बादर तेजस्कायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे है।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म वायुकायिक और बादर वायुकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर वायुकायिक पर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और बादर वनस्पतिकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म निगोदों एवं बादर निगोदों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प बादर निगोद पर्याप्तक हैं,

२. वादरनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
३. सुहुमनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
४. सुहुमनिगोदा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! सुहुमाणं, सुहुमपुढविकाइयाणं, सुहुमआउकाइयाणं, सुहुमतेउकाइयाणं, सुहुमवाउकाइयाणं, सुहुमवणस्सइकाइयाणं, सुहुमनिगोदाणं, वादराणं, वादरपुढविकाइयाणं, वादर आउकाइयाणं, वादरतेउकाइयाणं, वादरवाउकाइयाण, वादरवणस्सइकाइयाणं, पत्तेयसरीर वादरवणस्सइकाइयाणं, वादरनिगोदाणं, वादरतसकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा वादरतेउकाइया पज्जत्तगा,
२. वादरतसकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
३. वादरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
४. पत्तेयसरीरवादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
५. वादरनिगोदा पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
६. वादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
७. वादरआउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
८. वादरवाउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
९. वादरतेउक्काइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
१०. पत्तयेसरीरवादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
११. वादरणिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
१२. वादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
१३. वादरआउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
१४. वादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
१५. सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
१६. सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
१७. सुहुमआउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
१८. सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
१९. सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
२०. सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,
२१. सुहुमआउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,
२२. सुहुमवाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,

२. (उनसे) वादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म जीवों, सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों, सूक्ष्म अप्कायिकों, सूक्ष्म तेजस्कायिकों, सूक्ष्म वायुकायिकों, सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों, सूक्ष्म निगोदों, वादर जीवों, वादर पृथ्वीकायिकों, वादर अप्कायिकों, वादर तेजस्कायिकों, वादर वायुकायिकों, वादर वनस्पतिकायिकों, प्रत्येक शरीर वादर वनस्पतिकायिकों, वादर निगोदों और वादर त्रसकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प वादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) वादर त्रसकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) वादर त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) प्रत्येकशरीर वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।
५. (उनसे) वादर निगोद पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) वादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
७. (उनसे) वादर अप्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
८. (उनसे) वादर वायुकायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
९. (उनसे) वादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
१०. (उनसे) प्रत्येक शरीर वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
११. (उनसे) वादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
१२. (उनसे) वादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
१३. (उनसे) वादर अप्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
१४. (उनसे) वादर वायुकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
१५. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
१६. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
१७. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
१८. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
१९. (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
२०. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
२१. (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
२२. (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

२३. सुहुमनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
२४. सुहुमनिगोदा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा,
२५. बादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा,
२६. बादर पज्जत्तगा विसेसाहिया,
२७. बादर वणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
२८. बादरा अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
२९. बादरा विसेसाहिया,
३०. सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
३१. सुहुमा अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
३२. सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा,
३३. सुहुमपज्जत्तगा विसेसाहिया,
३४. सहुमा विसेसाहिया,[1] —*पण्ण. प., सु. २३७-२५१*

२३. (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
२४. (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,
२५. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,
२६. (उनसे) बादर पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं,
२७. (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
२८. (उनसे) बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
२९. (उनसे) बादर विशेषाधिक हैं,
३०. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
३१. (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
३२. (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,
३३. (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
३४. (उनसे) सूक्ष्म विशेषाधिक हैं।

१४५. सकाइय-अकाइय जीवाणं वित्थरओ अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! सकाइया अकाइया य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा अकाइया,
२. सकाइया अणंतगुणा। —*जीवा पडि. ९, सु. २३२*

प. एएसि णं भंते ! सकाइयाणं, पुढविकाइयाणं, आउकाइयाणं, तेउकाइयाणं, वाउकाइयाणं, वणस्सइकाइयाणं, तसकाइयाणं, अकाइयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा तसकाइया,
२. तेउकाइया असंखेज्जगुणा,
३. पुढविकाइया विसेसाहिया,
४. आउकाइया विसेसाहिया,
५. वाउकाइया विसेसाहिया,
६. अकाइया अणंतगुणा,
७. वणस्सइकाइया असंखेज्जगुणा,[2]
८. सकाइया विसेसाहिया,[3]

प. एएसि णं भंते ! सकाइयाणं, पुढविकाइयाणं, आउकाइयाणं, तेउकाइयाणं, वाउकाइयाणं, वणस्सइकाइयाणं, तसकाइयाण य अपज्जत्तगाण कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा तसकाइया अपज्जत्तगा,
२. तेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
३. पुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
४. आउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,

१४५. विस्तार से सकायिक अकायिक जीवों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन सकायिक और अकायिक जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प अकायिक हैं,
२. (उनसे) सकायिक अनन्त गुणे हैं।

प्र. भंते ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और अकायिक जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प त्रसकायिक हैं,
२. (उनसे) तेजस्कायिक असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) अप्कायिक विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) वायुकायिक विशेषाधिक हैं,
६. (उनसे) अकायिक अनन्तगुणे हैं,
७. (उनसे) वनस्पतिकायिक असंख्यातगुणे हैं,
८. (उनसे) सकायिक विशेषाधिक हैं।

प्र. भंते ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प त्रसकायिक अपर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

---

१. जीवा. पडि. ५, सु. २२१ (आ)
२. (क) विया. स. २६, उ. ३, सु. ११९
(ख) जीवा. पडि. ९, सु. २५२ समान है वनस्पतिकाय अनन्तगुणा है,
३. जीवा. पडि. ५, सु. २१३.

५. वाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,

६. वणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा,

७. सकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया।

प. एएसि णं भंते ! सकाइयाणं, पुढविकाइयाणं, आउकाइयाणं, तेउकाइयाणं, वाउकाइयाणं, वणस्सइकाइयाणं, तसकाइयाण य पज्जत्तगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा,

२. तेउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

३. पुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,

४. आउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,

५. वाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,

६. वणस्सइकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा,

७. सकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया।

प. एएसि णं भंते ! सकाइया पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सकाइया अपज्जत्तगा,

२. सकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! पुढविकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पुढविकाइया अपज्जत्तगा,

२. पुढविकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! आउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा आउकाइया अपज्जत्तगा,

२. आउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! तेउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा तेउकाइया अपज्जत्तगा,

२. तेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! वाउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा वाउकाइया अपज्जत्तगा,

२. वाउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! वणस्सइकाइयाणं पज्जत्ता-ऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया अपज्जत्तगा,

२. वणस्सइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! तसकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा,

५. (उनसे) वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

६. (उनसे) वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,

७. (उनसे) सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

प्र. भंते ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प त्रसकायिक पर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) तेजस्कायिक पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

४. (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

५. (उनसे) वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

६. (उनसे) वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,

७. (उनसे) सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

प्र. भंते ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक सकायिकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सकायिक अपर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) सकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक पृथ्वीकायिकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक अप्कायिकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प अप्कायिक अपर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक तेजस्कायिकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प अपर्याप्तक तेजस्कायिक हैं,

२. (उनसे) पर्याप्तक तेजस्कायिक संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक वायुकायिकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प अपर्याप्तक वायुकायिक हैं,

२. (उनसे) पर्याप्तक वायुकायिक संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक [illegible] में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प [illegible] हैं,

२. (उनसे) पर्याप्तक [illegible] हैं।

प्र. भं[illegible] ! इन पर्याप्तक और [illegible] किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प [illegible] हैं

२. तसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।[1]

प. एएसि णं भंते ! सकाइयाणं, पुढविकाइयाणं, आउकाइयाणं, तेउकाइयाणं, वाउकाइयाणं, वणस्सइ-काइयाणं, तसकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा,

२. तसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

३. तेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,

४. पुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,

५. आउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,

६. वाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,

७. तेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा,

८. पुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,

९. आउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,

१०. वाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,

११. वणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा,

१२. सकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,

१३. वणस्सइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा,

१४. सकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया,

१५. सकाइया विसेसाहिया[2]।

—पण्ण. प. ३, सु. २३२-२३६

२. (उनसे) अपर्याप्तक त्रसकायिक असंख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक में से कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प त्रसकायिक पर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) त्रसकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) तेजस्कायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

५. (उनसे) अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

६. (उनसे) वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

७. (उनसे) तेजस्कायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,

८. (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

९. (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

१०. (उनसे) वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

११. (उनसे) वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,

१२. (उनसे) सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

१३. (उनसे) वनस्पतिकायिक पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,

१४. (उनसे) सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

१५. (उनसे) सकायिक विशेषाधिक हैं।

१४६. तस-थावराणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! तसाणं थावराण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा तसा,

२. थावरा अणंतगुणा। *—जीवा. पडि. १, सु. ४३*

१४६. त्रस और स्थावरों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन त्रसों और स्थावरों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प त्रस हैं,

२. (उनसे) स्थावर जीव अनन्तगुणे हैं।

१४७. परित्ताइ जीवाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं परित्ताणं, अपरित्ताणं, नो परित्तनोअपरित्ताण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा परित्ता,

२. नोपरित्त नो अपरित्ता अणंतगुणा,

३. अपरित्ता अणंतगुणा।[3]

—पण्ण. प. ३, सु. २६५

१४७. परीतादि जीवों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन परीत, अपरीत और नो परीत नो अपरीत जीवों में से कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प परीत जीव हैं,

२. (उनसे) नो परीत-नो अपरीत जीव अनन्तगुणे हैं,

३. (उनसे) अपरीत जीव अनन्तगुणे हैं।

१४८. भवसिद्धियाइ जीवाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं भवसिद्धियाणं अभवसिद्धियाणं, णो भवसिद्धिय णो अभवसिद्धियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा अभवसिद्धिया,

१४८. भवसिद्धिकादि जीवों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नो भवसिद्धिक नो अभवसिद्धिक जीवों में से कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प अभवसिद्धिक जीव हैं,

---

१. जीवा. पडि. ५, सु. २१३ २. जीवा. पडि. ५, सु. २१३ ३. जीवा. पडि. ९, सु. २३८

२. णो भवसिद्धिय णोअभवसिद्धिया अणंतगुणा,

३. भवसिद्धिया अणंतगुणा[1]। —पण्ण. प. ३, सु. २६९

२. (उनसे) नो भवसिद्धिक नो अभवसिद्धिक जीव अनन्तगुणे हैं,

३. (उनसे) भवसिद्धिक जीव अनन्तगुणे हैं।

१४९ तसाई जीवाणं अप्पबहुत्तं—

प. एएसि णं भंते ! तसाणं, थावराणं, नो तस-नो थावराण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा तसा,

२. नो तसा-नो थावरा अणंतगुणा,

३. थावरा अणंतगुणा। —जीवा. पडि. ९, सु. २४३

१४९. त्रसादि जीवों का अल्पबहुत्व—

प्र. भंते ! इन त्रस, स्थावर और नो त्रस नो स्थावरों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प त्रस हैं,

२. (उनसे) नो त्रस नो स्थावर (सिद्ध) अनन्तगुणे हैं,

३. (उनसे) स्थावर अनन्तगुणे हैं।

१५०. पज्जत्ताइ जीवाणं अप्पबहुत्तं—

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं पज्जत्तगाणं, अपज्जत्तगाणं, नो पज्जत्त नो अपज्जत्तगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा नो पज्जत्तग नो अपज्जत्तगा,

२. अपज्जत्तगा अणंतगुणा,

३. पज्जत्तगा संखेज्जगुणा[2]। —पण्ण. प. ३, सु. २६६

१५०. पर्याप्तकादि जीवों का अल्पबहुत्व—

प्र. भंते ! इन पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक नो अपर्याप्तक जीवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प नो पर्याप्तक नो अपर्याप्तक जीव हैं,

२. (उनसे) अपर्याप्तक जीव अनन्तगुणे हैं,

३. (उनसे) पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे हैं।

१५१. नवविह विवक्खया एगिंदियाइ जीवाणं अप्पबहुत्तं—

प. एएसि णं भंते ! एगिंदियाणं, बेइंदियाणं, तेइंदियाणं, चउरिंदियाणं, णेरइयाणं, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं, मणुस्साणं, देवाणं, सिद्धाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा मणुस्सा,

२. णेरइया असंखेज्जगुणा,

३. देवा असंखेज्जगुणा,

४. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा,

५. चउरिंदिया विसेसाहिया,

६. तेइंदिया विसेसाहिया,

७. बेइंदिया विसेसाहिया,

८. सिद्धा अणंतगुणा,

९. एगिंदिया अणंतगुणा। —जीवा. पडि. ९, सु. २५८

१५१. नवविध विवक्षा से एकेन्द्रियादि जीवों का अल्पबहुत्व—

प्र. भंते ! इन एकेन्द्रियों, द्वीन्द्रियों, त्रीन्द्रियों, चतुरिन्द्रियों, नैरयिकों, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों, मनुष्यों, देवों और सिद्धों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प मनुष्य हैं,

२. (उनसे) नैरयिक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) देव असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक असंख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं,

६. (उनसे) त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं,

७. (उनसे) द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं,

८. (उनसे) सिद्ध अनन्तगुणे हैं,

९. (उनसे) एकेन्द्रिय अनन्तगुणे हैं।

१५२. पढमापढमसमयविवक्खया एगिंदियाइ अप्पबहुत्तं—

प. एएसि णं भंते ! पढमसमय एगिंदियाणं जाव पढमसमय पंचिंदियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वेसिं सव्वत्थोवा पढमसमयपंचेंदिया,

२. पढमसमयचउरिंदिया विसेसाहिया,

३. पढमसमयतेइंदिया विसेसाहिया,

४. पढमसमयबेइंदिया विसेसाहिया,

५. पढमसमयएगिंदिया विसेसाहिया।

१५२. प्रथमाप्रथमसमय की विवक्षा से एकेन्द्रियादिकों का अल्पबहुत्व—

प्र. भंते ! इन प्रथम समय एकेन्द्रियों यावत् प्रथम समय पंचेन्द्रियों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प प्रथमसमय पंचेन्द्रिय हैं,

२. (उनसे) प्रथमसमय चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं,

३. (उनसे) प्रथमसमय त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं,

४. (उनसे) प्रथमसमय द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं,

५. (उनसे) प्रथमसमय एकेन्द्रिय विशेषाधिक हैं।

---

१. जीवा. पडि. ९, सु. २४२

२. जीवा. पडि. ९, सु. २४१

एवं अपढमसमयिगा वि,

णवरं-अपढमसमयएगिंदिया अणंतगुणा।

दोण्हं अप्पाबहुयं सव्वत्थोवा पढसमयएगिंदिया, अपढमसमयएगिंदिया अणंतगुणा।

सेसाणं सव्वथोवा पढमसमयिका, अपढमसमयिका असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! पढमसमयएगिंदियाणं जाव पढमसमय पंचिंदियाणं अपढमसमयएगिंदियाणं जाव अपढमसमयपंचिंदियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पढमसमयपंचेंदिया,
२. पढमसमयचउरिंदिया विसेसाहिया,
३. पढमसमयतेइंदिया विसेसाहिया,
४. पढमसमय बेइंदिया विसेसाहिया,
५. पढमसमयएगिंदिया विसेसाहिया,
६. अपढमसमयपंचिंदिया असंखेज्जगुणा,
७. अपढमसमयचउरिंदिया विसेसाहिया,
८. अपढमसमय तेइंदिया विसेसाहिया,
९. अपढमसमयबेइंदिया विसेसाहिया,
१०. अपढमसमयएगिंदिया अणंतगुणा।

-जीवा. पडि. ९, सु. २३०

१५३. निगोदाणं दव्वट्ठयाइ विवक्खया अप्पबहुत्तं-

प. एएसि णं भंते ! णिगोदाणं सुहुमाणं बादराणं पज्जत्ताणं-अपज्जत्ताणं-दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठ पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरणिगोदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए,
२. बादरणिगोदा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्ज-गुणा,
३. सुहुमणिगोदा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्ज-गुणा,
४. सुहुमणिगोदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

एवं पएसट्ठयाए वि.

दव्वट्ठ पएसट्ठयाए-
१. सव्वत्थोवा बादरनिगोदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए,
२. बादरणिगोदा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्ज-गुणा,
३. सुहुमणिगोदा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्ज-गुणा,
४. सुहुमणिगोदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

इसी प्रकार अप्रथमसमयिकों का अल्पबहुत्व भी जानना चाहिए।

विशेष-अप्रथगसमयएकेन्द्रिय अनन्तगुणे हैं,

दोनों का अल्पबहुत्व-सबसे अल्प प्रथमसमयएकेन्द्रिय हैं, (उनसे) अप्रथमसमयएकेन्द्रिय अनन्तगुणे हैं,

शेष में सबसे अल्प प्रथमसमय वाले हैं और अप्रथमसमय वाले असंख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन प्रथमसमयएकेन्द्रियों, यावत् प्रथम समय पंचेन्द्रियों अप्रथमसमए केन्द्रियों यावत् प्रथमसमयपंचेन्द्रियों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प प्रथमसमय पंचेन्द्रिय हैं,
२. (उनसे) प्रथमसमय चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) प्रथमसमय त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) प्रथमसमय द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) प्रथम समय एकेन्द्रिय विशेषाधिक हैं,
६. (उनसे) अप्रथमसमय पंचेन्द्रिय असंख्यातगुणे हैं,
७. (उनसे) अप्रथमसमय चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक हैं,
८. (उनसे) अप्रथमसमय त्रीन्द्रिय विशेषाधिक हैं,
९. (उनसे) अप्रथमसमय द्वीन्द्रिय विशेषाधिक हैं,
१०. (उनसे) अप्रथमसमय एकेन्द्रिय अनन्तगुणे हैं।

१५३. निगोदों का द्रव्यार्थादि की अपेक्षा अल्पबहुत्व-

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक निगोदों में द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेश की अपेक्षा तथा द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा १. सबसे अल्प बादरनिगोद पर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,

इसी प्रकार प्रदेश की अपेक्षा से भी कहना चाहिए।

द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा-
१. सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा बादरनिगोद पर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा बादर निगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,

५. सुहुमणिगोदेहिंतो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बादरणिगोदा पज्जत्ता पएसट्ठयाए अणंतगुणा,

६. बादरणिगोदा अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

७. सुहुमणिगोदा अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

८. सुहुमणिगोदा पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा।

५. द्रव्य की अपेक्षा सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तकों से बादरनिगोद पर्याप्तक प्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं,

६. (उनसे) प्रदेश की अपेक्षा बादरनिगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

७. (उनसे) प्रदेश की अपेक्षा सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

८. (उनसे) प्रदेश की अपेक्षा सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

प. एएसि णं भंते ! णिगोदजीवाणं सुहुमाणं, बादराणं पज्जत्ताणं-अपज्जत्ताणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

दव्वट्ठयाए–

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बादरणिगोदजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए,

२. बादरणिगोदजीवा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

३. सुहुमणिगोदजीवा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्ज-गुणा,

४. सुहुमणिगोदजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्ज-गुणा,

पएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवा बादरणिगोदा जीवा पज्जत्ता पयसट्ठयाए,

२. बादरणिगोदजीवा अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

३. सुहुमणिगोदजीवा अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

४. सुहुमणिगोदजीवा पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,

दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवा बादरणिगोदजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए,

२. बादरणिगोदजीवा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

३. सुहुमणिगोदजीवा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

४. सुहुमणिगोदजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

५. सुहुमणिगोदजीवेहिंतो पज्जत्तेहिंतो दव्वट्ठयाए बादरणिगोदजीवा पज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

६. बादर णिगोदजीवा अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

प्र. भंते ! इन सूक्ष्म बादर पर्याप्तक और अपर्याप्तक निगोद जीवों में से द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेश की अपेक्षा तथा द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

द्रव्य की अपेक्षा–

उ. गौतम ! १. द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प बादर निगोद जीव पर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा बादर निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा सूक्ष्मनिगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा सूक्ष्मनिगोद जीव पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

प्रदेश की अपेक्षा–

१. प्रदेश की अपेक्षा सबसे अल्प बादर निगोद जीव पर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) प्रदेश की अपेक्षा बादर निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) प्रदेश की अपेक्षा सूक्ष्मनिगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) प्रदेश की अपेक्षा सूक्ष्मनिगोद जीव पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा–

१. द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प बादर निगोद जीव पर्याप्तक हैं,

२. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा बादर निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,

५. द्रव्य की अपेक्षा सूक्ष्म निगोद [illegible] बादर निगोद पर्याप्तक जीव प्रदेश की अपेक्षा [illegible] हैं,

६. (उनसे) प्रदेश की अपेक्षा बादर निगोद अपर्याप्तक जीव असंख्यातगुणे हैं

२. बादरणिगोदा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
३. सुहुमणिगोदा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
४. सुहुमणिगोदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,
५. सुहुमणिगोदेहिंतो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बादरणिगोदजीवा पज्जत्ता पएसट्ठयाए अणंतगुणा,
६. बादरनिगोदजीवा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
७. सुहुमणिगोदजीवा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
८. सुहुमणिगोदजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,
९. सुहुमणिगोदजीवेहिंतो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बादरणिगोदजीवा पज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।
१०. बादरनिगोदजीवा अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
११. सुहुमणिगोदजीवा अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१२. सुहुमणिगोदजीवा पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,
१३. सुहुमणिगोदजीवेहिंतो पज्जत्तएहिंतो पएसट्ठयाए बादरणिगोदा पज्जत्ता पएसट्ठयाए अणंतगुणा,
१४. बादरणिगोदा अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१५. सुहुमणिगोदा अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१६. सुहुमणिगोदा पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा।

–जीवा. पडि. ५, सु. २२४



२. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा अपर्याप्तक बादर निगोद असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा अपर्याप्तक सूक्ष्मनिगोद असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा पर्याप्तक सूक्ष्मनिगोद संख्यातगुणे हैं,
५. द्रव्य की अपेक्षा पर्याप्तक सूक्ष्मनिगोदों से पर्याप्तक बादर निगोद जीव प्रदेश की अपेक्षा अणंतगुणे हैं।
६. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा अपर्याप्तक बादर निगोद जीव असंख्यातगुणे हैं,
७. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा अपर्याप्तक सूक्ष्म निगोद जीव असंख्यातगुणे हैं,
८. (उनसे) द्रव्य की अपेक्षा पर्याप्तक सूक्ष्मनिगोद जीव संख्यातगुणे हैं,
९. द्रव्य की अपेक्षा पर्याप्तक सूक्ष्मनिगोद जीवों से पर्याप्तकबादर निगोद जीव प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
१०. (उनसे) प्रदेश की अपेक्षा अपर्याप्तक बादर निगोद जीव असंख्यातगुणे हैं,
११. (उनसे) प्रदेश की अपेक्षा अपर्याप्तक सूक्ष्मनिगोद जीव असंख्यातगुणे हैं,
१२. (उनसे) प्रदेश की अपेक्षा पर्याप्तक सूक्ष्मनिगोद जीव संख्यातगुणे हैं,
१३. प्रदेश की अपेक्षा पर्याप्तक सूक्ष्म निगोद जीवों से पर्याप्तक बादर निगोद जीव प्रदेश की अपेक्षा अणंतगुणे हैं,
१४. (उनसे) प्रदेश की अपेक्षा अपर्याप्तक बादरनिगोद असंख्यातगुणे हैं,
१५. (उनसे) प्रदेश की अपेक्षा अपर्याप्तक सूक्ष्म निगोद असंख्यातगुणे हैं,
१६. (उनसे) प्रदेश की अपेक्षा पर्याप्तक सूक्ष्म निगोद संख्यातगुणे हैं।



८. पढमापढम अज्झयणं

सूत्र

१. पढमापढम लक्खणं–

जो जेण पत्तपुव्वो, सो तेणऽपढमओ होई।
सेसेसु होइ पढमो, अपत्तपुव्वेसु भावेसु॥

–विया. स. १८, उ. १, सु. ६३

२. जीव-चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य चउद्दसदारेहिं पढमापढमत्त परूवणं–

तेणं कालेणं ते णं समएणं रायगिहे जाव एवं वयासि–

१. जीव दारं–

प. जीवे णं भंते ! जीवभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! नो पढमे, अपढमे।
दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

प. सिद्धे णं भंते ! सिद्धभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! पढमे, नो अपढमे।

प. जीवा णं भंते ! जीवभावेणं किं पढमा, अपढमा ?

उ. गोयमा ! नो पढमा, अपढमा।
दं. १-२४. एवं नेरइया जाव वेमाणिया।

प. सिद्धा णं भंते ! सिद्धभावेणं किं पढमा, अपढमा ?

उ. गोयमा ! पढमा, नो अपढमा।

२. आहार दारं–

प. आहारए णं भंते ! जीवे आहारगभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! नो पढमे, अपढमे।
दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

पुहत्तेण वि एवं चेव।

प. अणाहारए णं भंते ! जीवे अणाहारभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! सिय पढमे, सिय अपढमे,
दं. १-२४. नेरइए जाव वेमाणिए, नो पढमे, अपढमे।
सिद्धे पढमे, नो अपढमे।

प. अणाहारगाणं भंते ! जीवा अणाहारभावेणं किं पढमा, अपढमा ?

८. प्रथम अप्रथम अध्ययन

सूत्र

१. प्रथम अप्रथम का लक्षण–

जिस जीव के जो भाव (अवस्था) पहले से प्राप्त है उसकी अपेक्षा से वह जीव "अप्रथम" है और जो भाव प्रथम बार ही प्राप्त हुआ है, उस भाव की अपेक्षा से वह जीव "प्रथम" है।

२. जीव चौवीसदंडक और सिद्धों में चौदहद्वारों द्वारा प्रथमाप्रथमत्व का प्ररूपण–

उस काल और उस समय में राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा–

१. जीव द्वार–

प्र. भन्ते ! (एक) जीव जीवभाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! जीव जीवभाव की अपेक्षा से प्रथम नहीं, अप्रथम है।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! (एक) सिद्ध सिद्धभाव की अपेक्षा प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! प्रथम है, अप्रथम नहीं है।

प्र. भन्ते ! (अनेक) जीव, जीवभाव की अपेक्षा से प्रथम हैं या अप्रथम हैं ?

उ. गौतम ! प्रथम नहीं, अप्रथम हैं।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! (अनेक) सिद्ध सिद्धभाव की अपेक्षा से प्रथम हैं या अप्रथम हैं ?

उ. गौतम ! प्रथम हैं, अप्रथम नहीं हैं।

२. आहार द्वार–

प्र. भन्ते ! (एक) आहारकजीव, आहारकभाव की अपेक्षा से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! प्रथम नहीं, अप्रथम है।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार बहुवचन की अपेक्षा भी समझना चाहिए।

प्र. भन्ते ! (एक) अनाहारक जीव अनाहारकभाव की अपेक्षा से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! कदाचित् प्रथम है, कदाचित् अप्रथम है।
दं. १-२४. नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त प्रथम नहीं, अप्रथम है।
सिद्ध (अनाहारकभाव की अपेक्षा से) प्रथम है, अप्रथम नहीं है।

प्र. भन्ते ! (अनेक) अनाहारकजीव अनाहारकभाव की अपेक्षा से प्रथम हैं या अप्रथम हैं ?

उ. गौतम ! वे प्रथम भी हैं और अप्रथम भी हैं।

दं. १-२४. अनेक नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त [illegible] अप्रथम हैं।

(अनेक) सिद्ध [illegible] की अपेक्षा से [illegible] नहीं हैं।

३. भवसिद्धिक द्वार–

प्र. भंते ! (एक) भवसिद्धिक जीव भवसिद्धिकत्व [illegible] प्रथम है या अप्रथम है?

उ. गौतम ! वह प्रथम नहीं, अप्रथम है।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त [illegible] चाहिए।

इसी प्रकार बहुवचन की अपेक्षा से भी [illegible] चाहिए।

इसी प्रकार एक अनेक अभवसिद्धिक [illegible] जानना चाहिए।

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

४. [illegible]

[illegible]

दं. १-२४. एवं चउवीसं दंडगा भाणियव्वा।

पुहत्तेण वि एवं चेव।

कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा वि एगत्तेण पुहत्तेण एवं चेव।

दं. १-२४. एवं चउवीसं दंडगा भाणियव्वा।

णवरं–जस्स जा लेस्सा अत्थि।

प. अलेसे णं भंते ! जीवे अलेसीभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! पढमे, नो अपढमे,

मणुस्से, सिद्धे वि एवं चेव।

एवं पुहत्तेण वि।

६. दिट्ठी दारं–

प. सम्मदिट्ठीए णं भंते ! जीवे सम्मदिट्ठीए भावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! सिय पढमे, सिय अपढमे।

दं. १-११, १७-२४. एवं एगिंदियवज्जं जाव वेमाणिए,

सिद्धे पढमे, नो अपढमे।

पुहत्तिया जीवा पढमा वि, अपढमा वि।

दं. १-११, १७-२४. एवं एगिंदियवज्जं जाव वेमाणिया,

सिद्धा पढमा, नो अपढमा।

प. मिच्छादिट्ठिए णं भंते ! जीवे मिच्छादिट्ठिए भावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! नो पढमे, अपढमे।

दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

पुहत्तेण वि एवं चेव।

प. सम्मामिच्छादिट्ठिए णं भंते ! जीवे सम्मामिच्छादिट्ठिए भावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! सिय पढमे, सिय अपढमे।

पुहत्तिया जीवा पढमा वि अपढमा वि।

दं. १-११, २०-२४. एवं एगिंदिय-विगलिंदयवज्जं जाव वेमाणिया।

७. संजय दारं–

प. संजए णं भंते ! जीवे संजयभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! सिय पढमे, सिय अपढमे।

एवं मणुस्से वि।

पुहत्तेण वि एवं चेव।

प. असंजए णं भंते ! जीवे असंजयभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! नो पढमे, अपढमे।

दं. १-२४. इसी प्रकार चौवीस दण्डक का कथन करना चाहिए।

बहुवचन का कथन भी इसी प्रकार है।

इसी प्रकार कृष्ण लेश्या से शुक्ल लेश्या पर्यन्त एक अनेक की अपेक्षा जीवों का कथन करना चाहिए।

दं. १-२४. चौवीस दण्डकों का कथन भी इसी प्रकार है।

विशेष–जिस दण्डक के जो लेश्या हो, वह कहनी चाहिए।

प्र. भन्ते ! अलेश्यी जीव अलेश्यी भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! प्रथम है, अप्रथम नहीं है।

मनुष्य और सिद्ध भी इसी प्रकार है।

बहुवचन का कथन भी इसी प्रकार है।

६. दृष्टि द्वार–

प्र. भन्ते ! सम्यग्दृष्टि जीव, सम्यग्दृष्टिभाव की अपेक्षा से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् प्रथम है और कदाचित् अप्रथम है।

दं. १-११, १७-२४. इसी प्रकार एकेन्द्रिय जीवों को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

सिद्ध प्रथम है, अप्रथम नहीं है।

बहुवचन की अपेक्षा जीव प्रथम भी है और अप्रथम भी है।

दं. १-११, १७-२४. इसी प्रकार एकेन्द्रिय जीवों को छोड़कर वैमानिकों पर्यन्त का कथन करना चाहिए।

(बहुवचन की अपेक्षा) सिद्ध प्रथम हैं, अप्रथम नहीं हैं।

प्र. भन्ते ! मिथ्यादृष्टि जीव, मिथ्यादृष्टि भाव की अपेक्षा से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! प्रथम नहीं, अप्रथम है।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यंत का कथन करना चाहिए।

बहुवचन का कथन भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि भाव की अपेक्षा से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! कदाचित् प्रथम है, कदाचित् अप्रथम है।

बहुवचन की अपेक्षा जीव प्रथम भी हैं और अप्रथम भी हैं।

दं. १-११, २०-२४. एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड़कर (शेष दण्डक) वैमानिकों पर्यन्त इसी प्रकार है।

७. संयत द्वार–

प्र. भन्ते ! संयत जीव संयत भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! कदाचित् प्रथम है, कदाचित् अप्रथम है।

मनुष्य का कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए।

बहुवचन की अपेक्षा भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! असंयत जीव असंयत भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! प्रथम नहीं, अप्रथम है।

दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

पुहत्तेण वि एवं चेव,

बहुवचन की अपेक्षा भी इसी प्रकार है।

प. संजयासंजए णं भंते ! जीवे संजयासंजयभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! सिय पढमे, सिय अपढमे।

दं. २०-२१. एवं पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिए मणुस्से य

दं. २०-२१. पुहत्तिया जीवा पंचिन्दिय-तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा पढमा वि, अपढमा वि।

नो संजए, नो असंजए, नो संजयासंजए जीवे, सिद्धे पढमे, नो अपढमे।

पुहत्तेण वि एवं चेव।

प्र. भन्ते ! संयतासंयत जीव संयतासंयत भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! कदाचित् प्रथम है, कदाचित् अप्रथम है।

दं. २०-२१. इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्य का कथन करना चाहिए।

दं. २०-२१. अनेक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्य प्रथम भी हैं और अप्रथम भी हैं।

नो संयत नो असंयत और नो संयतासंयत जीव और सिद्ध प्रथम है, अप्रथम नहीं है।

बहुवचन की अपेक्षा भी इसी प्रकार है।

८. कसाय दारं–

प. सकसाए णं भंते ! सकसायभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! नो पढमे, अपढमे।

दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

पुहत्तेण वि एवं चेव।

प. कोहकसाएणं जाव लोभकसाए णं भंते ! जीवे कोहकसायभावेणं जाव लोभकसायभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! नो पढमे, अपढमे।

दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

पुहत्तेण वि एवं चेव।

प. अकसाए णं भंते ! जीवे अकसायभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! सिय पढमे, सिय अपढमे।

एवं मणुस्से वि।

प. अकसाए णं भंते ! सिद्धे अकसायभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! पढमे, नो अपढमे।

पुहत्तेणं जीवा मणुस्सा पढमा वि अपढमा वि।

सिद्धा पढमा नो अपढमा।

८. कषाय द्वार–

प्र. भन्ते ! सकषायी जीव सकषाय भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! प्रथम नहीं, अप्रथम है।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

बहुवचन की अपेक्षा भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी जीव क्रोधकषायी भाव से यावत् लोभकषायी भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! प्रथम नहीं, अप्रथम है।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

बहुवचन की अपेक्षा भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! अकषायी जीव अकषायी भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! कदाचित् प्रथम है और कदाचित् अप्रथम है।

इसी प्रकार मनुष्य का कथन है।

प्र. भन्ते ! अकषायी सिद्ध अकषायी भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! प्रथम है, अप्रथम नहीं है।

बहुवचन की अपेक्षा अकषायी जीव, मनुष्य प्रथम भी है और अप्रथम भी है।

सिद्ध प्रथम है, अप्रथम नहीं है।

९. णाण दारं–

प. णाणी णं भंते ! जीवे णाणभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! सिय पढमे, सिय अपढमे।

दं. १-११, १७-२४. एवं एगिंदियवज्जं जाव वेमाणिए।

सिद्धे पढमे नो अपढमे।

९. ज्ञान द्वार–

प्र. भन्ते ! ज्ञानी जीव ज्ञानी भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! कदाचित् प्रथम है और कदाचित् अप्रथम है।

दं. १-११, १७-२४. इसी प्रकार एकेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

सिद्ध प्रथम है, अप्रथम नहीं है।

प. णाणी णं भंते ! जीवा णाणभावेणं किं पढमा, अपढमा ?

उ. गोयमा ! पढमा वि, अपढमा वि।

दं. १-११, १७-२४. एवं एगेंदियवज्जा जाव वेमाणिया,

सिद्धा-पढमा, नो अपढमा।

आभिणिबोहियणाणी जाव मणपज्जवणाणीणं एगत्त पुहत्तेण वि एवं चेव।

णवरं–जस्स जं अत्थि[1]।

केवलणाणी जीवे, मणुस्से, सिद्धे एगत्त पुहत्तेणं-पढमा, नो अपढमा।

प. अण्णाणी णं भंते ! जीवे अण्णाणभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! नो पढमे, अपढमे।

दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

एवं मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी, विभंगणाणी य।

पुहत्तेण वि एवं चेव।

१०. जोग दारं–

प. सजोगी णं भंते ! जीवे सजोगीभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! नो पढमे, अपढमे।

एवं मणजोगी, वयजोगी, कायजोगी वि।

णवरं–जस्स जं अत्थि[2]।

प. अजोगी णं भंते ! जीवे अजोगीभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! पढमे, नो अपढमे।

मणुस्से, सिद्धे वि एवं चेव।

पुहत्तेण वि एवं चेव।

११. उवओग दारं–

प. सागारोवउत्ते णं भंते ! जीवे सागारोवउत्तभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! सिय पढमे, सिय अपढमे।

दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

सिद्धे वि एवं चेव,

पुहत्तेण सव्वे पढमा वि, अपढमा वि।

प. अणागारोवउत्ते णं भंते ! जीवे अणागारोवउत्तभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! सिय पढमे, सिय अपढमे।

प्र. भन्ते ! ज्ञानी जीव ज्ञानी भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! प्रथम भी है और अप्रथम भी है।

दं. १-११, १७-२४. इसी प्रकार एकेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

सिद्ध प्रथम है, अप्रथम नहीं है।

आभिनिबोधिक ज्ञानी यावत् मनःपर्याय ज्ञानी एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा इसी प्रकार हैं।

विशेष–यह है जिस जीव के जितने ज्ञान हों, उतने कहने चाहिए।

केवलज्ञानी जीव, मनुष्य और सिद्ध एकवचन बहुवचन की अपेक्षा प्रथम है, अप्रथम नहीं है।

प्र. भन्ते ! अज्ञानी जीव अज्ञान भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! वह प्रथम नहीं, अप्रथम है।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभंगज्ञानी है।

बहुवचन की अपेक्षा भी इसी प्रकार है।

१०. जोग द्वार–

प्र. भन्ते ! सयोगी जीव सयोगी भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! प्रथम नहीं, अप्रथम है।

इसी प्रकार मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी भी है।

विशेष–यह है कि जिस जीव के जितने योग हों उतने कहने चाहिए।

प्र. भन्ते ! अयोगी जीव अयोगी भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! प्रथम नहीं, अप्रथम है।

मनुष्य और सिद्ध भी इसी प्रकार है।

बहुवचन की अपेक्षा भी इसी प्रकार है।

११. उपयोग द्वार–

प्र. भन्ते ! साकारोपयुक्त जीव साकारोपयुक्त भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! कदाचित् प्रथम है और कदाचित् अप्रथम है।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

सिद्ध भी इसी प्रकार है।

बहुवचन की अपेक्षा सभी जीव और २४ दण्डक प्रथम भी है और अप्रथम भी है।

प्र. भन्ते ! अनाकारोपयुक्त जीव अनाकारोपयुक्त भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! कदाचित् प्रथम है और कदाचित् अप्रथम है।

---

१ (क) मति-श्रुतज्ञान वाले के १९ दण्डक (१-११, १७वें से २४वें तक)
(ख) मति-श्रुत-अवधिज्ञान वाले के १६ दण्डक (१-११, २०वें से २४वें तक)
(ग) मनःपर्यवज्ञान वाले का एक दण्डक २१ वां,

२ (क) नारकों, का १ दण्डक, भवनवासी के १० दण्डक, २०वें दण्डक से चौवीस दण्डक तक ५ दण्डक, इस प्रकार १६ दण्डक मनयोगी के हैं।
(ख) पांच स्थावर के पांच दण्डकों का निषेध होने पर १९ दण्डक वचनयोगी के हैं।
(ग) काययोगी के २४ दण्डक हैं।

दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

पुहत्तेण वि एवं चेव।

प. सागारोवउत्ते णं भंते ! सिद्धे सिद्धभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! पढमे, नो अपढमे,

एवं अणागारोवउत्ते वि।

पुहत्तेण वि एवं चेव।

१२. वेय दारं–

प. सवेदगे णं भंते ! जीवे सवेदगभावेणं किं पढमे अपढमे ?

उ. गोयमा ! नो पढमे, अपढमे।

दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

णवरं–जस्स जो वेदो अत्थि[1]।

पुहत्तेण वि एवं चेव।

एवं इत्थिवेए, पुरिसवेए, णपुंसगवेए वि एगत्त-पुहत्तेणं।

प. अवेदेणं णं भंते ! जीवे अवेदभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! सिय पढमे, सिय अपढमे,

एवं मणुस्से वि,

सिद्धे पढमे, नो अपढमे।

पुहत्तेणं जीवा मणुस्सा य पढमा वि अपढमा वि।

सिद्धा पढमा, नो अपढमा।

१३. सरीर दारं–

प. ससरीरी णं भंते ! जीवे ससरीरभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! नो पढमे, अपढमे।

एवं ओरालियसरीरी जाव कम्मगसरीरी।

णवरं–जस्स जं अत्थि सरीरं[2]।

प. आहारगसरीरी णं भंते ! जीवे आहारगसरीरभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! सिय पढमे, सिय अपढमे।

एवं मणुस्से वि।

पुहत्तेण जीवा मणुस्सा य पढमा वि अपढमा वि,

प. असरीरी णं भंते ! जीवे असरीरीभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! पढमे, नो अपढमे,

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यंत जानना चाहिए।

बहुवचन का कथन भी इसी प्रकार है।

प्र. भन्ते ! साकारोपयुक्त सिद्ध सिद्धभाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! प्रथम है, अप्रथम नहीं है।

अनाकारोपयुक्त भी इसी प्रकार है।

बहुवचन की अपेक्षा भी इसी प्रकार है।

१२. वेद द्वार–

प्र. भन्ते ! सवेदक जीव सवेदक भाव से प्रथम है या अप्रथम है?

उ. गौतम ! प्रथम नहीं, अप्रथम है।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–जिसके जो वेद हो वह कहना चाहिए।

बहुवचन की अपेक्षा भी इसी प्रकार है।

इसी प्रकार स्त्री वेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद में भी एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा कथन करना चाहिए।

प्र. भन्ते ! अवेदक जीव अवेदकभाव से प्रथम है या अप्रथम है?

उ. गौतम ! वह कदाचित् प्रथम है और कदाचित् अप्रथम है।

मनुष्य का कथन भी इसी प्रकार है।

सिद्ध प्रथम है, अप्रथम नहीं है।

बहुवचन की अपेक्षा जीव और मनुष्य प्रथम भी है और अप्रथम भी है।

सिद्ध प्रथम हैं, अप्रथम नही हैं।

१३. शरीर द्वार–

प्र. भन्ते ! सशरीरी जीव सशरीर भाव से प्रथम है या अप्रथम है?

उ. गौतम ! वह प्रथम नहीं है, अप्रथम है।

इसी प्रकार औदारिक शरीरी से कार्मण शरीरी पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–जिसके जो शरीर हो वह कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! आहारकशरीरी जीव आहारकशरीरी भाव से प्रथम है या अप्रथम है।

उ. गौतम ! कदाचित् प्रथम है और कदाचित् अप्रथम है।

मनुष्य का कथन भी इसी प्रकार है।

बहुवचन की अपेक्षा जीव और मनुष्य प्रथम भी है और अप्रथम भी है।

प्र. भन्ते ! अशरीरी जीव अशरीरी भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! प्रथम है, अप्रथम नहीं है।

---

१ (क) देवताओं के १३ दंडकों में केवल दो वेद–स्त्री वेद और पुरुष वेद हैं।
(ख) नरक का एक दंडक, पांच स्थावर के ५ दंडक और तीन विकलेन्द्रिय के ३ दंडक इन नौ दंडकों में एक नपुंसक वेद है।
(ग) तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य इन दो दंडकों में तीनों वेद हैं।

२ (क) औदारिक शरीर १० दण्डक में (१२ से २१).
(ख) वैक्रिय शरीर १७ दण्डक में (१-११, १५, २०-२४)
(ग) आहारक शरीर एक दंडक में (२१)
(घ) तैजस कार्मण शरीर २४ दण्डक में।

एवं सिद्धे वि,
पुहत्तेण वि एवं चेव।

१४. पज्जत्त दारं–

प. पज्जत्तीहिं भंते ! जीवे पज्जत्तभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! नो पढमे, अपढमे,
दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

पुहत्तेण वि एवं चेव।
णवरं–जस्स जा अत्थि[1]।

प. अपज्जत्तीहिं भंते ! जीवे अपज्जत्तभावेणं किं पढमे, अपढमे ?

उ. गोयमा ! नो पढमे, अपढमे।
दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

पुहत्तेण जीवा नो पढमा, अपढमा।
दं. १-२४. नेरइया जाव वेमाणिया वि एवं चेव।

–विया स. १८, उ. १, सु. ३-६२



सिद्ध का कथन भी इसी प्रकार है।
बहुवचन की अपेक्षा भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

१४. पर्याप्त द्वार–

प्र. भन्ते ! पर्याप्त जीव पर्याप्तभाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! वह प्रथम नहीं है, अप्रथम है।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।
बहुवचन की अपेक्षा भी इसी प्रकार है।
विशेष–जिसकी जितनी पर्याप्तियां हैं उतनी जाननी चाहिए।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त जीव अपर्याप्त भाव से प्रथम है या अप्रथम है ?

उ. गौतम ! प्रथम नहीं है, अप्रथम है।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।
बहुवचन की अपेक्षा जीव प्रथम नहीं हैं, अप्रथम हैं।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त का कथन करना चाहिए।



---

१. (क) देवताओं के १३ दण्डक, नारकों का १ दण्डक, विकलेन्द्रियों के ३ दण्डक इन १७ दण्डकों में ५ पर्याप्तियां हैं।
(ख) स्थावरों के ५ दण्डकों में चार पर्याप्तियां हैं।
(ग) तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और मनुष्य के दो दण्डक में छः पर्याप्तियां हैं।

संज्ञी अध्ययन : आमुख

'संज्ञिनः समनस्काः' (तत्त्वार्थसूत्र २.२५) के अनुसार जो मन वाले जीव हैं उन्हें संज्ञी कहते हैं।

संज्ञी जीवों में हिताहित का विचार करने का सामर्थ्य होता है। मन के सद्भाव में वे शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलाप को ग्रहण कर सकते हैं। जिसके संज्ञा होती है उसे भी संज्ञी कहा जा सकता है।

संज्ञा के विविध रूप हैं। नाम को भी संज्ञा कहते हैं, ज्ञान को भी संज्ञा कहते हैं तथा आहार, भय, मैथुन एवं परिग्रह को भी संज्ञा कहा गया है।

प्रज्ञापना सूत्र के भाषा पद में जो सण्णी (संज्ञी) शब्द प्रयुक्त हुआ है वह शब्द संकेत को ग्रहण करने वाले के लिए हुआ है। जो बालक शब्द संकेत से अर्थ या पदार्थ को नहीं जानता वह भी एक प्रकार का असंज्ञी ही है। यहाँ पर संज्ञी शब्द संज्ञा के इन तीनों अर्थों से पृथक् अर्थ रखता है। मन वाले जीव ही यहाँ संज्ञी शब्द से अभीष्ट हैं। तिर्यञ्च एवं मनुष्य गति के समनस्क संज्ञी जीव प्रायः गर्भ से पैदा होते हैं। नरक एवं देवगति के समनस्क संज्ञी जीवों का जन्म उपपात से होता है, वे गर्भ से पैदा नहीं होते।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय एवं वनस्पतिकाय के जीव असंज्ञी होते हैं क्योंकि वे मन से रहित होते हैं। इसी प्रकार सभी विकलेन्द्रिय भी असंज्ञी होते हैं।

पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी भी होते हैं और असंज्ञी भी। इनमें नैरयिक जीव, भवनपति देव एवं वाणव्यन्तर देव संज्ञी भी होते हैं और असंज्ञी भी। देव और नरक गति में अन्य पंचेन्द्रिय असंज्ञी जीव भी उत्पन्न होते हैं अतः पूर्वभव की अपेक्षा से वे अल्पकाल तक असंज्ञी रहते हैं। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय संज्ञी एवं असंज्ञी दोनों प्रकार के होते हैं। वे सम्मूर्च्छिम होने पर असंज्ञी एवं गर्भज होने पर संज्ञी होते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य भी सम्मूर्च्छिम होने पर असंज्ञी एवं गर्भज होने पर संज्ञी होते हैं। मनुष्य जब कषायरहित हो जाते हैं तब तेरहवें एवं चौदहवें गुणस्थान में नोसंज्ञी एवं नोअसंज्ञी होते हैं। अर्थात् वे संज्ञित्व एवं असंज्ञित्व से परे होते हैं। मन होते हुए भी वे मन का उपयोग नहीं करते, अतः नोसंज्ञी होते हैं तथा एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रियों की भांति वे मन रहित नहीं होते, अतः नोअसंज्ञी होते हैं। इसी प्रकार सिद्ध जीव न संज्ञी होते हैं और न असंज्ञी वे नोसंज्ञी एवं नोअसंज्ञी होते हैं।

□

९. सण्णी अज्झयणं

९. संज्ञी अध्ययन

सूत्र

१. जीव-चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य सण्णीआईणं परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं सण्णी, असण्णी, णोसण्णी-णोअसण्णी ?

उ. गोयमा ! जीवा सण्णी वि, असण्णी वि, णोसण्णी-णोअसण्णी[1] वि।

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! किं सण्णी, असण्णी, णोसण्णी-णोअसण्णी ?

उ. गोयमा ! णेरइया सण्णी वि, असण्णी वि,[2] णोसण्णी-णोअसण्णी।

दं. २-११. एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविकाइयाणं भंते ! किं सण्णी, असण्णी, णोसण्णी-णोअसण्णी ?

उ. गोयमा ! पुढविकाइया णो सण्णी, असण्णी,[3] णोसण्णी-णोअसण्णी।

दं. १३-१६. एवं आउकाइया जाव वणस्सइकाइया[4]।

दं. १७-१९. एवं बेइंदिय तेइंदिय-चउरिंदिया वि[5]।

दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया जहा णेरइया।

दं. २१. मणूसा जहा जीवा,

दं. २२. वाणमंतरा जहा णेरइया,

दं. २३-२४. जोइसिय-वेमाणिया सण्णी, णो असण्णी, णोसण्णी-णोअसण्णी[6]।

गाहा– णेरइय-तिरिय-मणुया य, वणयरसुरा य सण्णऽसण्णी य।

विगलिंदिया असण्णी, जोइस-वेमाणिया सण्णी।[7]

प. सिद्धाणं भंते! किं सण्णी, असण्णी, णोसण्णी-णोअसण्णी ?

उ. गोयमा ! सिद्धा णो सण्णी, णो असण्णी, णोसण्णी णोअसण्णी।

–पण्ण. प. ३१, सु. १९६५-१९७३

सूत्र

१. जीव-चौबीसदंडकों और सिद्धों में संज्ञी आदि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! जीव संज्ञी हैं, असंज्ञी हैं या नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी हैं ?

उ. गौतम ! जीव संज्ञी भी हैं, असंज्ञी भी हैं और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी भी हैं।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक संज्ञी हैं, असंज्ञी हैं या नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक संज्ञी भी हैं, असंज्ञी भी हैं, किन्तु नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी नहीं हैं।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव संज्ञी हैं, असंज्ञी हैं, या नोसंज्ञी नोअसंज्ञी हैं ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव संज्ञी और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी नहीं हैं, किन्तु असंज्ञी हैं।

दं. १३-१६. इसी प्रकार अप्कायिकों से वनस्पतिकायिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. १७-१९. इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के लिए भी जानना चाहिए।

दं. २०. पंचेंद्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों का कथन नारकों के समान है।

दं. २१. मनुष्यों का कथन सामान्य जीवों के समान है।

दं. २२. वाणव्यंतरों का कथन नारकों के समान है।

दं. २३-२४. ज्योतिष्क और वैमानिक देव संज्ञी होते हैं, किन्तु असंज्ञी और नोसंज्ञी नोअसंज्ञी नहीं होते हैं।

गाथार्थ–नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, वाणव्यन्तर और असुरकुमारादि भवनपति देव संज्ञी भी होते हैं और असंज्ञी भी होते हैं,

विकलेन्द्रिय असंज्ञी होते हैं तथा ज्योतिष्क और वैमानिकदेव संज्ञी ही होते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या सिद्ध संज्ञी होते हैं, असंज्ञी होते हैं या नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी होते हैं ?

उ. गौतम ! सिद्ध न तो संज्ञी हैं और न असंज्ञी हैं, किन्तु नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी होते हैं।

---

१. जीवा. पडि. ९, सु. २४१

२. जीवा. पडि. १, सु. ३२

३. जीवा. पडि. १, सु. १३ (१०)

४ (क) प. उप्पलेणं भंते ! जीवा किं सण्णी, असण्णी ?
उ. गोयमा ! णो सण्णी, असण्णी वा, असण्णिणो वा।
–विया. स. ११, उ. १, सु. २९

(ख) जीवा. पडि. १, सु. १६-२६

५. जीवा. पडि. १, सु. २८-३०

६. देवा सण्णी वि, असण्णी वि।
–जीवा. पडि. १, सु. ४२ (सामान्य रूप से कथन है)

७. दुविहा नेरइया पण्णत्ता,
तंजहा– १. सण्णि चेव, २. असण्णि चेव।
एवं पंचेंदिया सव्वे विगलिंदियवज्जा जाव वाणमंतरा।
–ठाणं, अ. २, उ. २, सु. ६९/१

२. सम्मुच्छिम-गब्भवक्कंतिय-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं मणुस्साण य सण्णीआई परूवणं–

प. सम्मुच्छिम पंचेंदियतिरिक्खजोणियजलयराणं भंते ! किं सण्णि, असण्णी, णोसण्णी णोअसण्णी ?

उ. गोयमा ! णो सण्णी, असण्णी।
सम्मुच्छिम थलयरा खहयरा वि एवं चेव।

–जीवा. पडि. १, सु. ३५-३६

प. गब्भवक्कंतिय पंचेंदियतिरिक्खजोणिया जलयराणं भंते ! किं सण्णी, असण्णी, णोसण्णी, णोअसण्णी ?

उ. गोयमा ! सण्णी, णो असण्णी।
थलयरा खहयरा वि एवं चेव।

–जीवा. पडि. १, सु. ३८-३९

प. सम्मुच्छिम-मणुस्साणं भंते ! किं सण्णी, असण्णी, णोसण्णी-णोअसण्णी ?

उ. गोयमा ! णो सण्णी, असण्णी।

प. गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं भंते ! किं सण्णी, असण्णी, णो सण्णी-णो असण्णी ?

उ. गोयमा ! सण्णी वि, णो असण्णी, णोसण्णी णो असण्णी वि। –जीवा. पडि. १, सु. ४१

३. सण्णिआईणं कायट्ठिई परूवणं–

प. सण्णी णं भंते ! सण्णीत्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहत्तं साइरेगं।

प. असण्णी णं भंते ! असण्णीत्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं वणप्फइकालो।

प. णोसण्णी-णोअसण्णी णं भंते ! णोसण्णी णोअसण्णी त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! साईए अपज्जवसिए[1]।

–पण्ण. प. १८, सु. १३८९-१३९१

४. सण्णीआईणं अंतरकाल परूवणं–

१. सण्णिस्स जहण्णेणं अंतरं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं वणस्सइकालो,
२. असण्णिस्स जहण्णेणं अंतरं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहत्तं साइरेगं,
३. नो सण्णी नोअसण्णिस्स नत्थि अंतरं।

–जीवा. पडि. ९, सु. २४१

५. सण्णी आईणं अप्प बहुत्तं–

प. एएसिं णं भंते ! जीवाणं, सण्णीणं, असण्णीणं, नोसण्णी नोअसण्णीणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा सण्णी,
२. नो सण्णी-नोअसण्णी अणंतगुणा।
३. असण्णी अणंतगुणा[2]। –पण्ण. प. ३, सु. २६८

२. सम्मूर्च्छिम-गर्भज पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों के संज्ञी आदि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचर क्या संज्ञी, असंज्ञी या नोसंज्ञी नोअसंज्ञी हैं ?

उ. गौतम ! वे संज्ञी नहीं हैं, असंज्ञी हैं।
इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम स्थलचरों-खेचरों के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. भंते ! गर्भज पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचर क्या संज्ञी हैं, असंज्ञी हैं या नोसंज्ञी नोअसंज्ञी हैं ?

उ. गौतम ! वे संज्ञी हैं, असंज्ञी नहीं हैं।
गर्भज स्थलचरों खेचरों के लिए भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य क्या संज्ञी हैं, असंज्ञी हैं या नोसंज्ञी नोअसंज्ञी हैं।

उ. गौतम ! वे संज्ञी नहीं हैं, असंज्ञी हैं।

प्र. भंते ! गर्भज मनुष्य क्या संज्ञी हैं, असंज्ञी हैं या नोसंज्ञी नोअसंज्ञी हैं ?

उ. गौतम ! असंज्ञी नहीं हैं, संज्ञी भी हैं और नोसंज्ञी नोअसंज्ञी भी हैं।

३. संज्ञी आदि की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! संज्ञी जीव संज्ञी रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपमशतपृथक्त्वकाल तक रहता है।

प्र. भंते ! असंज्ञी जीव असंज्ञी रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक रहता है।

प्र. भंते ! नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव नोसंज्ञी नोअसंज्ञी रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! वह सादि-अपर्यवसित है।

४. संज्ञी आदि के अन्तर काल का प्ररूपण–

१. संज्ञी का अन्तर काल जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्टतः वनस्पतिकाल है।
२. असंज्ञी का अन्तरकाल जघन्यतःअन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्टतः साधिक सागरोपम शतपृथक्त्व है।
३. नोसंज्ञी नोअसंज्ञी का कोई अन्तरकाल नहीं है।

५. संज्ञी आदि का अल्प बहुत्व–

प्र. भंते ! संज्ञी, असंज्ञी और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प संज्ञी जीव हैं,
२. उनसे नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव अनन्तगुणे हैं,
३. उनसे असंज्ञीजीव अनन्तगुणे हैं।

१. जीवा. पडि. ९, सु. २४१

२. जीवा. पडि. ९, सु. २४१

योनि अध्ययन : आमुख

जीव के जन्म ग्रहण करने के स्थान को योनि कहते हैं। वह जन्म उपपात से, गर्भ से अथवा सम्मूर्च्छिम में किसी भी प्रकार से हो सकता है। योनि के भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से भेद किए जाते हैं। स्पर्श की अपेक्षा योनि के तीन प्रकार हैं–१. शीत योनि, २. उष्ण योनि और ३. शीतोष्ण योनि।

चेतना की अपेक्षा योनि तीन प्रकार की है–१. सचित्त, २. अचित्त और ३. मिश्र।

आवरण की अपेक्षा उसके तीन भेद हैं–१. संवृत्त (ढकी हुई) २. विवृत (खुली हुई) ३. संवृत-विवृत (कुछ ढकी हुई तथा कुछ खुली हुई)।

आकृति की अपेक्षा भी योनि तीन प्रकार की है–१. कछुए के पृष्ठ भाग जैसी २. शंख के आवर्त सदृश और ३. बांस के पत्तों जैसी।

स्पर्श की अपेक्षा समस्त देवों एवं गर्भज जीवों (तिर्यञ्च व मनुष्यों) की मात्र शीतोष्ण योनि है। तेजस्कायिक जीवों की योनि मात्र उष्ण है। नैरयिक जीवों की योनि शीत और ऊष्ण है किन्तु शीतोष्ण नहीं है। शेष एकेन्द्रियों, विकलेन्द्रियों एवं सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय जीवों के तीनों प्रकार की योनियाँ होती हैं।

चेतना की अपेक्षा नैरयिक एवं देवों की योनि अचित्त होती है, गर्भज जीवों की योनि मिश्र होती है तथा शेष जीवों की योनि तीनों प्रकार की होती है।

आवरण की अपेक्षा एकेन्द्रिय, नैरयिक तथा देवों की योनि संवृत होती है, विकलेन्द्रियों की विवृत होती है तथा गर्भज पंचेन्द्रिय जीवों की योनि संवृत्त-विवृत होती है।

आकृति की दृष्टि से जिन तीन योनियों का उल्लेख है, वे संभवतः मनुष्य की माताओं में ही उपलब्ध होती हैं। कूर्मोन्नता योनि अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव जैसे उत्तमपुरुषों की माताओं के होती है। शंखावर्ता योनि स्त्रीरत्न की होती है तथा बांस के पत्ते जैसी योनि सामान्य जनों की माता के होती है।

सिद्ध जीव जन्म नहीं लेते अतः अल्प-बहुत्व की चर्चा में उन्हें अयोनिक कहा गया है।

योनि के आधार पर जीवों को आठ प्रकार का कहा गया है–अण्डज, पोतज आदि। शाली, व्रीहि आदि वनस्पतिकायिक जीवों की योनि विशेष परिस्थितियों में जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्ट तीन वर्षों में म्लान हो जाती है, उसमें उत्पादक क्षमता समाप्त हो जाती है, बीज अबीज बन जाता है। इस प्रकार मटर, मसूर आदि की योनि का उत्कृष्ट काल विशेष परिस्थितियों में पाँच वर्ष तथा अलसी कुसुम्भ आदि का सात वर्ष होता है, उसके पश्चात् उन बीजों में योनित्व (उत्पादन क्षमता) समाप्त हो जाता है।

जैनागम में चौरासी लाख प्रकार की जीव योनियों का उल्लेख है। उनके भेदों का संक्षिप्त विवरण प्रतिक्रमण सूत्र में उपलब्ध है। योनियों की जाति विशेष को कुलकोटि कहते हैं। कुलकोटियों का वर्णन प्रस्तुत अध्ययन में ध्यातव्य है।

□

१०. जोणी अज्झयणं

सूत्र

१. सीयाइ जोणी भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! जोणी पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता, तं जहा–
१. सीयाजोणी, २. उसिणाजोणी, ३. सीओसिणाजोणी[1]।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! किं सीयाजोणी, उसिणाजोणी, सीओसिणाजोणी ?

उ. गोयमा ! सीया वि जोणी, उसिणा वि जोणी, नो सीओसिणाजोणी।

प. दं. २. असुरकुमाराणं भंते ! किं सीयाजोणी, उसिणाजोणी, सीओसिणाजोणी ?

उ. गोयमा ! नो सीयाजोणी, नो उसिणाजोणी, सीओसिणाजोणी।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमाराणं,

प. दं. १२. पुढविकाइयाणं भंते ! किं सीयाजोणी, उसिणाजोणी, सीओसिणाजोणी ?

उ. गोयमा ! सीया वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीओसिणा वि जोणी।

दं. १३, १५-१९. एवं आउ, वाउ, वणस्सइ, बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदियाण वि पत्तेयं भाणियव्वं।

दं. १४. तेउक्काइयाणं नो सीया, उसिणा, नो सीओसिणा।

प. दं. २० (क). पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! किं सीता जोणी, उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी ?

उ. गोयमा ! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीतोसिणा वि जोणी।

(ख). सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं एवं चेव।

प. (ग). गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! किं सीता जोणी, उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी ?

उ. गोयमा ! नो सीता जोणी, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी।

प. दं. २१ (क). मणुस्साणं भंते ! किं सीता जोणी, उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी ?

उ. गोयमा ! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीतोसिणा वि जोणी।

१०. योनि अध्ययन

सूत्र

१. शीतादि योनि भेद और चौवीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. शीतयोनि, २. उष्णयोनि, ३. शीतोष्णयोनि।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों की क्या शीत योनि है, उष्ण योनि है अथवा शीतोष्ण योनि है ?

उ. गौतम ! (नैरयिकों की) शीत योनि भी है और उष्ण योनि भी है, (किन्तु) शीतोष्ण योनि नहीं है।

प्र. दं. २. भन्ते ! असुरकुमार देवों की क्या शीत योनि है, उष्ण योनि है या शीतोष्ण योनि है ?

उ. गौतम ! उनकी शीत योनि और उष्ण योनि नहीं है, (किन्तु) शीतोष्ण योनि है।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यंत योनियां जाननी चाहिए।

प. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों की क्या शीत योनि है, उष्ण योनि है या शीतोष्ण योनि है ?

उ. गौतम ! उनकी शीत योनि भी है, उष्ण योनि भी है और शीतोष्ण योनि भी है।

दं. १३, १५-१९. इसी प्रकार अप्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की प्रत्येक की योनि जाननी चाहिये।

दं. १४. तेजस्कायिक जीवों की शीत योनि नहीं है, उष्ण योनि है, शीतोष्ण योनि नहीं है।

प. दं. २० (क). भन्ते ! पंचेंद्रियतिर्यग्योनिक जीवों की क्या शीत योनि है, उष्ण योनि है या शीतोष्ण योनि है ?

उ. गौतम ! (उनकी) योनि शीत भी है, उष्ण भी है और शीतोष्ण भी है।

(ख). सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों की योनि के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

प. (ग). भन्ते ! गर्भज पंचेंद्रिय तिर्यग्योनिकों की क्या शीत योनि है, उष्ण योनि है या शीतोष्ण योनि है ?

उ. गौतम ! उनकी शीत योनि, उष्ण योनि नहीं है, किन्तु शीतोष्ण योनि है।

प्र. दं. २१ (क). भन्ते ! मनुष्यों की क्या शीत योनि है, उष्ण योनि है या शीतोष्ण योनि है ?

उ. गौतम ! मनुष्यों की शीत-योनि भी है, उष्ण योनि भी है और शीतोष्ण योनि भी है।

---

१ (क) ठाणं, अ. ३, उ. १, सु. १४८
(ख) सीओसिणजोणीया, सव्वे देवा य गब्भवक्कंती।
उसिणा य तेउकाए, दुह णिरए तिविह सेसाणं॥

सीतोष्णयोनिकाः सर्वे, देवाश्च गर्भव्युत्कान्तिकाः।
उष्णा च तेजस्काये, द्विधा- शीता उष्णा च-नरके, त्रिविधा शेषाणाम्॥
–इति अभयदेवीयस्थानांगसूत्रवृत्तिगतोद्धरणम्।

प. (ख). सम्मुच्छिममणुस्साणं भंते ! किं सीता जोणी, उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी ?

उ. गोयमा ! तिविहा वि जोणी।

प. (ग). गब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते ! किं सीता जोणी, उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी ?

उ. गोयमा ! नो सीता जोणी, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी।

प. दं. २२. वाणमंतरदेवाणं भंते! किं सीता जोणी, उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी ?

उ. गोयमा ! नो सीता जोणी, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी।

दं. २३-२४. जोइसिय-वेमाणियाण वि एवं चेव।

–पण्ण. प. ९, सु. ७३८-७५२

प्र. (ख). भन्ते ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की क्या शीत योनि है, उष्ण योनि है या शीतोष्ण योनि है ?

उ. गौतम ! उनकी तीनों प्रकार की योनि है।

प्र. (ग). भन्ते ! गर्भज मनुष्यों की क्या शीत योनि है, उष्ण योनि है या शीतोष्ण योनि है ?

उ. गौतम ! उनकी शीत योनि और उष्ण योनि नहीं है, किन्तु शीतोष्ण योनि है।

प्र. दं. २२. भन्ते ! वाणव्यन्तर देवों की क्या शीत योनि है, उष्ण योनि है या शीतोष्ण योनि है ?

उ. गौतम ! उनकी शीत योनि, उष्ण योनि नहीं है, किन्तु शीतोष्ण योनि है।

दं. २३-२४. इसी प्रकार ज्योतिष्कों और वैमानिक देवों की योनि के विषय में भी जानना चाहिए।

२. सीयाइजोणिय जीवाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं सीयाजोणियाणं उसिणाजोणियाणं सीओसिणजोणियाणं अजोणियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा सीओसिणजोणिया,

२. उसिणजोणिया असंखेज्जगुणा,

३. अजोणिया अणंतगुणा,

४. सीयजोणिया अणंतगुणा[1]।

–पण्ण. प. ९, सु. ७५३

२. शीतादियोनिक जीवों का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! इन शीतयोनिक जीवों, उष्णयोनिक जीवों, शीतोष्णयोनिक जीवों तथा अयोनिक जीवों में से कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प जीव शीतोष्णयोनिक हैं,

२. (उनसे) उष्णयोनिक जीव असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) अयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं,

४. (उनसे) शीतयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं।

३. सचित्ताइ जोणी भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! जोणी पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता, तं जहा–

१. सचित्ता, २. अचित्ता, ३. मीसिया।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! किं सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, मीसिया जोणी ?

उ. गोयमा ! नो सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, णो मीसिया जोणी।

प. दं. २. असुरकुमाराणं भंते ! किं सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, मीसिया जोणी ?

उ. गोयमा ! नो सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, नो मीसिया जोणी।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. दं. १२. पुढविकाइयाणं भंते ! किं सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, मीसिया जोणी ?

उ. गोयमा ! सचित्ता वि जोणी, अचित्ता वि जोणी, मीसिया वि जोणी।

दं. १३-१९. एवं जाव चउरिंदियाणं।

३. सचित्तादि योनि भेद और चौबीस दंडकों में प्ररूपण–

प. भंते ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. सचित्त योनि, २. अचित्त योनि, ३. मिश्र योनि।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों की क्या सचित्त योनि है, अचित्त योनि है या मिश्र योनि है ?

उ. गौतम ! नैरयिकों की सचित्त और मिश्र योनि नहीं है किन्तु अचित्त योनि है।

प्र. दं. २. भन्ते ! असुरकुमारों की योनि क्या सचित्त है अचित्त है या मिश्र है ?

उ. गौतम ! उनके सचित्त और मिश्र योनि नहीं है किन्तु अचित्त योनि है।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त योनि के विषय में समझना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीवों की योनि क्या सचित्त है अचित्त है या मिश्र है ?

उ. गौतम ! उनकी योनि सचित्त भी है, अचित्त भी है और मिश्र भी है।

दं. १३-१९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों पर्यन्त योनि के विषय में जानना चाहिए।

---

१. विया.स.१०,उ.२,सु.४

दं. २०-२१. सम्मुच्छिपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं सम्मुच्छिम-मणुस्साणं य एवं चेव।

गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं, गब्भ-वक्कंतियमणुस्साण य नो सचित्ता, नो अचित्ता, मीसिया जोणी।

दं.२२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं[1]।

—पण्ण. प. ९, सु. ७५४-७६२

दं. २०-२१. सम्मूर्च्छिम पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की योनि के विषय में भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

गर्भजपंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों तथा गर्भज मनुष्यों की योनि सचित्त और अचित्त नहीं है किन्तु मिश्र योनि है।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों की योनि के लिए असुरकुमारों के समान समझना चाहिए।

४. सचित्ताइजोणियाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं सचित्तजोणिणं, अचित्तजोणिणं, मीसजोणिणं, अजोणिण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा मीसजोणिया,

२. अचित्तजोणिया असंखेज्जगुणा,

३. अजोणिया अणंतगुणा,

४. सचित्तजोणिया अणंतगुणा।

—पण्ण. प. ९, सु. ७६३

४. सचित्तादि योनिकों का अल्प बहुत्व–

प्र. भन्ते ! इन सचित्तयोनिक जीवों, अचित्तयोनिक जीवों मिश्रयोनिक जीवों तथा अयोनिकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! १. मिश्रयोनिक जीव सबसे अल्प हैं,

२. (उनसे) अचित्तयोनिक जीव असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) अयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं,

४. (उनसे) सचित्तयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं।

५. संवुडाइजोणीभेया चउवीदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! जोणी पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता, तं जहा–

१. संवुडाजोणी, २. वियडाजोणी,

३. संवुडवियडाजोणी[2]।

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं संवुडाजोणी, वियडाजोणी, संवुडवियडाजोणी ?

उ. गोयमा ! संवुडाजोणी, नो वियडाजोणी, नो संवुडवियडाजोणी।

प. दं. २-१६. एवं जाव वणस्सइकाइयाणं,

प. दं. १७. वेइंदियाणं भंते ! किं संवुडाजोणी, वियडाजोणी, संवुडवियडाजोणी ?

उ. गोयमा ! नो संवुडाजोणी, वियडाजोणी, नो संवुडवियडाजोणी।

दं.१८-१९. एवं जाव चउरिंदियाणं।

दं. २० क. सम्मुच्छिम-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं,

दं. २१ क. सम्मुच्छिम-मणुस्साण य जहा वेइंदियाणं,

५. संवृतादि योनि भेद और चौबीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! कितने प्रकार की योनियां कही गई हैं?

उ. गौतम ! योनियां तीन प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१. संवृत योनि, २. विवृत योनि,

३. संवृत-विवृत योनि।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों की क्या संवृत योनि है, विवृत योनि है या संवृत विवृत योनि है?

उ. गौतम ! नैरयिकों की योनि संवृत है, किन्तु विवृत और संवृत-विवृत नहीं है।

प्र. दं. २-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त की योनियां जाननी चाहिए।

प्र. दं. १७. भन्ते ! द्वीन्द्रिय जीवों की योनि संवृत है, विवृत है या संवृत-विवृत है?

उ. गौतम ! उनकी योनि संवृत और संवृत-विवृत नहीं है, किन्तु विवृत है,

दं. १८-१९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों पर्यंत जानना चाहिए।

दं. २० क. सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की और

दं. २१ क. सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की योनि द्वीन्द्रियों जैसी है।

---

१ (क) ठाणं, अ. ३, उ. १, सु. १४८

(ख) [illegible] जोणी नेरइयाणं तहेव देवाणं।
मीसा य [illegible], तिविहा जोणी य सेसाणं॥
[illegible] तथैव देवानाम्।
[illegible] योनिश्च शेषाणाम्॥
–इति अभयदेवीय स्थानांगवृत्तिगतोद्धरणम्।

२ (क) ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १४८

(ख) संवुड, वियडा, संवुडवियडा इति स्थानाङ्ग सूत्रे।

(ग) एगिंदिय-नेरइया संवुडजोणी हवंति देवा य।
विगलिंदियाण वियडा, संवुडवियडा य गब्भम्मि॥
एकेन्द्रिय नैरयिकाः संवृतयोनयो भवन्ति देवाश्च।
विकलेन्द्रियाणां विवृता, संवृतविवृता च गर्भे।
–इति अभयदेवीय स्थानांगसूत्र वृतिगतोद्धरणम्॥

दं. २० ख. गब्भवक्कंतिय-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं,

दं. २१ ख. गब्भवक्कंतिय-मणुस्साण य नो संवुडाजोणी, नो वियडाजोणी, संवुडवियडाजोणी।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा नेरइयाणं।

—पण्ण प. ९, सु. ७६४-७७१

दं. २० ख. गर्भज पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की और

दं. २१ ख. गर्भज मनुष्यों की संवृत और विवृत योनि नहीं है, किन्तु संवृत-विवृत योनि है।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की योनि नैरयिकों के जैसी है।

६. संवुडाइजोणियजीवाणं अप्पबहुत्तं—

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं संवुडजोणियाणं, वियडजोणियाणं, संवुडवियडजोणियाणं, अजोणियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा संवुडवियडजोणिया,

२. वियडजोणिया असंखेज्जगुणा,

३. अजोणिया अणंतगुणा,

४. संवुडजोणिया अणंतगुणा।

—पण्ण. प. ९, सु. ७७२

६. संवृतादि योनिक जीवों का अल्पबहुत्व—

प्र. भन्ते ! इन संवृतयोनिक जीवों, विवृतयोनिक जीवों, संवृत-विवृतयोनिक जीवों तथा अयोनिक जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प संवृत विवृतयोनिक जीव हैं,

२. (उनसे) विवृतयोनिक जीव असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) अयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं,

४. (उनसे) भी संवृतयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं।

७. मणुयाणं तओ जोणिओ—

प. कइविहा णं भंते ! (मणुयाणं) जोणी पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता, तं जहा—

१. कुम्मुण्णया, २. संखावत्ता, ३. वंसीपत्ता।

१. कुम्मुण्णया णं जोणी उत्तमपुरिसमाउणं—

कुम्मुण्णयाए णं जोणीए उत्तमपुरिसा गब्भे वक्कमंति, तं जहा—

१. अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेवा, वासुदेवा।

२. संखावत्ता णं जोणी इत्थिरयणस्स

संखावत्ताए णं जोणीए बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति, विउक्कमंति, चयंति, उवचयंति, नो चेव णं निप्फज्जंति।

३. वंसीपत्ता णं जोणी पिहुणस्स—

वंसीपत्ताए णं जोणीए पिहुजणे गब्भे वक्कमंति।

—पण्ण प. ९, सु. ७७३

७. मनुष्यों की तीन प्रकार की योनियां—

प्र. भन्ते ! कितने प्रकार की (मनुष्य) योनियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! योनियां तीन प्रकार की कही गई हैं, यथा—

१. कूर्मोन्नता, २. संखावर्त्ता, ३. वंशीपत्रा।

१. कूर्मोन्नता योनि उत्तमपुरुषों की माताओं की होती है। कूर्मोन्नता योनि में उत्तमपुरुष गर्भ में उत्पन्न होते हैं, यथा—

१. अर्हन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव।

२. शंखावर्त्ता योनि स्त्रीरत्न की होती है।

शंखावर्त्ता योनि में बहुत से जीव और पुद्गल आते हैं, गर्भरूप में उत्पन्न होते हैं, सामान्य और विशेषरूप में उनकी वृद्धि होती है किन्तु निष्पत्ति नहीं होती है।

३. वंशीपत्रा योनि में सामान्य जन मनुष्य उत्पन्न होते हैं, वंशीपत्रा योनि में सामान्य जीव गर्भ में आते हैं।

८. सालीआईणं जोणीणं संठिई परूवणं—

प. अह भंते ! सालीणं, वीहीणं, गोधूमाणं, जवाणं, जवजवाणं, एएसि णं धण्णाणं कोट्ठाउत्ताणं पल्लाउत्ताणं, मंचाउत्ताणं, मालाउत्ताणं, ओलित्ताणं, लित्ताणं, लंछियाणं, मुद्दियाणं पिहियाणं केवइयं कालं जोणी संचिट्ठइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि संवच्छराइं,

तेण परं जोणी पमिलायइ,

तेण परं जोणी पविद्धंसइ, तेण परं जोणी विद्धंसइ,

तेण परं बीए अबीए भवइ, तेण परं जोणीवोच्छेए पण्णत्ते[1]।

—ठाणं, अ. ३, उ. १, सु. १५४

८. शालीआदि की योनियों की संस्थिति का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! शाली, व्रीहि, गेहूँ, जौ तथा यवयव अन्नों को कोठे, पल्य, मचान और माल्य में डालकर उनके द्वारदेश को ढक देने, लीप देने, चारों ओर से लीप देने, रेखाओं से लांछित कर देने तथा मिट्टी से मुद्रित कर देने पर उनकी योनि (उत्पादक शक्ति) कितने काल तक रहती है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन वर्ष तक रहती है।

उसके बाद योनि म्लान हो जाती है,

विध्वस्त हो जाती है, क्षीण हो जाती है,

बीज-अबीज हो जाता है और उस योनि का विच्छेद हो जाता है।

---

१. विया. स. ६, उ. ७, सु. १

९. कलमसूराईणं जोणीणं संठिई परूवणं–

प. अह भंते ! कल-मसूर-तिल-मुग्ग-मास-णिप्फाव-कुलत्थ-आलिसंदग-सतीणं-पलिमंथगाणं एएसि णं धण्णाणं कोट्ठाउत्ताणं पल्लाउत्ताणं जाव पिहिया णं केवइयं कालं जोणी संचिट्ठइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पंच संवच्छराइं,
तेणं परं जोणी पमिलायइ, जाव तेण परं जोणीवोच्छेए पण्णत्ते[1]।

–ठाणं, अ. ५, उ.३, सु. ४५९

१०. अयसीआईणं जोणीणं संठिई परूवणं–

प. अह भंते ! अयसि-कुसुंभ-कोद्दव-कंगु-रालग-वरट्ट-कोद्दूसग-सण-सरिसव-मूलगबीयाणं एएसि णं धण्णाणं कोट्ठाउत्ताणं पल्लाउत्ताणं जाव पिहियाणं केवइयं कालं जोणी संचिट्ठइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त संवच्छराई,
तेणं पर जोणी पमिलायइ जाव तेण परं जोणीवोच्छेए पण्णत्ते[2]।

–ठाणं, अ. ७, सु. ५७२

११. अट्ठविहे जोणिसंगहे–

अट्ठविहे जोणिसंगहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अंडजा, २. पोतजा, ३. जराउजा, ४. रसजा, ५. संसेदगा, ६. सम्मुच्छिमा, ७. उब्भिया[3] ८. उववाइया।

–ठाणं, अ. ८, सु. ५९५

१२. थलयर-जलयरपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिय जीवाणं जोणी संगह परूवणं–

प. भुयगपरिसप्पथलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं भंते ! कइविहे जोणीसंगहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! तिविहे जोणिसंगहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अंडया, २. पोयया, ३. संमुच्छिमा,
उरगपरिसप्पथलयरपंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाण वि एवं चेव।

प. चउप्पयथलयर-पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! कइविहे जोणीसंगहे पण्णत्ते,

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. जराउया (पोयया) य २. सम्मुच्छिमा य।
जलयर-पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं जहा भुयगपरिसप्पाणं।

–जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. ९७(२)

९. कलमसूरादि की योनियों की संस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! मटर, मसूर, तिल, मूंग, उड़द, निष्पाव-सेम, कुलथी, चवला, तूवर तथा काला चना–इन अन्नों को कोठे, पल्य, मचान और माल्य में डालकर उनके द्वारदेश को ढक देने, **यावत्** मिट्टी से मुद्रित कर देने पर उनकी योनि कितने काल तक रहती है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट पांच वर्ष तक रहती है।
उसके बाद वह म्लान हो जाती है **यावत्** योनि का विच्छेद हो जाता है।

१०. अलसी आदि की योनियों की संस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! अलसी, कुसुम्भ, कोदव, कंगु, राल, गोलचना, कोदव की एक जाति, सन, सर्षप, मूलकबीज–ये धान्य जो कोष्ठगुप्त, पल्यगुप्त **यावत्** पिहित हैं, उनकी योनि कितने काल तक रहती है?

उ. गौतम ! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः सात वर्ष तक रहती है।
उसके बाद योनि म्लान हो जाती है **यावत्** योनि का व्युच्छेद हो जाता है।

११. आठ प्रकार का योनि संग्रह–

योनि संग्रह आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. अण्डज, २. पोतज, ३. जरायुज, ४. रसज, ५. संस्वेदज, ६. सम्मूर्च्छिम ७. उद्भिज्ज, ८. औपपातिक।

१२. स्थलचर-जलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों के योनि-संग्रह का प्ररूपण–

प्र. भंते ! भुजपरिसर्पस्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों का कितने प्रकार का योनि संग्रह कहा गया है?

उ. गौतम ! तीन प्रकार का योनिसंग्रह कहा गया है, यथा–
१. अण्डज, २. पोतज, ३. सम्मूर्च्छिम।
उरपरिसर्पस्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यक्योनिकों का कथन भी इसी प्रकार है।

प्र. भंते ! चतुष्पदस्थलचर पंचेद्रिय तिर्यक्योनिकों का कितने प्रकार का योनि संग्रह कहा गया है?

उ. गौतम ! इनका योनिसंग्रह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. जरायुज (पोतज) २. सम्मूर्च्छिम।
जलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के योनि संग्रह का कथन भुजगपरिसर्प के समान है।

---

१. विया. स. ६, उ. ७, सु. २
२. विया. स. ६, उ. ७, सु. ३
३. ठाणं, अ. ७ सु. ५४३

१३. जोणी कुलकोडियाणं परूवणं–

प. जलचर पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं भंते ! जीवाणं कइ जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अद्धतेरस जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता[1]।

–जीवा. पडि. ३, सु. ९७(२)

प. चउप्पयथलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं भंते ! जीवाणं कइ जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दस जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता।

–जीवा. पडि. ३, सु. ९७(२)

प. उरपरिसप्पथलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं भंते। जीवाणं कइ जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दस जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता। –जीवा. पडि. ३, सु. ९७(२)

प. भुयपरिसप्पथलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं भंते! जीवाणं कइ जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! णव जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खायं।

–जीवा. पडि. ३, सु. ९७(१)

प. खहयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं भंते ! जीवाणं कइ जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! बारस जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता।

–जीवा. पडि. ३, सु. ९७(२)

प. बेइंदियाणं भंते ! कइ जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! सत्त जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा समक्खाया[2]।

–जीवा. पडि. ३, सु. ९७(२)

प. तेइंदियाणं भंते ! कइ जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अट्ठ जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा समक्खाया[3]।

–जीवा. पडि. ३, सु. ९७(२)

प. चउरिंदियाणं भंते ! कइ जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! णव जाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा समक्खाया।

–जीवा. पडि. ३, सु. ९७(२)

१३. योनि कुल कोटियों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की कितने लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! साढ़े बारह लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं।

प्र. भंते ! चतुष्पद स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की कितने लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! दस लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं।

प्र. भंते ! उरपरिसर्प स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की कितने लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! दस लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं।

प्र. भंते ! भुज परिसर्प स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की कितने लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! नौ लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं।

प्र. भंते ! खेचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की कितने लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! बारह लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं।

प्र. भंते ! द्वीन्द्रियों की कितने लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! सात लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं।

प्र. भंते ! त्रीन्द्रियों की कितने लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! आठ लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं।

प्र. भंते ! चतुरिन्द्रियों की कितने लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! नौ लाख जाति कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं।

---

१. सम.सम.१३, सु.५ २. ठाणं, अ.७, सु.५९१ ३. ठाणं.अ.८, सु.६५९

प. कइ णं भंते ! पुप्फ जाइकुलकोडी- जोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! सोलस पुप्फ जाइकुलकोडीजोणी प्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता, तं जहा–

१. चत्तारि जलजाणं, २. चत्तारि थलजाणं, ३. चत्तारि महारूक्खाणं, ४. चत्तारि महागुम्मियाणं।

–जीवा. पडि. ३, सु. ९८(२)

प्र. भंते ! पुष्प जाति की कुल कोटी प्रमुख योनियां कितने लाख कही गई हैं ?

उ. गौतम ! सोलह लाख पुष्प जाति की कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं, यथा–

१. जलजों की चार लाख, २. स्थलजों की चार लाख, ३. महा वृक्षों की चार लाख, ४. महा गुल्मिकों की चार लाख।

प. लवणे णं भंते ! समुद्दे कइ मच्छजाइकुलकोडीजोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! सत्त मच्छजाइकुलकोडी-जोणीप्पमुहसय-सहस्सा पण्णत्ता।

–जीवा. पडि. ३, सु. १८७

प्र. भंते ! लवण समुद्र में मच्छ जाति की कुल कोटी प्रमुख योनियां कितने लाख कही गई हैं ?

उ. गौतम ! सात लाख मच्छ जाति की कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं।

कालोए णं णव।

–जीवा. पडि. ३, सु. १८७

कालोद समुद्र में नौ लाख (मच्छ जाति की कुलकोटी प्रमुख योनियाँ) कही गई हैं।

प. सयंभूरमणे णं भंते ! समुद्दे कइ मच्छजाइकुलकोडी-जोणीप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अद्धतेरस जाइकुलकोडीजोणी प्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता।

–जीवा. पडि. ३, सु. १८७

प्र. भंते ! स्वयंभूरमण समुद्र में मच्छ जाति की कुल कोटी प्रमुख योनियां कितने लाख कही गई हैं ?

उ. गौतम ! साढ़े बारह लाख मच्छ जाति की कुल कोटी प्रमुख योनियां कही गई हैं।

□ □

संज्ञा अध्ययन : आमुख

'सम्' उपसर्गपूर्वक 'ज्ञा' धातु से निष्पन्न संज्ञा शब्द व्याकरण में किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थानादि के नाम (noun) के लिए प्रयुक्त होता है।

तत्त्वार्थसूत्र (१.१३) में संज्ञा शब्द का प्रयोग मतिज्ञान के पर्यायवाचक शब्द के रूप में हुआ है।

आठवीं शती के जैन नैयायिक अकलंक ने संज्ञा शब्द का प्रयोग प्रत्यभिज्ञान प्रमाण के लिए किया है। किन्तु आगम में आहार, भय, मैथुन, परिग्रह आदि की अभिलाषा को व्यक्त करने के लिए संज्ञा शब्द का प्रयोग हुआ है। संसारी जीवों में ये आहारादि संज्ञाएं स्वाभाविक रूप से पाई जाती हैं। आहारादि की अभिलाषा से संसारी जीवों को जाना जाता है, इसलिए भी आहारादि को संज्ञाएं कहते हैं।

सामान्यतः संज्ञा के चार भेद हैं–आहार संज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुन संज्ञा और परिग्रह संज्ञा।

प्रज्ञापना एवं व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्रों में संज्ञा के दस भेद भी प्रतिपादित हैं। उनमें आहारादि चार संज्ञाओं के साथ क्रोध, मान, माया, लोभ, ओघ और लोक संज्ञाओं की भी गणना की है।

आचारांग निर्युक्ति (गाथा ३८-३९) में संज्ञा के १६ भेद निरूपित हैं। वहाँ पर इन दस संज्ञाओं में मोह, धर्म, सुख, दुःख, जुगुप्सा और शोक को योजित किया गया है।

सकषायी जीवों में ये सभी संज्ञाएं पाई जाती हैं। पूर्ण वीतराग अवस्था प्राप्त होने पर संज्ञाएं नहीं रहती हैं।

आहार आदि चार संज्ञाओं का आगम में विस्तृत निरूपण है। चारों गतियों के २४ दण्डकों में ये चारों संज्ञाएं मिलती हैं, किन्तु नैरयिकों में भयसंज्ञा की बहुलता है, तिर्यञ्च जीवों में आहार संज्ञा का आधिक्य है, मनुष्यों में मैथुन संज्ञा का प्राचुर्य है तो देवों में परिग्रह संज्ञा अधिक है।

अल्पता की दृष्टि से नैरयिकों में मैथुनसंज्ञा वाले, तिर्यञ्चों में परिग्रह संज्ञा वाले, मनुष्यों में भयसंज्ञा वाले तथा देवों में आहारसंज्ञा वाले जीव सबसे कम हैं।

संज्ञा अगुरुलघु होती है।

संज्ञाओं के उत्पत्ति के विभिन्न कारण हैं। ये वेदनीय अथवा मोहनीय कर्म के उदय से भी उत्पन्न होती हैं तथा इनका श्रवण करने के अनन्तर उत्पन्न मति से भी उत्पन्न होती हैं तथा इनका सतत चिन्तन करते रहने से भी उत्पन्न होती हैं।

आहारसंज्ञा में पेट का खाली रहना, भयसंज्ञा में सत्त्वहीनता, मैथुनसंज्ञा में मांस-शोणित का अत्यधिक उपचय और परिग्रह संज्ञा में परिग्रह का स्वयं के पास रहना भी उत्पत्ति का कारण बनता है। इस प्रकार संज्ञाओं की उत्पत्ति या प्रकटीकरण में कुछ आन्तरिक कारण हैं तथा कुछ वाह्य कारण हैं। कर्मोदय आन्तरिक कारण है तथा उसकी अभिव्यक्ति में पेट खाली रहना आदि बाह्य निमित्त या कारण हैं।

संज्ञा की क्रिया का करण संज्ञाकरण तथा संज्ञा की रचना को संज्ञानिर्वृत्ति कहा जाता है। इनके भी संज्ञा के भेदों की भाँति आहार आदि चार-चार भेद हैं।



११. सण्णा - अज्झयणं

सूत्र

१. ओहेण सण्णा परूवणं–

एगा सण्णा —ठाणं. अ. १, सु. २०

२. चत्तारि सण्णाओ तदुप्पत्ति कारणाणि य–

चत्तारि सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. आहारसण्णा, २. भयसण्णा,
३. मेहुणसण्णा, ४. परिग्गहसण्णा[1]।

चउहिं ठाणेहिं आहारसण्णा समुप्पज्जइ, तं जहा–

१. ओमकोट्ठयाए,
२. छुहावेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं,
३. मईए,
४. तदट्ठोवओगेणं।

चउहिं ठाणेहिं भयसण्णा समुप्पज्जइ, तं जहा–

१. हीणसत्तयाए,
२. भयवेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं,
३. मईए,
४. तदट्ठोवओगेणं।

चउहिं ठाणेहिं मेहुणसण्णा समुप्पज्जइ, तं जहा–

१. चित्तमंससोणियाए,
२. मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं,
३. मईए,
४. तदट्ठोवओगेणं।

चउहिं ठाणेहिं परिग्गह सण्णा समुप्पज्जइ, तं जहा–

१. अविमुत्तयाए,
२. लोभवेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं,
३. मईए,
४. तदट्ठोवओगेणं। —ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३५६

३. सण्णाणं अगरुलहुयत्त परूवणं–

प. सण्णाओ णं भंते ! किं गरुया? लहुया? गरुयलहुया? अगरुयलहुया?

उ. गोयमा ! णो गरुया, णो लहुया, णो गरुयलहुया, अगरुयलहुया। —विया. स. १, उ. ९, सु. ११

४. सण्णाणिव्वत्ति भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! सन्नानिव्वत्ती पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! चउव्विहासन्नानिव्वत्ती पण्णत्ता, तं जहा–

१. आहारसन्नानिव्वत्ती, २. भयसन्नानिव्वत्ती,
३. मेहुणसन्नानिव्वत्ती, ४. परिग्गहसन्नानिव्वत्ती।

दं. १-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

विया. स. १९, उ. ८, सु. ३२-३३

११. संज्ञा - अध्ययन

सूत्र

१. सामान्य से संज्ञा का प्ररूपण–

संज्ञा एक है।

२. चार प्रकार की संज्ञायें और उनकी उत्पत्ति के कारण–

संज्ञाए चार कही गई हैं, यथा–

१. आहार संज्ञा, २. भय-संज्ञा,
३. मैथुन-संज्ञा, ४. परिग्रह-संज्ञा,

चार स्थानों (कारणों) से आहार संज्ञा उत्पन्न होती है, यथा–

१. पेट के खाली हो जाने से,
२. क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से,
३. आहार चर्चा श्रवणानन्तर उत्पन्न मति से,
४. आहार के विषय में चिंतन करते रहने से।

चार कारणों से भय संज्ञा उत्पन्न होती है, यथा–

१. सत्वहीनता से,
२. भय-वेदनीय कर्म के उदय से,
३. भयजनक वार्ता श्रवणानन्तर उत्पन्न मति से,
४. भय का सतत चिंतन करते रहने से।

चार कारणों से मैथुन-संज्ञा उत्पन्न होती है, यथा–

१. अत्यधिक मांस शोणित का उपचय हो जाने से,
२. मोहनीय कर्म के उदय से,
३. काम कथा श्रवणानन्तर उत्पन्न मति से,
४. मैथुन का सतत चिंतन करते रहने से।

चार कारणों से परिग्रह संज्ञा उत्पन्न होती है, यथा–

१. परिग्रह पास में रहने से,
२. लोभ-वेदनीय कर्म के उदय से,
३. परिग्रह कथा श्रवणानन्तर उत्पन्न मति से,
४. परिग्रह का सतत चिंतन करते रहने से।

३. संज्ञाओं के अगुरुलघुत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! संज्ञाएं क्या गुरु हैं, लघु हैं, गुरुलघु हैं या अगुरुलघु हैं?

उ. गौतम ! संज्ञाएं गुरु नहीं हैं, लघु नहीं हैं और गुरुलघु भी नहीं हैं किन्तु अगुरुलघु हैं।

४. संज्ञा निर्वृत्ति के भेद और चौवीसदंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! संज्ञानिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है?

उ. गौतम ! संज्ञा निर्वृत्ति चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. आहारसंज्ञानिर्वृत्ति, २. भयसंज्ञानिर्वृत्ति,
३. मैथुनसंज्ञानिर्वृत्ति, ४. परिग्रह संज्ञानिर्वृति।

दं. १-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त संज्ञा निर्वृतियां जाननी चाहिए।

---

१. [illegible] ४, सु. ४

५. सण्णाकरणभेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! सण्णाकरणे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउव्विहा सण्णाकरणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आहारसण्णाकरणे, २. भयसण्णाकरणे,
३. मेहुणसण्णाकरणे, ४. परिग्गहसण्णाकरणे।

दं. १-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. १९, उ. ९, सु. ८

६. सण्णाबंधभेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. आहारसण्णाए णं जाव परिग्गहसण्णाए णं भंते ! कइविहे बंधे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तिविहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जीवप्पयोग बंधे, २. अणंतरबंधे ३. परंपर बंधे।

दं. १-२४. एवं चउवीसदंडगेसु भाणियव्वा।

–विया. स. २०, उ. ७, सु. १९

७. चउगईसु चउसण्णोवउत्तत्तं तेसिं च अप्पबहुत्तं –

प. नेरइया णं भंते ! किं आहारसण्णोवउत्ता, भयसण्णोवउत्ता, मेहुणसण्णोवउत्ता, परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! ओसण्णकारणं पडुच्च-भयसण्णोवउत्ता,

संतइभावं पडुच्च-आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि[1]।

प. एएसि णं भंते ! नेरइयाणं आहारसण्णोवउत्ताणं, भयसण्णोवउत्ताणं, मेहुणसण्णोवउत्ताणं, परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा नेरइया मेहुणसण्णोवउत्ता,
२. आहारसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा,
३. परिग्गहसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा,
४. भयसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा।

प. तिरिक्खजोणिया णं भंते ! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गह सण्णोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! ओसण्णकारणं पडुच्च-आहारसण्णोवउत्ता,

संतइभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि[2]।

प. एएसि णं भंते ! तिरिक्खजोणियाणं आहारसण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणिया परिग्गहसण्णोवउत्ता,
२. मेहुणसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा,

५. संज्ञाकरण के भेद और चौबीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! संज्ञाकरण कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! चार प्रकार के संज्ञाकरण कहे गए हैं, यथा–

१. आहार संज्ञा करण, २. भय संज्ञाकरण,
३. मैथुन संज्ञा करण, ४. परिग्रह संज्ञाकरण।

दं. १-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त संज्ञाकरण कहने चाहिए।

६. संज्ञाओं में वंध भेद और चौबीसदंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! आहार संज्ञा यावत् परिग्रह संज्ञा में वंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वंध तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. जीवप्रयोग वंध, २. अनन्तर वंध, ३. परम्पर वंध।

दं. १-२४. इसी प्रकार चौवीस दंडकों में (नैरयिकों से वैमानिक पर्यन्त) कहना चाहिए।

७. चार गतियों में चतुः संज्ञोपयुक्तत्व और उनका अल्पवहुत्व–

प्र. भंते ! क्या नैरयिक आहारसंज्ञोपयुक्त हैं, भय संज्ञोपयुक्त हैं, मैथुन संज्ञोपयुक्त हैं, परिग्रहसंज्ञोपयुक्त हैं ?

उ. गौतम ! उत्सन्नकारण (वहुलता की अपेक्षा) से वे भयसंज्ञोपयुक्त हैं।

किन्तु संततिभाव (सद्भाव की अपेक्षा) से वे आहार संज्ञोपयुक्त भी हैं यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी हैं।

प्र. भंते ! इन आहारसंज्ञोपयुक्त, भय संज्ञोपयुक्त, मैथुन संज्ञोपयुक्त और परिग्रह संज्ञोपयुक्त नारकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेपाधिक है ?

उ. गौतम ! १. सवसे अल्प मैथुनसंज्ञोपयुक्त नैरयिक हैं,
२. उनसे संख्यातगुणे आहारसंज्ञोपयुक्त हैं,
३. उनसे संख्यातगुणे परिग्रहसंज्ञोपयुक्त हैं
४. उनसे संख्यातगुणे भयसंज्ञोपयुक्त हैं।

प्र. भंते ! तिर्यञ्चयोनिक जीव क्या आहारसंज्ञोपयुक्त हैं यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त हैं ?

उ. गौतम ! उत्सन्न कारण (क्षुधा जनक अनेक वाह्य कारणों की अपेक्षा) से वे आहारसंज्ञोपयुक्त हैं।

किन्तु संतति भाव से वे आहारसंज्ञोपयुक्त भी हैं यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी हैं।

प्र. भंते ! इन आहारसंज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेपाधिक है ?

उ. गौतम ! १. सवसे अल्प परिग्रहसंज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक हैं,
२. (उनसे) मैथुन संज्ञोपयुक्त संख्यातगुणे हैं,

---

१. जीवा. पडि. १, सु. ३२
२. (क) जीवा. पडि. १, सु. १३ (६) जीवा. पडि. १, सु. १७ जीवा. पडि. १, सु. १८ जीवा. पडि. १, सु. २४ जीवा. पडि. १, सु. २६ जीवा. पडि. १, सु. २८ जीवा. पडि. १, सु. २९ जीवा. पडि. १, सु. ३० जीवा. पडि. १, सु. ३५ जीवा. पडि. १, सु. ३८
(ख) विया. स. ११, उ. १, सु. २५
(ग) विया. स. ११, उ. २-८

३. भयसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा,
४. आहारसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा।

प. मणुस्सा[1] णं भंते ! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! ओसण्णकारणं पडुच्च-मेहुणसण्णोवउत्ता,

संतइभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि।

प. एएसि णं भंते ! मणुस्साणं आहारसण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?[2]

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा मणूसा भयसण्णोवउत्ता,
२. आहारसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा,
३. परिग्गहसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा,
४. मेहुणसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा।

प. देवा णं भंते ! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! उस्सण्णकारणं पडुच्च-परिग्गहसण्णोवउत्ता,

संतइभावं पडुच्च-आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि।

प. एएसि णं भंते ! देवाणं आहारसण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा देवा आहारसण्णोवउत्ता,
२. भयसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा,
३. मेहुणसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा,
४. परिग्गहसण्णोवउत्ता संखेज्जगुणा।

–पण्ण. प. ८, सु. ७३०-७३७

३. (उनसे) भयसंज्ञोपयुक्त संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) आहारसंज्ञोपयुक्त संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! क्या मनुष्य आहारसंज्ञोपयुक्त होते हैं यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त होते हैं ?

उ. गौतम ! उत्सन्न कारण (बहुलता की अपेक्षा) से वे मैथुनसंज्ञोपयुक्त होते हैं।

किन्तु संतति भाव से वे आहारसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी होते हैं।

प्र. भंते ! इन आहारसंज्ञोपयुक्त **यावत्** परिग्रहसंज्ञोपयुक्त मनुष्यों में कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प मनुष्य भयसंज्ञोपयुक्त हैं,
२. (उनसे) आहारसंज्ञोपयुक्त संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) परिग्रहसंज्ञोपयुक्त संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) मैथुनसंज्ञोपयुक्त संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! क्या देव आहारसंज्ञोपयुक्त हैं **यावत्** परिग्रहसंज्ञोपयुक्त हैं ?

उ. गौतम ! उत्सन्नकारण (बहुलता की अपेक्षा) से वे परिग्रहसंज्ञोपयुक्त हैं।

किन्तु संतति भाव (अनवरत दीर्घ काल की अपेक्षा) से वे आहार संज्ञोपयुक्त भी हैं **यावत्** परिग्रहसंज्ञोपयुक्त भी हैं।

प्र. भंते ! इन आहारसंज्ञोपयुक्त **यावत्** परिग्रहसंज्ञोपयुक्त देवों में से कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प आहारसंज्ञोपयुक्त देव हैं,
२. (उनसे) भयसंज्ञोपयुक्त संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) मैथुनसंज्ञोपयुक्त संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) भी परिग्रहसंज्ञोपयुक्त संख्यातगुणे हैं।

८. पगारांतरेण सण्णाणं दस भेया–

प. कइणं भंते ! सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. आहारसण्णा, २. भयसण्णा, ३. मेहुणसण्णा,
४. परिग्गहसण्णा, ५. कोहसण्णा, ६. माणसण्णा,
७. मायासण्णा, ८. लोभसण्णा, ९. लोगसण्णा,
१०. ओघसण्णा[3]। –पण्ण. प. ८, सु. ७२५

८. दस प्रकार की संज्ञाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! संज्ञाएं कितनी कही गई हैं ?

उ. गौतम ! संज्ञाएं दस कही गई हैं, यथा–
१. आहारसंज्ञा, २. भयसंज्ञा, ३. मैथुनसंज्ञा,
४. परिग्रहसंज्ञा, ५. क्रोधसंज्ञा, ६. मानसंज्ञा,
७. मायासंज्ञा, ८. लोभसंज्ञा, ९. लोकसंज्ञा,
१०. ओधसंज्ञा।

९. चउवीसदंडएसु दसण्हं सण्णाणं परूवणं–

प. नेरइया णं भंते ! कइ सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. आहारसण्णा जाव १०. ओघसण्णा।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं[4]।

–पण्ण. प. ८, सु. ७२६-७२९

९. चौवीस दंडकों में दस संज्ञाओं का प्ररूपण–

प्र. भंते ! नैरयिकों में कितनी संज्ञाएं कही गई हैं ?

उ. गौतम ! उनमें दस संज्ञाएं कही गई हैं, यथा–
१. आहारसंज्ञा **यावत्** १०. ओघसंज्ञा।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त दस संज्ञायें जाननी चाहिए।

---

१. (क) जीवा. पडि. १, सु. ४१ (सम्मूर्छिम)
(ख) प. गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं भंते ! जीवा किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ?
उ. गोयमा ! सव्वे वि। –जीवा. पडि. १ सु. ४१

२. जीवा. पडि. १, सु. ४२
३. (क) ठाणं. अ. १०, सु. ७५२
(ख) विया. स. ७, उ. ८, सु. ५
४. विया. स. ७, उ. ८, सु. ६

स्थिति अध्ययन : आमुख

यद्यपि ज्ञानावरण आदि आठों कर्मों की स्थिति होती है। प्रत्येक कर्म की फलदान अवधि उसकी स्थिति कही जाती है। किन्तु प्रस्तुत अध्ययन आयुष्य कर्म से सम्बद्ध स्थिति का ही निरूपण करता है। वह स्थिति दो प्रकार की कही गई है--१. कायस्थिति और २. भवस्थिति। एक ही प्रकार की गति एवं आयुष्य का अनेक भवों तक बना रहना कायस्थिति कहलाता है तथा एक ही भव में उस गति एवं आयुष्य का बना रहना भवस्थिति कहा जाता है।

यह अध्ययन मात्र भवस्थिति से सम्बन्धित है।

भवस्थिति का वर्णन इस अध्ययन में चौबीस दण्डकों के क्रम से हुआ है। प्रत्येक दण्डक एवं उसके विशेष भेदों की स्थिति का निरूपण औधिक, अपर्याप्त एवं पर्याप्त द्वारों से किया गया है।

समस्त अपर्याप्त जीवों की जघन्य एवं उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त होती है। कोई भी अपर्याप्त जीव अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक काल तक अपर्याप्त नहीं रहता है। अन्तर्मुहूर्त्त के अनन्तर वह सम्पूर्ण योग्य पर्याप्तियों को ग्रहण कर लेता है। पर्याप्त जीवों की स्थिति उनकी औधिक स्थिति में से अन्तर्मुहूर्त्त कम होती है। जैसे रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक की औधिक स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष एवं उत्कृष्ट एक सागरोपम होती है तो पर्याप्त नैरयिक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष एवं उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम एक सागरोपम होगी क्योंकि औधिक स्थिति में से अपर्याप्त काल की स्थिति को घटाने पर पर्याप्त जीव की स्थिति ज्ञात हो जाती है। यह सूत्र सभी प्रकार के पर्याप्त जीवों की स्थिति पर लागू होता है।

औधिकरूप से नैरयिकों एवं देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष एवं उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम होती है।

तिर्यञ्च एवं मनुष्य गति के जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम होती है।

रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियों के आधार पर नैरयिक सात प्रकार के हैं, उनमें प्रत्येक की स्थिति जघन्य एवं उत्कृष्ट की दृष्टि से भिन्न है। इसी प्रकार भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी एवं वैमानिक देवों की स्थिति भिन्न-भिन्न है।

भवनपति दस प्रकार के हैं। उनमें प्रत्येक की स्थिति का वर्णन करने के साथ उनके इन्द्रों चमर, बली, धरण, भूतानन्द आदि की आभ्यन्तर, मध्यम एवं बाह्य परिषदों में विद्यमान देवों की स्थिति का पृथक् उल्लेख भी किया गया है। देवियों की स्थिति का वर्णन देखने पर ज्ञात होता है कि देवियों की उत्कृष्ट स्थिति सर्वत्र देवों से कम है। भवनवासी देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष एवं उत्कृष्ट एक सागरोपम से कुछ अधिक है तो उनकी देवियों की उत्कृष्ट स्थिति साढ़े चार पल्योपम है। इसी प्रकार वाणव्यन्तर देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम है तो उनकी देवियों की स्थिति अर्द्ध पल्योपम मात्र है। ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम है तो उनकी देवियों की उत्कृष्ट स्थिति पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्ध पल्योपम है। वैमानिक देवों की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम है तो देवियों की उत्कृष्ट स्थिति ५५ पल्योपम है।

वैमानिक देवों की देवियां दो प्रकार की होती हैं--परिगृहीता और अपरिगृहीता। इनमें परिगृहीता की अपेक्षा अपरिगृहीता देवियों की स्थिति अधिक होती है। ये देवियां दूसरे देवलोक तक ही प्राप्त होती हैं, आगे नहीं।

यह उल्लेखनीय है कि देवियों की उत्कृष्ट स्थिति देवों से कम होने पर भी उनकी जघन्य स्थिति देवों के समान है। भवनपति एवं वाणव्यन्तर देवों देवियों की जघन्य स्थिति समान रूप से दस हजार वर्ष है। ज्योतिषी देवों एवं देवियों की जघन्य स्थिति समान रूप से पल्योपम का आठवां भाग है। वैमानिक देवों की भांति उनकी देवियों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम है।

वाणव्यन्तर देवों की स्थिति का वर्णन जहाँ हुआ है वहाँ काल पिशाच कुमारेन्द्र की आभ्यन्तर मध्यम एवं बाह्य परिषद् के देव एवं देवियों की स्थिति का भी वर्णन प्राप्त है। इनके अतिरिक्त जृम्भक देवों, विजय देव एवं उसके सामानिक देवों की स्थिति का भी उल्लेख है। ज्योतिषी देवों की स्थिति का निरूपण होने के साथ चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र एवं तारा विमानवासी देवों तथा देवियों की स्थिति का भी औधिक, अपर्याप्त एवं पर्याप्त द्वारों से वर्णन प्राप्त है।

वैमानिक देवों में बारह देवलोकों के देवों की स्थिति का वर्णन होने के साथ शक्र एवं ईशान देवेन्द्रों की विभिन्न परिषदों के देवों एवं देवियों की स्थिति का उल्लेख है। किल्विषिक एवं लोकान्तिक देवों की स्थिति का वर्णन भी वैमानिक देवों की स्थिति के साथ हुआ है।

यह उल्लेखनीय है कि इस स्थिति अध्ययन में नवग्रैवेयकों एवं पाँच अनुत्तरविमानों के देवों की स्थिति का वर्णन नहीं हुआ है। अन्यत्र प्राप्त वर्णन के अनुसार ग्रैवेयक देवों की स्थिति जघन्य २२ सागरोपम तथा उत्कृष्ट ३१ सागरोपम होती है। इनमें पहले ग्रैवेयक देवों की स्थिति जघन्य २२ सागरोपम तथा उत्कृष्ट २३ सागरोपम, दूसरे ग्रैवेयक देवों की स्थिति जघन्य २३ सागरोपम तथा उत्कृष्ट २४ सागरोपम, तीसरे ग्रैवेयक देवों की स्थिति जघन्य

२४ सागोपम तथा उत्कृष्ट २५ सागरोपम होती है। इसी प्रकार चौथे ग्रैवेयक देवों की जघन्य २५ एवं उत्कृष्ट २६, पाँचवें ग्रैवेयक देवों की जघन्य २६ एवं उत्कृष्ट २७, छठे ग्रैवेयक देवों की जघन्य २७ एवं उत्कृष्ट २८, सातवें ग्रैवेयक देवों की जघन्य २८ एवं उत्कृष्ट २९, आठवें ग्रैवेयक देवों की जघन्य २९ एवं उत्कृष्ट ३० तथा नौवें ग्रैवेयक देवों की जघन्य ३० एवं उत्कृष्ट ३१ सागरोपग स्थिति होती है। पाँच अनुत्तर विमान के देवों में प्रथम चार विमानों के देवों की स्थिति जघन्य ३१ सागरोपग व उत्कृष्ट ३३ सागरोपग होती है।

सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों की स्थिति ३३ सागरोपम होती है। यह जघन्य एवं उत्कृष्ट से रहित है। सनत्कुमार से लेकर अच्युत कल्प के देवेन्द्रों एवं उनकी त्रिविधा परिषद् के देवों की स्थिति का काल इस अध्ययन में अवश्य निरूपित हुआ है। अध्ययन के अन्त में कुछ विशिष्ट विमानवासी देवों की स्थिति बतलायी गई है।

तिर्यग्योनिक जीवों में एकेन्द्रियों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्ट स्थिति २२ हजार वर्ष है। एकेन्द्रयों में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय एवं वनस्पतिकाय के जीवों की स्थिति पर औधिक तथा सूक्ष्म एवं बादर भेदों के आधार पर विचार किया गया है। पर्याप्त एवं अपर्याप्त द्वारों को सबकी भांति यहाँ भी लिया गया है। पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति का उल्लेख करते समय कोमल पृथ्वी, शुद्ध पृथ्वी, वालुका पृथ्वी, मनोसिल पृथ्वी, शर्करा पृथ्वी एवं खरपृथ्वी की जघन्य एवं उत्कृष्ट स्थिति का भी वर्णन किया गया है। पृथ्वीकाय आदि के सूक्ष्म जीवों की स्थिति अपर्याप्तक पर्याप्तक तथा औधिक तीनों अवस्थाओं में जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त है। इसका तात्पर्य है कि एकेन्द्रिय सूक्ष्मजीव अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक काल तक जीवन धारण नहीं करते हैं। वनस्पतिकाय के वर्णन में निगोद के जीव सूक्ष्म होते हैं स्थिति भी जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त होती है।

त्रसकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट ३३ सागरोपम होती है क्योंकि त्रसकायिक जीवों में नैरयिकों एवं देवों की भी गणना होती है। इसी प्रकार पंचेंद्रिय जीवों की स्थिति समझनी चाहिए।

द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्यअन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट बारह वर्ष होती है। त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट ४९ दिन रात होती है। चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट छह मास होती है।

पंचेंद्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तमुहूर्त एवं उत्कृष्ट तीन पल्योपग है और यही उनमें गर्भज जीवों की स्थिति है, किन्तु सम्मूर्च्छिम पंचेंद्रिय तिर्यग्जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट पूर्व कोटि होती है। तिर्यग्योनिक स्त्रियों की स्थिति औधिक की भांति जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट तीन पल्योपम है। तिर्यञ्च पंचेंद्रिय जीव जलचर, चतुष्पद स्थलचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प एवं खेचर के भेद से पाँच प्रकार के हैं। ये प्रत्येक सम्मूर्च्छिम एवं गर्भज के भेद से दो प्रकार के हैं। प्रस्तुत स्थिति अध्ययन में जलचर आदि जीवों की स्थिति का औधिक, पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक द्वारों से वर्णन करने के अनन्तर उनके सम्मूर्च्छिम एवं गर्भज भेदों का भी इन्हीं औधिक आदि द्वारों से वर्णन किया गया है। इनमें सबसे अधिक स्थिति चतुष्पद स्थलचर गर्भज जीवों एवं उनकी स्त्रियों की तीन पल्योपम है।

सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की स्थिति जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है जबकि मनुष्यों की औधिक स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट तीन पल्योपम है। यह उनकी गर्भज स्थिति है। मनुष्य स्त्रियों की स्थिति का वर्णन दो प्रकार से मिलता है—क्षेत्र की अपेक्षा एवं धर्माचरण की अपेक्षा। यहाँ क्षेत्र शब्द भरतादि क्षेत्रों का द्योतक है तथा धर्माचरण शब्द उनके संयमी जीवन का सूचक है। अकर्म-भूमिज एवं अन्तर्द्वीपज स्त्रियों की स्थिति का वर्णन जन्म एवं संहरण के भेदों में विभक्त है।

औधिक, अपर्याप्त एवं पर्याप्त द्वारों से समस्त जीवों की स्थिति का वर्णन किए जाने के साथ कुछ जीवों की स्थिति का वर्णन प्रथम समय एवं अप्रथम समय के द्वारों से भी किया गया है। प्रथम समय में जीव की स्थिति एक समय होती है तथा अप्रथम समय में एक समय कम लघुभव ग्रहण होती है।

□

१२. ठिई अज्झयणं

सूत्र

१. ठिई भेया–

दुविहा ठिई पण्णत्ता, तं जहा–

१. कायट्ठिई चेव, २. भवट्ठिई चेव।

दोण्हं कायट्ठिई पण्णत्ता[1], तं जहा–

१. मणुस्साणं चेव, २. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

दोण्हं भवट्ठिई पण्णत्ता, तं जहा–

१. देवाणं चेव, २. नेरइयाणं चेव।

–ठाणं अ. २, सु. ७९/१६-१८

२. तस-थावर विवक्खया जीवाणं ठिई–

प. तसकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं[2]।

प. अपज्जत्तय-तसकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-तसकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–जीवा. पडि. ५, सु. २११

प. थावरस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।
उक्कोसेण बावीसं वास सहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

–जीवा. पडि. ५, सु. ४३

३. सुहुमबायरविवक्खया जीवाणं ठिई–

प. सुहुमस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

–जीवा. पडि. ५, सु. २१४

प. बायरस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं।

–जीवा. पडि. ५, सु. २१८

४. इत्थी-पुरिस-णपुंसगविवक्खया जीवाणं ठिई–

प. इत्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगेणं आदेसेणं–जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पणपन्नं पलिओवमाइं।

१२. स्थिति अध्ययन

सूत्र

१. स्थिति के भेद–

स्थिति दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. कायस्थिति, २. भवस्थिति।

कायस्थिति दो की कही गई है, यथा–

१. मनुष्यों की, २. पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की।

भवस्थिति दो की कही गई है, यथा–

१. देवताओं की, २. नैरयिकों की।

२. त्रस-स्थावर की विवक्षा से जीवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! त्रसकायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त त्रसकायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त त्रसकायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! स्थावर की स्थिति कितने काल की गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष की कही गई है।

३. सूक्ष्म वादर की विवक्षा से जीवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

प्र. भन्ते ! वादर की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की कही गई है।

४. स्त्री-पुरुष-नपुंसक की विवक्षा से जीवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! एक आदेश (अपेक्षा) से जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट पचपन पल्योपम।

---

१. इस अध्ययन में मात्र भवस्थिति का ही वर्णन है, कायस्थिति का वर्णन पृथक्-पृथक् अध्ययनों में किया है।

२. जीवा. पडि. १ सु. ४३

एगेणं आदेसेणं-जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण नव पलिओवमाइं।
एगेणं आदेसेणं-जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण सत्त पलिओवमाइं।
एगेणं आदेसेणं-जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पन्नासं पलिओवमाइं। *—जीवा. पडि. २, सु. ४६*

प. पुरिसस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं।
तिरिक्खजोणियपुरिसाणं मणुस्सपुरिसाणं जा चेव इत्थीण ठिई सा चेव भाणियव्वा।

देवपुरिसाण वि जाव सव्वट्ठसिद्धाणं ठिई जहा पण्णवणाए तहा भाणियव्वा। *—जीवा. पडि. २, सु. ५३*

प. णपुंसगस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं।

प. णेरइय णपुंसगस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दसवाससहस्साइं,
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं।
सव्वेसिं ठिई भाणियव्वा जाव अहेसत्तमपुढविनेरइया।

प. तिरिक्खजोणिय णपुंसगस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी।

प. एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइं।

प. पुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइं।
सव्वेसिं एगिंदिय नपुंसगाणं ठिई भाणियव्वा।
बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय णपुंसगाणं ठिई भाणियव्वा।

प. पंचेंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी।
एवं जलयरतिरिक्खचउप्पद-थलयर-उरगपरिसप्प-भुयगपरिसप्प-खहयरतिरिक्खजोणियणपुंसगाणं सव्वेसिं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडी।

एक आदेश से–जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट नव पल्योपम।
एक आदेश से–जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट सात पल्योपम।
एक आदेश से–जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट पचास पल्योपम।

प्र. भन्ते ! पुरुष की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तमुहूर्त,
उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम।
तिर्यञ्चयोनिक पुरुषों की और मनुष्य पुरुषों की स्थिति तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों और मनुष्य स्त्रियों के समान जानना चाहिए।
सर्वार्थसिद्ध देवों पर्यन्त देवयोनिक पुरुषों की स्थिति वही जाननी चाहिए जो प्रज्ञापना के स्थिति पद में कही गई है।

प्र. भन्ते ! नपुंसक की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम।

प्र. भन्ते ! नैरयिक नपुंसक की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष,
उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम।
अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त सब नारक नपुंसकों की स्थिति कहनी चाहिए।

प्र. भन्ते ! तिर्यक्योनिक नपुंसक की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट पूर्वकोटि।

प्र. भन्ते ! एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुंसक की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष।

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुंसक की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष।
सब एकेन्द्रिय नपुंसकों की स्थिति कहनी चाहिए।
द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय नपुंसकों की स्थिति भी कहनी चाहिए।

प्र. भन्ते ! पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुंसक की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट पूर्वकोटि।
इसी प्रकार जलचरतिर्यञ्च चतुष्पदस्थलचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प, खेचर तिर्यक्योनिक नपुंसक इन सबकी जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की स्थिति कही गई है।

प. मणुस्स णपुंसगस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी।
धम्मचरणं पडुच्च-जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।
कम्मभूमग भरहेरवय पुव्वविदेह-अवरविदेह मणुस्सणपुंसगस्स वि तहेव।

प. अकम्मभूमग मणुस्सणपुंसगस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च-जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं,
साहरणं पडुच्च-जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।
एवं अंतरदीवगाणं। *–जीवा. पडि. २, सु. ५९ (१)*

प्र. भन्ते ! मनुष्य नपुंसक की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! क्षेत्र की अपेक्षा-जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट पूर्वकोटि।
धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि।
कर्मभूमिक भरत, एरवत, पूर्वविदेह, पश्चिमविदेह के मनुष्य नपुंसक की स्थिति भी इसी प्रकार कहनी चाहिए।

प्र. भन्ते ! अकर्मभूमिक मनुष्य नपुंसक की स्थिति कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा-जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त।
संहरण की अपेक्षा-जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि।
इसी प्रकार अन्तर्द्वीपिक मनुष्य नपुंसकों की स्थिति कहनी चाहिए।

५. ओहेण नेरइयाणं ठिई–

प. नेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं,
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं[1]।

प. अपज्जत्तयनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।
–पण्ण प. ४, सु. ३३५

प. पढमसमयनेरइयस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगं समयं ठिई पण्णत्ता।

एवं सव्वेसिं पढमसमयगाणं एगं समयं।

प. अपढमसमयनेरइयस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं समयूणाइं।
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं समयूणाइं।
–जीवा. पडि. ७, सु. २२६

५. सामान्यतः नैरयिकों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! प्रथम समय नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! (जघन्य और उत्कृष्ट) एक समय की स्थिति कही गई है।

इसी प्रकार प्रथम समय के सभी नैरयिकों की स्थिति एक समय की है।

प्र. भन्ते ! अप्रथम समय नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति एक समय कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम तेतीस सागरोपम की कही गई है।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३८३/१
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३२
(ग) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १०१
(घ) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. २०६
(ङ) जीवा. पडि ६, सु. २२५
(च) विया. स. १ उ. १, सु. ६/१
(छ) विया. स. ११, उ. ११, सु. १८
(ज) सम. सु. १५१ (१)

६. रयणप्पभापुढविनेरइयाणं ठिई–

प. रयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं[1]।
उक्कोसेण सागरोवमं[2]।

प. अपज्जत्तय-रयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-रयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।
उक्कोसेण सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणं[3]।

–पण्ण. प. ४, सु. ३३६

७. रयणप्पभाएपुढवीए अत्थेगइए नेरइयाणं ठिई–

१. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १, सु. २९

२. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २ सु. ८

३. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ३, सु. १३

४. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ४, सु. १०

५. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ५, सु. १४

६. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ६, सु. ९

७. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ७, सु. १२

८. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ८, सु. १०

९. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं नव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ९, सु. १२

१०. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १०, सु. १०

११. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–सम. सम. ११, सु. ८

१२. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–सम. सम. १२, सु. १२

६. रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट एक सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! रत्नप्रभा पृथ्वी के अपर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! रत्नप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम एक सागरोपम की।

७. रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति–

१. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है।

२. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है।

३. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है।

४. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है।

५. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति पांच पल्योपम की कही गई है।

६. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति छह पल्योपम की कही गई है।

७. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति सात पल्योपम की कही गई है।

८. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति आठ पल्योपम की कही गई है।

९. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति नौ पल्योपम की कही गई है।

१०. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति दस पल्योपम की कही गई है।

११. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की कही गई है।

१२. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति बारह पल्योपम की कही गई है।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३८३/२
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. १६०
(ग) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. ९०
(घ) ठाणं. अ. १०, सु. ७५७/२
(ङ) सम. सम. १०, सु. ९, (ज.)

२. सम. सम. १, सु. २७ (उ.)

३. अणु. कालदारे सु. ३८३/२

१३. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. १३, सु. ९*

१४. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. १४, सु. ९*

१५. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पण्णरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. १५, सु. ८*

१६. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सोलस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. १६, सु. ८*

१७. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्तरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. १७, सु. ११*

१८. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
–सम. सम. १८, सु. ९

१९. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगूणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
–सम. सम. १९, सु. ६

२०. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २०, सु. ८*

२१. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एकवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २१, सु. ५*

२२. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २२, सु. ७*

२३. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २३, सु. ५*

२४. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चउवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २४, सु. ७*

२५. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
–सम. सम. २५, सु. १०

२६. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २६, सु. ३*

२७. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २७, सु. ७*

२८. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
सम. सम. २८, सु. ६

२९. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगूणतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
सम. सम. २९, सु. १०

३०. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *सम. सम. ३०, सु. ९*

३१. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
सम. सम. ३१, सु. ६

३२. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *सम. सम. ३२, सु. ७*

१३. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति तेरह पल्योपम की कही गई है।

१४. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति चौदह पल्योपम की कही गई है।

१५. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की कही गई है।

१६. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति सोलह पल्योपम की कही गई है।

१७. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति सतरह पल्योपम की कही गई है।

१८. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति अठारह पल्योपम की कही गई है।

१९. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति उन्नीस पल्योपम की कही गई है।

२०. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति बीस पल्योपम की कही गई है।

२१. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति इक्कीस पल्योपम की कही गई है।

२२. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति बाईस पल्योपम की कही गई है।

२३. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति तेईस पल्योपम की कही गई है।

२४. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति चौबीस पल्योपम की कही गई है।

२५. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति पच्चीस पल्योपम की कही गई है।

२६. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति छब्बीस पल्योपम की कही गई है।

२७. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की कही गई है।

२८. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम की कही गई है।

२९. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति उनतीस पल्योपम की कही गई है।

३०. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति तीस पल्योपम की कही गई है।

३१. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति इकतीस पल्योपम की कही गई है।

३२. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति बत्तीस पल्योपम की कही गई है।

३३. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ३३, सु. ५

८. सक्करप्पभापुढवि नेरइयाणं ठिई–

प. सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं सागरोवमं, उक्कोसेण तिण्णि सागरोवमाइं[1]।

प. अपज्जत्तय-सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण तिण्णि सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४, सु. ३३७

९. सक्करप्पभापुढवीए अत्थेगइय नेरइयाणं ठिई–

दुच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २, सु. ९

१०. वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं ठिई–

प. वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं, उक्कोसेण सत्त सागरोवमाइं[2]।

प. अपज्जत्त-वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्त-वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण तिण्णि सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४ सु. ३३८

११. वालुयप्पभापुढवीए अत्थेगइय नेरइयाणं ठिई–

तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चत्तारि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ४, सु. ११

तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पंच सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ५, सु. १५

३३. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति तेतीस पल्योपम की कही गई है।

८. शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक सागरोपम की, उत्कृष्ट तीन सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! शर्कराप्रभा पृथ्वी के अपर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! शर्कराप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम एक सागरोपम की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन सागरोपम की।

९. शर्कराप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति–

दूसरी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति दो सागरोपम की कही गई है।

१०. वालुकाप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य तीन सागरोपम की, उत्कृष्ट सात सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! वालुकाप्रभा पृथ्वी के अपर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! वालुकाप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम तीन सागरोपम की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम सात सागरोपम की।

११. वालुकाप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति–

तीसरी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति चार सागरोपम की कही गई है।

तीसरी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति पांच सागरोपम की कही गई है।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३८३/३
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. १६१
(ग) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. ९०
(घ) ठाणं अ. ३, उ. १, सु. १५५/१
(ङ) सम. सम. १, सु. २८, (ज.)
(च) सम. सम. ३, सु. २८ (उ.)

२. (क) अणु. कालदारे सु. ३८३/३
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. १६२
(ग) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. ९०
(घ) ठाणं अ. ३, उ. १, सु. १५५/२
(ङ) सम. सम. ३, सु. १५, (ज.)
(च) सम. सम. ७, सु. १३, (उ.)
(छ) ठाणं अ. ७, सु. ५७३ (२)

तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. ६, सु. १०

तीसरी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति छह सागरोपम की कही गई है।

१२. पंकप्पभापुढवि नेरइयाणं ठिई—

प. पंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण सत्त सागरोवमाइं, उक्कोसेण दस सागरोवमाइं[1]।

प. अपज्जत्तय-पंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-पंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं। उक्कोसेण दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं। —पण्ण. प. ४, सु. ३३९

१२. पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति—

प्र. भन्ते ! पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य सात सागरोपम की, उत्कृष्ट दस सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! पंकप्रभा पृथ्वी के अपर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पंकप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम सात सागरोपम की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम दस सागरोपम की।

१३. पंकप्पभापुढवीए अत्थेगइय नेरइयाणं ठिई—

चउत्थीए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. ८, सु. ११

चउत्थीए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं नव सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. ९, सु. १३

१३. पंकप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति—

चौथी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति आठ सागरोपम की कही गई है।

चौथी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति नौ सागरोपम की कही गई है।

१४. धूमप्पभापुढवि नेरइयाणं ठिई—

प. धूमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस सागरोवमाइं, उक्कोसेण सत्तरस सागरोवमाइं[2]।

प. अपज्जत्तय-धूमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-धूमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं। —पण्ण. प. ४, सु. ३४०

१४. धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति—

प्र. भन्ते ! धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य दस सागरोपम की, उत्कृष्ट सत्तरह सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! धूमप्रभा पृथ्वी के अपर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! धूमप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस सागरोपम की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम सत्तरह सागरोपम की।

१५. धूमप्पभापुढवीए अत्थेगइय नेरइयाणं ठिई—

पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. ११, सु. ९

१५. धूमप्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति—

पांचवीं पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति ग्यारह सागरोपम की कही गई है।

---

१. (क) अणु. कालदारं सु. ३८३/४
(ख) उत्त. अ. ३६ गा. १६३
(ग) जीवा. पडि. ३, सु. ९०
(घ) ठाणं. अ. ७, सु. ५७३/३ (ज.)
(ङ) सम. सम. ७, सु. १४ (ज.)
(च) ठाणं. अ. १०, सु. ७५७/३ (उ.)
(छ) सम. सम. १०, सु. १२, (उ.)

२. (क) अणु. कालदारं सु. ३८३/४
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. १६४
(ग) जीवा. पडि. ३, सु. ९०
(घ) ठाणं. अ. १०, सु. ७५७/४ (ज.)
(ङ) सम. सम. १०, सु. १३ (ज.)
(च) सम. सम. १७, सु. १२, (उ.)

पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १२, सु. १३

पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १३, सु. १०

पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १४, सु. १०

पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पण्णरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १५, सु. ९

पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सोलस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १६, सु. ९

पांचवी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति बारह सागरोपम की कही गई है।

पांचवी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति तेरह सागरोपम की कही गई है।

पांचवी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति चौदह सागरोपम की कही गई है।

पांचवी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति पन्द्रह सागरोपम की कही गई है।

पांचवी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति सोलह सागरोपम की कही गई है।

१६. तमप्पभापुढविनेरइयाणं ठिई–

प. तमप्पभापुढविनेरइयाणं भन्ते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण सत्तरस सागरोवमाइं,
उक्कोसेण बावीसं सागरोवमाइं[1]।

प. अपज्जत्तय-तमप्पभापुढविनेरइयाणं भन्ते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-तमप्पभापुढविनेरइयाणं भन्ते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४, सु. ३४१

१६. तम:प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! तम:प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य सत्तरह सागरोपम की,
उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! तम:प्रभा पृथ्वी के अपर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! तम:प्रभा पृथ्वी के पर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम सत्तरह सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बाईस सागरोपम की।

१७. तमप्पभापुढवीए अत्थेगइय नेरइयाणं ठिई–

छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १८, सु. १०

छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगूणवीस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १९, सु. ७

छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २०, सु. ९

छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २१, सु. ६

१७. तम:प्रभा पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति–

छठी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति अठारह सागरोपम की कही गई है।

छठी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति उन्नीस सागरोपम की कही गई है।

छठी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति बीस सागरोपम की कही गई है।

छठी पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति इक्कीस सागरोपम की कही गई है।

१८. अहेसत्तमपुढविनेरइयाणं ठिई–

प. अहेसत्तमपुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण बावीसं सागरोवमाइं,
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं[2]।

१८. अध:सप्तम पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! अध:सप्तम पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है।

उ. गौतम ! जघन्य बाईस सागरोपम की,
उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३८३/४
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. १६५
(ग) जीवा. पडि. ३, सु. ९०
(घ) सम. सम. १७, सु. १३ (ज.)
(ङ) सम. सम. २२, सु. ८ (उ.)

२. (क) अणु. कालदारे सु. ३८३/४
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. १६६
(ग) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. ९०
(घ) सम. सम. २२, सु. ९, (ज.)
(ङ) सम. सम. ३३, सु. ६ (उ.)

प. अपज्जत्तय-अहेसत्तमपुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-अहेसत्तमपुढविनेरइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४, सु. ३४२

प्र. भन्ते ! अधःसप्तम पृथ्वी के अपर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है।

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! अधःसप्तम पृथ्वी के पर्याप्त नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम बाईस सागरोपम की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम की।

१९. अहेसत्तमपुढवीए कालाइनारगावासेसु उक्कोस ठिई–

अहे सत्तमाए पुढवीए काल-महाकाल- रोरुय-महारोरुएसु नेरइयाणं उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–सम. सम. ३३, सु. ६

अप्पइट्ठाणनरए नेरइयाणं अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ३३, सु. ७*

१९. अधःसप्तम पृथ्वी के कालादि नारकावासों में उत्कृष्ट स्थिति–

नीचे की सातवीं पृथ्वी के काल, महाकाल, रोरुक और महारोरुक इन चार नारकावासों के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की कही गई है।

(सप्तम पृथ्वी के) अप्रतिष्ठान नरक के नैरयिकों की सामान्य स्थिति अजघन्य अनुत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की कही गई है।

२०. अहेसत्तमपुढवीए अत्थेगइय नेरइयाणं ठिई–

१. अहेसत्तमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २३, सु. ६*
२. अहेसत्तमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चउवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २४, सु. ८*
३. अहेसत्तमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २५, सु. ११*
४. अहेसत्तमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २६, सु. ४*
५. अहेसत्तमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्तावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २७, सु. ८*
६. अहेसत्तमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २८, सु. ७*
७. अहेसत्तमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगूणतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २९, सु. ११*
८. अहेसत्तमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ३०, सु. १०*
९. अहेसत्तमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ३१, सु. ७*
१०. अहेसत्तमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ३२, सु. ८*

२०. अधःसप्तम पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति–

१. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति तेवीस सागरोपम की कही गई है।
२. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति चौवीस सागरोपम की कही गई है।
३. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति पच्चीस सागरोपम की कही गई है।
४. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति छव्वीस सागरोपम की कही गई है।
५. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति सत्ताईस सागरोपम की कही गई है।
६. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति अट्ठाईस सागरोपम की कही गई है।
७. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति उनतीस सागरोपम की कही गई है।
८. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति तीस सागरोपम की कही गई है।
९. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति इकतीस सागरोपम की कही गई है।
१०. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कतिपय नैरयिकों की स्थिति बत्तीस सागरोपम की कही गई है।

२१. तिरिक्खजोणिय जीवाणं ठिई–

प. तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं[1]।

–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. २०८

२१. तिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! तिर्यग्योनिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम।

---

१. सम. सम. ३, सु. १८

प. पढमसमय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि एगं समयं।

प. अपढमसमय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अपढमसमय-तिरिक्खजोणियाणं–
जहण्णेण खुड्डागं भवग्गहणं समयूणं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं समयूणाइं।

–जीवा. पडि. ७, सु. २२६

प्र. भन्ते ! प्रथम समय तिर्यग्योनिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट एक समय की है।

प्र. भन्ते ! अप्रथम समय तिर्यग्योनिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है।

उ. गौतम ! अप्रथम समय तिर्यग्योनिकों की–
जघन्य स्थिति एक समय न्यून क्षुल्लक भवग्रहण की है।
उत्कृष्ट एक समय कम तीन पल्योपम की है।

२२. एगिंदिय जीवाणं ठिई–

प. एगिंदियस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइं।

प. एगिंदियअपज्जत्तगस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. एगिंदियपज्जत्तगस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–जीवा. पडि. ४, सु. २०७

प. पढमसमयएगिंदियस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! एगं समयं।

प. अपढमसमयएगिंदियस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण खुड्डागं भवग्गहणं समयूणं,
उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइं समयूणाइं।

–जीवा. पडि. ९, सु. २२९

२२. एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति–

प्र. भन्ते! एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की।
उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष की है।

प्र. भन्ते ! एकेन्द्रिय अपर्याप्तक की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

प्र. भन्ते ! एकेन्द्रिय पर्याप्तक की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बावीस हजार वर्ष की है।

प्र. भन्ते ! प्रथमसमय एकेन्द्रिय की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! (जघन्य और उत्कृष्ट) एक समय की स्थिति कही गई है।

प्र. भन्ते ! अप्रथमसमय एकेन्द्रिय की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय न्यून क्षुल्लक भवग्रहण की है।
उत्कृष्ट एक समय कम बावीस हजार वर्ष की है।

२३. पुढविकाइयाणं ठिई–

प. पुढविकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइं[1]।

प. अपज्जत्तय-पुढविकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-पुढविकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,

२३. पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की,
उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,

१. जीवा. पडि. ५, सु. २११

उक्कोसेण वावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं[१]।

उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष की।

प. सुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं[२]।

प. अपज्जत्तय-सुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-सुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं[३]।

प. वादरपुढविकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइं[४]।

प. अपज्जत्तय-वादरपुढविकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-वादरपुढविकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण वावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

—पण्ण. प. ४, सु. ३५४-३५६

प. सण्हपुढवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण एगं वाससहस्साइं।

प. सुद्धपुढवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण वारस वाससहस्साइं।

प. वालुयापुढवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण चोदृस वाससहस्साइं।

प. मणेसीलापुढवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण सोलस वाससहस्साइं।

प. सक्करापुढवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण अट्ठारस वाससहस्साइं।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! कोमल पृथ्वी की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट एक हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! शुद्ध पृथ्वी की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट बारह हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! बालुका पृथ्वी की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट चौदह हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! मनोसिल पृथ्वी की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट सोलह हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! सर्करा पृथ्वी की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अठारह हजार वर्ष की।

---

१. (क) अनु. कालदारे सु. ३८५/१
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. ८०
(ग) जीवा. पडि. ५, सु. २१२
(घ) जीवा. पडि. ८, सु. २२८
(ङ) विया. स. १, उ. १, सु. ६ [illegible]

२. जीवा. पडि. १, सु. १३ ([illegible])

३. (क) अनु. कालदारे सु. ३८५ [illegible]

४. (क) जीवा. पडि. १ सु. १५
(ख) [illegible]

प. खरपुढवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइं। –जीवा. पडि. ३, सु. १०१

प्र. भन्ते ! खर पृथ्वी की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की।

२४. आउकाइयाणं ठिई–
प. आउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण सत्त वाससहस्साइं[1]।
प. अपज्जत्तय-आउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।
प. पज्जत्तय-आउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं[2]।
सुहुमआउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाण पज्जत्तयाण य जहा सुहुमपुढविकाइयाणं तहा भाणियव्वं[3]।
प. बायरआउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण सत्त वाससहस्साइं[4]।
प. अपज्जत्तय-बायरआउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।
प. पज्जत्तय-बायरआउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं[5]।
–पण्ण. प. ४, सु. ३५७-३५९

२४. अप्कायिक जीवों की स्थिति–
प्र. भन्ते ! अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की।
प्र. भन्ते ! अपर्याप्त अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।
प्र. भन्ते ! पर्याप्त अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम सात हजार वर्ष की।
सूक्ष्म अप्कायिकों के औधिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तकों की स्थिति सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों की स्थिति जैसी कही गई है वैसी ही कहनी चाहिए।
प्र. भन्ते ! बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की।
प्र. भन्ते ! अपर्याप्त बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।
प्र. भन्ते ! पर्याप्त बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम सात हजार वर्ष की।

२५. तेउकाइयाणं ठिई–
प. तेउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि राइंदियाइं[6]।
प. अपज्जत्तयाणं तेउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

२५. तेजस्कायिक जीवों की स्थिति–
प्र. भन्ते ! तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन रात्रि-दिन की।
प्र. भन्ते ! अपर्याप्त तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३८५/२
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. ८८
(ग) जीवा. पडि. ५, सु. २११
(ग) जीवा. पडि. ८, सु. २२८
२. जीवा. पडि. ५, सु. २११
३. अणु. कालदारे सु. ३८५/२
४. ठाणं. अ. ७, सु. ५७३/१
जीवा. पडि. १ सु. १७
५. अणु. कालदारे सु. ३८५/२
६. (क) अणु. कालदारे सु. ३८५/३
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. ११३
(ग) जीवा. पडि. १, सु. २४
(घ) जीवा. पडि. ५, सु. २११
(ङ) जीवा. पडि. ८, सु. २२८
(च) विया. स. १, उ. १, सु. ६/१३/१

प. पज्जत्तयाणं तेउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं[1]।
सुहुमतेउकाइयाणं १. ओहियाणं २. अपज्जत्तयाणं ३. पज्जत्तयाण य जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं[2]।

प. बायरतेउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं
उक्कोसेण तिण्णि राइंदियाइं[3]।

प. अपज्जत्तय-बायरतेउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-बायरतेउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं[4]।

—पण्ण. प. ४, सु. ३६०-३६२

प्र. भन्ते ! पर्याप्त तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन रात्रि-दिन की।
सूक्ष्म तेजस्कायिकों के १. औधिक २. अपर्याप्तक ३. पर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

प्र. भन्ते ! बादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन रात्रि-दिन की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन रात्रि-दिन की।

२६. इंगालकारियाए अगणिकायस्स ठिई–

प. इंगालकारियाए णं भंते ! अगणिकाए केवइयं कालं संचिट्ठइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि राइंदियाइं,
अन्ने वि तत्थ वाउयाए वक्कमइ न विणा वाउकाएणं अगणिकाए उज्जलइ।

-विया. स. १६, उ. १, सु. ६

२६. सिगड़ी स्थित अग्निकाय की स्थिति–

प्र. भन्ते ! अंगारकारिया (सिगड़ी) में अग्निकाय की कितने काल की स्थिति है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन रात-दिन की,
वहाँ अन्य वायुकायिक जीव उत्पन्न होते हैं, क्योंकि वायुकाय के बिना अग्निकाय प्रज्वलित नहीं होती है।

२७. वाउकाइयाणं ठिई–

प. दं. १५. वाउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि वाससहस्साइं[5]।

प. अपज्जत्तय-वाउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-वाउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं[6]।

प. सुहुमवाउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

२७. वायुकायिक जीवों की स्थिति–

प्र. दं. १५. भन्ते ! वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

---

१. जीवा. पडि. ५, सु. २११
२. अणु. [illegible] सु. ३८५
३. [illegible]
४. (क) अणु. [illegible] सु. ३८५
(ख) [illegible]
५. (क) अणु. [illegible] सु. ३८५
(ख) [illegible]
[illegible]

प. खरपुढवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइं। *–जीवा. पडि. ३, सु. १०१*

२४. आउकाइयाणं ठिई–

प. आउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण सत्त वाससहस्साइं[1]।

प. अपज्जत्तय-आउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-आउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं[2]।

सुहुमआउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाण पज्जत्तयाण य जहा सुहुमपुढविकाइयाणं तहा भाणियव्वं[3]।

प. बायरआउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण सत्त वाससहस्साइं[4]।

प. अपज्जत्तय-बायरआउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-बायरआउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं[5]।

–पण्ण. प. ४, सु. ३५७-३५९

२५. तेउकाइयाणं ठिई–

प. तेउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि राइंदियाइं[6]।

प. अपज्जत्तयाणं तेउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प्र. भन्ते ! **खर पृथ्वी** की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की।

२४. अप्कायिक जीवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम सात हजार वर्ष की।

सूक्ष्म अप्कायिकों के औधिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तकों की स्थिति सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों की स्थिति जैसी कही गई है वैसी ही कहनी चाहिए।

प्र. भन्ते ! बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम सात हजार वर्ष की।

२५. तेजस्कायिक जीवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन रात्रि-दिन की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३८५/२
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. ८८
(ग) जीवा. पडि. ५, सु. २११
(घ) जीवा. पडि. ८, सु. २२८

२. जीवा. पडि. ५, सु. २११

३. अणु. कालदारे सु. ३८५/२

४. ठाणं. अ. ७, सु. ५७३/१
जीवा. पडि. १ सु. १७

५. अणु. कालदारे सु. ३८५/२

६. (क) अणु. कालदारे सु. ३८५/३
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. ११३
(ग) जीवा. पडि. १, सु. २४
(घ) जीवा. पडि. ५, सु. २११
(ङ) जीवा. पडि. ८, सु. २२८
(च) विया. स. १, उ. १, सु. ६/१३/१

प. पज्जत्तयाणं तेउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं[१]।
सुहुमतेउकाइयाणं १. ओहियाणं २. अपज्जत्तयाणं ३. पज्जत्तयाण य जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं[२]।

प. वायरतेउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं
उक्कोसेण तिण्णि राइंदियाइं[३]।

प. अपज्जत्तय-वायरतेउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-वायरतेउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं[४]।

- पण्ण. प. ४, सु. ३६० ३६२

प्र. भन्ते ! पर्याप्त तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन रात्रि-दिन की।
सूक्ष्म तेजस्कायिकों के १. औधिक २. अपर्याप्तक ३. पर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

प्र. भन्ते ! वादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन रात्रि-दिन की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त वादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त वादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन रात्रि-दिन की।

२६. इंगालकारियाए अगणिकायस्स ठिई–

प. इंगालकारियाए णं भंते ! अगणिकाए केवइयं कालं संचिट्ठइ ?

उ. गोयमा ! जहन्नेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि राइंदियाइं,
अन्ने वि तत्थ वाउयाए वक्कमइ न विणा वाउकाएणं अगणिकाए उज्जलइ। *-विया. स. १६, उ. १, सु. ६*

२६. सिगड़ी स्थित अग्निकाय की स्थिति–

प्र. भन्ते ! अंगारकारिया (सिगड़ी) में अग्निकाय की कितने काल की स्थिति है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन रात-दिन की,
वहाँ अन्य वायुकायिक जीव उत्पन्न होते हैं, क्योंकि वायुकाय के विना अग्निकाय प्रज्वलित नहीं होती है।

२७. वाउकाइयाणं ठिई–

प. दं. १५. वाउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि वाससहस्साइं[५]।

प. अपज्जत्तय-वाउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-वाउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णिं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं[६]।

प. सुहुमवाउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

२७. वायुकायिक जीवों की स्थिति–

प्र. दं. १५. भन्ते ! वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

---

१. जीवा. पडि. ५, सु. २११
२. अणु. कालदारे सु. ३८५/३
३. ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १५३/१
४. (क) अणु. कालदारे सु. ३८५/३
(ख) विया. स. १, उ. १, सु. ६/१४
(ग) जीवा. पडि. ५, सु. २११
(घ) जीवा. पडि. ८, सु. २२८
५. (क) अणु. कालदारे सु. ३८५/४
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. १२२
६. जीवा. पडि. ५, सु. २११

प. अपज्जत्तय-सुहुमवाउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-सुहुमवाउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं[1]।

प. बादरवाउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि वाससहस्साइं[2]।

प. अपज्जत्तय-बादरवाउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-बादरवाउकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं[3]।

-पण्ण. प. ४, सु. ३६३-३६५

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! बादर वायुकायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन हजार वर्ष की।

२८. वणस्सइकाइयाणं ठिई-

प. दं. १६. वणस्सइकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण दस वाससहस्साइं[4]।

प. अपज्जत्तय-वणस्सइकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-वणस्सइकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं[5]।

सुहुमवणस्सइकाइयाणं १: ओहियाणं २. अपज्जत्तयाणं ३. पज्जत्ताण य जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं[6]।

प. बादरवणस्सइकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण दस वाससहस्साइं[7]।

२८. वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति-

प्र. दं. १६. भन्ते ! वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों के १. औधिक २. अपर्याप्तको ३. पर्याप्तकों की स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है।

प्र. भन्ते ! बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३८५/४
   (ख) जीवा. पडि. ५, सु. २११
२. ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १५३/२
३. (क) अणु. कालदारे सु. ३८५/४
   (ख) जीवा. पडि. १, सु. २६
   (ग) जीवा. पडि. ५, सु. २११
   (घ) विया. स. १, उ. १, सु. ६/१५
४. (क) अणुं कालदारे सु. ३८५/५
   (ख) उत्त. अ. ३६, गा. १०२
   (ग) जीवा. पडि. १, सु. २१
   (घ) जीवा. पडि. ५, सु. २११
   (ङ) जीवा. पडि. ८, सु. २२८
५. जीवा. पडि. ५, सु. २११
६. अणु. कालदारे सु. ३८५/५
७. (क) ठाणं. अ. १०, सु. ७५७/७
   (ख) सम. सम. १०, सु. १७

प. अपज्जत्तय-बायरवणस्सइकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-बायरवणस्सइकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं[1]।

-पण्ण. प. ४, सु. ३६६ ३६८

प. पत्तेय-सरीरी बायरवणस्सइकाइयस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण दस वाससहस्साइं।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकायिक जीव की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की।

२९. णिगोयाणं ठिई–

प. णिओदस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. बायरणिओदस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. अपज्जत्तय-बायरणिओदस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं,
णिगोदस्स बादर णिओदस्स य पज्जत्तयाणं अंतोमुहुत्तं जहण्णेण वि उक्कोसेण वि। -जीवा. पडि. ५, सु. २१८

२९. निगोदों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! निगोद की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! बादर निगोद की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त बादर निगोद की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।
पर्याप्त निगोद और बादर निगोद की जघन्य उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।

३०. बेइंदियाणं ठिई–

प. बेइंदियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण बारस संवच्छराइं।

प. अपज्जत्तय-बेइंदियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-बेइंदियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण बारस संवच्छराइं अंतोमुहुत्तूणाइं[2]।

-पण्ण. प. ४, सु. ३६९

प. पढमसमय-बेइंदियस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगं समयं।

प. अपढमसमय-बेइंदियस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

३०. द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट बारह वर्ष की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बारह वर्ष की।

प्र. भन्ते ! प्रथम समय द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! एक समय की।

प्र. भन्ते ! अप्रथम समय द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३८५/५
(ख) विया. स. १ उ. १ सु. ६/१६
(ग) जीवा. पडि. ४, सु. २०७
(घ) जीवा. पडि. ८, सु. २२८
(ङ) विया. स. १, उ. १, सु. ६/१७/१

२. (क) अणु. कालदारे सु. ३८६/१
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. १३२

प. गब्भवक्कंतिय-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णिं पलिओवमाइं।

प. अप्पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं,

प. पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

-पण्ण. प. ४, सु. ३७२-३७४

असंखेज्ज-वासाउय-सन्नि-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

-सम. सम. ३, सु. १७

प्र. भन्ते ! गर्भज पंचेन्द्रिय- तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम की।

असंख्य वर्षों की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है।

३५. अत्थेगइय पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं ठिई–

असंखेज्ज-वासाउय-सन्नि-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

-सम. सम. १, सु. ३५

असंखेज्ज-वासाउय-सन्नि पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं अत्थेगइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

-सम. सम. २, सु. १२

३५. कतिपय पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की स्थिति–

असंख्य वर्षों की आयु वाले कतिपय संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है।

असंख्य वर्षों की आयु वाले कतिपय संज्ञीपंचेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है।

३६. तिरिक्खजोणित्थीणं ठिई–

प. तिरिक्खजोणित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं।

-जीवा. पडि. २, सु. ४७

३६. तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन पल्योपम की।

३७. जलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं ठिई –

प. जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडी[1]।

प. अपज्जत्तय-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणाइं।

प. सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडी।

३७. जलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट पूर्वकोटी की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी की।

प्र. भन्ते ! सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट पूर्वकोटी की।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३८७/२ (ख) उत्त. अ. ३६, गा. १७५ (ग) जीवा. पडि. १, सु ३५

प. अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणाइं[1]।

प. गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडी[2]।

प. अपज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-जलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणाइं[3]।

–पण्ण. प. ४, सु. ३७५-३७७

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी की।

प्र. भन्ते ! गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट पूर्वकोटी की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी की।

३८. जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणित्थीणं ठिई–

प. जलयर-तिरिक्खजोणित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडी।

–जीवा. पडि. २, सु. ४७

३८. जलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! जलचर तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट पूर्वकोटी की।

३९. चउप्पय थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं ठिई–

प. चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं।

प. अपज्जत्तय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं[4]।

प. सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण चउरासीइं वाससहस्साइं।

३९. चतुष्पद स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त चतुष्पद स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट चौरासी हजार वर्ष की।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३८७/२
(ख) जीवा पडि. १, सु. ३५
२. जीवा. पडि. १, सु. ३८
३. (क) अणु. कालदारे सु. ३८७/२
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३८
४. अणु. कालदारे सु. ३८७/३

प. अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख जोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण चउरासीइं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं[1]।

प. गब्भवक्कंतिय - चउप्पय - थलयर - पंचेंदिय - तिरिक्ख - जोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं[2]।

प. अपज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख जोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं[3]।

–पण्ण. प. ४, सु. ३७८-३८०

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम चौरासी हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम की।

४०. चउप्पय-थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणित्थीणं ठिई–

प. चउप्पय-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं।

–जीवा. पडि. २, सु. ४७

४०. चतुष्पद स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! चतुष्पद स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन पल्योपम की।

४१. उरपरिसप्प थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं ठिई–

प. उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय- तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी[4]।

प. अपज्जत्तय-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणाइं।

प. सम्मुच्छिम-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

४१. उर:परिसर्प स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट पूर्वकोटी की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी की।

प्र. भन्ते ! सम्मूर्च्छिम उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

---

१. [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. १८४
(ग) जीवा. पडि. १, सु. ३९
४. अनु. कालदारं सु. ३८५/३

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तेवण्णं वाससहस्साइं[1]।

प. सम्मुच्छिम-अपज्जत्तयउरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तेवण्णं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं[2]।

प. गब्भवक्कंतिय-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी[3]।

प. अपज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणाइं[4]।

—पण्ण. प. ४, सु. ३८१-३८३

४२. उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय तिरिक्खजोणित्थीणं ठिई—

प. उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय- तिरिक्खजोणित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी[5]। —जीवा. पडि. २, सु. ४७

४३. भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं ठिई—

प. भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय- तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी[6]।

प. अपज्जत्तय-भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणाइं।

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तिरेपन हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम त्रेपन हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! गर्भज उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट पूर्वकोटी की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त गर्भज उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त गर्भज उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी की।

४२. उरपरिसर्प स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों की स्थिति—

प्र. भन्ते ! उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट पूर्वकोटी की।

४३. भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की स्थिति—

प्र. भन्ते ! भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट पूर्वकोटी की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी की।

---

१. (क) जीवा. पडि. १, सु. ३६
(ख) सम. सम. ५३, सु. ४
२. (क) अणु. कालदारे सु. ३८७/३
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३६
३. जीवा. पडि. १ सु. ३९
४. (क) अणु. कालदारे सु. ३८७/३
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३९
(ग) जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. ९७ (२)
५. जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. ९७ (२)
६. अणु. कालदारे सु. ३८७/३

प. सम्मुच्छिम-भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण बायालीसं वाससहस्साइं[१]।

प. अपज्जत्तय-सम्मुछिम-भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण बायालीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं[२]।

प. गब्भवक्कंतिय-भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी[३]।

प. अपज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-भुयपरिसप्प-थलयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणाइं[४]।

प्र. भन्ते ! सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट बयालीस हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बयालीस हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट पूर्वकोटी की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी की।

४४. भुयपरिसप्प थलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणित्थीणं ठिई–

प. भुयपरिसप्प-तिरिक्खजोणित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी। –जीवा. पडि. २, सु. ४७

४४. भुजपरिसर्प पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट पूर्वकोटी की।

४५. खहयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं ठिई–

प. खहयर-पंचेंदिय- तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो[५]।

प. अपज्जत्तय-खहयर-पंचेंदिय- तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-खहयर-पंचेंदिय- तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो अंतोमुहुत्तूणाइं।

४५. खेचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के असंख्यातवें भाग की।

---

१. (क) जीवा. पडि. १ सु. ३६
(ख) सम. सम. ४२ सु. २
२. (क) अणु. कालदारे सु. ३८५/३
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३६
३. (क) अणु. कालदारे सु. ३८५/३
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३९
(ग) जीवा. पडि., १, सु. ९७ (२)
४. जीवा. पडि. १, सु. ३९
५. (क) अणु. कालदारे सु. ३८७/४
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. १९१

प. सम्मुच्छिम-खहयर-पंचेंदिय- तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण बावत्तरिं वाससहस्साइं[१]।

प. अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण बावत्तरिं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं[२]।

प. गब्भवक्कंतिय-खहयर-पंचेंदिय- तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो[३]।

प. अपज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो अंतोमुहुत्तूणाइं[४]।

–पण्ण. प. ४, सु. ३८७-३८९

प्र. भन्ते ! सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट बहत्तर हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बहत्तर हजार वर्ष की।

प्र. भन्ते ! गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के असंख्यातवें भाग की।

४६. खहयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणित्थीणं ठिई–

प. खहयर-तिरिक्खजोणित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो।

–जीवा पडि. २, सु. २५

४६. खेचर पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! खेचर तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की।

४७. मणुस्साणं ठिई–

प. मणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं[५]।

प. अपज्जत्तय-मणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-मणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

४७. मनुष्यों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

---

१. (क) जीवा. पडि. १, सु. ३६
(ख) सम. सम. ७२ सु. ८
२. (क) अणु. कालदारे सु. ३८७/४
(ख) जीवा पडि. १, सु. ३६
३. जीवा. पडि. १, सु. ४०
४. (क) अणु. कालदारे सु. ३८७/४-५
(ख) जीवा. पडि. १. सु. ४०
(ग) जीवा. पडि. ३, उ. १, सु. ९७(१)
५. (क) अणु. कालदारे सु. ३८८/१
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. २००
(ग) जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. २०६
(घ) विया. स. १, उ. १, सु. ६/२१

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णिं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।
-पण्ण. प. ४, सु. ३९०

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम की।

प. सम्मुच्छिम-मणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

प्र. भन्ते ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं[1]।

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प. गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

प्र. भन्ते ! गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं[2]।

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट तीन पल्योपम की।

प. अपज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प. पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

प्र. भन्ते ! पर्याप्त गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं[3]।
-पण्ण. प. ४, सु. ३९१-३९२

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम की।

प. पढमसमय-मणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

प्र. भन्ते ! प्रथम समय मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गोयमा ! एगं समयं।

उ. गौतम ! एक समय की।

प. अपढमसमय-मणुस्साणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

प्र. भन्ते ! अप्रथम समय मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण खुड्डागं भवग्गहणं समयूणं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं समयूणाइं,
-जीवा. पडि. ७, सु. २२६

उ. गौतम ! जघन्य एक समय कम लघुभवग्रहण की,
उत्कृष्ट समय न्यून तीन पल्योपम की।

४८. अत्थेगइय गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं ठिई-

असंखेज्ज-वासाउय-गब्भवक्कंतिय-सण्णि मणुयाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता ?
-सम. सम. १, सु. ३६

असंखेज्ज - वासाउय - गब्भवक्कंतिय - सण्णि पंचिंदिय - मणुस्साणं अत्थेगइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
-सम. सम. २, सु. १३

४८. कतिपय गर्भज मनुष्यों की स्थिति-

असंख्य वर्षों की आयु वाले कतिपय गर्भज संज्ञी मनुष्यों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है।

असंख्य वर्षों की आयु वाले कतिपय गर्भज संज्ञी मनुष्यों की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है।

४९. मणुस्सित्थीणं ठिई-

प. मणुस्सित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं।
धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

४९. मनुष्य स्त्रियों की स्थिति-

प्र. भन्ते ! मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! **क्षेत्र की अपेक्षा** जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट तीन पल्योपम।
धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट देशऊण पूर्वकोटि।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३८८/२
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ४१
२. जीवा. पडि. १, सु. ४१
३. (क) अणु. कालदारे सु. ३८८/३
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ४१
(ग) ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १५१/२
(घ) सम. सम. ३, सु. १८ (उ.)

प. कम्मभूमय-मणुस्सित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! **खेत्तं पडुच्च** जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं।
धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

प. भरहेरवय-कम्मभूमग-मणुस्सित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! **खेत्तं पडुच्च** जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं।
धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

प. पुव्वविदेह-अवरविदेह-कम्मभूमग-मणुस्सित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! **खेत्तं पडुच्च** जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी।
धम्मचरणं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

प. अकम्मभूमग-मणुस्सित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! **जम्मणं पडुच्च** जहण्णेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं।
संहरणं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

प. हेमवय-एरण्णवय अकम्मभूमग-मणुस्सित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! **जम्मणं पडुच्च** जहण्णेण देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेण पलिओवमं।
संहरणं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

प. हरिवास-रम्मगवास-अकम्मभूमग-मणुस्सित्थीणं भन्ते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! **जम्मणं पडुच्च** जहण्णेण देसूणाइं दो पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जभागेणं ऊणगाइं,
उक्कोसेण दो पलिओवमाइं।
संहरणं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

प. देवकुरु-उत्तरकुरु-अकम्मभूमग-मणुस्सित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा! **जम्मणं पडुच्च** जहण्णेण देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं, पलिओवमस्स असंखेज्जभागेणं ऊणगाइं,

प्र. भन्ते ! कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! **क्षेत्र की अपेक्षा** जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट तीन पल्योपम।
धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट देशऊण पूर्वकोटि।

प्र. भन्ते ! भरत-एरवत के कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! **क्षेत्र की अपेक्षा** जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट तीन पल्योपम।
धर्माचरण की अपेक्षा-जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट देशऊण पूर्वकोटि।

प्र. भन्ते ! पूर्वाविदेह अपरविदेह के कर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! **क्षेत्र की अपेक्षा** जघन्य अन्तर्मुहुर्त,
उत्कृष्ट पूर्वकोटि।
धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट देशऊण पूर्वकोटि।

प्र. भन्ते ! अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! **जन्म की अपेक्षा** जघन्य देशऊण पल्योपम अर्थात् पल्योपम के असंख्यातवां भाग कम,
उत्कृष्ट तीन पल्योपम।
संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट देशऊण पूर्वकोटि।

प्र. भन्ते ! हेमवत ऐरण्यवत अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! **जन्म की अपेक्षा** जघन्य देशऊण पल्योपम अर्थात् पल्योपम के असंख्यातवां भाग कम,
उत्कृष्ट एक पल्योपम,
संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट देशऊण पूर्वकोटि।

प्र. भन्ते ! हरिवर्ष रम्यक् वर्ष अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! **जन्म की अपेक्षा** जघन्य देशऊण दो पल्योपम अर्थात् पल्योपम के असंख्यातवां भाग कम दो पल्योपम,
उत्कृष्ट दो पल्योपम।
संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट देशऊण पूर्वकोटि।

प्र. भन्ते ! देवकुरु-उत्तरकुरु-अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! **जन्म की अपेक्षा** जघन्य देशऊण तीन पल्योपम अर्थात् पल्योपम के असंख्यातवां भाग कम तीन पल्योपम,

उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं।
संहरणं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

प. अंतरदीवग-अकम्मभूमग-मणुस्सित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च जहण्णेण देसूणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पलिओवमस्स असंखेज्जभागेणं ऊणगं,
उक्कोसेण पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं।
संहरणं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

-जीवा. पडि. २, सु. ४७(२)

उत्कृष्ट तीन पल्योपम।
संहरण की अपेक्षा-जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट देशऊण पूर्वकोटि।

प्र. भन्ते ! अन्तर्द्वीपज अकर्मभूमिज मनुष्य स्त्रियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य देशऊण पल्योपम अर्थात् पल्योपम के असंख्यातवें भाग न्यून।
उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग।
संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट देशऊण पूर्वकोटि।

५०. ओहेण देवाणं ठिई–

प. देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं,
उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।[1]

प. अपज्जत्तय-देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

-पण्ण. प. ४, सु. ३४३

प. पढमसमयदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगं समयं ठिई पण्णत्ता।

प. अपढमसमयदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं समयूणाइं,
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं समयूणाइं[2]।

-जीवा. पडि. ७, सु. २२६

५०. सामान्यतः देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! प्रथम समय देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! एक समय की स्थिति कही गई है।

प्र. भन्ते ! अप्रथम समय देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य स्थिति एक समय कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम तेतीस सागरोपम की कही गई है।

५१. ओहेण देवीणं ठिई–

प. देवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं,
उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं[3]।

प. अपज्जत्तय-देवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तय-देवीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

-पण्ण. प. ४, सु. ३४४

५१. सामान्यतः देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पचपन पल्योपम की।

---

१. जीवा. पडि. १, सु. ४२
जीवा. पडि. ६, सू. २२५
२. (क) देवाणं जहा नेरइयाणं संक्षिप्त वाचना का विस्तृत पाठ है।
(ख) जीवा. पडि. ३, सु. २०६
(ग) जीवा. पडि. ७, सु. २२६
२. जीवा. पडि. २, सु. ४७(३)

५२. भवणवासीदेवाणं ठिई–

प. भवणवासीणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं,
उक्कोसेण साइरेगं सागरोवमं[१]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! भवणवासीणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! भवणवासीणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण साइरेगं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४, सु. ३४५

५२. भवनवासी देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! भवनवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त भवनवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त भवनवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम कुछ अधिक एक सागरोपम की।

५३. भवणवासीदेवीणं ठिई–

प. भवणवासिणीणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं,
उक्कोसेण अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं[२]।

प. अपज्जत्तियाणं भंते ! भवणवासिणीणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तियाणं भंते ! भवणवासिणीणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४, सु. ३४६

५३. भवनवासी देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! भवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट साढ़े चार पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त भवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त भवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम साढ़े चार पल्योपम की।

५४. असुरकुमाराणं ठिई–

प. असुरकुमाराणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं[३],
उक्कोसेण साइरेगं सागरोवमं[४]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! असुरकुमाराणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण साइरेगं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४, सु. ३४७

५४. असुरकुमार देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! असुरकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त असुरकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त असुरकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम एक सागरोपम से कुछ अधिक की।

---

१. उत्त. अ. ३६, गा. २१९
२. जीवा. पडि. २, सु. ४७ (३)
३. (क) सम. सम. १०, सु. १४ (ज.)
(ख) असुरकुमाराणं जहण्णेणं दसवास सहस्साइं ठिई पण्णत्ता, एवं जाव थणियकुमाराणं। –ठाणं अ. १० सु. ७५७/६
४. (क) अणु. कालदारे सु. ३८४/१
(ख) विया. स. १, उ. १, सु. ६/२/१
(ग) सम. सम. १ सु. ९ (उ.)

५५. अत्थेगइयाणं असुरकुमार देवाणं ठिई-

१. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. १ सु. ३२

२. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. २ सु. १०

३. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. ३, सु. १६

४. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. ४, सु. १२

५. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. ५ सु. १६

६. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं छ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. ६ सु. ११

७. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. ७ सु. १५

८. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. ८, सु. १२

९. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं नव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. ९, सु. १४

१०. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. १०, सु. १६

११. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. ११, सु. १०

१२. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. १२, सु. १४

१३. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तेरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. १३, सु. ११

१४. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. १४, सु. ११

१५. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पण्णरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. १५, सु. १०

१६. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सोलस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. १६, सु. १०

१७. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सत्तरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. १७, सु. १४

१८. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. १८, सु. ११

१९. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगूणवीस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. १९, सु. ८

२०. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. २०, सु. १०

२१. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. २१, सु. ७

२२. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। -सम. सम. २२, सु. १०

५५. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति-

१. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है।

२. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है।

३. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है।

४. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है।

५. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति पांच पल्योपम की कही गई है।

६. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति छ पल्योपम की कही गई है।

७. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति सात पल्योपम की कही गई है।

८. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति आठ पल्योपम की कही गई है।

९. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति नौ पल्योपम की कही गई है।

१०. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति दस पल्योपम की कही गई है।

११. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की कही गई है।

१२. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति बारह पल्योपम की कही गई है।

१३. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति तेरह पल्योपम की कही गई है।

१४. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति चौदह पल्योपम की कही गई है।

१५. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की कही गई है।

१६. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति सोलह पल्योपम की कही गई है।

१७. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति सतरह पल्योपम की कही गई है।

१८. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति अठारह पल्योपम की कही गई है।

१९. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति उन्नीस पल्योपम की कही गई है।

२०. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति बीस पल्योपम की कही गई है।

२१. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति इक्कीस पल्योपम की कही गई है।

२२. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति बाईस पल्योपम की कही गई है।

२३. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. २३, सु. ७

२४. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चउवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. २४, सु. ९

२५. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. २५, सु. १२

२६. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम.२६, सु. ५

२७. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. २७, सु. ९

२८. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. २८, सु. ८

२९. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगूणतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. २९, सु. १२

३०. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तीसं पलिओवमाइं ठिई-पण्णत्ता। —सम. सम. ३०, सु. ११

३१. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एक्कतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. ३१, सु. ८

३२. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. ३२, सु. ९

३३. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. ३३, सु. ८

२३. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति तेईस पल्योपम की कही गई है।

२४. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति चौबीस पल्योपम की कही गई है।

२५. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति पच्चीस पल्योपम की कही गई है।

२६. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति छब्बीस पल्योपम की कही गई है।

२७. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की कही गई है।

२८. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम की कही गई है।

२९. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति उनतीस पल्योपम की कही गई है।

३०. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति तीस पल्योपम की कही गई है।

३१. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति इकतीस पल्योपम की कही गई है।

३२. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति बत्तीस पल्योपम की कही गई है।

३३. कतिपय असुरकुमार देवों की स्थिति तेतीस पल्योपम की कही गई है।

५६. **असुरकुमारीणं देवीणं ठिई–**

प. असुरकुमारीणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं,
उक्कोसेण अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं[1]।

प. अपज्जत्तियाणं भंते ! असुरकुमारीणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तियाणं भंते ! असुरकुमारीणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।
—पण्ण. प. ४, सु. ३४८

५६. **असुरकुमार देवियों की स्थिति–**

प्र. भन्ते ! असुरकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट साढ़े चार पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त असुरकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त असुरकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम साढ़े चार पल्योपम की।

५७. **असुरिंदचमरबलीणं परिसागय देवदेवीणं ठिई–**

प. चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

५७. **असुरेन्द्र चमर बली की परिषदागत देव-देवियों की स्थिति–**

प्र. भन्ते ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३८४/१ (ख) जीवा. पडि. २, सु. ४१

उ. गोयमा ! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ?
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
बाहिरियाए परिसाए देवाणं दिवड्ढं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

प. बलिस्स णं भंते ! वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं अद्धुट्ठ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
बाहिरियाए परिसाए देवाणं अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

प. चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
मज्झिमियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकमाररण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं दिवड्ढं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
मज्झिमियाए परिसाए देवीणं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
बाहिरियाए परिसाए देवीणं अद्धपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

प. बलिस्स णं भंते ! वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
मज्झिमियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति अढाई पल्योपम की कही गई है।
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है।
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति डेढ़ पल्योपम की कही गई है।

प्र. भन्ते ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति साढ़े तीन पल्योपम की कही गई है।
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है।
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति अढ़ाई पल्योपम की कही गई है।

प्र. भन्ते ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की–
आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की–
आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति डेढ़ पल्योपम की कही गई है।
मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है।
बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति अर्ध पल्योपम की कही गई है।

प्र. भन्ते ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली की–
आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली की–
आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति अढाई पल्योपम की कही गई है।

मज्झिमियाए परिसाए देवीणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

बाहिरियाए परिसाए देवीणं दिवड्ढं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. ११८-११९

मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है।

बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति डेढ पल्योपम की कही गई है।

५८. णागकुमाराणं देवाणं ठिई–

प. णागकुमाराणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं,
उक्कोसेण दो पलिओवमाइं देसूणाइं[1]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! णागकुमाराणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! णागकुमाराणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं
उक्कोसेण दो पलिओवमाइं देसूणाइं अंतोमुहुत्तूणाइं। —पण्ण. प. ४, सु. ३४९

५८. नागकुमार देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! नागकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त नागकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त नागकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम देशोन दो पल्योपम की।

५९. नागकुमारीणं देवीणं ठिई–

प. नागकुमारीणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं,
उक्कोसेण देसूणं पलिओवमाइं[2]।

प. अपज्जत्तियाणं भंते ! नागकुमारीणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तियाणं भंते ! नागकुमारीणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण देसूणं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं। —पण्ण. प. ४, सु. ३५०

५९. नागकुमार देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! नागकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट कुछ कम पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त नागकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त नागकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून कुछ कम पल्योपम की।

६०. नागकुमारिंद धरण भूयाणंदाणं परिसागय देव-देवीणं ठिई–

प. धरणस्स णं भंते ! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! धरणस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो–

६०. नागकुमारेन्द्र धरण भूतानंद की परिषदागत देव-देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की–

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३८४/२
(ख) विया. स. १, सु. ६/३/१
(ग) सम. सम. १०, सु. १५ (ज.)
(घ) सम. सम. २, सु. ११ (उ.)
(ङ) ठाणं अ. २ उ. ४ सु. १२४ (१)

२. (क) अणु. कालदारे, सु. ३८४/२
(ख) जीवा. पडि. २ सु. ४७ (३)

अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं साइरेगं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।
बाहिरियाए परिसाए देवाणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

प. भूयाणंदस्स णं भंते ! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! भूयाणंदस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमार-रण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं देसूणं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं साइरेगं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।
बाहिरियाए परिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

प. धरणस्स णं भंते ! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
मज्झिमियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! धरण्णस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।
मज्झिमियाए परिसाए देवीणं साइरेगं चउभागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।
बाहिरियाए परिसाए देवीणं चउभागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

प. भूयाणंदस्स णं भंते ! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
मज्झिमियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! भूयाणंदस्स णं नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कुछ अधिक अर्ध पल्योपम की कही गई है।
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति अर्ध पल्योपम की कही गई है।
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कुछ कम अर्ध पल्योपम की कही गई है।

प्र. भन्ते ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानंद की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कुछ कम एक पल्योपम की कही गई है।
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कुछ अधिक अर्द्धपल्योपम की कही गई है।
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति आधे पल्योपम की कही गई है।

प्र. भन्ते ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की–
आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की–
आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति कुछ कम अर्ध पल्योपम की कही गई है।
मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति कुछ अधिक चतुर्थ भाग पल्योपम की कही गई है।
बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति चतुर्थ भाग पल्योपम की कही गई है।

प्र. भन्ते ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द की–
आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द की–
आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति अर्ध पल्योपम की कही गई है।

मज्झिमियाए परिसाए देवीणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

बाहिरियाए परिसाए देवीणं साइरेगं चउभागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता। —जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १२०

मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति कुछ कम अर्ध पल्योपम की कही गई है।

बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति कुछ अधिक चतुर्थ भाग पल्योपम की कही गई है।

६१. सुवण्णकुमारदेवाणं ठिई–

प. सुवण्णकुमाराणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं,
उक्कोसेण दो पलिओवमाइं देसूणाइं[1]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! सुवण्णकुमाराणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! सुवण्णकुमाराणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण दो पलिओवमाइं देसूणाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

—पण्ण. प. ४, सु. ३५१

६१. सुवर्णकुमार देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! सुवर्णकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त सुवर्णकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त सुवर्णकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम देशोन दो पल्योपम की।

६२. सुवण्णकुमारीणं देवीणं ठिई–

प. सुवण्णकुमारीणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं,
उक्कोसेण देसूणं पलिओवमाइं।

प. अपज्जत्तियाणं भंते ! सुवण्णकुमारीणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तियाणं भंते ! सुवण्णकुमारीणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण देसूणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणाइं।

—पण्ण. प. ४, सु. ३५२

६२. सुवर्णकुमारी देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! सुवर्णकुमारी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट देशोन पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त सुवर्णकुमारी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त सुवर्णकुमारी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम देशोन पल्योपम की।

६३. सेस भवणवासी देवाणं देवीण य ठिई–

एवं एएणं अभिलावेणं ओहिय-अपज्जत्त-पज्जत्तसुत्तत्तयं देवाण य देवीण य णेयव्वं जाव थणियकुमाराणं जहा नागकुमाराणं[2]।

—पण्ण. प. ४, सु. ३५३

६३. शेष भवनवासी देवों और देवियों की स्थिति–

इस प्रकार इसी अभिलाप से औघिक, अपर्याप्त और पर्याप्तक के तीन-तीन सूत्र भवनवासी देवों और देवियों के विषय में स्तनितकुमारों पर्यन्त नागकुमारों के कथन के समान समझ लेना चाहिए।

६४. असुरिंदवज्जिय अत्थेगइय भवणवासीदेवाणं ठिई–

असुरकुमारिंदवज्जियाणं भोमिज्जाणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. १, सु. ३१

६४. असुरेन्द्र वर्जित कतिपय भवनवासी देवों की स्थिति–

असुरकुमारेन्द्र को छोड़कर कतिपय भौमेय (भवनवासी) देवों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है।

---

१. (क) सम.सम.१० सु.१५ (ज.)
(ख) सम.सम.२ सु.११ (उ.)
(ग) ठाणं.अ २ उ.४ सु.१२४ (१)
(ग) असुरिंदवज्जियाणं भवणवासिणं देवाणं उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। —ठाणं अ. २ उ. ४, सु. १२४/१
(घ) विया.स.१, उ.१, सु.६/४/११
(ङ) सम.सम.२, सु.११

२. (क) अणु.कालदारे सु.३८४/३
(ख) जीवा.पडि.२, सु.४७ (३)

असुरिंद वज्जियाणं भोमिज्जाणं देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेण दसवाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १०, सु. १५

असुरेन्द्र को छोड़कर कतिपय भवनवासी देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है।

६५. सेस भवणवासिंदाणं परिसागय देव-देवीणं ठिई–

अवसेसाणं वेणुदेवादीणं महाघोसपज्जवसाणाणं ठाण–पदवत्तव्वया णिरवयवा भाणियव्वा,

परिसाओ जहा धरण भूयाणंदाणं।

दाहिणिल्लाणं जहा धरणस्स,

उत्तरिल्लाणं जहा भूयाणंदस्स,

परिमाणं पि ठिई वि।

–जीवा. पडि ३ उ. २ सु. १२०

६५. शेष भवनवासी इन्द्रों की परिषदागत देव-देवियों की स्थिति–

शेष वेणुदेव से महाघोष पर्यन्त का समग्र कथन स्थान पद के अनुसार करना चाहिए।

परिषदाओं का वर्णन धरण और भूतानंद के समान है।

दक्षिण दिशा के भवनपति इन्द्रों की परिषदा धरण के समान है।

उत्तर दिशा के भवनपति इन्द्रों की परिषदा भूतानंद के समान है।

परिषदाओं में देव देवियों की संख्या स्थिति आदि पूर्ववत् जानना चाहिए।

६६. वाणमंतर देवाणं ठिई–

प. वाणमंतराणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं[1],
उक्कोसेण पलिओवमं[2]।

प. अपज्जत्तयाणं वाणमंतराणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं वाणमंतराणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणां। –पण्ण. प. ४, सु. ३९३

६६. वाणव्यन्तर देवों की स्थिति–

प्र. भंते ! वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट एक पल्योपम की।

प्र. भंते ! अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! पर्याप्त वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम एक पल्योपम की।

६७. वाणमंतरदेवीणं ठिई–

प. वाणमंतरीणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं,
उक्कोसेण अद्धपलिओवमं[3]।

प. अपज्जत्तियाणं वाणमंतरीणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तियाणं वाणमंतरीणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणां।

–पण्ण. प. ४, सु. ३९४

६७. वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति–

प्र. भंते ! वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अर्द्धपल्योपम की।

प्र. भंते ! अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! पर्याप्त वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध पल्योपम की।

---

१. (क) ठाणं. अ. १०, सु. ७५७/८ (ज.)
(ख) सम. सम. १०, सु. १८ (ज.)

२. (क) अणु. कालदारे सु. ३८९
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. २२०
(ग) ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २९९/३ (वैताढ्यपर्वत पर रहने वाले देवों की स्थिति)
(घ) ठाणं अ. ४, उ. २, सु. ३०० (जंबूद्वीप के द्वाररक्षक देवों की स्थिति)
(ङ) ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. ३०२/१ (पातालकलशों के संरक्षक देवों की स्थिति)
(च) ठाणं, अ. ४, उ. २, सु. ३०२/२-३ (वेलंधर अनुवेलंधर नागराजों के आवासपर्वतों के संरक्षक देवों की स्थिति)
(छ) विया. स. १, उ. १, सु. ६/२२

३. (क) अणु. कालदारे सु. ३८९
(ख) जीवा. पडि. २, सु. ४७ (३)

६८. पिसायकुमारिंदकालस्स परिसागय देव देवीणं ठिई–

प. कालस्स णं भंते ! पिसायकुमारिंदस्स पिसाय कुमाररण्णो
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! कालस्स णं पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता?
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।
बाहिरियाए परिसाए देवाणं साइरेगं चउभाग- पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

प. कालस्स णं भंते ! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो
अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
मज्झिमियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! कालस्स णं पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो
अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं साइरेगं चउभागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।
मज्झिमियाए परिसाए देवीणं चउभागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।
बाहिरियाए परिसाए देवीणं देसूणं चउभाग- पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

एवं उत्तररिलस्स वि णिरंतरं जाव गीयजसस्स।

–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १२१

६९. ओहेण जोइसियाए देवाणं ठिई–

प. जोइसियाणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमट्ठभागो,
उक्कोसेण पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं[1]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! जोइसियाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

६८. पिशाचकुमारेन्द्र काल की परिषदागत देव-देवियों की स्थिति–

प्र. भंते ! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचकुमारराज काल की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचकुमारराज काल की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति आधे पल्योपम की कही गई है।
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कुछ कम आधे पल्योपम की कही गई है।
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कुछ अधिक चतुर्थ भाग पल्योपम की कही गई है।

प्र. भन्ते ! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचकुमारराज काल की–
आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचकुमारराज काल की–
आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति कुछ अधिक चतुर्थ भाग पल्योपम की कही गई है।
मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति चतुर्थ भाग पल्योपम की कही गई है।
बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति कुछ कम चतुर्थ भाग पल्योपम की कही गई है।

इसी प्रकार गीतयश पर्यन्त उत्तर दिशा के सभी व्यंतरेन्द्रों की परिषदाओं के देव-देवियों की स्थिति जाननी चाहिए।

६९. सामान्यतः ज्योतिषी देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की,
उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३९० (इसमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक पल्योपम के आठवें भाग बताई है)
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. २२१ (उ.)
(ग) उव. सु. ७४ (उ.)
(घ) विया. स. १, उ. १, सु. ६/२३
(ङ) सम. सम. १, सु. ३ (उ.)
(च) सूरिय. पा. १८, सु. ९८

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाण भंते ! जोइसियाण देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमट्ठभागो अंतोमुहुत्तूणो,

उक्कोसेण पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं। —पण्ण. प. ४, सु. ३९५

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम एक पल्योपम के आठवें भाग की,

उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की।

७०. ओहेण जोइसिय देवीणं ठिई–

प. जोइसिणीणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमट्ठभागो,
उक्कोसेण अद्धपलिओवमं पण्णासवास सहस्समब्भहियं[1]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! जोइसिणीणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तियाण भंते ! जोइसियाण देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमट्ठभागो अंतमुहुत्तूणो,
उक्कोसेण अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं। —पण्ण. प. ४, सु. ३९६

७०. सामान्यतः ज्योतिषी देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! ज्योतिष्क देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की,
उत्कृष्ट पचास हजार वर्ष अधिक अर्धपल्योपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त ज्योतिष्क देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त ज्योतिष्क देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के आठवें भाग की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पचास हजार वर्ष अधिक अर्धपल्योपम की।

७१. चंदविमाणवासी देव-देवीणं ठिई–

प. चंदविमाणे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं,
उक्कोसेण पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं[2]।

प. चंदविमाणे णं भंते ! अपज्जत्तय देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. चंदविमाणे णं भंते ! पज्जत्तय देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं ठिई अंतोमुहुत्तूणं,
उक्कोसेण पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

प. चंदविमाणे णं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं,
उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्समब्भहियं[3]।

७१. चन्द्रविमानवासी देव-देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! चन्द्रविमान में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के चौथाई भाग की,
उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! चन्द्रविमान में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! चन्द्रविमान में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के चौथाई भाग की।
उत्कृष्ट अन्तर्मुहुर्त कम एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! चन्द्रविमान में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के चतुर्थ भाग की,
उत्कृष्ट पचास हजार वर्ष अधिक अर्धपल्योपम की।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३९०/१
(ख) जीवा. पडि. २, सु. ४७ (३)
(ग) सूरिय. पा. १८, सु. ९८

२. (क) अणु. कालदारे सु. ३९०/२
(ख) जंबू. वक्ष. ७, सु. २०५
(ग) जीवा. पडि. ३, सु. १९७
(घ) सूरिय. पा. १८, सु. ९८

३. (क) अणु. कालदारे सु. ३९०/२
(ख) जंबू. वक्ष. ७, सु. २०५
(ग) जीवा. पडि. २, सु. ४७ (३)
(घ) जीवा. पडि. ३, सु. १९७
(ङ) सूरिय. पा. १८, सु. ९८

प. चंदविमाणे णं भंते ! अपज्जत्तियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. चंदविमाणे णं भंते ! पज्जत्तियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं अंतोमुहूत्तूणं, उक्कोसेण अद्धपलिओवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं। *–पण्ण. प. ४, सु. ३९७-३९८*

प्र. भन्ते ! चन्द्रविमान में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! चन्द्रविमान में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पचास हजार वर्ष अधिक अर्धपल्योपम की।

७२. जोइसिंदचंदस्स परिसागय देव-देवीणं ठिई–

प. चंदस्स णं भंते ! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो–

अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! चंदस्सणं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो–

अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णता।

मज्झिमियाए परिसाए देवाणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

बाहिरियाए परिसाए देवाणं साइरेगं चउभागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

प. चंदस्स णं भंते ! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो–

अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

मज्झिमियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! चंदस्सणं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो–

अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं साइरेगं चउभागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

मज्झिमियाए परिसाए देवीणं चउभागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

बाहिरियाए परिसाए देवीणं देसूणं चउभागपलिओवमं ठिई पण्णत्ता। *–जीवा. पडि. ३, उ. २ सु. १२२*

७२. ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र की परिषदागत देव-देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र की–

आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की गई है?

उ. गौतम ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र की–

आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति आधे पल्योपम की कही गई है।

मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कुछ कम आधे पल्योपम की कही गई है।

बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कुछ अधिक पल्योपम के चतुर्थ भाग की कही गई है।

प्र. भन्ते ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र की–

आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की गई है?

उ. गौतम ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र की–

आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति कुछ अधिक चतुर्थ भाग पल्योपम की कही गई है।

मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति चतुर्थ भाग पल्योपम की कही गई है।

बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति कुछ कम चतुर्थ भाग पल्योपम की कही गई है।

७३. सूरविमाणवासी देव-देवीणं ठिई–

प. सूरविमाणे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं, उक्कोसेण पलिओवमं वाससहस्समब्भहियं[1]।

प. सूरविमाणे णं भंते ! अपज्जत्तयाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

७३. सूर्य विमानवासी देव-देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! सूर्यविमान में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के चतुर्थ भाग की, उत्कृष्ट एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! सूर्यविमान में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३९०/३
(ख) जंबू. वक्ष. ७, सु. २०५
(ग) जीवा. पडि. ३, सु. १९७
(घ) सूरिय. पा. १८ सु. ९८

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. सूरविमाणे णं भंते ! पज्जत्तयाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण पलिओवमं वाससहस्समब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

प. सूरविमाणे णं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं, उक्कोसेण अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिंअब्भहियं[1]।

प. सूरविमाणे णं भंते ! अपज्जत्तियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. सूरविमाणे णं भंते ! पज्जत्तियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।[2]

–पण्ण. प. ४, सु. ३९९-४००

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! सूर्यविमान में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! सूर्यविमान में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के चतुर्थ भाग की, उत्कृष्ट पांच सौ वर्ष अधिक अर्धपल्योपम की।

प्र. भन्ते ! सूर्यविमान में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! सूर्यविमान में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के चौथाई भाग की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पाँच सौ वर्ष अधिक अर्धपल्योपम की।

७४. जोइसिंद सूरस्स परिसागय देव-देवीणं ठिई–

जोइसिंदस्स जोइसरण्णो सूरस्स अब्भिंतराइ परिसाए देवाण देवीण य ठिई जहा चंदस्स भाणियव्वा।

–जीवा. पडि. ३, उ. ३, सु. १२२

७४. ज्योतिष्केन्द्र सूर्य की परिषदागत देव देवियों की स्थिति–

ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिषराज सूर्य की आभ्यंतरादि परिषदा की देव और देवियों की स्थिति चन्द्र की परिषद के देव देवियों की स्थिति के समान जाननी चाहिए।

७५. गहविमाणवासी देव-देवीणं ठिई–

प. गहविमाणे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं, उक्कोसेण पलिओवमं[3]।

प. गहविमाणे णं भंते ! अपज्जत्तयाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. गहविमाणे णं भंते ! पज्जत्तयाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं अंतोमुहूत्तूणं, उक्कोसेण पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

प. गहविमाणे णं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं, उक्कोसेण अद्धपलिओवमं[4]।

७५. ग्रहविमानवासी देव-देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! ग्रहविमान में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के चौथाई भाग की, उत्कृष्ट एक पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! ग्रहविमान में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! ग्रहविमान में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम एक पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! ग्रहविमान में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के चौथाई भाग की, उत्कृष्ट अर्धपल्योपम की।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३९०/३
(ख) जंबू. वक्ष. ७, सु. २०५
(ग) जीवा. पडि. २, सु. ४७ (३)
(घ) जीवा.पडि. ३, सु. १९७
(ङ) सूरिय. पा. १८, सु. ९८

२. (क) अणु. कालदारे सु. ३९०/३
(ख) जीवा. पडि. २, सु. ४७ (३)

३. (क) अणु. कालदारे सु. ३९०/४
(ख) जंबू. वक्ष. ७, सु. २०५
(ग) जीवा. पडि. ३, सु. १९७
(घ) सूरिय. पा. १८, सु. ९८

४. (क) अणु. कालदारे सु. ३९०/४
(ख) जंबू. वक्ष. ७, सु. २०५
(ग) जीवा. पडि. २, सु. ४७ (३)
(घ) जीवा. पडि. ३, सु. १९७
(ङ) सूरिय. पा. १८, सु. ९८

प. गहविमाणे णं भंते ! अपज्जत्तियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. गहविमाणे णं भंते ! पज्जत्तियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

—पण्ण. प. ४, सु. ४०१-४०२

प्र. भन्ते ! ग्रहविमान में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! ग्रहविमान में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपल्योपम की।

७६. णक्खत्तविमाणवासी देव देवीणं ठिई–

प. णक्खत्तविमाणे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं, उक्कोसेण अद्धपलिओवमं[1]।

प. णक्खत्तविमाणे णं भंते ! अपज्जत्तयाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. णक्खत्तविमाणे णं भंते ! पज्जत्तयाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

प. णक्खत्तविमाणे णं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं, उक्कोसेण साइरेगं चउभागपलिओवमं[2]।

प. णक्खत्तविमाणे णं भंते ! अपज्जत्तियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. णक्खत्तविमाणे णं भंते ! पज्जत्तियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण साइरेगं चउभागपलिओवमं अंतोमुहूत्तूणं।

—पण्ण. प. ४, सु. ४०३-४०४

७६. नक्षत्र विमानवासी देव देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! नक्षत्र विमान में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के चतुर्थ भाग की, उत्कृष्ट अर्धपल्योपम की।

प्र. भन्ते ! नक्षत्र विमान में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! नक्षत्र विमान में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम अर्धपल्योपम की।

प्र. भन्ते ! नक्षत्र विमान में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के चतुर्थ भाग की, उत्कृष्ट कुछ अधिक चतुर्भ भाग पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! नक्षत्र विमान में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! नक्षत्र विमान में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम चौथाई भाग पल्योपम की। उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के चौथाई भाग से कुछ अधिक की।

७७. ताराविमाणवासी देव-देवीणं ठिई–

प. ताराविमाणे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेण चउभागपलिओवमं[3]।

७७. ताराविमानवासी देव-देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! ताराविमान में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की, उत्कृष्ट चौथाई भाग पल्योपम की।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३९०/५
(ख) जंबू. वक्ष. ७, सु. २०५
(ग) जीवा. पडि. ३, सु. १९७
(घ) सूरिय. पा. १८, सु. ९८

२. (क) अणु. कालदारे सु. ३९०/५
(ख) जंबू. वक्ष. ७, सु. २०५
(ग) जीवा. पडि. २, सु. ४७ (३)
(घ) जीवा. पडि. ३, सु. १९७
(ङ) सूरिय. पा. १८, सु. ९८

३. (क) अणु. कालदारे सु. ३९०/६
(ख) जंबू. वक्ष. ७, सु. २०५
(ग) जीवा. पडि. ३, सु. १९७
(घ) सूरिय. पा. १८, सु. ९८

प. ताराविमाणे णं भंते ! अपज्जत्तयाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. ताराविमाणे णं भंते ! पज्जत्तयाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अट्ठभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

प. ताराविमाणे णं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेण साइरेगं अट्ठभागपलिओवमं[1]।

प. ताराविमाणे णं भंते ! अपज्जत्तियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. ताराविमाणे णं भंते ! पज्जत्तियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अट्ठभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण साइरेगं अट्ठभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

–पण्ण. प. ४, सु. ४०५-४०६

प्र. भन्ते ! ताराविमान में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! ताराविमान में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के आठवें भाग की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम चौथाई भाग पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! ताराविमान में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की, उत्कृष्ट पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक की।

प्र. भन्ते ! ताराविमान में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! ताराविमान में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के आठवें भाग की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक की।

७८. ओहेण वेमाणिय देवाणं ठिई–

प. वेमाणियाणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं, उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं[2]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! वेमाणियाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! वेमाणियाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,

–पण्ण. प. ४, सु. ४०७

७८. सामान्यतः वैमानिक देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! वैमानिक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त वैमानिक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त वैमानिक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम एक पल्योपम की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम की।

७९. ओहेण वेमाणिय देवीणं ठिई–

प. वेमाणिणीणं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं, उक्कोसेण पणपण्णं पलिओवमाइं[3]।

प. अपज्जत्तियाणं भंते ! वेमाणिणीणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

७९. सामान्यतः वैमानिक देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! वैमानिक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की, उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त वैमानिक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३९०/६
(ख) अणु. [illegible] सु. २०५
(ग) जीवा. पडि. २, सु. ४५ (३)
(घ) जीवा. पडि. ३ सु. १९७
(ङ) सूरिय. पा. १८, सु. ९८

२. (क) अणु. कालदारे सु. ३९१/१
(ख) विया. स. १, उ. १, सु. ६/२४

३. (क) अणु. कालदारे सु. ३९१/१
(ख) जीवा. पडि. २, सु. ४७ (३)

प. पज्जत्तियाणं भंते ! वेमाणिणीणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं,
उक्कोसेण पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४, सु. ४०८

प्र. भन्ते ! पर्याप्त वैमानिक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम एक पल्योपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पचपन पल्योपम की।

८०. सोहम्मे कप्पे देव-देवीणं ठिई–

प. सोहम्मे कप्पे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं,
उक्कोसेण दो सागरोवमाइं[1]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! सोहम्मे कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! सोहम्मे कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं,
उक्कोसेण दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,

प. सोहम्मे कप्पे णं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं,
उक्कोसेण पण्णासं पलिओवमाइं।

प. अपज्जत्तियाणं भंते ! सोहम्मे कप्पे देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तियाणं भंते ! सोहम्मे कप्पे देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं,
उक्कोसेण पण्णासं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,

–पण्ण. प. ४, सु. ४०९-४१०

८०. सौधर्म कल्प में देव-देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! सौधर्म कल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की,
उत्कृष्ट दो सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! सौधर्म कल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! सौधर्म कल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम एक पल्योपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम दो सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! सौधर्म कल्प में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की,
उत्कृष्ट पचास पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! सौधर्म कल्प में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! सौधर्म कल्प में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम एक पल्योपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पचास पल्योपम की।

८१. सोहम्मे कप्पे अत्थेगइयदेवाणं ठिई–

सोहम्मे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १, सु. ४०

सोहम्मे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २, सु. १४

८१. सौधर्म कल्प में कतिपय देवों की स्थिति–

सौधर्म कल्प के कतिपय देवों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है।

सौधर्म कल्प के कतिपय देवों की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है।

८२. सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं ठिई–

प. सोहम्मे कप्पे णं भंते ! परिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं,
उक्कोसेण सत्त पलिओवमाइं[2]।

८२. सौधर्म कल्प में परिगृहीता देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! सौधर्म कल्प में परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की,
उत्कृष्ट सात पल्योपम की।

---

१. (क) अणु कालदारे सु. ३९१/२
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. २२२
(ग) ठाणं, अ. २, उ. ४, सु. १२४/२ (उ.)
(घ) सम. सम. १, सु. ३९ (ज.)
(ङ) सम. सम. २, सु. १६ (ज.)

२. (क) अणु. कालदारे सु. ३९१/२
(ख) जीवा. पडि. २, सु. ७९ (३) (यह परिगृहीता देवी की स्थिति है।)
(ग) ठाणं. अ. ७, सु. ५६५/३

प. अपज्जत्तियाणं भंते ! सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तियाणं भंते ! सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं,
उक्कोसेण सत्त पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,

—पण्ण. प. ४, सु. ४११

प्र. भन्ते ! सौधर्म कल्प में अपर्याप्त परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! सौधर्म कल्प में पर्याप्त परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम एक पल्योपम की।
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम सात पल्योपम की।

८३. सोहम्मिंद सक्कस्स अग्गमहिसीणं ठिई—

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अग्गमहिसीणं देवीणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। —ठाणं. अ. ७, सु. ५७५/२

८३. सौधर्मेन्द्र शक्र की अग्रमहिषियों की स्थिति—

देवेन्द्र देवराज शक्र की अग्रमहिषी देवियों की स्थिति सात पल्योपम की कही गई है।

८४. सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाणं देवीणं ठिई—

प. सोहम्मे कप्पे णं भंते ! अपरिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं,
उक्कोसेण पण्णासं पलिओवमाइं[1]।

प. अपज्जत्तियाणं भंते ! अपरिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तियाणं भंते ! अपरिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं,
उक्कोसेण पण्णासं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,

—पण्ण. प. ४, सु. ४१२

८४. सौधर्म कल्प में अपरिगृहीता देवियों की स्थिति—

प्र. भन्ते ! सौधर्म कल्प में अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की,
उत्कृष्ट पचास पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! सौधर्म कल्प में अपर्याप्त अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! सौधर्म कल्प में पर्याप्त अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम एक पल्योपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पचास पल्योपम की।

८५. सोहम्मिंद सक्कस्स परिसागय देव-देवीणं ठिई—

प. सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो—
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो—
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता[2]।
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता[3]।
बाहिरियाए परिसाए देवाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता[4]।

प. सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो—
अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

८५. सौधर्मेन्द्र शक्र की परिषदागत देव-देवियों की स्थिति—

प्र. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज शक्र की—
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र की—
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति पांच पल्योपम कही गई है।
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है।
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है।

प्र. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज शक्र की—
आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

---

१. अणु. कालदारे सु. ३९१/२
२. ठाणं.अ.५,उ.१,सु.४०५
३. ठाण.अ.४,उ.१,सु.२६०/१
४. ठाण.अ.३,उ.४,सु.२०२/१

मज्झिमियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो–

अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता[1]।

मज्झिमियाए परिसाए देवीणं दुण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

बाहिरियाए परिसाए देवीणं एगं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १९९

मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र की–

आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है।

मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है।

बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है।

८६. ईसाणे कप्पे देव-देवीणं ठिई–

प. ईसाणे कप्पे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण साइरेगं पलिओवमं,
उक्कोसेण साइरेगाइं दो सागरोवमाइं[2]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! ईसाणे कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! ईसाणे कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण साइरेगं पलिओवमं,
उक्कोसेण साइरेगाइं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

प. ईसाणे कप्पे णं भंते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण साइरेगं पलिओवमं,
उक्कोसेण पणपण्णं पलिओवमाइं।

प. अपज्जत्तियाणं भंते ! ईसाणे कप्पे देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तियाणं भंते ! ईसाणे कप्पे देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण साइरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं,

उक्कोसेण पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।
–पण्ण. प. ४, सु. ४१३-४१४

८६. ईशान कल्प के देव-देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! ईशानकल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक की,
उत्कृष्ट दो सागरोपम से कुछ अधिक की।

प्र. भन्ते ! ईशानकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! ईशानकल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम कुछ अधिक एक पल्योपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम दो सागरोपम से कुछ अधिक की।

प्र. भन्ते ! ईशानकल्प में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक की,
उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! ईशानकल्प में अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूत की।

प्र. भन्ते ! ईशानकल्प में पर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम एक पल्योपग से कुछ अधिक की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पचपन पल्योपम की।

८७. ईसाणे कप्पे अत्थेगइय देवाणं ठिई–

ईसाणे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १, सु. ४२

ईसाणे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २, सु. १५

८७. ईशान कल्प में कतिपय देवों की स्थिति–

ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है।

ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति दो पल्योपम की कही गई है।

---

१. ठाण. अ. ३, उ. ४, सु. २०२/२
२. (क) विया. स. ३, उ. १, सु. ५३
(ख) अणु. कालदारे सु. ३९१/३
(ग) उत्त. अ. ३६, गा. २२३
(घ) ठाणं अ. २, उ. ४, सु. १२४/३
(ङ) सम. सम. १, सु. ४१ (ज.)
(च) सम. सम. २, सु. १५ (उ.)

८८. ईसाणे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं ठिई–

प. ईसाणे कप्पे णं भंते ! परिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण साइरेगं पलिओवमं,
उक्कोसेण णव पलिओवमाइं[1]।

प. अपज्जत्तियाणं भंते ! ईसाणे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तियाणं भंते ! ईसाणे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण साइरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं,
उक्कोसेणं णव पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

८८. ईशान कल्प में परिगृहीता देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! ईशानकल्प में परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक की,
उत्कृष्ट नौ पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! ईशानकल्प में अपर्याप्त परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! ईशानकल्प में पर्याप्त परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम एक पल्योपम से कुछ अधिक की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम नौ पल्योपम की।

८९. ईसाणिंदस्स अग्गमहिसीणं ठिई–

ईसाणस्स णं देविंदस्स (देवरण्णो) अग्गमहिसीणं णव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *ठाणं अ. ९, सु. ६८३/१*

८९. ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों की स्थिति–

देवेन्द्र (देवराज) ईशान की अग्रमहिषियों की स्थिति नौ पल्योपम की कही गई है।

९०. ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं देवीणं ठिई–

प. ईसाणे कप्पे णं भंते ! अपरिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण साइरेगं पलिओवमं,
उक्कोसेण पणपण्णं पलिओवमाइं[2]।

प. अपज्जत्तियाणं भंते ! ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तियाणं भंते ! ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण साइरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं,
उक्कोसेण पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण प. ४, सु. ४१६

९०. ईशानकल्प में अपरिगृहीता देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! ईशानकल्प में अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक की,
उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! ईशानकल्प में अपर्याप्त अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! ईशानकल्प में पर्याप्त अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम साधिक पल्योपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पचपन पल्योपम की।

९१. इसाणिंदस्स परिसागय देव-देवीणं ठिई–

प. ईसाणस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो–

अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो–

अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।[3]

९१. ईशानेन्द्र की परिषदागत देव-देवियों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज ईशान की–

आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! देवेन्द्र देवराज ईशान की–

आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति सात पल्योपम कही गई है ।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३९१/३
(ख) जीवा. पडि. २, सु. ४७ (३) यह परिगृहीता देवी की स्थिति है।
(ग) ठाणं. अ. ९, सु. ६८३/२

२. अणु. कालदारे सु. ३९१/३

३. ठाणं अ. ७ सु. ३७५

मज्झिमियाए परिसाए देवाणं छह पलिओवमाइं ठिई पण्णत्त।[1]

बाहिरियाए परिसाए देवाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्त।[2] *–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १९९(अ)*

प. ईसाणस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो–

अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

मज्झिमियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो–

अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

मज्झिमियाए परिसाए देवीणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।[3]

बाहिरियाए परिसाए देवीणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।[4] *–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १९९(आ)*

मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति छह पल्योपम की कही गई है।

बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति पांच पल्योपम की कही गई है।

प्र. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज ईशान की–

आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

मध्यम परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

बाह्य परिषदा की देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! देवेन्द्र देवराज ईशान की–

आभ्यन्तर परिषदा की देवियों की स्थिति पांच पल्योपम की कही गई है।

मध्यम परिषदा के देवियों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है।

बाह्य परिषदा के देवियों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है।

९२. सोहम्मीसाण कप्पेसु अत्थेगइय देवाणं ठिई–

१. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ३, सु. १९*

२. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ४, सु. १३*

३. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ५, सु. १७*

४. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं छ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ६, सु. १२*

५. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ७, सु. १६*

६. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ८, सु. १३*

७. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं णव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ९, सु. १५*

८. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. १०, सु. १९*

९. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ११, सु. ११*

१०. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं बारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *- सम. सम. १२, सु. १५*

११. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तेरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. १३, सु. १२*

९२. सौधर्म-ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति–

१. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है।

२. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है।

३. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति पांच पल्योपम की कही गई है।

४. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति छह पल्योपम की कही गई है।

५. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति सात पल्योपम की कही गई है।

६. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति आठ पल्योपम की कही गई है।

७. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति नौ पल्योपम की कही गई है।

८. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति दस पल्योपम की कही गई है।

९. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की कही गई है।

१०. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति बारह पल्योपम की कही गई है।

११. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति तेरह पल्योपम की कही गई है।

---

१. ठाणं अ. ६ सु. ५०६
२. ठाणं अ. ५ उ. १, सु. ४०५(२)
३. ठाणं अ. ४ उ. १ सु. २६०(२)
४. ठाणं अ. ३ उ. ४ सु. २०२(३)

१२. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १४, सु. १२

१३. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं पण्णरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १५, सु. ११

१४. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सोलस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १६, सु. ११

१५. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्तरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १७, सु. १५

१६. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १८, सु. १२

१७. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एगूणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १९, सु. ९

१८. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं बीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २०, सु. ११

१९. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २१, सु. ८

२०. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं बावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २२, सु. ११

२१. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २३, सु. ८

२२. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चउवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २४, सु. १०

२३. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २५, सु. १३

२४. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २६, सु. ६

२५. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २७, सु. १०

२६. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २८, सु. ९

२७. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एगूणतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. २९, सु. १३

२८. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ३०, सु. ११

२९. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ३१, सु. ९

३०. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ३२, सु. १०

३१. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ३३, सु. ९

९३. सणंकुमार कप्पे देवाणं ठिई–

प. सणंकुमारे कप्पे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दो सागरोवमाइं,

१२. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति चौदह पल्योपम की कही गई है।

१३. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की कही गई है।

१४. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति सोलह पल्योपम की कही गई है।

१५. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति सतरह पल्योपम की कही गई है।

१६. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति अठारह पल्योपम की कही गई है।

१७. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति उन्नीस पल्योपम की कही गई है।

१८. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति बीस पल्योपम की कही गई है।

१९. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति इक्कीस पल्योपम की कही गई है।

२०. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति बाईस पल्योपम की कही गई है।

२१. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति तेईस पल्योपम की कही गई है।

२२. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति चौबीस पल्योपम की कही गई है।

२३. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति पच्चीस पल्योपम की कही गई है।

२४. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति छब्बीस पल्योपम की कही गई है।

२५. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की कही गई है।

२६. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति अट्ठाईस पल्योपम की कही गई है।

२७. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति उनतीस पल्योपम की कही गई है।

२८. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति तीस पल्योपम की कही गई है।

२९. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति इकत्तीस पल्योपम की कही गई है।

३०. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति बत्तीस पल्योपम की कही गई है।

३१. सौधर्म और ईशानकल्प के कतिपय देवों की स्थिति तेतीस पल्योपम की कही गई है।

९३. सनत्कुमार कल्प में देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! सनत्कुमारकल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य दो सागरोपम की,

उक्कोसेण सत्त सागरोवामाइं[1]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! सणंकुमारे कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! सणंकुमारे कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४, सु. ४१७

उत्कृष्ट सात सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! सनत्कुमारकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! सनत्कुमारकल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दो सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम सात सागरोपम की।

९४. संणंकुमारिंदस्स परिसागय देवाणं ठिई–

प. सणंकुमारस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! सणंकुमारस्स णं देविंदस्स देवरण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
बाहिरियाए परिसाए देवाणं अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १९९ (ई)

९४. सनत्कुमारेन्द्र के परिषदागत देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! सनत्कुमार देवेन्द्र देवराज की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! सनत्कुमार देवेन्द्र देवराज की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति साढ़े चार सागरोपम और पांच पल्योपम की कही गई है।
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति साढ़े चार सागरोपम और चार पल्योपम की कही गई है।
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति साढ़े चार सागरोपम और तीन पल्योपम की कही गई है।

९५. माहिंदकप्पे देवाणं ठिई–

प. माहिंदे कप्पे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण साइरेगाइं दो सागरोवमाइं,
उक्कोसेणं सत्त साइरेगाइं सागरोवामाइं[2]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! माहिंदे कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! माहिंदे कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण साइरेगाइं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण साइरेगाइं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४, सु. ४१८

९५. माहेन्द्र कल्प में देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! माहेन्द्रकल्प के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य दो सागरोपम से कुछ अधिक की,
उत्कृष्ट सात सागरोपम से कुछ अधिक की।

प्र. भन्ते ! माहेन्द्रकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! माहेन्द्रकल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दो सागरोपम से कुछ अधिक की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम सात सागरोपम से कुछ अधिक की।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३९१/४
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. २२४
(ग) ठाणं अ. २, उ. ४, सु. १२४/४ (ज.)
(घ) सम. सम. २, सु. १८, (ज.)
(ङ) ठाणं अ. ७, सु. ५७५/१ (उ.)
(च) सम. सम. ७, सु. १७ (उ.)
(छ) विया. स. ३, उ. १, सु. ६३

२. (क) अणु. कालदारे सु. ३९१/५
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. २२५
(ग) ठाणं अ. २, उ. ४, सु. १२४/५ (ज.)
(घ) ठाणं. अ. ७, सु. ५७५/१ (उ.)
(ङ) सम. सम. २, सु. १९, (ज.)
(च) सम. सम. ७, सु. १८ (उ.)

९६. माहिंदस्स परिसागय देवाणं ठिई–

प. माहिंदस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठई पण्णत्ता ?
बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! माहिंदस्स णं देविंदस्स देवरण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं सत्त य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं छच्च पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।
बाहिरियाए परिसाए देवाणं अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।
–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १९९

९६. माहेन्द्र के परिषदागत देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति सात पल्योपम सहित साढ़े चार सागरोपम की कही गई है ।
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति छह पल्योपम सहित साढ़े चार सागरोपम की कही गई है।
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति पांच पल्योपम सहित साढ़े चार सागरोपम की कही गई है।

९७. सणंकुमारमाहिंद कप्पेसु अत्थेगइय देवाणं ठिई–

सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ३, सु. २०*

सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम.सम. ४, सु. १४*

सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं पंच सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ५, सु. १८*

सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं छ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ६, सु. १३*

९७. सनत्कुमार माहेन्द्र कल्पों में कतिपय देवों की स्थिति–

सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के कतिपय देवों की स्थिति तीन सागरोपम की कही गई है।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के कतिपय देवों की स्थिति चार सागरोपम की कही गई है।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के कतिपय देवों की स्थिति पांच सागरोपम की कही गई है।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के कतिपय देवों की स्थिति छह सागरोपम की कही गई है।

९८. वंभलोयकप्पे देवाणं ठिई–

प. बंभलोए कप्पे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण सत्त सागरोवमाइं,
उक्कोसेण दस सागरोवमाइं[1]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! बंभलोए कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! बंभलोए कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।
उक्कोसेण दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।
–पण्ण. प. ४, सु. ४१९

९८. ब्रह्मलोक कल्प में देवों की स्थिति–

प्र. भंते ! ब्रह्मलोककल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य सात सागरोपम की,
उत्कृष्ट दस सागरोपम की।

प्र. भंते ! ब्रह्मलोक कल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! ब्रह्मलोक कल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम सात सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम दस सागरोपम की।

९९. वंभलोयकप्पे अत्थेगइय देवाणं ठिई–

वंभलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ८, सु. १४*

वंभलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं नव सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ९, सु. १६*

९९. ब्रह्मलोक कल्प में कतिपय देवों की स्थिति–

ब्रह्मलोककल्प के कतिपय देवों की स्थिति आठ सागरोपम की कही गई है।

ब्रह्मलोककल्प के कतिपय देवों की स्थिति नौ सागरोपम की कही गई है।

---

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३९१/६ (ग) ठाणं. अ. ७, सु. ५७७/३ (ज.) (ङ) सम. सम. ७, सु. १९ (ज.)
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. २२६ (घ) ठाणं, अ. १०, सु. ७५७/१८ (उ.) (च) सम. सम. १०, सु. २० (उ.)

१००. बंभदेविंदस्स परिसागय देवाणं ठिई–

प. बंभस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो–

अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! बंभस्स णं देविंदस्स देवरण्णो–

अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं अद्धणवमाइं सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

मज्झिमियाए परिसाए देवाणं अद्धणवमाइं सागरोवमाइं चत्तारि य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

बाहिरियाए परिसाए देवाणं अद्धणवमाइं सागरोवमाइं तिण्णि य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १९९ (ई)

१०१. लंतयकप्पे देवाणं ठिई–

प. लंतए कप्पे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस सागरोवमाइं,
उक्कोसेण चउद्दस सागरोवमाइं[1]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! लंतए कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! लंतए कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण चोद्दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४, सु. ४२०

१०२. लंतएकप्पे अत्थेगइया देवाणं ठिई–

लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. ११, सु. १२*

लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं बारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. १२, सु. १६*

लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं तेरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. १३, सु. १३*

१०३. लंतयदेविंदस्स परिसागय देवाणं ठिई–

प. लंतगस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो–

अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

१००. ब्रह्म देवेन्द्र की परिषदागत देवों की स्थिति–

प्र. भंते ! देवेन्द्र देवराज ब्रह्म की–

आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! देवेन्द्र देवराज ब्रह्म की–

आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति पांच पल्योपम सहित साढ़े आठ सागरोपम की कही गई है।

मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति चार पल्योपम सहित साढ़े आठ सागरोपम की कही गई है।

बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति तीन पल्योपम सहित साढ़े आठ सागरोपम की कही गई है।

१०१. लान्तक कल्प में देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! लान्तककल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य दस सागरोपम की,
उत्कृष्ट चौदह सागरोपम की।

प्र. भन्ते ! लान्तककल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भन्ते ! लान्तककल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम दस सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम चौदह सागरोपम की।

१०२. लान्तक कल्प में कतिपय देवों की स्थिति–

लान्तक कल्प के कतिपय देवों की स्थिति ग्यारह सागरोपम की कही गई है।

लान्तक कल्प के कतिपय देवों की स्थिति बारह सागरोपम की कही गई है।

लान्तक कल्प के कतिपय देवों की स्थिति तेरह सागरोपम की कही गई है।

१०३. लान्तक देवेन्द्र के परिषदागत देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! देवेन्द्र देवराज लान्तक की–

आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है।

---

१. (क) ठाणं, अ. १०, सु. ७५७/१८ (ज)
(ख) सम. सम. १०, सु. २१ (ज)
(ग) अणु. कालदारे सु. ३९१/७
(घ) उत्त. अ. ३६, गा. २२९
(ङ) सम. सम. १४, सु. १३ (ज.)

सागरोवमाइं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

मज्झिमियाए परिसाए देवाणं अद्धसोलस सागरोवमाइं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

बाहिरियाए परिसाए देवाणं अद्धसोलस सागरोवमाइं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १९९ (ई)

साढ़े पन्द्रह सागरोपम की कही गई है।

मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति चार पल्योपम सहित साढ़े पन्द्रह सागरोपम की कही गई है।

बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति तीन पल्योपम सहित साढ़े पन्द्रह सागरोपम की कही गई है।

१०७. सहस्सारकप्पे देवाणं ठिई–

प. सहस्सारे कप्पे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण सत्तरस सागरोवमाइं,
उक्कोसेण अट्ठारस सागरोवमाइं[1]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! सहस्सारे कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! सहस्सारे कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण अट्ठारस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४, सु. ४२२

१०७. सहस्रार कल्प में देवों की स्थिति–

प्र. भंते ! सहस्रारकल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य सतरह सागरोपम की,
उत्कृष्ट अठारह सागरोपम की।

प्र. भंते ! सहस्रारकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! सहस्रारकल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम सतरह सागरोपम की,

उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम अठारह सागरोपम की।

१०८. सहस्सार देविंदस्स परिसागय देवाणं ठिई–

प. सहस्सारे णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?
बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! सहस्सारे णं देविंदस्स देवरण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं अद्धट्ठारस सागरोवमाइं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं अद्धट्ठारस सागरोवमाइं छप्पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
बाहिरियाए परिसाए देवाणं अद्धट्ठारस सागरोवमाइं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १९९ (ई)

१०८. सहस्रार देवेन्द्र के परिषदागत देवों की स्थिति–

प्र. भंते ! देवेन्द्र देवराज सहस्रार की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! देवेन्द्र देवराज सहस्रार की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति सात पल्योपम सहित साढ़े सतरह सागरोपम की कही गई है।
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति छह पल्योपम सहित साढ़े सतरह सागरोपम की कही गई है।
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति पांच पल्योपम सहित साढ़े सतरह सागरोपम की कही गई है।

१०९. आणयकप्पे देवाणं ठिई–

प. आणए कप्पे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अट्ठारस सागरोवमाइं,
उक्कोसेण एगूणवीसं सागरोवमाइं[2]।

१०९. आनत कल्प में देवों की स्थिति–

प्र. भंते ! आनतकल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अठारह सागरोपम की,
उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम की।

---

१. (क) अनु. कालदारे सु. ३९१/५ (ख) उत्त. अ. ३६, गा. २२९ (ग) उव. पय. २, सु. १५५ (घ) सम. सम. १७, सु. १५ (उ.) (ङ) सम. सम. १८, सु. १३ (उ.)

२. (क) अनु. कालदारे सु. ३९१/५ (ख) उत्त. अ. ३६, गा. २३० (ग) सम. सम. १८, सु. १४, (उ.) (घ) सम. सम. १९, सु. १०, (उ.)

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! आणए कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! आणए कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! जहण्णेण अट्ठारस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण एगूणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४, सु. ४२३

प्र. भंते ! आनतकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! जघन्य की अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।
प्र. भंते ! आनतकल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम अठारह सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम उन्नीस सागरोपम की।

११०. पाणए कप्पे देवाणं ठिई–

प. पाणए कप्पे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! जहण्णेण एगूणवीसं सागरोवमाइं,
उक्कोसेण वीसं सागरोवमाइं[१]।
प. अपज्जत्तयाणं भंते ! पाणए कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! पाणए कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! जहण्णेण एगूणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४, सु. ४२४

११०. प्राणत कल्प में देवों की स्थिति–

प्र. भंते ! प्राणतकल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! जघन्य उन्नीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट बीस सागरोपम की।
प्र. भंते ! प्राणतकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।
प्र. भंते ! प्राणतकल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम उन्नीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बीस सागरोपम की।

१११. आणय-पाणय देविंदस्स परिसागय देवाणं ठिई–

प. आणय-पाणयस्सवि णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! आणय-पाणयस्स णं देविंदस्स देवरण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं एगूणवीसं सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं एगूणवीसं सागरोवमाइं चत्तारि य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
बाहिरियाए परिसाए देवाणं एगूणवीसं सागरोवमाइं तिण्णि य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १९९ (ई)

१११. आनत-प्राणत देवेन्द्र की परिषदा के देवों की स्थिति–

प्र. भंते ! आनत-प्राणत देवेन्द्र देवराज की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
उ. गौतम ! देवेन्द्र देवराज आणत-प्राणत की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति पांच पल्योपम सहित उन्नीस सागरोपम की कही गई है।
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति चार पल्योपम सहित उन्नीस सागरोपम की कही गई है।
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति तीन पल्योपम सहित उन्नीस सागरोपम की कही गई है।

११२. आरणे कप्पे देवाणं ठिई–

प. आरणे कप्पे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

११२. आरण कल्प में देवों की स्थिति–

प्र. भंते ! आरणकल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

---

१. (क) अणु. कालदारं सु. ३९१/७
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. २३०
(ग) सम. सम. १९ सु. १०, (ज.)
(घ) सम. सम. २०, सु. १२ (उ.)

उ. गोयमा ! जहण्णेण वीसं सागरोवमाइं,
उक्कोसेण एक्कवीसं सागरोवमाइं।[1]

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! आरणे कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! आरणे कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण एक्कवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४, सु. ४२५

११३. अच्चुय कप्पे देवाणं ठिई–

प. अच्चुए कप्पे णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण एक्कवीसं सागरोवमाइं,
उक्कोसेण बावीसं सागरोवमाइं[2]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! अच्चुए कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! अच्चुए कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण एक्कवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

–पण्ण. प. ४ सु. ४२६

११४. आरण-अच्चुय देविंदस्स परिसागय देवाणं ठिई–

प. आरण अच्चुयस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?
बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! आरण अच्चुयस्स णं देविंदस्स देवरण्णो–
अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं एक्कवीसं सागरोवमाइं सत्त य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
मज्झिमियाए परिसाए देवाणं एक्कवीसं सागरोवमाइं छप्पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
बाहिरियाए परिसाए देवाणं एक्कवीसं सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १९९ (उ)

उ. गौतम ! जघन्य बीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम की।

प्र. भंते ! आरणकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! आरणकल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम बीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम इक्कीस सागरोपम की।

११३. अच्युत कल्प में देवों की स्थिति–

प्र. भंते ! अच्युतकल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य इक्कीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की।

प्र. भंते ! अच्युतकल्प में अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! अच्युतकल्प में पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम इक्कीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम बाईस सागरोपम की।

११४. आरण-अच्युत देवेन्द्र के परिषदागत देवों की स्थिति–

प्र. भंते ! आरण अच्युत देवेन्द्र देवराज की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! आरण-अच्युत देवेन्द्र देवराज की–
आभ्यन्तर परिषदा के देवों की स्थिति सात पल्योपम सहित इक्कीस सागरोपम की कही गई है।
मध्यम परिषदा के देवों की स्थिति छह पल्योपम सहित इक्कीस सागरोपम की कही गई है।
बाह्य परिषदा के देवों की स्थिति पांच पल्योपम सहित इक्कीस सागरोपम की कही गई है।

१. (क) अणु. कालदारे सु. ३९१/७
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. २३२
(ग) सम. सम. २० सु. १३, (उ.)
(घ) सम. सम. २१, सु. ९ (उ.)

२. (क) अणु. कालदारे सु. ३९१/८
(ख) उत्त. अ. ३६, गा. २३३
(ग) उव. प. २, सु. १५८, १५९, १६२
(घ) सम. सम. २१, सु. १० (उ.)
(ङ) सम. सम. २२, सु. १० (उ.)

११५. गेवेज्जग देवाणं ठिई–

प. १. हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण बावीसं सागरोवमाइं,
उक्कोसेण तेवीसं सागरोवमाइं[1]।

प. हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जग अपज्जत्तयदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जग पज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण तेवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

प. २. हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जगदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण तेवीसं सागरोवमाइं,
उक्कोसेण चउवीसं सागरोवमाइं[2]।

प. हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जग अपज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

प. हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जग पज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण तेवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण चउवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

प. ३. हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउवीसं सागरोवमाइं,
उक्कोसेण पणवीसं सागरोवमाइं[3]।

प. हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जग अपज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

प. हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जग पज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण पणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

प. ४. मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जग देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

११५. ग्रैवेयक देवों की स्थिति–

प्र. १. भंते ! अधस्तन-अधस्तन (सबसे निचले ग्रैवेयकत्रिक में सबसे नीचे वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य बाईस सागरोपम की,
उत्कृष्ट तेईस सागरोपम की।

प्र. भंते ! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक के अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवयक के पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम बाईस सागरोपम की।
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तेईस सागरोपम की।

प्र. २. भंते ! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य तेईस सागरोपम की,
उत्कृष्ट चौवीस सागरोपम की।

प्र. भंते ! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! अधस्तन-मध्यम ग्रैवयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम तेईस सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम चौबीस सागरोपम की।

प्र. ३. भंते ! अधस्तन उपरितन (सबसे नीचे के त्रिक में ऊपर वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य चौबीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट पच्चीस सागरोपम की।

प्र. भंते ! अधस्तन उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! अधस्तन उपरितन ग्रैवयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम चौबीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम पच्चीस सागरोपम की।

प्र. ४. भंते ! मध्यम-अधस्तन (वीच के त्रिक में सबसे निचले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

---

१. (क) उत्त. अ. ३६, गा. २३४
(ख) अणु. सु. ३९१ (८)
(ग) सम. सम. २२ सु. १० (ज.)
(घ) सम. सम. २३ सु. १० (उ.)

२. (क) उत्त. अ. ३६, गा. २३५
(ख) अणु. सु. ३९१ (८)
(ग) सम. सम. २३, सु. ९ (ज.)
(घ) सम. सम. २४, सु. १२ (उ.)

३. (क) उत्त. अ. ३६, गा. २३६
(ख) अणु. सु. ३९१ (८)
(ग) सम. सम. २४, सु. ११ (ज.)
(घ) सम. सम. २५, सु. १५ (उ.)

उ. गोयमा ! जहण्णेण पणवीसं सागरोवमाइं,
उक्कोसेण छव्वीसं सागरोवमाइं[1]।

प. मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जग अपज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जग पज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण छव्वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

प. ५. मज्झिममज्झिमगेवेज्जगदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण छव्वीसं सागरोवमाइं,
उक्कोसेण सत्तावीसं सागरोवमाइं[2]।

प. मज्झिममज्झिमगेवेज्जग अपज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. मज्झिममज्झिमगेवेज्जग पज्जत्तयदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण छव्वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण सत्तावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

प. ६. मज्झिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण सत्तावीसं सागरोवमाइं,
उक्कोसेण अट्ठावीसं सागरोवमाइं[3]।

प. मज्झिमउवरिमगेवेज्जग अपज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. मज्झिमउवरिमगेवेज्जग पज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण सत्तावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।
उक्कोसेण अट्ठावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

प. ७. उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अट्ठावीसं सागरोवमाइं,

उ. गौतम ! जघन्य पच्चीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट छब्बीस सागरोपम की।

प्र. भंते ! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम पच्चीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम छब्बीस सागरोपम की।

प्र. ५. भंते ! मध्यम-मध्यम (बीच के त्रिक के विचले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य छब्बीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट सत्ताईस सागरोपम की।

प्र. भंते ! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम छब्बीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम सत्ताईस सागरोपम की।

प्र. ६. भंते ! मध्यम-उपरितन (बीच के त्रिक में सबसे ऊपर वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य सत्ताईस सागरोपम की,
उत्कृष्ट अट्ठाईस सागरोपम की।

प्र. भंते ! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम सत्ताईस सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम अट्ठाईस सागरोपम की।

प्र. ७. भंते ! उपरितन-अधस्तन (ऊपर के त्रिक के निचले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अट्ठाईस सागरोपम की,

---

1. (क) उत्त.अ.३६,गा.२३९
(ख) अणु.सु.३९१(८)
(ग) सम.सम.२५,सु.१४(उ.)
(घ) सम.सम.२६,सु.८(उ.)

2. (क) उत्त.अ.३६,गा.२३८
(ख) अणु.सु.३९१(८)
(ग) सम.सम.२६,सु.[illegible](उ.)
(घ) सम.सम.[illegible](उ.)

3. (क) उत्त.अ.३६,गा.[illegible]
(ख) अणु.सु.३९१(८)
(ग) सम.सम.[illegible]
(घ) सम.सम.[illegible]

उक्कोसेण एगूणतीसं सागरोवमाइं[1]।

प. उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जग अपज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जग पज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अट्ठावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।
उक्कोसेण एगूणतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

प. ८. उवरिममज्झिमगेवेज्जग देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण एगूणतीसं सागरोवमाइं,
उक्कोसेण तीसं सागरोवमाइं[2]।

प. उवरिममज्झिमगेवेज्जग अपज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. उवरिममज्झिमगेवेज्जग पज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण एगूणतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।
उक्कोसेण तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

प. ९. उवरिमउवरिमगेवेज्जगदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण तीसं सागरोवमाइं,
उक्कोसेण एक्कतीसं सागरोवमाइं[3]।

प. उवरिमउवरिमगेवेज्जग अपज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. उवरिमउवरिमगेवेज्जग पज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।
उक्कोसेण एक्कतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

—पण्ण. प. ४, सु. ४२७-४३५

११६. अणुत्तर देवाणं ठिई–

उत्कृष्ट उन्तीस सागरोपम की।

प्र. भंते ! उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम अट्ठाईस सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम उन्तीस सागरोपम की।

प्र. ८. भंते ! उपरितन-मध्यम (ऊपर के त्रिक के बीच वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य उन्तीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट तीस सागरोपम की।

प्र. भंते ! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम उन्तीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तीस सागरोपम की।

प्र. ९. भंते ! उपरितन-उपरितन (ऊपर के त्रिक के सबसे ऊपर वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य तीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट इकतीस सागरोपम की।

प्र. भंते ! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम तीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम इकतीस सागरोपम की।

११६. अनुत्तर देवों की स्थिति–

उ. गोयमा ! जहण्णेण एक्कतीसं सागरोवमाइं,
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं[1]।

प. विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिय अपज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिय पज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण एक्कतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं,
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

प. सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता[2]।

प. सव्वट्ठसिद्धग अपज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. सव्वट्ठसिद्धग पज्जत्तय देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ठिई पण्णत्ता।

–पण्ण. प. ४, सु. ४३६-४३७

उ. गौतम ! जघन्य इकतीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की।

प्र. भंते ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों के अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों के पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम इकतीस सागरोपम की,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम की।

प्र. भंते ! सर्वार्थसिद्ध-विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! अजघन्य अनुत्कृष्ट (जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से रहित) तेतीस सागरोपम की।

प्र. भंते ! सर्वार्थसिद्ध-विमानवासी अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की।

प्र. भंते ! सर्वार्थसिद्ध-विमानवासी पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उ. गौतम ! अजघन्य अनुत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है।

११७. विसिट्ठविमाणावासीणं देवाणं ठिई–

१. जे देवा सागरं सुसागरं सागरकंतं भवं मणुं माणुसोत्तरं लोगहियं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण एगं सागरोवमं ठिई पण्णत्ता।

–सम. सम. १, सु. ४३

२. जे देवा सुभं सुभकंतं सुभवण्णं सुभगंधं सुभलेसं सुभफासं सोहम्मवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–सम. सम. २, सु. २०

३. जे देवा आभंकरं, पभंकरं, आभंकर–पभंकरं, चंदं चंदावत्तं चंदप्पभं चंदकंतं चंदवण्णं चंदलेसं चंदज्झयं चंदसिंगं चंदसिट्ठं चंदकूडं चंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–सम. सम. ३, सु. १९

११७. विशिष्ट विमानवासी देवों की स्थिति–

१. सागर, सुसागर, सागरकान्त, भव, मनु, मानुसोत्तर और लोकहित विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की कही गई है।

२. शुभ, शुभकान्त, शुभवर्ण, शुभगन्ध, शुभलेश्य, शुभस्पर्श और सौधर्मावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम की कही गई है।

३. आभंकर, प्रभंकर, आभंकर-प्रभंकर, चन्द्र, चन्द्रावर्त, चन्द्रप्रभ, चन्द्रकान्त, चन्द्रवर्ण, चन्द्रलेश्य, चन्द्रध्वज, चन्द्रशृंग, चन्द्रसृष्ट, चन्द्रकूट और चन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की कही गई है।

---

१. (क) उत्त. अ. ३६, गा. २४३
(ख) अनु. सु. ३९१ (५)
(ग) सम. सम. ३१, सु. १८ (३)
(घ) सम. सम. ३३, सु. १८ (३)

२. (क) उत्त. अ. ३६, गा. २४४
(ख) अनु. सु. ३९१ [illegible]
(ग) सम. सम. ३३ सु. [illegible]
(घ) [illegible]
(ङ) [illegible]

४. जे देवा किट्ठिं सुकिट्ठिं किट्ठियावत्तं किट्ठिप्पभं किट्ठिकंतं किट्ठिवण्णं किट्ठिलेसं किट्ठिज्झयं किट्ठिसिंगं किट्ठिसिट्ठं किट्ठिकूडं किट्ठुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण चत्तारि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

—सम. सम. ४, सु. १५

४. कृष्टि, सुकृष्टि, कृष्टियावर्त, कृष्टिप्रभ, कृष्टिकान्त, कृष्टिवर्ण, कृष्टिलेश्य, कृष्टिध्वज, कृष्टिशृंग, कृष्टिसृष्ट, कृष्टिकूट और कृष्टयुत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति चार सागरोपम की कही गई है।

५. जे देवा वायं सुवायं वायावत्तं वायप्पभं वायकंतं वायवण्णं वायलेसं वायज्झयं वायसिंगं वायसिट्ठं वायकूडं वाउत्तरवडिंसगं,

सूरं सुसूरं सूरावत्तं सूरप्पभं सूरकंतं सूरवण्णं सूरलेसं सूरज्झयं सूरसिंगं सूरसिट्ठं सूरकूडं सूरुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण पंच सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. ५, सु. १६

५. वात, सुवात, वातावर्त, वातप्रभ, वातकान्त, वातवर्ण, वातलेश्य, वातध्वज, वातशृंग, वातसृष्ट, वातकूट और वातोत्तरावतंसक तथा

सूर, सुसूर, सूरावर्त, सूरप्रभ, सूरकान्त, सूरवर्ण, सूरलेश्य, सूरध्वज, सूरशृंग, सूरसृष्ट, सूरकूट और सूरोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति पांच सागरोपम की कही गई है।

६. जे देवा सयंभू सयंभूरमणं घोसं सुघोसं महाघोसं किट्ठिघोसं वीरं सुवीरं वीरगतं वीरसेणियं वीरावत्तं वीरप्पभं वीरकंतं वीरवण्णं वीरलेसं वीरज्झयं वीरसिंगं वीरसिट्ठं वीरकूडं वीरुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण छ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. ६, सु. १८

६. स्वयंभू, स्वयंभूरमण, घोष, सुघोष, महाघोष, कृष्टिघोष, वीर, सुवीर, वीरगत, वीरश्रेणिक, वीरावर्त, वीरप्रभ, वीरकान्त, वीरवर्ण, वीरलेश्य, वीरध्वज, वीरशृंग, वीरसृष्ट, वीरकूट और वीरोत्तरावतंसक नामक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति छह सागरोपम की कही गई है।

७. जे देवा समं समप्पभं महापभं पभासं भासुरं विमलं कंचणकूडं सणंकुमार-वडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. ७, सु. २०

७. सम, समप्रभ, महाप्रभ, प्रभास, भासुर, विमल, कांचनकूट और सनत्कुमारावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की कही गई है।

८. जे देवा अच्चिं अच्चिमालिं वइरोयणं पभंकरं चंदाभं सुराभं सुपइट्ठाभं अग्गिच्चाभं रिट्ठाभं अरुणाभं अरुणुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

—सम. सम. ८, सु. १५

८. अर्चि, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभंकर, चन्द्राभ, सूराभ, सुप्रतिष्ठाभ, अग्न्यर्चाभ, रिष्टाभ, अरुणाभ और अरुणोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति आठ सागरोपम की कही गई है।

९. जे देवा पम्हं सुपम्हं पम्हावत्तं पम्हप्पहं पम्हकंतं पम्हवण्णं पम्हलेसं पम्हज्झयं पम्हसिंगं पम्हसिट्ठं पम्हकूडं पम्हुत्तरवडिंसगं, सुज्जं-सुसुज्जं सुज्जावत्तं सुज्जपभं सुज्जकंतं सुज्जवण्णं सुज्जलेसं सुज्जज्झयं सुज्झसिंगं सुज्झसिट्ठं सुज्झकूडं सुज्जुत्तरवडिंसगं,

रुइल्लं रुइल्लावत्तं रुइल्लप्पभं रुइल्लकंतं रुइल्लवण्णं रुइल्ललेसं रुइल्लज्झयं रुइल्लसिंगं रुइल्लसिट्ठं रुइल्लकूडं रुइल्लुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण नव सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

—सम. सम. ९, सु. १७

९. पक्ष्म, सुपक्ष्म, पक्ष्मावर्त, पक्ष्मप्रभ, पक्ष्मकान्त, पक्ष्मवर्ण, पक्ष्मलेश्य, पक्ष्मध्वज, पक्ष्मशृंग, पक्ष्मसृष्ट, पक्ष्मकूट, पक्ष्मोत्तरावतंसक तथा सूर्य, सुसूर्य, सूर्यावर्त, सूर्यप्रभ, सूर्यकान्त, सूर्यवर्ण, सूर्यलेश्य, सूर्यध्वज, सूर्यशृंग, सूर्यसृष्ट, सूर्यकूट, सूर्योत्तरावतंसक तथा

रुचिर, रुचिरावर्त, रुचिरप्रभ, रुचिरकान्त, रुचिरवर्ण, रुचिरलेश्य, रुचिरध्वज, रुचिरशृंग, रुचिरसृष्ट, रुचिरकूट और रुचिरोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति नौ सागरोपम की कही गई है।

१०. जे देवा घोसं सुघोसं महाघोसं नंदिघोसं सुसरं मणोरमं रम्मं रम्मगं रमणिज्जं मंगलावत्तं बंभलोगवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। —सम. सम. १०, सु. २२

१०. घोष, सुघोप, महाघोप, नंदीघोप, सुस्वर, मनोरम, रम्य, रम्यक्, रमणीक, मंगलावर्त्त और ब्रह्मलोकावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की कही गई है।

११. जे देवा बंभं सुबंभं बंभावत्तं बंभप्पभं बंभकंतं बंभवण्णं बंभलेसं बंभज्झयं बंभसिंगं बंभसिट्ठं बंभकूडं बंभुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण एक्कारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

—सम. सम. ११, सु. १३

११. ब्रह्म, सुब्रह्म, ब्रह्मावर्त्त, ब्रह्मप्रभ, ब्रह्मकान्त, ब्रह्मवर्ण, ब्रह्मलेश्य, ब्रह्मध्वज, ब्रह्मशृंग, ब्रह्मसृष्ट, ब्रह्मकूट और ब्रह्मोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति ग्यारह सागरोपम की कही गई है।

१२. जे देवा माहिंदं महिंदज्झयं कंबुं कंबुग्गीवं पुंखं सुपुंखं महापुंखं पुंडं, सुपुंडं, महापुंडं नरिंदं नरिंदकंतं नरिंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण वारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–सम. सम. १२, सु. १७

१२. माहेन्द्र, माहेन्द्रध्वज, कंबु, कंबुग्रीव, पुंख, सुपंख, महापुंख, पुंड्र, सुपुंड्र, माहपुंड्र, नरेन्द्र, नरेन्द्रकान्त और नरेन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति वारह सागरोपम की कही गई है।

१३. जे देवा वज्जं सुवज्जं वज्जावत्तं वज्जप्पभं वज्जकंतं वज्जवण्णं वज्जलेसं वज्जज्झयं वज्जसिंगं वज्जसिट्ठं वज्जकूडं वज्जुत्तरवडिंसगं,

वइरं वइरावत्तं वइरप्पभं वइरकंतं वइरवण्णं वइरलेसं वइरज्झयं वइरसिंगं वइरसिट्ठं वइरकूडं वइरुत्तरवडेंसगं,

लोगं लोगावत्तं लोगप्पभं लोगकंतं लोगवण्णं लोगलेसं लोगज्झयं लोगसिंगं लोगसिट्ठं लोककूडं लोगुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण तेरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–सम. सम. १३, सु. १४

१३. वज्र, सुवज्र, वज्रावर्त्त, वजप्रभ, वज्रकान्त, वज्रवर्ण, वज्रलेश्य, वज्रध्वज, वज्रशृंग, वज्रसृष्ट, वज्रकूट, वज्रोत्तरावतंसक तथा,

वैर, वैरावर्त्त, वैरप्रभ, वैरकान्त, वैरवर्ण, वैरलेश्य, वैरध्वज, वैरशृंग, वैरसृष्ट, वैरकूट, वैरोत्तरावतंसक तथा,

लोक, लोकावर्त्त, लोकप्रभ, लोककान्त, लोकवर्ण, लोकलेश्य, लोकध्वज, लोकशृंग, लोकसृष्ट, लोककूट और लोकोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति तेरह सागरोपम की कही गई है।

१४. जे देवा सिरिकंतं सिरिमहियं सिरिसोमनसं लंतयं काविट्ठं महिंदं महिंदोकंतं महिंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १४, सु. १५

१४. श्रीकान्त, श्रीमहित, श्रीसोमनस, लान्तक, कापिष्ट, महेन्द्र, महेन्द्रावकान्त और महेन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागरोपम की कही गई है।

१५. जे देवा णंदं सुणंदं णंदावत्तं णंदप्पभं णंदकंतं णंदवण्णं णंदलेसं णंदज्झयं णंदसिंगं णंदसिट्ठं णंदकूडं णंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण पण्णरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–सम. सम. १५, सु. १३

१५. नन्द, सुनन्द, नन्दावर्त्त, नन्दप्रभ, नन्दकान्त, नन्दवर्ण, नन्दलेश्य, नन्दध्वज, नन्दशृंग, नन्दसृष्ट, नन्दकूट, नन्दोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह सागरोपम की कही गई है।

१६. जे देवा आवत्तं वियावत्तं नंदियावत्तं महाणंदियावत्तं अंकुसं अंकुसपलंवं भद्दं सुभद्दं महाभद्दं सव्वओभद्दं भद्दुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण सोलस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १६, सु. १३

१६. आवर्त्त, व्यावर्त्त, नन्द्यावर्त्त, महानन्द्यावर्त्त, अंकुश, अंकुशप्रलंव, भद्र, सुभद्र, महाभद्र, सर्वतोभद्र और भद्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति सोलह सागरोपम की कही गई है।

१७. जे देवा सामाणं सुसामाणं महासामाणं पउमं महापउमं कुमुदं महाकुमुदं नलिणं महानलिणं पोंडरीअं महापोंडरीअं सुक्कं महासुक्कं सीहं सीहोकंतं सीहवीअं भाविअं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

–सम. सम. १७, सु. १८

१७. सामान, सुसामान, महासामान, पद्म, महापद्म, कुमुद, महाकुमुद, नलिन, महानलिन, पौण्डरीक, महापौण्डरीक, शुक्ल, महाशुक्ल, सिंह, सिंहावकान्त, सिंहवीज और भावित विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति सत्तरह सागरोपम की कही गई है।

१८. जे देवा कालं सुकालं महाकालं अंजणं रिट्टं सालं समाणं दुमं महादुमं विसालं सुसालं पउमं पउमगुम्मं कुमुदं कुमुदगुम्मं नलिणं नलिणगुम्मं पुंडरीअं पुंडरीयगुम्मं सहस्सारवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १८, सु. १५

१८. काल, सुकाल, महाकाल, अंजन, रिष्ट, साल, समान, द्रुम, [illegible]

१९. जे देवा आणतं पाणतं णतं विणतं घणं झुसिरं इंदं इंदोकंतं इंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण एगूणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. १९, सु. ११

१९. [illegible]

२०. जे देवा सायं विसायं सुविसायं सिद्धत्थं उप्पलं रुइलं तिगिच्छं दिसासोवत्थियं वद्धमाणयं पलंवं पुप्फं सुपुप्फं पुप्फप्पभं पुप्फकंतं पुप्फवण्णं पुप्फलेसं पुप्फज्झयं पुप्फसिंगं पुप्फसिट्ठं पुप्फकूडं पुप्फुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २०, सु. १४*

२१. जे देवा सिरिवच्छं सिरिदामकंतं मल्लं किट्ठं चावोण्णतं अरण्णवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २१, सु. ११*

२२. जे देवा महियं, विसूहियं विमलं पभासं वणमालं अच्चुयवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेण वावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–सम. सम. २२, सु. १४*

२०. सात, विसात, सुविसात, सिद्धार्थ, उत्पल, रुचिर, तिगिच्छ, दिशासोवस्तिक, वर्द्धमानक, प्रलंब, पुष्प, सुपुष्प, पुष्पावर्त्त, पुष्पप्रभ, पुष्पकान्त, पुष्पवर्ण, पुष्पलेश्य, पुष्पध्वज, पुष्पशृंग, पुष्पसृष्ट, पुष्पकूट और पुष्पोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति बीस सागरोपम की कही गई है।

२१. श्रीवत्स, श्रीदामगंड, माल्य, कृष्टि, चापोन्नत और आरण्यावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति इक्कीस सागरोपम की कही गई है।

२२. महित, विश्रुत, विमल, प्रभास, वनमाल और अच्युतावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम की कही गई है।

११८. लोगंतिय देवाणं ठिई–

१-२. सारस्सतमाइच्चा ३. वण्ही
४. वरुणा य ५. गद्दतोया य। ६. तुसिता
७. अव्वाबाहा ८. अग्गिच्चा चेव वोधव्वा॥

एएसि णं अट्ठण्हं लोगंतिय देवाणं अजहण्णमणुक्कोसेणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता[1]। *–ठाणं. अ. ८, सु. ६२५/३*

११८. लोकान्तिक देवों की स्थिति–

१. सारस्वत, २. आदित्य, ३ वह्नि,
४. वरुण, ५. गर्दतोय, ६. तुषित,
७. अव्यावाध, ८. अग्न्यर्च।

इन आठ लोकांतिक देवों की अजघन्य और अनुत्कृष्ट स्थिति प्रत्येक की आठ सागरोपम की कही गई है।

११९. सूरियाभदेव तस्स य सामाणिय देवाणं ठिई–

प. सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

प. सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स सामाणिय-परिसोववण्णगाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। *–राय. सु. २०६*

११९. सूर्याभ देव और उसके सामानिक देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! सूर्याभदेव की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! सूर्याभदेव की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है ?

प्र. भन्ते ! सूर्याभदेव की सामानिक परिषद् के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! उनकी स्थिति चार पल्योपम की कही गई है।

१२०. विजयदेवा तस्स य सामाणिय देवाणं ठिई–

प. विजयस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! विजयस्स णं देवस्स एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

प. विजयस्स णं भंते ! देवस्स सामाणियाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! विजयस्स णं देवस्स सामाणियाणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। *–जीवा. पडि. ३, उ. २, सु. १४३*

१२०. विजयदेव और उसके सामानिक देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! विजय देव की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! विजय देव की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है ?

प्र. भन्ते ! विजय देव की सामानिक परिषद् के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! विजय देव के सामानिक देवों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है।

१२१. जंभग देवाणं ठिई–

प. जंभगाणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता। *–विया. स. १४, उ. ८, सु. २८*

१२१. जृम्भक देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! जृम्भक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! एक पल्योपम की कही गई है।

---

१. विया स. ६, उ. ५, सु. ४२

१२२. पंचविह भवियदव्वदेवाणं ठिई–

प. भवियदव्वदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं।

प. नरदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण सत्त वाससयाइं,
उक्कोसेण चउरासीई पुव्वसयसहस्साइं।

प. धम्मदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

प. देवाहिदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण बावत्तरिं वासाइं,
उक्कोसेण चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं।

प. भावदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दसवाससहस्साइं,
उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं।

–विया. स. १२, उ. ९, सु. १२-१६

१२३. भविदव्व चउवीसदंडग जीवाणं ठिई–

प. दं. १ भवियदव्वनेरइयस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण पुव्वकोडी।

प. दं. २ भवियदव्वअसुरकुमारस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं।
दं. ३-११ एवं जाव थणियकुमारस्स।

प. दं. १२. भवियदव्वपुढविकाइयस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण साइरेगाइं दो सागरोवमाइं।
दं. १३. एवं आउकाइयस्स वि।

दं. १४-१५. तेउ वाऊ जहा नेरइयस्स।

दं. १६. वणस्सइकाइयस्स जहा पुढविकाइयस्स।

दं. १७-१९. बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदियस्स जहा नेरइयस्स।

दं. २०. पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्स जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं।

दं. २१. एवं मणुस्सस्स वि।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियस्स जहा असुरकुमारस्स। [illegible]

१२२. पांच प्रकार के भव्यद्रव्य देवों की स्थिति–

प्र. भन्ते ! भव्यद्रव्यदेवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की,
उत्कृष्ट तीन पल्योपम की।

प्र. भन्ते ! नरदेवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य सात सौ वर्ष की,
उत्कृष्ट चौरासी लाख पूर्व की,

प्र. भन्ते ! धर्मदेवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की,
उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि की।

प्र. भन्ते ! देवाधिदेवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य बहत्तर वर्ष की,
उत्कृष्ट चौरासी लाख पूर्व की,

प्र. भन्ते ! भावदेवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य दस हजार वर्ष की,
उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की।

१२३. भव्यद्रव्य चौबीस दंडक के जीवों की स्थिति–

प्र. दं. १ भन्ते ! भव्यद्रव्य नैरयिक की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की,
उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की,

प्र. दं. २ भन्ते ! भव्य द्रव्य असुरकुमार की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की,
उत्कृष्ट तीन पल्योपम की,
दं. ३-११. इसी प्रकार (भव्य द्रव्य) स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १२ भन्ते ! भव्य द्रव्य पृथ्वीकायिक की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की,
उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागरोपम की।
दं. १३. इसी प्रकार (भव्य द्रव्य) अप्कायिक की स्थिति के लिए कहना चाहिए।

दं. १४-१५. (भव्य द्रव्य) अग्निकायिक और वायुकायिक की स्थिति नैरयिक के समान जानना चाहिए।

दं. १६. (भव्य द्रव्य) वनस्पतिकायिक की स्थिति पृथ्वीकायिक के समान जाननी चाहिए।

दं. १७-१९. (भव्य द्रव्य) द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय की स्थिति नैरयिक के समान जाननी चाहिए।

दं. २०. (भव्य द्रव्य) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

दं. २१. (भव्य द्रव्य) मनुष्य की स्थिति भी इसी प्रकार है।

दं. २२-२४. (भव्य द्रव्य) वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की स्थिति असुरकुमारों के समान जाननी चाहिए।

आहार-अध्ययन : आमुख

आहार संसारी जीवों की महती आवश्यकता है। विग्रहगति के अतिरिक्त संसारस्थ सकषायी जीव आहारयोग्य पुद्‌गलों को ग्रहण करते रहते हैं। आहार से ही औदारिक, वैक्रिय आदि तीन शरीरों, पर्याप्तियों, इन्द्रियों आदि का निर्माण कार्य सम्पन्न होता है। विग्रहगति के अतिरिक्त केवलि-समुद्‌घात, शैलेशी अवस्था और सिद्ध होने पर आहार नहीं किया जाता।

आहार के विविध प्रकार हैं। नैरयिकों का आहार उष्णता एवं शीतलता के आधार पर चार प्रकार का प्रतिपादित है-अंगारोपम, मुर्मुरोपम, शीतल और हिमशीतल। इनमें अंगारे के समान दाह वाले (अंगारोपम) की अपेक्षा मुर्मुरोपम अधिक दाह का द्योतक आहार है। इसी प्रकार शीतल की अपेक्षा हिमशीतल अधिक शीतल आहार का द्योतक है। तिर्यञ्च जीवों के आहार को कंकोपम, विलोपम, पाणमांसोपम एवं पुत्रमांसोपम के भेद से चार प्रकार का निरूपित किया गया है। मनुष्यों का आहार अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य के भेद से चार प्रकार का है। यही चार प्रकार का आहार मनोज्ञ एवं अमनोज्ञ के आधार पर आठ प्रकार का हो जाता है। देवों के आहार को वर्णादि के आधार पर चार प्रकार का बतलाया है-वर्णवान्, गंधवान्, रसवान् और स्पर्शवान्। स्थानांग सूत्र में आहार के उपस्कर सम्पन्न आदि चार अन्य प्रकार भी निरूपित हैं।

'सचित्ताहारट्ठी .... कायव्वा' गाथाओं के अन्तर्गत ग्यारह द्वारों का कथन है। इन ग्यारह द्वारों के आधार पर इस अध्ययन में २४ दण्डकों में आहार का विवेचन हुआ है। इन द्वारों में आहार के सचित्तादि भेदों, आहारेच्छा, आहारेच्छाकाल आदि अनेक विषयों पर विचार हुआ है। प्रथम द्वार सचित्ताहारी आदि से सम्बद्ध है, जिसके अनुसार नैरयिक एवं देव अचित्ताहारी होते हैं तथा पृथ्वीकाय से लेकर मनुष्य तक के सभी जीव सचित्ताहारी, अचित्ताहारी एवं मिश्राहारी होते हैं। द्वितीय द्वार से अष्टम द्वार तक एक साथ विचार हुआ है। दूसरे द्वार के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चौवीस दण्डकों के सभी जीव आहारार्थी होते हैं। सबको आहार की अभिलाषा होती है।

आहारेच्छा कितने काल में उत्पन्न होती है, इस पर विचार करते समय आहार के दो भेद किए गए हैं-१. आभोग निर्वर्तित और २. अनाभोगनिर्वर्तित। इनमें से अनाभोग निर्वर्तित आहार प्रतिसमय होता रहता है क्योंकि यह अपने आप होता है, इसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। आभोगनिर्वर्तित आहार के लिए जघन्य एवं उत्कृष्ट अलग अलग काल निर्धारित हैं। एकेन्द्रिय जीवों का वैशिष्ट्य है कि वे बिना विरह के निरन्तर प्रतिसमय आहार करते हैं। वैमानिक देवों में जघन्य दिवस पृथक्त्व में और उत्कृष्ट तेतीस हजार वर्षों में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

इन ग्यारह द्वारों में आहार के लोमाहार, प्रक्षेपाहार, ओजाहार और मनोभक्षी आहार भेद भी प्रकट हुए हैं जो आहार करने की विधि पर आधारित हैं। लोमों या रोमों के द्वारा जो आहार किया जाता है उसे लोमाहार कहते हैं। कवल या ग्रास के रूप में मुख के द्वारा जो आहार किया जाता है उसे कवलाहार या प्रक्षेपाहार कहते हैं। सम्पूर्ण शरीर के द्वारा आहार के योग्य पुद्‌गलों को ग्रहण करना ओजाहार कहा जाता है। मन के द्वारा आहार ग्रहण करने को मनोभक्षी आहार कहते हैं। लोमाहार सभी २४ दण्डकों के जीव करते हैं। प्रक्षेपाहार द्वीन्द्रिय से लेकर मनुष्य तक के औदारिक शरीरी जीव करते हैं। नैरयिक एवं देवगति के जीव वैक्रिय शरीरधारी होने के कारण प्रक्षेपाहार अर्थात् कवलाहार नहीं करते हैं। एकेन्द्रिय जीवों के मुख नहीं होता अतः वे भी कवलाहार नहीं करते हैं। शेष सब कवलाहारी होते हैं। दिगम्बर मान्यता के अनुसार केवली मनुष्य कवलाहारी नहीं होते हैं, मात्र रोमाहारी होते हैं जबकि श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार केवली कवलाहारी भी होते हैं। ओजाहार सभी अपर्याप्तक जीव करते हैं। पर्याप्तक होने पर वे रोमाहार या प्रक्षेपाहार करते हैं। मनोभक्षी आहार केवल देवों में उपलब्ध होता है।

एक प्रश्न उठाया गया कि जीव जिन पुद्‌गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, वे उन पुद्‌गलों को बार-बार किस रूप में परिणत करते हैं। इसके उत्तर का सारांश यह है कि जो जीव जितनी इन्द्रियों से युक्त है वह उस आहार के पुद्‌गलों को उन उन इन्द्रियों के रूप में परिणत करता है। एकेन्द्रिय जीव अपने आहार पुद्‌गलों का परिणमन स्पर्शनेन्द्रिय के रूप में, द्वीन्द्रिय जीव स्पर्शन एवं रसनेन्द्रिय के रूप में, त्रीन्द्रिय जीव स्पर्शन, रसना एवं घ्राणेन्द्रिय के रूप में, चतुरिन्द्रिय जीव चक्षु इन्द्रिय सहित चार इन्द्रियों एवं पंचेन्द्रिय जीव श्रोत्रेन्द्रिय सहित पाँच इन्द्रियों के रूप में परिणमन करते हैं। यह परिणमन शुभ रूप में अथवा अशुभ रूप में होता है।

वर्तमान में जो जीव जितनी इन्द्रिय वाले हैं वे उतनी ही इन्द्रिय वाले स्व-शरीर का आहार करते हैं। अतीत काल की अपेक्षा अर्थात् पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के शरीरों का आहार करते हैं। जैसे नैरयिक जीव वर्तमान काल में पंचेन्द्रिय होने के कारण पंचेन्द्रिय शरीर का आहार करते हैं तथा अतीतकाल की अपेक्षा वे एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि सभी जीवों की पर्याय भोग चुके हैं अतः इनके शरीरों का भी उन्होंने आहार किया है।

सूत्रकृताङ्ग सूत्र में आहार-परिज्ञा अध्ययन है, उसे भी यहाँ आहार-अध्ययन में सम्मिलित किया गया है। आहार-परिज्ञा अध्ययन में वनस्पति, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकाय तथा मनुष्य एवं तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के आहार के साथ उनकी उत्पत्ति, पोषण, संवर्द्धन आदि की चर्चा भी व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत हुई है। देवों एवं नारकों के आहार का वर्णन आहारपरिज्ञा-अध्ययन में नहीं है। वनस्पतिकाय के जीव पृथ्वीयोनिक, वृक्षयोनिक, अध्यारोहयोनिक, तृणयोनिक, औषधियोनिक, हरितयोनिक, उदकयोनिक आदि विविध प्रकार से उत्पन्न होते हैं। ये नाना प्रकार के त्रस-स्थावर जीवों का आहार करते हैं तथा नाना प्रकार के त्रस-स्थावर प्राणियों के शरीर को अचित्त करते हैं। इस अध्ययन में वनस्पतिकाय के विविध जीवों के नाम दिए गए हैं। वनस्पतिकाय के पश्चात् द्वीन्द्रिय आदि त्रस प्राणियों का वर्णन है। उन्हें भी पृथ्वीयोनिक, वृक्षयोनिक, अध्यारोहयोनिक, तृणयोनिक, औषधियोनिक, हरितयोनिक, उदकयोनिक आदि कहकर उनमें उत्पन्न एवं लब्धजन्म कहा है। ये जीव भी स्थावर एवं त्रस-प्राण शरीरों का आहार करते हैं तथा नाना प्रकार के त्रस-स्थावर प्राणियों के शरीर को अचित्त करते हैं।

मनुष्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं—कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, अन्तरद्वीपज, आर्य और म्लेच्छ। ये प्रारम्भ में माता के ओज और पिता के शुक्र से संसृष्ट आहार करते हैं। तदनन्तर माता के द्वारा गृहीत आहार में से रसहरणी नाड़ी के द्वारा सार खींच लेते हैं। नवजात शिशु की अवस्था में माता का दूध पीते हैं। बड़े होकर ओदन, कुल्माष और त्रस-स्थावर प्राणियों का आहार करते हैं। नाना प्रकार के त्रस-स्थावर प्राणियों के शरीर को अचित्त करते हैं। जीवों के शरीर नानावर्ण यावत् नाना प्रकार के पुद्गलों से विरचित होते हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव जलचर, चतुष्पद, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प एवं खेचर के भेद से पांच प्रकार के हैं। मच्छ, कच्छप, ग्राह, मगर और सुंसुमार जीव जलचर हैं। चतुष्पद स्थलचर जीव एक खुर, दो खुर, गंडीपद, सनखपद आदि हैं। सर्प, अजगर, आसालिक और महोरग जीव उरपरिसर्प हैं। गोह, नेवला, सेहा आदि जीव भुजपरिसर्प हैं। चर्मपक्षी, रोमपक्षी, समुद्गपक्षी और विततपक्षी जीव खेचर हैं। ये पाँचों प्रकार के तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीव सर्वप्रथम माता के ओज और पिता के शुक्र से संसृष्ट आहार लेते हैं। फिर माता के द्वारा गृहीत आहार में से आहार लेते हैं। गर्भ का परिपाक होने पर कभी अंडे के रूप में, कभी पोत के रूप में उत्पन्न होते हैं, फिर स्त्री, पुरुष या नपुंसक के रूप में उत्पन्न होते हैं। नवजात शिशु की अवस्था में जलचर जीव जल-स्नेह का आहार लेते हैं, चतुष्पद-स्थलचर जीव दूध और घी का आहार करते हैं। उरपरिसर्प व भुजपरिसर्प जीव वायुकाय का आहार करते हैं, खेचर जीव माता के मातृ-स्नेह का आहार करते हैं। बड़े होकर ये जीव पृथ्वी यावत् त्रस-प्राण शरीर का आहार करते हैं और नाना प्रकार के त्रस-स्थावर प्राणियों के शरीर को अचित्त करते हैं। कुछ त्रस जीव नानाविध योनिक हैं।

अप्काय के जीव नानाविध त्रस-स्थावर प्राणियों के स्नेह का आहार करते हैं, और नाना प्रकार के त्रस-स्थावर प्राणियों के शरीर को अचित्त करते हैं। अग्निकाय के जीव त्रसस्थावरयोनिक अग्नियों एवं अग्नियोनिक अग्नियों के स्नेह का आहार करते हैं। वायुकाय के जीव नानाविध त्रस-स्थावर प्राणियों के स्नेह एवं वायुयोनिक वायुओं के स्नेह का आहार करते हैं। पृथ्वीकाय के जीव नानाविध त्रस-स्थावर प्राणियों के स्नेह एवं पृथ्वीयोनिक पृथ्वियों के स्नेह का आहार करते हैं।

वनस्पतिकाय के जीव वर्षाकाल में सबसे अधिक आहार करते हैं तथा ग्रीष्मऋतु में सबसे कम आहार लेते हैं। वनस्पतिकाय के मूल, मूल-जीवों से व्याप्त होते हैं, कन्द कन्द-जीवों से व्याप्त होते हैं यावत् बीज बीज-जीवों से व्याप्त होते हैं।

नैरयिक आदि सभी जीव वीचिद्रव्यों का भी आहार करते हैं तथा अवीचिद्रव्यों का भी आहार करते हैं। एक प्रदेश न्यून द्रव्यों के आहार को वीचिद्रव्यों का आहार तथा परिपूर्ण द्रव्यों के आहार को अवीचिद्रव्यों का आहार कहते हैं। प्रायः जीव आहार रूप से गृहीत पुद्गलों के असंख्यातवें भाग का आहार रूप से ग्रहण करते हैं तथा अनन्तवें भाग का निर्जरण होता है। जीव जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं उन्हें जानते-देखते हैं या नहीं इसका भी इस अध्ययन में निरूपण हुआ है। निर्जरा पुद्गलों का आहार ग्रहण करने तथा उन्हें जानने-देखने का भी कथन हुआ है।

इसी अध्ययन में आहार के सम्बन्ध में आहार, भव्य, संज्ञी, लेश्या, दृष्टि, संयत, कषाय, ज्ञान, योग, उपयोग, वेद, शरीर और पर्याप्ति इन तेरह द्वारों से भी विचार किया गया है। इन समस्त द्वारों में एकत्व एवं बहुत्व (जीवों) की अपेक्षा से आहारक होने या अनाहारक होने के विविध भंगों में कथन हुआ है। आहार करने वाले जीव को आहारक तथा नहीं करने वाले को अनाहारक कहा जाता है। समुच्चय जीव चार अवस्थाओं में अनाहारक होता है—(१) विग्रहगति की अवस्था में, (२) केवलि-समुद्घात के समय, (३) शैलेशी अवस्था में, (४) सिद्ध अवस्था में। इन चार अवस्थाओं के अतिरिक्त सभी जीव आहारक होते हैं।

इस दृष्टि से सभी सिद्ध जीव अनाहारक होते हैं तथा संसारी जीव आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी। संसारी जीवों में जहाँ विग्रहगति संभव नहीं है वहाँ वे आहारक ही होते हैं, अनाहारक नहीं। यथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव आहारक ही होता है क्योंकि इस दृष्टि में मरण नहीं होने से विग्रहगति नहीं होती। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अवधिज्ञानी आहारक ही होता है, अनाहारक नहीं। मनःपर्यवज्ञानी मनुष्य भी अनाहारक नहीं होते। केवलज्ञानी आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी। जब वे समुद्घात करते हैं तब अनाहारक होते हैं तथा शेष समय में आहारक होते हैं। विग्रहगति में विभंगज्ञान न होने के कारण विभंगज्ञानी मनुष्य और तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय आहारक होते हैं, अनाहारक नहीं। इसी प्रकार मनोयोगी और वचनयोगी आहारक ही होते

हैं, अनाहारक नहीं। औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीरी जीव आहारक होते हैं, अनाहारक नहीं। अशरीरी सिद्ध अनाहारक होते हैं। आहार पर्याप्ति से अपर्याप्त जीव एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा अनाहारक होते हैं, किन्तु शरीर पर्याप्ति से अपर्याप्त जीव एकत्व की अपेक्षा कभी आहारक और कभी अनाहारक होता है। नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी, अकषायी, अवेदी आदि स्थितियां केवलज्ञानी में होने से इनमें रहा हुआ जीव कदाचित् आहारक होता है तथा कदाचित् अनाहारक। नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक, अलेश्यी, नोसंयत-नोअसंयत, अयोगी, अशरीरी आदि अवस्थाएँ सिद्धों में होने से इन अवस्थाओं के जीव अनाहारक ही होते हैं, आहारक नहीं।

सामान्यदृष्टि से उत्पत्ति के प्रथम समय में जीव कभी आहारक होता है, कभी अनाहारक होता है, द्वितीय एवं तृतीय समयों में भी कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है किन्तु चतुर्थ समय में तो नियम से आहारक होता है। चौथा समय एकेन्द्रिय जीवों को ही लगता है, अन्य को नहीं। अल्प आहार की दृष्टि से जीव उत्पत्ति के प्रथम समय में अथवा भव के अन्तिम समय में सबसे अल्प आहार वाला होता है।

गर्भज जीव के आहार के सम्बन्ध में इस अध्ययन में विशेष विचार हुआ है, जिसके अनुसार गर्भ में उत्पन्न होते ही जीव सर्वप्रथम माता के रज और पिता के शुक्र से निर्मित कलुष और किल्बिष आहार करता है। उसके पश्चात् वह माता के द्वारा गृहीत आहार के एक भाग को ग्रहण करता है। गर्भगत जीव के मल, मूत्र, कफ आदि नहीं होते हैं क्योंकि वह गृहीत आहार को श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय के रूप में तथा हड्डी, मज्जा, केश, नख आदि के रूप में परिणत करता है। गर्भगत जीव कवलाहार नहीं करता। वह सब ओर से आहार करता है, सारे शरीर से परिणमाता है, सर्वात्मना उच्छ्वास लेता है, सर्वात्मना निःश्वास लेता है। रसहरणी नाड़ी के माध्यम से वह माता से आहार ग्रहण करता है।

पृथ्वीकाय, अप्काय और वायुकाय के जीव जब मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, तब वे जहाँ उत्पन्न होना हो वहाँ कभी पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार करते हैं और कभी पहले आहार करके पीछे उत्पन्न होते हैं। ये जीव मारणान्तिक समुद्घात से जब देश (आंशिक रूप) से समवहत होते हैं तब पहले आहार करते हैं और पीछे उत्पन्न होते हैं तथा जब सर्व (पूर्ण रूप) से समवहत होते हैं तब पहले उत्पन्न होते हैं और पीछे आहार करते हैं।

अध्ययन के उपसंहार में आहार करने वाले जीवों को दो प्रकार का निरूपित किया गया है—छद्मस्थ आहारक और केवली-आहारक। अनाहारक जीव भी दो प्रकार के कहे गये हैं—छद्मस्थ अनाहारक और केवली अनाहारक। केवली-अनाहारक भी दो प्रकार के हैं—सिद्धकेवली अनाहारक और भवस्थ केवली अनाहारक। सिद्धकेवली अनाहारक सादि अपर्यवसित हैं जबकि भवस्थ केवली-अनाहारक दो प्रकार के होते हैं—सयोगि-भवस्थ-केवली-अनाहारक और अयोगि-भवस्थकेवली-अनाहारक।

छद्मस्थ आहारक का जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट दो समय होता है। केवली आहारक का अन्तरकाल जघन्य उत्कृष्ट से रहित तीन समय है। छद्मस्थ के अनाहारक काल का अन्तर दो समय कम लघुभवग्रहण जितना है। सयोगि भवस्थ केवली का अनाहारक अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त है। अयोगि भवस्थकेवली के अनाहारक होने का अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार सिद्ध केवली के अनाहारकत्व का भी अन्तरकाल नहीं है।

आहारक एवं अनाहारकों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि अनाहारकों की अपेक्षा आहारक जीव असंख्यातगुणे हैं। आहार के सम्बन्ध में जो वर्णन इस अध्ययन में हुआ है उससे विविध जानकारियाँ मिलती हैं। शाकाहार-मांसाहार की दृष्टि से यहाँ आहार का विवेचन नहीं है, किन्तु जो आहार किया जाता है उसमें अनेक त्रस-स्थावर प्राणी अचित्त होते हैं, यह उल्लेख अवश्य है। आहार ही इन्द्रियादि के रूप में परिणमित होता है। इसका आशय यह भी है कि इन्द्रियादि की शक्ति बनाए रखने के लिए भी आहार की निरन्तर आवश्यकता रहती है।

□

१३. आहार अज्झयणं

सूत्र

१. आहार पगारा–
चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा–
१. असणे, २. पाणे, ३. खाइमे, ४. साइमे।
चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा–
१. उवक्खरसंपण्णे,
२. उवक्खडसंपण्णे,
३. सब्भावसंपण्णे,
४. परिजुसियसंपण्णे। –ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २९५
अट्ठविहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा–
१-४. मणुण्णे असणे जाव साइमे।
१-४. अमणुण्णे असणे जाव साइमे। –ठाणं. अ. ८, सु. ६२३

२. चउगईणं आहार रूवं–
(१) नेरइयाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा–
१. इंगालोवमे, २. मुम्मुरोवमे, ३. सीतले, ४. हिमसीतले।

(२) तिरिक्खजोणियाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा–
१. कंकोवमे,
२. बिलोवमे,
३. पाणमंसोवमे,
४. पुत्तमंसोवमे।
(३) मणुस्साणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा–
१. असणे, २. पाणे, ३. खाइमे, ४. साइमे।
(४) देवाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा–
१. वण्णमंते, २. गंधमंते, ३. रसमंते, ४. फासमंते।
–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३४०

३. गब्भगयजीवस्स आहार गहण परूवणं–
प. जीवे णं भंते ! गब्भ वक्कममाणे तप्पढमयाए किमाहारमाहारेइ ?
उ. गोयमा ! माउओयं पिउसुक्कं तं तदुभयसंसिट्ठं कलुसं किव्विसं तप्पढमयाए आहारमाहारेइ।

प. जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे किमाहारमाहारेइ ?
उ. गोयमा ! जं से माता नाणाविहाओ रसविगईओ आहारमाहारेइ तदेक्कदेसेणं ओयमाहारेइ।

प. जीवस्स णं भंते ! गब्भगयस्स समाणस्स अत्थि उच्चारे इ वा, पासवणे इ वा, खेले इ वा, सिंघाणे इ वा, वंते इ वा, पित्ते इ वा ?

१३. आहार-अध्ययन

सूत्र

१. आहार के प्रकार–
आहार चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. अशन, २. पान, ३. खादिम, ४. स्वादिम।
आहार चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. उपस्कर-सम्पन्न–वघार से युक्त मसाले डालकर छौंका हुआ,
२. उपस्कृत-सम्पन्न–पकाया हुआ, ओदन आदि,
३. स्वभाव-सम्पन्न–स्वभाव से पका हुआ, फल आदि,
४. पर्युषित-सम्पन्न–रात वासी रखने से जो तैयार हो।
आहार आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–
१-४ मनोज्ञ अशन यावत् मनोज्ञ स्वाद्य।
१-४ अमनोज्ञ अशन यावत् अमनोज्ञ स्वाद्य।

२. चारों गतियों के आहार का रूप–
(१) नैरयिकों का आहार चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. अंगारोपम–अल्पकालीन दाहवाला, २. मुर्मुरोपम–दीर्घकालीन दाहवाला, (तुष या भूसे की अग्नि के समान दाहवाला) ३. शीतल ४. हिमशीतल।
(२) तिर्यञ्चों का आहार चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. कंकोपम-सुख पूर्वक भक्ष्य और सुजीर्ण,
२. बिलोपम-जो चबाए विना निगल लिया जाता है,
३. पाणमांसोपम-चण्डाल के मांस की भाँति घृणित,
४. पुत्रमांसोपम-पुत्र मांस की भाँति दुःख भक्ष्य।
(३) मनुष्यों का आहार चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. अशन, २. पान, ३. खाद्य, ४. स्वाद्य।
(४) देवताओं का आहार चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. वर्णवान् २. गंधवान् ३. रसवान् ४. स्पर्शवान्।

३. गर्भगत जीव के आहार ग्रहण का प्ररूपण–
प्र. भन्ते ! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव सर्वप्रथम क्या आहार करता है ?
उ. गौतम ! परस्पर एक दूसरे में मिला हुआ माता का आर्तव (रज) और पिता का शुक्र (वीर्य), जो कि कलुप और किल्विप है, जीव गर्भ में उत्पन्न होते ही सर्वप्रथम उसका आहार करता है।
प्र. भन्ते ! गर्भ में गया (रहा) हुआ जीव क्या आहार करता है ?
उ. गौतम ! उसकी माता जो नाना प्रकार की (दुग्धादि) रसविकृतियों का आहार करती है; उसके एक भाग के साथ गर्भगत जीव माता के आर्तव का आहार करता है।
प्र. भन्ते ! क्या गर्भ में रहे हुए जीव के मल होता है, मूत्र होता है, कफ होता है, नाक का मैल होता है, वमन होता है या पित्त होता है ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"गब्भगयस्स समाणस्स णत्थि उच्चारे इ वा जाव पित्ते इ वा?"

उ. गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे जमाहारेइ तं चिणाइ तं सोइंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए अट्ठि-अट्ठिमिंज-केस-मंसु-रोम-नहत्ताए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"गब्भगयस्स समाणस्स णत्थि उच्चारे इ वा जाव पित्ते इ वा।"

प. जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे पभू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"गब्भगए समाणे जीवे नो पभू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए?"

उ. गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे,
सव्वओ आहारेइ, सव्वओ परिणामेइ,
सव्वओ उस्ससइ, सव्वओ निस्ससइ,
अभिक्खणं आहारेइ, अभिक्खणं परिणामेइ,
अभिक्खणं उस्ससइ, अभिक्खणं निस्ससइ,
आहच्च आहारेइ, आहच्च परिणामेइ,
आहच्च उस्ससइ, आहच्च निस्ससइ।
मातुजीवरसहरणी, पुत्तजीवरसहरणी मातुजीवपडिबद्धा पुत्तजीवं फुडा तम्हा आहारेइ, तम्हा परिणामेइ,

अवरा वि य णं पुत्तजीवपडिबद्धा माउजीवफुडा तम्हा चिणाइ, तम्हा उवचिणाइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"गब्भगए समाणे जीवे नो पभू मुहेणं कावलियं आहारं आहारित्तए।
–विया. स. १, उ. ७, सु. १२–१५

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है–(गर्भगत जीव के ये सब (मल-मूत्रादि) नहीं होते हैं।)

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि–
"गर्भ में रहे हुए जीव के मल-मूत्रादि यावत् पित्त नहीं होते हैं?"

उ. गौतम ! गर्भ में जाने पर जीव जो आहार करता है, जिस आहार का चय करता है, उस आहार को श्रोत्रेन्द्रिय के रूप में यावत् स्पर्शेन्द्रिय के रूप में तथा हड्डी, मज्जा, केश, दाढ़ी-मूँछ, रोम और नखों के रूप में परिणत करता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"गर्भ में गए हुए जीव के मल-मूत्रादि यावत् पित्त नहीं होते हैं।"

प्र. भन्ते ! क्या गर्भ में रहा हुआ जीव मुख से कवलाहार (ग्रासरूप में आहार) करने में समर्थ है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि–
"गर्भ में रहा हुआ जीव मुख से कवलाहार करने में समर्थ नहीं है?"

उ. गौतम ! गर्भगत जीव–
सब ओर से आहार करता है, सारे शरीर से परिणमाता है,
सर्वात्मना उच्छ्वास लेता है, सर्वात्मना निःश्वास लेता है,
बार-बार आहार करता है, बार-बार परिणमाता है,
बार-बार उच्छ्वास लेता है, बार-बार निःश्वास लेता है,
कभी आहार करता है, कभी परिणमाता है,
कभी उच्छ्वास लेता है, कभी निःश्वास लेता है,
तथा पुत्र (पुत्री) के जीव को रस पहुँचाने में कारणभूत और माता के रस लेने में कारणभूत जो मातृजीवरसहरणी नाम की नाड़ी है उसका माता के जीव के साथ सम्बन्ध है और पुत्र (पुत्री) के जीव के साथ स्पृष्ट है उस नाड़ी द्वारा वह (गर्भगत जीव) आहार लेता है और आहार को परिणमाता है।
तथा एक और नाड़ी है, जो पुत्र (पुत्री) के जीव के साथ सम्बद्ध है और माता के जीव के साथ स्पृष्ट है, उससे (गर्भगत) पुत्र (या पुत्री) का जीव आहार का चय करता है और उपचय करता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"गर्भगत जीव मुख द्वारा कवलरूप आहार को लेने में समर्थ नहीं है।"

४. समोहयस्स पुढवि-आउ-वाउकाइयस्स उप्पत्तीए पुव्वं-पच्छा वा आहार गहण परूवणं–

प. पुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए सक्करप्पभाए य पुढवीए अंतरा समोहए, समोहणित्ता जे भविए सोहम्मे कप्पे पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए
से णं भंते ! किं पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा, पुव्विं आहारेत्ता पच्छा उववज्जेज्जा?

४. समवहत पृथ्वी-अप्-वायुकायिक का उत्पत्ति के पूर्व और पश्चात् आहार ग्रहण का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जो पृथ्वीकायिक जीव, इस रत्नप्रभा पृथ्वी और शर्कराप्रभा पृथ्वी के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्प में पृथ्वीकायिक के रूप में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार करता है या पहले आहार करके पीछे उत्पन्न होता है?

उ. गोयमा ! पुव्विं वा उववज्जित्ता, पच्छा आहारेज्जा,
पुव्विं वा आहारेज्जा पच्छा उववज्जेज्जा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"पुव्विं वा उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा,
पुव्विं वा आहारेत्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?"

उ. गोयमा ! पुढविकाइयाणं तओ समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वेयणासमुग्घाए २. कसाय समुग्घाए
३. मारणंतिय समुग्घाए।
मारणंतिय समुग्घाएणं समोहण्णमाणे देसेण वा समोहण्णइ सव्वेण वा समोहण्णइ,
देसेणं समोहन्नमाणे पुव्विं आहारेत्ता पच्छा उववज्जिज्जा
सव्वेणं समोहन्नमाणे पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा,
पुव्विं आहारेत्ता पच्छा उववज्जेज्जा।"

प. पुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए सक्करप्पभाए य पुढवीए अंतरा समोहए समोहणित्ता, जे भविए ईसाणे कप्पे पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,
से णं भंते ! किं पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा, पुव्विं आहारेत्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।
एवं जाव ईसिपब्भाराए उववाएयव्वो

एएणं कमेण सक्करप्पभाए वालुयप्पभाए य तमाए अहेसत्तमाए य पुढवीए अंतरा समोहए समाणे जे भविए सोहम्मे जाव ईसिपब्भाराए उववाएयव्वो।

प. पुढविकाइए णं भंते ! सोहम्मीसाणाणं सणंकुमार–माहिंदाण य कप्पाणं अन्तरा समोहए समोहणित्ता,
जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,
से णं भंते ! किं पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा,
पुव्विं आहारेत्ता पच्छा उववज्जेज्जा,

उ. गोयमा ! एवं चेव।

प. पुढविकाइए णं भंते ! सोहम्मीसाणाणं सणंकुमार–माहिंदाण य कप्पाणं अंतरा समोहए समोहणित्ता, जे भविए सक्करप्पभाए पुढवीए पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,
से णं भंते ! किं पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा,
पुव्विं आहारेत्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

उ. गौतम ! वह पहले उत्पन्न होकर पीछे भी आहार करता है, पहले आहार करके पीछे भी उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"वह पहले उत्पन्न होकर पीछे भी आहार करता है,
पहले आहार करके पीछे भी उत्पन्न होता है।"

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिकों में तीन समुद्घात कहे गये हैं-यथा–
१. वेदना समुद्घात, २. कषाय समुद्घात,
३. मारणांतिक समुद्घात।
मारणांतिक समुद्घात से समवहत होकर देश से भी समवहत होता है और सर्व से भी समवहत होता है।
देश से समवहत होने पर पूर्व में आहार करता है और पीछे उत्पन्न होता है।
सर्व से समवहत होने पर पूर्व में उत्पन्न होता है और पीछे आहार करता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"वह पहले उत्पन्न होकर पीछे भी आहार करता है और पहले आहार करके पीछे भी उत्पन्न होता है।"

प्र. भंते ! जो पृथ्वीकायिक जीव, इस रत्नप्रभापृथ्वी और शर्कराप्रभा पृथ्वी के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके ईशानकल्प में पृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न होने योग्य है,
तो भंते ! पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार करता है या पहले आहार करके पीछे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए।
इसी प्रकार ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त उपपात और आहार करता है ऐसा आलापक कहना चाहिए।

इसी क्रम से शर्कराप्रभा वालुकाप्रभा से लेकर तमःप्रभा और अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके पृथ्वीकायिक जीवों में सौधर्मकल्प से ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त (पूर्ववत्) उपपात (आलापक) कहने चाहिए।

प्र. भंते ! जो पृथ्वीकायिक जीव सौधर्म-ईशान और सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्प के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके इस रत्नप्रभापृथ्वी में पृथ्वीकायिक के रूप में उत्पन्न होने योग्य है
तो भंते ! वह पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार करता है या पहले आहार करके पीछे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए।

प्र. भंते ! जो पृथ्वीकायिक जीव, सौधर्म-ईशान और सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्प के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके शर्कराप्रभा पृथ्वीकायिकरूप से उत्पन्न होने योग्य है
तो भंते ! वह पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार करता है या पहले आहार करके पीछे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए।

एवं जाव अहेसत्तमाए उववाएयव्वो।

एवं सणंकुमार-माहिंदाण-बंभलोगस्स य कप्पस्स अंतरा समोहए समोहणित्ता पुणरवि जाव अहे सत्तमाए उववाएयव्वो।

एवं बंभलोगस्स लंतगस्स य कप्पस्स अंतरा समोहए समोहणित्ता पुणरवि जाव अहेसत्तमाए उववाएयव्वो।

एवं लंतगस्स महासुक्कस्स य कप्पस्स अंतरा समोहए, समोहणित्ता पुणरवि जाव अहेसत्तमाए उववाएयव्वो।

एवं महासुक्कस्स सहस्सारस्स य कप्पस्स अंतरा समोहए समोहणित्ता पुणरवि जाव अहे सत्तमाए उववाएयव्वो।

एवं सहस्सारस्स आणय-पाणयाण य कप्पाणं अंतरा समोहए समोहणित्ता पुणरवि जाव अहे सत्तमाए उववाएयव्वो।

एवं आणय-पाणयाणं आरण ऽच्चुयाण य कप्पाणं अंतरा समोहए समोहणित्ता पुणरवि जाव अहे सत्तमाए उववाएयव्वो।

एवं आरणऽच्चुयाणं गेवेज्जविमाणाण य अंतरा समोहए समोहणित्ता पुणरवि जाव अहे सत्तमाए उववाएयव्वो।

एवं गेवेज्जविमाणाणं अणुत्तरविमाणाण य अंतरा समोहए समोहणित्ता पुणरवि जाव अहे सत्तमाए उववाएयव्वो।

एवं अणुत्तरविमाणाणं ईसिपब्भाराए य अंतरा समोहए समोहणित्ता पुणरवि जाव अहे सत्तमाए उववाएयव्वो।

प. आउकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए सक्करप्पभाए य पुढवीए अंतरा समोहए, समोहणित्ता, जे भविए सोहम्मे कप्पे आउकाइयत्ताए उववज्जित्तए–

से णं भंते ! किं पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा, पुव्विं आहारेत्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! पुव्विं वा उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा, पुव्विं वा आहारेत्ता पच्छा उववज्जेज्जा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-

"पुव्विं वा उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा, पुव्विं वा आहारेत्ता पच्छा उववज्जेज्जा,"

उ. गोयमा ! आउकाइयाणं तओ समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वेयणासमुग्घाए, २. कसाय समुग्घाए,

३. मारणंतिय समुग्घाए,

मारणंतिय समुग्घाए णं समोहण्णमाणे देसेण वा समोहण्णइ, सव्वेण वा समोहण्णइ,

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त उपपात आदि कहना चाहिए।

इसी प्रकार सनत्कुमार-माहेन्द्र और ब्रह्मलोक कल्प के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके पुनः रत्नप्रभा पृथ्वी से अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त उपपात आदि कहना चाहिए।

इसी प्रकार ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके पुनः (रत्नप्रभापृथ्वी से) अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त उपपात आदि कहना चाहिए।

इसी प्रकार लान्तक और महाशुक्रकल्प के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके पुनः अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त उपपात आदि कहना चाहिए।

इसी प्रकार महाशुक्र और सहस्रार कल्प के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके पुनः अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त उपपात आदि कहना चाहिए।

इसी प्रकार सहस्रार और आनत-प्राणत कल्प के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके पुनः अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त उपपात आदि कहना चाहिए।

इसी प्रकार आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्प के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके पुनः अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त उपपात आदि कहना चाहिए।

इसी प्रकार आरण-अच्युत और ग्रैवेयक विमानों के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके पुनः अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त आदि कहना चाहिए।

इसी प्रकार ग्रैवेयकविमानों और अनुत्तरविमानों के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके पुनः अधःसप्तम-पृथ्वी पर्यन्त उपपात आदि कहना चाहिए।

इसी प्रकार अनुत्तरविमानों और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके पुनः अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त उपपात आदि कहना चाहिए।

प्र. भंते ! जो अप्कायिक जीव इस रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा पृथ्वी के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्प में अप्कायिक के रूप में उत्पन्न होने योग्य है

तो भंते ! वह पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार करता है या पहले आहार करके पीछे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह पहले उत्पन्न होकर पीछे भी आहार करता है। पहले आहार करके पीछे भी उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"वह पहले उत्पन्न होकर पीछे भी आहार करता है, पहले आहार करके पीछे भी उत्पन्न होता है।"

द. गौतम ! अप्कायिकों के तीन समुद्घात कहे गये हैं, यथा–

१. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात,

३. मारणांतिक समुद्घात,

मारणांतिक समुद्घात से समवहत होकर देश से भी समवहत होता है और सर्व से भी समवहत होता है।

देसेणं समोहन्नमाणे पुव्विं आहारेत्ता पच्छा उववज्जिज्जा,

सव्वेणं समोहन्नमाणे पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा,
पुव्विं आहारेत्ता पच्छा उववज्जेज्जा।"

एवं पढम-दोच्चाणं अंतरा समोहयओ जाव ईसिपब्भाराए य उववाएयव्वो।

एवं एएणं कमेणं जाव तमाए अहे सत्तमाए य पुढवीए अंतरा समोहए, समोहणित्ता जाव ईसिपब्भाराए उववाएयव्वो आउकाइयत्ताए।

प. आउयाए णं भंते ! सोहम्मीसाणाणं सणंकुमार-माहिंदाण य कप्पाणं अंतरा समोहए, समोहणित्ता, जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणोदहिवलएसु आउकाइयत्ताए उववज्जित्तए

से णं भंते ! किं पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा, पुव्विं आहारेत्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! सेसं जहा पुढविकाइयाणं।

एवं एएहिं चेव अंतरा समोहयओ जाव अहे सत्तमाए पुढवीए घणोदधिवलएसु आउकाइयत्ताए उववाइयव्वो।

एवं जाव अणुत्तरविमाणाणं ईसिपब्भाराए य पुढवीए अंतरा समोहए जाव अहे सत्तमाए घणोदधिवलएसु उववाएयव्वो।

प. वाउकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए सक्करप्पभाए य पुढवीए अंतरा समोहए समोहणित्ता जे भविए सोहम्मे कप्पे वाउकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

से णं भंते ! किं पुव्विं उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा, पुव्विं आहारेज्जा पच्छा उववज्जेज्जा ?"

उ. गोयमा ! जहा पुढविकाइओ तहा वाउकाइओ वि।

णवरं–वाउकाइयाणं चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वेयणासमुग्घाए, २. कसाय समुग्घाए,
३. मारणंतिय समुग्घाए, ४. वेउव्वियसमुग्घाए।

मारणंतियसमुग्घाएणं समोहण्णमाणे देसेण वा समोहण्णइ, सव्वेण वा समोहण्णइ,

देश से समवहत होने पर पूर्व में आहार करता है और पीछे उत्पन्न होता है।

सर्व से समवहत होने पर पूर्व में उत्पन्न होता है और पीछे आहार करता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"वह पहले उत्पन्न होकर पीछे भी आहार करता है और पहले आहार करके पीछे भी उत्पन्न होता है।"

इसी प्रकार पहली और दूसरी पृथ्वी के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके अप्कायिक जीवों का (सौधर्म कल्प की तरह) ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त उपपात आदि जानना चाहिए।

इसी प्रकार इसी क्रम में तमःप्रभा और अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके अप्कायिक जीवों का ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त अप्कायिक रूप में उपपात आदि जानना चाहिए।

प्र. भंते ! जो अप्कायिक जीव सौधर्म-ईशान और सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्प के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके रत्नप्रभा-पृथ्वी के घनोदधिवलयों में अप्कायिक-रूप में उत्पन्न होने योग्य है

तो भंते ! पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार करता है या पहले आहार करके पीछे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! शेष सब कथन पृथ्वीकायिक के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार इन अन्तरालों में मरणसमुद्घात को प्राप्त अप्कायिक जीवों का अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त के घनोदधिवलयों में अप्कायिक रूप से उपपात आदि जानना चाहिए।

इसी प्रकार यावत् अनुत्तरविमान और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के अन्तराल में मरणसमुद्घात प्राप्त अप्कायिक जीवों का अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त के घनोदधिवलयों में अप्कायिक के रूप में उपपात जानना चाहिए।

प्र. भंते ! जो वायुकायिक जीव इस रत्नप्रभा और शर्कराप्रभापृथ्वी के अन्तराल में मरणसमुद्घात से समवहत होकर सौधर्मकल्प में वायुकायिक रूप में उत्पन्न होने के योग्य है,

तो भंते ! वह पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार करता है या पहले आहार कर के पीछे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों के समान वायुकायिक जीवों का भी कथन करना चाहिए।

विशेष–वायुकायिक जीवों में चार समुद्घात कहे गए हैं, यथा–

१. वेदनासमुद्घात, २. कषायसमुद्घात
३. मारणांतिक समुद्घात, ४. वैक्रिय-समुद्घात।

मारणान्तिक समुद्घात से समवहत होकर देश से भी समुद्घात करता है और सर्व से भी समुद्घात करता है।

देसेण समोहणमाणे पुव्विं आहारेत्ता पच्छा उववज्जेज्जा, सव्वेण समोहणमाणे पुव्विं उववज्जेत्ता पच्छा आहारेज्जा।

एवं जहा पुढविकाइओ तहा वाउकाइओ वि,

णवरं–अंतरेसु समोहणा णेयव्वा सेसं तं चेव जाव अणुत्तरविमाणाणं ईसीपब्भाराए य पुढवीए।

अंतरा समोहए समोहणित्ता जे भविए घणवाय तणुवाए, घणवायवलएसु तणुवायवलएसु वाउकाइयत्ताए उववज्जित्तए सेसं तं चेव जाव

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'पुव्विं वा उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा, पुव्विं वा आहारेज्जा पच्छा उववज्जेज्जा।'

–विया. स. २०, उ. ६, सु. १-४

...देश से समुद्घात करता हुआ पहले आहार ग्रहण करके फिर उत्पन्न होता है और सर्व से समुद्घात करता हुआ पहले उत्पन्न होकर फिर आहार ग्रहण करता है।

इसी प्रकार जैसे पृथ्वीकायिक का कथन किया उसी प्रकार वायुकायिक के लिए कहना चाहिए।

विशेष–अन्तरालों में समुद्घात कहना चाहिए। शेष पूर्ववत् है।

अनुत्तरविमान और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बीच में समुद्घात करके जो घनवात, तनुवात, घनवातवलय, तनुवातवलय में वायुकायिक के रूप में उत्पन्न होने योग्य है इत्यादि शेष पूर्ववत् है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार ग्रहण करता है और पहले आहार ग्रहण करके पीछे उत्पन्न होता है।'

५. वणस्सइजीवाणं अप्पाहार–महाहारकालं परूवणं–

प. वणस्सइकाइया णं भंते ! कं कालं सव्वप्पाहारगा वा, सव्वमहाहारगा वा भवंति ?

उ. गोयमा ! पाउस-वरिसारत्तेसु णं एत्थ णं वणस्सइकाइया सव्वमहाहारगा भवंति। तदाणंतरं च णं सरदे, तदाणंतरं च णं हेमंते, तदाणंतरं च णं वसंते, तदाणंतरं च णं गिम्हे। गिम्हासु णं वणस्सइकाइया सव्वापाहारगा भवंति।

प. जइ णं भंते ! गिम्हासु वणस्सइकाइया सव्वप्पाहारगा भवंति, कम्हा णं भंते ! गिम्हासु बहवे वणस्सइकाइया पत्तिया पुप्फिया फलिया हरितगरेरिज्जमाणा सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा-उवसोभेमाणा चिट्ठंति ?

उ. गोयमा ! गिम्हासु णं बहवे उसिणजोणिया जीवा य पुग्गला य वणस्सइकाइयत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति,

एवं खलु गोयमा ! गिम्हासु बहवे वणस्सइकाइया पत्तिया पुप्फिया फलिया जाव चिट्ठंति।

–विया. स. ७, उ. ३, सु. १-२

५. वनस्पतिकायिक जीवों के अल्पाहार और महाहार काल का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! वनस्पतिकायिक जीव किस काल में (सबसे अल्प आहार करने वाले होते हैं और किस काल में) सबसे अधिक आहार करने वाले होते हैं ?

उ. गौतम ! प्रावृट् (पावस) ऋतु (श्रावण और भाद्रपद मास) में तथा वर्षा ऋतु (आश्विन और कार्तिक मास) में वनस्पतिकायिक जीव सर्वमहाहारी होते हैं। इसके पश्चात् शरद् ऋतु में, तदनन्तर हेमन्त ऋतु में, उसके बाद वसन्त ऋतु में और तत्पश्चात् ग्रीष्म ऋतु में वनस्पतिकायिक जीव क्रमशः अल्पाहारी होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में वे सर्वाल्पाहारी होते हैं।

प्र. भन्ते ! यदि ग्रीष्म ऋतु में वनस्पतिकायिक जीव सर्वाल्पाहारी होते हैं, तो बहुत से वनस्पतिकायिक ग्रीष्म ऋतु में पत्तों वाले, फूलों वाले, फलों वाले, हरियाली से देदीप्यमान (हरे-भरे) एवं श्री (शोभा) से अतीव सुशोभित कैसे होते हैं ?

उ. हे गौतम ! ग्रीष्म ऋतु में बहुत-से उष्णयोनि वाले जीव और पुद्गल वनस्पतिकाय के रूप में उत्पन्न होते हैं, विशेष रूप से उत्पन्न होते हैं, वृद्धि को प्राप्त होते हैं और विशेष रूप से वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

हे गौतम ! इस कारण से ग्रीष्म ऋतु में बहुत-से वनस्पतिकायिक पत्तों वाले, फूलों वाले, फलों वाले यावत् सुशोभित होते हैं।

६. मूलाईणं आहारगहण विहि परूवणं–

प. से नूणं भंते ! मूला मूलजीवफुडा, कंदा कंदजीवफुडा जाव बीया बीयजीवफुडा ?

उ. हंता, गोयमा ! मूला मूलजीवफुडा जाव बीया बीयजीवफुडा।

६. मूलादि की आहार ग्रहण विधि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या वनस्पतिकाय के मूल, निश्चय ही मूलजीवों से स्पृष्ट होते हैं, कन्द, कन्द के जीवों से स्पृष्ट होते हैं यावत् बीज, बीज के जीवों से स्पृष्ट होते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! मूल, मूल के जीवों से स्पृष्ट होते हैं यावत् बीज, बीज के जीवों से स्पृष्ट होते हैं।

प. जइ णं भंते ! मूला मूलजीवफुडा **जाव** बीया बीयजीवफुडा, कम्हा णं भंते। वणस्सइकाइया आहारेंति ? कम्हा परिणामेंति ?

उ. गोयमा ! मूला मूलजीवफुडा पुढविजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेंति।

एवं कंदा कंदजीवफुडा मूलजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेंति।

एवं **जाव** बीया बीयजीवफुडा, फलजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेंति।

–विया. स. ७, उ. ३, सु. ३-४

प्र. भन्ते ! यदि मूल, मूलजीवों से स्पृष्ट होते हैं **यावत्** बीज, बीज के जीवों से स्पृष्ट होते हैं, तो फिर भन्ते ! वनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार से आहार करते हैं और किस तरह से उसे परिणमाते हैं ?

उ. गौतम ! मूल, मूल के जीवों से व्याप्त हैं और वे पृथ्वी के जीव के साथ सम्बद्ध होते हैं, इस तरह से वनस्पतिकायिक जीव आहार करते हैं और उसे परिणमाते हैं।

इसी प्रकार कन्द, कन्द के जीवों के साथ स्पृष्ट होते हैं और मूल के जीवों से सम्बद्ध रहते हैं, तभी आहार करते हैं और तभी परिणमाते हैं।

इसी प्रकार **यावत्** बीज, बीज के जीवों से व्याप्त होते हैं और वे फल के जीवों के साथ सम्बद्ध रहते हैं; इससे वे आहार करते हैं और उसे परिणमाते है।

७. जीवाईसु अणाहारगत्तं सव्वप्पाहारगत्त य समय परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! कं समयं "अणाहारगे" भवइ ?

उ. गोयमा ! **पढमे समए** सिय आहारगे, सिय अणाहारगे,

बिइए समए सिय आहारगे, सिय अणाहारगे,

तइए समए सिय आहारगे, सिय अणाहारगे,

चउत्थे समए नियमा आहारगे।
एवं दंडओ भाणियव्वो
जीवा य, एगिंदिया य चउत्थे समए

सेसा तइए समए,

प. जीवे णं भंते ! कं समयं "सव्वप्पाहारए" भवइ ?

उ. गोयमा ! पढमसमयोववण्णए वा, चरमसमयभवत्थए वा, एत्थ णं जीवे सव्वप्पाहारए भवइ।

दं. १-२४. सव्वे दंडगा भाणियव्वा जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. ७, उ. १, सु. ३-४

७. जीवादिकों में अनाहारकत्व और सर्वाल्पाहारकत्व के समय का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! (परभव में जाता हुआ) जीव किस समय में अनाहारक होता है ?

उ. गौतम ! जीव, **प्रथम समय** में कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है,

द्वितीय समय में भी कभी आहारक और कभी अनाहारक होता है,

तृतीय समय में भी कभी आहारक और कभी अनाहारक होता है,

परन्तु **चौथे समय** में **निश्चित रूप से** आहारक होता है।
इसी प्रकार चौवीस ही दण्डकों में कहना चाहिए।
सामान्य जीव और एकेन्द्रिय ही चौथे समय में आहारक होते हैं।
इनके सिवाय शेष जीव, तीसरे समय में आहारक होते हैं।

प्र. भन्ते ! जीव किस समय में सबसे अल्प आहारक होता है ?

उ. गौतम ! उत्पत्ति के प्रथम समय में या भव (जीवन) के अन्तिम (चरम) समय में जीव सबसे अल्प आहार वाला होता है।

दं. १-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौवीस ही दण्डकों में कहना चाहिए।

८. उववज्जमाणाईसु चउवीसदंडएसु आहारणस्स चउभंग परूवणं–

प. दं. १. नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे–
१. किं देसेणं देसे आहारेइ,
२. देसेणं सव्वं आहारेइ,
३. सव्वेणं देसं आहारेइ,
४. सव्वेणं सव्वं आहारेइ ?

८. उपपद्यमानादि चौवीस दंडकों में आहारण के चतुर्भंगों का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नारकों में उत्पन्न होता हुआ नारक जीव–
१. क्या एक भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है,
२. एक भाग से सर्वभाग को आश्रित करके आहार करता है,
३. सर्व भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है,
४. सर्वभागों से सर्वभागों को आश्रित करके आहार करता है ?

उ. गोयमा ! १. नो देसेणं देसं आहारेइ,

२. नो देसेणं सव्वं आहारेइ,

३. सव्वेणं वा देसं आहारेइ,

४. सव्वेणं वा सव्वं आहारेइ।

दं.२-२४. एवं जाव वेमाणिए। -विया. स. १, उ. ७, सु. [illegible]

प. दं.१. नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववन्ने

१. किं देसेणं देसं आहारेइ,

२. देसेणं सव्वं आहारेइ,

३. सव्वेणं देसं आहारेइ,

४. सव्वेणं सव्वं आहारेइ ?

उ. गोयमा ! १. नो देसेणं देसं आहारेइ,

२. नो देसेणं सव्वं आहारेइ,

३. सव्वेणं वा देसं आहारेइ,

४. सव्वेणं वा सव्वं आहारेइ।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिए।

एव उव्वट्टमाणे वि उव्वट्टे वि दो दंडगा जाव वेमाणिए।

-विया. स. १, उ. ७, सु. ५

प. दं. १. नेरइए णं भंते ! नेरइएसु उववज्जमाणे-

१. किं अद्धेणं अद्धं आहारेइ,

२. अद्धेणं सव्वं आहारेइ,

३. सव्वेणं अद्धं आहारेइ,

४. सव्वेणं सव्वं आहारेइ।

उ. गोयमा ! १. नो अद्धेणं अद्धं आहारेइ,

२. नो अद्धेणं सव्वं आहारेइ,

३. सव्वेणं वा अद्धं आहारेइ,

४. सव्वेणं वा सव्वं आहारेइ।

उ. गौतम ! १. एक भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार नहीं करता है,

२. एक भाग से सर्वभाग को आश्रित करके आहार नहीं करता है,

३. सर्वभाग से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है,

४. सर्वभाग से सर्वभाग को आश्रित करके आहार करता है।

दं.२-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों में उत्पन्न हुआ नैरयिक

१. क्या एक भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है,

२. एक भाग से सर्वभाग को आश्रित करके आहार करता है,

३. सर्व भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है,

४. सर्व भाग से सर्व भाग को आश्रित करके आहार करता है ?

उ. गौतम ! १. एक भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार नहीं करता है,

२. एक भाग से सर्व भाग को आश्रित करके आहार नहीं करता है,

३. सर्व भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है,

४. सर्व भाग से सर्व भाग को आश्रित करके आहार करता है,

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार उद्वर्तमान और उद्वर्तित के भी वैमानिकों पर्यन्त दो दंडक जानने चाहिए।

प्र. दं.१. भंते ! नैरयिकों में उत्पन्न होता हुआ नैरयिक-

१. क्या अर्धभाग से अर्धभाग को आश्रित करके आहार करता है ?

२. अर्धभाग से सर्वभाग को आश्रित करके आहार करता है ?

३. सर्व भाग से अर्ध भाग को आश्रित करके आहार करता है ?

४. सर्व भाग से सर्व भाग को आश्रित करके आहार करता है ?

उ. गौतम ! १. अर्धभाग से अर्धभाग को आश्रित करके आहार नहीं करता है।

२. अर्ध भाग से सर्व भाग को आश्रित करके आहार नहीं करता है।

३. सर्व भाग से अर्ध भाग को आश्रित करके आहार करता है।

४. सर्व भाग से सर्व भाग को आश्रित करके आहार करता है।

दं.२-२४. एवं जाव वेमाणिए।
एवं उववण्णे वि जाव वेमाणिए।

एवं उव्वट्टमाणे वि, उव्वट्टे वि दो दंडगा जाव वेमाणिए।
–विया. स. १, उ. ७, सु. ६

दं.२-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।
इसी प्रकार उत्पन्न हुए के भी वैमानिक पर्यन्त कहने चाहिए।

इसी प्रकार उद्वर्तमान और उद्वर्तित के भी वैमानिकों पर्यन्त दो दंडक कहने चाहिए।

९. चउवीसदंडएसु वीचि-अवीचिदव्वाहारण परूवणं–

प. दं.१. नेरइया णं भंते ! किं वीचिदव्वाइं आहारेंति, अवीचिदव्वाइं आहारेंति ?
उ. गोयमा ! नेरइया वीचिदव्वाइं पि आहारेंति, अवीचिदव्वाइं पि आहारेंति।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"नेरइया वीचिदव्वाइं पि आहारेंति, अवीचिदव्वाइं पि आहारेंति ?"
उ. गोयमा ! जे णं नेरइया एगपएसूणाइं पि दव्वाइं आहारेंति,

ते णं नेरइया वीचिदव्वाइं आहारेंति,
जे णं नेरइया पडिपुण्णाइं दव्वाइं आहारेंति,
ते णं नेरइया अवीचिदव्वाइं आहारेंति।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"नेरइया वीचिदव्वाइं पि आहारेंति, अवीचिदव्वाइं पि आहारेंति।"
दं.२-२४. एवं जाव वेमाणिया।
–विया. स. १, उ. ६, सु. ४-५

९. चौबीस दण्डकों में वीचि-अवीचिद्रव्यों के आहारण का प्ररूपण–

प्र. दं.१. भन्ते ! नैरयिक जीव वीचिद्रव्यों का आहार करते हैं, अथवा अवीचिद्रव्यों का आहार करते हैं ?
उ. गौतम ! नैरयिक जीव वीचिद्रव्यों का भी आहार करते हैं और अवीचिद्रव्यों का भी आहार करते हैं।
प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक जीव वीचिद्रव्यों का भी आहार करते हैं और अवीचिद्रव्यों का भी आहार करते हैं ?"
उ. गौतम ! जो नैरयिक एक प्रदेश न्यून (कम) द्रव्यों का आहार करते हैं,
वे नैरयिक वीचिद्रव्यों का आहार करते हैं,
जो नैरयिक परिपूर्ण द्रव्यों का आहार करते हैं,
वे नैरयिक अवीचिद्रव्यों का आहार करते हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक जीव वीचिद्रव्यों का भी आहार करते हैं और अवीचिद्रव्यों का भी आहार करते हैं।"
दं.२-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

१०. चउवीसदंडएसु आहाराभोगता परूवणं–

प. दं.१. णेरइयाणं भंते ! आहारे किं आभोगणिव्वत्तिए अणाभोगणिव्वत्तिए ?
उ. गोयमा ! आभोगणिव्वत्तिए वि, अणाभोगणिव्वत्तिए वि।

दं.२-२४. एवं असुरकुमाराणं जाव वेमाणियाणं।

णवरं–एगिंदियाणं णो आभोगणिव्वत्तिए, अणाभोगणिव्वत्तिए। *–पण्ण. प. ३४, सु. २०३८-२०३९*

१०. चौबीस दंडकों में आहार-आभोगता का प्ररूपण–

प्र. दं.१. भंते ! नैरयिकों का आहार आभोगनिर्वर्तित होता है या अनाभोगनिर्वर्तित होता है ?
उ. गौतम ! उनका आहार आभोगनिर्वर्तित भी होता है और अनाभोगनिर्वर्तित भी होता है।
दं. २-२४. इसी प्रकार असुरकुमारों से वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।
विशेष–एकेन्द्रिय जीवों का आहार आभोगनिर्वर्तित नहीं होता है किन्तु अनाभोगनिर्वर्तित होता है।

११. चउवीसदंडएसु आहारखेत्त परूवणं–

प. दं.१. नेरइया णं भंते ! जे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति,

ते किं आयसरीरक्खेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति,
अणंतरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति,
परंपरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति ?
उ. गोयमा ! आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति,
नो अणंतरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति,

११. चौवीसदण्डकों में आहार क्षेत्र का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक जीव, जिन पुद्गलों को आत्मा द्वारा आहार रूप में ग्रहण करते हैं,
क्या वे आत्म शरीर क्षेत्रावगाढ़ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं ?
अनन्तर क्षेत्रावगाढ़ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं ?
परम्पर क्षेत्रावगाढ़ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं ?
उ. गौतम ! वे आत्मा-शरीर क्षेत्रावगाढ़ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं,
किन्तु न तो अनन्तर क्षेत्रावगाढ़ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करते हैं,

नो परंपरखेत्तोगाढे पोग्गले अत्तमायाए आहारेंति।

दं. २-२४. **जहा नेरइया तहा जाव वेमाणियाणं दंडओ।**

–विया. स. ६, उ. १०, सु. १२-१३

और न ही परम्पर-क्षेत्रावगाढ़ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण द्वारा करते हैं।

दं.२-२४. जिस प्रकार नैरयिकों के लिए कहा, उसी प्रकार वैमानिकों-पर्यन्त आलापक कहना चाहिए।

१२. सेयकालं चउवीसदंडएहिं पोग्गल आहरण-णिज्जरण परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति,

तेसि णं भंते ! पोग्गलाणं सेयकालंसि कइभागं आहारेंति, कइभागं निज्जरेंति ?

उ. मागंदियपुत्ता। असंखेज्जइभागं आहारेंति, अणंतभागं निज्जरेंति।

प. चक्किया णं भंते ! केइ तेसु निज्जरापोग्गलेसु आसइत्तए वा जाव तुयट्टित्तए वा ?

उ. मागंदियपुत्ता ! नो इणट्ठे समट्ठे, अणाहरणमेयं बुइयं समणाउसो !

दं.२-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. १८, उ. ३, सु. २४-२६

१२. भविष्यकाल में चौवीस दण्डकों द्वारा पुद्गलों का आहरण और निर्जरण का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक जिन पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते हैं,

भन्ते ! उन पुद्गलों का कितना भाग भविष्यकाल में आहार रूप में ग्रहण होता है और कितना भाग त्यागा जाता है ?

उ. माकन्दिकपुत्र ! असंख्यातवें भाग का आहार रूप में ग्रहण होता है और अनन्तवाँ भाग त्यागा जाता है।

प्र. भन्ते ! क्या कोई जीव उन निर्ज़रा पुद्गलों पर बैठने यावत् सोने (करवट वदलने) में समर्थ हैं ?

उ. माकन्दिकपुत्र ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे आयुष्यमन् श्रमण! ये निर्जरा पुद्गल अनाधार रूप वाले कहे गये हैं।

दं.२-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

१३. चउवीसदंडएसु-णिज्जरापोग्गलाणं जाणण-पासण- आहरण परूवणं–

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! ते णिज्जरापोग्गले किं जाणंति, पासंति, आहारेंति ? उदाहु ण जाणंति, ण पासंति, ण आहारेंति ?

उ. गोयमा ! णेरइया णं ते णिज्जरापोग्गले ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति।

दं. २-२०. एवं जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया।

प. दं. २१. मणूसा णं भंते ! णिज्जरापोग्गले किं जाणंति, पासंति, आहारेंति ? उदाहु ण जाणंति, ण पासंति, ण आहारेंति ?

उ. गोयमा ! **अत्थेगइया** जाणंति, पासंति, आहारेंति, **अत्थेगइया** ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति,

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
अत्थेगइया जाणंति, पासंति, आहारेंति,

अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति।

उ. गोयमा ! मणूसा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सण्णिभूया, २. असण्णिभूया य।
१. तत्थ णं जे ते असण्णिभूया ते णं ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति,
२. तत्थ णं जे ते सण्णिभूया ते दुविहा पण्त्ता, तं जहा–
१. उवउत्ता य, २. अणुवउत्ता य।

१३. चौबीस दण्डकों में निर्जरा पुद्गलों के जानने देखने और आहरण का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंतें ! क्या नारक उन निर्जरा पुद्गलों को जानते-देखते हैं और आहार करते हैं, अथवा उन्हें नहीं जानते नहीं देखते और नहीं आहार करते हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक उन निर्जरा-पुद्गलों को जानते नहीं, देखते नहीं किन्तु आहार (ग्रहण) करते हैं।

दं. २-२०. इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों पर्यन्त के लिए कहना चाहिए।

प्र. दं. २१. भंते ! क्या मनुष्य निर्जरा पुद्गलों को जानते-देखते हैं और (उनका) आहार करते हैं ? अथवा (उन्हें) नहीं जानते, नहीं देखते और न ही आहार करते हैं ?

उ. गौतम ! कोई-कोई मनुष्य (उनको) जानते-देखते हैं और (उनका) आहार करते हैं, कोई-कोई मनुष्य नहीं जानते, नहीं देखते और (उनका) आहार करते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'कोई-कोई मनुष्य (उनको) जानते-देखते हैं और (उनका) आहार करते हैं।
कोई-कोई मनुष्य नहीं जानते, नहीं देखते और आहार करते हैं ?'

उ. गौतम ! मनुष्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. संज्ञीभूत, २. असंज्ञीभूत।
१. उनमें से जो असंज्ञीभूत हैं, वे (निर्जरा-पुद्गलों को) नहीं जानते, नहीं देखते किन्तु आहार करते हैं।
२. उनमें से जो संज्ञीभूत हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. उपयोग युक्त २. उपयोग अयुक्त।

१. तत्थ णं जे ते अणुवउत्ता ते ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति,

२. तत्थ णं जे ते उववउत्ता ते जाणंति, पासंति, आहारेंति,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति,

अत्थेगइया जाणंति, पासंति, आहारेंति।"

दं. २२-२३. वाणमंतर-जोइसिया जहा णेरइया।

प. दं. २४. वेमाणिया णं भंते ! ते णिज्जरापोग्गले किं जाणंति, पासंति, आहारेंति? उदाहु ण जाणंति, ण पासंति, ण आहारेंति?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया जाणंति, पासंति, आहारेंति, अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"अत्थेगइया जाणंति, पासंति, आहारेंति,

अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति।

उ. गोयमा ! वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. माईमिच्छद्दिट्ठिउववण्णगा य,

२. अमाइसम्मद्दिट्ठिउववण्णगा य।

१. तत्थ णं जे ते माईमिच्छद्दिट्ठिउववण्णगा ते णं ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति।

२. तत्थ णं जे ते अमाईसम्मद्दिट्ठिउववण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अणंतरोववण्णगा य, २. परंपरोववण्णगा य।

१. तत्थ णं जे ते अणंतरोववण्णगा ते णं ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति।

२. तत्थ णं जे ते परंपरोववण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तगा य, २. अपज्जत्तगा य।

१. तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति।

२. तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. उवउत्ता य, २. अणुवउत्ता य।

१. तत्थ णं जे ते अणुवउत्ता ते णं ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति,

२. तत्थ णं जे ते उवउत्ता ते णं जाणंति, पासंति, आहारेंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति,

१. उनमें से जो उपयोगअयुक्त हैं, वे नहीं जानते, नहीं देखते किन्तु आहार करते हैं।

२. उनमें से जो उपयोग युक्त हैं वे जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"कोई-कोई मनुष्य नहीं जानते, नहीं देखते (किन्तु) आहार करते हैं।

कोई-कोई मनुष्य जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं।

दं. २२-२३. वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देवों का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

प्र. दं. २४. भंते ! क्या वैमानिक उन निर्जरा-पुद्गलों को जानते-देखते हैं और आहार करते हैं, अथवा उन्हें नहीं जानते, नहीं देखते और न ही आहार करते हैं?

उ. गौतम ! कोई-कोई उन निर्जरा-पुद्गलों को जानते-देखते हैं और आहार करते हैं, कोई कोई नहीं जानते, नहीं देखते किन्तु आहार करते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि–

"कोई-कोई उनको जानते हैं देखते हैं और (उनका) आहार करते हैं।

कोई-कोई नहीं जानते, नहीं देखते किन्तु आहार करते हैं?"

उ. गौतम ! वैमानिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक,

२. अमायी- सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक।

१. उनमें से जो मायी-मिथ्यादृष्टि उपपन्नक होते हैं, वे नहीं जानते, नहीं देखते किन्तु आहार करते हैं।

२. उनमें से जो अमायी-सम्यग्दृष्टि उपपन्नक हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अनन्तरोपपन्नक २. परम्परोपपन्नक।

१. उनमें से जो अनन्तरोपपन्नक हैं, वे नहीं जानते, नहीं देखते किन्तु आहार करते हैं।

२. उनमें से जो परम्परोपपन्नक हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

१. उनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे नहीं जानते, नहीं देखते किन्तु आहार करते हैं।

२. उनमें जो पर्याप्तक हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. उपयोग-युक्त, २. उपयोग-अयुक्त।

१. जो उपयोग अयुक्त हैं, वे नहीं जानते, नहीं देखते किन्तु आहार करते हैं।

२. उनमें से जो उपयोग युक्त हैं, वे जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"कोई-कोई नहीं जानते, नहीं देखते, किन्तु आहार करते हैं,

अत्थेगइया जाणंति, पासंति, आहारेंति[1]।''

–पण्ण. प. १५, उ. १, सु. ९९५-९९८

कोई-कोई जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं।''

१४. आहार परूवणस्स एक्कारसद्दारा–

१. सचित्ताऽऽ २. हारट्ठी, ३. केवइ किं ४. वा वि ५. सव्वओ चेव।

६. कइभागं ७. सव्वे खलु, ८. परिणामे चेव बोधव्वे॥

९. एगिंदियसरीरादी, १०. लोमाहारे ११. तहेव मणभक्खी।

एएसिं तु पयाणं, विभावणा होइ कायव्वा॥

–पण्ण. प. २८, उ. १, सु. १७९३ (गा. २१७-२१८)

१४. आहार-प्ररूपण के ग्यारह द्वार–

१. सचित्ताहार, २. आहारार्थी, ३. आहारेच्छाकाल, ४. क्या आहार करते हैं, ५. सब प्रदेशों से आहार करके,

६. कितने भाग का आस्वादन, ७. गृहीत पुद्‌गलों का आहार, ८. आहार के पुद्‌गलों का परिणमन, ९. एकेन्द्रियादि के शरीरों का आहार, १०. लोमाहार करने वाले, ११. मनोभक्षी आहार।

इन पदों के द्वारा आहार संबंधी विवेचन किया जाएगा।

१५. चउवीसदंडएसु सचित्ताइ आहारा–

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! किं सचित्ताहारा, अचित्ताहारा, मीसाहारा?

उ. गोयमा ! णो सचित्ताहारा, अचित्ताहारा, णो मीसाहारा।

दं. २-११, २२-२४ एवं असुरकुमारा जाव वेमाणिया सव्वे देवा।

दं. १२-२१. पुढविकाइया जाव मणूसा सचित्ताहारा वि, अचित्ताहारा वि, मीसाहारा वि।

–पण्ण. प. २८, उ. १, सु. १७९४

१५. चौवीस दण्डकों में सचित्तादि आहार–

प्र. दं. १. भंते ! क्या नैरयिक सचित्ताहारी होते हैं, अचित्ताहारी होते हैं या मिश्राहारी होते हैं?

उ. गौतम ! नैरयिक सचित्ताहारी नहीं होते और मिश्राहारी भी नहीं होते हैं, किन्तु अचित्ताहारी होते हैं।

दं. २-११, २२-२४. इसी प्रकार असुरकुमारों से वैमानिकों पर्यन्त के सभी देव जानने चाहिए।

दं. १२-२१. पृथ्वीकाय से मनुष्यों पर्यन्त सचित्ताहारी भी हैं, अचित्ताहारी भी हैं और मिश्राहारी भी हैं।

१६. नेरइएसु आहारट्ठिआइदारसत्तगं–

प. १. णेरइया णं भंते ! आहारट्ठी?

उ. हंता, गोयमा ! आहारट्ठी[2]।

प. २. णेरइया णं भंते ! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ?

उ. गोयमा ! णेरइयाणं आहारे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आभोगणिव्वत्तिए य, २. अणाभोगणिव्वत्तिए य।

(१) तत्थ णं जे से अणाभोगणिव्वत्तिए, से णं अणुसमयमविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

(२) तत्थ णं जे से आभोगणिव्वत्तिए, से णं असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

प. ३. णेरइया णं भंते ! किमाहारमाहारेंति?

उ. गोयमा ! दव्वओ अणंतपदेसियाइं,
खेत्तओ असंखेज्जपदेसोगाढाइं,
कालओ अण्णतरठिईयाइं,
भावओ वण्णमंताइं, गंधमंताइं, रसमंताइं, फासमंताइं।

१६. नैरयिकों में आहारार्थी आदि सात द्वार–

प्र. १. भंते ! क्या नैरयिक आहारार्थी होते हैं?

उ. हाँ, गौतम ! वे आहारार्थी होते हैं।

प्र. २. भंते ! नैरयिकों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है?

उ. गौतम ! नैरयिकों का आहार दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आभोगनिर्वर्तित, २. अनाभोगनिर्वर्तित।

(१) उनमें से जो अनाभोगनिर्वर्तित हैं, उन्हें आहार की अभिलाषा प्रति समय निरन्तर उत्पन्न होती है।

(२) उनमें जो आभोगनिर्वर्तित है, उसे आहार की अभिलाषा असंख्यात-समय के अन्तर्मुहूर्त में उत्पन्न होती है।

प्र. ३. भंते ! नैरयिक कौन-सा आहार ग्रहण करते हैं?

उ. गौतम ! वे द्रव्यतः-अनन्तप्रदेशी (पुद्‌गलों का)
क्षेत्रतः–असंख्यातप्रदेशों में अवगाढ (रहे हुए),
कालतः–किसी भी (अन्यतर) कालस्थिति वाले,
भावतः–वर्णवान्, गन्धवान्, रसवान् और स्पर्शवान् पुद्‌गलों का आहार ग्रहण करते हैं।

---

१. विया. स. १८, उ. ३ सु. (९/२-६)
२. विया. स. १, उ. १, सु. ६/१, ३

प. (१) जाइं भावओ-वण्णमंताइं आहारेंति– ताइं किं एगवण्णाइं आहारेंति जाव किं पंचवण्णाइं आहारेंति?

उ. गोयमा ! **ठाणमग्गणं पडुच्च**–एगवण्णाइं पि आहारेंति जाव पंचवण्णाइं पि आहारेंति।

विहाणमग्गणं पडुच्च–कालवण्णाइं पि आहारेंति जाव सुक्किलाइं पि आहारेंति।

प. (२) जाइं **वण्णओ** कालवण्णाइं पि आहारेंति–

ताइं किं एगगुणकालाइं आहारेंति जाव दसगुणकालाइं आहारेंति, संखेज्जगुणकालाइं, असंखेज्जगुणकालाइं, अणंतगुणकालाइं आहारेंति?

उ. गोयमा ! एगगुणकालाइं पि आहारेंति जाव अणंतगुणकालाइं पि आहारेंति।

(३) एवं जाव सुक्किलाइं पि।

(४) एवं गंधओ वि, रसओ वि।

(१) जाइं भावओ फासमंताइं–

ताइं णो एगफासाइं आहारेंति,

णो दुफासाइं आहारेंति,

णो तिफासाइं आहारेंति,

चउफासाइं आहारेंति जाव अट्ठफासाइं पि आहारेंति।

विहाणमग्गणं पडुच्च कक्खडाइं पि आहारेंति जाव लुक्खाइं पिआहारेंति।

प. (२) जाइं फासओ कक्खडाइं आहारेंति,

ताइं किं एगगुणकक्खडाइं आहारेंति जाव अणंतगुणकक्खडाइं आहारेंति?

उ. गोयमा ! एगगुणकक्खडाइं पि आहारेंति जाव अणंतगुणकक्खडाइं पि आहारेंति।

एवं अट्ठ वि फासा भाणियव्वा जाव अणंतगुणलुक्खाइं पि आहारेंति।

प. (३) जाइं भंते ! अणंतगुणलुक्खाइं आहारेंति,

ताइं किं पुट्ठाइं आहारेंति, अपुट्ठाइं आहारेंति?

उ. गोयमा ! पुट्ठाइं आहारेंति, णो अपुट्ठाइं आहारेंति।

प. जाइं भंते ! पुट्ठाइं आहारेंति,
ताइं किं ओगाढाइं आहारेंति, अणोगाढाइं आहारेंति?

प्र. (१) भंते ! भाव से (नैरयिक) वर्ण वाले जिन पुद्‌गलों का आहार करते हैं, क्या वे एक वर्ण वाले पुद्‌गलों का आहार करते हैं **यावत्** पांच वर्ण वाले पुद्‌गलों का आहार करते हैं?

उ. गौतम ! वे स्थानमार्गणा (सामान्य) की अपेक्षा से एक वर्ण वाले पुद्‌गलों का भी आहार करते हैं **यावत्** पांच वर्ण वाले पुद्‌गलों का भी आहार करते हैं।

विधान (भेद) मार्गणा की अपेक्षा से काले वर्ण वाले पुद्‌गलों का भी आहार करते हैं **यावत्** शुक्ल (श्वेत) वर्ण वाले पुद्‌गलों का भी आहार करते हैं।

प्र. (२) वे वर्ण से जिन काले वर्ण वाले पुद्‌गलों का आहार करते हैं,

क्या वे एक गुण काले पुद्‌गलों का आहार करते हैं **यावत्** दस गुण काले, संख्यात गुण काले, असंख्यातगुण काले या अनन्तगुण काले वर्ण वाले पुद्‌गलों का आहार करते हैं?

उ. गौतम ! वे एक गुण काले पुद्‌गलों का भी आहार करते हैं **यावत्** अनन्तगुण काले पुद्‌गलों का भी आहार करते हैं।

(३) इसी प्रकार शुक्लवर्ण पर्यन्त जानना चाहिए।

(४) इसी प्रकार गन्ध और रस की अपेक्षा से भी पूर्ववत् आलापक कहने चाहिए।

(१) जो भाव से स्पर्श वाले पुद्‌गलों का आहार करते हैं,

वे न तो एक स्पर्श वाले पुद्‌गलों का आहार करते हैं,

न दो स्पर्श वाले पुद्‌गलों का आहार करते हैं,

न तीन स्पर्श वाले पुद्‌गलों का आहार करते हैं, अपितु चतु:स्पर्शी **यावत्** अष्टस्पर्शी पुद्‌गलों का आहार करते हैं।

विधान (भेद) मार्गणा की अपेक्षा से वे कर्कश **यावत्** रूक्ष पुद्‌गलों का भी आहार करते हैं।

प्र. (२) भन्ते ! वे जिन कर्कश स्पर्श वाले पुद्‌गलों का आहार करते हैं,

क्या वे एकगुण कर्कश पुद्‌गलों का आहार करते हैं **यावत्** अनन्तगुण कर्कश पुद्‌गलों का आहार करते हैं?

उ. गौतम ! वे एकगुण कर्कश पुद्‌गलों का भी आहार करते हैं यावत् अनन्तगुण कर्कश पुद्‌गलों का भी आहार करते हैं।

इसी प्रकार क्रमशः आठों ही स्पर्शों के विषय में यावत् अनन्तगुण रुक्ष पुद्‌गलों का भी आहार करते हैं यहां तक कहना चाहिए।

प्र. (३) भन्ते ! वे जिन अनन्तगुण रुक्ष पुद्‌गलों का आहार करते हैं,

क्या वे स्पृष्ट पुद्‌गलों का आहार करते हैं या अस्पृष्ट पुद्‌गलों का आहार करते हैं?

उ. गौतम ! वे स्पृष्ट पुद्‌गलों का आहार करते हैं, अस्पृष्ट पुद्‌गलों का आहार नहीं करते हैं।

प्र. भन्ते ! जिन स्पृष्ट पुद्‌गलों का आहार करते हैं,
क्या वे अवगाढ पुद्‌गलों का आहार करते हैं, अथवा अनवगाढ पुद्‌गलों का आहार करते हैं?

उ. गोयमा ! ओगाढाइं आहारेंति, णो अणोगाढाइं आहारेंति।

प. जाइं भंते ! ओगाढाइं आहारेंति,
ताइं किं अणंतरोगाढाइं आहारेंति, परंपरोगाढाइं आहारेंति ?

उ. गोयमा ! अणंतरोगाढाइं आहारेंति, णो परंपरोगाढाइं आहारेंति।

प. जाइं भंते ! अणंतरोगाढाइं आहारेंति,
ताइं किं अणूइं आहारेंति, बादराइं आहारेंति ?

उ. गोयमा ! अणूइं पि आहारेंति, बादराइं पि आहारेंति।

प. जाइं भंते ! अणूइं पि आहारेंति, बादराइं पि आहारेंति,
ताइं किं उड्ढं आहारेंति? अहे आहारेंति? तिरियं आहारेंति ?

उ. गोयमा ! उड्ढं पि आहारेंति, अहे वि आहारेंति, तिरियं पि आहारेंति।

प. जाइं भंते ! उड्ढं पि आहारेंति, अहे वि आहारेंति, तिरियं पि आहारेंति,
ताइं किं आइं आहारेंति ? मज्झे आहारेंति ? पज्जवसाणे आहारेंति ?

उ. गोयमा ! आइं पि आहारेंति, मज्झे वि आहारेंति, पज्जवसाणे वि आहारेंति।

प. जाइं भंते ! आइं पि आहारेंति, मज्झे वि आहारेंति, पज्जवसाणे वि आहारेंति
ताइं किं सविसए आहारेंति ? अविसए आहारेंति ?

उ. गोयमा ! सविसए आहारेंति, णो अविसए आहारेंति।

प. जाइं भंते ! सविसए आहारेंति,
ताइं किं आणुपुव्विं आहारेंति ? अणाणुपुव्विं आहारेंति ?

उ. गोयमा ! आणुपुव्विं आहारेंति, णो अणाणुपुव्विं आहारेंति।

प. जाइं भंते ! आणुपुव्विं आहारेंति,
ताइं किं तिदिसिं आहारेंति जाव छद्दिसिं आहारेंति ?[1]

उ. गोयमा ! णियमा छद्दिसिं आहारेंति।

ओसण्णकारणं पडुच्च–
वण्णओ-काल-नीलाइं,
गंधओ-दुब्भिगंधाइं,

उ. गौतम ! वह अवगाढ पुद्गलों का आहार करते हैं, अनवगाढ पुद्गलों का आहार नहीं करते हैं।

प्र. भन्ते ! जिन अवगाढ पुद्गलों का आहार करते हैं,
क्या अनन्तरावगाढ पुद्गलों का आहार करते हैं, अथवा परम्परावगाढ पुद्गलों का आहार करते हैं ?

उ. गौतम ! वह अनन्तरावगाढ पुद्गलों का आहार करते हैं, किन्तु परम्परावगाढ पुद्गलों का आहार नहीं करते हैं।

प्र. भन्ते ! जिन अनन्तरावगाढ पुद्गलों का आहार करते हैं तो क्या सूक्ष्म पुद्गलों का आहार करते हैं या बादर पुद्गलों का आहार करते हैं ?

उ. गौतम ! वे सूक्ष्म पुद्गलों का भी आहार करते हैं और बादर पुद्गलों का भी आहार करते हैं।

प्र. भन्ते ! जिन सूक्ष्म और बादर पुद्गलों का आहार करते हैं तो क्या ऊर्ध्व दिशा में स्थित पुद्गलों का आहार करते हैं, अधो दिशा या तिर्यक् दिशा में स्थित पुद्गलों का आहार करते हैं ?

उ. गौतम ! वे (सूक्ष्म और बादर) ऊर्ध्व दिशा में, अधो दिशा में और तिरछी दिशा में स्थित पुद्गलों का आहार करते हैं।

प्र. भन्ते ! जिन ऊर्ध्व अधो और तिर्यक् दिशा में स्थित पुद्गलों का आहार करते हैं।
क्या उनके आदि (प्रारम्भ) का आहार करते हैं मध्य का आहार करते हैं या अन्त का आहार करते हैं ?

उ. गौतम ! वे उनके आदि (प्रारम्भ) का भी आहार करते हैं, मध्य का भी आहार करते हैं और अन्त का भी आहार करते हैं।

प्र. भन्ते ! जिन पुद्गलों का आदि मध्य और अन्त में आहार करते हैं, क्या वे उन स्वविषयक (स्पृष्ट अवगाढ़ एवं अनन्तरावगाढ) पुद्गलों का आहार करते हैं या अविषयक (अविषयभूत) पुद्गलों का आहार करते हैं ?

उ. गौतम ! वह स्वविषयक (अपने विषयभूत) पुद्गलों का आहार करते हैं किन्तु अविषयक पुद्गलों का आहार नहीं करते हैं।

प्र. भन्ते ! जिन स्वविषयक पुद्गलों का आहार करते हैं,
क्या वे उनका आनुपूर्वी से आहार करते हैं या अनानुपूर्वी से आहार करते हैं ?

उ. गौतम ! वे आनुपूर्वी से आहार करते हैं, अनानुपूर्वी से आहार नहीं करते हैं।

प्र. भन्ते ! जिन पुद्गलों का आनुपूर्वी से आहार करते हैं,
क्या तीन दिशाओं से आहार करते हैं यावत् छहों दिशाओं से आहार करते हैं ?

उ. गौतम ! वे उन पुद्गलों का नियमतः छहों दिशाओं से आहार करते हैं।

बहुल कारण की अपेक्षा से–
जो वर्ण से काले-नीले,
गन्ध से दुर्गन्ध वाले,

१. जीवा. पडि. १, सु. ३२

रसओ–तित्तरस कडुयाइं
फासओ-कक्खड-गरुय-सीय-लुक्खाइं
तेसिं पोराणे वण्णगुणे, गंधगुणे, फासगुणे, विप्परिणामइत्ता, परिपीलइत्ता परिसाडइत्ता, परिविद्धंसइत्ता,
अण्णे अपुव्वे वण्णगुणे, गंधगुणे, फासगुणे, उप्पाएता, आयसरीरखेत्तोगाढे पोग्गले सव्वप्पणयाए आहारेंति।

प. (४) णेरइया णं भंते ! सव्वओ आहारेंति, सव्वओ परिणामंति,
सव्वओ ऊससंति, सव्वओ णीससंति,
अभिक्खणं आहारेंति, अभिक्खणं परिणामंति,
अभिक्खणं ऊससंति, अभिक्खणं णीससंति,
आहच्च आहारेंति, आहच्च परिणामेंति,
आहच्च ऊससंति, आहच्च णीससंति ?

उ. हंता गोयमा ! णेरइया सव्वओ आहारेंति जाव आहच्च णीससंति।

प. (५) णेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति,
ते णं तेसिं पोग्गलाणं सेयालंसि कइभागं आहारेंति,
कइभागं आसाएंति ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जइभागं आहारेंति, अणंतभागं आसाएंति।

प. (६) णेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति,
ते किं सव्वे आहारेंति, णो सव्वे आहारेंति ?

उ. गोयमा ! ते सव्वे अपरिसेसिए आहारेंति।

प. (७) णेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति,
ते णं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति ?

उ. गोयमा ! सोइंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए
अणिट्ठत्ताए, अकंतत्ताए, अप्पियत्ताए, असुभत्ताए, अमणुण्णत्ताए,
अमणामत्ताए, अणिच्छियत्ताए, अभिज्झियत्ताए,
अहत्ताए, णो उड्ढत्ताए,
दुक्खत्ताए, णो सुहत्ताए ते तेसिं भुज्जो-भुज्जो परिणमंति[1]। –पण्ण. प. २८, उ. १, सु. १७९५-१८०५

रस से तिक्त (तीखे) और कटुक (कडुए) रस वाले,
स्पर्श से कर्कश, गुरु, शीत और रूक्ष स्पर्श वाले हैं,
उनके पुराने (पहले के) वर्णगुण, गन्धगुण, रसगुण और स्पर्शगुण का विपरिणमन, परिपीडन, परिशाटन और परिविध्वंस करके
अन्य (दूसरे) अपूर्व (नए) वर्णगुण, गन्धगुण, रसगुण और स्पर्शगुण को उत्पन्न करके अपने शरीर क्षेत्र में अवगाहन किए हुए पुद्गलों का पूर्णरूपेण आहार करते हैं।

प्र. (४) भन्ते ! क्या नैरयिक सर्वतः आहार करते हैं ? पूर्णरूप से परिणत करते हैं ?
सर्वतः उच्छ्वास तथा सर्वतः निःश्वास लेते हैं ?
बार-बार आहार करते हैं ? बार-बार परिणत करते हैं ?
बार-बार उच्छ्वास एवं निःश्वास लेते हैं ?
अथवा कभी-कभी आहार करते हैं ? कभी-कभी परिणत करते हैं ?
कभी-कभी उच्छ्वास एवं निःश्वास लेते हैं ?

उ. हां, गौतम ! नैरयिक सर्वतः आहार करते हैं यावत् कदाचित् निःश्वास लेते हैं।

प्र. (५) भन्ते ! नैरयिक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं,
उन पुद्गलों का आगामी काल में कितने भाग का आहार करते हैं
कितने भाग का आस्वादन करते हैं ?

उ. गौतम ! वे असंख्यातवें भाग का आहार करते हैं और अनन्तवें भाग का आस्वादन करते हैं।

प्र. (६) भन्ते ! नैरयिक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं,
क्या उन सबका आहार कर लेते हैं या सबका नहीं करते हैं ?

उ. गौतम ! शेष बचाए बिना उन सबका आहार कर लेते हैं।

प्र. (७) भन्ते ! नैरयिक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं,
वे उन पुद्गलों को बार-बार किस रूप में परिणत करते हैं ?

उ. गौतम ! वे उन पुद्गलों को श्रोत्रेन्द्रिय के रूप में यावत् स्पर्शेन्द्रिय के रूप में,
अनिष्ट रूप से, अकान्त रूप से, अप्रिय रूप से, अशुभ रूप से, अमनोज्ञ रूप से,
अमनाम रूप से, अनिच्छित रूप से, अनभिलषित रूप से,
हीन रूप से, ऊँचे रूप से नहीं,
दुःख रूप से, सुख रूप से नहीं, उन सबका बार-बार परिणमन करते हैं।

---

१. पण्ण. प. ३४, सु. २०३९
प्र. नेरइया णं भंते ! आहारट्ठी ?
उ. जहा पण्णवणाए पढमए आहार उद्देसए तहा भाणियव्वं।
गाहा– ठिइ उस्सासाहारे किं वा, आहारेंति सव्वओ वा वि।
कइभागं सव्वाणि व कीसे व भुज्जो परिणमंति॥
–विया. स. १, उ. १, सु. ६(१-३)

१७. भवणवासीसु आहारट्ठिआइदारसत्तगं–

प. दं. २-११. असुरकुमारा णं भंते ! आहारट्ठी ?

उ. हंता गोयमा ! आहारट्ठी।

एवं जहा णेरइयाणं तहा असुरकुमाराण वि भाणियव्व जाव ते तेसिं भुज्जो-भुज्जो परिणमंति।

तत्थ णं जे से आभोगणिव्वत्तिए।

से णं जहण्णेण चउत्थभत्तस्स

उक्कोसेणं साइरेगस्स वाससहसस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

ओसण्णकारणं पडुच्च–

वण्णओ-हालिद्द-सुक्किलाइं

गंधओ-सुब्भिगंधाइं,

रसओ-अंबिल-महुराइं

फासओ-मउय-लहुय-णिद्धुण्हाइं।

तेसिं पोराणे वण्णाइगुणे सोइंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए,

इट्ठत्ताए, कंतत्ताए, पियत्ताए, सुभत्ताए, मणुण्णत्ताए, मणामत्ताए, इच्छियत्ताए, अभिज्झियत्ताए,

उड्ढत्ताए णो अहत्ताए सुहत्ताए णो दुहत्ताए ते तेसिं भुज्जो-भुज्जो परिणमंति"

सेसं जहा णेरइयाणं

एवं जाव थणियकुमाराणं।

णवरं–आभोगणिव्वत्तिए[१] उक्कोसेणं दिवसपुहत्तस्स आहारट्ठे समुप्पजइ[२]। –*पण्ण. प. २८, उ.१, सु. १८०६*

१७. भवनवासियों में आहारार्थी आदि सात द्वार–

प्र. दं. २-११. भन्ते ! क्या असुरकुमार आहारार्थी होते हैं ?

उ. हां, गौतम ! वे आहारार्थी होते हैं।

जैसे नारकों का वर्णन किया, वैसे ही असुरकुमारों के लिए उनके पुद्गलों का बार-बार परिणमन होता है पर्यन्त कहना चाहिए।

उनमें जो आभोगनिर्वर्तित आहार है।

उस आहार की अभिलाषा जघन्य चतुर्थ-भक्त,

उत्कृष्ट कुछ अधिक सहस्रवर्ष पश्चात् उत्पन्न होती है।

बहुलता की अपेक्षा–

वर्ण से–पीत और श्वेत,

गन्ध से–सुरभिगन्ध वाले,

रस से–आम्ल और मधुर,

स्पर्श से–मृदु, लघु, स्निग्ध और उष्ण पुद्गलों का आहार करते हैं।

(आहार किये हुए पूर्व पुद्गलों के) उन पुराने वर्णादि गुण श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय के रूप में,

इष्ट, कान्त, प्रिय, शुभ, मनोज्ञ, मनाम, इच्छित और अभिलषित रूप में,

उच्च रूप में, हीन रूप में नहीं, सुख रूप में, दुःख रूप में नहीं, उन सबका बार-बार परिणमन करते हैं।

शेष सब वर्णन नारकों के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–इनका आभोगनिर्वर्तित आहार उत्कृष्ट दिवस-पृथक्त्व से होता है।

१८. एगिंदिएसु आहारट्ठिआइदारसत्तगं–

प. १. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! आहारट्ठी ?

उ. हंता गोयमा ! आहारट्ठी।

प. २. पुढविकाइया णं भंते ! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! अणुसमयं अविरहिए आहारट्ठे समुप्पज्जइ[३]।

प. ३. पुढविकाइया णं भंते ! किमाहारमाहारेंति ?

उ. गोयमा ! एवं जहा णेरइयाणं जाव[४]।

प. ताइं भंते ! कइ दिसिं आहारेंति ?

१८. एकेन्द्रियों में आहारार्थी आदि सात द्वार–

प्र. १. दं. १२. भन्ते ! क्या पृथ्वीकायिक जीव आहारार्थी होते हैं ?

उ. हां, गौतम ! वे आहारार्थी होते हैं।

प्र. २. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीवों को कितने काल में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! उन्हें प्रति समय बिना विरह के आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्र. ३. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव किस वस्तु का आहार करते हैं ?

उ. **गौतम ! इस विषय का कथन नैरयिकों के कथन के समान जानना चाहिए यावत्–**

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव कितनी दिशाओं से आहार करते हैं ?

---

१. पण्ण. प. ३४, सु. २०३९
२. (क) जीवा. पडि. १, सु. १३ (१८)
   (ख) विया. स. १, उ. १, सु. ६/२-५
३. विया. स. १, उ. १, सु. ६/१,३
४. क. जीवा. पडि. १, सु. १३ (१८)
   ख. पण्ण. प. ३४, सु. २०३९
   ग. विया. स. १, उ. १, सु. ६/४

उ. गोयमा ! णिव्वाघाएणं छद्दिसिं
वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पंचदिसिं।

णवरं–ओसण्णकारणं ण भवइ,

वण्णओ–काल-नील-लोहिय-हालिद्द-सुक्किलाइं
गंधओ–सुब्भिगंध-दुब्भिगंधाइं,
रसओ–तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल-महुराइं,
फासओ–कक्खड-मउय-गरुय-लहुय-सीय-उसिण-णिद्ध-लुक्खाइं
तेसिं पोराणे वण्णगुणे।

४. सेसं जहा णेरइयाणं जाव आहच्च णीससंति।

प. ५. पुढविकाइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति तेसि णं भंते ! पोग्गलाणं सेयालंसि कइभागं आहारेंति, कइभागं आसाएंति ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जइभागं आहारेंति, अणंतभागं आसाएंति।

प. ६. पुढविकाइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति, ते किं सव्वे आहारेंति, णो सव्वे आहारेंति ?

उ. गोयमा ! ते सव्वे अपरिसेसिए आहारेंति।

प. ७. पुढविकाइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति,
ते णं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति ?

उ. गोयमा ! फासिंदियवेमायत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति।

दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइयाणं[1]।
—पण्ण. प. २८, उ. १, सु. १८०७-१८१३

उ. यदि व्याघात न हो तो वे छहों दिशाओं से आहार करते हैं।
यदि व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशाओं से, कदाचित् चार दिशाओं से और कदाचित् पांच दिशाओं से स्थित द्रव्यों का आहार करते हैं।

विशेष–(पृथ्वीकायिकों के सम्बन्ध में) बहुलता नहीं कही जाती।

वर्ण से–कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेत,
गन्ध से–सुगन्ध और दुर्गन्ध वाले,
रस से–तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस वाले,
स्पर्श से–कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष स्पर्श वाले (द्रव्यों का आहार करते हैं) तथा
उन (आहार किए जाने वाले पुद्गल द्रव्यों) के पुराने वर्ण आदि गुण परिवर्तित हो जाते हैं।

४. शेष सब कथन नारकों के समान कदाचित् उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. ५. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, उन पुद्गलों में से भविष्यकाल में कितने भाग का आहार करते हैं और कितने भाग का आस्वादन करते हैं ?

उ. गौतम ! असंख्यातवें भाग का आहार करते हैं और अनन्तवें भाग का आस्वादन करते हैं।

प्र. ६. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, क्या सभी का आहार करते हैं या उन सबका आहार नहीं करते हैं ?

उ. गौतम ! शेष बचाए बिना उन सबका आहार कर लेते हैं।

प्र. ७. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं,
वे पुद्गल (पृथ्वीकायिकों में) किस रूप में पुनः-पुनः परिणत होते हैं ?

उ. गौतम ! (वे पुद्गल) विषम मात्रा से स्पर्शेन्द्रिय के रूप में बार-बार परिणत होते हैं।

दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त समझ लेना चाहिए।

१९. विगलिंदिएसु आहारट्ठिआइदारसत्तगं–

प. दं. १७-१९. १. बेइंदिया णं भंते ! आहारट्ठी ?

उ. हंता गोयमा ! आहारट्ठी।

प. २. बेइंदिया णं भंते ! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहा णेरइयाणं।
णवरं–तत्थ णं जे से आभोगणिव्वत्तिए से णं असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए वेमायाए आहारट्ठे समुप्पज्जइ[2]।

१९. विकलेन्द्रियों में आहारार्थी आदि सात द्वार–

प्र. दं. १७-१९. १. भन्ते ! क्या द्वीन्द्रिय जीव आहारार्थी होते हैं ?

उ. हां, गौतम ! वे आहारार्थी होते हैं।

प्र. २. भन्ते ! द्वीन्द्रिय जीवों को कितने काल में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! इनका कथन नारकों के समान समझना चाहिए।
विशेष–उनमें जो आभोगनिर्वर्तित आहार है, उस आहार की अभिलाषा असंख्यात-समय के अन्तर्मुहूर्त में विमात्रा से उत्पन्न होती है।

---

१. (क) बायरआउक्काइया-आहारो नियमा छद्दिसिं। —जीवा. पडि. १, सु. १४, १५-२६
(ख) पण्ण. प. ३४, सु. २०३९
(ग) विया. स. १, उ. १, सु. ६/१२ (४-५)
(घ) विया. स. ११, उ. १, सु. ४०
(ङ) विया. स. ११, उ. २-८

२. (क) पण्ण. प. ३४, सु. २०३९
(ख) विया. स. १, उ. १, सु. ६/१२, २-३

३-४. सेसं जहा पुढविक्काइयाणं जाव आहच्च णीससंति,

णवरं–णियमा छद्दिसिं[1]।

प. ५. बेइंदिया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति, ते णं तेसिं पोग्गलाणं सेयालंसि कइभागं आहारेंति, कइभागं आसाएंति?

उ. गोयमा ! एवं जहा णेरइयाणं।

प. ६. बेइंदिया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते किं सव्वे आहारेंति, णो सव्वे आहारेंति?

उ. गोयमा ! बेइंदियाणं दुविहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा–

१. लोमाहारे य, २. पक्खेवाहारे य।

जे पोग्गले लोमाहारत्ताए गेण्हंति ते सव्वे अपरिसेसे आहारेंति, जे पोग्गले पक्खेवाहारत्ताए गेण्हंति तेसिं असंखेज्जइभागमाहारेंति, णेगाइं च णं भागसहस्साइं अफासाइज्जमाणाणं, अणासाइज्जमाणाणं विद्धंसमागच्छंति।

प. एएसि णं भंते ! पोग्गलाणं अणासाइज्जमाणाणं अफासाइज्जमाणाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पोग्गला अणासाइज्जमाणा,
२-अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा।

प. ७. बेइंदिया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते णं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति?

उ. गोयमा ! जिब्भिंदिय-फासिंदियवेमायत्ताए ते तेसिं भुज्जो-भुज्जो परिणमंति[2]।

एवं जाव चउरिंदिया।

णवरं–णेगाइं च णं भागसहस्साइं अणाघाइज्जमाणाइं अफासाइज्जमाणाइं अणासाइज्जमाणाइं वि विद्धं समागच्छति।

प. एएसि णं भंते ! पोग्गलाणं अणाघाइज्जमाणाणं अणासाइज्जमाणाणं अफासाइज्जमाणाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पोग्गला अणाघाइज्जमाणा,
२. अणासाइज्जमाणा अणंतगुणा,
३. अफासाइज्जमाणा अणंतगुणा।

प. दं. १८. तेइंदिया णं भंते ! जे पोग्गला आहारत्ताए गेण्हंति ते णं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमंति?

३-४. शेष सब कथन पृथ्वीकायिकों के समान कदाचित् निःश्वास लेते हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष–वे नियम से छहों दिशाओं से आहार लेते हैं।

प्र. ५. भन्ते ! द्वीन्द्रिय जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, वे भविष्य में उन पुद्गलों के कितने भाग का आहार करते हैं और कितने भाग का आस्वादन करते हैं?

उ. गौतम ! इस विषय में नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

प्र. ६. भन्ते ! द्वीन्द्रिय जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, क्या वे उन सबका आहार करते हैं या उन सबका आहार नहीं करते?

उ. गौतम ! द्वीन्द्रिय जीवों का आहार दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. लोमाहार २. प्रक्षेपाहार।

वे जिन पुद्गलों को लोमाहार के रूप में ग्रहण करते हैं, उन सबका समग्ररूप से आहार करते हैं। जिन पुद्गलों को प्रक्षेपाहार रूप में ग्रहण करते हैं, उनमें से असंख्यातवें भाग का ही आहार करते हैं। उनके बहुत-से (अनेक) सहस्र भाग, यों ही विध्वंस को प्राप्त हो जाते हैं, न ही उनका बाहर-भीतर स्पर्श हो पाता है और न ही उनका आस्वादन हो पाता है।

प्र. भन्ते ! इन पूर्वोक्त प्रक्षेपाहार पुद्गलों में से आस्वादन न किए जाने तथा स्पृष्ट न होने वाले पुद्गलों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प आस्वादन न किए जाने वाले पुद्गल हैं,
२. (उनसे) अनन्तगुणे (पुद्गल) स्पृष्ट न होने वाले हैं।

प्र. ७. भन्ते ! द्वीन्द्रिय जीव जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, वे पुद्गल किस-किस रूप में पुनः-पुनः परिणत होते हैं?

उ. गौतम ! वे पुद्गल जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की विमात्रा के रूप में पुनः-पुनः परिणत होते हैं।

इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष–इनके (त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) द्वारा प्रक्षेपाहार रूप में गृहीत पुद्गलों के अनेक सहस्रभाग अनाघ्रायमाण, अस्पृश्यमान (बिना छुए हुए) तथा अनास्वाद्यमान (स्वाद लिए बिना) ही विध्वंस को प्राप्त हो जाते हैं।

प्र. भन्ते ! इन अनाघ्रायमाण, अस्पृश्यमान और अनास्वाद्यमान पुद्गलों में से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. अनाघ्रायमाण पुद्गल सबसे अल्प हैं,
२. (उनसे) अनास्वाद्यमान पुद्गल अनंतगुणे हैं,
३. (उनसे) अस्पृश्यमान पुद्गल भी अनन्तगुणे है।

प्र. दं. १८. भन्ते ! त्रीन्द्रिय जीव जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, वे पुद्गल उनमें किस रूप में पुनःपुनः परिणत होते हैं?

---

१. जीवा. पडि. १ सु. २८

२. विया. स. १, उ. १, सु. ६/१७, ५-६

उ. गोयमा ! घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियवेमायत्ताए ते तेसिं भुज्जो-भुज्जो परिणमंति।

दं. १९. चउरिंदियाणं चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियवेमायत्ताए ते तेसिं भुज्जो-भुज्जो परिणमंति,

सेसं जहा तेइंदियाणं।

–पण्ण. प. २८, उ. १, सु. १८१९-१८२३

२०. पंचेंदियतिरिक्खाईसु आहारट्ठिआइदारसत्तगं–

दं. २०-२३. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया जहा तेइंदिया।

णवरं–तत्थ णं जे से आभोगणिव्वत्तिए से जहण्णेण अंतोमुहुत्तस्स,
उक्कोसेण छट्ठभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

प. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते णं तेसिं पोग्गला कीसत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति ?

उ. गोयमा ! सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासेंदियवेमायत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमंति।

दं. २१. मणूसा एवं चेव।
णवरं–आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेण अंतोमुहुत्तस्स,
उक्कोसेण अट्ठमभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

दं. २२. वाणमंतरा जहा णागकुमारा

दं. २३. एवं जोइसिया वि।
णवरं–आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेण दिवसपुहत्तस्स,
उक्कोसेणं वि दिवसपुहत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

–पण्ण. प. २८, उ. १, सु. १८२४-१८२८

२१. वेमाणिथ देवेसु आहारट्ठिआइदारसत्तगं–

दं. २४. एवं वेमाणिया वि।

णवरं–आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेण दिवसपुहत्तस्स,
उक्कोसेणं तेत्तीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

सेसं जहा असुरकुमाराणं जाव ते तेसिं भुज्जो-भुज्जो परिणमंति।

प. १ सोहम्मे णं भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! आभोगणिव्वत्तिए जहण्णेण दिवसपुहत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ
उक्कोसेणं दोण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[1]।

प. २. ईसाणाणं भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दिवसपुहत्तस्स साइरेगस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ

उ. गौतम ! वे पुद्गल घ्राणेन्द्रिय जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की विमात्रा से पुनः-पुनः परिणत होते हैं।

दं. १९. (चतुरिन्द्रिय द्वारा आहार के रूप में गृहीत पुद्गल (चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय एवं स्पर्शेन्द्रिय की) विमात्रा से पुनः-पुनः परिणत होते हैं।
शेष कथन त्रीन्द्रियों के समान समझना चाहिए।

२०. पंचेंद्रिय तिर्यञ्चादि में आहारार्थी आदि सात द्वार–

दं. २०-२३. पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों का कथन त्रीन्द्रिय जीवों के समान जानना चाहिए।

विशेष–उनमें जो आभोगनिर्वर्तित आहार है, उस आहार की अभिलाषा उन्हें जघन्य अन्तर्मुहूर्त से और उत्कृष्ट षष्ठभक्त से उत्पन्न होती है।

प्र. भन्ते ! पंचेंद्रियतिर्यञ्चयोनिक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, वे पुद्गल उनमें किस रूप में पुनःपुनः परिणत होते हैं ?

उ. गौतम ! आहार रूप में गृहीत वे पुद्गल श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय की विमात्रा के रूप में पुनः-पुनः परिणत होते हैं।

दं. २१. मनुष्यों का कथन भी इसी प्रकार है।
विशेष–उनकी आभोगनिर्वर्तित आहार की अभिलाषा जघन्य अन्तर्मुहूर्त में होती है और उत्कृष्ट अष्टमभक्त व्यतीत होने पर उत्पन्न होती है।

दं. २२. वाणव्यन्तर देवों का आहार-सम्बन्धी कथन नागकुमारों के समान जानना चाहिए।

दं. २३. इसी प्रकार ज्योतिष्क देवों का भी कथन है।

विशेष–उन्हें आभोगनिर्वर्तित आहार की अभिलाषा जघन्य दिवस-पृथक्त्व में और उत्कृष्ट भी दिवस-पृथक्त्व (अनेक दिनों) में उत्पन्न होती है।

२१. वैमानिक देवों में आहारार्थी आदि सात द्वार–

दं. २४. इसी प्रकार वैमानिक देवों का भी आहार सम्बन्धी कथन करना चाहिए।
विशेष–इनको आभोगनिर्वर्तित आहार की अभिलाषा जघन्य दिवस-पृथक्त्व में और उत्कृष्ट तेतीस हजार वर्षों में उत्पन्न होती है।
शेष कथन असुरकुमारों के समान उनके उन पुद्गलों का बार-बार परिणमन होता है पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. १-भन्ते ! सौधर्म कल्प में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! सौधर्म कल्प में आभोगनिर्वर्तित आहार की इच्छा जघन्य अनेक दिवस से,
उत्कृष्ट दो हजार वर्ष से समुत्पन्न होती है।

प्र. २. भन्ते ! ईशान कल्प में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! जघन्य कुछ अधिक दिवस-पृथक्त्व से,

---

१. तेसि णं देवाणं एगस्स वाससहस्सस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ। – सम. सम. १, सु. ४३, ४५
तेसि णं देवाणं दोहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। – सम. सम. २, सु. २२

उक्कोसेण साइरेगाणं दोण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।[१]

प. ३. सणंकुमाराणं भंते! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दोण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पजइ

उक्कोसेण सत्तण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पजइ।

प. ४. माहिंदे णं भंते! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण दोण्हं वाससहस्साणं साइरेगाणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,

उक्कोसेण सत्तण्हं वाससहस्साणं साइरेगाणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[२]

प. ५. बंभलोए णं भंते! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा! जहण्णेण सत्तण्हं वाससहस्साणं साइरेगाणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,

उक्कोसेण दसण्हं वाससहस्साणं साइरेगाणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[३]।

प. ६. लंतए णं भंते! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा! जहण्णेण दसण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,

उक्कोसेण चोद्दसण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[४]।

प. ७. महासुक्के णं भंते! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा! जहण्णेण चोद्दसण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,

उक्कोसेण सत्तरसण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[५]।

प. ८. सहस्सारे णं भंते! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा! जहण्णेण सत्तरसण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,

उक्कोसेण अट्ठारसण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[६]।

प. ९. आणए णं भंते! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा! जहण्णेण अट्ठारसण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,

उक्कोसेण एगूणवीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[७]।

उत्कृष्ट कुछ अधिक दो हजार वर्ष में आहारेच्छा उत्पन्न होती है।

प्र. ३. भन्ते! **सनत्कुमार कल्प** में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है ?

उ. गौतम! जघन्य दो हजार वर्ष में,

उत्कृष्ट सात हजार वर्ष में आहारेच्छा उत्पन्न होती है।

प्र. ४. भन्ते! माहेन्द्र कल्प में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है ?

उ. गौतम! जघन्य कुछ अधिक दो हजार वर्ष में,

उत्कृष्ट कुछ अधिक सात हजार वर्ष में आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्र. ५. भन्ते! **ब्रह्मलोक कल्प** में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है ?

उ. गौतम! जघन्य सात हजार वर्ष में,

उत्कृष्ट दस हजार वर्ष में आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्र. ६. भन्ते! **लान्तक कल्प** में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है ?

उ. गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष में,

उत्कृष्ट चौदह हजार वर्ष में आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्र. ७. भन्ते! **महाशुक्र कल्प** में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! जघन्य चौदह हजार वर्ष में,

उत्कृष्ट सतरह हजार वर्ष में आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्र. ८. भन्ते! **सहस्रार कल्प** में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है ?

उ. गौतम! जघन्य सतरह हजार वर्ष में,

उत्कृष्ट अठारह हजार वर्ष में आहारेच्छा उत्पन्न होती है।

प्र. ९. भन्ते ! **आनत कल्प** में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है ?

उ. गौतम! जघन्य अठारह हजार वर्ष में,

उत्कृष्ट उन्नीस हजार वर्ष में आहारेच्छा उत्पन्न होती है।

---

१. सम. सम. ३, सु. २२

२. तेसि णं देवाणं सत्तहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ
—सम. सम. ७, सु. २२

३. तेसि णं देवाणं दसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ
—सम. सम. १०, सु. २४

४. तेसिं णं देवाणं चउद्दसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ
—सम. सम. १४, सु. १७

५. तेसिं णं देवाणं सत्तरसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ
—सम. सम. १७, सु. २०

६. तेसि णं देवाणं अट्ठारस वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ
—सम. सम. १८, सु. १७

७. तेसि णं देवाणं एगूणवीसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।
—सम. सम. १९, सु. १४

प. १०. पाणएणं भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा! जहण्णेण एगूणवीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,
उक्कोसेणं वीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[1]।

प्र. १०. भन्ते ! प्राणत कल्प में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! जघन्य उन्नीस हजार वर्ष में,
उत्कृष्ट बीस हजार वर्ष में आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।

प. ११. आरणेणं भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,
उक्कोसेणं एक्कवीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[2]।

प्र. ११. भन्ते! आरण कल्प में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! जघन्य बीस हजार वर्ष में,
उत्कृष्ट इक्कीस हजार वर्ष में आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।

प. १२. अच्चुएणं भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण एक्कवीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,
उक्कोसेणं बावीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[3]।

प्र. १२. भन्ते ! अच्युत कल्प में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! जघन्य इक्कीस हजार वर्ष में,
उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष में आहाराभिलालषा उत्पन्न होती है।

प. १. हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जगाणं भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा! जहण्णेण बावीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,
उक्कोसेणं तेवीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[4]।

प्र. १. भन्ते ! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयकों में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है ?

उ. गौतम! जघन्य बावीस हजार वर्ष में,
उत्कृष्ट तेवीस हजार वर्ष में आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।

प. २. हेट्ठिममज्झिमाणं भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ,

उ. गोयमा ! जहण्णेण तेवीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ
उक्कोसेणं चउवीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[5]।

प्र. २. भन्ते ! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयकों में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा समुत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! जघन्य तेवीस हजार वर्ष में,
उत्कृष्ट चौबीस हजार वर्ष में आहारेच्छा उत्पन्न होती है।

प. ३. हेट्ठिमउवरिमाणं भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण चउवीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,
उक्कोसेणं पणवीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[6]।

प्र. ३. भन्ते ! अधस्तन-उपरिम ग्रैवेयकों में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! जघन्य चौबीस हजार वर्ष में
उत्कृष्ट पच्चीस हजार वर्ष में आहारेच्छा उत्पन्न होती है।

प. ४. मज्झिमहेट्ठिमाणं भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण पणवीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,

प्र. ४. भन्ते ! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयकों में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! जघन्य पच्चीस हजार वर्ष में,

---

१. तेसि णं देवाणं वीसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। सम. सम. २०, सु. [illegible]
२. तेसि णं देवाणं एक्कवीसेहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। सम. सम. २१, सु. [illegible]
३. तेसि णं देवाणं बावीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। सम. सम. २२, सु. [illegible]
४. तेसि णं देवाणं [illegible] आहारट्ठे समुप्पज्जइ। सम. सम. [illegible]
५. तेसि णं देवाणं [illegible] आहारट्ठे समुप्पज्जइ। सम. सम. [illegible]
६. तेसि णं देवाणं [illegible] आहारट्ठे समुप्पज्जइ। सम. सम. [illegible]

उक्कोसेण छव्वीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[1]।

प. ५. **मज्झिममज्झिमाणं** भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण छव्वीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,

उक्कोसेण सत्तावीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[2]।

प. ६. **मज्झिमउवरिमाणं** भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण सत्तावीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,

उक्कोसेणं अट्ठावीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[3]।

प. ७. **उवरिमहेट्ठिमाणं** भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अट्ठावीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,

उक्कोसेणं एगूणतीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[4]।

प. ८. **उवरिममज्झिमाणं** भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण एगूणतीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,

उक्कोसेण तीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[5]।

प. ९. **उवरिमउवरिमगेवेज्जगाणं** भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण तीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,

उक्कोसेण एक्कतीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ[6]।

प. १-४. **विजय-वेजयंत-जयन्त-अपराजियाणं** भंते ! देवाणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण एक्कतीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ,

उक्कोसेण तेत्तीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।[7]

उत्कृष्ट छव्वीस हजार वर्ष में आहार की अभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्र. ५. भन्ते ! **मध्यम-मध्यम ग्रैवेयकों** में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! जघन्य छव्वीस हजार वर्ष में,

उत्कृष्ट सत्ताईस हजार वर्ष में आहारेच्छा उत्पन्न होती है।

प्र. ६. भन्ते ! **मध्यम-उपरिम ग्रैवेयकों** में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! जघन्य सत्ताईस हजार वर्ष में,

उत्कृष्ट अट्ठाईस हजार वर्ष में आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्र. ७. भन्ते ! **उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयकों** में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! जघन्य अट्ठाईस हजार वर्ष में,

उत्कृष्ट उन्तीस हजार वर्ष में आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्र. ८. भन्ते ! **उपरिम-मध्यम ग्रैवेयकों** में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! जघन्य उन्तीस हजार वर्ष में,

उत्कृष्ट तीस हजार वर्ष में आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्र. ९. भन्ते ! **उपरिम-उपरिम ग्रैवेयकों** में देवों को कितने काल के पश्चात् आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! जघन्य तीस हजार वर्ष में,

उत्कृष्ट इकत्तीस हजार वर्ष में आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।

प्र. १-४. भन्ते ! **विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित** देवों को कितने काल में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! जघन्य इकत्तीस हजार वर्ष में,

उत्कृष्ट तेतीस हजार वर्ष में आहाराभिलाषा उत्पन्न होती है।

---

१. तेसि णं देवाणं छव्वीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। *-सम. सम. २६, सु. १०*

२. तेसि णं देवाणं सत्तावीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। *-सम. सम. २७. सु. १४*

३. तेसि णं देवाणं अट्ठावीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। *-सम. सम. २८, सु. १३*

४. तेसि णं देवाणं एगूणतीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। *-सम. सम. २९, सु. १७*

५. तेसि णं देवाणं तीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। *-सम. सम. ३०, सु. १५*

६. तेसि णं देवाणं एक्कतीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। *-सम. सम. ३१, सु. १३*

७. (क) तेसि णं देवाणं बत्तीस वास सहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। *-सम. सम. ३२ सु. १३*

(ख) सम. सम. ३३ सु. १३

प. ५. सव्वट्ठसिद्धग देवा णं भंते ! केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसाए वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

–पण्ण. प. २८, उ. १, सु. १८२९-१८५२

प्र. ५. भन्ते ! सर्वार्थसिद्ध देवों को कितने काल में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ?

उ. गौतम ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट तेतीस हजार वर्ष में आहार की इच्छा उत्पन्न होती है।

२२. विसिट्ठ विमाणवासीदेवाणं आहारट्ठे परूवणं–

१. जे देवा सागरं सुसागरं सागरकंतं भवं मणुं माणुसोत्तरं लोगहियं विमाणं देवत्ताए उववण्णा

तेसि णं देवाणं एगस्स वाससहसस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. १, सु. ४४, ४५

२. जे देवा सुभं सुभकंतं सुभवण्णं सुभगंधं सुभलेसं सुभफासं सोहम्मवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा

तेसि णं देवाणं दोहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

–सम. सम. २, सु. २०, २२

३. जे देवा आभंकरं, पभंकरं, आभंकर-पभंकरं चंदं चंदावत्तं चंदप्पभं चंदकंतं चंदवण्णं चंदलेसं चंदज्झयं चंदसिंगं चंदसिट्ठं चंदकूडं चंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तिहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. ३, सु. २१, २३

४. जे देवा किट्ठिं सुकिट्ठिं किट्ठियावत्तं किटिठप्पभं किट्ठिकंतं किट्ठिवण्णं किट्ठिलेसं किट्ठिज्झयं किट्ठिसिंगं किट्ठिसिट्ठं किट्ठिकूडं किट्ठूत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

तेसि देवाणं चउहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे स[illegible]इ।

–सम. सम. ४, [illegible] ५, १७

५. जे देवा वायं सुवायं वातावत्तं वातप्पभं वातकंतं वितावण्णं वातलेसं वातज्झयं वातसिं[illegible] वातसिट्ठं वातकूडं वातुत्तरवडेंसगं सूरं सुसूरं सूरावत्तं सूरप्पभं सूरकंतं सूरवण्णं सूरलेसं सूरज्झयं सूरसिंगं सूरसिट्ठं सूरकूडं सूरुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

तेसि णं देवाणं पंचहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. ५, सु. १९, २१

६. जे देवा सयंभु सयंभुरमणं घोसं सुघोसं महाघोसं किट्ठिघोसं वीरं सुवीरं वीरगतं वीरसेणियं वीरावत्तं वीरप्पभं वीरकंतं वीरवण्णं वीरलेसं वीरज्झयं वीरसिंगं वीरसिट्ठं वीरकूडं वीरुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

तेसि णं देवाणं छहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

–सम. सम. ६, सु. १४, १६

७. जे देवा समं समप्पभं महापभं पभासं भासुरं विमलं [illegible]कूडं सणंकुमारवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

२२. विशिष्ट विमाणवासी देवों की आहार इच्छा का प्ररूपण–

१. जो देव सागर, सूसागर, सागरकान्त, भव, मनु, मानुषोत्तर और लोकहित विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

उन देवों को एक हजार वर्ष के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

२. जो देव शुभ, शुभकान्त, शुभवर्ण, शुभगन्ध, शुभलेश्य, शुभस्पर्श और सौधर्मावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

उन देवों को उत्कृष्ट दो हजार वर्ष के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

३. जो देव आभंकर, प्रभंकर, आभंकर-प्रभंकर, चन्द्र, चन्द्रावर्त, चन्द्रप्रभ, चन्द्रकान्त, चन्द्रवर्ण, चन्द्रलेश्य, चन्द्रध्वज, चन्द्रशृंग, चन्द्रसृष्ट, चन्द्रकूट और चन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

उन देवों को तीन हजार वर्ष के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

४. जो देव कृष्टि, सुकृष्टि, कृष्टिकावर्त्त, कृष्टिप्रभ, कृष्टिकान्त, कृष्टिवर्ण, कृष्टिलेश्य, कृष्टिध्वज, कृष्टिग, कृष्टिसृष्ट, कृष्टिकूट और कृष्ट्युत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

उन देवों के चार हजार वर्ष के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

५. जो देव वात, सुवात वातावर्त्त, वातप्रभ, वातकान्त, वातवर्ण, वातलेश्य, वातध्वज वातशृंग वातसृष्ट, वातकूट और वातोत्तरावतंसक तथा सूर, सुसूर, सूरावर्त्त, सूरप्रभ, सूरशृंग सूरसृष्ट, सूरकूट और सूरोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

उन देवों को पाँच हजार वर्ष के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

६. जो देव स्वयंभू, स्वयंभूरमण, घोष, सुघोष, महाघोष, कृष्टिघोष वीर, सुवीर, वीरगत, वीरश्रेणिक, वीरावर्त, वीरप्रभ, वीरकान्त, वीरवर्ण, वीरलेश्य, वीरध्वज, वीरशृंग, वीरसृष्ट, वीरकूट और वीरोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

उन देवों को छह हजार वर्ष के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

७. जो देव सम, [illegible] और [illegible] विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

तेसि णं देवाणं सत्तहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. ७, सु. २०, २२

उन देवों को सात हजार वर्ष के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

८. जे देवा अच्चिं अच्चिमालिं वइरोयणं पभंकरं चंदाभं सूराभं सुपइट्ठाभं अग्गिच्चाभं रिट्ठाभं अरुणाभं अरुणुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–
तेसि णं देवाणं अट्ठहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. ८, सु. १५, १७

८. जो देव अर्चि, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभंकर, चन्द्राभ, सूराभ, सुप्रतिष्ठाभ, अग्न्यर्चाभ रिष्टाभ, अरुणाभ और अरुणोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–
उन देवों को आठ हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

९. जे देवा पम्हं सुपम्हं पम्हावत्तं पम्हप्पहं पम्हकंतं पम्हवण्णं पम्हलेसं पम्हज्झयं पम्हसिंगं पम्हसिट्ठं पम्हकूडं पम्हुत्तरवडेंसगं
सुज्जं सुसुज्जं सुज्जावत्तं सुज्जपभं सुज्जकंतं सुज्जवण्णं सुज्जलेसं सुज्जज्झयं सुज्जसिंगं सुज्जसिट्ठं सुज्जकूडं सुज्जुत्तरवडेंसगं
रुइल्लं रुइल्लावत्तं रुइल्लप्पभं रुइल्लकंतं रुइल्लवण्णं रुइल्ललेसं रुइल्लुज्झयं, रुइल्लसिंगं रुइल्लसिट्ठं रुइल्लकूडं रुइल्लुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–
तेसि णं देवाणं नवहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. ९, सु. १७, १९

९. जो देव पक्ष्म, सुपक्ष्म, पक्ष्मावर्त्त, पक्ष्मप्रभ, पक्ष्मकान्त, पक्ष्मवर्ण, पक्ष्मलेश्य, पक्ष्मध्वज, पक्ष्मशृंग, पक्ष्मसृष्ट, पक्ष्मकूट, पक्ष्मोत्तरावतंसक तथा
सूर्य, सुसूर्य, सूर्यावर्त्त, सूर्यप्रभ, सूर्यकान्त, सूर्यवर्ण, सूर्यलेश्य, सूर्यध्वज, सूर्यशृंग, सूर्यसृष्ट, सूर्यकूट और सूर्योत्तरावतंसक तथा
रुचिर रुचिरावर्त्त, रुचिरप्रभ, रुचिरकान्त, रुचिरवर्ण, रुचिरलेश्य, रुचिरध्वज, रुचिरशृंग रुचिरसृष्ट, रुचिरकूट और रुचिरोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं,
उन देवों को नौ हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

१०. जे देवा घोसं सुघोसं महाघोसं नंदिघोसं सुसरं मणोरमं रम्मं रम्मगं रमणिज्जं मंगलावत्तं बंभलोगवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा,
तेसि णं देवाणं दसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. १०, सु. २२, २४

१०. जो देव घोष, सुघोष, महाघोष, नंदीघोष, सुस्वर, मनोरम, रम्य, रम्यक्, रमणीय, मंगलावर्त्त और ब्रह्मलोकावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–
उन देवों को दस हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

११. जे देवा बंभं सुबंभं बंभावत्तं बंभप्पभं बंभकंतं बंभवण्णं बंभलेसं बंभज्झयं बंभसिंगं बंभसिट्ठं बंभकूडं बंभुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–
तेसि णं देवाणं एक्कारसण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. ११, सु. १३, १५

११. जो देव ब्रह्म, सुब्रह्म, ब्रह्मावर्त्त, ब्रह्मप्रभ, ब्रह्मकान्त, ब्रह्मवर्ण, ब्रह्मलेश्य, ब्रह्मध्वज, ब्रह्मशृंग, ब्रह्मसृष्ट, ब्रह्मकूट और ब्रह्मोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं,
उन देवों को ग्यारह हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

१२. जे देवा महिंदं महिंदज्झयं कंबुं कंबुग्गीवं पुंखं सुपुंखं महापुंखं पुडं सुपुंडं महापुंडं नरिंदं नरिंदकंतं नरिंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–
तेसि णं देवाणं वारसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. १२, सु. १७, १९

१२. जो देव माहेन्द्र, माहेन्द्रध्वज, कंबु, कंबुग्रीव, पुंख, सुपुंख, महापुंख, पुंड्र, सुपुंड्र, महापुंड्र, नरेन्द्र, नरेन्द्रकान्त और नरेन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–
उन देवों को बारह हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

१३. जे देवा वज्जं सुवज्जं वज्जावत्तं वज्जप्पभं वज्जकंतं वज्जवण्णं वज्जलेसं वज्जज्झयं वज्जसिंगं वज्जसिट्ठं वज्जकूडं वज्जुत्तरवडेंसगं,
वइरं वइरावत्तं वइरप्पभं वइरकंतं वइरवण्णं वइरलेसं वइरज्झयं वइरसिंगं वइरसिट्ठं वइरकूडं वइरुत्तरवडेंसगं, लोगं लोगावत्तं लोगप्पभं लोगकंतं लोगवण्णं लोगलेसं लोगज्झयं लोगसिंगं लोगसिट्ठं लोगकूडं लोगुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–
तेसि णं देवाणं तेरसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. १३, सु. १४, १६

१३. जो देव वज्र, सुवज्र, वज्रावर्त्त, वज्रप्रभ, वज्रकान्त, वज्रवर्ण, वज्रलेश्य, वज्रध्वज, वज्रशृंग, वज्रसृष्ट, वज्रकूट, वज्रोत्तरावतंसक तथा
वैर, वैरावर्त्त, वैरप्रभ, वैरकान्त, वैरवर्ण, वैरलेश्य, वैरध्वज, वैरशृंग, वैरसृष्ट, वैरकूट और वैरोवत्तरावतंसक तथा लोक, लोकावर्त, लोकप्रभ, लोककान्त, लोकवर्ण, लोकलेश्य, लोकध्वज, लोकशृंग लोकसृष्ट लोककूट और लोकोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–
उन देवों को तेरह हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

१४. जे देवा सिरिकंतं सिरिमहियं सिरिसोमनसं लंतयं काविट्ठं महिंदं महिंदोकंतं महिंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

१४. जो देव श्रीकान्त, श्रीमहित, श्रीसौमनस, लान्तक, कापिष्ठ, महेन्द्र, महेन्द्रावकान्त और महेन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

तेसि णं देवाणं चउद्दसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. १४, सु. १५, १७

उन देवों को चौदह हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

१५. जे देवा णंदं सुणंदं णंदावत्तं णंदप्पभं णंदकंतं णंदवण्णं णंदलेसं णंदज्झयं णंदसिंगं णंदसिट्ठं णंदकूडं णंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

तेसि णं देवाणं पण्णरसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. १५, सु. १३, १५

१५. जो देव नन्द, सुनन्द, नन्दावर्त्त, नन्दप्रभ, नन्दकान्त, नन्दवर्ण, नन्दलेश्य, नन्दध्वज, नन्दशृंग, नन्दसृष्ट, नन्दकूट, नन्दोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

उन देवों को पन्द्रह हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

१६. जे देवा आवत्तं वियावत्तं नंदियावत्तं महाणंदियावत्तं अंकुसं अंकुसपलंवं भद्दं सुभद्दं महाभद्दं सव्वओभद्दं भद्दुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

तेसि णं देवाणं सोलसवाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. १६, सु. १३, १५

१६. जो देव आवर्त्त, व्यावर्त्त, नन्द्यावर्त्त, महानंद्यावर्त्त, अंकुश, अंकुशप्रलंब, भद्र, सुभद्र, महाभद्र, सर्वतोभद्र और भद्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

उन देवों को सोलह हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

१७. जे देवा सामाणं सुसामाणं महासामाणं पउमं महापउमं कुमुदं महाकुमुदं नलिणं महानलिणं पोंडरीअं महापोंडरीअं सुक्कं महासुक्कं सीहं सीओवकंतं सीहवीयं भाविअं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

तेसि णं देवाणं सत्तरसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. १७, सु. १८, २०

१७. जो देव सामान, सुसामान, महासामान, पद्म, महापद्म, कुमुद, महाकुमुद, नलिन, महानलिन, पौंडरीक, महापौंडरीक, शुक्ल, महाशुक्ल, सिंह, सिंहावकान्त, सिंहवीत और भावित विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

उन देवों को सतरह हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

१८. जे देवा कालं सुकालं महाकालं अंजणं रिट्ठं सालं समाणं दुमं महादुमं विसालं सुसालं पउमं पउमगुम्मं कुमुदं कुमुदगुम्मं नलिणं नलिणगुम्मं पुंडरीअं पुंडरीयगुम्मं सहस्सारवडेंसग विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

तेसि णं देवाणं अट्ठारसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. १८, सु. १५, १७

१८. जो देव काल, सुकाल, महाकाल, अंजन, रिष्ट, शाल, समान, दुम, महादुम विशाल सुशाल, पदम, पदमगुल्म, कुमुद, कुमुदगुल्म, नलिन, नलिनगुल्म, पुंडरीक, पुंडरीकगुल्म और सहस्रारावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

उन देवों को अठारह हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

१९. जे देवा आणतं पाणतं णतं विणतं घणं सुसिरं इंदं इंदोकंतं इंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

तेसि णं देवाणं एगूणवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. १९, सु. १२, १४

१९. जो देव आनत, प्राणत, नत, विनत, घन, शुषिर, इन्द्र, इन्द्रावकान्त और इन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

उन देवों को उन्नीस हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

२०. जे देवा सातं विसातं सुविसातं सिद्धत्थं उप्पलं रुइलं तिगिच्छं दिसासोवत्थियं वद्धमाणयं पलंवं पुप्फं सुपुप्फं पुप्फावत्तं पुप्फप्पभं पुप्फकंतं पुप्फवण्णं पुप्फलेसं पुप्फज्झयं पुप्फसिंगं पुप्फसिट्ठं पुप्फकूडं पुप्फुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

तेसि णं देवाणं वीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। सम. सम. २०, सु. १४, १६

२०. जो देव सात, विसात, सुविसात, सिद्धार्थ, उत्पल, रुचिर, तिगिच्छ, दिसासौवस्तिक, वर्द्धमानक, प्रलंब, पुष्प, पुष्पावर्त, पुष्पप्रभ, पुष्पकान्त, पुष्पवर्ण, पुष्पलेश्य, पुष्पध्वज, पुष्पशृंग, पुष्पसृष्ट, पुष्पकूट और पुष्पोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

उन देवों को बीस हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

२१. जे देवा सिरिवच्छं सिरिदामगंडं मल्लं किट्ठिं चावोण्णतं आरण्णवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

तेसि णं देवाणं एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. २१, सु. ११, १३

२१. जो देव श्रीवत्स, श्रीदामकाण्ड, माल्य, कृष्टि, चापोन्नत और आरण्यावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

उन देवों को इक्कीस हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

२२. जे देवा महितं विसुतं विमलं पभासं वणमालं अच्चुयवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

तेसि णं देवाणं बावीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। –सम. सम. २२, सु. [illegible]

२२. जो देव महित, विश्रुत, विमल, प्रभास, वनमाल और अच्युतावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए हैं–

उन देवों को बाईस हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

२३. चउवीसदंडएसु एगेंदियाइसरीराहारकरण परूवणं–

प. दं. १. णेरइयाणं भंते! किं एगिंदियसरीराइं आहारेंति जाव पंचेंदियसरीराइं आहारेंति?

उ. गोयमा ! पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एगिंदियसरीराइं पि आहारेंति जाव पंचेंदियसरीराइं पि आहारेंति,

पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च णियमा पंचेंदियसरीराइं आहारेंति।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते! किं एगिंदियसरीराइं आहारेंति जाव पंचेंदियसरीराइं आहारेंति?

उ. गोयमा ! पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एवं चेव,

पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च णियमा एगिंदियसरीराइं आहारेंति।

दं. १३-१६. आउकाइयाणं जाव वणप्फइकाइयाणं एव चेव।

दं. १७. बेइंदिया पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च एवं चेव,

पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च णियमा बेइंदियसरीराइं आहारेंति।

दं. १८-१९. एवं जाव चउरिंदिया जाव पुव्वभावपण्णवणं पडुच्च,

पडुप्पण्णभावपण्णवणं पडुच्च णियमा जस्स जइ इंदियाइं तस्स तइ इंदियसरीराइं ते आहारेंति।

दं. २०-२४. सेसा जहा णेरइया जाव वेमाणिया?

–पण्ण. प. २८, उ. १, सु. १८५३-१८५८

२३. चौबीस दण्डकों में एकेन्द्रियादि जीवों के शरीरों का आहार करने का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! क्या नैरयिक एकेन्द्रिय शरीरों का यावत् पंचेन्द्रिय शरीरों का आहार करते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से वे एकेन्द्रिय शरीरों का भी आहार करते हैं यावत् पंचेन्द्रिय शरीरों का भी आहार करते हैं।

वर्तमान भाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से नियम से वे पंचेन्द्रिय शरीरों का आहार करते हैं।

दं. २-११. असुरकुमारों से स्तनित कुमारों पर्यन्त इसी प्रकार समझना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव क्या (एकेन्द्रिय शरीरों) का यावत् पंचेन्द्रिय शरीरों का आहार करते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से नारकों के समान वे एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक का पूर्ववत् आहार करते हैं।

वर्तमान भाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से नियमतः वे एकेन्द्रिय शरीरों का आहार करते हैं।

दं. १३-१६. अप्काय से वनस्पतिकाय पर्यन्त इसी प्रकार है।

दं. १७. द्वीन्द्रिय जीवों के सम्बन्ध में पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से इसी प्रकार कहना चाहिए।

वर्तमान भाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से वे नियमतः द्वीन्द्रिय शरीरों का आहार करते हैं,

दं. १८-१९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय पर्यन्त पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से पूर्ववत् कथन करना चाहिए।

वर्तमान भाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से जिसके जितनी इन्द्रियाँ हैं, उतनी ही इन्द्रियों वाले शरीर का आहार करते हैं।

दं. २०-२४. शेष वैमानिकों पर्यन्त का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

२४. चउवीसदंडएसु लोमाहार-पक्खेवाहार परूवणं–

प. णेरइया णं भंते! किं लोमाहारा, पक्खेवाहारा?

उ. गोयमा ! लोमाहारा, णो पक्खेवाहारा।

एवं एगिंदिया सव्वे देवा य भाणियव्वा जाव वेमाणिया[1]।

बेइंदिया जाव मणूसा लोमाहारा वि, पक्खेवाहारा वि।

–पण्ण. प. २८, उ. १, सु. १८५९-१८६१

२४. चौबीस दण्डकों में लोमाहार और प्रक्षेपाहार का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! नारक जीव लोमाहारी हैं या प्रक्षेपाहारी हैं ?

उ. गौतम ! वे लोमाहारी हैं, प्रक्षेपाहारी नहीं हैं।

इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय जीवों और वैमानिकों पर्यन्त सभी देवों के लिए जानना चाहिए।

द्वीन्द्रियों से मनुष्यों पर्यन्त लोमाहारी भी हैं, प्रक्षेपाहारी भी हैं।

२५. चउवीसदंडएसु ओयाहारं मणभक्खणं च परूवणं–

प. णेरइया णं भंते! किं ओयाहारा, मणभक्खी?

उ. गोयमा ! ओयाहारा, णो मणभक्खी।

एवं सव्वे ओरालियसरीरा वि।

देवा सव्वे जाव वेमाणिया ओयाहारा वि मणभक्खी वि।

२५. चौबीस दण्डकों में ओज आहार और मनोभक्षण का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! नैरयिक जीव ओज-आहारी होते हैं या मनोभक्षी होते हैं ?

उ. गौतम ! वे ओज-आहारी होते हैं, मनोभक्षी नहीं होते हैं।

इसी प्रकार सभी औदारिक शरीरधारी जीव भी ओज-आहार वाले होते हैं।

असुरकुमारों से वैमानिकों पर्यन्त सभी प्रकार के देव ओज-आहारी भी होते हैं और मनोभक्षी भी होते हैं।

---

१. (क) तेसि णं देवाणं बत्तीस वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ। *–सम. सम. ३२, सु. १३* (ख) सम. सम. ३३, सु. १३

तत्थ णं जे ते मणभक्खी देवा तेसि णं इच्छामणे समुप्पज्जइ "इच्छामो णं मणभक्खणं करित्तए" तए णं तेहिं देवेहिं एवं मणसीकए समाणे खिप्पामेव जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव मणुण्णा मणामा ते तेसिं मणभक्खत्ताए परिणमंति,

से जहाणामए सीया पोग्गला सीयं पप्प सीयं चेव अइवइत्ताणं चिट्ठंति, उसिणा वा पोग्गला उसिणं पप्प उसिणं चेव अइवइत्ताणं चिट्ठंति,

एवामेव तेहिं देवेहिं मणभक्खे कए समाणे गोयमा ! से इच्छामणे खिप्पामेव अवेइ[1]।

–पण्ण. प. २८, उ. १, सु. १८६२-१८६४

देवों में जो मनोभक्षी देव होते हैं, उनको मनेच्छा (अर्थात्–मन में आहार करने की इच्छा) उत्पन्न होती है। जैसे कि–'वे चाहते हैं कि हम मन में चिन्तित वस्तु का भक्षण करें।' तत्पश्चात् उन देवों के द्वारा मन में इस प्रकार की इच्छा किए जाने पर शीघ्र ही जो पुद्गल इष्ट, कान्त (कमनीय) यावत् मनोज्ञ, मनाम होते हैं, वे उनके मनोभक्ष्यरूप में परिणत हो जाते हैं।

जिस प्रकार कोई शीत (ठण्डे) पुद्गल, शीत पुद्गलों को पाकर शीत स्वभाव में रहते हैं अथवा उष्ण पुद्गल उष्ण पुद्गलों को पाकर उष्ण स्वभाव में रहते हैं।

हे गौतम ! इसी प्रकार उन देवों द्वारा मनोभक्षण किए जाने पर, उनका इच्छा प्रधान मन शीघ्र ही सन्तुष्ट-तृप्त हो जाता है।

२६. आहारगाणाहारग परूवणस्स तेरसद्दारा–

गाहा– १. आहार, २. भविय, ३. सण्णी,
४. लेस्सा, ५. दिट्ठी य, ६. संजय, ७. कसाए,
८. णाण, ९-१०. जोगुवओगे,
११. वेदे य, १२. सरीर, १३. पज्जत्ती।

२६. आहारक-अनाहारक प्ररूपण के तेरह द्वार–

गाथार्थ– १. आहारद्वार, २. भव्यद्वार, ३. संज्ञीद्वार,
४. लेश्याद्वार, ५. दृष्टिद्वार, ६. संयतद्वार,
७. कषायद्वार, ८. ज्ञानद्वार, ९. योगद्वार,
१०. उपयोगद्वार, ११. वेदद्वार, १२. शरीरद्वार,
१३. पर्याप्तिद्वार।

१. आहारदारं–

प. जीवे णं भंते ! किं आहारगे, अणाहारगे ?

उ. गोयमा ! सिय आहारगे, सिय अणाहारगे।
दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

प. सिद्धे णं भंते ! किं आहारगे, अणाहारगे ?

उ. गोयमा ! णो आहारगे, अणाहारगे।

प. जीवा णं भंते ! किं आहारगा, अणाहारगा ?

उ. गोयमा ! आहारगा वि, अणाहारगा वि।

प. दं. १-२४. णेरइया णं भंते ! किं आहारगा, अणाहारगा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा आहारगा,
२. अहवा आहारगा य, अणाहारगे य,
३. अहवा आहारगा य, अणाहारगा य।
दं. १-२४. एवं जाव वेमाणिया[2]।
णवरं–एगिंदिया जहा जीवा।

प. सिद्धा णं भंते ! किं आहारगा, अणाहारगा ?

उ. गोयमा ! णो आहारगा, अणाहारगा।

२. भवसिद्धियदारं–

प. भवसिद्धिए णं भंते ! जीवे किं आहारगे, अणाहारगे ?

१. आहार द्वार–

प्र. भन्ते ! जीव आहारक है या अनाहारक है ?

उ. गौतम ! वह कभी आहारक है, कभी अनाहारक है।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यंत जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! सिद्ध आहारक है या अनाहारक है ?

उ. गौतम ! सिद्ध आहारक नहीं है, अनाहारक है।

प्र. भन्ते ! (बहुत) जीव आहारक हैं या अनाहारक हैं ?

उ. गौतम ! वे आहारक भी होते हैं, अनाहारक भी होते हैं।

प्र. दं. १-२४. भन्ते ! (बहुत) नैरयिक आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं ?

उ. गौतम ! १. वे सभी आहारक होते हैं,
२. अथवा बहुत आहारक और कोई एक अनाहारक होता है,
३. अथवा बहुत आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं।
दं. १-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त तक जानना चाहिए।
विशेष–एकेन्द्रिय जीवों का कथन बहुत जीवों के समान समझना चाहिए।

प्र. भन्ते ! सिद्ध आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं ?

उ. गौतम ! सिद्ध आहारक नहीं होते, वे अनाहारक होते हैं।

२. भवसिद्धिक द्वार–

प्र. भन्ते ! भवसिद्धिक जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

[1] [illegible]
[2] [illegible]

उ. गोयमा ! सिय आहारगे, सिय अणाहारगे।

एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

प. भवसिद्धिया णं भंते ! जीवा किं आहारगा, अणाहारगा ?

उ. गोयमा ! जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

अभवसिद्धिए वि एवं चेव।

प. णोभवसिद्धिए-णोअभवसिद्धिए णं भंते ! जीवे किं आहारगे, अणाहारगे ?

उ. गोयमा ! णो आहारगे, अणाहारगे।

एवं सिद्धे वि।

प. णो भवसिद्धिया-णोअभवसिद्धिया णं भंते ! जीवा किं आहारगा, अणाहारगा ?

उ. गोयमा ! णो आहारगा, अणाहारगा।

एवं सिद्धा वि।

३. सण्णिदारं–

प. सण्णी णं भंते ! जीवे किं आहारगे, अणाहारगे ?

उ. गोयमा ! सिय आहारगे, सिय अणाहारगे।

एवं जाव वेमाणिए।

णवरं–एगिंदिय-विगलिंदिया ण पुच्छिज्जंति।

प. सण्णी णं भंते ! जीवा किं आहारगा, अणाहारगा ?

उ. गोयमा ! जीवाईओ तियभंगो णेरइया जाव वेमाणिया।

प. असण्णी णं भंते ! जीवे किं आहारगे, अणाहारगे ?

उ. गोयमा ! सिय आहारगे, सिय अणाहारगे।

एवं णेरइए जाव वाणमंतरे।

जोइसिय-वेमाणिया ण पुच्छिज्जंति।

प. असण्णी णं भंते ! जीवा किं आहारगा, अणाहारगा ?

उ. गोयमा ! आहारगा वि, अणाहारगा वि, एगो भंगो।

प. दं. १. असण्णी णं भंते ! णेरइया किं आहारगा, अणाहारगा ?

उ. गोयमा ! १. आहारगा वा,

२. अणाहारगा वा,

३. अहवा आहारगे य, अणाहारगे य,

उ. गौतम ! वह कभी आहारक होता है, कभी अनाहारक होता है।

इसी प्रकार (एक) नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! (बहुत) भवसिद्धिक जीव आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं ?

उ. गौतम ! समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर (पूर्ववत्) तीन भंग कहने चाहिए।

इसी प्रकार अभवसिद्धिक के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! नो-भवसिद्धक नो-अभवसिद्धिक जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

उ. गौतम ! वह आहारक नहीं होता है, अनाहारक होता है।

इसी प्रकार (एक) सिद्ध के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! (बहुत से) नो-भवसिद्धक-नो-अभवसिद्धक जीव आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं ?

उ. गौतम ! वे आहारक नहीं होते हैं किन्तु अनाहारक होते हैं।

इसी प्रकार सिद्धों के लिए भी जानना चाहिए।

३. संज्ञीद्वार–

प्र. भन्ते ! संज्ञी जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

उ. गौतम ! वह कभी आहारक होता है, कभी अनाहारक होता है।

इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष–एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों के विषय में प्रश्नोत्तर नहीं करना चाहिए।

प्र. भन्ते ! बहुत-से संज्ञी जीव आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं ?

उ. गौतम ! जीवादि नैरयिकों से वैमानिकों पर्यंत (प्रत्येक में) तीन भंग होते हैं।

प्र. भन्ते ! असंज्ञी जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

उ. गौतम ! वह कभी आहारक होता है, कभी अनाहारक होता है।

इसी प्रकार नैरयिक से वाणव्यन्तर पर्यन्त कहना चाहिए।

ज्योतिष्क और वैमानिक के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिए।

प्र. भन्ते ! (बहुत) असंज्ञी जीव आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं ?

उ. गौतम ! वे अहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं। इनमें केवल एक ही भंग होता है।

प्र. दं. १. भन्ते ! (बहुत) असंज्ञी नैरयिक आहारक होते हैं, या अनाहारक होते हैं ?

उ. गौतम ! वे–१. सभी आहारक होते हैं,

२. सभी अनाहारक होते हैं,

३. अथवा एक आहारक और एक अनाहारक होता है,

४. अहवा आहारगे य, अणाहारगा य,

५. अहवा आहारगा य, अणाहारगे य,

६. अहवा आहारगा य, अणाहारगा य।

एवं एए छब्भंगा।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमारा।

दं. १२-१६. एगिंदिएसु अभंगयं।

दं. १७-२०. बेइंदिय जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएसु तियभंगो।

दं. २१-२२. मणूस-वाणमंतरेसु छब्भंगा।

प. णोसण्णी-णोअसण्णी णं भंते ! जीवे किं आहारगे, अणाहारगे ?

उ. गोयमा ! सिय आहारगे, सिय अणाहारगे।

एवं मणूसे वि।

सिद्धे अणाहारगे।

पुहत्तेणं-णोसण्णी-णोअसण्णी जीवा आहारगा वि, अणाहारगा वि।

मणूसेसु तियभंगो।

सिद्धा अणाहारगा।

४. लेस्सादारं–

प. सलेसे णं भंते ! जीवे किं आहारगे, अणाहारगे ?

उ. गोयमा ! सिय आहारगे, सिय अणाहारगे।

एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

प. सलेसा णं भंते ! जीवा किं आहारगा, अणाहारगा ?

उ. गोयमा ! जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

एवं कण्हलेसाए वि, णीललेसाए वि, काउलेसाए वि, जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

तेउलेसाए पुढवि-आउ-वणस्सइकाइयाणं छब्भंगा।

सेसाणं जीवादीओ तियभंगो जेसिं अत्थि तेउलेस्सा।

पम्हलेस्साए सुक्कलेस्साए य जीवादीओ तियभंगो।

अलेस्सा जीवा मणूसा सिद्धा य एगत्तेण वि पुहत्तेण वि णो आहारगा, अणाहारगा।

५. दिट्ठिदारं–

प. सम्मद्दिट्ठी णं भंते ! जीवे किं आहारगे, अणाहारगे ?

४. अथवा एक आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं,

५. अथवा बहुत-से आहारक और एक अनाहारक होता है,

६. अथवा बहुत-से आहारक और बहुत-से अनाहारक होते हैं,

इस प्रकार ये छह भंग हुए।

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. १२-१६. एकेन्द्रिय जीवों में भंग नहीं होता है।

दं. १७-२०. द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिकों पर्यंत पूर्ववत् के तीन भंग कहने चाहिए।

दं. २१-२२. मनुष्यों और वाणव्यन्तर देवों में (पूर्ववत्) छह भंग कहने चाहिए।

प्र. भन्ते ! नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

उ. गौतम ! वह कभी आहारक होता है, कभी अनाहारक होता है।

इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी कहना चाहिए।

सिद्ध जीव अनाहारक होता है।

बहुत्व की अपेक्षा से-नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव आहारक भी होते हैं और अनाहारक भी होते हैं।

बहुत से मनुष्यों में तीन भंग पाए जाते हैं।

(बहुत से) सिद्ध अनाहारक होते हैं।

४. लेश्या द्वार–

प्र. भन्ते ! सलेश्य जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

उ. गौतम ! वह कभी आहारक होता है, कभी अनाहारक होता है।

इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! (बहुत) सलेश्य जीव आहारक होते हैं या अनाहारक होते हैं ?

उ. गौतम ! समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं।

इसी प्रकार कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी और कापोतलेश्यी के विषय में भी समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहिए।

तेजोलेश्या की अपेक्षा से पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिकों में छह भंग कहने चाहिए।

शेष जीव आदि में जिनमें तेजोलेश्या पाई जाती है, उनमें तीन भंग कहने चाहिए।

पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या वाले जीव आदि में तीन भंग पाए जाते हैं।

[illegible]

५. दृष्टि द्वार–

प्र. भन्ते ! [illegible]

उ. गोयमा ! सिय आहारगे, सिय अणाहारगे।

उ. गौतम ! वह कभी आहारक होता है, कभी अनाहारक होता है।

दं. १७-१९. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया छब्भंगा।

दं. १७-१९. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय (सम्यग्दृष्टियों) में पूर्वोक्त छह भंग होते हैं।

सिद्धा अणाहारगा।

सिद्ध अनाहारक होते है।

अवसेसाणं तियभंगो।

शेष सभी में (बहुत्व की अपेक्षा से) तीन भंग (पूर्ववत्) होते हैं।

मिच्छदिट्ठीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

मिथ्यादृष्टियों में समुच्चय जीव और एकेन्द्रियों को छोड़कर (प्रत्येक में) तीन-तीन भंग पाए जाते हैं।

प. सम्मामिच्छदिट्ठी णं भंते ! किं आहारगे, अणाहारगे ?

प्र. भन्ते ! सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

उ. गोयमा ! आहारगे, णो अणाहारगे।

एवं एगिंदिय-विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणिए।

उ. गौतम ! वह आहारक होता है, अनाहारक नहीं होता है।

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार का कथन करना चाहिए।

एवं पुहत्तेण वि।

बहुत्व की अपेक्षा से भी इसी प्रकार का कथन समझना चाहिए।

६. संजयदारं–

६. संयत द्वार–

प. संजए णं भंते ! जीवे किं आहारगे, अणाहारगे ?

प्र. भन्ते ! संयत जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

उ. गोयमा ! सिय आहारगे, सिय अणाहारगे।

उ. गौतम ! वह कभी आहारक होता है, कभी अनाहारक होता है।

एवं मणूसे वि।

इसी प्रकार मनुष्य संयत का भी कथन करना चाहिए।

पुहत्तेणं तियभंगो।

बहुत्व की अपेक्षा से (समुच्चय जीवों और मनुष्यों में) तीन-तीन भंग पाए जाते हैं।

प. अस्संजए णं भंते ! जीवे किं आहारगे अणाहारगे ?

प्र. भन्ते ! असंयत जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

उ. गोयमा ! सिय आहारगे, सिय अणाहारगे।

उ. गौतम ! वह कभी आहारक भी होता है, कभी अनाहारक भी होता है।

पुहत्तेणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

बहुत्व की अपेक्षा जीव और एकेन्द्रिय छोड़कर इनमें तीन भंग होते हैं।

संजयासंजए जीवे पंचेंदिय तिरिक्खजोणिए मणूसे य एए एगत्तेण वि पुहत्तेण वि आहारगा, णो अणाहारगा।

संयतासंयत जीव, पंचेंद्रिय तिर्यञ्च योनिक और मनुष्य, ये एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से आहारक होते हैं, अनाहारक नहीं होते हैं।

णो संजए-णो असंजए-णो संजयासंजए जीवे सिद्धे य एए एगत्तेण वि पुहत्तेण वि णो आहारगा, अणाहारगा।

नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत जीव और सिद्ध, ये एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से आहारक नहीं होते, किन्तु अनाहारक होते हैं।

७. कसाय दारं–

७. कषाय द्वार–

प. सकसाई णं भंते ! जीवे किं आहारगे अणाहारगे ?

प्र. भन्ते ! सकषायी जीव आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

उ. गोयमा ! सिय आहारगे, सिय अणाहारगे।

उ. गौतम ! वह कभी आहारक होता है और कभी अनाहारक होता है।

एवं जाव वेमाणिए।

इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

पुहत्तेणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

बहुत्व की अपेक्षा से जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर (सकषाय नारक आदि में) तीन भंग पाए जाते हैं।

कोहकसाईसु जीवादिएसु एवं चेव।

क्रोधकषायी जीव आदि में भी इसी प्रकार तीन भंग कहने चाहिए।

णवरं–देवेसु छब्भंगा।

विशेष–देवों में छह भंग कहने चाहिए।

माणकसाईसु मायाकसाईसु य देव-णेरइएसु छब्भंगा।

मानकषायी और मायाकषायी देवों और नारकों में छह भंग पाए जाते हैं।

अवसेसाणं जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर शेष जीवों में तीन भंग पाये जाते हैं।

लोभकसाईसु णेरइएसु छब्भंगा।

लोभकषायी नैरयिकों में छह भंग पाये जाते हैं।

अवसेसेसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

जीव और एकेन्द्रियों को छोड़कर शेष जीवों में तीन भंग पाए जाते हैं।

अकसाई जहा णोसण्णी-णोअसण्णी।

अकषायी का कथन नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी के समान जानना चाहिए।

८. णाणदारं–

८. ज्ञान द्वार–

णाणी जहा सम्मदिट्ठी।

ज्ञानी का कथन सम्यग्दृष्टि के समान समझना चाहिए।

आभिणिबोहियाणाणि-सुयणाणिसु बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिएसु छब्भंगा।

आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में छह भंग समझने चाहिए।

अवसेसेसु जीवादीओ तियभंगो जेसिं अत्थि।

शेष जीव आदि (समुच्चय जीव और नारक आदि) में जिनमें यह ज्ञान हो, उनमें तीन भंग पाए जाते हैं।

ओहिणाणी पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया आहारगा, णो अणाहारगा।

अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक आहारक होते हैं, अनाहारक नहीं होते हैं।

अवसेसेसु जीवादीओ तियभंगो जेसिं अत्थि ओहिणाणं।

शेष जीव आदि में, जिनमें अवधिज्ञान पाया जाता है, उनमें तीन भंग होते हैं।

मणपज्जवणाणी जीवा मणूसा य एगत्तेण वि पुहत्तेण वि आहारगा, णो अणाहारगा।

मनःपर्यवज्ञानी समुच्चय जीव और मनुष्य एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा से आहारक होते हैं, अनाहारक नहीं होते हैं।

केवलणाणी जहा णो सण्णी-णोअसण्णी।

केवलज्ञानी का कथन नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी के कथन के समान जानना चाहिए।

अण्णाणी, मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

अज्ञानी, मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी में समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग पाए जाते हैं।

विभंगणाणी पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया मणूसा य आहारगा णो अणाहारगा।

विभंगज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्य आहारक होते हैं, अनाहारक नहीं होते हैं।

अवसेसेसु जीवादीओ तियभंगो।

अवशिष्ट जीव आदि में तीन भंग पाए जाते हैं।

९. जोगदारं–

९. योग द्वार–

सजोगीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

सयोगियों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग पाए जाते हैं।

मणजोगी वइजोगी य जहा सम्मामिच्छादिट्ठी।

मनोयोगी और वचनयोगी के विषय में सम्यग्मिथ्यादृष्टि के समान कथन करना चाहिए।

णवरं–वइजोगी विगलिंदियाण वि।

विशेष–वचनयोग विकलेन्द्रियों में भी [illegible]

कायजोगीसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

काययोगी जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग पाए जाते हैं।

अजोगी जीव-मणूस-सिद्धा अणाहारगा।

अयोगी समुच्चय जीव, मनुष्य और सिद्ध अनाहारक होते हैं।

१०. उवओगदारं–

१०. उपयोग द्वार–

सागारणागारोवउत्तेसु जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़कर [illegible]

सिद्धा अणाहारगा।

सिद्ध जीव [illegible] अनाहारक होते हैं।

११. वेददारं–

११. वेद द्वार–

सवेदे जीवेगिंदियवज्जो तियभंगो।

समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों को छोड़कर [illegible]

ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइसरीरं, णाणाविहाणं तस थावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति, परिविद्धत्थं तं सरीरगं पुव्वाहारियं तयाहारियं विपरिणयं सारूविकडं संतं सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति।

वे जीव पृथ्वी **यावत्** वनस्पति के शरीर का आहार करते हैं, वे नाना प्रकार के त्रस और स्थावर प्राणियों के शरीर को अचित्त करते हैं। वे पूर्व में विध्वस्त (प्रासुक) किये हुए, पूर्व में आहार किये हुए, त्वचा द्वारा आहार किये हुए विपरिणत तथा आत्मसात् किये हुए उस शरीर का सर्वात्मना आहार कर लेते हैं।

अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावण्णा जाव णाणासंठाणसठिया णाणाविहसरीर-पोग्गलविउव्विता,

उन वृक्षयोनिक वृक्षों के नाना वर्ण **यावत्** नाना प्रकार के संस्थानों युक्त दूसरे शरीर भी होते हैं जो अनेक प्रकार के शारीरिक पुद्गलों से विकुर्वित होते हैं।

ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंतीतिमक्खायं।

वे जीव कर्म के उदय के अनुरूप ही उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

३. अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तव्वक्कमा कम्मोवगा कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खेसु रुक्खत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइसरीरं, नाणाविहाणं तस-थावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति, परिविद्धत्थं तं सरीरगं पुव्वाहारियं तयाहारियं विपरिणयं सारुविकडं संतं सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावण्णा जाव नाणाविह सरीरपोग्गल विउव्विया ते जीवा कम्मोववण्णगा भवंतीतिमक्खायं।

३. इसके बाद यह वर्णन है कि कई जीव वृक्षयोनिक होते हैं, वे वृक्ष में उत्पन्न होते हैं, वृक्ष में ही स्थित एवं वृद्धि को प्राप्त होते हैं, वृक्ष में उत्पन्न होने वाले, उसी में स्थित रहने और उसी में संवृद्धि पाने वाले वृक्षयोनिक जीव कर्म के वशीभूत होकर कर्म के ही कारण उन वृक्षों में आकर वृक्षयोनिक जीवों में वृक्षरूप में उत्पन्न होते हैं, वे जीव उन वृक्षयोनिक वृक्षों के रस का आहार करते हैं, इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी **यावत्** वनस्पति के शरीरों का भी आहार करते हैं। वे त्रस और स्थावर प्राणियों के शरीर को अचित्त करते हैं. वे पूर्व में विध्वस्त (अचित्त) किये हुए, पूर्व में आहार किये हुए, त्वचा द्वारा आहार किये हुए विपरिणत तथा आत्मसात् किये हुए उस शरीर का सर्वात्मना आहार करते हैं। उन वृक्षयोनिक वृक्षों के शरीर नाना वर्ण **यावत्** नाना प्रकार के पुद्गलों से विकुर्वित होते हैं, वे जीव कर्मोदयवश वृक्षयोनिक वृक्षों में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

४. अहावरं पुरक्खायं इहेगइया रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तव्वक्कमा कम्मोवगा कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खेसु मूलत्ताए कंदत्ताए खंधत्ताए तयत्ताए सालत्ताए पवालत्ताए पत्तत्ताए पुप्फत्ताए फलत्ताए बीयत्ताए विउट्टंति। ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइसरीरं नाणाविहाणं तस थावराणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति, परिविद्धत्थं तं सरीरगं जाव सारुविकडं संतं सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति, अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं मूलाणं जाव बीयाणं सरीरा नाणावण्णा जाव नाणाविहसरीरपोग्गलविउव्विया ते जीवा कम्मोववण्णगा भवंतीतिमक्खायं।

४. इसके बाद यह वर्णन है कि इस वनस्पतिकाय वर्ग में कई जीव वृक्षयोनिक होते हैं, वे वृक्ष में ही उत्पन्न होते हैं, वृक्ष में ही संवर्द्धित होते हैं, वे वृक्षयोनिक जीव उसी में उत्पन्न स्थित एवं संवृद्ध होकर कर्मों के वशीभूत होकर कर्म के ही कारण उन वृक्षयोनिक वृक्षों में मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल एवं बीज के रूप में उत्पन्न होते हैं, वे जीव उन वृक्षयोनिक वृक्षों के रस का आहार करते हैं, इसके अतिरिक्त वे जीव नाना प्रकार के पृथ्वी **यावत्** वनस्पति के शरीर का आहार करते हैं, वे जीव नाना प्रकार के त्रस और स्थावर जीवों के शरीरों को अचित्त करते हैं। वे परिविध्वस्त (अचित्त) किये हुए शरीरों को **यावत्** सर्वात्मना आहार करते हैं। उन वृक्षयोनिक मूल **यावत्** बीज रूप जीवों के शरीर नाना वर्ण **यावत्** नाना प्रकार के पुद्गलों से बने हुए होते हैं। ये जीव कर्मोदय वश ही वहाँ उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

१. अहावरं पुरक्खायं-इहेगइया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तव्वक्कमा कम्मोवगा कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं अज्जोरुहित्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति,

१. इसके बाद यह वर्णन है कि इस वनस्पतिकाय जगत् में कई वृक्षयोनिक जीव वृक्ष में ही उत्पन्न होते हैं, वृक्ष में ही स्थित रहते हुए बढ़ते हैं। उसी में उत्पन्न, स्थित और संवर्धित होने वाले वे वृक्षयोनिक जीव कर्मोदयवश तथा कर्म के कारण ही वृक्षों में आकर उन वृक्षयोनिक वृक्षों में अध्यारूह (वृक्ष के ऊपर उत्पन्न होने वाली) वनस्पति रूप में उत्पन्न होते हैं।

ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइसरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति, अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं अज्झोरुहाणं सरीरा नाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

वे जीव वृक्षयोनिक वृक्षों के रस का आहार करते हैं। वे जीव पृथ्वी के शरीर का **यावत्** वनस्पति के शरीर का **यावत्** सर्वात्मना आहार कर लेते हैं तथा दूसरे भी अध्यारूह वनस्पति के शरीरों के नाना प्रकार के वर्ण आदि से बने हुए होते हैं, ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

२. अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता अज्झोरुहजोणिया अज्झोरुहसंभवा जाव कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा अज्झोरुहजोणिएसु अज्झोरुहेसु अज्झोरुहत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं अज्झोरुहजोणियाणं अज्झोरुहाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइसरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति अवरे वि य णं तेसिं अज्झोरुहजोणियाणं अज्झोरुहाणं सरीरा नाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

२. इसके बाद यह वर्णन है कि–इस वनस्पतिकाय में अध्यारुहयोनिक जीव अध्यारुह में ही उत्पन्न होते हैं, **यावत्** कर्म निदान से मरण करके अध्यारुह वृक्षयोनिक के रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव उन वृक्षयोनिक अध्यारुहों के रस का आहार करते हैं, वे जीव पृथ्वी के शरीर का **यावत्** वनस्पति के शरीर का **यावत्** सर्वात्मना आहार कर लेते हैं तथा दूसरे भी अध्यारुह वनस्पति के शरीरों के नाना प्रकार के वर्ण आदि से बने हुए होते हैं **यावत्** उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकरदेव ने कहा है।

३. अहावरं पुरक्खायं–इहेगइया सत्ता अज्झोरुहजोणिया अज्झोरुहसंभवा जाव कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा अज्झोरुहजोणिएसु अज्झोरुहेसु अज्झोरुहित्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं अज्झोरुहजोणियाणं अज्झोरुहाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइसरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं अज्झोरुहजोणियाणं अज्झोरुहाणं सरीरा नाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

३. इसके बाद यह वर्णन है कि–इस वनस्पतिकायिक में कई अध्यारुहयोनिक प्राणी अध्यारुह वृक्षों में ही उत्पन्न होते हैं **यावत्** कर्म निदान से मरण करके अध्यारुहयोनिक वृक्षों में अध्यारुह रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव अध्यारुहयोनिक अध्यारुह वृक्षों के रस का आहार करते हैं। वे जीव पृथ्वी के शरीर का **यावत्** वनस्पति के शरीर का **यावत्** सर्वात्मना आहार कर लेते हैं तथा दूसरे भी अध्यारुहयोनिक अध्यारुह वृक्षों के शरीरों के नाना प्रकार के वर्ण आदि से बने हुए होते हैं **यावत्** उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा श्री तीर्थंकरदेव ने कहा है।

४. अहावरं पुरक्खायं-इहेगइया सत्ता अज्झोरुहजोणिया अज्झोरुहसंभवा जाव कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा अज्झोरुहजोणिएसु अज्झोरुहेसु मूलत्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति। ते जीवा तेसिं अज्झोरुहजोणियाणं अज्झोरुहाणं सिणेहमाहारेंति जाव अवरे वि य णं तेसिं अज्झोरुहजोणियाणं मूलाणं जाव बीयाणं सरीरा णाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

४. इसके बाद यह वर्णन है कि–इस वनस्पतिकाय में कई अध्यारुहयोनिक होते हैं। वे अध्यारुह वृक्षों में उत्पन्न होते हैं **यावत्** कर्मनिदान से मरण करके अध्यारुहयोनिक अध्यारुह वृक्षों के मूल **यावत्** बीज के रूप में उत्पन्न होते हैं, वे जीव उन अध्यारुहयोनिक अध्यारुह वृक्षों के रस का आहार करते हैं **यावत्** उन अध्यारुहयोनिक वृक्षों के मूल **यावत्** बीजों के शरीर नाना वर्ण आदि के बने हुए होते हैं **यावत्** उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकरदेव ने कहा है।

१. अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंभवा जाव णाणाविहजोणिएसु पुढवीसु तणत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं नाणाविहजोणियाणं पुढवीणं सिणेहमाहारेंति जाव ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंतीतिमक्खायं।

१. इसके बाद यह वर्णन है कि–इस वनस्पतिकायिक में कई प्राणी पृथ्वीयोनिक होते हैं, वे पृथ्वी से ही उत्पन्न होते हैं, **यावत्** नाना प्रकार की जाति (योनि) वाली पृथ्वियों पर तृणरूप में उत्पन्न होते हैं, वे तृण के जीव उन नाना प्रकार की जाति वाली पृथ्वियों के रस का आहार करते हैं **यावत्** वे जीव कर्म से प्रेरित होकर तृण के रूप में उत्पन्न होते हैं, यह श्री तीर्थंकरदेव ने कहा है।

२. एवं पुढविजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति जाव भवंतीतिमक्खायं।

२. इसी प्रकार कई (वनस्पतिकायिक) जीव पृथ्वीयोनिक तृणों में तृण रूप में उत्पन्न होते हैं, वे उसी रूप में आहार आदि करते हैं, यह तीर्थंकरदेव ने कहा है।

३. एवं तणजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति जाव भवंतीतिमक्खायं।

३. इसी प्रकार कई (वनस्पतिकायिक) जीव तृणयोनिक तृणों में तृण रूप में उत्पन्न होते हैं, वे उसी रूप में आहार आदि ग्रहण करते हैं, यह तीर्थंकर देव ने कहा है।

४. एवं तणजोणिएसु तणेसु मूलत्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा जाव भवंतीतिमक्खायं।

४. इसी प्रकार कई (वनस्पतिकायिक) जीव तृणयोनिक तृणों में मूल यावत् बीजरूप में उत्पन्न होते हैं, वे ही जीव आहार आदि करते हैं, यह तीर्थंकरदेव ने कहा है।

एवं ओसहीण वि चत्तारि आलावगा (४)

इसी प्रकार औषधिरूप में उत्पन्न (वनस्पतिकायिक) जीवों में भी चार आलापक कहने चाहिए।

ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं **जाव** वणस्सइसरीरं, णाणाविहाणं तस थावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति, परिविद्धत्थं तं सरीरगं पुव्वाहारियं तयाहारियं विपरिणयं सारूविकडं संतं सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति।

अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा नाणावण्णा **जाव** नाणासंठाणसठिया नाणाविहसरीर-पोग्गलविउव्विता,

ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंतीतिमक्खायं।

३. अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तव्वक्कमा कम्मोवगा कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खेसु रुक्खत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं **जाव** वणस्सइसरीरं, नाणाविहाणं तस-थावराणं पाणाणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति, परिविद्धत्थं तं सरीरगं पुव्वाहारियं तयाहारियं विपरिणयं सारुविकडं संतं सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावण्णा **जाव** नाणाविह सरीरपोग्गल विउव्विया ते जीवा कम्मोववण्णगा भवंतीतिमक्खायं।

४. अहावरं पुरक्खायं इहेगइया रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तव्वक्कमा कम्मोवगा कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा रुक्खजोणिएसु रुक्खेसु मूलत्ताए कंदत्ताए खंधत्ताए तयत्ताए सालत्ताए पवालत्ताए पत्तत्ताए पुप्फत्ताए फलत्ताए बीयत्ताए विउट्टंति। ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं **जाव** वणस्सइसरीरं नाणाविहाणं तस थावराणं सरीरं अचित्तं कुव्वंति, परिविद्धत्थं तं सरीरगं **जाव** सारुविकडं संतं सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति, अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं मूलाणं **जाव** वीयाणं सरीरा नाणावण्णा **जाव** नाणाविहसरीरपोग्गलविउव्विया ते जीवा कम्मोववण्णगा भवंतीतिमक्खायं।

१. अहावरं पुरक्खायं-इहेगइया सत्ता रुक्खजोणिया रुक्खसंभवा रुक्खवक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तव्वक्कमा कम्मोवगा कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं अज्जोरुहित्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं रुक्खजोणियाणं रुक्खाणं सिणेहमाहारेंति,

वे जीव पृथ्वी **यावत्** वनस्पति के शरीर का आहार करते हैं, वे नाना प्रकार के त्रस और स्थावर प्राणियों के शरीर को अचित्त करते हैं। वे पूर्व में विध्वस्त (प्रासुक) किये हुए, पूर्व में आहार किये हुए, त्वचा द्वारा आहार किये हुए विपरिणत तथा आत्मसात् किये हुए उस शरीर का सर्वात्मना आहार कर लेते हैं।

उन वृक्षयोनिक वृक्षों के नाना वर्ण **यावत्** नाना प्रकार के संस्थानों युक्त दूसरे शरीर भी होते हैं जो अनेक प्रकार के शारीरिक पुद्गलों से विकुर्वित होते हैं।

वे जीव कर्म के उदय के अनुरूप ही उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

३. इसके बाद यह वर्णन है कि कई जीव वृक्षयोनिक होते हैं, वे वृक्ष में उत्पन्न होते हैं, वृक्ष में ही स्थित एवं वृद्धि को प्राप्त होते हैं, वृक्ष में उत्पन्न होने वाले, उसी में स्थित रहने और उसी में संवृद्धि पाने वाले वृक्षयोनिक जीव कर्म के वशीभूत होकर कर्म के ही कारण उन वृक्षों में आकर वृक्षयोनिक जीवों में वृक्षरूप में उत्पन्न होते हैं, वे जीव उन वृक्षयोनिक वृक्षों के रस का आहार करते हैं, इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी **यावत्** वनस्पति के शरीरों का भी आहार करते हैं। वे त्रस और स्थावर प्राणियों के शरीर को अचित्त करते हैं, वे पूर्व में विध्वस्त (अचित्त) किये हुए, पूर्व में आहार किये हुए, त्वचा द्वारा आहार किये हुए विपरिणत तथा आत्मसात् किये हुए उस शरीर का सर्वात्मना आहार करते हैं। उन वृक्षयोनिक वृक्षों के शरीर नाना वर्ण **यावत्** नाना प्रकार के पुद्गलों से विकुर्वित होते हैं, वे जीव कर्मोदयवश वृक्षयोनिक वृक्षों में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

४. इसके बाद यह वर्णन है कि इस वनस्पतिकाय वर्ग में कई जीव वृक्षयोनिक होते हैं, वे वृक्ष में ही उत्पन्न होते हैं, वृक्ष में ही संवर्द्धित होते हैं, वे वृक्षयोनिक जीव उसी में उत्पन्न स्थित एवं संवृद्ध होकर कर्मों के वशीभूत होकर कर्म के ही कारण उन वृक्षयोनिक वृक्षों में मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल एवं बीज के रूप में उत्पन्न होते हैं, वे जीव उन वृक्षयोनिक वृक्षों के रस का आहार करते हैं, इसके अतिरिक्त वे जीव नाना प्रकार के पृथ्वी **यावत्** वनस्पति के शरीर का आहार करते हैं, वे जीव नाना प्रकार के त्रस और स्थावर जीवों के शरीरों को अचित्त करते हैं। वे परिविध्वस्त (अचित्त) किये हुए शरीरों को **यावत्** सर्वात्मना आहार करते हैं। उन वृक्षयोनिक मूल **यावत्** बीज रूप जीवों के शरीर नाना वर्ण **यावत्** नाना प्रकार के पुद्गलों से बने हुए होते हैं। ये जीव कर्मोदय वश ही वहाँ उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

१. इसके बाद यह वर्णन है कि इस वनस्पतिकाय जगत् में कई वृक्षयोनिक जीव वृक्ष में ही उत्पन्न होते हैं, वृक्ष में ही स्थित रहते हुए बढ़ते हैं। उसी में उत्पन्न, स्थित और संवर्धित होने वाले वे वृक्षयोनिक जीव कर्मोदयवश तथा कर्म के कारण ही वृक्षों में आकर उन वृक्षयोनिक वृक्षों में अध्यारूह (वृक्ष के ऊपर उत्पन्न होने वाली) वनस्पति रूप में उत्पन्न होते हैं।

ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइसरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति, अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं अज्झोरुहाणं सरीरा नाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

वे जीव वृक्षयोनिक वृक्षों के रस का आहार करते हैं। वे जीव पृथ्वी के शरीर का यावत् वनस्पति के शरीर का यावत् सर्वात्मना आहार कर लेते हैं तथा दूसरे भी अध्यारूह वनस्पति के शरीरों के नाना प्रकार के वर्ण आदि से बने हुए होते हैं, ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

२. अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता अज्झोरुहजोणिया अज्झोरुहसंभवा जाव कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा अज्झोरुहजोणिएसु अज्झोरुहेसु अज्झोरुहत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं अज्झोरुहजोणियाणं अज्झोरुहाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइसरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति अवरे वि य णं तेसिं अज्झोरुहजोणियाणं अज्झोरुहाणं सरीरा नाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

२. इसके बाद यह वर्णन है कि–इस वनस्पतिकाय में अध्यारुहयोनिक जीव अध्यारुह में ही उत्पन्न होते हैं, यावत् कर्म निदान से मरण करके अध्यारुह वृक्षयोनिक के रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव उन वृक्षयोनिक अध्यारुहों के रस का आहार करते हैं, वे जीव पृथ्वी के शरीर का यावत् वनस्पति के शरीर का यावत् सर्वात्मना आहार कर लेते हैं तथा दूसरे भी अध्यारुह वनस्पति के शरीरों के नाना प्रकार के वर्ण आदि से बने हुए होते हैं यावत् उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकरदेव ने कहा है।

३. अहावरं पुरक्खायं–इहेगइया सत्ता अज्झोरुहजोणिया अज्झोरुहसंभवा जाव कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा अज्झोरुहजोणिएसु अज्झोरुहेसु अज्झोरुहित्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं अज्झोरुहजोणियाणं अज्झोरुहाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइसरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं अज्झोरुहजोणियाणं अज्झोरुहाणं सरीरा नाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

३. इसके बाद यह वर्णन है कि–इस वनस्पतिकायिक में कई अध्यारुहयोनिक प्राणी अध्यारुह वृक्षों में ही उत्पन्न होते हैं यावत् कर्म निदान से मरण करके अध्यारुहयोनिक वृक्षों में अध्यारुह रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव अध्यारुहयोनिक अध्यारुह वृक्षों के रस का आहार करते हैं। वे जीव पृथ्वी के शरीर का यावत् वनस्पति के शरीर का यावत् सर्वात्मना आहार कर लेते हैं तथा दूसरे भी अध्यारुहयोनिक अध्यारुह वृक्षों के शरीरों के नाना प्रकार के वर्ण आदि से बने हुए होते हैं यावत् उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा श्री तीर्थंकरदेव ने कहा है।

४. अहावरं पुरक्खायं-इहेगइया सत्ता अज्झोरुहजोणिया अज्झोरुहसंभवा जाव कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा अज्झोरुहजोणिएसु अज्झोरुहेसु मूलत्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति। ते जीवा तेसिं अज्झोरुहजोणियाणं अज्झोरुहाणं सिणेहमाहारेंति जाव अवरे वि य णं तेसिं अज्झोरुहजोणियाणं मूलाणं जाव बीयाणं सरीरा णाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

४. इसके बाद यह वर्णन है कि–इस वनस्पतिकाय में कई अध्यारुहयोनिक होते हैं। वे अध्यारुह वृक्षों में उत्पन्न होते हैं यावत् कर्मनिदान से मरण करके अध्यारुहयोनिक अध्यारुह वृक्षों के मूल यावत् बीज के रूप में उत्पन्न होते हैं, वे जीव उन अध्यारुहयोनिक अध्यारुह वृक्षों के रस का आहार करते हैं यावत् उन अध्यारुहयोनिक वृक्षों के मूल यावत् बीजों के शरीर नाना वर्ण आदि के बने हुए होते हैं यावत् उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकरदेव ने कहा है।

१. अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंभवा जाव णाणाविहजोणिएसु पुढवीसु तणत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं नाणाविहजोणियाणं पुढवीणं सिणेहमाहारेंति जाव ते जीवा कम्मोववन्नगा भवंतीतिमक्खायं।

१. इसके बाद यह वर्णन है कि–इस वनस्पतिकायिक में कई प्राणी पृथ्वीयोनिक होते हैं, वे पृथ्वी से ही उत्पन्न होते हैं, यावत् नाना प्रकार की जाति (योनि) वाली पृथ्वियों पर तृणरूप में उत्पन्न होते हैं, वे तृण के जीव उन नाना प्रकार की जाति वाली पृथ्वियों के रस का आहार करते हैं यावत् वे जीव कर्म से प्रेरित होकर तृण के रूप में उत्पन्न होते हैं, यह श्री तीर्थंकरदेव ने कहा है।

२. एवं पुढविजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति जाव भवंतीतिमक्खायं।

२. इसी प्रकार कई (वनस्पतिकायिक) जीव पृथ्वीयोनिक तृणों में तृण रूप में उत्पन्न होते हैं, वे उसी रूप में आहार आदि करते हैं, यह तीर्थंकरदेव ने कहा है।

३. एवं तणजोणिएसु तणेसु तणत्ताए विउट्टंति जाव भवंतीतिमक्खायं।

३. इसी प्रकार कई (वनस्पतिकायिक) जीव तृणयोनिक तृणों में तृण रूप में उत्पन्न होते हैं, वे उसी रूप में आहार आदि ग्रहण करते हैं, यह तीर्थंकर देव ने कहा है।

४. एवं तणजोणिएसु तणेसु मूलत्ताए जाव बीयत्ताए विउट्टंति ते जीवा जाव भवंतीतिमक्खायं।

४. इसी प्रकार कई (वनस्पतिकायिक) जीव तृणयोनिक तृणों में मूल यावत् बीजरूप में उत्पन्न होते हैं, वे ही जीव आहार आदि करते हैं, यह तीर्थंकरदेव ने कहा है।

एवं ओसहीण वि चत्तारि आलावगा (४)

इसी प्रकार औषधिरूप में उत्पन्न (वनस्पतिकायिक) जीवों में भी चार आलापक कहने चाहिए।

एवं हरियाण वि चत्तारि आलावगा (४)

इसी प्रकार हरितरूप में उत्पन्न वनस्पतिकायिक जीवों के भी चार आलापक कहने चाहिए।

अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता पुढविजोणिया पुढविसंभवा जाव कम्मनियाणेणं तत्थवक्कमा णाणाविहजोणियासु पुढवीसु आयत्ताए वायत्ताए कायत्ताए कुहणत्ताए कंदुकत्ताए उव्वेहलियत्ताए निव्वेहलियत्ताए सछत्ताए छत्तगत्ताए वासाणियत्ताए कूरत्ताए विउट्टंति। ते जीवा तेसिं णाणाविहजोणियाणं पुढवीणं सिणेहमाहारेंति। ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइ सरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं पुढविजोणियाणं आयाणं जाव कुराणं णाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

इसके बाद यह वर्णन है कि–इस वनस्पतिकाय में कई जीव पृथ्वीयोनिक होते हैं, वे पृथ्वी से उत्पन्न होते हैं **यावत्** कर्मनिदान से मरण करके नाना प्रकार की योनि वाली पृथ्वियों में आय, वाय, काय, कूहण, कन्दूक, उवेहणी, निर्वेहणी, सछत्रक, छत्रक, वासानी एवं कूर नामक वनस्पति के रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव उन नानाविध योनियों वाली पृथ्वियों के रस का आहार करते हैं तथा वे जीव पृथ्वीकाय के जीवों के शरीरों का **यावत्** वनस्पतिकाय के शरीरों का **यावत्** सर्वात्मना आहार कर लेते हैं। उन पृथ्वीयोनिक आय वनस्पति से कूर वनस्पति तक के जीवों के शरीर नाना प्रकार के वर्णादि से बने हुए होते हैं **यावत्** उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकरदेव ने कहा है।

एक्को चेव आलावगो सेसा तिण्णि नत्थि।

इन जीवों का एक ही आलापक होता है, शेष तीन आलापक नहीं होते।

१. अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता उदगजोणिया उदगसंभवा जाव कम्मनियाणेणं तत्थवक्कमा णाणाविहजोणिएसु उदएसु रुक्खत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं णाणाविहजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइसरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं उदगजोणियाणं रुक्खाणं सरीरा णाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

१. इसके बाद यह वर्णन है कि–इन वनस्पतिकाय में कई उदकयोनिक (जो जल में ही उत्पन्न होने वाली) वनस्पतियाँ हैं जो जल में उत्पन्न होती हैं **यावत्** अपने कर्म निदान से मरण करके नाना प्रकार की योनियाँ वाले जल में वृक्षरूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव नाना प्रकार के जाति वाले जलों के रस का आहार करते हैं। वे जीव पृथ्वी के शरीरों का **यावत्** वनस्पति के शरीरों का **यावत्** सर्वात्मना आहार कर लेते हैं तथा उन जलयोनिक वृक्षों के शरीर नाना वर्णादि से बने हुए होते हैं **यावत्** उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकरदेव ने कहा है।

जहा पुढविजोणियाणं रुक्खाणं चत्तारि गमा (४)

जैसे पृथ्वीयोनिक वृक्ष के चार भेद कहे हैं वैसे ही इन जलयोनिक वृक्ष के भी चार चार आलापक कहने चाहिए।

अज्झोरुहाण वि तहेव (४)

अध्यारुह के भी वैसे ही चार-चार आलापक कहने चाहिए।

तणाणं ओसहीणं हरियाणं चत्तारि आलावगा भाणियव्वा एक्केक्के।

तृण औषधिक और हरित प्रत्येक के चार चार आलापक कहने चाहिए।

२. अहावरं पुरक्खायं-इहेगइया सत्ता उदगजोणिया उदगसंभवा जाव कम्मणियाणेणं तत्थवक्कमा णाणाविहजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए अवगत्ताए पणगत्ताए सेवालत्ताए कलंबुयत्ताए हढत्ताए कसेरुयत्ताए कच्छरुयत्ताए भाणियत्ताए उप्पलत्ताए पउमत्ताए कुमुदत्ताए नलिणत्ताए सुभगत्ताए सोगंधियत्ताए पोंडरियत्ताए महापोंडिरियत्ताए सयपत्तत्ताए सहस्सपत्तत्ताए कल्हारत्ताए कोंकणत्ताए अरविंदत्ताए तामरसत्ताए भिसत्ताए भिसमुणालत्ताए पुक्खलत्ताए पुक्खलत्थिभगत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं णाणाविह जोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइ सरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं उदगजोणियाणं उदगाणं जाव पुक्खलत्थिभगाणं सरीरा णाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

२. इसके बाद यह वर्णन है कि–इस वनस्पतिकाय में कई जीव उदकयोनिक होते हैं, जो जल में उत्पन्न होते हैं **यावत्** अपने कर्म निदान से मरण करके अनेक प्रकार की योनि के उदकों में उदक, अवक, पनक (काई), शैवाल, कलम्बुक, हड, कसेरु, कच्छ, भाणितक, उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, कल्हार, कोकनद, अरविन्द, तामरस, कमलमूल, कमल नाल, पुष्कर और पुष्पकरस्तिबुक के रूप में उत्पन्न होते हैं, वे जीव नाना जाति वाले जलों के रस का आहार करते हैं, तथा पृथ्वीकाय शरीरों का **यावत्** वनस्पति के शरीरों का **यावत्** सर्वात्मना आहार कर लेते हैं। उन जलयोनिक वनस्पतियों के उदक से पुष्कर-स्तिबुक आदि के शरीर नाना वर्णादि से बने हुए होते हैं **यावत्** उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

एक्को चेव आलावगो (१)

इसमें केवल एक ही आलापक होता है।

१. अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता, तेहिं चेव पुढविजोणिएहिं रुक्खेहिं रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं,

१. इसके बाद यह वर्णन है कि–वनस्पतिकायिक में कई जीव पृथ्वीयोनिक वृक्षों में, वृक्षयोनिक वृक्षों में, वृक्षयोनिक मूल से

रुक्खजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं (३) रुक्खजोणिएहिं, अज्झोरुहेहिं, अज्झोरुहजोणिएहिं अज्झोरुहेहिं, अज्झोरुहजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं (३) पुढविजोणिएहिं तणेहिं, तणजोणिएहिं तणेहिं, तणजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं (३) एवं ओसहीहिं तिण्णि आलावगा (३) एवं हरिएहिं वि तिण्णि आलावगा (३)

पुढविजोणिएहिं आएहिं काएहिं जाव कूरेहिं (२) उदगजोणिएहिं रुक्खेहिं, रुक्खजोणिएहिं रुक्खेहिं, रुक्खजोणिएहिं मूलेहिं जाव बीएहिं (३) एवं अज्झोरुहेहिं वि तिण्णि आलावगा (३) तणेहिं वि तिण्णि आलावगा (३) ओसहीहिं वि तिण्णि आलावगा (३) हरिएहिं वि तिण्णि आलावगा (३) उदगजोणिएहिं उदएहिं अवएहिं जाव पुक्खलत्थिभएहिं तसपाणत्ताए विउट्टंति।

२. ते जीवा तेसिं पुढविजोणियाणं उदगजोणियाणं रुक्खजोणियाणं अज्झोरुहजोणियाणं तणजोणियाणं ओसहिजोणियाणं हरियजोणियाणं रुक्खाणं अज्झोरुहाणं तणाणं ओसहीणं हरियाणं मूलाणं जाव बीयाणं आयाणं कायाणं जाव कुराणं उदगाणं अवगाणं जाव पुक्खलत्थिभगाणं सिणेहमाहारेंति ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइ सरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं रुक्खजोणियाणं अज्झोरुहजोणियाणं तणजोणियाणं ओसहिजोणियाणं हरियजोणियाणं मूलजोणियाणं कंदजोणियाणं जाव बीयजोणियाणं आयजोणियाणं कायजोणियाणं जाव कूरजोणियाणं अवगजोणियाणं जाव पुक्खलत्थिभग जोणियाणं तसपाणाणं सरीरा णाणावण्णा जाव भवंतीति मक्खायं। —*सूय. सु. २, अ. ३, सु. ७२२-७३१*

बीजपर्यन्त अवयवों में, (३) वृक्षयोनिक अध्यारुह वृक्षों में, अध्यारुयोनिक अध्यारुहों में, अध्यारुहयोनिक मूल से बीजपर्यन्त अवयवों में, (३) पृथ्वीयोनिक तृणों में, तृणयोनिक तृणों में, तृणयोनिकों के मूल से बीजपर्यन्त अवयवों में (३) तथा इसी प्रकार औषधिक और हरितों के सम्बन्ध में तीन-तीन आलापक कहने चाहिए।

पृथ्वीयोनिक आय, काय से कूर तक के वनस्पतिकायिक अवयवों में, उदकयोनिक वृक्षों में, वृक्षयोनिक वृक्षों में तथा वृक्षयोनिक मूल से बीज तक के अवयवों में और इसी प्रकार अध्यारुहों, तृणों, औषधियों और हरितों में भी तीन-तीन आलापक कहने चाहिए। उनमें तथा कई उदकयोनिक उदक अवक से पुष्करस्तिबुक पर्यंत में त्रस प्राणी के रूप में उत्पन्न होते हैं।

२. वे जीव पृथ्वीयोनिक, जलयोनिक वृक्षयोनिक अध्यारुहयोनिक, तृणयोनिक, औषधियोनिक हरितयोनिक, वृक्षों के तथा अध्यारूह वृक्षों, तृणों, औषधियों, हरितों के मूल से बीजपर्यन्त आय काय से कूर वनस्पति तक के एवं उदक अवक से पुष्करस्तिबुक वनस्पति पर्यन्त के रस का आहार करते हैं। वे जीव पृथ्वी यावत् वनस्पति के शरीरों का यावत् सर्वात्मना आहार कर लेते हैं, तथा दूसरे भी वृक्षयोनिक, अध्यारूहयोनिक, तृणयोनिक, औषधियोनिक, हरितयोनिक, मूलयोनिक, कन्दयोनिक यावत् बीजयोनिक तथा आय, काय, यावत् कूरयोनिक, उदकयोनिक, अवकयोनिक यावत् पुष्कर स्तिविकयोनिक त्रसजीवों के शरीर नाना वर्णादि से बने हुए होते हैं यावत् उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

२८. मणुस्साणं उप्पत्ति वुड्ढि आहार परूवणं—

अहावरं पुरक्खायं-णाणाविहाणं मणुस्साणं, तं जहा—

कम्मभूमगाणं, अकम्मभूमगाणं, अंतर-दीवगाणं, आरियाणं, मिलक्खूणं, तेसिं च णं अहोबीएणं अहावकासेणं इत्थीए पुरिसस्स य कम्मकडाए जोणीए एत्थ णं मेहुणवत्तिए नामं संयोगे समुप्पज्जइ, ते दुहवो वि सिणेहिं संचिणंति, संचिणित्ता तत्थ णं जीवा इत्थित्ताए पुरिसत्ताए णपुंसगत्ताए विउट्टंति, ते जीवा माउओयं पिउसुक्कं तं तदुभयं संसट्ठं कलुसं किव्विसं तप्पढमयाए आहारमाहारेंति, तओ पच्छा जं से माता णाणाविहाओ रसविगईओ आहारमाहारेइ तओ एगदेसेणं ओयमाहारेंति, अणुपुव्वेणं वुड्ढा पलिपागमणुचिन्ना तओ कायाओ अभिनिव्वट्टमाणा इत्थि वेगता जणयंति, पुरिसं वेगता जणयंति, णपुंसगं वेगता जणयंति।

२८. मनुष्यों की उत्पत्ति वृद्धि आहार का प्ररूपण—

इसके पश्चात् अनेक प्रकार के मनुष्यों का स्वरूप बताया है, यथा—

कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, अन्तर्द्वीपज, आर्य, म्लेच्छ (अनार्य), उन जीवों की उत्पत्ति अपने-अपने बीज और अपने-अपने अवकाश के अनुसार पूर्वकर्म निर्मित योनि में स्त्री पुरुष के मैथुन हेतुक संयोग से होती है। वे जीव (तैजस् और कार्मण शरीर द्वारा) दोनों के रस का आहार करते हैं, आहार करके वे जीव वहां स्त्रीरूप में, पुरुषरूप में या नपुंसकरूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव माता के रज (शोणित) और पिता के वीर्य (शुक्र) का जो परस्पर मिले हुए (संसृष्ट) कलुष मलिन और घृणित होते हैं, उनका सर्व प्रथम आहार करते हैं। उसके बाद माता अनेक प्रकार की जिन सरस वस्तुओं का आहार करती है, वे जीव माता के शरीर से निकले हुए एकदेश ओज का आहार करते हैं, उसके बाद अनुक्रम से वृद्धिगत होते हुए गर्भ का समय पूर्ण होने पर माता के शरीर से कोई स्त्री रूप में, कोई पुरुषरूप में और कोई नपुंसक रूप में उत्पन्न होते हैं।

ते जीवा डहरा समाणा मातुं खीरं सप्पिं आहारेंति, अणुपुव्वेणं वुड्ढा ओयणं कुम्मासं तस थावरे य पाणे ते जीवा आहारेंति, पुढविसरीरं **जाव** वणस्सइसरीरं **जाव** सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं णाणाविहाणं मणुस्साणं कम्मभूमगाणं अकम्मभूमगाणं अंतरदीवगाणं आरियाणं मिलक्खूणं सरीरा णाणावण्णा **जाव** भवंतीतिमक्खायं।

–सूय. सु. २, अ. ३, सु. ७३२

वे जीव शिशु होकर माता के दूध और घी का आहार करते हैं। क्रमशः बड़े होकर वे जीव चावल कुल्माष एवं त्रस स्थावर प्राणियों का आहार करते हैं। वे जीव पृथ्वी के शरीरों का **यावत्** वनस्पति के शरीरों का **यावत्** सर्वात्मना आहार कर लेते हैं तथा दूसरे भी कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, अन्तर्द्वीपज, आर्य और म्लेच्छ आदि अनेकविध मनुष्यों के शरीर नाना वर्णादि से बने हुए होते हैं **यावत्** उन्हीं में उत्पन्न होते हैं ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

२९. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं उप्पत्ति वुड्ढि आहार परूवणं–

२९. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक की उत्पत्ति वृद्धि आहार का प्ररूपण–

अहावरं पुरक्खायं–णाणाविहाणं जलयर पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं, तं जहा–मच्छाणं **जाव** सुंसमाराणं।

इसके पश्चात् अनेक प्रकार के जलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों का वर्णन इस प्रकार है, यथा–मत्स्य **यावत्** सुंसुमार।

तेसिं च णं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थीए पुरिसस्स य कम्मकडाए जोणीए तहेव **जाव** तओ एगदेसेणं ओयमाहारेंति, अणुपुव्वेणं वुड्ढा पलिपागमणुचिण्णा तओ कायाओ अभिनिव्वट्टमाणा अंडं वेगता जणयंति, पोयं वेगता जणयंति, से अंडे उब्भिज्जमाणे इत्थि वेगया जणयंति, पुरिसं वेगया जणयंति, नपुंसगं वेगया जणयंति। ते जीवा डहरा समाणा आउसिणेहमाहारेंति, अणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तस-थावरे य पाणे ते जीवा आहारेंति, पुढविसरीरं **जाव** वणस्सइ सरीरं **जाव** सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं णाणाविहाणं जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मच्छाणं **जाव** सुंसुमाराणं सरीरा नाणावण्णा **जाव** भवंतीति मक्खायं।

वे जीव अपने बीज और अवकाश के अनुसार स्त्री और पुरुष का संयोग होने पर स्वस्वकर्मानुसार पूर्वोक्त प्रकार के गर्भ में उत्पन्न होते हैं और उसी प्रकार **यावत्** माता के एकदेश ओज का आहार करते हैं। इस प्रकार क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होकर गर्भ के परिपक्व होने पर माता की काया से बाहर निकल कर कोई अण्डे के रूप में, कोई पोतज के रूप में उत्पन्न होते हैं। जब वह अंडा फूट जाता है तो कोई स्त्री (मादा) के रूप में, कोई पुरुष (नर) के रूप में और कोई नपुंसक के रूप में उत्पन्न होता है। वे जलचर जीव बाल्यावस्था में जल के रस का आहार करते हैं, तत्पश्चात् क्रमशः बड़े होने पर वनस्पतिकाय तथा त्रस स्थावर प्राणियों का आहार करते हैं। वे जीव पृथ्वी शरीरों का **यावत्** वनस्पति के शरीरों का **यावत्** सर्वात्मना आहार कर लेते हैं तथा दूसरे भी नाना प्रकार के मछली से सुंसुमार पर्यन्त के जलचर पंचेन्द्रियतिर्यञ्च जीवों के शरीर नाना वर्णादि से बने हुए होते हैं **यावत्** उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

अहावरं पुरक्खायं नाणाविहाणं चउप्पयथलयर पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं, तं जहा–

एगखुराणं, दुखुराणं, गंडीपदाणं सणप्फयाणं,

इसके पश्चात् अनेक जाति वाले चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों का वर्णन इस प्रकार है, यथा–

कई एक खुर वाले, दो खुर वाले, गण्डीपद (हाथी आदि) सिंह आदि नखयुक्त पद वाले होते हैं,

तेसिं च णं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थीए पुरिसस्स य कम्मकडाए जोणीए एत्थणं मेहुणवत्तिए नामं संजोगे समुप्पज्जइ, ते दुहओ वि सिणेहिं संचिणंति संचिणित्ता तत्थ णं जीवा इत्थित्ताए पुरिसत्ताए णपुंसगत्ताए विउट्टंति, ते जीवा माउं ओयं पिउं सुक्कं **एवं जहा मणुस्साणं जाव** इत्थि वेगया जणयंति, पुरिसं वेगया जणयंति, नपुंसगं वेगया जणयंति। ते जीवा डहरा समाणा मातु खीरं सप्पिं आहारेंति, अणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तस थावरे य पाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं **जाव** वणस्सइ शरीरं **जाव** सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं णाणाविहाणं चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं एगखुरा-णं **जाव** सणप्फयाणं सरीरा नाणावण्णा **जाव** भवंतीतिमक्खायं।

वे जीव अपने-अपने बीज और अवकाश के अनुसार स्त्री और पुरुष के परस्पर मैथुन प्रत्ययिक संयोग होने पर स्व-स्व कर्मानुसार उत्पन्न होते हैं, वे सर्वप्रथम दोनों के रस का आहार करते हैं, आहार करके वे जीव स्त्री, पुरुष या नपुंसक के रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव (गर्भ में) माता के ओज (रज) और पिता के शुक्र का आहार करते हैं। ***शेष सब वर्णन पूर्ववत् मनुष्यों के समान समझ लेना चाहिए यावत्*** इनमें कोई स्त्री (मादा) के रूप में, कोई नर के रूप में और कोई नपुंसक के रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव बाल्यावस्था में माता के दूध और घृत का आहार करते हैं क्रमशः बड़े होकर वे वनस्पतिकाय का तथा दूसरे त्रस स्थावर प्राणियों का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे प्राणी पृथ्वी के शरीरों का **यावत्** वनस्पति के शरीरों का **यावत्** सर्वात्मना आहार कर लेते हैं। उन अनेकविध जाति वाले चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक एकखुर **यावत्** नखयुक्त पद वाले जीवों के नाना वर्णादि वाले शरीर होते हैं **यावत्** उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

अहावरं पुरक्खायं नाणाविहाणं उरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं, तं जहा–

अहीणं अयगराणं आसालियाणं महोरगाणं।

इसके पश्चात् अनेक प्रकार की जाति वाले उरपरिसर्प (छाती के बल सरक कर चलने वाले) स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों का वर्णन इस प्रकार है, यथा–

सर्प, अजगर, आशालिक और महोरग।

तेसिं च णं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थीए पुरिसस्स य कम्मकडाए जोणीए एत्थ णं मेहुण वत्तिए नाम संजोगे समुप्पज्जइ, एवं चेव।

नाणत्तं–अंडं वेगता जणयंति, पोयं वेगता जणयंति, से अंडे उब्भिज्जमाणे इत्थि वेगता जणयंति, पुरिसं वेगता जणयंति, नपुंसगं वेगता जणयंति। ते जीवा डहरा समाणा वाउकायमाहारेंति, अणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तस थावरे य पाणे ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइ सरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं णाणाविहाणं उरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्ख-जोणियाणं अहीणं जाव महोरगाणं सरीरा णाणावण्णा जाव भवंतीति मक्खायं।

अहावरं पुरक्खायं नाणाविहाणं भुयपरिसप्पथलयर-पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं, तं जहा–

गोहाणं, नउलाणं, सेहाणं, सरडाणं, सल्लाणं, सरयाणं, खोराणं, घरकोइलियाणं, विस्संभराणं, मूसगाणं, मंगुसाणं, पयलाइयाणं, विरालियाणं, जोहाणं, चाउप्पाइयाणं,

तेसिं च णं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थीए पुरिसस्स य जहा उरपरिसप्पाणं तहा भाणियव्वं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं नाणाविहाणं भुयपरिसप्प थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं गोहाणं जाव चाउप्पाइयाणं सरीरा णाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

अहावरं पुरक्खायं णाणाविहाणं खहयरपंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं, तं जहा–

चम्मपक्खीणं, लोमपक्खीणं, समुग्गपक्खीणं, विततपक्खीणं,

तेसिं च णं अहाबीएणं अहावगासेणं इत्थीए जहा उरपरिसप्पाणं नाणत्तं ते जीवा डहरा समाणा माउं गात्तसिणेहं आहारेंति, अणुपुव्वेणं वुड्ढा वणस्सइकायं तस थावरे य पाणे। ते जीवा आहारेंति, पुढविसरीरं जाव वणस्सइ सरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं नाणाविहाणं खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं चम्मपक्खीणं जाव विततपक्खीणं सरीरा णाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं। –सूय. सु. २, अ. ३, सु. ७३३-७३७

वे जीव अपने-अपने उत्पत्ति योग्य बीज और अवकाश के अनुसार स्त्री और पुरुष के परस्पर मैथुन प्रत्ययिक संयोग होने पर स्व-स्व कर्मानुसार उत्पन्न होते हैं। शेष बातें पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए।

किन्तु यह भिन्नता है–कई अंडज होते हैं और कई पोतज होते हैं। अंडे के फूट जाने पर उसमें से कोई स्त्री रूप में, कोई पुरुष रूप में और कोई नपुंसक रूप में पैदा होता है। वे जीव बाल्यावस्था में वायुकाय (हवा) का आहार करते हैं, क्रमशः बड़े होने पर वे वनस्पतिकाय तथा अन्य त्रस स्थावर प्राणियों का आहार करते है, इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी यावत् वनस्पति के शरीरों को यावत् सर्वात्मना आहार कर लेते हैं। उन अनेकविध जातिवाले उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के सर्प यावत् महोरगों के शरीर नाना वर्णादि वाले होते हैं यावत् उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा श्री तीर्थंकर देव ने कहा है।

इसके पश्चात् अनेक प्रकार के भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों का वर्णन इस प्रकार है, यथा–

गोह, नेवला, सेह, सरट, सल्लक, सरथ, खोर, गृहकोकिला (छिपकली) विषम्भरा, मूषक, (चूहा) मंगूस, पदलातिक, बिडातिक, जोध और चातुष्पद।

उन जीवों की उत्पत्ति भी अपने-अपने बीज और अवकाश के अनुसार स्त्री और पुरुष के मैथुन प्रत्ययिक संयोग होने पर स्व-स्व कर्मानुसार होती है। शेष सब वर्णन पूर्ववत् उरपरिसर्प के समान जानना यावत् सर्वात्मना आहार लेते हैं। इसके अतिरिक्त नाना प्रकार के गोह से चातुष्पद पर्यन्त के भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों के शरीर नाना वर्णादि वाले होते हैं यावत् उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

इसके पश्चात् अनेक प्रकार के खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों का वर्णन इस प्रकार है, यथा–चर्मपक्षी, लोमपक्षी, समुद्गकपक्षी और विततपक्षी।

उन जीवों की उत्पत्ति भी अपने-अपने बीज और अवकाश से स्त्री पुरुष के मैथुन प्रत्ययिक संयोग से होती है। शेष वर्णन उरपरिसर्प के अनुसार जान लेना चाहिए। किन्तु भिन्नता यह है कि ये प्राणी बाल्यावस्था प्राप्त होने पर माता के शरीर के रस का आहार करते हैं। फिर क्रमशः बड़े होकर वनस्पतिकाय तथा त्रस स्थावर प्राणियों का आहार करते हैं, इसके अतिरिक्त ये जीव पृथ्वी यावत् वनस्पति के शरीरों का सर्वात्मना आहार कर लेते हैं, अन्य अनेक प्रकार के चर्मपक्षी से विततपक्षी पर्यन्त के खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों के शरीर नाना वर्णादि वाले होते हैं यावत् उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा श्री तीर्थंकरदेव ने कहा है।

३१. विगलिंदियाणं उप्पत्ति वुड्ढि आहार परूवणं–

अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता नाणाविहजोणिया, नाणाविहसंभवा, नाणाविहवक्कमा तज्जोणिया तस्संभवा तव्वक्कमा कम्मोवगा कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा नाणाविहाणं तस थावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसु वा अचित्तेसु वा अणूसुयत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं नाणाविहाणं तस थावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइ सरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं तस थावरजोणियाणं अणूसुयाणं सरीरा नाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

३१. विकलेन्द्रियों के उत्पत्ति वृद्धि आहार का प्ररूपण–

इसके बाद यह वर्णन है कि–इस जगत् में कई प्राणी नाना प्रकार की योनियों में उत्पन्न होते हैं, वे अनेक प्रकार की योनियों में स्थित रहते हैं, विविध योनियों में आकर संवर्द्धन पाते हैं। नाना प्रकार की योनियों में उत्पन्न स्थित और संवर्द्धित वे जीव अपने पूर्वकृत कर्मानुसार निदान करके अनेक प्रकार के त्रस स्थावर प्राणियों के सचित्त अचित्त शरीरों में [illegible] होकर उत्पन्न होते हैं, वे जीव उन अनेक प्रकार के त्रस स्थावर प्राणियों के रस का आहार करते हैं, तथा वे जीव पृथ्वी यावत् वनस्पति के शरीरों का यावत् सर्वात्मना आहार कर लेते हैं तथा दूसरे भी त्रस स्थावर योनिकों के अनेक विविध वर्णादि युक्त शरीर होते हैं यावत् उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकरदेव ने कहा है।

एवं दुरूवसंभवत्ताए।

एवं खुरूदुगत्ताए।

-सुय. सु. २ अ. ३, सु. ७३८

इसी प्रकार (मनुष्य के मलमूत्र आदि में) कृमि केंचुआ आदि रूप में त्रस प्राणी उत्पन्न होते हैं,

इसी प्रकार जीवित गाय, भैंस आदि की चमड़ी पर सम्मूर्च्छिम रूप से उत्पन्न होते हैं।

३२. आउ-अगणि-वाउ-पुढवीकाईयाणं उप्पत्ति वुड्ढि आहार परूवणं-

अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता नाणाविहजोणिया जाव कम्मनिदाणेणं नाणाविहाणं तस थावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसु वा अचित्तेसु वा तं सरीरगं वातसंसिद्धं वातसंगहितं वा वातपरिगतं उडढंवाएसु उड्ढभागी भवइ, अहेवाएसु अहेभागी भवइ, तिरियंवाएसु तिरियभागी भवइ, तं जहा-

ओसा, हिमए, महिया, करए, हरतणुए, सुद्धोदए।

ते जीवा तेसिं नाणाविहाणं तस थावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइ सरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं तस थावर जोणियाणं ओसाणं जाव सुद्धोदगाणं सरीरा णाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता उदगजोणिया जाव कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा तस थावर जोणिएसु उदएसु उदगत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं तस थावर जोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइ सरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं तस-थावरजोणियाणं उदगाणं सरीरा नाणावण्णा जाव भवंतीति मक्खायं।

अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता उदगजोणियाणं जाव कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा उदगजोणिएसु उदएसु उदगत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं उदगजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइ सरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं उदगजोणियाणं उदगाणं सरीरा नाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता उदगजोणिया जाव कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा उदगजोणिएसु उदएसु तसपाणत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं उदगजोणियाणं उदगाणं सिणेहमाहारेंति, जे जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइ सरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं उदगजोणियाणं तस पाणाणं सरीरा नाणावण्णा जाव भवंतीतिमक्खायं।

अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता नाणाविहजोणिया जाव कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा णाणाविहाणं तस थावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसुं वा अचित्तेसु वा अगणिकायत्ताए

३२. अप्-तेजस्-वायु और पृथ्वीकायिकों की उत्पत्ति वृद्धि आहार का प्ररूपण-

इसके पश्चात् यह वर्णन है-इस जगत् में नानाविध योनियों में उत्पन्न होकर **यावत्** कर्म निदान से प्रेरित वायुयोनिक जीव अप्काय में आते हैं। वे प्राणी वहाँ अप्काय में आकर अनेक प्रकार के त्रस और स्थावर प्राणियों के सचित्त तथा अचित्त शरीर में अप्कायिक रूप में उत्पन्न होते हैं। वह अप्काय वायुकाय से निर्मित संग्रहीत या धारण किया हुआ होता है। अतः वह (जल) ऊपर का वायु हो तो ऊपर, नीचे का वायु हो तो नीचे और तिरछा वायु हो तो तिरछा जाता है, यथा-

ओस, हिम (बर्फ), महिका (कोहरा या धुंध) ओला, हरतनु और शुद्ध जल।

वे जीव अनेक प्रकार के त्रस और स्थावर प्राणियों के स्नेह का आहार करते हैं। वे जीव पृथ्वी **यावत्** वनस्पति के शरीरों का **यावत्** सर्वात्मना आहार कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त उन त्रस स्थावरयोनिक समुत्पन्न ओस से शुद्धोदकपर्यन्त जलकायिक जीवों के अनेक वर्णादि युक्त शरीर होते हैं **यावत्** उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकर देव ने कहा है।

इसके पश्चात् यह वर्णन है कि इस जगत् में कितने ही प्राणी जल में **यावत्** अपने पूर्वकृतकर्म के प्रभाव से जलयोनिक जीवों में जलरूप से उत्पन्न होते हैं। वे जीव उन त्रस स्थावर योनिकों के जलरूप रस का आहार करते हैं। वे पृथ्वी **यावत्** वनस्पति के शरीरों का **यावत्** सर्वात्मना आहार कर लेते हैं, इसके अतिरिक्त उन त्रस स्थावरयोनिक उदकों के अनेक वर्णादि वाले शरीर होते हैं **यावत्** उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकरदेव ने कहा है।

इसके पश्चात् यह वर्णन है कि-इस जगत् में कितने ही जीव उदकयोनिक उदकों में अपने पूर्वकृत कर्मों के प्रभाव से उदकरूप में जन्म लेते हैं। वे जीव उन उदकयोनिक के रस का आहार करते हैं। वे पृथ्वी **यावत्** वनस्पति के शरीरों का **यावत्** सर्वात्मना आहार कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त उन उदकयोनिक उदकों के अनेक वर्णादि वाले शरीर होते हैं **यावत्** उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकरदेव ने कहा है।

इसके पश्चात् यह वर्णन है कि-इस जगत् में अपने पूर्वकृत कर्म के प्रभाव से उदकयोनिक उदकों में त्रस प्राणी के रूप में उत्पन्न होते हैं, वे जीव उन उदकयोनि वाले उदकों के रस का आहार करते हैं। वे पृथ्वी **यावत्** वनस्पति के शरीरों का **यावत्** सर्वात्मना आहार कर लेते हैं, इसके अतिरिक्त उन उदकयोनिक उदकों के शरीर नाना वर्णादि वाले होते हैं **यावत्** उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकरदेव ने कहा है।

इसके पश्चात् यह वर्णन है कि-इस जगत् में नाना प्रकार की योनि वाले **यावत्** पूर्वकृत कर्म के प्रभाव से नाना प्रकार के त्रसस्थावर प्राणियों के सचित्त तथा अचित्त शरीरों में अग्निकाय के रूप में

विउट्टंति, ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं तस थावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइ सरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तस थावरजोणियाणं अगणीणं सरीरा णाणावण्णा जाव भवंतीति मक्खायं।

सेसा तिण्णि आलावगा जहा उदगाणं।

अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मणिदाणेणं तत्थवक्कमा णाणाविहाणं तस थावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसु वा अचित्तेसु वा वाउक्कायत्ताए विउट्टंति **जहा अगणीणं तहा भाणियव्वा चत्तारि गमा।**

अहावरं पुरक्खायं इहेगइया सत्ता णाणाविहजोणिया जाव कम्मनिदाणेणं तत्थवक्कमा णाणाविहाणं तस थावराणं पाणाणं सरीरेसु सचित्तेसु वा अचित्तेसु वा पुढवित्ताए, सक्करत्ताए वालुयत्ताए,

इमाओ गाहाओ अणुगंतव्वाओ–

पुढवी य सक्करा वालुगा य, उवले सिला य लोणूसे।
अय तउय तंब सीसग, रुप्प सुवण्णे य वइरे य ॥१॥

हरियाले हिंगुलए मणोसिला सासगंजण पवाले।
अब्भपडलऽब्भवालुय बादरकाए मणिविहाणा ॥२॥
गोमेज्जए य रुयए अंके फलिहे य लोहियक्खे य।
मरगय मसारगल्ले भुयमोयग इंदणीले य ॥३॥

चंदण गेरुय हंसगब्भ पुलए सोगंधिए य बोधव्वे।
चंदप्पभ वेरुलिए जलकंते सूरकंते य ॥४॥

एयाओ एएसु भाणियव्वाओ गाहासु (गाहाओ) जाव सूरकंतत्ताए विउट्टंति, ते जीवा तेसिं णाणाविहाणं तस-थावराणं पाणाणं सिणेहमाहारेंति, ते जीवा आहारेंति पुढविसरीरं जाव वणस्सइ सरीरं जाव सव्वप्पणाए आहारं आहारेंति। अवरे वि य णं तेसिं तस थावरजोणियाणं पुढवीणं जाव सूरकंताणं सरीरा णाणावण्णा जाव भवंतीति मक्खायं।

सेसा तिण्णि आलावगा जहा उदगाणं।

–*सुय. सु २, अ. ३, सु. ७३९-७४५*

३३. ओहेण सव्वजीवाणं आहारं तेसिं जयणा य परूवणं–

अहावरं पुरक्खायं सव्वेपाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, नाणाविहजोणिया नाणाविहसंभवा, नाणाविहवक्कमा, सरीरजोणिया सरीरसंभवा सरीरवक्कमा सरीराहारा कम्मोवगा कम्मनिदाणा कम्मगइया कम्मट्ठिइया कम्मुणा चेव विप्परियामुवेंति।

उत्पन्न होते हैं, वे जीव उन विभिन्न प्रकार के त्रस स्थावर प्राणियों के रस का आहार करते हैं तथा पृथ्वी यावत् वनस्पति के शरीरों का यावत् सर्वात्मना आहार कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त उन त्रस स्थावरयोनिक अग्निकायों के नाना वर्णादि वाले शरीर होते हैं यावत् उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकरदेव ने कहा है।

शेष तीन आलापक उदकजीवों के समान जानना चाहिए।

इसके पश्चात् यह वर्णन है कि–इस संसार में नाना प्रकार की योनि वाले अपने पूर्वकृत कर्म के प्रभाव से अनेक प्रकार के त्रस और स्थावर प्राणियों के सचित्त या अचित्त शरीरों में वायुकाय के रूप में उत्पन्न होते हैं। शेष वर्णन चार आलापकों के द्वारा अग्निकाय के समान कहना चाहिए।

इसके पश्चात् यह वर्णन है कि–इस संसार में कितने ही जीव नाना प्रकार की योनियों में उत्पन्न होकर उनमें अपने किये हुए कर्म प्रभाव से अनेक प्रकार के त्रस स्थावर प्राणियों के सचित्त या अचित्त शरीरों में पृथ्वी के रूप में शर्करा (कंकर) के रूप में या बालू आदि के रूप में उत्पन्न होते हैं।

इस विषय में इन गाथाओं के अनुसार जानना चाहिए–

पृथ्वी, शर्करा, (कंकर) वालू (रेत) उपल (पत्थर) शिला (चट्टान) नमक, लोहा, रांगा (कथीर), तांबा, शीशा, चांदी, सोना और वज्र (हीरा) तथा–

हड़ताल, हींगलू, मनसिल, सासक, अंजन, प्रवाल (मूंगा) अभ्रपटल (अभ्रक) अभ्रवालुका ये सब बादर पृथ्वीकाय के भेद हैं।

मणियों के नाम इस प्रकार हैं– १. गोमेदक रत्न, २. रुचक रत्न, ३. अंकरत्न, ४. स्फटिकरत्न, ५. लोहिताक्षरत्न, ६. मरकतरत्न, ७. मसारगल्लरत्न, ८. भुजपरिमोचकरत्न तथा ९. इन्द्रनीलमणि।

चन्दन, गेरुक, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, चन्द्रप्रभ, वैडूर्य, जलकान्त एवं सूर्यकान्त।

इन गाथाओं में सूर्यकांत पर्यन्त जो मणिरत्न आदि [illegible] गए हैं, उन में वे जीव उत्पन्न होते हैं। (उस समय) वे जीव अनेक प्रकार के त्रस स्थावर प्राणियों के रस का आहार करते हैं, वे जीव पृथ्वी यावत् वनस्पति शरीरों का आहार करते हैं यावत् सर्वात्मना [illegible] कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त उन त्रस स्थावरों में उत्पन्न पृथ्वी से सूर्यकान्तमणि पर्यन्त प्राणियों के अन्य शरीर भी नाना वर्णादि वाले होते हैं यावत् उन्हीं में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थंकरदेव ने [illegible] है।

शेष तीन आलापक जलकायिक जीवों के समान समझ [illegible] चाहिए।

३३. सामान्यतः सर्वजीवों के आहार और उनकी यतना का प्र[illegible]–

इसके पश्चात् यह वर्णन है कि–सर्व प्राणी, सर्वभूत, [illegible] सर्वसत्व नाना प्रकार की योनियों में उत्पन्न होते हैं, [illegible] है, वहीं वृद्धि पाते हैं, वे शरीर के ही उत्पन्न [illegible] रहते हैं, तथा शरीर में ही [illegible] करते हैं, वे अपने-अपने कर्म का अनुसरण [illegible] उस-उस योनि में उनकी [illegible] [illegible] अनुसार विभिन्न पर्यायों को प्राप्त करते हैं।

सेवमायाणह, सेवमायाणित्ता, आहारगुत्ते समिए सदा जए त्ति बेमि।

-सूय. सु. २, अ. ३, सु. ७४६-७४७

"हे शिष्यो ! ऐसा ही जानो और जान करके सदा आहारगुप्त समितियुक्त एवं संयमपालन में सदा यत्नशील बनो ऐसा मैं कहता हूँ।"

३४. वेमाणिया देवाणं आहारत्ताए परिणमिय पोग्गलाणं परूवणं-

प. सोहम्मीसाण देवाणं केरिसया पोग्गला आहारत्ताए परिणमंति ?

उ. गोयमा ! जे पोग्गला इट्ठा कंता मणुण्णा मणामा एएसिं आहारत्ताए परिणमंति जाव अणुत्तरोववाइया।

-जीवा. पडि. ३, सु. २०१ (ई)

३४. वैमानिक देवों के आहार के रूप में परिणत पुद्गलों का प्ररूपण-

प्र. भंते ! सौधर्म ईशान देवों के आहार के रूप में कैसे पुद्गल परिणत होते हैं ?

उ. गौतम ! जो पुद्गल इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर होते हैं वे अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त आहार के रूप में परिणत होते हैं।

३५. भोयणपरिणामस्स छव्विहत्तं-

छव्विहे भोयणपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा-

१. मणुण्णे,
२. रसिए,
३. पीणणिज्जे,
४. बिंहणिज्जे,
५. मयणिज्जे,
६. दप्पणिज्जे।

-ठाणं अ. ६, सु. ५३३

३५. भोजन परिणाम के छह प्रकार-

भोजन का परिणाम छह प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. मनोज्ञ-मन को प्रसन्न करने वाला।
२. रसिक-रसयुक्त।
३. प्रीणनीय-रसादि सप्त धातुओं को समान करने वाला।
४. बृहणीय-धातुओं को बढ़ाने वाला।
५. मदनीय-काम को बढ़ाने वाला।
६. दर्पणीय-पुष्टिकारक।

३६. आहारगाणाहारगाणं कायट्ठिई परूवणं-

प. आहारगे णं भंते ! आहारगे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! आहारगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-
१. छउमत्थआहारगे य, २. केवलिआहारगे य।

प. छउमत्थाहारगे णं भंते ! छउमत्थाहारगे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं दुसमयऊणं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

प. केवलिआहारगे णं भंते ! केवलिआहारगे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं देसूणं पुव्वकोडिं।

प. अणाहारगे णं भंते ! अणाहारगे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! अणाहारगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-
१. छउमत्थअणाहारगे य, २. केवलिअणाहारगे य।

प. छउमत्थअणाहारगे णं भंते ! छउमत्थअणाहारगे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं,
उक्कोसेणं दो समया।

प. केवलिअणाहारगे णं भंते ! केवलिअणाहारगे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

३६. आहारक-अनाहारकों की कायस्थिति का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! आहारक जीव आहारकरूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! आहारक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. छद्मस्थ-आहारक, २. केवली-आहारक।

प्र. भन्ते ! छद्मस्थ-आहारक, छद्मस्थ-आहारक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य दो समय कम लघुभव ग्रहण जितने काल तक, उत्कृष्ट असंख्यात काल तक। (अर्थात्) कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियों तक तथा क्षेत्रतः अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण समझना चाहिए।

प्र. भन्ते ! केवली-आहारक, केवली-आहारक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक,
उत्कृष्ट देशोन कोटिपूर्व तक रहता है।

प्र. भन्ते ! अनाहारकजीव, अनाहारक रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! अनाहारक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. छद्मस्थ-अनाहारक, २. केवली-अनाहारक।

प्र. भन्ते ! छद्मस्थ-अनाहारक, छद्मस्थ-अनाहारक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय तक,
उत्कृष्ट दो समय तक रहता है।

प्र. भन्ते ! केवली-अनाहारक, केवली-अनाहारक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गोयमा ! केवलिअणाहारगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सिद्धकेवलिअणाहारगे य, २. भवत्थकेवलिअणाहारगे य।

प. सिद्धकेवलिअणाहारगे णं भंते ! सिद्धकेवलिअणाहारगे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! साइएअपज्जवसिए।

प. भवत्थकेवलिअणाहारगे णं भंते ! भवत्थकेवलिअणाहारगे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! भवत्थकेवलिअणाहारगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगे य,
२. अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगे य।

प. सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगे णं भन्ते ! सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तिण्णि समया।

प. अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगे णं भन्ते ! अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगे त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं[1]।
–पण्ण. प. १८, सु. १३६४-१३७३

३७. आहारगाणाहारगाणं अंतरकाल परूवणं–

प. छउमत्थआहारगस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण एक्कं समयं, उक्कोसेण दो समया।
केवलिआहारगस्स अंतरं अजहण्णमणुक्कोसेणं तिण्णि समया।
छउमत्थअणाहारगस्स अंतरं जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं दुसमयूणं,
उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं जाव अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

प. सजोगि भवत्थकेवलि अणाहारगस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।
अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगस्स णत्थि अंतरं।
सिद्धकेवलिअणाहारगस्स साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। –जीवा. पडि. ९, सु. २३४

३८. आहारगाणाहारगाणं अप्पबहुत्तं :–

प. एएसि णं भंते ! आहारगाणं अणाहारगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा अणाहारगा,
२. आहारगा असंखेज्जगुणा[2]। –पण्ण. प. ३, सु. २७३

उ. गौतम ! केवली–अनाहारक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सिद्धकेवली–अनाहारक २. भवस्थकेवली–अनाहारक।

प्र. भन्ते ! सिद्धकेवली–अनाहारक, सिद्धकेवली–अनाहारक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) सादि–अपर्यवसित रहता है।

प्र. भन्ते ! भवस्थकेवली–अनाहारक, भवस्थकेवली–अनाहारक रूप में कितने काल तक रहता है।

उ. गौतम ! भवस्थकेवली–अनाहारक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सयोगि-भवस्थकेवली–अनाहारक,
२. अयोगि–भवस्थकेवली–अनाहारक।

प्र. भन्ते ! सयोगि-भवस्थकेवली-अनाहारक, सयोगि भवस्थकेवली अनाहारक के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! अजघन्य अनुत्कृष्ट तीन समय तक रहता है।

प्र. भन्ते ! अयोगि भवस्थकेवली अनाहारक, अयोगि भवस्थकेवली अनाहारक रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

३७. आहारकों अनाहारकों के अन्तर काल का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! छद्मस्थ आहारक का अन्तर काल कितना कहा गया है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय उत्कृष्ट दो समय।
केवली आहारक का अन्तर न जघन्य न उत्कृष्ट तीन समय का है।
छद्मस्थ अनाहारक का अन्तर जघन्य दो समय कम क्षुल्लक भवग्रहण जितना है।
उत्कृष्ट असंख्यातकाल यावत् अंगुल के असंख्यातवें भाग के प्रदेशों प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! सयोगि भवस्थ केवली अनाहारक का अन्तर काल कितना कहा गया है ?

उ. गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।
अयोगि भवस्थकेवली अनाहारक का अन्तर नहीं है।
सादि अपर्यवसित सिद्ध केवली अनाहारक का कोई अन्तर नहीं है।

३८. आहारकों अनाहारकों का अल्पबहुत्व :–

प्र. भन्ते ! इन आहारक और अनाहारकों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प अनाहारक जीव हैं,
२. (उनसे) आहारक जीव असंख्यातगुणे हैं।

---

१. जीवा. पडि. ९, सु. २३४

२. जीवा. पडि. ९, सु. २३१

शरीर अध्ययन : आमुख

संसारी जीवों का शरीर के साथ अनादि सम्बन्ध है। जब तक जीव आठ कर्मों से मुक्त नहीं होता है तब तक उसका शरीर के साथ सम्बन्ध बना रहता है। आठ कर्मों में भी शरीर की प्राप्ति नामकर्म के उदय से होती है। जब तक नामकर्म शेष है तब तक शरीर प्राप्त होता रहता है। शरीर की प्राप्ति भी गति, जाति आदि के उदय के अनुरूप होती है। सिद्ध जीवों के शरीर नहीं होता, क्योंकि वे नामकर्म सहित आठों कर्मों से मुक्त होते हैं। शरीर रहित होने के कारण सिद्धों को अशरीरी कहा जाता है। संसारी जीव सदैव सशरीरी होते हैं।

शरीर पाँच प्रकार के हैं–१. औदारिक, २. वैक्रिय, ३. आहारक, ४. तैजस् और ५. कार्मण। इनमें से भिन्न-भिन्न जीवों को भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीर प्राप्त होते हैं। २४ दण्डकों में किस-किस जीव को किस-किस शरीर की प्राप्ति होती है इसका प्रस्तुत अध्ययन में विस्तार से विचार हुआ है किन्तु सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि तैजस् और कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों को सदैव प्राप्त हैं। ये दोनों शरीर जीव में तब भी विद्यमान होते हैं जब वह एक काया को छोड़कर दूसरी काया धारण करने के बीच विग्रहगति में होता है। औदारिक शरीर तिर्यञ्च एवं मनुष्यगति के सभी जीवों में रहता है। वैक्रिय शरीर नैरयिक एवं देवों में जन्म से होता है तथा तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एवं मनुष्यों में विशेष लब्धि से प्राप्त होता है। विभिन्न विक्रियाएँ करने के कारण वायुकाय के जीवों में भी वैक्रिय शरीर माना गया है। आहारक शरीर मात्र मनुष्यों में होता है और मनुष्यों में भी प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती चौदह पूर्वधारी साधुओं में पाया जाता है।

प्रधान, उदार या स्थूल पुद्गलों से निर्मित शरीर औदारिक कहलाता है। विविध और विशेष प्रकार की क्रियाएँ करने में सक्षम शरीर वैक्रिय कहा जाता है। यह दो प्रकार का होता है–औपपातिक एवं लब्धिप्रत्यय। देवों एवं नैरयिकों में जन्म से पाए जाने के कारण यह शरीर औपपातिक कहलाता है तथा मनुष्य एवं तिर्यञ्चों में लब्धि विशेष से प्राप्त होने के कारण लब्धिप्रत्यय कहा जाता है। आहारक लब्धि से निर्मित शरीर आहारक शरीर कहलाता है। आहार के पाचन में सहायक तथा तेजोलेश्या की उत्पत्ति का आधार शरीर तैजस कहलाता है। यह तैजस् पुद्गलों से बना होता है। कार्मण पुद्गलों से निर्मित शरीर कार्मण कहलाता है।

इन पाँच प्रकार के शरीरों में कार्मण शरीर अगुरुलघु है एवं शेष चार शरीर गुरुलघु हैं। शरीर की उत्पत्ति जीव के उत्थान, कर्म, बल, वीर्य एवं पुरुषकार पराक्रम के निमित्त से होती है। औदारिक शरीर, तैजस शरीर एवं कार्मण शरीर के लिए पुद्गलों का चय निर्व्याघात की अपेक्षा छह दिशाओं से और व्याघात की अपेक्षा कदाचित् तीन, चार या पाँच दिशाओं से होता है। वैक्रिय एवं आहारक शरीर के लिए पुद्गलों का चय नियम से छहों दिशाओं से होता है। चय की भाँति उपचय एवं अपचय भी उन्हीं दिशाओं से होता है।

ये शरीर जीव से स्पृष्ट होते हैं या अस्पृष्ट; इस शंका का समाधान स्थानांग सूत्र में करते हुए कहा गया है कि वैक्रिय, आहारक, तैजस् और कार्मण शरीर जीव से स्पृष्ट होते हैं जबकि औदारिक शरीर नहीं। औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस् इन चारों शरीरों को कार्मण शरीर से संयुक्त माना गया है।

जिन जीवों में औदारिक आदि शरीर उपलब्ध होते हैं, उनके आधार पर भी इन शरीरों के भेद किए जाते हैं, यथा औदारिक शरीर के पाँच भेद किए गए हैं–एकेन्द्रिय औदारिक शरीर, द्वीन्द्रिय औदारिक शरीर, त्रीन्द्रिय औदारिक शरीर, चतुरिन्द्रिय औदारिक शरीर और पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर। वैक्रिय शरीर के दो भेद किए गए हैं–एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। क्योंकि वैक्रिय शरीर वायुकाय के एकेन्द्रिय जीवों एवं देव नारकी आदि पंचेन्द्रिय जीवों में ही पाया जाता है। वह औदारिक शरीर की भाँति द्वीन्द्रियादि जीवों में नहीं पाया जाता। आहारक शरीर एक ही प्रकार का है क्योंकि वह मात्र मनुष्यों में पाया जाता है। तैजस् एवं कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों में पाए जाते हैं। इन्द्रियों की दृष्टि से इनके भी औदारिक शरीर की भाँति पाँच-पाँच भेद होते हैं–एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय।

इन शरीरों के जीव के भेदोपभेदों के अनुसार और भी भेद बनते हैं। यथा एकेन्द्रिय औदारिक शरीर पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के भेद से पाँच प्रकार का होता है। फिर ये भी सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक आदि के आधार पर अनेक उपभेदों में विभक्त हो जाते हैं। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय आदि औदारिक शरीर भी पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक के उपभेदों में विभक्त हो जाते हैं। पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर दो प्रकार का होता है–तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्य शरीर। तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय शरीर भी जलचर, स्थलचर और खेचर भेदों में विभक्त हो जाता है। पुनः ये भी सम्मूर्च्छिम और गर्भज तथा पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेदों में बंट जाते हैं। मनुष्य भी सम्मूर्च्छिम और गर्भज के भेद से दो प्रकार का होता है। अतः मनुष्य का औदारिक शरीर भी इस आधार पर दो भागों मे विभक्त हो जाता है। इनमें गर्भज मनुष्य का औदारिक शरीर पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक के भेद से पुनः दो प्रकार का होता है।

वैक्रिय शरीर एकेन्द्रिय जीवों में भी मात्र बादर वायुकाय जीवों में पाया जाता है, सूक्ष्म वायुकायिक जीवों में यह शरीर नहीं पाया जाता। बादरवायुकायिक जीवों में भी मात्र पर्याप्तक जीवों में यह शरीर होता है, अपर्याप्तक जीवों में नहीं होता। पंचेन्द्रिय की अपेक्षा वैक्रिय शरीर चारों गतियों के जीवों में होता है। नरकगति में रत्नप्रभा आदि सातों पृथ्वियों के पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक सभी नैरयिकों में, तिर्यञ्चगति में संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय की पर्याप्तक अवस्था में यह शरीर हो सकता है। मनुष्यगति में यह शरीर संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक एवं गर्भज मनुष्यों की पर्याप्तावस्था में होता है। देवगति में भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी एवं वैमानिक देवों की सभी अवस्थाओं में यह शरीर होता है। आहारक शरीर ऋद्धिप्राप्त, प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि, पर्याप्तक एवं संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों में होता है अन्य में नहीं।

तैजस् और कार्मण शरीरों के उतने ही भेद होते हैं जितने संसारी जीवों के प्रकार होते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों की पर्याप्त एवं अपर्याप्त आदि अवस्थाओं सहित समस्त भेदोपभेदों में ये दोनों शरीर पाए जाने से इन दोनों शरीरों के अनेक भेद किए जा सकते हैं।

शरीर की उत्पत्ति एवं रचना दो कारणों से होती है–राग से और द्वेष से। राग और द्वेष ही संसार में भटकने के प्रमुख कारण हैं। इन दो कारणों को क्रोध, मान, माया एवं लोभ के रूप में चार प्रकार का भी कहा गया है। जीव औदारिक, वैक्रिय एवं आहारक शरीर के रूप में स्थित द्रव्यों को भी ग्रहण करता है और अस्थित द्रव्यों को भी ग्रहण करता है, किन्तु तैजस् और कार्मण शरीर के रूप में स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है, अस्थित द्रव्यों को ग्रहण नहीं करता है। जीव इन शरीरों के रूप में द्रव्यों का ग्रहण द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव सभी प्रकारों से करता है।

चार गतियों के जीवों में पाए जाने वाले शरीरों को वाह्य एवं आभ्यन्तर भेदों में भी विभक्त किया जाता है। कार्मण शरीर को आभ्यन्तर शरीर तथा औदारिक एवं वैक्रिय शरीरों को वाह्य शरीर माना गया है। इस दृष्टि से नैरयिकों एवं देवों में कार्मण नामक आभ्यन्तर शरीर तथा वैक्रिय नामक वाह्य शरीर पाया जाता है, शेष सव जीवों में भी आभ्यन्तर शरीर तो कार्मणरूप ही होता है किन्तु वाह्य शरीर औदारिक उपलव्ध होता है। द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवों तथा मनुष्यों में जो औदारिक शरीर होता है उसमें अस्थि, मांस, शोणित, स्नायु आदि उपलव्ध होते हैं।

अपेक्षा विशेष से औदारिक आदि पाँच शरीरों को पुनः दो प्रकार का निरूपित किया गया है–१. वद्ध और २. मुक्त। जो शरीर जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए हैं उन्हें वद्ध शरीर कहते हैं तथा जो शरीर जीव के द्वारा व्यक्त हैं उन्हें मुक्त शरीर कहते हैं। जैसे नैरयिकों में वद्ध औदारिक शरीर नहीं होता किन्तु मुक्त औदारिक शरीर होता है क्योंकि वे औदारिक शरीर को छोड़ देते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में वद्ध और मुक्त शरीर की संख्या का द्रव्य, क्षेत्र, कालादि की दृष्टि से निरूपण किए जाने के साथ चौवीस दण्डकों में इन भेदों का निरूपण किया गया है।

चौवीस दण्डकों में जो शरीर पाए जाते हैं, वे शरीर पाँच वर्ण एवं पाँच रसों से युक्त होते हैं। औदारिक शरीर से लेकर कार्मण शरीर तक समस्त शरीर पाँच वर्ण (कृष्ण, नील, पीत, रक्त, श्वेत) और पाँच रस (तिक्त, कटु, कषैला, अम्ल, मधुर) युक्त माने गए हैं। वर्णादि से सम्पन्न होने के कारण ये शरीर पौद्‌गलिक होते हैं।

कायस्थिति की दृष्टि से विचार करें तो औदारिकशरीरी जीव औदारिक शरीर के रूप में जघन्य दो समय कम क्षुल्लक भवग्रहण और उत्कृष्ट असंख्यात काल यावत् अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र के प्रदेशों प्रमाण रहता है। वैक्रियशरीरी जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक वैक्रिय शरीरी के रूप में रहता है। आहारक शरीरी आहारक शरीरी के रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। तैजस् और कार्मण शरीरी जीव दो प्रकार के हैं–१. अनादि अपर्यवसित और २. अनादि सपर्यवसित। जो जीव सिद्ध गति को प्राप्त हो जाते हैं, उनकी अपेक्षा से तैजस् एवं कार्मण शरीर सपर्यवसित होते हैं, शेष जीवों की अपेक्षा से ये दोनों शरीर अनादि एवं अपर्यवसित होते हैं।

एक वार एक शरीर प्राप्त होने के वाद पुनः वैसा ही शरीर प्राप्त होने के मध्य व्यतीत काल को उस शरीर का अंतरकाल कहा जाता है। अन्तरकाल की दृष्टि से भी इस अध्ययन में विचार हुआ है। औदारिक शरीर का जघन्य अन्तरकाल एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम होता है। जघन्य काल पृथ्वीकाय आदि जीवों की अपेक्षा से है तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल नरक एवं देवगति के मध्य व्यतीत काल की अपेक्षा से है। वैक्रिय शरीर का जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट अन्तर काल वनस्पतिकाल है। जघन्य अन्तरकाल का प्रतिपादन पर्याप्त [illegible] वायुकायिक जीवों की अपेक्षा से है तथा नैरयिक, देव या पुनः वायुकाय में आने के मध्य उत्कृष्ट वनस्पतिकाल वीत सकता है। आहारक शरीर का अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट कुछ कम अर्धपुद्‌गल परावर्तन काल होता है। तैजस् एवं कार्मण शरीर या तो अनादि अनन्त होते हैं या अनादि सान्त, किन्तु इन दोनों ही विकल्पों में अन्तरकाल नहीं होता। यदि ये शरीर जीव के साथ हैं तो विना अन्तरकाल के हैं तथा [illegible] जीव से जव इनका विच्छेद होता है तो सदैव के लिए हो जाता है।

अल्पवहुत्व की दृष्टि से सवसे अल्प आहारक शरीर वाले जीव हैं। उनसे वैक्रिय शरीरी असंख्यातगुणे हैं, उनसे औदारिक शरीरी असंख्यातगुणे हैं, उनसे अशरीरी (सिद्ध) अनन्तगुणे हैं और उनसे तैजस् कार्मण शरीर वाले जीव अनन्तगुणे हैं और ये दोनों शरीर परस्पर तुल्य हैं। द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा से भी अल्पवहुत्व का निरूपण हुआ है।

अवगाहना चार प्रकार की होती है–द्रव्यावगाहना, क्षेत्रावगाहना, कालावगाहना और भावावगाहना। अवगाहना का [illegible] नौ प्रकार का भी है, उनमें पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय के पांच भेदों तथा द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के चार भेदों [illegible] शरीर की अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग तथा उत्कृष्टतः कुछ अधिक हजार योजन मानी गई है। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के जीवों की अवगाहना का निरूपण करने के साथ इस अध्ययन में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक और मनुष्यों की औदारिक शरीर अवगाहना का विस्तार से निरूपण है। वैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्य [illegible] कुछ अधिक एक लाख योजन की कही गई है। नैरयिक एवं देव जीवों की अवगाहना दो प्रकार की [illegible] तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय जीवों तथा मनुष्यों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना का भी प्रतिपादन है। आहारक शरीर की [illegible] की तथा उत्कृष्ट प्रतिपूर्ण एक हाथ की निरूपित है।

जव जीव मारणान्तिक समुद्‌घात से समवहत होता है तव उसके तैजस् एवं कार्मण शरीर की अवगाहना [illegible] इन दोनों शरीरों की अवगाहना विष्कम्भ एवं वाहल्य की अपेक्षा शरीर प्रमाण [illegible] उत्कृष्ट लोकान्त से लोकान्त तक होती है। सभी जीवों में इन शरीरों की पृथक्-पृथक् अवगाहना का [illegible]

चौवीस दण्डकों में अवगाहना [illegible] सवसे अल्प [illegible] औदारिक शरीर की [illegible] अवगाहना की अपेक्षा सवसे अल्प आहारक शरीर की [illegible]

[illegible]

१४. सरीर अज्झयणं

सूत्र

१. सरीर भेय परूवणं–

प. कइ णं भंते ! सरीरा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंच सरीरा पण्णत्ता, तं जहा–

१. ओरालिए, २. वेउव्विए, ३. आहारए ४. तेयए, ५. कम्मए[1]। –पण्ण. प. १२, सु. ९०१

२. ओहेण सरीरुप्पत्ति हेउणो–

प. से णं भंते ! सरीरे किं पवहे ?

उ. गोयमा ! जीवप्पवहे एवं सइअत्थि उट्ठाणे ति वा, कम्मे ति वा, बले ति वा, वीरिए ति वा, पुरिसक्कारपरक्कमे ति वा। –विया. स. १, उ. ३, सु. ९/५

३. सरीराणं अगुरुलहुत्ताइ परूवणं–

प. सरीरा णं भंते ! किं गरुया, लहुया, गरुयलहुया अगरुयलहुया ?

उ. गोयमा ! चत्तारि सरीरा नो गरुया, नो लहुया, गरुयलहुया, नो अगुरुयलहुया।

कम्मयसरीरं नो गरुए, नो लहुए, नो गरुयलहुए अगरुयलहुए। –विया. स. १, उ. ९, सु. १२

४. सरीराणं पोग्गलचिणणा–

प. ओरालियसरीरस्स णं भंते ! कइदिसिं पोग्गला चिज्जंति ?

उ. गोयमा ! णिव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पंचदिसिं।

प. वेउव्वियसरीरस्स णं भंते ! कइदिसिं पोग्गला चिज्जंति ?

उ. गोयमा ! णियमा छद्दिसिं।

एवं आहारगसरीरस्स वि।

तेयगकम्मगाणं जहा ओरालियसरीरस्स।

एवं उवचिज्जंति अवचिज्जंति। –पण्ण. प. २१, सु. १५५३-१५५८

५. सरीराणं परोप्पर संजोगासंजोगं–

प. जस्स णं भंते ! ओरालियसरीरं तस्स णं वेउव्वियसरीरं ?

१४. शरीर अध्ययन

सूत्र

१. शरीर के भेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! शरीर कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! शरीर पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. औदारिक, २. वैक्रिय, ३. आहारक, ४. तैजस्, ५. कार्मण।

२. सामान्यतः शरीरों की उत्पत्ति के हेतु–

प्र. भंते ! शरीर किससे उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! शरीर जीव से उत्पन्न होता है और ऐसा होने से जीव का उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम (निमित्त) होता है।

३. शरीरों के अगुरुलघुत्वादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या शरीर गुरु है, लघु है, गुरुलघु है या अगुरुलघु है ?

उ. गौतम ! चार शरीर न गुरु हैं, न लघु हैं, गुरु लघु हैं, किन्तु अगुरुलघु नहीं है।

कार्मण शरीर न गुरु है, न लघु हैं, न गुरुलघु हैं किन्तु अगुरु-लघु हैं।

४. शरीरों का पुद्गल चयन–

प्र. भंते ! औदारिक शरीर के लिए कितनी दिशाओं से पुद्गलों का चय होता है ?

उ. गौतम ! निर्व्याघात की अपेक्षा से छहों दिशाओं से और व्याघात की अपेक्षा से कदाचित् तीन दिशाओं से, कदाचित् चार दिशाओं से और कदाचित् पांच दिशाओं से पुद्गलों का चय होता है।

प्र. भंते ! वैक्रिय शरीर के लिए कितनी दिशाओं से पुद्गलों का चय होता है ?

उ. गौतम ! नियम से छहों दिशाओं से पुद्गलों का चय होता है।

इसी तरह आहारक शरीर के पुद्गलों का चय भी (नियम से छहों दिशाओं से) होता है।

तैजस् और कार्मण शरीरों के लिए औदारिक शरीर के समान समझना चाहिए।

(औदारिक आदि पांचों शरीरों के पुद्गलों का) जिस प्रकार चय कहा गया है उसी प्रकार उनका उपचय-अपचय भी कहना चाहिए।

५. शरीरों का परस्पर संयोगासंयोग–

प्र. भंते ! जिस जीव के औदारिक शरीर होता है, क्या उसके वैक्रिय शरीर होता है ?

---

१. (क) अणु. कालदारे, सु. ४०५
(ख) पण्ण. प. २१, सु. १४७५
(ग) विया. स. १०, उ. १, सु. १८
(घ) विया. स. १७, उ. १, सु. १५
(ङ) ठाणं. अ. ५, उ. १, सु. ३९५
(च) विया. स. २५, उ. ४, सु. ८०
(छ) सम. सु. १५२

जस्स वेउव्वियसरीरं तस्स ओरालियसरीरं ?

उ. गोयमा ! जस्स ओरालियसरीरं तस्स वेउव्वियसरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि,
जस्स वेउव्वियसरीरं तस्स ओरालियसरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि।

प. जस्स णं भंते ! ओरालियसरीरं तस्स आहारगसरीरं ?

जस्स आहारगसरीरं तस्स ओरालियसरीरं ?

उ. गोयमा ! जस्स ओरालियसरीरं तस्स आहारगसरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि,
जस्स आहारगसरीरं तस्स ओरालियसरीरं णियमा अत्थि।

प. जस्स णं भंते ! ओरालियसरीरं तस्स तेयगसरीरं ?

जस्सपुण तेयगसरीरं तस्स ओरालियसरीरं ?

उ. गोयमा ! जस्स ओरालियसरीरं तस्स तेयगसरीरं णियमा अत्थि,
जस्स पुण तेयगसरीरं तस्स ओरालियसरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि।
एवं कम्मगसरीरं पि।

प. जस्स णं भंते ! वेउव्वियसरीरं तस्स आहारगसरीरं ?

जस्स आहारगसरीरं तस्स वेउव्वियसरीरं ?

उ. गोयमा ! जस्स वेउव्वियसरीरं तस्साहारगसरीरं णत्थि।

जस्स वि आहारगसरीरं तस्स वि वेउव्वियसरीरं णत्थि।

तेयग कम्माइं जहा ओरालिएणं समं तहेव आहारगसरीरेण वि समं तेयग कम्माइं चारेयव्वाणि।

प. जस्स णं भंते ! तेयगसरीरं तस्स कम्मगसरीरं ?

जस्स कम्मगसरीरं तस्स तेयगसरीरं ?

उ. गोयमा ! जस्स तेयगसरीरं तस्स कम्मगसरीरं णियमा अत्थि,
जस्स वि कम्मगसरीरं तस्स वि तेयगसरीरं णियमा अत्थि।
—पण्ण. प. २१, सु. [illegible]

६. [illegible]–
[illegible]

जिसके वैक्रिय शरीर होता है, क्या उसके औदारिक शरीर भी होता है ?

उ. गौतम ! जिसके औदारिक शरीर होता है, उसके वैक्रिय शरीर कदाचित् होता है कदाचित् नहीं भी होता है।
जिसके वैक्रिय शरीर होता है, उसके औदारिक शरीर कदाचित् होता है कदाचित् नहीं भी होता है।

प्र. भंते ! जिसके औदारिक शरीर होता है, क्या उसके आहारक शरीर होता है ?
जिसके आहारक शरीर होता है क्या उसके औदारिक शरीर होता है ?

उ. गौतम ! जिसके औदारिक शरीर होता है, उसके आहारक शरीर कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं भी होता है,
किन्तु जिस जीव के आहारक शरीर होता है उसके नियम से औदारिक शरीर होता है।

प्र. भंते ! जिसके औदारिक शरीर होता है, क्या उसके तैजस् शरीर होता है ?
जिसके तैजस् शरीर होता है क्या उसके औदारिक शरीर होता है ?

उ. गौतम ! जिसके औदारिक शरीर होता है, उसके नियम से तैजस् शरीर होता है,
जिसके तैजस् शरीर होता है, उसके औदारिक शरीर कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं भी होता है।
इसी प्रकार औदारिक शरीर के साथ कार्मण शरीर का संयोग भी समझ लेना चाहिए।

प्र. भंते ! जिसके वैक्रिय शरीर होता है, क्या उसके आहारक शरीर होता है ?
जिसके आहारक शरीर होता है, उसके वैक्रिय शरीर होता है ?

उ. गौतम ! जिस जीव के वैक्रिय शरीर होता है, उसके आहारक शरीर नहीं होता है,
जिसके आहारक शरीर होता है, उसके वैक्रिय शरीर नहीं होता है।
जैसे औदारिक के साथ तैजस् एवं कार्मण शरीर के संयोग का कथन किया गया है, उसी प्रकार आहारक शरीर के साथ तैजस् और कार्मण शरीर का कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! जिसके तैजस् शरीर होता है, क्या उसके कार्मण शरीर होता है ?
जिसके कार्मण शरीर होता है, क्या उसके तैजस् शरीर होता है ?

उ. गौतम ! जिसके तैजस् शरीर होता है, उसके कार्मण शरीर [illegible] होता है,
जिसके कार्मण शरीर होता है उसके तैजस् शरीर [illegible] होता है।

६. [illegible]–
[illegible]

१. वेउव्विए, २. आहारए, ३. तेयए, ४. कम्मए।
चत्तारि सरीरगा कम्मुम्मीसगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. ओरालिए, २. वेउव्विए, ३. आहारए, ४. तेयए।

–ठाणं, अ. ४, उ. ३, सु. ३३२

७. सामित्तविवक्खया ओरालियसरीरस्स विविह भेया–

प. ओरालियसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. एगिंदिय ओरालियसरीरे जाव ५. पंचेंदिय ओरालियसरीरे।
प. एगिंदिय ओरालियसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. पुढविकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे जाव
५. वणस्सइकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे।
प. पुढविकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सुहुम पुढविकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे य,
२. बायर पुढविकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे य।
प. सुहुम पुढविकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. पज्जत्तग सुहुम पुढविकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे य,
२. अपज्जत्तग सुहुम पुढविकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे य।
बायर पुढविकाइया वि एवं चेव।
एवं जाव वणस्सइकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे त्ति।

प. [illegible]
[illegible]

१. वैक्रिय, २. आहारक, ३. तैजस्, ४. कार्मण।
चार शरीर कार्मण शरीर से संयुक्त होते हैं, यथा–
१. औदारिक, २. वैक्रिय, ३. आहारक, ४. तैजस्।

७. स्वामित्व की विवक्षा से औदारिक शरीर के विविध भेद–

प्र. भंते ! औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. एकेन्द्रिय औदारिक शरीर यावत् ५. पंचेंद्रिय औदारिक शरीर।
प्र. भंते ! एकेन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर यावत्
५. वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर।
प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर,
२. बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर।
प्र. भंते ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर,
२. अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर।
इसी प्रकार बादर पृथ्वीकायिक के भी दो भेद हैं।
इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यंत एकेन्द्रिय औदारिक शरीर के भी दो-दो भेद हैं।

प्र. भंते ! द्वीन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा
१. पर्याप्त द्वीन्द्रिय औदारिक शरीर,
२. अपर्याप्त द्वीन्द्रिय औदारिक शरीर।
इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के भी दो-दो भेद समझ लेने चाहिए।

प्र. [illegible]
उ. [illegible]
प्र. [illegible]

उ. गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–
 १. जलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य,
 २. थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालिय-सरीरे य,
 ३. खहयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालिय-सरीरे य।

प. जलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
 १. सम्मुच्छिम-जलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य,
 २. गब्भवक्कंतिय-जलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य।

प. सम्मुच्छिम-जलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
 १. पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-तिरिक्खजोणिय- पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य,
 २. अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम- तिरिक्खजोणिय- पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य।

एवं गब्भवक्कंतिए वि।

प. थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
 १. चउप्पय-थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य,
 २. परिसप्प-थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य।

प. चउप्पय-थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
 १. सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य,
 २. गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य।

प. सम्मुच्छिम-चउप्पय- थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
 १. पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य,
 २. अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य।

एवं गब्भवक्कंतिए वि।

उ. गौतम ! वह तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–
 १. जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर,
 २. स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर,
 ३. खेचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

प्र. भंते ! जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
 १. सम्मूर्च्छिम जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर,
 २. गर्भज जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर।

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
 १. पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर,
 २. अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

इसी प्रकार गर्भज के भी दो भेद हैं।

प्र. भंते ! स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
 १. चतुष्पद स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर,
 २. परिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर,

प्र. भंते ! चतुष्पद स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
 १. सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर,
 २. गर्भज चतुष्पद स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर।

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
 १. [illegible]
 २. [illegible]

इसी प्रकार गर्भज के भी दो भेद हैं।

प. परिसप्प-थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. उरपरिसप्प-थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य,

२. भुयपरिसप्प-थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य।

प. उरपरिसप्प-थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सम्मुच्छिम-उरपरिसप्प-थलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय ओरालियसरीरे य,

२. गब्भवक्कंतिय-उरपरिसप्प-थलयर-तिरिक्खजोणिय पंचेन्दिय ओरालियसरीरे य।

सम्मुच्छिमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-उरपरिसप्प-थलयर-तिरिक्खजोणिय पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य,

२. अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-उरपरिसप्प-थलयर-तिरिक्खजोणिय पंचेंदिय-ओरालियसरीरे य।

एवं गब्भवक्कंतिय-उरपरिसप्प-चउक्कओ भेदो।

एवं भुयपरिसप्पा वि।

[illegible]

[illegible]

प्र. भंते ! परिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. उरःपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर,

२. भुजपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

प्र. भंते ! उरःपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सम्मूर्च्छिम उरःपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर,

२. गर्भज उरःपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

सम्मूर्च्छिम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उरःपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर,

२. अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उरःपरिसर्प-स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

इसी प्रकार गर्भज उरःपरिसर्प के भी चार भेद समझ लेने चाहिए।

इसी प्रकार भुजपरिसर्प पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भी चार भेद समझ लेने चाहिए।

खेचर (तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक शरीर) भी दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सम्मूर्च्छिम, २. गर्भज।

सम्मूर्च्छिम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

गर्भज भी पर्याप्तक और अपर्याप्तक कहा गया है।

प्र. भंते ! मनुष्य पंचेंद्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सम्मूर्च्छिम मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर,

२. गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

प्र. भंते ! गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. पर्याप्तक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर,

२. अपर्याप्तक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

८. सामित्त विवक्खया वेउव्विय सरीरस्स विविह भेया–

प. वेउव्वियसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. एगिंदिय वेउव्वियसरीरे य २. पंचेन्दिय वेउव्वियसरीरे य[1]।

प. जइ एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे किं वाउक्काइय- एगिंदिय - वेउव्वियसरीरे अवाउक्काइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे ?

उ. गोयमा ! वाउक्काइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे, णो अवाउकाइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे।

प. जइ वाउक्काइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे किं सुहुम-वाउक्काइय- एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे बायर-वाउक्काइय -एगिंदिय- वेउव्वियसरीरे ?

उ. गोयमा ! णो सुहुम-वाउक्काइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे,
बायर-वाउक्काइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे।

प. जइ बायर - वाउक्काइय - एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे-किं पज्जत्तय-बायर-वाउक्काइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे, अपज्जत्तय-बायर-वाउक्काइय-एगिंदिय- वेउव्वियसरीरे ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तय-बायर-वाउक्काइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे,
णो अपज्जत्तय-बायर-वाउक्काइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे।

प. जइ पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे किं णेरइय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे जाव किं देवपंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे ?

उ. गोयमा ! णेरइय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे वि जाव देव-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे वि।

प. जइ णेरइय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे किं रयणप्पभा-पुढविणेरइय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे जाव किं अहेसत्तमा - पुढविनेरइय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे ?

उ. गोयमा ! रयणप्पभा-पुढविणेरइय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे वि जाव अहेसत्तमा-पुढविणेरइय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे वि।

प. जइ रयणप्पभा- पुढविणेरइय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,
किं पज्जत्तय-रयणप्पभा-पुढविणेरइय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,
अपज्जत्तय-रयणप्पभा-पुढविणेरइय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तय-रयणप्पभा-पुढविणेरइय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे वि,

८. स्वामित्व की विवक्षा से वैक्रिय शरीर के विविध भेद–

प्र. भंते ! वैक्रिय शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीर, २. पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर।

प्र. यदि एकेन्द्रिय जीवों के वैक्रिय शरीर होता है, तो क्या वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या अवायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है ?

उ. गौतम ! वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, अवायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

प्र. यदि वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, तो क्या सूक्ष्म वायुकायिक एकेन्द्रिय के होता है या बादर वायुकायिक एकेन्द्रिय के होता है ?

उ. गौतम ! सूक्ष्म वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है,
किन्तु बादर वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है।

प्र. यदि बादर वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, तो क्या पर्याप्त बादर वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या अपर्याप्त बादर वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है ?

उ. गौतम ! पर्याप्त बादर वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है,
किन्तु अपर्याप्त बादर वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

प्र. यदि पंचेंद्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, तो क्या नारक पंचेंद्रियों के वैक्रिय शरीर होता है यावत् देव पंचेंद्रियों के वैक्रिय शरीर होता है ?

उ. गौतम ! नारक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है यावत् देव पंचेंद्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है।

प्र. यदि नारक पंचेंद्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, तो क्या रत्नप्रभा पृथ्वी नारक पंचेंद्रियों के वैक्रिय शरीर होता है यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नारक पंचेंद्रियों के वैक्रिय शरीर होता है ?

उ. गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नारक पंचेंद्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है।

प्र. यदि रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो
क्या पर्याप्तक रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या
अपर्याप्तक रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक पंचेंद्रियों के वैक्रिय शरीर होता है ?

उ. गौतम ! पर्याप्तक रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है,

१. सम. सु. १५२

अपज्जत्तय-रयणप्पभा-पुढविणेरइय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे वि।

एवं जाव अहेसत्तमाए दुगओ भेदो णेयव्वो।

प. जइ तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,

किं सम्मुच्छिम-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,

गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे?

उ. गोयमा ! णो सम्मुच्छिम-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे

गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,

किं संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,

असंखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,

णो असंखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे।

प. [illegible]

[illegible]

अपर्याप्तक रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक पंचेंद्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यंत के (पर्याप्तक और अपर्याप्तक) दोनों भेदों में वैक्रिय शरीर का कथन करना चाहिए।

प्र. यदि तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय के वैक्रिय शरीर होता है,

तो क्या सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या

गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उ. गौतम ! सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है

किन्तु गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है।

प्र. यदि गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है,

तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या

असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उ. गौतम ! संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है,

किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

प्र. यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो

क्या पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या

अपर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यञ्चयोनिक के वैक्रिय शरीर होता है?

उ. गौतम ! पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है,

किन्तु अपर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

प्र. [illegible]

[illegible]

थलयर-संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे वि,

खहयर-संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे वि।

प. जइ जलयर-संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,

किं पज्जत्तय-जलयर-संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,

अपज्जत्तय-जलयर-संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे?

उ. गोयमा ! पज्जत्तय-जलयर-संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,

णो अपज्जत्तय-जलयर-संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे।

प. जइ थलयर-संखेज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय वेउव्वियसरीरे,

किं पज्जत्तय-थलयर-जाव भुयपरिसप्प वेउव्वियसरीरे?

उ. गोयमा ! पज्जत्तय चउप्पय जाव भुय-परिसप्प वेउव्वियसरीरे वि।

खहयराण वि एवं चेव।

सव्वत्थ पज्जत्तयाणं वेउव्विय सरीरे नो अपज्जत्तयाणं।

प. जइ मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे—

किं सम्मुच्छिम-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,

गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे?

उ. गोयमा ! नो सम्मुच्छिम-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,

गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे—

किं कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,

अकम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,

अंतरदीवग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे?

उ. गोयमा ! कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,

नो अकम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,

नो अंतरदीवग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे य।

स्थलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है तथा

खेचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है।

प्र. यदि जलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेंद्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो

क्या पर्याप्तक जलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या

अपर्याप्तक जलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उ. गौतम ! पर्याप्तक जलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है,

किन्तु अपर्याप्तक जलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

प्र. यदि स्थलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय के वैक्रिय शरीर होता है तो

क्या पर्याप्तक स्थलचर यावत् भुजपरिसर्प के वैक्रिय शरीर होता है?

उ. गौतम ! पर्याप्तक चतुष्पद यावत् भुजपरिसर्प के वैक्रिय शरीर होता है।

इसी प्रकार खेचर के भी वैक्रिय शरीर जानना चाहिए।

इन सभी के पर्याप्तकों के वैक्रिय शरीर होता है, अपर्याप्तकों के नहीं होता है।

प्र. यदि मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो

क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या

गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उ. गौतम ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है,

किन्तु गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है।

प्र. यदि गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो

क्या कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या

अकर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या

अन्तरद्वीपज गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उ. गौतम ! कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है,

किन्तु अकर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है,

और अन्तरद्वीपज गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

प. जइ कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे-
किं संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,
असंखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे ?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,
णो असंखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे।

प. जइ संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे-
किं पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,
अपज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तय संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे,
णो अपज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-पंचेंदिय- वेउव्वियसरीरे।

प. जइ देवपंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे किं भवणवासि-देवपंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे जाव वेमाणिय-देवपंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे ?

उ. गोयमा ! भवणवासि-देव पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे वि जाव वेमाणियदेव पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे वि।

प. जइ भवणवासि-देवपंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे किं असुरकुमार-भवणवासि देव पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे जाव थणियकुमार-भवणवासि-देवपंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे ?

उ. गोयमा ! असुरकुमार जाव थणियकुमार-भवणवासि-देव पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे वि।

प. जइ असुरकमार-भवणवासिदेवपंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे
किं पज्जत्तय-असुरकुमार भवणवासिदेव पंचेंदिय वेउव्वियसरीरे ?
अपज्जत्तय असुरकुमार भवणवासि देव पंचेंदिय वेउव्वियसरीरे ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तय असुरकुमार भवणवासि देवपंचेंदिय वेउव्वियसरीरे वि,
अपज्जत्तय असुरकुमार भवणवासि देव पंचेंदिय वेउव्विय सरीरे वि।
एवं जाव थणियकुमारे वि णं दुगओ भेदो।

प्र. यदि कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो
क्या संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या
असंख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है ?

उ. गौतम ! संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है,
किन्तु असंख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

प्र. यदि संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो
क्या पर्याप्तक संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या
अपर्याप्तक संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है ?

उ. गौतम ! पर्याप्तक संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है,
किन्तु अपर्याप्तक संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

प्र. यदि देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, तो क्या भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है यावत् वैमानिक देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है ?

उ. गौतम ! भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है यावत् वैमानिक देव पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है।

प्र. यदि भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, तो क्या असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है ?

उ. गौतम ! असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है।

प्र. यदि असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो
क्या पर्याप्तक असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या
अपर्याप्तक असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है ?

उ. गौतम ! पर्याप्तक असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है,
अपर्याप्तक असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है।
इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त के दोनों भेदों के लिए जानना चाहिए।

एवं वाणमंतराणं अट्ठविहाणं, जोइसियाणं पंचविहाणं।

इसी तरह आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देवों के, पांच प्रकार के ज्योतिष्क देवों के वैक्रिय शरीर होता है।

वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. कप्पोवया, २. कप्पाइया य।
कप्पोवया बारसविहा, तेसिं पि एवं चेव दुगओ भेदो।
कप्पाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. गेवेज्जगा य, २. अणुत्तरोववाइया य।
गेवेज्जगा णवविहा, अणुत्तरोववाइया पंचविहा,

एएसिं पज्जत्तापज्जत्ताभिलावेणं दुगओ भेदो[1]।
–पण्ण. प. २१, सु. १५१४-१५२०

वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कल्पोपपन्न, २. कल्पातीत।
कल्पोपपन्न बारह प्रकार के हैं उनके भी दो-दो भेद होते हैं।
कल्पातीत वैमानिक देव दो प्रकार के होते हैं, यथा–
१. ग्रैवेयकवासी, २. अनुत्तरोपपातिक।
ग्रैवेयक देव नौ प्रकार के होते हैं और अनुत्तरोपपातिक देव पांच प्रकार के होते हैं।
इन सबके पर्याप्तक और अपर्याप्तक के अभिलाप से दो-दो भेद कहने चाहिए।

९. सामित्त विवक्खया आहारगसरीरस्स विविह भेया–

प. आहारगसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?
उ. गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते।
प. जइ एगागारे पण्णत्ते किं मणूस-आहारगसरीरे, अमणूस-आहारगसरीरे?
उ. गोयमा ! मणूस-आहारगसरीरे, णो अमणूस-आहारगसरीरे।
प. जइ मणूस आहारगसरीरे किं सम्मुच्छिम मणूस आहारगसरीरे, गब्भवक्कंतिय मणूस आहारगसरीरे?
उ. गोयमा ! णो सम्मुच्छिम मणूस आहारगसरीरे, गब्भवक्कंतिय मणूस आहारगसरीरे।
प. जइ गब्भवक्कंतिय मणूस आहारगसरीरे, किं कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारगसरीरे, अकम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारगसरीरे, अंतरदीवग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारगसरीरे,
उ. गोयमा ! कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारगसरीरे, णो अकम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे, णो अंतरदीवग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे।
प. जइ कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे, किं संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे, असंखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे?
उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे, णो असंखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे।

९. स्वामित्व की विवक्षा से आहारक शरीर के विविध भेद–

प्र. भन्ते ! आहारक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?
उ. गौतम ! वह एक ही प्रकार का कहा गया है।
प्र. यदि आहारक शरीर एक प्रकार का कहा गया है तो वह आहारक शरीर मनुष्य के होता है या अमनुष्य के होता है?
उ. गौतम ! मनुष्य के आहारक शरीर होता है, किन्तु अमनुष्य के आहारक शरीर नहीं होता है
प्र. यदि मनुष्य के आहारक शरीर होता है तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्य के होता है या गर्भज मनुष्य के होता है?
उ. गौतम ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य के आहारक शरीर नहीं होता है किन्तु गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है।
प्र. यदि गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है तो क्या कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है या अकर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है या अन्तरद्वीपज मनुष्य के आहारक शरीर होता है?
उ. गौतम ! कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है। किन्तु न तो अकर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है और न अन्तरद्वीपज गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है।
प्र. यदि कर्मभूमिक कर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है, तो क्या संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के होता है या असंख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के होता है?
उ. गौतम ! संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है, किन्तु असंख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के नहीं होता है।

---

१. सम. सु. १५२

प. जइ संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे,

किं पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे,

अपज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे?

उ. गोयमा! पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे,

नो अपज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे।

प. जइ पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे,

किं सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे,

मिच्छद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे?

सम्मामिच्छद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे?

उ. गोयमा! सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे,

नो मिच्छद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे,

नो सम्मामिच्छद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे।

प. [illegible]

प्र. यदि संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है तो

क्या पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है या

अपर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के होता है?

उ. गौतम! पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है,

किन्तु अपर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के नहीं होता है।

प्र. यदि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है तो

क्या सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है,

मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है

या सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है?

उ. गौतम! सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है,

किन्तु न तो मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है और

न ही सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है।

प्र. यदि सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है तो

क्या सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है या

[illegible] सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है या

[illegible] सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है?

उ. [illegible]

प्र. [illegible]

उ. गोयमा ! पमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तय-संखेज्ज-वासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे।

णो अपमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे,

प. जइ पमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तय-संखेज्ज-वासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-आहारगसरीरे,

किं इड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे ?

अणिड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तय-संखेज्ज-वासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे ?

उ. गोयमा ! इड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे ?

णो अणिड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तय-संखेज्ज-वासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणूस-आहारगसरीरे।[१] —पण्ण. प. २१, सु. १५३३

उ. गौतम ! प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है,

अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के नहीं होता है।

प्र. यदि प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है तो

क्या ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है या

अनृद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है ?

उ. गौतम ! ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है,

किन्तु अनृद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर नहीं होता है।

१०. सामित्त विवक्खया तेयगसरीरस्स विविह भेया–

प. तेयगसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. एगिंदियतेयगसरीरे जाव ५. पंचेंदियतेयगसरीरे।

प. एगिंदियतेयगसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पुढविकाइय जाव

५. वणस्सइकाइय- एगिंदियतेयगसरीरे।

एवं जहा ओरालियसरीरस्स भेदो भणिओ तहा तेयगस्स वि जाव चउरिंदियाणं।

प. पंचेंदियतेयगसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. णेरइयतेयगसरीरे जाव ४. देवतेयगसरीरे।

णेरइयाणं दुगओ भेदो भाणियव्वो जहा वेउव्वियसरीरे।

पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं मणूसाण य जहा ओरालियसरीरे भेओ भणिओ तहा भाणियव्वो।

देवाणं जहा वेउव्वियसरीरे भेओ भणिओ तहा भाणियव्वो जाव सव्वट्ठसिद्धदेवे त्ति[२]।

—पण्ण. प. २१, सु. १५३६-१५३९

१०. स्वामित्व की विवक्षा से तैजस शरीर के विविध भेद–

प्र. भन्ते ! तैजस शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. एकेन्द्रिय तैजस शरीर यावत् ५. पंचेन्द्रिय तैजस् शरीर।

प्र. भन्ते ! एकेन्द्रिय तैजस् शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. पृथ्वीकायिक तैजस शरीर यावत्

५. वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तैजस् शरीर।

इसी प्रकार जैसे औदारिक शरीर के भेद कहे हैं, उसी प्रकार तैजस् शरीर के भेद चतुरिन्द्रिय पर्यन्त कहने चाहिए।

प्र. भन्ते ! पंचेन्द्रिय तैजस् शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. नैरयिक तैजस् शरीर यावत् ४. देव तैजस् शरीर।

जैसे नारकों के वैक्रिय शरीर में पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो भेद कहे गए हैं उसी प्रकार यहां नारकों के तैजस् शरीर के भी भेद कहने चाहिए।

जैसे पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों और मनुष्यों के औदारिक शरीर के भेदों का कथन किया गया है, उसी प्रकार यहां भी भेदों का कथन करना चाहिए।

जैसे देवों के वैक्रिय शरीर के भेद कहे गए हैं, वैसे ही सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त देवों के भेदों का कथन करना चाहिए।

१. सम. सु. १५२

२. सम. सु. १५२

११. सामित्त विवक्खया कम्मगसरीरस्स विविह भेया–

प. कम्मगसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. एगिंदियकम्मगसरीरे जाव ५. पंचेंदिय कम्मग सरीरे।

एवं जहेव तेयगसरीरस्स भेदो भणियओ तहेव णिरवसेस भाणियव्वं जाव सव्वट्ठसिद्धदेवे त्ति।

–पण्ण. प. २१, सु. १५५२

११. स्वामित्व की विवक्षा से कार्मण शरीर के विविध भेद–

प्र. भन्ते ! कार्मण शरीर कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. एकेन्द्रिय कार्मण शरीर यावत् ५. पंचेन्द्रिय कार्मण शरीर।

इस प्रकार जैसे तैजस शरीर के भेदों का कथन किया है उसी प्रकार से सम्पूर्ण कथन कार्मण शरीर के भेदों का सर्वार्थसिद्ध देव पर्यन्त करना चाहिए।

१२. सरीर निव्वत्ती भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! सरीरनिव्वत्ती पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा सरीरनिव्वत्ती पण्णत्ता, तं जहा–

१. ओरालियसरीरनिव्वत्ती जाव

५. कम्मगसरीरनिव्वत्ती।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! कइविहा सरीरनिव्वत्ती पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया

णवरं–नेयव्वं जस्स जइ सरीराणि तस्स तइ।

–विया. स. १९, उ. ८, सु. ८-१०

१२. शरीर निर्वृत्ति के भेद और चौवीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! शरीरनिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गयी है ?

उ. गौतम ! शरीरनिर्वृत्ति पांच प्रकार की कही गयी है, यथा–

१. औदारिक शरीरनिर्वृत्ति यावत्

५. कार्मण शरीर निर्वृति।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों की कितने प्रकार की शरीरनिर्वृति कही गई है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष–जिसके जितने शरीर हों उतनी निर्वृत्ति कहनी चाहिए।

१३. चउवीसदंडएसु सरीरुप्पत्ती निव्वत्ति कारणाइं–

दं. १-२४. नेरइयाणं दोहिं ठाणेहिं सरीरुप्पत्ति सिया, तं जहा–

१. रागेण चेव, २. दोसेण चेव।

एवं जाव वेमाणियां।

दं. १-२४. नेरइयाणं दुट्ठाणनिव्वत्तिए सरीरए पण्णत्ते, तं जहा–

१. रागनिव्वत्तिए चेव,

२. दोसनिव्वत्तिए चेव।

एवं जाव वेमाणियाणं। –ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ६५/३-४

दं. १-२४. णेरइयाणं चउहिं ठाणेहिं सरीरुप्पत्ती सिया, तं जहा–

१. कोहेणं, २. माणेणं, ३. मायाए, ४. लोभेणं।

एवं जाव वेमाणियाणं।

दं. १-२४. णेरइयाणं चउट्ठाणनिव्वत्तिए सरीरए पण्णत्ते, तं जहा–

१. कोहनिव्वत्तिए जाव ४. लोहनिव्वत्तिए।

एवं जाव वेमाणियाणं। –ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३७१

१३. चौवीस दण्डकों में शरीरोत्पत्ति और निर्वृत्ति के कारण–

दं. १-२४. नैरयिकों के शरीरों की उत्पत्ति दो कारणों से होती है, यथा–

१. राग से २. द्वेप से।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. १-२४. नैरयिकों के शरीर की रचना दो स्थानों से कही गई है, यथा–

१. राग से शरीर की रचना होती है।

२. द्वेष से शरीर की रचना होती है।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त शरीरों की रचना के कारण कहने चाहिए।

दं. १-२४. चार कारणों से नैरयिकों के शरीर की उत्पत्ति होती है, यथा–

१. क्रोध से २. मान से, ३. माया से ४. लोभ से।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. १-२४. नैरयिकों के शरीर चार कारणों से निवर्तित (निष्पन्न) होते हैं, यथा–

१. क्रोध निवर्तित यावत् ४. लोभ निवर्तित।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

१४. सरीरबंध भेया-चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. ओरालियसरीरस्स जाव कम्मगसरीरस्स णं भंते ! कहविहे बंधे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तिविहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जीवप्पयोगबंधे, २. अणंतर बंधे ३. परंपरबंधे।

१४. शरीरों के बंध भेद और चौवीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! औदारिक शरीर यावत् कार्मण शरीर का बंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वंध तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. जीव प्रयोग वंध २. अनंतर वंध ३. परम्पर वंध।

एवं चउवीसं दंडगा भाणियव्वा।
णवरं–जाणियव्वं जस्स जं अत्थि।

–विया. स. २०, उ. ७, सु. १८

इसी प्रकार चौवीस दंडकों में कहना चाहिए।
विशेष–जिसके जो हो वह जानना चाहिए।

१५. जीव-चउवीसदंडएसु सरीराइत्ताइ ठियऽट्ठिइ दव्व गहण परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं ओरालियसरीरत्ताए गेण्हइ ताइं किं ठियाइं गेण्हइ, अठियाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! ठियाइं पि गेण्हइ, अठियाइं पि गेण्हइ।

प. ताइं भंते ! किं दव्वओ गेण्हइ, खेत्तओ गेण्हइ, कालओ गेण्हइ, भावओ गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! दव्वओ वि गेण्हइ, खेत्तओ वि गेण्हइ, कालओ वि गेण्हइ, भावओ वि गेण्हइ।

ताइं दव्वओ अणंतपएसियाइं दव्वाइं,
खेत्तओ असंखेज्जपएसोगाढाइं,
एवं जहा पण्णवणाए पढमे आहाररुद्देसए[1] जाव निव्वाघाएणं छद्दिसिं वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसिं।

प. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं वेउव्वियसरीरत्ताए गेण्हइ ताइं किं ठियाइं गेण्हइ अठियाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! एवं चेव
णवरं–नियमं छद्दिसिं।

एवं आहारगसरीरत्ताए वि।

प. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं तेयगसरीरत्ताए गेण्हइ ताइं किं ठियाइं गेण्हइ अठियाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! ठियाइं गेण्हइ, नो अठियाइं गेण्हइ।

सेसं जहा ओरालियसरीरस्स।
कम्मगसरीरे एवं चेव जाव भावओ वि गेण्हइ।

प. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं दव्वओ गेण्हइ ताइं किं एगपएसियाइं गेण्हइ दुपएसियाइं गेण्हइ जाव अणंतपएसियाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! णो एगपएसियाइं गेण्हइ जाव णो असंखेज्जपएसियाइं गेण्हइ, अणंतपएसियाइं गेण्हइ।

१५. जीव चौवीस दंडकों में शरीरादि के लिए स्थित अस्थित द्रव्यों के ग्रहण का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! जीव जिन पुद्गलद्रव्यों को औदारिक शरीर के रूप में ग्रहण करता है, क्या वह स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है या अस्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! वह स्थित द्रव्यों को भी ग्रहण करता है और अस्थित द्रव्यों को भी ग्रहण करता है।

प्र. भन्ते ! (जीव) क्या उन द्रव्यों को द्रव्य से ग्रहण करता है, क्षेत्र से ग्रहण करता है, काल से ग्रहण करता है या भाव से ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! वह उन द्रव्यों को द्रव्य से भी ग्रहण करता है, क्षेत्र से भी ग्रहण करता है, काल से भी ग्रहण करता है और भाव से भी ग्रहण करता है।

द्रव्य से वह अनन्तप्रदेशी द्रव्यों को ग्रहण करता है,
क्षेत्र से असंख्येय प्रदेशावगाढ द्रव्यों को ग्रहण करता है।
जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम आहार उद्देशक में कहा है तदनुसार यहां भी निर्व्याघात से छहों दिशाओं से और व्याघात से कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पांच दिशाओं से पुद्गलों को ग्रहण करता है पर्यंत कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जीव जिन द्रव्यों को वैक्रियशरीर के रूप में ग्रहण करता है, तो क्या वह स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है या अस्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए।
विशेष–(जिन द्रव्यों को वैक्रिय शरीर के रूप में ग्रहण करता है) वे नियम से छहों दिशाओं से ग्रहण करता है।
आहारक शरीर के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जीव जिन द्रव्यों को तैजस् शरीर के रूप में ग्रहण करता है क्या वह स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है या अस्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! वह स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है, अस्थित द्रव्यों को ग्रहण नहीं करता है।
शेष कथन औदारिक शरीर के समान समझना चाहिए।
कार्मण शरीर के विषय में भी भाव से भी ग्रहण करता है पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जीव जिन द्रव्यों को द्रव्य से ग्रहण करता है तो क्या एक प्रदेश वालों को ग्रहण करता है या दो प्रदेश वालों को ग्रहण करता है यावत् अनंतप्रदेश वालों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! एक प्रदेशी को ग्रहण नहीं करता है यावत् असंख्यात प्रदेशी को भी ग्रहण नहीं करता है किन्तु अनन्त प्रदेशी को ग्रहण करता है।

---

१. आहार अध्ययन में विस्तृत वर्णन देखें वहां आहारेइ शब्द का प्रयोग है उसके स्थान पर "गेण्हइ" शब्द का प्रयोग करें। (पण्ण. प. २८, उ. १, सु. १७९७-१७९९)

एवं जहा भासापदे[1] जाव आणुपुव्विं गेण्हइ, नो अणाणुपुव्विं गेण्हइ।

शेष वर्णन भाषापद में कहे अनुसार 'आनुपूर्वी से ग्रहण करता है अनानुपूर्वी से ग्रहण नहीं करता है', पर्यन्त कहना चाहिए।

प. ताइं भंते ! कइदिसिं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! निव्वाघाएणं छद्दिसिं गेणहइ, वाघायं सिय तिदिसं, सिय चउदिसं, सिय पंचदिसं।

सेसं जहा ओरालिय सरीरस्स।

प्र. भंते ! जीव उन द्रव्यों को कितनी दिशाओं से ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! व्याघात न हो तो छहों दिशाओं से ग्रहण करता है और व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशाओं से, कदाचित् चार दिशाओं से और कदाचित् पांच दिशाओं से ग्रहण करता है।

शेष कथन औदारिक शरीर के समान समझना चाहिए।

प. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं सोइंदियत्ताए गेण्हइ ताइं किं ठियाइं गेण्हइ अठियाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! जहा वेउव्वियसरीरे।

एवं जाव जिब्भिंदियत्ताए

फासिंदियत्ताए जहा ओरालियसरीरं।

मणजोगत्ताए जहा कम्मगसरीरं

णवरं-नियमं छद्दिसिं।

एवं वइजोगत्ताए वि।

कायजोगत्ताए जहा ओरालियसरीरस्स।

प्र. भन्ते ! जीव जिन द्रव्यों को श्रोत्रेन्द्रिय के रूप में ग्रहण करता है तो क्या वह स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है या अस्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! वैक्रिय शरीर के समान समझना चाहिए।

इस प्रकार रसनेन्द्रिय पर्यन्त जानना चाहिए।

स्पर्शेन्द्रिय के विषय में औदारिक शरीर के समान समझना चाहिए।

मनोयोग का वर्णन कार्मणशरीर के समान समझना चाहिए।

विशेष-वह नियम से छहों दिशाओं से आए हुए द्रव्यों को ग्रहण करता है।

इसी प्रकार वचनयोग के द्रव्यों के विषय में भी समझना चाहिए।

काययोग के रूप में ग्रहण का कथन औदारिक शरीर के समान है।

प. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं आणपाणुत्ताए गेण्हइ ताइं किं ठियाइं गेण्हइ अठियाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! जहेव ओरालियसरीरत्ताए जाव सिय पंचदिसिं।

केइ चउवीसदंडएणं एयाणि पयाणि भणंति जस्स जं अत्थि। *-विया. स. २५, उ. २, सु. ११-१६*

प्र. भंते ! जीव जिन द्रव्यों को श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता है तो क्या स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है या अस्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! औदारिक शरीर सम्बन्धी कथन के समान 'कदाचित् पांचों दिशा से आए हुए द्रव्यों को ग्रहण करता है' पर्यन्त कहना चाहिए।

कई आचार्य चौवीस दण्डकों में भी इन आलापकों का वर्णन करते हैं किन्तु जिसके जो (शरीर, इन्द्रिय, योग आदि) हो वही उसके लिए यथायोग्य कहना चाहिए।

१६. चउवीसदंडएसु सरीर परूवणं-

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! कइ सरीरा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तओ सरीरया पण्णत्ता, तं जहा-

१. वेउव्विए, २. तेयए, ३. कम्मए[2]।

दं. २-११. एवं असुरकुमाराण वि जाव थणियकुमाराणं[3]।

प. दं. १२-१९. पुढविक्काइयाणं भंते ! कइ सरीरया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तओ सरीरया पण्णत्ता, तं जहा-

१. ओरालिए, २. तेयए, ३. कम्मए[4]।

१६. चौवीस दण्डकों में शरीर की प्ररूपणा-

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों के कितने शरीर कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके तीन शरीर कहे गए हैं, यथा-

१. वैक्रिय, २. तेजस्, ३. कार्मण।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त शरीरों का प्ररूपण करना चाहिए।

प्र. दं. १२-१९. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों के कितने शरीर कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके तीन शरीर कहे गए हैं, यथा-

१. औदारिक, २. तैजस्, ३. कार्मण।

---

१. भाषा अध्ययन में विस्तृत वर्णन देखें (पण्ण. प. ११, सु. ८७७) (१-२३)

२. (क) अणु. कालदारे, सु. ४०६
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३२
(ग) ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. २०७
(घ) विया. स. १, उ. ५, सु. १२

३. (क) अणु. कालदारे, सु. ४०७
(ख) विया. स. १, उ. ५, सु. २९

४. (क) अणु. कालदारे, सु. ४०८
(ख) जीवा. पडि. १, सु. १३ (१)
(ग) जीवा. पडि. १, सु. १५
(घ) जीवा. पडि. १, सु. १६
(ङ) ठाणं. अ.३, उ. ४, सु. २०७

एवं वाउक्काइयवज्जं जाव चउरिंदियाणं[1]।

प. वाउक्काइयाणं भंते ! कइ सरीरया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चत्तारि सरीरया पण्णत्ता, तं जहा–

१. ओरालिए, २. वेउव्विए,
३. तेयए, ४. कम्मए[2]।

दं. २०. एवं पंचेंदिय - तिरिक्खजोणियाण वि[3]।

प. दं. २१. मणूसाणं भंते ! कइ सरीरया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंच सरीरया पण्णत्ता, तं जहा–

१. ओरालिए, २. वेउव्विए, ३. आहारए, ४. तेयए, ५. कम्मए[4]।

दं. २२-२४. वाणमंतर जोइसिय वेमाणियाणं जहा णारगाणं[5]। –पण्ण. प. १२, सु. १०२-१०१

इसी प्रकार वायुकायिकों को छोड़कर चतुरिन्द्रियों पर्यन्त शरीरों के विषय में जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! वायुकायिकों के कितने शरीर कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके चार शरीर कहे गए हैं, यथा–

१. औदारिक, २. वैक्रिय,
३. तैजस्, ४. कार्मण।

दं. २०. इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के विषय में भी समझना चाहिए।

प्र. दं. २१. भन्ते ! मनुष्यों के कितने शरीर कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! मनुष्यों के पांच शरीर कहे गए हैं, यथा–

१. औदारिक, २. वैक्रिय, ३. आहारक, ४. तैजस्, ५. कार्मण।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के शरीरों का कथन नारकों की तरह करना चाहिए।

१७. चउगईसु बाहिरब्भंतर विवक्खया सरीरस्सभेया–

णेरइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अब्भंतरए चेव २. बाहिरए चेव।

अब्भंतरए कम्मए, बाहिरए वेउव्विए।

एवं देवाणं भाणियव्वं।

पुढविकाइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अब्भंतरए चेव २. बाहिरए चेव।

अब्भंतरए कम्मए, बाहिरए ओरालिए।

एवं आउकाइयाणं जाव वणस्सइकाइयाणं।

बेइंदियाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अब्भंतरए चेव, २. बाहिरए चेव।

अब्भंतरए कम्मए, अट्ठिमंस-सोणियबद्धे बाहिरए ओरालिए।

एवं जाव चउरिंदियाणं।

पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अब्भंतरए चेव, २. बाहिरए चेव।

अब्भंतरए कम्मए अट्ठिमंस-सोणिय-ण्हारू-छिराबद्धे, बाहिरए ओरालिए।

मणुस्साण वि एवं चेव। –ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ६५/१

१७. चार गतियों में बाह्याभ्यन्तर विवक्षा से शरीरों के भेद–

नैरयिकों के दो शरीर कहे गए हैं, यथा–

१. आभ्यन्तर और २. बाह्य।

आभ्यन्तर कार्मण, बाह्य वैक्रिय शरीर।

इसी प्रकार देवों के शरीरों का कथन करना चाहिए।

पृथ्वीकायिकों के दो शरीर कहे गए हैं, यथा–

१. आभ्यन्तर और २. बाह्य।

आभ्यन्तर कार्मण, बाह्य औदारिक शरीर।

इसी प्रकार अप्कायिकों से वनस्पतिकायिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

द्वीन्द्रियों के दो शरीर कहे गए हैं, यथा–

१. आभ्यन्तर और २. बाह्य।

आभ्यन्तर कार्मण शरीर, बाह्य अस्थि, मांस, शोणित युक्त औदारिक शरीर।

इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जानना चाहिए।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के दो शरीर कहे गए हैं, यथा–

१. आभ्यन्तर और २. बाह्य।

आभ्यन्तर कार्मण शरीर, बाह्य-अस्थि, मांस, शोणित स्नायु शिरा युक्त औदारिक शरीर।

इसी प्रकार मनुष्यों के शरीर के लिए कहना चाहिए।

---

१. (क) अणु. कालदारे, सु. ४०८-९
(ख) जीवा. पडि. १, सु. २१
(ग) जीवा. पडि. १, सु. २५
(घ) जीवा. पडि. १, सु. २८
(ङ) जीवा. पडि. १, सु. २९
(च) ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. २०७
(छ) विया. स. १, उ. ५, सु. ३०-३२

२. (क) अणु. कालदारे, सु. ४०८
(ख) जीवा. पडि. १, सु. २६ (ये चार शरीर बादर वायुकाय के हैं सूक्ष्म वायुकाय के तीन ही हैं १. औदारिक २. तेजस्, ३. कार्मण।)
(ग) ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. २०७.
(घ) विया. स. १, उ. ५, सु. ३०-३२

३. (क) अणु. कालदारे, सु. ४१०
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३५
(ग) जीवा. पडि. १, सु. ३८
(घ) विया. स. १, उ. ५, सु. ३४

४. (क) अणु. कालदारे, सु. ४११
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ४१
(ग) विया. स. १, उ. ५, सु. ३५

५. (क) अणु. कालदारे सु. ४१२
(ख) ठाणं अ. ३, उ. ४, सु. २०७
(ग) विया. स. १, उ. ५, सु. ३६
(घ) जीवा. पडि. १, सु. ४२

१८. बद्ध-मुक्क सरीराणं परिमाण परूवणं–

प. केवइया णं भंते ! ओरालियसरीरया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. बद्धेल्लया य, २. मुक्केल्लया य।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखेज्जगा,

असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ,

खेत्तओ असंखेज्जा लोगा।

तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं अणंता,

अणंताहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ,

खेत्तओ अणंता लोगा,

दव्वओ अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणा, सिद्धाणं अणंतभागो।[1]

प. केवइया णं भंते ! वेउव्वियसरीरया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. बद्धेल्लया य, २. मुक्केल्लया य।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखेज्जगा,

असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ,

खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो।

तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं अणंता,

अणंताहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ,

जहा ओरालियस्स मुक्केल्लया तहेव वेउव्वियस्सवि भाणियव्वा।[2]

प. केवइया णं भंते ! आहारगसरीरया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. बद्धेल्लया य, २. मुक्केल्लया य।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं सिय अत्थि सिय णत्थि।

जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,

उक्कोसेणं सहस्सपुहुत्तं।

तत्थ णं जे ते मुक्केलया ते णं अणंता,

जहा ओरालियस्स मुक्केल्लया तहा भाणियव्वा।[3]

प. केवइया णं भंते ! तेयगसरीरया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. बद्धेल्लया य, २. मुक्केल्लया य।

१८. बद्ध-मुक्त शरीरों का परिमाण प्ररूपण–

प्र. भंते ! औदारिक शरीर कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. बद्ध, २. मुक्त

उनमें जो बद्ध हैं, अर्थात् जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए हैं, वे असंख्यात हैं,

काल से–वे असंख्यात उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं।

क्षेत्र से–वे असंख्यात लोक-प्रमाण हैं।

उनमें जो मुक्त हैं अर्थात् जीव के द्वारा त्यागे हुए हैं, वे अनन्त हैं।

काल से–वे अनन्त उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं।

क्षेत्र से–अनन्तलोकप्रमाण हैं।

द्रव्यतः–मुक्त औदारिक शरीर अभवसिद्धिक जीवों से अनन्तगुणे हैं और सिद्धों के अनन्तवें भाग हैं।

प्र. भंते ! वैक्रिय शरीर कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. बद्ध, २. मुक्त

उनमें जो बद्ध हैं, वे असंख्यात हैं,

कालतः–वे असंख्यात उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं।

क्षेत्रतः–वे असंख्यात श्रेणी-प्रमाण तथा प्रतर के असंख्यातवें भाग हैं।

उनमें जो मुक्त हैं वे अनन्त हैं।

कालतः–वे अनन्त उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं।

जैसे औदारिक शरीर के मुक्तों के विषय में कहा गया है, वैसे ही वैक्रियशरीर के मुक्तों के विषय में भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! आहारक शरीर कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. बद्ध, २. मुक्त

उनमें जो बद्ध हैं, वे कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते।

यदि होते हैं तो जघन्य एक, दो या तीन होते हैं,

उत्कृष्ट सहस्रपृथक्त्व होते हैं।

उनमें जो मुक्त हैं, वे अनन्त हैं।

जैसे औदारिक शरीर मुक्त के विषय में कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! तैजस् शरीर कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. बद्ध, २. मुक्त

---

१. अणु. कालदारे, सु. ४१३

२. अणु कालदारे, सु. ४१४

३. अणु. कालदारे, सु. ४१५

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं अणंता,
अणंताहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ,

खेत्तओ अणंता लोगा,
दव्वओ सिद्धेहिंतो अणंतगुणा सव्वजीवाणंतभागूणा।

तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं अणंता,
अणंताहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ,

खेत्तओ अणंता लोगा,
दव्वओ सव्वजीवेहिंतो अणंतगुणा,
जीववग्गस्स अणंतभागो।[1]
एवं कम्मगसरीरा वि भाणियव्वा।[2]

–पण्ण. प. १२, सु. ९१०

उनमें जो बद्ध हैं, वे अनन्त हैं,
कालतः–अनन्त उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं।
क्षेत्रतः वे अनन्त लोकप्रमाण हैं,
द्रव्यतः–सिद्धों से अनन्तगुणे तथा सर्वजीवों से अनन्तवें भाग कम हैं।
उनमें जो मुक्त हैं, वे अनन्त हैं,
कालतः–वे अनन्त उत्सर्पिणियों–अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं,
क्षेत्रतः–वे अनन्तलोकप्रमाण हैं।
द्रव्यतः–वे समस्त जीवों से अनन्तगुणे हैं।
जीववर्ग के अनन्तवें भाग हैं।
इसी प्रकार कार्मण शरीर के विषय में भी कहना चाहिए।

१९. चउवीसदंडएसु बद्ध-मुक्कसरीरपरूवणं–

प. दं. १ णेरइयाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता?
उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. बद्धेल्लया य, २, मुक्केल्लया य।
तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं णत्थि।
तत्थ णं जे ते मुक्केलया ते णं अणंता,
जहा ओरालिय मुक्केल्लया तहा भाणियव्वा।[3]

प. णेरइयाणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. बद्धेल्लया य, २, मुक्केल्लया य।
तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखेज्जा,
असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ,
खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो।
तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलपढमवग्गमूलं बीयवग्गमूलपडुप्पण्णं,

अहवणं अंगुलबिइयवग्गमूल घणप्पमाणमेत्ताओ सेढीओ।
तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं जहा ओरालियस्स मुक्केल्लया तहा भाणियव्वा।[4]
प. णेरइयाणं भंते ! केवइया आहारगसरीरा पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. बद्धेल्लया य, २, मुक्केल्लया य।

१९. चौवीस दण्डकों में बद्ध-मुक्त शरीरों का प्ररूपण–

प्र. दं. १ भंते ! नैरयिकों के कितने औदारिक शरीर कहे गए हैं?
उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. बद्ध, २. मुक्त
उनमें से बद्ध औदारिक शरीर उनके नहीं होते हैं।
जो मुक्त औदारिक शरीर हैं, वे अनन्त होते हैं।
जैसे औदारिक मुक्त शरीरों के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।
प्र. भंते ! नैरयिकों के वैक्रिय शरीर कितने कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. बद्ध, २. मुक्त
उनमें जो बद्ध हैं, वे असंख्यात हैं।
कालतः वे असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों में अपहृत होते हैं।
क्षेत्रतः वे असंख्यात श्रेणी-प्रमाण हैं और प्रतर का असंख्यातवां भाग है।
उन श्रेणियों की विष्कम्भ सूची अंगुल प्रमाण आकाश प्रदेशों के प्रथम वर्गमूल को द्वितीय वर्गमूल से गुणा करने पर जितने आकाश प्रदेश होते हैं उतने प्रदेशों की जाननी चाहिए।
अथवा अंगुल प्रमाण आकाश प्रदेशों के द्वितीय वर्गमूल के घन प्रमाण जितनी जाननी चाहिए।
तथा जो मुक्त वैक्रिय शरीर हैं, उनके परिमाण के विषय में मुक्त औदारिक शरीर के समान कहना चाहिए।
प्र. भंते ! नैरयिकों के आहारक शरीर कितने कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. बद्ध, २. मुक्त

---

१. अणु. कालदारे, सु. ४१६ २. अणु. कालदारे, सु. ४१७ ३. अणु. कालदारे, सु. ४१८/१ ४. अणु. कालदारे, सु. ४१८/२

एवं जहा ओरालिया बद्धेल्लया य मुक्केलया य भणिया तहेव आहारगा वि भाणियव्वा।[1]

जैसे (नारकों के) औदारिक बद्ध और मुक्त कहे गए हैं, उसी प्रकार नैरयिकों के आहारक शरीरों के विषय में भी कहना चाहिए।

तेया कम्मगाइं जहा एएसिं चेव वेउव्वियाइं।[2]

(नारकों के) तैजस् कार्मण शरीर इन्हीं के वैक्रिय शरीरों के समान कहने चाहिए।

प. दं. २-११ असुरकुमाराणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहा णेरइयाणं ओरालिया भणिया तहेव एएसि पि भाणियव्वा।[3]

प. असुरकुमाराणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीगा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. बद्धेल्लया य, २, मुक्केल्लया य।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखेज्जा,

असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ,

खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो।

तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलपढमवग्गमूलस्स संखेज्जइभागो।

तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं जहा ओरालियस्स मुक्केल्लया तहा भाणियव्वा।[4]

आहारयसरीरा जहा एएसि णं चेव ओरालिया तहेव दुविहा भाणियव्वा।[5]

तेया-कम्मसरीरा दुविहा वि जहा एएसि णं चेव वेउव्विया।[6]

एवं जाव थणियकुमारा।[7]

प. दं. १२-१६ पुढविकाइयाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरगा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. बद्धेल्लया य, २, मुक्केल्लया य।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखेज्जा,

असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ,

खेत्तओ असंखेज्जा लोगा।

तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं अणंता,

अणंताहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ,

खेत्तओ अणंता लोगा,

दव्वओ अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणा,

प्र. दं. २-११ भंते ! असुरकुमारों के कितने औदारिक शरीर कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जैसे नैरयिकों के (बद्ध मुक्त) औदारिक शरीरों के विषय में कहा गया है उसी प्रकार असुरकुमारों के विषय में भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! असुरकुमारों के वैक्रिय शरीर कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. बद्ध, २. मुक्त।

उनमें जो बद्ध हैं, वे असंख्यात हैं,

काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों में वे अपहृत होते हैं।

क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात श्रेणियों जितने हैं और प्रतर का असंख्यातवां भाग प्रमाण हैं।

उन श्रेणियों की विष्कम्भसूची अंगुल के प्रथम वर्गमूल का संख्यातवां भाग है।

उनमें जो मुक्त शरीर हैं, उनके विषय में मुक्त औदारिक शरीर के समान कहना चाहिए।

इनके बद्ध-मुक्त आहारक शरीरों के विषय में दोनों प्रकार के औदारिक शरीरों की तरह प्ररूपणा करनी चाहिए।

इनके बद्ध-मुक्त दोनों प्रकार के तैजस् और कार्मण शरीरों का कथन वैक्रियशरीरों के समान समझ लेना चाहिए।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२-१६ भंते ! पृथ्वीकायिकों के कितने औदारिक शरीर कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. बद्ध, २. मुक्त।

उनमें जो बद्ध हैं, वे असंख्यात हैं।

काल की अपेक्षा से–वे असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं।

क्षेत्र की अपेक्षा से–वे असंख्यात लोक-प्रमाण हैं।

उनमें जो मुक्त हैं, वे अनन्त हैं।

कालतः वे अनन्त उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं।

क्षेत्रतः वे अनन्तलोक-प्रमाण हैं।

द्रव्यतः वे अभव्यसिद्धकों से अनन्तगुणे हैं;

---

१. अणु. कालदारे, सु. ४१८/३
२. अणु. कालदारे, सु. ४१८/४
३. अणु. कालदारे, सु. ४१९/१
४. अणु. कालदारे, सु. ४१९/२
५. अणु. कालदारे, सु. ४१९/३
६. अणु. कालदारे, सु. ४१९/४
७. अणु. कालदारे सु. ४१९/५

सिद्धाणं अणंतभागो।[1]

प. पुढविकाइयाणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. बद्धेल्लया य, २, मुक्केल्लया य।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं णत्थि।

तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं जहा एएसिं चेव ओरालिया भणिया तहेव भाणियव्वा।[2]

एवं आहारगसरीरा वि।[3]

तेया-कम्मगा जहा एएसिं चेव ओरालिया।[4]

एवं आउक्काइया तेउक्काइया वि।[5]

प. वाउक्काइयाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. बद्धेल्लया य, २, मुक्केल्लया य।

दुविहा वि जहा पुढविकाइयाणं ओरालिया।[6]

प. वाउक्काइयाणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. बद्धेल्लया य, २, मुक्केल्लया य।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखेज्जा,

समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमेत्तेणं कालेणं अवहीरंति णो चेव णं अवहिया सिया।

मुक्केल्लया जहा पुढविक्काइयाणं।

आहारय-तेया-कम्मा जहा पुढविकाइयाणं तहा भाणियव्वा।

वणप्फइकाइयाणं जहा पुढविकाइयाणं।

णवरं–तेया-कम्मगा जहा ओहिया तेया-कम्मगा।[7]

प. बेइंदियाणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

सिद्धों के अनन्तवें भाग हैं।

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिकों के वैक्रिय शरीर कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. बद्ध, २. मुक्त।

उनमें जो बद्ध हैं, वे इनके नहीं होते।

उनमें जो मुक्त हैं, उनके विषय में जैसे इन्हीं के औदारिक शरीरों के विषय में कहा गया है, वैसे ही कहना चाहिए।

इनके आहारक शरीरों का कथन इन्हीं के वैक्रियशरीरों के समान समझना चाहिए।

इनके बद्ध-मुक्त तैजस्-कार्मणशरीरों की प्ररूपणा औदारिक शरीरों के समान करनी चाहिए।

इसी प्रकार अप्कायिकों और तैजस्कायिकों के बद्ध-मुक्त सभी शरीरों का कथन समझना चाहिए।

प्र. भंते ! वायुकायिक जीवों के औदारिक शरीर कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. बद्ध, २. मुक्त।

इन दोनों का कथन पृथ्वीकायिकों के औदारिक शरीरों के समान है।

प्र. भंते ! वायुकायिकों के वैक्रिय शरीर कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. बद्ध, २. मुक्त।

उनमें जो बद्ध हैं, वे असंख्यात हैं।

उन असंख्यात शरीरों में से समय-समय में एक-एक शरीर का यदि अपहरण किया जाए तो पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल में उनका अपहरण होता है, किन्तु कभी अपहरण किया नहीं गया है।

उनके मुक्त शरीरों की प्ररूपणा पृथ्वीकायिकों के मुक्त वैक्रिय शरीरों के समान समझनी चाहिए।

इनके बद्ध-मुक्त आहारक, तैजस् और कार्मण शरीरों की प्ररूपणा पृथ्वीकायिकों की तरह कहनी चाहिए।

वनस्पतिकायिकों के बद्ध-मुक्त औदारिकादि शरीरों की प्ररूपणा पृथ्वीकायिकों की तरह समझनी चाहिए।

विशेष–इनके तैजस् और कार्मण शरीरों का कथन औधिक तैजस्-कार्मण-शरीरों के समान करना चाहिए।

प्र. भंते ! द्वीन्द्रिय जीवों के औदारिक शरीर कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

---

१. अणु. कालदारे, सु. ४२०/१
२. अणु. कालदारे, सु. ४२०/२
३. अणु. कालदारे, सु. ४२०/३
४. अणु. कालदारे, सु. ४२०/४
५. अणु. कालदारे, सु. ४२०/२
६. अणु. कालदारे, सु. ४२०/३
७. अणु. कालदारे, सु. ४२०/३

१. बद्धेल्लगा य, २, मुक्केल्लगा य।
तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखेज्जा,
असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ,
खेत्तओ असंखेज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखेज्जइभागो।
तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ असंखेज्जाइं सेढि वग्गमूलाइं।

बेइंदियाणं ओरालियसरीरेहिं बद्धेल्लगेहिं पयरं अवहीरंति।
असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं कालओ,

खेत्तओ अंगुलपयरस्स आवलियाए य असंखेज्जइभागपलिभागेणं।
तत्थ णं जे ते मुक्केलगा ते जहा ओहिया ओरालिया मुक्केल्लया।[1]
वेउव्विया आहारगा य बद्धेल्लया णत्थि,
मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया मुक्केल्लया।[2]

तेया-कम्मगा जहा एएसिं चेव ओहिया ओरालिया।[3]

एवं जाव चउरिंदिया।[4]
दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं एवं चेव।

णवरं-वेउव्वियसरीरएसु इमो विसेसो-

प. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरया पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-
१. बद्धेल्लया य, २, मुक्केल्लया य।
तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखेज्जा जहा असुरकुमाराणं।
णवरं-तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलपढमवग्गमूलस्स असंखेज्जइभागो।
मुक्केल्लया तहेव।[5]

प. दं. २१. मणुस्साणं भंते ! केवइया ओरालियसरीरा पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-
१. बद्धेल्लया य, २, मुक्केल्लया य।

१. वद्ध, २. गुक्त।
उनगें जो वद्ध औदारिक शरीर हैं, वे असंख्यात हैं।
कालतः-वे असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं।
क्षेत्रतः-असंख्यात श्रेणी प्रगाण हैं और वे श्रेणियां प्रतर के असंख्यातवां भाग है।
उन श्रेणियों की विष्कम्भसूची असंख्यात कोटाकोटी योजनप्रगाण है। अथवा असंख्यात श्रेणी वर्ग-गूल के सगान होती हैं।
द्वीन्द्रियों के वद्ध औदारिक शरीरों से प्रतर अपहृत किया जाता है।
काल की अपेक्षा से-असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों से अपहृत होता है।
क्षेत्र की अपेक्षा से-अंगुल-गात्र प्रतर और आवलिका के असंख्यात भाग-प्रतिभाग-प्रमाण खण्ड से अपहृत होता है।
उनमें जो मुक्त औदारिक शरीर हैं, उनके विषय में औघिक मुक्त औदारिक शरीरों के समान कहना चाहिए।
इनके वैक्रिय शरीर और आहारक शरीर बद्ध नहीं होते।
मुक्त वैक्रिय और आहारक शरीरों का कथन औधिक मुक्त औदारिक शरीरों के समान करना चाहिए।
इनके बद्ध-मुक्त तैजस्-कार्मण शरीरों के विषय में इन्हीं के औधिक औदारिक शरीरों के समान कहना चाहिए।
इसी प्रकार चतुरिन्द्रियों पर्यंत कहना चाहिए।
दं. २०. पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों के शरीरों का कथन इसी प्रकार है।
विशेष-इनके बद्ध-मुक्त वैक्रिय शरीरों के विषय में यह विशेषता है-
प्र. भंते ! पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों के कितने वैक्रिय शरीर कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. बद्ध, २. मुक्त।
उनमें जो बद्ध वैक्रिय शरीर हैं, वे असुरकुमारों के समान असंख्यात कहने चाहिए।
विशेष-उन श्रेणियों की विष्कम्भसूची अंगुल के प्रथम वर्गमूल का असंख्यातवां भाग समझना चाहिए।
इनके मुक्त वैक्रिय शरीरों का कथन औधिक मुक्त वैक्रियशरीरों के समान करना चाहिए।
प्र. दं. २१. भंते ! मनुष्यों के औदारिक शरीर कितने कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. बद्ध, २. मुक्त।

---

१. अणु. कालदारे, सु. ४२१/१
२. अणु. कालदारे, सु. ४२१/१
३. अणु. कालदारे, सु. ४२१/१
४. अणु. कालदारे, सु. ४२१/२
५. अणु. कालदारे, सु. ४२२/१-२

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा,

जहण्णपए संखेज्जा, संखेज्जाओ कोडाकोडीओ तिजमलपयस्स उवरिं, चउजमलपयस्स हेट्ठा,

अहवणं छट्ठो वग्गो पंचमवग्गपडुप्पण्णो,

अहवणं छण्णउईछेयणगदाई रासी;

उक्कोसपदे असंखेज्जा,

असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ,

खेत्तओ रूवपक्खित्तेहिं मणुस्सेहिं सेढी अवहीरंति,

तीसे सेढीए काल-खेत्तेहिं अवहारो मग्गिज्जइ।

असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं कालओ,

खेत्तओ अंगुलपढमवग्गमूलं तइयवग्गमूलपडुप्पण्णं।

तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते जहा ओरालिया ओहिया मुक्केल्लया।[1]

प. मणुस्साणं भंते ! केवइया वेउव्वियसरीरा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. बद्धेल्लया य, २, मुक्केल्लया य।

तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं संखेज्जा, समए-समए अवहीरमाणा-अवहीरमाणा संखेज्जेणं कालेणं अवहीरंति णो चेव णं अवहिया सिया।

तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं जहा ओरालिया ओहिया मुक्केल्लया।[2]

आहारगसरीरा जहा ओहिया।[3]

तेया-कम्मया जहा एएसिं चेव ओरालिया।[4]

दं. २२. वाणमंतराणं जहा णेरइयाणं ओरालिया आहारगा य।

वेउव्वियसरीरा जहा णेरइयाणं,

णवरं–तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई संखेज्जजोयणसयवग्गपलिभागो पयरस्स।

मुक्केल्लया जहा ओहिया ओरालिया।

तेया-कम्मया जहा एएसिं चेव वेउव्विया।[5]

दं. २३ जोइसियाणं एवं चेव।

उनमें से जो बद्ध हैं, वे कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात होते हैं।

जघन्य पद में संख्यात होते हैं। संख्यात कोटाकोटी, तीन यमलपद के ऊपर तथा चार यमलपद से नीचे होते हैं।

अथवा पंचमवर्ग से गुणित प्रत्युत्पन्न छठे वर्ग-प्रमाण होते हैं;

अथवा छियानवे छेदन के बाद रही राशि जितनी संख्या है।

उत्कृष्टपद में असंख्यात हैं।

कालतः–वे असंख्यात उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं।

क्षेत्रतः–एक रूप जिनमें प्रक्षिप्त किया गया है, ऐसे मनुष्यों से श्रेणी अपहृत होती है,

उस श्रेणी की काल और क्षेत्र से अपहार की मार्गणा होती है।

कालतः–असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों से असंख्यात मनुष्यों का अपहार होता है।

क्षेत्रतः–वे तीसरे वर्गमूल से गुणित अंगुल का प्रथम वर्गमूल प्रमाण होते हैं।

उनमें जो मुक्त औदारिक शरीर हैं, उनके विषय में औधिक मुक्त औदारिक शरीरों के समान जानना चाहिए।

प्र. भंते ! मनुष्यों के वैक्रिय शरीर कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. बद्ध, २. मुक्त।

उनमें जो बद्ध हैं, वे संख्यात हैं। समय-समय में वे अपहृत होते-होते संख्यातकाल में अपहृत होते हैं; किन्तु वे कभी अपहृत नहीं किए गये हैं।

उनमें से जो मुक्त वैक्रिय शरीर हैं, उनके विषय में औधिक औदारिक शरीरों के समान समझना चाहिए।

इनके बद्ध-मुक्त आहारक शरीरों की प्ररूपणा औधिक आहारक शरीरों के समान समझनी चाहिए।

मनुष्यों के बद्ध-मुक्त तैजस्-कार्मण शरीरों का कथन औदारिक शरीरों के समान करना चाहिए।

दं. २२ वाणव्यन्तर देवों के बद्ध-मुक्त औदारिक और आहारक शरीरों का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

इनके वैक्रिय शरीरों का कथन भी नैरयिकों के समान है।

विशेष–उन असंख्यात श्रेणियों की विष्कम्भसूची प्रतर के पूरण और अपहार से संख्यात योजनशतवर्ग-प्रतिभाग खण्ड है।

इनके मुक्त वैक्रिय शरीरों का कथन औधिक औदारिक शरीरों की समान है।

इनके बद्ध-मुक्त तैजस् और कार्मण शरीरों का कथन वैक्रिय शरीरों के समान समझना चाहिए।

दं. २३ ज्योतिष्क देवों के बद्ध-मुक्त शरीरों का प्ररूपण भी इसी प्रकार है।

---

१. अणु. कालदारे, सु. ४२३/१
२. अणु. कालदारे, सु. ४२३/२
३. अणु. कालदारे, सु. ४२३/३
४. अणु. कालदारे, सु. ४२३/४
५. अणु. कालदारे, सु. ४२४

णवरं-तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई बेछप्पण्णंगुलसयवग्गपलिभागो पयरस्स।[1]

दं. २४ वेमाणियाणं एवं चेव।

णवरं-तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुलविइयवग्गमूलं तइयवग्गमूलपडुप्पण्णं,

अहवणं अंगुलतइयवग्गमूलघणपमाणमेत्ताओ सेढीओ।

सेसं तं चेव।[2] -पण्ण. प. १२, सु. ९११ ९२४

विशेष-उन श्रेणियों की विष्कम्भसूची प्रतर के पूरण और अपहार में दो सौ छप्पन अंगुल वर्गप्रमाण खण्ड रूप है।

दं. २४ वैमानिकों के बद्ध-मुक्त शरीरों का कथन भी इसी प्रकार है।

विशेष-उन श्रेणियों की विष्कम्भसूची, तृतीय वर्गमूल से गुणित अंगुल के द्वितीय वर्गमूल प्रमाण है।

अथवा अंगुल के तृतीय वर्गमूल के घन प्रमाण बराबर श्रेणियां हैं।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

२०. चउवीसदंडगसरीराणं वण्णरस परूवणं-

दं. १-२४. णेरइयाणं सरीरगा पंचवण्णा, पंचरसा पण्णत्ता, तं जहा-

किण्हा जाव सुक्किला,

तित्ता जाव महुरा।

एवं निरंतरं जाव वेमाणियाणं।[1]

-ठाणं. अ. ५, उ. १, सु. ३९५

२०. चौवीसदंडकों के शरीर के वर्ण रस का प्ररूपण-

दं. १-२४. नैरयिकों के शरीर पांच वर्ण और पांच रस वाले कहे गए हैं, यथा-

१. कृष्ण यावत् शुक्ल।

१. तिक्त यावत् मधुर।

इसी प्रकार निरन्तर वैमानिकों पर्यन्त के वर्ण रस जानने चाहिए।

२१. बायर-बोदिंधर कलेवरेसु वण्णाइ परूवणं-

ओरालियसरीरे पंचवण्णे पंचरसे पण्णत्ते, तं जहा-

किण्हे जाव सुक्किले,

तित्ते जाव महुरे।

एवं जाव कम्मगसरीरे।

सव्वे वि णं बायरबोंदिधरा कलेवरा पंचवण्णा, पंचरसा, दुगंधा, अट्ठफासा।

-ठाण. अ. ५, उ. १, सु. ३९५

२१. बादर शरीर धारक कलेवरों के वर्णादि का प्ररूपण-

औदारिक शरीर में पांच वर्ण और पांच रस कहे गए हैं, यथा-

१. कृष्ण यावत् शुक्ल।

१. तिक्त यावत् मधुर।

इसी प्रकार कार्मण शरीर पर्यन्त वर्ण रस आदि कहना चाहिए।

सभी स्थूल शरीर धारण करने वाले पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्श वाले होते हैं।

२२. विग्गहगइसमावन्नगा चउवीसदण्डएसु सरीरा-

दं. १-२४ विग्गहगइसमावण्णगाणं नेरइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा-

१. तेयए चेव, २. कम्मए चेव।

एवं निरंतरं जाव वेमाणियाणं।

-ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ६५/२

२२. विग्रह गति प्राप्त चौवीसदण्डकों में शरीर-

दं. १-२४ विग्रह गति प्राप्त नैरयिकों के दो शरीर कहे गए हैं, यथा-

१. तैजस्, २. कार्मण।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहने चाहिए।

२३. तिसुलोगेसुबिसरीराणं परूवणं-

उड्ढलोगे णं चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता, तं जहा-

१. पुढविकाइया, २. आउकाइया,

३. वणस्सइकाइया, ४. उराला य तसा पाणा।

अहेलोगे तिरियलोए वि एवं चेव।

-ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३३१/१

२३. तीनों लोक में द्विशरीर वालों का प्ररूपण-

ऊर्ध्व लोक में चार द्विशरीरी अर्थात् दूसरे जन्म में सिद्ध (गतिगामी) हो सकते हैं, यथा-

१. पृथ्वीकायिक जीव, २. अप्कायिक जीव,

३. वनस्पतिकायिक जीव, ४. उदार त्रस प्राणीपंचेन्द्रिय जीव।

अधोलोक और तिर्यक् लोक में भी इसी प्रकार है।

२४. चउण्हं कायाणं एगसरीरं नो सुपस्सं-

चउण्हमेगं सरीरं नो सुपस्सं भवइ, तं जहा-

२४. चारकायिकों का एक शरीर सुपश्य नहीं है-

चार कायों के जीवों का एक शरीर सुपश्य (सहज दृश्य) नहीं होता, यथा-

---

१. अणु. कालदारे, सु. ४२५
२. अणु. कालदारे, सु. ४२६

३. (क) विया. स. ११, उ. १, सु. १९
(ख) विया. स. ११, उ. २, सु. ८

१. पुढविकाइयाणं,
२. आउकाइयाणं,
३. तेउकाइयाणं,
४. वणस्सइकाइयाणं। *–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३३४/२*

१. पृथ्वीकायिक जीवों का,
२. अप्कायिक जीवों का,
३. तेजस्कायिक जीवों का,
४. (साधारण) वनस्पतिकायिक जीवों का।

२५. सम्मुच्छिम-गब्भवक्कंतिय-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं मणुस्साण य सरीरसंखा परूवणं-

प. सम्मुच्छिम-पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियजलयराणं भंते! कइ सरीरा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! तओ सरीरा पण्णत्ता, तं जहा–
१. ओरालिए, २. तेयए, ३. कम्मए।
चउप्पय थलयराण तओ सरीरा एवं चेव,
उरपरिसप्प-भुयगपरिसप्प सम्मुच्छिमाणं तओ सरीरा एवं चेव।
खहयरसम्मुच्छिमाणं वि तओ सरीरा एवं चेव।
–जीवा. पडि. १, सु. ३५-३६

प. गब्भवक्कंतिय-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय-जलयराणं भंते ! कइ सरीरा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चत्तारि सरीरा पण्णत्ता, तं जहा–
१. ओरालिए, २. वेउव्विए, ३. तेयए, ४. कम्मए।
चउप्पय थलयराण चत्तारि सरीरा एवं चेव,
उरपरिसप्प भुयगपरिसप्प गब्भवक्कंतियाणं चत्तारि सरीरा एवं चेव।
खहयरगब्भवक्कंतियाणं वि चत्तारि सरीरा एवं चेव।
–जीवा. पडि. १, सु. ३८-४०

प. सम्मुच्छिम मणुस्साणं भंते ! कइ सरीरा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! तओ सरीरा पण्णत्ता, तं जहा–
१. ओरालिए, २. तेयए, ३. कम्मए

प. गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं भंते ! कइ सरीरा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! पंच सरीरा पण्णत्ता, तं जहा–
१. ओरालिए, २. वेउव्विए, ३. आहारए, ४. तेयए, ५. कम्मए। *–जीवा. पडि. १, सु. ४१*

२५. सम्मूर्च्छिम-गर्भज-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों की शरीर संख्या का प्ररूपण–

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचरों के कितने शरीर कहे गए हैं?

उ. गौतम ! १. तीन शरीर कहे गए हैं, यथा–
१. औदारिक, २. तैजस्, ३. कार्मण।
इसी प्रकार चतुष्पद स्थलचरों के भी तीन शरीर हैं,
इसी प्रकार उरपरिसर्प भुजपरिसर्प सम्मूर्च्छिम के भी तीन शरीर हैं।
इसी प्रकार खेचर सम्मूर्च्छिमों के भी तीन शरीर हैं।

प्र. भंते ! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचरों के कितने शरीर कहे गए हैं?

उ. गौतम ! चार शरीर कहे गए हैं, यथा–
१. औदारिक, २. वैक्रिय, ३. तैजस्, ४. कार्मण।
इसी प्रकार चतुष्पद स्थलचरों के भी चार शरीर हैं।
इसी प्रकार उरपरिसर्प भुजपरिसर्प गर्भजों के भी चार शरीर हैं।
इसी प्रकार खेचर गर्भजों के भी चार शरीर हैं।

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के कितने शरीर कहे गए हैं?

उ. गौतम ! तीन शरीर कहे गए हैं, यथा–
१. औदारिक, २. तैजस्, ३. कार्मण।

प्र. भंते ! गर्भज मनुष्यों के कितने शरीर कहे गए हैं,

उ. गौतम ! पांच शरीर कहे गए हैं, यथा–
१. औदारिक, २. वैक्रिय, ३. आहारक, ४. तैजस्, ५. कार्मण।

२६. ओरालियाईसरीरी जीवाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. ओरालियसरीरी णं भंते ! ओरालियसरीरित्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं दुसमयूणं,
उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं जाव अंगुलस्स असंखेज्जइभागं

वेउव्वियसरीरी-जहन्नेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं।
आहारगसरीरी-जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।
तेयगसरीरी-दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अणाइए वा अपज्जवसिए, २. अणाइए वा सपज्जवसिए।

२६. औदारिकादि शरीरी जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! औदारिक शरीरी, औदारिकशरीरी के रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! जघन्य दो समय कम क्षुल्लकभवग्रहण और उत्कृष्ट असंख्यातकाल यावत् अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र के प्रदेशों प्रमाण रहता है।
वैक्रियशरीरी जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक रहता है।
आहारकशरीरी जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।
तेजस् शरीरी दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अनादि अपर्यवसित, २. अनादि सपर्यवसित।

एवं कम्मगसरीरी वि
असरीरी साइए–अपज्जवसिए। –जीवा. पडि. ९, सु. २५१

इसी प्रकार कार्मणशरीरी भी दो प्रकार के हैं।
अशरीरी सादि अपर्यवसित हैं।

२७. ओरालियाईसरीरीणं अंतरकाल परूवणं–

ओरालियसरीरस्स-अंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं,
उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं।
वेउव्वियसरीरस्स-अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं अणंतंकाल वणस्सइकालो।
आहारगसरीरस्स-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।
तेयग-कम्मगाणं दोण्हवि-अणाइय-अपज्जवसियाणं णत्थि अंतरं,
अणाइय-सपज्जवसियाणं णत्थि अंतरं।
असरीरिस्स-साइय-अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं।
–जीवा. पडि. ९, सु. २५१

२७. औदारिकादि शरीरियों के अंतरकाल का प्ररूपण–

औदारिक शरीर का जघन्य अन्तर काल एक समय,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम का है।
वैक्रिय शरीर का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है,
उत्कृष्ट अनन्त काल वनस्पतिकाल है।
आहारक शरीर का जघन्य अन्तर अंतर्मुहूर्त है,
उत्कृष्ट अनन्त काल यावत् कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन है।
अनादि अनन्त तैजस्-कार्मण इन दोनों शरीरों का अन्तर काल नहीं है।
अनादि सान्त का भी अन्तर काल नहीं हैं।
अशरीरी सादि अपर्यवसित का अन्तर काल नहीं है।

२८. ओरालियाईसरीरीणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! ओरालियसरीरी, वेउव्वियसरीरी, आहारगसरीरी, तेयगसरीरी, कम्मगसरीरी, असरीरी य जीवाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा आहारगसरीरी,
२. वेउव्वियसरीरी असंखेज्जगुणा,
३. ओरालियसरीरी असंखेज्जगुणा,
४. असरीरी अणंतगुणा,
५. तेयगकम्मगसरीरी दोवि तुल्ला अणंतगुणा।
–जीवा. पडि. ९, सु. २५१

२८. औदारिकादि शरीरियों का अल्प बहुत्व–

प्र. भंते ! इन औदारिक शरीरी, वैक्रिय शरीरी, आहारक शरीरी, तैजस् शरीरी, कार्मण शरीरी और अशरीरी जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प आहारक शरीर वाले हैं,
२. (उनसे) वैक्रिय शरीर वाले असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) औदारिक शरीर वाले असंख्यातगुणे हैं.
४. (उनसे) अशरीरी अनन्तगुणे हैं,
५-६ (उनसे) तैजस् कार्मण शरीर वाले अनन्तगुणे हैं और दोनों परस्पर तुल्य हैं।

२९. दव्वट्ठयाइ विवक्खया सरीराणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! ओरालिय, वेउव्विय, आहारग, तेयग, कम्मगसरीराणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए-दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा आहारगसरीरा दव्वट्ठयाए।
२. वेउव्वियसरीरा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
३. ओरालियसरीरा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
४-५. तेयगकम्मगसरीरा दो वि तुल्ला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा

पएसट्ठयाए–
१. सव्वत्थोवा आहारगसरीरा पएसट्ठयाए,
२. वेउव्वियसरीरा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
३. ओरालियसरीरा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

२९. द्रव्यार्थादि की विवक्षा से शरीरों का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस् और कार्मण इन पांचों शरीरों में से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से तथा द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. द्रव्य की अपेक्षा से सबसे अल्प आहारक शरीर हैं।
२. (उससे) वैक्रिय शरीर द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा है।
३. (उससे) औदारिक शरीर द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातगुणा है।
४-५. (उससे) तैजस् और कार्मण शरीर दोनों तुल्य है और द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणा है।

प्रदेशों की अपेक्षा–
१. सबसे कम प्रदेशों की अपेक्षा से आहारक शरीर हैं।
२. (उससे) प्रदेशों की अपेक्षा से वैक्रिय शरीर असंख्यातगुणा है।
३. (उससे) प्रदेशों की अपेक्षा से औदारिक शरीर असंख्यात-गुणा है।

४. तेयगसरीरा पएसट्ठयाए अणंतगुणा,
५. कम्मगसरीरा पएसट्ठयाए अणंतगुणा।

दव्वट्ठपएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवा आहारगसरीरा दव्वट्ठयाए,
२. वेउव्वियसरीरा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
३. ओरालियसरीरा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
४. ओरालियसरीरेहिंतो दव्वट्ठयाए आहारगसरीरा पएसट्ठयाए अणंतगुणा,
५. वेउव्वियसरीरा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
६. ओरालियसरीरा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
७. तेयगकम्मगसरीरा दो वि तुल्ला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा,
८. तेयगसरीरा पएसट्ठयाए अणंतगुणा,
९. कम्मगसरीरा पएसट्ठयाए अणंतगुणा।

–पण्ण. प. २१, सु. १५६५

४. (उससे) प्रदेशों की अपेक्षा से तैजस् शरीर अनन्तगुणा है।
५. (उससे) प्रदेशों की अपेक्षा से कार्मण शरीर अनन्तगुणा है।

द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा से–

१. द्रव्य की अपेक्षा से आहारक शरीर सबसे अल्प है।
२. (उससे) वैक्रिय शरीर द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातगुणा है।
३. (उससे) औदारिक शरीर द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यातगुणा है।
४. द्रव्य की अपेक्षा औदारिक शरीर से प्रदेशों की अपेक्षा आहारक शरीर अनन्तगुणा है,
५. (उससे) वैक्रिय शरीर प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणा है।
६. (उससे) औदारिक शरीर प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणा है।
७. तैजस् और कार्मण दोनों तुल्य हैं तथा द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणा है।
८. (उससे) तैजस् शरीर प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुणा है।
९. (उससे) कार्मण शरीर प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुणा है।

३०. ओगाहणा पगारा–

चउव्विहा ओगाहणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. दव्वोगाहणा,
२. खेत्तोगाहणा,
३. कालोगाहणा,
४. भावोगाहणा।

–ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २७६

३०. अवगाहना के प्रकार–

अवगाहना चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. द्रव्यावगाहना-द्रव्यों के फैलाव का परिमाण,
२. क्षेत्रावगाहना-क्षेत्र स्वयं अवगाहना है,
३. कालावगाहना–काल का परिमाण वह मनुष्यलोक में है,
४. भावावगाहना-आश्रय लेने की क्रिया।

३१. जीवोगाहणा नवविहत्तं–

णवविहा जीवोगाहणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुढविकाइय ओगाहणा जाव ५. वणस्सइकाइय ओगाहणा।
६. बेइंदियओगाहणा जाव ९. पंचेंदियओगाहणा।

–ठाणं. अ. ९, सु. ६६६/१३

३१. नौ प्रकार की जीव अवगाहना–

जीवों की अवगाहना नौ प्रकार की कही गई है, यथा–

१. पृथ्वीकायिक अवगाहना यावत् ५. वनस्पतिकायिक अवगाहना।
६. द्वीन्द्रिय अवगाहना यावत् ९. पंचेन्द्रिय अवगाहना।

३२. ओरालियसरीरीणं ओगाहणा–

प. ओरालियसरीरस्स णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण साइरेगं जोयणसहस्सं।

एगिंदिय-ओरालियस्स वि एवं चेव जहा ओहियस्स[1]।

प. पुढविक्काइय-एगिंदिय-ओरालियसरीरस्स णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं[2]।

एवं अपज्जत्तयाण वि, पज्जत्तयाण वि।

३२. औदारिक शरीरियों की अवगाहना–

प्र. भन्ते ! औदारिक शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग की, उत्कृष्टतः कुछ अधिक हजार योजन की है।

एकेन्द्रिय के औदारिक शरीर की अवगाहना भी जैसे औधिक की कही है उसी प्रकार समझनी चाहिए।

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग की है।

इसी प्रकार अपर्याप्तक एवं पर्याप्तक की भी समझनी चाहिए।

---

१. सम. सु. १५२

२. (क) अणु. कालदारे, सु. ३४९
(ख) विया. स. २४, उ. १२, सु. ३
(ग) [illegible]

एवं सुहुमाण वि पज्जत्तापज्जत्ताणं।

इसी प्रकार सूक्ष्म पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक की भी समझनी चाहिए।

बायराणं पज्जत्तापज्जत्ताण वि एवं चेव।

बादर पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक की भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

एसो णवओ भेदो[1]।

इस प्रकार ये नौ भेद (आलापक) कहने चाहिये।

जहा पुढविक्काइयाणं तहा आउक्काइयाण वि तेउक्काइयाण वि वाउक्काइयाण वि[2]।

जिस प्रकार पृथ्वीकायिकों के कहे उसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों के भी नौ नौ आलापक कहने चाहिए।

प. वणस्सइकाइय-ओरालियसरीरस्स णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं[3]।

अपज्जत्तयाणं जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

पज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं।

बायराणं जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं[4]।

पज्जत्तयाण वि एवं चेव।

अपज्जत्तयाणं जहण्णेणं वि उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

सुहुमाणं पज्जत्तापज्जत्ताण य तिण्ह वि जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं[5]।

—पण्ण. प. २१ सू. १५०२-१५०६

प्र. भन्ते ! वनस्पतिकायिकों के औदारिक शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार योजन की है।

अपर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग की है।

पर्याप्तकों की जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार योजन की है।

बादर की जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार योजन की है।

पर्याप्तकों की भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

अपर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग की समझनी चाहिए।

सूक्ष्म पर्याप्तक और अपर्याप्तक, इन तीनों की जघन्य और उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग की है।

प. बेइंदियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं बारस जोयणाइं[6],

अपज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,

पज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं बारस जोयणाइं।

प्र. भन्ते ! द्वीन्द्रिय जीवों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! द्वीन्द्रिय जीवों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन प्रमाण है।

अपर्याप्त की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

पर्याप्तक की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन प्रमाण है।

प. तेइंदियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं,

अपज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,

पज्जत्तयाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं[7]।

प्र. भन्ते ! त्रीन्द्रिय जीवों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! सामान्य त्रीन्द्रिय जीवों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अवगाहना तीन गव्यूति प्रमाण है।

अपर्याप्तक की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

पर्याप्तक की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट अवगाहना तीन गव्यूति प्रमाण है।

प. चउरिंदियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

प्र. भन्ते ! चतुरिन्द्रिय जीवों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

---

१. (क) अणु. कालदारे, सु. ३४९/१
(ख) जीवा. पडि. १, सु. १४
जीवा. पडि. १, सु. १६, १७, २४, २५

३. (क) जीवा. पडि. १, सु. २१
(ख) विया. स. २४, उ. १२, सु. १७

४. ठाणं अ. १० सु. ७२८

५. अणु. कालदारे, सु. ३४९

६. जीवा. पडि. १ सु. २८

७. जीवा. पडि. १ सु. २९

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण चत्तारि गाउयाइं,

अपज्जत्तयाणं जहण्णेण उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,

पज्जत्तयाणं जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं[1]।

प. पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण जोयणसहस्सं।

प. जलयर पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण जोयणसहस्सं[2]।

प. सम्मुच्छिम जलयर पंचेंदियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण जोयणसहस्सं।

प. अपज्जत्तय सम्मुच्छिम जलयर पंचेंदियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

प. पज्जत्तय सम्मुच्छिम जलयर पंचेंदियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण जोयणसहस्सं।

प. गब्भवक्कंतिय जलयर पंचेंदियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण जोयणसहस्सं[3]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण जोयणसहस्सं।

प. चउप्पय-थलयराणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण छ गाउयाइं।

उ. गौतम ! औघिक रूप से चतुरिन्द्रिय जीवों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट चार गव्यूति प्रमाण है।

अपर्याप्तक की जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

पर्याप्तक की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट अवगाहना चार गव्यूति प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! जलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की है।

प्र. भन्ते ! सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रियों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की है।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अवगाहना भी अंगुल के असंख्यातवें भाग है।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! गर्भव्युत्क्रांतिकजलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रांतिक जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग है।

प्र. भन्ते ! पर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग एवं उत्कृष्ट छह गव्यूति प्रमाण है।

---

१. जीवा. पडि. १ सु. ३०
२. (क) ठाणं अ. १० सु. ७२८ (ख) जीवा. पडि. १ सु. ३५
३. जीवा. पडि. १ सु. ३८

प. सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयराणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण गाउयपुहत्तं।[1]

प. अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयराणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

प. पज्जत्तय-सम्मुच्छिम-चउप्पय-थलयराणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण गाउयपुहत्तं।

प. गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण छ गाउयाइं।[2]

प. अपज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-चउप्पय-थलयर-पंचेंदियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

प. पज्जत्तयगब्भवक्कंतिय चउप्पय थलयर पंचेंदियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण छ गाउयाइं।

प. उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण जोयणसहस्सं।[3]

प. सम्मुच्छिम-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण जोयणपुहत्तं[4]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण जोयणपुहत्तं।

प. गब्भवक्कंतिय-उरपरिसप्प-थलयर-पंचेंदियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

प्र. भन्ते ! सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट गाउपृथक्त्व प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग है।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट गाउपृथक्त्व की है।

प्र. भन्ते ! गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट छह गाउ प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! पर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट छह गाउ प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन की है।

प्र. भन्ते ! सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट योजन पृथक्त्व है।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट भी असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट योजन पृथक्त्व है।

प्र. भन्ते ! गर्भव्युत्क्रान्तिक उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

---

१. जीवा. पडि. १ सु. ३६
२. जीवा. पडि. १ सु. ३९
३. (क) ठाणं अ. १० सु. ७२८
   (ख) जीवा. पडि. १ सु. ३९
४. जीवा. पडि. १ सु. ३६

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण जोयणसहस्सं[१]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण जोयणसहस्सं।

प. भुयपरिसप्प-थलयराणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण गाउयपुहत्तं।

प. सम्मुच्छिम-भुयपरिसप्प-थलयराणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण धणुपुहत्तं[२]।

प. अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम-भुयपरिसप्प-थलयराणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण धणुपुहत्तं।

प. गब्भवक्कंतिय-भुयपरिसप्प-थलयराणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण गाउयपुहत्तं[३]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

प. पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-भुयपरिसप्प-थलयराणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण गाउयपुहत्तं।

प. खहयर-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण धणुपुहत्तं[४]।

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट अवगाहना एक सहस्र योजन की है।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट भी असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

प्र. भन्ते ! पर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिक उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! भुज परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अवगाहना गाउपृथक्त्व है।

प्र. भन्ते ! सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व की है।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग की है।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व की है।

प्र. भन्ते ! गर्भव्युत्क्रान्तिक भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट गाउपृथक्त्व है।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट भी असंख्यातवें भाग है।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट गाउपृथक्त्व प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व प्रमाण है।

---

१. जीवा. पडि. १ सु. ३९
२. जीवा. पडि. १ सु. ३६
३. जीवा. पडि. १ सु. ३९
४. जीवा. पडि. १ सु. ३६

सम्मुच्छिम-खहयराणं जहा भुयपरिसप्प-सम्मुच्छिमाणं तिसु वि गमेसु तहा भाणियव्वं।

सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट शरीरावगाहना सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के तीन अवगाहना स्थानों के बराबर समझ लेना चाहिए।

प. गब्भवक्कंतियखहयराणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण धणुपुहत्तं[1]।

प. अपज्जत्तयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

प. पज्जत्तयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण धणुपुहत्तं।

एत्थ संगहणिगाहाओ भवंति, तं जहा–

जोयणसहस्स गाउयपुहत्त तत्तो य जोयणपुहत्तं।
दोण्हं तु धणुपुहत्तं सम्मुच्छिम होइ उच्चत्तं ॥१०१॥

जोयणसहस्स छग्गाउयाइं तत्तो य जोयणसहस्सं।
गाउयपुहत्त भुयगे पक्खीसु भवे धणुपुहत्तं॥१०२॥

प. मणुस्साणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण तिण्णि गाउयाइं[2]।

प. सम्मुच्छिम-मणुस्साणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं[3]।

प. गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण तिण्णि गाउयाइं[4]।

प. अपज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि असंखेज्जइभागं।

प्र. भन्ते ! गर्भव्युत्क्रान्तिक खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों जीवों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट धनुपपृथक्त्व प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग है।

प्र. भन्ते ! पर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व है।

उक्त समग्र कथन की संग्राहक गाथाएं इस प्रकार है, यथा–

सम्मूर्च्छिम जलचर तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन, चतुष्पद स्थलचर की गाउपृथक्त्व, उरपरिसर्प स्थलचर की योजनपृथक्त्व, भुजपरिसर्प स्थलचर की एवं खेचर तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों की धनुषपृथक्त्व प्रमाण है।

गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जलचरों की एक हजार योजन, चतुष्पद स्थलचरों की छह गाउ, उरपरिसर्प स्थलचरों की एक हजार योजन, भुजपरिसर्प स्थलचरों की गाउपृथक्त्व और पक्षियों की धनुषपृथक्त्व प्रमाण उत्कृष्ट शरीरावगाहना जाननी चाहिए।

प्र. भन्ते ! मनुष्यों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! मनुष्यों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट तीन गाउ है।

प्र. भन्ते ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! गर्भज मनुष्यों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट तीन गाउ प्रमाण है।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट शरीरावगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

१. जीवा. पडि. १ सु. ४०
२. सम. सु. १५२
३. जीवा. पडि. १ सु. ४१
४. जीवा. पडि. १ सु. ४१

प. पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण तिण्णि गाउयाइं[1]। —अणु. उव. खेत्त. सु. ३५०-३५२

प्र. भन्ते ! पर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट अवगाहना तीन गव्यूति प्रमाण है।

३३. वेउव्वियसरीरस्स ओगाहणा–

प. वेउव्वियसरीरस्स णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण साइरेगं जोयणसयसहस्सं।

प. वाउक्काइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीरस्स णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण साइरेगं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं। —पण्ण. प. २१, सु. १५२७-१५२८

प. णेरइय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरस्स णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. भवधारणिज्जा य २. उत्तर वेउव्विया य।

१. तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण पंचधणुसयाइं।

२. तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेण अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेण धणुसहस्सं[2]।

३३. वैक्रिय शरीर की अवगाहना–

प्र. भंते ! वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी कही गयी है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट कुछ अधिक सातिरेक एक लाख योजन की कही गई है।

प्र. भंते ! वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी कही गयी है ?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट भी कुछ अधिक सातिरेक अंगुल के असंख्यातवें भाग की कही गई है।

प्र. भंते ! नैरयिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. भवधारणीया, २. उत्तरवैक्रिया।

१. उनमें से जो भवधारणीया अवगाहना है, वह जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की है और उत्कृष्ट पांच सौ धनुप की है।

२. उनमें से जो उत्तरवैक्रिय अवगाहना है वह जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट एक हजार धनुप की है।

---

१. प. वेइंदिय ओरालियसरीरस्स णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,
उक्कोसेणं वारस जोयणाइं।
एवं सव्वत्थ वि अपज्जत्तयाणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं जहण्णेण वि उक्कोसेण वि।
पज्जत्तयाणं जहेव ओरालियस्स ओहियस्स।
एवं तेइंदियाणं तिण्णि गाउयाइं, चउरिंदियाणं चत्तारि गाउयाइं।
पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं उक्कोसेणं जोयणसहस्सं,
एवं अपज्जत्तयाण वि पज्जत्तयाण वि।
एवं सम्मुच्छिमाणं अपज्जत्तयाण वि पज्जत्तयाण वि।
एवं गब्भवक्कंतियाणं, अपज्जत्तयाण वि पज्जत्तयाण वि।
एवं चेव णवओ भेदो भाणियव्वो।
एवं जलयराण वि जोयणसहस्सं, णवओ भेदो।
थलयराण वि णवओ भेदो उक्कोसेणं छग्गाउयाइं,
पज्जत्तयाण वि एवं चेव।
सम्मुच्छिमाणं पज्जत्ताण य उक्कोसेणं गाउयपुहत्तं।
गब्भवक्कंतियाणं उक्कोसेणं छग्गाउयाइं पज्जत्ताण य।
ओहियचउप्पय पज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय-पज्जत्ताण य उक्कोसेणं छग्गाउयाइं।
सम्मुच्छिमाणं पज्जत्ताण य गाउयपुहत्तं उक्कोसेणं।
एवं उरपरिसप्पाण वि ओहिय-गब्भवक्कंतिय-पज्जत्ताणं जोयणसहस्सं।
सम्मुच्छिमाणं जोयणपुहत्तं।
भुयपरिसप्पाणं ओहिय-गब्भवक्कंतियाण य उक्कोसेणं गाउयपुहत्तं।
सम्मुच्छिमाणं धणुपुहत्तं।
खहयराणं ओहिय-गब्भवक्कंतियाणं सम्मुच्छिमाण य तिण्ह वि उक्कोसेणं धणुपुहत्तं।
इमाओ संगहणिगाहाओ–
जोयणसहस्स छग्गाउयाइं तत्तो य जोयणसहस्सं।
गाउयपुहत्त भुयए धणुपुहत्तं च पक्खीसु ॥२५७॥
जोयणसहस्सं गाउयपुहत्तं तत्तो य जोयणपुहत्तं।
दोण्हं तु धणुपुहत्तं सम्मुच्छिमे होइ उच्चत्तं ॥२५८॥

प. मणुस्सोरालियसरीरस्स णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,
उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] —पण्ण. प. २१, सु. [illegible]

२. (क) [illegible] ६, सु. ३३
(ख) [illegible]

प. रयणप्पभा-पुढविणेरइयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. भवधारणिज्जा य २. उत्तर वेउव्विया य।

१. तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण सत्त धणूइं तिण्णि रयणीओ छच्च अंगुलाइं।

२. तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेण अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेण पण्णरस धणूइं अड्ढाइज्जाओ रयणीओ।

प. सक्करप्पभाए णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. भवधारणिज्जा य २. उत्तर वेउव्विया य।

१. तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण पण्णरस धणूइं अड्ढाइज्जाओ रयणीओ।

२. तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेण अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेण एक्कतीसं धणूइं एक्का य रयणी[1]।

–पण्ण. प. २१, सु. १५२७-१५२९

प. वालुयप्पभा पुढवीए णेरइयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. भवधारणिज्जा य २. उत्तर वेउव्विया य।

१. तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण एक्कत्तीसं धणूइं रयणी य।

२. तत्थ णं जा सा उत्तर वेउव्विया सा जहण्णेण अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेण बासट्ठिं धणूइं दो रयणीओ य।

एवं सव्वासिं पुढवीणं पुच्छा भाणियव्वा।

पंकप्पभाए भवधारणिज्जा जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण बासट्ठिं धणूइं दो रयणीओ य,

उत्तरवेउव्विया जहण्णेण अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेण पणुवीसं धणुसयं।

धूमप्पभाए भवधारणिज्जा जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण पणुवीसं धणूसयं,

उत्तरवेउव्विया जहण्णेण अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेण अड्ढाइज्जाइं धणूसयाइं।

प्र. भंते ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. भवधारणीया, २. उत्तरवैक्रिया।

१. उनमें से भवधारणीया शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट सात धनुप, तीन रत्नि (मुड़ा हुआ हाथ) और छह अंगुल की है।

२. उनमें से उत्तरवैक्रिय अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट पन्द्रह धनुप, ढाई रत्नि की है।

प्र. भंते ! शर्कराप्रभा पृथ्वी के नारकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. भवधारणीया, २. उत्तरवैक्रिया।

१. उनमें से भवधारणीया जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट पन्द्रह धनुप, ढाई रत्नि की है।

२. उनमें से उत्तरवैक्रिय जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट इकत्तीस धनुप, एक रत्नि की है।

प्र. भंते ! वालुकाप्रभापृथ्वी के नारकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. भवधारणीया, २. उत्तरवैक्रिया।

१. उनमें से भवधारणीय शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट इकत्तीस धनुष तथा एक रत्नि प्रमाण है।

२. उनमें से उत्तरवैक्रिया शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट वासठ धनुष और दो रत्नि प्रमाण है।

इसी प्रकार समस्त पृथ्वियों के विषय में अवगाहना सम्बन्धी प्रश्न करना चाहिए।

प्रंकप्रभापृथ्वी में भवधारणीया शरीरावगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट वासठ धनुष और दो रत्नि प्रमाण है।

उत्तरवैक्रिया शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग एवं उत्कृष्ट एक सौ पच्चीस धनुष प्रमाण है।

धूमप्रभापृथ्वी में भवधारणीया शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग तथा उत्कृष्ट एक सौ पच्चीस धनुष प्रमाण है।

उत्तरवैक्रिया शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट ढाई सौ धनुष प्रमाण है।

१. जीवा. पडि. ३, सु. ८६

तमाए भवधारणिज्जा जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण अड्ढाइज्जाइं धणूसयाइं,

तम:प्रभापृथ्वी में भवधारणीया शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट ढाई सौ धनुष प्रमाण है।

उत्तरवेउव्विया जहण्णेण अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेण पंच धणुसयाइं।

उत्तरवैक्रिया शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष प्रमाण है।

प. तमतमापुढवि णेरइयाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. भवधारणिज्जा य, २. उत्तरवेउव्विया य।

१. तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण पंच धणूसयाइं।

२. तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेण अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेण धणुसहस्सं[१]।

–अणु. उव. खेत्त. सु. ३४७/१-६

प्र. भंते ! तमस्तम:पृथ्वी के नैरयिकों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. भवधारणीया, २. उत्तरवैक्रिया।

१. उनमें से भवधारणीया शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष प्रमाण की है।

२. उत्तरवैक्रिया शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हजार धनुष प्रमाण है।

प. तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरस्स णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेण जोयणसयपुहत्तं।

प. मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरस्स णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेण साइरेगं जोयणसयसहस्सं।

प. असुरकुमार-भवणवासि-देव पंचेंदिय- वेउव्वियसरीरस्स णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! असुरकुमाराणं देवाणं दुविहा सरीरोगाहणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. भवधारणिज्जा य, २. उत्तरवेउव्विया य।

१. तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण सत्त रयणीओ।

२. तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेण अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेण जोयणसयसहस्सं।

एवं जाव थणियकुमाराणं[२]।

–पण्ण. प. २१, सु. १५३०-१५३२

प्र. भंते ! तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट शतयोजन पृथक्त्व की होती है।

प्र. भंते ! मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! वह जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक लाख योजन की है।

प्र. भंते ! असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! असुरकुमार देवों की दो प्रकार की शरीरावगाहना कही गई है, यथा–

१. भवधारणीया, २. उत्तरवैक्रिया,।

१. उनमें से भवधारणीया शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट सात हाथ की है।

२. उनमें से उत्तरवैक्रिया शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट एक लाख योजन की है।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यंत समझ लेनी चाहिए।

वाणमंतराणं भवधारणिज्जा उत्तरवेउव्विया य जहा असुरकुमाराणं तहा भाणियव्वं।

वाणव्यन्तरों की भवधारणीया एवं उत्तरवैक्रियाशरीर की अवगाहना असुरकुमारों जितनी जानना चाहिए।

१.

जहा वाणमंतराणं तहा जोइसियाणं[1]।

प. सोहम्मगदेवाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा

१. भवधारणिज्जा य, २. उत्तरवेउव्विया य।

१. तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्त रयणीओ[2]।

२. तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं।

जहा सोहम्मे तहा ईसाणे कप्पे वि भाणियव्वं।

प. सणंकुमारे णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं छ रयणीओ[3]।

उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे।

जहा सणंकुमारे तहा माहिंदे।

प. बंभलोग-लंतएसु णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पंच रयणीओ।

उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे।

प. महासुक्कसहस्सारेसु णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइ-भागं, उक्कोसेण चत्तारि रयणीओ[4],

उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे।

प. आणत-पाणत-आरण-अच्चुएसु णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइ-भागं, उक्कोसेण तिण्णि रयणीओ[5]।

उत्तरवेउव्विया जहा सोहम्मे।

प. गेवेज्जयदेवाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! गेवेज्जयदेवाणं एगे भवधारणिज्जए सरीरए,

जितनी अवगाहना वाणव्यन्तर देवों की है, उतनी ही ज्योतिष्क देवों की है।

प्र. भंते ! सौधर्मकल्प के देवों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! दो प्रकार की कही गई है, यथा—

१. भवधारणीय, २. उत्तरवैक्रिय।

१. इनमें से भवधारणीय शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट सात रत्नि प्रमाण है।

२. उत्तरवैक्रिय शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन प्रमाण है।

ईशानकल्प के देवों की अवगाहना का प्रमाण सौधर्मकल्प जितना ही जानना चाहिए।

प्र. भंते ! सनत्कुमार कल्प के देवों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! भवधारणीय, शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट छह रत्नि प्रमाण है।

उत्तरवैक्रिय अवगाहना सौधर्म कल्प के बराबर है।

सनत्कुमारकल्प जितनी अवगाहना माहेन्द्रकल्प में जाननी चाहिए।

प्र. भंते ! ब्रह्मलोक और लान्तक कल्पों में शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! भवधारणीय शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अवगाहना पाँच रत्नि प्रमाण है।

उत्तरवैक्रिया अवगाहना का प्रमाण सौधर्मकल्पवत् है।

प्र. भंते ! महाशुक्र और सहस्रार कल्पों में शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! भवधारणीया अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट चार रत्नि प्रमाण है।

उत्तरवैक्रिया शरीरावगाहना सौधर्मकल्प के समान ही है।

प्र. भंते ! आनत-प्राणत-आरण-अच्युत कल्पों में शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! भवधारणीया अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट तीन रत्नि प्रमाण है।

उत्तरवैक्रिया शरीरावगाहना का प्रमाण सौधर्म कल्पवत् है।

प्र. भंते ! ग्रैवेयक देवों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है?

उ. गौतम ! ग्रैवेयक देवों के एकमात्र भवधारणीया शरीर ही होता है।

---

१. (क) जीवा. पडि. १ सु. ४२
   (ख) ठाणं अ. ७ सु. ५७८
२. ठाणं अ. ७ सु. ५७८
३. ठाणं अ. ६ सु. ५३२/२
४. ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३७५/२
५. ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १५९

से जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेण दो रयणीओ[1]।

प. अणुत्तरोववाइयदेवाणं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणुत्तरोववाइयदेवाणं एगे भवधारणिज्जए सरीरए,

से जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण एक्का रयणी[2]। —अणु. उव. खेत्त. सु. ३५३-३५५

उसकी जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट अवगाहना दो हाथ की होती है।

प्र. भंते ! अनुत्तरोपपातिक देवों की शरीरावगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! अनुत्तरविमानवासी देवों के एकमात्र भवधारणीय शरीर ही कहा गया है।

उसकी अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट एक हाथ की होती है।

३४. आहारगसरीरस्स ओगाहणा–

प. आहारगसरीरस्स णं भंते ! के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण देसूणा रयणी, उक्कोसेण पडिपुण्णा रयणी[3]। —पण्ण. प. २१, सु. १५३५

३४. आहारक शरीर की अवगाहना–

प्र. भंते ! आहारक शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य देशोन कुछ कम एक हाथ की, उत्कृष्ट प्रति पूर्ण एक हाथ की होती है।

३५. तेयगसरीरस्स ओगाहणा–

प. जीवस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभबाहल्लेणं,

आयामेणं जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागो, उक्कोसेण लोगंताओ लोगंतो।

प. एगिंदियस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहा जीवस्स तेयगसरीरस्स तहा भाणियव्वं।

एवं चेव जाव पुढवि-आउ-तेउ-वाउ-वणस्सइकाइयस्स।

प. बेइंदियस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ-बाहल्लेणं,

आयामेणं जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण तिरियलोगाओ लोगंतो।

३५. तैजस शरीर की अवगाहना–

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत जीव के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गौतम ! विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा शरीर प्रमाण मात्र की अवगाहना होती है।

लम्बाई की अपेक्षा तैजस् शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट अवगाहना लोकान्त से लोकान्त तक होती है।

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत एकेन्द्रिय के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गौतम ! जैसे समवहत जीव के तैजस् शरीर का कथन है वैसा ही कहना चाहिये।

इसी प्रकार पृथ्वी-अप्-तेजो-वायु-वनस्पतिकायिक तक अवगाहना पूर्ववत् समझनी चाहिए।

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत द्वीन्द्रिय के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गौतम ! विष्कम्भ एवं बाहल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाण मात्र होती है।

लम्बाई की अपेक्षा जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट तिर्यक् लोक में लोकान्त तक की अवगाहना समझनी चाहिए।

एवं तेइंदियस्स चउरिंदियस्सवि।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय के जीवों की अवगाहना समझ लेनी चाहिए।

प. णेरइयस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ-बाहल्लेणं,

आयामेणं जहण्णेण साइरेगं जोयणसहस्सं, उक्कोसेण अहे जाव अहेसत्तमा पुढवी।

तिरियं जाव सयंभुरमणे समुद्दे,

उड्ढं जाव पंडगवणे पुक्खरिणीओ।

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत नारक के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है?

उ. गौतम ! विष्कम्भ एवं बाहुल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाण मात्र है,

आयाम की अपेक्षा से जघन्य सातिरेक (कुछ अधिक) एक हजार योजन की, उत्कृष्ट नीचे की ओर अधःसप्तम नरक पृथ्वी तक,

तिरछी स्वयम्भूरमण समुद्र तक और

ऊपर पण्डकवन की पुष्करिणियों तक की अवगाहना होती है।

प. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! मारणंतिय-समुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहा बेइंदियसरीरस्स।

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है?

उ. गौतम ! जैसे द्वीन्द्रिय की अवगाहना कही गई है, उसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक की अवगाहना समझनी चाहिए।

प. मणूसस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! समयखेत्ताओ लोगंतो।

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत मनुष्य के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है?

उ. गौतम ! समयक्षेत्र से लोकान्त तक की होती है।

प. असुरकुमारस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ बाहल्लेणं,

आयामेणं जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण अहे जाव तच्चाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते,

तिरियं जाव सयंभुरमणसमुद्दस्स बाहिरिल्ले वेइयंते,

उड्ढं जाव ईसीपब्भारा पुढवी।

एवं जाव थणियकुमारतेयगसरीरस्स।

वाणमंतर-जोइसिया-सोहम्मीसाणगा य एवं चेव।

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत असुरकुमार के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है?

उ. गौतम ! विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाण मात्र है,

आयाम की अपेक्षा से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट नीचे की ओर तीसरी पृथ्वी के अधस्तन चरमान्त तक,

तिरछी स्वयम्भूरमण समुद्र की बाहर वाली वेदिका तक,

ऊपर ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक की अवगाहना होती है।

इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त तैजस् शरीर की अवगाहना समझ लेनी चाहिए।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं सौधर्म ईशान कल्प के देवों की अवगाहना भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

प. सणंकुमारदेवस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ बाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण अहे जाव महापायालाणं दोच्चे तिभागे,

तिरियं जाव सयंभुरमणसमुद्दे,

उड्ढं जाव अच्चुओ कप्पो,

एवं जाव सहस्सारदेवस्स।

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत सनत्कुमार देव के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है?

उ. गौतम ! विष्कम्भ एवं बाहुल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाण मात्र होती है, आयाम की अपेक्षा से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की तथा उत्कृष्ट नीचे महापाताल के द्वितीय त्रिभाग तक की,

तिरछी स्वयम्भूरमणसमुद्र तक की और

ऊपर अच्युतकल्प तक की अवगाहना होती है।

इसी प्रकार सहस्रारकल्प के देवों पर्यंत की अवगाहना समझ लेनी चाहिए।

प. आणयदेवस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ बाहल्लेणं,

आयामेणं जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,
उक्कोसेण अहे जाव अहेलोइयगामा,
तिरियं जाव मणूसखेत्ते।
उड्ढं जाव अच्चुओ कप्पो।
एवं जाव आरणदेवस्स।

अच्चुयदेवस्स वि एवं चेव।
णवरं–उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं।

प. गेवेज्जगदेवस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ बाहल्लेणं,

आयामेणं जहण्णेण विज्जाहरसेढीओ, उक्कोसेण जाव अहेलोइयगामा,
तिरियं जाव मणूसखेत्ते,
उड्ढं जाव सयाइं विमाणाइं।
अणुत्तरोववाइयस्स वि एवं चेव[1]।

–पण्ण. प. २१, सु. १५४५-१५५१

३६. कम्मग सरीरस्स ओगाहणा–

जहा तेयगा सरीरस्स ओगाहणा भणिया तहेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव अणुत्तरोववाइय त्ति।

–पण्ण. प. २१, सु. १५५२

३७. सिद्धगयस्स जीवस्स उक्किट्ठा जीवपएसोगाहणा–

पंचधणुसइयस्स णं अंतिमसारीरियस्स सिद्धिगयस्स साइरेगाणि तिण्णि धणुसयाणि जीवप्पदेसोगाहणा पण्णत्ता।

–सम. सम. १०४ सु. १३

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत आनत देव के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गौतम ! विष्कम्भ और बाहुल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाण होती है,

आयाम की अपेक्षा से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की,
उत्कृष्ट नीचे की ओर अधोलौकिक ग्राम तक की,
तिरछी मनुष्यक्षेत्र तक की,
ऊपर अच्युतकल्प तक की होती है।
इसी प्रकार आरण देव पर्यन्त तक की अवगाहना समझ लेनी चाहिए।
अच्युतदेव की भी इन्हीं के समान होती है।
विशेष–ऊपर अपने-अपने विमानों तक की अवगाहना होती है।

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत ग्रैवेयक देव के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गौतम ! विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाण मात्र होती है,

आयाम की अपेक्षा से जघन्य विद्याधर श्रेणियों तक की और
उत्कृष्ट नीचे की ओर अधोलौकिक ग्राम तक की,
तिरछी मनुष्य क्षेत्र तक की,
ऊपर अपने अपने विमानों तक की अवगाहना होती है।
अनुत्तरोपपातिक देव की तैजस् शरीरावगाहना भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

३६. कार्मण शरीर की अवगाहना–

जैसे तैजस् शरीर की अवगाहना का कथन किया उसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त (कार्मण शरीर की अवगाहना का) कथन करना चाहिए।

३७. सिद्धगत जीव की उत्कृष्ट जीव प्रदेशावगाहना–

पांच सौ धनुष की अवगाहना वाले चरमशरीरी जीवों के सिद्ध होने पर उनके जीव प्रदेशों की अवगाहना कुछ अधिक तीन सौ धनुष की कही गई है।

एवं तेइंदियस्स चउरिंदियस्सवि।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय के तैजस् की अवगाहना समझ लेनी चाहिए।

प. णेरइयस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत नारक के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ बाहल्लेणं,

आयामेणं जहण्णेण साइरेगं जोयणसहस्सं, उक्कोसेण अहे जाव अहेसत्तमा पुढवी।

तिरियं जाव सयंभुरमणे समुद्दे,

उड्ढं जाव पंडगवणे पुक्खरिणीओ।

उ. गौतम ! विष्कम्भ एवं बाहल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाण मात्र है,

आयाम की अपेक्षा से जघन्य सातिरेक (कुछ अधिक) एक हजार योजन की, उत्कृष्ट नीचे की ओर अधःसप्तम पृथ्वी तक,

तिरछी स्वयम्भूरमण समुद्र तक,

और ऊपर पंडकवन की पुष्करिणी तक की अवगाहना होती है।

प. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियस्स णं भंते ! मारणंतिय समुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गोयमा ! जहा बेइंदियसरीरस्स।

उ. गौतम ! जैसे द्वीन्द्रिय की अवगाहना कही गई है, उसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक की अवगाहना समझनी चाहिए।

प. मणूसस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत मनुष्य के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गोयमा ! समयखेत्ताओ लोगंतो।

उ. गौतम ! समयक्षेत्र से लोकान्त तक की होती है।

प. असुरकुमारस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत असुरकुमार के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ बाहल्लेणं,

आयामेणं जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण अहे जाव तच्चाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते,

तिरियं जाव सयंभुरमणसमुद्दस्स बाहिरिल्ले वेइयंते,

उड्ढं जाव ईसीपब्भारा पुढवी।

एवं जाव थणियकुमारतेयगसरीरस्स।

वाणमंतर-जोइसिया-सोहम्मीसाणगा य एवं चेव।

उ. गौतम ! विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाण मात्र है,

आयाम की अपेक्षा से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट नीचे की ओर तीसरी पृथ्वी के अधस्तन चरमान्त तक,

तिरछी स्वयम्भूरमण समुद्र की बाहर वाली वेदिका तक,

ऊपर ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक की अवगाहना होती है।

इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त तैजस् शरीर की अवगाहना समझ लेनी चाहिए।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं सौधर्म ईशान कल्प के देवों की अवगाहना भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

प. सणंकुमारदेवस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत सनत्कुमार देव के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ बाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण अहे जाव महापायालाणं दोच्चे तिभागे,

तिरियं जाव सयंभुरमणसमुद्दे,

उड्ढं जाव अच्चुओ कप्पो,

एवं जाव सहस्सारदेवस्स।

उ. गौतम ! विष्कम्भ एवं बाहुल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाण मात्र होती है, आयाम की अपेक्षा से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की तथा उत्कृष्ट नीचे महापाताल के द्वितीय त्रिभाग तक की,

तिरछी स्वयम्भूरमणसमुद्र तक की और

ऊपर अच्युतकल्प तक की अवगाहना होती है।

इसी प्रकार सहस्रारकल्प के देवों पर्यंत की अवगाहना समझ लेनी चाहिए।

प. आणयदेवस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ वाहल्लेणं,

आयामेणं जहण्णेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,
उक्कोसेण अहे जाव अहेलोइयगामा,
तिरियं जाव मणूसखेत्ते।
उड्ढं जाव अच्चुओ कप्पो।
एवं जाव आरणदेवस्स।

अच्चुयदेवस्स वि एवं चेव।
णवरं–उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं।

प. गेवेज्जगदेवस्स णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स तेयगसरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ता विक्खंभ वाहल्लेणं,

आयामेणं जहण्णेण विज्जाहरसेढीओ, उक्कोसेण जाव अहेलोइयगामा,
तिरियं जाव मणूसखेत्ते,
उड्ढं जाव सयाइं विमाणाइं।
अणुत्तरोववाइयस्स वि एवं चेव[1]।

–पण्ण. प. २१, सु. १५४५-१५५१

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत आनत देव के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गौतम ! विष्कम्भ और बाहुल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाण होती है,

आयाम की अपेक्षा से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की,
उत्कृष्ट नीचे की ओर अधोलौकिक ग्राम तक की,
तिरछी मनुष्यक्षेत्र तक की,
ऊपर अच्युतकल्प तक की होती है।
इसी प्रकार आरण देव पर्यन्त तक की अवगाहना समझ लेनी चाहिए।

अच्युतदेव की भी इन्हीं के समान होती है।
विशेष–ऊपर अपने-अपने विमानों तक की अवगाहना होती है।

प्र. भंते ! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत ग्रैवेयक देव के तैजस् शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गौतम ! विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाण मात्र होती है,

आयाम की अपेक्षा से जघन्य विद्याधर श्रेणियों तक की और उत्कृष्ट नीचे की ओर अधोलौकिक ग्राम तक की,
तिरछी मनुष्य क्षेत्र तक की,
ऊपर अपने अपने विमानों तक की अवगाहना होती है।
अनुत्तरोपपातिक देव की तैजस् शरीरावगाहना भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

३६. कम्मग सरीरस्स ओगाहणा–

जहा तेयगा सरीरस्स ओगाहणा भणिया तहेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव अणुत्तरोववाइय त्ति।

–पण्ण. प. २१, सु. १५५२

३६. कार्मण शरीर की अवगाहना–

जैसे तैजस् शरीर की अवगाहना का कथन किया उसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त (कार्मण शरीर की अवगाहना का) कथन करना चाहिए।

३७. सिद्धगयस्स जीवस्स उक्किट्ठा जीवपएसोगाहणा–

पंचधणुसइयस्स णं अंतिमसारीरियस्स सिद्धिगयस्स साइरेगाणि तिण्णि धणुसयाणि जीवप्पदेसोगाहणा पण्णत्ता।

–सम. सम. १०४ सु. १३

३७. सिद्धगत जीव की उत्कृष्ट जीव प्रदेशावगाहना–

पांच सौ धनुष की अवगाहना वाले चरमशरीरी जीवों के सिद्ध होने पर उनके जीव प्रदेशों की अवगाहना कुछ अधिक तीन सौ धनुष की कही गई है।

३९. सरीरोगाहणा अप्पबहुत्तं-

प. एएसि णं भंते ! ओरालिय-वेउव्विय-आहारग- तेयाकम्मग-सरीराणं जहण्णियाए ओगाहणाए उक्कोसियाए ओगाहणाए जहण्णुक्कोसियाए ओगाहणाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा ओरालियसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा,

२-३. तेया-कम्मगाणं दोण्ह वि तुल्ला।

जहण्णिया ओगाहणा विसेसाहिया,

४. वेउव्वियसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा,

५. आहारग सरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा,

उक्कोसियाए ओगाहणाए-

१. सव्वत्थोवा आहारगसरीरस्स उक्कोसिया ओगाहणा,

२. ओरालियसरीरस्स उक्कोसिया ओगाहणा, संखेज्जगुणा

३. वेउव्वियसरीरस्स उक्कोसिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा,

४-५. तेयगकम्मगाणं दोण्ह वि तुल्ला उक्कोसिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा।

जहण्णुक्कोसियाए ओगाहणाए-

१. सव्वत्थोवा ओरालियसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा,

२-३. तेयगकम्मगाणं दोण्ह वि तुल्ला, जहण्णिया ओगाहणा विसेसाहिया,

४. वेउव्वियसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा,

५. आहारगसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा,

६. आहारगसरीरस्स जहण्णियाहिंतो ओगाहणाहितो तस्स चेव उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया,

७. ओरालियसरीरस्स उक्कोसिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा,

८. वेउव्वियसरीरस्स उक्कोसिया ओगाहणा संखेज्जगुणा,

९-१०. तेयगकम्मगाणं दोण्ह वि तुल्ला उक्कोसिया ओगाहणा असंखेज्जगुणा[1]। —पण्ण. प. २१, सु. १५६६

३९. शरीर-अवगाहना का अल्पबहुत्व-

प्र. भंते ! औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस् और कार्मण इन पांच शरीरों में से जघन्य अवगाहना, उत्कृष्ट अवगाहना एवं जघन्योत्कृष्ट अवगाहना की अपेक्षा से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प औदारिक शरीर की जघन्य अवगाहना है।

२-३. (उससे) तैजस् और कार्मण दोनों शरीरों की अवगाहना परस्पर तुल्य हैं,

किन्तु औदारिक शरीर की जघन्य अवगाहना से विशेषाधिक है।

४. (उससे) वैक्रिय शरीर की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

५. (उससे) आहारक शरीर की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

उत्कृष्ट अवगाहना की अपेक्षा से-

१. सबसे अल्प आहारक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना है।

२. (उससे) औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।

३. (उससे) वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना असंख्यातगुणी है।

४-५. (उससे) तैजस् और कार्मण, दोनों की उत्कृष्ट अवगाहना परस्पर तुल्य है, किन्तु वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना से असंख्यातगुणी है।

जघन्योत्कृष्ट अवगाहना की अपेक्षा से-

१. सबसे अल्प औदारिक शरीर की जघन्य अवगाहना है।

२-३. तैजस् और कार्मण दोनों शरीरों की जघन्य अवगाहना परस्पर तुल्य है, किन्तु औदारिक शरीर की जघन्य अवगाहना विशेषाधिक है।

४. (उससे) वैक्रिय शरीर की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

५. (उससे) आहारक शरीर की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

६. आहारक शरीर की जघन्य अवगाहना से उसी की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

७. (उससे) औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना असंख्यातगुणी है।

८. (उससे) वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है।

९-१०. (उससे) तैजस् और कार्मण दोनों शरीरों की उत्कृष्ट अवगाहना परस्पर तुल्य है, किन्तु वह वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना से असंख्यातगुणी है।

---

१. विया. स. १०, उ. १, सु. १८-१९

४०. ओरालियसरीरस्स संठाणं

प. ओरालियसरीरे णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

प. एगिंदिय ओरालियसरीरे णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

प. पुढविक्काइय एगिंदिय ओरालियसरीरे णं भंते ! किं संठाण संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! मसूरचंदसंठाणसंठिए पण्णत्ते।[१]

एवं सुहुम पुढविक्काइयाण वि।

वायराण वि एवं चेव।

पज्जत्तापज्जत्ताण वि एवं चेव।

प. आउक्काइय एगिंदिय ओरालियसरीरे णं भंते ! किं संठाण संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! थिवुगविंदुसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

एवं सुहुम वायर पज्जत्तापज्जत्ताण वि।[२]

प. तेउक्काइय-एगिंदिय ओरालियसरीरे णं भंते ! किं संठाण संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! सूईकलावसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

एवं सुहुम-वायर-पज्जत्तापज्जत्ताण वि।[३]

वाउक्काइयाणं पडागासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

एवं सुहुम-वायर-पज्जत्तापज्जत्ताण वि।[४]

वणस्सइकाइयाणं णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

एवं सुहुम-वायर-पज्जत्तापज्जत्ताण वि।[५]

प. बेइंदिय-ओरालियसरीरे णं भंते ! किं संठाणसंठिए [illegible]

४०. औदारिक शरीर का संस्थान–

प्र. भंते ! औदारिक शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह नाना संस्थान वाला कहा गया है।

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय औदारिक शरीर संस्थान (आकार) किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह नाना संस्थान वाला कहा गया है।

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह मसूर-चन्द्र अर्थात् मसूर की दाल जैसे संस्थान वाला कहा गया है।

इसी प्रकार सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों का भी संस्थान कहना चाहिए।

वादर पृथ्वीकायिकों का भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

पर्याप्तक और अपर्याप्तक का भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

प्र. भंते ! अप्कायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! स्तिवुकबिन्दु अर्थात् स्थिर जलबिन्दु जैसा कहा गया है।

इसी प्रकार का संस्थान अप्कायिकों के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक शरीर का समझना चाहिए।

प्र. भंते ! तेजस्कायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! तेजस्कायिकों के शरीर का संस्थान सूइयों के ढेर के जैसा कहा गया है।

इसी प्रकार सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक का भी समझना चाहिए।

वायुकायिक जीवों का संस्थान पताका के समान है।

इसी प्रकार का संस्थान सूक्ष्म, बादर पर्याप्तक और अपर्याप्तक का भी समझना चाहिए।

वनस्पतिकायिकों के शरीर का संस्थान नाना प्रकार का कहा गया है।

इसी प्रकार सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक का भी समझना चाहिए।

प्र. भंते ! द्वीन्द्रिय औदारिक शरीर [illegible]

उ. गोयमा ! छव्विहसंठाणसंठिए पण्णत्ते, तं जहा–
१ सम चउरंससंठाणसंठिए जाव ६ हुंडसंठाणसंठिए।
एवं पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

प. सम्मुच्छिम-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे णं भंते ! किं संठाण संठिए पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! हुंडसंठाणसंठिए पण्णत्ते।[1]
एवं पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

प. गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे णं भंते ! किं संठाण संठिए पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! छव्विहसंठाणसंठिए पण्णत्ते, तं जहा–
१ समचउरंस संठाण संठिए जाव ६ हुंडसंठाण संठिए।[2]
एवं पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

एवमेए तिरिक्खजोणियाणं ओहियाणं णव आलावगा।

प. जलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय-ओरालियसरीरे णं भंते! किं संठाण संठिए पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! छव्विहसंठाणसंठिए पण्णत्ते, तं जहा–
१ समचउरंसे जाव ६ हुंडे।
एवं (२–३) पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

(४) सम्मुच्छिमजलयरा हुंडसंठाणसंठिया।[3]

एएसिं चेव (५-६) पज्जत्तापज्जत्तया वि एवं चेव।

(७) गब्भवक्कंतियजलयरा छव्विहसंठाण संठिया।[4]
एवं (८-९) पज्जत्तापज्जत्तया वि।

एवं थलयराण वि णव सुत्ताणि।

एवं चउप्पय-थलयराण वि उरपरिसप्प-थलयराण वि भुयपरिसप्प-थलयराण वि।

एवं खहयराण वि णव सुत्तणि.
णवरं–सव्वत्थ सम्मुच्छिमा हुंडसंठाणसंठिया[5] भाणियव्वा, इयरे छसु वि।[6]

प. मणुस्स पंचेंदिय ओरालियसरीरे णं भंते ! किं संठाण संठिए पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! छव्विहसंठाणसंठिए पण्णत्ते, तं जहा–
१ समचउरंसे जाव ६ हुंडे।

उ. गौतम ! वह छहों प्रकार के संस्थान वाला कहा गया है, यथा–
१ समचतुरस्रसंस्थान यावत् ६ हुंडक संस्थान।
इसी प्रकार इनके (२) पर्याप्तक (३) अपर्याप्तक के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

प्र. (४) भंते ! सम्मूर्छिम तिर्यञ्च योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह हुंडक संस्थान वाला गया है।
इसी प्रकार इनके (५) पर्याप्तक, (६) अपर्याप्तक का भी समझना चाहिए।

प्र. (७) भंते ! गर्भज तिर्यञ्च योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह छहों प्रकार के संस्थान वाला कहा गया है, यथा–
१ समचतुरस्रसंस्थान यावत् ६ हुंडक संस्थान।
इसी प्रकार इनके (८) पर्याप्तक, (९) अपर्याप्तक का भी समझना चाहिए।

इस प्रकार औधिक तिर्यञ्च योनिकों के ये नौ आलापक समझने चाहिए।

प्र. (१) भंते ! जलचर तिर्यञ्च योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह छहों प्रकार के संस्थान वाला कहा गया है, यथा–
१. समचतुरस्रसंस्थान यावत् ६. हुंडक संस्थान।
इसी प्रकार इनके (२) पर्याप्तक (३) अपर्याप्तक के भी संस्थान समझने चाहिए।

(४) सम्मूर्छिम जलचरों के औदारिक शरीर हुंडक संस्थान वाले हैं।

उनके (५) पर्याप्तक , (६) अपर्याप्तकों का संस्थान भी इसी प्रकार है।

(७) गर्भज जलचर छहों प्रकार के संस्थान वाले हैं।
इसी प्रकार इनके (८) पर्याप्तक, (९) अपर्याप्तक भी समझने चाहिए।

इसी प्रकार स्थलचर के नौ सूत्र भी पूर्वोक्त प्रकार से समझ लेने चाहिए।

इसी प्रकार चतुष्पद स्थलचरों, उरपरिसर्प स्थलचरों एवं भुजपरिसर्पस्थलचरों के औदारिक शरीर संस्थान भी समझने चाहिए।

इसी प्रकार खेचरों के भी नौ सूत्र समझने चाहिए।
विशेष–सम्मूर्छिम सर्वत्र हुंडकसंस्थान वाले कहने चाहिए। शेष सामान्य गर्भज आदि के शरीर तो छहों संस्थानों वाले होते हैं।

प्र. भंते ! मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह छहों प्रकार के संस्थान वाला कहा गया है, यथा–
१ समचतुरस्र यावत् ६ हुंडक संस्थान।

---

१. जीवा. पडि. १, सु. ३५
२. जीवा. पडि. १, सु. ३७
३. जीवा. पडि. १, सु. ३५
४. जीवा. पडि. १, सु. ३८
५. जीवा. पडि. १, सु. ३६
६. जीवा. पडि. १, सु. ३९

पज्जत्तऽपज्जत्ताण वि एवं चेव।

गब्भवक्कंतियाण वि एवं चेव।[1]

पज्जत्तऽपज्जत्तयाण वि एवं चेव।

सम्मुच्छिमाणं हुंडसंठाणसंठिया।[2]

–पण्ण. प. २१, सु. १४८८-१५०१

४१. वेउव्वियसरीरस्स संठाणं–

प. वेउव्वियसरीरे णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

प. वाउक्काइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीरे णं भंते ! किं संठाणसंठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पडागासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

प. णेरइय-पंचेंदिय वेउव्वियसरीरे णं भंते ! किं संठाण संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! णेरइय पंचेंदिय वेउव्वियसरीरे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. भवधारणिज्जे य, २. उत्तरवेउव्विए य।

१. तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे से हुंडसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

२. तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से वि हुंडसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

प. रयणप्पभा-पुढविणेरइय-पंचेंदिय वेउव्वियसरीरे णं भंते ! किं संठाणसंठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! रयणप्पभा-पुढविणेरइयाणं दुविहे सरीरे पण्णत्ते, तं जहा–

१. भवधारणिज्जे य, २. उत्तरवेउव्विए य।

तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे से वि हुंडे, जे वि उत्तरवेउव्विए से वि हुंडे।

एवं जाव अहेसत्तमा-पुढविणेरइय-वेउव्वियसरीरे।[3]

प. तिरिक्खजोणिय-पंचेंदिय वेउव्वियसरीरे णं भंते ! किं संठाणसंठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

एवं जलयर-थलयर-खहयराण वि।

थलयराण चउप्पय-परिसप्पाण वि।

परिसप्पाण उरपरिसप्प-भुयपरिसप्पाण वि।

एवं मणूस-पंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे वि।

[illegible]

[illegible]

पर्याप्तक और अपर्याप्तक मनुष्यों के शरीर संस्थान भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

गर्भजों के (औदारिक शरीर) भी इसी प्रकार छहों संस्थान वाले होते हैं।

इसके पर्याप्तक और अपर्याप्तकों का शरीर संस्थान भी इसी प्रकार है।

सम्मूर्छिम मनुष्यों के शरीर हुण्डक संस्थान वाले होते हैं।

४१. वैक्रिय शरीर का संस्थान–

प्र. भंते ! वैक्रियशरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह नाना संस्थान वाला कहा गया है।

प्र. भंते ! वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह पताका के आकार का कहा गया है।

प्र. भंते ! नैरयिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! नैरयिक पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. भवधारणीया, २. उत्तरवैक्रिया।

१. उनमें से जो भवधारणीया वैक्रिय शरीर है, [illegible] संस्थान हुंडक कहा है।

२. जो उत्तरवैक्रिया संस्थान है, वह भी [illegible] होता है।

प्र. भंते ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नारक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक पंचेन्द्रियों [illegible] शरीर दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. भवधारणीया, २. उत्तरवैक्रिया।

उनमें से जो भवधारणीया वैक्रिय शरीर है, [illegible] वाला है और उत्तरवैक्रिय भी [illegible]

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त के [illegible] शरीर हुंडक संस्थान वाले होते हैं।

प्र. भंते ! तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रियों के [illegible] किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. [illegible]

इसी प्रकार [illegible] कहा गया है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

प. असुरकुमार-भवणवासि-देवपंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! असुरकुमाराणं देवाणं दुविहे सरीरे पण्णत्ते, तं जहा–

१. भवधारणिज्जे य, २. उत्तरवेउव्विए य।

१. तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे से णं समचउरंससंठाणसंठिए पण्णत्ते।

२. तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से णं णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

एवं जाव थणियकुमार-देवपंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे।

एवं वाणमंतराण वि।

णवरं–ओहिया वाणमंतरा पुच्छिज्जंति।

एवं जोइसियाण वि ओहियाण।

एवं सोहम्म जाव अच्चुयदेवसरीरे।[1]

प. गेवेज्जगकप्पाइया वेमाणिय-देवपंचेंदिय-वेउव्वियसरीरे णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! गेवेज्जगदेवाणं एगे भवधारणिज्जे सरीरए, से णं समचउरंससंठाणसंठिए पण्णत्ते।

एवं अणुत्तरोववाइयाण वि।[2]

–पण्ण. प. २१, सु. १५२१-१५२५

प्र. भंते ! असुरकुमार-भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! असुरकुमार देवों का शरीर दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. भवधारणीया, २. उत्तरवैक्रिया।

१. उनमें से जो भवधारणीय शरीर है, वह समचतुरस्र संस्थान वाला होता है,

२. उनमें से जो उत्तर वैक्रिया शरीर है, वह अनेक प्रकार के संस्थान वाला होता है।

इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीरों का संस्थान समझ लेना चाहिए।

इसी प्रकार वाणव्यन्तर देवों के वैक्रिय शरीर का संस्थान समझ लेना चाहिये।

विशेष–औधिक वाणव्यन्तर देवों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछना चाहिए।

इसी प्रकार औधिक ज्योतिष्क देवों के संस्थान के सम्बन्ध में समझना चाहिए।

इसी प्रकार सौधर्म से अच्युत कल्प पर्यन्त के वैक्रिय शरीर के संस्थानों का कथन करना चाहिये।

प्र. भंते ! ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! ग्रैवेयक देवों के एकमात्र भवधारणीय शरीर ही होता है और वह समचतुरस्र संस्थान वाला होता है।

इसी प्रकार पांच अनुत्तरौपपातिक वैमानिक देवों के शरीर भी समचतुरस्र संस्थान वाले होते हैं।

४४. आहारगसरीरस्स संठाणं–

प. आहारगसरीरे णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! समचउरंससंठाणसंठिए पण्णत्ते।[3]

–पण्ण. प. २१, सु. १५३४

४४. आहारक शरीर का संस्थान–

प्र. भंते ! आहारक शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह समचतुरस्रसंस्थान वाला कहा गया है।

४५. तेयगसरीरस्स संठाणं–

प. तेयगसरीरे णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

प. एगिंदियतेयगसरीरे णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

प. पुढविकाइय-एगिंदियतेयगसरीरे णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! मसूरचंदसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

एवं ओरालियसंठाणाणुसारेणं भाणियव्वं जाव चउरिंदियाण त्ति।

प. णेरइयाणं भंते ! तेयगसरीरे किं संठिए पण्णत्ते ?

४५. तैजस्शरीर का संस्थान–

प्र. भंते ! तैजस् शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह नाना संस्थान वाला कहा गया है।

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय तैजस् शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह नाना प्रकार के संस्थान वाला कहा गया है।

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तैजस् शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह मसूरचन्द्र (मसूर की दाल) के आकार का कहा गया है।

इसी प्रकार चतुरिन्द्रियों पर्यन्त तैजस् शरीर संस्थानों का कथन औदारिक शरीर संस्थानों के अनुसार कहना चाहिए।

प्र. भंते ! नैरयिकों का तैजस् शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

---

१. जीवा. पडि. ३, सु. २०१ (ई)   २. (क) सम. सु. १५२   (ख) सम. सु. १५५   ३. सम. सु. १५२

उ. गोयमा ! जहा वेउव्वियसरीरे।

पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं मणूसाण य जहा एएसिं चेव ओरालिय त्ति।

प. देवाणं भंते ! तेयगसरीरे किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! जहा वेउव्वियस्स तहा तेयगसरीरस्स जाव अणुत्तरोववाइय त्ति।[1]

–पण्ण. प. २१, सु. १५४०-१५४४

४६. कम्मसरीरस्स संठाणं–

प. कम्मगसरीरे णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

जहा तेयगसरीरस्स संठाणा भणिया तहेव जाव अणुत्तरोववाइय त्ति।

–पण्ण. प. २१, सु. १५५२

४७. छव्विहे संठाणे

छव्विहे संठाणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. समचउरंसे,	२. णग्गोहपरिमंडले,
३. साती,	४. खुज्जे,
५. वामणे,	५. हुंडे[2]।

–ठाणं. अ. ६, सु. ४९५

४८. संठाणाणुपुव्वी–

प. १. से किं तं संठाणाणुपुव्वी ?

उ. संठाणाणुपुव्वी–तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुव्वाणुपुव्वी, २. पच्छाणुपुव्वी, ३. अणाणुपुव्वी।

प. २. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

उ. पुव्वाणुपुव्वी–१. समचउरंसे, २. णग्गोहमंडले, ३. सादी, ६. खुज्जे, ५. वामणे, ६. हुंडे।

उ. गौतम ! जैसे वैक्रिय शरीर का संस्थान कहा गया है उसी प्रकार इनके तैजस् शरीर के संस्थान का कथन करना चाहिए।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों के तैजस् शरीर के संस्थान का कथन इनके औदारिक शरीरगत संस्थानों के समान कहना चाहिए।

प्र. भंते ! देवों के तैजस् शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! जैसे इनके वैक्रिय शरीर का संस्थान कहा है वैसे ही अनुत्तरौपपातिक देवों पर्यन्त तैजस् शरीर के संस्थान का कथन करना चाहिए।

४६. कार्मण शरीर का संस्थान–

प्र. भंते ! कार्मण शरीर का संस्थान का किस प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह नाना संस्थान वाला कहा गया है।

जैसे तैजसशरीर के संस्थानों का कथन किया है उसी प्रकार अनुत्तरौपपातिक देवों पर्यन्त (कार्मण शरीर के संस्थानों का) कथन करना चाहिए।

४७. छह संस्थान–

संस्थान छह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. समचतुरस्र,	२. न्यग्रोधपरिमण्डल,
३. स्वाती,	४. कुब्ज,
५. वामन,	६. हुण्ड।

४८. संस्थानानुपूर्वी–

प्र. १. संस्थानानुपूर्वी क्या है ?

उ. संस्थानानुपूर्वी के तीन प्रकार कहे गए हैं, यथा

१. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चानुपूर्वी, ३. अनानुपूर्वी।

प्र. २. पूर्वानुपूर्वी क्या है ?

उ. १. समचतुरस्रसंस्थान, २. न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान, ३. सादिसंस्थान, ४. कुब्जसंस्थान, ५. वामनसंस्थान, ६. हुण्डसंस्थान।

से तं अणाणुपुव्वी। से तं संठाणाणुपुव्वी। —अणु. सु. २०५

यह अनानुपूर्वी है। यह संस्थानानुपूर्वी का स्वरूप है।

४९. चउवीसदंडएसु संठाणाइं–

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! किं संठाणी पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! हुंडसंठाणी पण्णत्ता।[१]

प. दं. २-११. असुरकुमारा णं भंते! किं संठाणी पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! समचउरंससंठाणसंठिया पण्णत्ता जाव थणिय त्ति।[२]

दं. १२. पुढविकायिया मसूरयसंठाणा पण्णत्ता।[३]

दं. १३. आऊकाइया थिवुयसंठाणा पण्णत्ता।[४]

दं. १४. तेऊकाइया सूइकलावसंठाणा पण्णत्ता।[५]

दं. १५. वाऊकाइया पडातियासंठाणा पण्णत्ता।[६]

दं. १६. वणप्फइकाइया णाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता।[७]

दं. १७-२०. बेंदिया, तेंदिया, चउरिंदिया, सम्मुच्छिम-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया हुंडसंठाणा पण्णत्ता।[८]

गब्भवक्कंतिया छव्विहसंठाणा पण्णत्ता।[९]

दं. २१. सम्मुच्छिम-मणूसा हुंडसंठाणसंठिया पण्णत्ता।[१०]

गब्भवक्कंतियाणं मणूसाणं छव्विहा संठाणा पण्णत्ता।[११]

दं. २२-२४. जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया।[१२] —सम. सु. १५५/५-११

४९. चौबीस दण्डकों में संस्थान–

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक किस संस्थान वाले कहे गए हैं?

उ. गौतम ! वे हुण्ड संस्थान वाले कहे गए हैं।

प्र. दं. २-११. भन्ते ! असुरकुमार किस संस्थान वाले कहे गये हैं?

उ. गौतम ! वे स्तनितकुमारपर्यन्त समचतुरस्र संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. १२. पृथ्वीकाय के जीव मसूर-संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. १३. अप्काय के जीव स्तिबुक संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. १४. तेजस्काय के जीव सूची कलाप संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. १५. वायुकाय के जीव पताका-संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. १६. वनस्पतिकाय के जीव नाना प्रकार के संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. १७-२०. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव हुण्ड संस्थान वाले कहे गए हैं।

गर्भव्युत्क्रान्तिक तिर्यञ्च छहों संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. २१. सम्मूर्च्छिम मनुष्य हुण्ड संस्थान वाले कहे गए हैं।

गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य छहों संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का कथन असुरकुमारों के समान है।

५०. चउवीसदंडएसु संठाणनिव्वत्ति परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! संठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! छव्विहा संठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता, तं जहा–

१. समचउरंससंठाणनिव्वत्ती जाव ६ हुंडसंठाणनिव्वत्ती।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! कइविहा संठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! एगा हुंडसंठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता।

प. दं. २-११. असुरकुमाराणं भंते ! कइविहा संठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! एगा समचउरंससंठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता।

एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. दं. १२. पुढविकाइयाणं भंते ! कइविहा संठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता?

५०. चौवीस दण्डकों में संस्थान-निर्वृत्ति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! संस्थान-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है?

उ. गौतम ! संस्थान निर्वृत्ति छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. समचतुरस्र-संस्थान-निर्वृत्ति यावत् ६. हुण्डक-संस्थान निर्वृत्ति।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों की संस्थान-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है?

उ. गौतम ! उनके एकमात्र हुण्डक-संस्थान-निर्वृत्ति कही गई है।

प्र. दं. २-११. भन्ते ! असुरकुमारों के संस्थान-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है।

उ. गौतम ! उनके एक मात्र समचतुरस्र-संस्थान-निर्वृत्ति कही गई है।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों-पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीवों के संस्थान-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है?

---

१. जीवा. पडि. १ सु. ३२
२. जीवा. पडि. १ सु. ४२
३. (क) जीवा. पडि. १ सु. १३ (४)
(ख) जीवा. पड़ि. ३ उ. २ सु. ८७ (२)
४. जीवा. पडि. १ सु. १६
५. जीवा. पडि. १ सु. २५
६. जीवा. पडि. १ सु. २६
७. जीवा. पडि. १ सु. २१
८. जीवा. पडि. १ सु. २८-३०, ३५-३७
९. जीवा. पडि. १ सु. ३८-४०
१०-११. जीवा. पडि. १ सु. ४१
१२. जीवा. पडि. १ सु. ४२

उ. गोयमा ! एगा मसूरचंदासंठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता।

दं. १३-२४. एवं जस्स जं संठाणं जाव वेमाणियाणं।

—*विया. स. १९, उ. ८, सु. २६-३१*

उ. गौतम ! उनके एक मात्र मसूरचन्द्र-संस्थान-निर्वृत्ति कही गई है।

दं. १३-२४. इस प्रकार जिसके जो संस्थान हो तदनुसार वैमानिकों पर्यन्त संस्थान निर्वृत्ति कहनी चाहिए।

५१. चउवीसदंडएसु जीवाणं संघयणं—

प. कइविहे णं भंते ! संघयणे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! छव्विहे संघयणे पण्णत्ते, तं जहा—

१. वइरोसभनारायसंघयणे,
२. रिसभनारायसंघयणे,
३. नारायसंघयणे,
४. अद्धनारायसंघयणे,
५. खीलियासंघयणे,
६. सेवट्ठसंघयणे।[1]

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं संघयणी पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी,

णेवट्ठी णेव छिरा ण्हारु,

जे पोग्गला अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा,

ते तेसिं असंघयणत्ताए परिणमंति।[2]

(एवं जाव अहेसत्तमाए।)

प. दं. २-११. असुरकुमारा णं भंते ! किं संघयणी पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी,

णेवट्ठी णेव छिरा ण्हारु

जे पोग्गला इट्ठा कंता पिया सुभा मणुण्णा मणामा मणाभिरामा,

ते तेसिं असंघयणत्ताए परिणमंति।

एवं जाव थणियकुमार त्ति।

प. दं. १२-२०. पुढविकाइया णं भंते ! किं संघयणी पण्णत्ता ?

५१. चौवीस दण्डकों में जीवों का संहनन—

प्र. भन्ते ! संहनन कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! संहनन छह प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. वज्रऋषभनाराच संहनन,
२. ऋषभनाराच संहनन,
३. नाराच संहनन,
४. अर्द्धनाराच संहनन,
५. कीलिका संहनन,
६. सेवार्त्त संहनन।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक किस संहनन वाले कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिकों के इन छह संहननों में से एक भी नहीं होता। वे असंहननी होते हैं।

उनके न अस्थि होती है, न शिरा और न स्नायु।

जो पुद्गल अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, [illegible] और मन के प्रतिकूल होते हैं।

वे असंहनन के रूप में परिणत होते हैं।

(इसी प्रकार अधः सप्तम पर्यंत जानना चाहिए।)

प्र. दं. २-११. भन्ते ! असुरकुमार किस संहनन वाले कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! असुरकुमारों के इन छह संहननों में से एक भी नहीं होता। वे असंहननी होते हैं।

उनके न अस्थि होती है, न शिरा और न स्नायु।

जो पुद्गल इष्ट, कान्त, प्रिय, शुभ, [illegible] होते हैं।

वे असंहनन के रूप में परिणत होते हैं।

स्तनितकुमार पर्यंत के सभी भवनवासी देव असंहननी होते हैं।

प्र. दं. १२-२०. भन्ते ! पृथ्वीकायिक [illegible]

से तं अणाणुपुव्वी। से तं संठाणाणुपुव्वी। —*अणु. सु. २०५*

यह अनानुपूर्वी है। यह संस्थानानुपूर्वी का स्वरूप है।

४९. चउवीसदंडएसु संठाणाइं–

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! किं संठाणी पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! हुंडसंठाणी पण्णत्ता।[1]

प. दं. २-११. असुरकुमारा णं भंते ! किं संठाणी पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! समचउरंससंठाणसंठिया पण्णत्ता जाव थणिय त्ति।[2]

दं. १२. पुढविकायिया मसूरयसंठाणा पण्णत्ता।[3]

दं. १३. आऊकाइया थिबुयसंठाणा पण्णत्ता।[4]

दं. १४. तेऊकाइया सूइकलावसंठाणा पण्णत्ता।[5]

दं. १५. वाऊकाइया पडातियासंठाणा पण्णत्ता।[6]

दं. १६. वणप्फइकाइया णाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता।[7]

दं. १७-२०. बेंदिया, तेंदिया, चउरिंदिया, सम्मुच्छिम-पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया हुंडसंठाणा पण्णत्ता।[8]

गब्भवक्कंतिया छव्विहसंठाणा पण्णत्ता।[9]

दं. २१. सम्मुच्छिम-मणूसा हुंडसंठाणसंठिया पण्णत्ता।[10]

गब्भवक्कंतियाणं मणूसाणं छव्विहा संठाणा पण्णत्ता।[11]

दं. २२-२४. जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया।[12] —*सम. सु. १५५/५-११*

४९. चौबीस दण्डकों में संस्थान–

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक किस संस्थान वाले कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे हुण्ड संस्थान वाले कहे गए हैं।

प्र. दं. २-११. भन्ते ! असुरकुमार किस संस्थान वाले कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! वे स्तनितकुमारपर्यन्त समचतुरस्र संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. १२. पृथ्वीकाय के जीव मसूर-संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. १३. अपूकाय के जीव स्तिबुक संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. १४. तेजस्काय के जीव सूची कलाप संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. १५. वायुकाय के जीव पताका-संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. १६. वनस्पतिकाय के जीव नाना प्रकार के संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. १७-२०. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव हुण्ड संस्थान वाले कहे गए हैं।

गर्भव्युत्क्रान्तिक तिर्यञ्च छहों संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. २१. सम्मूर्च्छिम मनुष्य हुण्ड संस्थान वाले कहे गए हैं।

गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य छहों संस्थान वाले कहे गए हैं।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का कथन असुरकुमारों के समान है।

५०. चउवीसदंडएसु संठाणनिव्वत्ति परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! संठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! छव्विहा संठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता, तं जहा–

१. समचउरंससंठाणनिव्वत्ती जाव ६ हुंडसंठाणनिव्वत्ती।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! कइविहा संठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगा हुंडसंठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता।

प. दं. २-११. असुरकुमाराणं भंते ! कइविहा संठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगा समचउरंससंठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता।

एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. दं. १२. पुढविकाइंयाणं भंते ! कइविहा संठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता ?

५०. चौबीस दण्डकों में संस्थान-निर्वृत्ति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! संस्थान-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! संस्थान निर्वृत्ति छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. समचतुरस्र-संस्थान-निर्वृत्ति यावत् ६. हुण्डक-संस्थान निर्वृत्ति।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों की संस्थान-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! उनके एकमात्र हुण्डक-संस्थान-निर्वृत्ति कही गई है।

प्र. दं. २-११. भन्ते ! असुरकुमारों के संस्थान-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है।

उ. गौतम ! उनके एक मात्र समचतुरस्र-संस्थान-निर्वृत्ति कही गई है।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों-पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीवों के संस्थान-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

---

१. जीवा. पडि. १ सु. ३२
२. जीवा. पडि. १ सु. ४२
३. (क) जीवा. पडि. १ सु. १३ (४)
   (ख) जीवा. पडि. ३ उ. २ सु. ८७ (२)
४. जीवा. पडि. १ सु. १६
५. जीवा. पडि. १ सु. २५
६. जीवा. पडि. १ सु. २६
७. जीवा. पडि. १ सु. २१
८. जीवा. पडि. १ सु. २८-३०, ३५-३७
९. जीवा. पडि. १ सु. ३८-४०
१०-११. जीवा. पडि. १ सु. ४१
१२. जीवा. पडि. १ सु. ४२

उ. गोयमा ! एगा मसूरचंदासंठाणनिव्वत्ती पण्णत्ता।

दं. १३-२४. एवं जस्स जं संठाणं जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. १९, उ. ८, सु. २६-३१

उ. गौतम ! उनके एक मात्र मसूरचन्द्र-संस्थान-निर्वृत्ति कही गई है।

दं. १३-२४. इस प्रकार जिसके जो संस्थान हो तदनुसार वैमानिकों पर्यन्त संस्थान निर्वृत्ति कहनी चाहिए।

५१. चउवीसदंडएसु जीवाणं संघयणं–

प. कइविहे णं भंते ! संघयणे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! छव्विहे संघयणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. वइरोसभनारायसंघयणे,
२. रिसभनारायसंघयणे,
३. नारायसंघयणे,
४. अद्धनारायसंघयणे,
५. खीलियासंघयणे,
६. सेवट्ठसंघयणे।[1]

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं संघयणी पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी,

णेवट्ठी णेव छिरा ण्हारु,
जे पोग्गला अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा,
ते तेसिं असंघयणत्ताए परिणमंति।[2]
(एवं जाव अहेसत्तमाए।)

प दं. २-११. असुरकुमारा णं भंते ! किं संघयणी पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी,

णेवट्ठी णेव छिरा ण्हारु
जे पोग्गला इट्ठा कंता पिया सुभा मणुण्णा मणामा मणाभिरामा,
ते तेसिं असंघयणत्ताए परिणमंति।
एवं जाव थणियकुमार त्ति।

प. दं. १२-२०. पुढविकाइया णं भंते ! किं संघयणी पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! सेवट्टसंघयणी पण्णत्ता,[3]
एवं जाव संमुच्छिम-पचेंदिय-तिरिक्खजोणिय त्ति।[4]

गब्भवक्कंतिया छव्विहसंघयणी,[5]
दं. २१. संमुच्छिम-मणुस्सा णं सेवट्टसंघयणी।[6]
गब्भवक्कंतिय-मणूसा छव्विहे संघयणे पण्णत्ता।[7]
दं. २२-२४. जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया।[8] –सम. सु. १५५/१-४/(प्रकी.)

५१. चौबीस दण्डकों में जीवों का संहनन–

प्र. भन्ते ! संहनन कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! संहनन छह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. वज्रऋषभनाराच संहनन,
२. ऋषभनाराच संहनन,
३. नाराच संहनन,
४. अर्द्धनाराच संहनन,
५. कीलिका संहनन,
६. सेवार्त्त संहनन।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक किस संहनन वाले कहे गए हैं?

उ. गौतम ! नैरयिकों के इन छह संहननों में एक भी नहीं होता। वे असंहननी होते हैं।

उनके न अस्थि होती है, न शिरा और न स्नायु।
जो पुद्गल अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ और मन के प्रतिकूल होते हैं।
वे असंहनन के रूप में परिणत होते हैं।
(इसी प्रकार अधः सप्तम पर्यंत जानना चाहिए।)

प्र. दं. २-११. भन्ते ! असुरकुमार किस संहनन वाले कहे गए हैं?

उ. गौतम ! असुरकुमारों के इन छह संहननों में से एक भी नहीं होता। वे असंहननी होते हैं।

उनके न अस्थि होती है, न शिरा और न स्नायु।
जो पुद्गल इष्ट, कान्त, प्रिय, शुभ, मनोज्ञ और मनोनुकूल होते हैं।
वे असंहनन के रूप में परिणत होते हैं।
स्तनितकुमार पर्यंत के सभी भवनपति देव असंहननी होते हैं।

प्र. दं. १२-२०. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव किस संहनन वाले होते हैं?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों के सेवार्त संहनन होता है।
इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक पर्यंत जानना चाहिए।
गर्भव्युक्रान्तिक तिर्यञ्चों के छहों संहनन होते हैं।
दं. २१. सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के सेवार्त संहनन होता है।
गर्भव्युक्रान्तिक मनुष्यों के छहों संहनन होते हैं।
दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के संहनन का कथन असुरकुमार देवों के समान है।

---

१. ठाणं. अ. ६, सु. ४९४
२. जीवा. पडि. ३ उ. २, सु. ८७
जीवा. पडि. १ सु. ३२
३. जीवा. पडि. १ सु. १३ (३)
४. जीवा. पडि. १ सु. १४-३०-३५
५. जीवा. पडि. १ सु. ३८-४०
६-७. जीवा. पडि. १ सु. ४१
८. (क) जीवा. पडि. १ सु. ४२
(ख) जीवा. पडि. ३ सु. २०३ (इ)

विकुर्वणा अध्ययन : आमुख

विकुर्वणा का अर्थ है विभिन्न प्रकार के रूप आकार आदि की रचना करना। यह विकुर्वणा प्रायः वैक्रिय शरीर के माध्यम से की जाती है। भावितात्मा अनगार, देव, नैरयिक, वायुकायिक जीव एवं बलाहकों के द्वारा की जाने वाली विकुर्वणा का इस अध्ययन में विस्तार से निरूपण हुआ है।

विकुर्वणा या विक्रिया मुख्यतः तीन प्रकार की होती है–१. बाह्य पुद्‌गलों को ग्रहण कर की जाने वाली २. बाह्य पुद्‌गलों को ग्रहण किए बिना की जाने वाली तथा ३. बाह्य पुद्‌गलों को ग्रहण करके एवं ग्रहण न करके की जाने वाली विकुर्वणा। विकुर्वणा के तीन भेद आन्तरिक पुद्‌गलों को ग्रहण करने, ग्रहण न करने एवं मिश्रित स्थिति से भी बनते हैं। जब बाह्य एवं आन्तरिक दोनों पुद्‌गलों के ग्रहण करने, ग्रहण न करने एवं मिश्रित होने की स्थिति बनती है तब भी विक्रिया के तीन भेद बनते हैं। इन भेदों से यह बात स्पष्ट होती है कि विक्रिया बाह्य पुद्‌गलों को ग्रहण करने से भी होती है, उनको ग्रहण किए बिना भी होती है तथा आन्तरिक पुद्‌गलों को ग्रहण करने एवं न करने से भी हो सकती है।

जो जीव एक बार अरूपी हो जाता है, अर्थात् सिद्ध बन जाता है वह फिर विकुर्वणा नहीं करता, क्योंकि विकुर्वणा के लिए वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श से युक्त पुद्‌गलों की आवश्यकता है और सिद्ध इनसे रहित होते हैं। वे कर्म, वेद, मोह, लेश्या एवं शरीर से भी रहित होते हैं।

भावितात्मा अणगार अनेक प्रकार की विकुर्वणा कर सकता है। वह ऊँचे आकाश में उड़ सकता है, गमन कर सकता है, वैभारगिरि को लांघ सकता है। वह स्त्रीरूप यावत् स्यन्दमानिका रूप की विकुर्वणा कर सकता है। वह हाथ में ढाल, तलवार आदि लेकर या पताका लेकर भी आकाश में उड़ सकता है। पल्हथी लगाकर, पर्यङ्कासन करके बैठे हुए भी वह आकाश में उड़ सकता है। भावितात्मा अणगार बाहर के पुद्‌गलों को ग्रहण करके एक बड़े अश्व, हाथी, सिंह, बाघ, भेड़िये, चीते, रींछ आदि के रूप का अभियोजन करके अनेक योजन तक जाने में समर्थ है। वह ऐसा आत्मऋद्धि से करता है, परऋद्धि से नहीं। अपने कर्म से एवं आत्म-प्रयोग से करता है परकर्म एवं पर-प्रयोग से नहीं। बाहर के पुद्‌गलों को ग्रहण करके भावितात्मा अनगार एक बड़े ग्रामरूप, नगररूप आदि की भी विकुर्वणा या रचना कर सकता है।

उल्लेखनीय है कि भावितात्मा अनगार में इन विकुर्वणाओं को करने का सामर्थ्य होते हुए भी वे कभी इस प्रकार की विकुर्वणाएं नहीं करते हैं। जो विकुर्वणाएं की जाती हैं उन्हें मायी अनगार करता है, अमायी अनगार नहीं।

असंवृत अनगार बाहर के पुद्‌गलों को ग्रहण करके नीले पुद्‌गलों को काले पुद्‌गलों के रूप में, चिकने पुद्‌गलों को रूखे पुद्‌गलों के रूप में या इसी प्रकार एक वर्ण का दूसरे वर्ण में, एक रस का दूसरे रस आदि में परिणमन करने में समर्थ है।

देवों की विकुर्वणा के प्रसंग में अनेक प्रकार के तथ्य उजागर हुए हैं। देवों के पांच प्रकार कहे गए हैं– १. भव्य द्रव्यदेव २. नरदेव, ३. धर्मदेव ४. देवाधिदेव और ५. भावदेव। इनमें से प्रथम तीन प्रकार के देव तथा भाव देव एक रूप की भी रचना करने में समर्थ हैं और अनेक रूपों (आकारों) की भी रचना करने में समर्थ हैं। वे एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय रूपों की रचना (विकुर्वणा) कर सकते हैं। जिन रूपों की वे रचना करते हैं वे संख्येय, असंख्येय, सम्बद्ध, असम्बद्ध, सदृश अथवा असदृश हो सकते हैं। देवाधिदेवों में एक एवं अनेक रूपों की रचना करने का सामर्थ्य है तथापि वे कभी इस प्रकार की विकुर्वणा नहीं करते हैं।

विकुर्वणा के सामर्थ्य का निरूपण करते हुए व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र में असुरेन्द्र असुरराज चमर, वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि, नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण, स्तनितकुमारेन्द्र आदि अन्य भवनपति देवेन्द्रों, वाणव्यन्तर देवों, ज्योतिष्क देवों एवं देवेन्द्रों की विकुवर्णा का विस्तार से वर्णन किया गया है। इन सभी देवेन्द्रों के सामानिक देवों, त्रायस्त्रिंशक लोकपालों एवं अग्रमहिषियों की विकुर्वणा शक्ति का भी इस अध्ययन में वर्णन उपलब्ध है। वैमानिक देवों के विभिन्न देवलोकों के देवेन्द्रों, उनके सामानिक देवों, लोकपालों एवं अग्रहिषियों की विकुर्वणा शक्ति का भी इसमें उल्लेख है। देवेन्द्र देवराज शक्र, देवेन्द्र देवराज ईशान, सनत्कुमार देवेन्द्र से लेकर अच्युत देवलोक के देवेन्द्र एवं उनके सामानिक देवों, लोकपालों एवं अग्रमहिषियों की विकुर्वणा का वर्णन भी यहाँ उपलब्ध है।

देवों की विकुर्वणा का यह वर्णन बड़ा आश्चर्यजनक एवं रोचक है। भगवान् महावीर एवं गणधरों के मध्य हुई वार्ता में इन देवों की विकुर्वणा की शक्ति का उद्‌घाटन हुआ है। यह भी निर्देश है कि विभिन्न देवेन्द्रों देवों एवं देवियों की विकुर्वणा की व्यापक शक्ति विद्यमान होने पर भी वे कभी इस प्रकार की विकुर्वणा नहीं करते हैं। नागकुमारेन्द्र जैसे कुछ देवेन्द्रों में इतनी शक्ति है कि वे एक जम्बूद्वीप क्या संख्यात द्वीप समुद्रों को अपनी विकुर्वणा से भर सकते हैं, किन्तु वे कभी ऐसा करते नहीं हैं।

देव दो प्रकार के हैं–१. मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक एवं २. अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक। इनमें से अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक देव यथेच्छ विकुर्वणा कर सकते हैं किन्तु मायी मिथ्यादृष्टि देव यथेच्छ विकुर्वणा नहीं कर पाते। जैसे एक ही असुरकुमारावास में दो असुरकुमार उत्पन्न हुए, उनमें से जो मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक देव है वह ऋजु रूप की विकुर्वणा करना चाहता है, किन्तु वक्ररूप की विकुर्वणा हो जाती है और जब वह वक्ररूप की विकुर्वणा करना चाहता है तो ऋजुरूप की विकुर्वणा हो जाती है। अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक देव के साथ ऐसा नहीं होता। वह जब ऋजु रूप की विकुर्वणा करना चाहता है तो ऋजुरूप की विकुर्वणा होती है और जब वह वक्र रूप की विकुर्वणा करना चाहता है तब वक्र रूप की विकुर्वणा होती है।

महर्द्धिक यावत् महानुभाग देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके एक वर्ण और एक रूप (आकार) की विकुर्वणा कर सकते हैं। इस प्रकार विकुर्वणा के तीन भंग और हैं– एक वर्ण अनेक रूप, अनेक वर्ण एक रूप एवं अनेक वर्ण अनेक रूप। वे बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके काले पुद्गल को नीले पुद्गल के रूप में तथा नीले पुद्गल को काले पुद्गल के रूप में परिणत कर सकते हैं। इस प्रकार वे एक वर्ण को दूसरे वर्ण में, एक रस को दूसरे रस में, एक गन्ध को दूसरे गन्ध में तथा एक स्पर्श को दूसरे स्पर्श में परिणत करने में समर्थ हैं। रूपीभाव को प्राप्त ये देव अरूपी विकुर्वणा नहीं कर सकते हैं।

वैमानिक देव एक रूप की विकुर्वणा करने में भी समर्थ हैं और अनेक रूपों की विकुर्वणा करने में भी समर्थ हैं। नवग्रैवेयक एवं पांच अनुत्तर विमानवासी देव भी इस प्रकार की विकुर्वणा करने में समर्थ होते हैं, किन्तु उन्होंने कभी ऐसी विकुर्वणा नहीं की, करते भी नहीं है और न ही करेंगे।

महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव हजार रूपों की विकुर्वणा करके परस्पर एक दूसरे के साथ संग्राम करने में समर्थ है, किन्तु वैक्रियकृत वे शरीर एक ही जीव के साथ सम्बद्ध होते हैं, अनेक जीवों के साथ नहीं। उन शरीरों के बीच का अन्तराल भाग भी एक ही जीव से सम्बद्ध होता है, अनेक जीवों से सम्बद्ध नहीं होता। देवों एवं असुरों में जब संग्राम छिड़ जाता है तो देव जिस तृण, काष्ठ, पत्ते, कंकर आदि को स्पर्श करते हैं, वही वस्तु उन देवों का शस्त्ररत्न बन जाती है, किन्तु असुरों के लिए यह बात शक्य नहीं है। असुर कुमारों के सदैव बैक्रियकृत शस्त्ररत्न होते हैं।

नैरयिक जीव भी विकुर्वणा करते हैं। प्रथम नरक से लेकर पंचम नरक तक के नैरयिक एक रूप की भी विकुर्वणा करते हैं और अनेक रूपों की भी विकुर्वणा करते हैं। एक रूप की विकुर्वणा करते हुए वे एक महान् मुद्गर यावत् भिंडमाल रूप की विकुर्वणा करते हैं। अनेक रूपों की विकुर्वणा करते हुए वे अनेक मुद्गर रूपों यावत् अनेक भिंडमाल रूपों की विकुर्वणा करते हैं। वे संख्येय, सदृश एवं सम्बद्ध रूपों की विकुर्वणा करते हैं। विकुर्वणा करने से उनकी वेदना की उदीरणा होती है। वह वेदना उग्र, विपुल, प्रगाढ़, कर्कश, दुःखद एवं असह्य होती है। छठी एवं सातवीं नरक के नैरयिक गोबर के कीडों के समान बहुत बड़े वज्रमय मुख वाले रक्तवर्ण कुंथुओं के रूपों की विकुर्वणा करते हैं।

वायुकाय के जीव में भी वैक्रिय शरीर होता है, इसलिए वह भी विकुर्वणा कर सकता है। वह एक बड़ी पताका के आकार जैसे रूप की विकुर्वणा करके एक दिशा में अनेक योजन तक गति कर सकता है। वायुकाय का जीव ऊँची पताका एवं झुकी पताका इन दोनों के आकार से गति करने में समर्थ है। वह अपनी ऋद्धि अपने कर्म एवं प्रयोग से ही ऐसा करने में समर्थ है।

बलाहक (मेघपंक्ति) एक बड़े स्त्रीरूप यावत् स्यन्दमानिका के रूप में परिणत होने में समर्थ है। वह भी जितनी विक्रियाएं करता है उन्हें आत्मऋद्धि, आत्मकर्म एवं आत्मप्रयोग से ही करता है। वह बड़े यान के रूप में परिणत होकर भी अनेक योजन तक जा सकता है।



१५. विकुव्वणा-अज्झयणं

सूत्र

१. विकुव्वणाया विविहपगारा–

एगा जीवाणं अपरियाइत्ता विकुव्वणा। -ठाणं अ. १, सु. १२

तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता एगा विकुव्वणा,
२. बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता एगा विकुव्वणा,
३. बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता वि अपरियाइत्ता वि एगा विकुव्वणा।

तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अब्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता एगा विकुव्वणा,
२. अब्भंतरए पोग्गले अपरियाइत्ता एगा विकुव्वणा,
३. अब्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता वि अपरियाइत्ता वि एगा विकुव्वणा।

तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता एगा विकुव्वणा,
२. बाहिरब्भंतरए पोग्गले अपरियाइत्ता एगा विकुव्वणा,
३. बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता वि अपरियाइत्ता वि एगा विकुव्वणा। –ठाणं अ. ३, उ. १, सु. १२८

२. अरूवी जीवेण विउव्वणाऽसामत्थ परूवणं–

प. सच्चेव णं भंते ! से जीवे पुव्वामेव अरूवी भवित्ता पभू रूविं विउव्वित्ता णं चिट्ठित्तए ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"सच्चेव णं से जीवे पुव्वामेव अरूवीभवित्ता-नो पभू रूविं विउव्वित्ता णं चिट्ठित्तए ?"

उ. गोयमा ! अहमेयं जाणामि, अहमेयं पासामि,
अहमेयं बुज्झामि, अहमेयं अभिसमण्णागच्छामि,
मए एयं नायं, मए एयं दिट्ठं,
मए एयं बुद्धं, मए एयं अभिसमण्णागयं–

जण्णं तहागयस्स जीवस्स अरूविस्स,
अकम्मस्स, अरागस्स, अवेदस्स,
अमोहस्स, अलेसस्स, असरीरस्स,
ताओ सरीराओ विप्पमुक्कस्स नो एवं पण्णायइ, तं जहा–

कालत्ते वा जाव सुक्किलत्ते वा,
सुब्भिगंधत्ते वा, दुब्भिगंधत्ते वा,
तित्तत्ते वा जाव महुरत्ते वा,

१५. विकुर्वणा-अध्ययन

सूत्र

१. विकुर्वणा के विविध प्रकार–

बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किए बिना होने वाली विक्रिया एक है।

विक्रिया तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. बाह्य पुद्गलों को ग्रहण कर की जाने वाली,
२. बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किए बिना की जाने वाली,
३. बाह्य पुद्गलों को ग्रहण और अग्रहण करके की जाने वाली।

विक्रिया तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. आन्तरिक पुद्गलों को ग्रहण कर की जाने वाली,
२. आन्तरिक पुद्गलों को ग्रहण किए बिना की जाने वाली,
३. आन्तरिक पुद्गलों को ग्रहण और अग्रहण करके की जाने वाली।

विक्रिया तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के पुद्गलों को ग्रहण कर की जाने वाली,
२. बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के पुद्गलों को ग्रहण किए बिना की जाने वाली,
३. बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के पुद्गलों को ग्रहण और अग्रहण करके की जाने वाली।

२. अरूपी जीव द्वारा विकुर्वणा के असामर्थ्य का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या वही जीव पहले अरूपी होकर, फिर रूपी आकार की विकुर्वणा करके रहने में समर्थ हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि–
'वह जीव पहले अरूपी होकर, फिर रूपी आकार की विकुर्वणा करके रहने में समर्थ नहीं है ?'

उ. गौतम ! मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ।
मैं यह निश्चित जानता हूँ, मैं यह सर्वथा जानता हूँ।
मैंने यह जाना है, मैंने यह देखा है,
मैंने यह निश्चित समझ लिया है और मैंने यह पूरी तरह से जाना है कि

तथा प्रकार के अरूपी,
अकर्म, अराग, अवेद,
अमोह, अलेश्य, अशरीर
और उस शरीर से मुक्त जीव के विषय में ऐसा ज्ञात नहीं होता है, यथा–

कालापन यावत् श्वेतपन,
सुगन्धित्व या दुर्गन्धित्व,
कटुत्व यावत् मधुरत्व,

कक्खडे वा जाव लुक्खत्ते वा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"सच्चेव णं से जीवे पुव्वामेव अरूवी भवित्ता नो पभू रूविं विउव्वित्ता णं चिट्ठित्तए।" *–विया स. १७, उ. २, सु. १९*

कर्कशत्व यावत् रूक्षत्व है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'वह जीव पहले अरूपी होकर, फिर रूपी आकार की विकुर्वणा करके रहने में समर्थ नहीं है।"

३. भावियऽप्पणो अणगारस्स विउव्वणसत्ती परूवणं–

रायगिहे जाव एवं वयासी–

प. से जहानामए केइ पुरिसे केयाघडियं गहाय गच्छेज्जा,
एवामेव अणगारे वि भावियप्पा केयाघडिया किच्चहत्थगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

उ. गोयमा ! हंता उप्पएज्जा।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवइयाइं पभू केयाघडियाकिच्चहत्थगयाइं रूवाइं विउव्वित्तए ?

उ. गोयमा ! से जहानामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, चक्कस्स वा नाभी अरगाउत्ता सिया,

एवामेव अणगारे वि भावियप्पा वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ जाव-पभू णं गोयमा ! अणगारे णं भावियप्पा केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं बहूहिं केयाघडियकिच्चहत्थगएइं रूवेइं आइण्णं जाव अवगाढावगाढं करेत्तए।

एस णं गोयमा ! अणगारस्स भावियप्पो अयमेयारूवे विसए, विसयमेत्ते बुइएं,
णो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा, विउव्वंति वा, विउव्विस्संति वा।

×× ×× ××

प. से जहानामए केइ पुरिसे हिरण्णपेलं गहाय गच्छेज्जा,
एवामेव अणगारे वि भावियप्पा हिरण्णपेल-हत्थकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

उ. हंता उप्पएज्जा,
एवं सुवण्णपेलं रयणपेलं, वइरपेलं, वत्थपेलं, आभरणपेलं।

×× ×× ××

एवं वियलकडं, सुंबकडं, चम्मवडं, कंवलकडं।

×× ×× ××

एवं अयभारं, तंबभारं, तउयभारं, सीसगभारं, हिरण्णभारं, सुवण्णभारं, वइरभारं।

×× ×× ××

प. से जहानामए वग्गुली सिया, दो वि पाए उल्लंबिया-उल्लंबिया उड्ढंपादा अहोसिरा चिट्ठेज्जा,
एवामेव अणगारे वि भावियप्पा वग्गुली किच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

३. भावितात्मा अनगार की विकुर्वणा शक्ति का प्ररूपण–

राजगृह नगर में यावत् इस प्रकार पूछा–

प्र. जैसे कोई पुरुष रस्सी से बंधी हुई घटिका लेकर चलता है,
क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी रस्सी से बंधी हुई घटिकाएं स्वयं हाथ में लेकर उंचे आकाश में उड़ सकता है ?

उ. हां, गौतम ! वह उड़ सकता है।

प्र. भन्ते ! भावितात्मा अणगार गले पर रस्सी बंधी हुई घटिकाएं हाथ में लेकर चलने वाले कितने रूप बना सकता है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार एक युवती अपने हाथ से एक युवान पुरुष के हाथ को पकड़े अथवा पहिए की नाभि-आरे से व्याप्त होती है।

इसी प्रकार हे गौतम ! भावितात्मा अनगार भी वैक्रिय समुद्घात से समवहत होकर गले पर बंधी हुई घटिकाओं वाले रूपों से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को व्याप्त यावत् ठसाठस भर सकता है।

हे गौतम ! भावितात्मा अनगार का यह विषय और विषय मात्र कहा गया है।
उसने कभी इतने रूपों की विकुर्वणा की नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

×× ×× ××

प्र. जैसे कोई पुरुष हिरण्य की मंजूषा लेकर चलता है, वैसे ही क्या भावितात्मा अनगार भी हिरण्य-मंजूषा हाथ में लेकर स्वयं ऊंचे आकाश में उड़ सकता है ?

उ. हां उड़ सकता है।
इसी प्रकार स्वर्ण-मंजूषा, रत्नमंजूषा, वज्र-मंजूषा, वस्त्र-मंजूषा और आभरण-मंजूषा लेकर चलने वाले पुरुष का कथन है।

×× ×× ××

इसी प्रकार विदलकट (वांस की चटाई), शुम्बकट (घास की चटाई), चर्मकट एवं कम्बलकट इत्यादि का कथन है।

×× ×× ××

इसी प्रकार लोहे का भार, ताम्बे का भार, कलई का भार, शीशे का भार, हिरण्य का भार, सोने का भार और वज्र के भार का कथन है।

×× ×× ××

प्र. जैसे कोई वग्गुली पक्षी अपने दोनों पैर लटका-लटका कर, पैरों को ऊपर और सिर को नीचा किए रहती है,
क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी उक्त वग्गुली (चमगादड़) की तरह अपने रूप की विकुर्वणा करके स्वयं ऊंचे आकाश में उड़ सकता है ?

उ. हंता उप्पएज्जा।
एवं जण्णोवइयवत्तव्वया भाणियव्वा।

प. से जहानामए जलोया सिया, उदगंसि कायं उव्विहिया-उव्विहिया गच्छेजा,
एवामेव अणगारे वि भावियप्पा जलोया किच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

उ. हंता उप्पएज्जा, **सेसं जहा वग्गुलीए।**

प. से जहानामए बीयंबीयगसउणे सिया, दो वि पाए समतुरंगेमाणे-समतुरंगेमाणे गच्छेज्जा,
एवामेव अणगारे वि भावियप्पा बीयंबीयगसउणे किच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

उ. हंता उप्पएज्जा।

प. से जहानामए पक्खिविरालए सिया, रूक्खाओ रूक्खं डेवेमाणे-डेवेमाणे गच्छेज्जा,
एवामेव अणगारे वि भावियप्पा पक्खिविरालए किच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

उ. हंता उप्पएज्जा।

प. से जहानामए जीवंजीवगसउणे सिया, दो वि पाए समतुरंगेमाणे समतुरंगेमाणे गच्छेज्जा,
एवामेव अणगारे वि भावियप्पा जीवंजीवगसउणे किच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

उ. हंता उप्पएज्जा।

प. से जहानामए हंसे सिया, तीराओ तीरं अभिरममाणे-अभिरममाणे गच्छेज्जा,
एवामेव अणगारे वि भावियप्पा हंसकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

उ. हंता उप्पएज्जा।

प. से जहानामए समुद्दवायसए सिया, वीईओ वीइं डेवेमाणे-डेवेमाणे गच्छेज्जा,
एवामेव अणगारे वि भावियप्पा समुद्दवायसए किच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

उ. हंता उप्पएज्जा।

प. से जहानामए केइ पुरिसे चक्कं गहाय गच्छेज्जा,
एवामेव अणगारे वि भावियप्पा चक्कहत्थ किच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

उ. हंता उप्पएज्जा।
एवं छत्तं, एवं चम्मं।

प. से जहानामए केइ पुरिसे रयणं गहाय गच्छेज्जा,
एवामेव अणगारे वि भावियप्पा रयण हत्थ किच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

उ. हंता उप्पएज्जा।
एवं वइरं, वेरुलियं जाव रिट्ठं।

उ. हां, उड़ सकता है।
पूर्व कथित यज्ञोपवित के कथन के समान समझना चाहिये।

प्र. जैसे कोई जलौका अपने शरीर को उत्प्रेरित करके पानी में चलती है,
क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी जलौका की तरह अपने रूप की विकुर्वणा करके ऊँचे आकाश में उड़ सकता है ?

उ. हां, उड़ सकता है। **शेष सब वग्गुली की तरह समझना चाहिये।**

प्र. जैसे कोई बीजबीजक पक्षी अपने पैरों को घोड़े की तरह एक साथ उठाता-उठाता हुआ गमन करता है,
क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी बीजबीजक पक्षी की तरह विकुर्वणा करके ऊंचे आकश में गमन कर सकता है ?

उ. हां, गमन कर सकता है।

प्र. जैसे कोई बिडालक पक्षी एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष को लांघता-लांघता जाता है,
क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी बिडालक पक्षी की तरह विकुर्वणा करके ऊंचे आकाश में छलांग मार सकता है ?

उ. हां, छलांग मार सकता है।

प्र. जैसे कोई जीवजीवक पक्षी अपने दोनों पैरों को घोड़े के समान एक साथ उठाता-उठाता गमन करता है,
क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी जीवंजीवक पक्षी की तरह विकुर्वणा करके ऊंचे आकाश में गमन कर सकता है ?

उ. हां, गमन कर सकता है।

प्र. जैसे कोई हंस सरोवर के एक किनारे से दूसरे किनारे पर क्रीड़ा करता-करता चला जाता है,
क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी हंसवत् विकुर्वणा करके ऊंचे आकाश में क्रीड़ा कर सकता है ?

उ. हां, कर सकता है।

प्र. जैसे कोई समुद्रवायस सरोवर की एक लहर से दूसरी लहर का अतिक्रमण करता-करता चला जाता है,
क्या वैसे ही भावितात्मा अनगार भी समुद्रवायसवत् विकुर्वणा करके ऊंचे आकाश में अतिक्रमण कर सकता है ?

उ. हां, अतिक्रमण कर सकता है।

प्र. जैसे कोई पुरुष हाथ में चक्र लेकर चलता है,
क्या वैसे ही भावितात्मा अनगार भी तदनुसार विकुर्वणा करके चक्र हाथ में लेकर स्वयं ऊंचे आकाश में उड़ सकता है ?

उ. हां, उड़ सकता है।
इसी प्रकार छत्र, चंवर के सम्बन्ध में भी कथन करना चाहिए।

प्र. जैसे कोई पुरुष रत्न लेकर गमन करता है,
क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार रत्न हाथ में लिए हुए पुरुषवत् विकुर्वणा करके ऊंचे आकाश में उड़ सकता है ?

उ. हां, उड़ सकता है।
इसी प्रकार वज्र, वैडूर्य रिष्टरत्न पर्यंत कहना चाहिए।

प. से जहानामए उप्पलहत्थगं, पउमहत्थगं, कुमुदहत्थगं, नलिणहत्थगं, सुभगहत्थगं, सुगंधियहत्थगं, पोंडरीयहत्थगं, महापोंडरीयहत्थगं, सयपत्तहत्थगं, सहस्सपत्तगं गहाय गच्छेज्जा,

एवामेव अणगारे वि भावियप्पा एवं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा?

उ. हंता, उप्पएज्जा।

प. से जहानामए केइ पुरिसे भिसं अवद्दालिय-अवद्दालिय गच्छेज्जा,

एवामेव अणगारे वि भिसकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा?

उ. हंता, उप्पएज्जा।

प. से जहानामए मुणालिया सिया, उदगंसि कायं उम्मज्जिया-उम्मज्जिया चिट्ठेज्जा,

एवामेव अणगारे वि भावियप्पा मुणालिया किच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा?

उ. हंता, उप्पएज्जा। **सेसं जहा वग्गुलीए।**

प. **से जहानामए** वणसंडे सिया-किण्हे किण्होभासे **जाव** महामेहनिकुरंबभूए पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे,

एवामेव अणगारे वि भावियप्पा वणसंडकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा?

उ. हंता, उप्पएज्जा।

प. **से जहानामए** पुक्खरणी सिया-चउक्कोणा, समतीरा, अणुपुव्वसुजायवप्प-गंभीरसीयलजला **जाव** सद्दुन्नइयमहुरसणादिया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा, पडिरूवा।

एवामेव अणगारे वि भावियप्पा पोक्खरणीकिच्चगएणं अप्पाणेणं उडढं वेहासं उप्पएज्जा?

उ. हंता, उप्पएज्जा।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवइयाइं पभू पोक्खरणीकिच्चगयाइं रूवाइं विउव्वित्तए?

उ. तं चेव सव्वं जाव **अणगारस्स भावियप्पणो** अयमेयारूवे विसए विसयमेत्ते बुइए।

णो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा, विउव्वइ वा, विउव्विस्संति वा। *-विया. स. १३, उ. ९, सु. १-२५*

४. वाहिरए पोग्गल गहणेण भावियप्पणो अणगारस्स विउव्वण सत्ति परूवणं–

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू वेभारं पव्वयं उल्लंघेत्तए वा पलंघेत्तए वा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प्र. **जैसे कोई पुरुष** उत्पल हाथ में लेकर, पद्म हाथ में लेकर, कुमुद हाथ में लेकर, नलिनी हाथ में लेकर, सुभग हाथ में लेकर, सुगन्धित हाथ में लेकर, कमल हाथ में लेकर, बहुत बड़ा कमल हाथ में लेकर, शतपत्र हाथ में लेकर और सहस्रपत्र हाथ में लेकर चले–

क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार इन सबके समान विकुर्वणा करके ऊंचे आकाश में गमन कर सकता है?

उ. हां, गमन कर सकता है।

प्र. **जैसे कोई पुरुष कमल की डंडी** को तोड़ता-तोड़ता चलता है,

क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार कमल की डंडी तोड़ते हुए के समान विकुर्वणा करके ऊँचे आकाश में चल सकता है?

उ. हां, चल सकता है।

प्र. **जैसे कोई मृणालिका** हो **और** वह अपने शरीर को पानी में डुबाए रखती है तथा उसका मुख बाहर रहता है,

क्या इसी तरह भावितात्मा अणगार मृणालिका की तरह विकुर्वणा करके ऊँचे आकाश में रह सकता है?

उ. हां, रह सकता है। **शेष सब वग्गुली के समान समझना चाहिए।**

प्र. **जिस प्रकार कोई** वनखण्ड हो, जो काला हो **यावत्** महामेघ समूह के समान प्रसन्नतादायक, दर्शनीय, अभिरूप एवं प्रतिरूप हो,

क्या इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी स्वयं वनखण्ड के समान विकुर्वणा करके ऊँचे आकाश में उड़ सकता है?

उ. हां, उड़ सकता है।

प्र. **जैसे कोई पुष्करिणी** हो, जो चतुष्कोण और समतीर हो तथा अनुक्रम से जो शीतल गम्भीर जल से सुशोभित हो **यावत्** विविध पक्षियों के मधुर स्वरनाद आदि से युक्त हो तथा प्रसन्नतादायिनी, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हो,

क्या इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी उस पुष्करिणी के समान रूप की विकुर्वणा करके स्वयं ऊँचे आकाश में उड़ सकता है?

उ. हां, वह उड़ सकता है।

प्र. भन्ते ! भावितात्मा अनगार पुष्करिणी के समान कितने रूपों की विकुर्वणा कर सकता है?

उ. संपूर्ण कथन पूर्ववत् है **यावत्** भावितात्मा अनगार का यह विषय है, विषयमात्र कहा गया है।

उसने कभी इतने रूपों की विकुर्वणा की नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

४. बाह्य पुद्गलों के ग्रहण द्वारा भावितात्मा अणगार की विकुर्वणा शक्ति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या भावितात्मा अनगार बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किए बिना वैभारगिरि को लांघ सकता है, या बार-बार लांघ सकता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू वेभारं पव्वयं उल्लंघेत्तए वा पलंघेत्तए वा?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता जावइयाइं रायगिहे नगरे रूवाइं एवइयाइं विकुव्वित्ता वेभारं पव्वयं अंतो अणुप्पविसित्ता पभू समं वा विसमं करेत्तए? विसमं वा समं करेत्तए?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एवं चेव बिइओ वि आलावगो।

णवरं–परियातित्ता पभू। *-विया. स. ३, उ. ४, सु. १५-१८*

प्र. भन्ते ! क्या भावितात्मा अनगार, बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके क्या वैभारगिरि को लांघने में समर्थ है?

उ. हाँ, गौतम ! वह समर्थ है।

प्र. भन्ते ! भावितात्मा अणगार बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किए बिना राजगृह नगर में जितने भी रूप हैं, उतने रूपों की विकुर्वणा करके तथा वैभारपर्वत में प्रवेश करके क्या सम पर्वत को विषम कर सकता है? अथवा विषम पर्वत को सम कर सकता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इसी तरह दूसरा आलापक भी कहना चाहिए।

विशेष–बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा आदि कर सकता है।

५. भावियप्पमणगारं पडुच्च इत्थिरूव-विउव्वणपरूवणं–

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगं महं इत्थिरूवं वा जाव संदमाणियरूवं वा विकुव्वित्तए?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू एगं महं इत्थिरूवं वा जाव संदमाणियरूवं वा विकुव्वित्तए?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवइयाइं पभू इत्थिरूवाइं विकुव्वित्तए?

उ. गोयमा ! से जहानामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थंसि गेण्हेज्जा,

चक्कस्स वा नाभी अरगाउत्ता सिया,

एवामेव अणगारे वि भावियप्पा वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ जाव पभू णं गोयमा ! अणगारे णं भावियप्पा केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं बहूहिं इत्थीरूवेहिं आइण्णं वितिकिण्णं जाव करेत्तए।

एस णं गोयमा ! अणगारस्स भावियप्पणो अयमेवारूवे विसए विसयमेत्ते बुइए, णो चेव णं संपत्तीए विकुव्विंसु वा, विकुव्वंति वा, विकुव्विस्संति वा।

एवं परिवाडीए नेयव्वं जाव संदमाणिया।

-विया. स. ३, उ. ५ सु. १-३

५. भावितात्मा अनगार द्वारा स्त्रीरूप के विकुर्वण का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किए बिना एक बड़े स्त्रीरूप यावत् स्यन्दमानिका रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भन्ते ! भावितात्मा अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके एक बड़े स्त्रीरूप यावत् स्यन्दमानिका रूप की विकुर्वणा कर सकता है?

उ. हाँ, गौतम ! वह वैसा कर सकता है।

प्र. भन्ते ! भावितात्मा अनगार, कितने स्त्रीरूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है?

उ. गौतम ! जैसे कोई युवक, अपने हाथ से युवती के हाथ को पकड़ लेता है,

अथवा जैसे चक्र की धुरी आरों से व्याप्त होती है,

इसी प्रकार हे गौतम ! भावितात्मा अनगार भी वैक्रिय समुद्घात से समवहत होकर यावत् सम्पूर्ण जम्बूद्वीप नामक द्वीप को, बहुत-से स्त्रीरूपों से आकीर्ण, व्यतिकीर्ण यावत् कर सकता है।

हे गौतम ! भावितात्मा अनगार का यह और इस प्रकार विषय है, व विषयमात्र कहा गया है; उसने इतनी वैक्रिय शक्ति सम्प्राप्त होने पर भी कभी इतनी विक्रिया की नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

इस प्रकार की परिपाटी से स्यन्दमानिका-सम्बन्धी रूप विकुर्वणा करने पर्यंत कहना चाहिए।

६. भावियप्पमणगारं पडुच्च असिचम्म पाय हत्थकिच्चगय-रूवविउव्वण परूवणं–

प. से जहानामए केइ पुरिसे असिचम्मपायं गहाय गच्छेज्जा एवामेव अणगारे णं भावियप्पा असि-चम्म-पाय-हत्थकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा?

उ. हंता, उप्पएज्जा।

६. भावितात्मा अनगार द्वारा ढाल-तलवार हाथ में लिए हुए रूप के विकुर्वण का प्ररूपण–

प्र. जैसे कोई युवक ढाल और तलवार हाथ में लेकर जाता है, क्या उसी प्रकार कोई भावितात्मा अनगार भी ढाल-तलवार हाथ में लिए हुए किसी कार्यवश स्वयं आकाश में उड़ सकता है?

उ. हाँ, वह आकाश में उड़ सकता है।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवइयाइं पभू असिचम्मपाय-हत्थकिच्चगयाइं रूवाइं विउव्वित्तए ?

उ. गोयमा ! से जहानामए जुवइ जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा,

तं चेव जाव नो विकुव्विंसु वा, विकुव्वंति वा, विकुव्विस्संति वा। *–विया. स. ३ उ. ५ सु. ४-५*

७. भावियप्पमणगारं पडुच्च पडाग-रूवविउव्वण परूवणं–

प. से जहानामए केइ पुरिसे एगओपडागं काउं गच्छेज्जा,

एवामेव अणगारे वि भावियप्पा एगओपडाग-हत्थकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! उप्पएज्जा।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवइयाइं पभू एगओपडाग-हत्थकिच्चगयाइं रूवाइं विकुव्वित्तए ?

उ. गोयमा ! एवं चेव जाव नो विकुव्विंसु वा, विकुव्वंति वा, विकुव्विस्संति वा।

एवं दुहओपडागं पि। *–विया. स. ३, उ.५, सु. ६-७*

८. भावियप्पमणगारं पडुच्च जण्णोवइत्त-रूवविउव्वण परूवणं–

प. से जहानामए केइ पुरिसे एगओ जण्णोवइत्तं काउं गच्छेज्जा,

एवामेव अणगारे वि भावियप्पा एगओ जण्णोवइत्तकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! उप्पएज्जा।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवइयाइं पभू एगओजण्णोवइत्तकिच्चगयाइं रूवाइं विकुव्वित्तए ?

उ. गोयमा ! एवं चेव जाव नो विकुव्विंसु वा, विकुव्वंति वा, विकुव्विस्संति वा।

एवं दुहओजण्णोवइयंपडागं पि। *–विया. स. ३, उ. ५, सु. ८-९*

९. भावियप्पमणगारं पडुच्च पल्हत्थियं रूवविउव्वणपरूवणं–

प. से जहानामए केइ पुरिसे एगओपल्हत्थियं काउं चिट्ठेज्जा,

एवामेव अणगारे वि भावियप्पा एगओपल्हत्थिय किच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

उ. गोयमा ! तं चेव जाव नो विकुव्विंसु वा, विकुव्वंति वा, विकुव्विस्संति वा।

प्र. भन्ते ! भावितात्मा अनगार, कार्यवश तलवार एवं ढाल हाथ में लिए हुए पुरुष के जैसे कितने रूपों की विकुर्वणा कर सकता है ?

उ. गौतम ! जैसे कोई युवक अपने हाथ से युवती के हाथ को पकड़ लेता है

यावत् यहाँ सब पूर्ववत् कहना चाहिये। परन्तु इतने वैक्रियकृत रूप बनाए नहीं, बनाता नहीं और बनाएगा भी नहीं।

७. भावितात्मा अनगार द्वारा पताका लिए हुए रूप के विकुर्वण का प्ररूपण–

प्र. जैसे कोई पुरुष एक हाथ में पताका लेकर गमन करता है,

क्या इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी कार्यवश हाथ में एक पताका लेकर स्वयं ऊपर आकाश में उड़ सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह आकाश में उड़ सकता है।

प्र. भन्ते ! भावितात्मा अनगार, कार्यवश हाथ में एक पताका लेकर चलने वाले पुरुष के जैसे कितने रूपों की विकुर्वणा कर सकता है ?

उ. गौतम ! यहां सब पहले की तरह कहना चाहिए यावत् इतने रूपों की विकुर्वणा की नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

इसी तरह दोनों ओर पताका लिए हुए पुरुष के जैसे रूपों की विकुर्वणा के सम्बन्ध में कहना चाहिए।

८. भावितात्मा अनगार द्वारा यज्ञोपवीत धारण किए हुए रूप के विकुर्वण का प्ररूपण–

प्र. जैसे कोई पुरुष एक तरफ यज्ञोपवीत धारण करके चलता है,

क्या इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी कार्यवश एक तरफ यज्ञोपवीत धारण किए हुए पुरुष की तरह स्वयं ऊपर आकाश में उड़ सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह आकाश में उड़ सकता है।

प्र. भन्ते ! भावितात्मा अनगार कार्यवश एक तरफ यज्ञोपवीत धारण किए हुए पुरुष के जैसे कितने रूपों की विकुर्वणा कर सकता है ?

उ. गौतम ! पहले कहे अनुसार जान लेना चाहिए यावत् इतने रूपों की विकुर्वणा कभी की नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

इसी तरह दोनों ओर यज्ञोपवीत धारण किए हुए पुरुष की तरह रूपों की विकुर्वणा करने के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिए।

९. भावितात्मा अनगार द्वारा पल्हथी मार कर बैठे हुए रूप के विकुर्वण का प्ररूपण–

प्र. जैसे कोई पुरुष, एक तरफ पल्हथी मार कर बैठे,

क्या इसी तरह भावितात्मा अनगार भी एक पल्हथी लगाये हुए उस पुरुष के जैसे स्वयं आकाश में उड़ सकता है ?

उ. गौतम ! पहले कहे अनुसार जानना चाहिए; यावत् इतने विकुर्वित रूप कभी बनाए नहीं, बनाता नहीं और बनाएगा भी नहीं।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू एगं महं गामरूवं वा नगररूवं वा जाव सन्निवेसरूवं वा विकुव्वित्तए ?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा केवइयाइं पभू गामरूवाइं विकुव्वित्तए ?

उ. गोयमा ! से जहानामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा जाव नो विकुव्विंसु वा, विकुव्वंति वा, विकुव्विस्संति वा।

एवं जाव सन्निवेसरूवं वा।

–विया. स. ३, उ. ६, सु. ११-१३

प्र. भंते ! भावितात्मा अनगार बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके एक बड़े ग्रामरूप की, नगररूप की यावत् सन्निवेश के रूप की विकुर्वणा कर सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! कर सकता है।

प्र. भन्ते ! भावितात्मा अनगार कितने ग्रामरूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है ?

उ. गौतम ! जैसे युवक-युवती का हाथ अपने हाथ से दृढ़तापूर्वक पकड़ कर चलता है यावत् इतने रूपों की विकुर्वणा कभी की नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

इसी प्रकार सन्निवेशरूपों पर्यन्त की विकुर्वणा कहनी चाहिए।

१३. विकुव्वणाकारी अणगारस्स आराहग विराहगत्त परूवणं–

प. से भंते ! किं मायी विकुव्वइ, अमायी विकुव्वइ ?

उ. गोयमा ! मायी विकुव्वइ, नो अमायी विकुव्वइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"मायी विकुव्वइ, नो अमायी विकुव्वइ ?"

उ. गोयमा ! मायी णं पणीयं पाण-भोयणं भोच्चा-भोच्चा वामेइ,
तस्स णं तेणं पणीएणं पाणभोयणेणं अट्ठि-अट्ठिमिंजा बहलीभवंति, पयणुए मंस-सोणिए भवइ,

जे वि य से अहाबादरा पोग्गला ते वि य से परिणमंति, तं जहा–
सोइंदियत्ताए जाव फासिंदियत्ताए, अट्ठि - अट्ठिमिंज - केस - मंसु - रोम - नहत्ताए सुक्कत्ताए सोणियत्ताए।

अमायी णं लूहं पाण-भोयणं भोच्चा भोच्चा णो वामेइ,
तस्स णं तेणं लूहेणं पाण - भोयणेणं अट्ठि- अट्ठिमिंजा पतणूभवइ, बहले मंस सोणिए,

जे वि य से अहाबादरा पोग्गला ते वि य से परिणमंति, तं जहा–
उच्चारत्ताए पासवणत्ताए जाव सोणियत्ताए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"मायी विकुव्वइ, नो अमायी विकुव्वइ।"

मायी णं तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ णत्थि तस्स आराहणा।

१३. विकुर्वणाकारी अणगार के आराधक विराधकत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या मायी अनगार विकुर्वणा करता है या अमायी अनगार विकुर्वणा करता है ?

उ. गौतम ! मायी अनगार विकुर्वणा करता है, अमायी अनगार विकुर्वणा नहीं करता है।

प्र. भन्ते ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि–
'मायी अनगार विकुर्वणा करता है, अमायी अनगार विकुर्वणा नहीं करता है ?'

उ. गौतम ! मायी अनगार प्रणीत भोजन-पान करता है। इस प्रकार बार-बार भोजन-पान करके वह वमन करता है।

उस भोजन-पान से उसकी हड्डियां और हड्डियों में रही मज्जा गाढ़ हो जाती है, उसका रक्त और मांस पतला हो जाता है।

उस भोजन के जो स्थूल पुद्गल होते हैं, उनका परिणमन उस-उस रूप में होता है, यथा–

श्रोत्रेन्द्रिय रूप में यावत् स्पर्शेन्द्रिय रूप में तथा हड्डियों, हड्डियों की मज्जा, केश, दाढ़ी, मूंछ, रोम, नख, वीर्य, रक्त के रूप में वे परिणत होते हैं।

अमायी अनगार तो रुक्ष भोजन पान का सेवन करता है और ऐसे रूक्ष भोजन-पान का उपभोग करके वह वमन नहीं करता। उस रूक्ष भोजन-पान के सेवन से उसकी हड्डियां तथा हड्डियों की मज्जा पतली होती है तथा उसका मांस और रक्त गाढ़ा हो जाता है।

उस भोजन-पान के जो स्थूल पुद्गल होते हैं, उनका परिणमन उस-उस रूप में होता है, यथा–

मल, मूत्र यावत् रक्तरूप में परिणमन हो जाता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'मायी अनगार विकुर्वणा करता है और अमायी अनगार विकुर्वणा नहीं करता है।'

मायी अनगार अपने द्वारा किए गए वैक्रियकरणरूप की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना यदि काल करता है तो उसके आराधना नहीं होती।

अमायी णं तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कंते कालं करेइ अत्थि तस्स आराहणा[1]। *–विया. स. ३, उ. ४, सु. १९*

प. से भंते ! किं मायी विकुव्वइ ? अमायी विकुव्वइ ?

उ. गोयमा ! मायी विकुव्वइ, णो अमायी विकुव्वइ[2]। *–विया. स. १३ उ. ९ सु. २६*

अमायी अनगार यदि आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करता है तो उसके आराधना होती है।

प्र. भन्ते ! क्या विकुर्वणा मायी करता है या अमायी करता है ?

उ. गौतम ! मायी विकुर्वणा करता है, अमायी विकुर्वणा नहीं करता है।

१४. माइस्स विकुव्वणा करणं उप्पत्ति य परूवणं–

प. से भंते ! किं मायी विकुव्वइ ? अमायी विकुव्वइ ?

उ. गोयमा ! मायी विकुव्वइ, णो अमायी विकुव्वइ।

माई णं तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ अण्णयरेसु आभिओगिएसु देवलोगेसु देवत्ताए उववज्जइ।

अमाई णं तस्स ठाणस्स आलोइय पडिक्कंते कालं करेइ अण्णयरेसु अणाभिओगिएसु देवलोगेसु देवत्ताए उववज्जइ। *–विया. स. ३, उ. ५, सु. १५-१६*

१४. मायी का विकुर्वणा करना और उत्पत्ति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या मायी अनगार विकुर्वणा करता है या अमायी अनगार विकुर्वणा करता है ?

उ. गौतम ! मायी अनगार विकुर्वणा करता है, अमायी अनगार विकुर्वणा नहीं करता है।

मायी अनगार उस प्रकार की विकुर्वणा करने के पश्चात् उस स्थान की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किए बिना ही काल करता है तो वह मृत्यु पाकर आभियोगिक देवलोकों में से किसी एक देवलोक में देवरूप में उत्पन्न होता है।

किन्तु अमायी अनगार उस प्रकार की विकुर्वणा करने के पश्चात् पश्चात्तापपूर्वक उक्त प्रमाद रूप दोष स्थान का आलोचन प्रतिक्रमण करके काल करता है तो वह मर कर अनाभियोगिक देवलोकों में से किसी देवलोक में देवरूप में उत्पन्न होता है।

१५. असंवुडाणं अणगारस्स विकुव्वणसामत्थ परूवणं–

प. असंवुडे णं भंते ! अणगारे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. असंवुडे णं भंते ! अणगारे बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए ?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. से णं भंते ! किं इहगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ ?

तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ ?
अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ ?

उ. गोयमा ! इहगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ,

नो तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ,

नो अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ।

एवं २. एगवण्णं अणेगरूवं, ३. अणेगवण्णं एगरूवं, ४. अणेगवण्णं अणेगरूवं- चउभंगो।

प. असंवुडे णं भंते ! अणगारे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू कालगं पोग्गलं नीलगपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए ?

१५. असंवृत अनगार की विकुर्वणा सामर्थ्य का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या असंवृत अनगार बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किए बिना, एक वर्ण वाले एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भन्ते ! क्या असंवृत अनगार बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके एक वर्ण वाले एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह ऐसा करने में समर्थ है।

प्र. भन्ते ! वह असंवृत अनगार यहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है,

या वहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है अथवा अन्यत्र रहे पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है ?

उ. गौतम ! वह यहां रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है,

किन्तु न तो वहां रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है,

और न ही अन्यत्र रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है।

इस प्रकार २. एकवर्ण अनेकरूप, ३. अनेक वर्ण एक रूप, ४. अनेक वर्ण अनेक रूप; यों चौभंगी का कथन किया गया है।

प्र. भन्ते ! असंवृत अनगार बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किए बिना- काले पुद्गलों को नीले पुद्गलों के रूप में परिणत करने में समर्थ है ?

---

१. विया. स. १३, उ. ९, सु. २७ २. (क) विया. स. ३, उ. ५, सु. १५ (१) (ख) विया. स. ३, उ. ४, सु. १९

नीलगं पोग्गलं वा कालगपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

परियाइत्ता पभू जाव - नीलगं पोग्गलं वा कालगपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए।

प. असंवुडे णं भंते ! अणगारे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू निद्धपोग्गलं लुक्खपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए ?

लुक्खपोग्गलं निद्धपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए ?

उ. गोयमा ! णों इणट्ठे समट्ठे, परियाइत्ता पभू।

प. से णं भंते ! किं इहगए पोग्गले परियाइत्ता परिणामेइ ?

तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता परिणामेइ ?

अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता परिणामेइ ?

उ. गोयमा ! इहगए पोग्गले परियाइत्ता परिणामेइ,

णो तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता परिणामेइ,
णो अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता परिणामेइ।

–विया. स. ७, उ. ९, सु. १-४

१६. चोद्दसपुव्विस्स सहस्स रूवकरण सामत्थं–

प. पभू णं भंते ! चोद्दसपुव्वी घडाओ घडसहस्सं, पडाओ पडसहस्सं, कडाओ कडसहस्सं, रहाओ रहसहस्सं, छत्ताओ छत्तसहस्सं, दंडाओ दंडसहस्सं, अभिनिव्वत्तित्ता उवदंसेत्तए ?

उ. हंता गोयमा ! पभू।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

पभू चोद्दसपुव्वी घडाओ घडसहस्सं जाव दंडाओ दंडसहस्सं अभिनिव्वत्तित्ता उवदंसेत्तए ?

उ. गोयमा ! चउद्दसपुव्विस्स णं अणंताइं दव्वाइं उक्करियाभेएणं भिज्जमाणाइं लद्धाइं पत्ताइं अभिसमन्नागयाइं भवंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

पभू चोद्दसपुव्वी घडाओ घडसहस्सं जाव दंडाओ दंडसहस्सं अभिनिव्वत्तित्ता उवदंसेत्तए।

–विया. स. ५, उ. ४, सु. ३६

१७. भावियप्पा अणगारस्स ओगहणं सामत्थं–

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा असिधारं वा खुरधारं वा ओगाहेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! ओगाहेज्जा।

प. से णं तत्थ छिज्जेज्ज वा भिज्जेज्ज वा ?

'या नीले पुद्गलों को काले पुद्गलों के रूप में परिणमन करने में समर्थ है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके यावत् नीले पुद्गलों को काले पुद्गलों के रूप में परिणमन करने में समर्थ है।

प्र. भन्ते ! असंवृत अनगार बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किए बिना चिकने पुद्गलों को रूखे पुद्गलों के रूप में परिणमन करने में समर्थ है ?

या रूखे पुद्गलों को चिकने पुद्गलों के रूप में परिणमन करने में समर्थ है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है (बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके) परिणमन करने में समर्थ है।

प्र. भन्ते ! वह असंवृत अनगार यहां रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके परिणमन करता है या,

वहां रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके परिणमन करता है अथवा

अन्यत्र रहे पुद्गलों को ग्रहण करके परिणमन करता है ?

उ. गौतम ! वह यहां रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके परिणमन करता है,

किन्तु न तो वहां रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके परिणमन करता है, और न ही अन्यत्र रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके परिणमन करता है।

१६. चौदहपूर्वी के हजार रूप करने का सामर्थ्य–

प्र. भंते ! क्या चतुर्दशपूर्वधारी एक घड़े में से हजार घड़े, एक वस्त्र में से हजार वस्त्र, एक कट (चटाई) में से हजार कट, एक रथ में से हजार रथ, एक छत्र में से हजार छत्र और एक दण्ड में से हजार दण्ड करके दिखलाने में समर्थ है ?

उ. हाँ, गौतम ! वे ऐसा करके दिखलाने में समर्थ हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

चतुर्दशपूर्वधारी एक घट में से हजार घट यावत् एक दण्ड में से हजार दण्ड दिखलाने में समर्थ हैं ?

उ. गौतम ! चतुर्दशपूर्वधारी ने उत्करिका भेद द्वारा भेदे जाते हुए अनन्त द्रव्यों को लब्ध किया है तथा अभिसमन्वागत किया है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

चतुर्दशपूर्वधारी एक घट में से हजार घट यावत् एक दण्ड में से हजार दण्ड करके दिखलाने में समर्थ है।

१७. भावितात्मा अनगार का अवगाहन सामर्थ्य–

प्र. भन्ते ! क्या भावितात्मा अनगार (वैक्रियलब्धि के सामर्थ्य से) तलवार की धार पर अथवा उस्तरे की धार पर रह सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह रह सकता है।

प्र. क्या वह वहां छिन्न या भिन्न होता है ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! वीइवएज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ झियाएज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा पुक्खलसंवट्टगस्स महामेहस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! वीइवएज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ उल्ले सिया ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा गंगाए महाणदीए पडिसोयं हव्वमागच्छेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! हव्वमागच्छेज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ विणिहायमावज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा उदगावत्तं वा उदगबिंदु वा ओगाहेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! ओगाहेज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ परियावज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

–विया. स. १८ उ. १० सु. २-३

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि उस पर शस्त्र संक्रमण नहीं करता।

प्र. भन्ते ! क्या भावितात्मा अनगार अग्निकाय के बीच में से होकर निकल सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह निकल सकता है।

प्र. भन्ते ! क्या वह वहाँ जलता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि उस पर शस्त्र संक्रमण नहीं करता।

प्र. भन्ते ! क्या भावितात्मा अनगार पुष्कर-संवर्त्तक महामेघ के मध्य प्रवेश कर सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह प्रवेश कर सकता है।

प्र. भन्ते ! क्या वह वहाँ पर गीला होता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि उस पर शस्त्र संक्रमण नहीं करता।

प्र. भन्ते ! क्या भावितात्मा अनगार गंगा-सिन्धु नदियों के प्रतिस्रोत में से होकर निकल सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह निकल सकता है।

प्र. भन्ते ! क्या वह विनष्ट हो जाता है

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि उस पर शस्त्र संक्रमण नहीं करता।

प्र. भन्ते ! क्या भावितात्मा अनगार उदकावर्त में या उदकविन्दु में प्रवेश कर सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह प्रवेश कर सकता है।

प्र. भन्ते ! क्या वह परिताप को प्राप्त होता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि उस पर शस्त्र संक्रमण नहीं करता।

१८. पंचविहदेवाणं विकुव्वणा-सत्ति–

प. १. भवियदव्वदेवा णं भंते ! किं एगत्तं पि पभू विउव्वित्तए, पुहत्तं पि पभू विउव्वित्तए ?

उ. गोयमा ! एगत्तं पि पभू विउव्वित्तए,
पुहत्तं पि पभू विउव्वित्तए।
एगत्तं विउव्वमाणे एगिंदियरूवं वा जाव पंचेंदियरूवं वा,
पुहत्तं विउव्वमाणे एगिंदियरूवाणि वा जाव पंचेंदियरूवाणि वा।
ताइं संखेज्जाणि वा, असंखेज्जाणि वा,
संबद्धाणि वा असंबद्धाणि वा,
सरिसाणि वा असरिसाणि वा विउव्वंति,
विउव्वित्ता तओ पच्छा जहिच्छियाइं कज्जाइं करेंति।
एवं २. नरदेवा वि, ३. धम्मदेवा वि।

प. ४. देवाहिदेवा णं भंते ! किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए, पुहत्तं पि पभू विउव्वित्तए ?

१८. पांच प्रकार के देवों की विकुर्वणा शक्ति–

प्र. १. भन्ते ! क्या भव्य द्रव्य देव एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ है या अनेक रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है ?

उ. गौतम ! वह एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ है और अनेक रूपों की विकुर्वणा करने में भी समर्थ हैं।
एक रूप की विकुर्वणा करता हुआ वह एक एकेन्द्रिय रूप यावत् पंचेन्द्रिय रूप की विकुर्वणा करता है।
अनेक रूपों की विकुर्वणा करता हुआ अनेक एकेन्द्रिय रूपों यावत् अनेक पंचेन्द्रिय रूपों की विकुर्वणा करता है।
वे रूप संख्येय या असंख्येय,
सम्बद्ध अथवा असम्बद्ध, अथवा
सदृश या असदृश विकुर्वित किए जाते हैं।
विकुर्वणा करने के बाद वे अपना यथेष्ट कार्य करते हैं।
इसी प्रकार २. नरदेव और ३. धर्मदेव की विकुर्वणा के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. ४. भन्ते ! देवाधिदेव क्या एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ है या अनेक रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है ?

उ. गोयमा ! एगत्तं पि पभू विउव्वित्तए, पुहत्तं पि पभू विउव्वित्तए,

णो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा, विउव्वंति वा, विउव्विस्संति वा।

५. भावदेवा जहा भवियदव्वदेवा।

–विया. स. १२, उ. ९, सु. १७-२०

उ. गौतम ! वह एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं और अनेक रूपों की विकुर्वणा करने में भी समर्थ हैं।

किन्तु शक्ति होते हुए भी उन्होंने कभी विकुर्वणा नहीं की, नहीं करते हैं और न करेंगे।

५. जिस प्रकार भव्य-द्रव्यदेव का कथन किया है, उसी प्रकार भावदेव का भी कथन करना चाहिए।

१९. चउव्विहे देव-देविंदसामाणियाईणं इड्ढि विउव्वणाई परूवणं–

तेणं कालेणं तेणं समएणं मोया नामं नगरी होत्था, **वण्णओ।**

तीसे णं मोयाए नगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए णं नंदणे नामं चेइए होत्था। **वण्णओ।**

तेणं कालेणं सामी समोसढे, परिसा निग्गच्छइ पडिगया परिसा।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स दोच्चे अंतेवासी अग्गिभूई नामं अणगारे गोयमे गोत्तेणं सत्तुस्सेहे जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी–

प. चमरे णं भंते ! असुरिंदे असुरराया के महिड्ढीए ? के महज्जुईए ? के महाबले ? के महायसे ? के महासोक्खे ? के महाणुभागे ? केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए ?

उ. गोयमा ! चमरे णं असुरिंदे असुरराया महिड्ढीए जाव महाणुभागे।

से णं तत्थ चोत्तीसाएभवणावाससयसहस्साणं,
चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं, तायत्तीसाए
तायत्तीसगाणं जाव विहरइ।

एमहिड्ढीए जाव ए महाणुभागे, एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए–

से जहानामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा,

चक्कस्स वा नाभी अरगाउत्ता सिया,

एवामेव गोयमा ! चमरे असुरिंदे असुरराया वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहण्णित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ, तं जहा–रयणाणं जाव रिट्ठाणं, अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडेत्ता अहासुहुमे पोग्गले परियाइयइ

परियाइयत्ता दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ समोहण्णित्ता

१९. चतुर्विध देव-देवेन्द्र और सामानिकादिकों की ऋद्धि विकुर्वणा आदि का प्ररूपण–

उस काल और उस समय में "मोका" नाम की नगरी थी। उसका वर्णन करना चाहिए।

इस मोका नगरी के बाहर उत्तरपूर्व के दिशाभाग में, अर्थात् ईशानकोण में नन्दन नाम का चैत्य (उद्यान) था। उसका वर्णन करना चाहिए।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे। (श्रमण भगवान् महावीर का आगमन जानकर) परिषद् (उनके दर्शनार्थ) निकली (भगवान् का धर्मोपदेश सुनकर) परिषद् वापस चली गई।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के द्वितीय अन्तेवासी गौतमगोत्री सात हाथ ऊंचे यावत् शरीर सम्पदा से युक्त अग्निभूति नामक अनगार ने पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछा–

प्र. भंते ! असुरों का इन्द्र असुरराज चमरेन्द्र कितनी बड़ी ऋद्धि वाला है ? कितनी बड़ी द्युति वाला है ? कितने महान् बल से सम्पन्न है ? कितना महान् यशस्वी है ? कितने महान् सुखों से सम्पन्न है ? कितने महान् प्रभाव वाला है ? और वह कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ है ?

उ. गौतम ! असुरों का इन्द्र असुरराज चमर महान् ऋद्धि वाला है यावत् महाप्रभावशाली है।

वह वहां चौंतीस लाख भवनावासों पर, चौंसठ हजार सामानिक देवों पर और तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों पर आधिपत्य करता हुआ यावत् विचरण करता है।

वह चमरेन्द्र इतनी बड़ी ऋद्धि वाला है यावत् ऐसे महाप्रभाव वाला है और इस प्रकार की विक्रिया करने में समर्थ है,

हे गौतम ! जैसे कोई युवा पुरुष (अपने) हाथ से युवती स्त्री के हाथ को (दृढ़तापूर्वक) पकड़ता है,

अथवा जैसे गाड़ी के पहिये की नाभि आरों से अच्छी तरह जुड़ी हुई एवं सुसम्बद्ध होती है

इसी प्रकार हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है और समवहत होकर संख्यात योजन प्रमाण वाला दण्ड निकालता है तथा उसके द्वारा रत्नों के यावत् रिष्ट रत्नों के स्थूल पुद्गलों को झाड़ देता है और सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करता है।

ग्रहण करके फिर दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है, समवहत होकर–

पभू णं गोयमा ! चमरे असुरिंदे असुरराया केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहिं य आइण्णे विइकिण्णं उवत्थडं संथडं फुडं अवगाढावगाढं करेत्तए।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! पभू चमरे असुरिंदे असुरराया तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य आइण्णे विइकिण्णे उवत्थडे संथडे फुडे अवगाढावगाढे करेत्तए।

एस णं गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो अयमेयारूवे विसए विसयमेत्ते वुइए, णो चेव णं संपत्तीए विकुव्विंसु वा, विकुव्वइ वा, विकुव्विस्सइ वा।

हे गौतम ! वह असुरेन्द्र असुरराज चमर, वहुत से असुरकुमार देवों और देवियों द्वारा परिपूर्ण जम्बूद्वीप नामक द्वीप को आकीर्ण व्यतिकीर्ण उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढ़ावगाढ करने में समर्थ है।

अथवा हे गौतम ! वह असुरेन्द्र असुरराज चमर, अनेक असुरकुमार देव देवियों द्वारा इस तिर्यग्लोक में भी असंख्यात द्वीपों और समुद्रों तक के स्थल को आकीर्ण व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढावगाढ करने में समर्थ है।

हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की ऐसी शक्ति का विषय और विषयमात्र वताया गया है परन्तु चमरेन्द्र ने ऐसी शक्ति के रहते हुए भी कभी विकुर्वणा की नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

प. जइ णं भंते ! चमरे असुरिंदे असुरराया एमहिड्ढीए **जाव** एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए, चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररण्णो सामाणिया देवा के महिड्ढीया **जाव** केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए?

उ. गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो सामाणिया देवा महिड्ढीया **जाव** महाणुभागा।

ते णं तत्थ साणं-साणं भवणाणं, साणं-साणं सामाणियाणं, साणं-साणं अग्गमहिसीणं **जाव** दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

एमहिड्ढीया **जाव** एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए–

से जहानामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा

चक्कस्स वा नाभी अरयाउत्ता सिया,

एवामेव गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो एगमेगे सामाणिए देवे वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहण्णित्ता **जाव** दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ समोहण्णित्ता

पभू णं गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो एगमेगे सामाणिए देवे केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य आइण्णं विइकिण्णं उवत्थडं संथडं फुडं अवगाढावगाढं करेत्तए।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! पभू चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो एगमेगे सामाणियदेवे तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे वहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य आइण्णे विइकिण्णे उवत्थडे संथडे फुडे अवगाढावगाढे करेत्तए।

एस णं गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो एगमेगस्स सामाणियदेवस्स अयमेयारूवे विसए विसयमेत्ते वुइए, णो चेव णं संपत्तीए विकुव्विंसु वा, विकुव्वइ वा, विकुव्विस्सइ वा।

प्र. भंते ! असुरेन्द्र असुरराज चमर जव ऐसी वड़ी ऋद्धि वाला है **यावत्** इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ है तव भंते ! उस असुरराज असुरेन्द्र चमर के सामानिक देव कितनी वड़ी ऋद्धि वाले हैं **यावत्** कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ हैं?

उ. गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के सामानिक देव, महती ऋद्धि वाले हैं **यावत्** महाप्रभावशाली हैं।

वे वहां अपने-अपने भवनों पर, अपने अपने सामानिक देवों पर तथा अपनी अपनी अग्रमहिषियों (पटरानियों) पर आधिपत्य करते हुए **यावत्** दिव्य भोगों का उपभोग करते हुए विचरते हैं।

ये इस प्रकार की वड़ी ऋद्धि वाले हैं **यावत्** इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ हैं।

हे गौतम ! जैसे कोई युवा पुरुष अपने हाथ से युवती स्त्री के हाथ को पकड़ता है।

अथवा जैसे गाड़ी के पहिये की धुरी आरों से सुसम्वद्ध होती है।

इसी प्रकार हे गौतम ! विकुर्वणा करने के लिए असुरेन्द्र असुरराज चमर का एक एक सामानिक देव वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है **यावत्** दूसरी वार भी वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है और समवहत होकर–

गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर का प्रत्येक सामानिक देव इस सम्पूर्ण जम्वूद्वीप नामक द्वीप को बहुत से असुरकुमार देवों और देवियों से आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढावगाढ कर सकता है।

इसके उपरान्त हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर का एक-एक सामानिक देव, इस तिर्यग्लोक के असंख्य द्वीपों और समुद्रों तक के स्थल को वहुत से असुरकुमार देवों और देवियों से आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढावगाढ कर सकता है।

हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के प्रत्येक सामानिक देव में इस प्रकार की विकुर्वणा करने की शक्ति का विषय और विषयमात्र वताया गया है परन्तु चमरेन्द्र के किसी भी सामानिक देव ने ऐसी शक्ति के रहते हुए भी न कभी विकुर्वणा की है, न ही करता है और न ही करेगा।

प. जइ णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो सामाणिया देवा एमहिड्ढीया जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररण्णो तायत्तीसिया देवा केमहिड्ढीया जाव केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए ?

प्र. भंते ! असुरेन्द्र असुरराज चमर के सामानिक देव यदि इस प्रकार की महती ऋद्धि से सम्पन्न हैं यावत् विकुर्वणा करने में समर्थ हैं, तो भंते ! उस असुरेन्द्र असुरराज चमर के त्रायस्त्रिंशक देव कितनी वड़ी ऋद्धि वाले हैं ? यावत् वे कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ हैं ?

उ. गोयमा ! तायत्तीसिया देवा जहा सामाणिया देवा तहा नेयव्वा।

लोगपाला तहेव।

णवरं–संखेज्जा दीव-समुद्दा भाणियव्वा।

उ. गौतम ! जैसे सामानिक देवों के विषय में कहा वैसे ही त्रायस्त्रिंशक देवों के विषय में भी कहना चाहिए।

लोकपालों के विषय में भी इसी तरह कहना चाहिए।

विशेष–लोकपाल विकुर्वित देव देवियों के संख्यात द्वीप समुद्र कहने चाहिए।

प. जइ णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो लोगपाला देवा एमहिड्ढीया जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररण्णो अग्गमहिसीओ देवीओ केमहिड्ढीयाओ जाव केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए ?

प्र. भंते ! जब असुरेन्द्र असुरराज चमर के लोकपाल ऐसी महाऋद्धि वाले हैं यावत् वे इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ हैं, तव असुरेन्द्र असुरराज चमर की अग्रमहिषियाँ कितनी वड़ी ऋद्धि वाली हैं यावत् वे कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ हैं ?

उ. गोयमा ! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो अग्गमहिसीओ महिड्ढीयाओ जाव एमहाणुभागाओ, ताओ णं तत्थ साणं साणं भवणाणं, साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं, साणं साणं महत्तरियाणं, साणं-साणं परिसाणं जाव एमहिड्ढीयाओ,

अन्नं जहा लोगपालाणं अपरिसेसं,

उ. गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की अग्रमहिषी देवियाँ महाऋद्धिसम्पन्न हैं यावत् महाप्रभावशालिनी हैं। वे अपने अपने भवनों पर अपने अपने एक हजार सामानिक देवों पर अपनी अपनी महत्तरिका देवियों पर और अपनी-अपनी परिषदाओं पर आधिपत्य करती हुई विचरती हैं यावत् वे अग्रमहिषियाँ ऐसी महाऋद्धिवाली हैं।

शेष सव वर्णन लोपालों के समान कहना चाहिए।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं दोच्चे गोयमे समणे भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव तच्चे गोयमे वायुभूई अणगारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता तच्चं गोयमं वायुभूइं अणगारं एवं वयासि

भंते ! यह इसी प्रकार है भंते ! यह इसी प्रकार हे (यों कहकर) द्वितीय गौतम गोत्रीय अग्निभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन नमस्कार करते हैं, वन्दन नमस्कार करके जहां तृतीय गौतम ! (गोत्रीय) वायुभूति अनगार थे, वहां आए। उनके निकट पहुंचकर वे तृतीय गौतम (गोत्रीय) वायुभूति अनगार से यों वोले

'एवं खलु गोयमा ! चमरे असुरिंदे असुरराया एमहिड्ढीए ते चेव एवं सव्वं अपुट्ठवागरणं नेयव्वं अपरिसेसिय जाव अग्गमहिसीणं वत्तव्वया समत्ता।

हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी महाऋद्धि वाला है।

इत्यादि समग्र वर्णन विना पूछे ही अग्रमहिषियों पर्यन्त कहा।

तए णं से तच्चे गोयमे वायुभूई अणगारे दोच्चस्स गोयमस्स अग्गिभूइस्स अणगारस्स एवमाइक्खमाणस्स जाव एयमट्ठं नो सद्दहइ, नो पत्तियइ, नो रोयइ, एयमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे उट्ठाए उट्ठेइ उट्ठित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी–

तदनन्तर द्वितीय (गणधर) गौतम गोत्रीय अग्निभूति अनगार द्वारा इस प्रकार से कहे गए यावत् इस अर्थ पर तृतीय गौतम वायुभूति अनगार को श्रद्धा नहीं हुई, प्रतीति न हुई, न ही उन्हें रुचिकर लगी। अतः उक्त वात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि न करते हुए वे अपने आसन से उठे और उठकर जहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजमान थे, वहां (उनके पास) आए और यावत् उनकी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले-

'एवं खलु भंते ! मम दोच्चे गोयमे अग्गिभूई अणगारे एवमाइक्खइ भासइ पण्णवेइ परूवेइ-एवं खलु गोयमा ! चमरे असुरिंदे असुरराया एमहिड्ढीए जाव एमहाणुभागे णं तत्थ चोत्तीसाए भवणावाससयसहस्साणं एवं ते चेव सव्वे अपरिसेसं भाणियव्वं जाव अग्गमहिसीणं वत्तव्वया समत्ता।

'भंते ! द्वितीय गौतम गोत्रीय अग्निभूति अनगार ने मुझ से इस प्रकार कहा, इस प्रकार भाषण किया, इस प्रकार [illegible] और [illegible] किया कि हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी बड़ी ऋद्धिवाला है यावत् ऐसा [illegible] है कि [illegible] करता हुआ विचरता है इत्यादि समग्र वर्णन अग्रमहिषियों की विकुर्वणा शक्ति पर्यन्त कहा।

प. से कहमेयं भंते ! एवं ?

प्र. भंते ! [illegible]

उ. गोयमा ! समणे भगवं महावीरे तच्चं गोयमं वायुभूतिं अणगारं एवं वयासि-

जं णं गोयमा ! तव दोच्चे गोयमे अग्गिभूई अणगारे एवमाइक्खइ जाव परूवेइ "एवं खलु गोयमा ! चमरेणं असुरिंदे असुरराया एमहिड्ढीए एवं तं चेव सव्वं जाव अग्गमहिसीणं वत्तव्वया समत्ता" सच्चे णं एसमट्ठे,

अहं पि णं गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि एवं खलु गोयमा ! चमरे असुरिंदे असुरराया जाव महिड्ढीए सो चेव बिइओ गमो भाणियव्वो जाव अग्गमहिसीओ सच्चे णं एसमट्ठे।

सेवं भंते ! सेवं भंते त्ति तच्चे गोयमे वायुभूई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता-'जेणेव दोच्चे गोयमे अग्गिभूई अणगारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता दोच्चं गोयमं अग्गिभूइं अणगारं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेइ।

तए णं से दोच्चे गोयमे अग्गिभूई अणगारे तच्चेणं गोयमेणं वायुभूइणा अणगारे एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामिए समाणे उवट्ठाए उट्ठेइ उट्ठित्ता तच्चेणं गोयमेणं वायुभूइणा अणगारेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता जाव पज्जुवासए।

तए णं से तच्चे गोयमे वायुभूई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-

जइ णं भंते ! चमरे असुरिंदे असुरराया एमहिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए बली णं भंते ! वइरोयणिंदे वइरोयणराया के महिड्ढीए जाव केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए ?

उ. गोयमा ! बली णं वइरोयणिंदे वइरोयणराया महिड्ढीए जाव महाणुभागे।

से णं तत्थ तीसाए भवणावाससयसहस्साणं, सट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं सेसं जहा चमरस्स

णवरं-चउण्हं सट्ठीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अन्नेसिं च जाव भुंजमाणे विहरइ।

से जहानामए एवं जहा चमरस्स,

णवरं-सातिरेगं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं ति भाणियव्वं।

सेसं तहेव जाव नो विउव्विस्सइ वा।

उ. गौतम ! इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर ने तृतीय गौतम वायुभूति अनगार से इस प्रकार कहा-

हे गौतम! द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार ने तुम से जो इस प्रकार कहा यावत् प्ररूपित किया हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी महान ऋद्धि वाला है, इत्यादि उसकी अग्रमहिषियों पर्यन्त का समग्र वर्णन (यहां कहना चाहिए) यह कथन सत्य है।

हे गौतम ! मैं भी इसी प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपित करता हूं कि हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर महाऋद्धिशाली है, इत्यादि उसकी अग्रमहिषियों तक का समग्र वर्णन द्वितीय आलापक के समान कहना चाहिए। यह बात सत्य है।

भंते ! यह इसी प्रकार है, भंते ! यह इसी प्रकार है, यों कहकर तृतीय गौतम वायुभूति अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया और वंदन नमस्कार करके जहां द्वितीय गौतम गोत्रीय अग्निभूति अनगार थे, वहां आए वहां आकर द्वितीय गौतम गोत्रीय अग्निभूति अनगार को वन्दन नमस्कार किया वंदन नमस्कार करके पूर्वोक्त बात की उपेक्षा के लिए उनसे विनय पूर्वक बार बार क्षमायाचना की।

तदनन्तर द्वितीय गौतम (गोत्रीय) अग्निभूति अनगार उस पूर्वोक्त बात के लिए तृतीय गौतम वायुभूति के साथ सम्यक् प्रकार से विनयपूर्वक क्षमायाचना कर लेने पर अपने आसन से उठे और उठकर तृतीय गौतम गोत्रीय वायुभूति अनगार के साथ जहां श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे वहां आए, वहां आकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन नमस्कार किया और वंदन नमस्कार करके यावत् उनकी पुर्यपासना करने लगे।

इसके पश्चात् तीसरे गौतम ! (गोत्रीय) वायुभूति अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार बोले-

'भंते ! यदि असुरेन्द्र असुरेन्द्रराज चमर इतनी बड़ी ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणाशक्ति से सम्पन्न है, तब भंते ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि कितनी बड़ी ऋद्धि वाला है? यावत् वह कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ है?

उ. गौतम ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि महाऋद्धिसम्पन्न है यावत् महाप्रभावशाली है।

वह वहां तीस लाख भवनावासों तथा साठ हजार सामानिक देवों का अधिपति है। शेष समग्र वर्णन चमरेन्द्र के समान जान लेना चाहिए।

विशेष-बलि वैरोचनेन्द्र दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देवों का तथा अन्य बहुत से दूसरे देव देवियों का आधिपत्य करता हुआ यावत् विचरता है।

चमरेन्द्र की विकुर्वणा शक्ति की तरह इसकी भी विकुर्वणा शक्ति का रूप जानना चाहिए।

विशेष-बलि अपनी विकुर्वणा शक्ति से सातिरेक सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को भर देता है।

शेष सारा वर्णन विकुर्वणा नहीं करेगा पर्यन्त पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

प. जइ णं भंते ! बली वइरोयणिंदे वैरोयणराया एमहिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए बलिस्स णं वइरोयणस्स सामाणियदेवा के महिड्ढिया जाव केवइयं णं पभू किकुव्वित्तए ?

उ. गोयमा ! एवं सामाणियदेवा, तावत्तीसा, लोकपालअग्गमहिसीओ य जहा चमरस्स

णवरं–साइरेगं जंबुद्दीवे जाव एगमेगाए अग्गमहिसीए देवीए इमे वुइए विसए जाव नो विउव्विस्संति वा।

सेवं भंते ! सेवं भंते त्ति, तच्चे गोयमे वायुभूई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने जाव पज्जुवासइ।

तए णं से दोच्चे गोयमे अग्गिभूई अणगारे समणे भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासि–

प. जइ णं भंते ! बली वइरोयणिंदे वइरोयणराया एमहिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए धरणे णं भंते ! नागकुमारिंदे नागकुमारराया के महिड्ढीए जाव केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए ?

उ. गोयमा ! धरणे णं नागकुमारिंदे नागकुमारराया एमहिड्ढीए जाव से णं तत्थ चोयालीसाए भवणावाससयसहस्साणं, छण्हं सामाणियसाहस्सीणं, तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं, चउण्हं लोगपालाणं, छण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं, चउवीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं अन्नेसिं च णं जाव विहरइ। एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए से जहानामए जुवइं जुवाणे जाव पभू केवलकप्पं जंबुद्दीवं जाव तिरियमसंखेज्जे दीवे-समुद्दे बहूहिं नागकुमारीहिं जाव नो विउव्विस्सइ वा।

सामाणिय-तायत्तीस-लोगपाल अग्गमहिसीओ य तहेव जहा चमरस्स।

णवरं–संखिज्जे दीव-समुद्दे भाणियव्वं।

एवं जाव थणियकुमारा, वाणमंतर जोइसिया वि।

णवरं–दाहिणिल्ले सव्वे अग्गीभूई पुच्छइ, उत्तरिल्ले सव्वे वाउभूई पुच्छइ।

प्र. भंते ! यदि वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि इतनी महाऋद्धि वाला है यावत् उसकी इतनी विकुर्वणा शक्ति है तो उस वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के सामानिक देव कितनी बड़ी ऋद्धि वाले हैं, यावत् उनकी विकुर्वणाशक्ति कितनी है ?

उ. गौतम ! बलि के सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव एवं लोकपाल तथा अग्रमहिषियों की ऋद्धि आदि का वर्णन चमरेन्द्र के सामानिक देवों की तरह समझना चाहिए।

विशेष–इनकी विकुर्वणा शक्ति सातिरेक जम्बूद्वीप के स्थल तक को भर देने की है यावत् प्रत्येक अग्रमहिषी की इतनी विकुर्वणाशक्ति विषयमात्र कही है यावत् वे विकुर्वणा करेंगी भी नहीं, यहां तक पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

भंते ! जैसे आप कहते हैं, वह इसी प्रकार है, भंते ! यह इसी प्रकार है यों कहकर तृतीय गौतम ! वायुभूति अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन नमस्कार किया और वंदन नमस्कार करके न अतिदूर और न अतिनिकट रहकर यावत् वे पर्युपासना करने लगे।

तत्पश्चात् द्वितीय गौतम (गोत्रीय) अग्निभूति अणगार ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन नमस्कार किया वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहा–

प्र. भंते ! यदि वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि इस प्रकार की महाऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ है, तो भंते ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण कितनी बड़ी ऋद्धि वाला है ? यावत् कितनी विकुर्वणा करने मे समर्थ है ?

उ. गौतम ! वह नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणेन्द्र महाऋद्धि वाला है यावत् वह चवालीस लाख भवनावासों पर, छह हजार सामानिक देवों पर, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों पर, चार लोकपालों पर, परिवार सहित छह अग्रमहिषियों पर, तीन परिषदाओं पर, सात सेनाओं पर, सात सेनाधिपतियों पर और चौवीस हजार आत्मरक्षक देवों पर तथा अन्य अनेक देवों और देवियों पर आधिपत्य आदि करता हुआ रहता है और इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ है जैसे युवा पुरुष अपने हाथ से युवती स्त्री के हाथ को पकड़ता है। उसी प्रकार यावत् वह अपने द्वारा वैक्रियकृत बहुत से नागकुमार देवों और नागकुमारदेवियों से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को भरने मे समर्थ है और तिर्यग्लोक के असंख्यात द्वीप समुद्रों जितने स्थल को भरने की शक्ति वाला है। परन्तु विकुर्वणा नहीं करेगा।

धरणेन्द्र के सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव, लोकपाल और अग्रमहिषियों की ऋद्धि आदि का वर्णन चमरेन्द्र के वर्णन की तरह कह लेना चाहिए।

विशेष–इन सबकी विकुर्वणा शक्ति संख्यात द्वीप समुद्रों के स्थल को भरने की समझनी चाहिए।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त सभी भवनवासीदेवों वाणव्यंतर और ज्योतिष्कदेवों के सम्बन्ध में जानना चाहिए।

विशेष–दक्षिण दिशा के सभी इन्द्रों के विषय में द्वितीय गौतम (गोत्रीय) अग्निभूति अणगार पूछते हैं और उत्तर दिशा के सभी इन्द्रों के विषय में तृतीय गौतम वायुभूति अणगार पूछते हैं।

'भंते !' त्ति भगवं दोच्चे गोयमे अग्गिभूई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–

प. जइ णं भंते ! जोइसिंदे जोइसराया एमहिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए सक्के णं भंते ! देविंदे देवराया के महिड्ढीए जाव केवइयं च णं पभू विउव्वित्तए?

उ. गोयमा ! सक्के णं देविंदे देवराया महिड्ढीए जाव महाणुभागे। से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसहस्साणं, चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं जाव चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अन्नेसिं च जाव विहरइ। एमहिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए।

एवं जहेव चमरस्स तहेव भाणियव्वं।

णवरं–दो केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे,

अवसेसं तं चेव।

एस णं गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो इमेयारूवे विसए विसयमेत्ते णं वुइए, नो चेव णं संपत्तीए विकुव्विंसु वा, विकुव्वइ वा, विकुव्विस्सइ वा।

प. जइ णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया एमहिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी तीसए णामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णाइं अट्ठसंवच्छराइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सयंसी उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिए अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सामाणियदेवत्ताए उववन्ने। तए णं तीसए देवे अहुणोववन्नमेत्ते समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तंजहा–

१. आहारपज्जत्तीए, २. सरीरपज्जत्तीए,
३. इंदियपज्जत्तीए, ४. आणापाणुपज्जत्तीए,
५. भासा-मणपज्जत्तीए।

तए णं तं तीसयं देवं पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गयं समाणं सामाणियपरिसोववन्नया देवा करलयपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धाविंति वद्धावित्ता एवं वयासि–

'भंते !' यों संबोधन करके द्वितीय गौतम (गौत्रीय) अग्निभूति अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन नमस्कार किया और वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहा–

प्र. भंते ! यदि ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज ऐसी महाऋद्धिवाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ है तो भंते ! देवेन्द्र देवराज शक्र कितनी महाऋद्धि वाला है और कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ है?

उ. गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र महान ऋद्धिवाला है यावत् महाप्रभावशाली है वह वहां बत्तीस लाख विमानावासों पर तथा चौरासी हजार सामानिक देवों पर यावत् तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों पर एवं दूसरे बहुत से देवों पर आधिपत्य करता हुआ यावत् विचरण करता है। शकेन्द्र ऐसी बड़ी ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ है।

उसकी वैक्रिय शक्ति के विषय में चमरेन्द्र की तरह सब कथन करना चाहिए।

विशेष–वह अपने विकुर्वित रूपों से दो सम्पूर्ण जम्बूद्वीप जितने स्थल को भरने में समर्थ है।

शेष सब पूर्ववत् कहना चाहिए।

गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र की यह इस रूप की वैक्रिय शक्ति तो केवल विषय और विषयमात्र कही है परन्तु शक्र ने ऐसी शक्ति के रहते हुए भी विकुर्वणा की नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

प्र. भंते ! यदि देवेन्द्र देवराज शक्र ऐसी महान् ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ है तो आप देवानुप्रिय का शिष्य "तिष्यक" नामक अनगार जो प्रकृति से भद्र यावत् विनीत था निरन्तर छठ छठ (वेले-वेले) की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ, पूरे आठ वर्ष तक श्रामण्यपर्याय (साधु-दीक्षा) का पालन करके, एक मास की संलेखना से अपनी आत्मा को भावित करते हुए तथा साठ भक्त (टंक) अनशन का छेदन कर, आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधिपूर्वक काल के अवसर पर मृत्यु प्राप्त करके सौधर्मदेवलोक में गया है। वह वहां अपने विमान में, उपपातसभा में, देवदूष्य से आच्छादित देवशय्या में, अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी अवगाहना से देवेन्द्र देवराज शक्र के सामानिक देव के रूप में उत्पन्न हुआ है। फिर तत्काल उत्पन्न हुआ वह तिष्यक देव पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त भाव को प्राप्त हुआ, यथा–

१. आहार पर्याप्ति, २. शरीरपर्याप्ति,
३. इन्द्रियपर्याप्ति, ४. आनापान पर्याप्ति (श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति),
५. भाषा-मनः पर्याप्ति।

तदनन्तर जब वह तिष्यकदेव पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त भाव को प्राप्त हो चुका तब सामानिक परिषद् के देवों ने दोनों हाथों को जोड़कर एवं दसों अंगुलियों के दसों नखों को इकट्ठे करके मस्तक पर अंजलि करके जय विजय शब्दों से वधाई दी और वधाई देकर इस प्रकार बोले–

"अहो ! णं देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी, दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए जारिसिया णं देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए तारिसिया णं सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमन्नागया जारिसिया णं सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमन्नागया तारिसिया णं देवाणुप्पिएहिं दिव्वा देविड्ढी जाव अभिसमन्नागया।

प. से णं भंते ! तीसए देवे के महिड्ढीए जाव केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए ?

उ. गोयमा ! महिड्ढीए जाव महाणुभागे से णं तत्थ सयस्स विमाणस्स, चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं, चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं, सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, अन्नेसिं च बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य जाव विहरइ। एमहिड्ढी ए जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए।

से जहाणामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा जहेव सक्कस्स तहेव जाव एस णं गोयमा ! तीसयस्स देवस्स अयमेयारूवे विसए विसयमेत्ते वुइए नो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा, विउव्वइ वा, विउविस्सइं वा।

प. जइ णं भंते ! तीसए देवे एमहिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए सक्कस्स णं भंते ! देविंदस्स देवरण्णो अवसेसा सामाणिया देवा के महिड्ढीया जाव केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए ?

उ. गोयमा ! तहेव सव्वं जाव एस णं गोयमा ! सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो एगमेगस्स सामाणियस्स देवस्स इमेयारूवे विसए विसयमेत्ते वुइए नो चेव णं संपत्तीए विकुव्विंसु वा, विकुव्वंति वा विकुव्विस्संति वा।

तायत्तीसय-लोगपाल-अग्गमहिसीणं जहेव चमरस्स।

णवरं—दो केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे, अन्नं तं चेव।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति दोच्चे गोयमे जाव विहरइ।

भंते ! त्ति भगवं तच्चे गोयमे वाउभूई अणगारे भगवं जाव एवं वयासी–

प. जइ णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया एमहिड्ढीए जाव एवइयं च णं पभू विउव्वित्तए ईसाणे णं भंते ! देविंदे देवराया के महिड्ढीए जाव केवइयं च णं पभू विकुव्वित्तए ?

"अहो ! आप देवानुप्रिय ने यह दिव्य देव ऋद्धि दिव्य देव द्युति और दिव्य देव-प्रभाव उपलब्ध किया है, अधिगत किया है जैसी दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देव कान्ति और दिव्य देवप्रभाव आप देवानुप्रिय ने उपलब्ध प्राप्त और अभिमुख किया है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव देवेन्द्र देवराज शक्र ने उपलब्ध, प्राप्त और अभिमुख किया है जैसी दिव्य देव ऋद्धि यावत् अभिमुख शक्र ने किया है वैसी ही दिव्य देवऋद्धि यावत् अभिमुख आपने किया है।"

प्र. भंते ! वह तिष्यक देव कितनी महाऋद्धि वाला है यावत् कितनी विकुर्वणा करने में समर्थ है ?

उ. गौतम ! वह तिष्यक देव महाऋद्धि वाला है यावत् महाप्रभाव वाला है। वह वहां अपने विमान पर चार हजार सामानिक देवों पर, सपरिवार चार अग्रमहिषियों पर, तीन परिषदाओं पर, सात सैन्यों पर, सात सेनाधिपतियों पर एवं सोलह हजार आत्मरक्षक देवों और देवियों पर आधिपत्य करता हुआ यावत् विचरण करता है यह तिष्यकदेव ऐसी महाऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करने में समर्थ है।

जैसे कोई युवती युवा पुरुष का हाथ दृढ़ता से पकड़कर चलती है इस प्रकार शक्रेन्द्र की विकुर्वणा शक्ति के लिए दिये गए दृष्टांत की तरह यहां भी कहना चाहिए यावत् हे गौतम ! तिष्यकदेव का यह और इस प्रकार की शक्ति का विषय और विषय मात्र बताया है किन्तु शक्ति के रहते हुए भी कभी उसने इतनी विकुर्वणा की नहीं, करता भी नहीं और करेगा भी नहीं।

प्र. भंते ! यदि तिष्यक देव इतनी महाऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करने की शक्ति रखता है, तो भंते ! देवेन्द्र देवराज शक्र के दूसरे सब सामानिक देव कितनी महाऋद्धि वाले हैं यावत् उनकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है ?

उ. हे गौतम ! जिस प्रकार तिष्यकदेव की ऋद्धि एवं विकुर्वणा-शक्ति आदि के विषय में कहा उसी प्रकार शक्रेन्द्र के विषय में जानना चाहिए, किन्तु हे गौतम ! यह विकुर्वणा शक्ति देवेन्द्र देवराज शक्र के प्रत्येक सामानिक देव का विषय और विषय मात्र बताया गया है किन्तु शक्ति के रहते हुए भी उन्होंने कभी इतनी विकुर्वणा की नहीं, करते नहीं और करेंगे भी नहीं।

शक्रेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक लोकपाल और अग्रमहिषियों का कथन चमरेन्द्र की तरह कहना चाहिए।

विशेष–ये अपने वैक्रियकृत रूपों से दो सम्पूर्ण जम्बूद्वीपों को व्याप्त करने में समर्थ हैं। शेष समग्र वर्णन चमरेन्द्र की तरह कहना चाहिए।

भंते ! यह इसी प्रकार है, भंते ! यह इसी प्रकार है [illegible] द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार यावत् विचरण करने [illegible]

भंते ! [illegible] [illegible] यावत् [illegible]

प्र. [illegible]

[illegible]

उ. गौतम ! जैसा शक्रेन्द्र के विषय में कहा था वैसा ही सारा वर्णन ईशानेन्द्र के विषय में जानना चाहिए।

विशेष—वह (अपने वैक्रियकृत) रूपों से कुछ अधिक सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीपों को भरने में समर्थ है।

शेष सारा वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

भंते ! यदि देवेन्द्र देवराज ईशान इतनी बड़ी ऋद्धि से युक्त है यावत् वह इतनी विकुर्वणा शक्ति रखता है तो प्रकृति से भद्र यावत् विनीत तथा निरन्तर अट्ठम-अट्ठम (तेले-तेले) की तपस्या और पारणे में आयम्बिल, ऐसी कठोर तपश्चर्या से आत्मा को भावित करता हुआ दोनों हाथ ऊँचे रखकर सूर्य की ओर मुख करके आतापना भूमि में आतापना लेने वाला आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी (शिष्य) कुरुदत्तपुत्र अनगार पूरे छह महीने तक श्रामण्यपर्याय का पालन करके अर्द्धमासिक (१५ दिन के) संलेखना से अपनी आत्मा को शुद्ध करके तीस भक्तों (३० टंक) का अनशन से छेदन करके आलोचना प्रतिक्रमण पूर्वक समाधि प्राप्त कर काल का अवसर आने पर काल करके ईशानकल्प में अपने विमान में ईशानेन्द्र के सामानिक देव के रूप में उत्पन्न हुआ है इत्यादि समग्र कथन तिष्यक देव की तरह कुरुदत्तपुत्र देव के लिए भी कहना चाहिए।

विशेष - कुरुदत्तपुत्र देव अपने विकुर्वित रूपों से कुछ अधिक दो जम्बूद्वीपों को भरने में समर्थ है।

शेष समस्त वर्णन इसी तरह ही समझना चाहिए।

इसी तरह (ईशानेन्द्र के अन्य) सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव एवं लोकपाल तथा अग्रमहिषियों की ऋद्धि विकुर्वणा शक्ति आदि (के विषय में) जानना चाहिए यावत् हे गौतम ! [illegible]

[illegible]

एवं लंतए वि,

इसी प्रकार लान्तक नामक देवलोक के विषय में भी समझना चाहिए।

णवरं–साइरेगे अट्ठ केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे।

विशेष–वे कुछ अधिक आठ जम्बूद्वीपों के स्थल को भरने की विकुर्वणा शक्ति रखते हैं।

महासुक्के सोलस केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे।

महाशुक्र देवलोक के इन्द्रादि सम्पूर्ण सोलह जम्बूद्वीपों (जितने स्थल) को भरने की वैक्रियशक्ति रखते हैं।

सहस्सारे साइरेगे सोलस केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे।

सहस्रार देवलोक के इन्द्रादि कुछ अधिक सोलह जम्बूद्वीपो के स्थल को भरने की सामर्थ्य रखते हैं।

एवं पाणए वि,

इसी प्रकार प्राणत देवलोक के इन्द्रादि के विषय में भी जानना चाहिए।

णवरं–बत्तीसं केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे।

विशेष–वे सम्पूर्ण बत्तीस जम्बूद्वीपों जितने क्षेत्र को भरने की वैक्रियशक्ति वाले हैं।

एवं अच्चुए वि,

इसी प्रकार अच्युत कल्प के इन्द्रादि के विषय में भी जानना चाहिए।

णवरं–साइरेगे बत्तीसं केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे।

विशेष–कुछ अधिक बत्तीस जम्बूद्वीप क्षेत्र को भरने का वैक्रिय सामर्थ्य रखते हैं

अन्नं तं चेव।

शेष सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।

सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति तच्चे गोयमे वायुभूई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता जाव विहरइ। *–विया. स. ३, उ. १, सु. २-३०*

भंते ! यह इसी प्रकार है, भंते ! यह इसी प्रकार है यों कहकर तृतीय गौतम वायुभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन नमस्कार करते हैं और वंदन नमस्कार करके यावत् विचरण करने लगे।

२०. देवेसु जहेच्छया विकुव्वणा करणाकरण सामत्थं–

२०. देवों में यथेच्छा विकुर्वणा करने; नहीं करने का सामर्थ्य–

प. दो भंते ! असुरकुमारा एगंसि असुरकुमारावासंसि असुरकुमार देवत्ताए उववण्णा,

तत्थ णं एगे असुरकुमारे देवे उज्जुयं विउव्विस्सामीति

उज्जुयं विउव्वइ, वंकं विउव्विस्सामीति वंकं विउव्वइ, जं जहा इच्छइ तं तहा विउव्वइ।

एगे असुरकुमारे देवे उज्जुयं विउव्विस्सामीति वंकं विउव्वइ, वंकं विउव्विस्सामीति उज्जुयं विउव्वइ, जं जहा–इच्छइ नो तं तहा विउव्वइ,

से कहमेयं भंते ! एवं ?

उ. गोयमा ! असुरकुमारा देवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. माइमिच्छदिट्ठी उववण्णा य,
२. अमाइसम्मदिट्ठी उववण्णा य।

१. तत्थ णं जे से माइमिच्छदिट्ठी उववण्णए असुरकुमारे देवे से णं उज्जुयं विउव्विस्सामीति वंकं विउव्वइ जाव नो तं तहा विउव्वइ।

प्र. भंते ! एक ही असुरकुमारावास में दो असुरकुमार, असुरकुमार देव रूप में उत्पन्न हुए,

उनमें से एक असुरकुमार देव यह चाहता है कि "मैं ऋजु रूप की विकुर्वणा करूँगा",

तो वह ऋजु रूप की विकुर्वणा करता है और यदि वह चाहता है कि "मैं वक्र रूप की विकुर्वणा करूँगा" तो वह वक्र रूप की विकुर्वणा करता है। अर्थात् वह जिस रूप की विकुर्वणा करना चाहता है वह उसी रूप की विकुर्वणा करता है।

जबकि एक असुरकुमारदेव चाहता है कि "मैं ऋजु रूप की विकुर्वणा करूँगा" किन्तु वक्र रूप की विकुर्वणा हो जाती है और वह यदि चाहता है कि 'मैं वक्र रूप की विकुर्वणा करूँगा' किन्तु ऋजु रूप की विकुर्वणा हो जाती है।

अर्थात् जो जिस रूप की विकुर्वणा करना चाहता है वह उस रूप की विकुर्वणा नहीं कर पाता;

भन्ते ! ऐसा, क्यों होता है ?

उ. गौतम ! असुरकुमारदेव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक,
२. अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक।

१. इनमें से जो मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक असुरकुमार-देव है, वह ऋजु रूप की विकुर्वणा करना चाहता है किन्तु वक्र रूप की विकुर्वणा हो जाती है यावत् जिस रूप की विकुर्वणा करना चाहता है उस रूप की विकुर्वणा नहीं कर पाता,

२. इनमें से जो अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक असुरकुमारदेव है, वह ऋजु रूप की विकुर्वणा करना चाहता है और ऋजु रूप की ही विकुर्वणा करता है यावत् जिस रूप की विकुर्वणा करना चाहता है, उस रूप की विकुर्वणा करता है।

प्र. भंते ! एक ही नागकुमारावास में दो नागकुमार नागकुमार रूप में उत्पन्न हुए, उनमें से एक नागकुमार देव यदि वह चाहे कि मैं ऋजु रूप से यावत् जिस रूप की जिस प्रकार से विकुर्वणा करना चाहता है, उस रूप की उसी प्रकार से विकुर्वणा नहीं कर पाता है,

तो भंते ! ऐसा, क्यों होता है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् (असुरकुमार के समान) जानना चाहिए।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यंत विकुर्वणा जानना चाहिए।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक भी इसी प्रकार है।

१९. पुद्गलों के ग्रहण द्वारा विकुर्वणा करण–

प्र. भंते ! महर्द्धिक यावत् महानुभाग देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किए बिना और बालक का छेदन भेदन किए बिना उसको गाढ़ने में समर्थ है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प. देवे णं भंते ! महिड्ढीए **जाव** महाणुभागे बाहिरए पोग्गले **परियाइत्ता बालं अच्छेत्ता** अभेत्ता पभू दीहीकरित्तए वा हस्सीकरित्तए **वा** ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. देवे णं भंते ! महिड्ढीए **जाव** महाणुभागे बाहिरए पोग्गले **परियाइत्ता बालं छेत्ता** भेत्ता पभू दीहीकरित्तए वा हस्सीकरित्तए वा ?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

तं चेव णं गंठिं छउमत्थे मणूसे ण जाणइ ण पासइ,

एसुहुमं च णं दीहीकरेज्ज वा हस्सी करेज्ज वा।

–जीवा. पडि. ३, सु. १९० (१९०-१९७)

प्र. भंते ! महर्द्धिक **यावत्** महानुभाग देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके और बाल का छेदन भेदन किए बिना उस को बड़ा या छोटा करने में समर्थ है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! महर्द्धिक **यावत्** महानुभाग देव बाह्य पुद्गल ग्रहण करके और बाल का छेदन भेदन करके उसको बड़ा या छोटा करने में समर्थ है ?

उ. हाँ, गौतम ! यह अर्थ समर्थ है।

उस साधने को छद्मस्थ मनुष्य न जान सकता है और न देख सकता है। इस प्रकार से इतना शूक्ष्म छोटा या बड़ा करता है।

२१. पोग्गल गहणेण वण्णाइ परिणमणं–

प. देवे णं भंते ! महिड्ढीए **जाव** महाणुभागे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. देवे णं भंते ! बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए ?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. से णं भंते ! किं इहगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वइ ?

तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वइ ?

अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वइ ?

उ. गोयमा ! णो इहगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वइ,

तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वइ,

णो अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विउव्वइ।

एवं एएणं गमेणं जाव

१. एगवण्णं एगरूवं,
२. एगवण्णं अणेगरूवं,
३. अणेगवण्णं एगरूवं,
४. अणेगवण्णं अणेगरूवं-**चउभंगो।**

प. देवे णं भंते ! महिड्ढीए **जाव** महाणुभागे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू कालगं पोग्गलं नीलगपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए ? नीलगं पोग्गलं वा कालगपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, परियाइत्ता पभू।

प. से णं भंते ! किं इहगए पोग्गले परियाइत्ता परिणामेइ ?

तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता परिणामेइ ?

अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता परिणामेइ ?

२१. पुद्गलों के ग्रहण द्वारा वर्णादि का परिणमन–

प्र. भंते ! क्या महर्द्धिक **यावत्** महानुभाग देव बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किए बिना एक वर्ण और एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! क्या बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके एक वर्ण और एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! समर्थ है।

प्र. भंते ! क्या वह देव इहगत पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है,

तत्रगत पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है या

अन्यत्रगत पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है ?

उ. गौतम ! वह देव, यहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा नहीं करता,

वह वहाँ के पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करता है,

किन्तु अन्यत्र रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा नहीं करता है।

इस प्रकार इस गम द्वारा विकुर्वणा के चार भंग कहने चाहिए–

१. एक वर्ण वाला, एक रूप वाला,
२. एक वर्ण वाला, अनेक रूप वाला,
३. अनेक वर्ण वाला, एक रूप वाला,
४. अनेक वर्ण वाला, अनेक रूप वाला। ये चार भंग।

प्र. भंते ! क्या महर्द्धिक **यावत्** महानुभाग देव, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किए बिना काले पुद्गल को नीले पुद्गल के रूप में और नीले पुद्गल को काले पुद्गल के रूप में परिणत करने में समर्थ है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है; किन्तु देव बाहरी पुद्गलों को ग्रहण करके वैसा करने में समर्थ है।

प्र. भंते ! क्या वह देव इहगत पुद्गलों को ग्रहण करके परिणमन करता है,

तत्रगत पुद्गलों को ग्रहण करके परिणमन करता है या

अन्यत्रगत पुद्गलों को ग्रहण करके परिणमन करता है ?

[illegible]

उ. गौतम ! वह देव, यहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके परिणमन नहीं करता,

वह वहाँ के पुद्गलों को ग्रहण करके परिणमन करता है,

किन्तु अन्यत्र रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके परिणमन नहीं करता।

इस प्रकार इस गम द्वारा परिणमन के चार भंग कहने चाहिए-

१. एक वर्ण वाला, एक रूप वाला,

२. एक वर्ण वाला, अनेक रूप वाला,

३. अनेक वर्ण वाला, एक रूप वाला,

४. अनेक वर्ण वाला, अनेक रूप वाला।

इसी प्रकार काले पुद्गल को लाल पुद्गल के रूप में परिणत करने में समर्थ है।

इसी प्रकार काले पुद्गल के साथ शुक्ल पुद्गल पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार नीले पुद्गल के साथ शुक्ल पुद्गल पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार लाल पुद्गल को यावत् शुक्ल पुद्गल के रूप में परिणत करने में समर्थ है।

इसी प्रकार पीले पुद्गल को यावत् शुक्ल पुद्गल के रूप में परिणत करने में समर्थ है।

इसी प्रकार इस क्रम के अनुसार गन्ध, रस और स्पर्श के विषय में भी समझना चाहिए।

[illegible] कर्कश स्पर्श वाले पुद्गल को मृदु स्पर्श वाले पुद्गल में परिणत करने में समर्थ है।

इसी प्रकार दो-दो विरुद्ध गुणों को अर्थात् गुरु और लघु, शीत और उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श आदि को वह सर्वत्र परिणमाता है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

जण्णं तहागयस्स जीवस्स सरूविस्स,
सकम्मस्स, सरागस्स, सवेदस्स,
समोहस्स, सलेसस्स, ससरीरस्स,
ताओ सरीराओ अविप्पमुक्कस्स एवं पण्णायइ, तं जहा–

कालत्ते वा जाव सुक्किलत्ते वा,
सुब्भिगंधत्ते वा, दुब्भिगंधत्ते वा,
तित्तत्ते वा जाव महुरत्ते वा,
कक्खडत्ते वा जाव लुक्खत्ते वा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"देवे णं महिड्ढिए जाव महेसक्खे पुव्वामेव रूवी भवित्ता नो पभू अरूविं विउव्वित्ता णं चिट्ठित्तए।"

–विया. स. १७, उ. २, सु. १८

तथा प्रकार के सरूपी,
सकर्म, सराग, सवेद,
समोह, सलेश्य, सशरीर और
उस शरीर से अविमुक्त जीव के विषय में ऐसा सम्प्रज्ञात होता है, यथा–
उस शरीरयुक्त जीव में कालापन **यावत्** श्वेतपन,
सुगन्धित्व या दुर्गन्धित्व,
कटुत्व **यावत्** मधुरत्व,
कर्कशत्व **यावत्** रूक्षत्व होता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"महर्द्धिक **यावत्** महासुख सम्पन्न देव पहले रूपी होकर बाद में अरूपी की विक्रिया करने में समर्थ नहीं है।"

२४. वेमाणिय देवाणं विकुव्वणासत्ती–

प. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवा किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए? पुहत्तं प्रभू विउव्वित्तए?

उ. गोयमा ! एगत्तंपि पभू विउव्वित्तए, पुहत्तंपि पभू विउव्वित्तए,

एगत्तं विउव्वेमाणा एगिंदियरूवं वा जाव पंचेंदियरूवं वा विउव्वंति,

पुहत्तं विउव्वेमाणा एगिंदियरूवाणि वा जाव पंचेंदियरूवाणि वा,

ताइं संखेज्जाइं पि असंखेज्जाइंपि
सरिसाइं पि असरिसाइं पि
संबद्धाइं पि असंबद्धाइं पि रूवाइं विउव्वंति,

विउव्वित्ता तओ पच्छा जहिच्छिताइं कज्जाइं करेंति।

एवं जाव अच्चुओ।

प. गेवेज्जादेवा किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए? पुहुत्तं पभू विउव्वित्तए?

उ. गोयमा ! एगत्तं पि पभू विउव्वित्तए, पुहत्तं पि पभू विउव्वित्तए,

णो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा, विउव्वंति वा, विउव्विस्संति वा।

एवं अणुत्तरोववाइया। –जीवा. पडि. ३, सु. २०३

२४. वैमानिक देवों की विकुर्वणा शक्ति–

प्र. भंते ! सौधर्म और ईशान कल्पों में देव क्या एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ है या अनेक रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है?

उ. गौतम ! एक रूप की विकुर्वणा करने में भी समर्थ है और अनेक रूपों की विकुर्वणा करने में भी समर्थ है।

एक रूप की विकुर्वणा करते हुए एकेन्द्रिय के रूप की **यावत्** पंचेन्द्रिय के रूप की विकुर्वणा करता है।

अनेक रूपों की विकुर्वणा करता हुआ अनेक एकेन्द्रिय रूपों की विकुर्वणा करता है **यावत्** अनेक पंचेन्द्रिय रूपों की विकुर्वणा करता है।

उनमें संख्येय रूपों की भी और असंख्येय रूपों की भी,
सदृश रूपों की भी और असदृश रूपों की भी,
सम्बद्ध रूपों की भी और असम्बद्ध रूपों की भी विकुर्वणा करता है।

विकुर्वणा करके उसके पश्चात् इच्छित कार्य करता है।

इसी प्रकार अच्युत कल्प पर्यन्त के देव विकुर्वणा करते हैं।

प्र. क्या ग्रैवेयक देव एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ है या अनेक रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है?

उ. गौतम ! एक रूप की विकुर्वणा करने में भी समर्थ है और अनेक रूपों की विकुर्वणा करने में भी समर्थ है।

किन्तु उन्होंने कभी ऐसी विकुर्वणा नहीं की, नहीं करते हैं और नहीं करेंगे।

इसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक देव भी हैं।

२५. सक्कस्स विउव्वणासत्ती–

प. पभू णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया पुरिसस्स सीसं सपाणिया असिणा छिंदित्ता कमंडलुम्मि पक्खिवित्तए?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. भंते ! कहमिदाणिं पकरेइ?

उ. गोयमा ! छिंदिया छिंदिया व णं पक्खिवेज्जा,

२५. शक्र की विकुर्वणा शक्ति–

प्र. भंते ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, अपने हाथ में ग्रहण की हुई तलवार से, किसी पुरुष का मस्तक काटकर कमण्डलु में डालने में समर्थ है?

उ. हाँ, गौतम ! वह समर्थ है।

प्र. भंते ! वह किस प्रकार डालता है?

उ. गौतम ! शक्रेन्द्र उस पुरुष के मस्तक को छिन्न-छिन्न करके डालता है।

भिंदिया भिंदिया व णं पक्खिवेज्जा,
कुट्टिया कुट्टिया व णं पक्खिवेज्जा,
चुण्णिया चुण्णिया व णं पक्खिवेज्जा,
तओ पच्छा खिप्पामेव पडिसंघातेज्जा,

नो चेव णं तस्स पुरिसस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएज्जा,
छविच्छेयं पुण करेइ, एसुहुमं च णं पक्खिवेजा।

–विया. स. १४, उ. ८, सु. २४

या भिन्न-भिन्न करके डालता है,
अथवा कूट-कूट कर डालता है,
या चूर्ण करके डालता है।
तत्पश्चात् शीघ्र ही वह मस्तक के उन खण्डित अवयवों को एकत्रित करता है और पुनः मस्तक बना देता है।

इस प्रक्रिया में उक्त पुरुष के मस्तक का छेदन करते हुए भी वह उस पुरुष को थोड़ी या अधिक पीड़ा नहीं पहुँचाता।

इस प्रकार मस्तक काटने की सूक्ष्म क्रिया करके वह उसे कमण्डलु में डालता है।

. महिड्ढियदेवस्स संगामे विउव्वण सामत्थं–

प. देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे रूवसहस्सं विउव्वित्ता पभू अण्णमण्णेणं सिद्धं संगामं संगामित्तए ?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. ताओ णं भंते ! बोंदीओ किं एगजीवफुडाओ, अणेगजीवफुडाओ ?

उ. गोयमा ! एगजीवफुडाओ, णो अणेगजीवफुडाओ।

प. ते णं भंते ! तेसिं बोंदीणं अंतरा किं एगजीवफुडा, अणेगजीवफुडा ?

उ. गोयमा ! एगजीवफुडा, णो अणेगजीवफुडा।

विया. स. १८, उ. ७, सु. ३८ ४०

२६. महर्द्धिक देव का संग्राम में विकुर्वणा सामर्थ्य–

प्र. भंते ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव, हजार रूपों की विकुर्वणा करके परस्पर एक दूसरे के साथ संग्राम करने में समर्थ है ?

उ. हाँ, गौतम ! समर्थ है।

प्र. भंते ! वैक्रियकृत वे शरीर एक ही जीव के साथ सम्बद्ध होते हैं या अनेक जीवों के साथ सम्बद्ध होते हैं ?

उ. गौतम ! एक ही जीव से सम्बद्ध होते हैं, अनेक जीवों के साथ सम्बद्ध नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! उन वैक्रियकृत शरीरों के बीच का अन्तराल भाग क्या एक जीव से सम्बद्ध होता है या अनेक जीवों से सम्बद्ध होता है ?

उ. गौतम ! उन शरीरों के बीच का अन्तराल भाग एक ही जीव से सम्बद्ध होता है, अनेक जीवों से सम्बद्ध नहीं होता है।

. देवासुरसंगामे पहरण विउव्वणा–

प. अत्थि णं भंते ! देवासुरा संगामा, देवासुरा संगामा ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. देवासुरेसु णं भंते ! संगामेसु वट्टमाणेसु किं णं तेसिं

२७. देवासुर संग्राम में शस्त्र विकुर्वणा–

प्र. भंते ! क्या देवों और असुरों में देवासुर-संग्राम होता है ?

उ. हाँ, गौतम ! होता है।

प्र. भंते ! देवों और असुरों में संग्राम छिड जाने पर कौन सी वस्तु

पुहत्तं विउव्वेमाणा मोग्गररूवाणि वा जाव भिंडमालरूवाणि वा।

अनेक रूपों की विकुर्वणा करते हुए अनेक मुद्गर रूपों की **यावत्** अनेक भिंडमाल रूपों की विकुर्वणा करते हैं।

ताइं संखेज्जाइं, णो असंखेज्जाइं,

संख्येय रूपों की विकुर्वणा करते हैं किन्तु असंख्येय रूपों की विकुर्वणा नहीं करते हैं।

संबद्धाइं, णो असंबद्धाइं,

संबद्ध रूपों की विकुर्वणा करते हैं किन्तु असंबद्ध रूपों की विकुर्वणा नहीं करते हैं।

सरिसाइं, णो असरिसाइं विउव्वंति,

सदृश रूपों की विकुर्वणा करते हैं, किन्तु असदृश रूपों की विकुर्वणा नहीं करते हैं।

विउव्वित्ता अण्णमण्णस्स कायं अभिहणमाणा-अभिहणमाणा- वेयणं उदीरेंति–

"उज्जलं विउलं पगाढं कक्कसं कडुयं फरुसं निट्ठुरं चंडं तिव्वं दुक्खं दुग्गं दुरहियासं।"

विकुर्वणा करके एक दूसरे के शरीर पर प्रहार करते करते वेदना की उदीरणा करते हैं।

वह वेदना उग्र, विपुल, प्रगाढ़, कर्कश, कटुक, कठोर, निष्ठुर, क्रूर, तीव्र, दुःखद, दुर्दभ असह्य होती है।

एवं जाव धूमप्पभाए पुढवीए।

इसी प्रकार धूमप्रभा पृथ्वी पर्यन्त में भी नैरयिक विकुर्वणा करते हैं।

छट्ठसत्तमासु णं पुढवीसु नेरइया बहू महंताइं लोहियकुंथुरूवाइं वइरामयतुंडाइं गोमयकीडसमाणाइं विउव्वंति,

छठी और सातवीं पृथ्वी में नैरयिक गोबर के कीडों के समान बहुत बड़े वज्रमय मुँह वाले रक्तवर्ण कुंथुओं के रूपों की विकुर्वणा करते हैं।

विउव्वित्ता अण्णमण्णस्स कायं समतुरंगेमाणा-समतुरंगेमाणा खायमाणा-खायमाणा सयपोरागकिमिया विव चालेमाणा-चालेमाणा अंतो-अंतो अणुप्पविसमाणा-अणुप्पविसमाणा वेदणं उदीरेंति–

"उज्जलं जाव दुरहियासं।"[1] –*जीवा. पडि. ३, सु. ८९(२)*

विकुर्वणा करके एक दूसरे के शरीर पर चढ़ते हैं, उनके शरीर को बार-बार काटते हैं और सौ पर्व वाले इक्षु के कीड़ों की तरह छेदन करते हुए भीतर ही भीतर घुस जाते हैं और उनको उज्जवल **यावत्** असह्य वेदना उत्पन्न करते हैं।

२९. वाउकायस्स विउव्वणा परूवणं–

प. पभू णं भंते ! वाउकाए एगं महं इत्थिरूवं वा पुरिसरूवं वा हत्थिरूवं वा जाणरूवं वा

एवं जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीय-संदमाणियरूवं वा विउविव्वत्तए ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

वाउकाए णं विकुव्वमाणे एगं महं पडागासंठियं रूवं विकुव्वइ।

प. पभू णं भंते ! वाउकाए एगं महं पडागसंठियं रूव विउव्वित्ता अणेगाइं जोयणाइं गमित्तए ?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. से भंते ! किं आयड्ढीए गच्छइ, परिड्ढीए गच्छइ ?

उ. गोयमा ! आयड्ढीए गच्छइ, णो परिड्ढीए गचछइ।

जहा आयड्ढीए

एवं चेव आयकम्मुणा वि, आयप्पओगेण वि भाणियव्वं।

२९. वायुकाय की विकुर्वणा का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या वायुकाय एक बड़ा स्त्रीरूप या पुरुषरूप, हस्तीरूप या यानरूप तथा

इसी प्रकार युग्य (रिक्शा या तांगा जैसी सवारी), गिल्ली (हाथी की अम्बाडी), थिल्ली (घोड़े का पलान), शिविका (डोली), स्यन्दमानिका (म्यान) इन सबके रूपों की विकुर्वणा कर सकता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

वायुकाय यदि विकुर्वणा करे तो एक बड़ी पताका के आकार के रूप की विकुर्वणा कर सकता है।

प्र. भन्ते ! क्या वायुकाय एक बड़ी पताका के आकार जैसे रूप की विकुर्वणा करके अनेक योजन तक गमन करने में समर्थ है ?

उ. हाँ, गौतम ! ऐसा करने में समर्थ है।

प्र. भन्ते ! क्या वायुकाय अपनी ऋद्धि से गति करता है या पर की ऋद्धि से गति करता है ?

उ. गौतम ! वह अपनी ऋद्धि से गति करता है, पर की ऋद्धि से गति नहीं करता है।

जैसे वायुकाय आत्मऋद्धि से गति करता है,

ऐसे ही आत्मकर्म से एवं आत्मप्रयोग से भी गति करता है यह कहना चाहिए।

---

१. विया. स. ५, उ. ६ सु. १४

प. से भंते ! किं ऊसिओदयं गच्छइ, पतोदयं गच्छइ ?

उ. गोयमा ! ऊसिओदयं पि गच्छइ, पतोदयं पि गच्छइ।

प. से भंते ! किं एगओपडागं गच्छइ, दुहओपडागं गच्छइ ?

उ. गोयमा ! एगओपडागं गच्छइ, णो दुहओपडागं गच्छइ।

प. से णं भंते ! किं वाउकाए पडागा ?

उ. गोयमा ! वाउकाए णं से, णो खलु सा पडागा।

–विया. स. ३, उ. ४, सु. ६-७

३०. बलागस्स इत्थिआइ रूव परिणमण परूवणं–

प. **पभू णं भंते ! बलाहगे एगं महं इत्थिरूवं वा जाव संदमाणियरूवं वा परिणामेत्तए ?**

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. पभू णं भंते ! बलाहए एगं महं इत्थिरूवं परिणामेत्ता अणेगाइं जोयणाइं गमित्तए ?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. से भंते ! किं आयड्ढीए गच्छइ, परिड्ढीए गच्छइ ?

उ. गोयमा ! णो आयड्ढीए गच्छइ, परिड्ढीए गच्छइ।

एवं णो आयकम्मुणा, परकम्मुणा। नो आयपयोगेणं, परप्पयोगेणं।

ऊसिओदयं वा गच्छइ, पतोदयं वा गच्छइ।

प. से णं भंते ! किं बलाहए इत्थी ?

उ. गोयमा ! बलाहए णं से, णो खलु सा इत्थी।

एवं पुरिसे, आसे, हत्थी।

प. पभू णं भंते ! बलाहए एगं महं जाणरूवं परिणामेत्ता अणेगाइं जोयणाइं गमित्तए ?

उ. गोयमा ! जहा इत्थिरूवं तहा भाणियव्वं।

णवरं–एगओ चक्कवालं पि, दुहओ चक्कवालं पि भाणियव्वं।

जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीया-संदमाणियाणं तहेव।

–विया. स. ३, उ. ४, सु. ८-११

प्र. भन्ते ! क्या वह वायुकाय उच्छित (उन्नत) पताका के आकार से गति करता है या पतित (पड़ी झुकी हुई) पताका के आकार से गति करता है ?

उ. गौतम ! वह उच्छितपताका और पतित-पताका इन दोनों के आकार से गति करता है।

प्र. भन्ते ! क्या वायुकाय एक दिशा में एक पताका के समान रूप बनाकर गति करता है अथवा दो दिशाओं में दो पताकाओं के समान रूप बनाकर गति करता है ?

उ. गौतम ! वह एक पताका के समान रूप बनाकर गति करता है, किन्तु दो दिशाओं में दो पताकाओं के समान रूप बनाकर गति नहीं करता है।

प्र. भन्ते ! उस समय क्या वह वायुकाय है या पताका है ?

उ. गौतम ! वह वायुकाय है, किन्तु पताका नहीं है।

३०. बलाहक का स्त्री आदि रूपों के परिणमन का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या बलाहक (मेघ पंक्ति) एक बड़ा स्त्रीरूप **यावत्** स्यन्दमानिका (छोटी पालकी) रूप में परिणत होने में समर्थ है ?

उ. हाँ, गौतम ! ऐसा होने में समर्थ है।

प्र. भन्ते ! क्या बलाहक एक बड़े स्त्रीरूप में परिणत होकर अनेक योजन तक जाने में समर्थ है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह ऐसा होने में समर्थ है।

प्र. भन्ते ! क्या वह बलाहक आत्मऋद्धि से गति करता है या परऋद्धि से गति करता है ?

उ. गौतम ! वह आत्मऋद्धि से गति नहीं करता, परऋद्धि से गति करता है।

उसी तरह वह आत्मकर्म (स्वक्रिया से) और आत्मप्रयोग से गति नहीं करता, किन्तु परकर्म से और परप्रयोग से गति करता है।

वह उच्छ्रितपताका या पतित-पताका दोनों में से किसी एक के आकार रूप से गति करता है।

प्र. भन्ते ! उस समय क्या वह बलाहक है या स्त्री है ?

उ. गौतम ! वह बलाहक है, स्त्री नहीं है।

इसी तरह बलाहक पुरुष, अश्व या हाथी नहीं है।

प्र. भन्ते ! क्या वह बलाहक, एक बड़े यान (शकट-गाड़ी) के रूप में परिणत होकर अनेक योजन तक जा सकता है ?

उ. गौतम ! जैसे स्त्री के सम्बन्ध में कहा, उसी तरह यान के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए।

विशेष–वह यान के एक ओर चक्र (पहिया) वाला होकर भी चल सकता है और दोनों ओर चक्र वाला होकर भी चल सकता है।

इसी तरह युग्य, गिल्ली, थिल्लि, शिविका और स्यन्दमानिका के रूपों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।

इन्द्रिय अध्ययन : आमुख

आत्मा के लिङ्ग को इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रियों से आत्मा के होने का ज्ञान होता है। यह इन्द्रिय का सामान्य लक्षण इन्द्र का अर्थ आत्मा मानकर किया जाता है, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इन्द्रियाँ आभिनिबोधिक ज्ञान में सहायभूत होती हैं। आभिनिबोधिक अथवा मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान में इन्द्रियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। संसारी जीव साधारणतया मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान अथवा मतिअज्ञान एवं श्रुत अज्ञान से युक्त होते हैं। इसलिए इन्द्रियाँ ही उनके ज्ञान का मुख्य साधन बनती हैं। जैनदर्शन में इन्द्रिय शब्द से मन का ग्रहण नहीं होता है। मन को इसीलिए अनिन्द्रिय कहा जाता है।

इन्द्रियाँ पांच प्रकार की हैं–श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय (जिह्वेन्द्रिय) और स्पर्शनेन्द्रिय। जैनेतर कुछ दर्शनों में इन इन्द्रियों को ज्ञानेन्द्रिय कहा गया है तथा उनमें पाणि, पाद, पायु, उपस्थ एवं वाक् ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ भी स्वीकार की गई हैं। जैनदर्शन में कर्मेन्द्रियों का वर्णन अलग से कहीं नहीं हुआ है। ये कर्मेन्द्रियाँ जैनदर्शन के अनुसार शरीर के अंगोपांगों में सम्मिलित हैं।

श्रोत्र से शब्द का, चक्षु से रूप का, घ्राण से गन्ध का, जिह्वा से रस का तथा स्पर्शन इन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञान होता है। वर्णादि के भेदों के आधार पर पाँच इन्द्रियों के २३ विषय एवं २४० विकार माने जाते हैं।

ये पाँचों प्रकार की इन्द्रियाँ द्रव्य एवं भाव के भेद से दो दो प्रकार की होती हैं। द्रव्येन्द्रिय के आगम में आठ भेद किये गये हैं–दो श्रोत्र, दो नेत्र, दो घ्राण, एक जिह्वा और एक स्पर्शन। भावेन्द्रिय के पाँच भेद हैं–श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, जिह्वा एवं स्पर्शन। तत्वार्थ सूत्र में निर्वृत्ति एवं उपकरण द्रव्येन्द्रिय के ये दो भेद किए गए हैं तथा लब्धि एवं उपयोग भावेन्द्रिय के ये दो भेद प्रतिपादित हैं।

द्रव्येन्द्रिय में से प्रत्येक बाहल्य की दृष्टि से अंगुल के असंख्यातवें भाग कही गयी है तथा प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तप्रदेशी कही गई है। श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षु इन्द्रिय एवं घ्राणेन्द्रिय विशालता (पृथुत्व) की दृष्टि से अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है किन्तु जिह्वेन्द्रिय की विशालता अंगुल पृथक्त्व एवं स्पर्शनेन्द्रिय की विशालता शरीर प्रमाण कही गई है। पाँचों इन्द्रियां असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ रहती हैं। आकार या संस्थान की दृष्टि से श्रोत्रेन्द्रिय कदम्बपुष्प के आकार वाली, चक्षु इन्द्रिय मूसरचन्द्र के आकार वाली, घ्राणेन्द्रिय अतिमुक्तकपुष्प के आकार वाली, जिह्वेन्द्रिय खुरपे के आकार वाली तथा स्पर्शेन्द्रिय नाना प्रकार के आकार वाली मानी गई है।

पाँच इन्द्रियों में चक्षु को छोड़कर शेष चार इन्द्रियां प्राप्यकारी होती हैं अर्थात् वे विषयों के स्पृष्ट होने पर ही उन्हें जानती हैं, अन्यथा नहीं। जबकि चक्षु इन्द्रिय अप्राप्यकारी होती है, वह विषयों से अस्पृष्ट रहकर उनका ज्ञान कराती है। कभी इन्द्रियों के विषय एक देश से जाने जाते हैं तथा कभी सर्वदेश से जाने जाते हैं। इस दृष्टि से पाँच इन्द्रियों के विषय एकदेश एवं सर्वदेश के आधार पर दस प्रकार के हो जाते हैं। श्रोत्रेन्द्रियादि इन्द्रियों का विषय क्षेत्र भिन्न-भिन्न है।

पाँच इन्द्रियों के जो विषय हैं उनमें से शब्द और रूप को काम कहा जाता है तथा गन्ध, रस एवं स्पर्श को भोग कहा जाता है। पाँचों को मिलाकर काम-भोग कहा जाता है। ये काम-भोग जीव से सम्बद्ध होने के कारण जीव भी हैं और मूलतः अजीव होने के कारण अजीव भी हैं। इसी कारण से ये सचित्त भी हैं और अचित्त भी हैं। ये पौद्गलिक होने से रूपी होते हैं तथापि जीवों में होते हैं, अजीवों में नहीं। ये पुद्गल शुभ से अशुभ में एवं अशुभ से शुभ में परिणमित होते रहते हैं, यथा सुशब्द दुःशब्द में, दुःशब्द सुशब्द में, सुरूप दुरूप में, दुरूप सुरूप में, सुगन्ध दुर्गन्ध में, दुर्गन्ध सुगन्ध में, सुरस दुरस में, दुरस सुरस में एवं इसी प्रकार स्पर्श का शुभ एवं अशुभ में परिणमन होता रहता है।

जिस जीव में जितनी इन्द्रियां पायी जाती हैं वह जीव उसी नाम से पुकारा जाता है, यथा जिस जीव में एक स्पर्शेन्द्रिय पायी जाती है उसे एकेन्द्रिय, जिसमें स्पर्श एवं रसना ये दो इन्द्रियां पायी जाती हैं उसे द्वीन्द्रिय, जिसमें स्पर्शन, रसना एवं घ्राण ये तीन इन्द्रियां पायी जाती हैं उसे त्रीन्द्रिय, जिसमें चक्षु सहित चार इन्द्रियां पायी जाती हैं उसे चतुरिन्द्रिय तथा जिसमें श्रोत्र सहित पांचों इन्द्रियां पायी जाती हैं उस जीव को पंचेन्द्रिय कहा जाता है।

चौबीस दण्डकों में नैरयिक, देव, मनुष्य एवं पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों में पाँचों इन्द्रियां पायी जाती हैं, अतः ये सब पंचेन्द्रिय जीव हैं। तिर्यञ्चगति के चतुरिन्द्रिय जीवों में चार, त्रीन्द्रियों में तीन एवं द्वीन्द्रिय में दो इन्द्रियां रहती हैं। पृथ्वीकाय आदि जो एकेन्द्रिय जीव हैं उनमें मात्र एक स्पर्शेन्द्रिय पायी जाती है। नैरयिकों एवं देवों में स्पर्शेन्द्रिय दो प्रकार की होती है–भवधारणीय (जन्म से प्राप्त) एवं उत्तरवैक्रिय (वैक्रिय शरीर जन्य)। नैरयिकों में दोनों प्रकार की स्पर्शनेन्द्रिय हुण्डकसंस्थान वाली होती हैं जबकि देवों में भवधारणीय स्पर्शेन्द्रिय समचतुरस्रसंस्थान वाली एवं उत्तरवैक्रिय स्पर्शेन्द्रिय नाना संस्थान वाली कही गई हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिकों एवं मनुष्यों की स्पर्शेन्द्रिय छह प्रकार के संस्थानों वाली हो सकती है। वे संस्थान हैं–समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, वामन, कुब्जक और हुण्डक । एकेन्द्रियों की जो स्पर्शेन्द्रिय है वह भिन्न-भिन्न आकार वाली मानी गई है। पृथ्वीकायिकों की स्पर्शेन्द्रिय मसूरचन्द्र के समान, अप्कायिकों की जलबिन्दु के समान, तेजस्कायिकों की सूचीकलाप के समान, वायुकायिकों की पताका

के समान आकार वाली तथा वनस्पतिकायिकों की नाना आकार वाली कही गई है। इस अध्ययन में प्रत्येक जीव की इन्द्रियों के संस्थान, बाहल्य, पृथुत्व, प्रदेश और अवगाहना का सम्यक् निरूपण हुआ है।

पांच प्रकार की इन्द्रियों में अवगाहना की अपेक्षा चक्षु इन्द्रिय सबसे अल्प है तथा स्पर्शेन्द्रिय सबसे अधिक है। प्रदेशों की अपेक्षा भी चक्षुइन्द्रिय सबसे अल्प तथा स्पर्शेन्द्रिय सबसे अधिक मानी गई है। चक्षु से श्रोत्र, श्रोत्र से घ्राण, घ्राण से जिह्वा एवं जिह्वा से स्पर्श की अवगाहना एवं प्रदेश उत्तरोत्तर अधिक है।

इन्द्रियों के पांच भेद ही इन्द्रियलब्धि के पांच भेद होते हैं एवं वे ही इन्द्रियोपयोग के पांच भेद होते हैं। इस प्रकार लब्धि एवं उपयोग के रूप में विभक्त भावेन्द्रिय भी श्रोत्रादि के भेद से पांच प्रकार की ही होती है। जिस जीव में जितनी इन्द्रियां पायी जाती हैं उसमें उतनी ही इन्द्रियलब्धि एवं इन्द्रियोपयोग पाए जाते हैं। उपयोग काल की दृष्टि से चक्षु का उपयोग काल सबसे अल्प एवं स्पर्शेन्द्रिय का उपयोग काल सबसे अधिक है। चक्षु से श्रोत्र, घ्राण एवं जिह्वा का उपयोगकाल उत्तरोत्तर अधिक है।

इन्द्रिय निर्वर्तना (रचना), इन्द्रियकरण एवं इन्द्रियोपचय के भी इन्द्रियों की भांति श्रोत्रादि पांच-पांच भेद हैं। जिस जीव में जितनी इन्द्रियां होती हैं, उसमें उतनी इन्द्रियनिर्वर्तना, उतने ही इन्द्रियकरण एवं उतने ही इन्द्रियोपचय पाए जाते हैं। इन्द्रियनिर्वर्तना का काल असंख्यात समय युक्त अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है। इस काल में यथायोग्य इन्द्रियों का निर्माण हो जाता है।

मतिज्ञान इन्द्रियों की सहायता से होता है। मतिज्ञान के अवग्रह, ईहा, अवाय एवं धारणा ये चार भेद किए जाते हैं। अवग्रह दो प्रकार का होता है—अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह। इनमें से अर्थावग्रह पांचों इन्द्रियों एवं मन से होने के कारण छह प्रकार का होता है तथा व्यंजनावग्रह चक्षु एवं मन को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों से होने के कारण चार प्रकार का होता है, यथा—श्रोत्रेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, घ्राणेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, जिह्वेन्द्रिय व्यंजनावग्रह एवं स्पर्शेन्द्रिय व्यंजनावग्रह। ईहा एवं अवाय ज्ञान में पांचों इन्द्रियां सहायक होने से पांच-पांच प्रकार का कहा गया है। मन से इन्हें स्वीकार करने पर इनके छह-छह भेद भी प्रतिपादित हैं। जिस जीव में जो इन्द्रियां उपलब्ध हैं उसमें उन्हीं इन्द्रियों के व्यंजनावग्रह, अर्थावग्रह, ईहा एवं अवाय ज्ञान उपलब्ध होते हैं।

१६. इन्दियऽज्झयणं

सूत्र

१. इंदिय भेय परूवणं–

प. कइ णं भंते ! इंदिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंच इंदिया पण्णत्ता, तं जहा–

१. सोइंदिए, २. चक्खिंदिए,
३. घाणिंदिए, ४. जिब्भिंदिए,
५. फासिंदिए।[1] –पण्ण. प. १५, उ. १, सु. ९७३

इंदियाणं बाहल्लं–

प. सोइंदिए णं भंते ! केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! अंगुलस्स असंखेज्जइभागं बाहल्लेणं पण्णत्ते,

एवं जाव फासिंदिए। –पण्ण. प. १५, उ. १, सु. ९७५

इंदियाणं पोहत्तं–

प. सोइंदिए णं भंते ! केवइयं पोहत्तेणं पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! अंगुलस्स असंखेज्जइभागं पोहत्तेणं पण्णत्ते,

एवं चक्खिंदिए वि, घाणिंदिए वि,

प. जिब्भिंदिए णं भंते ! केवइयं पोहत्तेणं पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! अंगुलपुहत्तं पोहत्तेणं पण्णत्ते।

प. फासिंदिए णं भंते ! केवइयं पोहत्तेणं पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ते पोहत्तेणं पण्णत्ते।

–पण्ण. प. १५, उ. १, सु. ९७६

इंदियाणं पएसा–

प. सोइंदिए णं भंते ! कइपएसिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! अणंतपएसिए पण्णत्ते,

एवं जाव फासिंदिए। –पण्ण. प. १५, उ. १, सु. ९७७

इंदियाणं पएसोगाढत्तं–

प. सोइंदिए णं भंते ! कइपएसोगाढे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते,

एवं जाव फासिंदिए। –पण्ण. प. १५, उ. १, सु. ९७८

इंदियाणं संठाणं–

प. सोइंदिए णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! कलंबुया-पुप्फ-संठाणसंठिए पण्णत्ते,

प. चक्खिंदिए णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! मसूरचंदसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

१६. इन्द्रिय अध्ययन

सूत्र

१. इन्द्रियों के भेदों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! इन्द्रियाँ कितनी कही गई हैं ?

उ. गौतम ! पांच इन्द्रियाँ कही गई हैं, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय, २. चक्षुरिन्द्रिय,
३. घ्राणेन्द्रिय, ४. जिह्वेन्द्रिय,
५. स्पर्शेन्द्रिय।

इन्द्रियों का बाहल्य–

प्र. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय का बाहल्य (मोटाई) कितना कहा गया है ?

उ. गौतम ! अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण बाहल्य कहा गया है।

इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय पर्यन्त बाहल्य जानना चाहिए।

इन्द्रियों की विशालता–

प्र. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय की कितनी विशालता कही गई है ?

उ. गौतम ! अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण विशालता कही गई है।

इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय एवं घ्राणेन्द्रिय के विषय में भी समझना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जिह्वेन्द्रिय की कितनी विशालता कही गई है ?

उ. गौतम ! जिह्वेन्द्रिय की अंगुल पृथक्त्व की विशालता कही गई है।

प्र. भन्ते ! स्पर्शेन्द्रिय की कितनी विशालता कही गई है ?

उ. गौतम ! स्पर्शेन्द्रिय की विशालता शरीरप्रमाण कही गई है।

इन्द्रियों के प्रदेश–

प्र. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय कितने प्रदेश वाली कही गई है ?

उ. गौतम ! वह अनन्त प्रदेश वाली कही गई है।

इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय पर्यन्त के प्रदेशों के सम्बन्ध में कहना चाहिए।

इन्द्रियों का प्रदेशावगाढत्व–

प्र. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय कितने प्रदेशों में अवगाढ़ कही गई है ?

उ. गौतम ! असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ कही गई है।

इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय पर्यन्त कहना चाहिए।

इन्द्रियों के संस्थान–

प्र. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय किस आकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! वह कदम्बपुष्प के आकार की कही गई है।

प्र. भन्ते ! चक्षुरिन्द्रिय किस आकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! मसूरचन्द्र के आकार की कही गई है।

---

१. (क) विया.स.२,उ.४,सु.१ (ख) विया.स.१६,उ.१,सु.१९ (ग) विया.स.१७,उ.१,सु.१६

प. घाणिंदिए णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! अइमुत्तग-संठाणसंठिए पण्णत्ते,

प. जिब्भिंदिए णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते,

उ. गोयमा ! खुरप्प-संठाणसंठिए पण्णत्ते,

प. फासिंदिए णं भंते ! किं संठिए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

-पण्ण. प. १५, उ. १, सु. ९७४

प्र. भन्ते ! घ्राणेन्द्रिय किस आकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! वह अतिमुक्तकपुष्प के आकार की कही गई है।

प्र. भन्ते ! जिह्वेन्द्रिय किस आकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! वह खुरपे के आकार की कही गई है।

प्र. भन्ते ! स्पर्शेन्द्रिय किस आकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! वह नाना प्रकार के आकार की कही गई है।

२. विविहा इंदियत्था-

चत्तारि इंदियत्था पुट्ठा वेदेंति, तं जहा-

१. सोतिंदियत्थे, २. घाणिंदियत्थे,
३. जिब्भिंदियत्थे, ४. फासिंदियत्थे।

-ठाणं. ४, उ. ३, सु. ३३४(३)

छ इंदियत्था पण्णत्ता, तं जहा-

१. सोतिंदियत्थे जाव ५. फासिंदियत्थे[1], ६. नोइंदियत्थे।

-ठाणं अ. ६, सु. ४८६

दस इंदियत्थाऽतीता पण्णत्ता, तं जहा-

१. देसेणवि एगे सद्दाइं सुणिंसु।
२. सव्वेणवि एगे सद्दाइं सुणिंसु।
३. देसेणवि एगे रूवाइं पासिंसु।
४. सव्वेणवि एगे रूवाइं पासिंसु।
५. देसेणवि एगे गंधाइं जिंघिंसु।
६. सव्वेणवि एगे गंधाइं जिंघिंसु।
७. देसेणवि एगे रसाइं आसादेंसु।
८. सव्वेणवि एगे रसाइं आसादेंसु।
९. देसेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेंसु।
१०. सव्वेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेंसु।

दस इंदियत्था पडुप्पण्णा पण्णत्ता, तं जहा-

१. देसेणवि एगे सद्दाइं सुणेंति।
२. सव्वेणवि एगे सद्दाइं सुणेंति।
३. देसेणवि एगे रूवाइं पासंति।
४. सव्वेणवि एगे रूवाइं पासंति।
५. देसेणवि एगे गंधाइं जिंघंति।
६. सव्वेणवि एगे गंधाइं जिंघंति।
७. देसेणवि एगे रसाइं आसादेंति।
८. सव्वेणवि एगे रसाइं आसादेंति।
९. देसेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेंति।
१०. सव्वेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेंति।

२. इन्द्रियों के विविध अर्थ-

चार इन्द्रियों के विषय इन्द्रियों से स्पृष्ट होने पर संवेदित होते हैं, यथा-

१. श्रोत्रेन्द्रियविषय, २. घ्राणेन्द्रियविषय,
३. रसनेन्द्रियविषय, ४. स्पर्शेन्द्रियविषय।

इन्द्रियों के अर्थ (विषय) छ प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. श्रोत्रेन्द्रिय का अर्थ यावत् ५. स्पर्शेन्द्रिय का अर्थ, ६. नो-इन्द्रिय का अर्थ।

इन्द्रियों के अतीतकालीन विषय दश कहे गये हैं, यथा-

१. अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी शब्द सुने थे।
२. अनेक जीवों ने शरीर के सर्व देश से भी शब्द सुने थे।
३. अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी रूप देखे थे।
४. अनेक जीवों ने शरीर के सर्व देश से भी रूप देखे थे।
५. अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी गन्ध सूंघे थे।
६. अनेक जीवों ने शरीर के सर्व देश से भी गन्ध सूंघे थे।
७. अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी रस चखे थे।
८. अनेक जीवों ने शरीर के सर्व देश से भी रस चखे थे।
९. अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी स्पर्शों का वेदन किया था।
१०. अनेक जीवों ने शरीर के सर्व देश से भी स्पर्शों का वेदन किया था।

इन्द्रियों के वर्तमानकालीन विषय दश कहे गये हैं, यथा-

१. अनेक जीव शरीर के एक देश से भी शब्द सुनते हैं।
२. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से भी शब्द सुनते हैं।
३. अनेक जीव शरीर के एक देश से भी रूप देखते हैं।
४. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से भी रूप देखते हैं।
५. अनेक जीव शरीर के एक देश से भी गन्ध सूंघते हैं।
६. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से भी गन्ध सूंघते हैं।
७. अनेक जीव शरीर के एक देश से भी रस चखते हैं।
८. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से भी रस चखते हैं।
९. अनेक जीव शरीर के एक देश से भी स्पर्शों का वेदन करते हैं।
१०. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से भी स्पर्शों का वेदन करते हैं।

---

१. [illegible]

दस इंदियत्था अणागता पण्णत्ता, तं जहा–

१. देसेणवि एगे सद्दाइं सुणिस्संति।
२. सव्वेणवि एगे सद्दाइं सुणिस्संति।
३. देसेणवि एगे रूवाइं पासिस्संति।
४. सव्वेणवि एगे रूवाइं पासिस्संति।
५. देसेणवि एगे गंधाइं जिंघिस्संति।
६. सव्वेणवि एगे गंधाइं जिंघिस्संति।
७. देसेणवि एगे रसाइं आसादेस्संति।
८. सव्वेणवि एगे रसाइं आसादेस्संति।
९. देसेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेस्संति।
१०. सव्वेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेस्संति।

–ठाणं. अ. १०, सु. ७०६

इन्द्रियों के भविष्यकालीन विषय दश कहे गये हैं, यथा–

१. अनेक जीव शरीर के एक देश से शब्द सुनेंगे।
२. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से शब्द सुनेंगे।
३. अनेक जीव शरीर के एक देश से रूप देखेंगे।
४. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से रूप देखेंगे।
५. अनेक जीव शरीर के एक देश से गन्ध सूंघेंगे।
६. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से गन्ध सूंघेंगे।
७. अनेक जीव शरीर के एक देश से रस चखेंगे।
८. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से रस चखेंगे।
९. अनेक जीव शरीर के एक देश से स्पर्शों का वेदन करेंगे।
१०. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से स्पर्शों का वेदन करेंगे।

३. इंदियाणं पुट्ठापुट्ठ पविट्ठापविट्ठ य विसय गहणं–

प. पुट्ठाइं भंते ! सद्दाइं सुणेइ, अपुट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ ?

उ. गोयमा ! पुट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ, नो अपुट्ठाइ सद्दाइं सुणेइ,

प. पुट्ठाइं भंते ! रूवाइं पासइ, अपुट्ठाइं रूवाइं पासइ ?

उ. गोयमा ! नो पुट्ठाइ रूवाइं पासइ, अपुट्ठाइं रूवाइं पासइ,

प. पुट्ठाइं भंते ! गंधाइं अग्घाइ, अपुट्ठाइं गंधाइं अग्घाइ ?

उ. गोयमा ! पुट्ठाइं गंधाइं अग्घाइ, नो अपुट्ठाइं गंधाइं अग्घाइ,

प. पुट्ठाइं भंते ! रसाइं अस्साएइ, अपुट्ठाइं रसाइं अस्साएइ ?

उ. गोयमा ! पुट्ठाइं रसाइं अस्साएइ, नो अपुट्ठाइं रसाइं अस्साएइ,

प. पुट्ठाइं भंते ! फासाइं पडिसंवेदेइ, अपुट्ठाइं फासाइं पडिसंवेदेइ ?

उ. गोयमा ! पुट्ठाइं फासाइं पडिसंवेदेइ, नो अपुट्ठाइं फासाइं पडिसंवेदेइ।

प. पविट्ठाइं भंते ! सद्दाइं सुणेइ अपविट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ ?

उ. गोयमा ! पविट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ, नो अपविट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ।

एवं जहा पुट्ठाणि तहा पविट्ठाणि वि।

–पण्ण. प. १५, उ. १, सु. ९९०-९९१

गाहाओ–पुट्ठं सुणेइ सद्दं, रूवं पुण पासइ अपुट्ठं तु।

गंधं रसं च फासं च, बद्धपुट्ठं वियागरे ॥

३. इन्द्रियों का स्पृष्ट-अस्पृष्ट और प्रविष्ट-अप्रविष्ट विषयों का ग्रहण–

प्र. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय स्पृष्ट शब्दों को सुनती है या अस्पृष्ट शब्दों को सुनती है ?

उ. गौतम ! वह स्पृष्ट शब्दों को सुनती है, अस्पृष्ट शब्दों को नहीं सुनती है।

प्र. भन्ते ! चक्षुइन्द्रिय स्पृष्ट रूपों को देखती है या अस्पृष्ट रूपों को देखती है ?

उ. गौतम ! वह स्पृष्ट रूपों को नहीं देखती है, अस्पृष्ट रूपों को देखती है।

प्र. भन्ते ! घ्राणेन्द्रिय स्पृष्ट गन्धों को सूंघती है या अस्पृष्ट गन्धों को सूंघती है ?

उ. गौतम ! वह स्पृष्ट गन्धों को सूंघती है, अस्पृष्ट गन्धों को नहीं सूंघती है।

प्र. भन्ते ! जिह्वेन्द्रिय स्पृष्ट रसों को चखती है या अस्पृष्ट रसों को चखती है ?

उ. गौतम ! वह स्पृष्ट रसों को चखती है, अस्पृष्ट रसों को नहीं चखती है।

प्र. भन्ते ! स्पर्शेन्द्रिय स्पृष्ट स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करती है या अस्पृष्ट स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करती है ?

उ. गौतम ! वह स्पृष्ट स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करती है, अस्पृष्ट स्पर्शों का प्रतिसंवेदन नहीं करती है।

प्र. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय प्रविष्ट शब्दों को सुनती है या अप्रविष्ट शब्दों को सुनती है ?

उ. गौतम ! वह प्रविष्ट शब्दों को सुनती है, अप्रविष्ट शब्दों को नहीं सुनती है।

जिस प्रकार स्पृष्ट के विषय में कहा, उसी प्रकार प्रविष्ट के विषय में भी कहना चाहिए।

गाथार्थ–शब्द श्रोत्रेन्द्रिय से स्पृष्ट होने पर ही सुना जाता है, किन्तु रूप नेत्र से स्पृष्ट हुए बिना ही देखा जाता है।

गन्ध, रस और स्पर्श के पुद्गल इन्द्रियों से बद्ध और स्पृष्ट होने पर ही जाने जाते हैं।

भासा-समसेढीओ, सद्दं जं सुणइ मीसियं सुणइ।
वीसेणी पुण सद्दं, सुणेइ नियमा पराघाए ॥

—नंदि सु. ६५ गा. ७५-७६

४. इंदियाणं विसयखेत्तपमाणं—

प. सोइंदियस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागाओ, उक्कोसेणं बारसहिं जोयणेहिंतो अच्छिण्णे पोग्गले पुट्ठे पविट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ।

प. चक्खिंदियस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागाओ, उक्कोसेणं साइरेगाओ जोयणसयसहस्साओ अच्छिण्णे पोग्गले अपुट्ठे अपविट्ठाइं रूवाइं पासइ।

प. घाणिंदियस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागाओ, उक्कोसेणं णवहिं जोयणेहिंतो अच्छिण्णे पोग्गले पुट्ठे पविट्ठाइं गंधाहिं अग्घाइ।

एवं जिब्भिंदियस्स वि, फासिंदियस्स वि।

—पण्ण. प. १५, उ. १, सु. ९९२

५. छउमत्थ केवलीहिं सद्दसवणसामत्थ परूवणं—

प. छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से आउडिज्जमाणाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा—

१. संखसद्दाणि वा, २. सिंगसद्दाणि वा, ३. संखियसद्दाणि वा, ३. खरमुहिसद्दाणि वा, ५. पोयासद्दाणि वा, ६. परिपिरियासद्दाणि वा, ७. पणवसद्दाणि वा, ८. पडहसद्दाणि वा, ९. भंभासद्दाणि वा, १०. होरंभसद्दाणि वा, ११. भेरिसद्दाणि वा, १२. झल्लरिसद्दाणि वा, १३. दुंदुभिसद्दाणि वा, १४. तताणि वा, १५. वितताणि वा, १६. घणाणि वा, १७. झुसिराणि वा ?

उ. हंता, गोयमा ! छउमत्थे णं मणूसे आउडिज्जमाणाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा—

१. संखसद्दाणि वा जाव १७. झुसिराणि वा।

प. ताइं भंते ! किं पुट्ठाइं सुणेइ ? अपुट्ठाइं सुणेइ ?

उ. गोयमा ! पुट्ठाइं सुणेइ, नो अपुट्ठाइं सुणेइ जाव णियमा छद्दिसिं सुणेइ।

प. छउमत्थे णं भंते! मणुस्से किं आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ? पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ?

उ. गोयमा ! आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ, नो पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ।

सम श्रेणी में स्थित श्रोता अन्य (शब्द) पुद्गलों से मिश्रित भाषा के पुद्गलों को सुनता है। विश्रेणी में स्थित श्रोता अन्य (शब्द) पुद्गलों से आघात प्राप्त भाषा पुद्गलों को सुनता है।

४. इन्द्रियों के विषय क्षेत्र का प्रमाण—

प्र. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय का विषय कितना कहा गया है ?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट बारह योजन दूर से आए अविच्छिन्न शब्द वर्गणा के पुद्गल के स्पृष्ट होने पर प्रविष्ट शब्दों को सुनती है।

प्र. भन्ते ! चक्षुरिन्द्रिय का विषय कितना कहा गया है ?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट साधिक एक लाख योजन दूर के अविच्छिन्न पुद्गलों के अस्पृष्ट एवं अप्रविष्ट रूपों को देखती है।

प्र. भन्ते ! घ्राणेन्द्रिय का विषय कितना कहा गया है ?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट नौ योजन दूर से आए अविच्छिन्न पुद्गल के स्पृष्ट होने पर प्रविष्ट गन्धों को सूंघ लेती है।

इसी प्रकार जिह्वेन्द्रिय का भी और स्पर्शेन्द्रिय का भी कथन करना चाहिए।

५. छद्मस्थ और केवली द्वारा शब्द श्रवण के सामर्थ्य का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! छद्मस्थ मनुष्य क्या बजाये जाते हुए वाद्यों के शब्दों को सुनता है, यथा—

१. शंख के शब्द, २. रणसींगे के शब्द, ३. शंखिका के शब्द ४. खरमुही के शब्द, ५. पोता के शब्द, ६. परिपीरिका (सुअर के चमड़े से मढ़े हुए मुख वाले एक प्रकार के बाजे) के शब्द, ७. पणव (ढोल) के शब्द, ८. पटह (ढोलकी) के शब्द, ९. भंभा (छोटी भेरी) के शब्द, १०. होरंभ के शब्द, ११. भेरी के शब्द, १२. झल्लरी (झालर) के शब्द, १३. दुन्दुभि के शब्द, १४. तत (—वीणा आदि वाद्यों) के शब्द, १५. वितत (ढोल आदि) के शब्द, १६. घन (ठोस बाजों-कांस्य ताल आदि वाद्यों के) शब्द, १७. झुषिर शब्द (बिगुल, बांसुरी, बंशी आदि के शब्द) सुनता है ?

उ. हां, गौतम ! छद्मस्थ मनुष्य बजाये जाते हुए शब्दों को सुनता है, यथा—

१. शंख यावत् १७. झुषिर वाद्य।

प्र. भन्ते ! क्या वह (छद्मस्थ) उन (पूर्वोक्त वाद्यों के) शब्दों को स्पृष्ट होने पर सुनता है या अस्पृष्ट होने पर सुनता है ?

उ. गौतम ! छद्मस्थ मनुष्य (उन वाद्यों के) स्पृष्ट हुए शब्दों को सुनता है, अस्पृष्ट शब्दों को नहीं सुनता है यावत् नियम से छहों दिशाओं से आए हुए स्पृष्ट शब्दों को सुनता है।

प्र. भन्ते ! क्या छद्मस्थ मनुष्य आरगत (इन्द्रिय विषय के समीप रहे हुए) शब्दों को सुनता है या पारगत (इन्द्रिय विषय से दूर रहे हुए) शब्दों को सुनता है ?

उ. गौतम ! (छद्मस्थ मनुष्य) आरगत शब्दों को सुनता है, किन्तु पारगत शब्दों को नहीं सुनता है।

प. जहा णं भंते ! छउमत्थ मणुस्से आरगयाइं सद्दाइं-सुणेइ, नो पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ। तहा णं भंते ! केवली किं आरगयाइं सद्दाइं सुणेइ, नो पारगयाइं सद्दाइं सुणेइ ?

उ. गोयमा ! केवली णं आरगयं वा पारगयं वा सव्वदूरमूलमणंतियं सद्दं जाणइ पासइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'केवली णं आरगयं वा पारगयं वा सव्वदूरमूलमणंतियं सद्दं जाणइ पासइ ?'

उ. गोयमा ! केवली णं पुरत्थिमेणं मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ, एवं दाहिणेणं, पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं, उड्ढं, अहे मियं पि जाणइ अमियं पि जाणइ।

सव्वं जाणइ केवली, सव्वं पासइ केवली, सव्वओ जाणइ पासइ, सव्वकालं जाणइ पासइ, सव्वभावे जाणइ केवली, सव्वभावे पासइ केवली, अणंते नाणे केवलिस्स, अणंते दंसणे केवलिस्स, निव्वुडे नाणे केवलिस्स, निव्वुडे दंसणे केवलिस्स।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'केवली णं आरगयं वा पारगयं वा सव्वदूरमूलमणंतियं सद्दं जाणइ पासइ।' *–विया. स. ५, उ. ४, सु. १-४*

प्र. भन्ते ! जैसे छद्मस्थ मनुष्य आरगत शब्दों को सुनता है किन्तु पारगत शब्दों को नहीं सुनता है तो भन्ते ! वैसे ही क्या केवलज्ञानी आरगत शब्दों को सुनता है पारगत शब्दों को नहीं सुनता है ?

उ. हाँ, गौतम ! केवली मनुष्य आरगत, पारगत या समस्त दूरवर्ती और निकटवर्ती अनन्त (अन्तरहित) शब्दों को जानता और देखता है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'केवली मनुष्य आरगत, पारगत या सभी प्रकार के दूरवर्ती, निकटवर्ती अनन्त शब्दों को जानता देखता है ?

उ. गौतम ! केवली पूर्व दिशा की मित वस्तु को भी जानता है और अमित वस्तु को भी जानता-देखता है। इसी प्रकार दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा, उत्तर दिशा, ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा की मित वस्तु को भी जानता देखता है तथा अमित वस्तु को भी जानता देखता है।

केवलज्ञानी सब जानता है और सब देखता है। केवली सर्वतः (सब ओर से) जानता देखता है, केवली सर्वकाल को जानता देखता है, केवली सर्व भावों (पदार्थों) को जानता देखता है। केवली के अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन होता है। केवलज्ञानी का ज्ञान और दर्शन निरावृत (सभी प्रकार के आवरणों से रहित) होता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'केवली मनुष्य आरगत और पारगत शब्दों को सभी प्रकार के दूरवर्ती और निकटवर्ती शब्दों को जानता देखता है।'

६. इंदियाणं विसयाणं काम-भोगत्तं च परूवणं–

प. रूवी भंते ! कामा ? अरूवी कामा ?
उ. गोयमा ! रूवी कामा समणाउसो ! नो अरूवी कामा।
प. सचित्ता भंते ! कामा ? अचित्ता कामा ?
उ. गोयमा ! सचित्ता वि कामा, अचित्ता वि कामा।
प. जीवा भंते ! कामा ? अजीवा कामा ?
उ. गोयमा ! जीवा वि कामा, अजीवा वि कामा।
प. जीवाणं भंते ! कामा ? अजीवाणं कामा ?
उ. गोयमा ! जीवाणं कामा, नो अजीवाणं कामा।
प. कइविहा णं भंते ! कामा, पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! दुविहा कामा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सद्दा य २. रूवा य।
प. रूवी भंते ! भोगा ? अरूवी भोगा ?
उ. गोयमा ! रूवी भोगा, नो अरूवी भोगा।
प. सचित्ता भंते ! भोगा ? अचित्ता भोगा ?
उ. गोयमा ! सचित्ता वि भोगा, अचित्ता वि भोगा।
प. जीवा भंते ! भोगा ? अजीवा भोगा ?
उ. गोयमा ! जीवा वि भोगा, अजीवा वि भोगा।
प. जीवाणं भंते ! भोगा ? अजीवाणं भोगा ?
उ. गोयमा ! जीवाणं भोगा, नो अजीवाणं भोगा।

६. इन्द्रिय-विषयों के काम और भोगित्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! काम रूपी है या अरूपी है ?
उ. हे आयुष्मन् श्रमण गौतम ! काम रूपी है, अरूपी नहीं है।
प्र. भंते ! काम सचित्त है या अचित्त है ?
उ. गौतम ! काम सचित भी है और अचित्त भी है।
प्र. भन्ते ! काम जीव है या अजीव है ?
उ. गौतम ! काम जीव भी है और अजीव भी है।
प्र. भन्ते ! काम जीवों के होते हैं या अजीवों के होते हैं ?
उ. गौतम ! काम जीवों के होते हैं, अजीवों के नहीं होते हैं।
प्र. भंते ! काम कितने प्रकार के कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! काम दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. शब्द, २. रूप।
प्र. भंते ! भोग रूपी हैं या अरूपी हैं ?
उ. गौतम ! भोग रूपी हैं वे अरूपी नहीं होते हैं।
प्र. भंते ! भोग सचित्त होते हैं या अचित्त होते हैं ?
उ. गौतम ! भोग सचित्त भी होते हैं और अचित्त भी होते हैं।
प्र. भंते ! भोग जीव होते हैं या अजीव होते हैं ?
उ. गौतम ! भोग जीव भी होते हैं और अजीव भी होते हैं।
प्र. भंते ! भोग जीवों के होते हैं या अजीवों के होते हैं ?
उ. गौतम ! भोग जीवों के होते हैं, अजीवों के नहीं होते हैं।

प. कइविहा णं भंते ! भोगा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! तिविहा भोगा पण्णत्ता, तं जहा–

१. गंधा, २. रसा, ३. फासा।

प. कइविहा णं भंते ! कामभोगा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! पंचविहा कामभोगा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सद्दा, २. रूवा, ३. गंधा, ४. रसा, ५. फासा।

–विया. स. ७, उ. ७, सु. २-१२

प्र. भंते ! भोग कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. गौतम ! भोग तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. गन्ध, २. रस, ३. स्पर्श।

प्र. भंते ! काम भोग कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. गौतम ! काम भोग पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. शब्द, २. रूप, ३. गन्ध, ४. रस, ५. स्पर्श।

७. पंचविह-इंदिय-विसयाणं पोग्गल-परिणामं–

प. कइविहे णं भंते ! इंदियविसए पोग्गल-परिणामे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! पंचविहे इंदियविसए पोग्गल-परिणामे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सोइंदियविसए पोग्गल-परिणामे जाव ५. फासिंदिय-विसए पोग्गल-परिणामे।

प. सोइंदियविसए णं भंते ! पोग्गल-परिणामे कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सुब्भि-सद्दपरिणामे य २. दुब्भि-सद्दपरिणामे य,

एवं चक्खिंदियविसए पोग्गल-परिणामे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सुरूव-परिणामे, २. दुरूव-परिणामे य,

एवं घाणिंदियविसए पोग्गल-परिणामे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सुरभिगंध-परिणामे, २. दुरभिगंध-परिणामे य,

एवं जिब्भिंदियविसए पोग्गल-परिणामे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सुरस-परिणामे, २. दुरस-परिणामे य,

एवं फासिंदियविसए पोग्गल-परिणामे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सुफास-परिणामे, २. दुफास-परिणामे य,

प. से नूणं भंते ! उच्चावएसु सद्दपरिणामेसु,
उच्चावएसु रूवपरिणामेसु,
उच्चावएसु गंधपरिणामेसु,
उच्चावएसु रसपरिणामेसु,
उच्चावएसु फासपरिणामेसु
परिणममाणा पोग्गला परिणमंतीति वत्तव्वं सिया?

उ. हंता, गोयमा ! उच्चावएसु सद्दपरिणामेसु परिणममाणा पोग्गला परिणमंतीति वत्तव्वं सिया।

प. से नूणं भंते ! सुब्भिसद्दा पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, दुब्भिसद्दा पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति?

उ. हंता, गोयमा ! सुब्भिसद्दा पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, दुब्भिसद्दा पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति,

७. पांच इन्द्रियों के विषयों का पुद्गल परिणाम–

प्र. भन्ते ! इन्द्रियों का विषयभूत पुद्गलों का परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! इन्द्रियों का विषयभूत पुद्गलों का परिणाम पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय का विषयभूत पुद्गल परिणाम यावत्
५. स्पर्शेन्द्रिय का विषयभूत पुद्गल परिणाम।

प्र. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय का विषयभूत पुद्गलों का परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सुशब्दों का परिणाम २. दुशब्दों का परिणाम।

इसी प्रकार चक्षुइन्द्रियों का विषयभूत पुद्गलों का परिणाम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सुरूप परिणाम, २. दुरूप परिणाम।

इसी प्रकार घ्राणिन्द्रियों का विषयभूत पुद्गलों का परिणाम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सुगन्ध परिणाम २. दुर्गन्ध परिणाम।

इसी प्रकार जिह्वेन्द्रिय का विषयभूत पुद्गलों का परिणाम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सुरस परिणाम २. दुरसपरिणाम।

इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय का विषयभूत पुद्गलों का परिणाम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सुस्पर्श परिणाम, २. दुस्पर्श परिणाम।

प्र. भन्ते ! क्या अच्छे बुरे शब्द परिणामों में,
अच्छे बुरे रूप परिणामों में,
अच्छे बुरे गन्ध परिणामों में,
अच्छे बुरे रस परिणामों में,
अच्छे बुरे स्पर्श परिणामों में,
परिणमित होते हुए पुद्गल परिणत होते हैं ऐसा कहा जा सकता है?

उ. हां, गौतम ! अच्छे बुरे शब्द परिणामों में परिणमित होते हुए पुद्गल परिणत होते हैं ऐसा कहा जा सकता है।

प्र. भन्ते ! क्या सुशब्दों के पुद्गल दुःशब्दों के रूप में परिणत होते हैं? या दुःशब्दों के पुद्गल सुशब्दों के रूप में परिणत होते हैं?

उ. हां, गौतम ! सुशब्दों के पुद्गल दुःशब्दों के रूप में परिणत होते हैं तथा दुःशब्दों के पुद्गल सुशब्दों के रूप में परिणत होते हैं।

एवं सुरूवा पोग्गला, दुरूवत्ताए परिणमंति,
दुरूवा पोग्गला, सुरूवत्ताए परिणमंति,
एवं सुब्भिगंधा पोग्गला, दुब्भिगंधत्ताए परिणमंति,

दुब्भिगंधा पोग्गला, सुब्भिगंधत्ताए परिणमंति,
एवं सुरसा पोग्गला, दुरसत्ताए परिणमंति,
दुरसा पोग्गला, सुरसत्ताए परिणमंति,
एवं सुफासा पोग्गला, दुफासत्ताए परिणमंति,

दुफासा पोग्गला, सुफासत्ताए परिणमंति[1]।

–जीवा. पडि. ३, सु. १८९

८. इंदियलद्धी भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! इंदियलद्धी पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा इंदियलद्धी पण्णत्ता, तं जहा–

१. सोइंदियलद्धी जाव ५. फासिंदियलद्धी।[2]

दं. १-२४ एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

णवरं–जस्स जइ इंदिया तस्स तावइया लद्धी भाणियव्वा।

–पण्ण. प. १५, उ. २, सु. १०११

९. इंदियउवओगद्धा भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! इंदिय उवओगद्धा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा इंदिय उवओगद्धा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सोइंदिय उवओगद्धा जाव ५. फासिंदिय उवओगद्धा,

दं. १-२४ एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

णवरं–जस्स जइ इंदिया तस्स तावइया उवओगद्धा भाणियव्वा। *–पण्ण. प. १५, उ. २, सु. १०१२*

१०. इंदिय-उवओगद्धाए अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाणं जहण्णियाए उवओगद्धाए, उक्कोसियाए उवओगद्धाए, जहण्णुक्कोसियाए उवओगद्धाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा चक्खिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा,

२. सोइंदियस्स जहण्णिया उवोगद्धा विसेसाहिया,

३. घाणिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया,

इसी प्रकार सुरूप के पुद्गल दुरूप में परिणत होते हैं।
दुरूप के पुद्गल सुरूप में परिणत होते हैं।
इसी प्रकार सुगन्ध के पुद्गल दुर्गन्ध के रूप में परिणत होते हैं।
दुर्गन्ध के पुद्गल सुगन्ध के रूप में परिणत होते हैं।
इसी प्रकार सुरस के पुद्गल दुरस के रूप में परिणत होते हैं।
दुरस के पुद्गल सुरस के रूप में परिणत होते हैं।
इसी प्रकार सुस्पर्श के पुद्गल दुस्पर्श के रूप में परिणत होते हैं।
दुस्पर्श के पुद्गल सुस्पर्श के रूप में परिणत होते हैं।

८. इन्द्रियलब्धि के भेद और चौबीसदंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! इन्द्रियलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! इन्द्रियलब्धि पांच प्रकार की कही गई है, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रियलब्धि यावत् ५. स्पर्शेन्द्रियलब्धि।

दं. १-२४ इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–जिसके जितनी इन्द्रियाँ हों, उसके उतनी ही इन्द्रियलब्धि कहनी चाहिए।

९. इन्द्रियोपयोग काल के भेद और चौबीसदंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! इन्द्रियों के उपयोग का काल कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! इन्द्रियों के उपयोग का काल पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय उपयोग काल यावत् ५. स्पर्शेन्द्रिय उपयोगकाल।

दं. १-२४ इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष–जिसके जितनी इन्द्रियां हों, उसके उतने ही इन्द्रिय उपयोगकाल कहने चाहिए।

१०. इन्द्रियों के उपयोगकाल का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय के जघन्य उपयोगकाल, उत्कृष्ट उपयोगकाल और जघन्योत्कृष्ट उपयोग काल में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. चक्षुरिन्द्रिय का जघन्य उपयोग काल सबसे अल्प है,

२. (उससे) श्रोत्रेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक है,

३. (उससे) घ्राणेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक है,

---

१. विया. स. ३, उ. ९, सु. १

२. विया. स. ८, उ. २, सु. ९०

४. जिब्भिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया,

५. फासेंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया।

उक्कोसियाए उवओगद्धाए–

१. सव्वत्थोवा चक्खिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा,
२. सोइंदियस्स उक्कोसिया उवोगद्धा विसेसाहिया,
३. घाणिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया,
४. जिब्भिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया,
५. फासिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया।

जहण्णुक्कोसियाए उवओगद्धाए–

१. सव्वत्थोवा चक्खिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा,
२. सोइंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया,
३. घाणिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया,
४. जिब्भिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया,
५. फासेंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया,

फासेंदियस्स जहण्णियाहिंतो उवओगद्धाहिंतो–

१. चक्खिदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया,
२. सोइंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया,
३. घाणिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया,
४. जिब्भिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया,
५. फासेंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया।

–पण्ण. प. १५. उ. २, सु. १०१३

४. (उससे) जिह्वेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक है,

५. (उससे) स्पर्शेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक है।

उत्कृष्ट उपयोगकाल की अपेक्षा से–

१. चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल सबसे अल्प है,
२. (उससे) श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक है,
३. (उससे) घ्राणेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक है,
४. (उससे) जिह्वेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक है,
५. (उससे) स्पर्शेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक है।

जघन्योत्कृष्ट उपयोगकाल की अपेक्षा से–

१. सबसे अल्प चक्षुरिन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल है,
२. (उससे) श्रोत्रेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक है,
३. (उससे) घ्राणेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक है,
४. (उससे) जिह्वेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक है,
५. (उससे) स्पर्शेन्द्रिय का जघन्य उपयोगकाल विशेषाधिक है,

स्पर्शेन्द्रिय के जघन्य उपयोगकाल से–

१. चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक है,
२. (उससे) श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक है,
३. (उससे) घ्राणेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक है,
४. (उससे) जिह्वेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक है,
५. (उससे) स्पर्शेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगकाल विशेषाधिक है,

११. सव्विंदियणिव्वत्तीभेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! सव्विंदियमिव्वत्ती पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा सव्विंदियनिव्वत्ती पण्णत्ता, तं जहा–
१. सोइंदियनिव्वत्ती जाव ५. फासिंदियनिव्वत्ती।
दं. १-११ एवं नेरइया जाव थणियकुमाराणं।

प. दं. १२ पुढविकाइयाणं भंते ! कइविहा इंदियनिव्वत्ती पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगा फासिंदियनिव्वत्ती पण्णत्ता।
दं. १३-२४ एवं जस्स जइ इंदियाणि जाव वेमाणियाणं।

-विया. स. १९, उ. ८, सु. ११-१४

११. सर्वेन्द्रियनिर्वृत्ति के भेद और चौबीसदंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! सर्वेन्द्रियनिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! सर्वेन्द्रियनिर्वृत्ति पांच प्रकार की कही गई है, यथा–
१. श्रोत्रेन्द्रियनिर्वृत्ति यावत् ५. स्पर्शेन्द्रियनिर्वृत्ति।
दं. १-११ इसी प्रकार नैरयिकों से स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १२ भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीवों की कितनी इन्द्रियनिर्वृत्ति कही गई है ?

उ. गौतम ! उनकी एक मात्र स्पर्शेन्द्रियनिर्वृत्ति कही गई है।
दं. १३-२४ इसी प्रकार जिसके जितनी इन्द्रियां हों, उसके उतनी इन्द्रियनिर्वृत्ति वैमानिकों पर्यन्त कहनी चाहिए।

१२. इंदिय निव्वत्तणा भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! इंदिय-निव्वत्तणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा इंदिय-निव्वत्तणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सोइंदिय- निव्वत्तणा जाव ५. फासिंदिय-निव्वत्तणा।

दं. १-२४ एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

णवरं–जस्स जइ इंदिया तस्स तावइया चेव, इंदिय निव्वत्तणा भाणियव्वा।[1] –*पण्ण. प. १५, उ. २, सु. १००९*

१२. इन्द्रिय निर्वर्तना के भेद और चौबीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! इन्द्रिय निर्वर्तना (निर्वृत्ति) कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! इन्द्रिय निर्वर्तना पांच प्रकार की कही गई है, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय निर्वर्तना **यावत्** ५. स्पर्शेन्द्रिय निर्वर्तना।

दं. १-२४ इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–जिसके जितनी इन्द्रियां होती हैं, उसकी उतनी ही इन्द्रिय निर्वर्तना कहनी चाहिए।

१३. इंदिय निव्वत्तणा समया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. सोइंदिय निव्वत्तणा णं भंते ! कइ समया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जसमया अंतोमुहुत्तिया पण्णत्ता, एवं जाव फासिंदिय निव्वत्तणा समया,

दं. १-२४ एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

णवरं–जस्स जइ इंदिया तस्स तावइया अंतोमुहुत्तिया समया भाणियव्वा। –*पण्ण. प. १५, उ. २, सु. १०१०*

१३. इन्द्रिय निर्वर्तना का समय और चौबीसदंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय निर्वर्तना कितने समय की कही गई है ?

उ. गौतम ! असंख्यात समयों के अन्तर्मुहूर्त की कही गई है।

इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय निर्वर्तना काल पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. १-२४ इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त की इन्द्रिय निर्वर्तना का काल जानना चाहिए।

विशेष–जिसके जितनी इन्द्रियां होती हैं उसको उतनी ही अन्तर्मुहूर्त के समयों की निर्वर्तना कहनी चाहिए।

१४. इंदियकरण भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! इंदियकरणे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे इंदियकरणे पण्णत्ते, तं जहा–

१- सोइंदियकरणे जाव ५-फासिंदियकरणे,

दं. १-२४ एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

णवरं–जस्स जइ इंदियाइं तस्स तइ इंदियकरणाइं। –*विया. स. १९, उ. ९, सु. ६-७*

१४. इन्द्रिय करण भेद और चौबीसदंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! इन्द्रिय-करण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! इन्द्रिय करण पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय करण **यावत्** ५. स्पर्शेन्द्रिय करण।

दं. १-२४ इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त इन्द्रिय करण कहना चाहिए।

विशेष–जिसके जितनी इन्द्रियां हों, उसके उतने ही इन्द्रिय करण कहने चाहिए।

१५. इंदियोवचय भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! इंदियोवचए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे इंदियोवचए पण्णत्ते, तं जहा–

१. सोइंदिओवचए जाव ५. फासिंदिओवचए[2]

दं. १-२४ एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

णवरं–जस्स जइ इंदिया तस्स तइविहो चेव इंदियोवचओ भाणियव्वो। –*पण्ण. प. १५, उ. २, सु. १००७-१००८*

१५. इन्द्रियोपचय भेद और चौबीसदंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! इन्द्रियोपचय कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! इन्द्रियोपचय पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रियोपचय **यावत्** ५. स्पर्शेन्द्रियोपचय।

दं. १-२४ इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त इन्द्रियोपचय जानना चाहिए।

विशेष–जिसके जितनी इन्द्रियां होती हैं, उसके उतने ही प्रकार का इन्द्रियोपचय कहना चाहिए।

१६. चउवीसदंडएसु इंदियाणं संठाणाइं छद्दार परूवणं–

प. दं. १ णेरइयाणं भंते ! कइ इंदिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचेंदिया पण्णत्ता, तं जहा–

१. सोइंदिए जाव ५. फासिंदिए।[3]

१६. चौवीस दण्डकों में इन्द्रियों के संस्थानादि के छ द्वारों का प्ररूपण–

प्र. दं. १ भन्ते ! नैरयिकों के कितनी इन्द्रियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! उनके पांच इन्द्रियां कही गई हैं, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय यावत् ५. स्पर्शेन्द्रिय।

---

१. इन आठ दण्डकों में इन्द्रियाँ इस प्रकार हैं–
   (क) पांच स्थावर में एक स्पर्शेन्द्रिय,
   (ख) द्वीन्द्रिय में दो इन्द्रियाँ–१. स्पर्शेन्द्रिय, २. रसेन्द्रिय
   (ग) त्रीन्द्रिय में तीन इन्द्रियाँ–१. स्पर्शेन्द्रिय, २. रसेन्द्रिय, ३. घ्राणेन्द्रिय
   (घ) चतुरिन्द्रिय में चार इन्द्रियाँ–१. स्पर्शेन्द्रिय, २. रसेन्द्रिय, ३. घ्राणेन्द्रिय, ४. चक्षुरिन्द्रिय
   (ङ) शेष १६ दण्डकों में पांचों इन्द्रियां हैं।

२. विया. स. २०, उ. ४, सु. १

३. जीवा. पडि. १, सु. ३२

प. णेरइयाणं भंते ! सोइंदिए किं संठिए पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! कलंबुयासंठाणसंठिए पण्णत्ते।
णवरं–एवं जहेव ओहियाणं वत्तव्वया भणिया तहेव णेरइयाण वि जाव अप्पाबहुयाणि दोण्णिवि

प. णेरइयाणं भंते ! फासिंदिए किं संठिए पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. भवधारणिज्जे य, २. उत्तरवेउव्विए य।
१. तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे, से णं हुंडसंठाणसंठिए पण्णत्ते,
२. तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए, **से वि तहेव**

सेसं तं चेव।

प. दं. २-११. असुरकुमाराणं भंते ! कइ इंदिया पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! पंचेंदिया पण्णत्ता।
एवं जहा ओहियाणं जाव अप्पाबहुयाणि दोण्णिवि।

णवरं–फासेंदिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. भवधारणिज्जे य, २. उत्तरवेउव्विए य।[1]
१. तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे, से णं समचउरंससंठाण–संठिए पण्णत्ते,
२. तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए, से णं णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते,
सेसं तं चेव।
एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. १. दं. १२. पुढविकाइयाणं भंते ! कइ इंदिया पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! एगे फासिंदिए पण्णत्ते।
प. पुढविकाइयाणं भंते ! फासिंदिए किं संठिए पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! मसूरचंदसंठिए पण्णत्ते।
प. २. पुढविकाइयाणं भंते ! फासिंदिए केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! अंगुलस्स असंखेज्जइभागं बाहल्लेणं पण्णत्ते।
प. ३. पुढविकाइयाणं भंते ! फासिंदिए केवइयं पोहत्तेणं पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ते पोहत्तेणं पण्णत्ते।
प. ४. पुढविकाइयाणं भंते ! फासिंदिए कइपएसिए पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! अणंतपएसिए पण्णत्ते।

प्र. भन्ते ! नारकों की श्रोत्रेन्द्रिय किस आकार की कही गई है ?
उ. गौतम ! वह कदम्बपुष्प के आकार की कही गई है।
विशेष–इसी प्रकार जैसे समुच्चय जीवों के पांच इन्द्रियों का कथन किया गया है, वैसे ही नारकों के दोनों प्रकार के अल्पबहुत्व तक का कथन करना चाहिए।
प्र. भन्ते ! नारकों की स्पर्शेन्द्रिय किस आकार की कही गई है ?
उ. गौतम ! दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. भवधारणीया, २. उत्तरवैक्रिया,
१. उनमें से जो भवधारणीया है, वह हुण्डकसंस्थान की कही गई है।
२. उनमें से जो उत्तरवैक्रिया स्पर्शेन्द्रिय है, वह भी वैसी (हुण्डक-संस्थान की) कही गई है।
शेष पूर्ववत् समझनी चाहिए।
प्र. दं. २-११. भन्ते ! असुरकुमारों की कितनी इन्द्रियां कही गई है ?
उ. गौतम ! उनके पांच इन्द्रियां कही गई हैं।
इसी प्रकार समुच्चय जीवों के समान दोनों प्रकार के अल्पबहुत्व पर्यन्त कथन करना चाहिए।
विशेष–स्पर्शेन्द्रिय दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. भवधारणीय, २. उत्तरवैक्रिय।
१. उसमें भवधारणीय स्पर्शेन्द्रिय समचतुरस्रसंस्थान वाली कही गई है।
२. उसमें उत्तर वैक्रिय स्पर्शेन्द्रिय नाना संस्थान वाली कही गई है।
शेष कथन पूर्ववत् करना चाहिए।
इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त के लिए कहना चाहिए।
प्र. १. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकाय के कितनी इन्द्रियां कही गई हैं ?
उ. गौतम ! एक स्पर्शेन्द्रिय कही गई है।
प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों की स्पर्शेन्द्रिय किस आकार की कही गई है ?
उ. गौतम ! वह मसूर चन्द्र की आकार की कही गई है।
प्र. २. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों की स्पर्शेन्द्रिय का बाहल्य कितना कहा गया है ?
उ. गौतम ! उसका बाहल्य अंगुल के असंख्यातवें भाग जितना कहा गया है।
प्र. ३. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों की स्पर्शेन्द्रिय की लम्बाई कितनी कही गई हैं ?
उ. गौतम ! उनका विस्तार उनके शरीर प्रमाण मात्र है।
प्र. ४. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों की स्पर्शेन्द्रिय कितने प्रदेशों की कही गई है ?
उ. गौतम ! अनन्तप्रदेशी कही गई है।

---

1. जीवा. पडि. १, सु. ३३ (८)

प. ५. पुढविकाइयाणं भंते ! फासिंदिए कइपएसोगाढे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जपएसोगाढ़े पण्णत्ते।

प. ६. एएसि णं भंते ! पुढविकाइयाणं फासिंदियस्स ओगाहण-पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवे पुढविकाइयाणं फासिंदिए ओगाहणट्ठयाए, से चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणे।

प. पुढविकाइयाणं भंते ! फसिंदियस्स केवइया कक्खडगरुयगुणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

एवं मउयलहुयगुणा वि।

प. एएसि णं भंते ! पुढविकाइयाणं फासिंदियस्स कक्खड-गरुयगुण मउय-लहुयगुणाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवा पुढविकाइयाणं फासेंदियस्स कक्खड-गरुयगुणा, तस्स चेव मउय-लहुयगुणा अणंतगुणा।

दं. १३-१६ एवं आउक्काइयाण वि जाव वणप्फइकाइयाणं।[1]

णवरं–संठाणे इमो विसेसो दट्ठव्वो–

आउक्काइयाणं थिबुगबिंदुसंठाणसंठिए पण्णत्ते,
तेउक्काइयाणं सूईकलावसंठाणसंठिए पण्णत्ते,

वाउक्काइयाणं पडागासंठाणसंठिए पण्णत्ते,
वणप्फइकाइयाणं णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

प. दं. १७. वेइंदियाणं भंते ! कइ इंदिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दो इंदिया पण्णत्ता, तं जहा–

१. जिब्भिंदिए य, २. फासिंदिए य।[2]

दोण्हं पि इंदियाणं संठाणं, वाहल्लं, पोहत्तं, पदेसा, ओगाहणा य जहा ओहियाणं भणिया तहा भाणियव्वा।

णवरं–फासेंदिए हुंडसंठाणसंठिए पण्णत्ते त्ति इमोविसेसो।

प. एएसि णं भंते। वेइंदियाणं जिब्भिंदिय-फासेंदियाणं ओगाहणट्ठयाए पएसट्ठयाए ओगाहणपएसट्ठाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! ओगाहणट्ठयाए सव्वत्थोवे वेइंदियाणं जिब्भिंदिए।

ओगाहणट्ठयाए फासिंदिए संखेज्जगुणे।

प्र. ५. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों की स्पर्शेन्द्रिय कितने प्रदेशों में अवगाढ कही गई है ?

उ. गौतम ! असंख्यातप्रदेशों में अवगाढ कही गई है।

प्र. ६. भन्ते ! इन पृथ्वीकायिकों की स्पर्शेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिकों की स्पर्शेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा सबसे कम है, प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुणी हैं।

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों की स्पर्शेन्द्रिय के कर्कश-गुरु गुण कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वे अनन्त कहे गए हैं।

इसी प्रकार मृदु-लघु गुणों के विषय में भी समझना चाहिए।

प्र. भन्ते ! इन पृथ्वीकायिकों की स्पर्शेन्द्रिय के कर्कश-गुरु गुणों और मृदु-लघु गुणों में से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिकों के स्पर्शेन्द्रिय के कर्कश और गुरु गुण सबसे कम हैं और उसी के मृदु लघु गुण अनन्तगुणे हैं।

दं. १३-१६. इसी प्रकार अप्कायिकों से वनस्पतिकायिकों पर्यन्त का कथन करना चाहिए।

विशेष–किन्तु इनके संस्थान के विषय में यह विशेपता समझ लेनी चाहिए–

अप्कायिकों की स्पर्शेन्द्रिय जल विन्दु के आकार की कही है,

तेजस्कायिकों की स्पर्शेन्द्रिय सूचीकलाप के आकार की कही है,

वायुकायिकों की स्पर्शेन्द्रिय पताका के आकार की कही है,

वनस्पतिकायिकों की स्पर्शेन्द्रिय का आकार नाना प्रकार का कहा गया है।

प्र. दं. १७. भन्ते ! द्वीन्द्रिय जीवों के कितनी इन्द्रियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! दो इन्द्रियां कही गई हैं, यथा–

१. जिह्वेन्द्रिय, २. स्पर्शेन्द्रिय।

दोनों इन्द्रियों के संस्थान, वाहल्य, पृथुत्व, प्रदेश और अवगाहना के विषय में जैसे समुच्चय के संस्थानादि के विषय में कहा है वैसा ही कहना चाहिए।

विशेष–यह है कि इनकी स्पर्शेन्द्रिय हुण्डकसंस्थान वाली कही गई है।

प्र. भन्ते ! इन द्वीन्द्रियों की जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय में से अवगाहना की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से तथा अवगाहना और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! अवगाहना की अपेक्षा से द्वीन्द्रियों की जिह्वेन्द्रिय सबसे कम है,

अवगाहना की अपेक्षा से स्पर्शेन्द्रिय संख्यातगुणी है।

---

१. जीवा. पडि. १ सु. १४-२६

२. जीवा. पडि. १ सु. २८

पएसट्ठयाए सव्वत्थोवे बेइंदियाणं जिब्भिंदिए
पएसट्ठयाए फासेंदिए संखेज्जगुणे।
ओगाहणपएसट्ठयाए सव्वत्थोवे बेइंदियस्स जिब्भिंदिए

ओगाहणपएसट्ठयाए फासिंदिए संखेज्जगुणे।

फासेंदियस्स ओगाहणट्ठयाएहिंतो जिब्भिंदिए पएसट्ठयाए अणंतगुणे,
पएसट्ठयाए फासिंदिए संखेज्जगुणे।

प. बेइंदियाणं भंते ! जिब्भिंदियस्स केवइया कक्खड-गरुयगुणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता।
एवं फासेंदियस्स वि,

एवं मउय-लहुयगुणा वि।

प. एएसि णं भंते ! बेइंदियाणं जिब्भिंदिए-फासेंदियाणं कक्खड-गरुयगुणाणं-मउय-लहुयगुणाणं कक्खड-गरुयगुण-मउय-लहुयगुणाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! सव्वत्थोवा बेइंदियाणं जिब्भिंदियस्स कक्खड-गरुयगुणा,
फासेंदियस्स कक्खड-गरुयगुणा अणंतगुणा,
फासेंदियस्स कक्खड-गरुयगुणेहिंतो तस्स चेव मउय-लहुयगुणा अणंतगुणा,
जिब्भिंदियस्स मउय-लहुयगुणा अणंतगुणा।
दं. १८-१९. एवं जाव चउरिंदिय त्ति।[1]
णवरं–इंदियपरिवुड्ढी कायव्वा।
तेइंदियाणं घाणेंदिय थोवे,
चउरिंदियाणं चक्खिंदिए थोवे।
सेसं तं चेव।
दं. २०-२१. पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं मणूसाण य जहा णेरइयाणं।[2]
णवरं–फासिंदिए छव्विहसंठाणसंठिए पण्णत्ते, तं जहा–

१. समचउरंसे, २. णग्गोहपरिमंडले, ३. साती, ४. खुज्जे, ५. वामणे, ६. हुंडे।
दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं।[3] –पण्ण. प. १५, उ. १, सु. ९८३-९८९

प्रदेशों की अपेक्षा से–सबसे कम द्वीन्द्रिय की जिह्वेन्द्रिय है,
प्रदेशों की अपेक्षा से–उनकी स्पर्शेन्द्रिय संख्यातगुणी है।
अवगाहना और प्रदेशों की अपेक्षा से द्वीन्द्रियों की जिह्वेन्द्रिय सबसे अल्प है,
अवगाहना और प्रदेशों की अपेक्षा से स्पर्शेन्द्रिय संख्यातगुणी अधिक है,
स्पर्शेन्द्रिय की अवगाहना से जिह्वेन्द्रिय प्रदेशों की अपेक्षा से अनंतगुणी है।
प्रदेशों की अपेक्षा से स्पर्शेन्द्रिय संख्यातगुणी है।

प्र. भन्ते ! द्वीन्द्रियों की जिह्वेन्द्रिय के कितने कर्कश-गुरुगुण कहे गए हैं?

उ. गौतम ! वह अनन्त है।
इसी प्रकार इनकी स्पर्शेन्द्रिय के भी अनन्त गुण समझने चाहिए।
इसी प्रकार मृदु-लघु गुण भी अनन्त समझने चाहिए।

प्र. भन्ते ! इन द्वीन्द्रियों की जिह्वेन्द्रय और स्पर्शेन्द्रिय के कर्कश गुरुगुणों, मृदु-लघुगुणों तथा कर्कश गुरुगुण और मृदु लघु गुणों में से कौन किससे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! सबसे अल्प द्वीन्द्रियों के जिह्वेन्द्रिय के कर्कश गुरुगुण हैं,
(उनसे) स्पर्शेन्द्रिय के कर्कश गुरुगुण अनन्तगुणे हैं।
स्पर्शेन्द्रियके कर्कश गुरुगुणों से उसी के मृदु लघुगुण अनन्तगुणे हैं।
उससे भी जिह्वेन्द्रिय के मृदु लघुगुण अनन्तगुणे हैं।
दं. १८-१९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रियों पर्यन्त कहना चाहिए।
विशेष–इन्द्रिय की परिवृद्धि करनी चाहिए।
त्रीन्द्रिय जीवों की घ्राणेन्द्रिय थोड़ी होती है।
चतुरिन्द्रिय जीवों की चक्षुइन्द्रिय थोड़ी होती है।
शेष सभी कथन पूर्ववत् है।
दं. २०-२१. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों और मनुष्यों की इन्द्रियों के संस्थानादि सम्बन्धी कथन नारकों के समान समझना चाहिए।
विशेष–उनकी स्पर्शेन्द्रिय छह प्रकार के संस्थानों वाली कही गई है, यथा–
१. समचतुरस्र, २. न्यग्रोधपरिमण्डल, ३. सादि, ४. कुब्जक, ५. वामन, ६. हुण्डक।
दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों का इन्द्रिय संबंधी कथन असुरकुमारों के समान समझना चाहिए।

१७. इंदिय ओगाहणा भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! इंदिय ओगाहणा पण्णत्ता?
उ. गोयमा ! पंचविहा इंदियओगाहणा पण्णत्ता, तं जहा–

१७. इंद्रियों की अवगाहना के भेद और चौवीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! इन्द्रियावग्रहण कितने प्रकार का कहा गया है?
उ. गौतम ! इन्द्रियावग्रहण पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

---

१. जीवा. पडि. १ सु. २९-३० २. जीवा. पडि. १ सु. ३५-४१ ३. जीवा. पडि. १ सु. ४२

१-५ सोइंदियओगाहणा जाव फासिंदिय ओगाहणा।

दं. १-२४ एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

णवरं–जस्स जइ इंदिया तस्स तावइया ओगाहणा भाणियव्वा। –पण्ण. प. १५, उ. २, सु. १०१४

१. श्रोत्रेन्द्रिय अवग्रहण यावत् ५. स्पर्शेन्द्रिय अवग्रहण।

दं. १-२४ इसी प्रकार नारकों से वैमानिकों पर्यन्त पूर्ववत् कहना चाहिए।

विशेष–जिसके जितनी इन्द्रियाँ हों, उसके उतने ही इन्द्रियावग्रहण कहने चाहिए।

१८. इंदियाणं ओगाहण-पएसावेक्खा अप्प-बहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाणं ओगाहणट्ठयाए पएसट्ठाए ओगाहण-पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवे चक्खिंदिए ओगाहणट्ठयाए

२. सोइंदिए ओगाहणट्ठयाए संखेज्जगुणे,

३. घाणिंदिए ओगाहणट्ठयाए संखेज्जगुणे,

४. जिब्भिंदिए ओगाहणट्ठयाए असंखेज्जगुणे,

५. फासिंदिए ओगाहणट्ठयाए संखेज्जगुणे।

पएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवे चक्खिंदिए पएसट्ठयाए,
२. सोइंदिए पएसट्ठयाए संखेज्जगुणे,
३. घाणिंदिए पएसट्ठयाए संखेज्जगुणे,
४. जिब्भिंदिए पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणे,
५. फासिंदिए पएसट्ठयाए संखेज्जगुणे,

ओगाहण–पएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवे चक्खिंदिए ओगाहणट्ठयाए
२. सोइंदिए ओगाहणट्ठयाए संखेज्जगुणे,
३. घाणिंदिए ओगाहणट्ठयाए संखेज्जगुणे,
४. जिब्भिंदिए ओगाहणट्ठयाए असंखेज्जगुणे,
५. फसिंदिए ओगाहणट्ठयाए संखेज्जगुणे,
६. फासिंदियस्स ओगाहणट्ठयाएहिंतो चक्खिंदिए पएसट्ठयाए अणंतगुणे–
७. सोइंदिय पएसट्ठयाए संखेज्जगुणे,
८. घाणिंदिय पएसट्ठयाए संखेज्जगुणे,
९. जिब्भिंदिय पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणे,
१०. फासिंदिय पएसट्ठयाए संखेज्जगुणे।

–पण्ण. प. १५, उ. १, सु. ९७९

१८. इन्द्रियों की अवगाहना और प्रदेशों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! इन श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय में से अवगाहना की अपेक्षा से प्रदेशों की अपेक्षा से तथा अवगाहना और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! १. अवगाहना की अपेक्षा से सबसे अल्प चक्षुरिन्द्रिय है।

२. (उससे) अवगाहना की अपेक्षा श्रोत्रेन्द्रिय संख्यात-गुणी है।

३. (उससे) अवगाहना की अपेक्षा घ्राणेन्द्रिय संख्यात-गुणी है।

४. (उससे) अवगाहना की अपेक्षा जिह्वेन्द्रिय असंख्यात-गुणी है।

५. (उससे) अवगाहना की अपेक्षा स्पर्शेन्द्रिय संख्यात-गुणी है।

प्रदेशों की अपेक्षा–

१. सबसे अल्प चक्षुरिन्द्रिय है,
२. (उससे) प्रदेशों की अपेक्षा श्रोत्रेन्द्रिय संख्यातगुणी है,
३. (उससे) प्रदेशों की अपेक्षा घ्राणेन्द्रिय संख्यातगुणी है,
४. (उससे) प्रदेशों की अपेक्षा जिह्वेन्द्रिय असंख्यातगुणी है,
५. (उससे) प्रदेशों की अपेक्षा स्पर्शेन्द्रिय संख्यातगुणी है।

अवगाहना और प्रदेशों की अपेक्षा–

१. अवगाहना की अपेक्षा सबसे अल्प चक्षुरिन्द्रिय है,
२. (उससे) अवगाहना की अपेक्षा श्रोत्रेन्द्रिय संख्यातगुणी है,
३. (उससे) अवगाहना की अपेक्षा घ्राणेन्द्रिय संख्यातगुणी है,
४. (उससे) अवगाहना की अपेक्षा जिह्वेन्द्रिय असंख्यातगुणी है,
५. (उससे) अवगाहना की अपेक्षा स्पर्शेन्द्रिय संख्यातगुणी है,
६. स्पर्शेन्द्रिय की अवगाहना से प्रदेशों की अपेक्षा चक्षुरिन्द्रिय अनन्तगुणी है,
७. (उससे) प्रदेशों की अपेक्षा श्रोत्रेन्द्रिय संख्यातगुणी है,
८. (उससे) प्रदेशों की अपेक्षा घ्राणेन्द्रिय संख्यातगुणी है,
९. (उससे) प्रदेशों की अपेक्षा जिह्वेन्द्रिय असंख्यातगुणी है,
१०. (उससे) प्रदेशों की अपेक्षा स्पर्शेन्द्रिय संख्यातगुणी है।

१९. इंदियोग्गहस्स भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! उग्गहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! दुविहे उग्गहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अत्थोग्गहे य, २. वंजणोग्गहे य।

१९. इन्द्रियावग्रह के भेद और चौवीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! अवग्रह कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! अवग्रह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. अर्थावग्रह, २. व्यंजनावग्रह।

प. वंजणोग्गहे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सोइंदिय वंजणोग्गहे,
२. घाणिंदियवंजणोग्गहे,
३. जिब्भिंदिय वंजणोग्गहे,
४. फासिंदिय वंजणोग्गहे[1]।

प्र. अत्थोग्गहे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! छव्विहे अत्थोग्गहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सोइंदिय अत्थोग्गहे,
२. चक्खिंदिय अत्थोग्गहे,
३. घाणिंदिय अत्थोग्गहे,
४. जिब्भिंदिय अत्थोग्गहे,
५. फासिंदिय अत्थोग्गहे,
६. नोइंदिय अत्थोगहे[2]।

× × ×

प. द. १. नेरइयाणं भंते ! कइविहे उग्गहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! दुविहे उग्गहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अत्थोग्गहे य, २. वंजणोग्गहे य।
दं. २-११ एवं असुरकुमाराणं जाव थणियकुमाराणं।

प. द. १२ पुढविकाइयाणं भंते ! कइविहे उग्गहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! दुविहे उग्गहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अत्थोग्गहे य, २. वंजणोग्गहे य।

प. पुढविकाइयाणं भंते ! कइविहे वंजणोग्गहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! एगे फासिंदिय वंजणोग्गहे पण्णत्ते।

प. पुढविकाइयाणं भंते ! कइविहे अत्थोग्गहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! एगे फासिंदिय अत्थोग्गहे पण्णत्ते,
दं. १३-१६. एवं जाव वणफ्फइकाइयाणं।

दं. १७. बेइंदियाणं वंजणोग्गहे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. फासिंदिय वंजणोग्गहे, २. जिब्भिंदिय वंजणोग्गहे य,
वेइंदियाणं अत्थोग्गहे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. फासिंदिय अत्थोग्गहे, २, जिब्भिंदिय अत्थोग्गहे य,

दं. १८. तेइंदियाणं वंजणोग्गहे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. फासिंदिय वंजणोग्गहे, २. जिब्भिंदिय वंजणोग्गहे,
३. घाणिंदिय वंजणोग्गहे,
तेइंदियाणं अत्थोग्गहे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. फासिंदिय अत्थोग्गहे, २. जिब्भिंदिय अत्थोग्गहे,
३. घाणिंदिय अत्थोग्गहे,

प्र. भन्ते ! व्यंजनावग्रह कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. श्रोत्रेन्द्रियावग्रह,
२. घ्राणेन्द्रियावग्रह,
३. जिह्वेन्द्रियावग्रह,
४. स्पर्शेन्द्रियावग्रह।

प्र. भन्ते ! अर्थावग्रह कितने प्रकार का कहा गया है।
उ. गौतम ! अर्थावग्रह छह प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. श्रोत्रेन्द्रिय-अर्थावग्रह,
२. चक्षुरिन्द्रिय-अर्थावग्रह,
३. घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रह
४. जिह्वेन्द्रिय-अर्थावग्रह,
५. स्पर्शेन्द्रिय-अर्थावग्रह,
६. नोइन्द्रिय (मन)-अर्थावग्रह।

× × ×

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों के कितने अवग्रह कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! दो प्रकार के अवग्रह कहे हैं, यथा–
१. अर्थावग्रह, २. व्यंजनावग्रह।
दं. २-११ इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यंत कहना चाहिए।

प्र. दं. १२ भन्ते ! पृथ्वीकायिकों के कितने अवग्रह कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! उनके दो अवग्रह कहे गए हैं, यथा–
१. अर्थावग्रह, २. व्यंजनावग्रह।

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों के व्यंजनावग्रह कितने प्रकार के कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! उनके केवल एक स्पर्शेन्द्रिय व्यंजनावग्रह कहा गया है।

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों के कितने अर्थावग्रह कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! उनके केवल एक स्पर्शेन्द्रिय अर्थावग्रह कहा गया है।
दं १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यंत कहना चाहिए।

दं. १७. द्वीन्द्रियों का व्यंजनावग्रह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. स्पर्शेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, २. जिह्वेन्द्रिय व्यंजनावग्रह।
द्वीन्द्रियों का अर्थावग्रह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. स्पर्शेन्द्रिय अर्थावग्रह, २. जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह।

दं. १८ त्रीन्द्रियों का व्यंजनावग्रह तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. स्पर्शेन्द्रिय व्यंजनावग्रह, २. जिह्वेन्द्रिय व्यंजनावग्रह,
३. घ्राणेन्द्रिय व्यंजनावग्रह।
त्रीन्द्रियों का अर्थावग्रह तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. स्पर्शेन्द्रिय अर्थावग्रह, २. जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह,
३. घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह।

---

१. ठाणं ठा. ४, उ. ३, सु. ३३६
२. (क) सम. सम. ६, सु. ६ (ख) नंदी सु. ५४-५६

दं. १९. चउरिंदियाणं वंजणोग्गहे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. फासिंदिय वंजणोग्गहे,

२. जिब्भिंदिय वंजणोग्गहे,

३. घाणिंदिय वंजणोग्गहे,

चउरिंदियाणं अत्थोग्गहे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. फासिंदिय अत्थोग्गहे,

२. जिब्भिंदिय अत्थोग्गहे,

३. घाणिंदिय अत्थोग्गहे,

४. चक्खिंदिय अत्थोग्गहे,

दं. २०-२४. सेसाणं जहा नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं,

–पण्ण. प. १५ उ. २, सु. १०१७-१०२३

२०. इंदियेहा भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं :–

प. कइविहा णं भंते ! ईहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा ईहा पण्णत्ता, तं जहा–

१-५ सोइंदिय ईहा जाव फासिंदिय ईहा,

दं. १-२४ एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं,

णवरं–जस्स जइ इंदिया अत्थि तस्स तावइया ईहा भाणियव्वा। –पण्ण. प. १५, उ. २, सु. १०१६

२१. इंदियावाय भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! इंदिय अवाए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे इंदिय अवाए पण्णत्ते, तं जहा–

१. सोइंदिय अवाए जाव फासेंदिय अवाए।

दं. १-२४. एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

णवरं–जस्स जत्तिया इंदिया अत्थि तस्स तत्तिया अवाया भाणियव्वा। –पण्ण. प. १५, उ. २, सु. १०१५

२२. पयारंतरेण इंदियभेया–

प. कइविहा णं भंते ! इंदिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. दव्विंदिया य, २. भाविंदिया य।

–पण्ण. प. १५, उ. २, सु. १०२४

२३. दव्वेंदियस्स भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइ विहेणं भंते ! दव्विंदिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अट्ठ दव्विंदिया पण्णत्ता, तं जहा–

दो सोया, दो णेत्ता, दो घाणा, जीहा, फासे।

प. दं. १ णेरइयाणं भंते ! कइ दव्विंदिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अट्ठ एए चेव।

दं. २-११ एवं असुरकुमाराणं जाव थणियकुमाराण वि।

प. दं. १२ पुढविकाइयाणं भंते ! कइ दव्विंदिया पण्णत्ता ?

दं. १९ चतुरिन्द्रियों का व्यंजनावग्रह तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. स्पर्शेन्द्रिय व्यंजनावग्रह,

२. जिह्वेन्द्रिय व्यंजनावग्रह,

३. घ्राणेन्द्रिय व्यंजनावग्रह।

चतुरिन्द्रियों का अर्थावग्रह चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. स्पर्शेन्द्रिय अर्थावग्रह,

२. जिह्वेन्द्रिय अर्थावग्रह,

३. घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह,

४. चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह।

द. २०-२४ शेष वैमानिक पर्यंत के समस्त जीवों का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

२०. इन्द्रिय ईहा के भेद और चौवीसदंडकों में प्ररूपण :–

प्र. भन्ते ! ईहा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! ईहा पांच प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय ईहा यावत् ५. स्पर्शेन्द्रिय ईहा।

दं. १-२४ इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यंत ईहा भेदों का कथन करना चाहिए।

विशेष–जिसके जितनी इन्द्रियाँ हों, उसके उतने ही ईहा भेद कहने चाहिए।

२१. इन्द्रिय अवाय के भेद और चौवीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! इन्द्रिय अवाय कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! इन्द्रिय अवाय पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय अवाय यावत्-५स्पर्शेन्द्रिय अवाय।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त अवाय भेदों का कथन करना चाहिए।

विशेष–जिसके जितनी इन्द्रियां हों, उसके उतने ही इन्द्रिय अवाय भेद कहने चाहिए।

२२. प्रकारान्तर से इन्द्रियों के भेद–

प्र. भन्ते ! इन्द्रियां कितने प्रकार की कही गई हैं ?

उ. गौतम ! इन्द्रियां दो प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१. द्रव्येन्द्रिय, २. भावेन्द्रिय।

२३. द्रव्येन्द्रिय के भेद और चौवीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! द्रव्येन्द्रियां कितने प्रकार की कही गई हैं ?

उ. गौतम ! द्रव्येन्द्रियां आठ प्रकार की कही गई हैं, यथा–

दो श्रोत्र, दो नेत्र, दो घ्राण, एक जिह्वा, एक स्पर्शन।

प्र. दं. १ भन्ते ! नैरयिकों के कितनी द्रव्येन्द्रियां कही गई हैं ?

उ. गौतम ! ये ही आठ द्रव्येन्द्रियां हैं।

दं. २-११ इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १२ भन्ते ! पृथ्वीकायिकों के कितनी द्रव्येन्द्रियां कही गई हैं ?

उ. गोयमा ! एगे फासेंदिए पण्णत्ते।
दं. १३-१६ एवं जाव वणप्फइकाइयाणं।

उ. गौतम ! उनके केवल एक स्पर्शेन्द्रिय कही गई है।
दं. १३-१६ इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

प. बेइंदियाणं भंते ! कइ दव्विंदिया पण्णत्ता ?

प्र. दं. १७ भन्ते ! द्वीन्द्रिय जीवों के कितनी द्रव्येन्द्रियां कही गई हैं ?

उ. गोयमा ! दो दव्विंदिया पण्णत्ता, तं जहा-
१. फासिंदिए य, २. जिब्भिंदिए य।

उ. गौतम ! उनके दो द्रव्येन्द्रियां कही गई हैं, यथा-
१. स्पर्शेन्द्रिय, २. जिह्वेन्द्रिय।

प. दं. १८ तेइंदियाणं भंते ! कइ दव्विंदिया पण्णत्ता ?

प्र. दं. १८ भन्ते ! त्रीन्द्रिय जीवों के कितनी द्रव्येन्द्रियां कही गई हैं ?

उ. गोयमा ! चत्तारि दव्विंदिया पण्णत्ता, तं जहा-
दो घाणा, जीहा, फासे।

उ. गौतम ! उनके चार द्रव्येन्द्रियां कही गई हैं, यथा-
दो घ्राण, जिह्वा, स्पर्शन।

प. दं. १९ चउरिंदियाणं भंते ! कइ दव्विंदिया पण्णत्ता ?

प्र. दं. १९. भन्ते ! चतुरिन्द्रिय जीवों के कितनी द्रव्येन्द्रियां कही गई हैं ?

उ. गोयमा ! छ दव्विंदिया पण्णत्ता, तं जहा-
दो णेत्ता, दो घाणा, जीहा, फासे।
दं. २०-२४. सेसाणं जहा णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।
-पण्ण. प. १५, उ. २, सु. १०२५-१०२९

उ. गौतम ! उनके छह द्रव्येन्द्रियां कही गई हैं, यथा-
दो नेत्र, दो घ्राण, जिह्वा, स्पर्शन।
दं. २०-२४. शेष सभी वैमानिकों पर्यंत की द्रव्येन्द्रियाँ नैरयिकों के समान हैं।

२४. चउवीसदंडएसु अतीत-बद्ध-पुरेक्खडदव्विंदियाणं परूवणं-

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स केवइया दव्विंदिया अतीता ?
उ. गोयमा ! अणंता।
प. केवइया बद्धेल्लया ?
उ. गोयमा ! अट्ठ।
प. केवइया पुरेक्खडा ?
उ. गोयमा ! अट्ठ वा, सोलस वा, सत्तरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जवा, अणंता वा।
प. दं. २. एगमेगस्स णं भंते ! असुरकुमारस्स केवइया दव्विंदिया अतीता ?
उ. गोयमा ! अणंता।
प. केवइया बद्धेल्लगा ?
उ. गोयमा ! अट्ठ।
प. केवइया पुरेक्खडा ?
उ. गोयमा ! अट्ठ वा, णव वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।
दं. ३-११ एवं नागकुमाराणं जाव थणियकुमाराणं।

दं. १२-१३, १६. एवं पुढविकाइय-आउक्काइय, वणप्फइ-कायस्सवि णवरं-
प. केवइया बद्धेल्लगा ?
उ. गोयमा ! एक्के फासिंदिए पण्णत्ते।
दं. १४-१५ एवं तेउक्काइय, वाउक्काइयस्स वि।

णवरं-पुरेक्खडा णव वा, दस वा।

२४. चौबीस दण्डकों में अतीत-बद्ध-पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की प्ररूपणा-

प्र. दं. १. भन्ते ! एक नैरयिक के अतीत भूतकालीन द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! अनन्त हैं।
प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! आठ हैं।
प्र. भविष्यत्कालीन द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! आठ हैं, सोलह हैं, सत्रह हैं, संख्यात हैं, असंख्यात हैं अथवा अनन्त हैं।
प्र. दं. २ भन्ते ! एक एक असुरकुमार के अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! अनन्त है।
प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! आठ हैं।
प्र. भविष्यत्कालीन द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! आठ हैं, नौ हैं, संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं।
दं. ३-११. इसी प्रकार नागकुमार से स्तनितकुमारों पर्यंत द्रव्येन्द्रियां कहनी चाहिए।
दं. १२-१३, १६. इसी प्रकार पृथ्वीकायिक अप्कायिक और वनस्पतिकायिक की भी कहनी चाहिए, विशेष-
प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! केवल एक स्पर्शेन्द्रिय है।
दं. १४-१५. तेजस्कायिक और वायुकायिक की भी इसी प्रकार कहनी चाहिए।
विशेष-इनकी भावी द्रव्येन्द्रियां नौ या दस होती हैं।

दं. १७ एवं वेइंदियाण वि।

णवरं–बद्धेल्लगा दोण्णि।

दं. १८ एवं तेइंदियस्स वि।

णवरं–बद्धेल्लगा चत्तारि।

दं. १९ एवं चउरिंदियस्स वि।

णवरं–बद्धेल्लगा छ।

दं. २०-२४. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय-मणूस्स, वाणमंतर-जोइसिय-सोहम्मीसाणगदेवस्स जहा असुरकुमारस्स।

णवरं–मणूसस्स पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि अट्ठ वा, नव वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

सणंकुमार-माहिंद-बंभ-लंतग-सुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुय-गेवेज्जगदेवस्स य जहा नेरइयस्स।

प. एगमेगस्स णं भंते ! विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवस्स केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! अट्ठ।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! अट्ठ वा, सोलस वा, चउवीसा वा, संखेज्जा वा।

सव्वट्ठसिद्धगदेवस्स अतीता अणंता, बद्धेल्लगा अट्ठ, पुरेक्खडा अट्ठ।

प. दं. १ णेरइयाणं भंते ! केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! अणंता।

एवं जाव गेवेज्जगदेवाणं।

णवरं–मणूसाणं बद्धेल्लगा सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा।

प. विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिय देवाणं भंते! केवइया दव्विंदिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अतीता अणंता, बद्धेल्लगा असंखेज्जा, पुरेक्खडा असंखेज्जा।

प. सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं भंते ! केवइया दव्विंदिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अतीता अणंता, बद्धेल्लगा संखेज्जा, पुरेक्खडा संखेज्जा।

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

दं. १७. इसी प्रकार द्वीन्द्रिय भी हैं।

विशेष–बद्ध द्रव्येन्द्रियां दो हैं।

दं. १८. इसी प्रकार त्रीन्द्रिय की भी हैं।

विशेष–बद्ध द्रव्येन्द्रियां चार हैं।

दं. १९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय की भी हैं।

विशेष–बद्ध द्रव्येन्द्रियां छ हैं।

दं. २०-२४. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक, मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म ईशान देव की अतीत द्रव्येन्द्रियाँ असुरकुमारों के जैसी हैं।

विशेष–भावी द्रव्येन्द्रियां किसी मनुष्य के होती हैं और किसी के नहीं होतीं।

जिसके होती हैं, उसके आठ, नौ, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होती हैं।

सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत और ग्रैवेयक देवों की अतीत द्रव्येन्द्रियां नैरयिकों के समान है।

प्र. भन्ते ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानवासी प्रत्येक देव की अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! आठ हैं।

प्र. भावी द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! आठ, सोलह, चौवीस या संख्यात होती हैं।

सर्वार्थसिद्ध देव की अतीत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं, बद्ध द्रव्येन्द्रियां आठ और भावी द्रव्येन्द्रियां भी आठ होती हैं।

प्र. दं. १. भन्ते ! नारकों की अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. भन्ते ! बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! असंख्य हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

इसी प्रकार ग्रैवेयक देवों पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–मनुष्यों की बद्ध द्रव्येन्द्रियां कभी संख्यात हैं और कभी असंख्यात हैं।

प्र. भन्ते ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों की द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! अतीत अनन्त हैं, बद्ध असंख्यात हैं, पुरस्कृत असंख्यात हैं।

प्र. भन्ते ! सर्वार्थसिद्ध देवों की द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! इनकी अतीत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं, बद्ध संख्यात हैं, पुरस्कृत भी संख्यात हैं।

प्र. दं. १. भन्ते ! एक-एक नैरयिक की नैरयिकपने में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! अट्ठ।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,
जस्सऽत्थि अट्ठ वा, सोलस वा, चउवीसा वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

प. दं. २. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स असुरकुमारत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,
जस्सऽत्थि अट्ठ वा, सोलस वा, चउवीसा वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

दं. ३-११ एवं जाव थणियकुमारत्ते।

प. दं. १२ एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स पुढविकाइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लया ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,
जस्सऽत्थि एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

दं. १३-१६ एवं जाव वणस्सइकाइयत्ते।

प. दं. १७. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स बेइंदियत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,
जस्सऽत्थि दो वा, चत्तारि वा, छ वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

दं. १८ एवं तेइंदियत्ते वि।

णवरं-पुरेक्खडा चत्तारि वा, अट्ठ वा, बारस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

दं. १९ एवं चउरिंदियत्ते वि।

णवरं-पुरेक्खडा छ वा, बारस वा, अट्ठारस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! आठ हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! किसी नारक के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं।
जिसके होती हैं, उसके आठ, सोलह, चौबीस, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होती हैं।

प्र. दं. २. भन्ते ! एक एक नैरयिक की असुरकुमार पर्याय में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं।
जिसके होती हैं, उसके आठ, सोलह, चौबीस, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होती हैं।

दं. ३-११ इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्याय पर्यंत जानना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! एक एक नैरयिक की पृथ्वीकायपने में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं।
जिसके होती हैं, उसके एक, दो, तीन या संख्यात, असंख्यात या अनन्त होती हैं।

दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकाय पर्याय पर्यंत जानना चाहिए।

प्र. दं. १७. भन्ते ! एक एक नैरयिक की द्वीन्द्रियपने में कितनी अतीत द्रव्येन्द्रियां हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं।
जिसके होती हैं, उसके दो, चार, छह, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होती हैं।

दं. १८. इसी प्रकार त्रीन्द्रिय पर्याय के लिए जानना चाहिए।

विशेष-उसकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां चार, आठ, बारह, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त हैं।

दं. १९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय पर्याय के लिए जानना चाहिए।

विशेष-उसकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां छह, बारह, अठारह, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त हैं।

दं.२०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियत्ते जहा असुरकुमारत्ते।

दं.२१ मणूसत्ते वि एवं चेव, णवरं–

प. केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! अट्ठ वा, सोलस वा, चउवीसा वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

सव्वेसिं मणूसवज्जाणं पुरेक्खडा, मणूसत्ते "कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि" त्ति एवं ण वुच्चइ।

दं. २२-२४ वाणमंतर-जोइसिय-सोहम्मग जाव गेवेज्जगदेवत्ते अतीता अणंता।

बद्धेल्लगा णत्थि।

पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि अट्ठ वा, सोलस वा, चउवीसा वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया बद्धेल्लगा?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ वा, सोलस वा।

सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते अतीता णत्थि, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि अट्ठ।

एवं जहा णेरइयदंडओ भणिओ तहा असुरकुमारेण वि णेयव्वो जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएणं।

णवरं–जस्स जइ इन्दिया सट्ठाणे तस्स तइ बद्धेल्लगा भाणियव्वा।

प. २१. एगमेगस्स णं भंते ! मणूसस्स णेरयइत्ते केवइया दव्वेंदिया अतीता?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,

जस्सऽत्थि अट्ठ वा, सोलस वा, चउवीसा वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

एवं जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियत्ते।

दं.२०. असुरकुमार पर्याय में जिस प्रकार कहा गया उसी प्रकार पंचेन्द्रिय पर्याय तिर्यञ्चयोनिक के लिए भी कहना चाहिए।

दं.२१. मनुष्य पर्याय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए, विशेष–

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! आठ, सोलह, चौवीस, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त हैं।

मनुष्यों को छोड़कर शेष सबके पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां मनुष्यपने में किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं ऐसा कहना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म से ग्रैवेयक देव पर्याय पर्यन्त में अतीत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं,

बद्ध नहीं हैं,

पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं।

जिसके होती हैं उसके आठ, सोलह, चौबीस, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होती हैं।

प्र. दं. १. भन्ते ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव के रूप में एक नैरयिक की अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं। जिसके होती हैं, उसके आठ या सोलह होती हैं।

सर्वार्थसिद्ध देवपने में अतीत द्रव्येन्द्रियां नहीं हैं, बद्ध द्रव्येन्द्रियां भी नहीं हैं, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं।

जिसके होती हैं, उसके आठ होती हैं।

इसी प्रकार जैसे नैरयिक का आलापक कहा उसी प्रकार असुरकुमार से पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक पर्याय पर्यन्त के आलापक कहने चाहिए।

विशेष–जिसके जितनी इन्द्रियां हैं उसके उतनी बद्ध द्रव्येन्द्रियां कहनी चाहिए।

प्र. २१. भन्ते ! एक-एक मनुष्य के नैरयिकपने में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं।

जिसके होती हैं, उसके आठ, सोलह, चौबीस, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होती हैं।

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक पर्याय पर्यन्त के लिए कहना चाहिए।

णवरं–एगिंदिय विगलिंदिएसु जस्स जत्तिया इन्दिया तस्स तत्तिया पुरेक्खडा भाणियव्वा।

प. एगमेगस्स णं भंते ! मणूसस्स मणूसत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा?

उ. गोयमा ! अट्ठ।

प. केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ वा, सोलस वा, चउवीसा वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

वाणमंतर-जोइसिय जाव गेवेज्जगदेवत्ते जहा णेरइयत्ते।

प. एगमेगस्स णं भंते ! मणूसस्स विजय-वेजयंत-जयंतऽपराजियदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ वा, सोलस वा।

प. केवइया बद्धेल्लगा?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ वा, सोलस वा।

प. एगमेगस्स णं भंते ! मणूसस्स सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ।

प. केवइया बद्धेल्लगा?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ।

वाणमंतर-जोइसिए जहा णेरइए।

सोहम्मगदेवे वि जहा णेरइए, णवरं–

प. सोहम्मगदेवस्स विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि अट्ठ।

प. केवइया बद्धेल्लगा?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,

विशेष–यह है कि एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों में जिसकी जितनी इन्द्रियां हैं उसके पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां उतनी ही कहनी चाहिए।

प्र. भन्ते ! मनुष्य की मनुष्य के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! आठ हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं। जिसके होती हैं उसके आठ, सोलह, चौबीस, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होती हैं।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क से ग्रैवेयक देव पर्याय पर्यन्त में नैरयिक के समान समझना चाहिए।

प्र. भन्ते ! प्रत्येक मनुष्य की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं। जिसके होती हैं, उसके आठ या सोलह होती हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं। जिसके होती हैं उसके आठ या सोलह होती हैं।

प्र. भन्ते ! प्रत्येक मनुष्य की सर्वार्थसिद्धदेव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं। जिसके होती हैं, उसके आठ होती हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं। जिसके होती हैं, उसके आठ होती हैं।

वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देव का सम्पूर्ण आलापक नैरयिक के समान कहना चाहिए।

सौधर्म कल्प के देवों का आलापक भी नैरयिक के समान है, विशेष–

प्र. सौधर्म देव की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं। जिसके होती हैं, उसके आठ होती हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं।

जस्सऽत्थि अट्ठ वा, सोलस वा।

सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते जहा णेरइयस्स।

एवं ईसाणस्स जाव गेवेज्जगदेवस्स सव्व वत्तव्वया णेयव्वं।

जिसके होती हैं, उसके आठ या सोलह होती हैं।

सर्वार्थसिद्ध देव के रूप में नैरयिकों के समान हैं।

इसी प्रकार ईशान देवलोक से ग्रैवेयक देव पर्यंत का सम्पूर्ण कथन जान लेना चाहिए।

प. एगमेगस्स णं भंते ! विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिय-देवस्स णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

एवं जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियत्ते।

प्र. भन्ते ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवलोक के एक एक देव की नैरयिक के रूप में कितनी अतीत द्रव्येन्द्रियां हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक पर्याय पर्यन्त का कथन करना चाहिए।

मणूसत्ते अतीता अणंता,

बद्धेल्लगा णत्थि,

पुरेक्खडा अट्ठ वा, सोलस वा, चउवीसा वा, संखेज्जा वा।

मनुष्य के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं,

बद्ध नहीं हैं,

पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां आठ, सोलह या चौबीस होती हैं, अथवा संख्यात होती हैं।

वाणमंतर-जोइसियत्ते जहा णेरइयत्ते।

वाणव्यन्तर एवं ज्योतिष्क देव के रूप में अतीत बद्ध पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां नैरयिक के समान हैं।

सोहम्मगदेवत्ते अतीता अणंता।

बद्धेल्लगा णत्थि।

पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,

जस्सऽत्थि अट्ठ वा, सोलस वा, चउवीसा वा, संखेज्जा वा।

एवं जाव गेवेज्जगदेवत्ते।

सौधर्म देव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं।

बद्ध नहीं हैं।

पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं।

जिसके होती हैं, उसके आठ, सोलह, चौबीस अथवा संख्यात होती हैं।

इसी प्रकार ग्रैवेयक देव पर्याय पर्यन्त द्रव्येन्द्रियां समझनी चाहिए।

विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियत्ते अतीता कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,

जस्सऽत्थि अट्ठ।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! अट्ठ।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,

जस्सऽत्थि अट्ठ।

विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं।

जिसके होती हैं उसके आठ होती हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! वे आठ हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं।

जिसके होती हैं उसके आठ होती हैं।

प. एगमेगस्स णं भंते ! विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिय-देवस्स सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

प्र. भन्ते ! प्रत्येक विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवलोक के एक एक देव की सर्वार्थसिद्ध देव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,
जस्सऽत्थि अट्ठ।

प. एगमेगस्स णं भंते ! सव्वट्ठसिद्धगदेवस्स णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

एवं मणूसवज्जं जाव गेवेज्जगदेवत्ते।

णवरं–मणूसत्ते अतीता अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! अट्ठ।

विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते अतीता कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,
जस्सऽत्थि अट्ठ।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. एगमेगस्स णं भंते ! सव्वट्ठसिद्धगदेवस्स सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! अट्ठ।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. णेरइयाणं भंते ! णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. णेरइयाणं भंते ! असुरकुमारत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा।

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं।
जिसके होती हैं, उसके आठ होती हैं।

प्र. भन्ते ! प्रत्येक सर्वार्थसिद्धदेव की नारक के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

इसी प्रकार मनुष्य को छोड़कर ग्रैवेयक देव पर्याय पर्यन्त द्रव्येन्द्रियां कहनी चाहिए।

विशेष–मनुष्य के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! आठ हैं।

विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजितदेव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां किसी के हैं और किसी के नहीं है।
जिसके हैं, उसके आठ हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. भन्ते ! प्रत्येक सर्वार्थसिद्धदेव की सर्वार्थसिद्धदेव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! आठ हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. भन्ते ! बहुत से नैरयिकों की नारक रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! असंख्यात हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. भन्ते ! बहुत-से नैरयिकों की असुरकुमार के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गोयमा ! अणंता।
एवं जाव गेवेज्जगदेवत्ते।

प. णेरइयाणं भंते ! विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?
उ. गोयमा ! णत्थि।
प. केवइया बद्धेल्लगा।
उ. गोयमा ! णत्थि।
प. केवइया पुरेक्खडा ?
उ. गोयमा ! असंखेज्जा।
एवं सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते वि।
एवं जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं णेयव्वं।

णवरं–वणप्फइकाइयाणं विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिय देवत्ते सव्वट्ठ-सिद्धगदेवत्ते य पुरेक्खडा अणंता।
सव्वेसिं मणूस-सव्वट्ठसिद्धगवज्जाणं सट्ठाणे बद्धेल्लगा असंखेज्जा, परट्ठाणे बद्धेल्लगा णत्थि।

वणस्सइकाइयाणं सट्ठाणे बद्धेल्लगा अणंता।
मणुस्साणं णेरइयत्ते अतीता अणंता, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा अणंता।
एवं जाव गेवेज्जगदेवत्ते।
णवरं–सट्ठाणे अतीता अणंता,
बद्धेल्लगा सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा,
पुरेक्खडा अणंता।

प. मणूसाणं भंते ! विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?
उ. गोयमा ! संखेज्जा।
प. केवइया बद्धेल्लगा ?
उ. गोयमा ! णत्थि।
प. केवइया पुरेक्खडा ?
उ. गोयमा ! सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा।
एवं सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते वि।
वाणमंतर-जोइसियाणं जहा णेरइयाणं।

सोहम्मगदेवाणं एवं चेव।
णवरं–विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते अतीता असंखेज्जा, बद्धेल्लगा णत्थि। पुरेक्खडा असंखेज्जा।

सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते अतीता णत्थि,
बद्धेल्लगा णत्थि,
पुरेक्खडा असंखेज्जा।
एवं ईसाणस्स जाव गेवेज्जगदेवाणं।

उ. गौतम ! अनन्त हैं।
इसी प्रकार ग्रैवेयक देव पर्याय पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! नैरयिकों की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! नहीं हैं।
प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! नहीं हैं।
प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! असंख्यात हैं।
इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धदेव रूप में द्रव्येन्द्रियां कहनी चाहिए।
इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिकों पर्यंत आलापक जानना चाहिए।

विशेष–वनस्पतिकायिकों की, विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव के रूप में तथा सर्वार्थसिद्धदेव के रूप में पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं।
मनुष्यों और सर्वार्थसिद्धदेवों को छोड़कर सबकी स्वस्थान में बद्ध द्रव्येन्द्रियां असंख्यात हैं, परस्थान में बद्ध द्रव्येन्द्रियां नहीं हैं।

वनस्पतिकायिकों की स्वस्थान में बद्ध द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं।
मनुष्यों की नैरयिक के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं, बद्ध द्रव्येन्द्रियां नहीं हैं और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं।
इसी प्रकार ग्रैवेयकदेवों पर्याय पर्यन्त द्रव्येन्द्रियां हैं।
विशेष–स्वस्थान में अतीत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं,
बद्ध द्रव्येन्द्रियां संख्यात भी हैं और असंख्यात भी हैं
पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं।

प्र. भन्ते ! मनुष्यों की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजितदेव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! संख्यात हैं।
प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! नहीं हैं।
प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! कदाचित् संख्यात भी हैं और असंख्यात भी हैं।
इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धदेव के रूप में भी समझना चाहिए।
वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देवों का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

सौधर्म देवों की अतीतादि इन्द्रियों का कथन इसी प्रकार है।
विशेष–विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजितदेव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां असंख्यात हैं, बद्ध द्रव्येन्द्रियां नहीं हैं और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां असंख्यात हैं।
सर्वार्थसिद्धदेव रूप में अतीत नहीं हैं
बद्ध नहीं हैं,
किन्तु पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां असंख्यात हैं
इसी प्रकार ईशान देवलोक से ग्रैवेयकदेवों पर्यन्त का सम्पूर्ण कथन करना चाहिए।

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,
जस्सऽत्थि अट्ठ।

प. एगमेगस्स णं भंते ! सव्वट्ठसिद्धगदेवस्स णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

एवं मणूसवज्जं जाव गेवेज्जगदेवत्ते।

णवरं—मणूसत्ते अतीता अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! अट्ठ।

विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते अतीता कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,
जस्सऽत्थि अट्ठ।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. एगमेगस्स णं भंते ! सव्वट्ठसिद्धगदेवस्स सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! अट्ठ।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. णेरइयाणं भंते ! णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गौतम ! किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं।
जिसके होती हैं, उसके आठ होती हैं।

प्र. भन्ते ! प्रत्येक सर्वार्थसिद्धदेव की नारक के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

इसी प्रकार मनुष्य को छोड़कर ग्रैवेयक देव पर्याय पर्यन्त द्रव्येन्द्रियां कहनी चाहिए।

विशेष—मनुष्य के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! आठ हैं।

विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजितदेव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां किसी के हैं और किसी के नहीं है।
जिसके हैं, उसके आठ हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. भन्ते ! प्रत्येक सर्वार्थसिद्धदेव की सर्वार्थसिद्धदेव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! आठ हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. भन्ते ! बहुत से नैरयिकों की नारक रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गोयमा ! अणंता।

एवं जाव गेवेज्जगदेवत्ते।

प. णेरइयाणं भंते ! विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया बद्धेल्लगा।

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा।

एवं सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते वि।

एवं जाव पंचेंदिय-त्तिरिक्खजोणियाणं णेयव्वं।

णवरं–वणप्फइकाइयाणं विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिय देवत्ते सव्वट्ठ-सिद्धगदेवत्ते य पुरेक्खडा अणंता।

सव्वेसिं मणूस-सव्वट्ठसिद्धगवज्जाणं सट्ठाणे बद्धेल्लगा असंखेज्जा, परट्ठाणे बद्धेल्लगा णत्थि।

वणस्सइकाइयाणं सट्ठाणे बद्धेल्लगा अणंता।

मणुस्साणं णेरइयत्ते अतीता अणंता, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा अणंता।

एवं जाव गेवेज्जगदेवत्ते।

णवरं–सट्ठाणे अतीता अणंता,
बद्धेल्लगा सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा,
पुरेक्खडा अणंता।

प. मणूसाणं भंते ! विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! संखेज्जा।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा।

एवं सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते वि।

वाणमंतर-जोइसियाणं जहा णेरइयाणं।

सोहम्मगदेवाणं एवं चेव।

णवरं–विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते अतीता असंखेज्जा, बद्धेल्लगा णत्थि। पुरेक्खडा असंखेज्जा।

सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते अतीता णत्थि,
बद्धेल्लगा णत्थि,
पुरेक्खडा असंखेज्जा।

एवं ईसाणस्स जाव गेवेज्जगदेवाणं।

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

इसी प्रकार ग्रैवेयक देव पर्याय पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! नैरयिकों की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! असंख्यात हैं।

इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धदेव रूप में द्रव्येन्द्रियां कहनी चाहिए।

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिकों पर्यंत आलापक जानना चाहिए।

विशेष–वनस्पतिकायिकों की, विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव के रूप में तथा सर्वार्थसिद्धदेव के रूप में पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं।

मनुष्यों और सर्वार्थसिद्धदेवों को छोड़कर सबकी स्वस्थान में बद्ध द्रव्येन्द्रियां असंख्यात हैं, परस्थान में बद्ध द्रव्येन्द्रियां नहीं हैं।

वनस्पतिकायिकों की स्वस्थान में बद्ध द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं।

मनुष्यों की नैरयिक के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं, बद्ध द्रव्येन्द्रियां नहीं हैं और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं।

इसी प्रकार ग्रैवेयकदेवों पर्याय पर्यन्त द्रव्येन्द्रियां हैं।

विशेष–स्वस्थान में अतीत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं,
बद्ध द्रव्येन्द्रियां संख्यात भी हैं और असंख्यात भी हैं
पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं।

प्र. भन्ते ! मनुष्यों की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजितदेव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! संख्यात हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम! कदाचित् संख्यात भी हैं और असंख्यात भी हैं।

इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धदेव के रूप में भी समझना चाहिए।

वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क देवों का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

सौधर्म देवों की अतीतादि इन्द्रियों का कथन इसी प्रकार है।

विशेष–विजय, वैजयन्त, जयन्त तथा अपराजितदेव के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां असंख्यात हैं, बद्ध द्रव्येन्द्रियां नहीं हैं तथा पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां असंख्यात हैं।

सर्वार्थसिद्धदेव रूप में अतीत नहीं हैं,
बद्ध नहीं हैं,
किन्तु पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां असंख्यात हैं।

इसी प्रकार ईशान देवलोक से ग्रैवेयकदेवों पर्यन्त का सम्पूर्ण कथन करना चाहिए।

प. विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवाणं भंते ! णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

एवं जाव जोइसियत्ते।

णवरं–एएसिं मणूसत्ते अतीता अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा।

उ. गोयमा ! असंखेज्जा।

एवं जाव गेवेज्जगदेवत्ते।

सट्ठाणे अतीता असंखेज्जा।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा।

सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते अतीता णत्थि,

बद्धेल्लगा णत्थि,

पुरेक्खडा असंखेज्जा।

प. सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं भंते ! णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प्र. भन्ते ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों की नैरयिक के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! वे अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

इसी प्रकार ज्योतिष्कदेव पर्याय पर्यन्त भी जानना चाहिए।

विशेष–इनकी मनुष्य रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! असंख्यात हैं।

इसी प्रकार ग्रैवेयक देव पर्याय पर्यन्त भी कहना चाहिए।

इनकी स्वस्थान में अतीत द्रव्येन्द्रियां असंख्यात हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! असंख्यात हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! असंख्यात हैं।

सर्वार्थसिद्धदेव रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां नहीं हैं,

बद्ध द्रव्येन्द्रियां भी नहीं हैं।

किन्तु पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां असंख्यात हैं।

प्र. भन्ते ! सर्वार्थसिद्ध देवों की नैरयिक के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हैं।

प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! नहीं हैं।

प. सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं भंते ! सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता ?
उ. गोयमा ! णत्थि।
प. केवइया बद्धेल्लगा ?
उ. गोयमा ! संखेज्जा।
प. केवइया पुरेक्खडा ?
उ. गोयमा ! णत्थि। —पण्ण. प. १५ उ. २ सु. १०३०-१०५५

प्र. भन्ते ! सर्वार्थसिद्ध देवों की सर्वार्थसिद्ध देव रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! नहीं हैं।
प्र. बद्ध द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! संख्यात हैं।
प्र. पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! नहीं हैं।

२५. चउवीसदंडएसु भाविंदियाणं परूवणं—

प. कइ णं भंते ! भाविंदिया पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! पंच भाविंदिया पण्णत्ता, तं जहा—
१. सोइंदिए जाव ५. फासिंदिए।
प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! कइ भाविंदिया पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! पंच भाविंदिया पण्णत्ता, तं जहा—
१. सोइंदिए जाव ५. फासेंदिए।
दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।
णवरं—जस्स जइ इंदिया तस्स तत्तिया भाविंदिया भाणियव्वा।
—पण्ण. प. १५ उ. २ सु. १०५६-१०५७

२५. चौबीस दण्डकों में भावेन्द्रियों का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! भावेन्द्रियां कितनी कही गई हैं ?
उ. गौतम ! भावेन्द्रियां पांच कही गई हैं, यथा—
१. श्रोत्रेन्द्रिय **यावत्** ५. स्पर्शेन्द्रिय।
प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों के भावेन्द्रियां कितनी कही गई हैं ?
उ. गौतम ! उनके भावेन्द्रियां पांच कही गई हैं, यथा—
१. श्रोत्रेन्द्रिय **यावत्** ५. स्पर्शेन्द्रिय।
दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।
विशेष—जिसके जितनी इन्द्रियां हों, उतनी भावेन्द्रियां कहनी चाहिए।

२६. चउवीसदंडएसु अतीत-बद्ध-पुरेक्खड भाविंदिय परूवणं—

प. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स केवइया भाविंदिया अतीता ?
उ. गोयमा ! अणंता।
प. केवइया बद्धेल्लगा ?
उ. गोयमा ! पंच।
प. केवइया पुरेक्खडा ?
उ. गोयमा ! पंच वा, दस वा, एक्कारस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।
एवं असुरकुमारस्स वि।
णवरं—पुरेक्खडा पंच वा, छ वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।
२-११. एवं जाव थणियकुमारस्स।
दं. १२-१३, १६. एवं पुढविकाइय आउकाइय वणस्सइकायस्स वि।
णवरं—बद्धेल्लगा एक्का।
दं. १४-१५, १७-१८, १९, तेउकाइय वाउकाइय वेइन्दिय तेइन्दिय चउरिन्दियस्स वि एवं चेव,
णवरं—बद्धेल्लगा जस्स जत्तिया भाविंदिया।
पुरेक्खडा छ वा, सत्त वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।
दं. २०-२४. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियस्स जाव ईसाणस्स जहा असुरकुमारस्स।
णवरं—मणूसस्स पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि त्ति भाणियव्वं।

२६. चौबीस दण्डकों में अतीत-बद्ध-पुरस्कृत भावेन्द्रियों की प्ररूपणा—

प्र. भन्ते ! एक एक नैरयिक के कितनी अतीत भावेन्द्रियां हैं ?
उ. गौतम ! अनन्त हैं।
प्र. बद्ध भावेन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! पांच हैं।
प्र. पुरस्कृत भावेन्द्रियां कितनी हैं ?
उ. गौतम ! वे पांच हैं, दस हैं, ग्यारह हैं, संख्यात हैं या असंख्यात हैं अथवा अनन्त हैं।
इसी प्रकार असुरकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।
विशेष—पुरस्कृत भावेन्द्रियां पांच, छह, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त हैं।
दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए।
दं. १२-१३, १६, इसी प्रकार पृथ्वीकायिक, अप्कायिक एवं वनस्पतिकाय का भी कथन है।
विशेष—बद्ध इन्द्रिय एक है।
दं. १४-१५, १७-१८, १९, इसी प्रकार है। तेजस्कायिक, वायुकायिक, वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय का भी कथन
विशेष—जिसके जितनी बद्ध इन्द्रियाँ हैं उतनी भावेन्द्रियां हैं।
विशेष—पुरस्कृत भावेन्द्रियां छह, सात, संख्यात, असंख्यात या अनन्त होती हैं।
दं. २०, २४. पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक से ईशानकल्प पर्यंत का कथन असुरकुमारों के समान है।
विशेष—मनुष्य की पुरस्कृत भावेन्द्रियां किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं इस प्रकार कहना चाहिए।

सणंकुमार जाव गेवेज्जगस्स जहा णेरइयस्स।

विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवस्स अतीता अणंता, बद्धेल्लगा पंच,

पुरेक्खडा पंच वा, दस वा, पण्णरस वा, संखेज्जा वा।

सव्वट्ठसिद्धगदेवस्स अतीता अणंता, बद्धेल्लगा पंच।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! पंच।

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! केवइया भाविंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया बद्धेल्लगा ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! अणंता।

एवं जहा दव्विंदिएसु पोहत्तेणं दंडओ भणिओ तहा भाविंदिएसु वि पोहत्तेणं दंडओ भाणियव्वो।

णवरं–वणप्फइकाइयाणं बद्धेल्लगा वि अणंता।

प. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया भाविंदिया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

बद्धेल्लगा पंच,

पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,

जस्सऽत्थि पंच वा, दस वा, पण्णरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

२-११ एवं असुरकुमारत्ते जाव थणियकुमारत्ते,

णवरं–बद्धेल्लगा णत्थि।

सनत्कुमार से ग्रैवेयक पर्यंत का कथन नैरयिक के समान करना चाहिए।

विजय, वैजयन्त, जयन्त एवं अपराजितदेव की अतीत भावेन्द्रियां अनन्त हैं, बद्ध पांच हैं,

पुरस्कृत भावेन्द्रियां पांच, दस, पन्द्रह या संख्यात हैं।

सर्वार्थसिद्ध की अतीत भावेन्द्रियां अनन्त हैं, बद्ध पांच हैं,

प्र. पुरस्कृत भावेन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! वे पांच हैं।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों की अतीत भावेन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! वे अनन्त हैं।

प्र. बद्ध भावेन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! असंख्यात हैं।

प्र. पुरस्कृत भावेन्द्रियां कितनी हैं ?

उ. गौतम ! वे अनन्त हैं।

इसी प्रकार जैसे द्रव्येन्द्रियों में पृथक्त्व दण्डक कहा है, उसी प्रकार भावेन्द्रियों में भी पृथक्त्व-(बहुवचन से) दण्डक कहना चाहिए।

विशेष–वनस्पतिकायिकों की बद्ध भावेन्द्रियां अनन्त हैं।

प्र. भन्ते ! एक-एक नैरयिक की नैरयिक के रूप में कितनी अतीत भावेन्द्रियां हैं ?

उ. गौतम ! वे अनन्त हैं।

इसकी बद्ध भावेन्द्रियां पांच हैं,

पुरस्कृत भावेन्द्रियां किसी के होती हैं और किसी के नहीं होती हैं।

जिसके होती हैं, उसकी पांच, दस, पन्द्रह, संख्यात, असंख्यात या अनन्त होती हैं।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमार पर्याय से स्तनितकुमार पर्याय पर्यन्त कहना चाहिए।

[illegible]न्द्रियां नहीं हैं।

उ. गोयमा ! णत्थि, बद्धेल्लगा संखेज्जा, पुरेक्खडा णत्थि।

—पण्ण. प. १५, उ. २, सु. १०५८-१०६७

उ. गौतम ! अतीत भावेन्द्रियां नहीं हैं, बद्ध भावेन्द्रियां संख्यात हैं, पुरस्कृत भावेन्द्रियां नहीं है।

२७. कक्खडाइ इंदियगुणाणं परिमाणं अप्पबहुत्त य परूवणं–

प. सोइंदियस्स णं भंते ! केवइया कक्खड-गरुयगुणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता कक्खड-गरुयगुणा पण्णत्ता।

एवं जाव फासिंदियस्स।

प. सोइंदियस्स णं भंते ! केवइया मउय-लहुयगुणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता मउय-लहुयगुणा पण्णत्ता।

एवं जाव फासिंदियस्स।

प. एएसि णं भंते ! सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाणं कक्खड-गरुयगुणाणं, मउय-लहुयगुणाणं, कक्खड- गरुयगुण-मउय लहुयगुणाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा चक्खिंदियस्स कक्खड-गरुयगुणा,

२. सोइंदियस्स कक्खड गरुयगुणा अणंतगुणा,
३. घाणिंदियस्स कक्खड गरुयगुणा अणंतगुणा,
४. जिब्भिंदियस्स कक्खड गरुयगुणा अणंतगुणा,
५. फासेंदियस्स कक्खड गरुयगुणा अणंतगुणा।

मउय-लहुयगुणाणं–

१. सव्वत्थोवा फासिंदियस्स मउय-लहुयगुणा,
२. जिब्भिंदियस्स मउय-लहुयगुणा अणंतगुणा,
३. घाणिंदियस्स मउय-लहुयगुणा अणंतगुणा,
४. सोइंदियस्स मउय-लहुयगुणा अणंतगुणा,
५. चक्खिंदियस्स मउय-लहुयगुणा अणंतगुणा,

कक्खड-गरुयगुणाणं मउय-लहुयगुणाण य–

१. सव्वत्थोवा चक्खिंदियस्स कक्खड-गरुयगुणा,
२. सोइंदियस्स कक्खड़-गरुयगुणा अणंतगुणा,
३. घाणिंदियस्स कक्खड-गरुयगुणा अणंतगुणा,
४. जिब्भिंदियस्स कक्खड-गरुयगुणा अणंतगुणा,
५. फासिंदियस्स कक्खड-गरुयगुणा अणंतगुणा,
६. फासिंदियस्स कक्खड-गरुयगुणेहिंतो तस्स चेव मउय लहुयगुणा अणंतगुणा,
७. जिब्भिंदियस्स मउय-लहुयगुणा अणंतगुणा,
८. घाणिंदियस्स मउय-लहुयगुणा अणंतगुणा,
९. सोइंदियस्स मउय-लहुयगुणा अणंतगुणा,
१०. चक्खिंदियस्स मउय-लहुयगुणा अणंतगुणा,

—पण्ण. प. १५, उ. १, सु. ९८०-९८२

२७. कर्कश आदि इन्द्रियगुणों के परिमाण और अल्पबहुत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय के कर्कश और गुरु गुण कितने कहे गए हैं?

उ. गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय के अनन्त कर्कश और गुरु गुण कहे गए हैं।

इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय के मृदु और लघु गुण कितने कहे गए हैं?

उ. गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय के मृदु और लघु गुण अनन्त कहे गए हैं।

इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! इन श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुणों और मृदु लघु गुणों और कर्कश गुरुगुणो मृदुलघुगुणों में से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! १. सबसे कम चक्षुरिन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण हैं,

२. (उनसे) श्रोत्रेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्तगुणे हैं,
३. (उनसे) घ्राणेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्तगुणे हैं,
४. (उनसे) जिह्वेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्तगुणे हैं,
५. (उनसे) स्पर्शेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्तगुणे हैं।

मृदु लघु गुणों में से–

१. सबसे अल्प स्पर्शेन्द्रिय के मृदु लघु गुण हैं,
२. (उनसे) जिह्वेन्द्रिय के मृदु लघु गुण अनन्तगुणे हैं,
३. (उनसे) घ्राणेन्द्रिय के मृदु लघु गुण अनन्तगुणे हैं,
४. (उनसे) श्रोत्रेन्द्रिय के मृदु लघु गुण अनन्तगुणे हैं,
५. (उनसे) चक्षुरिन्द्रिय के मृदु लघु गुण अनन्तगुणे हैं।

कर्कश गुरु गुण और मृदु लघु गुणों में से–

१. सबसे अल्प चक्षुरिन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण हैं,
२. (उनसे) श्रोत्रेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्तगुणे हैं,
३. (उनसे) घ्राणेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्तगुणे हैं,
४. (उनसे) जिह्वेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्तगुणे हैं,
५. (उनसे) स्पर्शेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्तगुणे हैं।
६. स्पर्शेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुणों से उसी के मृदु लघु गुण अनन्तगुणे हैं,
७. (उनसे) जिह्वेन्द्रिय के मृदु लघु गुण अनन्तगुणे हैं,
८. (उनसे) घ्राणेन्द्रिय के मृदु लघु गुण अनन्तगुणे हैं,
९. (उनसे) श्रोत्रेन्द्रिय के मृदु लघु गुण अनन्तगुणे हैं,
१०. (उनसे) चक्षुरिन्द्रिय के मृदु लघु गुण अनन्तगुणे हैं।

२८. सइंदियाणिंदिय जीवाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. सइंदिए णं भंते ! सइंदिए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

२८. सेन्द्रिय अनिन्द्रिय जीवों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! सेन्द्रिय (इन्द्रिय सहित) जीव सेन्द्रिय रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गोयमा ! सइंदिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अणाईए वा अपज्जवसिए, २. अणाईए वा सपज्जवसिए।

प. एगिंदिए णं भंते ! एगिंदिए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण अणंत कालं वणप्फइकालो।

प. बेइंदिए णं भंते ! बेइंदिए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण संखेज्जं कालं।
एवं तेइंदिय चउरिंदिए वि।

प. पंचेंदिए णं भंते ! पंचेंदिए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण सागरोवमसहस्सं साइरेगं[1]।

प. अणिंदिए णं भंते ! अणिंदिए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! साईए अपज्जवसिए[2]।

प. सइंदियअपज्जत्तए भंते ! सइंदियअपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

एवं जाव पंचेंदियअपज्जत्तए।

प. सइंदियपज्जत्तए णं भंते ! सइंदियपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण सागरोवमसयपुहत्तं साइरेगं।

प. एगिंदियपज्जत्तए णं भंते ! एगिंदियपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण संखेज्जाइं वाससहस्साइं।

प. बेइंदियपज्जत्तए णं भंते ! बेइंदियपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण संखेज्जाइं वासाइं।

प. तेइंदियपज्जत्तए णं भंते ! तेइंदियपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण संखेज्जाइं राइंदियाइं।

प. चउरिंदियपज्जत्तए णं भंते ! चउरिंदियपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गौतम ! सेन्द्रिय जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अनादि अनन्त २. अनादि सान्त।

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय जीव एकेन्द्रिय रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल पर्यन्त रहता है।

प्र. भंते ! द्वीन्द्रिय जीव द्वीन्द्रिय रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट संख्यातकाल।
इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय की अवस्थिति के लिए भी समझना चाहिए।

प्र. भंते ! पंचेन्द्रिय जीव पंचेन्द्रिय के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट सहस्रसागरोपम से कुछ अधिक काल।

प्र. भंते ! अनिन्द्रिय (सिद्ध) जीव कितने काल तक अनिन्द्रिय रूप में रहता है ?

उ. गौतम ! (अनिन्द्रिय) सादि अनन्तकाल तक अनिन्द्रिय रूप में रहता है।

प्र. भंते ! सेन्द्रिय अपर्याप्तक कितने काल तक सेन्द्रिय अपर्याप्तक रूप में रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! सेन्द्रिय पर्याप्तक पर्याप्तक रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट सौ पृथक्त्व सागरोपम के कुछ अधिक काल तक।

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय पर्याप्तक एकेन्द्रिय पर्याप्त रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों तक।

प्र. भंते ! द्वीन्द्रिय पर्याप्तक द्वीन्द्रिय पर्याप्त रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट संख्यात वर्षों तक।

प्र. भंते ! त्रीन्द्रिय पर्याप्तक त्रीन्द्रिय पर्याप्तरूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट संख्यात रात्रि दिन।

प्र. भंते ! चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक चतुरिन्द्रिय पर्याप्तरूप में कितने काल तक रहता है ?

---

१. [illegible] ८, सु. २२८

२. जीवा. पडि. ९, सु. २५८

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण संखेज्जमासा।

प. पंचेंदियपज्जत्तए णं भंते ! पंचेंदियपज्जत्तए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण सागरोवमसयपुहत्तं[1]।

—पण्ण. प. १८, सु. १२७१-१२८४

उ. गौतम ! (वह) जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट संख्यात मास।

प्र. भंते ! पंचेन्द्रिय पर्याप्तक पंचेन्द्रिय पर्याप्तरूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट सागरोपम शत पृथक्त्व (दो सौ से नौ सौ) पर्याप्त रूप में रहता है।

२९. एगिंदियाइ जीवाणं अंतरकाल परूवणं—

प. एगिंदियस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं।

प. बेइंदियस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेण वणस्सइकालो।
एवं तेइंदियस्स चउरिंदियस्स पंचेंदियस्स।

अपज्जत्तगाणं एवं चेव। पज्जत्तगाण वि एवं चेव।

—जीवा. पडि. ४, सु. २०८

२९. एकेन्द्रिय जीवों के अंतर काल का प्ररूपण—

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय का अन्तर काल कितना कहा गया है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम का कहा गया है।

प्र. भंते ! द्वीन्द्रिय का अन्तर काल कितना कहा गया है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट वनस्पतिकाल।
इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय का अंतर काल जानना चाहिए।
अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों का भी अंतर काल इसी प्रकार कहना चाहिए।

३०. सइंदियाणिंदिय जीवाणं अप्पबहुत्तं—

प. एएसि णं भंते ! सइंदियाणं, एगिंदियाणं, बेइंदियाणं, तेइंदियाणं, चउरिंदियाणं, पंचेंदियाणं, अणिंदियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पंचेंदिया,
२. चउरिंदिया विसेसाहिया,
३. तेइंदिया विसेसाहिया,
४. बेइंदिया विसेसाहिया,
५. अणिंदिया अणंतगुणा,
६. एगिंदिया अणंतगुणा[2],
७. सइंदिया विसेसाहिया[3]।

प. एएसि णं भंते ! सइंदियाणं, एगिंदियाणं, बेइंदियाणं, तेइंदियाणं, चउरिंदियाणं, पंचेंदियाणं अपज्जत्तगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पंचेंदिया अपज्जत्तगा,
२. चउरिंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया
३. तेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
४. बेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
५. एगिंदिया अपज्जत्तगा अणंतगुणा,
६. सइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया।

प. एएसि णं भंते ! सइंदियाणं, एगिंदियाणं, बेइंदियाणं, तेइंदियाणं, चउरिंदियाणं, पंचेंदियाणं पज्जत्तगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

३०. सेन्द्रिय अनिन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व—

प्र. भंते ! इन सेन्द्रिय, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रियों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प पंचेन्द्रिय जीव हैं,
२. (उनसे) चतुरिन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) त्रीन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) द्वीन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) अनिन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं,
६. (उनसे) एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं,
७. (उनसे) सेन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं।

प्र. भंते ! इन सेन्द्रिय, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) एकेन्द्रिय अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,
६. (उनसे) सेन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

प्र. भंते ! इन सेन्द्रिय, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

---

१. जीवा. पडि. ४, सु. २०८ (साइरेगं शब्द अधिक है)
२. जीवा. पडि. ९, सु. २५०
३. विया. स. २५, उ. ३ सु. ११८

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा,
२. पंचेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया
३. बेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया,
४. तेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया,
५. एगिंदिया पज्जत्तगा अणंतगुणा,
६. सइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया।

प. एएसि णं भंते ! सइंदियाणं पज्जत्ता-पज्जत्तगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा सइंदिया अपज्जत्तगा,
२. सइंदिया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! एगिंदियाणं पज्जत्ता पज्जत्तगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा एगिंदिया अपज्जत्तगा,
२. एगिंदिया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! बेइंदियाणं पज्जत्ता पज्जत्तगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा बेइंदिया पज्जत्तगा,
२. बेइंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! तेइंदियाणं पज्जत्ता पज्जत्तगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा तेइंदिया पज्जत्तगा,
२. तेइंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! चउरिंदियाणं पज्जत्ता पज्जत्तगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा,
२. चउरिंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! पंचेंदिया पज्जत्ता पज्जत्तगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पंचेंदिया पज्जत्तगा,
२. पंचेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! सइंदियाणं, एगिंदियाणं, बेइंदियाणं, तेइंदियाणं, चउरिंदियाणं, पंचेंदियाणं पज्जत्ता पज्जत्तगाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा,
२. पंचेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया,
३. बेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया,
४. तेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया,
५. पंचेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा,
६. चउरिंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
७. तेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
८. बेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,
९. एगिंदिया अपज्जत्तगा अणंतगुणा,
१०. सइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया,

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) पंचेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,
६. (उनसे) सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं।

प्र. भंते ! सेन्द्रिय पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) सेन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प एकेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प द्वीन्द्रिय पर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन त्रीन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प त्रीन्द्रिय पर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प पर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीव हैं,
२. (उनसे) अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय जीव असंख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! इन सेन्द्रिय, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक हैं,
२. (उनसे) पंचेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
४. (उनसे) त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
५. (उनसे) पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
७. (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
८. (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
९. (उनसे) एकेन्द्रिय अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं,
१०. (उनसे) सेन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं,

११. एगिंदिया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा,
१२. सइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया,
१३. सइंदिया विसेसाहिया[1]। –पण्ण. प. ३, सु. २२७-२३१

११. (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं,
१२. (उनसे) सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं,
१३. (उनसे) सेन्द्रिय विशेषाधिक हैं।

३१. खेत्ताणुवाएणं इंदिय विवक्खया जीवाणं अप्पबहुत्तं–

१. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा उड्ढलोय- तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

२. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा अपज्जत्तगा उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

३. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा पज्जत्तगा उड्ढलोय-तिरियलोए,
२. अहोलोय-तिरियलोए विसेसाहिया,
३. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
४. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहोलोए विसेसाहिया।

४. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा बेइंदिया उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणा।

५. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा बेइंदिया अपज्जत्तगा उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणा।

३१. क्षेत्र की अपेक्षा इन्द्रियों की विवक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व–

१. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प एकेन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

२. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

३. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव सबसे अल्प ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में हैं,
२. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
३. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

४. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प द्वीन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

५. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

---

१. जीवा. पडि. ४, सु. २०९

६. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा बेइंदिया पज्जत्तगा उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणा।

७. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा तेइंदिया उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणा।

८. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा तेइंदिया अपज्जत्तगा उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणा।

९. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा तेइंदिया पज्जत्तगा उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणा।

१०. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणा।

११. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा अपज्जत्तगा उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,

६. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प द्वीन्द्रिय पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

७. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प त्रीन्द्रिय ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

८. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

९. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प त्रीन्द्रिय पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

१०. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

११. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,

५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणा।

१२. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा पज्जत्तगा उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. तेलोक्के असंखेज्जगुणा,
४. अहोलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए संखेज्जगुणा।

१३. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा पंचेंदिया तेलोक्के,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणा,
३. अहोलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणा,
४. उड्ढलोए संखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए असंखेज्जगुणा।

१४. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा पंचेंदिया अपज्जत्तगा तेलोक्के,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणा,
३. अहोलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणा,
४. उड्ढलोए संखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए असंखेज्जगुणा।

१५. खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा पंचेंदिया पज्जत्तगा उड्ढलोए,
२. उड्ढलोय-तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
३. तेलोक्के संखेज्जगुणा,
४. अहोलोय-तिरियलोए संखेज्जगुणा,
५. अहोलोए संखेज्जगुणा,
६. तिरियलोए असंखेज्जगुणा।

–पण्ण. प. ३ सु. २१२-३०६



५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

१२. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं।

१३. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प पंचेन्द्रिय त्रैलोक्य में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

१४. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक त्रैलोक्य में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) अधोलोक तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) ऊर्ध्वलोक में संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।

१५. क्षेत्र की अपेक्षा–
१. सबसे अल्प पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक में हैं,
२. (उनसे) ऊर्ध्वलोक तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) त्रैलोक्य में संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) अधोलोक में संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं।



उच्छ्वास अध्ययन : आमुख

संसारस्थ चारों गतियों के जीव जब तक औदारिक, वैक्रियादि शरीरों से युक्त रहते हैं, तब तक उनमें निरन्तर श्वास-प्रश्वास की क्रिया चल रहती है। सजीव एवं निर्जीव वस्तुओं में भेद करते समय आधुनिक विज्ञान भी श्वसन क्रिया को जीव में आवश्यक मानता है। शरीर में श्वसन-क्रि की निरन्तरता में यदि कुछ काल तक व्यवधान उत्पन्न हो जाय तो मृत्यु तक संभव है।

यह श्वसन क्रिया मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, कीड़ों, मकोड़ों आदि में तो हमें स्पष्टतः दिखाई देती है, किन्तु आगम के अनुसार वैक्रिय शरीरधा नैरयिकों एवं देवों में भी निरन्तर श्वसन क्रिया चलती रहती है। यही नहीं पृथ्वीकाय, अप्काय आदि एकेन्द्रिय जीव भी इस क्रिया से रहित होक जीवनयापन नहीं करते हैं। उनमें भी निरन्तर यह क्रिया चलती रहती है।

भगवान् महावीर से उनके प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम ने प्रश्न किया कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों में होने वाले आन-प्रा एवं श्वासोच्छ्वास को तो हम जानते देखते हैं, किन्तु पृथ्वीकाय से वनस्पतिकाय पर्यन्त के एकेन्द्रिय जीव में आन-प्राण एवं श्वासोच्छ्वास होता है नहीं ? भगवान् ने इस प्रश्न का उत्तर दिया—हे गौतम ! ये पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव भी श्वासोच्छ्वास करते हैं। इनमें भी आन-प्राण एवं उच्छ्वा निश्वास की क्रियाएं होती हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् महावीर प्रथम वैज्ञानिक थे। आधुनिक विज्ञानवेत्ता वनस्पति में श्वसनक्रिया सिद्ध करने में सफल हो गए हैं, कि पृथ्वीकाय आदि जीवों में श्वसन क्रिया सिद्ध करना उनके लिए अभी शेष है। महावीर की दृष्टि में पृथ्वीकायादि सभी जीव श्वसन क्रिया करते हैं।

आगम में श्वसन-क्रिया को प्रतिपादित करने वाले आन, प्राण, उच्छ्वास एवं निश्वास इन चार शब्दों का प्रयोग हुआ है। सभी जीव ये चार क्रिया करते हैं। उनमें स्वाभाविक रूप से श्वास ग्रहण करने एवं छोड़ने की जो क्रिया है उसे क्रमशः आन एवं प्राण कहा जा सकता है तथा ऊँचा श्वास ले एवं श्वास बाहर निकालने को उच्छ्वास एवं निश्वास कह सकते हैं। कुल मिलाकर ये चारों शब्द श्वसनक्रिया को ही इंगित करते हैं।

चौबीस दण्डकों में कौन से जीव कितने काल से आन, प्राण उच्छ्वास और निश्वास क्रिया करते हैं, इसका प्रस्तुत अध्ययन में विस्तृत निरूपण है तदनुसार नैरयिक जीवों में आन, प्राण, उच्छ्वास एवं निःश्वास की यह श्वसन क्रिया निरन्तर चलती रहती है। देवों में इसके कालमान की भिन्नता है असुरकुमार देव जघन्य सात स्तोक (काल का एक माप) तथा उत्कृष्ट कुछ अधिक एक पक्ष से यह क्रिया करते हैं। नागकुमारों का उत्कृष्ट काल अने मुहूर्तों का है। स्तनितकुमार आदि शेष आठ भवनपति देवों की श्वसनक्रिया का काल नागकुमारों की भांति है। ज्योतिष्क देव जघन्य अनेक मुहूर्त पश्चात् आन-पान एवं श्वासोच्छ्वास की क्रिया करते हैं। उत्कृष्ट काल भी उनके लिए अनेक मुहूर्त ही है। वैमानिक देव जघन्य अनेक मुहूर्तों के पश्चा तथा उत्कृष्ट तेतीस पक्ष पश्चात् यह क्रिया करते हैं। पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीव, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एवं मनुष् में श्वसन क्रिया विमात्रा (काल माप) से होती है। इस अध्ययन में वैमानिक देवों के विभिन्न प्रकारों का पृथक् पृथक् श्वासोच्छ्वास का जघन्य ए उत्कृष्ट कालमान का निर्देश हुआ है।

पृथ्वीकाय के जीव पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय एवं वनस्पतिकाय के जीवों के श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हैं और छोड़ हैं। इसी प्रकार अप्काय के जीव समस्त पृथ्वीकाय आदि स्थावरकायिकों को ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं। यही बात तेजस्कायिक, वायुकायिक ए वनस्पतिकायिक जीवों पर भी लागू होती है। नैरयिक जीव श्वासोच्छ्वास के रूप में अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ पुद्गलों को ग्रहण करते हैं त देव इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ आदि पुद्गलों को ग्रहण करते हैं। मनुष्य एवं तिर्यञ्चगति के अन्य जीवों का उल्लेख इस अध्ययन में नहीं हुआ है कि किस प्रकार के पुद्गलों को श्वासोच्छ्वास क्रिया में ग्रहण करते हैं। इसका सम्बन्ध जीव के शुभाशुभ कर्मों से जोड़ा जा सकता है, किन्तु यह निश्चित है कि ये सभी जीव वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श से युक्त पुद्गलों को श्वास-उच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

१७. उस्सास-अज्झयणं

सुत्त

चउवीसदंडएसु उस्सास-नीसास परूवणं–

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नगरे होत्था, वण्णओ, सामी समोसढे, परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ परिसा पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं जेट्ठे अंतेवासी जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी–

प. जे इमे भंते ! बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया जीवा एएसि णं आणामं वा पाणामं वा उस्सासं वा नीसासं वा जाणामो पासामो–

जे इमे पुढविकाइया जाव वणस्सइकाइया एगिंदिया जीवा एएसि णं आणामं वा, पाणामं वा, उस्सासं वा, निस्सासं वा ण जाणामो, ण पासामो।

एए वि य णं भंते ! जीवा आणमंति वा; पाणवंति वा, ऊससंति नीससंति वा ?

उ. हंता, गोयमा ! एए वि य णं जीवा आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प. किं णं भंते ! एए जीवा आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! दव्वओ णं अणंतपएसियाइं दव्वाइं, खेत्तओ णं असंखेज्जपएसोगाढाइं, कालओ अन्नयरट्ठिईयाइं, भावओ वण्णमंताइं, गंधमंताइं, रसमंताइ, फासमंताइं, आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प. जाइं भावओ वण्णमंताइं आणमंति जाव नीससंति, ताइं किं एगवण्णाइं जाव पंचवण्णाइं जाव आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! आहारगमो नेयव्वो[1] जाव ति-चउ-पंचदिसिं।

प. किं णं भंते ! नेरइया आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! तं चेव जाव वेमाणिया नियमा-आणमंति वा जाव नीससंति वा जीवा एगिंदिया वाघाय-निव्वाघाय भाणियव्वा।

सेसा नियमा छद्दिसिं।

१७. उच्छ्वास–अध्ययन

सूत्र

१. चौवीसदंडकों में उच्छ्वास-निःश्वास का प्ररूपण–

उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था, उसका वर्णन करना चाहिए। (एकदा) (भगवान् महावीर) स्वामी (वहां) पधारे। (उनका धर्मोपदेश सुनने के लिए) परिषद् निकली (भगवान् ने) धर्मोपदेश दिया। (धर्मोपदेश सुनकर) परिषद् वापिस लौट गई।

उस काल और उस समय में (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के) ज्येष्ठ अन्तेवासी (शिष्य) (श्री इन्द्रभूति गौतम अनगार) यावत्– भगवान् की पर्युप ना करते हुए इस प्रकार बोले–

प्र. भन्ते ! जो ये द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव हैं उनके आणपाण और श्वासोच्छ्वास को (हम) जानते देखते हैं,

किन्तु जो ये पृथ्वीकाय से वनस्पतिकाय पर्यन्त के 'एकेन्द्रिय जीव हैं उनके आणपाण और श्वासोच्छ्वास को हम न जानते हैं और न देखते हैं।

तो भन्ते ! क्या ये पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! ये पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

प्र. भन्ते ! ये (पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय) जीव, किस प्रकार के द्रव्यों को श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं ?

उ. गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा अनन्त प्रदेश वाले द्रव्यों को, क्षेत्र की अपेक्षा असंख्य प्रदेशों में रहे हुए द्रव्यों को, काल की अपेक्षा किसी भी प्रकार की स्थिति वाले द्रव्यों को, भाव की अपेक्षा वर्ण वाले, गन्ध वाले, रस वाले और स्पर्श वाले द्रव्यों को श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

प्र. भन्ते ! वे पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव भाव की अपेक्षा वर्ण वाले जिन द्रव्यों को श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं तो क्या एक वर्ण वाले यावत् पांच वर्ण वाले द्रव्यों को श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं ?

उ. गौतम ! जैसा कि आहारपद में कथन किया है वैसा ही यहां समझना चाहिए यावत् वे तीन, चार, पांच दिशाओं की ओर से श्वासोच्छ्वास के पुद्गलों को ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

प्र. भन्ते ! नैरयिक किस प्रकार के पुद्गलों को श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए। वे नियमतः श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं। समुच्चय जीवों और एकेन्द्रियों के लिए व्याघात और निर्व्याघात की अपेक्षा श्वासोच्छ्वास का कथन करना चाहिए। शेष नियमतः छहों दिशाओं से ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

---

१. [illegible]

प. वाउयाए णं भंते ! वाउयाए चेव आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. गोयमा ! वाउयाए णं वाउयाए चेव आणमंति वा जाव नीससंति वा।

–विया. स. २, उ. १, सु. २-६

प्र. भन्ते ! क्या वायुकाय वायुकायिक जीवों को श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! वायुकाय वायुकायिक के रूप में श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

२. चउवीसदंडएसु उस्सास-नीसास कालो–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा?

उ. गोयमा ! सततं संतयामेव आणमंति वा जाव नीससंति वा।[1]

प. दं. २-११ असुरकुमारा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं साइरेगस्स पक्खस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा।[2]

प. णागकुमारा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा।

एवं जाव थणियकुमाराणं।[3]

प. दं. १२ पुढविकाइया णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. गोयमा ! वेमाइयाए आणमंति वा जाव नीससंति वा।[4]

दं. १३-२१ एवं जाव मणूसा।[5]

दं. २२ वाणमंतरा जहा णागकुमारा।[6]

प. दं. २३ जोइसिया णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेण वि मुहुत्तपुहुत्तस्स[7] आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प. दं. २४ वेमाणिया णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

२. चौवीस दण्डकों में उच्छ्वास निःश्वासकाल–

प्र. दं. १ भन्ते ! नैरयिक कितने काल से (वाह्य और आभ्यन्तर) उच्छ्वास और निश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! वे सदैव निरन्तर उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. दं. २-११ भन्ते ! असुरकुमार देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य सात स्तोक में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट सातिरेक एक पक्ष में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. भन्ते ! नागकुमार कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य सात स्तोक में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट अनेक मुहूर्तों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त श्वासोच्छ्वास के लिए जान लेना चाहिए।

प्र. दं. १२ भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! विमात्रा से उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

दं. १३-२१ इसी प्रकार मनुष्यों पर्यन्त श्वासोच्छ्वास के लिए जान लेना चाहिए।

दं. २२ वाणव्यन्तर देव नागकुमारों के समान उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. दं. २३ भन्ते ! ज्योतिष्क देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य अनेक मुहूर्त में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट भी अनेक मुहूर्तों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. दं. २४ भन्ते ! वैमानिक देव कितने काल में उच्छवास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

---

१. विया. स. १, उ. १, सु. ६ (१)
२. विया. स. १, उ. १, सु. ६ (२)
३. विया. स. १, उ. १, सु. ६ (३)
४. (क) विया. स. १, उ. १, सु. ६ (१२)
(ख) विया. स. १, उ. १, सु. ६ (१३-१६)
(ग) विया. स. १, उ. १, सु. ६ (१७-२०)
५. विया. स. १, उ. १, सु. ६ (२१)
६. विया. स. १, उ. १, सु. ६ (२२)
७. विया. स. १, उ. १, सु. ६ (२३)

उ. गोयमा ! जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा,
उक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प. १. सोहम्मगदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा,
उक्कोसेणं दोण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प. २. ईसाणगदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगस्स मुहुत्तपुहुत्तस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा,
उक्कोसेणं साइरेगाणं दोण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प. ३. सणंकुमारदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दोण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा?
उक्कोसेणं सत्तण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।[1]

प. ४. माहिंदग देवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगाणं दोण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,
उक्कोसेणं साइरेगाणं सत्तण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प. ५. बंभलोगदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,
उक्कोसेणं दसण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प. ६. लंतगदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,
उक्कोसेणं चोद्दसण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प. ७. महासुक्कदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं चोद्दसण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उ. गौतम ! वे जघन्य अनेक मुहूर्तों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,
उत्कृष्ट तेतीस पक्ष में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. १. भन्ते ! सौधर्म कल्प के देव कितने काल के बाद उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य अनेक मुहूर्तों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,
उत्कृष्ट दो पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. २. भन्ते ! ईशानकल्प के देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य कुछ अधिक मुहूर्तों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,
उत्कृष्ट कुछ अधिक दो पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. ३. भन्ते ! सनत्कुमार देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य दो पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,
उत्कृष्ट सात पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. ४. भन्ते ! माहेन्द्रकल्प के देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य कुछ अधिक दो पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,
उत्कृष्ट कुछ अधिक सात पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. ५. भन्ते ! ब्रह्मलोककल्प के देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य सात पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,
उत्कृष्ट दस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. ६. भन्ते ! लान्तककल्प के देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य दस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,
उत्कृष्ट चौदह पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. ७. भन्ते ! महाशुक्रकल्प के देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य चौदह पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

---

१ विया. स. १, उ. १ सु. ६(२४)

उक्कोसेणं सत्तरसण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प, ८. सहस्सारगदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरसण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं अट्ठारसण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प. ९. आणयदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठारसण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं एगूणवीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प. १०. पाणयदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगूणवीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं वीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प. ११. आरणदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं वीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं एगवीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प. १२. अच्चुयदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कवीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं बावीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।

प. १. हेट्ठिमहेट्ठिमगेविज्जगदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं बावीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं तेवीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।[1]

प. २. हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जगदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं तेवीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं चउवीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।[2]

उत्कृष्ट सत्रह पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. ८. भन्ते ! सहस्रारकल्प के देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य सत्रह पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट अठारह पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. ९. भन्ते ! आनतकल्प के देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य अठारह पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट उन्नीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. १०. भन्ते ! प्राणतकल्प के देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य उन्नीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट वीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. ११. भन्ते ! आरणकल्प के देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य वीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट इक्कीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. १२. भन्ते ! अच्युतकल्प के देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य इक्कीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट बाईस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. १. भन्ते ! अधस्तन-अधस्तनग्रैवेयक देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य बाईस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट तेईस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. २. भन्ते ! अधस्तन-मध्यमग्रैवेयक देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य तेईस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट चौबीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

१. सम.सम.२३, सु.९

२. सम.सम.२४, सु.११

प. ३. हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं चउवीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं पणुवीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।[1]

प्र. ३. भन्ते ! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक देव कितने काल के बाद उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य चौबीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट पच्चीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प. ४. मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं पणुवीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं छव्वीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।[2]

प्र. ४. भन्ते ! मध्यम अधस्तन ग्रैवेयक देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य पच्चीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट छव्वीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प. ५. मज्झिममज्झिमगेवेज्जगदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं छव्वीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं सत्तावीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।[3]

प्र. ५. भन्ते ! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य छव्वीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट सत्ताईस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प. ६. मज्झिमउवरिमगेवेज्जगा णं भंते ! देवा णं केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सत्तावीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं अट्ठावीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।[4]

प्र. ६. भन्ते ! मध्यम उपरितन ग्रैवेयक देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य सत्ताईस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट अट्ठाईस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प. ७. उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगा णं भंते ! देवा णं केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठावीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं एगूणतीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।[5]

प्र. ७. भन्ते ! उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य अट्ठाईस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट उन्तीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प. ८. उवरिममज्झिमगेवेज्जगा णं भंते ! देवा णं केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगूणतीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं तीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।[6]

प्र. ८. भन्ते ! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य उन्तीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट तीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प. ९. उवरिमउवरिमगेवेज्जगा णं भंते ! देवा णं केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं तीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं एक्कतीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।[7]

प्र. ९. भन्ते ! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य तीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट इकतीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

---

१. सम. सम. २५, सु. १४
२. सम. सम. २६, सु. ८
३. सम. सम. २७, सु. १२
४. सम. सम. २८, सु. १५
५. सम. सम. २९, सु. १८
६. सम. सम. ३०, सु. १३
७. सम. सम. ३१, सु. १५

प. १-४ विजय-वेजयंत-जयंतऽपराजियविमाणेसु णं भंते ! देवा केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कतीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा,

उक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा।[1]

प. सव्वट्ठसिद्धगदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसाएं पक्खाणं आणमंति वा जाव नीससंति[2] वा,

—पण्ण. प. ७, सु. ६९३-७२४

प्र. १-४ भन्ते ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों के देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य इकतीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं,

उत्कृष्ट तेतीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

प्र. भन्ते ! सर्वार्थसिद्ध विमान के देव कितने काल में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं ?

उ. गौतम ! अजघन्य अनुत्कृष्ट तेतीस पक्षों में उच्छ्वास यावत् निःश्वास लेते हैं।

३. विसिट्ठ वेमाणिय देवाणं उस्सास नीसास कालो—

१. जे देवा सागरं सुसागरं सागरकंतं भवं मणुं माणुसुत्तरं लोगहियं विमाणं देवत्ताए उववण्णा—

ते णं देवा एगस्स अद्धमासस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा। —सम. सम. १, सु. ४३-४४

२. जे देवा सुभं सुभकंतं सुभवण्णं सुभगंध सुभलेसं सुभफासं सोहम्मवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा—

ते णं देवा दोण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। —सम. सम. २ सु. २०-२१

३. जे देवा आभंकरं पभंकरं आभंकरपभंकरं, चंदं चंदावत्तं चंदप्पभं चंदकंतं चंदवण्णं चंदलेसं चंदज्झयं चंदरूवं चंदसिंगं चंदसिट्ठं चंदकूडं चंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा—

ते णं देवा तिण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। —सम. सम. ३, सु. २१-२२

४. जे देवा किटिंट सुकिट्टिं किट्ठियावत्तं किट्ठिप्पभं किट्ठिकंतं किट्ठिवण्णं किट्ठिलेसं किट्ठिज्झयं किट्ठिसिंगं किट्ठिसिट्ठं किट्ठिकूडं किट्ठोत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा—

ते णं देवा चउण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। —सम. सम. ४, सु. १५-१६

५. जे देवा वायं सुवायं वायावत्तं वातप्पभं वातकंतं वातवण्णं वातलेसं वातज्झयं वातसिंगं वातसिट्ठं वातकूडं वाउत्तरवेंडसगं,

सूरं सुसूरं सूरावत्तं सूरप्पभं सूरकंतं सूरवण्णं सूरलेसं सूरज्झयं सूरसिंगं सूरसिट्ठं सूरकूडं सूरुत्तरवडेंसगं विमाणं देवात्ताए उववण्णा—

ते णं देवा पंचण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। —सम. सम. ५, सु. १९-२०

६. जे देवा सयंभु सयंभुरमणं घोसं सुघोसं महाघोसं किट्ठिघोसं,

३. विशिष्ट वैमानिक देवों का उच्छ्वास निःश्वास काल—

१. जो देव सागर, सुसागर, सागरकान्त, भव, मनु, मानुसोत्तर और लोकहित विमानों में देव रूप में उत्पन्न होते हैं—

वे देव एक पक्ष से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

२. जो देव शुभ, शुभकान्त, शुभवर्ण, शुभगन्ध, शुभलेश्य, शुभस्पर्श और सौधर्मावतंसक विमानों में देव रूप में उत्पन्न होते हैं—

वे देव दो पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

३. जो देव आभंकर, प्रभंकर, आभंकर-प्रभंकर, चन्द्र, चन्द्रावर्त, चन्द्रप्रभ, चन्द्रकान्त, चन्द्रवर्ण, चन्द्रलेश्य, चन्द्रध्वज, चन्द्ररूप, चन्द्रशृंग, चन्द्रसृष्ट, चन्द्रकूट और चन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होते हैं—

वे देव तीन पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

४. जो देव कृष्टि, सुकृष्टि, कृष्टिकावर्त्त, कृष्टिप्रभ, कृष्टिकान्त, कृष्टिवर्ण, कृष्टिलेश्य, कृष्टिध्वज, कृष्टिशृंग, कृष्टिसृष्ट, कृष्टिकूट और कृष्ट्युत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होते हैं—

वे देव चार पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

५. जो देव वात, सुवात, वातावर्त्त, वातप्रभ, वातकान्त, वातवर्ण, वातलेश्य, वातध्वज, वातशृंग, वातसृष्ट, वातकूट और वातोत्तरावतंसक तथा—

सूर, सूसूर, सूरावर्त्त, सूरप्रभ, सूरकान्त, सूरवर्ण, सूरलेश्य, सूरध्वज, सूरशृंग, सूरसृष्ट, सूरकूट और सूरोत्तरावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं—

वे देव पांच पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

६. जो देव स्वयंभू, स्वयंभूरमण, घोष, सुघोष, महाघोष, कृष्टिघोस,

---

१. ते णं देवा बत्तीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा जाव नीससंति वा— —सम. सम. ३२, सु. १२

२. सम. सम. ३३, सु. ११

वीरं सुवीरं वीरगतं वीरसेणियं वीरावत्तं वीरप्पभं वीरकंतं वीरलेसं वीरज्झयं, वीरसिंगं वीरसिट्ठं वीरकूडं वीरुत्तरवडेंसगं विमाणे देवत्ताए उववण्णा–

ते णं देवा छण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. ६, सु. १४-१५

वीर सुवीर, वीरगत, वीरश्रेणिक, वीरावर्त्त, वीरप्रभ, वीरकान्त, वीरवर्ण, वीरलेश्य, वीरध्वज, वीरशृंग, वीरसृष्ट, वीरकूट और वीरोत्तरावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव छह पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

७. जे देवा समं समप्पभं महापभं पभासं भासुरं विमलं कंचणकूडं सणंकुमारवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

ते णं देवा सत्तण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. ७, सु. २०-२१

७. जो देव सम, समप्रभ, महाप्रभ, प्रभास, भासुर, विमल, कांचनकूट और सनत्कुमारावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव सात पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

८. जे देवा अच्चिं अच्चिमालिं वइरोयणं पभंकरं चंदाभं सुराभं सुपइट्ठाभं अग्गिच्चाभं रिट्ठाभं अरुणाभं अरुणुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

ते णं देवा अट्ठण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. ८, सु. १५-१६

८. जो देव अर्चि, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभंकर, चन्द्राभ, सूराभ, सुप्रतिष्ठाभ, अग्न्यर्चाभ रिष्टाभ, अरुणाभ और अरुणोत्तरावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव आठ पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

९. जे देवा पम्हं सुपम्हं पम्हावत्तं पम्हप्पभं पम्हकंतं पम्हवण्णं पम्हलेसं जाव पम्हुत्तरवडेंसगं

सुज्जं सुसुज्जं सुज्जावत्तं सुज्जप्पभं सुज्जकंतं जाव सुज्जुत्तरवडेंसगं

रुइल्लं रुइल्लावत्तं रुइल्लप्पभं जाव रुइल्लुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

ते णं देवा नवण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. ९, सु. १७-१८

९. जो देव पक्ष्म, सुपक्ष्म, पक्ष्मावर्त्त, पक्ष्मप्रभ, पक्ष्मकान्त, पक्ष्मवर्ण, पक्ष्मलेश्य यावत् पक्ष्मोत्तरावतंसक तथा–

जो देव सूर्य, सूसूर्य, सूर्यावर्त्त, सूर्यकान्त यावत् सूर्योत्तरावतंसक एवं

रुचिर, रुचिरावर्त्त रुचिरप्रभ यावत् रुचिरोत्तरावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव नौ पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

१०. जे देवा घोसं सुघोसं महाघोसं नंदिघोसं सुसरं मणोरमं रम्मं रम्मगं रमणिज्जं मंगलावत्तं बंभलोगवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

ते णं देवा दसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. १०, सु. २२-२३

१०. जो देव घोष, सुघोष, महाघोष, नंदीघोष, सुस्वर, मनोरम, रम्य, रम्यक्, रमणीय, मंगलावर्त्त और ब्रह्मलोकावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव दस पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

११. जे देवा बंभं सुबंभं बंभावत्तं बंभप्पभं बंभकंतं बंभवण्णं बंभलेसं बंभज्झयं बंभसिंगं बंभसिट्ठं बंभकूडं बंभुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–,

ते णं देवा एकारसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. ११, सु. १३-१४

११. जो देव ब्रह्म, सुब्रह्म, ब्रह्मावर्त्त, ब्रह्मप्रभ, ब्रह्मकान्त, ब्रह्मवर्ण, ब्रह्मलेश्य, ब्रह्मध्वज, ब्रह्मशृंग, ब्रह्मसृष्ट, ब्रह्मकूट और ब्रह्मोत्तरावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव ग्यारह पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

१२. जे देवा महिंदं महिंदज्झयं कंबुं कंबुग्गीवं पुंखं सुपुंखं महापुंखं पुंडुं सुपुंडुं महापुंडं नरिंदं नरिंदकंतं नरिंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–,

ते णं देवा बारसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. १२, सु. १६-१८

१२. जो देव माहेन्द्र, माहेन्द्रध्वज, कंबु, कंबुग्रीव, पुंख, सुपुंख, पुंड्र, सुपंड्र महापुंड्र नरेन्द्र, नरेन्द्रकान्त और नरेन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव बारह पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

१३. जे देवा वज्जं सुवज्जं वज्जावत्तं वज्जप्पभं वज्जकंतं वज्जवण्णं वज्जलेसं वज्जज्झयं वज्जसिंगं वज्जसिट्ठं वज्जकूडं वज्जुत्तरवडेंसगं

वइरं वइरावत्तं जाव वइरुत्तरवडेंसगं लोगं लोगावत्तं लोगप्पभं जाव लोगुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

ते णं देवा तेरसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. १३, सु. १४-१५

१३. जो देव, वज्र, सुवज्र, वज्रावर्त्त, वज्रप्रभ, वज्रकान्त, वज्रवर्ण, वज्रलेश्य, वज्रध्वज, वज्रशृंग, वज्रसृष्ट, वज्रकूट, वज्रोत्तरावतंसक तथा–

वैर, वैरावर्त्त यावत् वैरोत्तरावतंसक एवं लोक, लोकावर्त्त, लोकप्रभ यावत् लोकोत्तरावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव तेरह पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

१४. जे देवा सिरिकंतं सिरिमहिअं सिरिसोमणसं लंतयं काविट्ठं महिंदं महिंदोकंतं महिंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

ते णं देवा चोद्दसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. १४, सु १५-१६

१५. जे देवा णंदं सुणंदं णंदावत्तं णंदप्पभं णंदकंतं णंदवण्णं णंदलेसं जाव णंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–,

ते णं देवा पण्णरसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. १५, सु. १३-१४

१६. जे देवा आवत्तं वियावत्तं नंदियावत्तं महाणंदियावत्तं अंकुसं अंकुसपलंबं भद्दं सुभद्दं महाभद्दं सव्वाओभद्दं भद्दुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–,

ते णं देवा सोलसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. १६, सु. १३-१४

१७. जे देवा सामाणं सुसामाणं महासामाणं पउमं महापउमं कुमुदं महाकुमुदं नलिणं महाणलिणं पोंडरीयं महापोंडरीयं सुक्कं महासुक्कं सीहं सीहक़ंतं सीहवियं भावियं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–

ते णं देवा सत्तरसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. १७, सु. १८-१९

१८. जे देवा कालं सुकालं महाकालं अंजणं रिट्ठं सालं समाणं दुमं महादुमं विसालं सुसालं पउमं पउमगुम्मं कुमुदं कुमुदगुम्मं नलिणं नलिणगुम्मं पुंडरीयं पुंडरीयगुम्मं सहस्सारवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–,

ते णं देवा अट्ठारसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. १८, सु. १५-१६

१९. जे देवा आणतं पाणतं णतं विणतं घणं झुसिरं इंदं इंदोकंतं इंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–,

ते णं देवा एगूणवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. १९, सु. १२-१३

२०. जे देवा सातं विसातं सुविसायं सिद्धत्थं उप्पलं रुइलं तिगिच्छं दिसासोवत्थियं वद्धमाणयं पलंबं पुप्फं पुप्फावत्तं पुप्फकंतं पुप्फवण्णं पुप्फलेसं पुप्फज्झयं पुप्फसिंगं पुप्फसिट्ठं पुप्फकूडं पुप्फुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–,

ते णं देवा वीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. २०, सु. १४-१५

२१. जे देवा सिरिवच्छं सिरिदामगंडं मल्लं किट्ठिं चावोण्णयं आरणवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा

ते णं देवा एक्कवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. २१, सु. ११-१२

२२. जे देवा महितं विस्सुतं विमलं पभासं वणमालं अच्चुयवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा–,

ते णं देवा बावीसं अद्धमासाणं आणमंति वा जाव नीससंति वा। –सम. सम. २२, सु. ११-१२

१४. जो देव श्रीकान्त, श्रीमहित, श्रीसौमनस, लान्तक, कापिष्ठ, महेन्द्र, महेन्द्रावकान्त और महेन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव चौदह पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

१५. जो देव नन्द, सुनन्द, नन्दावर्त्त, नन्दप्रभ, नन्दकान्त, नन्दवर्ण, नन्दलेश्य यावत् नन्दोवत्तरावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव पन्द्रह पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

१६. जो देव आवर्त्त, व्यावर्त्त, नन्द्यावर्त्त, महानन्द्यावर्त्त, अंकुश, अंकुशप्रलंब, भद्र, सुभद्र, महाभद्र, सर्वतोभद्र और भद्रोत्तरावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव सोलह पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

१७. जो देव सामान सुसामान, महासामान, पद्म, महापद्म, कुमुद, महाकुमुद, नलिन, महानलिन, पौंडरीक, महापौंडरीक, शुक्ल, महाशुक्ल, सिंह, सिंहावकान्त, सिंहवीत और भावित विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव सतरह पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

१८. जो देव काल, सुकाल, महाकाल, अंजन, रिष्ट, शाल, समान, द्रुम, महाद्रुम, विशाल, सुशाल, पद्म, पद्मगुल्म, कुमुद, कुमुदगुल्म, नलिन, नलिनगुल्म, पुंडरीक, पुंडरीकगुल्म और सहस्रारावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव अठारह पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

१९. जो देव आनत, प्राणत, नत, विनत, घन, झुषिर, इन्द्र, इन्द्रावकान्त और इन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव उन्नीस पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

२०. जो देव सात, विसात, सुविसात, सिद्धार्थ, उत्पल, रुचिर, तिगिच्छ, दिशासौवस्तिक, वर्द्धमानक, प्रलंव, पुष्प, सुपुष्प, पुष्पावर्त्त पुष्पप्रभ, पुष्पकान्त, पुष्पवर्ण, पुष्पलेश्य, पुष्पध्वज, पुष्पशृंग, पुष्पसृष्ट, पुष्पकूट और पुष्पोत्तरावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव बीस पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

२१. जो देव श्रीवत्स, श्रीदामगंड, माल्य, कृष्टि, चापोन्नत और आरण्यावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं–

वे देव इक्कीस पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

२२. जो देव महित, विश्रुत, विमल, प्रभास, वनमाल और अच्युतावतंसक विमानों में उत्पन्न होते हैं।

वे देव बाईस पक्षों से श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं।

४. वेमाणिय देवाणं उस्सासत्ताए परिणमिय पोग्गलाणं परूवणं–

प. सोहम्मीसाणदेवाणं केरिसया पोग्गला उस्सासत्ताए परिणमंति?

उ. गोयमा ! जे पोग्गला इट्ठा कंता मणुण्णा मणामा एएसिं उस्सासत्ताए परिणमंति जाव अणुत्तरोववाइया।

–जीवा. पडि. ३, सु. २०१ (ई)

५. णेरइयाणं उसासत्ताए परिणमिय पोग्गलाणं परूवणं–

प. इमीसे णं भन्ते ! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं केरिसया पोग्गला उसासत्ताए परिणमंति?

उ. गोयमा ! जे पोग्गला अणिट्ठा जाव अमणामा, ते तेसिं उसासत्ताए परिणमंति।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

–जीव. पडि. ३, सु. ८८ (१)

६. पुढविकाइयाईणं उस्सास निस्सास रूवं–

प. पुढविकाइए णं भन्ते ! पुढविकाइयं चेव आणमंति वा, पाणमंति वा ऊससंति वा, नीससंति वा?

उ. हंता, गोयमा ! पुढविकाइए पुढविक्काइयं चेव आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा, नीससंति वा।

प. पुढविकाइए णं भन्ते ! आउक्काइयं आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. हंता, गोयमा ! पुढविकाइए आउक्काइयं आणमंति वा जाव नीससंति वा।

एवं तेउक्काइयं वाउक्काइयं वणस्सइकाइयं।[1]

प. आउक्काइए णं भन्ते ! पुढविक्काइयं आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. हंता, गोयमा ! एवं चेव।

प. आउक्काइए णं भन्ते ! आउक्काइयं आणमंति वा जाव नीससंति वा?

उ. हंता, गोयमा ! एवं चेव।

एवं तेउकाइयं, वाउकाइयं, वणस्सइकाइयं।

जहा आउकाइय वत्तव्वया तहा तेउ - वाउ - वण्णस्सईकाइयाणं भाणियव्वा।

–विया. स. ९, उ. ३४, सु. ९-१५



४. वैमानिक देवों के श्वासोच्छ्वास के रूप में परिणमित पुद्गलों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! सौधर्म-ईशान देवों के श्वासोच्छ्वास के रूप में कैसे पुद्गल परिणत होते हैं ?

उ. गौतम ! जो पुद्गल इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मणाम होते हैं वे अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त श्वासोच्छ्वास के रूप में परिणत होते हैं।

५. नैरयिकों के श्वासोच्छ्वास के रूप में परिणमित पुद्गलों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के श्वासोच्छ्वास के रूप में कैसे पुद्गल परिणत होते हैं ?

उ. गौतम ! जो पुद्गल अनिष्ट यावत् अमणाम होते हैं वे नैरयिकों के श्वासोच्छ्वास के रूप में परिणत होते हैं।

इसी प्रकार सप्तमपृथ्वी पर्यन्त के नैरयिकों का कथन करना चाहिए।

६. पृथ्वीकायिकादि के उच्छ्वास-निःश्वास का रूप–

प्र. भन्ते ! क्या पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीव को श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता है और छोड़ता हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव , पृथ्वीकायिक जीव को श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता है और छोड़ता है।

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव, अप्कायिक जीव को श्वासोच्छ्वास रूप में ग्रहण करता है और छोड़ता है ?

उ. हाँ, गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव, अप्कायिक जीव को श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता है और छोड़ता है।

इसी प्रकार तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! अप्कायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीव को श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता है और छोड़ता है।

उ. हाँ, गौतम ! पूर्वोक्त रूप से जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! अप्कायिक जीव, अप्कायिक जीव को श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करता है और छोड़ता है ?

उ. हाँ, गौतम ! पूर्वोक्त रूप से जानना चाहिए।

इसी प्रकार तेजस्कायिक वायुकायिक और वनस्पतिकायिक के लिए जानना चाहिए।

जिस प्रकार अप्काय का कथन किया उसी प्रकार तेउकाय वायुकाय और वनस्पतिकाय का भी आलापक कहना चाहिए।



---

१. विया. स. २, उ. १, सु. ६

भाषा अध्ययन : आमुख

विचारों का सम्प्रेषण करने के लिए भाषा एक सशक्त माध्यम है। भाषा की चर्चा दार्शनिक युग में पर्याप्त रूप से हुई है। भर्तृहरि जैसे दार्शनिकों ने करण दर्शन में वाक्यपदीय ग्रंथ रचकर भाषा का दर्शन प्रस्तुत कर दिया है। मीमांसा एवं न्यायदर्शन में भी शब्द एवं अर्थ की चर्चा हुई है। किन्तु ागमों में भाषा के सम्बन्ध में जो निरूपण उपलब्ध होता है वह विशिष्ट है एवं आधुनिक युग में भी प्रासङ्गिक है।

जैनागमों के अनुसार भाषा का मूल कारण जीव है, उसकी उत्पत्ति शरीर से होती है, उसका आकार वज्र जैसा है, उसका अन्त लोकान्त में होता है। कान्त में अन्त कहने का आशय भाषा के पुद्‌गलों का लोकान्त तक पहुँचने से है।

भाषा के मुख्यतः चार भेद किए जाते हैं–१. सत्य भाषा, २. मृषा भाषा, ३. सत्यमृषा भाषा और ४. असत्यामृषा भाषा। विस्तार से जब भाषा के भेदों अध्ययन करते हैं तो ज्ञात होता है कि भाषा दो प्रकार की है–१. पर्याप्तिका (प्रतिनियत) और २. अपर्याप्तिका (अप्रतिनियत)। पर्याप्तिका भाषा दो ार की होती है–१. सत्य, २. मृषा। अपर्याप्तिका भाषा के भी दो भेद होते हैं–१. सत्यमृषा और २. असत्यामृषा। सत्य पर्याप्तिका भाषा के जनपदसत्या, नत सत्या आदि दस भेद होते हैं। मृषा पर्याप्तिका भाषा के क्रोधनिःसृता, माननिःसृता आदि दस भेद हैं। सत्या-मृषा अपर्याप्तिका भाषा के ान्नमिश्रिता, विगतमिश्रिता आदि दस भेद होते हैं, जबकि असत्यामृषा अपर्याप्तिका भाषा के आमंत्रणी, आज्ञापनी आदि बारह भेद प्रतिपादित हैं।

भाषा जब बोली जाती है तभी वह भाषा कहलाती है, उसके पूर्व एवं पश्चात् नहीं। भाषा अवधारिणी भी होती है और प्रज्ञापनी भी होती है। ाधारिणी भाषा स्यात् सत्य होती है, स्यात् मृषा होती है, स्यात् सत्य मृषा होती है और स्यात् असत्यामृषा होती है। जब वह भाषा आराधनी होती है तब य होती है। जब विराधनी होती है तो असत्य होती है, जब आराधनी एवं विराधनी दोनों होती है तब सत्य-मृषा होती है और जब न आराधनी हो, न ाधनी हो और न दोनों हो तब वह असत्यामृषा कहलाती है। प्रज्ञापनी भाषा मृषा जैसी प्रतीत होती है, किन्तु वह मृषा नहीं होती है। उसमें किसी सत्य को देशात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

भाषा का प्रयोग करने वाले जीव को भाषक तथा भाषा का प्रयोग नहीं करने वाले जीव को अभाषक कहा जाता है। संसार में कुछ जीव भाषक हैं तथा छ अभाषक हैं। एकेन्द्रिय जीव अभाषक होते हैं क्योंकि वे भाषा का प्रयोग नहीं करते। इसी प्रकार सिद्ध जीव एवं शैलेशी अवस्था को प्राप्त केवली भी भाषक होते हैं। यही नहीं द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों में जो अपर्याप्तक जीव होते हैं वे भी अभाषक होते हैं। मात्र पर्याप्तक द्वीन्द्रिय से लेकर र्याप्तक पंचेन्द्रिय तक के जीव भाषक होते हैं। इस दृष्टि से एकेन्द्रिय के ५ दण्डकों को छोड़कर शेष दण्डकों के जीव दोनों प्रकार के होते हैं–भाषक भी र अभाषक भी। भाषा पर्याप्ति जब तक पूर्ण नहीं होती तब तक वे अभाषक रहते हैं तथा पर्याप्ति के पूर्ण होने पर वे भाषक हो जाते हैं।

भाषक नैरयिक जीव सत्य, मृषा, सत्यमृषा एवं असत्यामृषा रूप चारों प्रकार की भाषाएं बोलते हैं। इसी प्रकार समस्त देव एवं मनुष्यों में भी चारों कार की भाषाएं मिलती हैं। द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक तक के जीव मात्र एक असत्यामृषा भाषा बोलते हैं। पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव दाचित् शिक्षापूर्वक या उत्तरगुणलब्धि की अपेक्षा से अन्य तीन प्रकार की भाषाएं भी बोल लेते हैं।

सत्य भाषा आदि चारों प्रकारों की भाषाओं को उपयोगपूर्वक बोलने वाला जीव आराधक होता है किन्तु इससे विपरीत असंयत, अविरत, पापकर्म ा अप्रतिघातक एवं प्रत्याख्यान न करने वाला जीव चारों प्रकार की भाषाएं बोलता हुआ विराधक होता है।

भाषा का प्रयोग यद्यपि जीव करते हैं, तथापि भाषा जीव नहीं होती। वह आत्मा से भिन्न रूपी, अचित्त एवं अजीव होती है। जीव भाषा के रूप में थत द्रव्यों को ग्रहण करता है, अस्थित द्रव्यों को नहीं। जिन स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है उन्हें वह द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से एवं भाव से ग्रहण करता है। व्य से अनन्तप्रदेशी को, क्षेत्र से असंख्यात प्रदेशावगाढ़ को, काल से एक समय की स्थिति वाले यावत् असंख्यात समय की स्थिति वाले को और भाव से र्ण, गंध, रस एवं स्पर्श वाले पुद्‌गल द्रव्यों को ग्रहण करता है। वर्ण की अपेक्षा एक वर्ण वाले यावत् पांच वर्ण वाले को, गंध की अपेक्षा एक गन्ध वाले ावत् दो गन्ध वाले को, रस की अपेक्षा एक रस वाले यावत् पांच रस वाले को तथा स्पर्श की अपेक्षा दो स्पर्श वाले यावत् चार स्पर्श वाले पुद्‌गलों को ग्रहण रता है। वर्णादि में एक गुण यावत् अनन्तगुण की तरतमता भी संभव है।

भाषा योग्य पुद्‌गलों को जीव स्पृष्ट, अवगाढ़, अणु, स्थूल, ऊर्ध्व, अधः, स्वविषयक, आनुपूर्वी युक्त तथा छह दिशाओं से ग्रहण करता है इस पर भी स अध्ययन में निरूपण हुआ है।

जीव भाषा के रूप में जिन द्रव्यों को ग्रहण करता है उन्हें वह सान्तर भी ग्रहण करता है और निरन्तर भी ग्रहण करता है। सान्तर ग्रहण करता हुआ जघन्य एक समय में ग्रहण करता है और उत्कृष्ट असंख्यात समय का अन्तर करके ग्रहण करता है। निरन्तर ग्रहण करता हुआ जघन्य दो समय तक और उत्कृष्ट असंख्यात समय तक निरन्तर ग्रहण करता है।

जीव भाषावर्गणा के जिन द्रव्यों को सत्यभाषा के रूप में ग्रहण करता है, वह उन्हें सत्यभाषा के रूप में निकालता है। जिन द्रव्यों को वह मृषाभाषा के रूप में ग्रहण करता है, उन्हें मृषाभाषा के रूप में निकालता है। इसी प्रकार सत्यमृषा एवं असत्यामृषा भाषा के रूप में द्रव्यों को ग्रहण करता है तो वह उन्हीं भाषाओं के रूप में उन द्रव्यों को निकालता है। जीव जिन द्रव्यों को भाषा के रूप में ग्रहण करके निकालता है वह उन्हें सान्तर निकालता है। एक समय में ग्रहण करता है और एक समय में निकालता है। जीव भाषा के रूप में गृहीत द्रव्यों को भिन्नों एवं अभिन्नों के रूप में निकालता है। जो जीव भिन्नों को निकालता है, वह भिन्न द्रव्य अनन्तगुणवृद्धि को प्राप्त होते हुए लोकान्त को स्पर्श करता है और जो जीव अभिन्नों को निकालता है वह अभिन्न द्रव्य असंख्यात अवगाहनवर्गणा तक जाकर भेद को प्राप्त हो जाता है। फिर संख्यात योजनों तक आगे जाकर विध्वंस को प्राप्त हो जाता है।

भाषा द्रव्यों के पांच भेद निरूपित हैं–१. खण्ड भेद, २. प्रतर भेद, ३. चूर्णिका भेद और ५. उत्कटिका भेद। इन पांचों भेदों का स्वरूप इस अध्ययन में स्पष्टरूपेण प्रस्तुत है।

जितने भाषा के भेद हैं, उतने ही भाषानिर्वृत्ति के भेद हैं और उतने ही भाषा करण के भेद हैं। इस अपेक्षा से भाषानिर्वृत्ति एवं भाषाकरण के चार-चार भेद हैं–सत्य, मृषा, सत्यमृषा एवं असत्यामृषा।

भाषा का प्रयोग करने वाले जो भाषक जीव हैं, उनकी कायस्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त है। अभाषक जीव तीन प्रकार के हैं– अनादि अपर्यवसित, अनादि सपर्यवसित तथा सादि सपर्यवसित। इनमें सादि सपर्यवसित की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

भाषक का अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। सादि सपर्यवसित अभाषक का अन्तरकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अल्पबहुत्व की अपेक्षा विचार किया जाय तो सबसे अल्प सत्यभाषक जीव हैं। उनसे सत्यमृषा भाषक असंख्यात गुणे हैं, उनसे असत्यामृषा भाषक असंख्यात गुणे हैं तथा उनसे अभाषक जीव अनन्तगुणे हैं।

इस अध्ययन के अन्त में देवों की भाषा, शक्रेन्द्र की भाषा एवं केवली की भाषा का निरूपण है, जिसके अनुसार महर्द्धिक यावत् महासुखी देव हजार रूपों की विकुर्वणा करके हजार भाषाएं बोलने में समर्थ हैं, किन्तु वह वस्तुतः एक ही भाषा होती है, हजार नहीं। देव अर्धमागधी भाषा बोलते हैं। देवेन्द्र देवराज शक्र की भाषा सावद्य भी होती है और निरवद्य भी होती है। यतना से बोलने पर निरवद्य होती है तथा अयतना से बोलने पर सावद्य होती है। केवली दो ही प्रकार की भाषा बोलते हैं–सत्यभाषा और असत्यामृषा भाषा। वे कभी भी मृषा एवं सत्य-मृषा भाषा नहीं बोलते हैं।

इस प्रकार इस भाषा अध्ययन में अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य संकलित हैं। कुछ तथ्य वचन योग, वर्गणा एवं पुद्गल से सम्बद्ध हैं अतः उन्हें वहां पर देखा जा सकता है।



१८. भासा अज्झयणं

सूत्र

१. भासासरूवं–

प. भासा णं भंते ! १. किमादीया,
२. किं पहवा,
३. किं संठिया,
४. किं पज्जवसिया ?

उ. गोयमा ! १. भासा णं जीवादीया,
२. सरीरपहवा,
३. वज्जसंठिया,
४. लोगंतपज्जवसिया पण्णत्ता।

गाहाओ–

प. १. भासा कओ य पहवइ ?
२. कतिहिं च समएहिं भासती भासं ?
३. भासा कतिप्पगारा ?
४. कति वा भासा अणुमयाओ ?

उ. १. सरीरप्पहवा भासा,
२. दोहि य समएहिं भासती भासं।
३. भासा चउप्पगारा,
४. दोण्णि य भासा अणुमयाओ।

–पण्ण. प. १, सु. ८५८-८५९

२. पज्जत्तियाइ भेएण भासापगारा :–

प. कइविहा णं भंते ! भासा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा भासा पण्णत्ता , तं जहा–
१. पज्जत्तिया य,
२. अपज्जत्तिया य।

प. पज्जत्तिया णं भन्ते ! भासा कइविहा पण्णत्ता,

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सच्चा य, २. मोसा य।

प. सच्चा णं भंते ! भासा पज्जत्तिया कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. जणवयसच्चा,	२. सम्मतसच्चा,
३. ठवणासच्चा,	४. णामसच्चा,
५. रूवसच्चा,	६. पडुच्चसच्चा,
७. ववहारसच्चा,	८. भावसच्चा,
९. जोगसच्चा,	१०. ओवम्मसच्चा[1]।

प. मोसा णं भंते ! भासा पज्जत्तिया कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१८. भाषा अध्ययन

सूत्र

१. भाषा का स्वरूप–

प्र. भन्ते ! १. भाषा का मूल कारण क्या है,
२. भाषा की उत्पत्ति कहाँ से होती है,
३. भाषा का आकार कैसा है,
४. भाषा का अन्त कहाँ होता है ?

उ. गौतम ! १. भाषा का मूल कारण जीव है,
२. भाषा की उत्पत्ति शरीर से होती है,
३. भाषा का आकार वज्र जैसा है,
४. भाषा का अन्त लोकान्त में होता है, ऐसा कहा गया है।

गाथार्थ–

प्र. १. भाषा कहाँ से उत्पन्न होती है,
२. भाषा कितने समयों में बोली जाती है,
३. भाषा कितने प्रकार की है,
४. कितनी भाषाएँ अनुमत है ?

उ. १. भाषा शरीर से उत्पन्न होती है,
२. भाषा दो समयों में बोली जाती है,
३. भाषा चार प्रकार की है,
४. दो भाषाएँ अनुमत हैं।

२. पर्याप्तिकादि भेदों से भाषा के प्रकार–

प्र. भन्ते ! भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! भाषा दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. पर्याप्तिका (प्रतिनियत-निश्चित)
२. अपर्याप्तिका (अप्रतिनियत-अनिश्चित)

प्र. भन्ते ! पर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. सत्या, २. मृषा।

प्र. भन्ते ! सत्या पर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! दस प्रकार की कही गई है, यथा–

१. जनपदसत्या,	२. सम्मतसत्या,
३. स्थापनासत्या,	४. नामसत्या,
५. रूपसत्या,	६. प्रतीत्यसत्या,
७. व्यवहारसत्या,	८. भावसत्या,
९. योगसत्या,	१०. ओपम्यसत्या।

प्र. भन्ते ! मृषा-पर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! दस प्रकार की कही गई है, यथा–

---

१. गाहा–(१) जणवय, (२) सम्मत, (३) ठवणा, (४) णामे, (५) रूवे, (६) पडुच्चसच्चे य, (७) ववहार, (८) भाव, (९) जोगे, (१०) दसमे ओवम्मसच्चे य।
–ठाणं. अ. १०, सु. ७४१

१. कोहणिस्सिया, २. माणणिस्सिया,
३. मायाणिस्सिया, ४. लोभणिस्सिया,
५. पेज्जणिस्सिया, ६. दोसणिस्सिया,
७. हासणिस्सिया, ८. भयणिस्सिया,
९. अक्खाइयाणिस्सिया, १०. उवघायणिस्सिया[1]।

प. अपज्जत्तिया णं भंते ! भासा कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सच्चामोसा य, २. असच्चामोसा य।

प. सच्चामोसा णं भंते ! भासा अपज्जत्तिया कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. उप्पण्णमिस्सिया, २. विगयमिस्सिया,
३. उप्पण्णविगयमिस्सिया, ३. जीवमिस्सिया,
५. अजीवमिस्सिया, ६. जीवाजीवमिस्सिया,
७. अणंतमिस्सिया, ८. परित्तमिस्सिया,
९. अद्धामिस्सिया, १०. अद्धद्धामिस्सिया[2]।

प. असच्चामोसा णं भंते ! भासा अपज्जत्तिया कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुवालसविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. आमंतणि २. आणमणी,
३. जायणि, ४. तह पुच्छणी य
५. पण्णवणी, ६. पच्चक्खाणी भासा
७. भासा इच्छाणुलोमा य ८. अणभिग्गहिया भासा,
९. भासा य अभिग्गहम्मि वोधव्वा,
१०. संसयकरणी भासा,
११. वोयडा। १२. अव्वोयडा चेव।

–पण्ण. प. ११, सु. ८६०-८६६

१. क्रोधनिःसृता, २. माननिःसृता
३. मायानिःसृता ४. लोभनिःसृता
५. प्रेय (राग) निःसृता ६. दोस (द्वेष) निःसृता
७. हास्यनिःसृता ८. भयनिःसृता,
९. आख्यानिकानिःसृता १०. उपघातनिःसृता।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. सत्यामृषा, २. असत्यामृषा।

प्र. भंते ! सत्यामृषा अपर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! वह दस प्रकार की कही गई है, यथा–
१. उत्पन्नमिश्रिता, २ विगतमिश्रिता,
३. उत्पन्नविगतमिश्रिता, ४. जीवमिश्रिता,
५. अजीवमिश्रिता, ६. जीवाजीवमिश्रिता,
७. अनन्तमिश्रिता, ८. परित्तमिश्रिता,
९. अद्धामिश्रिता, १०. अद्धद्धामिश्रिता।

प्र. भंते ! असत्यामृषा अपर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! वह वारह प्रकार की कही गई है, यथा–
१. आमंत्रणी, २. आज्ञापनी,
३. याचनी, ४. पृच्छनी.
५. प्रज्ञापनी, ६. प्रत्याख्यानी,
७. इच्छानुलोमा, ८. अनभिगृहीता,
९. अभिगृहीता,
१०. संशयकरणी,
११. व्याकृता, १२. अव्याकृता।

३. चत्तारि भासज्जाय परूवणं –

प. कइ णं भंते ! भासज्जाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चत्तारि भासज्जाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. सच्चमेगं भासज्जायं,
२. वितियं मोसं भासज्जायं,
३. ततियं सच्चामोसं भासज्जायं,
४. चउत्थं असच्चामोसं भासज्जायं[3]।

–पण्ण. प. ११, सु. ८३०

३. चार भाषा जातों (प्रकारों) का प्ररूपण :–

प्र. भन्ते ! भाषाजात कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! चार भाषाजात कहे गए हैं, यथा–
१. एक सत्य भाषाजात,
२. दूसरा मृषा भाषाजात,
३. तीसरा सत्य मृषा भाषाजात,
४. चौथा असत्यामृषा भाषाजात।

४. जीव एगूणवीसदंडएसु भासज्जायं परूवणं –

प. जीवाणं भंते !

४. जीव और उन्नीस दण्डकों में भाषा के भेदों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! जीव क्या–

---

(१) [illegible] (१) कोहे, (२) माणे, (३) माया, (४) लोभे, (५) पेज्जे, (६) दोसे [illegible]
(७) हास, (८) भय, (९) अक्खाइय (१०) उवघाइयणि [illegible]
–पण्ण. प. ११, सु. ८६३ [illegible]
(२) [illegible] (१) कोहे, (२) माणे, [illegible] (३) माया, (४) लोभे [illegible]

(५) [illegible], (६) [illegible] (८) [illegible]
–[illegible]
[illegible] ठाणं अ. १०, सु. ७४१
२. ठाणं अ. १०, सु. ७४१
३. (क) ठाणं अ. ४, उ. १, सु. २३८
(ख) [illegible]
(ग) पण्ण. प. ११, सु. ८३०

१. किं सच्चं भासं भासंति,
२. मोसं भासं भासंति,
३. सच्चामोसं भासं भासंति,
४. असच्चामोसं भासं भासंति?

उ. गोयमा ! जीवा १. सच्चं पि भासं भासंति,
२. मोसं पि भासं भासंति,
३. सच्चामोसं पि भासं भासंति,
४. असच्चामोसं पि भासं भासंति।

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! किं सच्चं भासं भासंति जाव किं असच्चामोसं भासं भासंति?

उ. गोयमा ! णेरइया णं सच्चं पि भासं भासंति जाव असच्चामोसं पि भासं भासंति।

दं. २-११ एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

दं. १७-१९ बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया य।
णो सच्चं, णो मोसं, णो सच्चामोसं भासं भासंति, असच्चामोसं भासं भासंति।

प. दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया णं भंते ! किं सच्चं भासं भासंति जाव किं असच्चामोसं भासं भासंति?

उ. गोयमा ! पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया णो सच्चं भासं भासंति, णो मोसं भासं भासंति, णो सच्चामोसं भासं भासंति, एगं असच्चामोसं भासं भासंति, णऽण्णत्थ सिक्खापुव्वगं उत्तरगुणलद्धिं वा पडुच्च सच्चं पि भासं भासंति, मोसं पि भासं भासंति, सच्चामोसं पि भासं भासंति, असच्चामोसं पि भासं भासंति।

दं. २१-२४. मणुस्सा जाव वेमाणिया एए जहा जीवा तहा भाणियव्वा।
—पण्ण. प. ११, सु. ८७१-८७६

१. सत्यभाषा बोलते हैं,
२. मृषाभाषा बोलते हैं
३. सत्यमृषाभाषा बोलते हैं,
४. असत्यामृषाभाषा बोलते हैं,

उ. गौतम ! जीव १. सत्यभाषा बोलते हैं,
२. मृषाभाषा बोलते हैं,
३. सत्यामृषाभाषा बोलते हैं,
४. असत्यामृषाभाषा भी बोलते हैं।

प्र. दं. १. भन्ते ! क्या नैरयिक सत्यभाषा बोलते हैं यावत् असत्यामृषाभाषा बोलते हैं?

उ. गौतम ! नैरयिक सत्यभाषा भी बोलते हैं यावत् असत्यामृषाभाषा भी बोलते हैं।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. १७-१९. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय
जीव न तो सत्यभाषा, न मृषाभाषा, न ही सत्यामृषा भाषा बोलते हैं, किन्तु असत्यामृषाभाषा बोलते हैं।

प्र. दं. २०. भंते ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव क्या सत्यभाषा बोलते हैं यावत् क्या असत्यामृषाभाषा बोलते हैं?

उ. गौतम ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव न तो सत्यभाषा बोलते हैं, न मृषाभाषा बोलते हैं, न सत्यामृषाभाषा बोलते हैं, वे सिर्फ एक असत्यामृषाभाषा बोलते हैं। किन्तु शिक्षापूर्वक या उत्तरगुणलब्धि की अपेक्षा से सत्यभाषा भी बोलते हैं, मृषाभाषा भी बोलते हैं, सत्यामृषाभाषा भी बोलते हैं, असत्यामृषाभाषा भी बोलते हैं।

दं. २१-२४ मनुष्यों से वैमानिकों पर्यन्त का भाषा संबंधी कथन औघिक जीवों के समान करना चाहिए।

५. भासज्जायं भासमाण जीवस्स आराहग विराहगत्तं—

प. इच्चेयाइं भंते ! चत्तारि भासज्जायाइं भासमाणे किं आराहए विराहए?

उ. गोयमा ! इच्चेयाइं चत्तारि भासज्जायाइं आउत्ते भासमाणे आराहए, णो विराहए,
तेणं परं अस्संजयाऽविरयाऽपडिहयाऽपच्चक्खाय-पावकम्मे सच्चं वा भासं भासंति, मोसं वा, सच्चामोसं वा, असच्चामोसं वा भासं भासमाणे णो आराहए विराहए।
—पण्ण. प. ११, सु. ८९९

५. भाषा प्रकारों को बोलता हुआ जीव आराधक या विराधक—

प्र. भन्ते ! इन चारों भाषा प्रकारों को बोलता हुआ जीव आराधक होता है या विराधक होता है?

उ. गौतम ! इन चारों प्रकार की भाषाओं को उपयोगपूर्वक बोलने वाला आराधक होता है, विराधक नहीं होता है।
उससे अन्य जो असंयत, अविरत, पापकर्म का अप्रतिघातक और प्रत्याख्यान न करने वाला सत्यभाषा बोलता हुआ तथा मृषाभाषा, सत्यामृषा और असत्यामृषा भाषा बोलता हुआ आराधक नहीं किन्तु विराधक होता है।

६. भासाए अण्णत्तत्त परूवणं—

प. आया भंते ! भासा, अन्ना भासा?

उ. गोयमा ! नो आया भासा, अन्ना भासा।
—विया. स. १३, उ. ७, सु. २

६. भाषा में अनात्मत्व का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! भाषा आत्मा है या अन्य है?

उ. गौतम ! भाषा आत्मा नहीं है, अन्य है।

७. भासाए रूवित्त परूवणं—

प. रूविं भंते ! भासा, अरूविं भासा?

उ. गोयमा ! रूविं भासा, नो अरूविं भासा।
—विया. स. १३, उ. ७, सु. ३

७. भाषा में रूपित्व का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! भाषा रूपी है या अरूपी है?

उ. गौतम ! भाषा रूपी है, अरूपी नहीं है।

८. भासाए अचित्तत्त परूवणं–

प. सचित्ता भंते ! भासा, अचित्ता भासा ?

उ. गोयमा ! नो सचित्ता भासा, अचित्ता भासा।

–विया. स. १३, उ. ७, सु. ४

८. भाषा में अचित्तत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! भाषा सचित्त है या अचित्त है ?

उ. गौतम ! भाषा सचित्त नहीं है, अचित्त है।

९. भासाए अंजीवत्त परूवणं–

प. जीवा भंते ! भासा, अजीवा भासा ?

उ. गोयमा ! नो जीवा भासा, अजीवा भासा।

–विया. स. १३, उ. ७, सु. ५

९. भाषा में अजीवत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! भाषा जीव है, या अजीव है ?

उ. गौतम ! भाषा जीव नहीं है अजीव है।

१०. अजीवाणं भासा णिसेहो–

प. जीवाणं भंते ! भासा, अजीवाणं भासा ?

उ. गोयमा ! जीवाणं भासा, नो अजीवाणं भासा।

–विया. स. १३, उ. ७, सु. ६

१०. अजीवों के भाषा का निषेध –

प्र. भन्ते ! भाषा जीवों के होती है या अजीवों के होती है ?

उ. गौतम ! भाषा जीवों के होती है, अजीवों के नहीं होती है।

११. भासिज्जमाणीभासा भासा परूवणं–

प. अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति जाव एवं परूवेंति–

"पुव्विं भासा भासा, भासिज्जमाणी भासा अभासा,

भासा समय विइक्कंतं च णं भासिया भासा भासा,"

जा सा पुव्विं भासा भासा, भासिज्जभाणी भासा अभासा, भासा समय विइक्कंतं च णं भासिया भासा भासा, सा किं भासओ भासा ? अभासओ भासा ?

उ. अभासओ णं सा भासा, नो खलु सा भासओ भासा।

प. से कहमेयं भंते ! एवं ?

उ. गोयमा ! जण्णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति जाव एवं परूवेंति–

"पुव्विं भासा भासा, भासिज्जभाणी भासा अभासा जाव नो खलु सा भासओ भासा"

जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एवमाहंसु,

अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि

"पुव्विं भासा अभासा, भासिज्जमाणी भासा भासा, भासा समय विइक्कंतं च णं सा भासिया भासा अभासा[१]।

प. जा सा पुव्विं भासा अभासा, भासिज्जमाणी भासा भासा, भासा समय विइक्कंतं च णं भासिया भासा अभासा, सा किं भासओ भासा, अभासओ भासा ?

उ. भासओ णं भासा, नो खलु सा अभासओ भासा।

–विया. स. १, उ. १०, सु. ९

११. 'वोली जाती हुई भाषा ही भाषा है' का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि

"वोलने से पहले की जो भाषा है वह भाषा है, वोलते हुए की भाषा भाषा नहीं है।

वोलने का समय वीत जाने के वाद की जो भाषा है वह भाषा है।"

जो वह वोलने से पहले की भाषा भाषा है, वोलते हुए की भाषा भाषा नहीं है, वोलने का समय वीत जाने के वाद की भाषा है वह भाषा है, वह क्या वोलने वाले की भाषा है या न वोलने वाले की भाषा है ?

उ. वह न वोलने वाले की भाषा है किन्तु वोलने वाले की भाषा नहीं है।

प्र. हे भन्ते ! क्या यह कथन ठीक है ?

उ. गौतम ! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि

"वोलने से पहले की भाषा भाषा है–वोलते हुए की भाषा भाषा नहीं है यावत् वोलने वाले की भाषा भाषा है"।

यह जो उनका कथन है वह मिथ्या है।

गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि

"वोलने से पहले की भाषा भाषा नहीं है, वोलते हुए की भाषा भाषा है। वोलने का समय वीत जाने के वाद की भाषा भाषा नहीं है।

प्र. जो वह वोलने से पहले की भाषा भाषा नहीं है, वोलते हुए की भाषा है, वोलने का समय वीत जाने के वाद की भाषा भाषा नहीं है, वह क्या वोलने वाले की भाषा है या न वोलने वाले की भाषा है ?

उ. गौतम ! वह वोलने वाले की भाषा है, न वोलने वाले की भाषा नहीं है।

---

१. विया. स. १३, उ. ७, सु. ३ [illegible]

१२. भासिज्जमाणी भासा भिज्जइ त्ति परूवणं :-

प. १. पुव्विं भंते ! भासा भिज्जइ ?
२. भासिज्जमाणी भासा भिज्जइ ?
३. भासासमयवीइक्कंता भासा भिज्जइ ?

उ. गोयमा ! १. नो पुव्विं भासा भिज्जइ,
२. भासिज्जमाणी भासा भिज्जइ,
३. नो भासासमयवीइक्कंता भासा भिज्जइ।

-विया. स. १३, उ. ७, सु. ८

१२. बोलते समय की भाषा के भेदन का प्ररूपण :-

प्र. भन्ते ! १. बोलने से पूर्व भाषा का भेदन होता है ?
२. बोलते समय भाषा का भेदन होता है ?
३. बोलने का समय बीत जाने के बाद भाषा का भेदन होता है ?

उ. गौतम ! १. बोलने से पूर्व भाषा का भेदन नहीं होता है,
२. बोलते समय भाषा का भेदन होता है,
३. बोलने का समय बीत जाने के पश्चात् भाषा का भेदन नहीं होता है।

१३. ओहारिणी भासा परूवणं-

प. से णूणं भंते ! मण्णामीति ओहारिणी भासा ?
चिंतेमीति ओहारिणी भासा ?
अह मण्णामीति ओहारिणी भासा ?
अह चिंतेमीति ओहारिणी भासा ?
तह मण्णामीति ओहारिणी भासा ?
तह चिंतेमीति ओहारिणी भासा ?

उ. गोयमा ! मण्णामीति ओहारिणी भासा,
चिंतेमीति ओहारिणी भासा,
अह मण्णामीति ओहारिणी भासा,
अह चिंतेमीति ओहारिणी भासा,
तह मण्णामीति ओहारिणी भासा,
तह चिंतेमीति ओहारिणी भासा।

प. ओहारिणी णं भंते ! भासा किं सच्चा, मोसा, सच्चामोसा, असच्चामोसा ?

उ. गोयमा ! सिय सच्चा, सिय मोसा, सिय सच्चामोसा, सिय असच्चामोसा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-
"ओहारिणी णं भासा सिय सच्चा, सिय मोसा, सिय सच्चामोसा, सिय असच्चामोसा ?

उ. गोयमा ! १. आराहणी सच्चा,
२. विराहणी मोसा,
३. आराहणविराहणी सच्चामोसा,
४. जा णेव आराहणी णेव विराहणी णेव आराहणविराहणी, असच्चामोसा णाम सा चउत्थी भासा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-
"ओहारिणी णं भासा सिय सच्चा, सिय मोसा, सिय सच्चामोसा, सिय असच्चामोसा।"

-पण्ण. प. ११, सु. ८३०-८३१

१३. अवधारिणी भाषा का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! मैं ऐसा मानता हूँ कि-भाषा अवधारिणी है ?
मैं ऐसा चिन्तन करता हूँ कि-भाषा अवधारिणी है ?
क्या मैं ऐसा मानूं कि-भाषा अवधारिणी है ?
क्या मैं ऐसा चिन्तन करूं कि-भाषा अवधारिणी है ?
उसी प्रकार मैं ऐसा मानता हूँ कि-भाषा अवधारिणी है ?
उसी प्रकार मैं ऐसा चिन्तन करता हूँ कि -भाषा अवधारिणी है ?

उ. हाँ गौतम ! मैं मानता हूँ कि-भाषा अवधारिणी है,
मैं चिन्तन करता हूँ कि-भाषा अवधारिणी है,
अब भी मैं मानता हूँ कि-भाषा अवधारिणी है,
अब भी मैं चिन्तन करता हूँ कि-भाषा अवधारिणी है ?
उसी प्रकार मैं मानता हूँ कि-भाषा अवधारिणी है,
उसी प्रकार मैं चिन्तन करता हूँ कि-भाषा अवधारिणी है।

प्र. भन्ते ! अवधारिणी भाषा क्या सत्य है, मृषा है, सत्यामृषा है, असत्यामृषा (न सत्य, न असत्य) है ?

उ. हाँ गौतम ! वह सत्य भी होती है, मृषा भी होती है, सत्यामृषा भी होती है और असत्यामृषा भी होती है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि-
अवधारिणी भाषा सत्य, मृषा, सत्यामृषा और असत्यामृषा भी होती है ?

उ. गौतम ! १. आराधनी सत्य है,
२. विराधनी मृषा है,
३. आराधनी विराधनी सत्यामृषा है,
४. जो न तो आराधनी है, न विराधनी है और न ही आराधनी विराधनी है, वह चौथी असत्यामृषा नाम की भाषा है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-
"अवधारिणी भाषा सत्य, मृषा, सत्यामृषा और असत्यामृषा भी होती है।"

१४. पण्णवणी भासा परूवणं-

प. अह भंते ! गाओ, मिया, पसू, पक्खी-
पण्णवणी णं एसा भासा ?
ण एसा भासा मोसा ?

१४. प्रज्ञापनी भाषा की प्ररूपणा-

प्र. भन्ते ! गायें, मृग, पशु, पक्षी-
क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है ?
यह भाषा मृषा तो नहीं है ?

उ. हंता, गोयमा ! गाओ, मिया, पसू, पक्खी–

पण्णवणी णं एसा भासा,

ण एसा भासा मोसा।

प. अह भंते ! जा य इत्थिवयू, जा य पुमवयू, जा य णपुंसगवयू–

पण्णवणी णं एसा भासा ?

ण एसा भासा मोसा ?

उ. हंता, गोयमा ! जा य इत्थिवयू, जा य पुमवयू, जा य णपुंसगवयू–

पण्णवणी णं एसा भासा,

ण एसा भासा मोसा।

प. अह भंते ! जा य इत्थिआणमणी, जा य पुमआणमणी, जा य णपुंसगआणमणी–

पण्णवणी णं एसा भासा ?

ण एसा भासा मोसा ?

उ. हंता गोयमा ! जा य इत्थिआणमणी, जा य पुमआणमणी, जा य णपुंसगआणमणी–

पण्णवणी णं एसा भासा,

ण एसा भासा मोसा।

प. अह भंते ! जा य इत्थीपण्णवणी, जा य पुमपण्णवणी, जा य णपुंसगपण्णवणी–

पण्णवणी णं एसा भासा ?

ण एसा भासा मोसा ?

उ. हंता, गोयमा ! जा य इत्थिपण्णवणी, जा य पुमपण्णवणी, जा य णपुंसगपण्णवणी–

पण्णवणी णं एसा भासा,

ण एसा भासा मोसा।

प. अह भंते ! जाईति इत्थिवयू, जाईति पुमवयू, जाईति णपुंसगवयू–

पण्णवणी णं एसा भासा ?

ण एसा भासा मोसा ?

उ. हंता, गोयमा ! जाईति इत्थिवयू, जाईति पुमवयू, जाईति णपुंसगवयू–

पण्णवणी णं एसा भासा,

ण एसा भासा मोसा।

प. अह भंते ! जाईति इत्थिआणमणी, जाईति पुमआणमणी, जाईति णपुंसगआणमणी–

पण्णवणी णं एसा भासा,

ण एसा भासा मोसा ?

उ. हंता, गोयमा ! जाईति इत्थिआणमणी, जाईति पुमआणमणी, जाईति णपुंसगआणमणी–

पण्णवणी णं एसा भासा,

ण एसा भासा मोसा।

उ. हाँ, गौतम ! गायें, मृग, पशु, पक्षी–

यह भाषा प्रज्ञापनी है,

यह भाषा मृषा नहीं है।

प्र. भन्ते ! यह जो स्त्रीवचन है, पुरुषवचन है और नपुंसकवचन है,

क्या वह प्रज्ञापनी भाषा है ?

यह भाषा मृषा तो नहीं है ?

उ. हाँ, गौतम ! यह जो स्त्रीवचन है, पुरुषवचन है, नपुंसकवचन है,

यह भाषा प्रज्ञापनी है,

यह भाषा मृषा नहीं है।

प्र. भन्ते ! यह जो स्त्री-आज्ञापनी है, पुरुष-आज्ञापनी है और नपुंसक आज्ञापनी है,

क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है ?

यह भाषा मृषा तो नहीं है ?

उ. हाँ गौतम ! यह जो स्त्री आज्ञापनी है, पुरुष आज्ञापनी है, नपुंसक-आज्ञापनी है,

यह भाषा-प्रज्ञापनी है,

यह भाषा मृषा नहीं है।

प्र. भन्ते ! यह जो स्त्री प्रज्ञापनी है, पुरुष प्रज्ञापनी है, नपुंसक-प्रज्ञापनी है,

क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है

यह भाषा मृषा तो नहीं है ?

उ. हाँ, गौतम ! यह जो स्त्री प्रज्ञापनी है, पुरुष प्रज्ञापनी है और नपुंसक प्रज्ञापनी है,

यह प्रज्ञापनी भाषा है,

यह भाषा मृषा नहीं है।

प्र. भन्ते ! जो जाति से स्त्रीवचन है, जाति से पुरुषवचन है और जाति से नपुंसकवचन है,

क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है ?

यह भाषा मृषा तो नहीं है ?

उ. हाँ, गौतम ! जाति से स्त्रीवचन, जाति से पुरुषवचन और जाति से नपुंसकवचन है,

यह प्रज्ञापनी भाषा है,

यह भाषा मृषा नहीं है।

प्र. भन्ते ! जाति से जो स्त्री-आज्ञापनी है, जाति से जो पुरुष-आज्ञापनी है और जाति से जो नपुंसक-आज्ञापनी है,

क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है ?

यह भाषा मृषा तो नहीं है ?

उ. हाँ गौतम ! जाति से जो स्त्री आज्ञापनी है, जाति से जो पुरुष आज्ञापनी है और जाति से जो नपुंसक आज्ञापनी है,

यह प्रज्ञापनी भाषा है,

यह भाषा मृषा नहीं है।

प. अह भंते ! जाईति इत्थिपण्णवणी, जाईति पुमपण्णवणी, जाईति णपुंसगपण्णवणी–
पण्णवणी णं एसा भासा ?
ण एसा भासा मोसा ?

उ. हंता, गोयमा ! जाईति इत्थिपण्णवणी, जाईति पुमपण्णवणी, जाईति णपुंसगपण्णवणी–
पण्णवणी णं एसा भासा,
ण एसा भासा मोसा। *–पण्ण. प. ११, सु. ८३२-८३८*

प. अह भंते ! आसइस्सामो सइस्सामो चिट्ठिस्सामो निसिइस्सामो तुयट्टिस्सामो, १. आमंतणि, २. आणमणी, ३. जायणि, ४. तह पुच्छणी, ५. य पण्णवणी। ६. पच्चक्खाणी भासा, ७. भासा इच्छाणुलोमा य, ॥१॥ ८. अणभिग्गहिया भासा, ९. भासा य अभिग्गहम्मि बोधव्वा। १०. संसयकरणी भासा ११. वोयड, १२. मव्वोयडा चेव ॥२॥
पण्णवणी णं एसा भासा ण एसा भासा मोसा ?

उ. हंता, गोयमा ! आइस्सामो जाव तुयट्टिस्सामो त चेव जाव ण एसा भासा मोसा। *–विया. स. १०, उ. ३, सु. १९*

प्र. भन्ते ! जाति से जो स्त्री प्रज्ञापनी है, जाति से जो पुरुष प्रज्ञापनी है, जाति से जो नपुंसक प्रज्ञापनी है,
क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है ?
यह भाषा मृषा तो नहीं है ?

उ. हाँ, गौतम ! जो जाति से स्त्री प्रज्ञापनी है, जाति से पुरुष प्रज्ञापनी है, जाति से नपुंसक प्रज्ञापनी है,
यह प्रज्ञापनी भाषा है,
यह भाषा मृषा नहीं है।

प्र. भन्ते ! १. आमंत्रणी, २. आज्ञापनी, ३. याचनी, ४. पृच्छनी, ५. प्रज्ञापनी, ६. प्रत्याख्यानी, ७. इच्छानुलोमा, ८. अनभिगृहीता, ९. अभिगृहीता, १०. संशयकरणी, ११. व्याकृता और १२. अव्याकृता

इन बारह प्रकार की भाषाओं में हम आश्रय करेंगे, शयन करेंगे, खड़े रहेंगे, बैठेंगे और लेटेंगे इत्यादि भाषण करना क्या प्रज्ञापनी भाषा कहलाती है और ऐसी भाषा मृषा (असत्य) तो नहीं कहलाती है ?

उ. हाँ, गौतम ! यह (पूर्वोक्त) आश्रय करेंगे यावत् लेटेंगे इत्यादि भाषा प्रज्ञापनी भाषा है यह भाषा मृषा (असत्य) नहीं है।

१५. जीवेहिं ठिय भासादव्वाणं गहण परूवणं–

प. १. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गेण्हइ, ताइं किं ठियाइं गेण्हइ, अठियाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! ठियाइं गेण्हइ, णो अठियाइं गेण्हइ।

प. २. जाइं भंते ! ठियाइं गेण्हइ,
ताइं किं दव्वओ गेण्हइ ? खेत्तओ गेण्हइ ?
कालओ गेण्हइ ? भावओ गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! दव्वओ वि गेण्हइ, खेत्तओ वि गेण्हइ, कालओ वि गेण्हइ, भावओ वि गेण्हइ।

प. ३. जाइं दव्वओ गेण्हइ,
ताइं किं एगपदेसियाइं गेण्हइ,
दुपदेसियाइं गेण्हइ जाव
अणंतदेसियाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! णो एगपदेसियाइं गेण्हइ जाव
णो असंखेज्जपदेसियाइं गेण्हइ,
अणंत पदेसियाइं गेण्हइ।

प. ४. जाइं खेत्तओ गेण्हइ,
ताइं किं एगपदेसोगाढाइं गेण्हइ,
दुपदेसोगाढाइं गेण्हइ जाव
असंखेज्जपदेसोगाढाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! णो एगपदेसोगाढाइं गेण्हइ जाव
णो संखेज्जपदेसोगाढाइं गेण्हइ,
असंखेज्जपदेसोगाढाइं गेण्हइ।

१५. जीवों द्वारा स्थित भाषा द्रव्यों के ग्रहण का प्ररूपण–

प्र. १. भन्ते ! जीव जिन द्रव्यों को भाषा के रूप में ग्रहण करता है, क्या वह स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है या अस्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है, अस्थित द्रव्यों को ग्रहण नहीं करता है।

प्र. २. भन्ते ! जिन स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है तो
क्या उन्हें द्रव्य से ग्रहण करता है, क्षेत्र से ग्रहण करता है,
काल से ग्रहण करता है या भाव से ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! द्रव्य से भी ग्रहण करता है, क्षेत्र से भी ग्रहण करता है, काल से भी ग्रहण करता है और भाव से भी ग्रहण करता है।

प्र. ३. जिनको वह द्रव्य से ग्रहण करता है तो
क्या वह एकप्रदेशी को ग्रहण करता है,
द्विप्रदेशी को ग्रहण करता है यावत्
अनन्तप्रदेशी को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! न तो वह एकप्रदेशी को ग्रहण करता है यावत्
न असंख्येयप्रदेशी को ग्रहण करता है,
किन्तु अनन्तप्रदेशी को ग्रहण करता है।

प्र. ४. जिन द्रव्यों को वह क्षेत्र से ग्रहण करता है तो
क्या एकप्रदेशावगाढों को ग्रहण करता है,
द्विप्रदेशावगाढों को ग्रहण करता है यावत्
असंख्येयप्रदेशावगाढों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! न तो वह एकप्रदेशावगाढों को ग्रहण करता है
यावत् न संख्यातप्रदेशावगाढों को ग्रहण करता है,
किन्तु असंख्यातप्रदेशावगाढों को ग्रहण करता है।

प. ५. जाइं कालओ गेण्हइ,
ताइं किं एगसमयठिइयाइं गेण्हइ,
दुसमयठिइयाइं गेण्हइ जाव
असंखेज्जसमयठिइयाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! एगसमयठिइयाइं पि गेण्हइ,
दुसमयठिइयाइं पि गेण्हइ जाव
असंखेज्जसमयठिइयाइं पि गेण्हइ।

प. ६. जाइं भावओ गेण्हइ,
ताइं किं वण्णमंताइं गेण्हइ,
गंधमंताइं गेण्हइ,
रसमंताइं गेण्हइ,
फासमंताइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! वण्णमंताइं पि गेण्हइ जाव
फासमंताइं पि गेण्हइ।

प. ७. जाइं भावओ वण्णमंताइं गेण्हइ,
ताइं किं एगवण्णाइं गेण्हइ जाव
पंचवण्णाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! गहणदव्वाइं पडुच्च–
एगवण्णाइं पि गेण्हइ जाव
पंचवण्णाइं पि गेण्हइ,
सव्वग्गहणं पडुच्च–
णियमा पंचवण्णाइं गेण्हइ, तं जहा–
१. कालाइं, २. नीलाइं, ३. लोहियाइं,
४. हालिद्दाइं, ५. सुक्किलाइं।

प. ८. जाइं वण्णओ कालाइं गेण्हइ,
ताइं किं एगगुणकालाइं गेण्हइ जाव
अणंतगुणकालाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! एगगुणकालाइं पि गेण्हइ जाव
अणंतगुणकालाइं पि गेण्हइ।
एवं जाव सुक्किलाइं पि।

× × ×

प. ९. जाइं भावओ गंधमंताइं गेण्हइ,
ताइं किं एगगंधाइं गेण्हइ
दुगंधाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! गहणदव्वाइं पडुच्च–
एगगंधाइं पि गेण्हइ,
दुगंधाइं पि गेण्हइ
सव्वग्गहणं पडुच्च–
णियमा दुगंधाइं गेण्हइ।

प. १०. जाइं भावओ सुब्भिगंधाइं गेण्हइ,
ताइं किं एगगुणसुब्भिगंधाइं गेण्हइ जाव
अणंतगुणसुब्भिगंधाइं गेण्हइ ?

प्र. ५. जिनको काल से ग्रहण करता है तो
क्या एक समय की स्थिति वालों को ग्रहण करता है,
दो समय की स्थिति वालों को ग्रहण करता है यावत्
असंख्यात समय की स्थिति वालों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! एक समय की स्थिति वालों को भी ग्रहण करता है,
दो समय की स्थिति वालों को भी ग्रहण करता है यावत्
असंख्यात समय की स्थिति वालों को भी ग्रहण करता है।

प्र. ६. जिनको भाव से ग्रहण करता है तो
क्या वर्ण वालों को ग्रहण करता है,
गन्ध वालों को ग्रहण करता है,
रस वालों को ग्रहण करता है,
या स्पर्श वालों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! वह वर्ण वालों को भी ग्रहण करता है यावत्
स्पर्श वालों को भी ग्रहण करता है।

प्र. ७. भाव से जिन वर्ण वालों को ग्रहण करता है तो
क्या वह एक वर्ण वालों को ग्रहण करता है यावत्
पाँच वर्ण वालों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! ग्रहण किए जाने वाले द्रव्यों की अपेक्षा से–
एक वर्ण वालों को भी ग्रहण करता है यावत्
पांच वर्ण वालों को भी ग्रहण करता है।
सभी द्रव्यों के ग्रहण करने की अपेक्षा से–
नियमतः पांचों वर्णों वालों को ग्रहण करता है, यथा–
१. काले, २. नीले, ३. लाल,
४. पीले, ५. शुक्ल।

प्र. ८. वर्ण से जिन काले वर्ण वालों को ग्रहण करता है तो
क्या वह एक गुण काले को ग्रहण करता है यावत्
अनन्तगुण काले को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! एक गुण काले वर्ण वालों को भी ग्रहण करता है
यावत् अनन्तगुण काले वर्ण वालों को भी ग्रहण करता है।
इसी प्रकार यावत् शुक्ल वर्ण वालों को भी ग्रहण करता है।

× × ×

प्र. ९. भाव से वह गन्ध वालों को ग्रहण करता है तो,
क्या एक गन्ध वालों को ग्रहण करता है,
दो गन्ध वालों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! ग्रहण किए जाने वाले द्रव्यों की अपेक्षा से–
एक गन्ध वालों को भी ग्रहण करता है,
दो गन्ध वालों को भी ग्रहण करता है
सभी को ग्रहण करने की अपेक्षा से–
नियमतः, दो गन्ध वालों को निश्चित रूप से ग्रहण करता है।

प्र. १०. भाव से सुगन्ध वालों को ग्रहण करता है तो
क्या वह एक गुण सुगन्ध वालों को ग्रहण करता है यावत्
अनन्तगुण सुगन्ध वालों को ग्रहण करता है ?

उ. गोयमा ! एगगुणसुब्भिगंधाइं पि गेण्हइ
जाव अणंतगुणसुब्भिगंधाइं पि गेण्हइ।
एवं दुब्भिगंधाइं पि गेण्हइ।

प. ११. जाइं भावओ रसमंताइं गेण्हइ,
ताइं किं एगरसाइं गेण्हइ जाव
किं पंचरसाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! गहणदव्वाइं पडुच्च–
एगरसाइं पि गेण्हइ जाव
पंचरसाइं पि गेण्हइ,

सव्वग्गहणं पडुच्च–
णियमा पंचरसाइं गेण्हइ।

प. १२. जाइं रसओ तित्तरसाइं गेण्हइ,
ताइं कि एगगुणतित्तरसाइं गेण्हइ जाव
अणंतगुणतित्तरसाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! एगगुणतित्तरसाइं पि गेण्हइ
जाव अणंतगुणतित्तरसाइं पि गेण्हइ।
एवं जाव महुरो रसो।

प. १३. जाइं भावओ फासमंताइं गेण्हइ,
ताइं कि एगफासाइं गेण्हइ जाव
अट्ठफासाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! गहणदव्वाइं पडुच्च–
णो एगफासाइं गेण्हइ
दुफासाइं गेण्हइ जाव
चउफासाइं पि गेण्हइ,
णो पंचफासाइं गेण्हइ जाव
णो अट्ठफासाइं पि गेण्हइ।

सव्वग्गहणं पडुच्च–
णियमा चउफासाइं गेण्हइ, तं जहा–
१. सीयफासाइं गेण्हइ,
२. उसिणफासाइं गेण्हइ,
३. णिद्धफासाइं गेण्हइ,
४. लुक्खफासाइं गेण्हइ।

प. १४. जाइं फासओ सीयाइं गेण्हइ,
ताइं किं एगगुणसीयाइं गेण्हइ जाव
अणंतगुणसीयाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! एगगुणसीयाइं पि गेण्हइ जाव
अणंतगुणसीयाइं पि गेण्हइ।
एवं उसिण-णिद्ध-लुक्खाइं जाव अणंतगुणाइं पि गेण्हइ।

उ. गौतम ! वह एक गुण सुगन्ध वालों को भी ग्रहण करता है, यावत् अनन्तगुण सुगन्ध वालों को भी ग्रहण करता है।
इसी प्रकार वह दो गुण दुर्गन्ध वालों को भी ग्रहण करता है।

प्र. ११. भाव से वह रस वालों को ग्रहण करता है तो
क्या वह एक रस वालों को ग्रहण करता है यावत्
पांच रस वालों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! ग्रहण किए जाने वाले द्रव्यों की अपेक्षा से–
एक रस वालों को भी ग्रहण करता है यावत्
पांच रस वालों को भी ग्रहण करता है।

सभी को ग्रहण करने की अपेक्षा से–
पांच रस वालों को निश्चित रूप से ग्रहण करता है।

प्र. १२. भाव से वह तिक्त रस वालों को ग्रहण करता है तो
क्या एक गुण तिक्त रस वालों को ग्रहण करता है यावत्
अनन्तगुण तिक्त रस वालों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! एक गुण तिक्त रस वालों को भी ग्रहण करता है,
यावत् अनन्तगुण तिक्त रस वालों को भी ग्रहण करता है।
इसी प्रकार यावत् मधुर रस वालों को भी ग्रहण करता है।

प्र. १३. भाव से वह स्पर्श वालों को ग्रहण करता है तो
क्या एक स्पर्श वालों को ग्रहण करता है यावत्
आठ स्पर्श वालों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! ग्रहण किए जाने वाले द्रव्यों की अपेक्षा से–
एक स्पर्श वालों को ग्रहण नहीं करता है,
दो स्पर्श वालों को ग्रहण करता है यावत्
चार स्पर्श वालों को ग्रहण करता है,
पांच स्पर्श वालों को भी ग्रहण नहीं करता है यावत्
आठ स्पर्श वालों को भी ग्रहण नहीं करता है।

सभी को ग्रहण करने की अपेक्षा से–
चार स्पर्श वालों को निश्चित रूप से ग्रहण करता है, यथा–
१. शीतस्पर्श वालों को ग्रहण करता है,
२. उष्णस्पर्श वालों को ग्रहण करता है,
३. स्निग्धस्पर्श वालों को ग्रहण करता है,
४. रूक्षस्पर्श वालों को ग्रहण करता है।

प्र. १४. स्पर्श से वह शीतस्पर्श वालों को ग्रहण करता है तो
क्या एक गुण शीतस्पर्श वालों को ग्रहण करता है यावत्
अनन्तगुण शीतस्पर्श वालों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! वह एक गुण शीतस्पर्श वालों को भी ग्रहण करता है,
यावत्
अनन्तगुण शीतस्पर्श वालों को भी ग्रहण करता है।
इसी प्रकार उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श वालों को यावत्
अनन्तगुण रूक्षादि स्पर्श वालों को भी ग्रहण करता है।

प. १५. जाइं भंते ! एगगुणलुक्खाइं जाव अणंतगुणलुक्खाइं गेण्हइ,

ताइं किं पुट्ठाइं गेण्हइ अपुट्ठाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! पुट्ठाइं गेण्हइ, णो अपुट्ठाइं गेण्हइ।

प. १६. जाइं भंते ! पुट्ठाइं गेण्हइ,

ताइं किं ओगाढाइं गेण्हइ,

अणोगाढाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! ओगाढाइं गेण्हइ,

णो अणोगाढाइं गेण्हइ।

प. १७. जाइं भंते ! ओगाढाइं गेण्हइ,

ताइं किं अणंतरोगाढाइं गेण्हइ,

परंपरोगाढाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! अणंतरोगाढाइं गेण्हइ,

णो परंपरोगाढाइं गेण्हइ।

प. १८. जाइं भंते ! अणंतरोगाढाइं गेण्हइ,

ताइं किं अणूइं गेण्हइ,

बायराइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! अणूइं पि गेण्हइ,

बायराइं पि गेण्हइ।

प. १९. जाइं भंते ! अणूइं पि गेण्हइ, बायराइं पि गेण्हइ,

ताइं किं उड्ढं गेण्हइ, अहे गेण्हइ, तिरियं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! उड्ढं पि गेण्हइ, अहे वि गेण्हइ, तिरियं पि गेण्हइ।

प. २०. जाइं भंते ! उड्ढं पि गेण्हइ, अहे पि गेण्हइ, तिरियं पि गेण्हइ,

ताइं किं आइं गेण्हइ, मज्झे गेण्हइ, पज्जवसाणे गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! आइं पि गेण्हइ, मज्झे वि गेण्हइ, पज्जवसाणे वि गेण्हइ।

प. २१. जाइं भंते ! आइं वि गेण्हइ, मज्झे वि गेण्हइ, [illegible]

[illegible]

उ. [illegible]

प. २२. [illegible]

[illegible]

प्र. १५. भन्ते ! यदि एक गुण रूक्षस्पर्श से अनन्तगुण रूक्षस्पर्श पर्यंत को ग्रहण करता है तो

क्या स्पृष्टों को ग्रहण करता है या अस्पृष्टों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! वह स्पृष्टों को ग्रहण करता है, अस्पृष्टों को ग्रहण नहीं करता है।

प्र. १६. भन्ते ! स्पृष्टों को ग्रहण करता है तो

क्या अवगाढों को ग्रहण करता है,

या अनवगाढों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! अवगाढों को ग्रहण करता है,

अनवगाढों को ग्रहण नहीं करता है।

प्र. १७. भन्ते ! अवगाढों को ग्रहण करता है तो

क्या अनन्तरावगाढों को ग्रहण करता है,

या परम्परावगाढों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! अनन्तरावगाढों को ग्रहण करता है,

परम्परावगाढों को ग्रहण नहीं करता है।

प्र. १८. भन्ते ! वह अनन्तरावगाढों को ग्रहण करता है तो

क्या अणु (सूक्ष्म) द्रव्यों को ग्रहण करता है,

या स्थूल (बादर) द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! अणु द्रव्यों को भी ग्रहण करता है,

स्थूल द्रव्यों को भी ग्रहण करता है।

प्र. १९. भन्ते ! अणु को भी ग्रहण करता है और स्थूल को भी ग्रहण करता है तो

क्या ऊर्ध्व दिशा में ग्रहण करता है, अधो दिशा में ग्रहण करता है या तिर्यक् दिशा में ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! ऊर्ध्वदिशा में, अधोदिशा में और तिर्यक् दिशा में ग्रहण करता है।

प्र. २०. भन्ते ! अणु को ऊर्ध्व दिशा में, अधो दिशा में और तिर्यक् दिशा में ग्रहण करता है तो

क्या उन्हें प्रारम्भ में ग्रहण करता है, मध्य में ग्रहण करता है या अन्त में ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! आदि में भी ग्रहण करता है, मध्य में भी ग्रहण करता है और अन्त में भी ग्रहण करता है।

प्र. २१. भन्ते ! आदि, मध्य और अन्त में ग्रहण करता है तो

[illegible]

उ. [illegible]

प्र. २२. [illegible]

[illegible]

उ. गोयमा ! आणुपुव्विं गेण्हइ, णो अणाणुपुव्विं गेण्हइ।

प. २३. जाइं भंते ! आणुपुव्विं गेण्हइ,
ताइं किं तिदिसिं गेण्हइ जाव छद्दिसिं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! णियमा छद्दिसिं गेण्हइ।
गाहा–पुट्ठोगाढ अणंतर अणु य, तह बायरे य उड्ढमहे।
आदि विसयाऽणुपुव्विं, णियमा तह छद्दिसिं चेव॥

प. २४. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गेण्हइ,
ताइं किं संतरं गेण्हइ, निरंतरं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! संतरं पि गेण्हइ, निरंतरं पि गेण्हइ।
संतरं गेण्हमाणे जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं असंखेज्जसमए अंतरं कट्टु गेण्हइ।
निरंतरं गेण्हमाणे जहण्णेणं दो समए,
उक्कोसेणं असंखेज्जसमए अणुसमयं अविरहियं निरंतरं गेण्हइ।
–पण्ण. प. ११, सु. ८७७-८७८

उ. गौतम ! आनुपूर्वी से ग्रहण करता है, अनानुपूर्वी से ग्रहण नहीं करता है।

प्र. २३. भन्ते ! आनुपूर्वी से ग्रहण करता है तो
क्या तीन दिशाओं से ग्रहण करता है यावत् छहों दिशाओं से ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! नियमतः छहों दिशाओं से ग्रहण करता है।
गाथार्थ–स्पृष्ट, अवगाढ, अनन्तरावगाढ़, अणु तथा स्थूल, ऊर्ध्व, अधः, आदि, स्वविषयक, अविषयक, आनुपूर्वी तथा छह दिशाओं से निश्चित रूप से ग्रहण करता है।

प्र. २४. भन्ते ! जिन द्रव्यों को भाषा के रूप में ग्रहण करता है,
क्या उन्हें सान्तर ग्रहण करता है या निरन्तर ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! सान्तर भी ग्रहण करता है, निरन्तर भी ग्रहण करता है,
सान्तर ग्रहण करता हुआ जघन्य एक समय में ग्रहण करता है,
उत्कृष्ट असंख्यात समय का अन्तर करके ग्रहण करता है,
निरन्तर ग्रहण करता हुआ जघन्य दो समय तक ग्रहण करता है,
उत्कृष्ट असंख्यात समय तक प्रति समय निरन्तर ग्रहण करता है।

१६. चउवीसदंडएसु ठिय भासा दव्वाणं गहण परूवणं–

प. णेरइए णं भंते ! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गेण्हइ,
ताइं किं ठियाइं गेण्हइ, अठियाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! एवं चेव जहा जीवे वत्तव्वया भणिया तहा णेरइयस्सवि जाव अप्पाबहुयं।
एवं एगिंदियवज्जो दंडओ जाव वेमाणिया।

प. जीवा णं भंते ! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गेण्हंति,
ताइं किं ठियाइं गेण्हंति, अठियाइं गेण्हंति ?

उ. गोयमा ! एवं चेव पुहत्तेण वि णेयव्वं जाव वेमाणिया।

प. [illegible]
[illegible]

उ. [illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

१६. चौवीस दण्डकों द्वारा स्थित भाषा द्रव्यों के ग्रहण का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! नैरयिक जिन द्रव्यों को भाषा रूप में ग्रहण करता है,
तो क्या स्थितों को ग्रहण करता है या अस्थितों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! जीव के विषय में जैसा कहा गया है, वैसा ही अल्पबहुत्व पर्यन्त नैरयिक के विषय में भी कहना चाहिए।
इसी प्रकार एकेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! अनेक जीव जिन द्रव्यों को भाषा के रूप में ग्रहण करते हैं, तो क्या स्थित द्रव्यों को ग्रहण करते हैं या अस्थित को ग्रहण करते हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार एकत्व (एकवचन) रूप में कथन किया गया है उसी प्रकार बहुवचन के रूप में भी वैमानिकों पर्यन्त कथन करना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जीव जिन द्रव्यों को सत्यभाषा के रूप में ग्रहण करता है तो क्या स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है या अस्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! जैसे जीव विषयक औधिक आलापक कहे हैं, वैसे ही यह आलापक कहना चाहिए।
विशेष–विकलेन्द्रियों के विषय में पृच्छा नहीं करनी चाहिए।
इसी प्रकार मृषाभाषा के द्रव्यों को ग्रहण करता है।
इसी प्रकार सत्यामृषा भाषा के द्रव्यों को ग्रहण करता है।
इसी प्रकार असत्यामृषा भाषा के द्रव्यों को ग्रहण करता है।

णवरं–असच्चामोसभासाए विगलिंदिया वि पुच्छिज्जंति इमेणं अभिलावेणं।

प. विगलिंदिए णं भंते ! जाइं दव्वाइं असच्चामोसभासत्ताए गेण्हइ, ताइं किं ठियाइं गेण्हइ, अठियाइं गेण्हइ ?

उ. गोयमा ! जहा ओहियदंडओ।

एवं एए एगत्तपुहत्तेणं दस दंडगा भाणियव्वा।

–पण्ण. प. ११, सु. ८८८-८९१

विशेष–असत्यामृषाभाषा के ग्रहण के सम्बन्ध में इस अभिलाप के द्वारा विकलेन्द्रियों के लिए भी प्रश्न करना चाहिए।

प्र. भन्ते ! विकलेन्द्रिय जीव जिन द्रव्यों को असत्यामृषाभाषा के रूप में ग्रहण करता है तो क्या स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है या अस्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है ?

उ. गौतम ! जैसे औधिक दंडक कहा गया है वैसे ही यहां समझ लेना चाहिए।

इसी प्रकार एकत्व और पृथक्त्व के ये दस दण्डक कहने चाहिए।

१७. एगूणवीसदंडएसु गहीय भासा दव्वाणं निसिरण रूवं–

प. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं सच्चभासत्ताए गेण्हइ,

ताइं किं सच्चभासत्ताए णिसिरइ ?

मोसभासत्ताए णिसिरइ ?

सच्चामोसभासत्ताए णिसिरइ ?

असच्चामोसभासत्ताए णिसिरइ ?

उ. गोयमा ! सच्चभासत्ताए णिसिरइ,

णो मोसभासत्ताए णिसिरइ,

णो सच्चामोसभासत्ताए णिसिरइ,

णो असच्चामोसभासत्ताए णिसिरइ।

एवं एगिंदिय-विगलिंदियवज्जो दंडओ जाव वेमाणिए।

एवं पुहत्तेण वि।

प. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं मोसभासत्ताए गेण्हइ,

ताइं किं सच्चभासत्ताए णिसिरइ ?

मोसभासत्ताए णिसिरइ ?

सच्चामोसभासत्ताए णिसिरइ ?

असच्चामोसभासत्ताए णिसिरइ ?

उ. गोयमा ! णो सच्चभासत्ताए णिसिरइ,

मोसभासत्ताए णिसिरइ,

णो सच्चामोसभासत्ताए णिसिरइ,

णो असच्चामोसभासत्ताए णिसिरइ।

एवं सच्चामोसभासत्ताए वि।

असच्चामोसभासत्ताए वि एवं चेव।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

–पण्ण. [illegible]

१७. उन्नीस दण्डकों में ग्रहीत भाषा द्रव्यों के निःसिरण का रूप–

प्र. भन्ते ! जीव जिन द्रव्यों को सत्यभाषा के रूप में ग्रहण करता है तो

क्या उनको सत्यभाषा के रूप में निकालता है ?

मृषाभाषा के रूप में निकालता है ?

सत्यामृषाभाषा के रूप में निकालता है ?

या असत्यामृषाभाषा के रूप में निकालता है ?

उ. गौतम ! वह सत्यभाषा के रूप में निकालता है,

किन्तु न तो मृषाभाषा के रूप में निकालता है,

न सत्यामृषाभाषा के रूप में निकालता है,

और न असत्यामृषाभाषा के रूप में निकालता है।

इसी प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिक पर्यंत दण्डक कहने चाहिए।

इसी प्रकार बहुवचन के दण्डक भी कहने चाहिए।

प्र. भन्ते ! जीव जिन द्रव्यों को मृषाभाषा के रूप में ग्रहण करता है तो

क्या उन्हें सत्यभाषा के रूप में निकालता है ?

मृषाभाषा के रूप में निकालता है ?

सत्यामृषाभाषा के रूप में निकालता है ?

या असत्यामृषाभाषा के रूप में निकालता है ?

उ. गौतम ! वह सत्यभाषा के रूप में नहीं निकालता है,

मृषाभाषा के रूप में निकालता है,

सत्यामृषाभाषा के रूप में नहीं निकालता है और

न असत्यामृषाभाषा के रूप में निकालता है।

इसी प्रकार सत्यामृषाभाषा के लिए भी कहें।

इसी प्रकार असत्यामृषाभाषा के द्रव्यों के लिए भी कहें।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

१८. भाषा दव्वाणं गहण-णिस्सरणं–

प. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गहियाइं णिसिरइ,

ताइं किं संतरं णिसिरइ, णिरंतरं णिसिरइ ?

उ. गोयम ! संतरं णिसिरइ, णो णिरंतरं णिसिरइ।

संतरं णिसिरमाणे एगेणं समएणं गेण्हइ, एगेणं समएणं णिसिरइ,

0	नि	नि	नि	नि	नि	नि	नि
ग्र	ग्र	ग्र	ग्र	ग्र	ग्र	ग्र	0

एएणं गहणं–णिसिरणोवाएणं जहण्णेणं दुसमइयं, उक्कोसेणं असंखेज्जसमइयं अंतोमुहुत्तियं गहणणिसिरणोवायं करेइ। –पण्ण. प. ११, सु. ८७९

१८. भाषा द्रव्यों का ग्रहण और निःसरण–

प्र. भन्ते ! जीव जिन द्रव्यों को भाषा के रूप में ग्रहण करके निकालता है,

क्या वह उन्हें सान्तर निकालता है या निरन्तर निकालता है?

उ. गौतम ! सान्तर निकालता है, निरन्तर नहीं निकालता है।

सान्तर निकालता हुआ जीव एक समय में ग्रहण करता है और एक समय में निकालता है।

इस ग्रहण और निःसरण के उपाय से जघन्य दो समय से उत्कृष्ट असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त्त तक ग्रहण और निःसरण करता है।

१९. भिण्णाभिण्ण भासादव्वाणं गहण णिसरण परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गहियाइं णिसिरइ,

ताइं किं भिण्णाइं णिसिरइ, अभिण्णाइं णिसिरइ ?

उ. गोयमा ! भिण्णाइं पि णिसिरइ, अ भिण्णाइं पि णिसिरइ।

जाइं भिण्णाइं णिसिरइ,

ताइं अणंतगुणपरिवुड्ढीए परिवड्ढमाणाइं परिवड्ढमाणाइं लोयंतं फुसंति।

जाइ अभिण्णाइं णिसिरइ,

ताइं असंखेज्जाओ ओगाहणवग्गणाओ गंता भेयमावज्जंति,

संखेज्जाइं जोयणाइं गंता विद्धंसमागच्छंति। –पण्ण. प. ११, सु. ८८०

१९. भिन्न-अभिन्न भाषा द्रव्यों के ग्रहण निःसरण का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! जीव भाषा के रूप में गृहीत जिन द्रव्यों को निकालता है तो

क्या भिन्नों को निकालता है या अभिन्नों को निकालता है?

उ. गौतम ! कोई जीव भिन्नों को निकालता है, कोई जीव अभिन्नों को भी निकालता है।

जो जीव भिन्नों को निकालता है,

वह भिन्न द्रव्य अनन्तगुणवृद्धि को प्राप्त होते हुए लोकान्त को स्पर्श करता है,

जो जीव अभिन्नों को निकालता है,

वह अभिन्न द्रव्य असंख्यात अवगाहनवर्गणा तक जाकर भेद को प्राप्त हो जाता है।

फिर संख्यात योजनों तक आगे जाकर वह विध्वंस को प्राप्त हो जाता है।

२०. भासा दव्वाणं भेयण पगारा–

प. तेसि णं भंते ! दव्वाणं कइविहे भेए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे भेए पण्णत्ते, तं जहा–

१. खंडाभेए, २. पतराभेए, ३. चुण्णियाभेए,

४. अणुतडियाभेए, ५. उक्करियाभेए।

प. १. से किं तं खंडाभेए ?

उ. खंडाभेए जण्णं अयखंडाण वा, तउखंडाण वा, तंबखंडाण वा, सीसगखंडाण वा, रययखंडाण वा, जायरूवखंडाण वा, खंडएण भेए भवइ, से त्तं खंडाभेए।

प. २. से किं तं पतराभेए ?

उ. पतराभेए जण्णं वंसाण वा, वेत्ताण वा, णलाण वा, कदलिथंभाण वा, अब्भपडलाण वा, पतरएणं भेए भवइ, से त्तं पतराभेए।

प. ३. से किं तं चुण्णियाभेए ?

२०. भाषा द्रव्यों के भेदन के प्रकार–

प्र. भन्ते ! उन भाषा द्रव्यों के भेद कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. गौतम ! भेद पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. खण्डभेद, २. प्रतरभेद, ३. चूर्णिकाभेद,

४. अनुतटिकाभेद, ५. उत्कटिका भेद,

प्र. १. वह खण्डभेद क्या है?

उ. खंडभेद वह है, जो लोहे के खण्डों का, रांगे के खण्डों का, ताम्बे के खण्डों का, शीशे के खण्डों का, चांदी के खण्डों का, अथवा सोने के खण्डों का, खण्ड से भेद करने पर होता है। यह खण्डभेद का स्वरूप है।

प्र. ३. वह प्रतरभेद क्या है?

उ. प्रतरभेद वह है, जो बांसों का, बेंतों, का, नलों का, केले के स्तम्भों का, अभ्रक के पटलों का प्रतर से भेद करने पर होता है। यह प्रतरभेद का स्वरूप है।

प्र. ३. वह चूर्णिका भेद क्या है?

उ. चुण्णियाभेए जण्णं तिलचुण्णाण वा, मुग्गचुण्णाण वा, मासचुण्णाण वा, पिप्पलिचुण्णाण वा, मिरियचुण्णाण वा, सिंगवेरचुण्णाण वा, चुण्णियाए भेए भवइ, से त्तं चुण्णियाभेए।

प. ४. से किं तं अणुतडियाभेए ?

उ. अणुतडियाभेए जण्णं अगडाण वा, तलागाण वा, दहाण वा, णदीण वा, वावीण वा, पुक्खरिणीण वा, दीहियाण वा, गुंजालियाण वा, सराण वा, सरपंतियाण वा, सरसरपंतियाण वा, अणुतडियाए भेए भवइ, से त्तं अणुतडियाभेए।

प. ५. से किं तं उक्करियाभेए ?

उ. उक्करियाभेए जण्णं मूसगाण वा, मगूसाण वा, तिलसिंगाण वा, मुग्गसिंगाण वा, माससिंगाण वा, एरंडबीयाण वा, फुडित्ता उक्करियाए भेए भवइ, से त्तं उक्करियाभेए। —पण्ण. प. ११, सु. ८८१-८८६

उ. चूर्णिका भेद वह है, जो तिल के चूर्णों का, मूंग के चूर्णों का, उड़द के चूर्णों का, पिप्पली के चूर्णों का, काली मिर्च के चूर्णों का, सौंठ के चूर्णों का चूर्णिका से भेद करने पर होता है। यह चूर्णिका भेद का स्वरूप है।

प्र. ४. वह अनुतटिका भेद क्या है ?

उ. अनुतटिकाभेद वह है, जो कूपों के, तालाबों के, ह्रदों के, नदियों के, बावड़ियों के, पुष्करिणियों के, दीर्घिकाओं के, गुंजालिकाओं के, सरोवरों के, पंक्तिबद्ध सरोवरों के और परस्पर पंक्तिबद्ध सरोवरों के अनुतटिकारूप में भेद होता है। यह अनुतटिका भेद का स्वरूप है।

प्र. ५. वह उत्कटिकाभेद क्या है ?

उ. उत्कटिकाभेद वह है मसूर के, मंगूसों (मूंगफली) के, तिल की फलियों के, मूंग की फलियों के, उड़द की फलियों के अथवा एरण्ड के बीजों के फटने या फाड़ने से जो भेद होता है, वह उत्कटिकाभेद है। यह उत्कटिका भेद का स्वरूप है।

२१. भिज्जमाणाणं भासा दव्वाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! दव्वाणं खंडाभेएणं पतराभेएणं चुण्णियाभेएणं अणुतडियाभेएणं उक्करियाभेएण य भिज्जमाणाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवाइं दव्वाइं उक्करियाभेएणं भिज्जमाणाइं,
२. अणुतडियाभेएणं भिज्जमाणाइं अणंतगुणाइं,
३. चुण्णियाभेएणं भिज्जमाणाइं अणुंतगुणाइं,
४. पतराभेएणं भिज्जमाणाइं अणंतगुणाइं,
५. खंडाभेएणं भिज्जमाणाइं अणंतगुणाइं।
—पण्ण. प. ११, सु. ८८७

२१. भिद्यमान भाषा द्रव्यों का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! खण्डभेद से, प्रतरभेद से, चूर्णिकाभेद से, अनुतटिकाभेद से और उत्कटिकाभेद से भिदने वाले इन भाषा द्रव्यों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प उत्कटिकाभेद से भिन्न भाषाद्रव्य हैं।
२. (उनसे) अनुतटिकाभेद से भिन्न भाषा द्रव्य अनन्तगुणे हैं,
३. (उनसे) चूर्णिकाभेद से भिन्न भाषा द्रव्य अनन्तगुणे हैं,
४. (उनसे) प्रतरभेद से भिन्न भाषा द्रव्य अनन्तगुणे हैं,
५. (उनसे) खण्डभेद से भिन्न भाषा द्रव्य अनन्तगुणे हैं।

२२. भासाणिव्वत्तीभेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! भासानिव्वत्ती पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चउव्विहा भासानिव्वत्ती पण्णत्ता, तं जहा–
१. सच्चभासानिव्वत्ती,
२. मोसभासानिव्वत्ती,
३. सच्चामोसभासानिव्वत्ती,
४. असच्चामोसभासानिव्वत्ती,
एवं एगिंदियवज्जं जस्स जा भासा जाव वेमाणियाणं।
—[illegible]

२२. भाषानिर्वृत्ति के भेद और चौबीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! भाषानिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! भाषानिर्वृत्ति चार प्रकार की कही गई है, यथा–
१. सत्यभाषानिर्वृत्ति,
२. मृषाभाषानिर्वृत्ति,
३. सत्यमृषाभाषानिर्वृत्ति,
४. असत्यामृषाभाषानिर्वृत्ति।
इस प्रकार एकेन्द्रियों को छोड़कर वैमानिकों पर्यन्त जिसके जो भाषा है, उसके उतनी भाषानिर्वृत्ति कहनी चाहिए।

२३. [illegible]

[illegible]

२३. [illegible]

[illegible]

(एगिंदियवज्जं) नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं जस्स जा अत्थि तं तस्स सव्वं भणियव्वं।

–विया. स. १९, उ. ९, सु. ८

(एकेन्द्रियों को छोड़कर) नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त जिसके जितने करण हों वे सब कहने चाहिए।

२४. जीव-चउवीसदंडएसु भासगाभासगत्त परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं भासगा, अभासगा ?

उ. गोयमा ! जीवा भासगा वि, अभासगा वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-

"जीवा भासगा वि, अभासगा वि ?"

उ. गोयमा ! जीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. संसारसमावण्णगा य, २. असंसारसमावण्णगा य।

१. तत्थ णं जे ते असंसारसमावण्णगा ते णं सिद्धा, सिद्धा णं अभासगा।

२. तत्थ णं जे ते संसारसमावण्णगा ते णं दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सेलेसिपडिवण्णगा य, २. असेलेसिपडिवण्णगा य।

१. तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवण्णगा ते णं अभासगा।

२. तत्थ णं जे ते असेलेसिपडिवण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. एगिंदिया य, २. अणेगिंदिया य।

१. तत्थ णं जे ते एगिंदिया ते णं अभासगा।

२. तत्थ णं जे ते अणेगिंदिया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तगा य, २. अपज्जत्तगा य।

१. तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं अभासगा।

२. तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते णं भासगा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-

"जीवा भासगा वि, अभासगा वि।"

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं भासगा, अभासगा ?

उ. गोयमा ! नेरइया भासगा वि, अभासगा वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"नेरइया भासगा वि, अभासगा वि ?"

उ. गोयमा ! नेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तगा य, २. अपज्जत्तगा य।

१. तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं अभासगा,

२. तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते णं भासगा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-

"नेरइया भासगा वि, अभासगा वि।"

एवं एगिंदियवज्जाणं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं भाणियव्वं[1]।

–पण्ण. प. ११, सु. ८६७-८६९

२४. जीव-चौवीसदंडको में भाषक-अभाषकत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! जीव भाषक हैं या अभाषक हैं ?

उ. गौतम ! जीव भाषक भी हैं और अभाषक भी हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि-

"जीव भाषक भी हैं और अभाषक भी हैं ?"

उ. गौतम ! जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. संसारसमापन्नक, २. असंसारसमापन्नक।

१. उनमें जो असंसारसमापन्नक जीव हैं वे सिद्ध हैं और सिद्ध अभाषक होते हैं,

२. उनमें जो संसारसमापन्नक जीव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. शैलेशीप्रतिपन्नक, २. अशैलेशीप्रतिपन्नक।

१. उनमें जो शैलेशीप्रतिपन्नक हैं वे अभाषक हैं।

२. उनमें जो अशैलेशीप्रतिपन्नक हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. एकेन्द्रिय, २. अनेकेन्द्रिय।

१. उनमें से जो एकेन्द्रिय हैं वे अभाषक हैं।

२. उनमें से जो अनेकेन्द्रिय हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

१. उनमें से जो अपर्याप्तक हैं वे अभाषक हैं।

२. उनमें से जो पर्याप्तक हैं वे भाषक हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जीव भाषक भी हैं और अभाषक भी हैं।"

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक भाषक हैं या अभाषक हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक भाषक भी हैं और अभाषक भी हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि–

"नैरयिक भाषक भी हैं और अभाषक भी हैं ?"

उ. गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पर्याप्तक, २. अपर्याप्तक।

१. इनमें जो अपर्याप्तक हैं वे अभाषक हैं,

२. इनमें जो पर्याप्तक हैं वे भाषक हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

नैरयिक भाषक भी हैं और अभाषक भी हैं।

इसी प्रकार एकेन्द्रियों को छोड़कर निरन्तर वैमानिकों पर्यन्त-जान लेना चाहिए।

[1] ठाणं. अ. २, उ. २, सु. ६९/१०

२५. भासगाभासगाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. भासए णं भन्ते ! भासए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

प. अभासए णं भन्ते ! अभासए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! अभासए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अणाईए वा अपज्जवसिए,

२. अणाईए वा सपज्जवसिए,

३. साईए वा सपज्जवसिए।

तत्थ णं जे से साईए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो[1]।

–पण्ण. प. १८, सु. १३७४-७५

२५. भापक-अभापकों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! भापक जीव भापक रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय तक, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

प्र. भन्ते ! अभापक जीव अभापक रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! अभापक तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अनादि-अपर्यवसित,

२. अनादि-सपर्यवसित,

३. सादि-सपर्यवसित।

उनमें से जो सादि-सपर्यवसित हैं, वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल पर्यन्त रहते हैं।

२६. भासगाभासगाणं अंतरकाल परूवणं–

प. भासगस्स णं भन्ते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

अभासगस्स साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं,

साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। *–जीवा. पडि. ९, सु. २३५*

२६. भापकों-अभापकों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! भापक का कितने काल का अन्तर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

सादि-अपर्यवसित अभापक का अन्तर नहीं है,

सादि-सपर्यवसित अभापक का अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

२७. भासगाभासगाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं सच्चभासगाणं, मोसभासगाणं, सच्चामोसभासगाणं, असच्चामोसभासगाणं, अभासगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा सच्चभासगा,

२. सच्चामोसभासगा असंखेज्जगुणा,

३. मोसभासगा असंखेज्जगुणा,

४. असच्चामोसभासगा असंखेज्जगुणा,

५. अभासगा अणंतगुणा[2]। *–पण्ण. प. ११, सु. ९००*

२७. भापक अभापकों का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! इन सत्यभापक, मृपाभापक, सत्यामृपाभापक और असत्यामृपाभापक तथा अभापक जीवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेपाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प जीव सत्यभापक हैं,

२. (उनसे) सत्यामृपाभापक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) मृपाभापक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) असत्यामृपाभापक असंख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) अभापक जीव अनन्तगुणे हैं।

२८. देवाणं भासणसत्ति–

प. देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे [illegible] [illegible] पभू भासा– [illegible] ?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. [illegible]

उ. [illegible]

[illegible]

२८. देवों की भाषण शक्ति–

प्र. भन्ते ! महर्द्धिक यावत् [illegible]

[illegible]

उ. [illegible]

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

२९. [illegible]

प. [illegible]

[illegible]

प्र. [illegible]

[illegible]

[illegible]

२५. भासगाभासगाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. भासए णं भन्ते ! भासए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

प. अभासए णं भन्ते ! अभासए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! अभासए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अणाईए वा अपज्जवसिए,

२. अणाईए वा सपज्जवसिए,

३. साईए वा सपज्जवसिए।

तत्थ णं जे से साईए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो[१]।

–पण्ण. प. १८, सु. १३७४-७५

२५. भाषक-अभाषकों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! भाषक जीव भाषक रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय तक, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

प्र. भन्ते ! अभाषक जीव अभाषक रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! अभाषक तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अनादि-अपर्यवसित,

२. अनादि-सपर्यवसित,

३. सादि-सपर्यवसित।

उनमें से जो सादि-सपर्यवसित हैं, वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल पर्यन्त रहते हैं।

२६. भासगाभासगाणं अंतरकाल परूवणं–

प. भासगस्स णं भन्ते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

अभासगस्स साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं,

साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। *–जीवा. पडि. ९, सु. २३५*

२६. भाषकों-अभाषकों के अंतरकाल का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! भाषक का कितने काल का अन्तर होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।

सादि-अपर्यवसित अभाषक का अन्तर नहीं है,

सादि-सपर्यवसित अभाषक का अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

२७. भासगाभासगाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं सच्चभासगाणं, मोसभासगाणं, सच्चामोसभासगाणं, असच्चामोसभासगाणं, अभासगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा सच्चभासगा,

२. सच्चामोसभासगा असंखेज्जगुणा,

३. मोसभासगा असंखेज्जगुणा,

४. असच्चामोसभासगा असंखेज्जगुणा,

५. अभासगा अणंतगुणा[२]। *–पण्ण. प. ११, सु. ९००*

२७. भाषक अभाषकों का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! इन सत्यभाषक, मृषाभाषक, सत्यामृषाभाषक और असत्यामृषाभाषक तथा अभाषक जीवों में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प जीव सत्यभाषक हैं,

२. (उनसे) सत्यामृषाभाषक असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) मृषाभाषक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) असत्यामृषाभाषक असंख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) अभाषक जीव अनन्तगुणे हैं।

२८. देवाणं भासणसत्ति–

प. देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे रूवसहस्सं विउव्वित्ता पभू भासा– सहस्सं भासित्तए ?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. सा णं भंते ! किं एगा भासा, भासासहस्सं ?

उ. गोयमा ! एगा णं सा भासा, णो खलु तं भासासहस्सं।

–विया, स. १४, उ. ९, सु. १२

२८. देवों की भाषण शक्ति–

प्र. भन्ते ! महर्द्धिक यावत् महासुखी देव क्या हजार रूपों की विकुर्वणा करके हजार भाषाएँ बोलने में समर्थ है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह समर्थ है।

प्र. भन्ते ! वह एक भाषा है या हजार भाषाएँ हैं ?

उ. गौतम ! वह एक भाषा है, हजार भाषाएँ नहीं हैं।

२९. देवाणं विसिट्ठा भासा–

प. देवाणं भंते ! कतराए भासाए भासंति ?

कतरा वा भासा भासिज्जमाणी विसिस्सइ ?

२९. देवों की विशिष्ट भाषा–

प्र. भन्ते ! देव कौन-सी भाषा बोलते हैं ?

तथा बोली जाती हुई कौन-सी भाषा विशिष्ट रूप होती है ?

---

१. जीवा. पडि. ९, सु. २३५

२. (क) पण्ण. प. ३, सु. २६४ (ख) सव्वत्थोवा भासगा, अभासगा अणंतगुणा। *–जीवा. पडि ९, सु. २३५* (ग) विया. स. २. उ. ६, सु. १

योग अध्ययन : आमुख

योग का सामान्य अर्थ है मन, वचन और काया की प्रवृत्ति का जीव के साथ जुड़ना। मन, वचन एवं काया के कारण जीव के प्रदेशों में जो स्पन्दन या हलचल होती है उसे भी योग कहा गया है। जीव तेरहवें गुणस्थान तक योगयुक्त रहता है। चौदहवें गुणस्थान में पहुँचने पर वह अयोगी हो जाता है। सिद्ध भी इस दृष्टि से अयोगी हैं।

योगदर्शन में योग शब्द का भिन्न अर्थ में प्रयोग हुआ है। वहां पर चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है, यथा– 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।' भगवद्गीता में कर्म के कौशल को योग कहा गया है–योगः कर्मसु कौशलम्। योग एक प्रकार से समाधि के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। योगदर्शन में वर्णित अष्टांग योग के अन्तर्गत 'समाधि' योग का आठवां अंग है।

जैनदर्शन में प्रयुक्त योग शब्द समाधि के लिए नहीं है। वह तो यहां संसार की ओर ले जाने वाले कर्मबंध के हेतुओं में गिना जाता है। प्रकृतिबंध एवं प्रदेशबंध में योग को निमित्त माना गया है। स्थितिबंध एवं अनुभाग बंध में कषाय निमित्त होता है।

वह योग मुख्यतः तीन प्रकार का है–१. मनोयोग, २. वचनयोग, ३. काययोग। मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर उन्हें मन रूप में परिणत करना तथा चिन्तन-मनन करना मनोयोग है। भाषावर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर वस्तु स्वरूप का कथन करना, बोलना वचनयोग है। औदारिक आदि शरीरों से हलन, चलन, संक्रमण आदि क्रियाएं करना काययोग है। इन तीनों योगों के उपभेदों की गणना करने पर योग के पन्द्रह भेद भी होते हैं, उनमें चार भेद मनोयोग के, चार भेद वचनयोग के तथा सात भेद काययोग के गिने जाते हैं। मनोयोग के चार भेद हैं–सत्य मनोयोग, मृषा मनोयोग, सत्यमृषा मनोयोग और असत्यामृषा मनोयोग। वचनयोग के भी सत्य, मृषा, सत्यमृषा एवं असत्यामृषा ये चार भेद हैं। काययोग सात प्रकार का है–१. औदारिकशरीर-काययोग, २. औदारिकमिश्रशरीर काययोग, ३. वैक्रियशरीर काययोग, ४. वैक्रिय-मिश्र शरीर काययोग, ५. आहारक शरीर काययोग, ६. आहारकमिश्र शरीर काययोग और ७. कार्मण शरीर काययोग।

मनोयोग एवं वचनयोग के जो चार-चार भेद बने हैं वे सत्य एवं मृषा के दो मूल भेदों के आधार पर बने हैं। सत्य चार प्रकार का माना गया है– जिसमें कायऋजुता, भाषाऋजुता, भावऋजुता एवं अविसंवादना योग का ग्रहण होता है। इसके विपरीत मृषा के चार प्रकारों में इनकी अनृजुता अर्थात् कुटिलता का ग्रहण होता है।

चार गतियों के जीवों में नैरयिकों, देवों, गर्भजमनुष्यों और गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों में तीनों योग पाए जाते हैं। कोई भी जीव इनमें तीन योगों से रहित नहीं होता। पृथ्वीकाय आदि समस्त एकेन्द्रिय जीव एक मात्र काययोग से युक्त होते हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय जीवों में काययोग और वचनयोग ये दो योग उपलब्ध होते हैं। उनमें मनोयोग नहीं होता। सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में एकेन्द्रिय जीवों की भाँति एक मात्र काययोग होता है।

योग तीन प्रकार के हैं, इसलिए योगनिर्वृत्ति एवं योगकरण भी तीन-तीन प्रकार के हैं। इनमें भी मन, वचन एवं काया के तीन भेदों की ही गणना होती है। जिस जीव में जितने योग पाए जाते हैं, उसमें उतनी योगनिर्वृत्ति एवं उतने ही योगकरण उपलब्ध होते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में मन, वचन एवं काया के विषय में विशेष निरूपण हुआ है। तदनुसार मन आत्मा से भिन्न, रूपी एवं अचित्त है। वह अजीव होकर भी जीवों के होता है, अजीवों के नहीं। मन की व्याख्या भगवतीसूत्र में प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि मनन करते समय ही मन, मन कहलाता है उसके पूर्व एवं पश्चात् नहीं। मन के आगम में सत्य मन, असत्य मन, सत्यमृषा मन और असत्यामृषा मन ये चार भेद निरूपित हैं। इनके अतिरिक्त तन्मन तदन्यमन और नोअमन ये मन के तीन भेद भी मिलते हैं।

वचन के भेदों का निरूपण विविध प्रकार से हुआ है। एकवचन, द्विवचन और बहुवचन के रूप में वचन शब्द संख्या के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, वहाँ उसका भाषा या वाणी अर्थ नहीं है। स्त्रीवचन, पुरुषवचन और नपुंसकवचन के रूप में वचन के जो तीन भेद प्रतिपादित हैं वे स्त्री लिंग आदि के द्वारा प्रयुक्त वचनों के द्योतक हैं। काल के आधार पर भी वचन के तीन भेद हैं–अतीत वचन, प्रत्युत्पन्न वचन और अनागतवचन। इनमें से अतीतवचन भूतकाल से, प्रत्युत्पन्न वचन वर्तमान काल से तथा अनागतवचन भविष्यत्काल से सम्बद्ध है। मन की भाँति वचन के तद्वचन, तदन्यवचन और नोअवचन भेद भी किए जाते हैं।

काया को मन की भांति एकदम अजीव नहीं कहा गया। अनेकान्तिक शैली में उसे जीवरूप भी कहा गया है तथा अजीवरूप भी कहा गया है। काया कथंचित् आत्मा भी है और आत्मा से भिन्न भी है। वह कथंचित् रूपी भी है और अरूपी भी है। वह कथंचित् सचित्त भी है और कथंचित् अचित्त भी है। ऐसा प्रतिपादन करने का कारण संसारी जीवों में कार्मण काया का सदैव बने रहना प्रतीत होता है। काया की उपलब्धि जिस प्रकार जीवों में होती है, उसी प्रकार अजीवों में भी मानी गई है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि में प्रयुक्त काय शब्द काया का ही द्योतक है।

१९. जोगऽज्झयणं

सूत्र

१. विविह-विवक्खया जोगाणं भेया–

प. कइविहे णं भंते ! जोए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तिविहे जोए पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणजोए, २. वइजोए, ३. कायजोए।

–विया. स. १७, उ. १, सु. १७

प. कइविहे णं भंते ! जोए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पण्णरसविहे जोए पण्णत्ते, तं जहा–

१. सच्चमणजोए, २. मोसमणजोए,
३. सच्चामोसमणजोए, ४. असच्चामोसमणजोए,
५. सच्चवइजोए, ६. मोसवइजोए,
७. सच्चामोसवइजोए, ८. असच्चामोसवइजोए,
९. ओरालियसरीरकायजोए,
१०. ओरालियमीसासरीरकायजोए,
११. वेउव्वियसरीरकायजोए,
१२. वेउव्वियमीसासरीरकायजोए,
१३. आहारकसरीरकायजोए,
१४. आहारगमीसासरीरकायजोए,
१५. कम्मासरीरकायजोए। *–विया. स. २५, उ. १, सु. ८*

२. जोगाणं गरुयलहुयत्ताइ परूवणं–

मणजोगो वइजोगो चउत्थपएणं (अगरु-लहुयपएणं),
कायजोगो तईय पएणं (गरुय-लहुयपएणं) नेयव्वं।

–विया. स. १, उ. ९, सु. १३

३. सच्चस्स मोसस्स य उप्पत्तिकारणाणि–

चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते, तं जहा–

१. काउज्जुयया,
२. भासुज्जुयया,
३. भावुज्जुयया,
४. अविसंवायणाजोगे।

चउव्विहे मोसे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कायअणुज्जुयया,
२. भासअणुज्जुयया,
३. भावअणुज्जुयया,
४. विसंवादणाजोगे। *–ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २५४*

४. चउगईसु जोगित्ताजोगित्त परूवणं–

प. णेरइयाणं णं भंते ! मणजोगी, वयजोगी, कायजोगी ?

उ. गोयमा ! तिन्नि वि। *–जीवा. पडि. १, सु. ३२*

१९. योग अध्ययन

सूत्र

१. विविध विवक्षा से योगों के भेद–

प्र. भंते ! योग कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! योग तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मनोयोग, २. वचन योग, ३. काय योग।

प्र. भन्ते ! योग कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! योग पन्द्रह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सत्य-मनोयोग, २. मृषा-मनोयोग,
३. सत्यमृषा-मनोयोग, ४. असत्यामृषा-मनोयोग,
५. सत्य-वचनयोग, ६. मृषा-वचनयोग,
७. सत्यमृषा-वचनयोग, ८. असत्यामृषा-वचनयोग
९. औदारिकशरीर काययोग,
१०. औदारिकमिश्रशरीर-काययोग,
११. वैक्रियशरीर-काययोग,
१२. वैक्रिय-मिश्र-शरीर-काययोग,
१३. आहारकशरीर-काययोग,
१४. आहारकमिश्रशरीर-काययोग,
१५. कार्मण-शरीर-काययोग।

२. योगों के गुरुलघुत्वादि का प्ररूपण–

मनोयोग और वचन योग चतुर्थ पद (अगुरु-लघु) वाले हैं।
काययोग तृतीय पद (गुरु-लघु) वाला है।

३. सत्य और मृषा की उत्पत्ति के कारण–

सत्य चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कायऋजुता–काया की सरलता,
२. भाषाऋजुता–भाषा की सरलता,
३. भावऋजुता–भाव की सरलता,
४. अविसंवादनायोग–यथार्थ प्रवृत्ति,

असत्य चार प्रकार का कहा है, यथा–

१. काया की कुटिलता,
२. भाषा की कुटिलता,
३. भाव की कुटिलता,
४. विसंवादनायोग-अयथार्थ प्रवृत्ति।

४. चार गतियों में योगित्व-अयोगित्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या नैरयिक मनोयोगी हैं, वचनयोगी हैं या काययोगी हैं ?

उ. गौतम ! तीनों योग वाले हैं।

उ. गोयमा ! नो सचित्ते मणे, अचित्ते मणे।

-विया. स. १३, उ. ७, सु. ११ (२)

१३. मणस्स अजीवत्त परूवणं-

प. जीवे भंते ! मणे ? अजीवे मणे ?

उ. गोयमा ! नो जीवे मणे, अजीवे मणे।

-विया. स. १३, उ. ७, सु. ११ (३)

१४. अजीवाणं मणणिसेह परूवणं-

प. जीवाणं भंते ! मणे ? अजीवाणं मणे ?

उ. गोयमा ! जीवाणं मणे, नो अजीवाणं मणे।

-विया. स. १३, उ. ७, सु. ११ (४)

१५. मणोदव्वस्स भेयणकाल परूवणं-

प. पुव्विं भंते ! मणे ?
मणिज्जमाणे मणे ?
मणसमयवीइक्कंते मणे ?

उ. गोयमा ! नो पुव्विं मणे,
मणिज्जमाणे मणे,
नो मणसमयवीइक्कंते मणे।

प. पुव्विं भंते ! मणे ? मणे भिज्जइ,
मणिज्जमाणे मणे भिज्जइ,
मणसमयवीइक्कंते मणे भिज्जइ ?

उ. गोयमा ! नो पुव्विं मणे भिज्जइ,
मणिज्जमाणे मणे भिज्जइ,
नो मणसमयवीइक्कंते मणे भिज्जइ।

उ. गौतम ! मन सचित्त नहीं है किन्तु अचित्त है।

१३. मन के अजीवत्व का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! मन जीव है या अजीव है ?

उ. गौतम ! मन जीव नहीं है किन्तु अजीव है।

१४. अजीवों के मन निषेध का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! मन जीवों के होता है या अजीवों के होता है ?

उ. गौतम ! मन जीवों के होता है, अजीवों के नहीं होता है।

१५. मनोद्रव्य के भेदन का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! मनन से पूर्व मन कहलाता है ?
मनन के समय मन कहलाता है ?
या मनन का समय व्यतीत हो जाने पर मन कहलाता है ?

उ. गौतम ! मनन से पूर्व मन नहीं कहलाता है।
मनन करते समय का मन मन कहलाता है।
मनन का समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् मन नहीं कहलाता है।

प्र. भन्ते ! मनन से पूर्व मन का भेदन होता है ?
मनन करते हुए मन का भेदन होता है ?
या मनन का समय व्यतीत हो जाने पर मन का भेदन होता है ?

उ. गौतम ! मनन से पूर्व मन का भेदन नहीं होता है।
मनन करते समय मन का भेदन होता है।
मनन का समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् मन का भेदन नहीं

१८. पगारान्तरेण वयण तिविहत्तं–

तिविहे वयणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. एगवयणे, २. दुवयणे, ३. बहुवयणे।

अहवा तिविहे वयणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. इत्थिवयणे, २. पुमवयणे, ३. नपुंसगवयणे।

अहवा तिविहे वयणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. तीतवयणे, २. पडुप्पन्नवयणे, ३. अणागयवयणे।

–ठाणं. अ.३ उ. ४, सु. १९८

१८ प्रकारान्तर से वचन के तीन प्रकार–

वचन तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. एकवचन, २. द्विवचन, ३. बहुवचन।

अथवा वचन तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. स्त्रीवचन २. पुरुषवचन ३. नपुंसकवचन।

अथवा वचन तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अतीतवचन, २. प्रत्युत्पन्नवचन, ३. अनागतवचन।

१९. कायस्स भेयसत्तगं–

प. कइविहे णं भंते ! काये पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! सत्तविहे काये पण्णत्ते, तं जहा–

१. ओरालिए, २. ओरालियमीसए, ३. वेउव्विए,
४. वेउव्वियमीसए, ५. आहारए, ६. आहारगमीसए,
७. कम्मए।

–विया. स. १३, उ. ७, सु. २२

१९. काया के सात भेद–

प्र. भन्ते ! काया कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! काया सात प्रकार की कही गई है, यथा–

१. औदारिक, २. औदारिकमिश्र, ३. वैक्रिय,
४. वैक्रियमिश्र, ५. आहारक, ६. आहारकमिश्र,
७. कार्मण।

२०. कायस्स अत्तत्ताणत्तत्त परूवणं–

प. आया भंते ! काये ? अन्ने काये ?

उ. गोयमा ! आया वि काये, अन्ने वि काये।

–विया. स. १३, उ. ७, सु. १५

२०. काया में आत्मत्व-अनात्मत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! काया आत्मा है या अनात्मा है ?

उ. गौतम ! काया आत्मा भी है और आत्मा से भिन्न भी है।

२१. कायस्स रूवित्तारूवित्त परूवणं–

प. रूविं भंते ! काये ? अन्ने काये ?

उ. गोयमा ! रूविं पि काये, अरूविं पि काये।

–विया. स. १३, उ. ७, सु. १६

२१. काया में रूपित्व-अरूपित्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! काया रूपी है या अरूपी है ?

उ. गौतम ! काया रूपी भी है और अरूपी भी है।

२२. कायस्स सचित्ताचित्तत्त परूवणं–

प. सचित्ते भंते ! काये, अचित्ते काये ?

उ. गोयमा ! सचित्ते वि काये, अचित्ते वि काये।

–विया. स. १३, उ. ७, सु. १७

२२. काया में सचित्तत्व-अचित्तत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! काया सचित्त है या अचित्त है ?

उ. गौतम ! काया सचित्त भी है और अचित्त भी है।

२३. कायस्स जीवत्ताजीवत्तरूव परूवणं–

प. जीवे भंते ! काये ? अजीवे काये ?

उ. गोयमा ! जीवे वि काये, अजीवे वि काये।

प. जीवाणं भंते ! काये ? अजीवाणं काये।

उ. गोयमा ! जीवाण वि काये, अजीवाण वि काये।

–विया. स. १३, उ. ७, सु. १८-१९

२३. काया में जीवत्व-अजीवत्व रूप का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! काया जीव रूप है या अजीव रूप है ?

उ. गौतम ! काया जीव रूप भी है और अजीव रूप भी है।

प्र. भन्ते ! काया जीवों के होती है या अजीवों के होती है ?

उ. गौतम ! काया जीवों के भी होती है और अजीवों के भी होती है।

२४. जीवकायसंबंधाइ परूवणं–

प. पुव्विं भंते ! काये ?
कायिज्जमाणेकाये ?
कायसमयवीइक्कंते काये ?

उ. गोयमा ! पुव्विं पि काये,
कायिज्जमाणे वि काये,
कायसमयवीइक्कंते वि काये।

२४. जीव से काया के सम्बन्धादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या (जीव का सम्बन्ध होने से) पूर्व काया होती है ?
कायिक पुद्गलों का ग्रहण करते समय काया होती है ?
या काया समय (कायिक पुद्गलों के ग्रहण का समय) बीत जाने पर काया होती है ?

उ. गौतम ! (जीव का सम्बन्ध होने से) पूर्व भी काया होती है,
कायिक पुद्गलों के ग्रहण करते समय भी काया होती है,
काया समय (कायिक पुद्गलों के ग्रहण का समय) बीत जाने पर भी काया होती है।

प. पुव्विं भंते ! काये भिज्जइ ?
कायिज्जमाणे काये भिज्जइ ?
कायसमयवीइक्कंते काये भिज्जइ ?

उ. गोयमा ! पुव्विं पि काये भिज्जइ,
कायिज्जमाणे वि काये भिज्जइ,
कायसमयवीइक्कंते वि काये भिज्जइ।

–विया. स. १३, उ. ७, सु. २०-२१

प्र. भन्ते ! क्या पूर्व काया का भेदन होता है ?
काया रूप से पुद्गलों का ग्रहण करते समय काया का भेदन होता है ?
या काया का समय बीत जाने पर काया का भेदन होता है ?

उ. गौतम ! पूर्व भी काया का भेदन होता है,
कायिक पुद्गलों का ग्रहण करते समय भी काया का भेदन होता है,
काया का समय बीत जाने पर भी काया का भेदन होता है।

२५. देवाईणं तंसि-तंसि समयंसि एगा जोगपवत्ति–

एगे मणे, एगा वई, एगे कायवायामे। *–ठाण अ. १, सु. १३*

एगे मणे देवाऽसुर-मणुयाणं तंसि-तंसि समयंसि।

एगा वई देवाऽसुर-मणुयाणं तंसि-तंसि समयंसि।

एगे कायवायामे देवाऽसुर-मणुयाणं तंसि-तंसि समयंसि।

–ठाणं अ. १, सु. ३१-३३

२५. देव आदिकों की उस-उस समय में एक योग प्रवृत्ति–

मन एक है, वचन एक है, काय व्यापार एक है।

देवों, असुरों और मनुष्यों का उस-उस चिन्तनकाल में एक मन होता है।

देवों, असुरों और मनुष्यों का उस-उस वचन प्रयोग के समय एक वचन होता है।

देवों असुरों और मनुष्यों का उस-उस काय व्यापार के समय एक काय-व्यापार होता है।

२६. जोगं पडुच्च कायट्ठिई परूवणं–

प. सजोगी णं भंते ! सजोगि त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सजोगी दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अणाइए वा अपज्जवसिए,
२. अणाईए वा सपज्जवसिए।

२६. योग की अपेक्षा काय स्थिति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! सयोगी जीव कितने काल तक सयोगी अवस्था में रहता है ?

उ. गौतम ! सयोगी जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अनादि अपर्यवसित,
२. अनादि सपर्यवसित।

कायजोगिस्स जहण्णेणं अंतरं एक्कं समयं,
उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं,
अजोगिस्स नत्थि अंतरं। —*जीवा. पडि. ९, सु. २४४*

काययोगी का जघन्य अन्तर एक समय का
उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त का है।
अयोगी का अन्तर नहीं है।

२८. जोगवेक्खया अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं सजोगीणं, मणजोगीणं, वइ जोगीणं, कायजोगीणं, अजोगीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा मणजोगी,
२. वइजोगी असंखेज्जगुणा,
३. अजोगी अणंतगुणा,
४. कायजोगी अणंतगुणा,
५. सजोगी विसेसाहिया[1]। —*पण्ण. प. ३, सु. २५२*

२८. योग की अपेक्षा अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! सयोगी, मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी जीवों में से कौन किनसे अल्प **यावत्** विशेषाधिक **हैं ?**

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प जीव मनोयोग वाले हैं।
२. (उनसे) वचनयोग वाले जीव असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) अयोगी अनन्तगुणे हैं,
४. (उनसे) काययोगी अनन्तगुणे हैं,
५. (उनसे) सयोगी विशेषाधिक हैं।

२९. पण्णरसविह जोगाणं अप्प-बहुत्तं–

प. एयस्स णं भंते ! पण्णरसविहस्स जहण्णुक्कोसगस्स जोगस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवे कम्मासरीरस्स जहण्णए जोए,
२. ओरालियमीसगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे,
३. वेउव्वियमीसगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे,
४. ओरालियसरीरस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे,
५. वेउव्वियसरीरस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे,
६. कम्मासरीरस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे।[2]
७. आहारगमीसगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे,
८. आहारगमीसगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे,
९-१०. ओरालियमीसगस्स वेउव्वियमीसगस्स य– एएसि णं उक्कोसए जोए दोण्ह वि तुल्ले असंखेज्जगुणे,
११. असच्चामोसमणजोगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे,
१२. आहारगसरीरस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे,
१३-१९. तिविहस्स मणजोगस्स चउव्विहस्स वइजोगस्स– एएसि णं सत्तण्ह वि तुल्ले जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे,

२९. पन्द्रह प्रकार के योगों का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! इन पन्द्रह प्रकार के योगों में कौन-सा योग किस योग से, जघन्य और उत्कृष्ट की अपेक्षा से अल्प **यावत्** विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. कार्मण शरीर का जघन्य काययोग सबसे अल्प है,
२. (उससे) औदारिकमिश्र का जघन्य योग असंख्यातगुणा है,
३. (उससे) वैक्रियमिश्र का जघन्य योग असंख्यातगुणा है।
४. (उससे) औदारिक शरीर का जघन्य योग असंख्यातगुणा है।
५. (उससे) वैक्रियशरीर का जघन्य योग असंख्यातगुणा है।
६. (उससे) कार्मणशरीर का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है।
७. (उससे) आहारकमिश्र का जघन्य योग असंख्यातगुणा है,
८. (उससे) आहारकमिश्र का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है,
९.१०. (उससे) औदारिकमिश्र और वैक्रियमिश्र इन दोनों का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है और दोनों परस्पर तुल्य हैं,
११. (उससे) असत्यामृषामनोयोग का जघन्य योग असंख्यातगुणा है,
१२. (उससे) आहारकशरीर का जघन्य योग असंख्यातगुणा है,
१३-१९. (उससे) तीनों प्रकार का मनोयोग, चार प्रकार का वचयोग, इन सातों का जघन्य योग परस्पर तुल्य और असंख्यातगुणा है,

---

१. जीवा. पडि. ९ सु. २४४
२. जीवा. पडि. ९ सु. २४४

२०. आहारगसरीरस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे,

२१-३०. ओरालियसरीरस्स, वेउव्वियसरीरस्स, चउव्विहस्स य मणजोगस्स, चउव्विहस्स य वइजोगस्स–

एएसि णं दसण्ह वि तुल्ले उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे। –विया. स. २५, उ. १, सु. ९

२०. (उससे) आहारकशरीर का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है,

२१-३०. (उससे) औदारिक शरीर, वैक्रियशरीर, चार प्रकार का मनोयोग, चार प्रकार का वचन योग,

इन दस का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है और परस्पर तुल्य है।

३०. पणिहाणस्स भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! पणिहाणे पन्नत्ते ?

उ. गोयमा ! तिविहे पणिहाणे पन्नत्ते, तं जहा–

१. मणपणिहाणे, २. वइ पणिहाणे, ३. कायपणिहाणे।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! कइविहे पणिहाणे पन्नत्ते ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. दं. १२. पुढविकाइयाणं भंते ! कइविहे पणिहाणे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एगे कायपणिहाणे पन्नत्ते।

दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।

प. दं. १७. बेइंदियाणं भंते ! कइविहे पणिहाणे पण्णत्ते ?

३०. प्रणिधान के भेद और चौबीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! प्रणिधान कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! प्रणिधान तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मनःप्रणिधान, २. वचन प्रणिधान ३. काय प्रणिधान।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों के कितने प्रकार का प्रणिधान कहा गया है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् (तीनों प्रणिधान) है,

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीवों के कितने प्रकार का प्रणिधान कहा गया है ?

उ. गौतम ! एकमात्र काय प्रणिधान होता है।

दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १७. भन्ते ! द्वीन्द्रिय जीवों के कितने प्रकार का प्रणिधान कहा गया है ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

–विया. स. १८ उ. ७, सु. २०-२२

उ. गौतम ! पूर्ववत् (तीनों प्रकार का सुप्रणिधान) होता है।

३२. पंचेंदियजीवेसु चउव्विह पणिहाणाणं परूवणं–

चउव्विहे पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणपणिहाणे, २. वइपणिहाणे,

३. कायपणिहाणे, ४. उवगरणपणिहाणे।

एवं णेरइयाणं पंचेंदियाणं जाव वेमाणियाणं।

चउव्विहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मण सुप्पणिहाणे जाव ४. उवगरण सुप्पणिहाणे।

एवं संजयमणुस्साण वि।

चउव्विहे दुप्पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणदुप्पणिहाणे जाव २. उवगरणदुप्पणिहाणे।

एवं णेरइयाणं पंचेंदियाणं जाव वेमाणियाणं।

–ठाणं. अ. ४. उ. १, सु. २५५

३२. पंचेंद्रिय जीवों में चतुर्विध प्रणिधानों का प्ररूपण–

प्रणिधान चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. मनप्रणिधान, २. वचनप्रणिधान,

३. कायप्रणिधान, ४. उपकरणप्रणिधान,

इसी प्रकार नारकों आदि से वैमानिकों पर्यन्त सभी पंचेंद्रियों में चारों ही प्रणिधान होते हैं।

सुप्रणिधान चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. मनःसुप्रणिधान यावत् २. उपकरणसुप्रणिधान।

इसी प्रकार संयत मनुष्यों के चारों सुप्रणिधान होते हैं।

दुष्प्रणिधान चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. मनदुष्प्रणिधान यावत् २. उपकरणदुष्प्रणिधान।

इसी प्रकार नारकों आदि से वैमानिकों पर्यन्त सभी पंचेन्द्रियों में चारों ही दुष्प्रणिधान होते हैं।

३३. चउवीसदंडएसु गुत्ती-अगुत्तीभेयाणं परूवणं–

तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. मणगुत्ती २. वइगुत्ती ३. कायगुत्ती,

संजयमणुस्साणं तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. मणगुत्ती २. वइगुत्ती ३. कायगुत्ती,

तओ अगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

मणअगुत्ती, २. वइअगुत्ती, ३. कायअगुत्ती।

एवं णेरइयाणं जाव थणियकुमाराणं पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं असंजयमणुस्साणं वाणमंतराणं जोइसियाणं वेमाणियाणं।

–ठाणं अ. ३, उ. १, सु. १३४(३)

३३. चौबीस दण्डकों में गुप्ति-अगुप्ति के भेदों का प्ररूपण–

गुप्ति तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. मन गुप्ति, २. वचन गुप्ति, ३. काय गुप्ति,

संयत मनुष्यों के तीन गुप्तियाँ कही गई हैं, यथा–

१. मन गुप्ति २. वचन गुप्ति, ३. काय गुप्ति,

अगुप्ति तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. मन अगुप्ति, २. वचनअगुप्ति, ३. कायअगुप्ति।

इसी प्रकार नैरयिकों से स्तनितकुमारों पर्यन्त तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों, असंयत मनुष्यों, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी तथा वैमानिक देवों में तीनों ही अगुप्तियाँ पाई जाती हैं।

३४. चउवीसदंडएसु दंडाणं परूवणं–

तओ दंडा पण्णत्ता, तं जहा–

१. मणदंडे, २. वइदंडे, ३. कायदंडे।

णेरइयाणं तओ दंडा पण्णत्ता, तं जहा–

१. मणदंडे, २. वइदंडे, ३. कायदंडे,

एवं विगलिंदियवज्जाणं जाव वेमाणियाणं।

–ठाणं. अ. ३, उ. १ सु. १३४/४-५



३४. चौबीस दण्डकों में दंडों की प्ररूपणा–

दण्ड तीन प्रकार के गए हैं, यथा–

१. मनोदंड, २. वचनदंड, ३. कायदंड।

नैरयिकों में तीन दण्ड कहे गए हैं, यथा–

१. मनोदण्ड, २. वचनदण्ड ३. कायदण्ड।

इसी प्रकार विकलेन्द्रियों को छोड़कर वैमानिकों पर्यन्त तीनों ही दण्ड होते हैं।



प्रयोग अध्ययन : आमुख

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयोग एवं गतिप्रपात इन दो विषयों का वर्णन हुआ है। योग एवं प्रयोग में थोड़ा ही अन्तर है। मन, वचन एवं काया की प्रवृत्ति को जहां योग कहा जाता है वहां योग के साथ जीव के व्यापार का जुड़ जाना प्रयोग कहलाता है। प्रयोगवध, प्रयोगकरण आदि पद जब आगम में प्रयुक्त होते हैं तो ये जीव के व्यापार की प्रधानता को ही अभिव्यक्त करते हैं। विशेषावश्यक भाष्य में जिनभद्रगणि ने प्रयोगकरण को स्पष्ट करते हुए कहा है–'होइ उ एसो जीवव्वावारो तेण जं विणिम्माणं पओगकरणं तयं बहुहो।' इससे स्पष्ट है कि प्रयोग में जीव के व्यापार की प्रधानता होती है। दूसरी ओर योग में मन, वचन एवं काया के व्यापार की प्रधानता होती है।

दिगम्बर आगम षट्खण्डागम की धवला टीका में 'पओएण जोगपच्चओ परूविदो' पंक्ति के द्वारा स्पष्ट किया है कि प्रयोग के द्वारा योग का भी कथन कर दिया गया है, अर्थात् प्रयोग में योग समाहित है। योग एवं प्रयोग के पन्द्रह भेद समान हैं किन्तु आगमों में योग एवं प्रयोग का भिन्न अर्थ में प्रयोग हुआ है। इसका प्रमाण है–'जहा जोगे विगलिंदियवज्जाणं तहा पओगे वि' पंक्ति। स्थानांग सूत्र अ. ३ उ. १ में प्रयुक्त यह पंक्ति योग एवं प्रयोग दोनों शब्दों का एक साथ प्रयोग करके दोनों के अर्थ की पृथकता को बतलाती है।

योग की भांति प्रयोग के भी तीन एवं पन्द्रह भेद होते हैं। तीन भेद हैं–१. मनः प्रयोग, २. वचन प्रयोग और ३. कायप्रयोग। पन्द्रह भेद हैं–१. सत्य मन प्रयोग, २. मृषा मनः प्रयोग, ३. सत्यमृषा मनःप्रयोग, ४. असत्यामृषा मनः प्रयोग, ५. सत्यवचन प्रयोग, ६. मृषा वचन प्रयोग, ७. सत्यमृषा वचन प्रयोग, ८. असत्यामृषा वचन प्रयोग, ९. औदारिकशरीरकाय प्रयोग, १०. औदारिक मिश्र शरीरकाय प्रयोग, ११. वैक्रिय शरीर काय प्रयोग, १२. वैक्रिय मिश्र शरीरकाय प्रयोग, १३. आहारक शरीरकाय प्रयोग, १४. आहारकमिश्र शरीरकाय प्रयोग और १५. कार्मणशरीरकाय प्रयोग।

नैरयिकों में ग्यारह प्रकार के प्रयोग पाये जाते हैं–चार मन के, चार वचन के तथा वैक्रिय, वैक्रियमिश्र एवं कार्मणशरीरकाय प्रयोग। देवों में भी ये ही ग्यारह प्रयोग उपलब्ध होते हैं। पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों में (वायुकायिक को छोड़कर) तीन प्रकार के प्रयोग होते हैं और वे तीनों काययोग से सम्बद्ध हैं, यथा–औदारिक शरीरकाय प्रयोग, औदारिक मिश्र शरीरकाय प्रयोग और कार्मणशरीरकाय प्रयोग। वायुकायिक जीवों में वैक्रिय एवं वैक्रियमिश्र शरीरकाय प्रयोग भेद बढ़ जाते हैं। द्वीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक के जीवों में सामान्य एकेन्द्रिय (पृथ्वीकाय आदि) से एक वचन प्रयोग अधिक होने से चार प्रयोग पाए जाते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में नैरयिकों से दो प्रयोग अधिक होने के साथ तेरह प्रयोग पाए जाते हैं। इनमें दो प्रयोग औदारिकशरीरकाय प्रयोग एवं औदारिकमिश्र शरीरकाय प्रयोग अधिक होते हैं। मनुष्यों में सम्पूर्ण पन्द्रह प्रयोग कहे गए हैं। ये आहारक एवं आहारकमिश्रशरीरकाय प्रयोग से भी युक्त हो सकते हैं। चौबीस दण्डकों में प्रयोग की यह उपलब्धि योग की भांति ही होती है उसमें कुछ भेद नहीं है।

२०. पओगऽज्झयणं

सूत्र

१. पओगभेयपरूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! पओगे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पण्णरसविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सच्चमणप्पओगे,
२. मोसमणप्पओगे,
३. सच्चामोसमणप्पओगे,
४. असच्चामोसमणप्पओगे,
५. सच्चवइप्पओगे,
६. मोसवइप्पओगे,
७. सच्चामोसवइप्पओगे,
८. असच्चामोसवइप्पओगे,
९. ओरालियसरीरकायप्पओगे,
१०. ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगे,
११. वेउव्वियसरीरकायप्पओगे,
१२. वेउव्वियमीसगसरीरकायप्पओगे,
१३. आहारगसरीरकायप्पओगे,
१४. आहारगमीसगसरीरकायप्पओगे,
१५. कम्मगसरीरकायप्पओगे।[1] –पण्ण. प. १६, सु. १०६८

२. जीव-चउवीसदंडएसु पओग परूवणं–

तिविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणपओगे, २, वइपओगे, ३. कायप्पओगे।

जहा जोगे विगलिंदियवज्जाणं तहा पओगे वि।

–ठाणं. अ. ३, उ. १ सु. १३२/२

प. जीवाणं भंते ! कइविहे पओगे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पण्णरसविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सच्चमणप्पओगे जाव १५. कम्मगसरीरकायप्पओगे।

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! कइविहे पओगे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एक्कारसविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सच्चमणप्पओगे जाव
२-८. असच्चामोसवइप्पओगे,
९. वेउव्वियसरीरकायप्पओगे,
१०. वेउव्वियमीसगसरीरकायप्पओगे,
११. कम्मगसरीरकायप्पओगे।

दं. २-११. एवं असुरकुमाराण वि जाव थणियकुमाराणं।

२०. प्रयोग अध्ययन

सूत्र

१. प्रयोग के भेदों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! प्रयोग कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! प्रयोग पन्द्रह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सत्यमनःप्रयोग,
२. असत्य (मृषा) मनःप्रयोग,
३. सत्यमृषा (मिश्र) मनःप्रयोग,
४. असत्यामृषामनःप्रयोग,
५. सत्यवचन प्रयोग,
६. मृषावचन प्रयोग,
७. सत्यमृषावचन प्रयोग,
८. असत्यामृषावचनप्रयोग,
९. औदारिकशरीरकायप्रयोग,
१०. औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोग,
११. वैक्रियशरीरकायप्रयोग,
१२. वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोग,
१३. आहारकशरीरकायप्रयोग,
१४. आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोग,
१५. कार्मण शरीरकायप्रयोग।

२. जीव-चौवीसदंडकों में प्रयोगों का प्ररूपण–

प्रयोग तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मनःप्रयोग, २. वचनप्रयोग, ३. कायप्रयोग।

जैसे विकलेन्द्रियों को छोड़कर (तीन) योग का कथन किया गया है वैसे ही (नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त) (तीन) प्रयोग का कथन करना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जीवों के प्रयोग कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जीवों के प्रयोग पन्द्रह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सत्यमनःप्रयोग यावत् १५. कार्मणसरीरकायप्रयोग।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों के प्रयोग कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके प्रयोग ग्यारह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सत्यमनःप्रयोग यावत्
२-८. असत्यामृषावचनप्रयोग,
९. वैक्रियसरीरकायप्रयोग,
१०. वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोग,
११. कार्मणशरीरकायप्रयोग।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

---

१. सम. सम. १५, सु. १

प्रयोग अध्ययन : आमुख

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयोग एवं गतिप्रपात इन दो विषयों का वर्णन हुआ है। योग एवं प्रयोग में थोड़ा ही अन्तर है। मन, वचन एवं काया की प्रवृत्ति को जहां योग कहा जाता है वहां योग के साथ जीव के व्यापार का जुड़ जाना प्रयोग कहलाता है। प्रयोगवध, प्रयोगकरण आदि पद जव आगम में प्रयुक्त होते हैं तो वे जीव के व्यापार की प्रधानता को ही अभिव्यक्त करते हैं। विशेषावश्यक भाष्य में जिनभद्रगणि ने प्रयोगकरण को स्पष्ट करते हुए कहा है– 'होइ उ एगो जीवव्वावारो तेण जं विणिम्माणं पओगकरणं तयं बहुहो।' इससे स्पष्ट है कि प्रयोग में जीव के व्यापार की प्रधानता होती है। दूसरी ओर योग में मन, वचन एवं काया के व्यापार की प्रधानता होती है।

दिगम्बर आगम षट्खण्डागम की धवला टीका में 'पओएण जोगपच्चओ परूविदो' पंक्ति के द्वारा स्पष्ट किया है कि प्रयोग के द्वारा योग का भी कथन कर दिया गया है, अर्थात् प्रयोग में योग समाहित है। योग एवं प्रयोग के पन्द्रह भेद समान हैं किन्तु आगमों में योग एवं प्रयोग का भिन्न अर्थ में प्रयोग हुआ है। इसका प्रमाण है–'जहा जोगे विगलिंदियवज्जाणं तहा पओगे वि' पंक्ति। स्थानांग सूत्र अ. ३ उ. १ में प्रयुक्त यह पंक्ति योग एवं प्रयोग दोनों शब्दों का एक साथ प्रयोग करके दोनों के अर्थ की पृथकता को बतलाती है।

योग की भांति प्रयोग के भी तीन एवं पन्द्रह भेद होते हैं। तीन भेद हैं–१. मनः प्रयोग, २. वचन प्रयोग और ३. कायप्रयोग। पन्द्रह भेद हैं–१. सत्य मनः प्रयोग, २. मृषा-मनः प्रयोग, ३. सत्यमृषा मनःप्रयोग, ४. असत्यामृषा मनः प्रयोग, ५. सत्यवचन प्रयोग, ६. मृषा वचन प्रयोग, ७. सत्यमृषा वचन प्रयोग, ८. असत्यामृषा वचन प्रयोग, ९. औदारिकशरीरकाय प्रयोग, १०. औदारिक मिश्र शरीरकाय प्रयोग, ११. वैक्रिय शरीर काय प्रयोग, १२. वैक्रिय-मिश्र शरीरकाय प्रयोग, १३. आहारक शरीरकाय प्रयोग, १४. आहारकमिश्र शरीरकाय प्रयोग और १५. कार्मणशरीरकाय प्रयोग।

नैरयिकों में ग्यारह प्रकार के प्रयोग पाये जाते हैं–चार मन के, चार वचन के तथा वैक्रिय, वैक्रियमिश्र एवं कार्मणशरीरकाय प्रयोग। देवों में भी ये ही ग्यारह प्रयोग उपलब्ध होते हैं। पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों में (वायुकायिक को छोड़कर) तीन प्रकार के प्रयोग होते हैं और वे तीनों कायप्रयोग से सम्बद्ध हैं, यथा–औदारिक शरीरकाय प्रयोग, औदारिक मिश्र शरीरकाय प्रयोग और कार्मणशरीरकाय प्रयोग। वायुकायिक जीवों में वैक्रिय एवं वैक्रियमिश्र शरीरकाय प्रयोग भेद बढ़ जाते हैं। द्वीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक के जीवों में सामान्य एकेन्द्रिय (पृथ्वीकाय आदि) से असत्यामृषावचन प्रयोग अधिक होने से चार प्रयोग पाए जाते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में नैरयिकों से दो प्रयोग अधिक होने के साथ तेरह प्रयोग पाए जाते हैं। उनमें दो प्रयोग औदारिकशरीरकाय प्रयोग एवं औदारिकमिश्र शरीरकाय प्रयोग अधिक होते हैं। मनुष्यों में सम्पूर्ण पन्द्रह प्रयोग कहे गए हैं। वे आहारक एवं आहारकमिश्रशरीरकाय प्रयोग से भी युक्त हो सकते हैं। चौबीस दण्डकों में प्रयोग की यह उपलब्धि योग की भांति ही होती है उसमें कोई भेद नहीं है।

प्रयोगों की प्ररूपणा चौबीस दण्डकों में विभिन्न विभागों के आधार पर भी की गई है जिसमें असंयोगी, द्विकसंयोगी आदि अनेक भंग बने हैं। मनुष्य में प्रयोग प्ररूपणा करते समय असंयोगी के ८, द्विकसंयोगी के २४, त्रिकसंयोगी के ३२ और चतुःसंयोगी के १६ इस प्रकार कुल ८० भंग बने हैं। सूक्ष्म बोध के लिए इन भंगों का निरूपण उपयोगी है।

इस प्रयोग अध्ययन में गतिप्रपात का समावेश इसलिए किया गया है, क्योंकि प्रयोग भी एक गति है। गतिप्रपात के अन्तर्गत पाँच प्रकार की गतियों का निरूपण है। वे पाँच गतियां हैं–१. प्रयोग गति, २. ततगति, ३. बन्धछेदनगति, ४. उपपातगति और ५. विहायोगति। इन पाँच प्रकार की गतियों में प्रयोगगति प्रथम स्थान पर है। प्रयोग रूप गति को प्रयोग गति कहते हैं। इसके सत्यमन आदि वे ही पन्द्रह भेद होते हैं। जिसने किसी ग्राम यावत् सन्निवेश के लिए प्रस्थान तो कर दिया है किन्तु अभी पहुँचा नहीं है, बीच मार्ग में है तो इस गति को तत गति कहते हैं। बन्धन छेदन गति वह है जिसके द्वारा जीव शरीर से अथवा शरीर जीव से पृथक् होता है। उपपात गति का सम्बन्ध उत्पन्न होने या प्रकट होने से है। यह उपपातगति तीन प्रकार की होती है–क्षेत्र, भव और नोभव। क्षेत्रोपपात गति पुनः पांच प्रकार की होती है–नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और सिद्धक्षेत्रोपपात गति। इनके भी फिर भेदोपभेद हैं। सिद्धक्षेत्रोपपातगति का इस अध्ययन में विस्तृत प्रतिपादन हुआ है।

भवोपपातगति नैरयिक एवं देव के भेद से दो प्रकार की होती है तथा नोभवोपपातगति पुद्गल एवं सिद्ध के भेद से दो प्रकार की निरूपित है।

पुद्गल-नोभवोपपातगति के स्वरूप के सम्बन्ध में कहा गया है कि जब कोई पुद्गल परमाणु लोक के पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त तक, पश्चिमी चरमान्त से पूर्वी चरमान्त तक, दक्षिणी चरमान्त से उत्तरी चरमान्त तक, उत्तरी चरमान्त से दक्षिणी चरमान्त तक, ऊपरी चरमान्त से निचले चरमान्त तक तथा निचले चरमान्त से ऊपरी चरमान्त तक सबमें एक-एक समय से गति करता है तो उसे पुद्गल नोभवोपपातगति कहते हैं।

सिद्धों के भेदों के अनुसार सिद्धनोभवोपपातगति दो प्रकार की होती है–१. अनन्तर सिद्धों से सम्बद्ध तथा २. परम्पर सिद्धों से सम्बद्ध। अनन्तर सिद्धों के अन्तर्गत तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध आदि पन्द्रह भेदों की गणना होती है तथा परम्परसिद्धों में अप्रथमसमयसिद्ध से लेकर अनन्तसमयसिद्धों की गणना होती है।

विहायोगति का अर्थ है–आकाश में होने वाली गति। यह गति १७ प्रकार की निरूपित है, जिसमें स्पृशद्गति, अस्पृशद्गति, उपसम्पद्यमानगति आदि भेदों की गणना होती है। गति का यह वर्णन वैज्ञानिकों के लिए शोध का विषय है। विशेषतः अस्पृशद् गति का वर्णन आश्चर्यजनक है। परमाणु पुद्गलों से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्धों को परस्पर स्पर्श किए विना होने वाली गति को अस्पृशद् गति कहा जाता है। क्या कोई परमाणु अन्य परमाणुओं को स्पर्श किए विना सम्पूर्ण लोक में गति कर सकता है, यह शोध का विषय है। स्पृशद् गति के उदाहरण तो आधुनिक विज्ञान में मिल जायेंगे, यथा– रेडियो, दूरदर्शन आदि की तरंगें स्पृशद्गति वाली हैं।

२०. पओगऽज्झयणं

सूत्र

१. पओगभेयपरूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! पओगे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पण्णरसविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सच्चमणप्पओगे,
२. मोसमणप्पओगे,
३. सच्चामोसमणप्पओगे,
४. असच्चामोसमणप्पओगे,
५. सच्चवइप्पओगे,
६. मोसवइप्पओगे,
७. सच्चामोसवइप्पओगे,
८. असच्चामोसवइप्पओगे,
९. ओरालियसरीरकायप्पओगे,
१०. ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगे,
११. वेउव्वियसरीरकायप्पओगे,
१२. वेउव्वियमीसगसरीरकायप्पओगे,
१३. आहारगसरीरकायप्पओगे,
१४. आहारगमीसगसरीरकायप्पओगे,
१५. कम्मगसरीरकायप्पओगे।[1] –पण्ण. प. १६, सु. १०६८

२. जीव-चउवीसदंडएसु पओग परूवणं–

तिविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मणपओगे, २. वइपओगे, ३. कायप्पओगे।

जहा जोगे विगलिंदियवज्जाणं तहा पओगे वि।

–ठाणं. अ. ३, उ. १ सु. १३२/२

प. जीवाणं भंते ! कइविहे पओगे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पण्णरसविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सच्चमणप्पओगे जाव १५. कम्मगसरीरकायप्पओगे।

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! कइविहे पओगे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एक्कारसविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सच्चमणप्पओगे जाव
२-८. असच्चामोसवइप्पओगे,
९. वेउव्वियसरीरकायप्पओगे,
१०. वेउव्वियमीसगसरीरकायप्पओगे,
११. कम्मगसरीरकायप्पओगे।

दं. २-११. एवं असुरकुमाराण वि जाव थणियकुमाराणं।

२०. प्रयोग अध्ययन

सूत्र

१. प्रयोग के भेदों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! प्रयोग कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! प्रयोग पन्द्रह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सत्यमनःप्रयोग,
२. असत्य (मृषा) मनःप्रयोग,
३. सत्यमृषा (मिश्र) मनःप्रयोग,
४. असत्यामृषामनःप्रयोग,
५. सत्यवचन प्रयोग,
६. मृषावचन प्रयोग,
७. सत्यमृषावचन प्रयोग,
८. असत्यामृषावचनप्रयोग,
९. औदारिकशरीरकायप्रयोग,
१०. औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोग,
११. वैक्रियशरीरकायप्रयोग,
१२. वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोग,
१३. आहारकशरीरकायप्रयोग,
१४. आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोग,
१५. कार्मण शरीरकायप्रयोग।

२. जीव-चौवीसदंडकों में प्रयोगों का प्ररूपण–

प्रयोग तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मनःप्रयोग, २. वचनप्रयोग, ३. कायप्रयोग।

जैसे विकलेन्द्रियों को छोड़कर (तीन) योग का कथन किया गया है वैसे ही (नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त) (तीन) प्रयोग का कथन करना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जीवों के प्रयोग कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जीवों के प्रयोग पन्द्रह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सत्यमनःप्रयोग यावत् १५. कार्मणसरीरकायप्रयोग।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों के प्रयोग कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके प्रयोग ग्यारह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सत्यमनःप्रयोग यावत्
२-८. असत्यामृषावचनप्रयोग,
९. वैक्रियशरीरकायप्रयोग,
१०. वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोग,
११. कार्मणशरीरकायप्रयोग।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

---

१. सम. सम. १५, सु. १

प. दं. १२. पुढविक्काइयाणं भंते ! कइविहे पओगे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तिविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा–
१. ओरालियसरीरकायप्पओगे,
२. ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगे,
३. कम्मगसरीरकायप्पओगे।
दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।

णवरं– वाउक्काइयाणं पंचविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा–
१. ओरालियसरीरकायप्पओगे,
२. ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगे,
३-४. वेउव्विए दुविहे,
५. कम्मगसरीरकायप्पओगे य।

प. दं. १७. बेइंदियाणं भंते ! कइविहे पओगे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउव्विहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा–
१. असच्चामोसवइप्पओगे,
२. ओरालियसरीरकायप्पओगे,
३. ओरालियमीसगसरीरंकायप्पओगे,
४. कम्मगसरीरकायप्पओगे,
दं. १८-१९. एवं जाव चउरिंदियाणं।

प. दं. २०. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! कइविहे पओगे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तेरसविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सच्चमणप्पओगे,
२. मोसमणप्पओगे,
३. सच्चामोसमणप्पओगे,
४. असच्चामोसमणप्पओगे,
५-८. एवं वइप्पओगे वि,
९. ओरालियसरीरकायप्पओगे,
१०. ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगे,
११. वेउव्वियसरीरकायप्पओगे,
१२. वेउव्वियमीसगसरीरकायप्पओगे,
१३. कम्मगसरीरकायप्पओगे।[1]

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों के प्रयोग कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके प्रयोग तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. औदारिकशरीरकायप्रयोग,
२. औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोग,
३. कार्मणसरीरकायप्रयोग।
दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त समझना चाहिए।

विशेष–वायुकायिकों के प्रयोग पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. औदारिकशरीरकायप्रयोग,
२. औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोग,
३-४. वैक्रियशरीरकायप्रयोग और वैक्रियमिश्रशरीरकाय-प्रयोग,
५. कार्मणशरीरकायप्रयोग।

प्र. दं. १७. भन्ते ! द्वीन्द्रिय जीवों के प्रयोग कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके प्रयोग चार प्रकार के कहे गए हैं– यथा–
१. असत्यामृषावचनप्रयोग,
२. औदारिकशरीरकायप्रयोग,
३. औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोग,
४. कार्मणशरीरकायप्रयोग।
दं. १८-१९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों पर्यन्त प्रयोग समझना चाहिए।

प्र. दं. २०. भन्ते ! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों के प्रयोग कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके प्रयोग तेरह प्रकार के कहे गए हैं– यथा–
१. सत्यमनःप्रयोग,
२. मृषामनःप्रयोग,
३. सत्यमृषामनःप्रयोग,
४. असत्यामृषामनःप्रयोग,
५-८. इसी प्रकार चारों वचन प्रयोग भी समझना चाहिए,
९. औदारिकशरीरकायप्रयोग,
१०. औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोग,
११. वैक्रियशरीरकायप्रयोग,
१२. वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोग,
१३. कार्मणशरीरकायप्रयोग।

---

१. गब्भवक्कंतिअ पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं तेरसविहेपओगे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सच्चमणप्पओगे,
२. मोसमणप्पओगे,
३. सच्चामोसमणप्पओगे,
४. असच्चामोसमणप्पओगे,
५. सच्चवइणओगे,
६. मोसवइप्पओगे,
७. सच्चामोसवइप्पोगे,
८. असच्चामोसवइप्पओगे,
९. ओरालियसरीरकायप्पओगे,
१०. ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगे,
११. वेउव्वियसरीरकायप्पओगे,
१२. वेउव्वियमीसगसरीरकायप्पओगे,
१३. कम्मगसरीरकायप्पओगे।
–सम. सम. १३, सु. ७

प. दं. २१. मणूसाणं भंते ! कइविहे पओगे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पण्णरसविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सच्चमणप्पओगे जाव १५. कम्मगसरीरकायप्पोगे।[1]

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा णेरइयाणं। –पण्ण. प. १६, सु. १०७०, १०७६

३. जीव-चउवीसदंडएसु पओग भंगाणं परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं सच्चमणप्पओगी जाव किं कम्मगसरीरकायप्पओगी ?

उ. गोयमा ! जीवा सव्वे वि ताव होज्जा सच्चमणप्पओगी वि जाव वेउव्वियमीसगसरीरकायप्पओगी वि कम्मगसरीरकायप्पओगी वि।

१. अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य,

२. अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य,

३. अहवेगे य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य,

४. अहवेगे य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, चउभंगो,

५. अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य,

६. अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य,

७. अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य,

८. अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पोगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य,

एए जीवाणं अट्ठ भंगा।

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! किं सच्चमणप्पओगी जाव किं कम्मगसरीरकायप्पओगी ?

उ. गोयमा ! णेरइया सव्वे वि ताव होज्जा सच्चमणप्पओगी वि जाव असच्चामोसवइप्पओगी, वेउव्वियमीसगसरीरकायप्पओगी वि, तं जहा–

१. अहवेगे य कम्मगसरीरकायप्पओगी य,

२. अहवेगे य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य,

दं. २-११. एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा वि।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! किं ओरालियसरीरकायप्पओगी ओरालियमीसग सरीरकायप्पओगी कम्मगसरीरकायप्पओगी ?

उ. गोयमा ! पुढविकाइया णं ओरालियसरीरकायप्पओगी वि, ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी वि, कम्मगसरीरकायप्पओगी वि।

प्र. दं. २१. भन्ते ! मनुष्यों के प्रयोग कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके प्रयोग पन्द्रह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सत्यमनःप्रयोग यावत् १५. कार्मणशरीरकाय प्रयोग।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के प्रयोग नैरयिकों के समान समझना चाहिए।

३. जीव-चौबीसदंडकों में प्रयोग भंगों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! जीव सत्यमनःप्रयोगी होते हैं यावत् कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं ?

उ. गौतम ! जीव सभी सत्यमनःप्रयोगी भी होते हैं यावत् वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगी भी एवं कार्मणशरीरकायप्रयोगी भी होते हैं।

१. अथवा एक आहारकशरीरकायप्रयोगी होता है,

२. अथवा बहुत से आहारकशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

३. अथवा एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होता है,

४. अथवा बहुत से आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होते हैं, ये चार भंग हुए।

५. अथवा एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी,

६. अथवा एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और बहुत से आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी,

७. अथवा बहुत से आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी,

८. अथवा बहुत से आहारकशरीरकायप्रयोगी और बहुत से आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होते हैं।

ये समुच्चय जीवों के आठ भंग हुए।

प्र. दं. १. भन्ते ! क्या नैरयिक सत्यमनःप्रयोगी होते हैं यावत् कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिक सभी सत्यमनःप्रयोगी भी होते हैं यावत् असत्यामृषा वचनप्रयोगी भी होते हैं, वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगी भी होते हैं, यथा–

१. अथवा कोई एक (नैरयिक) कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

२. अथवा बहुत से (नैरयिक) कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं।

दं. २-११. इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव क्या औदारिकशरीरकायप्रयोगी हैं, औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी हैं या कार्मणशरीरकायप्रयोगी हैं ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव औदारिकशरीरकायप्रयोगी हैं, औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी हैं और कार्मणशरीरकायप्रयोगी भी हैं।

१. [illegible] ५५, सु. ३

दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।

णवरं-वाउक्काइया वेउव्वियसरीरकायप्पओगी वि, वेउव्वियमीसगसरीरकायप्पओगी वि।

प. दं. १७. बेइंदिया णं भंते ! किं ओरालियसरीर-कायप्पओगी जाव कम्मगसरीरकायप्पओगी?

उ. गोयमा ! बेइंदिया सव्वे वि ताव होज्जा, असच्चामोसवइप्पओगी वि, ओरालियसरीरकायप्पओगी वि, ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी वि।

१. अहवेगे य कम्मगसरीरकायप्पओगी य,
२. अहवेगे य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य।

दं. १८-१९. एवं तेइंदिया चउरिंदिया वि।

दं. २०. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया जहा णेरइया।

णवरं-ओरालियसरीरकायप्पओगी वि, , ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी वि ।

१. अहवेगे य कम्मगसरीरकायप्पओगी य,
२. अहवेगे य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य।

प. दं. २१. मणूसा णं भंते ! किं सच्चमणप्पओगी जाव किं कम्मगसरीरकायप्पओगी?

उ. गोयमा ! मणूसा सव्वे वि ताव होज्जा, सच्चमणप्पओगी वि जाव ओरालियसरीरकायप्पओगी वि, वेउव्वियसरीर-कायप्पओगी वि, वेउव्वियमीसगसरीरकायप्पओगी वि।

१. (१) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य,
२. (२) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्प ओगिणो य,
३. (३) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य,
४. (४) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य,
५. (५) अहवेगे य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य,
६. (६) अहवेगे य आहारगमीसगसरीरकायप्प-ओगिणो य,
७. (७) अहवेगे य कम्मगसरीरकायप्पओगी य,
८. (८) अहवेगे य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य,

एए अट्ठ भंगा पत्तेयं।

९. (१) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगी य,

१०. (२) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य,

दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यंत जानना चाहिए।

विशेष-वायुकायिक वैक्रियशरीरकायप्रयोगी भी हैं और वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगी भी है।

प्र. दं. १७. भन्ते ! द्वीन्द्रिय जीव क्या औदारिकशरीरकायप्रयोगी हैं यावत् कार्मणशरीरकायप्रयोगी हैं?

उ. गौतम ! सभी द्वीन्द्रिय जीव असत्यामृषावचनप्रयोगी भी होते हैं, औदारिकशरीरकायप्रयोगी भी होते हैं, औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी भी होते हैं।

१. अथवा कोई एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,
२. अथवा बहुत से (द्वीन्द्रिय जीव) कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं।

दं. १८-१९. इसी प्रकार त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रियों का कथन करना चाहिए।

दं. २०. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों का कथन नैरयिकों के समान है।

विशेष-यह औदारिकशरीरकायप्रयोगी भी होता है तथा औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी भी होता है।

१. अथवा कोई एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी भी होता है,
२. अथवा बहुत से कार्मणशरीरकायप्रयोगी भी होते हैं।

प्र. दं. २१. भन्ते ! सभी मनुष्य क्या सत्यमनःप्रयोगी यावत् कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं?

उ. गौतम ! सभी मनुष्य सत्यमनःप्रयोगी यावत् औदारिक शरीरकायप्रयोगी भी होते हैं, वैक्रियशरीरकायप्रयोगी भी होते हैं और वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगी भी होते हैं।

१. अथवा कोई एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होता है,
२. अथवा अनेक (मनुष्य) औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होते हैं,
३. अथवा कोई एक आहारकशरीरकायप्रयोगी होता है,
४. अथवा अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी होते हैं,
५. अथवा कोई एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होता है,
६. अथवा अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होते हैं,
७. अथवा कोई एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,
८. अथवा अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं।

इस प्रकार एक-एक के संयोग से अर्थात् असंयोगी ये आठ भंग होते हैं।

९. (१) अथवा कोई एक (मनुष्य) औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी और एक आहारकशरीरकायप्रयोगी होता है,

१०. (२) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होता है और अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

११. (३) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगी य,

१२. (४) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य,

एए चत्तारि भंगा।

१३. (१) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य,

१४. (२) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य,

१५. (३) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य,

१६. (४) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य,

एए चत्तारि भंगा।

१७. (१) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगी य,

१८. (२) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य,

१९. (३) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगी य,

२०. (४) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य,

एए चत्तारि भंगा।

२१. (१) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य,

२२. (२) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य,

२३. (३) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य,

२४. (४) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य,

एए चत्तारि भंगा।

२५. (१) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगी य,

२६. (२) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य,

२७. (३) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगी य,

२८. (४) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य,

एए चत्तारि भंगा।

२९. (१) अहवेगे य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगी य,

११. (३) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक आहारकशरीरकायप्रयोगी होता है,

१२. (४) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

इस प्रकार ये चार भंग हैं।

१३. (१) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होता है,

१४. (२) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

१५. (३) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक आहारकशरीरकायप्रयोगी होता है,

१६. (४) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

इस प्रकार ये चार भंग हैं।

१७. (१) अथवा कोई एक (मनुष्य) औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

१८. (२) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

१९. (३) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

२०. (४) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

इस प्रकार ये चार भंग हैं।

२१. (१) अथवा एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होता है,

२२. (२) अथवा एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

२३. (३) अथवा अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होता है,

२४. (४) अथवा अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

इस प्रकार ये चार भंग हैं।

२५. (१) अथवा एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

२६. (२) अथवा एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

२७. (३) अथवा अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

२८. (४) अथवा अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

इस प्रकार ये चार भंग हैं।

२९. (१) अथवा एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

३०. (२) अहवेगे य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य,

३१. (३) अहवेगे य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगी य,

३२. (४) अहवेगे य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य,

एए चत्तारि भंगा एवं चउवीसं भंगा।

३३. (१) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीर- कायप्पओगी य,

३४. (२) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसग-सरीरकायप्पओगिणो य,

३५. (३) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसग- सरीरकायप्पओगी य,

३६. (४) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसग- सरीरकायप्पओगिणो य,

३७. (५) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर- कायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य,

३८. (६) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर- कायप्पओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसग सरीरकायप्पओगिणो य,

३९. (७) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर कायप्प- ओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य,

४०. (८) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्प- ओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य,

एए अट्ठ भंगा।

४१. (१) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीर- कायप्पओगी य,

४२. (२) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीर- कायप्पओगिणो य,

४३. (३) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीर- कायप्पओगी य,

४४. (४) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीर- कायप्पओगिणो य,

३०. (२) अथवा एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

३१. (३) अथवा अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

३२. (४) अथवा अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

इस प्रकार ये चार भंग हैं। इस प्रकार ये २४ भंग (द्विकसंयोगी) हुए।

३३. (१) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीर- कायप्रयोगी होता है,

३४. (२) अथवा एक औदारिक मिश्रशरीरकायप्रयोगी एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीर- कायप्रयोगी होते हैं,

३५. (३) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीर- कायप्रयोगी होता है,

३६. (४) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीर- कायप्रयोगी होते हैं,

३७. (५) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक आहारकमिश्रशरीर- कायप्रयोगी होता है,

३८. (६) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीर- कायप्रयोगी होते हैं,

३९. (७) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक आहार- कमिश्रशरीरकायप्रयोगी होता है,

४०. (८) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकाय- प्रयोगी अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी और अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

इस प्रकार ये आठ भंग हैं।

४१. (१) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

४२. (२) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय- प्रयोगी होते हैं,

४३. (३) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

४४. (४) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं,

४५. (५) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्प-ओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगी य,

४६. (६) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्प-ओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य,

४७. (७) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्प-ओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मग-सरीरकायप्पओगी य,

४८. (८) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्प-ओगिणो य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य,

एए अट्ठ भंगा।

४९. (१) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीर-कायप्पओगी य,

५०. (२) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीर-कायप्पओगिणो य,

५१. (३) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीर-कायप्पओगी य,

५२. (४) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगगसरीर-कायप्पओगिणो य,

५३. (५) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्प-ओगिणो य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगी य,

५४. (६) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्प-ओगिणो य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य,

५५. (७) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्प-ओगिणो य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगी य,

५६. (८) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्प-ओगिणो य आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य,

एए अट्ठ भंगा।

५७. (१) अहवेगे य [illegible] य, [illegible] य [illegible] [illegible] य,

५८. (२) अहवेगे य [illegible] य, [illegible] य [illegible] [illegible] य,

४५. (५) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीर-कायप्रयोगी होता है,

४६. (६) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी एक आहारकशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकाय-प्रयोगी होते हैं,

४७. (७) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मण-शरीरकायप्रयोगी होता है,

४८. (८) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मण-शरीरकायप्रयोगी होते हैं,

ये आठ भंग हैं।

४९. (१) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मण-शरीरकायप्रयोगी होता है,

५०. (२) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मण-शरीरकायप्रयोगी होते हैं,

५१. (३) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मण-शरीरकायप्रयोगी होता है,

५२. (४) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मण-शरीरकायप्रयोगी होते हैं,

५३. (५) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

५४. (६) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मण-शरीरकायप्रयोगी होते हैं,

५५. (७) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मण-शरीरकायप्रयोगी होता है,

५६. (८) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मण-शरीरकायप्रयोगी होते हैं।

ये आठ भंग हैं।

५७. (१) अथवा एक [illegible], एक [illegible] और एक [illegible] होता है,

५८. (२) अथवा एक [illegible] एक [illegible] और अनेक [illegible] होते हैं,

५९. (३) **अहवेगे** य आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मग-सरीर- कायप्पओगी य,

६०. (४) **अहवेगे** य आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, कम्मग-सरीर- कायप्पओगिणो य,

६१. (५) **अहवेगे** य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीर-कायप्पओगी य,

६२. (६) **अहवेगे** य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य, कम्मगसरीर-कायप्पओगिणो य,

६३. (७) **अहवेगे** य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मग सरीर- कायप्पओगी य,

६४. (८) **अहवेगे** य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, कम्मग-सरीर- कायप्पओगिणो य।

एवं एए तियसंजोएणं चत्तारि अट्ठ भंगा,
सव्वे वि मिलिया बत्तीसं भंगा जाणियव्वा।

६५. (१) **अहवेगे** य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसग-सरीर-कायप्पओगी य, कम्मगसरीरकायप्पओगी य,

६६. (२) **अहवेगे** य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसग-सरीर-कायप्पओगी य, कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य,

६७. (३) **अहवेगे** य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसग-सरीर-कायप्पओगिणो य, कम्मगसरीरकायप्पओगी य,

६८. (४) **अहवेगे** य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसग-सरीर-कायप्पओगिणो य, कम्मगसरीर-कायप्पओगिणो य,

६९. (५) **अहवेगे** य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहार-गमीसगसरीरकायप्पओगी य, कम्मगसरीर-कायप्पओगी य,

७०. (६) **अहवेगे** य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहार-गमीसग-सरीरकायप्पओगी य, कम्मगसरीर-कायप्पओगिणो य,

५९. (३) **अथवा** एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीर-कायप्रयोगी होता है,

६०. (४) **अथवा** एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मण-शरीरकायप्रयोगी होते हैं,

६१. (५) **अथवा** अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीर-कायप्रयोगी होता है,

६२. (६) **अथवा** अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीर- कायप्रयोगी होते हैं,

६३. (७) **अथवा** अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीर-कायप्रयोगी होता है,

६४. (८) **अथवा** अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मण-शरीर- कायप्रयोगी होते हैं,

इस प्रकार त्रिकसंयोग से ये चार आठ-आठ भंग होते हैं।
ये सब मिलकर कुल बत्तीस भंग जान लेने चाहिए।

६५. (१) **अथवा** एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

६६. (२) **अथवा** एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

६७. (३) **अथवा** एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

६८. (४) **अथवा** एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

६९. (५) **अथवा** एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

७०. (६) **अथवा** एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

७१. (७) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसग-सरीरकायप्पओगिणो य, कम्मगसरीर-कायप्पओगी य,

७२. (८) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, कम्मगसरीर-कायप्पओगिणो य,

७३. (९) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य, कम्मगसरीर-कायप्पओगी य,

७४. (१०) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य, कम्मगसरीर-कायप्पओगिणो य,

७५. (११) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, कम्मग-सरीर-कायप्पओगी य,

७६. (१२) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, कम्मग-सरीर-कायप्पओगिणो य,

७७. (१३) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य, कम्मग-सरीर-कायप्पओगी य,

७८. (१४) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य, कम्मग-सरीर-कायप्पओगिणो य,

७९. (१५) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, कम्मग-सरीर-कायप्पओगी य,

८०. (१६) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, कम्मग-सरीर-कायप्पओगिणो य,

एवं एए चउसंजोएणं सोलस भंगा भवंति।
सव्वे वि य णं संपिंडिया असीति भंगा भवंति।

१. ३३-३४. [illegible]

७१. (७) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी और एक कार्मणशरीर-कायप्रयोगी होता है,

७२. (८) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीर-कायप्रयोगी होते हैं,

७३. (९) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

७४. (१०) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

७५. (११) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

७६. (१२) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

७७. (१३) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

७८. (१४) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

७९. (१५) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारक-मिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीर-कायप्रयोगी होता है,

८०. (१६) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारक-मिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीर-कायप्रयोगी होते हैं,

इस प्रकार चतुःसंयोगी के सोलह भंग होते हैं।
ये सभी (असंयोगी ८, द्विकसंयोगी २४, त्रिकसंयोगी ३२ और चतुःसंयोगी १६ के सब (मिलकर) अस्सी भंग होते हैं।

१. ३३-३४. [illegible]

५९. (३) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मग-सरीर- कायप्पओगी य,

६०. (४) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, कम्मग-सरीर- कायप्पओगिणो य,

६१. (५) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य कम्मगसरीर-कायप्पओगी य,

६२. (६) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य, कम्मगसरीर-कायप्पओगिणो य,

६३. (७) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य कम्मग सरीर- कायप्पओगी य,

६४. (८) अहवेगे य आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, कम्मग-सरीर- कायप्पओगिणो य।

एवं एए तियसंजोएणं चत्तारि अट्ठ भंगा,
सव्वे वि मिलिया बत्तीसं भंगा जाणियव्वा।

६५. (१) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसग-सरीर-कायप्पओगी य, कम्मगसरीरकायप्पओगी य,

६६. (२) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसग-सरीर-कायप्पओगी य, कम्मगसरीरकायप्पओगिणो य,

६७. (३) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसग-सरीर-कायप्पओगिणो य, कम्मगसरीरकायप्पओगी य,

६८. (४) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसग-सरीर-कायप्पओगिणो य, कम्मगसरीर-कायप्पओगिणो य,

६९. (५) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहार-गमीसगसरीरकायप्पओगी य, कम्मगसरीर-कायप्पओगी य,

७०. (६) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहार-गमीसग-सरीरकायप्पओगी य, कम्मगसरीर-कायप्पओगिणो य,

५९. (३) अथवा एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीर-कायप्रयोगी होता है,

६०. (४) अथवा एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मण-शरीरकायप्रयोगी होते हैं,

६१. (५) अथवा अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीर-कायप्रयोगी होता है,

६२. (६) अथवा अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीर- कायप्रयोगी होते हैं,

६३. (७) अथवा अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीर-कायप्रयोगी होता है,

६४. (८) अथवा अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मण-शरीर- कायप्रयोगी होते हैं,

इस प्रकार त्रिकसंयोग से ये चार आठ-आठ भंग होते हैं।
ये सब मिलकर कुल बत्तीस भंग जान लेने चाहिए।

६५. (१) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

६६. (२) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

६७. (३) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

६८. (४) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

६९. (५) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

७०. (६) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

७१. (७) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसग-सरीरकायप्पओगिणो य, कम्मगसरीर-कायप्पओगी य,

७२. (८) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीरकायप्पओगी य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, कम्मगसरीर-कायप्पओगिणो य,

७३. (९) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य, कम्मगसरीर-कायप्पओगी य,

७४. (१०) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य, कम्मगसरीर-कायप्पओगिणो य,

७५. (११) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, कम्मग-सरीर-कायप्पओगी य,

७६. (१२) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगी य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, कम्मग-सरीर-कायप्पओगिणो य,

७७. (१३) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य, कम्मग-सरीर-कायप्पओगी य,

७८. (१४) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगी य, कम्मग-सरीर-कायप्पओगिणो य,

७९. (१५) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, कम्मग-सरीर-कायप्पओगी य,

८०. (१६) अहवेगे य ओरालियमीसगसरीर-कायप्पओगिणो य, आहारगसरीरकायप्पओगिणो य, आहारगमीसगसरीरकायप्पओगिणो य, कम्मग-सरीर-कायप्पओगिणो य,

एवं एए चउसंजोएणं सोलस भंगा भवंति।

सव्वेवि य णं सपिंडिया असीतिं भंगा भवंति।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा। —*पण्ण. प. १६, सु. १०७७-१०८४*

७१. (७) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी और एक कार्मणशरीर-काबप्रयोगी होता है,

७२. (८) अथवा एक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीर-कायप्रयोगी होते हैं,

७३. (९) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

७४. (१०) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

७५. (११) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

७६. (१२) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

७७. (१३) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और एक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होता है,

७८. (१४) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, एक आहारकमिश्र-शरीर-कायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीरकायप्रयोगी होते हैं,

७९. (१५) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और एक कार्मणशरीर-कायप्रयोगी होता है,

८०. (१६) अथवा अनेक औदारिकमिश्रशरीर-कायप्रयोगी, अनेक आहारकशरीरकायप्रयोगी, अनेक आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगी और अनेक कार्मणशरीर-कायप्रयोगी होते हैं,

इस प्रकार चतुःसंयोगी से सोलह भंग होते हैं।

ये सभी (असंयोगी ८, द्विकसंयोगी २४, त्रिकसंयोगी ३२ और चतुःसंयोगी १६ ये सब (मिलकर) अस्सी भंग होते हैं।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के प्रयोग असुरकुमारों के प्रयोग के समान समझना चाहिए।

४. गइपवाय परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! गइप्पवाए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पओगगई, २. ततगई, ३. बंधणच्छेयणगई, ४. उववायगई, ५. विहायगई। –पण्ण. प. १६, सु. १०८५

५. पओगगई भेया जीव-चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. १. से किं तं पओगगई ?

उ. पओगगई पण्णरसविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सच्चमणप्पओगगई जाव १५ कम्मगसरीर-कायप्पओगगई।

एवं जहा पओगो भणिओ तहा एसा वि भाणियव्वा।

उ. जीवाणं भंते ! कइविहा पओगगई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पण्णरसविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सच्चमणप्पओगगई जाव १५. कम्मगसरीर-कायप्पओगगई। –पण्ण. प. १६, सु. १०८६-१०८७

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! कइविहा पओगगई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एक्कारसविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सच्चमणप्पओगगई एवं उवउज्जिऊण जस्स जइविहा तस्स तइविहा भाणियव्वा जाव वेमाणियाणं।

प. जीवा णं भंते ! किं सच्चमणप्पओगगई जाव कम्मगसरीरकायप्पओगगई ?

उ. गोयमा ! जीवा सव्वे वि ताव होज्जा सच्चमणप्पओगगई वि,

एवं तं चेव पुव्ववण्णियं भाणियव्वं,

दं. १-२४ भंगा तहेव जाव वेमाणियाणं।

से तं पओगगई। –पण्ण. प. १६, सु. १०८८-१०८९

६. ततगई सरूवं–

प. २. से किं तं ततगई ?

उ. ततगई जेणं जं गामं जाव सण्णिवेसं वा संपट्ठिए असंपत्ते अंतरापहे वट्टइ।

से तं ततगई। –पण्ण. प. १६, सु. १०९०

७. बंधणच्छेयणगई सरूवं–

प. ३. से किं तं बंधणच्छेयणगई ?

उ. बंधणच्छेयणगई जेणं जीवो वा सरीराओ, सरीरं वा जीवाओ।

से तं बंधणच्छेयणगई। –पण्ण. प. १६, सु. १०९१

४. गतिप्रपात की प्ररूपणा–

प्र. भन्ते ! गतिप्रपात कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! पाँच प्रकार का गया कहा है, यथा–

१. प्रयोगगति, २. ततगति, ३. बन्धनछेदनगति, ४. उपपातगति, ५. विहायोगति।

५. प्रयोगगति के भेद और जीव-चौवीसदंडकों में प्ररूपण–

प्र. १. प्रयोगगति कितने प्रकार की है ?

उ. प्रयोगगति पन्द्रह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. सत्यमनः प्रयोगगति यावत् १५ कार्मणशरीर-कायप्रयोगगति।

जिस प्रकार प्रयोग पन्द्रह प्रकार के कहे गए हैं उसी प्रकार प्रयोग गति भी पन्द्रह प्रकार की कहनी चाहिए।

प्र. भन्ते ! जीवों की प्रयोगगति कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! वह पन्द्रह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. सत्यमनःप्रयोगगति यावत् १५ कार्मणशरीर-कायप्रयोगगति।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों की प्रयोगगति कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! ग्यारह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. सत्यमनःप्रयोगगति आदि इस प्रकार उपयोग करके वैमानिक पर्यन्त जिसकी जितने प्रकार की गति है उसकी उतन प्रकार की गति कहनी चाहिए।

प्र. भन्ते ! जीव क्या सत्यमनःप्रयोगगति वाले हैं यावत् कार्मणशरीरकायप्रयोगगति वाले हैं ?

उ. गौतम ! जीव सभी प्रकार की गति वाले होते हैं सत्यमनःप्रयोगगति वाले भी होते हैं।

इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिए।

दं. १-२४ उसी प्रकार पूर्ववत् (नैरयिकों से) वैमानिकों पर्यंत कहना चाहिए।

यह प्रयोगगति की प्ररूपणा हुई।

६. ततगति का स्वरूप–

प्र. २. ततगति किस प्रकार की है ?

उ. ततगति वह है, जिसके द्वारा जिस ग्राम यावत् सन्निवेश के लिए प्रस्थान किया हुआ व्यक्ति अभी पहुँचा नहीं है बीच मार्ग में ही हैं।

यह ततगति का स्वरूप है।

७. बन्धनछेदनगति का स्वरूप–

प्र. ३. बन्धनछेदनगति क्या है ?

उ. बन्धनछेदनगति वह है, जिसके द्वारा जीव शरीर से बन्धन तोड़कर बाहर निकलता है। अथवा शरीर जीव से पृथक होता है।

यह बन्धनछेदनगति का स्वरूप है।

८. उववायगई भेयप्पभेया–

प. ४. से किं तं उववायगई ?

उ. उववायगई तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. खेत्तोववायगई, २. भवोववायगई,

३. णोभवोववायगई।

प. से किं तं खेत्तोववायगई ?

उ. खेत्तोववायगई पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. णेरइयखेत्तोववायगई,

२. तिरिक्खजोणियखेत्तोववायगई,

३. मणूसखेत्तोववायगई,

४. देवखेत्तोववायगई,

५. सिद्धखेत्तोववायगई।

प. से किं तं णेरइयखेत्तोववायगई ?

उ. णेरइयखेत्तोववायगई सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. रयणप्पहापुढविणेरइयखेत्तोववायगई **जाव**

७. अहेसत्तमापुढविणेरइयखेत्तोववायगई।

से तं णेरइयखेत्तोववायगई।

प. से किं तं तिरिक्खजोणिय खेत्तोववायगई ?

उ. तिरिक्खजोणिय-खेत्तोववायगई पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. एगिंदिय-तिरिक्खजोणिय-खेत्तोववायगई **जाव**

५. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियं–खेत्तोववायगई।

से तं तिरिक्खजोणिय-खेत्तोववायगई।

प. से किं तं मणूसखेत्तोववायगई ?

उ. मणूस-खेत्तोववायगई दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मुच्छिम-मणूस-खेत्तोववायगई,

२. गब्भवक्कंतिय-मणुस्स-खेत्तोववायगई।

से तं मणूस-खेत्तोववायगई।

प. से किं तं देवखेत्तोववायगई ?

उ. देवखेत्तोववायगई चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. भवणवइ देव- खेत्तोववायगई **जाव**

४. वेमाणिय देव-खेत्तोववायगई।

से तं देवखेत्तोववायगई।

प. से किं सिद्धखेत्तोववायगई ?

उ. सिद्धखेत्तोववायगई अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवयवाससपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

जंबुद्दीवे दीवे चुल्लहिमवंत-सिहरिवा सहरपव्वयसपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

जंबुद्दीवे दीवे हेमवय-हेरण्णवयवाससपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

८. उपपातगति के भेद-प्रभेद--

प्र. ४. उपपातगति कितने प्रकार की है ?

उ. उपपातगति तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. क्षेत्रोपपातगति, २. भवोपपातगति,

३. नोभवोपपातगति।

प्र. क्षेत्रोपपातगति कितने प्रकार की है ?

उ. क्षेत्रोपपातगति पाँच प्रकार की कही गई है, यथा–

१. नैरयिकक्षेत्रोपपातगति,

२. तिर्यञ्चयोनिकक्षेत्रोपपातगति,

३. मनुष्यक्षेत्रोपपातगति,

४. देवक्षेत्रोपपातगति,

५. सिद्धक्षेत्रोपपातगति।

प्र. नैरयिकक्षेत्रोपपातगति कितने प्रकार की है ?

उ. नैरयिकक्षेत्रोपपातगति सात प्रकार की कही गई है, यथा–

१. रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिकक्षेत्रोपपातगति **यावत्**

७. अधःसप्तमपृथ्वीनैरयिकक्षेत्रोपपातगति।

यह नैरयिक क्षेत्रोपपातगति की प्ररूपणा हुई।

प्र. तिर्यञ्चयोनिकक्षेत्रोपपातगति कितने प्रकार की है ?

उ. तिर्यञ्चयोनिकक्षेत्रोपपातगति पांच प्रकार की कही गई है, यथा–

१. एकेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकक्षेत्रोपपातगति **यावत्**

५. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकक्षेत्रोपपातगति।

यह तिर्यञ्चयोनिकक्षेत्रोपपातगति की प्ररूपणा हुई।

प्र. मनुष्यक्षेत्रोपपातगति कितने प्रकार की है ?

उ. मनुष्यक्षेत्रोपपातगति दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. सम्मुर्च्छिम मनुष्य-क्षेत्रोपपातगति,

२. गर्भज मनुष्य-क्षेत्रोपपातगति।

यह मनुष्यक्षेत्रोपपातगति की प्ररूपणा हुई।

प्र. देवक्षेत्रोपपातगति कितने प्रकार की है ?

उ. देवक्षेत्रोपपातगति चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. भवनपतिदेव-क्षेत्रोपपातगति **यावत्**

४. वैमानिकदेव-क्षेत्रोपपातगति।

यह देवक्षेत्रोपपातगति की प्ररूपणा हुई।

प्र. सिद्धक्षेत्रोपपातगति कितने प्रकार की है ?

उ. सिद्धक्षेत्रोपपातगति अनेक प्रकार की कही गई है, यथा–

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत और ऐरवत वर्ष (क्षेत्र) की सव दिशाओं और सव विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में क्षुद्र हिमवान् और शिखरी वर्षधरपर्वत की सव दिशाओं में और विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में हेमवत और हैरण्यवतवर्ष में सव दिशाओं और विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है।

जंबुद्दीवे दीवे सद्दावइ-वियडावइवट्टवेयड्ढसपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में शब्दापाती और विकटापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत की सब दिशाओं और विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है।

जंबुद्दीवे दीवे महाहिमवंत-रुप्पिवासहरपव्वयसपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में महाहिमवन्त और रुक्मी नामक वर्षधर पर्वतों की सब दिशाओं और विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है।

जंबुद्दीवे दीवे हरिवास-रम्मगवाससपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष की सब दिशाओं-विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है।

जंबुद्दीवे दीवे गंधावइ- मालवंतपरियाय-वट्टवेयड्ढसपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में गन्धावती माल्यवन्त पर्याय नामक वृत्तवैताढ्यपर्वत की समस्त दिशाओं-विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है।

जंबुद्दीवे दीवे णिसढ-णीलवंतवासहरपव्वयसपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में निषध और नीलवन्त नामक वर्षधर पर्वत की सब दिशाओं विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है।

जंबुद्दीवे दीवे पुव्वविदेह-अवरविदेहसपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में पूर्वविदेह और अपरविदेह की सब दिशाओं विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है।

जंबुद्दीवे दीवे देवकुरूत्तरकुरुसपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र की सब दिशाओं विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है।

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत की सब दिशाओं और विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है।

लवणसमुद्दे सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

लवणसमुद्र की सब दिशाओं और विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति होती है।

धायइसंडे दीवे पुरिमद्धपच्छिमद्धमंदरपव्वयस्स सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध स्थित मन्दर पर्वत की सब दिशाओं विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति है।

कालोयसमुद्दे सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

कालोदसमुद्र की समस्त दिशाओं-विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति है।

पुक्खरवरदीवड्ढपुरिमड्ढभरहेरवयवाससपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई,

पुष्करवरद्वीपार्द्ध के पूर्वार्द्ध में भरत और ऐरवत वर्ष की सब दिशाओं और विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति है।

एवं जाव पुक्खरवरदीवड्ढ पच्छिमद्ध मंदरपव्वयस्स सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्धखेत्तोववायगई।

इसी प्रकार यावत् पुष्करवरद्वीपार्द्ध के पश्चिमार्द्ध में स्थित मन्दर पर्वत की सब दिशाओं और विदिशाओं में सिद्धक्षेत्रोपपातगति है।

से तं सिद्धखेत्तोववायगई।

यह सिद्धक्षेत्रोपपातगति का वर्णन हुवा।

से तं खेत्तोववायगई।

इस प्रकार क्षेत्रोपपातगति का प्ररूपण पूर्ण हुआ।

प. से किं तं भवोववायगई?

प्र. भवोपपातगति कितने प्रकार की है?

उ. भवोववायगई चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. णेरइयभवोववायगई जाव ४. देवभवोववायगई।

उ. भवोपपातगति चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. नैरयिक भवोपपातगति यावत् ४. देव भवोपपातगति।

प. से किं तं णेरइयभवोववायगई?

प्र. नैरयिक भवोपपातगति कितने प्रकार की कही गई है?

उ. णेरइयभवोववायगई सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. रयणप्पभापुढविणेरइय-भवोववायगई जाव

७. अहेसत्तमापुढविणेरइय-भवोववायगई।

उ. नैरयिक भवोपपातगति सात प्रकार की कही गई है, यथा–

१. रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक भवोपपातगति यावत्

७. अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक भवोपपातगति।

एवं सिद्धवज्जो भेओ भाणियव्वो, जो चेव खेत्तोववायगईए सो चेव भवोववायगईए।

इसी प्रकार सिद्धों को छोड़कर क्षेत्रोपपातगति के जो भेद कहे गये हैं वे ही भवोपपातगति के भेद भी कहने चाहिए।

से तं भवोववायगई।

यह भवोपपातगति का प्ररूपण हुवा।

प. से किं तं नोभवोववायगई?

प्र. नो भवोपपातगति कितने प्रकार की है?

उ. णो भवोववायगई दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पोग्गलणोभवोववायगई
२. सिद्धणोभवोववायगई य।

प. से किं तं पोग्गलणोभवोववायगई?

उ. पोग्गलणोभवोववायगई जण्णं परमाणुपोग्गले लोगस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पच्छिमिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ,
पच्छिमिल्लाओ वा चरिमंताओ पुरत्थिमिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ,
दाहिणिल्लाओ वा चरिमंताओ उत्तरिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ,
एवं उत्तरिल्लाओ दाहिणिल्लं, उवरिल्लाओ हेट्ठिल्लं, हेट्ठिल्लाओ वा उवरिल्लं।

से तं पोग्गल णोभवोववायगई।

प. से किं तं सिद्धणोभवोववायगई?

उ. सिद्धणोभवोववायगई दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अणंतरसिद्धणोभवोववायगई य
२. परंपरसिद्धणोभवोववायगई य।

प. से किं तं अणंतरसिद्धणोभवोववायगई?

उ. अणंतरसिद्धणोभवोववायगई पन्नरसविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. तित्थसिद्धअणंतरसिद्धणोभवोववायगई य जाव
१५. अणेगसिद्धअणंतरसिद्धणोभवोववायगई य।
से त्तं अणंतरसिद्धणोभवोववायगई।

प. से किं तं परंपरसिद्धणोभवोववायगई?

उ. परंपरसिद्धणोभवोववायगई अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–
अपढमसमयसिद्धणोभवोववायगई एवं - दुसमय - सिद्धणोभवोववायगई **जाव** अणंतसमयसिद्ध-णोभवोववायगई।
से तं परंपरसिद्धणोभवोववायगई।
से त्तं सिद्धणोभवोववायगई
से त्तं णोभवोववायगई।
से त्तं उववायगई। *–पण्ण. प. १६. सु. १०९२-११०४*

उ. नोभवोपपातगति दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. पुद्‌गल-नोभवोपपातगति,
२. सिद्ध-नोभवोपपातगति।

प्र. पुद्‌गल नोभवोपपातगति क्या है?

उ. जो पुद्‌गल परमाणु लोक के पूर्वी चरमान्त अर्थात् छोर से पश्चिमी चरमान्त तक एक ही समय में गमन करता है।
पश्चिमी चरमान्त से पूर्वी चरमान्त तक एक समय में गमन करता है।
दक्षिणी चरमान्त से उत्तरी चरमान्त तक एक समय में गति करता है।
उत्तरी चरमान्त से दक्षिणी चरमान्त तक तथा ऊपरी चरमान्त से निचले चरमान्त तक एवं निचले चरमान्त से ऊपरी चरमान्त तक एक समय में ही गति करता है।
यह पुद्‌गल नोभवोपपातगति कहलाती है।

प्र. सिद्ध नोभवोपपातगति कितने प्रकार की है?

उ. सिद्ध नोभवोपपातगति दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. अनन्तरसिद्ध नोभवोपपातगति,
२. परम्परसिद्ध नोभवोपपातगति।

प्र. अनन्तरसिद्ध नोभवोपपातगति कितने प्रकार की है?

उ. अनन्तरसिद्ध नोभवोपपातगति पन्द्रह प्रकार की कही गई है, यथा–
१. तीर्थसिद्ध-अनन्तरसिद्ध-नोभवोपपातगति **यावत्**
१५. अनेकसिद्ध-अनन्तरसिद्ध-नोभवोपपातगति।
यह अनन्तरसिद्ध-नोभवोपपातगति का प्ररूपण हुवा।

प्र. परम्परसिद्ध-नोभवोपपातगति कितने प्रकार की है?

उ. परम्परसिद्ध-नोभवोपपातगति अनेक प्रकार की है, यथा–
अप्रथमसमयसिद्ध-नोभवोपपातगति एवं द्विसमयसिद्ध-नोभवोपपातगति यावत् अनन्तसमयसिद्ध-नोभवोपपातगति।
यह परम्परसिद्ध-नोभवोपपातगति का प्ररूपण हुआ।
यह सिद्ध-नोभवोपपातगति का वर्णन हुआ।
साथ ही नोभवोपपातगति की प्ररूपणा हुई।
यह उपपातगति का वर्णन पूर्ण हुआ।

९. सत्तरसविहाविहायगई –

प. ५. से किं तं विहायगई?

उ. विहायगई सत्तरसविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. फुसमाणगई, २. अफुसमाणगई,
३. उवसंपज्जमाणगई, ४. अणुवसंपज्जमाणगई,
५. पोग्गलगई, ६. मंडूयगई,
७. णावागई, ८. णयगई,
९. छायागई, १०. छायाणुवायगई,

९. सत्तरह प्रकार की विहायोगति–

प्र. ५. विहायोगति कितने प्रकार की है?

उ. विहायोगति सत्तरह प्रकार की कही गई है, यथा–
१. स्पृशद्‌मानगति, २. अस्पृशद्‌मानगति,
३. उपसम्पद्यमानगति, ४. अनुपसम्पद्यमानगति,
५. पुद्‌गलगति, ६. मण्डूकगति,
७. नौकागति, ८. नयगति,
९. छायागति, १०. छायानुपातगति,

११. लेसागई, १२. लेस्साणुवायगई,
१३. उद्दिसपविभत्तगई, १४. चउपुरिसपविभत्तगई,
१५. वंकगई, १६. पंकगई,
१७. बंधणविमोयणगई।

११. लेश्यागति, १२. लेश्यानुपातगति,
१३. उद्दिश्यप्रविभक्तगति, १४. चतु:पुरुषप्रविभक्तगति,
१५. वक्रगति, १६. पंकगति,
१७. बन्धनविमोचनगति।

प. १. से किं तं फुसमाणगई?

उ. फुसमाणगई जण्णं परमाणुपोग्गले दुपएसिय जाव अणंतपएसियाणं खंधाणं अण्णमण्णं फुसित्ताण गई पवत्तइ।

से तं फुसमाणगई।

प्र. १. स्पृशद्मानगति किसे कहते हैं?

उ. परमाणुपुद्गल की अथवा द्विप्रदेशी यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की एक दूसरे को स्पर्श करते हुए जो गति होती है, वह स्पृशद्मानगति है।

यह स्पृशद्मानगति का वर्णन है।

प. २. से किं तं अफुसमाणगई?

उ. अफुसमाणगई जण्णं एएसिं चेव अफुसित्ता णं गई पवत्तइ।

से तं अफुसमाणगई।

प्र. २. अस्पृशद्मानगति किसे कहते हैं?

उ. जो इन परमाणु पुद्गलों से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्धों को परस्पर स्पर्श किए विना ही जो गति होती है वह अस्पृशद्गति है।

यह अस्पृशद्मानगति का स्वरूप है।

प. ३. से किं तं उवसंपज्जमाणगई?

उ. उवसंपज्जमाणगई जण्णं रायं वा, जुवरायं वा, ईसरं वा, तलवरं वा, माडंबियं वा, कोडुंबियं वा, इब्भं वा सेट्ठिं वा, सेणावइं वा, सत्थवाहं वा उवसंपज्जित्ता णं गच्छइ।

से तं उवसंपज्जमाणगई।

प्र. ३. उपसम्पद्यमानगति किसे कहते हैं?

उ. उपसम्पद्यमानगति ऐसी है जिसमें व्यक्ति राजा, युवराज, ईश्वर (ऐश्वर्यशाली) तलवर (किसी नृप द्वारा नियुक्त पट्टधर शासक) माडम्बिक (मण्डलाधिपति) इभ्य (धनाढ्य) सेठ, सेनापति या सार्थवाह को आश्रय करके (उनके सहयोग या सहारे से) गमन करता हो।

यह उपसम्पद्यमान गति का स्वरूप है।

प. ४. से किं तं अणुवसंपज्जमाणगई?

उ. अणुवसंपज्जमाणगई जण्णं एएसिं चेव अण्णमण्णं अणुवसंपज्जित्ता णं गच्छइ।

से तं अणुवसंपज्जमाणगई।

प्र. ४. अनुसम्पद्यानगति किसे कहते है?

उ. इन्हीं पूर्वोक्त (राजा आदि) का परस्पर आश्रय न लेकर जो गति होती है वह अनुसम्पद्यमान गति है।

यह अनुसम्पद्यमान गति का स्वरूप है।

प. ५. से किं तं पोग्गलगई?

उ. पोग्गलगई जण्णं परमाणुपोग्गलाणं जाव अणंतपएसियाणं खंधाणं पवत्तइ।

से तं पोग्गलगई।

प्र. ५. पुद्गलगति किसे कहते हैं?

उ. परमाणु पुद्गलों की यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की गति पुद्गल गति है।

यह पुद्गलगति का स्वरूप है।

प. ६. से किं तं मंडूयगई?

उ. मंडूयगई जण्णं मंडूए उप्फिडिया उप्फिडिया गच्छइ।

से तं मंडूयगई।

प्र. ६. मण्डूकगति किसे कहते हैं?

उ. मेंढक जो उछल-उछल कर गति करता है वह मण्डूकगति कहलाती है।

यह मण्डूकगति का स्वरूप है।

प. ७. से किं तं णावागई?

उ. णावागई जण्णं णावा पुव्ववेयालीओ दाहिणवेयालिं जलपहेणं गच्छइ, दाहिणवेयालीओ वा अवरवेयालिं जलपहेणं गच्छइ।

से तं णावागई।

प्र. ७. नौकागति किसे कहते हैं?

उ. जैसे नौका पूर्व वैताली (तट) से दक्षिण वैताली की ओर जलपथ से जाती है, अथवा दक्षिण वैताली से पश्चिम वैताली की ओर जलपथ से जाती है ऐसी गति नौकागति है।

यह नौकागति का स्वरूप है।

प. ८. से किं तं णयगई?

उ. णयगई जण्णं णेगम-संगह-ववहार-उज्जुसुय-सद्द-समभिरूढ-एवंभूयाणं णयाणं जा गई, अहवा सव्वणया वि जं इच्छंति।

से तं णयगई।

प्र. ८. नयगति किसे कहते हैं?

उ. नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत इन सात नयों की जो प्रवृत्ति है अथवा सभी नय जो मानते हैं वह नयगति है।

यह नयगति का स्वरूप है।

प. ९. से किं तं छायागई?

प्र. ९. छायागति किसे कहते हैं?

उ. छायागई जण्णं हयच्छायं वा, गयच्छायं वा, नरच्छायं वा, किन्नरच्छायं वा, महोरगच्छायं वा, गंधव्वच्छायं वा, उसहच्छायं वा, रहच्छायं वा, छत्तच्छायं वा, उवसंपज्जित्ता णं गच्छइ।

से तं छायागई।

प. १०. से किं तं छायाणुवायगई?

उ. छायाणुवायगई जण्णं पुरिसं छाया अणुगच्छइ, णो पुरिसे छायं अणुगच्छइ।

से तं छायाणुवायगई।

प. ११. से किं तं लेस्सागई?

उ. लेस्सागई जण्णं कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ,

एवं णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए परिणमइ,

एवं काउलेस्सा वि तेउलेस्सं, तेउलेस्सा वि पम्हलेस्सं, पम्हलेस्सा वि सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव परिणमइ।

से तं लेस्सागई।

प. १२. से किं तं लेस्साणुवायगई?

उ. लेस्साणुवायगई जल्लेस्साइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेस्सेसु उववज्जइ, तं जहा–

कण्हलेस्सेसु वा जाव सुक्कलेस्सेसु वा।

से तं लेस्साणुवायगई।

प. १३. से किं तं उद्दिस्सपविभत्तगई?

उ. उद्दिस्सपविभत्तगई जेणं आयरियं वा, उवज्झायं वा, थेरं वा, पवत्तं वा, गणिं,वा, गणहरं वा, गणावच्छेइयं वा उद्दिसिय-उद्दिसिय गच्छइ।

से तं उद्दिस्सपविभत्तगई।

प. १४. से किं तं चउपुरिसपविभत्तगई?

उ. चउपुरिसपविभत्तगई से जहाणामए चत्तारि पुरिसा, तं जहा–

१. समगं पट्ठिता समगं पज्जवट्ठिया,

२. समगं पट्ठिया विसमं पज्जवट्ठिया,

३. विसमं पट्ठिया समगं पज्जवट्ठिया,

४. विसमं पट्ठिया विसमं पज्जवट्ठिया।

से तं चउपुरिसपविभत्तगई।

उ. अश्व की छाया, हाथी की छाया, मनुष्य की छाया, किन्नर की छाया, महोरग की छाया, गन्धर्व की छाया, वृषभ की छाया, रथ की छाया, छत्र की छाया का आश्रय करके जो गमन होता है वह छायागति है।

यह छायागति का स्वरूप है।

प्र. १०. छायानुपातगति किसे कहते हैं?

उ. छाया पुरुष आदि अपने निमित्त का अनुगमन करती है, किन्तु पुरुष छाया का अनुगमन नहीं करता वह छायानुपातगति हैं।

यह छायानुपातगति का स्वरूप है।

प्र. ११. लेश्यागति किसे कहते हैं?

उ. कृष्णलेश्या के द्रव्य नीललेश्या के द्रव्य को प्राप्त होकर उसी के वर्णरूप में, उसी के गन्धरूप में उसी के रसरूप में तथा उसी के स्पर्शरूप में बार-बार जो परिणत होती है।

इसी प्रकार नीललेश्या भी कापोतलेश्या को प्राप्त होकर उसी के वर्णरूप में यावत् उसी के स्पर्शरूप में जो परिणत होती है।

इसी प्रकार कापोतलेश्या भी तेजोलेश्या को, तेजोलेश्या पद्मलेश्या को तथा पद्मलेश्या शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर जो उसी के वर्णरूप में यावत् उसी के स्पर्शरूप में परिणत होती है वह लेश्यागति है।

यह लेश्यागति का स्वरूप है।

प्र. १२. लेश्यानुपातगति किसे कहते हैं?

उ. जो जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके (जीव) काल करता है (मरता है) उसी लेश्या वाले (जीवों) में वह उत्पन्न होता है, यथा–

कृष्णलेश्या वाले द्रव्यों में यावत् शुक्ललेश्या वाले द्रव्यों में (इस प्रकार की गति) लेश्यानुपातगति है।

यह लेश्यानुपातगति का स्वरूप है।

प्र. १३. उद्दिश्यप्रविभक्तगति किसे कहते हैं?

उ. आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्तक, गणि, गणधर या गणावच्छेदक को लक्ष्य (उद्देश्य) करके जो गमन किया जाता है वह उद्दिश्यप्रविभक्तगति है।

यह उद्दिश्यप्रविभक्तगति का स्वरूप है।

प्र. १४. चतुः पुरुषप्रविभक्तगति किसे कहते हैं?

उ. चतुःपुरुषप्रविभक्तगति चार प्रकार की है, यथा–

१. जैसे चार पुरुषों का एक साथ प्रस्थान और वारों का एक साथ पहुँचना,

२. चार पुरुषों का एक साथ प्रस्थान, किन्तु अलग-अलग पहुँचना,

३. चार पुरुषों का अलग-अलग प्रस्थान, किन्तु एक साथ पहुँचना,

४. चार पुरुषों का अलग-अलग प्रस्थान, अलग-अलग पहुँचना।

यह चतुःपुरुषप्रविभक्तगति का स्वरूप है।

प. १५. से किं तं वंकगई ?

उ. वंकगई चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. घट्टणया, २. थंभणया,

३. लेसणया, ४. पवडणया,

से तं वंकगई।

प. १६. से किं तं पंकगई ?

उ. पंकगई से जहाणामए केइ पुरिसे सेयंसि वा, पंकंसि वा, उदयंसि वा कायं उब्बहिया गच्छइ।

से तं पंकगई।

प. १७. से किं तं बंधणविमोयणगई ?

उ. बंधणविमोयणगई जण्णं अंबाण वा, अंबाडगाण वा माउलुंगाण वा, बिल्लाण वा, कविट्ठाण वा, भल्लाणं वा, फणसाण वा, दाडिमाण वा, पारेवाण वा, अक्खोडाण वा, चोराण वा, बोराण वा, तिंदुयाण वा, पक्काणं परियागयाणं बंधणाओ विप्पमुक्काणं णिव्वाघाएणं अहे वीससाए गई पवत्तइ।

से तं बंधणविमोयणगई।

से तं विहायगई।

से तं गइप्पवाए[1]। –पण्ण. प. १६, सु. ११०५-११२२



प्र. १५. वक्रगति कितने प्रकार की हैं ?

उ. वक्रगति चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. घट्टन से, २. स्तम्भन से,

३. श्लेषण से, ४. प्रपतन से।

यह वक्रगति का स्वरूप है।

प्र. १६. पंकगति किसे कहते हैं ?

उ. जैसे कोई पुरुष पंक में कीचड़ में अथवा जल में अपने शरीर के फिसलने या बहने से गमन करता है। उसकी यह पंकगति है।

यह पंकगति का स्वरूप है।

प्र. १७. बन्धनविमोचनगति किसे कहते हैं ?

उ. अत्यन्त पक कर तैयार हुए अतएव बंधन से विमुक्त (छूटे हुए) आम्रों, आम्रातकों, बिजौरों, बिल्वफलों, कवीत्थ फलों, भद्र नामक फलों, कटहलों (पनसों), दाडिमों, पारेवत नामक फल विशेषों, अखरोटों, चोर फलों, बोरों अथवा तिन्दुकफलों की रुकावट (व्याघात) न हो तो स्वभाव से ही जो अधोगति होती है वह बन्धन विमोचनगति है।

यह बन्धनविमोचनगति का स्वरूप है।

यह विहायोगति की प्ररूपणा पूर्ण हुई।

यह गतिप्रपात का वर्णन पूर्ण हुआ।



उपयोग अध्ययन : आमुख

ज्ञान एवं दर्शन जीव के शाश्वत गुण हैं। इन्हीं के आधार पर जीव को जड़पदार्थों से भिन्न प्रतिपादित किया जाता है। ये दोनों जीव के लक्षण हैं। ये सदैव जीव के साथ रहकर भी अपनी भिन्न विशेषताएं रखते हैं। जैन आगमों में ज्ञान और दर्शन को उपयोग कहा गया है, किन्तु साथ ही यह भी प्रतिपादित किया गया है कि एक समय में एक ही उपयोग होता है। उपयोग के रूप में ज्ञान एवं दर्शन युगपद्भावी नहीं हैं। एक अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् ही इन उपयोगों में परिवर्तन होता रहता है। गुण के रूप में ज्ञान एवं दर्शन युगपद्भावी हैं, एक साथ रहते हैं किन्तु उपयोग के रूप में ये युगपद्भावी नहीं हैं, क्रमभावी हैं। यही गुण एवं उपयोग में भेद है।

उपयोग के दो भेद किए जाते हैं–साकारोपयोग और अनाकारोपयोग। साकारोपयोग में ज्ञान एवं अनाकारोपयोग में दर्शन का अन्तर्भाव होता है। साकारोपयोग के पाँच ज्ञानों एवं तीन अज्ञानों के आधार पर आठ भेद किए जाते हैं, यथा–आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान, मत्यज्ञान, श्रुत अज्ञान, और विभंगज्ञान। अनाकारोपयोग के चार भेद हैं–चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवल दर्शन। इस प्रकार साकारोपयोग ज्ञानात्मक एवं अनाकारोपयोग दर्शनात्मक होता है। ज्ञान साकार उपयोग होता है, किन्तु दर्शन अनाकार उपयोग।

दोनों प्रकार के उपयोग वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से रहित होते हैं तथा अगुरुलघु होते हैं। निर्वृत्ति या निष्पत्ति के आधार पर भी उपयोगनिर्वृत्ति के साकारोपयोग एवं अनाकारोपयोग दो भेद घटित होते हैं।

चौबीस दण्डकों में से कोई भी जीव किसी भी समय उपयोग रहित नहीं होता तथापि सामान्यरूप से विचार किया जाए तो प्रत्येक जीव में दो उपयोग होते हैं–साकार एवं अनाकार। कभी साकार उपयोग होता है तो कभी अनाकार उपयोग। जिस जीव में जो ज्ञान या अज्ञान पाया जाता है, उसमें वही साकारोपयोग होता है तथा जो दर्शन पाया जाता है, उसमें वही अनाकारोपयोग होता है। इस दृष्टि से पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों में मतिअज्ञान एवं श्रुतअज्ञान ये दो साकारोपयोग एवं अचक्षुदर्शन नामक एक अनाकार उपयोग होता है। द्वीन्द्रिय एवं त्रीन्द्रिय जीवों में भी एकेन्द्रिय जीवों की भांति अनाकार उपयोग तो एक अचक्षुदर्शन ही होता है, किन्तु साकारोपयोग दो और बढ़ जाते हैं। बढ़ने वाले साकारोपयोग हैं–आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान। ये दोनों साकारोपयोग उनमें सम्यग्दृष्टि पाए जाने से उपलब्ध होते हैं। चतुरिन्द्रिय जीव में त्रीन्द्रिय की भांति चार ही साकारोपयोग होते हैं–आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान। अनाकारोपयोग दो होते हैं–चक्षुदर्शन एवं अचक्षुदर्शन। चतुरिन्द्रिय में चक्षु बढ़ जाने से उसमें चक्षुदर्शन पाया जाता है। नैरयिक जीवों, देवों एवं पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में छह साकारोपयोग एवं तीन अनाकारोपयोग होते हैं। उनमें अवधिदर्शन नामक एक अनाकारोपयोग तथा अवधिज्ञान एवं विभंगज्ञान नामक दो साकारोपयोग, चतुरिन्द्रिय से अधिक पाए जाते हैं। मनुष्यों में साकारोपयोग के समस्त आठ भेद तथा अनाकारोपयोग के समस्त चार भेद माने जाते हैं। समस्त प्राणियों में मनुष्य सबसे अधिक विकसित जीव है। केवलज्ञान जैसा साकारोपयोग एवं केवलदर्शन जैसा अनाकारोपयोग उसी में उपलब्ध होता है।

प्रसंगवश इस अध्ययन में इस चर्चा का भी समावेश हुआ है कि केवलज्ञानियों में दो उपयोग एक साथ नहीं पाए जाते हैं। वे केवलज्ञान नामक साकारोपयोग एवं केवलदर्शन नामक अनाकारोपयोग से युक्त होते हैं किन्तु एक समय में इनमें से एक ही उपयोग पाया जाता है। गुण की दृष्टि से उनमें केवलज्ञान एवं केवलदर्शन दोनों एक साथ रहते हैं। केवलज्ञानी जिस समय रत्नप्रभा पृथ्वी आदि को आकारों, हेतुओं, उपमाओं, दृष्टान्तों, वर्णों, संस्थानों, प्रमाणों और उपकरणों से जानते हैं उस समय देखते नहीं हैं तथा जिस समय देखते हैं उस समय जानते नहीं हैं। जो साकार है वह ज्ञान है तथा जो अनाकार है वह दर्शन है।

साकारोपयोग एवं अनाकारोपयोग में प्रत्येक की कायस्थिति (स्थितिकाल) जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त है। इनका परस्पर अन्तरकाल भी अन्तर्मुहूर्त ही है। एक अन्तर्मुहूर्त के अनन्तर ये क्रमशः बदलते रहते हैं। अल्पबहुत्व की दृष्टि से अनाकारोपयोग युक्त जीव अल्प हैं तथा साकारोपयोगयुक्त जीव उनसे संख्यातगुणे हैं।

इस अध्ययन में दर्शनोपयोग का विशेष निरूपण हुआ है। चार गतियों में कौन-सा जीव किस दर्शनोपयोग से युक्त है इसका विस्तृत निरूपण हुआ है। इसमें सूक्ष्म पृथ्वीकायिक आदि जीवों एवं सम्मूर्च्छिम जीवों के दर्शनोपयोग की विशेष चर्चा है। तदनुसार सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, बादर पृथ्वीकायिक आदि जीवों में भी सामान्य एकेन्द्रिय जीवों की भाँति एक अचक्षुदर्शन उपयोग रहता है। सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों में चक्षुदर्शन एवं अचक्षुदर्शन ये दो दर्शनोपयोग होते हैं जबकि सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में मात्र अचक्षुदर्शन होता है, चक्षुदर्शन उपयोग नहीं होता।

दर्शनगुण से सम्पन्न चक्षुदर्शनी आदि जीवों की कायस्थिति, अन्तरकाल एवं अल्पबहुत्व पर भी इस अध्ययन में विचार हुआ है। उसके अनुसार चक्षुदर्शनी जीव चक्षुदर्शनी के रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक तथा उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार सागरोपम तक रहता है। अचक्षुदर्शनी की यह कायस्थिति दो प्रकार की होती है–१. अनादि अपर्यवसित और २. अनादि सपर्यवसित। अवधिदर्शनी की कायस्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो छियासठ सागरोपम तक होती है। केवलदर्शनी सादि अपर्यवसित होता है। अल्पबहुत्व की अपेक्षा सबसे अल्प अवधिदर्शनी हैं, उनसे चक्षुदर्शनी असंख्यातगुणे हैं, उनसे केवलदर्शनी अनन्तगुणे हैं तथा उनसे अचक्षुदर्शनी अनन्तगुणे हैं।

□□

२१. उवओग-अज्झयणं

सूत्र

१. उवओगस्सभेयप्पभेय परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! उवओगे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! दुविहे उवओगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सागारोवओगे य, २. अणागारोवओगे य[1]।

प. सागारोवओगे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आभिणिबोहियणाणसागारोवओगे,
२. सुयणाणसागारोवओगे,
३. ओहिणाणसागारोवओगे,
४. मणपज्जवणाणसागारोवओगे,
५. केवलणाणसागारोवओगे,
६. मइअण्णाणसागारोवओगे,
७. सुयअण्णाणसागारोवओगे,
८. विभंगणाणसागारोवओगे।

प. अणागारोवओगे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. चक्खुदंसणअणागारोवओगे,
२. अचक्खुदंसणअणागारोवओगे,
३. ओहिदंसणअणागारोवओगे,
४. केवलदंसणअणागारोवओगे।

–पण्ण. प. २९, सु. १९०८-१९१०

२. ओहेण जीवेसु उवओग परूवणं–

एवं जीवाणं पि। –पण्ण. प. २९, सु. १९११

३. उवओगाणं अगरूयलहुयत्त परूवणं–

सागारोवओगो अणागारोवओगो चउत्थएणं पएणं (अगरूय लहुयपएणं) –विया. स. १, उ. ९, सु. १४

४. उवओगाणं वण्णाइ अभावो–

सागारोवओगे य अणागारोवओगे य अवण्णा अगंधा अरसा अफासा। –विया. स. १२, उ. ५, सु. ३२

५. उवओगनिव्वत्ती भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! उवओगनिव्वत्ती पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा उवओगनिव्वत्ती पण्णत्ता, तं जहा–

१. सागारोवओगनिव्वत्ती,
२. अणागारोवओगनिव्वत्ती।

दं. १-२४. एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

–विया. स. १९, उ. ८, सु. ४४-४५

२१. उपयोग अध्ययन

सूत्र

१. उपयोग के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! उपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! उपयोग दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. साकारोपयोग, २. अनाकारोपयोग।

प्र. भन्ते ! साकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आभिनिबोधिकज्ञान-साकारोपयोग,
२. श्रुतज्ञान-साकारोपयोग,
३. अवधिज्ञान-साकारोपयोग,
४. मनःपर्यवज्ञान-साकारोपयोग,
५. केवलज्ञान-साकारोपयोग,
६. मतिअज्ञान-साकारोपयोग,
७. श्रुतअज्ञान-साकारोपयोग,
८. विभंगज्ञान-साकारोपयोग।

प्र. भन्ते ! अनाकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. चक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग,
२. अचक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग,
३. अवधिदर्शन-अनाकारोपयोग,
४. केवलदर्शन-अनाकारोपयोग।

२. सामान्यतः जीवों में उपयोगों का प्ररूपण–

इसी प्रकार समुच्चय जीवों में जानना चाहिए।

३. उपयोगों के अगुरुलघुत्व का प्ररूपण–

साकारोपयोग और अनाकारोपयोग चतुर्थपद (अगुरुलघुत्व) वाले जानने चाहिए।

४. उपयोगों में वर्णादि का अभाव–

साकारोपयोग और अनाकारोपयोग ये दोनों वर्ण-गंध-रस और स्पर्श से रहित हैं।

५. उपयोग-निर्वृत्ति के भेद और चौवीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! उपयोग निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है?

उ. गौतम ! उपयोग निर्वृत्ति दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. साकारोपयोग निर्वृत्ति
२. अनाकारोपयोग निर्वृत्ति।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

६. चउवीसदंडएसु उवओगभेयप्पभेयाणं परूवणं–

प. दं.१.णेरइयाणं भंते ! कइविहे उवओगे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे उवओगे पण्णत्ते, तं जहा–

१.सागारोवओगे य, २.अणागारोवओगे य[1]।

प. णेरइयाणं भंते ! सागारोवओगे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मइणाणसागारोवओगे,

२. सुयणाणसागारोवओगे,

३. ओहिणाणसागारोवओगे,

४. मइअण्णाणसागारोवओगे,

५. सुयअण्णाणसागारोवओगे,

६. विभंगणाणसागारोवओगे।

प. णेरइयाणं भंते ! अणागारोवओगे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. चक्खुदंसणअणागारोवओगे,

२. अचक्खुदंसणअणागारोवओगे,

३. ओहिदंसणअणागारोवओगे य।

दं.२-११.एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. दं. १२. पुढविक्काइयाणं भंते ! कइविहे उवओगे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे उवओगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सागारोवओगे य, २. अणागारोवओगे य[2]।

प. पुढविक्काइयाणं भंते ! सागारोवओगे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. मइअण्णाणे, २. सुयअण्णाणे।

प. पुढविक्काइयाणं भंते ! अणागारोवओगे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एगे अचक्खुदंसणाणागारोवओगे पण्णत्ते।

दं.१३-१६.एवं जाव वणप्फइकाइयाणं[3]।

प. दं.१७.बेइंदियाणं भंते ! कइविहे उवओगे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे उवओगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सागारोवओगे य, २. अणागारोवओगे य[4]।

प. बेइंदियाणं भंते ! सागारोवओगे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

६. चौबीस दण्डकों में उपयोगों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. दं.१. भन्ते ! नैरयिकों का उपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. साकारोपयोग, २. अनाकारोपयोग।

प्र. भन्ते ! नैरियकों का साकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! छह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मतिज्ञान-साकारोपयोग,

२. श्रुतज्ञान-साकारोपयोग,

३. अवधिज्ञान-साकारोपयोग,

४. मतिअज्ञान-साकारोपयोग,

५. श्रुतअज्ञान-साकारोपयोग,

६. विभंगज्ञान-साकारोपयोग।

प्र. भन्ते ! नैरयिकों का अनाकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. चक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग,

२. अचक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग,

३. अवधिदर्शन-अनाकारोपयोग।

दं.२-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं.१२. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों का उपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! उपयोग दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. साकारोपयोग, २. अनाकारोपयोग।

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों का साकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मतिअज्ञान, २. श्रुतअज्ञान।

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों का अनाकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! एक अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोग कहा गया है।

दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं.१७. भन्ते ! द्वीन्द्रियों का उपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (उनका) उपयोग दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. साकारोपयोग, २. अनाकारोपयोग।

प्र. भन्ते ! द्वीन्द्रियों का साकारोपयोग कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (उनका) उपयोग चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

---

१. (क) जीवा. पडि.१, सु.३२
जीवा. पडि.३, सु.१०६, १२७
(ख) विया. स.१, उ.५, सु.२६

२. जीवा. पडि.१, सु.१३ (१७)

३. जीवा. पडि.१, सु.१४-२६

४. जीवा. पडि.१, सु.२८

१. आभिणिबोहियणाणसागारोवओगे,
२. सुयणाणसागारोवओगे,
३. मइअण्णाणसागारोवओगे,
४. सुयअण्णाणसागारोवओगे।

प. बेइंदियाणं भंते ! अणागारोवओगे कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एगे अचक्खुदंसणअणागारोवओगे।

दं. १८. एवं तेइंदियाण वि[१]।

दं. १९. चउरिंदियाण वि एवं चेव[२]।

णवरं–अणागारोवओगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. चक्खुदंसणअणागारोवओगे य,
२. अचक्खुदंसणअणागारोवओगे य।

दं. २०. पंचेंदिय-तिरियक्खजोणियाणं जहा णेरइयाणं[३]।

दं. २१. मणुस्साणं जहा ओहिए उवओगे भणियं तहेव भाणियव्वं[४]।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा णेरइयाणं[५]। –पण्ण. प. २९, सु. १९१२-१९२७

१. आभिनिबोधिकज्ञान-साकारोपयोग,
२. श्रुतज्ञान-साकारोपयोग,
३. मतिअज्ञान-साकारोपयोग,
४. श्रुतअज्ञान-साकारोपयोग।

प्र. भन्ते ! द्वीन्द्रियों का अनाकारोपयोग कितनें प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (उनका) एक अचक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग कहा गया है।

दं. १८. इसी प्रकार त्रीन्द्रियों के उपयोग हैं।

दं. १९. चतुरिन्द्रियों के उपयोग भी इसी प्रकार हैं।

विशेष–(उनका) अनाकारोपयोग दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. चक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग,
२. अचक्षुदर्शन- अनाकारोपयोग।

दं. २०. पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों का (साकारोपयोग तथा अनाकारोपयोग) कथन नैरयिकों के समान है।

दं. २१. औधिक उपयोग जितने कहे हैं उतने ही मनुष्यों के उपयोग कहने चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के उपयोग नैरयिकों के समान हैं।

७. जीव-चउवीसदंडएसु सागाराणागारोवउत्तत्त परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जीवा सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि ?"

उ. गोयमा ! जे णं जीवा आभिणिबोहियणाण-सुयणाण-ओहिणाण-मण-केवल-मइअण्णाण-सुयअण्णाण-विभंगणाणोवउत्ता,
ते णं जीवा सागारोवउत्ता,
जे णं जीवा चक्खुदंसण-अचक्खुदंसण-ओहिदंसण-केवलदंसणोवउत्ता, ते णं जीवा अणागारोवउत्ता,

७. जीव-चौवीस दंडकों में साकार-अनाकारोपयुक्तत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! जीव साकारोपयोग युक्त हैं या अनाकारोपयोग-युक्त हैं ?

उ. गौतम ! जीव साकारोपयोग युक्त भी हैं और अनाकारोपयोग युक्त भी हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि–
"जीव साकारोपयोग युक्त भी हैं और अनाकारोपयोग युक्त भी हैं ?"

उ. गौतम ! जो जीव आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान एवं विभंगज्ञानोपयोग वाले हैं,
वे जीव साकारोपयोग युक्त कहे जाते हैं,
जो जीव चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन के उपयोग से युक्त हैं, वे जीव अनाकारोपयोग युक्त कहे जाते हैं।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"णेरइया सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि ?"

उ. गोयमा ! जे णं णेरइया आभिणिबोहियणाण - सुयणाण - ओहिणाण - मइअण्णाण - सुयअण्णाण - विभंगणाणोवउत्ता,
ते णं णेरइया सागारोवउत्ता,
जे णं णेरइया चक्खुदंसण-अचक्खुदंसण-ओहिदंसणोवउत्ता,
ते णं णेरइया अणागारोवउत्ता,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"णेरइया सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि।"

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविक्काइयाणं भंते ! किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! पुढविक्काइया सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"पुढविक्काइया सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि ?"

उ. गोयमा ! जे णं पुढविक्काइया मइअण्णाण सुयअण्णाणोवउत्ता,
ते णं पुढविकाइया सागारोवउत्ता,
जे णं पुढविकाइया अचक्खुदंसणोवउत्ता,
ते णं पुढविकाइया अणागारोवउत्ता,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"पुढविकाइया सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि।"

दं. १३-१६. एवं जाव वणप्फइकाइया।

प. दं. १७. बेइंदियाणं भंते ! किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?

उ. गोयमा ! बेइंदिया सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"बेइंदिया सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि ?"

उ. गोयमा ! जे णं बेइंदिया आभिणिबोहियणाण- सुयणाण - मइअण्णाण - सुय-अण्णाणोवउत्ता,
ते णं बेइंदिया सागारोवउत्ता,
जे णं बेइंदिया अचक्खुदंसणोवउत्ता,
ते णं बेइंदिया अणागारोवउत्ता,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"अट्ठसहिया बेइंदिया सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि।"

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक साकारोपयोगयुक्त भी हैं और अनाकारोपयोगयुक्त भी हैं ?"

उ. गौतम ! जो नैरयिक आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान के उपयोग से युक्त हैं,
वे नैरयिक साकारोपयोगयुक्त हैं,
जो नैरयिक, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन के उपयोग से युक्त हैं,
वे नैरयिक अनाकारोपयोगयुक्त हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक साकारोपयोगयुक्त भी हैं और अनाकारोपयोगयुक्त भी हैं।"

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिक साकारोपयोगयुक्त हैं या अनाकारोपयोगयुक्त हैं ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक साकारोपयोगयुक्त भी हैं और अनाकारोपयोगयुक्त भी हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"पृथ्वीकायिक साकारोपयोगयुक्त भी हैं और अनाकारोपयोगयुक्त भी हैं ?"

उ. गौतम ! जो पृथ्वीकायिक मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान के उपयोग वाले हैं,
वे पृथ्वीकायिक साकारोपयोगयुक्त हैं
जो पृथ्वीकायिक अचक्षुदर्शन के उपयोग वाले हैं,
वे पृथ्वीकायिक अनाकारोपयोगयुक्त हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"पृथ्वीकायिक साकारोपयोगयुक्त भी हैं और अनाकारोपयोगयुक्त भी हैं।"

दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १७. भन्ते ! द्वीन्द्रिय साकारोपयोगयुक्त हैं या अनाकारोपयोगयुक्त हैं ?

उ. गौतम ! द्वीन्द्रिय साकारोपयोगयुक्त भी हैं और अनाकारोपयोगयुक्त भी हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"द्वीन्द्रिय साकारोपयोगयुक्त भी हैं और अनाकारोपयोगयुक्त भी हैं ?"

उ. गौतम ! जो द्वीन्द्रिय आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान के उपयोग वाले हैं।
वे द्वीन्द्रिय साकारोपयोगयुक्त हैं,
जो द्वीन्द्रिय अचक्षुदर्शन के उपयोग से युक्त हैं,
वे द्वीन्द्रिय अनाकारोपयोगयुक्त हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"द्वीन्द्रिय साकारोपयोगयुक्त भी हैं और अनाकारोपयोगयुक्त भी हैं।"

दं. १८-१९. एवं जाव चउरिंदिया।

णवरं–चक्खुदंसणं अब्भइयं चउरिंदियाणं।

दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया जहा णेरइया[1]।

दं. २१. मणूसा जहा जीवा[2]।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा णेरइया[3]। —पण्ण. प. २९, सु. १९२८-१९३५

८. केवलिसु एगसमए दोउवओगाणं णिसेहो–

प. केवली णं भंते ! इमं रयणप्पभं पुढविं आगारेहिं, हेऊहिं, उवमाहिं, दिट्ठंतेहिं, वण्णेहिं, संठाणेहिं, पमाणेहिं, पडोयारेहिं जं समयं जाणइ तं समयं पासइ, जं समयं पासइ तं समयं जाणइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"केवली णं इमं रयणप्पभं पुढविं आगारेहिं जाव पडोयारेहिं जं समयं जाणइ णो तं समयं पासइ, जं समयं पासइ णो तं समयं जाणइ ?"

उ. गोयमा ! सागारे से णाणे भवइ, अणागारे से दंसणे भवइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"केवली णं इमं रयणप्पभं पुढविं आगारेहिं जाव पडोयारेहिं जं समयं जाणइ णो तं समयं पासइ, जं समयं पासइ णो तं समयं जाणइ।

एवं जाव अहेसत्तमपुढविं।

एवं सोहम्मं कप्पं जाव अच्चुयं गेवेज्जगविमाणे, अणुत्तरविमाणे, ईसीपब्भारं पुढविं, परमाणुपोग्गलं, दुपएसियं खंधं जाव अणंतपएसियं खंधं।

प. केवली णं भंते ! इमं रयणप्पभं पुढविं अणागारेहिं, अहेऊहिं, अणुवमाहिं, अदिट्ठंतेहिं अवण्णेहिं, असंठाणेहिं, अपमाणेहिं, अपडोयारेहिं पासइ ण जाणइ ?

दं. १८-१९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–चतुरिन्द्रिय जीवों में चक्षुदर्शन अधिक कहना चाहिए।

दं. २०. पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों की उपयोग युक्तता नैरयिकों के समान है।

दं. २१. मनुष्यों की उपयोग युक्तता समुच्चय जीवों के समान है।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की उपयोग युक्तता नैरयिकों के समान है।

८. केवलियों में एक समय में दो उपयोगों का निषेध–

प्र. भन्ते ! केवलज्ञानी इस रत्नप्रभापृथ्वी को आकारों से, हेतुओं से, उपमाओं से, दृष्टान्तों से, वर्णों से, संस्थानों से, प्रमाणों से और प्रत्यवतारों (उपकरणों) से सहित जिस समय जानते हैं क्या उस समय देखते हैं तथा जिस समय देखते हैं क्या उस समय जानते हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"केवली इस रत्नप्रभापृथ्वी को आकारों यावत् प्रत्यवतारों सहित जिस समय जानते हैं उस समय नहीं देखते हैं और जिस समय देखते हैं उस समय नहीं जानते हैं ?"

उ. गौतम ! जो साकार है वह ज्ञान है और जो अनाकार है वह दर्शन है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है–

"केवली इस रत्नप्रभापृथ्वी को आकारों यावत् प्रत्यवतारों सहित जिस समय जानते हैं उस समय देखते नहीं हैं और जिस समय देखते हैं उस समय जानते नहीं हैं।"

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार सौधर्मकल्प से अच्युतकल्प पर्यन्त, ग्रैवेयकविमान, अनुत्तरविमान, ईषत्प्राग्भारापृथ्वी, परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशिक स्कन्ध यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या केवलज्ञानी इस रत्नप्रभापृथ्वी को अनाकारों से, अहेतुओं से, अनुपमाओं से, अदृष्टान्तों से, अवर्णों से, असंस्थानों से, अप्रमाणों से और अप्रत्यवतारों (उपकरणों) से

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"केवली णं इमं रयणप्पभं पुढविं अणागारेहिं जाव अपडोयारेहिं पासइ ण जाणइ।

एवं जाव ईसीपब्भारं पुढविं परमाणुपोग्गलं, अणंतपदेसियं खंधं पासइ, ण जाणइ।

–पण्ण. प. ३० सु. १९६३-१९६४

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"केवली इस रत्नप्रभापृथ्वी को अनाकारों से यावत् अप्रत्यावतारों से जिस समय देखते हैं उस समय जानते नहीं हैं।"

इसी प्रकार ईषत्प्राग्भारापृथ्वी पर्यन्त परमाणुपुद्गल तथा अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक केवली जिस समय देखते हैं उस समय जानते नहीं है।

९. उवओगोत्ताणं कायट्ठिई परूवणं–

प. सागारोवउत्ते णं भंते ! सागारोवउत्ते त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

अणागारोवउत्ते वि एवं चेव[1]।

–पण्ण. प. १८, सु. १३६२-६३

९. उपयोगयुक्तों की काय-स्थिति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! साकारोपयोगयुक्त जीव साकारोपयोगयुक्त रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

अनाकारोपयोगयुक्त जीव भी इसी प्रकार है।

१०. उवओगोत्ताणं अंतरकाल परूवणं–

सागारोवउत्ता य अणागारोवउत्ता य अंतरं जहण्णेण उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं। –जीवा. पडि. ९, सु. २३३

१०. उपयोगयुक्तों के अंतरकाल का प्ररूपण–

साकारोपयोगयुक्तों और अनाकारोपयोगयुक्तों का जघन्य और उत्कृष्ट अंतरकाल अंतर्मुहूर्त का है।

११. उवओगोत्ताणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं सागारोवउत्ताणं अणागारोवउत्ताण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा अणागारोवउता,

२. सागारोवउत्ता संखेज्जगुणा[2]। –पण्ण. प. ३, सु. २६२

११. उपयोगयुक्तों का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! इन साकारोपयोगयुक्त और अनाकारोपयोगयुक्त जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प अनाकारोपयोग युक्त जीव हैं,

२. (उनसे) साकारोपयोगयुक्त जीव संख्यातगुणे हैं।

१२. चउगईसु दंसणोवओग परूवणं[3]–

प. णेरइयाणं भंते ! जीवा किं चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी, केवलदंसणी ?

उ. गोयमा ! चक्खुदंसणी वि, अचक्खुदंसणी वि, ओहिदंसणी वि, णो केवलदंसणी। –जीवा. पडि. १, सु. ३२

प. सुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! जीवा किं चक्खुदंसणी जाव केवलदंसणी ?

उ. गोयमा ! णो चक्खुदंसणी, अचक्खुदंसणी, णो ओहिदंसणी, णो केवलदंसणी।

–जीवा. पडि. १, सु. १३ (१४)

एवं जाव सुहुम बायर वणप्फइकाइयाण वि।

–जीवा. पडि. १, सु. १४-२६

बेइंदिया तेइंदिया जहेव सुहुमपुढविकाइया।

–जीवा. पडि. १, सु. २८-२९

प. चउरिंदिया णं भंते ! जीवा किं चक्खुदंसणी जाव केवलदंसणी ?

उ. गोयमा ! चक्खुदंसणी वि, अचक्खुदंसणी वि, णो ओहिदंसणी, णो केवलदंसणी। –जीवा. पडि. १, सु. ३०

प. सम्मुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्खजोणिय जलयराणं भंते ! किं चक्खुदसंणी जाव केवलदंसणी ?

उ. गोयमा ! चक्खुदंसणी वि, अचक्खुदंसणी, वि, णो ओहिदंसणी, णो केवलदंसणी!

१२. चार गतियों में दर्शनोपयोग का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! नैरयिक जीव क्या चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी या केवलदर्शनी है ?

उ. गौतम ! चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी है किन्तु केवलदर्शनी नहीं है।

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव क्या चक्षुदर्शनी यावत् केवलदर्शनी है ?

उ. गौतम ! चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी नहीं है किन्तु अचक्षुदर्शनी है।

इसी प्रकार सूक्ष्म बादर वनस्पतिकायिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय जीवों का कथन सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों के समान जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! चतुरिन्द्रिय जीव क्या चक्षुदर्शनी यावत् केवलदर्शनी है ?

उ. गौतम ! चक्षुदर्शनी भी है और अचक्षुदर्शनी भी है किन्तु अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी नहीं है।

प्र. भन्ते ! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचर क्या चक्षुदर्शनी यावत् केवलदर्शनी है ?

उ. गौतम ! चक्षुदर्शनी भी है और अचक्षुदर्शनी भी है किन्तु अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी नहीं है।

---

१. जीवा. पडि. ९, सु. २३३ २. जीवा. पडि. ९, सु. २३३

३. दर्शन यह उपयोग का ही भेद है इसलिए यहां यह प्रकरण लिया जा रहा है।

थलयरा खहयरा एवं चेव।

प. गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्खजोणिय जलयराणं भंते ! किं चक्खुदंसणी जाव केवलदंसणी ?

उ. गोयमा ! चक्खुदंसणी वि, अचक्खुदंसणी वि, ओहिदंसणी वि, णो केवलदंसणी।

थलयरा खहयरा एवं चेव। *–जीवा. पडि. १, सु. ३५-४०*

प. सम्मुच्छिम मणुस्सा णं भंते ! किं चक्खुदंसणी जाव केवलदंसणी ?

उ. गोयमा ! णो चक्खुदंसणी, अचक्खुदंसणी, णो ओहिदंसणी, णो केवलदंसणी।

प. गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं भंते ! किं चक्खुदंसणी जाव केवलदंसणी ?

उ. गोयमा ! चक्खुदंसणी वि जाव केवलदंसणी वि। *–जीवा. पडि. १, सु. ४१*

प. देवा णं भंते ! किं चक्खुदंसणी जाव केवलदंसणी ?

उ. गोयमा ! चक्खुदंसणी वि, अचक्खुदंसणी वि, ओहिदंसणी वि, णो केवलदंसणी। *–जीवा. पडि. १, सु. ४२*

१३. दंसणस्स अगरुयलहुयत्त परूवणं–

प. दंसणे णं भंते ! किं गरुया ? लहुया ? गरुयलहुया ? अगरुयलहुया ?

उ. गोयमा ! णो गरुया, णो लहुया, णो गरुयलहुया, अगरुयलहुया। *–विया. स. १, उ. ९, सु. ११*

१४. चक्खुदंसणी आईणं कायट्ठिई परूवणं–

प. चक्खुदंसणी णं भंते ! चक्खुदंसणी त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं सागरोवमसहस्सं साइरेगं।

प. अचक्खुदंसणी णं भंते ! अचक्खुदसंणीत्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! अचक्खुदंसणी दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अणाईए वा अपज्जवसिए,
२. अणाईए वा सपज्जवसिए।

प. ओहिदंसणी णं भंते ! ओहिदंसणीत्ति कालओ केवचिरं

इसी प्रकार (सम्मूर्च्छिम) स्थलचर खेचर जीवों के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! गर्भजपंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचर क्या चक्षुदर्शनी यावत् केवलदर्शनी है ?

उ. गौतम ! चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी है किन्तु केवलदर्शनी नहीं है।

इसी प्रकार गर्भज स्थलचर खेचर जीवों के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य क्या चक्षुदर्शनी यावत् केवलदर्शनी है ?

उ. गौतम ! चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी नहीं है किन्तु अचक्षुदर्शनी है।

प्र. भन्ते ! गर्भज मनुष्य क्या चक्षुदर्शनी यावत् केवलदर्शनी है ?

उ. गौतम ! चक्षुदर्शनी भी है यावत् केवलदर्शनी भी है।

प्र. भन्ते ! देव क्या चक्षुदर्शनी यावत् केवलदर्शनी है ?

उ. गौतम ! चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी है किन्तु केवलदर्शनी नहीं है।

१३. दर्शन के अगुरुलघुत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! दर्शन क्या गुरु है, लघु है, गुरुलघु है या अगुरुलघु है ?

उ. गौतम ! दर्शन गुरु नहीं है, लघु नहीं है और गुरुलघु भी नहीं है किन्तु अगुरुलघु है।

१४. चक्षुदर्शनी आदि की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! चक्षुदर्शनी, चक्षुदर्शनी के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य-अन्तर्मुहूर्त तक,
उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार सागरोपम तक रहता है।

प्र. भन्ते ! अचक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! अचक्षुदर्शनी दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. अनादि अपर्यवसित,
२. अनादि सपर्यवसित।

प्र. भन्ते ! अवधिदर्शनी, अवधिदर्शनी के रूप में कितने काल तक

अचक्खुदंसणिस्स-दुविहस्स नत्थि अंतरं।
ओहिदंसणिस्स-जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं वणस्सइकालो।
केवलदंसणिस्स-णत्थि अंतरं। —जीवा. पडि. ९, सु. २४६

दोनों प्रकार के अचक्षुदर्शनियों का अन्तर नहीं है।
अवधिदर्शनी का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है।
केवलदर्शनी का अन्तर नहीं है।

१६. चक्खुदंसणीआईणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! चक्खुदंसणीणं जाव केवलदंसणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा ओहिदंसणी,
२. चक्खुदंसणी असंखेज्जगुणा,
३. केवलदंसणी अणंतगुणा,
४. अचक्खुदंसणी अणंतगुणा। —जीवा. पडि. ९, सु. २४६

१६. चक्षुदर्शनी आदि का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! इन चक्षुदर्शनी यावत् केवलदर्शनी में से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प अवधिदर्शनी हैं,
२. (उनसे) चक्षुदर्शनी असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) केवलदर्शनी अनन्तगुणे हैं,
४. (उनसे) अचक्षुदर्शनी अनन्तगुणे हैं।

□

पासणया अध्ययन : आमुख

पासणया शब्द जैन आगमों में प्रयुक्त एक विशिष्ट शब्द है, जिसमें ज्ञान एवं दर्शन का समावेश हो जाता है। ज्ञान एवं दर्शन का समावेश 'उपयोग' शब्द में भी होता है किन्तु उपयोग एवं पासणया (पश्यता) में भेद है। उपयोग में ज्ञान एवं दर्शन के समस्त भेदों का ग्रहण होता है, जबकि पासणया में मतिज्ञान एवं अचक्षुदर्शन का ग्रहण नहीं होता। पासणया के लिए हिन्दी में पश्यता शब्द का प्रयोग हुआ है जो बौद्धदर्शन में प्रचलित विपश्यना से अलग अर्थ रखता है। पासणया शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है यह शोध का विषय है, किन्तु इसके सम्बन्ध में आगमों में जो तथ्य संकलित हैं उनसे ज्ञात होता है कि यह उपयोग से भिन्न है।

उपयोग की भांति पासणया के दो भेद प्रतिपादित हैं–साकारपासणया और अनाकार पासणया। साकारपश्यता (पासणया) छह प्रकार की है–श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, केवलज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभंगज्ञान। मतिज्ञान एवं मतिअज्ञान को पासणया के भेदों में नहीं गिना गया है। इससे विदित होता है कि साकार पासणया के अन्तर्गत मात्र वर्तमानकाल को विषय करने वाले आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान एवं मतिअज्ञान का समावेश नहीं होता। पासणया त्रैकालिक विषयों से सम्बद्ध है। अनाकार पश्यता के तीन प्रकार हैं–चक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। इसमें अचक्षुदर्शन का समावेश नहीं होता, क्योंकि वह शेष तीन दर्शनों की अपेक्षा अपरिस्फुट होता है। अनाकारपश्यता में उन्हीं तीन दर्शनों का समावेश है जिनमें विशदता या परिस्फुटता है।

चौबीस दण्डकों में पासणया का विचार करने पर ज्ञात होता है कि एकेन्द्रिय जीवों में एक मात्र श्रुत अज्ञान साकार पश्यता पायी जाती है। द्वीन्द्रिय एवं त्रीन्द्रिय जीवों में श्रुतज्ञान या श्रुतअज्ञान साकारपश्यता मिलती है। चतुरिन्द्रिय जीवों में श्रुतज्ञान एवं श्रुतअज्ञान साकारपश्यता के अतिरिक्त चक्षुदर्शन अनाकारपश्यता भी उपलब्ध होती है क्योंकि वे चक्षुइन्द्रिय युक्त होते हैं। नैरयिकों, देवों एवं पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, श्रुतअज्ञान एवं विभंगज्ञान के भेद से चार प्रकार की साकारपश्यता तथा चक्षुदर्शन और अवधिदर्शन के भेद से दो प्रकार की अनाकार पश्यता हो सकती है। मनुष्यों में साकार पश्यता के छहों तथा अनाकार पश्यता के तीनों भेद पाए जाते हैं। यह कथन समुच्चय से है, प्रत्येक जीव की अपेक्षा उसमें भिन्नता रहती है।

जीव में पायी जाने वाली साकारपश्यता के आधार पर वह साकारपश्यी तथा अनाकारपश्यता के आधार पर वह अनाकारपश्यी कहा जाता है।

☐

२२. पासणया अज्झयणं

सूत्र

१. पासणयाभेय-प्पभेयपरूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! पासणया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पासणया पण्णत्ता, तं जहा–

१. *सागारपासणया*, २. *अणागारपासणया य।*

प. सागारपासणया णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुयणाणसागारपासणया,
२. ओहिणाणसागारपासणया,
३. मणपज्जवणाणसागारपासणया,
४. केवलणाणसागारपासणया,
५. सुयअण्णाणसागारपासणया,
६. विभंगणाणसागारपासणया।

प. अणागारपासणया णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. चक्खुदंसणअणागारपासणया,
२. ओहिदंसणअणागारपासणया,
३. केवलदंसणअणागारपासणया।

–पण्ण. प. ३०, सु. १९३६-१९३८

२. जीवेसु ओहेण पासणया परूवणं–

एवं जीवाणं पि। *–पण्ण. प. ३०, सु. १९३९*

३. चउवीसदंडएसु पासणया भेयप्पभेया परूवणं–

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! कइविहा पासणया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सागारपासणयाय, २. अणागारपासणयाय।

प. णेरइयाणं भंते ! सागारपासणया कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुयणाणसागारपासणया,
२. ओहिणाणसागारपासणया,
३. सुयअण्णाणसागारपासणया,
४. विभंगणाणसागारपासणया।

प. णेरइयाणं भंते ! अणागारपासणया कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. चक्खुदंसणअणागारपासणया य,
२. ओहिदंसणअणागारपासणया य।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमारा।

२२. पश्यता अध्ययन

सूत्र

१. पश्यता के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! पश्यता कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. *साकारपश्यता*, २. *अनाकारपश्यता।*

प्र. भन्ते ! साकारपश्यता कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. श्रुतज्ञानसाकारपश्यता,
२. अवधिज्ञानसाकारपश्यता,
३. मनःपर्यवज्ञानसाकारपश्यता,
४. केवलज्ञानसाकारपश्यता,
५. श्रुतअज्ञानसाकारपश्यता,
६. विभंगज्ञानसाकारपश्यता।

प्र. भन्ते ! अनाकारपश्यता कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. चक्षुदर्शनअनाकारपश्यता,
२. अवधिदर्शनअनाकारपश्यता,
३. केवलदर्शनअनाकारपश्यता।

२. सामान्य से जीवों में पश्यता का प्ररूपण–

इसी प्रकार समुच्चय जीवों में पश्यता का वर्णन करना चाहिए।

३. चौबीस दण्डकों में पश्यता के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों की पश्यता कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. साकारपश्यता, २. अनाकारपश्यता।

प्र. भन्ते ! नैरयिकों की साकारपश्यता कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. श्रुतज्ञानसाकारपश्यता,
२. अवधिज्ञानसाकारपश्यता,
३. श्रुतअज्ञानसाकारपश्यता,
४. विभंगज्ञानसाकारपश्यता।

प्र. भन्ते ! नैरयिकों की अनाकारपश्यता कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. चक्षुदर्शनअनाकारपश्यता,
२. अवधिदर्शनअनाकारपश्यता।

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प. दं. १२. पुढविक्काइयाणं भंते ! कइविहा पासणया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगा सागारपासणया।

प. पुढविक्काइयाणं भंते ! सागारपासणया कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगा सुयअण्णाणसागारपासणया पण्णत्ता।

दं. १३-१६. एवं जाव वणप्फइकाइयाणं।

प. दं. १७. बेइंदियाणं भंते ! कइविहा पासणया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगा सागारपासणया पण्णत्ता।

प. बेइंदियाणं भंते ! सागारपासणया कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुयणाणसागारपासणया य,

२. सुयअण्णाणसागारपासणया य।

दं. १८. एवं तेइंदियाण वि।

प. दं. १९. चउरिंदियाणं भंते ! कइविहा पासणया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सागारपासणया य, २. अणागारपासणया य।

सागारपासणया जहा बेइंदियाणं।

प. चउरिंदियाणं भंते ! अणागारपासणया कइविहा पण्णत्ता ?

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिकों की पश्यता कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! एक साकारपश्यता कही गई है।

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिकों की साकार पश्यता कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! एकमात्र श्रुत अज्ञान साकारपश्यता कही गई है।

दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त की पश्यता जाननी चाहिए।

प्र. दं. १७. भन्ते ! द्वीन्द्रियों की पश्यता कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! एकमात्र साकारपश्यता कही गई है।

प्र. भन्ते ! द्वीन्द्रियों की साकारपश्यता कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. श्रुतज्ञानसाकारपश्यता,

२. श्रुतअज्ञानसाकारपश्यता।

दं. १८. इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीवों की भी पश्यता कहनी चाहिए।

प्र. दं. १९. भन्ते ! चतुरिन्द्रियों की पश्यता कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. साकारपश्यता, २. अनाकारपश्यता।

इनकी साकारपश्यता द्वीन्द्रियों की साकारपश्यता के समान जाननी चाहिए।

प्र. भन्ते ! चतुरिन्द्रियों की अनाकार पश्यता कितने प्रकार की कही गई है ?

ते णं जीवा सागारपस्सी,
जे णं जीवा चक्खुदंसणी, ओहिदंसणी, केवलदंसणी,
ते णं जीवा अणागारपस्सी,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जीवा सागारपस्सी वि, अणागारपस्सी वि।"

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! किं सागारपस्सी, अणागारपस्सी ?
उ. गोयमा ! एवं चेव।
णवरं–सागारपासणयाए मणपज्जवणाणी केवलणाणीय वुच्चंति, अणागार-पासणयाए केवलदंसणं णत्थि।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमारा।
प. दं. १२. पुढविक्काइयाणं भंते ! किं सागारपस्सी, अणागारपस्सी ?
उ. गोयमा ! पुढविक्काइया सागारपस्सी, णो अणागारपस्सी।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"पुढविक्काइया सागारपस्सी, णो अणागारपस्सी ?"

उ. गोयमा ! पुढविक्काइयाणं एगा सुयअण्णाणसागार-पासणया पण्णत्ता।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"पुढविक्काइया सागारपस्सी, णो अणागारपस्सी।"

दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइया।

प. दं. १७. बेइंदियाणं भंते ! किं सागारपस्सी, अणागारपस्सी ?
उ. गोयमा ! सागारपस्सी, णो अणागारपस्सी।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"बेइंदिया सागारपस्सी, णो अणागारपस्सी ?"

उ. गोयमा ! बेइंदियाणं दुविहा सागारपासणया पण्णत्ता,
तं जहा– १. सुयणाणसागारपासणया य,
२. सुयअण्णाणसागारपासणया य।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"बेइंदिया सागारपस्सी, णो अणागारपस्सी।"

दं. १८. एवं तेइंदियाण वि।

प. दं. १९. चउरिंदियाणं भंते ! किं सागारपस्सी, अणागारपस्सी ?

वे जीव साकारपश्यता वाले हैं।
जो जीव चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी हैं,
वे जीव अनाकारपश्यता वाले हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जीव साकारपश्यता वाले भी हैं और अनाकारपश्यता वाले भी हैं।"

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक साकारपश्यता वाले हैं या अनाकारपश्यता वाले हैं ?
उ. गौतम ! **पूर्ववत् जानना चाहिए।**
विशेष–साकारपश्यता में मनःपर्यायज्ञानी और केवलज्ञानी तथा अनाकारपश्यता में केवलदर्शनी नहीं हैं ऐसा कहना चाहिए।

दं. २-११. **इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।**
प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिक साकारपश्यता वाले हैं या अनाकारपश्यता वाले हैं ?
उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक साकारपश्यता वाले हैं, अनाकारपश्यता वाले नहीं हैं।
प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"पृथ्वीकायिक जीव साकारपश्यता वाले हैं किन्तु अनाकार-पश्यता वाले नहीं हैं ?
उ. गौतम ! पृथ्वीकायिकों में एकमात्र श्रुतअज्ञान साकारपश्यता कही गई है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"पृथ्वीकायिक साकारपश्यता वाले हैं अनाकारपश्यता वाले नहीं हैं।"
दं. १३-१६. **इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त जानना चाहिए।**
प्र. दं. १७. भन्ते ! द्वीन्द्रिय साकारपश्यता वाले हैं या अनाकारपश्यता वाले हैं ?
उ. गौतम ! वे साकारपश्यता वाले हैं, अनाकारपश्यता वाले नहीं हैं।
प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि–
"द्वीन्द्रिय साकारपश्यता वाले हैं अनाकारपश्यता वाले नहीं हैं ?"
उ. गौतम ! द्वीन्द्रिय दो प्रकार की साकारपश्यता वाले कहे गए हैं,
यथा–१. श्रुतज्ञानसाकारपश्यता,
२. श्रुतअज्ञानसाकारपश्यता।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"द्वीन्द्रिय साकारपश्यता वाले हैं, अनाकारपश्यता वाले नहीं हैं।"
दं. १८. इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीवों के विषय में समझना चाहिए।
प्र. दं. १९. भन्ते ! चतुरिन्द्रिय साकारपश्यता वाले हैं या अनाकारपश्यता वाले हैं ?

उ. गोयमा ! चउरिंदिया सागारपस्सी वि, अणागारपस्सी वि।

प. से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ–
"चउरिंदिया सागारपस्सी वि, अणागारपस्सी वि ?"

उ. गोयमा ! जे णं चउरिंदियाणं सुयणाणी सुयअण्णाणी,
ते णं चउरिंदिया सागारपस्सी,
जे णं चउरिंदिया चक्खुदंसणी,
ते णं चउरिंदिया अणागारपस्सी।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"चउरिंदिया सागारपस्सी वि, अणागारपस्सी वि।"

दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया जहा णेरइया।

दं. २१. मणूसा जहा जीवा।

दं. २२-२४. अवसेसा जहा णेरइया जाव वेमाणिया[१]।

–पण्ण. प. ३०, सु. १९५४-१९६२

उ. गौतम ! चतुरिन्द्रिय साकारपश्यता वाले भी हैं और अनाकारपश्यता वाले भी हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण ऐसा कहा जाता है कि–

"चतुरिन्द्रिय साकारपश्यता वाले भी हैं और अनाकारपश्यता वाले भी हैं ?"

उ. गौतम ! जो चतुरिन्द्रिय श्रुतज्ञानी और श्रुतअज्ञानी हैं,
वे चतुरिन्द्रिय साकारपश्यता वाले हैं।
जो चतुरिन्द्रिय चक्षुदर्शनी हैं,
वे चतुरिन्द्रिय अनाकारपश्यता वाले हैं।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"चतुरिन्द्रिय साकारपश्यता वाले भी हैं और अनाकारपश्यता वाले भी हैं।"

दं. २०. पंचेंद्रिय तिर्यञ्चयोनिकों का कथन नैरयिकों के समान है।

दं. २१. मनुष्यों का कथन समुच्चय जीवों के समान है।

दं. २२-२४. अवशेष वैमानिकों पर्यन्त नैरयिकों के समान पश्यता वाले जानना चाहिए।

दृष्टि अध्ययन : आमुख

दृष्टि अध्ययन के अन्तर्गत तीन प्रकार की दृष्टियों का विवेचन हुआ है। तीन दृष्टियां हैं–१. सम्यग्दृष्टि, २. मिथ्यादृष्टि और ३. मिश्रदृष्टि। इनमें से कोई एक दृष्टि प्रत्येक जीव में पाई जाती है। कोई भी जीव दृष्टिविहीन नहीं होता, चाहे वह एकेन्द्रिय का पृथ्वीकाय जीव हो या सिद्ध जीव। सबमें दृष्टि विद्यमान है। यह दृष्टि जीवन एवं जगत् के प्रति उसके दृष्टिकोण की परिचायक है। जो जीव संसार में सुख समझते हैं, विषयभोगों में रमते हैं वे मिथ्यादृष्टि होते हैं। जो जीव इनसे ऊपर उठकर मोक्षसुख के अभिलाषी होते हैं वे सम्यग्दृष्टि होते हैं। इनकी विषय भोगों में आसक्ति तीव्र नहीं रहती। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए सात प्रकृतियों का क्षय, उपशम या क्षयोपशम होना आवश्यक है। वे सात प्रकृतियां हैं–अनन्तानुबंधी कषाय का चतुष्क, सम्यक्त्वमोहनीय, मिथ्यात्वमोहनीय एवं मिश्रमोहनीय। जब मोहकर्म की ये सात प्रकृतियाँ क्षीण होती हैं तभी सम्यग्दृष्टि बन पाती है। इसे दृष्टि की निर्वृत्ति कहते हैं। निर्वृत्ति का अर्थ है निष्पत्ति या निर्मिति। जब सम्यग्दर्शन भी न हो, मिथ्यादृष्टि भी न हो तो उसे सम्यंग्मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। मलयगिरि प्रज्ञापनासूत्र की वृत्ति (पत्रांक ३८८) में लिखते हुए कहते हैं कि जिनेन्द्र प्रज्ञप्त जीवादि तत्त्वों पर अविपरीत दृष्टि का होना सम्यग्दृष्टि है तथा जिनेन्द्र प्रज्ञप्त तत्त्वों पर विप्रतिपत्ति होना मिथ्यादृष्टि है। जिसे जिनेन्द्रप्रज्ञप्त तत्त्वों पर सम्यक्श्रद्धा भी न हो और विप्रतिपत्ति भी न हो, वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि होता है। उसे जिनप्रज्ञप्त तत्त्वों के सम्बन्ध में रुचि भी नहीं होती और अरुचि भी नहीं होती।

समुच्चय की अपेक्षा नैरयिकों एवं देवों में तीनों प्रकार की दृष्टि पायी जाती है। गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक एवं गर्भज मनुष्यों में भी ये तीनों दृष्टियां पायी जाती हैं। सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवों में सम्यग्दृष्टि एवं मिथ्यादृष्टि ये दो दृष्टियां कही गई हैं तथा सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में एक मात्र मिथ्यादृष्टि मानी गई है। एकेन्द्रिय जीवों में भी मात्र मिथ्यादृष्टि होती है। जबकि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय जीवों में दो दृष्टियां मानी जाती हैं–सम्यग्दृष्टि एवं मिथ्यादृष्टि। सिद्ध जीव मात्र सम्यग्दृष्टि होते हैं, वे मिथ्यादृष्टि एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होते। देवों में पाँच अनुत्तरविमान (के देवों) में भी मात्र सम्यग्दृष्टि रहती है अन्य नहीं।

दृष्टि का सम्बन्ध आत्मा से है, इसलिए वह संसारी जीवों में भी होती है तो सिद्धों में भी। दृष्टि सिद्धों की भांति अगुरुलघु होती है, वह गुरुलघुता से रहित होती है। जीव जिस दृष्टि से क्रिया करता है वह दृष्टि उस क्रिया की अपेक्षा करण कही जाती है। इस प्रकार दृष्टिकरण भी तीन ही होते हैं जो दृष्टि के तीन भेद हैं; यथा–सम्यग्दृष्टिकरण, मिथ्यादृष्टिकरण और सम्यग्मिथ्यादृष्टिकरण। जिस जीव में जो दृष्टि पायी जाती है वही दृष्टिकरण उसमें उपलब्ध होता है। इन दृष्टियों से तीन प्रकार का बंध होता है–१. जीवप्रयोगबंध, २. अनन्तरबंध और ३. परम्परबन्ध।

कायस्थिति की अपेक्षा से विचार करने पर ज्ञात होता है कि एक तो वे जीव हैं जिनमें एक बार सम्यग्दृष्टि उत्पन्न हो जाने के पश्चात् पुनः समाप्त नहीं होती। उनकी इस सम्यग्दृष्टि को सादि अपर्यवसित कहते हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी जीव हैं जिनमें सम्यग्दृष्टि प्रकट होने के पश्चात् पुनः चली जाती है, वह सम्यग्दृष्टि सादि सपर्यवसित कही जाती है। यह जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक तथा अधिकतम कुछ अधिक छियासठ सागरोपम तक रहती है। मिथ्यादृष्टि तीन प्रकार की होती है–१. सादि सपर्यवसित, २. अनादि अपर्यवसित एवं ३. अनादि सपर्यवसित। इनमें जो सादि सपर्यवसित है उसकी जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट काय स्थिति देशोन अपार्धपुद्गल परावर्तन काल है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि अर्थात् मिश्रदृष्टि जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहती है। कायस्थिति के अनुसार ही दृष्टियों के अन्तरकाल का भी इस अध्ययन में निरूपण हुआ है।

अल्पबहुत्व की अपेक्षा सबसे अल्प सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) जीव हैं। इनका तीसरा गुणस्थान माना गया है। यह गुणस्थान एक अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल तक नहीं रहता। फिर उसके अनन्तर जीव मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि ही होता है। मिश्रदृष्टि से सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं तथा सम्यग्दृष्टि से मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं। यह संसार मिथ्यादृष्टि जीवों से भरा पड़ा है।

□

२३. दिट्ठी अज्झयणं

सुत्त

१. जीव-चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य दिट्ठी भेय परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ?

उ. गोयमा ! जीवा सम्मदिट्ठी वि, मिच्छादिट्ठी वि,सम्मामिच्छादिट्ठी वि[1]।

दं. १. एवं णेरइया वि[2]।

दं. २-११. असुरकुमारा वि एवं चेव जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविक्काइयाणं भंते ! किं सम्मदिट्ठी , मिच्छादिट्ठी , सम्मामिच्छादिट्ठी ?

उ. गोयमा ! पुढविक्काइया णो सम्मदिट्ठी , मिच्छादिट्ठी , णो सम्मामिच्छादिट्ठी[3]।

दं. १३-१६. एवं जाव वणप्फइकाइया[4]।

प. दं. १७. बेइंदियाणं भंते ! किं सम्मदिट्ठी , मिच्छादिट्ठी , सम्मामिच्छादिट्ठी ?

उ. गोयमा ! बेइंदिया सम्मदिट्ठी वि, मिच्छादिट्ठी वि, णो सम्मामिच्छादिट्ठी[5]।

दं. १८-१९. एवं तेइंदिया चउरिंदिया वि[6]।

२३. दृष्टि अध्ययन

सूत्र

१. जीव चौबीसदंडकों और सिद्धों में दृष्टि के भेदों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या जीव सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि हैं या सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं ?

उ. गौतम ! जीव सम्यगदृष्टि भी हैं, मिथ्यादृष्टि भी हैं और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी हैं।

दं. १. इसी प्रकार नैरयिक भी तीनों दृष्टि वाले हैं।

दं. २-११. असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त के भी तीनों दृष्टियाँ पाई जाती है।

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव क्या सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि हैं या सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि हैं।

दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १७. भन्ते ! द्वीन्द्रिय जीव सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि हैं या सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं ?

उ. गौतम ! द्वीन्द्रिय जीव सम्यग्दृष्टि भी हैं, मिथ्यादृष्टि भी हैं किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं है।

दं. १८-१९. इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय की भी

उ. गोयमा ! तिविहा दिट्ठी निव्वत्ती पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मदिट्ठी निव्वत्ती,
२. मिच्छादिट्ठी निव्वत्ती,
३. सम्मामिच्छादिट्ठी निव्वत्ती।

दं. १-२४. एवं जाव वेमाणियाणं जस्स जइविहा दिट्ठी तस्स तइ भाणियव्वा। *–विया. स. १९, उ. ८, सु. ३६-३७*

उ. गौतम ! दृष्टि निर्वृत्ति तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. सम्यग्दृष्टि निर्वृत्ति,
२. मिथ्यादृष्टिनिर्वृत्ति
३. सम्यग्मिथ्यादृष्टिनिर्वृत्ति।

दं. १-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जिसकी जितनी दृष्टियाँ हों उतनी दृष्टि निर्वृत्ति कहनी चाहिए।

४. दिट्ठी करण भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! दिट्ठी करणे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तिविहे दिट्ठी करणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सम्मदिट्ठी करणे,
२. मिच्छादिट्ठी करणे
३. सम्मामिच्छादिट्ठी करणे

दं. १-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

णवरं–जस्स जं अत्थि तस्स तं सव्वं भाणियव्वं। *–विया. स. १९, उ. ९, सु. ८*

४. दृष्टि करण के भेद और चौबीसदंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! दृष्टिकरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! दृष्टिकरण तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सम्यग्दृष्टिकरण,
२. मिथ्यादृष्टिकरण,
३. सम्यग्मिथ्यादृष्टिकरण।

दं. १-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–जिसके जो दृष्टि हो वह सब कहना चाहिए।

५. दिट्ठी एहिं बंध पगारा चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. सम्मदिट्ठीएणं मिच्छादिट्ठीएणं सम्मामिच्छादिट्ठीएणं भंते ! कइविहे बंधे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तिविहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जीवप्पओग बंधे,
२. अणंतर बंधे,
३. परंपर बंधे।

एवं चउवीसं दंडगा भाणियव्वा।

णवरं–जाणियव्वं जस्स जं अत्थि। *–विया. स. २०, उ. ७, सु. १८*

५. दृष्टियों द्वारा बंध के प्रकार और चौवीस दंडकों में प्ररूपण–

प्र. भंते ! सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि के द्वारा बंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! बंध तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. जीवप्रयोग बंध,
२. अनन्तर बंध,
३. परंपर बंध।

इसी प्रकार चौबीस दंडकों में कहना चाहिए।

विशेष–जिसके जो हो वह जानना चाहिए।

६. सम्मुच्छिम गब्भवक्कंतिय पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु मणुस्सेसु य दिट्ठी परूवणं–

प. सम्मुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्खजोणिय जलयराणं भंते ! कइ दिट्ठी ओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! दो दिट्ठी ओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. सम्मदिट्ठी वि,
२. मिच्छादिट्ठी वि

नो सम्मामिच्छादिट्ठी।

थलयरा खहयरा वि एवं चेव।

प. गब्भवक्कंतिय पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय जलयराणं भंते! कइ दिट्ठी ओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! तओ दिट्ठी ओ, पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. सम्मदिट्ठी वि,
२. मिच्छादिट्ठी वि,
३. सम्मामिच्छादिट्ठी वि।

थलयरा खहयरा वि एवं चेव। *–जीवा. पडि. १, सु. ३५-४०*

६. सम्मूर्च्छिम गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों में दृष्टि भेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचरों में कितनी दृष्टियाँ कही गई हैं ?

उ. गौतम ! दो दृष्टियाँ कही गई हैं, यथा–

१. सम्यग्दृष्टि
२. मिथ्यादृष्टि

वे सम्यग्मिथ्यादृष्टि वाले नहीं होते हैं।

इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम स्थलचरों, खेचरों में भी दो दृष्टियाँ जाननी चाहिए।

प्र. भंते ! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचरों के कितनी दृष्टियाँ कही गई हैं ?

उ. गौतम ! तीन दृष्टियाँ कही गई हैं, यथा–

१. सम्यग्दृष्टि,
२. मिथ्यादृष्टि,
३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि।

इसी प्रकार गर्भज स्थलचरों खेचरों में भी तीनों दृष्टियाँ जाननी चाहिए।

प. सम्मुच्छिम मणुस्सा णं भंते ! कइ दिट्ठीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! एगा दिट्ठी पण्णत्ता, तं जहा–
नो सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, नो सम्मामिच्छादिट्ठी।

प. गब्भवक्कंतिय मणुस्सा णं भंते ! कइ दिट्ठीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! तओ दिट्ठीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. सम्मदिट्ठी वि,
२. मिच्छादिट्ठी वि,
३. सम्मामिच्छादिट्ठी वि। –*जीवा. पडि. १, सु. ४१*

७. वेमाणिय देवेसु दिट्ठी भेय परूवणं–

प. सोहम्मीसाणदेवा णं भंते ! किं सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी ?

उ. गोयमा ! तिण्णि वि जाव अंतिम गेवेज्जादेवा सम्मदिट्ठी वि, मिच्छादिट्ठी वि, सम्मामिच्छादिट्ठी वि।

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में कितनी दृष्टियाँ कही गई हैं ?

उ. गौतम ! एक दृष्टि कही गई है, यथा–
वे सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं हैं एक मात्र मिथ्यादृष्टि हैं।

प्र. भंते ! गर्भज मनुष्यों में कितनी दृष्टियाँ कही गई हैं ?

उ. गौतम ! तीनों दृष्टियाँ कही गई हैं, यथा–
१. सम्यग्दृष्टि,
२. मिथ्यादृष्टि,
३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि।

७. वैमानिक देवों में दृष्टि भेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या सौधर्म-ईशान कल्प के देव सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि हैं या सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं ?

उ. गौतम ! तीनों प्रकार के हैं। अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त के देव सम्यग्दृष्टि भी, मिथ्यादृष्टि भी और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी होते हैं।

साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं,
मिच्छादिट्ठियस्स अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं,
अणाइयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं,
साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइं साइरेगाइं,
सम्मामिच्छादिट्ठिस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।

–जीवा. पडि. ९, सु. २३७

सादि सपर्यवसित का अंतर जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट अनन्तकाल अर्थात् देशोन अपार्धपुद्गल परावर्त पर्यन्त है।
अनादि अपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का अन्तर नहीं है।
अनादि सपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का भी अन्तर नहीं है।
सादि सपर्यवसित का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहुर्त,
उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम है।
सम्यग्मिथ्यादृष्टि का अंतर जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट अनंतकाल देशोन अपार्धपुद्गल परावर्तन पर्यंत है।

१०. सम्मद्दिट्ठीआई जीवाणं अप्पबहुत्तं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं सम्मदिट्ठी णं, मिच्छादिट्ठीण, सम्मामिच्छादिट्ठीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा सम्मामिच्छादिट्ठी,
२. सम्मदिट्ठी अणंतगुणा,
३. मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा[1]।

–पण्ण. प. ३, सु. २५६

१०. सम्यग्दृष्टि आदि जीवों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं,
२. (उनसे) सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं,
३. (उनसे) मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणे हैं।

१. जीवा. पडि. ९, सु. २३६

इन्द्रियादि की सहायता से होने वाले ज्ञान के अवग्रहादि चार सोपान हैं। कोई भी अवायज्ञान बिना अवग्रह एवं ईहा के अवायत्व तक नहीं पहुँचता और बिना अवायज्ञान के धारणा नहीं होती। ज्ञान की यह प्रक्रिया इतनी शीघ्र होती है कि इसके क्रमशः होने का साधारणतया पता नहीं चलता है।

तत्त्वार्थसूत्र (१-१६) में अवग्रहादि के बहु, बहुविध, क्षिप्र, निश्रित, असन्दिग्ध, ध्रुव एवं इनके विपरीत अल्प, अल्पविध, अक्षिप्र, अनिश्रित, सन्दिग्ध और अध्रुव ये १२ भेद निरूपित हैं। स्थानांग सूत्र में इनके छह-छह भेदों का उल्लेख है, यथा–१. शीघ्र, २. बहु, ३. बहुविध, ४. ध्रुव, ५. अनिश्रित (हेतु आदि का सहारा लिए बिना जानना) और ६. असंदिग्ध।

आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायवाची शब्द के रूप में मतिज्ञान शब्द प्रसिद्ध है किन्तु इस ज्ञान की अनेक विशेषताओं को व्यक्त करने वाले ईहा, अपोह, विमर्श, मार्गणा, गवेषणा, संज्ञा, स्मृति एवं प्रज्ञा को भी आभिनिबोधिक ज्ञान कहा गया है। अवग्रह अथवा अर्थावग्रह को व्यक्त करने वाले अन्य शब्द हैं–अवग्रहणता, उपधारणता, श्रवणता, अवलम्बनता और मेधा। ईहा के समानार्थक शब्द हैं–आभोगनता, मार्गणता, गवेषणता, चिन्ता और विमर्श। अवाय के समानार्थक शब्द आवर्तनता प्रत्यावर्तनता, अपाय, बुद्धि और विज्ञान हैं। धारणा को साधारणा, स्थापना, प्रतिष्ठा और कोष्ठ भी कहा है।

अवग्रह का काल नन्दीसूत्र के अनुसार एक समय है। ईहा एवं अवाय का काल अन्तर्मुहूर्त है तथा धारणा का काल संख्यात या असंख्यात है।

अवग्रह आदि के भेदों के आधार पर आभिनिबोधिक ज्ञान के ३३६ भेद किए जाते हैं। उनमें व्यंजनावग्रह के ४ (चक्षु एवं मन को छोड़कर) तथा अर्थावग्रह, ईहा, अवाय एवं धारणा के ६-६ भेदों को बहु, बहुविध आदि १२ भेदों से गुणा करने पर ३३६ (४ + ६ + ६ + ६ + ६ = २८ × १२ = ३३६) भेद ही जाते हैं। इनमें बुद्धि के चार भेद मिलाने पर ३४० भेद बनते हैं।

आभिनिबोधिक ज्ञान पौद्गलिक इन्द्रियादि की सहायता से होने पर भी वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श से रहित होता है। ज्ञान तो जीव का स्वभाव है। वह ज्ञान के आवरण का क्षयोपशम या क्षय होने पर प्रकट होता है। इसलिए वह वर्णादि से रहित होता है।

श्रुतज्ञान क्या है? श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम होने पर आत्मा में संकेतग्राही शब्द आदि के निमित्त से जो ज्ञान प्रकट होता है वह श्रुतज्ञान है। यह श्रुतज्ञान आभिनिबोधिक ज्ञान के अनन्तर होता है। शब्द या संकेत तो उसमें निमित्त मात्र होता है, ज्ञान आत्मा में ही प्रकट होता है। इस दृष्टि से परमार्थतः तो जीव ही श्रुत है किन्तु श्रुतज्ञान का कारणभूत या कार्यभूत शब्द उपचार से श्रुतज्ञान कहलाता है, यथा–"श्रुतज्ञानस्य कारणभूते कार्यभूते वा शब्दे श्रुतोपचारः क्रियते। ततो न परमार्थतः शब्दः श्रुतम् किन्तूपचारतः इत्यदोषः। परमार्थतस्तर्हि किं श्रुतम्? परमार्थतस्तु जीवः श्रुतम्, ज्ञान-ज्ञानिनोरनन्य भूतत्वात्।" (विशेषावश्यक भाष्य, वृत्ति गाथा ९९)।

श्रुतज्ञान भी दो प्रकार का होता है–द्रव्यश्रुत और भावश्रुत। श्रोत्र रहित एकेन्द्रियादि जीवों में भावश्रुत ज्ञान होता है, द्रव्यश्रुत नहीं।

आगम में श्रुतज्ञान के १४ भेद प्रसिद्ध हैं, वे हैं–१. अक्षरश्रुत, २. अनक्षरश्रुत, ३. संज्ञिश्रुत, ४. असंज्ञिश्रुत, ५. सम्यक्श्रुत, ६. मिथ्याश्रुत, ७. सादिश्रुत, ८. अनादिश्रुत, ९. सपर्यवसितश्रुत, १०. अपर्यवसितश्रुत, ११. गमिकश्रुत, १२. अगमिकश्रुत, १३. अंगप्रविष्टश्रुत और १४. अनंगप्रविष्टश्रुत।

अक्षर अर्थात् वर्णों के निमित्त से जो श्रुतज्ञान प्रकट होता है वह अक्षरश्रुतज्ञान कहलाता है। यह संज्ञा, व्यंजन एवं लब्ध्यक्षर के भेद से तीन प्रकार का होता है। ऊँचा सांस लेने, श्वास छोड़ने, थूकने, खाँसने, छींकने आदि अवर्णात्मक संकेतों से जो श्रुतज्ञान होता है उसे अनक्षरश्रुतज्ञान कहते हैं। यह अनेक प्रकार का होता है। संज्ञा अर्थात् मनोज्ञान से युक्त संज्ञी का श्रुतज्ञान संज्ञिश्रुत कहलाता है। यह तीन प्रकार का होता है– १. कालिकी उपदेश, २. हेतु-उपदेश और ३. दृष्टिवाद उपदेश। कालिकी संज्ञा में अतीत अर्थ का स्मरण एवं भविष्यत् वस्तु का चिन्तन होता है। इसे दीर्घकालिकी संज्ञा भी कहा जाता है। छाया, धूप, आहार आदि इष्ट अनिष्ट वस्तुओं में से जो अपनी देह-रक्षा के लिए इष्ट में प्रवृत्त होते हैं ऐसी हेतुवादोपदेश संज्ञा से द्वीन्द्रियादि जीव युक्त होते हैं, अतः उनमें वह संज्ञा पायी जाती है एवं उनका ज्ञान हेतु-उपदेश संज्ञिश्रुत कहलाता है। क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को भी संज्ञी कहा जाता है। उसकी यह संज्ञा दृष्टिवादोपदेश से है। उसका श्रुतज्ञान दृष्टिवादोपदेश संज्ञीश्रुतज्ञान है। असंज्ञिश्रुतज्ञान संज्ञीश्रुत से भिन्न होता है। यह असंज्ञियों में होता है। सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अर्हत् द्वारा प्रणीत द्वादशांग रूप गणिपिटक सम्यक्श्रुत कहलाता है। अज्ञानी एवं मिथ्यादृष्टियों द्वारा स्वच्छंद और विपरीत बुद्धि से कल्पित ग्रन्थ मिथ्याश्रुत हैं, यथा–महाभारत, रामायण आदि। यहाँ पर एक स्पष्टीकरण आवश्यक है, वह यह कि मिथ्यादृष्टि द्वारा गृहीत ग्रन्थ मिथ्याश्रुत हैं तथा सम्यग्दृष्टि द्वारा गृहीत ग्रन्थ सम्यक्श्रुत हैं। यह ज्ञाता की दृष्टि पर भी निर्भर करता है। द्वादशांग रूप गणिपिटक पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा व्युच्छित्ति के कारण सादि-सान्त है तथा अव्युच्छित्ति (द्रव्यार्थिकनय से) के कारण आदि अन्त रहित है। सादि-सान्त होने पर उसे सादि-सपर्यवसित तथा आदि-अन्त रहित होने पर अनादि अपर्यवसित कहा जाता है। द्वादशांगों में से दृष्टिवाद गमिकश्रुत है तथा दृष्टिवाद के अतिरिक्त अंग-आगम अगमिकश्रुत हैं। आचारांग आदि १२ अंग आगमों को अंगप्रविष्ट कहते हैं। अंगबाह्य आगमों को अनंगप्रविष्ट कहा जाता है। ये दो प्रकार के होते हैं–आवश्यक सूत्र और आवश्यक से व्यतिरिक्त आगम। आवश्यक श्रुत ६ प्रकार का माना गया है–१. सामायिक, २. चतुर्विंशतिस्तव, ३. वन्दना, ४. प्रतिक्रमण, ५. कायोत्सर्ग और ६. प्रत्याख्यान। आवश्यक व्यतिरिक्तश्रुत दो प्रकार का प्रतिपादित है–१. कालिक और २. उत्कालिक। कालिक एवं उत्कालिकश्रुत अनेक प्रकार के हैं।

इस अध्ययन में अंग-आगमों एवं अंगबाह्य-आगमों का समवायांग, नन्दी आदि सूत्रों के आधार पर विस्तृत परिचय दिया गया है। समस्त आगमों में किस प्रकार का वर्णन है, उसे इस अध्ययन को पढ़कर संक्षेप में जाना जा सकता है। कहीं-कहीं समस्त आगमों में ही कुछ पाठ दिए गए हैं। एक प्रश्न उपस्थित होता है, वह यह कि आगमों की जो विषय-वस्तु समवायांग एवं नन्दीसूत्र में दी गई है, उसमें एवं वर्तमान में प्राप्त आगमों की विषय-वस्तु में पर्याप्त भेद क्यों है? काल-प्रभाव एवं स्मृति भ्रंश भी इस भेद का कारण हो सकता है।

स्थानांग सूत्र में पाप श्रुत के नौ प्रकार हैं, यथा—उत्पात, निमित्त, मन्त्र, आख्यायिका, चिकित्सा, कला, आवरण, अज्ञान और मिथ्या प्रवचन। समवायांग में पाप श्रुत के प्रसंग २९ प्रकार के प्रतिपादित हैं। इनमें भौम, उत्पात, स्वप्न, अन्तरिक्ष, अंग, स्वर, व्यंजन और लक्षण इन आठ भेदों के सूत्र, वृत्ति एवं वार्तिक के आधार पर ८×३=२४ भेद बनते हैं! फिर विकथानुयोग, विद्यानुयोग, मंत्रानुयोग, योगानुयोग और अन्यतीर्थिक प्रवृत्तानुयोग को मिलाकर २९ भेद हो जाते हैं।

स्वप्न को पाप श्रुत में गिना गया है। अतः इसी प्रसंग में स्वप्न के सम्बन्ध में भी चर्चा हुई है। स्वप्न दर्शन पाँच प्रकार का बताया गया है—१. यथार्थ, २. विस्तृत, ३. चिन्ता स्वप्न, ४. तद्विपरीत और ५. अव्यक्त स्वप्न दर्शन। सोता हुआ एवं जागता हुआ प्राणी स्वप्न नहीं देखता है, किन्तु सुप्त-जागृत स्वप्न देखता है। इसे आधुनिक मनोविज्ञान में चित्त की अवचेतन अवस्था तथा अन्य भारतीय दर्शनों में स्वप्नावस्था ही कहा गया है।

प्रत्यक्षज्ञान के नन्दीसूत्र में दो भेद किए गए हैं—इन्द्रिय प्रत्यक्ष और २. नोइन्द्रिय-प्रत्यक्ष। पाँच इन्द्रियों के आधार पर इन्द्रिय-प्रत्यक्ष के श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष आदि पाँच भेद किए गए हैं। नोइन्द्रिय-प्रत्यक्ष के तीन भेद प्रतिपादित हैं—१. अवधिज्ञान, २. मनःपर्यवज्ञान और ३. केवलज्ञान। नोइन्द्रिय का अर्थ यहाँ मन नहीं, आत्मा है। मन से होने वाले प्रत्यक्ष को यहाँ अलग से नहीं गिना गया है। प्रमाण-प्रतिपादन करने वाले आचार्यों ने सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के अन्तर्गत इन्द्रिय एवं अनिन्द्रिय (मन) प्रत्यक्ष ये दो भेद करके मन से होने वाले प्रत्यक्ष को भी पृथक् रूपेण स्थान दिया है। पारमार्थिक प्रत्यक्ष के अन्तर्गत वे अवधि आदि तीन ज्ञानों को गिनाते हैं, जिसे नन्दीसूत्र में नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष के रूप में कहा गया है।

क्षेत्र, काल आदि की मर्यादा से सीधे आत्मा के द्वारा जो रूपी पदार्थों का ज्ञान होता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं। यह अवधिज्ञान दो प्रकार का होता है—१.भवप्रत्ययिक और २. क्षायोपशमिक। जन्म से होने वाला अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक कहलाता है। यह देवों एवं नारकों को होता है। जन्म से प्राप्त नहीं होकर बाद में अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम से जो अवधिज्ञान होता है वह क्षायोपशमिक अवधिज्ञान कहलाता है। यह मनुष्यों और पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों को होता है। क्षायोपशमिक (गुणप्रत्यय) अवधिज्ञान छह प्रकार का होता है—१. आनुगामिक, २. अनानुगामिक, ३. वर्द्धमान, ४. हीयमान, ५. प्रतिपाती और ६. अप्रतिपाती।

जो अवधिज्ञान जिस स्थान-विशेष में प्रकट हुआ है वह उस स्थान को छोड़ने पर भी ज्ञाता के साथ-साथ अनुगमन करे उसे आनुगामिक अवधिज्ञान कहते हैं। आनुगामिक अवधिज्ञान दो प्रकार का होता है—१. अन्तगत और २. मध्यगत। अन्तगत अवधिज्ञान पुरतः मार्गतः और पार्श्वतः के भेद से तीन प्रकार का है। पुरतः आनुगामिक अवधिज्ञान से ज्ञाता आगे के प्रदेश में संख्यात असंख्यात योजन तक पदार्थों को देखता हुआ चलता है। पीछे के प्रदेश में संख्यात असंख्यात योजन तक पदार्थों को देखते हुए चलने वाले को मार्गतः अन्तगत अवधिज्ञान होता है। पार्श्वतः अवधिज्ञान से पार्श्ववर्ती प्रदेश में संख्यात असंख्यात योजन तक के पदार्थों को देखते हुए चला जा सकता है। मध्यगत अवधिज्ञान से चारों ओर के संख्यात असंख्यात योजन तक के पदार्थों को देखते हुए ज्ञाता चलता है। अन्तगत एवं मध्यगत आनुगामिक अवधिज्ञान में एक अन्तर यह है कि अन्तगत अवधिज्ञान से अवधिज्ञानी एक दिशा में ही जानता-देखता है जबकि मध्यगत अवधिज्ञान से वह सभी दिशाओं में जानता-देखता है।

अनानुगामिक अवधिज्ञान जिस क्षेत्र में किसी ज्ञाता को प्रकट होता है वह ज्ञाता उसी क्षेत्र में स्थित होकर संख्यात एवं असंख्यात योजन तक विशेष रूप से एवं सामान्य रूप से रूपी पदार्थों को जानता-देखता है, परन्तु अन्यत्र जाने पर नहीं जानता है, नहीं देखता है।

अध्यवसायों के विशुद्ध होने पर एवं चारित्र की वृद्धि होने पर तथा आवरण कर्म-मल से रहित होने पर जो अवधिज्ञान दिशाओं एवं विदिशाओं में चारों ओर बढ़ता है उसे वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं। जो अवधिज्ञान ह्रास को प्राप्त होता है उसे हीयमान अवधिज्ञान कहा जाता है। यह अध्यवसायों की अशुभता एवं संक्लिष्ट चारित्र के कारण ह्रास को प्राप्त होता है। जो अवधिज्ञान एक बार प्रकट होकर नष्ट हो जाता है वह प्रतिपाती अवधिज्ञान कहलाता है तथा जो अवधिज्ञानी अपने अवधिज्ञान से अलोक के एक आकाश प्रदेश को भी जानता है—देखता है उसका अवधिज्ञान अप्रतिपाती (जीवन पर्यन्त रहने वाला) होता है।

अवधिज्ञानी का जघन्य अवधिज्ञान कितना होता है तथा क्षेत्र एवं काल से अवधिज्ञान का क्या सम्बन्ध रहता है इसके विषय में भी इस अध्ययन में सामग्री निहित है। ऐसा कहा गया है कि तीन समय के आहारक सूक्ष्म-निगोद जीव की जघन्य अवगाहना जितनी होती है उतना ही जघन्य अवधिज्ञान का क्षेत्र है तथा समस्त सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त अग्निकाय के जीव सभी दिशाओं में जितना क्षेत्र निरन्तर पूर्ण करें उतना क्षेत्र परमावधि ज्ञानी का माना गया है। यदि अवधिज्ञानी क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग को जानता है तो काल से आवलिका का संख्यातवाँ भाग जानता है। यदि क्षेत्र से मनुष्य लोक परिमाण क्षेत्र को जानता है तो काल से एक वर्ष पर्यन्त भूत-भविष्यत् काल को जानता है। अवधिज्ञान में काल की वृद्धि होने पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव चारों की वृद्धि होती है। क्षेत्र की वृद्धि होने पर काल की वृद्धि में भजना (विकल्प) है। अवधिज्ञान में द्रव्य और पर्याय की वृद्धि होने पर क्षेत्र और काल में वृद्धि की भजना (विकल्प) होती है, क्योंकि काल सूक्ष्म होता है किन्तु क्षेत्र उससे भी सूक्ष्मतर होता है। इसका कारण है कि अंगुल के प्रथम श्रेणी रूप क्षेत्र में असंख्यात अवसर्पिणियों जितने समय होते हैं।

नारक, देव एवं पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों का अवधिज्ञान देशावधि है; जबकि मनुष्यों का अवधिज्ञान देशावधि एवं सर्वावधि दोनों प्रकार का होता है।

चौबीस दण्डकों में कौन अवधिज्ञानी कितने क्षेत्र को जानता-देखता है इसका विचार करने पर ज्ञात होता है कि नैरयिकों में सबसे कम क्षेत्र (अवधिज्ञान का) सप्तमनरक के नैरयिक का होता है। वह जघन्य आधा गाऊ तथा उत्कृष्ट एक गाऊ पर्यन्त जानता-देखता है। [illegible] प्रथम नरक का नैरयिक जघन्य [illegible] गाऊ तथा उत्कृष्ट चार गाऊ पर्यन्त जानता-देखता है। असुरकुमार देव जघन्य २५ योजन तथा उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप समुद्रों को जानते-देखते हैं। शेष नौ भवनवासी देव जघन्य २५ योजन एवं उत्कृष्ट संख्यात द्वीप-समुद्रों को जानते-देखते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव अपने अवधिज्ञान से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र को तथा उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप समुद्रों को जानते-देखते हैं। मनुष्य भी जघन्य [illegible] पंचेन्द्रिय [illegible]

अन्त करेगा या नहीं। छद्मस्थ एवं केवलियों में सात बातों का अन्तर होता है। छद्मस्थ १. प्राणों का अतिपात करता है, २. मृषा बोलता है, ३. अदत्त का ग्रहण करता है, ४. शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का आस्वादक होता है, ५. पूजा-सत्कार का अनुमोदन करता है, ६. सावद्य को सावद्य कहकर भी उसका सेवन करता है, ७. जैसा कहता है वैसा नहीं करता है। केवली का व्यवहार इन सातों बातों के विपरीत होता है, तथा वह प्राणों का अतिपात नहीं करता है आदि।

अनुत्तरोपपातिक देव अपने स्थान पर रहकर ही यहाँ रहे हुए केवलियों के साथ आलाप और संलाप कर सकते हैं। केवली के दस अनुत्तर (उत्कृष्ट) कहे गए हैं–१. अनुत्तर ज्ञान, २. अनुत्तर दर्शन, ३. अनुत्तर चारित्र, ४. अनुत्तर तप, ५. अनुत्तर वीर्य, ६. अनुत्तर क्षान्ति, ७. अनुत्तर मुक्ति, ८. अनुत्तर आर्जव, ९. अनुत्तर मार्दव और १०. अनुत्तर लाघव। केवली प्रशस्त मन एवं वचन को धारण करते हैं। कुछ देवता इसे जानते हैं तथा कुछ नहीं।

पाँच ज्ञानों में से किसी भी विशुद्ध ज्ञान की उत्पत्ति में सुनना एवं जानना निमित्त बनते हैं तथा इन ज्ञानों की विशुद्धता के लिए आरम्भ एवं परिग्रह को जानकर छोड़ना आवश्यक है। केवली प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण कर्मपुद्गलों का क्षय या उपशम होने पर ही पाता है।

अज्ञान तीन प्रकार का होता है–१. मति अज्ञान, २. श्रुत अज्ञान और ३. विभंगज्ञान। मनःपर्याय ज्ञान और केवलज्ञान ये दो ज्ञान अज्ञान रूप नहीं होते हैं। शेष तीन ज्ञान अज्ञान रूप होते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव के ये तीनों ज्ञान ज्ञानरूप होते हैं तथा मिथ्यादृष्टि के ये तीनों अज्ञान रूप होते हैं। अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं है अपितु अशुद्ध (मिथ्यादृष्टि युक्त) ज्ञान को अज्ञान कहा गया है। मति-अज्ञान के भी आभिनिबोधिक ज्ञान की भांति चार भेद होते हैं–१. अवग्रह, २. ईहा, ३. अवाय और ४. धारणा। इन चारों के भेदोपभेद भी अज्ञान में घटित होते हैं। अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा स्वच्छन्द बुद्धि से कल्पित ग्रन्थ श्रुत अज्ञान कहे गए हैं, यथा–महाभारत यावत् सांगोपांग वेद।

अवधिज्ञान जब अज्ञान रूप होता है तो उसे विभंगज्ञान कहा जाता है। यह भी मिथ्यादृष्टियों को होता है। सम्यग्दृष्टियों को अवधिज्ञान होता है। विभंग ज्ञान को ग्रामसंस्थित, द्वीप संस्थित, समुद्रसंस्थित आदि भेदों से अनेक प्रकार का कहा गया है। विभंग ज्ञान को सात प्रकार का भी कहा गया है, यथा–१. एक दिशा में लोक का ज्ञान, २. पाँच दिशाओं में लोक का ज्ञान, ३. जीव क्रियावरण है, ४. पुद्गल निर्मित शरीर ही जीव है, ५. पुद्गलों से अनिष्पन्न शरीर वाला जीव है, ६. रूपी जीव है और ७. ये सब (गतिशील पदार्थ) जीव हैं।

ज्ञानों की उत्पत्ति मुख्यतः उनके आवरण के क्षयोपशम अथवा क्षय से होती है। धर्मश्रवण आदि इसमें निमित्त मात्र बनते हैं। जब उपासिका आदि से धर्म सुने बिना ही ज्ञान प्रकट हो जाता है तो उसे अश्रुत्वा ज्ञानोपार्जन कहा जाता है तथा जब उपासिका आदि से धर्म श्रवण कर ज्ञानोपार्जन होता है तो उसे श्रुत्वा ज्ञानोपार्जन कहा जाता है।

जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। कुछ जीव ज्ञानी हैं तथा कुछ अज्ञानी हैं। जो ज्ञानी हैं उनमें कुछ जीव दो ज्ञान वाले हैं, कुछ तीन ज्ञान वाले हैं, कुछ चार ज्ञान वाले हैं तथा कुछ एक ज्ञान वाले हैं। दो ज्ञान वाले आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी हैं। तीन ज्ञान वाले इन दो को मिलाकर अवधिज्ञानी या मनःपर्यवज्ञानी होते हैं। चार ज्ञान वालों में आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधि एवं मनःपर्यव ये चार ज्ञान होते हैं। जो एक ज्ञान वाले हैं वे नियमतः केवलज्ञानी है। केवलीज्ञानी के शेष चारों ज्ञान नहीं माने गए हैं।

जो जीव अज्ञानी हैं, उनमें से कुछ दो अज्ञान वाले हैं तथा कुछ तीन अज्ञान वाले हैं। दो अज्ञान वालों के मति-अज्ञान एवं श्रुत-अज्ञान होता है तथा

२. ईहा परूवणं–

प. से किं तं ईहा?

उ. ईहा छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सोइंदियईहा, २. चक्खिंदियईहा,
३. घाणिंदियईहा, ४. जिब्भिंदियईहा,
५. फासिंदियईहा, ६. णोइंदियईहा।

तीसे णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा पंच णामधेया भवंति, तं जहा–

१. आभोगणया, २. मग्गणया,
३. गवेसणया, ४. चिंता,
५. वीमंसा।

से तं ईहा। *–नंदी सु. ५८*

२. ईहा की प्ररूपणा–

प्र. ईहा कितने प्रकार की है?

उ. ईहा छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय-ईहा, २. चक्षुरिन्द्रिय-ईहा,
३. घ्राणेन्द्रिय ईहा, ४. जिह्वेन्द्रिय-ईहा,
५. स्पर्शेन्द्रिय-ईहा, ६. नोइन्द्रिय-ईहा,

ईहा के समानार्थक नानाघोष और नाना व्यंजन वाले पांच नाम इस प्रकार हैं, यथा–

१. आभोगनता, २. मार्गणता,
३. गवेषणता, ४. चिन्ता,
५. विमर्श।

यह ईहा का वर्णन हुआ।

३. अवाय परूवणं–

प. से किं तं अवाए?

उ. अवाए छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सोइंदियावाए, २. चक्खिंदियावाए,
३. घाणिंदियावाए, ४. जिब्भिंदियावाए,
५. फासिंदियावाए, ६. णोइंदियावाए।[1]

तस्स णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा पंच णामधेया भवंति, तं जहा–

१. आवट्टणया, २. पच्चावट्टणया,
३. अवाए, ४. बुद्धी,
५. विण्णाणे।

से तं अवाए। *–नंदी. सु. ५९*

३. अवाय की प्ररूपणा–

प्र. अवाय कितने प्रकार का है?

उ. अवाय छह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय-अवाय, २. चक्षुरिन्द्रिय-अवाय,
३. घ्राणेन्द्रिय-अवाय, ४. जिह्वेन्द्रिय-अवाय,
५. स्पर्शेन्द्रिय-अवाय, ६. नोइन्द्रिय-अवाय।

अवाय के समानार्थक, नानाघोष और नाना व्यंजन वाले पांच नाम इस प्रकार हैं, यथा–

१. आवर्तनता, २. प्रत्यावर्तनता,
३. अवाय, ४. बुद्धि,
५. विज्ञान।

यह अवाय का वर्णन हुआ।

४. धारणा परूवणं–

प. से किं तं धारणा?

उ. धारणा छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सोइंदियधारणा, २. चक्खिंदियधारणा,
३. घाणिंदियधारणा, ४. जिब्भिंदियधारणा,
५. फासिंदियधारणा, ६. णोइंदियधारणा।

तीसे णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा पंच णामधेया भवंति, तं जहा–

१. धारणा, २. साधारणा,
३. ठवणा, ४. पइट्ठा,
५. कोट्ठे।

से तं धारणा। *–नंदी. सु. ६०*

४. धारणा की प्ररूपणा–

प्र. धारणा कितने प्रकार की है?

उ. धारणा छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय-धारणा, २. चक्षुरिन्द्रिय-धारणा,
३. घ्राणेन्द्रिय-धारणा, ४. जिह्वेन्द्रिय-धारणा,
५. स्पर्शेन्द्रिय-धारणा, ६. नोइन्द्रिय-धारणा,

धारणा के समानार्थक नानाघोष और नाना व्यंजन वाले पांच नाम इस प्रकार हैं, यथा–

१. धारणा, २. साधारणा,
३. स्थापना, ४. प्रतिष्ठा,
५. कोष्ठ।

यह धारणा का वर्णन हुआ।

१२. विसयग्गहण विवक्खया उग्गहाणं भेया–

चउव्विहा मई पण्णत्ता, तं जहा–

१. उग्गहमई, २. ईहामई,
३. अवायमई, ४. धारणामई।

१२. विषयग्रहण की अपेक्षा अवग्रहादि के भेद–

मति चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. अवग्रहमति, २. ईहामति,
३. अवायमति, ४. धारणामति,

---

१. [illegible]

अहवा चउव्विहा मई पण्णत्ता, तं जहा–

१. अरंजरोदगसमाणा, २. वियरोदगसमाणा,

३. सरोदगसमाणा, ४. सागरोदगसमाणा,

–ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३६४ (२-३)

अथवा मति चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. घड़े के पानी के समान, २. गढ़े के पानी के समान,

३. तालाब के पानी के समान, ३. समुद्र के पानी के समान

(क) छव्विहा उग्गहमई पण्णत्ता, तं जहा–

१. खिप्पमोगिण्हइ,
२. बहुमोगिण्हइ,
३. बहुविहंमोगिण्हइ,
४. धुवमोगिण्हइ,
५. अणिस्सियमोगिण्हइ,
६. असंदिद्धमोगिण्हइ।

(ख) छव्विहा ईहामई पण्णत्ता, तं जहा–

१. खिप्पमीहइ,
२. बहुमीहइ,
३. बहुविहमीहइ,
४. धुवमीहइ,
५. अणिस्सियमीहइ,
६. असंदिद्धमीहइ।

(ग) छव्विहा अवायमई पण्णत्ता, तं जहा–

१. खिप्पमवेइ,
२. बहुमवेइ,
३. बहुविहमवेइ
४. धुवमवेइ,
५. अणिस्सियमवेइ,
६. असंदिद्धमवेइ।

(घ) छव्विहा धारणा (मई) पण्णत्ता, तं जहा–

१. बहुं धरेइ,
२. बहुविहं धरेइ,
३. पोराणं धरेइ,
४. दुद्धरं धरेइ,
५. अणिस्सियं धरेइ,
६. असंदिद्धं धरेइ।

–ठाणं अ. ६, सु. ५१० (१-४)

(क) अवग्रहमति छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. शीघ्र ग्रहण करना,
२. वहुत ग्रहण करना,
३. वहुत प्रकार की वस्तुओं को ग्रहण करना
४. ध्रुव ग्रहण करना,
५. अनिश्रित (सहारा लिए बिना) ग्रहण करना,
६. असंदिग्ध ग्रहण करना।

(ख) ईहामति छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. शीघ्र ईहा करना,
२. बहुत ईहा करना,
३. बहुत प्रकार की वस्तुओं की ईहा करना,
४. ध्रुव ईहा करना,
५. अनिश्रित ईहा करना,
६. असंदिग्ध ईहा करना।

(ग) अवायमति छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. शीघ्र अवाय करना,
२. वहुत अवाय करना,
३. बहुत प्रकार की वस्तुओं का अवाय करना,
४. ध्रुव अवाय करना,
५. अनिश्रित अवाय करना,
६. असंदिग्ध अवाय करना।

(घ) धारणा (मति) छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. बहुत धारणा करना,
२. बहुत प्रकार की वस्तुओं की धारणा करना,
३. पुरानी वस्तुओं की धारणा करना,
४. दुर्द्धर की धारणा करना,
५. अनिश्रित की धारणा करना,
६. असंदिग्ध की धारणा करना।

१३. पगारान्तरेण सुय असुयणिस्सियाणं भेया–

सुयनिस्सिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अत्थोग्गहे चेव, २. वंजणोग्गहे चेव।

असुयनिस्सिए वि एवमेव।

–ठाणं अ. २, उ. १, सु. ६० (१९-२०)

१३. प्रकारान्तर से श्रुत-अश्रुत निश्रितों के भेद–

श्रुतनिश्रित दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. अर्थावग्रह, २. व्यंजनावग्रह,

अश्रुतनिश्रित भी इसी तरह दो प्रकार का है।

१४. वंजणुग्गह परूवगं दिट्ठंते–

अट्ठावीसइविहस्स आभिणिबोहियनाणस्स वंजणोग्गहस्स परूवणं करिस्सामि-पडिबोहगदिट्ठंतेणं, मल्लगदिट्ठंतेण य।

प. (क) से किं तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं?

१४. व्यंजनावग्रह प्ररूपक दृष्टांत–

प्रतिबोधक दृष्टांत और मल्लक दृष्टांत द्वारा अट्ठाईस प्रकार के आभिनिबोधिक-ज्ञान (मतिज्ञान) के व्यंजनावग्रह की प्ररूपणा करूँगा।

प. (क) प्रतिबोधक (जगाने वाले) का दृष्टान्त क्या है?

उ. पडिबोहगदिट्ठंतेणं–

से जहानामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं सुत्तं पडिबोहेज्जा "अमुगा ! अमुग !" त्ति।

तत्थ य चोयगे पण्णवगं एवं वयासी–

प. किं एगसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति ?

दुसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति जाव दससमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति ?

संखेज्जसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति ?

असंखेज्जसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति ?

उ. एवं वदंतं चोयगं पण्णवगे एवं वयासी–

"णो एकसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति,

णो दुसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति जाव

णो दससमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति,

णो संखेज्जसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति,

असंखेज्जसमयपविट्ठा पोग्गला गहणमागच्छंति।

से त्तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं।

प. (ख) से किं तं मल्लगदिट्ठंतेणं ?

उ. मल्लगदिट्ठंतेणं–

से जहाणामए केइ पुरिसे आवागसीसाओ मल्लगं गहाय तत्थेगं उदगबिंदु पक्खिवेज्जा, से णट्ठे, अण्णे पक्खित्ते, से वि णट्ठे,

एवं पक्खिप्पमाणेसु पक्खिप्पमाणेसु होही से उदगबिंदू,

जं णं तं मल्लगं रावेहिइ, होही से उदगबिंदू

जं णं तंसि मल्लगंसि ठाहिइ, होही से उदगबिंदू,

जण्णं तं मल्लगं भरेहिइ, होही से उदगबिंदू,

जं णं तं मल्लगं पवाहेहिइ,

एवामेव पक्खिप्पमाणेहिं पक्खिप्पमाणेहिं अणंतेहिं पोग्गलेहिं जाहे तं वंजणं पूरितं होइ ताहे "हुं" ति करेइ णो चेव णं जाणइ, के वेस सद्दाइ ?

तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ, अमुगे एस सद्दाइ,

तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ,

तओ णं धारणं पविसइ

तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं।

प. से जहाणामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सद्दं सुणेज्जा तेणं सद्दे त्ति उग्गहिए, णो चेव णं जाणइ, के वेस सद्दाइ ?

उ. प्रतिबोधक का दृष्टान्त–

जिस प्रकार सोए हुए किसी व्यक्ति को–"हे अमुक ! हे अमुक"

इस प्रकार कह कर जगाए वहां पर प्रश्नकर्त्ता प्ररूपक से इस प्रकार कहता है कि–

प. क्या (उस पुरुष के कानों में) एक समय में प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण करने में आते हैं ?

क्या दो समय में प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण करने में आते हैं यावत् दस समयों में प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण करने में आते हैं ?

क्या संख्यात समयों में प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण करने में आते हैं ?

क्या असंख्यात समयों में प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण करने में आते हैं ?

उ. इस प्रकार कहते हुए प्रश्नकर्त्ता को प्ररूपक इस प्रकार कहे–

एक समय में प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण करने में नहीं आते हैं,

दो समय में प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण करने में नहीं आते हैं यावत्

दस समय में प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण करने में नहीं आते हैं,

संख्यात समय में प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण करने में नहीं आते हैं।

किन्तु असंख्यात समयों में प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण करने में आते हैं।

यह प्रतिवोधिक का दृष्टान्त हुआ।

प्र. (ख) मल्लक (सिकोरे) का दृष्टान्त क्या है ?

उ. मल्लक दृष्टान्त–

जिस प्रकार कोई व्यक्ति आपाकशीर्ष (कुम्हार के वर्तन पकाने के स्थान "आवा") से एक सिकोरा (प्याला) लेकर उसमें पानी की एक वूंद डाले तो वह नष्ट हो जावे, अन्य वूंद डाले तो वह भी नष्ट हो जावे,

इसी प्रकार (पानी की एक-एक वूंद) डालते-डालते पानी की कोई वूंद ऐसी होगी जो प्याले को गीला करेगी।

तत्पश्चात् कोई वूंद ऐसी होगी जो उसमें ठहरेगी,

कोई वूंद ऐसी होगी जिससे प्याला भर जाएगा,

कोई वूंद ऐसी होगी जिससे पानी वाहर गिरने लगेगा।

इसी प्रकार वह व्यंजन (शब्द के) अनन्त पुद्गल क्रमशः प्रवेश करते-करते कान में पूरित हो जाते हैं तव वह पुरुष हुंकार करता है, किन्तु यह नहीं जानता कि यह किसकी आवाज है ?

जव वह ईहा करता है, तव जानता है कि यह अमुक व्यक्ति आवाज दे रहा है।

वाद में वह अवाय करता है, तव वह अच्छी तरह जान लेता है कि अमुक व्यक्ति ही आवाज दे रहा है।

वाद में वह धारणा करता है,

तव वह संख्यात अथवा असंख्यातकाल पर्यन्त (वहुत समय तक) धारण किए रहता है (विस्मृत नहीं होता है)।

प्र. जैसे किसी पुरुष ने अव्यक्त शब्द को सुनकर "यह कोई शब्द है" इस प्रकार जाना किन्तु यह नहीं जाना कि "यह शब्द किसका है ?"

उ. तओ ईहं पविसइ,
तओ जाणइ, अमुगे एस सद्दे,
तओ णं अवायं पविसइ, तओ से अवगयं हवइ,

तओ धारणं पविसइ,
तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं।

एवं अव्वत्तं रूवं, अव्वत्तं गंधं, अव्वत्तं रसं, अव्वत्तं फासं, पडिसंवेदेज्जा।

प. से जहाणामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सुमिणं पडिसंवेदेज्जा, तेणं सुमिणे त्ति उग्गहिए, णो चेव णं जाणइ, के वेसे सुमिणे ? त्ति,

उ. तओ ईहं पविसइ,
तओ जाणइ, अमुगे एस सुमिणे त्ति,
तओ अवायं पविसइ, तओ से अवगयं हवइ,
तओ धारणं पविसइ,
तओ णं धारेइ, संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं।

से तं मल्लगदिट्ठतेणं
से तं सुयणिस्सियं। –नंदी. सु. ६२-६४

१५. उग्गहाईसु वण्णाइ अभाव परूवणं–

प. अह भन्ते ! १. उग्गहे, २. ईहा, ३. अवाये, ४. धारणा, एस णं कइवण्णा, कइगंधा, कइरसा, कइफासा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! उग्गहे जाव धारणा, एस णं अवन्ना जाव अफासा पण्णत्ता। –विया. स. १२, उ. ५, सु. १०

१६. उग्गहाईणं काल परूवणं–

उग्गहे एक्कसामइए,
अंतोमुहुत्तिया ईहा,
अंतोमुहुत्तिए अवाए, धारणा संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं[1]। –नंदी. सु. ६१

१७. सुयनाणस्स भेया–

प. से किं तं सुयनाणपरोक्खं ?

उ. सुयनाणपरोक्खं चोद्दसविहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. अक्खरसुयं, २. अणक्खरसुयं,
३. सण्णिसुयं, ४. असण्णिसुयं,
५. सम्मसुयं, ६. मिच्छसुयं,
७. सादीयं, ८. अणादीयं,
९. सपज्जवसियं, १०. अपज्जवसियं,
११. गमियं, १२. अगमियं,
१३. अंगपविट्ठं, १४. अणंगपविट्ठं।[2] –नंदी. सु. ७२

उ. बाद में वह ईहा करता है,
तब यह जानता है कि "यह अमुक शब्द है"।
बाद में यह अवाय (निश्चित ज्ञान) करता है, तब उसे पूरी जानकारी हो जाती है,
बाद में वह धारणा करता है,
तब उसे संख्यातकाल या असंख्यातकाल पर्यन्त धारणा (संस्मृति) बनी रहती है।

इसी प्रकार वह अव्यक्त रूप, अव्यक्त गंध, अव्यक्त रसास्वादन और अव्यक्त स्पर्श को जानता है।

प्र. जैसे कोई पुरुष अव्यक्त स्वप्न को देखे, तो उसे "यह स्वप्न है" ऐसा बोध होता है, किन्तु यह नहीं जानता कि "यह कैसा स्वप्न है ?"

उ. बाद में वह ईहा करता है,
तब यह जानता है कि 'यह अमुक स्वप्न है।'
बाद में वह अवाय करके पूर्ण रूप में जानता है,
बाद में वह धारणा करता है,
तब उसे संख्यातकाल या असंख्यातकाल तक धारणा (स्मृति) बनी रहती है।
यह मल्लक दृष्टान्त से अवग्रह का स्वरूप है,
यह श्रुतनिश्रित ज्ञान है।

१५. अवग्रहादि में वर्णादि के अभाव का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! १. अवग्रह, २. ईहा, ३. अवाय और ४. धारणा में कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अवग्रह यावत् धारणा ये चारों वर्ण यावत् स्पर्श से रहित कही गई हैं।

१६. अवग्रह आदि का काल प्ररूपण–

अवग्रह (ज्ञान) का काल एक समय है,
ईहा का काल अन्तर्मुहूर्त है।
अवाय का काल भी अन्तर्मुहूर्त हैं, धारणा का काल संख्यात या असंख्यात काल है।

१७. श्रुतज्ञान के भेद–

प्र. श्रुतज्ञान परोक्ष कितने प्रकार का है ?

उ. श्रुतज्ञान परोक्ष चौदह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. अक्षरश्रुत, २. अनक्षरश्रुत,
३. संज्ञिश्रुत, ४. असंज्ञिश्रुत,
५. सम्यक्श्रुत, ६. मिथ्याश्रुत,
७. सादिकश्रुत, ८. अनादिकश्रुत,
९. सपर्यवसितश्रुत, १०. अपर्यवसितश्रुत,
११. गमिकश्रुत, १२. अगमिकश्रुत,
१३. अंगप्रविष्टश्रुत, १४. अनंगप्रविष्टश्रुत।

---

१. उग्गहो एक्कं समयं, ईहाऽवाया मुहुत्तमद्धं तु।
कालमसंखं संख च, धारणा होंति णायव्वा॥ –नंदी सु. ६८

२. नंदी. सु. ११५

(१) अक्खरसुयं–

प. से किं तं अक्खरसुयं?

उ. अक्खरसुयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा–
१. सण्णक्खरं, २. वंजणक्खरं, ३. लद्धिअक्खरं।

प. (क) से किं तं सण्णक्खरं?

उ. सण्णक्खरं अक्खरस्स संठाणाऽगिई।
से तं सण्णक्खरं।

प. (ख) से किं तं वंजणक्खरं?

उ. वंजणक्खरं अक्खरस्स वंजणाभिलावो।
से तं वंजणक्खरं।

प. (ग) से किं तं लद्धिअक्खरं?

उ. लद्धिअक्खरं-अक्खरलद्धीयस्स लद्धिअक्खरं समुप्पज्जइ, तं जहा–
१. सोइंदियलद्धिअक्खरं, २. चक्खिंदियलद्धिअक्खरं,
३. घाणेंदियलद्धिअक्खरं, ४. रसनिंदियलद्धिअक्खरं,
५. फासेंदियलद्धिअक्खरं, ६. णोइंदियलद्धिअक्खरं।
से तं लद्धिअक्खरं, से तं अक्खरसुयं। –नंदी. सु. ७३

(२) अणक्खरसुयं–

प. से किं तं अणक्खरसुयं?

उ. अणक्खरसुयं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा–
ऊससियं णीसियं णिच्छूढं खासियं च छीयं च।
णिस्सिंघियमणुसारं अणक्खरं छेलियादीयं॥

से तं अणक्खरसुयं। –नंदी. सु. ७४

(३-४) सण्णि-असण्णिसुयं–

प. से किं तं सण्णिसुयं?

उ. सण्णिसुयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा–
१. कालिओवएसेणं, २. हेऊवएसेणं,
३. दिट्ठिवाओवदेसेणं।

प. से किं तं कालिओवएसेणं?

उ. कालिओवएसेणं जस्स णं अत्थि ईहा अवोहो मग्गणा गवेसणा चिंता वीमंसा, से णं सण्णि त्ति लब्भइ,

जस्स णं नत्थि ईहा अवोहो मग्गणा गवेसणा चिंता वीमंसा, से णं असण्णि त्ति लब्भइ।
से तं कालिओवएसेणं।

प. से किं तं हेऊवएसेणं?

उ. हेऊवएसेणं–जस्स णं अत्थि अभिसंधारणपुव्विया करणसत्ती से णं सण्णि त्ति लब्भइ,

जस्स णं नत्थि अभिसंधारणपुव्विया करणसत्ती से णं असण्णि त्ति लब्भइ।

से तं हेऊवएसेणं।

(१) अक्षरश्रुत–

प्र. अक्षरश्रुत कितने प्रकार का है ?

उ. अक्षरश्रुत तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. संज्ञा-अक्षर, २. व्यंजन-अक्षर, ३. लब्धि-अक्षर।

प्र. (क) संज्ञा-अक्षर किसे कहते हैं?

उ. अक्षर के संस्थान आकृति को संज्ञा अक्षर कहते हैं।
यह संज्ञा-अक्षर का स्वरूप है।

प्र. (ख) व्यंजन-अक्षर किसे कहते हैं?

उ. उच्चारण किए जाने वाले अक्षर व्यंजन अक्षर कहे जाते हैं।
यह व्यंजन-अक्षर का स्वरूप है।

प्र. (ग) लब्धि अक्षर किसे कहते हैं?

उ. अक्षर-लब्धि वाले जीव को लब्धि अक्षर (भाव श्रुतज्ञान) उत्पन्न होता है, (वह छ प्रकार का है) यथा–
१. श्रोत्रेन्द्रियलब्धि अक्षर, २. चक्षुरिन्द्रियलब्धि अक्षर,
३. घ्राणेन्द्रियलब्धि अक्षर, ४. रसनेन्द्रियलब्धि अक्षर,
५. स्पर्शनेन्द्रियलब्धि अक्षर, ६. नोइन्द्रियलब्धि अक्षर।
यह लब्धि अक्षर का स्वरूप है, यह अक्षरश्रुत का वर्णन हुआ।

(२) अनक्षरश्रुत–

प्र. अनक्षरश्रुत कितने प्रकार का है?

उ. अनक्षरश्रुत अनेक प्रकार का कहा गया है, यथा–
लम्बे-लम्बे श्वास लेना, श्वास छोड़ना, थूकना, खाँसना, छींकना, नाक साफ करना, हुंकार करना तथा अन्य संकेत युक्त अव्यक्त शब्द करना।
यह अनक्षरश्रुत का स्वरूप है।

(३-४) संज्ञि असंज्ञि श्रुत–

प्र. संज्ञिश्रुत कितने प्रकार का है?

उ. संज्ञिश्रुत तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. कालिकी-उपदेश, २. हेतु-उपदेश,
३. दृष्टिवाद उपदेश।

प्र. कालिकी-उपदेश संज्ञिश्रुत किसे कहते हैं?

उ. कालिकी उपदेश से जिसके ईहा, अपोह (निश्चय) मार्गणा (अन्वय धर्म का अन्वेषण), गवेषणा (व्यतिरेक धर्म का अन्वेषण), चिंता और विमर्श हो, वह संज्ञी कहा जाता है।
जिसके ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता और विमर्श न हो वह असंज्ञी कहा जाता है।
यह कालिकी उपदेश का स्वरूप है।

प्र. हेतु-उपदेश संज्ञिश्रुत किसे कहते हैं?

उ. हेतु-उपदेश से जिस प्राणी में अभिसंधारण पूर्वक करण शक्ति अर्थात् विचार पूर्वक क्रिया करने की शक्ति है वह संज्ञी कहा जाता है।
जिस प्राणी में अभिसंधारणपूर्वक करण-शक्ति अर्थात् विचारपूर्वक क्रिया करने की शक्ति नहीं है वह असंज्ञी कहा जाता है।
यह हेतु उपदेश का स्वरूप है।

प. से किं तं दिट्ठिवाओवएसेणं ?

उ. दिट्ठिवाओवएसेणं–सण्णिसुयस्स खओवसमेणं सण्णी लब्भइ,

असण्णिसुयस्स खओवसमेणं असण्णी लब्भइ,

से तं दिट्ठिवाओवएसेणं।

से तं सण्णिसुयं, से तं असण्णिसुयं। –*नंदी. सु. ७५*

प्र. दृष्टिवाद उपदेश संज्ञीश्रुत किसे कहते हैं ?

उ. दृष्टिवाद उपदेश से संज्ञिश्रुत के क्षयोपशम से संज्ञी कहा जाता है।

असंज्ञिश्रुत के क्षयोपशम से असंज्ञी कहा जाता है।

यह दृष्टिवादोपदेश का स्वरूप है।

यह संज्ञिश्रुत और असंज्ञिश्रुत का वर्णन हुवा।

(५) सम्मसुयं–

प. से किं तं सम्मसुयं ?

उ. सम्मसुयं–जं इमं अरहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्णणाण-दंसणधरेहिं तेलोक्कणिरिक्खिय-महिय पूइएहिं,

तीय-पच्चुप्पण्ण-मणागयजाणएहिं,

सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं, तं जहा–

१. आयारो, २. सूयगडो,
३. ठाणं, ४. समवाओ,
५. विवाहपण्णत्ती, ६. णायाधम्मकहाओ,
७. उवासगदसाओ, ८. अतंगडदसाओ,
९. अणुत्तरोववाइयदसाओ, १०. पण्हावागरणाइं,
११. विवागसुयं, १२. दिट्ठिवाओ।

इच्चेयं दुवालसंगं गणिपिडगं-चोद्दसपुव्विस्स सम्मसुयं, अभिण्णदसपुव्विस्स सम्मसुयं, तेण परं भिण्णेसु भयणा।

से तं सम्मसुयं। –*नंदी. सु. ७६*

(५) सम्यक्श्रुत–

प्र. सम्यक्श्रुत किसे कहते हैं ?

उ. सम्यक्श्रुत-उत्पन्न-ज्ञान और दर्शन के धारक तीन लोक के जीवों द्वारा आदरसन्मानपूर्वक देखे गए तथा यथावस्थित भावयुक्त कीर्तन नमस्कार किए गए,

अतीत, वर्तमान और अनागत के ज्ञाता,

सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अर्हत् (तीर्थकर भगवन्तों) द्वारा प्रणीत जो यह द्वादशांग रूप गणिपिटक है वह सम्यक्श्रुत हैं, यथा–

१. आचारांग, २. सूत्रकृतांग,
३. स्थानांग, ४. समवायांग,
५. व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६. ज्ञाताधर्मकथांग,
७. उपासकदशांग, ८. अन्तकृद्दशांग,
९. अनुत्तरोपपातिकदशा, १०. प्रश्नव्याकरण,
११. विपाकश्रुत, १२. दृष्टिवाद।

यह द्वादशांग गणिपिटक चौदह पूर्वधारी और सम्पूर्ण दस पूर्वधारी का सम्यक्श्रुत होता है। उससे कम अर्थात् कुछ कम दस पूर्व और नव आदि पूर्वों के ज्ञाता का श्रुत विकल्प से सम्यक्श्रुत है।

यह सम्यक्श्रुत का स्वरूप है।

(६) मिच्छसुयं–

प. से किं तं मिच्छसुयं ?

उ. मिच्छसुयं जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिहिं सच्छंदबुद्धि मइविगप्पियं, तं जहा–

१. भारहं, २. रामायणं,
३. भीमासुरक्खं, ४. कोडिल्लयं,
५. सगडभद्दियाओ, ६. खोडगमुहं,
७. कप्पासियं, ८. नागसुहुमं,
९. कणगसत्तरी, १०. वइसेसियं,
११. बुद्धवयणं, १२. तेरासियं,
१३. काविलियं, १४. लोगायतं,
१५. सट्ठितंतं, १६. माढरं,
१७. पुराणं, १८. वागरणं,
१९. णाडगादी।

अहवा बावत्तरिकलाओ चत्तारि य वेदा संगोवंगा।

एयाइं मिच्छदिट्ठिस्स मिच्छत्तपरिग्गहियाइं मिच्छसुयं,

एयाइं चेव सम्मदिट्ठिस्स सम्मत्तपरिग्गहियाइं सम्मसुयं।

अहवा मिच्छदिट्ठिस्स वि सम्मसुयं,

(६) मिथ्याश्रुत–

प्र. मिथ्याश्रुत किसे कहते हैं ?

उ. अज्ञानी एवं मिथ्यादृष्टियों द्वारा स्वच्छंद और विपरीत बुद्धि से कल्पित किए हुए ग्रन्थ मिथ्याश्रुत हैं, यथा–

१. महाभारत, २. रामायण,
३. भीमासुरोक्त, ४. कौटिल्य,
५. शकटभद्रिका, ६. घोटकमुख,
७. कार्पासिक, ८. नाग-सूक्ष्म,
९. कनकसप्तति, १०. वैशेषिक,
११. बुद्धवचन, १२. त्रैराशिक,
१३. कापिलीय, १४. लोकायत,
१५. षष्टितंत्र, १६. माठर,
१७. पुराण. १८. व्याकरण,
१९. नाटक आदि।

अथवा बहत्तर कलाएं और अंगोपांग सहित चार वेद हैं।

ये ग्रन्थ मिथ्यादृष्टि द्वारा मिथ्यारूप से ग्रहण किए गए हों तो मिथ्याश्रुत हैं।

ये ही ग्रन्थ सम्यक्दृष्टि द्वारा सम्यक् रूप से ग्रहण किए गए हों तो सम्यक्श्रुत हैं।

अथवा मिथ्यादृष्टि के लिए भी यही ग्रन्थ सम्यक्श्रुत हैं,

दो सुयक्खंधा, पणवीसं अज्झयणा,
पंचासीइं उद्देसणकाला, पंचासीइं समुद्देसणकाला,
अट्ठारस पदसहस्साइं पदग्गेणं,
संखेज्जा अक्खरा,
अणंता गमा, अणंता पज्जवा,
परित्ता तसा, अणंता थावरा,
सासया-कडा-निबद्धा-णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा–

१. आघविज्जंति,
२. पण्णविज्जंति,
३. परूविज्जंति,
४. दंसिज्जंति,
५. निदंसिज्जंति,
६. उवदंसिज्जंति।

से एवं आया
एवं णाया, एवं विण्णाया।

एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति जाव उवदंसिज्जंति।

से तं आयारे[1]। –सम. सु. १३६

इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं, पच्चीस अध्ययन हैं,
पचासी उद्देशन-काल हैं, पचासी समुद्देशन काल हैं।
पद-गणना की अपेक्षा इसमें अट्ठारह हजार पद हैं,
संख्यात अक्षर हैं,
अनन्त गम आशय हैं पर्याय भी अनन्त हैं,
त्रस जीव परिमित हैं, स्थावर जीव अनन्त हैं,
शाश्वत (नित्य) कृत (अनित्य) निबद्ध (सम्बद्ध) और निकाचित् (नियमित) जिन प्रज्ञप्त भाव–

१. सामान्य रूप से कहे गए हैं,
२. विशेष रूप से कहे गए हैं,
३. प्ररूपित किए गए हैं,
४. उपमाओं द्वारा दिखाए गए हैं,
५. हेतु-कारण कहकर दिखाए गए हैं,
६. उदाहरण देकर दिखाए गए हैं।

आचारांग के अध्ययन से आत्मा वस्तु-स्वरूप का एवं आचार धर्म का ज्ञाता होता है, गुणपर्यायों का विशिष्ट ज्ञाता होता है अथवा अन्य मतों का भी विज्ञाता होता है।

इसी प्रकार चरण (आचार) और करण (गोचर) की परूपणा के द्वारा वस्तुओं के स्वरूप सामान्य रूप से कहे गए हैं यावत् उदाहरण देकर समझाए गए हैं।

यह आचारांग का वर्णन है।

(क) आयारस्स अज्झयणा–

नव बंभचेरा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सत्थपरिन्ना, २. लोगविजओ,
३. सीओसणिज्जं, ४. सम्मत्तं,
५. आवंती, ६. धूतं,
७. विमोही, ८. उवहाणसुयं
९. महापरिण्णा[2]। –ठाणं. अ. ९, सु. ६६२

आयारस्स णं भगवओ सचूलियागस्स पणवीसं अज्झयणा पण्णत्ता, –सम. सम. २५, सु. ५

सत्त सत्तिक्कया पण्णत्ता।

सत्त महज्झयणा पण्णत्ता। –ठाणं. अ. ७, सु. ५४५ (४-५)

(क) आचारांग के अध्ययन–

ब्रह्मचर्य अर्थात् आचारांग सूत्र के नौ अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. शस्त्रपरिज्ञा २. लोकविजय
३. शीतोष्णीय ४. सम्यक्त्व
५. आवन्ती-लोकसार ६. धूत
७. विमोह ८. उपधानश्रुत
९. महापरिज्ञा।

भगवान् ने चूलिका-सहित आचारांग सूत्र के पच्चीस अध्ययन कहे हैं।

सात सप्तैक आचारचूला की दूसरी चूलिका के उद्देशक-रहित सात अध्ययन कहे गए हैं।

आचार चूला की प्रथम चूलिका के उद्देशक सहित सात महाध्ययन कहे गये हैं।

(ख) आयारे उद्देसणकालाइं–
नवण्हं बंभचेराणं एकावन्नं उद्देसणकाला पण्णत्ता।
–सम. सम. ५१, सु. १

आयारस्स णं सचूलियागस्स पंचासीइ उद्देसणकाला पण्णत्ता। –सम. सम. ८५, सु. १

(ग) आयारस्स पया–
आयारस्स णं सचूलियागस्स अट्ठारस्स पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं। –सम. सम. १८, सु. ४

(घ) आयारस्स बिईय सुयक्खंधस्स निक्खेवो–
एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं समिए सहिए सदा जए त्ति बेमि[1]।
–आ. सु. २, अ. १, उ. १, सु. ३३४

(ख) आचारांग के उद्देशनकाल–
नव ब्रह्मचर्य अध्ययनों के इक्यावन उद्देशन काल कहे गए हैं।

चूलिका सहित आचारांग सूत्र के पच्चासी उद्देशन काल कहे गए हैं।

(ग) आचारांग के पद–
चूलिका सहित आचारांग सूत्र के पद-प्रमाण से अठारह हजार पद कहे गए हैं।

(घ) आचारांग के द्वितीय श्रुतस्कंध का निक्षेप–
यह उस (सुविहित) भिक्षु या भिक्षुणी के लिए (ज्ञानादि आचार की) समग्रता यह है कि-वह समस्त पदार्थों में पंच समितियों से युक्त होकर स्वकल्याण के लिए सदा प्रयत्नशील रहे, यह मैं कहता हूँ।

२०. (२) सूयगडो–
प. से किं तं सूयगडे?
उ. सूयगडे णं ससमया सूइज्जंति,
परसमया सूइज्जंति,
ससमयपरसमया सूइज्जंति,
जीवा सूइज्जंति,
अजीवा सूइज्जंति,
जीवाजीवा सूइज्जंति,
लोगे सूइज्जइ,
अलोगे सूइज्जइ,
लोगालोगे सूइज्जइ।
सूयगडे णं जीवा-ऽजीव-पुण्ण-पावाऽसव-संवर-निज्जर-बंध-मोक्खावसाणा पयत्था सूइज्जंति,
समणाणं अचिरकालपव्वइयाणं
कुसमयमोह-मोहमइमोहियाणं,
संदेहजायसहजबुद्धिपरिणामसंसइयाणं
पावकरमइलमइगुणविसोहणत्थं,
असीतस्स किरियावाइयसयस्स,
चउरासीतीए अकिरियावाईणं,
सत्तट्ठीए अण्णाणियवाईणं
बत्तीसाए वेणइयवाईणं,
तिण्हं तेसट्ठाणं अण्णदिट्ठियसयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जइ।
णाणादिट्ठंतवयणणिस्सारं सुट्ठु दरिसयंता,

२०. (२) सूत्रकृतांग सूत्र–
प्र. सूत्रकृत (सूत्रकृतांग सूत्र) में क्या है?
उ. सूत्रकृतांग में स्वसिद्धांतों का वर्णन किया गया है,
पर-सिद्धांतों का निरूपण किया गया है.
स्व-पर सिद्धांतों का प्ररूपण किया गया है,
जीव सूचित किए गए हैं,
अजीव सूचित किए गए हैं,
जीव और अजीव सूचित किए गए हैं,
लोक सूचित किया गया है,
अलोक सूचित किया गया है,
लोक और अलोक सूचित किया गया है।
सूत्रकृतांग में जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष तक के सभी पदार्थ सूचित किए गए हैं।
जो श्रमण अल्पकाल से ही प्रव्रजित हैं
जिनकी बुद्धि मिथ्या (सिद्धांतों) को सुनने से मोहित है,
जिनके हृदय तत्व के विषय में सन्देह के उत्पन्न होने से विचलित हो रहे हैं। सहज बुद्धि का परिणमन संशय को प्राप्त हो रहा है,
पाप उपार्जन करने वाली मलिन मति के दुर्गुणों का शोधन करने के लिए,
क्रियावादियों के एक सौ अस्सी,
अक्रियावादियों के चौरासी,
अज्ञानवादियों के सड़सठ,
विनयवादियों के बत्तीस,
इन तीन सौ तिरेसठ अन्य वादियों के व्यूह समूहों को (निरस्त) करके स्व-सिद्धांत स्थापित किया गया है।
सूत्रकृतांग के सूत्रार्थ नाना प्रकार के दृष्टान्त युक्त वचनों से (पर-मत के) वचनों को भली भांति निःसार दिखाते हैं,

---

१. इसी प्रकार द्वितीय श्रुतस्कंध के प्रथम से चौदहवें अध्ययन एवं उद्देशकों तक के उपसंहार सूत्र जानने चाहिए।

विविहवित्थराणुगमपरमसब्भावगुणविसिट्ठा,
मोक्खपहोयारगा,
उदारा अण्णाणतमंधकारदुग्गेसु दीवभूआ

विविध प्रकार से विस्तृत व्याख्या युक्त और परम सद्भावगुण रूप से विशिष्ट है, मोक्षमार्ग के प्रदर्शक हैं,
उदार, प्रगाढ़ ज्ञान अन्धकार में दुर्गमतत्वज्ञान का बोध कराने के लिए दीपक स्वरूप है,

सोवाणा चेव सिद्धिसुगइगिहुत्तमस्स णिक्खोभनिप्पकंपा सुत्तत्था।

सिद्धि और सुगति रूपी उत्तम गृह के लिए सोपान के समान, प्रवादियों के विक्षोभ से रहित और निष्प्रकम्प अर्थ किए गए हैं।

सूयगडस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ,
संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ
से णं अंगट्ठयाए दोच्चे अंगे–
दो सुयक्खंधा, तेवीसं अज्झयणा,
तेत्तीसं उद्देसणकाला,
तेत्तीसं समुद्देसणकाला,
छत्तीसं पदसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं,
संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति,
से एवं आया, एवं नाया एवं विण्णाया,

सूत्रकृतांग की वाचनाएं परिमित हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियां हैं,
संख्यात वेष्टक (छंद) हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात व्याख्याए हैं,
अंगों की अपेक्षा यह दूसरा अंग हैं–
इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं, तेईस अध्ययन हैं,
तेतीस उद्देशनकाल हैं,
तेतीस समुद्देशनकाल हैं,
छत्तीस हजार पद प्रमाण कहे गए हैं।
संख्यात अक्षर हैं यावत् उदाहरण देकर समझाए गए हैं,
सूत्रकृतांग के अध्ययन से आत्म वस्तु स्वरूप का ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है।

एवं चरणकरण परूवणा आघविज्जइ जाव-उवदंसिज्जइ।

इसी प्रकार इस सूत्र में चरणकरण की प्ररूपणा कही गई है यावत् उदाहरण देकर समझाए गए हैं।

से त्तं सूयगडे[१]। —सम. सु. १३७

यह सूत्रकृतांग का वर्णन है।

(क) सूयगडे अज्झयणा–

तेवीसं सुयगडज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. समए, २. वेयालिए,
३. उवसग्गपरिण्णा, ४. इत्थीपरिण्णा,
५. नरयविभत्ती, ६. महावीरथुई,
७. कुसीलपरिभासिए, ८. वीरिए,
९. धम्मे, १०. समाही,
११. मग्गे, १२. समोसरणे,
१३. आहत्तहिए, १४. गंथे,
१५. जमईए, १६. गाथा,[२]
१७. पुण्डरीए, १८. किरियाठाणा,
१९. आहारपरिण्णा, २०. अपच्चक्खाण किरिआ,
२१. अणगारसुयं, २२. अद्दइज्जं,
२३. णालंदइज्जं। —सम. सम. २३, सु. १

(क) सूत्रकृतांग के अध्ययन–

सूत्रकृतांग के तेईस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. समय, २. वैतालिक,
३. उपसर्गपरिज्ञा, ४. स्त्रीपरिज्ञा,
५. नरकविभक्ति, ६. महावीरस्तुति,
७. कुशीलपरिभाषित, ८. वीर्य,
९. धर्म, १०. समाधि,
११. मार्ग, १२. समवसरण,
१३. यथातथ्य, १४. ग्रन्थ,
१५. यमतीत, १६. गाथा,
१७. पुण्डरीक, १८. क्रियास्थान,
१९. आहारपरिज्ञा, २०. अप्रत्याख्यानक्रिया,
२१. अनगारश्रुत, २२. आर्द्रकीय
२३. नालन्दीय।

२१.(३) ठाणं–

प. से किं तं ठाणे?

उ. ठाणे णं ससमया ठाविज्जंति जाव लोगालोगे वा ठाविज्जंति,

ठाणे णं दव्व-गुण-खेत्त-काल-पज्जव-पयत्थाणं–

सेला सलिला य समुद्दा, सुरभवण-विमाण-आगर-णदीओ।

णिहिओ पुरिसज्जाया, सरा य गोत्ता य जोइसंचाला॥१॥

एक्कविहवत्तव्वयं जाव दसविहवत्तव्वयं,

जीवाणं पोग्गलाण य लोगट्ठाइं च णं परूवणया आघविज्जंति।

ठाणस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ,

संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तिओ, संखेज्जाओ संगहणीओ।

से णं अंगट्ठयाए तइए अंगे,

एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा,

एक्कवीसं उद्देसणकाला, एक्कवीसं समुद्देसणकाला,

बावत्तरिं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं।

संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया,

एवं चरण करण परूवणा आघविज्जइ जाव उवदंसिज्जइ।

से तं ठाणे[१]। —*सम. सु. १३८*

(क) आयार-सूयगड-ठाणाणं अज्झयणा–

तिण्हं गणिपिडगाणं आयारचूलिया वज्जाणं सत्तावन्नं अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. आयारे, २. सूयगडे, ३. ठाणे। —*सम. सम. ५७, सु. १*

२२.(४) समवाओ–

प. से किं तं समवाए?

उ. समवाए णं ससमया समासिज्जंति जाव लोगालोगे समासिज्जइ।

२१.(३) स्थानांग सूत्र–

प्र. स्थान (स्थानांग सूत्र) में क्या है?

उ. स्थानांग में स्व-सिद्धांत स्थापित किया जाता है यावत् लोकालोक स्थापित किया जाता है।

स्थानांग में जीव आदि पदार्थों के द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल और पर्यायों का निरूपण किया गया है।

तथा शैलों (पर्वतों) का, गंगा आदि महानदियों का, समुद्रों, देव भवनों, विमानों, आकरों, सामान्य नदियों,

चक्रवर्ती की निधियों एवं पुरुषों की अनेक जातियों का, स्वरों के भेदों, गोत्रों और ज्योतिष्क देवों के संचार का वर्णन किया गया है।

एक से दश पर्यन्त की संख्या को लेकर,

जीवों का, पुद्गलों का तथा लोक में अवस्थित (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि) द्रव्यों का भी प्ररूपण किया गया है।

स्थानांग की वाचनाएं परिमित हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियां हैं,

संख्यात वेष्टक (छंद) हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियां हैं, संख्यात संग्रहणियां हैं

अंगों की अपेक्षा यह तीसरा अंग है,

इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, दस अध्ययन हैं,

इक्कीस उद्देशन काल हैं, इक्कीस समुद्देशन काल हैं।

पद-गणना की अपेक्षा इसमें वहत्तर हजार पद हैं।

संख्यात अक्षर हैं यावत् उदाहरण देकर समझाए गए हैं।

इसका अध्ययन करने वाला तदात्म रूप ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है।

इस प्रकार इसमें चरण करण की प्ररूपणा की गई है यावत् उपदर्शन किया गया है।

यह स्थानांग सूत्र का वर्णन है।

(क) आचार, सूत्रकृत और स्थानांग के अध्ययन–

आचार चूलिका को छोड़कर तीन गणिपिटकों के सत्तावन अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. आचारांग २. सूत्रकृतांग ३. स्थानांग।

२२.(४) समवायांग सूत्र–

प्र. समवाय (समवायांग सूत्र) में क्या है?

उ. समवायांग में स्व सिद्धांतों का कथन किया गया है यावत् लोक-अलोक का कथन किया है।

---

१. से किं तं ठाणे?
ठाणे णं जीवा ठाविज्जंति, अजीवा ठाविज्जंति, जीवाजीवा ठाविज्जंति, लोए ठाविज्जइ, अलोए ठाविज्जइ, लोयालोए ठाविज्जइ,
ससमए ठाविज्जइ, परसमए ठाविज्जइ, ससमय-परसमए ठाविज्जइ।
ठाणे णं टंका कूडा सेला सिहरिणो पब्भारा कुंडाइं गुहाओ आगरा दहा णदीओ
आघविज्जंति, ठाणे णं एगाइयाए एगुत्तरियाए वुड्ढीए दसट्ठाणविवड्ढियाणं भावाणं
परूवणा आघविज्जइ।
ठाणे णं परित्ता वायणा जाव संखेज्जाओ संगहणिओ।
से णं अंगट्ठयाए तइए अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, एक्कवीसं उद्देसणकाला.
एक्कवीसं समुद्देसणकाला, बावत्तरिं पदसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति।
से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण करण परूवणा आघविज्जइ।
से तं ठाणे। —*नंदी. सु. ८८*

समवाए णं एकाइयाणं एगट्ठाणं एगुत्तरियपरिवुड्ढीए, ठाणगसयस्स, दुवालसंगस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समासिज्जइ,

वारसविहवित्थरस्स सुयणाणस्स जगजीवहियस्स भगवओ समासेणं समायारे आहिज्जइ।

तत्थ णं णाणाविहप्पगारा जीवाजीवा य वण्णिया वित्थरेणं,

अवरे वि अ वहुविहा विसेसा नरग-तिरिय-मणुयसुरगणाणं आहारुस्सास-लेसा-आवाससंख-आययप्पमाण-उववाय-चवण-ओगाहणोहि-वेयणविहाण-उवओग-जोग इंदिय-कसाय, विविहा य जीवजोणी, विक्खंभुस्सेह-परिरयप्पमाणं, विहिविसेसा य मंदरादीणं महीधराणं, कुलगर-तित्थगर-गणहराणं समत्तभरहाहिवाण चक्कीण चेव, चक्कहर-हलहराण य, वासाण य निगमा य समाए।

एए अण्णे य एवमाइया अत्था एत्थ वित्थरेणं समासिज्जंति।

समवायस्स णं परित्ता वायणा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ,

से णं अंगट्ठयाए चउत्थे अंगे,

एगे अज्झयणे, एगे सुयक्खंधे,

एगे उद्देसणकाले, एगे समुद्देसणकाले,

एगे चउयाले पदसयसहस्से पदग्गेणं पण्णत्ते।

संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया,

एवं चरणकरण परूवणा आघविज्जइ जाव उवदंसिज्जइ।

से त्तं समवाए[1]। –सम. सु. १३९

(क) समवायांगस्स उक्खेवो–

सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं–

इह खलु समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थयरेणं सयंसंबुद्धेणं पुरिसुत्तमेणं

समवायांग में एक समवाय से एक-एक समवाय बढ़ाते हुए सौ समवायों का तथा द्वादशांग गणिपिटक के परिमाण का कथन किया गया है।

बारह अंगरूप में विस्तार को प्राप्त श्रुत ज्ञान का जगत् के जीवों के हित के लिए भगवान् द्वारा संक्षेप में समावेश किया गया है।

इस समवायांग में नाना प्रकार के भेद-प्रभेद वाले जीव और अजीव पदार्थों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

तथा अन्य अनेक प्रकार के विशेष तत्वों का, नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव गणों के आहार, उच्छ्वास, लेश्या, आवास संख्या का आयाम-विष्कम्भ का प्रमाण, उपपात, च्यवन, अवगाहना, अवधिज्ञान, वेदना, विधान, उपयोग, योग, इन्द्रिय, कषाय, नाना प्रकार की जीव-योनियां, पर्वत-कूट आदि के विष्कम्भ, उत्सेध परिधि के प्रमाण का मन्दर आदि महीधरों के विधि-विशेषों का कुलकरों, तीर्थंकरों, गणधरों तथा समस्त भरतक्षेत्र के स्वामी चक्रवर्तियों का, चक्रधर-वासुदेवों और हलधरों का, क्षेत्रों का, निर्गमों का

तथा इसी प्रकार के अन्य पदार्थों का भी इस समवायांग सूत्र में विस्तार से कथन किया गया है।

समवायांग की वाचनाएं परिमित हैं यावत् संग्रहणियां संख्यात हैं।

अंग की अपेक्षा यह चौथा अंग है,

इसमें एक अध्ययन है, एक श्रुतस्कन्ध है,

एक उद्देशन-काल है, एक समुद्देशन-काल है,

पद-गणना की अपेक्षा इसके एक लाख चवालीस हजार पद हैं।

संख्यात अक्षर हैं यावत् उदाहरण देकर समझाए जाते हैं।

इसका अध्ययन करने वाला तदात्मरूप, ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है,

इस प्रकार इसमें चरण करण की प्ररूपणा की है यावत् उपदर्शन किया है।

यह समवायांग का वर्णन है।

(क) समवायांग का उत्क्षेप–

हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है, उन भगवान ने ऐसा कहा–

आदि (श्रुत धर्म-प्रणायक) तीर्थंकर, स्वयंसंबुद्ध, पुरुषोत्तम,

---

१. [illegible]

२. [illegible]

समवाए णं एगाइयाणं एगुत्तरियाणं ठाणगसयविवड्ढियाणं भावाणं परूवणा आघविज्जइ।

दुवालसंगस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समासिज्जइ।

समवायस्स णं परित्ता वायणा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ।

से णं अंगट्ठयाए चउत्थे अंगे,

एगे सुयक्खंधे, एगे अज्झयणे,

एगे उद्देसणकाले, एगे समुद्देसणकाले,

एगे [illegible] पदसयसहस्से पदग्गेणं,

[illegible]

[illegible]

पुरिससीहेणं पुरिसवरपोंडरीएणं पुरिसवरगंधहत्थिणं।

लोगोत्तमेणं लोगनाहेणं लोगहिएणं लोगपईवेणं लोगपज्जोयगरेणं।

अभयदएणं चक्खुदएणं मग्गदएणं सरणदएणं जीवदएणं बोहिदएणं धम्मदएणं।

धम्मदेसएणं धम्मनायगेणं धम्मसारहिणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणं अप्पडिहयवरणाणदंसण-धरेणं–

वियट्टछउमेणं जिणेणं जावएणं तिण्णेणं तारएणं बुद्धेणं वोहिएणं मुत्तेणं मोयगेणं

सव्वण्णुणं सव्वदरिसिणं सिव-मयल-मरुय-मणंत-मक्खय मव्वाबाहमपुणरावित्ति सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपाविउकामेणं इमे दुवालसंगे गणिपिडगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आयारें जाव १२. दिट्ठिवाए।

तत्थ णं जे से चउत्थे अंगे समवाए त्ति आहिए।

–सम. सम. १

पुरुषसिंह, पुरुषवरपुंडरीक पुरुषवरगंधहस्ती,

लोकोत्तम, लोकनाथ, लोकहितकर, लोकप्रदीप, लोकप्रद्योतकर,

अभय-दाता, चक्षुदाता, मार्गदाता, शरणदाता, जीवनदाता, बोधिदाता, धर्मदाता,

धर्मदेशक, धर्मनायक, धर्मसारथि, धर्मवरचातुरन्त चक्रवर्ती, अप्रतिहत श्रेष्ठज्ञान-दर्शन धारक,

छद्मरहित जिन (ज्ञाता) और ज्ञापक, तीर्ण और तारक, बुद्ध और बोधक, मुक्त और मोचक,

सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव-अचल-अरुज-अनन्त-अक्षय-अव्याबाध-अपुनरावर्त्तक सिद्धगति नामक स्थान की संप्राप्ति के लिए अग्रसर श्रमण भगवान् महावीर ने इस द्वादशांग गणिपिटक की प्ररूपणा की, यथा–

१. आचार यावत् १२. दृष्टिवाद

इनमें चौथा अंग समवाय कहा गया है।

(ख) समवायांगस्स उवसंहारो–

इच्चेयं एवमाहिज्जइ, तं जहा–

कुलगरवंसेइ य, तित्थगरवंसेइ य, चक्कवट्टिवंसेइ य, दसारवंसेइ य, गणधरवंसेइ य, इसिवंसेइ य, जइवंसेइ य, मुणिवंसेइ य, सुयेइ वा, सुयंगेइ वा, सुयसमासेइ वा, सुयखंधाइ वा, समावाएइ वा, संखेइ वा, समत्तमंगमक्खायं अज्झयणं। –सम. सु. १५९

(ख) समवायांग का उपसंहार–

इसलिए यह कहा जाता है, यथा–

कुलकरों के वंश, तीर्थंकरों के वंश, चक्रवर्तियों के वंश, दशारों के वंश, गणधरों के वंश, ऋषियों के वंश, (परंपरा) यतियों के वंश, मुनियों के वंश का वर्णन किया गया है तथा यह श्रुतज्ञान रूप है, श्रुतांग रूप है, श्रुत समासरूप है, श्रुतस्कन्ध रूप है, समवाय रूप है, संख्या रूप है, और समस्त अंगरूप है तथा अध्ययन रूप है।

२३. (५) वियाहपण्णत्ती–

प. से किं तं वियाहे?

उ. वियाहे णं ससमया वियाहिज्जंइ जाव लोगालोगे वियाहिज्जइ।

वियाहे णं नाणाविहसुर-नरिंद-रायरिसि-विविहसंसइयपुच्छियाणं जिणेणं वित्थरेण भासियाणं

दव्व-गुण-खेत्त-काल-पज्जव-पएस-परिणाम-जहत्थि-भाव-अणुगम-निक्खेव-णय-प्पमाण-सुनिउणोवक्कम-विविहप्पकारपागडपयं सियाणं,

लोगालोगप्पयासियाणं संसारसमुद्द-रुंद उत्तरणसमत्थाणं सुरवइसंपूजियाणं

भवियजणहिययाभिनंदियाणं तमरयविद्धंसणाणं सुदिट्ठदीवभूयईहा-मइ-बुद्धिवद्धणाणं छत्तीस-सहस्समणूणयाणं वागरणाणं दंसणाओ सुयत्थ-बहुविहप्पगारा सीसहियत्था य गुणमहत्था।

२३. (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति–

प्र. विवाह (व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र) में क्या है?

उ. व्याख्याप्रज्ञप्ति में सिद्धांत की व्याख्या की गई है यावत् लोक और अलोक की व्याख्या की गई है।

व्याख्याप्रज्ञप्ति में नाना प्रकार के देवों, नरेन्द्रों, राजर्षियों और अनेक प्रकार के संशयों में पड़े हुए जनों के द्वारा पूछे गए प्रश्नों का और जिनेन्द्र देव के द्वारा भाषित (उत्तरों) का वर्णन किया गया है।

तथा द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल, पर्याय, प्रदेश, परिणाम, यथा अस्ति भाव, अनुगम, निक्षेप, नय, प्रमाण, सुनिपुण-उपक्रमों के विविध प्रकारों द्वारा प्रकट रूप से प्रकाशित करने वाले,

लोकालोक के प्रकाशक, विस्तृत संसार-समुद्र से पार उतारने में समर्थ, इन्द्रों द्वारा संपूजित,

भव्य जनों के हृदयों को अभिनन्दित करने वाले, तमोरज का विध्वंसन करने वाले, सुदृष्ट दीपक स्वरूप, ईहा, मति और बुद्धि को बढ़ाने वाले ऐसे परिपूर्ण छत्तीस हजार व्याकरणों (उत्तरों) को दिखाने से यह व्याख्या-प्रज्ञप्ति सूत्रार्थ अनेक प्रकारों के प्रकाशक हैं, शिष्यों के हित-कारक हैं और गुणों के महान अर्थ से परिपूर्ण हैं।

वियाहस्स णं परित्ता वायणा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ।

से णं अंगट्ठयाए पंचमे अंगे,

एगे सुयक्खंधे, एगे साइरेगे अज्झयणसए,

दस उद्देसगसहस्साइं, दस समुद्देसगसहस्साइं,

छत्तीसं वागरणसहस्साइं,

चउरासीइं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं[1]।

संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया,

एवं चरणकरण परूवणा आघविज्जइ जाव उवदंसिज्जइ[2]।

से तं वियाहे। –सम. सु. १४०

व्याख्याप्रज्ञप्ति की वाचनाएं परिमित हैं यावत् संग्रहणियां संख्यात हैं।

अंगों में यह पांचवां अंग है,

इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, सौ से कुछ अधिक अध्ययन है,

दस हजार उद्देशन-काल है, दस हजार समुद्देशन-काल है,

छत्तीस हजार प्रश्नों के उत्तर हैं।

पद-गणना की अपेक्षा चौरासी हजार पद हैं।

संख्यात अक्षर हैं यावत् उदाहरण देकर समझाए गए हैं।

इसका अध्ययन करने वाला तदात्मरूप एवं ज्ञाता-विज्ञाता बन जाता है।

इस प्रकार इसमें चरण-करण की प्ररूपणा की गई है यावत् उपदर्शन किया गया है।

यह व्याख्याप्रज्ञप्ति का वर्णन है।

(क) वियाहपण्णत्तीए उद्देसण विही–

पण्णत्तीए आइमाणं अट्ठण्हं सयाणं दो-दो उद्देसगा उद्दिसिज्जंति।

णवरं–चउत्थसए पढमदिवसे अट्ठ, बिइयदिवसे दो उद्देसगा उद्दिसिज्जंति।

नवमाओ सयाओ आरद्धं जावइयं जावइयं ठाइ तावइयं तावइयं उद्दिसिज्जइ,

उक्कोसेणं सयं पि एगदिवसेणं उद्दिसिज्जइ, मज्झिमेणं दोहिं दिवसेहिं सयं, जहण्णेणं तिहिं दिवसेहिं सयं।

एवं जाव वीसइमं सयं।

णवरं–गोसालो एगदिवसेणं उद्दिसिज्जइ, जइ ठिओ एगेण चेव आयंबिलेणं अणुण्णव्वइ, अह णं ठिओ आयंबिलछट्ठेणं अणुण्णव्वइ।

एक्कवीस-बावीस-तेवीसइमाइं सयाइं एक्केक्कदिवसेणं उद्दिसिज्जंति।

(क) व्याख्याप्रज्ञप्ति की अध्ययन विधि–

व्याख्याप्रज्ञप्ति के प्रारम्भ के आठ शतकों के दो-दो उद्देशकों का उद्देश (वांचन) एक-एक दिन में किया जाता है।

विशेष–चतुर्थ शतक के आठ उद्देशकों का वांचन पहले दिन और दूसरे दिन शेष दो उद्देशकों का वांचन किया जाता है।

नौवें शतक से लेकर वीसवें शतक तक जितना-जितना शिष्य की बुद्धि में स्थिर हो सके, उतना-उतना एक-एक दिन में वांचन किया जाता है।

उत्कृष्ट एक दिन में एक शतक का भी वांचन किया जा सकता है, मध्यम दो दिन में और जघन्य तीन दिन में एक शतक का पाठ वांचन किया जा सकता है।

इस प्रकार वीसवें शतक तक जानना चाहिए।

विशेष–पन्द्रहवें गोशालक शतक का एक ही दिन में वांचन करना चाहिए। यदि शेष रह जाए तो दूसरे दिन आयम्बिल करके वांचन करना चाहिए। फिर भी शेष रह जाए तो तीसरे दिन आयम्बिल (षष्ठ भक्त अर्थात् दो आयंबिल) करके वांचन करना चाहिए।

इक्कीसवें, बाईसवें और तेईसवें शतक का एक-एक दिन में वांचन करना चाहिए।

गमियाणं आइमाइं सत्तसयाइं एक्केक्कदिवसेण उद्दिसिज्जंति।

एक समान पाठ वाले बन्धीशतक आदि सात शतकों का वांचन एक दिन में पूर्ण करना चाहिए।

एगिंदिय-सयाइं बारस एगेण दिवसेण उद्दिसिज्जंति।

बारह एकेन्द्रियशतकों का वांचन एक दिन में करना चाहिए।

सेढिसयाइं बारस एगेण दिवसेण उद्दिसिज्जंति।

बारह श्रेणी शतकों का वांचन एक दिन में करना चाहिए।

एगिंदियमहाजुम्मसयाइं बारस एगेण दिवसेण उद्दिसिज्जंति।

एकेन्द्रिय के बारह महायुग्मशतकों का वांचन एक ही दिन में करना चाहिए।

एवं बेइंदियाणं बारस, तेइंदियाणं बारस, चउरिंदियाणं बारस, असन्निपंचिंदियाणं बारस, सन्निपंचेंदियमहाजुम्म-सयाइं एक्कवीसं एगदिवसेणं उद्दिसिज्जंति।

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय के बारह, त्रीन्द्रिय के बारह, चतुरिन्द्रिय के बारह, असंज्ञीपंचेन्द्रिय के बारह शतकों का तथा इक्कीस संज्ञीपंचेन्द्रियमहायुग्म शतकों का वांचन भी एक-एक दिन में करना चाहिए।

रासीजुम्मसयं एगदिवसेणं उद्दिसिज्जंति।

–विया. उपसंहार सूत्र

इकतालीसवें राशियुग्मक की वांचना भी एक दिन में दी जानी चाहिए।

(ख) वियाहपण्णत्तीए सयगुद्देगणि य संखा–

सव्वाए भगवईए अट्ठतीसं सयं सयाणं (१३८)

उद्देसगाणं एगूणविंसइ सयाणी पंचविसइ अहियाणी (१९२५)

–विया. उपसंहार

वियाहपण्णत्तीए एकासीइ महाजुम्मसया पण्णत्ता।

–सम. सम. ८१, सु. ३

(ख) व्याख्याप्रज्ञप्ति के शतक और उद्देशकों की संख्या–

सम्पूर्ण भगवती सूत्र के कुल एक सौ अड़तीस (१३८) शतक हैं, तथा–

उन्नीस सौ पच्चीस (१९२५) उद्देशक हैं।

व्याख्याप्रज्ञप्ति में इक्यासी महायुग्मशतक कहे गए हैं।

(ग) वियाहपण्णत्तीए पया–

चुलसीइसयसहस्सा पयाणं पवरवरणाण-दंसीहिं।
भावाभावमणंता पण्णत्ता एत्थमंगम्मि[1] ॥१॥

–विया. पृ. ११८३ सु. २

वियाहपण्णत्तीए णं भगवतीए चउरासीइं पयसहस्सा पदग्गेणं पण्णत्ता।

–सम. सम. ८४, सु. १०

(ग) व्याख्याप्रज्ञप्ति के पद–

सर्वश्रेष्ठ ज्ञान और दर्शन के धारक महापुरुषों ने इस अंगसूत्र में ८४ लाख पद कहे हैं तथा विधि-निषेधरूप भाव तो अनन्त कहे गए हैं।

व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक भगवती सूत्र के पद-गणना की अपेक्षा चौरासी हजार पद कहे गए हैं।

(घ) वियाहपण्णत्तीए सयगुद्देसगाणं संगहणी गाहाओ–

१ रायगिह चलण २ दुक्खे ३ कंखपओसे य ४ पगइ ५ पुढवीओ। ६ जावंते ७ नेरइए ८ बाले ९ गुरुए य १० चलणाओ ॥१॥

–विया. स. १, उ. १, सु. २

१ आणमइ २ समुग्घाया ३ पुढवी ४ इंदिय ५ णियंठ ६ भासा य। ७ देव ८ सभा ९ दीव १० अत्थि य बीयम्मि सए दसुद्देसा[2] ॥२॥

–विया. स. २, उ. १, सु. १

(घ) व्याख्याप्रज्ञप्ति के शतकों के उद्देशकों की संग्रहणी गाथाएं–

१. राजगृह नगर में "चलन", २. दुःख, ३. कांक्षा-प्रदोष, ४. (कर्म) प्रकृति, ५. पृथ्वियां, ६. यावत् (जितनी दूर से), ७. नैरयिक, ८. बाल, ९. गुरुक, १०. चलनादि। प्रथम शतक में ये दस उद्देशक हैं।

१. श्वासोच्छ्वास, २. समुद्घात, ३. पृथ्वी, ४. इन्द्रियां, ५. निर्ग्रन्थ, ६. भाषा, ७. देव, ८. (चमरेन्द्र) सभा, ९. द्वीप (समय क्षेत्र का स्वरूप), १०. अस्तिकाय। दूसरे शतक में ये दस उद्देशक हैं।

---

१. तवनियमविणयवेलो, जयइ सदा नाणविमलविपुलजलो।
हेउसयविपुलवेगो, संघसमुद्दो गुणविसालो ॥२॥
णमो गोयमाईणं गणहराणं,
णमो भगवईए वियाहपण्णत्तीए,
णमो दुवालसंगस्स गणिपिडगस्स।
कुम्मुयसुसंठियचलणा, अमलियकोरेंटबिंटसंकासा।
सुयदेवया भगवई, मम मतितिमिरं पणासेउ ॥१॥
वियसियअरविंदकरा, नासियतिमिरा सुयाहिया देवी।
मज्झं पि देउ मेहं, बुहविबुहणमंसिया णिच्चं ॥१॥
सुयदेवयाए पणमिमो, जीए पसाएण सिक्खियं नाणं।
अण्णं पवयणदेविं, संतिकरिं तं नमंसामि ॥२॥
सुयदेवया य जक्खो, कुंभधरो बंभसंतिवेरोट्टा।
विज्जा य अतंहुंडी, देउ अविग्घं लिहंतस्स ॥३॥ *–विया. उपसंहार सूत्र*
यह अंश लेखनकर्ता आदि के द्वारा परिवर्धित है ऐसा व्याख्याकार पूर्वाचार्यों का मंतव्य है।

२. (क) १ उस्सास खंदए वि य २ समुग्घाय ३-४ पुढविंदिय ५ अण्णउत्थि ६ भासा य।
७ देवा य ८ चमरचंचा, ९-१० समयक्खेत्तत्थिकाय दीव सए ॥१॥
(ख) दीए १ खंदए २ समुग्घाय ३ पुढवि तह ४ इन्दिय ५ अण्णउत्थिय।
६ भण्णामि ७ देव ८ नयरी ९-१० समयक्खेत्त अण्णउत्थिय ॥
–विया. स. २, उ. १, सु. १ का पाठान्तर

१ केरिस विउव्वणा २ चमर ३ किरिय ४-५ जाणित्थि ६ नगर ७ पाला य। ८ अहिवइ ९ इंदिय १० परिसा तइयम्मि सए दसुद्देसा ॥१॥ *-विया. स. ३, उ. १, सु. १*

१. विकुर्वणा-शक्ति, २. चमरेन्द्र का उत्पात, ३. क्रिया, ४. देव द्वारा विकुर्वित यान, ५. साधु द्वारा स्त्री आदि के रूपों की विकुर्वणा, ६. नगर, ७. लोकपाल, ८. अधिपति, ९. इन्द्रिय, १०. परिषद्। तीसरे शतक में ये दस उद्देशक हैं।

१-४ चत्तारि विमाणेहिं ५-८ चत्तारि य होंति रायहाणीहिं। ९ नेरइए १० लेस्साहि य दस उद्देसा चउत्थसए ॥१॥ *-विया. स. ४, उ. १, सु. १*

एक से चार उद्देशकों में विमान सम्बन्धी, पांच से आठ उद्देशकों में राजधानियों का, नवमें उद्देशक में नैरयिकों का और १०. दसवें उद्देशक में लेश्याओं सम्बन्धी वर्णन है। चौथे शतक में ये दस उद्देशक हैं।

१ चंप रवि २ अणिल ३ गंठिय ४ सद्दे ५-६ छउमायु ७ एयणं ८ णियंठे। ९ रायगिहं १० चंपाचंदिमा य दस पंचम्मि सए ॥१॥ *-विया. स. ५, उ. १, सु. १*

१. चम्पा नगरी में सूर्य सम्बन्धी प्रश्नोत्तर, २. वायु सम्बन्धी प्ररूपण, ३. जालग्रन्थी का उदाहरण, ४. शब्द, ५. छद्मस्थ, ६. आयु, ७. पुद्गलों के कम्पन, ८. निर्ग्रन्थी-पुत्र अनगार, ९. राजगृह, १०. चम्पानगरी में चन्द्र। पांचवें शतक में ये दस उद्देशक हैं।

१ वेयणं २ आहार ३ महस्सवे य ४ सपदेस ५ तमुयए ६ भविए। ७ साली ८ पुढवी ९-१० कम्मऽन्नउत्थि दस छट्ठगम्मि सए ॥१॥ *-विया. स. ६, उ. १, सु. १*

१. वेदना, २. आहार, ३. महाश्रव, ४. सप्रदेश, ५. तमस्काय, ६. भव्य, ७. शाली, ८. पृथ्वी, ९. कर्म, १०. अन्यतीर्थिक। छठे शतक में ये दस उद्देशक हैं।

१ आहार २ विरइ ३ थावर ४ जीवा ५ पक्खी य ६ आउ ७ अणगारे। ८ छउमत्थ ९ असंवुड १० अन्नउत्थि दस सत्तमम्मि सए ॥१॥ *-विया. स. ७, उ. १, सु. १*

१. आहार, २. विरति, ३. स्थावर, ४. जीव, ५. पक्षी, ६. आयुष्य, ७. अनगार, ८. छद्मस्थ, ९. असंवृत, १०. अन्यतीर्थिक। सातवें शतक में ये दस उद्देशक हैं।

१ पोग्गल २ आसीविस ३ रुक्ख, ४ किरिय ५ आजीव ६-७ फासुगमदत्ते। ८ पडिणीय ९ बंध १० आराहणा य दस अट्ठमम्मि सए ॥१॥ *-विया. स. ८, उ. १, सु. १*

१. पुद्गल, २. आशीविष, ३. वृक्ष, ४. क्रिया, ५. आजीव, ६. प्रासुक, ७. अदत्त, ८. प्रत्यनीक, ९. बन्ध, १०. आराधना। आठवें शतक में ये दस उद्देशक हैं।

१ जंबुद्दीवे २ जोइस ३-३० अंतरदीवा ३१ असोच्च ३२ गंगेय। ३३ कुंडग्गामे ३४ पुरिसे नवमम्मि सयम्मि चोत्तीसा ॥१॥ *-विया. स. ९, उ. १, सु. १*

१. जम्बूद्वीप, २. ज्योतिष, ३-३०. (अट्ठाईस) अन्तर्द्वीप, ३१. अश्रुत्वाकेवली, ३२. गांगेय अनगार, ३३. (ब्राह्मण) कुण्डग्राम, ३४. पुरुष। नौवें शतक में ये चौंतीस उद्देशक हैं।

१ दिसि २ संवुडअणगारे ३ आइड्ढी ४ सामहत्थि ५ देवि ६ सभा। ७-३४ उत्तर अंतरदीवा दसमम्मि सयम्मि चोत्तीसा ॥१॥ *-विया. स. १०, उ. १, सु. १*

१. दिशा, २. संवृत अनगार, ३. आत्मऋद्धि, ४. श्यामहस्ती, ५. देवी, ६. सुधर्मा सभा और (७ से ३४) उत्तरवर्ती अन्तर्द्वीप। दसवें शतक में ये चौंतीस उद्देशक हैं।

१ उप्पल २ सालु ३ पलासे ४ कुंभी ५ नालीय ६ पउम ७ कण्णीय। ८ नलिण ९ सिव १० लोग ११-१२ कालालंभिय दस दो य एक्कारे ॥१॥ *-विया. स. ११, उ. १, सु. १*

१. उत्पल, २. शालूक, ३. पलाश, ४. कुम्भी, ५. नाडीक, ६. पद्म, ७. कर्णिका, ८. नलिन, ९. शिवराजर्षि, १०. लोक, ११. काल, १२. आलंभिका नगरी। ग्यारहवें शतक में ये बारह उद्देशक हैं।

१ कुंजर २ संजय ३ सेलेसिं ४ किरिय ५ ईसाण ६-७ पुढवि ८-९ दग १०-११ वाऊ। १२ एगिंदिय १३ नाग १४ सुवण्णं १५ विज्जु १६ वाय १७ ऽग्गि सत्तरसे ॥१॥ *–विया. स. १७, उ. १, सु. २*

१. कुंजर, २. संयत, ३. शैलेशी, ४. क्रिया, ५. ईशान, ६-७. पृथ्वी, ८-९. उदक, १०-११. वायु, १२. एकेन्द्रिय, १३. नागकुमार, १४. सुवर्णकुमार, १५. विद्युतकुमार, १६. वायुकुमार, १७. अग्निकुमार। सत्तरहवें शतक में सत्तरह उद्देशक हैं।

१ पढमा २ विसाह ३ मायंदिए य ४ पाणाइवाय ५ असुरे य। ६ गुल ७ केवलि ८ अणगारे ९ भविए तह १० सोमिलऽट्ठारसे ॥१॥ *–विया. स. १८, उ.१, सु. १*

१. प्रथम, २. विशाखा, ३. माकन्दिक, ४. प्राणातिपात, ५. असुर, ६. गुड़, ७. केवली, ८. अनगार, ९. भविक, १०. सोमिल। अठारहवें शतक में ये दस उद्देशक हैं।

१ लेस्सा य २ गब्भ ३ पुढवी ४ महासवा ५ चरम ६ दीव ७ भवणा य। ८ निव्वत्ति ९ करण १० वणचरसुरा य एगूणवीसइमे ॥१॥ *–विया. स. १९, उ. १, सु. १*

१. लेश्या, २. गर्भ, ३. पृथ्वी, ४. महाश्रव, ५. चरम, ६. द्वीप, ७. भवन, ८. निर्वृत्ति, ९. करण, १०. वनचर-सुर (वाणव्यंतर देव)। उन्नीसवें शतक में ये दस उद्देशक हैं।

१ बेइंदिय २ मागासे ३ पाणवहे ४ उवचए य ५ परमाणू। ६ अंतर ७ बंधे ८ भूमि ९ चारण १० सोवक्कमा जीवा ॥१॥ *–विया. स. २०, उ. १, सु. १*

१. द्वीन्द्रिय, २. आकाश, ३. प्राणवध, ४. उपचय, ५. परमाणु, ६. अन्तर, ७. बन्ध, ८. भूमि, ९. चारण, १०. सोपक्रमीजीव। बीसवें शतक में ये दस उद्देशक हैं।

१ सालि २ कल ३ अयसि ४ वंसे ५ उक्खू ६ दब्भे य ७ अब्भ ८ तुलसी य। अट्ठेए दसवग्गा असीइ पुण होंति उद्देसा ॥१॥ *–विया. स. २१, उ. १, सु. १*

१. शालि, २. कलाय (मटर), ३. अलसी, ४. बांस, ५. ईक्षु, ६. दर्भ, ७. अभ्र, ८. तुलसी। इक्कीसवें शतक में ये आठ वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में दस-दस उद्देशक होने से सब मिलाकर ८० उद्देशक होते हैं।

१-२ तालेगट्ठिय ३ बहुबीयगा य ४ गुच्छा य ५ गुम्म ६ वल्ली य। छद्दसवग्गा एए सट्ठिं पुण होंति उद्देसा ॥१॥ *–विया. स.२२, उ. १, सु. १*

१. ताल, २. एकास्थिक (एक गुठली वाला), ३. बहुवीजक, ४. गुच्छ, ५. गुल्म, ६. वल्लि। बावीसवें शतक में ये छः वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग के १०-१० उद्देशक होने से सब मिलाकर साठ उद्देशक होते हैं।

१ आलुय २ लोही ३ अवए ४ पाढा ५ तह मासवण्णि वल्ली य। पंचेते दसवग्गा पण्णासं होंति उद्देसा ॥१॥ *–विया. स. २३, उ. १, सु. १*

१. आलु, २. लोही, ३. अवक, ४. पाठा, ५. माषपर्णी वल्ली। तेवीसमें शतक में ये पांच वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग के १०-१० उद्देशक होने से पांच वर्गों के पचास उद्देशक होते हैं।

१. लेसा य २. दव्व, ३. संठाणं, ४. जुम्म, ५. पज्जव, ६. नियंठ, ७. समणा य। ८. ओहे, ९-१०. भविया भविए, ११. सम्मा, १२. मिच्छे य उद्देसा ॥१॥ *–विया. स. २५, उ. १, सु. १*

१. लेश्या, २. द्रव्य, ३. संस्थान, ४. युग्य, ५. पर्यव, ६. निर्ग्रन्थ, ७. श्रमण, ८. ओघ, ९. भव्य, १०. अभव्य, ११. सम्यग्दृष्टि, १२. मिथ्यादृष्टि। पच्चीसवें शतक में ये बारह उद्देशक हैं।

१ जीवा य २ लेस, ३ पक्खिय ४. दिट्ठी, ५ अन्नाण, ६ नाण, ७ सन्नाओ। ८ वेय ९ कसाय १०. उवयोग, ११. योग एक्कारस वि ठाणा ॥१॥ *–विया. स. २६, उ. १, सु. १*

१. जीव, २. लेश्याएं, ३. पाक्षिक, ४. दृष्टि, ५. अज्ञान, ६. ज्ञान, ७. संज्ञा, ८. वेद, ९. कषाय, १०. उपयोग, ११. योग। छब्बीसवें शतक में ये ग्यारह उद्देशक हैं।

(च) वियाहपण्णत्तीए उद्देसगाणं संगहणीगाहाओ–

छट्ठऽट्ठस मासो अद्धमासो वासाइं अट्ठ छम्मासा।
तीसग-कुरुदत्ताणं तव भत्तपरिण्ण परियाओ ॥१॥

(च) व्याख्याप्रज्ञप्ति के उद्देशकों की संग्रहणी गाथाएं–

तिष्यक श्रमण और कुरुदत्तपुत्र श्रमण के छट्ठ-छट्ठ, अट्ठम-अट्ठम तप, मास, अर्द्ध मास का अनशन, आठ वर्ष या छह मास की दीक्षा पर्याय का वर्णन तथा।

उच्चत्त विमाणाणं पादुब्भव पेच्छणा य संलावे।
किच्च विवादुप्पती, सणंकुमारे य भवियत्तं ॥१॥
–विया. स. ३, उ. १, सु. ६५

इन्द्रो के विमानों की ऊँचाई, एक इन्द्र का दूसरे इन्द्र के पास आगमन, परस्पर प्रेक्षण, आलाप-संलाप, कार्य, विवादोत्पत्ति तथा सनत्कुमारेन्द्र की भवसिद्धिकता आदि की पृच्छा इस उद्देशक में है।

इत्थी असी पडागा जण्णोवइते य होइ बोद्धव्वे।
पल्हत्थिय पलियंके अभियोगविकुव्वणा मायी ॥१॥
–विया. स. ३, उ. ५, सु. १६

स्त्री, असि (तलवार), पताका, यज्ञोपवीत (जनेऊ), पल्हथी, पर्यंकासन इन सब रूपों के अभियोग और विकुर्वणा एवं इनको मायी करता है का कथन इस उद्देशक में है।

किमिदं रायगिहं ति य, उज्जोए अंधकारे समए य।
पासंतिवासिपुच्छा राइंदिय देवलोगा य ॥१ ॥
—विया. स. ५, उ. ९, सु. १८

राजगृह नगर क्या है? उद्योत, अन्धकार समय सम्बन्धी जिज्ञासा, रात्रि-दिवस के विषय में पार्श्वजिनशिष्यों के प्रश्नोत्तर और देवलोक विषयक प्रश्नोत्तर इस उद्देशक में है।

महावेदणे य वत्थे कद्दम खंजणमए य अहिकरणी।
तणहत्थे य कवल्ले करण महावेयणा जीवा ॥
—विया. स. ६, उ. १, सु. १४

महावेदना, कर्दम और खंजन के रंग से रंगे हुए वस्त्र, अधिकरणी (एरण) घास का पूला (तृणहस्तक) लोहे का तवा या कड़ाह करण और महावेदना वाले जीव इन विषयों का इस उद्देशक में वर्णन किया गया है।

१ बहुकम्म २ वत्थपोग्गल पयोगसा वीससा य ३ सादीए।
४-५ कम्मट्ठिई-त्थि ६ संजय ७ सम्मदिट्ठी य ८ सण्णी य ॥१ ॥
९ भविए १० दंसण ११ पज्जत्त १२ भासए १३ परित्त १४ नाण १५ जोगे य। १६-१७ उवओगाऽहारग १८ सुहुम १९ चरिम बंधे य, २० अप्पबहुयं ॥२ ॥
—विया. स. ६, उ. ३, सु. १

१. बहुकर्म, २. वस्त्र में प्रयोग से और स्वाभाविक रूप से पुद्गल, ३. सादि, ४. कर्मस्थिति, ५. स्त्री, ६. संयत, ७. सम्यग्दृष्टि, ८. संज्ञी तथा–
९. भव्य, १०. दर्शन, ११. पर्याप्त, १२. भाषक, १३. परित्त, १४. ज्ञान, १५. योग, १६. उपयोग, १७. आहारक, १८. सूक्ष्म, १९. चरम-बन्ध, २०. अल्पबहुत्व का इस उद्देशक में वर्णन किया है।

तमुकाए कप्पपणए, अगणी, पुढवी य, अगणि पुढवीसु।
आउ-तेउ-वणस्सइ, कप्पुवरिम कण्हराईसु ॥१ ॥
—विया. स. ६, उ. ८, सु. २६

तमस्काय और पांच देव-लोकों में अग्निकाय और पृथ्वीकाय सम्बन्धी प्रश्नोत्तर पृच्छा, नरकपृथ्वियों में अग्निकाय सम्बन्धी प्रश्नोत्तर,
पंचम देवलोक से ऊपर सब स्थानों में तथा कृष्णराजियों में अप्काय, तेजस्काय और वनस्पतिकाय के प्रश्नोत्तरों का वर्णन किया गया है।

जीवाण सुहं दुक्खं, जीवे जीवइ तहेव भविया य।
एगंतदुक्खवेदण, अत्तमायाय केवली ॥१ ॥
—विया. स. ६, उ. १०, सु. १५

जीवों के सुख-दुःख, जीवों का प्राणधारण, भव्यत्व, एकान्त, दुःख वेदन, आत्मा द्वारा पुद्गलों का ग्रहण और केवली के जानने देखने का वर्णन इस उद्देशक में हैं।

१ नेरइय २ फास ३ पणिही, ४ निरयंते चेव ५ लोयमज्झे य। ६ दिसि विदिसाण य पवहा ७ पवत्तणं अत्थिकाएहिं ॥ ८ अत्थि पएसफुसणा ९ ओगाहणा य १० जीव मोगाढा। ११. अत्थि पएस निसीयण [illegible]

१. नैरयिक, २. स्पर्श, ३. प्रणिधि, ४. निर्यात और ५. लोकमध्य, ६. दिशा-विदिशा प्रवह, ७. अस्तिकाय प्रवर्तन, ८. अस्ति प्रदेश स्पर्शन, ९. अवगाहना, १०. जीवावगाढ़, ११. अस्ति प्रदेश निषीदन, १२. बहुःश्रम और १३. लोक संस्थान इस उद्देशक में ये तेरह द्वार हैं।

सामी समोसढे, परिसा निग्गया,

धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया,

भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे, उनका धर्मोपदेश सुनने के लिए परिषद निकली।

भगवान् ने धर्म देशना दी, देशना सुनकर परिषद् वापस लौट गई,

तेणं कालेणं तेणं समएणं जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे गोयमे गोत्तेणं, जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी[1]– –*विया. स. २, उ. १, सु. २*

उस काल और उस समय में महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अंतेवासी गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति "अनगार" ने यावत् भगवान् की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछा–

---

१. शतक, उद्देशकों के प्रारंभ में प्रायः इसी प्रकार के संक्षिप्त व विस्तृत रूप में निम्न स्थलों पर उपोद्घात पाठ हैं–विशिष्ट अंतरों का संकेत यथास्थान किया है–

१. विया.स.१,उ.२,सु.१
२. विया.स.२,उ.५,सु.२०
३. विया.स.३,उ.१,सु.१ (मौका नगरी, नंदन चैत्य)
४. विया.स.३,उ.२,सु.१
५. विया.स.३, उ.३,सु.१
६. विया.स.३,उ.७,सु.१
७. विया.स.३,उ.८,सु.१
८. विया.स.३,उ.९,सु.१
९. विया.स.३,उ.१०,सु.१
१०. विया.स.४,उ.१,सु.१
११. विया.स.५,उ.१,सु.२-३ (चंपा नगरी, पूर्णभद्र चैत्य)
१२. विया.स.५,उ.२,सु.१
१३. विया.स.५,उ.८,सु.१-३, (नारदपुत्र, निर्ग्रन्थिपुत्र अणगार,)
१४. विया.स.५,उ.९,सु.१
१५. विया.स. ५,उ.१०,सु.१ (चंपानगरी)
१६. विया.स.६,उ.२,सु.१
१७. विया.स.७,उ.१,सु.१
१८. विया.स.७,उ.४,सु.१
१९. विया.स.७,उ.५,सु.१
२०. विया.स.७,उ.६,सु.१
२१. विया.स.८,उ.१,सु.१
२२. विया.स.८,उ.४,सु.१
२३. विया.स.८,उ.५,सु.१
२४. विया.स.८,उ.७,सु.१-२
२५. विया.स.८,उ.८,सु.१
२६. विया.स.८,उ.१०,सु.१
२७. विया.स.९,उ.१,सु.१ (मिथिलानगरी, माणिभद्र, चैत्य)
२८. विया.स.९,उ.२,सु.१
२९. विया.स.९,उ.३,सु.१
३०. विया.स.९,उ.३ सु.१
३१. विया.स.९,उ.३१,सु.१
३२. विया.स.९,उ.३२,सु.१
(वाणिज्य ग्राम नगर, घुतिपलाश चैत्य)
३३. विया.स.९,उ.३३,सु.१ (ब्राह्मण कुण्डनगर, बहुशाल चैत्य)
३४. विया.स.९,उ.३४,सु.१
३५. विया.स.१०,उ.१,सु.१
३६. विया.स.१०,उ.२,सु.१
३७. विया.स.१०,उ.३,सु.१
३८. विया.स.१०,उ.४,सु.१-४
(वाणिज्यग्राम, घुतिपलाश चैत्य, श्यामहस्ती अणगार)
३९. विया.स.१०,उ.५,सु.१
४०. विया.स.११,उ.१,सु.३
४१. विया.स.११,उ.१०,सु.१
४२. विया.स.१२,उ.३,सु.१
४३. विया.स.१२,उ.४,सु.१
४४. विया.स.१२,उ.५,सु.१
४५. विया.स.१२,उ.६,सु.१
४६. विया.स.१२,उ.७,सु.१
४७. विया.स.१२,उ.८,सु.१
४८. विया.स.१३,उ.१,सु.१
४९. विया.स.१३,उ.६,सु.१
५०. विया.स.१३,उ.७,सु.१
५१. विया.स.१३,उ.९,सु.१
५२. विया.स.१४,उ.१,सु.१
५३. विया.स.१४,उ.६,सु.१
५४. विया.स.१४,उ.७,सु.१
५५. विया.स.१६,उ.१,सु.१
५६. विया.स.१६,उ.२,सु.१
५७. विया.स.१६,उ.२,सु.१
५८. विया.स.१६,उ.३,सु.१
५९. विया.स.१६,उ.४,सु.१
६०. विया.स.१६,उ.५,सु.१-२ (उल्लूकतीर नगर, एकजंबू चैत्य)
६१. विया.स.१७,उ.१,सु.१
६२. विया.स.१८,उ.१,सु.१
६३. विया.स.१८,उ २,सु.१ (विशाखानगर, बहुपुत्रिक चैत्य)
६४. विया.स.१८,उ.३,सु.१
(राजगृह नगर, गुणशील चैत्य, माकंदी पुत्र अणगार)
६५. विया.स.१८,उ.४,सु.१
६६. विया.स.१८,उ.७,सु.१
६७. विया.स.१८,उ.८,सु.१
६८. विया.स.१८,उ.९,सु.१
६९. विया.स.१८,उ.१०,सु.१
७०. विया.स.१९,उ.१,सु.१
७१. विया.स.१९,उ.३,सु.१
७२. विया.स.२०,उ.१,सु.१
७३. विया.स.२१,उ.१,सु.१
७४. विया.स.२२,उ.१,सु.१
७५. विया.स.२३,उ.१,सु.१
७६. विया.स.२४,उ.१,सु.१
७७. विया.स.२४,उ.२,सु.१
७८. विया.स.२४,उ.३,सु.१
७९. विया.स.२४,उ.३,सु.१
८०. विया.स.२५,उ.१,सु.१
८१. विया.स.२५,उ.६,सु.२
८२. विया.स.२५,उ.८,सु.१
८३. विया.स.२६,उ.१,सु.३
८४. विया.स.३१,उ.१,सु.१

२४. (६) णाया धम्मकहाओ–

प. से किं तं णायाधम्मकहाओ?

उ. णायाधम्मकहासु णं णायाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणखंडा रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ,

इहलोइया-परलोइया इड्ढीविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा

तवोवहाणाइं परियागा संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायाइं पुण बोहिलाभो अंतकिरियाओ य आघविज्जंति।

नायाधम्मकहासु णं पव्वइयाणं विणयकरणजिणसामि - सासणवरे संजमपइण्णा पालणधिइ - मइ - ववसाय-दुब्बलाणं,

तवनियम-तवोवहाणरणदुद्धरभरभग्गा णिस्सहा णिसिट्ठाणं, घोरपरीसहपराजियाणं,

२४. (६) ज्ञाताधर्मकथा सूत्र–

प. ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में क्या है?

उ. ज्ञाताधर्मकथा में उदाहरण रूप में कहे गए पुरुषों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, उनके माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा

इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत-परिग्रह,

तप-उपधान, दीक्षापर्याय, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, देवलोक गमन, सुकुल में पुनर्जन्म, पुनः बोधिलाभ और अन्त क्रियाओं का वर्णन है।

ज्ञाता धर्मकथा में विनय मूल जिनशासन में प्रव्रजित होकर भी संयम प्रतिज्ञा के पालन करने में जिनकी धृति, मति और व्यवसाय दुर्वल है,

जो तप के नियम और तप के परिपालन रूप कर्म युद्ध के दुर्धर भार से परांमुख हो गए हैं, अत्यन्त अशक्त होकर संयम पालन करने का संकल्प छोड़कर निकल चुके हैं, जो घोर परीषहों से पराजित हो चुके हैं,

दस धम्मकहाणं वग्गा।

तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंच पंच अक्खाइयासयाइं, एगमेगाए अक्खाइयाए पंच पंच उवक्खाइयासयाइं, एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइयउवक्खाइयासयाइं,

एवामेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ अक्खाइयाकोडीओ भवंतीति मक्खायाओ।

णायाधम्मकहासु णं परित्ता वायणा **जाव** संखेज्जाओ संगहणीओ।

से णं अंगट्ठयाए छट्ठे अंगे,

दो सुयक्खंधा, एगूणतीसं अज्झयणा।

ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. चरिया य, २ कप्पिया य।

एगूणतीसं उद्देसणकाला,

एगूणतीसं समुद्देसणकाला,

संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता, संखेज्जा अक्खरा **जाव** उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण करण परूवणा आघविज्जंति **जाव** उवदंसिज्जंति।

से त्तं णायाधम्मकहाओ।[1] *–सम., सु. १४१*

धर्मकथाओं के दस वर्ग हैं।

उनमें से एक-एक धर्मकथा में पाँच-पाँच सौ आख्यायिकाएं हैं, एक-एक आख्यायिका में पाँच-पाँच सौ उपाख्यायिकाएं हैं, एक-एक उपाख्यायिका में पाँच-पाँच सौ आख्यायिका-उपाख्यायिकाएं हैं।

इस प्रकार सब मिलाकर साढ़े तीन करोड़ कथाएं कही गई हैं।

ज्ञाताधर्मकथा में परिमित वाचनाएं हैं **यावत्** संख्यात संग्रहणियां हैं।

अंगों में यह छठा अंग है,

इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं और उन्तीस अध्ययन हैं,

वे संक्षेप में दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. चरित, २. कल्पित।

ज्ञाताधर्मकथा में उन्तीस उद्देशन-काल हैं,

उन्तीस समुद्देशन-काल हैं,

पद-गणना की अपेक्षा संख्यात हजार पद हैं, संख्यात अक्षर हैं **यावत्** उदाहरण देकर समझाए गए हैं।

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला तदात्मरूप ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है। इस प्रकार इस अंग में चरण करण की विशिष्ट प्ररूपणा की है **यावत्** उपदर्शन किया है।

यह ज्ञाताधर्मकथा का वर्णन है।

(क) णायाधम्मकहांगस्स पढम सुयक्खंधस्स उक्खेवो–

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था–**वण्णओ।**

तीसे णं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए पुण्णभद्दे नामं चेइए होत्था–**वण्णओ।**

तत्थ णं चंपाए नयरीए कोणिए नामं राया होत्था–**वण्णओ।**

तेण कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मे नामं थेरे जाइ संपण्णे कुल संपण्णे,

(क) ज्ञाताधर्मकथांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध का उपोद्घात–

उस काल और उस समय में चम्पा नाम की नगरी **थी–यहाँ** नगरी का वर्णन करना चाहिए।

उस चम्पा नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व के दिशा भाग (**ईशान** कोण) में पूर्णभद्र नाम का चैत्य (बाग) था। यहाँ चैत्य का **वर्णन** जानना चाहिए।

उस चम्पा नगरी में कोणिक नाम का राजा रहता था। यहाँ राजा का वर्णन करना चाहिए।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी आर्य सुधर्मा नाम के स्थविर जो उत्तम जाति एवं उत्तम कुल के थे।

---

१. प. से किं तं णायाधम्मकहाओ ?

उ. णायाधम्मकहासु णं णायाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइआइं वणसंडाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापियरो धम्मकहाओ धम्मायरिया इहलोग-परलोगिया रिद्धि-विसेसा भोगपरिच्चागा पव्वज्जाओ परियागा सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायाईओ पुणबोहिलाभा अंतकिरियाओ य आघविज्जंति।

दस धम्मकहाणं वग्गा तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंच पंच अक्खाइयासयाइं,

एगमेगाए अक्खाइयाए पंच पंच उवक्खाइयासयाइं,

एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइओवक्खाइयासयाइं,

एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ कहाणगकोडीओ भवंतिति मक्खायं।

णाया धम्मकहाणं परित्ता वायणा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ।

से णं अंगट्ठयाए छट्ठे अंगे, दो सुयक्खंधा, एगूणवीसं णायज्झयणा, एगूणवीसं उद्देसणकाला, एगूणवीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं, पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं नाया एवं विण्णाया एवं चरण-करण परूवणा आघविज्जइ। से तं णाया धम्मकहाओ। *–नंदी. सु. ८८*

बल-रूव-विणय-णाण-दंसण-चरित्त-लाघवसंपण्णे,	वे बल से, रूप से, विनय से तथा ज्ञान-दर्शन चारित्र से भी श्रेष्ठ थे, अल्प कर्म रज वाले थे।
ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी,	वे ओजस्वी तेजस्वी वर्चस्वी एवं यशस्वी थे।
जियकोहे जियमाणे जियमाए जियलोहे,	वे क्रोध मान माया एवं लोभ को जीतने वाले थे।
जिइंदिए जियनिद्दे जियपरीसहे,	वे इन्द्रियों पर एवं निद्रा पर विजय प्राप्त करने वाले और परीषहों को सहन करने वाले थे।
जीवियास-मरणभयविप्पमुक्के,	वे जीने की इच्छा नहीं करते थे और मरने के भय से भी सर्वथा मुक्त थे।
तवप्पहाणे गुणप्पहाणे,	वे तपश्चर्या करने के लिए सदा तत्पर रहते थे। वे अनेक गुणों के धारक थे।
एवं-करण-चरण-निग्गह-निच्छय,	इसी प्रकार वे करण-कृत, कारित अनुमोदनादि का चरण-मन वचन-काया का वे निग्रह करते थे, निश्चय करने में निपुण थे।
अज्जव-मद्दव-लाघव-खंति-गुत्ति-मुत्ति,	वे स्वभाव से सरल, प्रकृति से मृदु, अल्प उपधि वाले, क्षमाशील, गुप्ति युक्त एवं निर्लोभी थे।
विज्जा-मंत-बंभ-वेय-नय-नियम-सच्च-सोय,	वे अनेक विद्याओं एवं मन्त्रों को जानने वाले थे, ब्रह्मचर्य के पालक, वेदों के पारगंत, नयों में निष्णात, नियमों के पालक सत्यवादी द्रव्य से एवं भाव से शौच (शुद्धि) वाले थे।
नाण-दंसण-चरित्तप्पहाणे	वे ज्ञान दर्शन चारित्र का पालन करने के लिए प्रयत्नशील थे।
ओराले घोरे घोरव्वए घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी,	उदार व्रतों का विवेकपूर्वक पालन करने वाले उत्कृष्ट तपस्वी

उच्छूढसरीरे,

संखित्त–विउलतेयलेस्से,

अज्जसुहम्मस्स थेरस्स अदूरसामंते उड्ढं जाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से अज्ज जंबू नामे अणगारे जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले जाव अज्ज सुहम्मस्स थेरस्स नच्चासण्णे नाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे पंजलिउडे विणएणं पज्जुवासमाणे एवं वयासी[१]–

प. "जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं

आइगरेणं तित्थयरेणं सयंसंबुद्धेणं

पुरिसुत्तमेणं पुरिससीहेणं पुरिसवरपुंडरीएणं पुरिसवर गंध हत्थिणं

लोगुत्तमेणं लोगनाहेणं लोगहिएणं लोगपईवेणं लोगपज्जोयगरेणं

अभयदएणं चक्खुदएणं मग्गदएणं सरणदएणं जीवदएणं वोहीदएणं

धम्मदएणं धम्मदेसएणं धम्मनायगेणं धम्मसारहिणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणं

दीवोत्ताणं सरणगइपइट्ठाणेणं अप्पडिहयवरनाण-

दंसणधरेणं विअट्टछउमेणं

जिणेणं जावएणं

तिण्णेणं तारएणं

वुद्धेणं वोहएणं

मुत्तेणं मोयगेणं

सव्वण्णूणं, सव्वदरिसिणं

सिव-मयल-मरुय-मणंतमक्खयव्वावाह मपुणराविित्तियं सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं पंचमस्स अंगस्स अयमट्ठे पण्णत्ते,

छट्ठस्स णं भंते ! अंगस्स नायाधम्मकहाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

जंबू त्ति अज्जसुहम्मे थेरे अज्जजंबूनामं अणगारं एवं वयासी–

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स दो सुयक्खंधा पण्णत्ता, तं जहा–

१. नायाणि य, २. धम्मकहाओ य।

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स दो सुयक्खंधा पण्णत्ता,

उनका शरीर प्रमाणोपेत ऊँचाई वाला था।

बहुत बड़ी तेजोलब्धि को अन्दर धारण किए हुए थे।

वे आर्य सुधर्मा स्थविर से थोड़ी दूरी पर ऊँचे जानु और नीचा सिर करके ध्यान करते हुए संयम और तप से अपनी आत्मा को साधते थे।

उस समय आर्य जम्बू नाम के अणगार को श्रद्धापूर्वक अपने संशय का समाधान प्राप्त करने के लिए सामान्य उत्सुकता हुई यावत् आर्य सुधर्मा स्थविर से थोड़ी दूर बैठकर उनकी ओर मुँह करके विनयपूर्वक सूचन करते हुए और हाथ जोड़कर उपासना करते हुए इस प्रकार बोले–

प्र. "भन्ते ! आदिकर्ता तीर्थंकर सहज संवुद्ध श्रमण भगवान महावीर जो,

पुरुषों में उत्तम, पुरुषों में सिंह सम, पुरुषों में पुंडरीक सम, पुरुषों में गन्धहस्ति सम,

(मनुष्य) लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक के हितैपी, लोक में दीपक सम, लोक में प्रकाशकर्ता,

अभयदाता, ज्ञान चक्षु के दाता, मोक्ष मार्ग दाता, शरण दाता (लोकोत्तर) जीवन दाता (आत्म) वोध दाता,

धर्मदाता, धर्मोपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथी, चारों गतियों का अन्त करने वाले धर्म के चक्रवर्ती,

द्वीप रूप रक्षक, शरण योग्य, शिवगति दाता, आधार रूप अविनाशी ज्ञान-दर्शनधारक छद्मस्थता रहित,

राग-द्वेष विजेता, विजय वोधक

भवोदधि तीर्ण, भव्यजन तारक

स्वयं वुद्ध, भव्यजन वोधक

कर्म वन्धन मुक्त, मुमुक्षुजन मोचक

सर्वज्ञ सर्वदर्शी,

शिव अचल अरुज (रोगरहित) अनन्त अक्षय अव्यावाध अपुनरावर्त सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त ने यदि पाँचवें अंग का यह अर्थ कहा तो है

भन्ते ! छठे अंग ज्ञाताधर्मकथा का क्या अर्थ कहा है ?

आर्य सुधर्मा नामक स्थविर ने आर्य जम्बू अणगार को इस प्रकार कहा–

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा छठे अंग के दो श्रुतस्कन्ध कहे गए हैं, यथा–

१. ज्ञात, २. धर्मकथाएं।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा छठे अंग के दो श्रुतस्कन्ध कहे हैं तो

१. (क) उवा. अ. १ सु. १-५ (क)
(ख) अंत. अ. १, सु. १-२
(ग) अणु. अ. १, सु. १
(घ) विवा. सुय. १, अ. १, सु. १-४
(ङ) निरया. वग्ग. १, अ. १, सु. १
(च) विवा. सुय. २, अ. १, सु. १

पढमस्स णं भंते ! सुयक्खंधस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं नायाणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं नायाणं एगूणवीसं अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. उक्खित्तणाए २. संघाडे, ३. अंडे ४. कुम्मे य ५. सेलगे। ६. तुंबे य ७. रोहिणी ८. मल्ली, ९. मायंदी १०. चंदिमा इ य॥

११. दावद्दवे १२. उदगणाए, १३. मंडुक्के १४. तेयली वि य। १५. नंदीफले १६. अवरकंका १७. आइण्णे १८. सुंसुमा इ य॥

१९. अवरे य पुंडरीए, नामा एगूणवीसमे॥[3]

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं नायाणं एगूणवीसं अज्झयणा पण्णत्ता,

पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जंबू ! —णाया. सुय. १, अ. १, सु. १-१३

(ख) पढमज्झयणस्स निक्खेवो–

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं (अप्पोपालंभ निमित्त) पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।[1] त्ति बेमि।

—णाया. सुय. १, अ. १, सु. २१

भन्ते ! श्रमण भगवान महावीर यावत् सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा ज्ञाता के प्रथम श्रुतस्कन्ध में कितने अध्ययन कहे हैं ?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा ज्ञातों (उदाहरणों) के उन्नीस अध्ययन कहे हैं, यथा–

१. उत्क्षिप्तज्ञात, २. संघाटक, ३. अंडक, ४. कूर्म, ५. शैलक राजर्षि ६. तुंव, ७. रोहिणी (पुत्रवधु), मल्ली (राजकुमारी) ९. माकंदी पुत्र, १०. चन्द्र (कृष्ण-शुक्ल पक्ष की वध-घट)।

११. दावद्रव (वृक्ष), १२. उदक ज्ञात १३. मेंढक (दर्दुर), १४. तेतली पुत्र, १५. नंदी फल, १६. अवरकंका (नगरी) १७. आकीर्ण अश्व, १८. सुसमा दारिका।

१९. पुंडरीक (राजा)। ये उन्नीस नाम हैं।

प्र. भन्ते ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा ज्ञाता के उन्नीस अध्ययन कहे हैं तो–

भन्ते ! प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

उ. जम्बू ! (आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें)

(ख) प्रथम अध्ययन का निक्षेप–

जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा (अल्प उपालंभ देने रूप) प्रथम ज्ञात अध्ययन का यह अर्थ कहा है। ऐसा मैं कहता हूँ।

उग्गहं गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ,

परिसा निग्गया, सेणिओ वि निग्गओ,

धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया,

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते जाव सुक्कज्झाणोवगए विहरइ।

तए णं से इंदभूई नामं अणगारे जायसड्ढे जाव एवं वयासी।[1]

—णाया. सुय. १, अ. ६, सु. १-४

यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

भगवान को वन्दना करने के लिए परिषद् निकली। श्रेणिक राजा भी निकला।

भगवान् ने धर्मदेशना दी। उसे सुनकर परिषद् वापिस चली गई।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति नामक अनगार श्रमण भगवान् महावीर से न अधिक दूर और न अधिक समीप स्थान पर रहे हुए यावत् निर्मल उत्तम ध्यान में लीन होकर स्थित थे।

तत्पश्चात् जिन्हें श्रद्धा उत्पन्न हुई है, ऐसे इन्द्रभूति अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से इस प्रकार प्रश्न किया—

(आगे का वर्णन जीव प्रज्ञप्ति में देखें)

(च) पढमसुयक्खंधस्स निक्खेवो—

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स पढमस्स णायस्स सुयखंधस्स अयमट्ठे पण्णत्ते[2] त्ति बेमि।

—णाया. सु. १, अ. १९, सु. ३२

(च) प्रथम श्रुतस्कन्ध का निक्षेप—

जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा छट्ठे अंग ज्ञाता के प्रथम श्रुतस्कन्ध का यह अर्थ कहा है, ऐसा मैं कहता हूँ।

(छ) पढमसुयक्खंधस्स पठणविही—

तस्स (पढमस्स) णं सुयक्खंधस्स एगूणवीसं अज्झयणाणि एक्कसरगाणि एगूणवीसाए दिवसेसु समप्पंति।

—णाया. सु. १, अ. १९, सु. ३३

(छ) प्रथम श्रुतस्कन्ध के अध्ययन की विधि—

इस प्रथम श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन कहे गए हैं। प्रतिदिन एक-एक अध्ययन का पठन करने से उन्नीस दिनों में यह श्रुतस्कंध पूर्ण होता है।

(ज) णायाधम्म कहाणगस्स विईय सुयक्खंधस्स उक्खेवो—

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे होत्था, वण्णओ।

तस्स णं रायगिहस्स वहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए तत्थ णं गुणसीलए णामं चेइए होत्था, वण्णओ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मा णामं थेरा भगंवतो जाइसंपन्ना, कुलसंपन्ना जाव चउद्दसपुव्वी चउणाणोवगया पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगामं दूइज्जमाणा, सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव रायगिहे णयरे जेणेव गुणसीलए चेइए जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

परिसा णिग्गया धम्मो कहिओ। परिसा जामेव दिसं पाउब्भूया, तामेव दिसिं पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अंतेवासी अज्जजंबू णामं अणगारे जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी—

(ज) ज्ञाताधर्मकथा के द्वितीय श्रुतस्कन्ध का उपोद्घात—

उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था, उसका वर्णन (औपपातिक सूत्र के अनुसार यहां) कहना चाहिए।

उस राजगृह के बाहर उत्तरपूर्व दिशाभाग (ईशान कोण) में गुणशील नामक चैत्य था। उसका भी वर्णन करना चाहिए।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी आर्य सुधर्मा नामक स्थविर जो जाति सम्पन्न, कुल सम्पन्न यावत् चौदह पूर्वी और चार ज्ञानों से युक्त थे। वे पांच सौ अनगारों से परिवृत होकर अनुक्रम से चलते हुए ग्रामानुग्राम विचरते हुए और सुखे-सुखे विहार करते हुए जहां राजगृह नगर था और जहां गुणशील चैत्य था वहां पधारे यावत् संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विराजमान हुए।

(सुधर्मा स्वामी को वन्दना करने के लिए) परिषद् निकली (सुधर्मा स्वामी ने) धर्म का उपदेश दिया। तत्पश्चात् परिषद् जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में वापिस चली गई।

उस काल और उस समय में आर्य सुधर्मा अनगार के अन्तेवासी आर्य जम्बू नामक अनगार ने यावत् इस प्रकार पूछा—

---

१ (क) णाया. सुय. १, अ. १०, सु. १-४
(ख) णाया. सुय. १, अ. ११, सु. १-३

२. द्वितीय श्रुतस्कन्ध का उपसंहार मूल में नहीं है।

पढमस्स णं भंते ! सुयक्खंधस्स समणेणं भगवया महावीरेणं **जाव** सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं नायाणं कइ अज्झयण पण्णत्ता ?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं **जाव** सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं नायाणं एगूणवीसं अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. उक्खित्तणाए २, संघाडे, ३. अंडे ४. कुम्मे य ५. सेलगे। ६. तुंबे य ७. रोहिणी ८. मल्ली, ९. मायंदी १०. चंदिमा इ य ॥

११. दावद्दवे १२. उदगणाए, १३. मंडुक्के १४. तेयली वि य। १५. नंदीफले १६. अवरकंका १७. आइण्णे १८. सुंसुमा इ य ॥

१९. अवरे य पुंडरीए, नामा एगूणवीसमे ॥[1]

प. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं **जाव** सिद्धिगइनाधेयं ठाणं संपत्तेणं नायाणं एगूणवीसं अज्झयणा पण्णत्ता,

पढमस्स णं भन्ते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जंबू ! *–णाया. सुय. १, अ. १, सु. १-१३*

(ख) पढमज्झयणस्स निक्खेवो–

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं **जाव** सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं (अप्पोपालंभ निमित्त) पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।[2] त्ति बेमि।

–णाया. सुय. १, अ. १, सु. २१

(ग) बिईज्झयणस्स उक्खेवो–

प. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं **जाव** सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते,

बिइयस्स णं भन्ते ! नायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जम्बू।[3] *–णाया. सुय. १, अ. २, सु. १-२*

(घ) छट्ठज्झयणस्स उक्खेवो–

प. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवयां महावीरेणं **जाव** सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं पंचमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते,

छट्ठस्स णं भन्ते ! णायज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं नयरे होत्था। तत्थ णं रायगिहे णयरे सेणिए नामं राया होत्था। तस्स णं रायगिहस्स वहिया उत्तरपुरित्थमे दिसीभाए एत्थ णं गुणसिलए नामं चेइए होत्था।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव जेणेव रायगिहे णयरे जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव समोसढे अहापडिरूवं

भन्ते ! श्रमण भगवान महावीर **यावत्** सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा ज्ञाता के प्रथम श्रुतस्कन्ध में कितने अध्ययन कहे हैं ?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर **यावत्** सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा ज्ञातों (उदाहरणों) के उन्नीस अध्ययन कहे हैं, यथा–

१. उत्क्षिप्तज्ञात, २. संघाटक, ३. अंडक, ४. कूर्म, ५. शैलक राजर्षि ६. तुंव, ७. रोहिणी (पुत्रवधु), मल्ली (राजकुमारी) ९. माकंदी पुत्र, १०. चन्द्र (कृष्ण-शुक्ल पक्ष की वध-घट)।

११. दावद्रव (वृक्ष), १२. उदक ज्ञात १३. मेंढक (दर्दुर), १४. तेतली पुत्र, १५. नंदी फल, १६. अवरकंका (नगरी) १७. आकीर्ण अश्व, १८. सुसमा दारिका।

१९. पुंडरीक (राजा)। ये उन्नीस नाम हैं।

प्र. भन्ते ! श्रमण भगवान् महावीर **यावत्** सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा ज्ञाता के उन्नीस अध्ययन कहे हैं तो–

भन्ते ! प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

उ. जम्बू ! (आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें)

(ख) प्रथम अध्ययन का निक्षेप–

जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर **यावत्** सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा (अल्प उपालंभ देने रूप) प्रथम ज्ञात अध्ययन का यह अर्थ कहा है। ऐसा मैं कहता हूँ।

(ग) दूसरे अध्ययन का उपोद्घात–

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर **यावत्** सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा प्रथम ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है तो

भन्ते ! द्वितीय ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

उ. जम्बू ! (आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें)

(घ) छट्ठे अध्ययन का उपोद्घात–

प्र. भन्ते ! यदि भगवान् महावीर **यावत्** सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा पाँचवें ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा गया है तो ?

भंते ! छठे ज्ञाताध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

उ. जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था, उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा रहता था, उस राजगृह नगर के वाहर उत्तरपूर्व दिशा में (ईशान कोण में) गुणशीलनामक चैत्य (उद्यान) था।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रम से विचरते हुए **यावत्** जहां राजगृह नगर था और जहां गुणशील नामक चैत्य था, वहां पधारे।

१. सम. सम., १९, सु. १
२. सभी अध्ययनों (२-१९) के उपसंहार सूत्र इसी प्रकार है।
३. सभी अध्ययनों (३-१९) के उपोद्घात सूत्र इसी प्रकार है।

उग्गहं गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ,

यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

परिसा निग्गया, सेणिओ वि निग्गओ,

भगवान को वन्दना करने के लिए परिषद् निकली। श्रेणिक राजा भी निकला।

धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया,

भगवान् ने धर्मदेशना दी। उसे सुनकर परिषद् वापिस चली गई।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते जाव सुक्कज्झाणोवगए विहरइ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति नामक अनगार श्रमण भगवान् महावीर से न अधिक दूर और न अधिक समीप स्थान पर रहे हुए यावत् निर्मल उत्तम ध्यान में लीन होकर स्थित थे।

तए णं से इंदभूई नामं अणगारे जायसड्ढे जाव एवं वयासी।[1] *–णाया. सुय. १, अ. ६, सु. १-४*

तत्पश्चात् जिन्हें श्रद्धा उत्पन्न हुई है, ऐसे इन्द्रभूति अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से इस प्रकार प्रश्न किया–

(आगे का वर्णन जीव प्रज्ञप्ति में देखें)

(च) पढमसुयक्खंधस्स निक्खेवो–

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स पढमस्स णायस्स सुयखंधस्स अयमट्ठे पण्णत्ते[2] त्ति बेमि। *–णाया. सु. १, अ. १९, सु. ३२*

(च) प्रथम श्रुतस्कन्ध का निक्षेप–

जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा छट्ठे अंग ज्ञाता के प्रथम श्रुतस्कन्ध का यह अर्थ कहा है, ऐसा मैं कहता हूँ।

(छ) पढमसुयक्खंधस्स पठणविही–

तस्स (पढमस्स) णं सुयक्खंधस्स एगूणवीसं अज्झयणाणि एक्कसरगाणि एगूणवीसाए दिवसेसु समप्पंति। *–णाया. सु. १, अ. १९, सु. ३३*

(छ) प्रथम श्रुतस्कन्ध के अध्ययन की विधि–

इस प्रथम श्रुतस्कन्ध के उन्नीस अध्ययन कहे गए हैं। प्रतिदिन एक-एक अध्ययन का पठन करने से उन्नीस दिनों में यह श्रुतस्कंध पूर्ण होता है।

(ज) णायाधम्म कहाणगस्स विईय सुयक्खंधस्स उक्खेवो–

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे होत्था, वण्णओ।

(ज) ज्ञाताधर्मकथा के द्वितीय श्रुतस्कन्ध का उपोद्घात–

उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था, उसका वर्णन (औपपातिक सूत्र के अनुसार यहां) कहना चाहिए।

तस्स णं रायगिहस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए तत्थ णं गुणसीलए णामं चेइए होत्था, वण्णओ।

उस राजगृह के बाहर उत्तरपूर्व दिशाभाग (ईशान कोण) में गुणशील नामक चैत्य था। उसका भी वर्णन करना चाहिए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्जसुहम्मा णामं थेरा भगवंतो जाइसंपन्ना, कुलसंपन्ना जाव चउद्दसपुव्वी चउणाणोवगया पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगामं दूइज्जमाणा, सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव रायगिहे णयरे जेणेव गुणसीलए चेइए जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी आर्य सुधर्मा नामक स्थविर जो जाति सम्पन्न, कुल सम्पन्न यावत् चौदह पूर्वी और चार ज्ञानों से युक्त थे। वे पांच सौ अनगारों से परिवृत होकर अनुक्रम से चलते हुए ग्रामानुग्राम विचरते हुए और सुखे-सुखे विहार करते हुए जहां राजगृह नगर था और जहां गुणशील चैत्य था वहां पधारे यावत् संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विराजमान हुए।

परिसा णिग्गया धम्मो कहिओ। परिसा जामेव दिसं पाउब्भूया, तामेव दिसिं पडिगया।

(सुधर्मा स्वामी को वन्दना करने के लिए) परिषद् निकली। (सुधर्मा स्वामी ने) धर्म का उपदेश दिया। तत्पश्चात् परिषद् जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में वापिस चली गई।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अंतेवासी अज्जजंबू णामं अणगारे जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी–

उस काल और उस समय में आर्य सुधर्मा [illegible] के अन्तेवासी आर्य जम्बू नामक अनगार ने [illegible] पूछा–

---

1. [illegible]
2. [illegible]

[illegible]

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगईनामधेयं ठाणं संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स पढमस्स सुयक्खंधस्स नायाणं अयमट्ठे पण्णत्ते,

दोच्चस्स णं भंते ! सुयक्खंधस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जंबू ! धम्मकहाणं दस वग्गा पण्णत्ता, तं जहा–

१. चमरस्स अग्गमहिसीणं पढमे वग्गे।
२. बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो अग्गमहिसीणं वीए वग्गे।
३. असुरिंदवज्जियाणं दाहिणिल्लाणं भवणवासि-इंदाणं अग्गमहिसीणं तइये वग्गे।
४. उत्तरिल्लाणं असुरिंदवज्जियाणं भवणवासि-इंदाणं अग्गमहिसीणं चउत्थे वग्गे।
५. दाहिणिल्लाणं वाणमंतराणं इंदाणं अग्गमहिसीणं पंचमे वग्गे।
६. उत्तरिल्लाणं वाणमंतराणं इंदाणं अग्गमहिसीणं छट्ठे वग्गे।
७. चंदस्स अग्गमहिसीणं सत्तमे वग्गे।
८. सूरस्स अग्गमहिसीणं अट्ठमे वग्गे।
९. सक्कस्स अग्गमहिसीणं नवमे वग्गे।
१०. ईसाणस्स य अग्गमहिसीणं दसमे वग्गे।

–णाया. सु. २, अ. १, सु. १-४

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा छठे अंग के प्रथम श्रुतस्कन्ध "ज्ञात" का यह अर्थ कहा है तो–

भन्ते ! द्वितीय श्रुतस्कन्ध का क्या अर्थ कहा गया है ?

उ. जम्बू ! धर्म कथा के दस वर्ग कहे गए हैं, यथा–

१. प्रथम वर्ग में चमर की अग्रमहिषियों के कथानक हैं।
२. द्वितीय वर्ग में बली वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज की अग्रमहिषियों के कथानक हैं।
३. तृतीय वर्ग में असुरेन्द्र को छोड़कर दक्षिण दिशा के भवनवासी इन्द्रों की अग्रमहिषियों के कथानक हैं।
४. चतुर्थ वर्ग में असुरेन्द्र को छोड़कर उत्तर दिशा के भवनवासी इन्द्रों की अग्रमहिषियों के कथानक हैं।
५. पंचम वर्ग में दक्षिण दिशा के वाणव्यन्तरेन्द्रों की अग्रमहिषियों के कथानक हैं।
६. छठे वर्ग में उत्तर दिशा के वाणव्यन्तरेन्द्रों की अग्रमहिषियों के कथानक हैं।
७. सातवें वर्ग में चन्द्र की अग्रमहिषियों के कथानक हैं।
८. आठवें वर्ग में सूर्य की अग्रमहिषियों के कथानक हैं।
९. नवमें वर्ग में शक्र की अग्रमहिषियों के कथानक हैं।
१०. दसवें वर्ग में ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों के कथानक हैं।

(झ) पढम वग्गस्स उक्खेव निक्खेवो–

प्र. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगईनामधेयं ठाणं संपत्तेणं धम्मकहाणं दस वग्गा पण्णत्ता,

पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगईनामधेयं ठाणं संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. काली, २. राई, ३. रयणी, ४. विज्जू, ५. मेहा।

प्र. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगईनामधेयं ठाणं संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता,

पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जंबू ! *–णाया. सुय. २, व. १, अ. १, सु. ५-६*

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगईनामधेयं ठाणं संपत्तेणं पढमस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते[1], **त्ति बेमि।**

–णाया. सुय. २, व. १, अ. १, सु. ३४

प्र. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगईनामधेयं ठाणं संपत्तेणं धम्मकहाणं पढमस्स वग्गस्स पढमज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते,

(झ) प्रथम वर्ग का उत्क्षेप निक्षेप–

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा धर्म कथा के दस वर्ग कहे हैं तो–

भन्ते ! प्रथम वर्ग का क्या अर्थ कहा गया है ?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त प्रथम वर्ग के पांच अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. काली, २. राजी, ३. रजनी, ४. विद्युत्, ५. मेधा।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा प्रथम वर्ग के पांच अध्ययन कहे हैं तो–

भन्ते ! प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

उ. जम्बू ! (आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें।)

हे जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है। ऐसा मैं कहता हूँ।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा धर्म कथा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो–

१. सभी अध्ययनों का निक्षेप सूत्र इसी प्रकार है।

बिइयस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जंबू ! —*णाया. सुय. २, व. १, अ. २, सु. ३५-३६*

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगईनामधेयं ठाणं संपत्तेणं धम्मकहाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, [1]त्ति बेमि।

—*णाया. सुय. २, व. १, अ. ५, सु. ६३*

भन्ते ! द्वितीय अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

उ. जम्बू ! (आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें।)

जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा प्रथम वर्ग का यह अर्थ कहा है। ऐसा मैं कहता हूँ।

(ट) बीयस्स वग्गस्स उक्खेवो–

दोच्चस्स वग्गस्स पंच अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुंभा, २. निसुंभा, ३. रंभा, ४. निरंभा, ५. मदणा।

—*णाया. सु. २, व. २, अ. १, सु. ४४-४५*

(ट) द्वितीय वर्ग का उत्क्षेप–

द्वितीय वर्ग के पांच अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. शुंभा, २ निशुंभा, ३. रंभा, ४. निरंभा, ५. मदना।

(ठ) तइयस्स वग्गस्स उक्खेवो–

तइयस्स वग्गस्स चउप्पण्णं अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

पढमे अज्झयणे जाव चउपण्णइमे अज्झयणे।

—*णाया. सु. २ व. ३, अ. १, सु. ५१*

(ठ) तृतीय वर्ग का उत्क्षेप–

तृतीय वर्ग के चौपन अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. प्रथम अध्ययन यावत् चौपनवां अध्ययन।

(ड) चउत्थस्स वग्गस्स उक्खेवो–

चउत्थस्स वग्गस्स चउपण्णं अज्झयणा पण्णत्ता।

—*णाया. सु. २, व. ४, अ. १, सु. ६०*

(ड) चौथे वर्ग का उत्क्षेप–

चौथे वर्ग में चौपन अध्ययन कहे गए हैं,

(ढ) पंचम-छट्ठ वग्गाणं उक्खेवो–

पंचमस्स वग्गस्स बत्तीसं अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कमला जाव ३२ सरस्सई।

—*णाया. सु. २, व. ५, अ. १, सु. ६५*

(ढ) पांचवें-छट्ठे वर्गों के उत्क्षेप–

पांचवें वर्ग के बत्तीस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. कमला यावत् ३२. सरस्वती।

(त) छट्ठो वि वग्गो पंचम वग्गसरिसो–

णवरं–महाकालिदाणं उत्तरिल्लाणं इंदाणं अग्गमहिसीओ। —*णाया. सु. २, व. ५, अ. १, सु. ६९*

(त) छठे वर्ग के अध्ययन भी पांचवें वर्ग के समान हैं–

विशेष–ये सब कुमारियां महाकालादि उत्तर दिशा के इन्द्रों की बत्तीस अग्रमहिषियां हैं।

(थ) सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवो–

सत्तमस्स वग्गस्स चत्तारि अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सूरप्पभा, २. आयवा, ३. अच्चिमाली, ४. पभंकरा।

—*णाया. सु. २, व. ७, अ. १, सु. ७०*

(थ) सातवें वर्ग का उत्क्षेप–

सातवें वर्ग के चार अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. सूर्यप्रभा, २. आतपा, ३. अर्चिमाली, ४. प्रभंकरा।

(द) अट्ठमस्स वग्गस्स उक्खेवो–

अट्ठमस्स वग्गस्स चत्तारि अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. चंदप्पभा, २. दोसिणाभा, ३. अच्चिमाली, ४. पभंकरा। —*णाया. सु. २, व. ८, अ. १, सु. ७३*

(द) आठवें वर्ग का उत्क्षेप–

आठवें वर्ग के चार अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. चन्द्रप्रभा, २. ज्योत्स्नाभा, ३. अर्चिमाली, ४. प्रभंकरा।

(ध) नवमस्स वग्गस्स उक्खेवो–

[illegible]

(ध) नवमें वर्ग का उत्क्षेप–

[illegible]

(न) दसमस्स वग्गस्स उक्खेवो–

[illegible]

(न) दसवें वर्ग का उत्क्षेप–

[illegible]

दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला,
संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता।
संखेज्जाइं अक्खराइं जाव उवदंसिज्जंति।
से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया

एवं चरण करण परूवणया आघविज्जंति जाव उवदंसिज्जंति से तं उवासगदसाओ[1]। –सम., सु. १४२

दस उद्देशन-काल हैं, दस समुद्देशन-काल हैं,
पद गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद हैं,
संख्यात् अक्षर हैं यावत् उदाहरण देकर समझाए गये हैं।
इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला तदात्मरूप ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है।

इस प्रकार इस अंग में चरण करण की विशिष्ट प्ररूपणा की है यावत् उपदर्शन किया है। यह उपासकदशा का वर्णन है।

(क) उवासगदसांगस्स उक्खेवो–

प. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स नायाधम्मकहाणं अयमट्ठे पण्णत्ते,
सत्तमस्स णं भन्ते ! अंगस्स उवासगदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. आणंदे, २. कामदेवे य, ३. गाहावइचुलणीपिया,
४. सुरादेवे, ५. चुल्लसयए, ६. गाहावइकुंडकोलिए।
७. सद्दालपुत्ते, ८. महासयग, ९. नंदिणीपिया,
१०. सालिहीपिया ॥१॥

प. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता,
पढमस्स णं भन्ते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जंबू !.......... –उवा. सु. २

(क) उपासकदशांग का उपोद्घात–

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगतिनामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा छठे अंग ज्ञाताधर्मकथा का यह अर्थ कहा है तो–
भन्ते ! सातवें अंग उपासकदशा का क्या अर्थ कहा है ?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर यावत् सिद्धगतिनामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा सातवें अंग उपासकदशा के दस अध्ययन कहे हैं, यथा–
१. आनन्द, २. कामदेव, ३. गाथापति चुलनीपिता,
४. सुरादेव, ५. चुल्लशतक, ६. गाथापति कुण्डकोलिक,
७. सकडालपुत्र, ८. महाशतक, ९. नन्दिनीपिता,
१०. सालिहीपिता।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान महावीर यावत् सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा सातवें अंग उपासक दशा के दस अध्ययन कहे हैं तो–
भन्ते ! प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

उ. जम्बू ! (आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें)

(ख) पढमज्झयणस्स निक्खेवो–

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं उवासगदसाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि। –उवा. अ. १, सु. ८९

(ख) प्रथम अध्ययन का निक्षेप–

जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा उपासकदशा के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है ऐसा मैं कहता हूँ।

(ग) बिईयज्झयणस्स उक्खेवो–

प. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते,
दोच्चस्स णं भन्ते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

(ग) द्वितीय अध्ययन का उपोद्घात–

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा सातवें अंग उपासकदशा के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो–
भन्ते ! द्वितीय अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

(प) णायाधम्मकहांगस्स निक्खेवो–

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थयरेणं सयंसंबुद्धेणं पुरिसुत्तमेणं **जाव** संपत्तेणं धम्मकहाणं अयमट्ठे पण्णत्ते।

धम्मकहासुयक्खंधो समत्तो दसहिं वग्गेहिं।

–णाया. सु. २, व. १०, सु. ८०

(प) ज्ञाता धर्मकथांग का निक्षेप–

हे जम्बू ! अपने युग में धर्म की आदि करने वाले तीर्थंकर स्वयंसंबुद्ध पुरुषोत्तम **यावत्** सिद्धिप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने धर्मकथाओं का यह अर्थ कहा है।

धर्मकथा नामक (द्वितीय) श्रुतस्कन्ध दस वर्गों में पूर्ण होता है।

(७) उवासगदसाओ–

प. से किं तं उवासगदसाओ?

उ. उवासगदसासु णं उवासयाणं–

णगराइं उज्जाणाइं चेइआइं

वणखंडाइं रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं,

धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइय-परलोइया इड्ढि-विसेसा, उवासयाणं सीलव्वय-वेरमण-गुण-पच्चक्खाण-पोसहोववास- पडिवज्जणयाओ,

सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं पडिमाओ,

उवसग्गा, संलेहणाओ,

भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं

सुकुलपच्चायाई पुण बोहिलाभो

अंतकिरियाओ आघविज्जंति।

उवासगदसासु णं उवासयाणं रिद्धिविसेसा परिसा वित्थरधम्मसवणाणि

बोहिलाभअभिगमसम्मत्तविसुद्धया थिरत्तं,

मूलगुण-उत्तरगुणाइयारा ठिईविसेसा य, बहुविसेसा पडिमाभिग्गहग्गहणपालणा उवसग्गाहियासणा णिरुवसग्गा य, तवा य विचित्ता,

सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासा,

अपच्छिममारणंतिया य संलेहणाझोसणाहिं अप्पाणं जह य भावइत्ता

बहूणि भत्ताणि अणसणाए य छेयइत्ता

उववण्णा कप्पवरविमाणुत्तमेसु,

जह अणुभवंति सुरवरविमाणवरपोंडरीएसु सोक्खाइं अणोवमाइं कमेण भोत्तूण उत्तमाइं तओ आउक्खएणं चुया समाणा जह जिणमयम्मि बोहिं लद्धूण य संजमुत्तमं तमरयोघविप्पमुक्का उवेंति जह अक्खयं सव्वदुक्खमोक्खं।

एए अन्ने य एवमाई (अत्था वित्थरेण य) परूविज्जंति।

उवासगदसासु णं परित्ता वायणा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ।

से णं अंगट्ठयाए सत्तमे अंगे,

एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा,

२५. (७) उपासकदशा सूत्र–

प्र. उपासक दशा में क्या (वर्णन) है?

उ. उपासकदशा में उपासकों के–

नगर, उद्यान, चैत्य,

वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण,

धर्माचार्य, धर्मकथाओं, इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धि-विशेष,

उपासकों के शीलव्रत, पाप-विरमण, गुण-प्रत्याख्यान, पौषधोपवास स्वीकार करना,

श्रुत-परिग्रह, तप-उपधान, ग्यारह प्रतिमा,

उपसर्ग, संलेखना,

भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, देवलोकगमन,

सुकुल में जन्म, पुनः बोधिलाभ एवं

अन्तक्रिया का कथन किया गया है।

उपासकदशा में उपासकों की ऋद्धि-विशेष, परिषद्, विस्तृत धर्म-श्रवण,

बोधिलाभ, अभिगम (ज्ञान प्राप्ति), सम्यक्त्व की विशुद्धता, (व्रत की) स्थिरता,

मूलगुण और उत्तर गुणों का धारण, उनके अतिचार, स्थिति-विशेष (उपासक पर्याय का काल मान) अनेक प्रकार की प्रतिमाओं एवं अभिग्रहों का ग्रहण और उनका पालन, उपसर्ग सहन या निरुपसर्ग-परिपालन, अनेक प्रकार के विचित्र तप,

शीलव्रत, गुणव्रत, वेरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास और

अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना झोसणा से आत्मा को यथाविधि भावित कर,

बहुत भक्तों का अनशन तप से छेदन कर,

उत्तम देव-विमानों में उत्पन्न होकर,

वहाँ से उन श्रेष्ठ विमानों में अनुपम उत्तम सुखों का अनुभव करते हैं, उन्हें भोग कर फिर आयु का क्षय होने पर च्युत होकर और जिनमत में बोधि को प्राप्त कर तथा उत्तम संयम धारण कर, तमोरज के समूह से विप्रमुक्त होकर अक्षय शिव-सुख को प्राप्त होकर सर्व दुःखों से रहित होते हैं,

इन सबका और इसी प्रकार के अन्य भी अर्थों का इस (उपासकदशा) में विस्तार से वर्णन किया गया है।

उपासकदशा अंग में परिमित वाचनाएं हैं यावत् संख्यात संग्रहणियाँ हैं।

अंगों की अपेक्षा यह सातवां अंग है,

इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, दस अध्ययन हैं,

दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला,
संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता।
संखेज्जाइं अक्खराइं जाव उवदंसिज्जंति।
से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया

एवं चरण करण परूवणया आघविज्जंति जाव उवदंसिज्जंति से तं उवासगदसाओ[1]। —सम., सु. १४२

दस उद्देशन-काल हैं, दस समुद्देशन-काल हैं,
पद गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद हैं,
संख्यात् अक्षर हैं यावत् उदाहरण देकर समझाए गये हैं।
इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला तदात्मरूप ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है।

इस प्रकार इस अंग में चरण करण की विशिष्ट प्ररूपणा की है यावत् उपदर्शन किया है। **यह उपासकदशा का वर्णन है।**

(क) उवासगदसांगस्स उक्खेवो–

प. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स नायाधम्मकहाणं अयमट्ठे पण्णत्ते,
सत्तमस्स णं भन्ते ! अंगस्स उवासगदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. आणंदे, २. कामदेवे य, ३. गाहावइचुलणीपिया,
४. सुरादेवे, ५. चुल्लसयए, ६. गाहावइकुंडकोलिए।
७. सद्दालपुत्ते, ८. महासयग, ९. नंदिणीपिया, १०. सालिहीपिया ॥१॥

प. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता,
पढमस्स णं भन्ते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

उ. एवं खलु जंबू !......... —उवा. सु. २

(ख) पढमज्झयणस्स निक्खेवो–

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं उवासगदसाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते[2] त्ति बेमि।
—उवा. अ. १, सु. ८६

(ग) बिईयज्झयणस्स उक्खेवो–

प. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते,
दोच्चस्स णं भन्ते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

(क) उपासकदशांग का उपोद्घात–

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगतिनामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा छठे अंग ज्ञाताधर्मकथा का यह अर्थ कहा है तो–
भन्ते ! सातवें अंग उपासकदशा का क्या अर्थ कहा है?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर यावत् सिद्धगतिनामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा सातवें अंग उपासकदशा के दस अध्ययन कहे हैं, यथा–
१. आनन्द, २. कामदेव, ३. गाथापति चुलनीपिता,
५. सुरादेव, ५. चुल्लशतक, ६. गाथापति कुण्डकोलिक,
७. सकडालपुत्र, ८. महाशतक, ९. नन्दिनीपिता, १०. शालिहीपिता।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवन्त महावीर यावत् सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा सातवें अंग उपासक दशा के दस अध्ययन कहे हैं तो–
भन्ते ! प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है?

उ. जम्बू ! (आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें)

(ख) प्रथम अध्ययन का निक्षेप–

जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा उपासकदशा के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है ऐसा मैं कहता हूँ।

(ग) द्वितीय अध्ययन का उपोद्घात–

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक शाश्वत स्थान प्राप्त द्वारा सातवें अंग उपासकदशा के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है तो
भन्ते ! द्वितीय अध्ययन का क्या अर्थ कहा है?

---

१. से किं तं उवासगदसाओ ?
उवासगदसासु णं समणोवासगाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापियरो धम्मकहाओ धम्मायरिया इहलोग-परलोइया रिद्धिविसेसा भोगपरिच्चाया परियागा सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासपडिवज्जणया पडिमाओ, उवसग्गा संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायाईओ पुण बोहिलाभा अंतकिरियाओ य आघविज्जंति जाव उवदंसिज्जंति।
उवासगदसासु णं परित्ता वायणा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ।
से णं अंगट्ठयाए सत्तमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पदसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति।
से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण करण परूवणा आघविज्जइ से तं उवासगदसाओ। —नंदी. सु. ८९

२. इसी प्रकार सभी (२-१०) अध्ययनों का उपसंहार सूत्र है।

उ. एवं खलु जंबू[1] !........ —उवा. अ. २, सु. १-२

(घ) उवासगदसांगस्स उवसंहारो–

उवासगदसाणं सत्तमस्स अंगस्स एगो सुयक्खंधो,

दस अज्झयणा एक्कसरगा दससु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति।

तओ सुयखंधो समुद्दिसइ, अणुण्णविज्जइ, दोसु दिवसेसु अंगं तहेव। —उवा. अ. १०, सु. २८

(८) अंतगडदसाओ–

प. से किं तं अंतगडदसाओ ?

उ. अंतगडदसासु णं अंतगडाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडाइंरायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं

धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइय-परलोइया इड्ढि विसेसा,

भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं, पडिमाओ बहुविहाओ,

खमा, अज्जवं, मद्दवं च, सोयं च सच्चसहियं,

सत्तरसविहो य संजमो, उत्तमं च बंभं, अकिंचणया, तवोचियाओ किरियाओ समिइगुत्तीओ चेव,

तह अप्पमायजोगो, सज्झायज्झाणेण य उत्तमाणं दोण्हंपि लक्खणाइं, पत्ताण य संजमुत्तमं,

जियपरीसहाणं चउव्विहकम्मक्खयम्मि जह केवलस्स लंभो,

परियाओ जत्तिओ य जह पालिओ मुणिहिं, पायोवगओ य जो जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेयइत्ता अंतगडो मुणिवरो तमरयोघविप्पमुक्को, मोक्खसुहमणुत्तरं च पत्ता,

एए अन्ने य एवमाई अत्था वित्थरेणं परूविज्जंति।

अंतगडदसासु णं परित्ता वायणा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ।

से णं अंगट्ठयाए अट्ठमे अंगे,

एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, सत्त वग्गा,

दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला,

संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता,

संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया।

एवं चरण-करण-परूवणया आघविज्जंति जाव उवदंसिज्जंति।

उ. जम्बू ! (आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें)

(घ) उपासकदशा सूत्र का उपसंहार–

सातवें अंग उपासकदशा में एक श्रुतस्कन्ध है।

दस अध्ययन हैं, उनमें एक सरीखा वर्णन है। इसका दस दिनों में उद्देशन (वांचन) किया जाता है।

तत्पश्चात् सूत्र को स्थिर (कंठस्थ) करने की आज्ञा दी जाती है फिर दो दिनों में अनुमति दी जाती है।

२६. (८) अन्तकृत्दशा सूत्र–

प्र. अन्तकृत्दशा सूत्र में क्या (वर्णन) है?

उ. अन्तकृत्दशा में कर्मों का अन्त करने वाले (महापुरुषों) के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, उनके माता-पिता, समवसरण,

(उनके) धर्माचार्य, धर्मकथाएं इहलौकिक-पारलौकिक ऋद्धि-विशेष,

भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत-परिग्रहण, तप-उपधान, अनेक प्रकार की प्रतिमाएं,

क्षमा, आर्जव, मार्दव, सत्य, शौच,

सत्तरह प्रकार का संयम, उत्तम ब्रह्मचर्य, आकिंचन्य तप, त्याग, क्रियाओं, समितियों और गुप्तियों का वर्णन है,

अप्रमाद-योग और स्वाध्याय-ध्यान इन दोनों उत्तम गुणों एवं उत्तम संयम को प्राप्त करके,

परीषहों को सहन करने वाले चार घातिकर्मों का क्षय होने पर केवलज्ञान को प्राप्त करने वाले,

जिन मुनियों ने जितने काल तक जैसे श्रमण-पर्याय का पालन किया,पादपोपगमन द्वारा जितने समय के भोजनों का त्यागकर कर्मों का अन्त करने वाले अज्ञानान्धकार रूप रज के पुंज से विप्रमुक्त होकर अनुत्तर (मोक्ष) सुख को प्राप्त होने वाले मुनिवरों का वर्णन है।

इसी प्रकार के अन्य अनेक अर्थों का इस अंग में विस्तार से प्ररूपण किया गया है।

अन्तकृत्दशा में परिमित वाचनाएं हैं यावत् संख्यात संग्रहणियाँ हैं।

अंगों की अपेक्षा यह आठवां अंग है,

इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, दस अध्ययन है, सात वर्ग है,

दस उद्देशनकाल हैं, दस समुद्देशनकाल हैं,

पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद हैं।

संख्यात अक्षर हैं यावत् उदाहरण देकर समझाए गए हैं।

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला तदात्मरूप ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है।

इस प्रकार इस अंग में चरण-करण की विशिष्ट प्ररूपणा की है यावत् उपदर्शन किया है।

---

१. इसी प्रकार शेष (२-१०) अध्ययनों का उपसंहार है।

२. इसी प्रकार अन्तकृत, अनुत्तरोपपातिक, विपाकसूत्र के द्वितीय आदि अध्ययनों की उत्क्षेपिका समझ लेनी चाहिए।

से त्तं अंतगडदसाओ[1]। —सम., सु. १४३

यह अन्तकृत्दशा का वर्णन है।

(क) अंतगडदसांगस्स उक्खेवो–

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते,

अट्ठमस्स णं भंते ! अंगस्स अंतगडदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता।

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. गोयम, २. समुद्द, ३. सागर, ४. गंभीरे चेव होइ,
५. थिमिये य, ६. अयले, ७. कंपिल्ले खलु, ८. अक्खोभ,
९. पंसेणइ, १०. विण्हू॥१॥

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता,

पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

उ. एवं खलु जंबू ! —अंत. अ. १, सु. ३-८

(ख) पढमज्झयणस्स णिक्खेवो–

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते,[2]

त्ति बेमि। —अंत. व. १, सु. २५

(ग) अंतगडदसाणं निक्खेवो–

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते[3] त्ति बेमि।

—अंत. व. ८, सु. १५

(क) अन्तकृद्दशांग का उपोद्घात–

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा सातवें अंग उपासकदशा का यह अर्थ कहा गया है तो–

भन्ते ! आठवें अंग अन्तकृद्दशा का क्या अर्थ कहा गया है?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा आठवें अंग अन्तकृद्दशा के आठ वर्ग कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा अन्तकृद्दशा के आठ वर्ग कहे गये हैं तो भन्ते ! अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के कितने अध्ययन कहे गए हैं?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा आठवें अंग अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के दस अध्ययन कहे गये हैं,

यथा–

१. गौतम, २. समुद्र, ३. सागर, ४. गंभीर, ५. स्तिमित, ६. अचल, ७. कांपिल्य, ८. अक्षोभ, ९. प्रसेनजित, १०. विष्णु।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा आठवें अंग अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के दस अध्ययन कहे गए हैं तो–

भन्ते ! अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा गया है?

उ. जम्बू ! (आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें।)

(क) प्रथम अध्ययन का निक्षेप–

जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा आठवें अंग अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा गया है।

ऐसा मैं कहता हूँ।

(ग) अन्तकृद्दशा का निक्षेप–

जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा आठवें अंग अन्तकृद्दशा का यह अर्थ कहा गया है, ऐसा मैं कहता हूँ।

---

१. से किं तं अंतगडदसाओ?
अंतगडदसासु णं अंतगडाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मा-पियरो धम्मकहाओ धम्मायरिया इहलोग-परलोइया इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया, पव्वज्जाओ परियागा सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं अंतकिरियाओ य आघविज्जंति जाव उवदंसिज्जंति।
अंतगडदसासु णं परित्ता वायणा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ।
से णं अंगट्ठयाए अट्ठमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, अट्ठ वग्गा, अट्ठ उद्देसणकाला,
अट्ठ समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पदग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति।
से त्तं अंतगडदसाओ। नंदी., सु. ९०

२. इसी प्रकार सभी वर्ग एवं अध्ययनों के उपोद्घात और उपसंहार सूत्र समझ लेने चाहिए।

३. इसी प्रकार अणुत्तरोपपातिकदशा और विपाकसूत्र के सभी अध्ययनों के उपसंहार सूत्र हैं।

(ग) अंतगडदसांगस्स उवसंहारो–

अंतगडदसाणं अंगस्स एगो सुयक्खंधो,
अट्ठ वग्गा अट्ठसु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति,
तत्थ पढमबिइयवग्गे दस-दस उद्देसगा,
तइयवग्गे तेरस उद्देसगा,
चउत्थ-पंचमवग्गे दस-दस उद्देसगा,
छट्ठवग्गे सोलस उद्देसगा,
सत्तमवग्गे तेरस उद्देसगा,
अट्ठमवग्गे दस उद्देसगा। —*अंत. व. ८, सु. ३८*

(९) अणुत्तरोववाइयदसाओ–

प. से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ?

उ. अणुत्तरोववाइयदसासु णं अणुत्तरोववाइयाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणखंडाइं रायाणो अम्मा-पियरो समोसरणाइं

धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोग-परलोग इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं

परियागो पडिमाओ संलेहणाओ भत्तपाणपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं

अणुत्तरोववाओ सुकुलपच्चायाया पुण्ण बोहिलाभो अंतकिरियाओ य आघविज्जंति।

अणुत्तरोववाइयदसासु णं तित्थकरसमोसरणाइं परममंगल्लंजगहियाणि, जिणाइसेसा य बहुविसेसा,

जिणसीसाणं चेव समणगणपवरगंधहत्थीणं

थिरजसाणं परिसह-सेण्ण-रिउबलपमद्दणाणं

तवदित्तचरित्त - णाण - सम्मत्तसार - विविहप्पगार - वित्थरपसत्थगुणसंजुयाणं अणगारमहरिसीणं अणगारगुणाण वण्णओ,

उत्तमवरतव-विसिट्ठणाणजोगजुत्ताणं,

जह य जगहियं भगवओ, जारिसा य रिद्धिविसेसा, देवासुरमाणुसाणं परिसाणं पाउब्भावा य जिणसमीवं जह य उवासंति जिणवरं,

जह य परिकहेंति धम्मं लोगगुरु अमर-नरा सुरगणाणं,

सोऊण य तस्स भासियं अवसेसकम्म विसयविरत्ता नरा जह अब्भुवेंति धम्ममुरालं संजमं तवं चावि बहुविहप्पगारं,

जह बहूणि वासाणि अणुचरित्ता आराहियनाण-दंसण-चरित्तजोगा जिणवयणमणुगयमहियं भासित्ता, जिणवराण हियएण मणुन्नेत्ता, जे य जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेयइत्ता लद्धूण य

(घ) अंतकृद्दशांग सूत्र का उपसंहार–

अंतकृद्दशा अंग में एक श्रुतस्कन्ध है।
आठ वर्ग हैं और आठ ही दिनों में इनका वांचन होता है।
इसमें प्रथम और द्वितीय वर्ग में दस-दस उद्देशक हैं,
तीसरे वर्ग में तेरह उद्देशक हैं,
चौथे और पांचवें वर्ग में दस-दस उद्देशक हैं,
छठे वर्ग में सोलह उद्देशक हैं।
सातवें वर्ग में तेरह उद्देशक हैं,
आठवें वर्ग में दस उद्देशक हैं।

२७. (९) अनुत्तरोपपातिकदशासूत्र–

प्र. अनुत्तरोपपातिकदशा में क्या है?

उ. अनुत्तरोपपातिकदशा में अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले (महा अनगारों के) नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण,

धर्माचार्य, धर्मकथाओं, इहलौकिक पारलौकिक, विशिष्ट ऋद्धियां, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत का परिग्रहण, श्रुत का तप-उपधान,

पर्याय, प्रतिमा, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, (संथारा)

अनुत्तर विमानों में उत्पत्ति, सुकुल में जन्म, पुनः बोधिलाभ और अन्तक्रियाएं कही गई हैं।

अनुत्तरोपपातिकदशा में परम मंगलकारी, जगत्-हितकारी तीर्थंकरों के समवसरण और बहुत प्रकार के जिन-अतिशयों का वर्णन है।

तथा तीर्थंकरों के विशिष्ट शिष्य–जो श्रमणजनों में गन्धहस्ती के समान श्रेष्ठ हैं,

स्थिर यशवाले हैं, परीषह-सेना रूपी शत्रुबल के मर्दन करने वाले हैं,

तप से दीप्त है, जो चारित्र, ज्ञान, सम्यक्त्वरूप सारवाले अनेक प्रकार के विशाल प्रशस्त गुणों से युक्त है, ऐसे महर्षियों के अनगार-गुणों का अनुत्तरोपपातिकदशा में वर्णन है।

अतीव श्रेष्ठ तपविशेष से और विशिष्ट ज्ञान-योग से युक्त है,

जिन्होंने जगत् हितकारी भगवान् तीर्थंकरों की जैसी परम आश्चर्यकारिणी ऋद्धियों का और देव, असुर, मनुष्यों की सभाओं का जिनवर के समीप प्रकट होने का एवं उपासना करने का,

तथा अमर, नर, सुरगणों के त्रैलोक्य गुरु जिनवर जिस प्रकार से उनको धर्म का उपदेश देते हैं,

उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म को सुनकर क्षीणकर्मा महापुरुष अपने समस्त काम-भोगों से और इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर जिस प्रकार से उदार धर्म को और विविध प्रकार से संयम और तप को स्वीकार करते हैं,

तथा जिस प्रकार से बहुत वर्षों तक उनका आचरण करके, ज्ञान, दर्शन, चारित्र योग की आराधना कर जिन-वचन के अनुगत पूजित धर्म का दूसरे भव्य जीवों को उपदेश देकर जिनवरों की हृदय से आराधना कर उत्तम मुनिवर जहां पर जितने समय के भोजन का त्याग कर,

समाहिमुत्तमं झाणजोगजुत्ता उववण्णा मुणिवरोत्तमा जह अणुत्तरेसु,

पावंति जह अणुत्तरं अत्थ विसयसोक्खं,

तओ य चुआ कमेण काहिंति संजया जह य अंतकिरियं,
एए अन्ने य एवमाई अत्था वित्थरेणं परूविज्जंति।

अणुत्तरोववाइयदसासु णं परित्ता वायणा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ।

से णं अंगट्ठयाए नवमे अंगे,

एगे सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, तिण्णि वग्गा,

दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसणकाला,

संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता,

संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया,

एवं चरणकरण परूवणया आघविज्जंति जाव उवदंसिज्जंति

से तं अणुत्तरोववाइयदसाओ[1]। —सम. सु. १४४

समाधि को प्राप्त कर और उत्तम ध्यान-योग से युक्त होते हुए जिस प्रकार अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होते हैं,

वहां जैसे अनुपम विषय सुख को भोगते हैं, उन सबका अनुत्तरोपपातिकदशा में वर्णन किया गया है।

तत्पश्चात् वहां से च्युत होकर वे जिस प्रकार से संयम को धारण कर अन्तक्रिया करेंगे और मोक्ष को प्राप्त करेंगे, इन सबका तथा इसी प्रकार के अन्य अर्थों का विस्तार से इस अंग में वर्णन किया गया है।

अनुत्तरोपपातिकदशा में परिमित वाचनाएं हैं यावत् संख्यात संग्रहणियां हैं।

अंगों में यह नौवां अंग है,

इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, दस अध्ययन हैं, तीन वर्ग हैं,

दस उद्देशन-काल हैं, दस समुद्देशन-काल हैं,

तथा पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद कहे गए हैं,

संख्यात अक्षर हैं यावत् उदाहरण देकर समझाया गया है।

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला तदात्मरूप ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है।

इस प्रकार इस अंग में चरण-करण की विशिष्ट प्ररूपणा की है यावत् उपदर्शन किया है।

यह अनुत्तरोपपातिकदशा का वर्णन है।

(क) अणुत्तरोववाइयदसाणं उक्खेवो—

प. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडगदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते,

नवमस्स णं भन्ते ! अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

तएणं से सुहम्मे अणगारे जम्बू अणगारं एवं वयासी—

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तिण्णि वग्गा पण्णत्ता।

प. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तओ वग्गा पण्णत्ता,

(क) अनुत्तरोपपातिक दशा का उपोद्घात—

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा आठवें अंग अन्तकृद्दशा का यह अर्थ कहा है तो—

भन्ते ! नवमे अंग अनुत्तरोपपातिक दशा का क्या अर्थ कहा है ?

तब आर्य सुधर्मा अणगार ने जम्बू अणगार से इस प्रकार कहा—

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा नवमे अंग अनुत्तरोपपातिक दशा के तीन वर्ग कहे गये हैं।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा अनुत्तरोपपातिक दशा के तीन वर्ग कहे गए हैं तो—

---

१. से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ?

अणुत्तरोववाइयदसासु णं अणुत्तरोववाइयाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडाइं समोसरणाइं। रायाणो अम्मा-पियरो धम्मकहाओ धम्मायरिया इहलोग-परलोइया रिद्धिविसेसा भोगपरिच्चागा पव्वज्जाओ, परियागा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं, पडिमाओ, उवसग्गा, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाइं, पाओवगमणाइं, अणुत्तरोववाइयत्ते उववत्ती सुकुलपच्चायाईओ पुण बोहिलाभो अंतकिरियाओ य आघविज्जंति जाव उवदंसिज्जंति।

अणुत्तरोववाइयदसासु णं परित्ता वायणा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ,

से णं अंगट्ठयाए णवमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, तिण्णि वग्गा, तिण्णि उद्देसणकाला, तिण्णि समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण करण परूवणया आघविज्जइ।

से तं अणुत्तरोववाइयदसाओ। —नंदी., सु. ११

पढमस्स णं भन्ते ! वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. जालि, २. मयालि, ३. उवयालि, ४. पुरिससेणे य, ५. वारिसेणे य। ६. दीहदंते य, ७. लट्ठदंते य, ८. वेहल्ले, ९. वेहायसे, १०. अभये इ य कुमारे ॥१॥

. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता,

पढमस्स णं भन्ते ! अज्झयणस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

. एवं खलु जंबू [1]। —*अणु. व. १, सु. १-२*

) अणुत्तरोववाइयदसांगस्स उवसंहारो–

अणुत्तरोववाइयदसाणं एगो सुयक्खंधो,
तिण्णि वग्गा तिसु चेव दिवसेसु उद्दिसंति।
तत्थ पढमे वग्गे दस उद्देसगा,
विइए वग्गे तेरस उद्देसगा,
तइए वग्गे दस उद्देसगा। —*अणु. व. ३, सु. ७५*

१०) पण्हावागरणाइं–

प. से किं तं पण्हावागरणाणि ?

उ. पण्हावागरणेसु अट्ठुत्तरं पसिणसयं,
अट्ठुत्तरं अपसिणसयं,
अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं, विज्जाइसया, नागसुवन्नेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति।

पण्हावागरणदसासु णं–ससमय-परसमयपण्णवय-पत्तेयबुद्धविविहत्थभासाभासियाणं,

अइसयगुण-उवसमणाणप्पगार-आयरियभासियाणं,

वित्थरेणं वीरमहेसीहिं विविहवित्थरभासियाणं च जगहियाणं

अद्दागंगुट्ठ-बाहु-असि-मणि-खोम-आइच्चमाइयाणं

[illegible]–

[illegible]–
[illegible],

भन्ते ! अनुत्तरोपपातिक दशा के प्रथम वर्ग के कितने अध्ययन कहे गए हैं ?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा अनुत्तरोपपातिक दशा के प्रथम वर्ग के दस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. जालि, २. मयालि, ३. उवयालि, ४. पुरिससेण, ५. वारिसेण ६. दीर्घदन्त, ७. लष्टदन्त, ८. वेहल्ल, ९. वेहायस, १०. अभयकुमार।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा प्रथम वर्ग के दस अध्ययन कहे गए हैं तो

भन्ते ! अनुत्तरोपपातिक दशा के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

उ. जम्बू ! (इसके आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें)।

(ख) अनुत्तरोपपातिक दशांग सूत्र का उपसंहार–

अनुत्तरोपपातिक दशा में एक श्रुतस्कन्ध है।
तीन वर्ग हैं, तीन ही दिनों में इसका वांचन होता है।
उसके प्रथम वर्ग में दस उद्देशक हैं,
द्वितीय वर्ग में तेरह उद्देशक हैं,
तृतीय वर्ग में दस उद्देशक हैं।

२८. (१०) प्रश्नव्याकरण सूत्र–

प्र. प्रश्नव्याकरण में क्या (वर्णन) है ?

उ. प्रश्नव्याकरण अंग में एक सौ आठ प्रश्न,
एक सौ आठ अप्रश्न,
और एक सौ आठ प्रश्नाप्रश्न, अनेक विद्याएं तथा नाग-सुपर्णों के साथ हुए दिव्य संवाद कहे गए हैं।

प्रश्नव्याकरणदशा में स्वसमय-परसमग्र के प्रज्ञापक प्रत्येकबुद्धों के द्वारा विविध अर्थ वाली भाषाओं द्वारा कथित वचनों का–

नाना प्रकार के अतिशयों का, ज्ञानादि गुणों और उपशम भाव आदि आचार्य भाषितों का,

विस्तार से कहे गए वीर महर्षियों के जगत् हितकारी अनेक प्रकार के विस्तृत सुभाषितों का,

आदर्श, अंगुष्ठ, बाहु, असि, मणि, क्षोम और सूर्य आदि (के आश्रय से दिए गए विद्या-देवताओं के उत्तरों) का इस अंग में वर्णन है।

अनेक महाप्रश्नविद्याएं वचन से ही प्रश्न करने पर उत्तर देती हैं,

अनेक विद्याएं मन में चिन्तित प्रश्नों का उत्तर देती हैं,

अनेक विद्याएं अनेक अधिष्ठाता देवताओं के प्रयोग-विशेष की प्रधानता से अनेक अर्थों के संवादक गुणों को प्रकाशित करती है,

[1] [illegible]

सब्भूय- दुगुणप्पभाव-नरगण-मइविम्हयकारीणं

अपने सद्भूत द्विगुण प्रभावक उत्तरों के द्वारा जन समुदाय को विस्मित करती है,

अईसयमईयकालसमय - दम - सम - तित्थकरूत्तमस्स ठिइकरणकारणाणं

अतीत काल के समय में दम और शम के धारक, विशिष्ट अतिशय सम्पन्न तीर्थंकर हुए हैं इस प्रकार संशयशील मनुष्यों के स्थिरीकरण करने वाले,

दुरहिगमदुरवगाहस्स, सव्वसव्वन्नुसम्मयस्स,

समझने और अवगाहन करने मे कठिन सभी सर्वज्ञों के द्वारा सम्मत,

अबुहजणविबोहणकरस्स,

अबुधजनों को प्रबोध करने वाले ऐसे–

पच्चक्खयपच्चयकराणं पण्हाणं विविहगुणमहत्था जिणवरप्पणीया आघविज्जंति।

प्रत्यक्ष प्रतीति-कारक प्रश्नों का और विविध गुण और महान् अर्थ वाले जिनवर-प्रणीत उत्तरों का इस अंग में कथन किया गया है।

पण्हावागरणेसु णं परित्ता वायणा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ।

प्रश्नव्याकरण अंग में परिमित वाचनाएं हैं यावत् संख्यात संग्रहणियां हैं।

से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे,

प्रश्नव्याकरण अंगरूप में दशवां अंग है,

एगे सुयक्खंधे,

इसमें एक श्रुतस्कन्ध है,

पणयालीसं उद्देसणकाला,

पैंतालीस उद्देशन-काल हैं,

पणयालीसं समुद्देसणकाला,

पैंतालीस समुद्देशन-काल हैं,

संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेणं पण्णत्ता।

पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद कहे गए हैं।

संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति।

इसमें संख्यात अक्षर हैं यावत् उदाहरण देकर समझाया गया है।

से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया,

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला तदात्मरूपज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है।

एवं चरण-करण परूवणया आघविज्जंति जाव उवदंसिज्जंति।

इस प्रकार इस अंग में चरण-करण की विशिष्ट प्ररूपणा की है यावत् उपदर्शन किया है।

से तं पण्हावागरणाइं[1]। –*सम. सु. १४५*

यह प्रश्नव्याकरण का वर्णन है।

(क) **पण्हावागरणस्स उक्खेवो–**

(क) **प्रश्नव्याकरण सूत्र का उपोद्घात–**

प. जइं णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं **जाव** सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं णवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते–

दसमस्स णं भन्ते ! अंगस्स पण्हावागरणाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

प्र. भन्ते ! श्रमण भगवान् महावीर **यावत्** सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा नौवें अंग अनुत्तरोपपातिक दशा का यह अर्थ कहा है तो–

भन्ते ! दसवें अंग प्रश्नव्याकरण का क्या अर्थ कहा है ?

उ. जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं **जाव** सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं दसमस्स अंगस्स पण्हावागरणस्स दो सुयक्खंधा पण्णत्ता, तं जहा–

१. आसवदारा य,

२. संवरदारा य।

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर **यावत्** सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा दसवें अंग प्रश्नव्याकरण के दो श्रुतस्कन्ध कहे गए हैं, यथा–

१. आश्रव द्वार,

२. संवर द्वार।

---

१. से किं तं पण्हावागरणाइं ?

पण्हावागरणेसु णं अट्ठुत्तरं पसिणसयं, अट्ठुत्तरं अपसिणसयं, अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं, अण्णे वि विविहा दिव्वा विज्जाइसया नाग-सुयण्णेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति।

पण्हावागरणाणं परित्ता वायणा जाव संखिज्जाओ संगहणीओ।

से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, पणयालीसं अज्झयणा, पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पदग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति।

से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण करण परूवणया आघविज्जइ।

से तं पण्हावागरणाइं। –नंदी., सु. ९२

प. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं दसमस्स अंगस्स पण्हावागरणस्स दो सुयक्खंधा पण्णत्ता,

पढमस्स णं भन्ते ! सुयक्खंधस्स कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

उ. जंबू ! पढमस्स णं सुयक्खंधस्स समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं पंच अज्झयणा पण्णत्ता।

प. दोच्चस्स णं भन्ते ! सुयक्खंधस्स कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

उ. जंबू ! एवं चेव पंच अज्झयणा पण्णत्ता,

प. एएसि णं भन्ते ! अण्हय संवराणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

तए णं अज्ज सुहम्मेथेरे जंबू नामेणं अणगारेणं एवं वुत्ते समाणे जंबू अणगारं एवं वयासी–

उ. इणमो अण्हय संवर विणिच्छयं, पवयणस्स णिस्संदं।
वोच्छामि णिच्छयत्थं, सुभासियत्थं महेसीहिं॥

–पण्ह. सु. १, अ. १, सु. १

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा दसवें अंग प्रश्नव्याकरण के दो श्रुतस्कन्ध कहे गए हैं तो

भन्ते ! प्रथम श्रुतस्कन्ध के कितने अध्ययन कहे गए हैं ?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा प्रथम श्रुतस्कन्ध के पांच अध्ययन कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! द्वितीय श्रुतस्कन्ध के कितने अध्ययन कहे गए हैं ?

उ. जंबू ! पूर्ववत् पांच अध्ययन कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! इन आश्रव और संवरों का श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा क्या अर्थ कहा है ?

तब आर्य सुधर्मा स्थविर ने जंबू नामक अणगार की इस बात को सुनकर जंबू अणगार से इस प्रकार कहा–

उ. महर्षियों (तीर्थंकरों, गणधरों) द्वारा निश्चित रूप से कहे गए उन आश्रव संवर का भली भांति निश्चय कराने वाले प्रवचन के सार को मैं कहूंगा।

ख) पण्हावागरणस्स उवसंहारो–

पण्हावागरणे एगो सुयक्खंधो,

दस अज्झयणा एक्कसरगा दससु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति।

एगंतरेसु आयंबिलेसु निरुद्धेसु आउत्तभत्तपाणएणं।

–पण्ह. सु. २, अ. ५, सु. २३

(ख) प्रश्नव्याकरण सूत्र का उपसंहार–

प्रश्नव्याकरण सूत्र में एक श्रुतस्कन्ध है।

दस अध्ययन एक सरीखे हैं और दस दिनों में ही इसका उद्देशन (वांचन) किया जाता है।

उपयोगपूर्वक भक्त पान का निरोध करके एकान्तर आयम्बिल के तप पूर्वक इसका वांचन किया जाता है।

.(११) विवागसुयं–

प. से किं तं विवागसुयं ?

उ. विवागसुए णं सुकडदुक्कडाणं कम्माणं फलविवागे आघविज्जंति।

से समासओ दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दुहविवागे चेव, २. सुहविवागे चेव।

तत्थ णं दस दुहविवागाणि, दस सुहविवागाणि।

प. (१) से किं तं दुहविवागाणि ?

उ. दुहविवागेसु णं दुहविवागाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडाइं रायाणो अम्मा-पियरो-समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ नगरगमणाइं संसारपबंधे दुहपरंपराओ य आघविज्जंति।

से तं दुहविवागाणि।

प. (२) से किं तं सुहविवागाणि ?

उ. सुहविवागेसु सुहविवागाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडाइं रायाणो अम्मा-पियरो समोसरणाइं

धम्मायरिया धम्मकहाओ

इहलोइय-परलोइय इड्ढिविसेसा

भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ

सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं परियागा

२९. (११) विपाकसूत्र–

प्र. विपाकसूत्र में क्या (वर्णन) है ?

उ. विपाकसूत्र में सुकृत और दुष्कृत कर्मों का फल-विपाक कहा गया है।

यह विपाक संक्षेप में दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. दुःख-विपाक, २. सुख-विपाक।

दुःख-विपाक में दस अध्ययन हैं और सुख-विपाक में भी दस अध्ययन हैं।

प्र. (१) दुःख विपाक के अध्ययनों में क्या वर्णन है ?

उ. दुःख-विपाक में दुष्कृतों के (दुःखरूप फलों को भोगने वालों के) नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथाएं नगर-गमन, संसार प्रबन्ध आदि दुःख परम्पराओं को भोगने का वर्णन किया गया है।

यह दुःख-विपाक का वर्णन है।

प्र. (२) सुख-विपाक के अध्ययनों में क्या वर्णन है ?

उ. सुख-विपाक में सुकृतों के (सुखरूप फलों को भोगने वालों के) नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण,

धर्माचार्य, धर्मकथाएं,

इहलौकिक-पारलौकिक-ऋद्धिविशेष,

भोगपरित्याग, प्रव्रज्या,

श्रुत-परिग्रह, तप-उपधान, दीक्षा-पर्याय,

पडिमाओ संलेहणाओ
भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं
देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायाई पुण बोहिलाभो
अंतकिरियाओ य आघविज्जंति।

प्रतिमा, संलेखनाएं,
भक्तप्रत्याख्यान, पादपोपगमन, (संथारा)
देवलोक-गमन, सुकुल-प्रत्यागमन, पुनःबोधिलाभ,
और उनकी अन्तक्रियाएं कही गई हैं।

दुहविवागेसु णं—पाणाइवाय-अलियवयण-चोरिक्ककरण-परदारमेहुण-ससंगयाए महतिव्वकसाय-इंदिय-प्पमाय-पावप्पओय-असुहज्झवसाणसंचियाणं कम्माणं पावगाणं पावअणुभाग-फलविवागा।

दुःख-विपाक के—प्राणातिपात, असत्य वचन, चौर्य कर्म, पर-दार-मैथुन, ससंगता, महातीव्र कषाय, इन्द्रिय (विषय सेवन), प्रमाद, पापःप्रयोग और अशुभ अध्यवसानों से संचित पापकर्मों के उन पापरूप फल-विपाकों का वर्णन किया गया है।

णिरयगइ-तिरिक्खजोणि-बहुविहवसणसय-परंपराप-बद्धा णं,

जिन्हें नरकगति और तिर्यग्-योनि में बहुत प्रकार के असीम संकटों की परम्परा में पड़कर भोगना पड़ता है।

मणुयत्ते वि आगयाणं जहा पावकम्मसेसेण पावगा होंति फलविवागा,

वहां से निकलकर मनुष्य भव में आने पर भी जीवों को पाप-कर्मों के शेष रहने से अनेक पापरूप अशुभफलविपाक भोगने पड़ते हैं,

वह-वसणविणास-नासा-कन्नोट्ठं-गुट्ठ-कर-चरण-नहच्छेयण-जिब्भच्छेयण-

जैसे—वध, वृषणविनाश, नासिका छेदन, कर्ण, कर्तन, ओष्ठ-छेदन, अंगुष्ठ-छेदन, हस्त-कर्तन, चरण-छेदन, नख-छेदन, जिह्वा-छेदन,

अंजण—कडग्गिदाहण-गयचलणमलण-फालण-उल्लंबण-सूल-लया-लउड-लट्ठिभंजण-तउ-सीसग-तत्ततेल्ल-कल कलअभिसिंचण - कुंभिपाग - कंपण - थिरबंधण - वेह-वेज्झकत्तण-पतिभयकरकरपलीवणादिदारुणाणि दुक्खाणि अणोवमाणि,

लोहे की गर्म शलाका से आंखों को आंजना, कटाग्निदाह, हाथी के पैरों के नीचे डालकर शरीर को कुचलवाना, फरसे आदि से शरीर को फाड़ना, फांसी लगाकर वृक्ष के लटकाना, त्रिसूल, लता, लकड़ी और लाठी से शरीर को भग्न करना, तपे हुए कड़कड़ाते रांगा, सीसा एवं तेल से शरीर का अभिसिंचन करना, कुम्भी में पकाना, शरीर में कंपन पैदा करने वाला अतिशीतल जल शीत काल में डालना, स्थिर करने के लिए काष्ठ आदि में पैर फंसाकर बांधना, भाले आदि से वींधना वर्द्धकर्तन, वधिया करना या चमड़ी उधेड़ना, अति भय-कारक हाथों में अग्नि जलाना आदि अनुपम दारुण दुःखों का आख्यान किया गया है।

बहुविविहपरंपराणुवद्धा ण मुच्चंति पावकम्मवल्लीए।

दुःखों की विविध परम्परा से अनुवद्ध जीव पाप कर्म रूपी वेल से मुक्त नहीं होते।

अवेयइत्ता हु णत्थि मोक्खो, तवेण धिइधणियबद्धुकच्छेण सोहणं तस्स वावि हुज्जा।

कर्मों का वेदन किए विना उनसे छुटकारा नहीं होता किन्तु कभी प्रवल धृतिवल से कटिवद्ध तप के द्वारा उनका शोधन भी हो सकता है।

एत्तो य सुहविवागेसु सील-संजम-णियम-गुण-तवोव-हाणेसु साहुसु सुविहिएसु अणुकंपाऽऽसयप्पओग-तिकाल-मइविसुद्धभत्तपाणाइं पययमणसा हिय-सुहनीसेस-तिव्वपरिणामनिच्छियमई पयच्छिऊणं पयोगसुद्धाइं जह य निव्वत्तेति उ वोहिलाभं,

सुखविपाक में शील, संयम, नियम, गुण और तप-उपधान को धारण करने वाले सुविहित साधुओं को अत्यन्त आदर वाले, हितकारक, सुखकारक और कल्याणकारक तीव्र अध्यवसाय तथा निश्चित मति वाले व्यक्ति अनुकम्पा के आशय-प्रयोग से तथा दान देने की त्रैकालिक मति से विशुद्ध तथा प्रयोग-शुद्ध भक्त-पान देकर जिस प्रकार वोधि को प्राप्त करते हैं, उसका आख्यान किया गया है।

जह य परित्तीकरेंति नर-नरय-तिरिय-सुरगइगमण-विपुलपरियट्ट - अरइ - भय - विसाय - सोग - मिच्छत्त-सेलसंकडं अन्नाणतमंधकारचिक्खिल्लसुदुत्तारं जर - मरण - जोणिसंखुभियचक्कवालं सोलसकसाय-

इसमें नर, नरक, तिर्यंच एवं देवगति-गमन सम्बन्धी जन्म मरणों को परिमित करते हैं, तथा जो अरति, भय, विस्मय, शोक और मिथ्यात्वरूप पर्वतों से संकुल हैं, गहन-अज्ञान-अन्धकार रूप कीचड़ से परिपूर्ण होने से जिसका पार उतरना कठिन है, जिसका चक्रवाल जरा, मरण योनिरूप मगर-मच्छों से क्षोभित हो रहा है, जो अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय

सावय-पयंडचंडं अणाइअं अणवदग्गं संसारसागरमिणं,

रूप अति प्रचण्ड श्वापदों से भयंकर हैं, ऐसे अनादि अनन्त इस संसार-सागर को वे जिस प्रकार पार करते हैं इसका कथन किया गया है।

जह य णिवंधंति आउगं सुरगणेसु,

जिस प्रकार देवायु का बंध करते हैं,

जह य अणुभवंति सुरगणविमाणसोक्खाणि अणोवमाणि, तओ य कालंतरे चुआणं इहेव नरलोगमागयाणं आउ-वपुवण्ण-रूवजाइ-कुलजम्मआरोग्ग-बुद्धि-मेहाविसेसा - मित्तजण - सयण - धण - धण्ण - विभवसमिद्धिसार-समुदयविसेसा वहुविहकामभोगुब्भवाण सोक्खाण सुहविवागोत्तमेसु।

तथा जिस प्रकार सुर-गणों के विमानोत्पन्न अनुपम सुखों का अनुभव करते हैं, तत्पश्चात् कालान्तर में वहां से च्युत होकर इसी मनुष्यलोक में आकर दीर्घ आयु, परिपूर्ण शरीर, उत्तम रूप, उच्च जाति कुल में जन्म लेकर आरोग्य, बुद्धि, मेधा-विशेष से सम्पन्न होते हैं, मित्रजन, स्वजन, धन, धान्य और वैभव से समृद्ध एवं सारभूत सुखसम्पदा के समूह से संयुक्त होकर बहुत प्रकार के काम-भोग-जनित, सुख-विपाक से प्राप्त उत्तम सुखों की अनुपरत परम्परा से परिपूर्ण रहते हुए सुखों को भोगते हैं, ऐसे पुण्यशाली जीवों का इस सुख-विपाक में वर्णन किया गया है।

अणुवरयपरंपराणुवद्धा असुभाणं सुभाणं चेव कम्माणं भासिआ वहुविहा विवागा विवागसुयम्मि भगवया जिणवरेण संवेगकारणत्था।

इस प्रकार अशुभ और शुभ कर्मों के बहुत प्रकार के विपाक इस विपाकसूत्र में भगवान् जिनेन्द्र देव ने संसारीजनों को संवेग उत्पन्न करने के लिए कहे हैं।

अन्ने वि य एवमाइया वहुविहा वित्थरेणं अत्थपरूवणया आघविज्जंति।

इसी प्रकार से अन्य भी बहुत प्रकार की अर्थ-प्ररूपणा विस्तार से इस अंग में की गई है।

विवागसुयस्स णं परित्ता वायणा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ,

विपाकसूत्र की परिमित वाचनाएं हैं यावत् संख्यात संग्रहणियां हैं।

से णं अंगट्ठयाए एक्कारसमे अंगे,

अंगों में यह ग्यारहवां अंग हैं,

वीसं अज्झयणा, वीसं उद्देसणकाला, वीसं समुद्देसणकाला,

वीस अध्ययन हैं, वीस उद्देशन-काल हैं, वीस समुद्देशन-काल हैं,

संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता, संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति।

पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद कहे गए हैं, संख्यात अक्षर हैं यावत् उदाहरण देकर समझाया गया है।

से एवं आया, एवं णाया, एवं विण्णाया

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला तदात्मरूप ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है।

एवं चरण करण परूवणया आघविज्जंति जाव उवदंसिज्जंति।

इस प्रकार इस अंग में चरण-करण की विशिष्ट प्ररूपणा की है यावत् उपदर्शन किया है।

से तं विवागसुए[1]। —सम., सु. १४६

यह विपाक सूत्र का वर्णन है।

---

१. से किं तं विवागसुयं ?
[illegible] सुकड-दुक्कडाणं कम्माणं फलविवागा आघविज्जंति। तत्थ णं दस दुहविवागा, दस सुहविवागा।
से किं तं दुहविवागा ?
[illegible] उज्जाणाइं वणसंडाइं चेइयाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापियरो धम्मकहाओ धम्मायरिया इहलोइय-परलोइया [illegible] दुक्कुलपच्चायाईओ दुलहबोहियत्तं आघविज्जंति। से तं दुहविवागा।
से किं तं सुहविवागा ?
[illegible] उज्जाणाइं वणसंडाइं चेइयाइं समोसरणाइं रायाणो अम्मापियरो धम्मकहाओ धम्मायरिया इहलोइय-परलोइया [illegible] भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुहपरंपराओ [illegible] से तं सुहविवागा।
[illegible]
[illegible] वीसं अज्झयणा, वीसं उद्देसणकाला, वीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, [illegible] सासय-कड-निबद्ध-निकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति जाव [illegible]
[illegible]
[illegible] —नंदी., सु. ९३

(क) विवागसुयस्स पढमसुयखंधस्स उक्खेवो–

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं दसमस्स अंगस्स पण्हावागरणाणं अयमट्ठे पण्णत्ते,

एक्कारसमस्स णं भंते ! अंगस्स विवागसुयस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं एक्कारसमस्स अंगस्स विवागसुयस्स दो सुयक्खंधा पण्णत्ता, तं जहा–

१. दुहविवागा य, २. सुहविवागा य।

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं एक्कारसमस्स अंगस्स विवागसुयस्स दो सुयक्खंधा पण्णत्ता,

पढमस्स णं भंते ! सुयक्खंधस्स दुहविवागाणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं दुहविवागाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. मियापुत्ते य, २. उज्झियए, ३. अभग्ग, ४. सगडे, ५. वहस्सइ, ६. नंदी, ७. उंबर, ८. सोरियदत्ते य, ९. देवदत्ता य, १०. अंजू य ॥१॥

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं दुहविवागाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता,

पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स दुहविवागाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जंबू! –*विपाक. सु. १, अ. १, सु. ४-९*

(ख) विइय सुयक्खंधस्स उक्खेवो–

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं दुहविवागाणं अयमट्ठे पण्णत्ते,

सुहविवागाणं भन्ते ! के अट्ठे पण्णत्ते ?

तए णं से सुहम्मे अणगारे जंबू अणगारं एवं वयासी–

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं सुहविवागाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुबाहू, २. भद्दनंदी य, ३. सुजाए य, ४. सुवासवे।
तहेव, ५. जिणदासे य, ६. धणवई य, ७. महब्बले ॥१॥
८. भद्दनंदी, ९. महच्चंदे, १०. वरदत्ते तहेव य।

प. जइ णं भन्ते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं सुहविवागाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता पढमस्स णं भन्ते ! अज्झयणस्स सुहविवागाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जंबू ! –*विवाग. सुय. २, अ. १, सु. १-४*

(क) विपाक सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध का उपोद्घात–

प्र. भन्ते ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा दसवें अंग प्रश्नव्याकरण का यह अर्थ कहा गया है तो–

भन्ते ! ग्यारहवें अंग विपाक श्रुत का क्या अर्थ कहा गया है ?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा ग्यारहवें अंग विपाक श्रुत के दो श्रुतस्कन्ध कहे गए हैं, यथा–

१. दुःख विपाक, २. सुख विपाक।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा ग्यारहवें अंग विपाक श्रुत के दो श्रुतस्कन्ध कहे गए हैं तो–

भन्ते ! प्रथम श्रुतस्कन्ध दुःख विपाक के कितने अध्ययन कहे गए हैं ?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा दुःख विपाक के दस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. मृगापुत्र, २. उज्झितक, ३. अभग्न, ४. शकट, ५. बृहस्पति, ६. नंदी, ७. उंबर, ८. सौरिकदत्त, ९. देवदत्त, १०. अंजू।

प्र. भन्ते ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा दुःख विपाक के दस अध्ययन कहे गए हैं तो–

भन्ते ! दुःख विपाक के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा गया है ?

उ. जम्बू ! (आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें।)

(ख) द्वितीय श्रुतस्कन्ध का उपोद्घात–

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा दुःख विपाक का यह अर्थ कहा है तो–

भन्ते ! सुख विपाक का क्या अर्थ कहा है ?

तब सुधर्मा अणगार ने जंबू अणगार से इस प्रकार कहा–

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा सुख विपाक के दस अध्ययन कहे हैं, यथा–

१. सुबाहु, २. भद्रनन्दी, ३. सुजात, ४. सुवासव, ५. जिनदास, ६. धनपति, ७. महाबल, ८. भद्रनंदी, ९. महाचन्द्र, १०. वरदत्त।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा सुख विपाक के दस अध्ययन कहे हैं तो–

भन्ते ! सुख विपाक के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

उ. जम्बू ! (आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें।)

(ग) विवागसुयस्स उवसंहारो–

विवागसुयस्स दो सुयक्खंधा, तं जहा–१. दुहविवागो य, २. सुहविवागो य।

तत्थ दुहविवागो य दस अज्झयणा एक्कसरगा, दसेसु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति।

एवं सुहविवागो वि। –*विपाक., सुय. २, अ. १०, सु. २*

तेयालीसं कम्मविवागज्झयणा पण्णत्ता। –*सम. सम. ४३, सु. १*

३०.(१२) दिट्ठिवाओ–

प. से किं तं दिट्ठिवाए?

उ. दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणया आघविज्जंति।

से समासओ पंचविहे[1] पण्णत्ते, तं जहा–

१. परिकम्म, २. सुत्ताइं, ३. पुव्वगयं, ४. अणुओगो[2], ५. चूलिया। –*सम. सु. १४७*

(१) परिकम्मे–

प. से किं तं परिकम्मे?

उ. परिकम्मे सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सिद्धसेणियापरिकम्मे,
२. मणुस्ससेणियापरिकम्मे,
३. पुट्ठसेणियापरिकम्मे,
४. ओगाहणसेणियापरिकम्मे,
५. उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे,
६. विप्पजहणसेणियापरिकम्मे,
७. चुआचुअसेणियापरिकम्मे[3]।

प. से किं तं सिद्धसेणियापरिकम्मे?

उ. सिद्धसेणियापरिकम्मे चोद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. माउयापयाणि,	२. एगट्ठियपयाणि,
३. अट्ठपयाणि,	४. पाढो,
५. आगासपयाणि,	६. केउभूयं,
७. रासिबद्धं,	८. एगगुणं,
९. दुगुणं,	१०. तिगुणं,
११. केउभूयपडिग्गहो,	१२. संसारपडिग्गहो,
१३. नंदावत्तं,	१४. सिद्धावत्तं।

से त्तं सिद्धसेणियापरिकम्मे[4]।

प. से किं तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे?

उ. मणुस्ससेणियापरिकम्मे चोद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. माउयापयाणि जाव १४. मणुस्सावत्तं,

(ग) विपाक सूत्र का उपसंहार–

विपाक सूत्र के दो श्रुतस्कन्ध हैं, यथा–१. दुःख विपाक, २. सुख विपाक।

उनमें दुःख विपाक के दस अध्ययन एक समान हैं और दस दिनों में ही उनका कथन (अध्ययन) होता है।

इसी प्रकार सुख विपाक में भी समझना चाहिए।

कर्म विपाक के तेयालीस अध्ययन कहे गए हैं।

३०.(१२) दृष्टिवाद सूत्र–

प्र. दृष्टिवाद में क्या है?

उ. दृष्टिवाद अंग में सर्वभावों की प्ररूपणा की जाती है।

संक्षेप से वह पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. परिकर्म, २. सूत्र, ३. पूर्वगत, ४. अनुयोग, ५. चूलिया।

(१) परिकर्म–

प्र. परिकर्म कितने प्रकार का है?

उ. परिकर्म सात प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सिद्धश्रेणिका-परिकर्म,
२. मनुष्यश्रेणिका परिकर्म,
३. पृष्टश्रेणिका-परिकर्म,
४. अवगाहनश्रेणिका परिकर्म,
५. उपसंपद्यश्रेणिका परिकर्म,
६. विप्रजहत्श्रेणिका परिकर्म,
७. च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म।

प्र. सिद्धश्रेणिका परिकर्म कितने प्रकार का है?

उ. सिद्धश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मातृकापद,	२. एकार्थकपद,
३. अर्थपद,	४. पाठ,
५. आकाशपद,	६. केतुभूत,
७. राशिबद्ध,	८. एकगुण,
९. द्विगुण,	१०. त्रिगुण,
११. केतुभूतप्रतिग्रह,	१२. संसार-प्रतिग्रह,
१३. नन्द्यावर्त,	१४. सिद्धावर्त।

यह सिद्धश्रेणिका परिकर्म है।

प्र. मनुष्यश्रेणिका परिकर्म कितने प्रकार का है?

उ. मनुष्यश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. मातृका पद यावत् १४. मनुष्यावर्त

से तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे[1]।

अवसेसाईपरिकम्माइं पुट्ठाइयाइं एक्कारसविहाइं पण्णत्ताइं[2]।

इच्चेयाइं सत्त परिकम्माइं छ ससमइयाणि,

सत्त आजीवियाणि,

छ चउक्कणयाणि,

सत्त तेरासियाणि।

एवामेव सपुव्वावरेणं सत्त परिकम्माइं तेसीतिं भवंतीतिमक्खायाइं।

से तं परिकम्माइं[3]। *—सम. सु. १४७(१)*

यह मनुष्यश्रेणिका परिकर्म है।

पृष्ठश्रेणिका परिकर्म से लेकर शेष परिकर्म ग्यारह-ग्यारह प्रकार के कहे गए हैं।

पूर्वोक्त सातों परिकर्म में से छ स्वसिद्धांत के प्ररूपक हैं।

सातवां आजीविकमतानुसारी है,

छह चतुष्कनयवालों के मतानुसारी हैं।

सातवां त्रैराशिक मतानुसारी है।

इस प्रकार ये सातों परिकर्म पूर्वापर भेदों की अपेक्षा तिरासी होते हैं।

यह परिकर्म का वर्णन है।

(२) सुत्ताइं–

प. से किं तं सुत्ताइं ?

उ. सुत्ताइं अट्ठासीतिं भवंतीतिमक्खायाइं, तं जहा–

१. उजुगं,	२. परिणयापरिणयं,
३. वहुभंगियं,	४. विजयचरियं,
५. अणंतरं,	६. परंपरं,
७. समाणं,	८. संजूहं,
९. संभिन्नं,	१०. आहच्चायं,
११. सोवत्थियं घंटं,	१२. णंदावत्तं,
१३. वहुलं,	१४. पुट्ठापुट्ठं,
१५. वियावत्तं,	१६. एवंभूयं,
१७. दुआवत्तं,	१८. वत्तमाणुपयं,
१९. समभिरूढं,	२०. सव्वओभद्दं,
२१. पण्णासं,	२२. दुपडिग्गहं।

इच्चेयाइं वावीसं सुत्ताइं छिण्णच्छेयणयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए,

इच्चेयाइं वावीसं सुत्ताइं अछिण्णछेयणइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीए,

इच्चेयाइं वावीसं सुत्ताइं तिकणइयाइं तेरासियसुत्तपरिवाडीए,

(२) सूत्र–

प्र. सूत्र कितने प्रकार का है ?

उ. सूत्र अठासी प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. ऋजुक,	२. परिणतापरिणत,
३. वहुभंगिक,	४. विजयचरित,
५. अनन्तर,	६. परम्पर,
७. समान,	८. संयूथ,
९. संभिन्न,	१०. यथात्याग,
११. सौवरितकघंट,	१२. नन्द्यावर्त,
१३. बहुल,	१४. पृष्टापृष्ट,
१५. व्यावर्त,	१६. एवंभूत,
१७. द्विकावर्त्त,	१८. वर्तमान पद,
१९. समभिरूढ,	२०. सर्वतोभद्र,
२१. पन्यास,	२२. द्विप्रतिग्रह।

ये वाईस सूत्र स्वसमयसूत्र परिपाटी से छिन्नच्छेद-नयिक हैं।

ये वाईस सूत्र आजीविकसूत्र परिपाटी से अच्छिन्नच्छेद-नयिक हैं।

ये वाईस सूत्र त्रैराशिकसूत्र परिपाटी से तीन नय वाले हैं।

---

१. से किं तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे,
मणुस्ससेणियापरिकम्मे चोद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. माउगापयाइं, जाव १४. मणुस्सावत्तं *—नंदी सु. १०१*
से तं मणुस्ससेणिया परिकम्मे।

२. से किं तं पुट्ठसेणियापरिकम्मे ?
पुट्ठसेणियापरिकम्मे एक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. पाढो जाव ११. पुट्ठावत्तं।
से तं पुट्ठसेणियापरिकम्मे।
से किं तं ओगाढसेणियापरिकम्मे ?
ओगाढसेणियापरिकम्मे एक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. पाढो जाव ११. ओगाढावत्तं।
से तं ओगाढसेणियापरिकम्मे।
से किं तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ?
उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे एक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. पाढो जाव ११. उवसंपज्जणावत्तं।
से तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे।
से किं तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ?
विप्पजहणसेणियापरिकम्मे एगारसविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. पाढो जाव ११. विप्पजहणावत्तं।
से तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे।
से किं तं चुयमचुयसेणियापरिकम्मे ?
चुयमचुयसेणियापरिकम्मे एगारसविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. पाढो जाव ११. चुयमचुयावत्तं।
से तं चुयमचुयसेणिया परिकम्मे।

३. इच्चेइयाइं सत्त परिकम्माइं छ ससमइयाइं, सत्त आजीवियाइं छ चउक्कणइयाइं सत्त तेरासियाइं।
एवामेव सपुव्वावरेणं सत्त परिकम्माइं तेसीतिं भवंतीतिमक्खायाइं से तं परिकम्माइं। *—नंदी सु. १०२-१०३*

इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए[1]।

एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठासीइ सुत्ताइं भवंतीतिमक्खायाइं[2]।

से तं सुत्ताइं। —सम. सु. १४७(२)

(३) पुव्वगए–

प. से किं तं पुव्वगए?

उ. पुव्वगए चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. उप्पायपुव्वं,	२. अग्गेणीयं,
३. वीरियं,	४. अत्थिणत्थिप्पवायं,
५. नाणप्पवायं,	६. सच्चप्पवायं,
७. आयप्पवायं,	८. कम्मप्पवायं,
९. पच्चक्खाणप्पवायं,	१०. विज्जाणुप्पवायं,
११. अवंझं,	१२. पाणाऊं,
१३. किरियाविसालं,	१४. लोगविंदुसारं[3]।

१. उप्पायपुव्वस्स णं दस वत्थू[4], चत्तारि चूलियावत्थू पण्णत्ता[5]।

२. अग्गेणियस्स णं पुव्वस्स चोद्दस वत्थू[6], बारस चूलियावत्थू पण्णत्ता।

३. वीरियपवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठ वत्थू, अट्ठ चूलियावत्थू पण्णत्ता[7]।

४. अत्थिणत्थिप्पवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठारस वत्थू[8], दस चूलियावत्थू पण्णत्ता।

५. नाणप्पवायस्स णं पुव्वस्स बारस वत्थू पण्णत्ता।

६. सच्चप्पवायस्स णं पुव्वस्स दो वत्थू पण्णत्ता[9]।

७. आयप्पवायस्स णं पुव्वस्स सोलस वत्थू पण्णत्ता[10]।

८. कम्मप्पवायस्स णं पुव्वस्स तीसं वत्थू पण्णत्ता।

९. पच्चक्खाणप्पवायस्स णं पुव्वस्स वीसं वत्थू पण्णत्ता[11]।

ये ही बाईस सूत्र स्वसमयसूत्र परिपाटी से चतुष्कनय वाले हैं।

इस प्रकार ये सब पूर्वापर भेद मिलकर अठासी सूत्र होते हैं।

यह सूत्रों का वर्णन है।

(३) पूर्वगत–

प्र. पूर्वगत कितने प्रकार का है?

उ. पूर्वगत चौदह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. उत्पादपूर्व,	२. अग्रायणीयपूर्व,
३. वीर्यप्रवादपूर्व,	४. अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व,
५. ज्ञानप्रवादपूर्व,	६. सत्यप्रवादपूर्व,
७. आत्मप्रवादपूर्व,	८. कर्मप्रवादपूर्व,
९. प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व,	१०. विद्यानुप्रवादपूर्व,
११. अवन्ध्यपूर्व,	१२. प्राणायुपूर्व,
१३. क्रियाविशालपूर्व,	१४. लोकबिन्दुसारपूर्व।

१. उत्पादपूर्व की दस वस्तु (अधिकार) और चार चूलिकावस्तु कही गई हैं।

२. अग्रायणीय पूर्व की चौदह वस्तु और बारह चूलिकावस्तु कही गई हैं।

३. वीर्यप्रवादपूर्व की आठ वस्तु और आठ चूलिकावस्तु कही गई हैं।

४. अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व की अठारह वस्तु और दस चूलिकावस्तु कही गई हैं।

५. ज्ञानप्रवाद पूर्व की बारह वस्तु कही गई हैं।

६. सत्यप्रवादपूर्व की दो वस्तु कही गई हैं।

७. आत्मप्रवाद पूर्व की सोलह वस्तु कही गई हैं।

८. कर्मप्रवाद पूर्व की तीस वस्तु कही गई हैं।

९. प्रत्याख्यान पूर्व की बीस वस्तु कही गई हैं।

१०. विज्जाणुप्पवायस्स णं पुव्वस्स पण्णरस्स वत्थू पण्णत्ता[१]।
११. अवंझस्स णं पुव्वस्स वारस वत्थू पण्णत्ता।
१२. पाणाउस्स णं पुव्वस्स तेरस वत्थू पण्णत्ता[२]।
१३. किरियाविसालस्स णं पुव्वस्स तीसं वत्थू पण्णत्ता।
१४. लोगविंदुसारस्स णं पुव्वस्स पणवीसं वत्थू पण्णत्ता[३]।
दस चोद्दस अट्ठ अट्ठारसे व वारस दुवे य वत्थूणि।
सोलस तीसा वीसा, पण्णरस अणुप्पवायम्मि॥१॥

वारस एक्कारसमे, वारसमे तेरसेव वत्थूणि।
तीसा पुण तेरसमे, चउद्दसमे पण्णवीसाओ॥२॥
चत्तारि दुवालस अट्ठ, चेव दस चेव चूलवत्थूणि।
आदिल्लाणं चउण्हं सेसाणं चूलिया णत्थि॥३॥

से तं पुव्वगयं। *—सम., सु. १४७(३)*

(४) वीरिप्पवाय पुव्वस्सपाहुडा—
वीरिप्पवायस्स णं पुव्वस्स एकसत्तरिं पाहुडा पण्णत्ता।
—सम. सम. ७१, सु. २

अणुओगे—
प. से किं तं अणुओगे?
उ. अणुओगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. मूलपढमाणुओगे य, गंडियाणुओगे य।
प. से किं तं मूलपढमाणुओगे?
उ. मूलपढमाणुओगे एत्थ णं अरहंताणं भगवंताणं पुव्वभवा, देवलोगगमणाणि, आउं, चवणाणि, जम्मणाणि य, अभिसेया, रायवरसिरीओ, सीयाओ, पव्वज्जाओ, तवा य भत्ता, केवलणाणुप्पया तित्थपवत्तणाणि य, संघयणं संठाणं उच्चत्तं आउं वण्णविभागो सीसा गणा गणहरा य अज्जा पवत्तणीओ संघस्स चउव्विहस्स जं वा वि परिमाणं जिण-मणपज्जव-ओहिनाणी-सम्मत्त-सुयनाणिणो य वाई जत्तिया अणुत्तरगई य जत्तिया, जत्तिया सिद्धा, पाओवगआ य जो जहिं जत्तियाइं भत्ताइं छेयइत्ता अंतगडो मुणिवरुत्तमो तिमिरओघविप्पमुक्का सिद्धिपहमणुत्तरं च पत्ता,
अन्ने य एवमाइया भावा मूलपढमाणुओगे कहिआ।
से तं मूलपढमाणुओगे[४]।

१०. विद्यानुप्रवादपूर्व की पन्द्रह वस्तु कही गई हैं।
११. अवन्ध्यपूर्व की बारह वस्तु कही गई हैं।
१२. प्राणायुपूर्व की तेरह वस्तु कही गई हैं।
१३. क्रियाविशाल पूर्व की तीस वस्तु कही गई हैं।
१४. लोकबिन्दुसार पूर्व की पच्चीस वस्तु कही गई हैं।
प्रथम पूर्व में दस, दूसरे में चौदह, तीसरे में आठ, चौथे में अठारह, पांचवें में बारह, छठे में दो, सातवें में सोलह, आठवें में तीस, नवमे में बीस, दसवें में पन्द्रह॥१॥

ग्यारहवें में बारह, बारहवें में तेरह, तेरहवें में तीस, और चौदहवें में पच्चीस वस्तु नामक महाधिकार हैं॥२॥

आदि के चार पूर्वों में क्रम से चार, बारह, आठ और दस चूलिका वस्तु नामक अधिकार हैं। शेष दस पूर्वों में चूलिका नामक अधिकार नहीं हैं॥३॥
यह पूर्वगत का वर्णन है।

(४) वीर्यप्रवाद पूर्व के प्राभृत—
वीर्य प्रवाद पूर्व के इकहत्तर प्राभृत कहे गए हैं।

अनुयोग—
प्र. अनुयोग कितने प्रकार का है?
उ. अनुयोग दो प्रकार का कहा गया है, यथा—
१. मूलप्रथमानुयोग, २. गंडिकानुयोग।
प्र. मूलप्रथमानुयोग में क्या है?
उ. मूलप्रथमानुयोग में अरहन्त भगवन्तों के पूर्वभव, देवलोक-गमन, देवायु, च्यवन, जन्म, अभिषेक, राज्यवरश्री, शिविका, प्रव्रज्या, तप, भक्त (आहार के समय), केवलज्ञानोत्पत्ति, तीर्थ-प्रवर्तन, संहनन, संस्थान, शरीर की ऊंचाई, आयु, वर्ण विभाग, शिष्य, गण, गणधर, आर्या, प्रवर्तिनी, चतुर्विध संघ का परिमाण, जिन-केवलि, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्पूर्ण श्रुतज्ञानी, वादी, अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले साधु, सिद्ध, पादपोपगत, जितने समयों का भोजन त्यागकर सिद्ध हुए ऐसे उत्तम मुनिवरों का अज्ञानांधकार समूह से विप्रमुक्त और अनुत्तर सिद्धिपद को प्राप्त हुए महापुरुषों का वर्णन है।

इसी प्रकार के अन्य भाव मूलप्रथमानुयोग में कहे गए हैं।
यह मूलप्रथमानुयोग का वर्णन है।

---

१. विज्जाणुप्पवायस्स णं पुव्वस्स पण्णरस वत्थू पण्णत्ता। *—सम. सम. १५, सु. ६*
२. पाणाउस्स णं पुव्वस्स तेरस वत्थू पण्णत्ता। *—सम. सम. १३, सु. ६*
३. (क) लोगबिंदुसारस्स णं पुव्वस्स पणवीसं वत्थू पण्णत्ता। *—सम., सम. २५, सु. ९*
(ख) उप्पायस्स णं पुव्वस्स दस वत्थू, चत्तारि चूलियावत्थू पण्णत्ता जाव लोगबिंदुसारस्स णं पुव्वस्स पणवीसं वत्थू पण्णत्ता। *—नंदी सु. १०९(२-३)*
४. प. से किं तं अणुओगे?
उ. अणुओगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. मूलपढमाणुओगे य, २. गंडियाणुओगे य।
प. से किं तं मूलपढमाणुओगे?
उ. [illegible]
—नंदी सु. [illegible]

प. से किं तं गंडियाणुओगे?

उ. गंडियाणुओगे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–

कुलकरगंडियाओ	तित्थकरगंडियाओ
गणधरगंडियाओ	चक्कहरगंडियाओ
दसारगंडियाओ	बलदेवगंडियाओ
वासुदेवगंडियाओ	हरिवंसगंडियाओ
भद्दबाहुगंडियाओ	तवोकम्मगंडियाओ
चित्तंतरगंडियाओ	उस्सप्पिणीगंडियाओ
ओसप्पिणीगंडियाओ	

अमर-नर-तिरिय-निरयगइगमणविविह परियट्टणाणुयोगे।

एवमाइयाओ गंडियाओ आघविज्जंति जाव उवदंसिज्जंति।

से तं गंडियाणुओगे[1]। –सम. सु. १४७(४)

प्र. गंडिकानुयोग कितने प्रकार का है?

उ. गंडिकानुयोग अनेक प्रकार का कहा गया है, यथा–

कुलकरगंडिका,	तीर्थंकरगंडिका,
गणधरगंडिका,	चक्रवर्त्तीगंडिका,
दशारगंडिका,	बलदेवगंडिका,
वासुदेवगंडिका,	हरिवंशगंडिका,
भद्रबाहुगंडिका,	तपःकर्मगंडिका,
चित्रान्तरगंडिका,	उत्सर्पिणीगंडिका,
उवसर्पिणीगंडिका,	

देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक गतियों में गमन तथा विविध योनियों में परिवर्तनानुयोग,

इत्यादि गंडिकाएं इस गंडिकानुयोग में कही गई हैं यावत् उपदर्शित की गई हैं।

यह गंडिकानुयोग का वर्णन है।

(५) चूलिया–

प. से किं तं चूलियाओ?

उ. जण्णं आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलियाओ।

सेसाइं पुव्वाइं अचूलियाइं।

से तं चूलियाओ[2]। –सम. सु. १४७(५)

(५) चूलिका–

प्र. चूलिका क्या है?

उ. आदि के चार पूर्वों में चूलिका नाम के अधिकार हैं।

शेष दस पूर्वों में चूलिकाएं नहीं हैं।

यह चूलिका है।

(क) दिट्ठिवायस्स उवसंहारो–

दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ।

से णं अंगट्ठयाए बारसमे अंगे,

एगे सुयक्खंधे, चउद्दस पुव्वाइं,

संखेज्जा वत्थू, संखेज्जा चूलवत्थू,

संखेज्जा पाहुडा, संखेज्जा पाहुडपाहुडा,

संखेज्जाओ पाहुडियाओ, संखेज्जाओ पाहुडपाहुडियाओ,

संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेणं पण्णत्ता,

संखेज्जा अक्खरा जाव उवदंसिज्जंति।

से तं दिट्ठिवाए[3]। –सम. सु. १४७

(क) दृष्टिवाद का उपसंहार–

दृष्टिवाद की परिमित वाचनाएं हैं यावत् संख्यात संग्रहणियां हैं।

अंगों में यह बारहवां अंग है,

इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, चौदह पूर्व हैं,

संख्यात वस्तु हैं, संख्यात चूलिका वस्तु हैं,

संख्यात प्राभृत हैं, संख्यात प्राभृत-प्राभृत हैं,

संख्यात प्राभृतिकाएं हैं, संख्यात प्राभृत-प्राभृतिकाएं हैं,

पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद कहे गए हैं।

संख्यात अक्षर हैं यावत् उदाहरण देकर समझाए गए हैं।

यह दृष्टिवाद अंग का वर्णन हुआ।

(ख) दिट्ठिवायसुयस्स पज्जवनामा–

दिट्ठिवायस्स णं दस नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा–

१. दिट्ठिवाए इ वा,	२. हेउवाए इ वा,
३. भूयवाए इ वा,	४. तच्चावाए इ वा,
५. सम्मावाए इ वा,	६. धम्मावाए इ वा,

(ख) दृष्टिवादश्रुत के पर्यायवाची नाम–

दृष्टिवाद के दस नाम कहे गए हैं, यथा–

१. दृष्टिवाद,	२. हेतुवाद,
३. भूतवाद,	४. तत्ववाद,
५. सम्यग्वाद,	६. धर्मवाद,

७. भासाविजए इ वा, ८. पुव्वगइ इ वा,
९. अणुजोगगए इ वा,
१०. सव्वपाण-भूय जीव-सत्तसुहावहे इ वा।

–ठाणं, अ. १०, सु. ७४२

७. भाषाविचय, ८. पूर्वगत,
९. अनुयोगगत,
१०. सर्वप्राण-भूत-जीव- सत्वसुखावह।

(ग) दिट्ठिवायस्स माउया पया–

दिट्ठिवायस्स णं छायालीसं माउयापया पण्णत्ता।

–सम. सम. ४६, सु. १

(ग) दृष्टिवाद के मातृका पद–

दृष्टिवाद अंग के छियालीस मातृका पद कहे गए हैं।

३१. गणिपिडगो–

प. पवयणं भंते ! पवयणं, पावयणी पवयणं ?

उ. गोयमा ! अरहा ताव नियमं पावयणी,
पवयणं पुण दुवालसंगे गणिपिडगे, तं जहा–
१. आयारो जाव १२. दिट्ठिवाओ। *–विया. स. २०, उ. ८, सु. १५*

प. कइविहे णं भंते ! गणिपिडए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुवालसंगे गणिपिडए पण्णत्ते, तं जहा–
१. आयारो जाव १२. दिट्ठिवाओ।[1]

–विया. स. २५, उ. ३, सु. ११५

३१. गणिपिटक–

प्र. भन्ते ! प्रवचन को ही प्रवचन कहते हैं, अथवा प्रवचनी को प्रवचन कहते हैं ?

उ. गौतम ! अरिहन्त अवश्य प्रवचनी है (प्रवचन नहीं है)
किन्तु द्वादशाग गणिपिटक प्रवचन है, यथा–
१. आचारांग यावत् १२ दृष्टिवाद।

प्र. भन्ते ! गणिपिटक कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! गणिपिटक द्वादशांग रूप कहा गया है, यथा–
१. आचारांग यावत् १२ दृष्टिवाद।

३२. गणिपिडगस्स सासयभावो–

दुवालसंगे णं गणिपिडगे ण कयावि णासि, ण कयाइ णत्थि, ण कयाई ण भविस्सइ,

भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य।

धुवे णितिए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे।

से जहाणामए पंच अत्थिकाया ण कयाइ ण आसि, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्संति,

भुविं च भवंति य भविस्संति य।

धुवा णितिया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा।

एवामेव दुवालसंगे गणिपिडगे ण कयाइ ण आसि, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ,

भुविं च भवइ य भविस्सइ य।

धुवे णितिए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे।[2]

–सम. सु. [illegible]

३२. गणि-पिटक का शाश्वत भाव–

यह द्वादशांग गणि-पिटक भूतकाल में कभी नहीं था, ऐसा नहीं है, वर्तमान काल में कभी नहीं है, ऐसा भी नहीं है और भविष्यकाल में कभी नहीं रहेगा ऐसा भी नहीं है।

किन्तु भूतकाल में भी यह द्वादशांग गणि-पिटक था, वर्तमान काल में भी है और भविष्यकाल में भी रहेगा।

क्योंकि यह द्वादशांग गणि-पिटक (मेरु पर्वत के समान) ध्रुव है, लोक के समान नियत है, काल के समान शाश्वत है, निरन्तर वाचना देने पर भी क्षय नहीं होने के कारण यह अक्षय है, गंगा-सिन्धु नदियों के प्रवाह के समान अव्यय है, जम्बूद्वीपादि के समान अवस्थित है और आकाश के समान नित्य है।

जिस प्रकार पांच अस्तिकाय द्रव्य भूतकाल में कभी नहीं थे ऐसा नहीं है, वर्तमान काल में कभी नहीं है ऐसा भी नहीं है और भविष्यकाल में कभी नहीं रहेंगे ऐसा भी नहीं है।

किन्तु ये पांचों अस्तिकाय द्रव्य भूतकाल में भी थे, वर्तमान काल में भी हैं और भविष्यकाल में भी रहेंगे।

अतएव ये ध्रुव हैं, नियत हैं, शाश्वत हैं, अक्षय हैं, अव्यय हैं, अवस्थित हैं और नित्य हैं।

इसी प्रकार यह द्वादशांग गणि-पिटक भूतकाल में कभी नहीं था ऐसा नहीं है, वर्तमान काल में कभी नहीं है ऐसा भी नहीं है और भविष्यकाल में कभी नहीं रहेगा ऐसा भी नहीं है।

किन्तु भूतकाल में भी यह था, वर्तमान काल में भी यह है और भविष्य काल में भी रहेगा।

अतएव यह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है।

---

१. सम. सम. सु. १३६ [illegible]

२. नंदी. सु. ५७ [illegible]

३३. गणिपिडगसरूवं–

एत्थ णं दुवालसंगे गणिपिडगे–
अणंता भावा, अणंता अभावा
अणंता हेऊ, अणंता अहेऊ,
अणंता कारणा, अणंता अकारणा,
अणंता जीवा, अणंता अजीवा,
अणंता भवसिद्धिया, अणंता अभवसिद्धिया,
अणंता सिद्धा, अणंता असिद्धा,
आघविज्जंति जाव उवदंसिज्जंति।[1] –*सम. सु. १४८(४)*

३४. गणिपिडगविराहणा आराहणा य फलं–

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अतीतकाले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टिंसु,

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णे काले परित्ता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टंति,

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टिस्संति।[2]

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अतीतकाले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं विइवइंसु।

इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं विइवयंति।

३३. गणिपिटक का स्वरूप–

इस द्वादशांग गणि-पिटक में–
अनन्त भावों, अनन्त अभावों,
अनन्त हेतुओं, अनन्त अहेतुओं,
अनन्त कारणों, अनन्त अकारणों,
अनन्त जीवों, अनन्त अजीवों,
अनन्त भव्यसिद्धिकों, अनन्त अभव्यसिद्धिकों,
अनन्त सिद्धों, अनन्त असिद्धों का,
कथन किया गया है यावत् निरूपण किया गया है।

३४. गणिपिटकविराधना और आराधना का फल–

इस द्वादशांग गणि-पिटक में प्ररूपित आज्ञाओं की विराधना करके अनन्त जीवों ने भूतकाल में चतुर्गतिरूप संसार अटवी में परिभ्रमण किया है।

इस द्वादशांग गणि-पिटक में प्ररूपित आज्ञाओं की विराधना करके वर्तमान काल में अनेक जीव चतुर्गतिरूप संसार अटवी में परिभ्रमण कर रहे हैं।

इस द्वादशांग गणि-पिटक में प्ररूपित आज्ञाओं की विराधना करके भविष्यकाल में अनन्त जीव चतुर्गतिरूप संसार अटवी में परिभ्रमण करेंगे।

इस द्वादशांग गणि-पिटक में प्ररूपित आज्ञाओं की आराधना करके अनन्त जीवों ने भूतकाल में चतुर्गतिरूप संसार अटवी को पार किया है।

वर्तमान काल में भी इस द्वादशांग गणि-पिटक में प्ररूपित आज्ञाओं की आराधना करके अनेक जीव चतुर्गतिरूप संसार-कान्तार को

३६. कालियसुयस्स विच्छेय वियारणा–

प. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए कइ तित्थयरा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा चउव्वीसं तित्थयरा पण्णत्ता, तं जहा–

१. उसभ जाव २४ वड्ढमाणा।

प. एएसि णं भंते ! चउवीसाए तित्थयराणं कइ जिणंतरा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तेवीसं जिणंतरा पण्णत्ता।

प. एएसु णं भंते ! तेवीसाए जिणंतरेसु कस्स कहिं कालियसुयस्स वोच्छेदे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एएसु णं तेवीसाए जिणंतरेसु पुरिमपच्छिमएसु अट्ठसु-अट्ठसु जिणंतरेसु, एत्थ णं कालियसुयस्स अवोच्छेदे पण्णत्ते,

मज्झिमएसु सत्तसु जिणंतरेसु एत्थ णं कालियसुयस्स वोच्छेदे पण्णत्ते, सव्वत्थ वि णं वोच्छिन्ने दिट्ठिवाए।

–विया. स. २०, उ. ८, सु. ८-९

३६. कालिकश्रुत के विच्छिन्न होने की विचारणा–

प्र. भन्ते ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में कितने तीर्थंकर हुए हैं ?

उ. गौतम ! चौवीस तीर्थंकर हुए हैं, यथा–

१. ऋषभ यावत् २४. वर्धमान।

प्र. भन्ते ! इन चौवीस तीर्थंकरों के जिनान्तर (तीर्थंकरों के अन्तरकाल) कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! इनके तेईस जिनान्तर कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! इन तेईस जिनान्तरों में से किसमें कितने समय तक कालिकश्रुत का विच्छेद कहा गया है ?

उ. गौतम ! इन तेईस जिनान्तरों में से पहले और पीछे के आठ-आठ जिनान्तरों में कालिकश्रुत अविच्छिन्न कहा गया है।

मध्य के सात जिनान्तरों में कालिकश्रुत विच्छिन्न कहा गया है; किन्तु दृष्टिवाद तो सभी जिनान्तरों में विच्छिन्न हुआ है।

३७. अंगबाहिरसुयं–

प. से किं तं अंगबाहिरं ?

उ. अंगबाहिरं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. आवस्सगं, २. आवस्सगवइरित्तं च।[1]

प. से किं तं आवस्सगं ?

उ. आवस्सगं छव्विहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. सामाइयं, २. चउवीसत्थओ,
३. वंदणयं, ४. पडिक्कमणं,
५. काउस्सग्गो, ६. पच्चक्खाणं।

से तं आवस्सगं।

प. से किं तं आवस्सगवइरित्तं ?

उ. आवस्सगवइरित्तं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. कालियं च, २. उक्कालियं च।[2]

–नंदी. सु. ८०-८२

३७. अंगबाह्यश्रुत–

प्र. अंगबाह्य-श्रुत कितने प्रकार का है ?

उ. अंगबाह्य-श्रुत दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आवश्यक, २. आवश्यक व्यतिरिक्त।

प्र. आवश्यक-श्रुत क्या है ?

उ. आवश्यक-श्रुत छह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सामायिक, २. चतुर्विंशतिस्तव,
३. वंदना, ४. प्रतिक्रमण,
५. कायोत्सर्ग, ६. प्रत्याख्यान।

यह आवश्यक श्रुत है।

प्र. आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत कितने प्रकार का है ?

उ. आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कालिक, २. उत्कालिक।

३८. उक्कालियसुयं–

प. से किं तं उक्कालियं ?

उ. उक्कालियं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. दसवेयालियं, २. कप्पियाकप्पियं,
३. चुल्लकप्पसुयं, ४. महाकप्पसुयं,
५. ओवाइयं, ६. रायपसेणियं,
७. जीवाभिगमो, ८. पण्णवणा,
९. महापण्णवणा, १०. पमायप्पमायं,
११. नंदी, १२. अणुओगदाराइं,
१३. देविंदत्थओ, १४. तंदुलवेयालियं,
१५. चंदाविज्झयं, १६. सूरपण्णत्ती,

३८. उत्कालिकश्रुत–

प्र. उत्कालिक श्रुत कितने प्रकार का है ?

उ. उत्कालिक श्रुत अनेक प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. दशवैकालिक, २. कल्पिकाकल्पिक,
३. क्षुल्लकल्पश्रुत, ४. महाकल्पश्रुत,
५. औपपातिक, ६. राजप्रश्नीय,
७. जीवाभिगम, ८. प्रज्ञापना,
९. महाप्रज्ञापना, १०. प्रमादाप्रमाद,
११. नन्दी, १२. अनुयोगद्वार,
१३. देवेन्द्रस्तव, १४. तन्दुलवैचारिक,
१५. चन्द्रवेध्यक, १६. सूर्यप्रज्ञप्ति

१. [illegible]

२. [illegible]

१७. पोरिसिमंडलं, १८. मंडलप्पवेसो,
१९. विज्जाचरणविणिच्छओ, २०. गणिविज्जा,
२१. झाणविभत्ती, २२. मरणविभत्ती,
२३. आयविसोही, २४. वीयरागसुयं,
२५. संलेहणासुयं, २६. विहारकप्पो,
२७. चरणविही, २८. आउरपच्चक्खाणं,
२९. महापच्चक्खाणं एवमाइ।
से तं उक्कालियं। *–नंदी. सु. ८३*

१७. पौरुषीमण्डल, १८. मण्डलप्रवेश,
१९. विद्याचरणविनिश्चय, २०. गणिविद्या,
२१. ध्यानविभक्ति, २२. मरणविभक्ति,
२३. आत्मविशुद्धि, २४. वीतरागश्रुत,
२५. संलेखणाश्रुत, २६. विहारकल्प,
२७. चरणविधि, २८. आतुरप्रत्याख्यान,
२९. महाप्रत्याख्यान इत्यादि।
यह उत्कालिक श्रुत का वर्णन है।

३९. दसवेआलिय सुत्तस्स विइय चुलिआ गाहा–

चूलियं तु पवक्खामि, सुयं केवलिभासियं।
जं सुणेत्तु सपुण्णाणं धम्मे उप्पज्जई मई॥ *–दस. चू. २ गा. १*

३९. दशवैकालिक सूत्र की द्वितीय चूलिका की गाथा–

मैं उस चूलिका को कहूँगा जो श्रुत रूप है और केवली भाषित है, जिसे सुन कर पुण्यशाली जीवों की धर्म में श्रद्धा उत्पन्न होती है।

४०. जीवाजीवाभिगमसुयस्स उक्खेवो–

इह खलु जिणमयं जिणाणुमयं जिणाणुलोमं जिणप्पणीयं जिणपरूवियं, जिणक्खायं जिणाणुचिन्नं जिणपण्णत्तं जिणदेसियं जिणपसत्थं

अणुव्वीइयं तं सद्दहमाणा तं पत्तियमाणा तं रोएमाणा थेरा भगवंतो जीवाजीवाभिगमं णाममज्झयणं पण्णवइंसु। *–जीवा पडि. १, सु. १*

४०. जीवाजीवाभिगम सूत्र का उपोद्घात–

इस जिन प्रवचन में जो जिनानुमत, जिनानुकूल, जिन प्रणीत, जिन प्ररूपित, जिन कथित, जिन आचरित, जिन प्रज्ञप्त, जिन देशित और जिन प्रशस्त है,

उसका विचार कर उस पर श्रद्धा करते हुए, प्रतीति करते हुए, रुचि करते हुए स्थविर भगवन्तों ने जीवाजीवाभिगम नाम का अध्ययन कहा है।

४१. तइया पडिवत्तिए बीइए उद्देसस्स संगहणी गाहाओ–

पुढवीं ओगाहित्ता नरगा संठाणमेव बाहल्लं।
विक्खंभपरिक्खेवे वण्णो गंधो य फासो य॥१॥

तेसिं महालयाए उवमा, देवेण होइ कायव्वा।
जीवा य पोग्गला वक्कमंति तह सासया निरया॥२॥
उववायपरीमाणं अवहारुच्चत्तमेव संघयणं।

४१. तृतीय प्रतिपत्ति के द्वितीय उद्देशक की संग्रहणी गाथाएं–

पृथ्वियों की संख्या, कितने क्षेत्र में नरकवास हैं, नारकों के संस्थान, तदनन्तर मोटाई, विष्कम्भ, परिक्षेप, (लम्बाई-चौड़ाई और परिधि) वर्ण, गन्ध, स्पर्श,

नरकों की विस्तीर्णता बताने हेतु देव की उपमा, जीव और पुद्गलों की व्युत्क्रान्ति शाश्वत-अशाश्वत प्ररूपणा,

उपपात (कहां से आकर जन्म लेते हैं) परिमाण (एक समय में

अज्झयणमिणं चित्तं सुयरयणं दिट्ठिवायणीसंदं।
जह वण्णियं भगवया अहमवि तह वण्णइस्सामि ॥२॥
–पण्ण. प. १, सु. १

दृष्टिवाद के सारभूत एवं विचित्र श्रुतरत्नरूप इस प्रज्ञापना-अध्ययन का श्री तीर्थंकर भगवान् ने जैसा वर्णन किया है उसी प्रकार मैं भी वर्णन करूंगा।

४४. पण्णवणा सुत्तस्स छत्तीसं पया–

१. पण्णवणा २ ठाणाइं ३ बहुवत्तव्वं ४ ठिई ५ विसेसा य।
६ वक्कंती ७ उस्साओ ८ सण्णा ९ जोणी य १० चरिमाइं ॥६॥
११ भासा १२ सरीर १३ परिणाम
१४ कसाए १५ इंदिए १६ पओगे य।
१७ लेसा १८ कायठिई या
१९ सम्मत्ते २० अंतकिरिया य ॥७॥
२१ ओगाहणसंठाणे २२ किरिया २३ कम्मे त्ति यावरे।
२४ कम्मस्स बंधए २५ कम्मवेदए
२६ वेदस्स बंधए २७ वेयवेयए ॥८॥
२८ आहारे २९ उवओगे
३० पासणया ३१ सण्णि ३२ संजमे चेव।
३३ ओही ३४ पवियारणा
३५ वेयणा य ३६ तत्तो समुग्घाए ॥९॥ –पण्ण. प. १, सु. २

४४. प्रज्ञापना सूत्र के छत्तीस पद–

१. प्रज्ञापना, २. स्थान, ३. बहुवक्तव्य, ४. स्थिति, ५. विशेष, ६. व्युत्क्रान्ति, ७. उच्छ्वास, ८. संज्ञा, ९. योनि, १०. चरम,

११. भाषा, १२. शरीर, १३. परिणाम, १४. कषाय, १५. इन्द्रिय, १६. प्रयोग,

१७. लेश्या, १८. कायस्थिति, १९. सम्यक्त्व, २०. अन्तक्रिया,

२१. अवगाहना-संस्थान, २२. क्रिया, २३. कर्म,

२४. कर्म का बन्धक, २५. कर्म का वेदक, २६. वेद बन्धक, २७. वेद-वेदक,

२८. आहार, २९. उपयोग, ३०. पश्यता, ३१. संज्ञी, ३२. संयम,

३३. अवधि, ३४. प्रविचारणा, ३५. वेदना, ३६. समुद्घात।
(ये छत्तीस पद प्रज्ञापना में हैं)

४५. पण्णवणासुत्ते कतिपयपएसु संगहणी गाहाओ–

१ दिसि २ गइ ३ इंदिय ४ काए ५
जोगे ६ वेदे ७ कसाय ८ लेस्सा य॥
९ सम्मत्त १० णाण ११ दंसण
१२ संजय १३ उवओगे १४ आहारे॥
१५ भासग १६ परित्त १७ पज्जत्त
१८ सुहुम १९ सण्णी २०-२१ भवऽत्थिए २२ चरिमे।
२३ जीवे य २४ खेत्त २५ बंधे
२६ पोग्गले २७ महदंडए चेव॥ –पण्ण. प. ३, सु. २१२

४५. प्रज्ञापना सूत्र में कतिपय पदों की संग्रहणी गाथायें–

१. दिक् (दिशा), २. गति, ३. इन्द्रिय, ४. काय, ५. योग, ६. वेद, ७. कषाय, ८. लेश्या,

९. सम्यक्त्व, १०. ज्ञान, ११. दर्शन, १२. संयत, १३. उपयोग, १४. आहार,

१५. भाषक, १६. परीत, १७. पर्याप्त, १८. सूक्ष्म, १९. संज्ञी, २०. भव, २१. अस्तिक, २२. चरम,

२३. जीव, २४. क्षेत्र, २५. बन्ध, २६. पुद्गल और २७. महादण्डक,

(इन २७ द्वारों के माध्यम से प्रज्ञापना सूत्र के बहुवक्तव्यता पद में जीवों के अल्पबहुत्व का वर्णन किया गया है)

१ बारस २ चउवीसाइं ३ संतरं, ४ एगसमय ५ कत्तो य।
६ उव्वट्टण परभवियाउयं ७ च अट्ठेव आगरिसा॥
–पण्ण. प. ६, सु. ५५९

१. द्वादश (बारह), २. चतुर्विंशति (चौबीस), ३. सान्तर (अन्तरसहित), ४. एकसमय, ५. कहां से?

६. उद्वर्तना, ७. परभव सम्बन्धी आयुष्य और ८. आकर्ष।

(इन आठ द्वारों के माध्यम से प्रज्ञापना सूत्र के व्युत्क्रान्ति पद में जीवों का वर्णन किया गया है)

१ संठाण २ बाहल्लं ३ पोहत्तं ४ कतिपएस ५ ओगाढे।
६ अप्पाबहु ७ पुट्ठ ८ पविट्ठ ९ विसय १० अणगार ११ आहारे॥
१२ अद्दाय १३ असी १४ य मणी १५ उडुपाणे १६ तेल्ल १७ फाणिय॥
१८ वसा य १९ कंबल २० थूणा २१ थिग्गल २२ दीवोदहि २३ २४ लोगऽलोगे॥ –पण्ण. प. १५, सु. ९७२

१. संस्थान, २. बाहल्य (स्थूलता), ३. पृथुत्व (विस्तार), ४. कति-प्रदेश (कितने प्रदेश वाली), ५. अवगाढ़, ६. अल्पबहुत्व, ७. स्पृष्ट, ८. प्रविष्ट, ९. विषय, १०. अनगार, ११. आहार,

१२. आदर्श (दर्पण), १३. असि (तलवार), १४. मणि, १५. उदपान (या दुग्धपानक), १६. तैल, १७. फाणित (गुड़राब),

१८. वसा (चर्बी), १९. कम्बल, २०. स्थूणा (स्थूण या ठूंठ), २१. थिग्गल (आकाश थिग्गल पैबन्द), २२. द्वीप और उदधि, २३. लोक और २४. अलोक

(इन चौबीस द्वारों के माध्यम से इन्द्रिय पद के प्रथम उद्देशक में इन्द्रिय सम्बन्धी प्ररूपणा की गई है।)

१ इंदियउवचय २ णिव्वत्तणा य ३ समया भवे असंखेज्जा।
४ लद्धी ५ उवओगद्धा ६ अप्पाबहुए विसेसाहिया॥
७ ओगाहणा ८ अवाए ९ ईहा १० तह वंजणोग्गहे चेव।
११ दव्विंदिया १२ भाविंदिय तीया बद्धा पुरेक्खडिया॥
—पण्ण. प. १५, उ. २ सु. १००६

१. इन्द्रियोपचय, २. (इन्द्रिय) निर्वर्तना, ३. निर्वर्तना के असंख्यात समय,
४. लब्धि, ५. उपयोगकाल, ६. अल्पबहुत्व में विशेषाधिक,
७. अवग्रह, ८. अवाय, ९. ईहा, १०. व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह,
११. अतीत बद्ध पुरस्कृत द्रव्येन्द्रिय, १२. भावेन्द्रिय (इन बारह द्वारों के माध्यम से इन्द्रिय पद के द्वितीय उद्देशक में इन्द्रिय संबंधी प्ररूपणा की गई है)।

१ परिणाम २ वण्ण ३ रस ४ गंध
५ सुद्ध ६ अप्पसत्थ ७-८ संकिलिट्ठण्हा।
९ गति १० परिणाम ११-१२ पदेसावगाह
१३ वग्गण १४-१५ ठाणाणमप्पबहुं॥
—पण्ण. प. १७, उ. ४ सु. १२१८

१. परिणाम, २. वर्ण, ३. रस, ४. गन्ध, ५. शुद्ध (अशुद्ध), ६. अप्रशस्त (प्रशस्त), ७. संक्लिष्ट (असंक्लिष्ट), ८. उष्ण (शीत),
९. गति, १०. परिणाम, ११. प्रदेश, १२. अवगाह, १३. वर्गणा, १४. स्थान और १५. अल्पबहुत्व।
(इन पन्द्रह द्वारों के माध्यम से लेश्या पद के चतुर्थ उद्देशक में लेश्या संबंधी वर्णन किया है।

१ जीव २-३ गतिंदिय ४ काए
५ जोगे ६ वेदे ७ कसाय ८ लेस्सा य।
९ सम्मत्त १० णाण ११ दंसण
१२ संजय १३ उवओग १४ आहारे॥
१५ भासग १६ परित्त १७ पज्जत्त
१८ सुहुम १९ सण्णी २०-२१ भवऽत्थि।
२२ चरिमे य एएसिं तु पदाणं कायठिई होइ णायव्वा॥
—पण्ण. प. १८, सु. १२५९

१. जीव, २. गति, ३. इन्द्रिय, ४. काय, ५. योग, ६. वेद, ७. कषाय, ८. लेश्या,
९. सम्यक्त्व, १०. ज्ञान, ११. दर्शन, १२. संयत, १३. उपयोग, १४. आहार,
१५. भाषक, १६. परीत, १७. पर्याप्त, १८. सूक्ष्म, १९. संज्ञी, २०. भवसिद्धिक, २१. अस्तिकाय
और २२. चरम (इन बावीस द्वारों के माध्यम से कायस्थिति संबंधी प्ररूपणा की गई है)

१ नेरइय अंतकिरिया २ अणंतरं ३ एगसमय ४ उव्वट्टा।
५ तित्थगर ६ चक्कि ७ बल ८ वासुदेव
९ मंडलिय १० रयणा य। —पण्ण. प. २० सु. १४०६

१. नैरयिकों की अन्तक्रिया, २. अनन्तरागत जीव की अन्तक्रिया, ३. एक समय में अन्तक्रिया, ४. उद्वर्तना (जीवों की) उत्पत्ति,
५. तीर्थंकर, ६. चक्रवर्ती, ७. बलदेव, ८. वासुदेव,
९. माण्डलिक, १०. रत्न (इन दस द्वारों का अन्त क्रिया पद में

४७. सूरियपण्णत्ति सुत्तस्स उक्खेवो–

फुड-वियड-पागडत्थं, वुच्छं पुव्व-सुय-सार-णिस्संदं।
सुहुमं गणिणोवइट्ठं जोइसगणराय-पण्णत्ति ॥३॥

नामेण "इंदभूइ" त्ति, गोयमो वंदिऊण तिविहेणं।
पुच्छइ जिणवरवसहं, जोइसरायस्स पण्णत्तिं ॥४॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं "मिहिला" णामं णयरी होत्था, वण्णओ।

तीसे णं मिहिलाए णयरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए, एत्थ णं "माणिभद्दे" णामं चेइए होत्था, वण्णओ।

तीसे णं मिहिलाए "जियसत्तू" राया परिवसइ, वण्णओ।

तस्स णं जियसत्तुस्स रण्णो "धारिणी" णामं देवी होत्था वण्णओ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं तंमि माणिभद्दे चेइए सामी समोसढे, वण्णओ।

परिसा णिग्गया, धम्मो कहिओ।

परिसा पडिगया।

राया जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेच दिसिं पडिगए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी "इंदभूई" णामं अणगारे जाव पंजलिउडे पज्जुवासमाणे एवं वयासी– –सूरिय. पा. १, सु. १-२

४७. सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र का उपोद्घात–

स्पष्ट और अस्पष्ट सूक्ष्म अर्थ-गणित को प्रगट करने के लिए पूर्व श्रुत के सार का निष्यन्द-प्रवाह रूप गणि द्वारा उपदिष्ट "ज्योतिषगणराज (चन्द्र सूर्य) प्रज्ञप्ति" को मैं कहूँगा।

इन्द्रभूति नामक गौतम गोत्रीय ने जिनवर तीर्थंकर भगवान् महावीर को त्रियोग (मन-वचन-काया) के योग से वंदना करके "ज्योतिषगणराज (चन्द्र सूर्य) प्रज्ञप्ति" के सम्बन्ध में पूछा–

उस काल और उस समय में "मिथिला" नामक नगरी थी, वर्णन करना चाहिए।

उस मिथिला नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व "ईशानकोण" दिग्विभाग में "माणिभद्र" नामक चैत्य था, वर्णन करना चाहिए।

उस मिथिला में जितशत्रु राजा रहता था, वर्णन करना चाहिए।

उस जितशत्रु राजा की "धारिणी" नाम की देवी (रानी) थी, वर्णन करना चाहिए।

उस काल और उस समय उस माणिभद्र चैत्य में भगवान् महावीर स्वामी समवसृत हुए "पधारे" वर्णन करना चाहिए।

परिषद "नगरी से" निकली "भ. महावीर ने" धर्म का स्वरूप कहा।

"धर्म श्रवण कर" परिषद् "नगरी में" लौट गई।

राजा जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

उस काल और उस समय में श्रमण भ. महावीर के बड़े शिष्य "इन्द्रभूति" नाम के अणगार ने यावत् हाथ जोड़कर पर्युपासना करते हुए इस प्रकार कहा–

४८. वीसं पाहुडाणं विसयपरूवणं–

४८. वीस प्राभृतों का विषय प्ररूपण–

१ इंदियउवचय २ णिव्वत्तणा य ३ समया भवे असंखेज्जा।
४ लद्धी ५ उवओगद्धा ६ अप्पाबहुए विसेसाहिया॥
७ ओगाहणा ८ अवाए ९ ईहा १० तह वंजणोग्गहे चेव।
११ दव्विंदिया १२ भाविंदिय तीया बद्धा पुरेक्खडिया॥

–पण्ण. प. १५, उ. २ सु. १००६

१. इन्द्रियोपचय, २. (इन्द्रिय) निर्वर्तना, ३. निर्वर्तना के असंख्यात समय,
४. लब्धि, ५. उपयोगकाल, ६. अल्पबहुत्व में विशेषाधिक,
७. अवग्रह, ८. अवाय, ९. ईहा, १०. व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह,
११. अतीत बद्ध पुरस्कृत द्रव्येन्द्रिय, १२. भावेन्द्रिय (इन बारह द्वारों के माध्यम से इन्द्रिय पद के द्वितीय उद्देशक में इन्द्रिय संबंधी प्ररूपणा की गई है)।

१ परिणाम २ वण्ण ३ रस ४ गंध
५ सुद्ध ६ अपसत्थ ७-८ संकिलिट्ठुण्हा।
९ गति १० परिणाम ११-१२ पदेसावगाह
१३ वग्गण १४-१५ ठाणाणमप्पबहुं॥

–पण्ण. प. १७, उ. ४ सु. १२१८

१. परिणाम, २. वर्ण, ३. रस, ४. गन्ध, ५. शुद्ध (अशुद्ध), ६. अप्रशस्त (प्रशस्त), ७. संक्लिष्ट (असंक्लिष्ट), ८. उष्ण (शीत),
९. गति, १०. परिणाम, ११. प्रदेश, १२. अवगाह, १३. वर्गणा, १४. स्थान और १५. अल्पबहुत्व।
(इन पन्द्रह द्वारों के माध्यम से लेश्या पद के चतुर्थ उद्देशक में लेश्या संबंधी वर्णन किया है।

१ जीव २-३ गतिंदिय ४ काए
५ जोगे ६ वेदे ७ कसाय ८ लेस्सा य।
९ सम्मत्त १० णाण ११ दंसण
१२ संजय १३ उवओग १४ आहारे॥

१. जीव, २. गति, ३. इन्द्रिय, ४. काय, ५. योग, ६. वेद, ७. कषाय, ८. लेश्या,
९. सम्यक्त्व, १०. ज्ञान, ११. दर्शन, १२. संयत, १३. उपयोग, १४. आहार,

४७. सूरियपण्णत्ति सुत्तस्स उक्खेवो–

फुड-वियड-पागडत्थं, वुच्छं पुव्व-सुय-सार-णिस्संदं।
सुहुमं गणिणोवइट्ठं जोइसगणराय-पण्णत्ति ॥३ ॥

नामेण "इंदभूइ" त्ति, गोयमो वंदिऊण तिविहेणं।
पुच्छइ जिणवरवसहं, जोइसरायस्स पण्णत्तिं ॥४ ॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं "मिहिला" णामं णयरी होत्था, वण्णओ।

तीसे णं मिहिलाए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए, एत्थ णं "माणिभद्दे" णामं चेइए होत्था, वण्णओ।

तीसे णं मिहिलाए "जियसत्तू" राया परिवसइ, वण्णओ।

तस्स णं जियसत्तुस्स रण्णो "धारिणी" णामं देवी होत्था वण्णओ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं तंमि माणिभद्दे चेइए सामी समोसढे, वण्णओ।

परिसा णिग्गया, धम्मो कहिओ।

परिसा पडिगया।

राया जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेबासी "इंदभूई" णामं अणगारे जाव पंजलिउडे पज्जुवासमाणे एवं वयासी– *–सूरिय. पा. १, सु. १-२*

४७. सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र का उपोद्घात–

स्पष्ट और अस्पष्ट सूक्ष्म अर्थ-गणित को प्रगट करने के लिए पूर्व श्रुत के सार का निष्यन्द-प्रवाह रूप गणि द्वारा उपदिष्ट "ज्योतिषगणराज (चन्द्र सूर्य) प्रज्ञप्ति" को मैं कहूँगा।

इन्द्रभूति नामक गौतम गोत्रीय ने जिनवर तीर्थंकर भगवान् महावीर को त्रियोग (मन-वचन-काया) के योग से वंदना करके "ज्योतिषगणराज (चन्द्र सूर्य) प्रज्ञप्ति" के सम्बन्ध में पूछा–

उस काल और उस समय में "मिथिला" नामक नगरी थी, वर्णन करना चाहिए।

उस मिथिला नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व "ईशानकोण" दिग्विभाग में "माणिभद्र" नामक चैत्य था, वर्णन करना चाहिए।

उस मिथिला में जितशत्रु राजा रहता था, वर्णन करना चाहिए।

उस जितशत्रु राजा की "धारिणी" नाम की देवी (रानी) थी, वर्णन करना चाहिए।

उस काल और उस समय उस माणिभद्र चैत्य में भगवान् महावीर स्वामी समवसृत हुए "पधारे" वर्णन करना चाहिए।

परिषद "नगरी से" निकली "भ. महावीर ने" धर्म का स्वरूप कहा।

"धर्म श्रवण कर" परिषद् "नगरी में" लौट गई।

राजा जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

उस काल और उस समय में श्रमण भ. महावीर के बड़े शिष्य "इन्द्रभूति" नाम के अणगार ने यावत् हाथ जोड़कर पर्युपासना करते हुए इस प्रकार कहा–

४८. वीसं पाहुडाणं विसयपरूवणं–

१. कइ मंडलाइ वच्चइ,
२. तिरिच्छा किं च गच्छइ।
३. ओभासइ केवइयं,
४. सेयाइ किं ते संठिइ ॥१ ॥
५. कहिं पडिहया लेसा,
६. कहिं ते ओयसंठिई।
७. के सूरियं वरयंति,
८. कहं ते उदयसंठिई ॥२ ॥
९. कइ कट्ठा पोरिसिच्छाया,
१०. जोगे किं ते व आहिए।
११. किं ते संवच्छरेणाई,
१२. कइ संवच्छराइ य ॥३ ॥
१३. कहं चंदमसो वुड्ढी,
१४. कया ते दोसिणा बहू।
१५. के सिग्घगई वुत्ते,
१६. कहं दोसिण लक्खणं ॥४ ॥
१७. चयणोववाय,

४८. बीस प्राभृतों का विषय प्ररूपण–

१. वर्ष भर में सूर्य कितने मण्डलों में "कितनी बार" गति करता है?
२. तिर्यक् लोक में सूर्य कितने क्षेत्र को प्रकाशित करता है?
३. चन्द्र सूर्य कितने क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं?
४. चन्द्र सूर्य के प्रकाश की मर्यादा कितनी है?
५. सूर्य की तेजोलेश्या कहां अवरुद्ध होती है?
६. सूर्य के ओज "प्रकाश" की स्थिति कैसी है?
७. सूर्य का प्रकाश किन पुद्गलों पर पड़ता है?
८. चन्द्र-सूर्य के 'उदय' "अस्त" की स्थिति कैसी है?
९. पौरुषी छाया का प्रमाण कितना है?
१०. चन्द्र के साथ योग करने वाले कौन-कौन से नक्षत्र हैं?
११. संवत्सरों का आदि काल कौनसा है?
१२. संवत्सर कितने हैं?
१३. चन्द्र के प्रकाश की हानि-वृद्धि किस प्रकार होती है?
१४. चन्द्र की चान्दनी कब घटती है और कब बढ़ती है?
१५. चन्द्रादि ग्रहों में किनकी शीघ्र गति है और किनकी मन्द गति है?
१६. चन्द्र की चान्दनी का स्वरूप क्या है?
१७. चन्द्रादि का च्यवन "देहत्याग" और उपपात (देह प्रादुर्भाव) कैसे है?

१८. उच्चत्ते,
१९. सूरिया कह आहिया।
२०. अणुभावे के व संवुत्ते, एवमेयाइं वीसई ॥५॥

–सूरिय. पा. १, सु. ३

१८. समभूतल से चन्द्रादि की ऊँचाई कितनी है?
१९. जम्बूद्वीप आदि में सूर्यादि की संख्या कितनी है?
२०. चन्द्रादि का प्रभाव कैसा है?

बीस प्राभृतों में इन विषयों का वर्णन किया गया है।

४९. पढमपाहुडगय अट्ठपाहुडपाहुडाणं विसयं पडिवत्ति संखा य परूवणं–

१. वड्ढो वड्ढी मुहूत्ताण,
२. मद्धमंडल संठिई ॥
३. के ते चिण्णं परियरइ,
४. अंतरं किं चरंति य ॥१॥
५. ओगाहइ केवइयं,
६. केवइयं य विकंपइ ॥
७. मंडलाण य संठाणे,
८. विक्खंभो-अट्ठ पाहुडा ॥२॥

४. छ,
५. प्पंच य,
६. सत्तेव य,
७. अट्ठ,
८. तिन्नि य हवंति पडिवत्ती ॥
९. पढमस्स पाहुडस्स, हवंति एयाउ पडिवत्ती ॥१॥

–सूरिय. पा. १, सु. ४-५

४९. प्रथम प्राभृतगत आठ प्राभृत प्राभृतों के विषय और प्रतिपत्ति संख्या का प्ररूपण–

१. नक्षत्र मासों के मुहूर्त्तों की हानि-वृद्धि किस प्रकार है?
२. सूर्यों की अर्द्ध मण्डल संस्थिति किस प्रकार है?
३. कौनसा सूर्य किस सूर्य के संचरित क्षेत्र में संचरण करता है?
४. एक सूर्य दूसरे सूर्य से कितने अन्तर पर गति करता है?
५. कितने द्वीप समुद्रों का अवगाहन करके सूर्य गति करता है?
६. प्रत्येक सूर्य कितने क्षेत्र को छोड़कर गति करता है?
७. सूर्यमण्डलों के संस्थान कैसे हैं?
८. सूर्यमण्डलों का विष्कम्भ कितना है?

ये प्रथम प्राभृत के अन्तर्गत आठ प्राभृत प्राभृतों के विषयों का प्ररूपण है।

४. प्रथम प्राभृत के चतुर्थ प्राभृत-प्राभृत में 'सूत्र १५ में' ६ प्रतिपत्तियां हैं।
५. प्रथम प्राभृत के पंचम प्राभृत-प्राभृत में "सूत्र १६ में" ५ प्रतिपत्तियां हैं।
६. प्रथम प्राभृत के छठे प्राभृत-प्राभृत में "सूत्र ८ में" ७ प्रतिपत्तियां है।
७. प्रथम प्राभृत के सातवें प्राभृत-प्राभृत में "सूत्र ९ में "८ प्रतिपत्तियां है।
८. प्रथम प्राभृत के आठवें प्राभृत-प्राभृत में "सूत्र २० में" ३ प्रतिपत्तियां हैं।
९. प्रथम प्राभृत के पांच प्राभृत-प्राभृत में "सूत्र १५ से २० में" ये २९ प्रतिपत्तियां हैं।

५०. विइयपाहुडस्स विसयं पडिवत्ति संखा य परूवणं–

१. पडिवत्तीओ उदए, तह अत्थमणेसु य ॥
२. भेयग्घाए कण्णकला,
३. मुहुत्ताणं गती ति य ॥

निक्खममाणे सिग्घगई,

पविसंते मंदगई इ य।

चुलसीइ सयं पुरिसाणं, तेसिं च पडिवत्तीओ ॥२॥

१. उदयंमि अट्ठ भणिया,

५०. द्वितीय प्राभृत के विषय और प्रतिपत्ति संख्या का प्ररूपण–

१. द्वितीय प्राभृत के प्रथम प्राभृत-प्राभृत में "सूर्य के उदय अस्त से सम्बन्धित प्रतिपत्तियां हैं।
२. द्वितीय प्राभृत के द्वितीय प्राभृत-प्राभृत में भेदधात और कर्ण कला का कथन है।
३. द्वितीय प्राभृत के तृतीय प्रामृत-प्रांभृत में एक मूहूर्त में होने वाली सूर्य की गति का वर्णन है।

सर्वाभ्यन्तर मण्डल से निकलते हुए सूर्य की शीघ्र गति होती है।

आभ्यन्तर मण्डलों में प्रवेश करते हुए सूर्य की मन्द गति होती है।

सूर्य के एक सौ चौरासी मण्डलों में सूर्य का पुरुष चक्षु द्वारा दर्शन और उनकी प्रतिपत्तियां हैं।

१. द्वितीय प्राभृत के प्रथम प्राभृत-प्राभृत में "सूर्योदय सूर्यास्त" से सम्बन्धित आठ प्रतिपत्तियां हैं।

२. भेयग्घाए दुवे य पडिवत्ती।

३. चत्तारि मुहुत्तगईए, हुंति तइयंमि पडिवत्ती ॥३ ॥

–सूरिय. पा. १, सु. ६

२. द्वितीय प्राभृत के द्वितीय प्राभृत-प्राभृत में भेदघात और कर्णकला से सम्बन्धित दो प्रतिपत्तियां हैं।

३. द्वितीय प्राभृत के तृतीय प्राभृत-प्राभृत में सूर्य की मुहूर्त गति से सम्बन्धित चार प्रतिपत्तियां हैं।

५१. दसमेपाहुडे बावीसं पाहुडपाहुडाणं विसय परूवणं–

१. आवलिय,
२. मुहुत्तग्गो,
३. एवं भागा य,
४. जोगस्स।
५. कुलाइं,
६. पुण्णमासी य,
७. सन्निवाए य,
८. संठिई ॥१ ॥
९. तारग्गं च,
१०. नेता य,
११. चंदमग्गत्ति-यावरे।
१२. देवता य अज्झयणे,
१३. मुहुत्ताणं नामाइ य ॥२ ॥
१४. दिवसा-राइवुत्ता य,
१५. तिहि,
१६. गोत्ता,
१७. भोयणाणि य।
१८. आइच्चचार,
१९. मासा य,
२०. पंच संवच्छराइ य ॥३ ॥
२१. जोइस्स य दाराइं,
२२. नक्खत्ता विजये वि य।

दसमे पाहुडे एए, बावीसं पाहुड-पाहुडा ॥४ ॥[1]

–सूरिय. पा. १., सु. ७

५१. दशम प्राभृत के बावीस प्राभृत-प्राभृतों के विषयों का प्ररूपण–

(दसवें प्राभृत के–)

१. प्रथम प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्रों के क्रम का कथन।
२. द्वितीय प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्रों के मुहूर्तों का कथन।
३. तृतीय प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्रों के पूर्वादि दिग्विभागों का कथन।
४. चतुर्थ प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्रों के योग प्रारम्भ आदि का कथन।
५. पंचम प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्रों के कुल आदि का कथन।
६. छठे प्राभृत-प्राभृत में पूर्णमासियों में नक्षत्रादि के योगों का कथन।
७. सातवें प्राभृत-प्राभृत में पूर्णिमा और अमावास्या में नक्षत्रों के समान योगों का कथन।
८. आठवें प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्रों की संस्थिति का कथन।
९. नौवें प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्रों के ताराओं की संख्या का कथन।
१०. दसवें प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्रों के नेताओं अहोरात्र पूर्ण करने वाले नक्षत्रों का कथन।
११. ग्यारहवें प्राभृत-प्राभृत में चन्द्रमण्डल का नक्षत्रों से सम्बन्ध का कथन।
१२. बारहवें प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्रों के अधिपति देवताओं का कथन।
१३. तेरहवें प्राभृत-प्राभृत में मुहूर्तों के नामों का कथन।
१४. चौदहवें प्राभृत-प्राभृत में दिन और रात्रि के नामों का कथन।
१५. पन्द्रहवें प्राभृत-प्राभृत में तिथियों के नामों का कथन।
१६. सोलहवें प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्रों के गोत्रों का कथन।
१७. सत्रहवें प्राभृत-प्राभृत में नक्षत्र दोष निवारक भोजनों का कथन।
१८. अठारहवें प्राभृत-प्राभृत में सूर्य और चन्द्र की गति का कथन।
१९. उन्नीसवें प्राभृत-प्राभृत में मासों के नामों का कथन।
२०. बीसवें प्राभृत-प्राभृत में संवत्सरों का कथन।
२१. इक्कीसवें प्राभृत-प्राभृत में ज्योतिष्कों के द्वारों का कथन।
२२. बावीसवें प्राभृत-प्राभृत में चन्द्र सूर्य के साथ नक्षत्रों के योगों का कथन।

दसवें प्राभृत में ये बावीस "प्राभृत-प्राभृत" हैं।

५२. सूरियपण्णत्ति सुत्तस्स उवसंहारो–

इइ एस पाहुडत्था, अभव्वजणहिययदुल्लहा इणमो।
उक्कित्तिया भगवइ, जोइसरायस्स पण्णत्ती ॥

५२. सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र का उपसंहार–

यह भगवती ज्योतिष राज प्रज्ञप्ति कही गई है, इसमें कहे गए प्राभृतों के अर्थ अयोग्य अविनयी हृदयों के लिए दुर्लभ हैं।

---

१. चंद. पा. १, सु. १-७

एस गहिया वि संता, थद्धे गारविय माणि-पडिणीए।

अवहुस्सए ण देया, तव्विवरीए भवे देया॥

सद्धा धिइ उट्ठाणुच्छह-कम्म-बल-विरिय पुरिसकारेहिं।
जो सिक्खिओऽवि संतो, अभायणे पक्खिवेज्जाहिं॥
सो पवयण-कुल-गण-संघबाहिरो णाण-विणय-परिहीणो।
अरहंत-थेर गणहरमेरं, किर होइ वोलीणो॥

तम्हा धिइ उट्ठाणुच्छाह, कम्म-बल-विरियसिक्खिअं णाणं।
धारेयव्वं णियमा ण य अविणएसु दायव्वं॥

वीरवरस्स भगवओ, जर-मरण-किलेस-दोसरहियस्स।
वंदामि विणयपणओ, सोक्खुप्पाए सया पाए॥

—सूरिय. पा. २०, सु. १०७

यदि किसी अविनयी ने प्राभृतों के अर्थ ग्रहण भी कर लिए तो वह अहंकारी घमंडी अभिमानी विरोधी हो जायगा।

अतः अबहुश्रुतों को ये प्राभृतार्थ नहीं देने चाहिए, अपितु बहुश्रुत को ही देना चाहिए।

जो श्रद्धा, धैर्य, उत्थान, उत्साह, कर्म, बल, वीर्य एवं पुरुषार्थ से सीखे हुए प्राभृतों के अर्थ अपात्र को देवेगा तो वह निर्ग्रन्थ प्रवचन कुल गण संघ से बहिष्कृत होता है ज्ञान और विनय से हीन होता है तथा अरिहंत (तीर्थंकर) गणधर एवं स्थविरों की मर्यादा को भंग करने वाला होता है।

इसलिये धैर्य, उत्थान एवं उत्साह से तथा कर्म बल वीर्य से सीखा हुआ ज्ञान निश्चय ही स्वयं को धारण करके रखना चाहिए किन्तु अविनयी जनों को नहीं देना चाहिए।

शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए जरा मरण क्लेशादि दोष से रहित भगवान महावीर के चरणों में विनयावनत होकर सदा वंदना करता हूँ।

५३. कालियसुयं—

प. से किं तं कालियं?

उ. कालियं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा—

१.	उत्तरज्झयणाइं,	२.	दसाओ,
३.	कप्पो,	४.	ववहारो,
५.	णिसीहं,	६.	महाणिसीहं,
७.	इसिभासियाइं,	८.	जंबुद्दीवपण्णत्ती,
९.	दीवसागरपण्णत्ती,	१०.	चंदपण्णत्ती,[1]
११.	खुड्डिया विमाण-पविभत्ती,	१२.	महल्लिया विमाण-पविभत्ती,
१३.	अंगचूलिया,	१४.	वग्गचूलिया,
१५.	विवाहचूलिया,	१६.	अरुणोववाए,
१७.	वरुणोववाए,	१८.	गरुलोववाए,
१९.	धरणोववाए,	२०.	वेसमणोववाए,
२१.	देविंदोववाए,	२२.	वेलंधरोववाए,
२३.	उट्ठाणसुयं,	२४.	समुट्ठाणसुयं,
२५.	नागपरियावणियाओ,	२६.	निरयावलियाओ (कप्पियाओ)
२७.	कप्पवडिंसियाओ,	२८.	पुप्फियाओ,
२९.	पुप्फचूलियाओ,	३०.	वण्हीदसाओ,

एवमाइयाइं चउरासीइं पइण्णगसहस्साइं भगवओ अरहओ सिरि उसहसामिस्स आइतित्थयरस्स,

५३. कालिकश्रुत—

प्र. कालिक श्रुत कितने प्रकार का है?

उ. कालिक श्रुत अनेक प्रकार का कहा गया है, यथा—

१.	उत्तराध्ययन,	२.	दशाश्रुतस्कन्ध,
३.	बृहत्कल्प,	४.	व्यवहार,
५.	निशीथ,	६.	महानिशीथ,
७.	ऋषिभाषित,	८.	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति,
९.	द्वीपसागर प्रज्ञप्ति,	१०.	चन्द्र प्रज्ञप्ति
११.	क्षुद्रिका विमान, प्रविभक्ति,	१२.	महल्लिकाविमान-प्रविभक्ति,
१३.	अंगचूलिका,	१४.	वर्गचूलिका,
१५.	विवाहचूलिका,	१६.	अरुणोपपात,
१७.	वरुणोपपात,	१८.	गरुडोपपात,
१९.	धरणोपपात,	२०.	वैश्रमणोपपात,
२१.	देवेन्द्रोपपात,	२२.	वेलन्धरोपपात,
२३.	उत्थानश्रुत,	२४.	समुत्थानश्रुत,
२५.	नागपरिज्ञापनिका,	२६.	निरयावलिका (कल्पिका)
२७.	कल्पावतंसिका,	२८.	पुष्पिका,
२९.	पुष्पचूलिका,	३०.	वृष्णिदशा,

इत्यादि चौरासी हजार प्रकीर्णक आदि तीर्थंकर अर्हन् भगवन्त श्री ऋषभदेव स्वामी के हैं,

अहवा जस्स जत्तिया सिस्सा उप्पत्तियाए वेणइयाए कम्मयाए पारिणामियाए चउव्विहाए बुद्धीए उववेया तस्स तत्तियाइं पइण्णगसहस्साइं,

पत्तेयबुद्धा वि तत्तिया चेव।

से तं कालियं।

से तं आवस्सयवइरित्तं।

से तं अणंगपविट्ठं। —नंदी. सु. ८४-८५

अथवा जिस तीर्थंकर के जितने शिष्य औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकी बुद्धि से युक्त हैं, उनके उतने ही हजार प्रकीर्णक होते हैं।

प्रत्येकबुद्ध भी उतने ही होते हैं।

यह कालिक श्रुत का वर्णन है।

यह आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत का वर्णन है।

यह अंग बाह्य श्रुत का वर्णन है।

५४. उत्तरज्झयणस्स अज्झयणा–

छत्तीसं उत्तरज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. विणयसुयं,	२. परीसहो,	३. चाउरंगिज्जं,	४. असंखयं,
५. अकाममरणिज्जं,	६. पुरिसविज्जा,	७. उरब्भिज्जं,	८. काविलियं,
९. नमिपव्वज्जा,	१०. दुमपत्तयं,	११. बहुसुयपूजा,	१२. हरिएसिज्जं,
१३. चित्तसंभूयं,	१४. उसुकारिज्जं,	१५. संभिक्खुयं,	१६. समाहिठाणाइं,
१७. पावसमणिज्जं,	१८. संजइज्जं,	१९. मियचारिया,	२०. अणाहपव्वज्जा,
२१. समुद्दपालिज्जं,	२२. रहनेमिज्जं,	२३. गोयमकेसिज्जं,	२४. समितीओ,
२५. जन्नइज्जं,	२६. सामायारी,	२७. खलुंकिज्जं,	२८. मोक्खमग्गगई,
२९. अप्पमाओ,	३०. तवोमग्गो,	३१. चरणविही,	३२. पमायठाणाइं,
३३. कम्मपयडी,	३४. लेस्सज्झयणं,	३५. अणगारमग्गे,	३६. जीवाजीवविभत्ती यं।

—सम., सम. ३६, सु. १

५४. उत्तराध्ययन के अध्ययन–

उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. विनयश्रुत,	२. परीषह,	३. चातुरंगीय,	४. असंस्कृत,
५. अकाममरणीय,	६. पुरुष विद्या,	७. औरभ्रीय,	८. कापिलीय,
९. नमिप्रव्रज्या,	१०. दुमपत्रक,	११. बहुश्रुतपूजा,	१२. हरिकेशीय,
१३. चित्तसंभूतीय,	१४. इषुकारीय,	१५. सभिक्षु,	१६. समाधिस्थान,
१७. पापश्रमणीय,	१८. संयतीय,	१९. मृगचारिका	२०. अनाथ प्रव्रज्या, (मृगापुत्रीय)
२१. समुद्रपालीय,	२२. रथनेमीय,	२३. गौतमकेशीय,	२४. समिति,
२५. यज्ञीय,	२६. सामाचारी,	२७. खलुंकीय,	२८. मोक्षमार्गगति,
२९. अप्रमाद,	३०. तपोमार्ग,	३१. चरणविधि,	३२. प्रमादस्थान,
३३. कर्मप्रकृति,	३४. लेश्या अध्ययन,	३५. अनगारमार्ग,	३६. जीवाजीवविभक्ति।

५५. परीसहऽज्झयणस्स उक्खेवो–

सुयं मे, आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं–

इह खलु बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा, जिच्चा, अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा।

कयरे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिखू सोच्चा, नच्चा, जिच्चा, अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा ?

इमे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा, जिच्चा, अभिभूय, भिक्खायरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा।[1] —उत्त. अ. २, सु. १-२

५५. परीषह अध्ययन का उपोद्घात–

हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है, उन भगवान ने इस प्रकार कहा है–

काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान महावीर ने बावीस परीषह कहे हैं, जिन्हें सुन कर, जान कर, अभ्यास के द्वारा परिचित कर, पराजित कर और भिक्षाचर्या के लिये पर्यटन करता हुआ भिक्षु इन परीषहों से स्पृष्ट होने पर भी विचलित नहीं होता।

वे बाईस परीषह कौन-से हैं, जो काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर ने कहे हैं, जिन्हें सुन कर, जान कर, अभ्यास के द्वारा परिचित कर, पराजित कर, भिक्षाचर्या के लिए पर्यटन करता हुआ भिक्षु उनसे स्पृष्ट होने पर भी विचलित नहीं होता ?

वे बाईस परीषह ये हैं, जो काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान महावीर ने कहे हैं। जिन्हें भिक्षु सुन कर , जान कर, अभ्यास के द्वारा परिचित कर, पराजित कर, भिक्षाचर्या के लिए पर्यटन करता हुआ भिक्षु उनसे स्पृष्ट होने पर भी विचलित नहीं होता।

१. परीषहों का वर्णन चरणानुयोग भाग २ पृ. ३६८ पर देखें।

५६. सम्मत्तपरक्कमस्स निक्खेवो—

एस खलु सम्मत्तपरक्कमस्स अज्झयणस्स अट्ठे समणेणं भगवया महावीरेणं आघविए पन्नविए परूविए दंसिए निदंसिए उवदंसिए। —उत्त. अ. २९, सु. ७४

५७. उत्तरज्झयणस्स कइपय अज्झयणाणं उक्खेव-निक्खेवो—

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।
आयारं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे॥ —उत्त. अ. ११, गा. १

एवं से उदाहु अणुत्तरनाणी, अणुत्तरदंसी अणुत्तरनाण- दंसणधरे।
अरहा नायपुत्ते भगवं वेसालिए वियाहिए। —उत्त. अ. ६ गा. १८

इह एस धम्मे अक्खाए, कविलेणं च विसुद्धपन्नेणं।
तरिहिन्ति जे उ काहिन्ति, तेहिं आराहिया दुवे लोगा॥ —उत्त. अ. ८, गा. २०

एसा अजीवविभत्ती, समासेण वियाहिया।
इत्तो जीवविभत्तिं वुच्छामि अणुपुव्वसो॥ —उत्त. अ. ३६, गा. ४७

५८. उत्तरज्झयणस्स निक्खेवो—

इइ पाउकरे बुद्धे नायए परिनिव्वुए।
छत्तीसं उत्तरज्झाए भवसिद्धियसम्मए॥ त्ति बेमि॥ —उत्त. अ. ३६, गा. २६८

५९. दसासुयक्खन्धस्स पढमा दसाया उक्खेव-निक्खेवो—

सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—

इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं वीसं असमाहिट्ठाणा पण्णत्ता।

प. कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं वीसं असमाहिट्ठाणा पण्णत्ता?

उ. इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं वीसं असमाहिट्ठाणा पण्णत्ता[1]

निक्खेवो-एए खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं वीसं असमाहिट्ठाणा पण्णत्ता,[2] त्ति बेमि। —दसा. द. १, सु. १

६०. दसा-कप्प-ववहाराणं अज्झयणा—

छव्वीसं दसा-कप्प-ववहाराणं उद्देसणकाला पण्णत्ता, तं जहा—

दस दसाणं, छ कप्पस्स, दस ववहारस्स। —सम. सम. २६, सु. १

६१. इसिभासियअज्झयणाणं संखा—

[illegible] [illegible] इसिभासियादियलोगचुया भासिया पण्णत्ता। —सम. सम. ४४, सु. १

५६. सम्यक्त्व पराक्रम अध्ययन का उपसंहार—

श्रमण भगवान् महावीर ने सम्यक्त्वपराक्रम नामक अध्ययन का यह अर्थ कहा है, प्रज्ञापित किया है, प्ररूपित किया है, दर्शित, विशेष रूप से दर्शित और उपदर्शित किया है।

५७. उत्तराध्ययन सूत्र के कुछ अध्ययनों के उत्क्षेप-निक्षेप—

जो (बाह्य और आभ्यन्तर) संयोग से सर्वथा मुक्त अनगार भिक्षु है, उसके आचार को अनुक्रम से मैं प्रकट करूंगा (उसे) मुझ से सुनो।

इस प्रकार अनुत्तरज्ञानी, अनुत्तरदर्शी, अनुत्तर ज्ञान-दर्शनधारक, अर्हत् व्याख्याता, ज्ञातपुत्र, वैशालिक (तीर्थंकर) भगवान महावीर ने अप्रमाद का उपदेश कहा है।

इस प्रकार विशुद्ध प्रज्ञा वाले कपिल ने इस धर्म का प्रतिपादन किया है। जो इस धर्म की सम्यक् आराधना करेंगे, वे संसारसागर को पार करेंगे और उनके द्वारा दोनों ही लोक आराधित होंगे।

यह संक्षेप से अजीवविभाग का निरूपण किया गया है अब यहां से आगे जीव विभाग का क्रमशः कथन करूंगा।

५८. उत्तराध्ययन सूत्र का उपसंहार—

इस प्रकार भव्य जीवों को अभीष्ट छत्तीस उत्तम अध्यायों को प्रकट करके बोधि प्राप्त ज्ञातवंशीय भगवान महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए। ऐसा मैं कहता हूँ।

५९. दशाश्रुतस्कन्ध की प्रथम दशा का उत्क्षेप-निक्षेप—

हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है—उन भगवान् महावीर स्वामी ने ऐसा कहा है—

इस आर्हत् प्रवचन में निश्चय से स्थविर भगवन्तों ने वीस असमाधिस्थान कहे हैं।

प्र. स्थविर भगवन्तों ने वे कौन से वीस असमाधिस्थान कहे हैं?

उ. स्थविर भगवन्तों ने वे वीस असमाधिस्थान इस प्रकार कहे हैं, (आगे का वर्णन चरणानुयोग में देखें)

निक्षेप—स्थविर भगवन्तों ने ये वीस असमाधिस्थान कहे हैं ऐसा मैं कहता हूँ।

६०. दशा-कल्प-व्यवहार के अध्ययन—

दशा-कल्प और व्यवहार सूत्रों के छव्वीस उद्देशनकाल (अध्ययन) कहे गए हैं, यथा—

दशाश्रुत स्कन्ध के दश, बृहत्कल्प सूत्र के छह और व्यवहार सूत्र के दश अध्ययन हैं।

६१. ऋषिभाषित अध्ययनों की संख्या—

देवलोक से च्युत-ऋषिभाषित के चवालीस अध्ययन कहे गए हैं।

---

१. [illegible]

६२. जंबूद्दीवपण्णत्तीए उवसंहारो–

तए णं समणं भगवं महावीरं मिहिलाए णयरीए माणिभद्दे चेइए बहूणं समणाणं, बहूणं समणीणं, बहूणं सावयाणं, बहूणं सावियाणं, बहूणं देवाणं, बहूणं देवीणं मज्झगए एवमाइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ जम्बूद्दीवपण्णत्ती णामत्ति अज्जो ! अज्झयणे अट्ठं च हेउं च पसिणं च कारणं च वागरणं च भुज्जो-भुज्जो उवदंसेइ, त्ति बेमि। *–जंबू. वक्ख. ७, सु. २१३*

६२. जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति का उपसंहार–

(सुधर्मा स्वामी ने अपने अन्तेवासी जम्बू को सम्बोधित कर कहा–)

हे आर्य जम्बू ! मिथिला नगरी के अन्तर्गत माणिभद्र चैत्य में बहुत से श्रमणों, बहुत-सी श्रमणियों, बहुत से श्रावकों, बहुत-सी श्राविकाओं, बहुत से देवों, बहुत-सी देवियों की परिषद् के बीच श्रमण भगवान् महावीर ने जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति नामक अध्ययन का इस प्रकार से कथन, भाषण, निरूपण और प्ररूपण किया तथा श्रोताओं के अनुग्रह के लिए अध्ययन के अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण और व्याख्या का बार-बार विवेचन किया, ऐसा मैं कहता हूँ।

६३. निरयावलिया उवंगस्स उक्खेवो–

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था, रिद्धित्थिमियसमिद्धे गुणसीलए चेइए, **वण्णओ** असोगवरपायवे पुढविसिलापट्टए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अन्तेवासी अज्जसुहम्मे नामं अणगारे जाइसंपन्ने **जाव**-पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडे, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, जेणेव रायगिहे नयरे **जाव** अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

परिसा निग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अंतेवासी जंबू णामं अणगारे समचउरंस संठाण संठिए (जाव) संखित्तविउल तेउलेस्से अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स अदूरसामंते उड्ढं जाणू **जाव** विहरइ।

तए णं से जंबू ! जायसड्ढे **(जाव)** पज्जुवासमाणे एवं वयासी–

प. उवंगाणं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं **जाव** सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं **जाव** सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं उवंगाणं पंच वग्गा पण्णत्ता, तं जहा–

१. निरयावलियाओ, २. कप्पवडिंसियाओ,
३. पुप्फियाओ, ४. पुप्फचूलियाओ,
५. वण्हिदसाओ।

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं **जाव** सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं उवंगाणं पंच वग्गा पण्णत्ता, तं जहा–

१. निरयावलियाओ **जाव** ५. वण्हिदसाओ।

पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स उवंगाणं निरयावलियाणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं **जाव** सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं उवंगाणं पढमस्स वग्गस्स निरयावलियाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

६३. निरयावलिका उपांग का उत्क्षेप–

उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था, वह ऋद्धि समृद्धि आदि से सम्पन्न था। वहां (उत्तर-पूर्व में) गुणशीलक नामक चैत्य था। वर्णन करना चाहिए। वहां उत्तम अशोक वृक्ष था और उसके नीचे एक पृथ्वीशिलापट्टक स्थित था।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अंतेवासी जाति कुल आदि से संपन्न आर्य सुधर्मा स्वामी नामक अनगार **यावत्** पांच सौ अनगारों के साथ पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए जहां राजगृह नगर था वहां पधारे **यावत्** यथाप्रतिरूप (साधुमर्यादानुरूप) अवग्रह (अनुमति) प्राप्त करके संयम एवं तपश्चर्या से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

उनके दर्शनार्थ परिषद् निकली। आर्य सुधर्मा ने धर्मोपदेश दिया और (धर्म देशना सुनकर) परिषद् वापिस लौट गई।

उस काल और उस समय में आर्य सुधर्मा अणगार के अंतेवासी समचतुरस्र संस्थान से संस्थित (**यावत्**) विपुल तेजोलेश्या से समाहित जंबू नामक अणगार आर्य सुधर्मा स्वामी के समीप ऊर्ध्व जानु अधःशिर करके **यावत्** विचरण करते थे।

तब उन जंबू अणगार को श्रद्धा उत्पन्न हुई **(यावत्)** पर्युपासना करते हुए (आर्य सुधर्मा स्वामी से) इस प्रकार पूछा–

प्र. भन्ते ! श्रमण भगवान् महावीर **यावत्** सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा उपांगसूत्र का क्या अर्थ कहा गया है ?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर **यावत्** सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा उपांगसूत्र के पांच वर्ग कहे गए हैं, यथा–

१. निरयावलिका, २. कल्पावतंसिका,
३. पुष्पिका, ४. पुष्पचूलिका,
५. वृष्णिदशा

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर **यावत्** सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा उपांग सूत्र के पांच वर्ग कहे गए हैं, यथा–

१. निरयावलिका **यावत्** ५. वृष्णिदशा।

भन्ते ! उपांग सूत्र के प्रथम वर्ग निरयावलिका के कितने अध्ययन कहे गए हैं ?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर **यावत्** सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा उपांग सूत्र के प्रथम वर्ग निरयावलिका के दस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. काले, २. सुकाले, ३. महाकाले, ४. कण्हे, ५. सुकण्हे तहा ६. महाकण्हे। ७. वीरकण्हे य बोद्धव्वे, ८. रामकण्हे तहेव य। ९. पिउसेणकण्हे नवमे, १०. दसमे महासेणकण्हे ॥१॥

१. काल, २. सुकाल, ३. महाकाल, ४. कृष्ण, ५. सुकृष्ण, ६. महाकृष्ण, ७. वीरकृष्ण, ८. रामकृष्ण, ९. पितृसेनकृष्ण, १०. महासेनकृष्ण।

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं उवंगाणं पढमस्स वग्गस्स निरयावलियाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता,

पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स निरयावलियाणं के अट्ठे पण्णत्ते?

उ. एवं खलु जंबू ! —*निर. व. १, अ. १, सु. १-५*

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा उपांग सूत्र के प्रथम वर्ग निरयावलिका के दस अध्ययन कहे गए हैं तो–

भन्ते ! निरयावलिका के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा गया है ?

उ. जम्बू ! (आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें)।

६४. विइयज्झयणस्स उक्खेवो–

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं निरयावलियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते,

दोच्चस्स णं भंते ! अज्झयणस्स निरयावलियाणं के अट्ठे पण्णत्ते?

उ. एवं खलु जंबू[१] !

एवं सेसा वि अट्ठ अज्झयणा नेयव्वा पढम सरिसा

णवरं–मायाओ सरिसणामाओ। —*निर. व. १, सु. ३५*

६४. द्वितीय अध्ययन का उपोद्घात–

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा निरयावलिका के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा गया है तो

भन्ते ! निरयावलिका के द्वितीय अध्ययन का क्या अर्थ कहा गया है?

उ. जम्बू ! (आगे का वर्णन धर्मकथानुयोग में देखें)

इसी प्रकार शेष आठ अध्ययन भी प्रथम अध्ययन के समान जानने चाहिए।

विशेष–माताओं के नाम पुत्र के नाम के समान हैं।

६५. कप्पवडिंसिया उवंगस्स उक्खेव-निक्खेवो–

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं उवंगाणं पढमस्स वग्गस्स निरयावलियाणं अयमट्ठे पण्णत्ते,

दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स कप्पवडिंसियाणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं कप्पवडिंसियाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पउमे जाव १०. नंदणे

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं कप्पवडिंसियाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता,

पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स कप्पवडिंसियाणं के अट्ठे पण्णत्ते?

उ. एवं खलु जंबू ! —*कप्प. वग्ग. २, अ. १*

६५. कल्पावतंसिका उपांग का उत्क्षेप-निक्षेप–

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा उपांग सूत्र के प्रथम निरयावलिका वर्ग का यह अर्थ कहा है तो

भन्ते ! दूसरे वर्ग कल्पावतंसिका के कितने अध्ययन कहे हैं?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा कल्पावतंसिका के दश अध्ययन कहे हैं, यथा–

१. पद्म यावत् १०. नंदन।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा कल्पावतंसिका के दस अध्ययन कहे गए हैं तो–

भन्ते ! कल्पावतंसिका के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है?

उ. जंबू ! (आगे का कथानक धर्मकथानयोग में देखें)

६६. पुप्फिया उवंगस्स उक्खेव-निक्खेवो–

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं उवंगाणं दोच्चस्स वग्गस्स कप्पवडिंसियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते,

तच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स उवंगाणं पुप्फियाणं के अट्ठे पन्नत्ते?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणाधेयं ठाणं संपत्तेणं उवंगाणं तच्चस्स वग्गस्स पुप्फियाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. चन्दे, २. सूरे, ३. सुक्के, ४. बहुपुत्तिय, ५. पुण्ण, ६. माणिभद्दे य। ७. दत्ते, ८. सिवे, ९. बले या, १० अणादिए चेव बोद्धव्वे॥

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं पुप्फियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता,

पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स पुप्फियाणं के अट्ठे पन्नते?

उ. एवं खलु जंबू[1]! –*पुप्फिया व. ३, सु. १*

निक्खेवओ–

तं एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं पुप्फियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, त्ति बेमि[2]।

–*पुप्फिया व. ३, सु. ७*

६६. पुष्पिका उपांग का उत्क्षेप निक्षेप–

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त ने उपांग सूत्र के द्वितीय वर्ग कल्पावतंसिका का यह अर्थ कहा है तो–

भन्ते ! उपांग सूत्र के तृतीय वर्ग पुष्पिका का क्या अर्थ कहा है?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा उपांग सूत्र के तृतीय वर्ग पुष्पिका के दस अध्ययन कहे हैं, यथा–

१. चन्द्र, २. सूर्य, ३. शुक्र, ४. बहुपुत्रिका, ५. पूर्णभद्र, ६. माणिभद्र, ७. दत्त, ८. शिव, ९. बल, १०. अनादृत।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा उपांग सूत्र के पुष्पिका नामक वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं तो–

भन्ते ! पुष्पिका के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है?

उ. जंबू ! (आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें)।

निक्षेप–

जम्बू ! इसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा पुष्पिका (वर्ग) के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है। ऐसा मैं कहता हूँ।

६७. पुप्फचूलिया उवंगस्स उक्खेव-निक्खेवो–

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं उवंगाणं तच्चस्स पुप्फियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते,

चउत्थस्स णं भंते ! वग्गस्स उवंगाणं पुप्फचूलियाणं के अट्ठे पन्नत्ते?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं उवंगाणं चउत्थस्स णं पुप्फचूलियाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सिरि, २. हिरि, ३. धिइ, ४. कित्तीओ, ५. बुद्धी, ६. लच्छी य होइ बोद्धव्वा। ७. इलादेवी, ८. सुरादेवी, ९. रसदेवी, १०. गंधदेवी य।

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं उवंगाणं चउत्थस्स वग्गस्स पुप्फचूलियाणं दस अज्झयणा पन्नत्ता,

पढमस्स णं भंते ! पुप्फचूलियाणं के अट्ठे पन्नत्ते?

तए णं से सुहम्मे जम्बू अणगारे एवं वयासी[3]–

उ. एवं खलु जंबू ! –*पुप्फचूलिया व. ४, सु. १-५*

६७. पुष्पचूलिका उपांग का उत्क्षेप-निक्षेप–

प्र. भन्ते यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा उपांग सूत्र के पुष्पिका नामक तृतीय वर्ग का यह अर्थ कहा है तो–

भन्ते ! उपांग सूत्र के पुष्पचूलिका नामक चतुर्थ वर्ग का क्या अर्थ कहा है?

उ. जम्बू ! श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा उपांग सूत्र के चतुर्थ पुष्पचूलिका वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं, यथा–

१. श्रीदेवी, २. ह्री देवी, ३. धृतिदेवी, ४. कीर्तिदेवी, ५. बुद्धिदेवी, ६. लक्ष्मी देवी, ७. इलादेवी, ८. सुरादेवी, ९. रसदेवी, १०. गन्धदेवी।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा उपांग सूत्र के पुष्पचूलिका नामक चतुर्थ वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं तो–

भन्ते ! पुष्पचूलिका के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है?

तब आर्य सुधर्मा ने अपने शिष्य जम्बू अणगार से इस प्रकार कहा–

उ. जंबू ! (आगे का कथानक धर्मकथानुयोग में देखें)

१. इसी प्रकार शेष अध्ययनों के उपोद्घात हैं।
२. इसी प्रकार शेष अध्ययनों के उपसंहार सूत्र जानने चाहिए।
३. इसी प्रकार शेष अध्ययनों के उपोद्घात हैं।

निक्खेवओ–

तं एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं पुप्फचूलियाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते[1]। त्ति बेमि।

–पुप्फचूलिया व. ४, सु. १०

निक्षेप–

हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा पुष्पचूलिका के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है। ऐसा में कहता हूँ।

६८. वण्हिदसा उवंगस्स उक्खेव-निक्खेवो–

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं उवंगाणं चउत्थस्स णं वग्गस्स पुप्फचूलियाणं अयमट्ठे पन्नत्ते,

पंचमस्स णं भंते ! वग्गस्स उवंगाणं वण्हिदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ. एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं उवंगाणं पंचमस्स णं वग्गस्स वण्हिदसाणं दुवालस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. निसढे, २. माअणि, ३. वह, ४. वहे, ५. पगया, ६. जुत्ती, ७. दसरहे, ८. दढरहे य। ९. महाधणु, १०. सत्तधणू ११. दसधणू नामे, १२. सयधणू य॥

प. जइ णं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं उवंगाणं पंचमस्स वग्गस्स वण्हिदसाणं दुवालस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स वण्हिदसाणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

तए णं से सुहम्मे जम्बू अणगारं एवं वयासी–

उ. एवं खलु जंबू[2] !

–वण्हिदसा. वग्ग. ५, सु. १-५

निक्खेवओ–

एवं खलु जम्बू ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्तेणं वण्हिदसाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते[3]। त्ति बेमि।

एवं सेसा वि एक्कारस अज्झयणा नेयव्वा, संगहणी-अणुसारेण अहीणमइरित्त एक्कारससु वि।

–वण्हिदसा. वग्ग. ५ सु. २०

६८. वृष्णिदशा उपांग का उत्क्षेप निक्षेप–

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा उपांग सूत्र के चतुर्थ पुष्पचूलिका वर्ग का यह अर्थ कहा है तो–

भन्ते ! उपांग सूत्र के पांचवें वृष्णिदशा नामक वर्ग का क्या अर्थ कहा है ?

उ. जम्बू ! इसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा उपांग सूत्र के पांचवें वृष्णिदशा वर्ग के बारह अध्ययन कहे हैं, यथा–

१. निषध, २. मातलि, ३. वह, ४. वहे, ५. पगया, ६. युक्ति, ७. दशरथ, ८. दृढ़रथ, ९. महाधनुः १०. सप्तधनुः, ११. दशधनुः, १२. शतधनु।

प्र. भन्ते ! यदि श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा उपांग सूत्र के वृष्णिदशा नामक पांचवें वर्ग के बारह अध्ययन कहे हैं तो–

भन्ते ! वृष्णिदशा के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ?

तब आर्य सुधर्मा ने उत्तर में जम्बू अनगार से इस प्रकार कहा–

उ. जंबू ! (आगे का वर्णन धर्मकथानुयोग में है)

निक्षेप–

हे जंबू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति नामक स्थान प्राप्त द्वारा वृष्णिदशा के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ कहा है। मैं ऐसा कहता हूँ।

इसी प्रकार संग्रहणी गाथा के अनुसार विना किसी हीनाधिकता के शेष ग्यारह अध्ययनों का अर्थ जान लेना चाहिए।

६९. निरयावलियाई उवंगाणं उवसंहारो–

उवंगाणं पंच वग्गा पण्णत्ता, तं जहा–

१. निरयावलियाओ, २. कप्पवडिंसियाओ, ३. पुप्फियाओ, ४. पुप्फचूलियाओ, ५. वण्हिदसाओ।

निरयावलिया उवंगे णं एगो सुयक्खंधो,

पंच वग्गा पंचसु दिवसेसु उद्दिस्संति,

तत्थ चउसु वग्गेसु दस-दस उद्देसगा, पंचमवग्गे बारस उद्देसगा।

–निरया. वग्ग. ५

६९. निरयावलिकादि उपांगों का उपसंहार–

उपांगों के पांच वर्ग कहे गए हैं, यथा–

१. निरयावलिका, २. कल्पावतंसिका, ३. पुष्पिका, ४. पुष्पचूलिका, ५. वृष्णिदशा

निरयावलिका उपांग में एक श्रुतस्कन्ध है।

पांच वर्ग हैं, पांच दिनों में वाचन किया जाता है।

प्रारम्भ के चार वर्गों में दस-दस उद्देशक हैं और पांचवें वर्ग में बारह उद्देशक हैं।

७०. [illegible]–

[illegible]

७०. चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि तीन प्रज्ञप्तियां कालिक–

तीन प्रज्ञप्तियां यथाकाल पढ़ी जाती हैं, यथा–

---

१. [illegible]

२. [illegible]

३. इसी प्रकार शेष अध्ययनों के उपसंहार सूत्र जानने चाहिए।

१. चंदपण्णत्ती, २. सूरपण्णत्ती, ३. दीवसागरपण्णत्ती।
–ठाणं. अ.३, उ. १, सु. १६०

१. चन्द्रप्रज्ञप्ति, २. सूर्यप्रज्ञप्ति, ३. द्वीपसागरप्रज्ञप्ति।

७१. विमाणपविभत्तीणं वग्गाणं उद्देसणकाला–

खुड्डियाए णं विमाणपविभत्तीए पढमे वग्गे सत्ततीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता। *–सम. सम. ३७, सु. ४*

खुड्डियाए णं विमाणपविभत्तीए बिइए वग्गे अट्ठतीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता। *–सम. सम. ३८, सु. ४*

खुड्डियाए णं विमाणपविभत्तीए तइए वग्गे चत्तालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता। *–सम. सम. ४०, सु. ५*

महालियाए णं विमाणपविभत्तीए पढमे वग्गे एकचत्तालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता। *–सम. सम. ४१, सु. ३*

महालियाए णं विमाणपविभत्तीए बिइए वग्गे बायालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता। *–सम. सम. ४२, सु. ८*

महालियाए णं विमाणपविभत्तीए तइए वग्गे तेयालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता। *–सम. सम. ४३, सु. ५*

महालियाए णं विमाणपविभत्तीए चउत्थे वग्गे चोयालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता। *–सम. सम. ४४, सु. ५*

महालियाए णं विमाणपविभत्तीए पंचमे वग्गे पणयालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता। *–सम. सम. ४५, सु. ८*

७१. विमानप्रविभक्ति वर्गों के उद्देशनकाल–

क्षुद्रिका विमानप्रविभक्ति (नामक कालिक श्रुत) के प्रथम वर्ग में सेंतीस उद्देशन काल कहे गए हैं।

क्षुद्रिका विमानप्रविभक्ति (नामक कालिक श्रुत) के द्वितीय वर्ग में अड़तीस उद्देशनकाल कहे गए हैं।

क्षुद्रिका विमानप्रविभक्ति के तीसरे वर्ग में चालीस उद्देशन काल कहे गए हैं।

महालिका विमानप्रविभक्ति के प्रथम वर्ग में इकतालीस उद्देशनकाल कहे गए हैं।

महालिका विमानप्रविभक्ति के दूसरे वर्ग में बयालीस उद्देशनकाल कहे गए हैं।

महालिका विमानप्रविभक्ति के तीसरे वर्ग में तेयालीस उद्देशनकाल कहे गए हैं।

महालिका विमानप्रविभक्ति के चतुर्थ वर्ग में चवालीस उद्देशनकाल कहे गए हैं।

महालिका विमानप्रविभक्ति के पांचवें वर्ग में पैंतालीस उद्देशनकाल कहे गए हैं।

७२. पइण्णगाणं संखा–

चोरासीइं पइण्णगसहस्सा पण्णत्ता। *–सम. सम. ८४ सु. १३*

७२. प्रकीर्णकों की संख्या–

चौरासी हजार प्रकीर्णक कहे गए हैं।

७३. दसदसाण-अज्झयणाणि–

दस दसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. कम्मविवागदसाओ, २. उवासगदसाओ,
३. अंतगडदसाओ, ४. अणुत्तरोववाइयदसाओ,
५. आयारदसाओ, ६. पण्हावागरणदसाओ,
७. बंधदसाओ, ८. दोगिद्धिदसाओ,
९. दीहदसाओ, १०. संखेवियदसाओ।

१. कम्मविवागदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. मियापुत्ते य, २. गोत्तासे, ३. अंडे, ४. संगडे य यावरे
५. माहणे, ६. णंदिसेणे य, ७. सोरिय त्ति, ८. उदुंबरे
९. सहसुद्दाहे आमलए, १०. कुमारे लेच्छइ इति ॥१॥

२. उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. आणंदे, २. कामदेवे अ, ३. गाहावति चूलणीपिता, ४. सुरादेवे, ५. चुल्लसतये, ६. गाहावइ कुंडकोलिए ७. सद्दालपुत्ते, ८. महासतये, ९. णंदिणीपिया, १०. सालहियापिया ॥२॥

३. अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. णमि, २. मातंगे, ३. सोमिले, ४. रामगुत्ते, ५. सुदंसणे चेव। ६. जमाली य, ७. भगाली य, ८. किंकसे, ९. चिल्लाए इ या। १०. पाले अंबडपुत्ते य, एमेए दस आहिया ॥३॥

४. अणुत्तरोववाइयदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–

७३. दस दशाओं के अध्ययन–

दस दशा अध्ययन वाले दस आगम कहे गए हैं, यथा–

१. कर्मविपाकदशा, २. उपासकदशा,
३. अन्तकृद्दशा, ४. अनुत्तरोपपातिकदशा,
५. आचारदशा, ६. प्रश्नव्याकरणदशा,
७. बंधदशा, ८. द्विगृद्धिदशा,
९. दीर्घदशा, १०. संक्षेपिकदशा।

१. कर्मविपाकदशा के दस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. मृगापुत्र, २. गोत्रास, ३. अण्ड, ४. शकट, ५. ब्राह्मण, ६. नन्दिषेण, ७. शौरिक, ८. उदुम्बर, ९. सहस्रोद्दाह आमरक, १०. कुमारलिच्छवी।

२. उपासकदशा के दस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. आनन्द, २. कामदेव, ३. गृहपति चुलिनीपिता, ४. सुरादेव, ५. चुल्लशतक, ६. गृहपति कुण्डकोलिक, ७. सद्दालपुत्र, ८. महाशतक, ९. नन्दिनीपिता, १०. सालियिकीपिता।

३. अन्तकृद्दशा के दस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. नमि, २. मातंग, ३. सोमिल, ४. रामगुप्त, ५. सुदर्शन, ६. जमाली, ७. भगाली, ८. किंकस, ९. चिल्वक, १०. पाल अम्बडपुत्र।

४. अनुत्तरोपपातिकदशा के दस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–

१. ईसिदासे य, २. धण्णे य, ३. सुणक्खत्ते य, ४. कातिए ति य। ५. संठाणे, ६. सालिभद्दे य, ७. आणंदे, ८. तेतली ई य। ९. दसन्नभद्दे, १०. अतिमुत्ते, एमेए दस आहिया ॥४॥

१. ऋषिदास, २. धन्य, ३. सुनक्षत्र, ४. कार्तिक, ५. संस्थान, ६. शालिभद्र, ७. आनन्द, ८. तेतली, ९. दशार्णभद्र, १०. अतिमुक्त।

५. आयारदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. वीसं असमाहिट्ठाणा, २. एगवीसं सबला,
३. तेत्तीसं आसायणाओ, ४. अट्ठविहा गणिसंपया,
५. दस चित्तसमाहिट्ठाणा, ६. एगारस उवासगपडिमाओ,
७. वारस भिक्खुपडिमाओ, ८. पज्जोसवणाकप्पो,
९. तीसं मोहणिज्जट्ठाणा, १०. आजाइट्ठाणं ॥५॥

५. आचारदशा के दस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–
१. बीस असमाधिस्थान, २. इक्कीस शबलदोष,
३. तेतीस आशातना, ४. अष्टविध गणिसम्पदा,
५. दस चित्त-समाधिस्थान, ६. ग्यारह उपासकप्रतिमा,
७. बारह भिक्षुप्रतिमा, ८. पर्युषणाकल्प,
९. तीस मोहनीयस्थान, १०. आयतिस्थान (निदान)

६. पण्हावागरणदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. उवमा, २. संखा,
३. इसिभासियाइं, ४. आयरियभासियाइं,
५. महावीरभासियाइं, ६. खोमगपसिणाइं,
७. कोमलपसिणाइं, ८. अद्दागपसिणाइं,
९. अंगुट्ठपसिणाइं, १०. बाहुपसिणाइं ॥६॥

६. प्रश्नव्याकरणदशा के दस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–
१. उपमा, २. संख्या,
३. ऋषिभाषित, ४. आचार्यभाषित,
५. महावीरभाषित, ६. क्षौमकप्रश्न,
७. कोमलप्रश्न, ८. आदर्शप्रश्न,
९. अंगुष्ठ प्रश्न, १०. बाहुप्रश्न।

७. बंधदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. बंधे य, २. मोक्खे य,
३. देवड्ढि, ४. दसारमंडले वि य,
५. आयरियविप्पडिवत्ती, ६. उवज्झायविप्पडिवत्ती,
७. भावणा, ८. विमुत्ती,
९. साओ, १०. कम्मे ॥७॥

७. बंधदशा के दस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–
१. बंध, २. मोक्ष,
३. देवर्द्धि, ४. दशार्मण्डल,
५. आचार्यविप्रतिपत्ति, ६. उपाध्यायविप्रतिपत्ति,
७. भावना, ८. विमुक्ति,
९. सात, १०. कर्म।

८. दोगिद्धिदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. वाते, २. विवाते,
३. उववाते, ४. सुक्खेत्ते,
५. कसिणे, ६. बायालीसं सुमिणा,
७. तीसं महासुमिणा, ८. बावत्तरिं सव्वसुमिणा,
९. हारे, १०. राम-गुत्ते य एमेए दस आहिया ॥८॥

८. द्विगृद्धिदशा के दस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–
१. वाद, २. विवाद,
३. उपपात, ४. सुक्षेत्र,
५. कृत्स्न, ६. बयालीस स्वप्न,
७. तीस महास्वप्न, ८. बहत्तर सर्वस्वप्न,
९. हार, १०. रामगुप्त।

९. दीहदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. चंदे, २. सूरे,
३. सुक्के य, ४. सिरिदेवी,
५. पभावती, ६. दीवसमुद्दोववत्ती,
७. बहुपुत्ती मंदरे इ य, ८. थेरे संभूतविजए,
९. थेरे पम्ह, १०. उस्सासनीसासे ॥९॥

९. दीर्घदशा के दस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–
१. चन्द्र, २. सूर्य,
३. शुक्र, ४. श्रीदेवी,
५. प्रभावती, ६. द्वीपसमुद्रोत्पत्ति,
७. बहुपुत्री मन्दरा, ८. स्थविर सम्भूतविजय,
९. स्थविर पक्ष्म, १०. उच्छ्वास-निःश्वास।

१०. [illegible]
१. [illegible]
२. [illegible]
३. [illegible] ४. [illegible]
५. [illegible] ६. [illegible]
७. [illegible] ८. [illegible]
९. [illegible] १०. [illegible]

१०. संक्षेपितदशा के दस अध्ययन कहे गए हैं, यथा–
१. क्षुल्लिका विमानप्रविभक्ति,
२. महती विमानप्रविभक्ति,
३. अंग चूलिका, ४. वर्गचूलिका,
५. विवाहचूलिका, ६. अरुणोपपात,
७. वरुणोपपात, ८. गरुडोपपात,
९. वेलंधरोपपात, १०. वैश्रमणोपपात।

७४. सुयस्स चउव्विहो निक्खेवो–

प. से किं तं सुयं?

उ. सुयं चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. नामसुयं, २. ठवणासुयं, ३. दव्वसुयं, ४. भावसुयं।

–अणु. सु. ३०

७५. सुयस्स नाम-ठवणा निक्खेवो–

प. से किं तं नामसुयं?

उ. नामसुयं जस्स णं जीवस्स वा, अजीवस्स वा, जीवाण वा, अजीवाण वा, तदुभयस्स वा, तदुभयाण वा "सुए" इ नामं कीरइ।

से तं नामसुयं।

प. से किं तं ठवणासुयं?

उ. ठवणासुयं जण्णं कट्ठकम्मे वा जाव वराडए वा, एगो वा, अणेगा वा, सब्भावठवणाए वा, असब्भावठवणाए वा "सुए" त्ति ठवणा ठविज्जइ।

से तं ठवणासुयं।

प. नाम-ठवणाणं को पइविसेसो?

उ. नामं आवकहियं, ठवणा इत्तरिया वा होज्जा, आवकहिया वा होज्जा। –अणु. सु. ३१-३३

७६. दव्वसुय निक्खेवो–

प. से किं तं दव्वसुयं?

उ. दव्वसुयं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. आगमओ य, २. नो आगमओ य।

प. से किं तं आगमओ दव्वसुयं?

उ. आगमओ दव्वसुयं–

जस्स णं "सुए" त्ति, पदं सिक्खियं, ठियं, जियं, मियं, परिजियं, नामसमं, घोससमं,

अहीणक्खरं, अणच्चक्खरं, अव्वाइद्धक्खरं, अक्खलियं, अमिलियं, अवच्चामेलियं,

पडिपुण्णं, पडिपुण्णघोसं, कंठोट्ठविप्पमुक्कं,

गुरुवायणोवगयं,

से णं तत्थ वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्मकहाए, नो अणुप्पेहाए।

७४. श्रुत का चार प्रकार से निक्षेप–

प्र. श्रुत क्या है?

उ. श्रुत चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. नाम श्रुत, २. स्थापना श्रुत, ३. द्रव्य श्रुत, ४. भावश्रुत

७५. श्रुत का नाम और स्थापना निक्षेप–

प्र. नामश्रुत क्या है?

उ. जिस किसी जीव या अजीव का, जीवों या अजीवों का, उभय का अथवा उभयों का "श्रुत" ऐसा नाम रख दिया जाता है, उसे नामश्रुत कहते हैं।

यह नामश्रुत का स्वरूप है।

प्र. स्थापनाश्रुत क्या है?

उ. काष्ट में यावत् कौड़ी आदि में एक या अनेक सद्भाव स्थापना से या असद्भाव स्थापना से "यह श्रुत है" ऐसी जो स्थापना, कल्पना या आरोप किया जाता है।

यह स्थापनाश्रुत का स्वरूप है।

प्र. नाम और स्थापना में क्या विशेषता (अन्तर) है?

उ. नाम यावत्कथिक होता है, जबकि स्थापना इत्वरिक और यावत्कथिक दोनों प्रकार की होती है।

७६. द्रव्यश्रुत का निक्षेप–

प्र. द्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है?

उ. द्रव्यश्रुत दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आगम द्रव्यश्रुत, २. नो आगमद्रव्यश्रुत।

प्र. भन्ते! आगमद्रव्यश्रुत क्या है?

उ. आगमद्रव्यश्रुत का स्वरूप इस प्रकार है–

जिस (साधु) ने "श्रुत" पद को सीख लिया है, (हृदय में) स्थित कर लिया है, जिसे आवृत्ति करके धारणा रूप कर लिया है, मित श्लोक, पद, वर्ण आदि के संख्याप्रमाण का भली-भांति अभ्यास कर लिया है, परिजित–आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी पूर्वक सर्वात्मना परावर्तित कर लिया है, नामसम–स्वकीय नाम की तरह अविस्मृत कर लिया है, घोषसम–उदात्तादि स्वरों के अनुरूप उच्चारण किया है,

अहीनाक्षर–अक्षर की हीनता से रहित उच्चारण किया है, अनत्याक्षर–अक्षर की अधिकता से रहित उच्चारण किया है, अव्याविद्धाक्षर–अक्षरों का व्यतिक्रम रहित उच्चारण किया है अस्खलित–बीच-बीच में कुछ अक्षरों को छोड़कर उच्चारण नहीं किया है, अमिलित–शास्त्रान्तर्वर्ती पदों को मिश्रित करके उच्चारण नहीं किया है, अव्यत्याम्रेडित–एक शास्त्र के भिन्न भिन्न स्थानगत एकार्थक सूत्रों को एकत्रित करके पाठ नहीं किया है,

प्रतिपूर्ण–अक्षरों और अर्थ की अपेक्षा शास्त्र का अन्यूनाधिक अभ्यास किया है, प्रतिपूर्णघोष–यथास्थान समुचित घोषपूर्वक शास्त्र का परावर्तन किया है, कंठोष्ठविप्रमुक्त–स्वरोत्पादक कंठादि के माध्यम से स्पष्ट उच्चारण किया है,

गुरुवचनोपगत–गुरु के पास श्रुत की वाचना ली है।

जिससे वह श्रुत की वाचना पृच्छना परावर्तना धर्मकथा से भी युक्त है किन्तु अनुप्रेक्षा–अर्थ का अनुचिन्तन करने रूप से रहित है।

प. कम्हा ?

उ. अणुवओगो दव्वमिति कट्टु।

नेगमस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं दव्वसुयं,

दोण्णि अणुवउत्ता आगमओ दोण्णि दव्वसुयाइं,

तिण्णि अणुवउत्ता आगमओ तिण्णि दव्वसुयाइं,

एवं जावइया अणुवउत्ता तावइयाइं ताइं नेगमस्स आगमओ दव्वसुयाइं।

एवमेव ववहारस्स वि।

संगहस्स एगो वा अणेगा वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा आगमओ दव्वसुयं वा दव्वसुयाणि वा, से एगे दव्वसुए।

उज्जुसुयस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एगं दव्वसुयं, पुहत्तं नेच्छइ।

तिण्हं सद्दनयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थू।

प. कम्हा ?

उ. जइ जाणइ अणुवउत्ते न भवइ, जइ अणुवउत्ते से जाणए न भवइ।

से तं आगमओ दव्वसुयं।

प. से किं तं नोआगमओ दव्वसुयं ?

उ. नोआगमओ दव्वसुयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. जाणयसरीरदव्वसुयं,

२. भवियसरीरदव्वसुयं,

३. जाणयसरीर-भवियसरीर-वइरित्तं दव्वसुयं।

प. से किं तं जाणयसरीरदव्वसुयं ?

उ. जाणयसरीरदव्वसुयं सुत्तत्थाहिगारजाणयस्स जं सरीरयं ववगय-चुय-चाविय-चत्तदेहं जीवविप्पजढं सेज्जागयं वा, संथारगयं वा, सिद्धसिलातलगयं वा।

अहो ! णं इमेणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं

प्र. ऐसा क्यों ?

उ. उपयोग से रहित होने के कारण ही आगमद्रव्य-श्रुत कहा जाता है।

नैगमनय की अपेक्षा एक अनुपयुक्त आत्मा एक आगमद्रव्य-श्रुत है,

दो अनुपयुक्त आत्माएं दो आगमद्रव्य-श्रुत हैं,

तीन अनुपयुक्त आत्माएं तीन आगमद्रव्य-श्रुत हैं।

इसी प्रकार जितनी भी अनुपयुक्त आत्माएं हैं, वे सभी उतनी ही नैगमनय की अपेक्षा आगमद्रव्य-श्रुत हैं।

इसी प्रकार (नैगमनय के सदृश ही) व्यवहारनय भी आगमद्रव्य-श्रुत के भेद स्वीकार करता है।

संग्रहनय की अपेक्षा एक अनुपयुक्त आत्मा और अनेक अनुपयुक्त आत्माएं एक द्रव्य-श्रुत और अनेक द्रव्य-श्रुत है। ये सभी एक द्रव्य-श्रुत ही हैं।

ऋजुसूत्रनय के मत से एक अनुपयुक्त आत्मा एक आगमद्रव्य-श्रुत है। वह पृथक्त्व (भिन्नता) को स्वीकार नहीं करता है।

तीनों शब्दनय–शब्द, समभिरूढ़, एवंभूत नय ज्ञायक यदि अनुपयुक्त हो तो उसे असत् मानते हैं।

प्र. ऐसा क्यों ?

उ. जो ज्ञायक है वह उपयोग शून्य नहीं होता है और जो उपयोगरहित है उसे ज्ञायक नहीं कहा जा सकता है।

यह आगम से द्रव्य-श्रुत का स्वरूप है।

प्र. नोआगमद्रव्यश्रुत क्या है ?

उ. नोआगमद्रव्यश्रुत तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुत,

२. भव्यशरीरद्रव्यश्रुत,

३. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यश्रुत।

प्र. ज्ञायकशरीर-द्रव्यश्रुत क्या है ?

उ. श्रुत अर्थाधिकार के ज्ञाता के व्यपगत, च्युत, च्यावित, त्यक्त, जीवरहित शरीर को शय्यागत, संस्तारकगत अथवा सिद्धशिलातलगत देखकर कोई कहे–

अहो ! इस शरीररूप से परिणत पुद्गलसंघात द्वारा

जे जीवे जोणी जम्मण निक्खंते इमेणं चेव सरीरसमुस्सएणं आदत्तएणं जिणोवइट्ठेणं भावेणं "सुए" इ पयं सेयकाले सिक्खिस्सइ, ण ताव सिक्खइ।

प. जहा को दिट्ठंतो?

उ. अयं महुकुंभे भविस्सइ, अयं घयकुंभे भविस्सइ।
से तं भवियसरीरदव्वसुयं।

प. से किं तं जाणयसरीर-भवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं?

उ. जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं पत्तयपोत्थयलिहियं।

अहवा सुत्तं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा–
१. अंडयं, २. बोंडयं, ३. कीडयं, ४. वालयं, ५. वक्कयं।

प. से किं तं अंडयं?

उ. अंडयं हंसगब्भादि।
से तं अंडयं।

प. से किं तं बोंडयं?

उ. बोंडयं फलिहमादि।
से तं बोंडयं।

प. से किं तं कीडयं?

उ. कीडयं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा–
१. पट्टे, २. मलए, ३. अंसुए, ४. चीणंसुए, ५. किमिरागे।
से तं कीडयं।

प. से किं तं वालयं?

उ. वालयं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा–
१. उण्णिए, २. उट्टिए, ३. मियलोमिए, ४. कुतवे, ५. किट्टिसे।
से तं वालयं।

प. से किं तं वक्कयं?

उ. वक्कयं सणमाइं।
से तं वक्कयं।
से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्तं दव्वसुयं।
से तं नो आगमओ दव्वसुयं। से तं दव्वसुयं।

–अणु. सु. ३४-४५

समय पूर्ण होने पर जो जीव योनि में से निकला और प्राप्त शरीरसंघात द्वारा भविष्य में जिनोपदिष्ट भावानुसार श्रुतपद को सीखेगा, किन्तु वर्तमान में सीख नहीं रहा है, ऐसे उस जीव का वह शरीर भव्यशरीर-द्रव्यश्रुत है।

प्र. इसका दृष्टान्त क्या है?

उ. "यह मधुघट होगा, यह घृतघट होगा ऐसा कहा जाता है।
यह भव्यशरीर-द्रव्यश्रुत है।

प्र. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त-द्रव्यश्रुत क्या है?

उ. ताड़पत्रों अथवा पत्रों के समूहरूप पुस्तक में अथवा वस्त्रखण्डों पर लिखित श्रुत ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त-द्रव्यश्रुत है।

अथवा सूत्र पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अंडज, २. बोंडज, ३. कीटज, ४. वालज, ५. बल्कज।

प्र. अंडज सूत्र किसे कहते हैं?

उ. हंसगर्भादि से बने सूत्र को अंडज कहते हैं।
यह अंडज सूत्र है।

प्र. बोंडज सूत्र किसे कहते हैं?

उ. कपास या रूई से बनाए गए सूत्र को बोंडज कहते हैं।
यह बोंडज सूत्र है।

प्र. कीटज सूत्र किसे कहते हैं?

उ. कीटज सूत्र पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. पट्ट, २. मलय, ३. अंशुक, ४. चीनांशुक, ५. कृमिराग।
यह कीटज सूत्र है।

प्र. वालज सूत्र किसे कहते हैं?

उ. वालज सूत्र पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. और्णिक, २. औष्ट्रिक, ३. मृगलोमिक, ४. कौतव, ५. किट्टिस।
यह वालज सूत्र है।

प्र. बल्कज सूत्र किसे कहते हैं?

उ. सन आदि से निर्मित सूत्र को बल्कज कहते हैं।
यह बल्कज सूत्र है।
इस प्रकार यह ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त-द्रव्यश्रुत है।
यह नो आगमद्रव्यश्रुत है। यह द्रव्यश्रुत है।

७७. भावसुय निक्खेवो–

प. से किं तं भावसुयं?

उ. भावसुयं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–
१. आगमओ य, २. नो आगमओ य।

प. से किं तं आगमओ भावसुयं?

उ. आगमओ भावसुयं जाणए उवउत्ते।
से तं आगमओ भावसुयं।

प. से किं तं नो आगमओ भावसुयं?

७७. भावश्रुत का निक्षेप–

प्र. भावश्रुत क्या है?

उ. भावश्रुत दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. आगमभावश्रुत, २. नो आगमभावश्रुत।

प्र. आगमभावश्रुत क्या है?

उ. जो श्रुत का ज्ञाता होने के साथ उसके उपयोग से भी सहित हो, वह आगम भावश्रुत है।
यह आगम भावश्रुत का स्वरूप है।

प्र. नो आगमभावश्रुत क्या है?

उ. नो आगमओ भावसुयं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–
१. लोइयं, २. लोउत्तरियं च।

प. से किं तं लोइयं भावसुयं?

उ. लोइयं भावसुयं जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठीहिं सच्छंदबुद्धि-मइविगप्पियं, तं जहा–
भारहं जाव नाडगादी,
अहवा बावत्तरिकलाओ चत्तारि य वेदा संगोवंगा।

से तं लोइयं भावसुयं।

प. से किं तं लोगोत्तरियं भावसुयं?

उ. लोगोत्तरियं भावसुयं जं इमं अरहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पन्ननाण-दंसणधरेहिं, तीत-पडुप्पन्न-मणागत जाणएहिं, सव्वन्नूहिं सव्वदरिसीहिं, तेलोक्कवहिय, महिय-पूइएहिं अप्पडिहयवरणाण-दंसणधरेहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं, तं जहा–

आयारो जाव दिट्ठिवाओ य।
से तं लोगोत्तरियं भावसुयं।
से तं नो आगमओ भावसुयं।
से तं भावसुयं। —अणु. सु. ४६-५०

उ. नो आगमभावश्रुत दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. लौकिक, २. लोकोत्तरिक।

प्र. लौकिक भावश्रुत का क्या स्वरूप है?

उ. अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा अपनी स्वच्छन्द बुद्धि और मति से रचित जो लौकिक भावश्रुत है वह इस प्रकार है, यथा–
महाभारत यावत् नाटक आदि।
अथवा बहत्तर कलाएं और सांगोपांग चार वेद ये लौकिक नो आगमभावश्रुत है।
यह लौकिक भावश्रुत का स्वरूप है।

प्र. लोकोत्तरिक भावश्रुत का क्या स्वरूप है?

उ. उत्पन्न केवलज्ञान और केवलदर्शन को धारण करने वाले, भूत-भविष्यत् और वर्तमान कालिक पदार्थों को जानने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, त्रिलोकवर्ती जीवों द्वारा अवलोकित, महित-पूजित, अप्रतिहत श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहन्त भगवन्तों द्वारा प्रणीत लोकोत्तर द्वादशांग गणिपिटक भावश्रुत है, वह इस प्रकार हैं, यथा–
आचारांग सूत्र यावत् दृष्टिवाद।
यह लोकोत्तरिक भावश्रुत का स्वरूप है।
यह नो आगम भावश्रुत का स्वरूप है।
यह भावश्रुत का वर्णन है।

७८. सुयस्स पज्जायसद्दा–
तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा नामधेज्जा भवंति, तं जहा–
सुय सुत्त गंथ सिद्धंत सासणे आण वयण उवदेसे
पण्णवण आगमे या
एगट्ठा पज्जवा सुत्ते ॥८॥
से तं सुयं। [illegible]

७८. श्रुत के पर्यायवाची शब्द–
उदात्तादि विविध स्वरों तथा ककारादि अनेक व्यंजनों से युक्त उस श्रुत के एकार्थवाचक नाम इस प्रकार हैं, यथा–
१. श्रुत, २. सूत्र, ३. ग्रन्थ, ४. सिद्धान्त, ५. शासन, ६. आज्ञा, ७. वचन, ८. उपदेश, ९. प्रज्ञापना, १०. आगम,
ये सभी श्रुत के एकार्थक (समानार्थक) पर्याय हैं।
यह श्रुत का स्वरूप है।

पज्जवसंखा जाव अणुओगदारसंखा, पाहुडसंखा, पाहुडियासंखा, पाहुड-पाहुडियासंखा, वत्थुसंखा, पुव्वसंखा।

से तं दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा। से तं परिमाणसंखा।

–अणु. सु. ४९३-४९५

पर्यवसंख्या यावत् अनुयोगद्वारसंख्या, प्राभृतसंख्या, प्राभृतिकासंख्या, प्राभृत-प्राभृतिकासंख्या, वस्तुसंख्या और पूर्वसंख्या।

यह दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसंख्या है। यह परिमाणसंख्या का कथन है।

८०. बंभीलिवीए माउक्खर संखा–

बंभीए णं लिवीए छायालीसं माउयक्खरा पण्णत्ता।

–सम. सम. ४६, सु. २

८०. ब्राह्मी लिपि के मातृकाक्षरों की संख्या–

ब्राह्मी लिपि के मातृकाक्षर छियालीस कहे गए हैं।

८१. सुयस्स पठणविही–

१. मूयं,
२. हुंकारं वा,
३. बाढंकार,
४. पडिपुच्छइ,
५. वीमंसा,
६. तत्तो पसंगपारायणं च,
७. परिणिट्ठ सत्तमए॥

१. सुत्तत्थो खलु पढमो,
२. बीओ णिज्जुत्तिमीसिओ भणिओ,
३. तइओ य णिरवसेसो एस विही होइ अणुओगे॥

से तं अंगपविट्ठं, से तं सुयणाणं, से तं परोक्खणाणं।

–नंदी. सु. १२०

८१. श्रुतज्ञान की पढ़ने की विधि–

१. शिष्य मौन रहकर सुने,
२. फिर हुंकार – "जी हाँ" ऐसा कहे।
३. उसके बाद बाढंकार अर्थात् "यह ऐसे ही है जैसा गुरुदेव फरमाते हैं" इस प्रकार श्रद्धापूर्वक माने।
४. बाद में यदि शंका हो तो पूछे कि– "यह किस प्रकार है?"
५. फिर विचार विमर्श करे।
६. तब उत्तरोत्तर गुणप्रसंग से शिष्य पारगामी हो जाता है।
७. बाद में वह चिन्तन-मनन आदि से गुरुवत् भाषण और शास्त्र की प्ररूपणा करे।

ये सात गुण शास्त्र सुनने के कहे गए हैं।

१. प्रथम वाचना में सूत्र और अर्थ कहा जाता है।
२. दूसरी वाचना में सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति का कथन किया जाता है।
३. तीसरी वाचना में नय-निक्षेप आदि से पूर्ण व्याख्या की जाती है।

इस तरह अनुयोग सूत्र देने की विधि शास्त्रकारों ने प्रतिपादित की है।

यह अंगप्रविष्ट का वर्णन है। यह श्रुत का वर्णन है। यह परोक्षज्ञान का वर्णन है।

८२. सुयस्स गाहगस्स अट्ठगुणा–

आगमसत्थग्गहणं जं बुद्धिगुणेहिं अट्ठहिं दिट्ठं।
बिंति सुयणाणलंभं, तं पुव्वविसारया धीरा ॥८४॥

१. सुस्सुसइ,
२. पडिपुच्छइ,
३. सुणेइ,
४. गिण्हइ य,
५. ईहए याऽवि तत्तो
६. अपोहए वा,

८२. आगम शास्त्र ग्राहक के आठ गुण–

बुद्धि के जिन आठ गुणों से आगम शास्त्रों का अध्ययन एवं श्रुतज्ञान का लाभ देखा गया है, उन्हें पूर्व विशारद एवं धीर आचार्य इस प्रकार कहते हैं–

वे आठ गुण ये हैं–

१. विनययुक्त शिष्य गुरु के मुखारविन्द से निकले हुए वचनों को सुनना चाहता है।
२. जब शंका होती है तब पुनः विनम्र होकर गुरु को प्रसन्न करता हुआ पूछता है।
३. गुरु के द्वारा कहे जाने पर सम्यक् प्रकार से श्रवण करता है।
४. सुनकर उसके अर्थ को ग्रहण करता है।
५. ग्रहण करने के अनंतर पूर्वापर अविरोध से पर्यालोचन करता है,
६. तत्पश्चात् "यह ऐसे ही है जैसा गुरुजी फरमाते हैं," यह मानता है,

पज्जवसंखा जाव अणुओगदारसंखा, पाहुडसंखा, पाहुडियासंखा, पाहुड-पाहुडियासंखा, वत्थुसंखा, पुव्वसंखा।

से तं दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा। से तं परिमाणसंखा।

–अणु. सु. ४९३-४९५

पर्यवसंख्या यावत् अनुयोगद्वारसंख्या, प्राभृतसंख्या, प्राभृतिकासंख्या, प्राभृत-प्राभृतिकासंख्या, वस्तुसंख्या और पूर्वसंख्या।

यह दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसंख्या है। यह परिमाणसंख्या का कथन है।

८०. बंभीलिवीए माउक्खर संखा–

बंभीए णं लिवीए छायालीसं माउयक्खरा पण्णत्ता।

–सम. सम. ४६, सु. २

८०. ब्राह्मी लिपि के मातृकाक्षरों की संख्या–

ब्राह्मी लिपि के मातृकाक्षर छियालीस कहे गए हैं।

८१. सुयस्स पठणविही–

१. मूयं,
२. हुंकारं वा,
३. बाढंकार,
४. पडिपुच्छइ,
५. वीमंसा,
६. तत्तो पसंगपारायणं च,
७. परिणिट्ठ सत्तमए॥

१. सुत्तत्थो खलु पढमो,
२. बीओ णिज्जुत्तिमीसिओ भणिओ,
३. तइओ य णिरवसेसो एस विही होइ अणुओगे॥

से तं अंगपविट्ठं, से तं सुयणाणं, से तं परोक्खणाणं।

–नंदी. सु. १२०

८१. श्रुतज्ञान की पढ़ने की विधि–

१. शिष्य मौन रहकर सुने,
२. फिर हुंकार – "जी हाँ" ऐसा कहे।
३. उसके बाद बाढंकार अर्थात् "यह ऐसे ही है जैसा गुरुदेव फरमाते हैं" इस प्रकार श्रद्धापूर्वक माने।
४. बाद में यदि शंका हो तो पूछे कि– "यह किस प्रकार है?"
५. फिर विचार विमर्श करे।
६. तब उत्तरोत्तर गुणप्रसंग से शिष्य पारगामी हो जाता है।
७. बाद में वह चिन्तन-मनन आदि से गुरुवत् भाषण और शास्त्र की प्ररूपणा करे।

ये सात गुण शास्त्र सुनने के कहे गए हैं।

१. प्रथम वाचना में सूत्र और अर्थ कहा जाता है।
२. दूसरी वाचना में सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति का कथन किया जाता है।
३. तीसरी वाचना में नय-निक्षेप आदि से पूर्ण व्याख्या की जाती है।

इस तरह अनुयोग सूत्र देने की विधि शास्त्रकारों ने प्रतिपादित की है।

यह अंगप्रविष्ट का वर्णन है। यह श्रुत का वर्णन है। यह परोक्षज्ञान का वर्णन है।

८२. सुयस्स गाहगस्स अट्ठगुणा–

आगमसत्थग्गहणं जं बुद्धिगुणेहिं अट्ठहिं दिट्ठं।
बिंति सुयणाणलंभं, तं पुव्वविसारया धीरा ॥८४॥

१. सुस्सुसइ,
२. पडिपुच्छइ,
३. सुणेइ,
४. गिण्हइ य,
५. ईहए याऽवि तत्तो

८२. आगम शास्त्र ग्राहक के आठ गुण–

बुद्धि के जिन आठ गुणों से आगम शास्त्रों का अध्ययन एवं श्रुतज्ञान का लाभ देखा गया है, उन्हें पूर्व विशारद एवं धीर आचार्य इस प्रकार कहते हैं–

वे आठ गुण ये हैं–

१. विनययुक्त शिष्य गुरु के मुखारविन्द से निकले हुए वचनों को सुनना चाहता है।
२. जब शंका होती है तब पुनः विनम्र होकर गुरु को प्रसन्न करता हुआ पूछता है।
३. गुरु के द्वारा कहे जाने पर सम्यक् प्रकार से श्रवण करता है।
४. सुनकर उसके अर्थ को ग्रहण करता है।
५. ग्रहण करने के अनंतर पूर्वापर अविरोध से पर्यालोचन करता है,

उ. नो आगमओ भावसुयं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा-
१. लोइयं, २. लोउत्तरियं च।
प. से किं तं लोइयं भावसुयं?
उ. लोइयं भावसुयं जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठीहिं सच्छंदबुद्धि-मइविगप्पियं, तं जहा-
भारहं जाव नाडगादी,
अहवा बावत्तरिकलाओ चत्तारि य वेदा संगोवंगा।
से तं लोइयं भावसुयं।
प. से किं तं लोगोत्तरियं भावसुयं?
उ. लोगोत्तरियं भावसुयं जं इमं अरहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पन्ननाण-दंसणधरेहिं, तीत-पडुप्पन्न-मणागत जाणएहिं, सव्वन्नूहिं सव्वदरिसीहिं, तेलोक्कवहिय,
महिय-पूइएहिं अप्पडिहयवरणाण-दंसणधरेहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं, तं जहा-
आयारो जाव दिट्ठिवाओ य।
से तं लोगोत्तरियं भावसुयं।
से तं नो आगमओ भावसुयं।
से तं भावसुयं। —अणु. सु. ४६-५०

सुयस्स परियायसद्दा-
तस्स णं इमं एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा नामधेज्जा भवंति, तं जहा-
सुय सुत्त गंथ सिद्धंत सासणे आण वयण उवदेसे
पण्णवण आगमेया
एगट्ठा पज्जवा सुत्ते ॥४॥
से तं सुयं। —अणु. सु. ५१

सुयपरिमाणसंखा-
प. से किं तं परिमाणसंखा?
उ. परिमाणसंखा-दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-
१. कालियसुयपरिमाणसंखा,
२. दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा य।
प. से किं तं कालियसुयपरिमाणसंखा?
उ. कालियसुयपरिमाणसंखा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा-
पज्जवसंखा, अक्खरसंखा, संघायसंखा, पदसंखा, पादसंखा, गाहासंखा, सिलोगसंखा, वेढसंखा, निज्जुत्तिसंखा, अणुओगदारसंखा, उद्देसगसंखा, अज्झयणसंखा, सुयक्खंधसंखा, अंगसंखा।
से तं कालियसुयपरिमाणसंखा।
प. से किं तं दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा?
उ. दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा-

उ. नो आगमभावश्रुत दो प्रकार का कहा गया है, यथा-
१. लौकिक, २. लोकोत्तरिक।
प्र. लौकिक भावश्रुत का क्या स्वरूप है?
उ. अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा अपनी स्वच्छन्द बुद्धि और मति से रचित जो लौकिक भावश्रुत है वह इस प्रकार है, यथा-
महाभारत यावत् नाटक आदि।
अथवा बहत्तर कलाएं और सांगोपांग चार वेद ये लौकिक नो आगमभावश्रुत है।
यह लौकिक भावश्रुत का स्वरूप है।
प्र. लोकोत्तरिक भावश्रुत का क्या स्वरूप है?
उ. उत्पन्न केवलज्ञान और केवलदर्शन को धारण करने वाले, भूत-भविष्यत् और वर्तमान कालिक पदार्थों को जानने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, त्रिलोकवर्ती जीवों द्वारा अवलोकित, महित-पूजित, अप्रतिहत श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहन्त भगवन्तों द्वारा प्रणीत लोकोत्तर द्वादशांग गणिपिटक भावश्रुत है, वह इस प्रकार हैं, यथा-
आचारांग सूत्र यावत् दृष्टिवाद।
यह लोकोत्तरिक भावश्रुत का स्वरूप है।
यह नो आगम भावश्रुत का स्वरूप है।
यह भावश्रुत का वर्णन है।

७८. श्रुत के पर्यायवाची शब्द-
उदात्तादि विविध स्वरों तथा ककारादि अनेक व्यंजनों से युक्त उस श्रुत के एकार्थवाचक नाम इस प्रकार हैं, यथा-
१. श्रुत, २. सूत्र, ३. ग्रन्थ, ४. सिद्धान्त, ५. शासन, ६. आज्ञा, ७. वचन, ८. उपदेश, ९. प्रज्ञापना, १०. आगम,
ये सभी श्रुत के एकार्थक (समानार्थक) पर्याय हैं।
यह श्रुत का स्वरूप है।

७९. श्रुतपरिमाणसंखा-
प्र. परिमाणसंख्या कितने प्रकार की है?
उ. परिमाणसंख्या दो प्रकार की कही गई है, यथा-
१. कालिकश्रुतपरिमाणसंख्या,
२. दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसंख्या।
प्र. कालिकश्रुतपरिमाणसंख्या कितने प्रकार की है?
उ. कालिकश्रुतपरिमाणसंख्या अनेक प्रकार की कही गई है, यथा-
पर्यवसंख्या, अक्षरसंख्या, संघातसंख्या, पदसंख्या, पादसंख्या, गाथासंख्या, श्लोकसंख्या, वेष्टकसंख्या, निर्युक्तिसंख्या, अनुयोगद्वारसंख्या, उद्देशकसंख्या, अध्ययनसंख्या, श्रुतस्कन्धसंख्या, अंगसंख्या।
यह कालिकश्रुतपरिमाणसंख्या है।
प्र. दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसंख्या कितने प्रकार की है?
उ. दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसंख्या अनेक प्रकार की कही गई है, यथा-

उ. नो आगमओ भावसुयं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–
१. लोइयं, २. लोउत्तरियं च।

प. से किं तं लोइयं भावसुयं?

उ. लोइयं भावसुयं जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठीहिं सच्छंदबुद्धि-मइविगप्पियं, तं जहा–
भारहं जाव नाडगादी,
अहवा बावत्तरिकलाओ चत्तारि य वेदा संगोवंगा।

से तं लोइयं भावसुयं।

प. से किं तं लोगोत्तरियं भावसुयं?

उ. लोगोत्तरियं भावसुयं जं इमं अरहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पन्ननाण-दंसणधरेहिं, तीत-पडुप्पन्न-मणागत जाणएहिं, सव्वन्नूहिं सव्वदरिसीहिं, तेलोक्कवहिय, महिय-पूइएहिं अप्पडिहयवरणाण-दंसणधरेहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं, तं जहा–

आयारो जाव दिट्ठिवाओ य।
से तं लोगोत्तरियं भावसुयं।
से तं नो आगमओ भावसुयं।
से तं भावसुयं। *–अणु. सु. ४६-५०*

उ. नो आगमभावश्रुत दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. लौकिक, २. लोकोत्तरिक।

प्र. लौकिक भावश्रुत का क्या स्वरूप है?

उ. अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा अपनी स्वच्छन्द बुद्धि और मति से रचित जो लौकिक भावश्रुत है वह इस प्रकार है, यथा–
महाभारत यावत् नाटक आदि।
अथवा बहत्तर कलाएं और सांगोपांग चार वेद ये लौकिक नो आगमभावश्रुत है।

यह लौकिक भावश्रुत का स्वरूप है।

प्र. लोकोत्तरिक भावश्रुत का क्या स्वरूप है?

उ. उत्पन्न केवलज्ञान और केवलदर्शन को धारण करने वाले, भूत-भविष्यत् और वर्तमान कालिक पदार्थों को जानने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, त्रिलोकवर्ती जीवों द्वारा अवलोकित, महित-पूजित, अप्रतिहत श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहन्त भगवन्तों द्वारा प्रणीत लोकोत्तर द्वादशांग गणिपिटक भावश्रुत है, वह इस प्रकार हैं, यथा–
आचारांग सूत्र यावत् दृष्टिवाद।
यह लोकोत्तरिक भावश्रुत का स्वरूप है।
यह नो आगम भावश्रुत का स्वरूप है।
यह भावश्रुत का वर्णन है।

७८. सुयस्स परियायसद्दा–

तस्स णं इमं एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा नामधेज्जा भवंति, तं जहा–
सुय सुत्त गंथ सिद्धंत सासणे आण वयण उवदेसे
पण्णवण आगमेया
एगट्ठा पज्जवा सुत्ते ॥४॥
से तं सुयं। *–अणु. सु. ५१*

७८. श्रुत के पर्यायवाची शब्द–

उदात्तादि विविध स्वरों तथा ककारादि अनेक व्यंजनों से युक्त उस श्रुत के एकार्थवाचक नाम इस प्रकार हैं, यथा–
१. श्रुत, २. सूत्र, ३. ग्रन्थ, ४. सिद्धान्त, ५. शासन, ६. आज्ञा, ७. वचन, ८. उपदेश, ९. प्रज्ञापना, १०. आगम,
ये सभी श्रुत के एकार्थक (समानार्थक) पर्याय हैं।
यह श्रुत का स्वरूप है।

७९. सुयपरिमाणसंखा–

प. से किं तं परिमाणसंखा?

उ. परिमाणसंखा-दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. कालियसुयपरिमाणसंखा,
२. दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा य।

प. से किं तं कालियसुयपरिमाणसंखा?

उ. कालियसुयपरिमाणसंखा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

पज्जवसंखा, अक्खरसंखा, संघायसंखा, पदसंखा, पादसंखा, गाहासंखा, सिलोगसंखा, वेढसंखा, निज्जुत्तिसंखा, अणुओगदारसंखा, उद्देसगसंखा, अज्झयणसंखा, सुयक्खंधसंखा, अंगसंखा।
से तं कालियसुयपरिमाणसंखा।

प. से किं तं दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा?

उ. दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा–

७९. श्रुतपरिमाणसंखा–

प्र. परिमाणसंख्या कितने प्रकार की है?

उ. परिमाणसंख्या दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. कालिकश्रुतपरिमाणसंख्या,
२. दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसंख्या।

प्र. कालिकश्रुतपरिमाणसंख्या कितने प्रकार की है?

उ. कालिकश्रुतपरिमाणसंख्या अनेक प्रकार की कही गई है, यथा–
पर्यवसंख्या, अक्षरसंख्या, संघातसंख्या, पदसंख्या, पादसंख्या, गाथासंख्या, श्लोकसंख्या, वेष्टकसंख्या, निर्युक्तिसंख्या, अनुयोगद्वारसंख्या, उद्देशकसंख्या, अध्ययनसंख्या, श्रुतस्कन्धसंख्या, अंगसंख्या।
यह कालिकश्रुतपरिमाणसंख्या है।

प्र. दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसंख्या कितने प्रकार की है?

उ. दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसंख्या अनेक प्रकार की कही गई है, यथा–

पज्जवसंखा जाव अणुओगदारसंखा, पाहुडसंखा, पाहुडियासंखा, पाहुड-पाहुडियासंखा, वत्थुसंखा, पुव्वसंखा।

से तं दिट्ठिवायसुयपरिमाणसंखा। से तं परिमाणसंखा।

–अणु. सु. ४९३-४९५

पर्यवसंख्या यावत् अनुयोगद्वारसंख्या, प्राभृतसंख्या, प्राभृतिकासंख्या, प्राभृत-प्राभृतिकासंख्या, वस्तुसंख्या और पूर्वसंख्या।

यह दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसंख्या है। यह परिमाणसंख्या का कथन है।

८०. बंभीलिवीए माउक्खर संखा–

बंभीए णं लिवीए छायालीसं माउयक्खरा पण्णत्ता।

–सम. सम. ४६, सु. २

८०. ब्राह्मी लिपि के मातृकाक्षरों की संख्या–

ब्राह्मी लिपि के मातृकाक्षर छियालीस कहे गए हैं।

८१. सुयस्स पठणविही–

१. मूयं,
२. हुंकारं वा,
३. बाढंकार,
४. पडिपुच्छइ,
५. वीमंसा,
६. तत्तो पसंगपारायणं च,
७. परिणिट्ठ सत्तमए॥

१. सुत्तत्थो खलु पढमो,
२. बीओ णिज्जुत्तिमीसिओ भणिओ,
३. तइओ य णिरवसेसो एस विही होइ अणुओगे॥

से तं अंगपविट्ठं, से तं सुयणाणं, से तं परोक्खणाणं।

–नंदी. सु. १२०

८१. श्रुतज्ञान की पढ़ने की विधि–

१. शिष्य मौन रहकर सुने,
२. फिर हुंकार – "जी हाँ" ऐसा कहे।
३. उसके बाद बाढंकार अर्थात् "यह ऐसे ही है जैसा गुरुदेव फरमाते हैं" इस प्रकार श्रद्धापूर्वक माने।
४. बाद में यदि शंका हो तो पूछे कि– "यह किस प्रकार है?"
५. फिर विचार विमर्श करे।
६. तब उत्तरोत्तर गुणप्रसंग से शिष्य पारगामी हो जाता है।
७. बाद में वह चिन्तन-मनन आदि से गुरुवत् भाषण और शास्त्र की प्ररूपणा करे।

ये सात गुण शास्त्र सुनने के कहे गए हैं।

१. प्रथम वाचना में सूत्र और अर्थ कहा जाता है।
२. दूसरी वाचना में सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति का कथन किया जाता है।
३. तीसरी वाचना में नय-निक्षेप आदि से पूर्ण व्याख्या की जाती है।

इस तरह अनुयोग सूत्र देने की विधि शास्त्रकारों ने प्रतिपादित की है।

यह अंगप्रविष्ट का वर्णन है। यह श्रुत का वर्णन है। यह परोक्षज्ञान का वर्णन है।

८२. सुयस्स गाहगस्स अट्ठगुणा–

आगमसत्थग्गहणं जं बुद्धिगुणेहिं अट्ठहिं दिट्ठं।
बिंति सुयणाणलंभं, तं पुव्वविसारया धीरा ॥८४॥

१. सुस्सुसइ,
२. पडिपुच्छइ,
३. सुणेइ,
४. गिण्हइ य,
५. ईहए याऽवि तत्तो
६. अपोहए वा,

८२. आगम शास्त्र ग्राहक के आठ गुण–

बुद्धि के जिन आठ गुणों से आगम शास्त्रों का अध्ययन एवं श्रुतज्ञान का लाभ देखा गया है, उन्हें पूर्व विशारद एवं धीर आचार्य इस प्रकार कहते हैं–

वे आठ गुण ये हैं–

१. विनययुक्त शिष्य गुरु के मुखारविन्द से निकले हुए वचनों को सुनना चाहता है।
२. जब शंका होती है तब पुनः विनम्र होकर गुरु को प्रसन्न करता हुआ पूछता है।
३. गुरु के द्वारा कहे जाने पर सम्यक् प्रकार से श्रवण करता है।
४. सुनकर उसके अर्थ को ग्रहण करता है।
५. ग्रहण करने के अनंतर पूर्वापर अविरोध से पर्यालोचन करता है,
६. तत्पश्चात् "यह ऐसे ही है जैसा गुरुजी फरमाते हैं," यह मानता है,

७. धारेइ,

८. करेइ वा सम्मं ॥८५॥ —नंदी. सु. १२०

७. इसके बाद निश्चित अर्थ को हृदय में सम्यक् रूप से धारण करता है।

८. फिर जैसा गुरु ने प्रतिपादन किया उसके अनुसार आचरण करता है।

८३. पावसुयस्स णामाणि—

अदुत्तरं च णं पुरिसविजय विभंगमाइक्खिस्सामि।

इह खलु णाणापण्णाणं, णाणाछंदाणं, णाणासीलाणं, णाणादिट्ठीणं, णाणारुईणं णाणारंभाणं, णाणाज्झवसाणसंजुत्ताणं णाणाविहपावसुयज्झयणं एवं भवइ, तं जहा—

१. भोमं,
२. उप्पायं,
३. सुविणं,
४. अंतलिक्खं,
५. अंगं,
६. सरं,
७. लक्खणं,
८. वंजणं,
९. इत्थिलक्खणं,
१०. पुरिसलक्खणं,
११. हयलक्खणं,
१२. गयलक्खणं,
१३. गोणलक्खणं,
१४. मेंढलक्खणं,
१५. कुक्कुडलक्खणं,
१६. तित्तिरलक्खणं,
१७. वट्टगलक्खणं,
१८. लावगलक्खणं,
१९. चक्कलक्खणं,
२०. छत्तलक्खणं,
२१. चम्मलक्खणं,
२२. दंडलक्खणं,
२३. असिलक्खणं,
२४. मणिलक्खणं,
२५. कागणिलक्खणं,
२६. सुभगाकरं,
२७. दुब्भगाकरं,
२८. गब्भाकरं,
२९. मोहणकरं,
३०. आहव्वणिं,
३१. पागसासणिं,

८३. पाप श्रुत के नाम—

इसके पश्चात् पुरुषविजय अथवा पुरुषविचय के विभंग का प्रतिपादन करूंगा।

इस मनुष्य क्षेत्र में नाना प्रकार की प्रज्ञाओं, नाना प्रकार के अभिप्रायों, नाना प्रकार के शीलों, नाना प्रकार की दृष्टियों, नाना प्रकार की रुचियों, नाना प्रकार के आरम्भ तथा नाना प्रकार के अध्यवसायों से युक्त मनुष्यों के द्वारा अनेक प्रकार के पाप श्रुतों का अध्ययन किया जाता है, यथा—

१. भोम – भूगर्भ-शास्त्र,
२. उत्पात – उल्कापात आदि प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या करने वाला शास्त्र,
३. स्वप्न – स्वप्नशास्त्र,
४. अन्तरिक्ष – ज्योतिषशास्त्र,
५. अंग – अंगविद्या;
६. स्वर – स्वर-शास्त्र,
७. लक्षण – सामुद्रिकशास्त्र, हस्तरेखा-विज्ञान,
८. व्यंजन – तिल आदि चिन्हों के आधार पर शुभ-अशुभ बताने वाला शास्त्र,
९. स्त्रीलक्षण – स्त्रीलक्षण शास्त्र,
१०. पुरुषलक्षण – पुरुषलक्षण शास्त्र,
११. हयलक्षण – अश्वलक्षण शास्त्र,
१२. गजलक्षण – हस्तिलक्षण शास्त्र,
१३. गौलक्षण – बैललक्षण शास्त्र,
१४. मेषलक्षण – मेषलक्षण शास्त्र,
१५. कुक्कुटलक्षण – कुक्कुटलक्षण शास्त्र,
१६. तीतरलक्षण – तीतरलक्षण शास्त्र,
१७. वर्तकलक्षण – बटेरलक्षण शास्त्र,
१८. लावकलक्षण – लावालक्षण शास्त्र,
१९. चक्रलक्षण – चक्रवर्ती के चक्र रत्न का लक्षण शास्त्र,
२०. छत्रलक्षण – चक्रवर्ती के छत्र रत्न का लक्षण शास्त्र,
२१. चर्मलक्षण – चक्रवर्ती के चर्म रत्न का लक्षण शास्त्र,
२२. दंडलक्षण – चक्रवर्ती के दंड रत्न का लक्षण शास्त्र,
२३. असिलक्षण – चक्रवर्ती के असि रत्न का लक्षण शास्त्र,
२४. मणिलक्षण – चक्रवर्ती के मणि रत्न का लक्षण शास्त्र,
२५. काकिणीलक्षण – चक्रवर्ती के काकिणी का लक्षण शास्त्र,
२६. सुभगाकर – दुर्भाग्य को सुभाग्य करने वाली विद्या,
२७. दुर्भगाकर – सुभाग्य को दुर्भाग्य करने वाली विद्या,
२८. गर्भकर – गर्भाधान की विद्या,
२९. मोहनकर – वशीकरण विद्या,
३०. आथर्वणी – अथर्ववेद के मन्त्र,
३१. पाकशासनी – इन्द्रजाल विद्या,

३२. दव्वहोमं,	३२. द्रव्यहोम	–	उच्चाटन आदि के लिए की जाने वाली हवनक्रिया,
३३. खत्तियविज्जं,	३३. क्षत्रियविद्या	–	धनुर्वेद,
३४. चंदचरियं,	३४. चन्द्रचरित्र	–	चन्द्र सम्बन्धी ज्योतिष शास्त्र,
३५. सूरचरियं,	३५. सूर्यचरित्र	–	सूर्य सम्बन्धी ज्योतिष शास्त्र,
३६. सुक्कचरियं,	३६. शुक्रचरित्र	–	शुक्र सम्बन्धी ज्योतिष शास्त्र,
३७. बहस्सइचरियं,	३७. बृहस्पतिचरित्र	–	बृहस्पति सम्बन्धी ज्योतिष शास्त्र,
३८. उक्कापायं,	३८. उल्कापात	–	उल्कापात सम्बन्धी शास्त्र,
३९. दिसादाहं,	३९. दिग्दाह	–	दिशादाह सम्बन्धी शास्त्र,
४०. मियचक्कं,	४०. मृगचक्र	–	पशुओं के दर्शन या शब्द-श्रवण के आधार पर शुभ-अशुभ बताने वाला शास्त्र,
४१. वायसपरिमंडलं,	४१. वायसपरिमंडल	–	कौए आदि पक्षियों की अवस्थिति और शब्द के आधार पर शुभ-अशुभ बताने वाला शास्त्र,
४२. पंसुवुट्ठिं,	४२. पांसुवृष्टि	–	धूल की वृष्टि के आधार पर शुभ-अशुभ बताने वाला शास्त्र,
४३. केसवुट्ठिं,	४३. केशवृष्टि	–	केश की वृष्टि के आधार पर शुभ-अशुभ बताने वाला शास्त्र,
४४. मंसवुट्ठिं,	४४. मांसवृष्टि	–	मांस की वृष्टि के आधार पर शुभ-अशुभ बताने वाला शास्त्र,
४५. रुहिरवुट्ठिं,	४५. रुधिरवृष्टि	–	रक्त की वृष्टि के आधार पर शुभ-अशुभ बताने वाला शास्त्र,
४६. वेयालिं,	४६. वैताली	–	इच्छित देश-काल में दंडे को ऊंचा उठाने वाली विद्या,
४७. अद्धवेयालिं,	४७. अर्धवैताली	–	वैताली की प्रतिपक्षी विद्या जिससे दंडा नीचे आ गिरता है,
४८. ओसोवणिं,	४८. अवस्वापिनी	–	निद्रा दिलाने वाली विद्या,
४९. तालुग्घाडणिं,	४९. तालोद्घाटिनी	–	ताले को खोलने वाली विद्या,
५०. सोवागिं,	५०. श्वपाकी	–	मातंगी विद्या,
५१. सावरिं,	५१. शावरी	–	शवर भाषा में निबद्ध विद्या,
५२. दामिलिं,	५२. द्राविडी	–	तमिल भाषा में निबद्ध विद्या,
५३. कालिंगी,	५३. कालिंगी	–	कलिंग देश की भाषा में निबद्ध विद्या,
५४. गोरिं,	५४. गौरी	–	एक मातंग विद्या,
५५. गंधारिं,	५५. गान्धारी	–	एक मातंग विद्या,
५६. ओवतणिं,	५६. अवपतनी	–	नीचे गिराने वाली विद्या,
५७. उप्पतणिं,	५७. उत्पतनी	–	ऊंचा उठाने वाली विद्या,
५८. जंभणिं,	५८. जृम्भणी	–	उबासी लाने वाली विद्या,
५९. थंभणिं,	५९. स्तम्भनी	–	स्तंभित करने वाली विद्या,
६०. लेसणिं,	६०. श्लेषणी	–	पांव आदि को चिपकाने वाली विद्या,
६१. आमयकरणिं,	६१. आमयकरणी	–	रोग पैदा करने वाली विद्या,
६२. विसल्लकरणिं,	६२. विशल्यकरणी	–	निरोग करने वाली विद्या,
६३. पक्कमणिं,	६३. प्रक्रामणी	–	भूत दूर करने वाली विद्या,
६४. अंतद्धाणिं,	६४. अन्तर्धानी	–	अदृश्य करने वाली विद्या,
६५. आयमणिं।	६५. आयामनी	–	छोटे को बड़ी दिखाने वाली विद्या।

एवमाइआओ विज्जाओ,
अन्नस्स हेउं पउंजंति, पाणस्स हेउं पउंजंति,
वत्थस्स हेउं पउंजंति, लेणस्स हेउं पउंजंति, सयणस्स हेउं पउंजंति, अन्नेसिं वा विरूवरूवाणं कामभोगाणं हेउं पउंजंति,
तिरिच्छं तेगविज्जं सेवेंति।
ते अणारिया विप्पडिवन्ना कालमासे कालं किच्चा अन्नयराइं आसुरियाइं किब्बिसियाइं ठाणाइं उववत्तारो भवंति।
तओऽवि विप्पमुच्चमाणा भुज्जो एलमूयताए तमअंधयाए पच्चायंति। —सूय. सु. २, अ. २, सु. ७०८

इत्यादि अनेक विद्याओं का प्रयोग
वे भोजन और पेयपदार्थों के लिए,
वस्त्र के लिए, आवास-स्थान के लिए, शय्या की प्राप्ति के लिए तथा अन्य नाना प्रकार के काम-भोगों की प्राप्ति के लिए करते हैं।
वे इन प्रतिकूल वक्र विद्याओं का सेवन करते हैं।
वस्तुतः वे भ्रम में पड़े हुए अनार्य ही हैं। वे मृत्यु का समय आने पर मरकर आसुरिक किल्विषिक स्थान में उत्पन्न होते हैं।
वहां से आयु पूर्ण होते ही देह छूटने पर वे पुनः पुनः ऐसी योनियों में जाते हैं वहां वे बकरे की तरह मूक या जन्म से अन्धे अथवा या जन्म से ही गूंगे होते हैं।

८४. पावसुयपरूवणं–

नवविहे पावसुयपसंगे पण्णत्ते, तं जहा–
१. उप्पाए, २. निमित्ते, ३. मंते, ४. आइक्खिए, ५. तिगिच्छिए। ६. कला, ७. आवरणे, ८. ऽन्नाणे, ९. मिच्छापवयणेतिय॥१॥ —ठाणं. अ. ९, सु. ६७८

एगूणतीसइविहे पावसुयपसंगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. भोमे, २. उप्पाए,
३. सुमिणे, ४. अंतरिक्खे,
५. अंगे, ६. सरे,
७. वंजणे, ८. लक्खणे।

भोमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सुत्ते, २. वित्ती, ३. वत्तिए।
एवं एक्केकं तिविहं। १-२४।

२५. विकहाणुजोगे, २६. विज्जाणुजोगे, २७. मंताणुजोगे २८. जोगाणुजोगे, २९. अण्णतित्थियपवत्ताणुजोगे[1]। —सम., सम. २९, सु. १

८४. पाप श्रुतों का प्ररूपण–

पापश्रुत नौ प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. उत्पात, २. निमित्त, ३. मंत्र, ४. आख्यायिका, ५. चिकित्सा, ६. कला, ७. आवरण, ८. अज्ञान, ९. मिथ्याप्रवचन।

पापश्रुत (पापों के उपार्जन करने वाले शास्त्रों) का श्रवण-सेवन का निमित्त उनतीस प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. भौम २. उत्पात
३. स्वप्न ४. अन्तरिक्ष
५. अंग ६. स्वर
७. व्यंजन ८. लक्षण।

पहला भेद भौमश्रुत तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. सूत्र, २. वृत्ति, ३. वार्तिक।
इसी प्रकार शेष आठों के तीन-तीन भेद करने से चौवीस भेद हो जाते हैं तथा–
२५. विकथानुयोग, २६. विद्यानुयोग, २७. मंत्रानुयोग, २८. योगानुयोग, २९. अन्यतीर्थिकप्रवृत्तानुयोग।
(ये उनतीस प्रकार पापश्रुत सेवन के निमित हैं)

८५. सुविणदंसण परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! सुविणदंसणे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! पंचविहे सुविणदंसणे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अहातच्चे,
२. पयाणे,
३. चिंतासुविणे,
४. तव्विवरीए,
५. अव्वत्तदंसणे।
प. सुत्ते णं भंते ! सुविणं पासइ, जागरे सुविणं पासइ, सुत्तजागरे सुविणं पासइ ?
उ. गोयमा ! नो सुत्ते सुविणं पासइ,
नो जागरे सुविणं पासइ,
सुत्तजागरे सुविणं पासइ। —विया. स. १६, उ. ६, सु. १-२

८५. स्वप्न दर्शन का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! स्वप्न दर्शन कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! स्वप्न दर्शन पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. यथातथ्य (यथार्थ) स्वप्न दर्शन,
२. प्रतान (विस्तृत) स्वप्न दर्शन,
३. चिन्ता (चिन्तन अनुसार) स्वप्न दर्शन,
४. तद्विपरीत स्वप्न दर्शन,
५. अव्यक्त (अस्पष्ट) स्वप्न दर्शन।
प्र. भन्ते ! सोता हुआ प्राणी स्वप्न देखता है, जागता हुआ प्राणी स्वप्न देखता है या सुप्तजागृत प्राणी स्वप्न देखता है ?
उ. गौतम ! सोता हुआ प्राणी स्वप्न नहीं देखता है,
जागता हुआ प्राणी स्वप्न नहीं देखता है,
किन्तु सुप्त-जागृत प्राणी स्वप्न देखता है।

१. [illegible]

१. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं हयपंति वा, गयपंति वा, नरपंति वा, किन्नरपंति वा, किंपुरिसपंति वा, महोरगपंति वा, गंधव्वपंति वा, वसभपंति वा पासमाणे पासइ दुरूहमाणे दुरूहइ दुरूढमिति अप्पाणं मन्नइ, तक्खणामेव बुज्झइ तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

२. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं दामिणिं पाईणपडिणायतं दुहओ समुद्दे पुट्ठं पासमाणे पासइ संवेल्लेमाणे संवेल्लइ, संवेल्लियमिति अप्पाणं मन्नइ तक्खणामेव बुज्झइ तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

३. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं रज्जुं पाईणपडिणायतं दुहओ लोगंते पुट्ठं पासमाणे पासइ, छिंदमाणे छिंदइ, छिन्नमिति अप्पाणं मन्नइ, तक्खणामेव बुज्झइ, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

४. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं किण्हसुत्तगं वा, नीलसुत्तगं वा, लोहियसुत्तगं वा, हालिद्दसुत्तगं वा, सुक्किलसुत्तगं वा पासमाणे पासइ, उग्गोवेमाणे उग्गोवेइ, उग्गोवितमिति अप्पाणं मन्नइ, तक्खणामेव बुज्झइ, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

५. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं अयरासिं वा तंबरासिं वा तउयरासिं वा सीसगरासिं वा पासमाणे पासइ, दुरूहमाणे दुरूहइ दुरूढमिति अप्पाणं मन्नइ, तक्खणामेव बुज्झइ, दोच्चे भवग्गहणे सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

६. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं हिरण्णरासिं वा, सुवण्णरासिं वा, रयणरासिं वा, वइररासिं वा पासमाणे पासइ, दुरूहमाणे दुरूहइ, दुरूढमिति अप्पाणं मन्नइ, तक्खणामेव बुज्झइ, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

७. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं तणरासिं वा, कट्ठरासिं वा, पत्तरासिं वा, तयरासिं वा, तुसरासिं वा, भुसरासिं वा, गोमयरासिं वा, अवकररासिं वा पासमाणे पासइ विक्खिरमाणे विक्खिरइ, विक्खिण्णमिति अप्पाणं मन्नइ, तक्खणामेव बुज्झइ, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

८. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं सरथंभं वा, वीरणथंभं वा, वंसीमूलथंभं वा वल्लीमूलथम्भं वा पासमाणे पासइ उम्मूलेमाणे उम्मूलेइ उम्मूलितमिति अप्पाणं मन्नइ तक्खणामेव बुज्झइ, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

१. कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक बड़ी अश्वपंक्ति, गजपंक्ति, मनुष्यपंक्ति, किन्नरपंक्ति, किंपुरुषपंक्ति, महोरगपंक्ति, गंधर्वपंक्ति अथवा वृषभपंक्ति को देखे और उसके ऊपर चढ़े और उस पर स्वयं चढ़ा है ऐसा अपने को माने तथा इस प्रकार देखकर यदि तत्क्षण जागे तो वह उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

२. कोई भी स्त्री या पुरुष यदि स्वप्न के अन्त में समुद्र के दोनों छोरों से अड़ा हुआ और पूर्व तथा पश्चिम की तरफ लम्बा एक बड़ा दामण देखे और उसे लपेटे तथा स्वयं ने उसे लपेटा है ऐसा स्वयं को माने तथा इस प्रकार देखकर कोई शीघ्र जागता है तो वह उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सर्व दुखों का अन्त करता है।

३. कोई स्त्री या पुरूष स्वप्न के अन्त में लोक के दोनों छोरों को स्पर्श किया हुआ और पूर्व व पश्चिम लम्बा एक वड़ा रस्सा देखे और उसे काट डाले तथा स्वयं ने उसे काट दिया है, ऐसा स्वयं को माने तथा इस तरह से देखकर तत्क्षण जागे तो वह उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

४. कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक वड़ा लम्बा काले सूत, नीले सूत, लाल सूत, पीले सूत या सफेद सूत का धागा देखे और उसे उकेले और स्वयं ने उसे उकेला है ऐसा स्वयं को माने और ऐसा देखकर वह तत्क्षण जागे तो वह उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

५. कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में एक बड़े लोहे के ढेर को, तांबे के ढेर को, रांगे के ढेर को, सीसे के ढेर को देखे और स्वयं उस पर चढ़े और स्वयं उस पर चढ़ा है ऐसा स्वयं को माने तथा ऐसा देखकर शीघ्र जागे तो वह दो भव में सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

६. कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक विशाल हिरण्य चांदी के ढेर को, सुवर्ण के ढेर को, रत्न के ढेर को, वज्र के ढेर को देखे और उस पर स्वयं चढ़े और स्वयं उस पर चढ़ा है ऐसा स्वयं को माने तथा उसी क्षण जागे तो वह उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

७. कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक बड़े घास के ढेर को, लकड़ियों के ढेर को, पत्तों के ढेर को, वृक्ष की छाल या तुस के ढेर को, भूसे के ढेर को, गेहूं के ढेर को या कूड़ा कचरा के ढेर को देखे और उसे बिखेरे और स्वयं ने उसे बिखेरा है ऐसा स्वयं को माने और तुरन्त जागे तो उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

८. कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक बड़े शरस्तम्भ को, वीरण स्तम्भ को, वंसीमूलस्तम्भ को अथवा वल्लीमूल स्तम्भ को देखे और उसे उखाड़े और स्वयं ने उसे उखाड़ा है ऐसा स्वयं को माने और तत्क्षण जागे तो उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

९. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं खीरकुम्भं वा दधिकुम्भं वा, घयकुम्भं वा, मधुकुम्भं वा, पासमाणे पासइ, उप्पाडेमाणे वा उप्पाडेइ, उप्पाडितमिति अप्पाणं मन्नइ, तक्खणामेव बुज्झइ, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

१०. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं सुरावियडकुम्भं वा सोवीरवियडकुम्भं वा, तेल्लकुम्भं वा, वसाकुम्भं वा, पासमाणे पासइ, भिंदमाणे भिंदइ भिन्नमिति अप्पाणं मन्नइ, तक्खणामेव बुज्झइ, दोच्चे भवग्गहणे सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

११. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं पउमसरं कुसुमियं पासमाणे पासइ, ओगाहमाणे ओगाहइ, ओगाढमिति अप्पाणं मन्नइ, तक्खणामेव बुज्झइ, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

१२. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं सागरं उम्मीवीयीसहस्सकलियं पासमाणे पासइ, तरमाणे तरइ, तिण्णिमिति अप्पाणं मन्नइ, तक्खणामेव बुज्झइ, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

१३. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं भवणं सव्वरयणामयं पासमाणे पासइ, अणुप्पविसमाणे अणुप्पविसइ, अणुप्पविट्ठमिति अप्पाणं मन्नइ, तक्खणामेव बुज्झइ, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

१४. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं विमाणं सव्वरयणामयं पासमाणे पासइ, दुरूहमाणे दुरूहइ, दुरूढमिति अप्पाणं मन्नइ, तक्खणामेव बुज्झइ, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

-विया. स. १६, उ. ६, सु. २०-३५

८६. पच्चक्खनाणस्स भेया-

प. से किं तं पच्चक्खं ?

पच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा-

१. इंदियपच्चक्खं च, २. णो इंदियपच्चक्खं च।

प. से किं तं इंदियपच्चक्खं ?

उ. इंदियपच्चक्खं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा-

१. सोइंदियपच्चक्खं, २. चक्खिंदियपच्चक्खं,
३. घाणिंदियपच्चक्खं, ४. रसणेंदियपच्चक्खं,
५. फासिंदियपच्चक्खं।

से तं इंदियपच्चक्खं।

प. से किं तं णो इंदियपच्चक्खं ?

उ. णो इंदियपच्चक्खं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा-

९. कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक वड़े क्षीर कुम्भ को, दधि कुम्भ को, घृत कुम्भ को, या मधु कुम्भ को देखे और उसे उठाये और स्वयं ने उसे उठाया है ऐसा स्वयं को माने और तुरन्त जागे तो उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

१०. कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में वड़ा सुरा के विकट कुम्भ को, सौवीर के विकट कुम्भ को, तेलकुम्भ को या वसाकुम्भ को देखता है और देखकर भेदन करता है, फोड़ता है और स्वयं ने उसे फोड़ा है, ऐसा स्वयं को मानता है और तत्काल जागता है तो दूसरे भव में सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

११. कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक विशाल कुसुमित पद्मसरोवर को देखता है, देखकर उसमें प्रवेश करता है और प्रवेश करके और स्वयं ने उसमें प्रवेश किया है, ऐसा अपने को मानता है और तत्काल जागता है तो उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अंत करता है।

१२. कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में हजारों तरंगों और कल्लोलों से व्याप्त एक महासागर को देखता है, देखकर तैरता है और तैरकर उसे तैर चुका है ऐसा स्वयं को माने और उसी क्षण जागता है तो उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

१३. कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक विशाल रत्नों से बना हुआ भवन देखे, देखकर उसमें प्रवेश करे, प्रवेश करके स्वयं ने उसमें प्रवेश किया है ऐसा स्वयं को मानता है और उसी क्षण जागता है तो उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

१४. कोई भी स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में सर्व रत्नमयी एक विशाल विमान को देखता है, देखकर उस पर चढ़ता है, चढ़कर स्वयं उस पर चढ़ा, ऐसा स्वयं को है मानता है और तत्क्षण जागे तो उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता है।

८६. प्रत्यक्ष ज्ञान के भेद-

प्र. प्रत्यक्ष ज्ञान क्या है ?

उ. प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. इन्द्रिय-प्रत्यक्ष, २. नो इन्द्रिय-प्रत्यक्ष।

प्र. इन्द्रिय प्रत्यक्ष क्या है ?

उ. इन्द्रिय प्रत्यक्ष पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष, २. चक्षुरिन्द्रिय प्रत्यक्ष
३. घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष ४. जिह्वेन्द्रिय प्रत्यक्ष,
५. स्पर्शनेन्द्रिय प्रत्यक्ष।

यह इन्द्रिय प्रत्यक्ष है।

प्र. नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष क्या है ?

उ. नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष तीन प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. ओहिनाणपच्चक्खं, २. मणपज्जवनाणपच्चक्खं,
३. केवलनाणपच्चक्खं।[1] –नंदी. सु. ३-५

१. अवधिज्ञान प्रत्यक्ष, २. मनःपर्यवज्ञान प्रत्यक्ष,
३. केवलज्ञान प्रत्यक्ष।

८७. ओहिनाणस्स परूवणं–

प. से किं ओहिनाणपच्चक्खं ?

उ. ओहिनाणपच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–
१. भवपच्चइयं च, २. खओवसमियं च।[2]
दोण्हं भवपच्चइयं, तं जहा–
१. देवाणं च, २. णेरइयाणं च।[3]
दोण्हं खओवसमियं, तं जहा–
१. मणुस्साणं च, २. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं च।

प. को हेऊ खओवसमियं ?

उ. खओवसमियं तयावरणिज्जाणं कम्माणं उदिण्णाणं खएणं, अणुदिण्णं उवसमेणं ओहिनाणं समुपज्जइ।

अहवा गुणपडिवण्णस्स अणगारस्स ओहिनाणं समुपज्जइ।

तं समासओ छव्विहं पण्णत्तं, तं जहा–
१. आणुगामियं, २. अणाणुगामियं,
३. वड्ढमाणयं, ४. हीयमाणयं
५. पडिवाइ, ६. अपडिवाइ।[4]
–नंदी. सु. ६-९

८७. अवधिज्ञान का प्ररूपण–

प्र. प्रत्यक्ष अवधिज्ञान क्या है ?

उ. प्रत्यक्ष अवधिज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. भवप्रत्ययिक, २. क्षायोपशमिक।
भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान दो को होता है, यथा–
१. देवों को, २. नारकों को।
क्षायोपशमिक अवधिज्ञान दो को होता है, यथा–
१. मनुष्यों को, २. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों को।

प्र. क्षायोपशमिक अवधिज्ञान इनको क्यों होता है ?

उ. जो कर्म अवधिज्ञान में बाधा उत्पन्न करने वाले हैं, उनमें से उदय में आए हुए कर्मों का क्षय होने से तथा उदय में नहीं आए हुए कर्मों का उपशम होने से जो अवधिज्ञान उत्पन्न होता है, वह क्षायोपशमिक अवधिज्ञान कहा जाता है।

अथवा ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र रूप गुण-सम्पन्न मुनि को जो अवधिज्ञान उत्पन्न होता है वह क्षायोपशमिक अवधिज्ञान कहा जाता है।

वह (क्षायोपशमिक अवधिज्ञान) संक्षेप में छह प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. आनुगामिक, २. अनानुगामिक,
३. वर्द्धमान, ४. हीयमान,
५. प्रतिपातिक, ६. अप्रतिपातिक।

(१) आणुगामि ओहिनाणस्स परूवणं–

प. से किं तं आणुगामियं ओहिनाणं ?

उ. आणुगामियं ओहिनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–
१. अंतगयं च, २. मज्झगयं च।

प. से किं तं अंतगयं ?

उ. अंतगयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा–
१. पुरओ अंतगयं, २. मग्गओ अंतगयं,
३. पासओ अंतगयं।

प. १. से किं तं पुरओ अंतगयं ?

उ. पुरओ अंतगयं–से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चुडलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, जोइं वा, पईवं वा, पुरओ काउं पणोल्लेमाणे-पणोल्लेमाणे गच्छेज्जा। से तेणं जोइट्ठाणेणं पुरओ चेव पासइ।

(१) आनुगामिक अवधिज्ञान का प्ररूपण–

प्र. आनुगामिक अवधिज्ञान क्या है ?

उ. आनुगामिक अवधिज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. अन्तगत, २. मध्यगत।

प्र. अन्तगत अवधिज्ञान क्या है ?

उ. अन्तगत अवधिज्ञान तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. पुरतः अन्तगत, २. मार्गतः अन्तगत,
३. पार्श्वतः अन्तगत।

प्र. १. पुरतः अन्तगत अवधिज्ञान क्या है ?

उ. पुरतः अन्तगत–जैसे कोई व्यक्ति उल्का (अग्नि पिण्ड), घास का जलता हुआ पूला, अग्रभाग से जलता हुआ काष्ठ, नील-मणि, पात्र में रखी हुई प्रज्वलित ज्योति या दीपक को हाथ अथवा दण्डे से आगे करके चलता है और उक्त पदार्थों द्वारा हुए प्रकाश से मार्ग में पड़े हुए पदार्थों को देखता जाता है।

---

१. पच्चक्खे नाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. केवलनाणे चेव, २. णो केवलनाणे चेव।
–ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ६० (२)
णो केवलनाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. ओहिनाणे चेव, २. मणपज्जवनाणे चेव,
–ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ६० (१२)

२. सम. सु. १५३,

३. (क) ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ६०/१३-१५
(ख) ठाव. सु. २४१
(ग) पण्ण प. ३३, सु. १९८२

४. ठाणं. अ. ६ सु. ५२६

एवामेव पुरओ अंतगएणं ओहिणाणेणं पुरओ चेव संखेज्जाइं वा, असंखेज्जाइं वा जोयणाइं जाणइ पासइ।

से तं पुरओ अंतमयं।

प. २. से किं तं मग्गओ अंतगयं ?

उ. मग्गओ अंतगयं–से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा जाव पईवं वा मग्गओ काउं अणुकड्ढेमाणे अणुकड्ढेमाणे गच्छेज्जा। से तेणं जोइट्ठाणेणं मग्गओ चेव पासइ।

एवामेव मग्गओ अंतगएणं ओहिणाणेणं मग्गओ चेव संखेज्जाइं वा असंखेज्जाइ वा जोयणाइं जाणइ पासइ।

से तं मग्गओ अंतगयं।

प. ३. से किं तं पासओ अंतगयं ?

उ. पासओ अंतगयं–से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा जाव पईवं वा पासओ काउं परिकड्ढेमाणे-परिकड्ढेमाणे गच्छेज्जा। से तेणं जोइट्ठाणेणं पासओ चेव पासइ।

एवामेव पासओ अंतगएणं ओहिणाणेणं पासओ चेव संखेज्जाइं वा, असंखेज्जाइं वा जोयणाइं जाणइ पासइ।

से तं पासओ अंतगयं।

प. ४. से किं मज्झगयं ?

उ. मज्झगयं–से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा जाव पईवं वा मत्थए काउं गच्छेज्जा। से तेणं जोइट्ठाणेणं सव्वओ समंता पासइ।

एवामेव मज्झगएणं ओहिणाणेणं सव्वओ समंता संखेज्जाइं वा, असंखेज्जाइं वा जोयणाइं जाणइ पासइ।

से तं मज्झगयं।

प. अंतगयस्स मज्झगयस्स य को पइविसेसो ?

उ. अंतगएणं ओहिणाणेणं एग दिसिं च्चेव जाणइ पासइ। मज्झगएणं ओहिणाणेणं सव्वओ समंता जाणइ पासइ।

से तं आणुगामियं ओहिणाणं।[1] –नंदी. सु. १६-२२

(२) अणाणुगामि-ओहिनाणस्स परूवणं–

प. से किं तं अणाणुगामियं ओहिनाणं ?

उ. अणाणुगामियं ओहिनाणं–से जहानामए केइ पुरिसे एगं महंतं जोइट्ठाणं काउं तस्सेव जोइट्ठाणस्स परिपेरंतेहिं-परिपेरंतेहिं परिघोलेमाणे-परिघोलेमाणे तमेव जोइट्ठाणं पासइ, अन्नत्थ गए ण पासइ.

इसी प्रकार पुरतः अन्तगत अवधिज्ञान से अवधिज्ञानी आगे के प्रदेश में संख्यात या असंख्यात योजनों तक पदार्थों को देखता हुआ चलता है।

यह पुरतः अन्तगत अवधिज्ञान का स्वरूप है।

प्र. २. मार्गत अन्तगत अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है ?

उ. मार्गतः अन्तगत–जैसे कोई व्यक्ति उल्का यावत् दीपक को हाथ या किसी दण्डे द्वारा पीछे करके चलता है और उक्त पदार्थों के प्रकाश से पीछे-स्थित पदार्थों को देखता हुआ जाता है।

इसी प्रकार मार्गतः अन्तगत अवधिज्ञान से अवधिज्ञानी पीछे के प्रदेश में संख्यात या असंख्यात योजन तक पदार्थों को देखता हुआ चलता है।

यह मार्गतः अन्तगत का स्वरूप है।

प्र. ३. पार्श्वतः अवधिज्ञान क्या है ?

उ. पार्श्वतः अन्तगत–जैसे कोई पुरुष उल्का यावत् दीपक को हाथ या किसी दण्डे के अग्रभाग से पार्श्वभाग में लेकर चलता है और उक्त पदार्थों के प्रकाश से मार्ग में पड़े पदार्थों को देखता हुआ जाता है।

इसी प्रकार पार्श्ववर्ती अवधिज्ञानी पार्श्ववर्ती प्रदेश में संख्यात या असंख्यात योजन तक पदार्थों को देखता हुआ चलता है।

यह पार्श्वतः अन्तगत अवधिज्ञान का स्वरूप है।

प्र. ४. मध्यगत अवधिज्ञान क्या है ?

उ. मध्यगत अवधिज्ञान–जैसे कोई पुरुष उल्का यावत् दीपक को मस्तक पर रखकर चलता है। वह पुरुष उपर्युक्त प्रकाश के द्वारा सर्व दिशाओं में स्थित पदार्थों को देखते हुए चलता है।

इसी प्रकार मध्यगत अवधिज्ञान भी चारों ओर के संख्यात या असंख्यात योजन तक के पदार्थों को देखता हुआ चलता है।

यह मध्यगत अवधिज्ञान का स्वरूप है।

प्र. अन्तगत और मध्यगत अवधिज्ञान में क्या अन्तर है ?

उ. अन्तगत अवधिज्ञान से अवधिज्ञानी किसी एक दिशा में ही जानता-देखता है किन्तु मध्यगत अवधिज्ञान से सभी दिशाओं में जानता-देखता है।

यह आनुगामिक अवधिज्ञान का स्वरूप है।

(२) अनानुगामिक अवधिज्ञान का प्ररूपण–

प्र. अनानुगामिक अवधिज्ञान क्या है ?

उ. अनानुगामिक अवधिज्ञान–जैसे कोई व्यक्ति एक बहुत बड़े अग्नि कुण्ड में अग्नि को प्रज्वलित करके उस अग्नि के चारों ओर सभी दिशा-विदिशाओं में घूमता है तथा उस ज्योति से प्रकाशित क्षेत्र को ही देखता है, किन्तु अन्यत्र जाने पर नहीं देखता है।

---

१ [illegible]

एवामेव अणाणुगामियं ओहिनाणं जत्थेव समुप्पज्जइ तत्थेव संखेज्जाणि वा, असंखेज्जाणि वा, संबद्धाणि वा, असंबद्धाणि वा, जोयणाइं जाणइ पासइ, अण्णत्थ गए णं जाणइ ण पासइ।

से तं अणाणुगामियं ओहिनाणं। —नंदी., सु. १२

इसी प्रकार अनानुगामिक अवधिज्ञान जिस क्षेत्र में जिसको उत्पन्न होता है, वह उसी क्षेत्र में स्थित होकर संख्यात एवं असंख्यात योजन तक, स्वावगाढ़ क्षेत्र से अन्तर रहित या अन्तर सहित रहे हुए द्रव्यों को विशेष रूप से और सामान्य रूप से जानता-देखता है, परन्तु अन्यत्र जाने पर नहीं जानता है और नहीं देखता है।

यह अनानुगामिक अवधिज्ञान का स्वरूप है।

(३) वड्ढमाण-ओहिनाणस्स परूवणं—

प. से किं तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं?

उ. वड्ढमाणयं ओहिनाणं—पसत्थेसु अज्झवसायणट्ठाणेसु वड्ढमाणस्स, वड्ढमाणचरित्तस्स, विसुज्झमाणस्स, विसुज्झमाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओही वड्ढइ।

से त्तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं। —नंदी. सु. १३

(३) वर्द्धमान अवधिज्ञान का प्ररूपण—

प्र. वर्द्धमान अवधिज्ञान क्या है?

उ. अध्यवसायों (विचारों) के विशुद्ध एवं प्रशस्त होने पर और चारित्र की वृद्धि होने पर तथा विशुद्ध चारित्र के द्वारा कर्म मल से रहित होने पर आत्मा का ज्ञान दिशाओं एवं विदिशाओं में चारों ओर बढ़ता है, उसे वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं।

यह वर्द्धमान अवधिज्ञान का स्वरूप है।

(४) हीयमाण-ओहिनाणस्स परूवणं—

प. से किं तं हीयमाणयं ओहिनाणं?

उ. हीयमाणयं ओहिनाणं अप्पसत्थेहिं अज्झवसायट्ठाणेहिं वट्टमाणस्स, वट्टमाणचरित्तस्स, संकिलिस्समाणस्स, संकिलिस्समाणचरित्तस्स, सव्वओ समंता ओही परिहीयइ।

से त्तं हीयमाणयं ओहिनाणं। —नंदी. सु. २५

(४) हीयमान अवधिज्ञान का प्ररूपण—

प्र. हीयमान अवधिज्ञान क्या है?

उ. अशुभ अध्यवसायों में विद्यमान चारित्र वाले और संक्लेश को प्राप्त संक्लिष्ट चारित्र वाले के जो सर्वतः एवं सब ओर से अवधिज्ञान का ह्रास होता है उसे हीयमान अवधिज्ञान कहते हैं।

यह हीयमान अवधिज्ञान का स्वरूप है।

(५) पडिवाइ-ओहिनाणस्स परूवणं—

प. से किं तं पडिवाइ ओहिनाणं?

उ. पडिवाइ ओहिनाणं जण्णं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं वा, संखेज्जइभागं वा,

वालग्गं वा, वालग्गपुहत्तं वा

लिक्खं वा, लिक्खपुहत्तं वा.

जूयं वा, जूयपुहत्तं वा,

जवं वा, जवपुहत्तं वा,

अंगुलं वा, अंगुलपुहत्तं वा,

पायं वा, पायपुहत्तं वा,

वियत्थिं वा, वियत्थिपुहत्तं वा,

रयणिं वा, रयणिपुहत्तं वा,

कुच्छिं वा, कुच्छिपुहत्तं वा,

धणुयं वा, धणुपुहत्तं वा,

गाउयं वा, गाउयपुहत्तं वा,

जोयणं वा, जोयणपुहत्तं वा,

जोयणसयं वा, जोयणसयपुहत्तं वा,

जोयणसहस्सं वा, जोयणसहस्सपुहत्तं वा,

जोयणसयसहस्सं वा, जोयणसयसहस्सपुहत्तं वा,

जोयणकोडिं वा, जोयणकोडिपुहत्तं वा,

जोयणकोडाकोडिं वा, जोयणकोडाकोडिपुहत्तं वा,

जोयण संखेज्जं वा, जोयणसंखेज्जपुहत्तं वा,

(५) प्रतिपाति अवधिज्ञान का प्ररूपण—

प्र. प्रतिपाति अवधिज्ञान का क्या स्वरूप है?

उ. प्रतिपाति अवधिज्ञान जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग या संख्यातवें भाग,

वालाग्र, वालाग्रपृथक्त्व,

लीख या लीखपृथक्त्व,

यूका (जूँ) या यूकापृथक्त्व,

यव (जौ) या यवपृथक्त्व,

अंगुल या अंगुल पृथक्त्व,

पाद या पादपृथक्त्व,

वितस्ति या वितस्तिपृथक्त्व,

रत्नि (हाथ परिमाण) या रत्निपृथक्त्व,

कुक्षि (दो हस्तपरिमाण) या कुक्षिपृथक्त्व,

धनुष (चार हाथ परिमाण) या धनुष पृथक्त्व,

गव्यूति या गव्यूति पृथक्त्व।

योजन या योजनपृथक्त्व,

योजनशत या योजनशतपृथक्त्व,

योजन-सहस्र (एक हजार योजन) या योजन-सहस्रपृथक्त्व,

लाख योजन या लाख योजनपृथक्त्व,

योजनकोटि (एक करोड़ योजन) या योजन कोटिपृथक्त्व,

योजन कोटाकोटि या योजनकोटाकोटिपृथक्त्व,

संख्यात योजन या संख्यातयोजनपृथक्त्व,

जोयण असंखेज्जं वा, जोयण असंखेज्जपुहत्तं वा,
उक्कोसेणं लोगं वा, पासित्ता णं पडिवएज्जा।

से तं पडिवाइ ओहिनाणं —*नंदी. सु. २३*

(६) अपडिवाइ-ओहिनाणस्स परूवणं–

प. से किं तं अपडिवाइ ओहिनाणं ?

उ. अपडिवाइ ओहिनाणं जेणं अलोगस्स एगमवि आगासपएसं पासेज्जा तेण परं अपडिवाइ ओहिनाणं।

से तं अपडिवाइ ओहिनाणं। —*नंदी. सु. २४*

८८. ओहिनाणस्स खेत्तं–

जावइया तिसमयाहारगस्स, सुहुमस्स पणगजीवस्स।
ओगाहणा जहन्ना, ओहीखेत्तं जहन्नं तु ॥४५॥

सव्वबहुअगणिजीवा, णिरंतरं जत्तियं भरिज्जंसु।
खेत्तं सव्वदिसागं, परमोही खेत्तनिद्दिट्ठो ॥४६॥

अंगुलमावलियाणं भागमसंखेज्ज दोसु संखेज्जा।

अंगुलमावलियंतो आवलिया अंगुलपुहत्तं ॥४७॥

हत्थम्मि मुहुत्तंतो, दिवसंतो गाउयम्मि बोद्धव्वो।

जोयण दिवसपुहत्तं, पक्खंतो पण्णवीसाओ ॥४८॥

भरहम्मि अद्धमासो, जंबुद्दीवम्मि साहिओ मासो।

वासं च मणुयलोए, वासपुहत्तं च रुयगम्मि ॥४९॥

संखिज्जम्मि उ काले दीव-समुद्दा वि होंति संखेज्जा।
कालम्मि असंखेज्जे दीव-समुद्दा उ भइयव्वा ॥५०॥

असंख्यात योजन या असंख्यातयोजनपृथक्त्व, अथवा उत्कृष्ट रूप से सम्पूर्ण लोक को देखकर जो अवधिज्ञान नष्ट हो जाता है उसे प्रतिपाति अवधिज्ञान कहते हैं।

यह प्रतिपाति अवधिज्ञान का स्वरूप है।

(६) अप्रतिपाति अवधिज्ञान का प्ररूपण–

प्र. अप्रतिपाति अवधिज्ञान क्या है ?

उ. जिस अवधिज्ञान से ज्ञाता अलोक के एक आकाश-प्रदेश को भी जानता है, देखता है अर्थात् जानने की क्षमता वाला हो जाता है वह अप्रतिपाति (जीवन पर्यन्त रहने वाला) अवधिज्ञान कहा जाता है।

यह अप्रतिपाति अवधिज्ञान का स्वरूप है।

८८. अवधिज्ञान का क्षेत्र–

तीन समय के आहारक सूक्ष्म-निगोद जीव की जघन्य अवगाहना जितनी होती है उतना ही जघन्य अवधिज्ञान का क्षेत्र है।

समस्त सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त अग्निकाय के जीव सभी दिशाओं में जितना क्षेत्र निरन्तर परिपूर्ण करें, उतना ही क्षेत्र परमावधिज्ञान का कहा गया है।

यदि अवधिज्ञानी क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग को जानता है तो काल से आवलिका के असंख्यातवें भाग को जानता है।

यदि क्षेत्र से अंगुल के संख्यातवें भाग को जानता है तो काल से आवलिका का संख्यातवां भाग जानता है।

यदि क्षेत्र से अंगुलप्रमाण क्षेत्र को देखता है तो काल से आवलिका से कुछ कम देखता है।

यदि सम्पूर्ण आवलिका प्रमाण काल देखता है तो क्षेत्र से अंगुलपृथक्त्व (अनेक अंगुल) प्रमाण क्षेत्र को देखता है।

यदि अवधिज्ञानी क्षेत्र से एक हाथ क्षेत्र देखे तो काल से कुछ न्यून एक मुहूर्त देखता है और काल से कुछ कम एक दिन देखे तो क्षेत्र से एक गाउ (कोस परिमाण) देखता है।

यदि क्षेत्र से योजन परिमाण (चार कोस) देखे तो काल से दिवस पृथक्त्व तक देखता है।

यदि काल से किंचित् न्यून एक पक्ष देखे तो क्षेत्र से पच्चीस योजन पर्यन्त देखता है।

यदि क्षेत्र से सम्पूर्ण भरतक्षेत्र को देखे तो काल से अर्धमास परिमित (भूत भविष्यत्) काल को जाने।

यदि क्षेत्र से जम्बूद्वीप पर्यन्त देखे तो काल से एक मास से भी अधिक भूत, भविष्य काल को देखता है।

यदि क्षेत्र से मनुष्यलोक परिमाण क्षेत्र को देखे तो काल से एक वर्ष पर्यन्त भूत, भविष्य काल को देखता है।

यदि क्षेत्र से रुचक क्षेत्र पर्यन्त देखे तो काल से वर्ष पृथक्त्व (अनेक वर्ष) भूत और भविष्यत् काल को जानता है।

यदि अवधिज्ञानी काल से संख्यातकाल को जाने तो क्षेत्र से संख्यात द्वीप-समुद्र पर्यन्त जाने और असंख्यात काल जानने पर क्षेत्र से द्वीपों एवं समुद्रों को भजना से जाने अर्थात् कोई संख्यात और कोई असंख्यात द्वीप-समुद्र जानता है।

काले चउण्ह वुड्ढी, कालो भइयव्वो खेत्तवुड्ढीए।

अवधिज्ञान में काल की वृद्धि होने पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव चारों की वृद्धि होती है। क्षेत्र की वृद्धि होने पर काल की वृद्धि में भजना है। अर्थात् किसी के काल की वृद्धि होती है और किसी के नहीं होती है।

वुड्ढीए दव्व-पज्जव भइयव्वा खेत्त-काला उ ॥५१॥

अवधिज्ञान में द्रव्य और पर्याय की वृद्धि होने पर क्षेत्र और काल में वृद्धि की भजना होती है अर्थात् क्षेत्रकाल वृद्धि पाते भी हैं और नहीं भी पाते हैं क्योंकि

सुहुमो य होइ कालो, तत्तो सुहुमयरं हवइ खेत्तं।
अंगुलसेढिमेत्ते ओसप्पिणिओ असंखेज्जा ॥५२॥

—नंदी. सु. १४

काल सूक्ष्म होता है किन्तु क्षेत्र उससे भी सूक्ष्मतर होता है इसका कारण यह है कि एक अंगुल प्रथम श्रेणीरूप क्षेत्र में असंख्यात अवसर्पिणियों जितने समय होते हैं।

८९. ओहिनाणस्स सामित्त परूवणं–

णेरइए-देव-तित्थंकरा य, ओहिस्स वाहिरा होंति।
पासंति सव्वओ खलु, सेसा देसेण पासंति ॥५४॥

से तं ओहिनाणं। —नंदी. सु. २७

८९. अवधिज्ञान के स्वामी का कथन–

नारक, देव एवं तीर्थंकर अवधिज्ञान से अवाह्य (युक्त) ही होते हैं और वे सव दिशाओं और विदिशाओं को देखते हैं। शेष मनुष्य एवं तिर्यञ्च एक देश से देखते हैं।

यह अवधिज्ञान का स्वरूप हैं।

९०. ओहिनाणभेयस्स उवसंहारो–

ओही भवपच्चइओ, गुणपच्चइओ य वण्णिओ एसो[1]।
तस्स य वहू विगप्पा, दव्वे खेत्ते य काले य ॥५३॥

—नंदी. सु. २६

९०. अवधिज्ञान के भेदों का उपसंहार–

अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक दो प्रकार का कहा गया है और उसके भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से वहुत से विकल्प कहे गए हैं।

९१. ओहिनाणस्स अंतो वाहिरदार परूवणं–

प. दं. १. णेरइया णं भन्ते ! ओहिस्स किं अंतो वाहिं[2] ?

उ. गोयमा ! अंतो, नो वाहिं।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमारा।

प. दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भन्ते ! ओहिस्स किं अंतो वाहिं ?

उ. गोयमा ! नो अंतो, वाहिं।

प. दं. २१. मणूसाणं भन्ते ! ओहिस्स किं अंतो वाहिं ?

उ. गोयमा ! अंतो वि, वाहिं वि।

दं. २२-२४. वाणमन्तर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा णेरइयाणं। —पण्ण. प. ३३, सु. २०१७-२०२१

९१. अवधिज्ञान के आभ्यन्तर-बाह्य द्वार का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! क्या नारक अवधिज्ञान के अन्दर है या वाहर है ?

उ. गौतम ! वे अवधिज्ञान के अन्दर है, वाहर नहीं है।

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. २०. भन्ते ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक अवधिज्ञान के अन्दर है या वाहर है ?

उ. गौतम ! वे अन्दर नहीं, वाहर है।

प्र. दं. २१. भन्ते ! मनुष्य अवधिज्ञान के अन्दर है या वाहर है ?

उ. गौतम ! वे अन्दर भी है और वाहर भी है।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिकदेवों का कथन नैरयिकों के समान है।

९२. चउवीसदंडएसु देसोहि सव्वोही परूवणं–

प. दं. १. णेरइया णं भन्ते ! किं देसोही सव्वोही ?

उ. गोयमा ! देसोही, णो सव्वोही।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. दं. २०. पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं भन्ते ! किं देसोही सव्वोही ?

उ. गोयमा ! देसोही, णो सव्वोही।

प. दं. २१. मणूसाणं भन्ते ! किं देसोही सव्वोही ?

उ. गोयमा ! देसोही वि, सव्वोही वि।

९२. चौवीस दण्डकों में देशावधि-सर्वावधि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते! नारकों का अवधिज्ञान देशावधि है या सर्वावधि है ?

उ. गौतम ! उनका अवधिज्ञान देशावधि है, सर्वावधि नहीं है।

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. २०. भन्ते ! पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों का अवधिज्ञान देशावधि है या सर्वावधि है ?

उ. गौतम! उनका अवधिज्ञान देशावधि है, सर्वावधि नहीं है।

प्र. दं. २१. भंते! मनुष्यों का अवधिज्ञान देशावधि है या सर्वावधि है ?

उ. गौतम! उनका अवधिज्ञान देशावधि भी है, सर्वावधि भी है।

---

१. ठाण. सु. २४९

२. जो अवधिज्ञानी अपनी जगह से चारों दिशाओं में देख सकता है तो वह अवधिज्ञान के अन्दर है।
जो अवधिज्ञानी अपनी जगह से एक ही दिशा में देख सकता है तो वह अवधिज्ञान के बाहर है।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा णेरइयाणं। —पण्ण.प. ३३, सु. २०२२-२०२६

९३. चउवीसदंडएसु ओहिणाणेण जाणण पासण खेत्त परूवणं—

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अद्ध गाउयं,
उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

प. रयणप्पभापुढविणेरइया णं भंते ! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अद्धुट्ठाइं गाउयाइं,
उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

प. सक्करप्पभापुढविणेरइया णं भंते ! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति, पासंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं तिण्णि गाउयाइं,
उक्कोसेणं अद्धुट्ठाइं गाउयाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

प. वालुयप्पभापुढविणेरइया णं भंते ! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अड्ढाइज्जाइं गाउयाइं,
उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

प. पंकप्पभापुढविणेरइया णं भंते ! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दोण्णि गाउयाइं,
उक्कोसेणं अड्ढाइज्जाइं गाउयाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

प. धूमप्पभापुढविणेरइया णं भंते ! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दिवड्ढं गाउयं,
उक्कोसेणं दो गाउयाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

प. तमापुढविणेरइया णं भंते ! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं गाउयं,
उक्कोसेणं दिवड्ढं गाउयं ओहिणा जाणंति पासंति।

प. अहेसत्तमापुढविणेरइया णं भंते ! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अद्धगाउयं,
उक्कोसेणं गाउयं ओहिणा जाणंति पासंति[1]।

प. दं. २. असुरकुमारा णं भंते ! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं पणुवीसं जोयणाइं,
उक्कोसेणं असंखेज्जे दीव-समुद्दे ओहिणा जाणंति पासंति।

प. दं. ३. नागकुमारा णं भंते ! ओहिणा केवइयं खेत्तं जाणंति पासंति ?

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों का अवधिज्ञान नारकों के समान देशावधि है।

९३. चौबीस दंडकों में अवधिज्ञान द्वारा जानने-देखने के क्षेत्र का प्ररूपण—

प्र. दं. १. भंते! नैरयिक अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

उ. गौतम! वे अवधिज्ञान से जघन्य आधा गाऊ पर्यन्त,
उत्कृष्ट चार गाऊ पर्यन्त जानते-देखते हैं।

प्र. भन्ते ! रत्नप्रभापृथ्वी के नारक अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

उ. गौतम ! वे अवधिज्ञान से जघन्य साढ़े तीन गाऊ,
उत्कृष्ट चार गाऊ पर्यन्त जानते-देखते हैं।

प्र. भन्ते ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नारक अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

उ. गौतम ! वे अवधिज्ञान से जघन्य तीन गाऊ,
उत्कृष्ट साढ़े तीन गाऊ पर्यन्त जानते-देखते हैं।

प्र. भन्ते ! बालुकाप्रभापृथ्वी के नारक अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

उ. गौतम ! वे अवधिज्ञान से जघन्य ढाई गाऊ,
उत्कृष्ट तीन गाऊ पर्यन्त जानते-देखते हैं।

प्र. भन्ते ! पंकप्रभापृथ्वी के नारक अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

उ. गौतम ! वे अवधिज्ञान से जघन्य दो गाऊ,
उत्कृष्ट ढाई गाऊ पर्यन्त जानते-देखते हैं।

प्र. भन्ते ! धूमप्रभापृथ्वी के नारक अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

उ. गौतम ! वे अवधिज्ञान से जघन्य डेढ़ गाऊ,
उत्कृष्ट दो गाऊ पर्यन्त जानते-देखते हैं।

प्र. भन्ते! तमःप्रभापृथ्वी के नारक अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

उ. गौतम! वे अवधिज्ञान से जघन्य एक गाऊ,
उत्कृष्ट डेढ़ गाऊ पर्यन्त जानते-देखते हैं।

प्र. भन्ते! अधःसप्तम पृथ्वी के नारक अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

उ. गौतम! वे अवधिज्ञान से जघन्य आधा गाऊ,
उत्कृष्ट एक गाऊ पर्यन्त जानते-देखते हैं।

प्र. दं. २. भन्ते! असुरकुमारदेव अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

उ. गौतम! वे अवधिज्ञान से जघन्य पच्चीस योजन,
उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप समुद्रों को जानते-देखते हैं।

प्र. दं. ३. भन्ते! नागकुमारदेव अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं ?

1. [illegible]

उ. गोयमा! जहण्णेणं पणवीसं जोयणाइं,
उक्कोसेणं संखेज्जे दीव-समुद्दे ओहिणा जाणंति पासंति।
दं. ४-११. एवं जाव थणियकुमारा[1]।

उ. गौतम! वे अवधिज्ञान से जघन्य पच्चीस योजन,
उत्कृष्ट संख्यात द्वीप-समुद्रों को जानते-देखते हैं।
दं. ४-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प. दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?

प्र. दं. २०. भन्ते! पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं?

उ. गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,
उक्कोसेणं असंखेज्जे दीव-समुद्दे।

उ. गौतम! वे अवधिज्ञान से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र को,
उत्कृष्ट असंख्यात द्वीप-समुद्रों को जानते-देखते हैं।

प. दं. २१. मणूसा णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?

प्र. दं. २१. भन्ते! मनुष्य अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं?

उ. गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं
उक्कोसेण असंखेज्जाइं अलोए लोयपमाणमेत्ताइं खंडाइं ओहिणा जाणंति पासंति।
दं. २२. वाणमंतरा जहा णागकुमारा।

उ. गौतम! वे अवधिज्ञान से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र को,
उत्कृष्ट अलोक में लोकप्रमाण असंख्य खण्डों को जानते-देखते हैं।
दं. २२. वाणव्यन्तर देवों के जानने-देखने की क्षेत्र सीमा नागकुमार देवों के समान है।

प. दं. २३. जोइसिया णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?

प्र. दं. २३. भन्ते! ज्योतिष्कदेव अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं।

उ. गोयमा! जहण्णेणं संखेज्जे दीव-समुद्दे,
उक्कोसेण वि संखेज्जे दीव-समुद्दे।

उ. गौतम! वे अवधिज्ञान से जघन्य संख्यात द्वीप-समुद्रों को,
उत्कृष्ट भी संख्यात द्वीप-समुद्रों को जानते-देखते हैं।

प. दं. २४. सोहम्मदेवा णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?

प्र. दं. २४. भन्ते! सौधर्मदेवकल्प के देव अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं?

उ. गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइ भागं,
उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते, तिरियं जाव असंखेज्जे दीव-समुद्दे, उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं ओहिणा जाणंति पासंति।
एवं ईसाणगदेवा वि।
सणंकुमारदेवा माहिंदगदेवा वि एवं चेव।
णवरं–अहे जाव दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते ओहिणा जाणंति पासंति।
बंभलोग-लंतगदेवा तच्चाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते ओहिणा जाणंति पासंति।
महासुक्क-सहस्सारगदेवा चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते ओहिणा जाणंति पासंति।
आणय-पाणय-आरण-अच्चुयदेवा अहे जाव पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते ओहिणा जाणंति पासंति।
हेट्ठिम-मज्झिमगेवेज्जगदेवा अहे जाव छट्ठाए तमाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते ओहिणा जाणंति पासंति।

उ. गौतम! वे अवधिज्ञान से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र को और,
उत्कृष्ट नीचे इस रत्नप्रभापृथ्वी के निचले चरमान्त तक, तिरछे असंख्यात द्वीप-समुद्रों तक और ऊपर अपने-अपने विमानों तक को अवधिज्ञान से जानते-देखते हैं।
इसी प्रकार ईशानकल्पदेवों के विषय में भी समझना चाहिए।
सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प देवों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।
विशेष–ये नीचे दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी के नीचले चरमान्त तक जानते-देखते हैं।
ब्रह्मलोक और लान्तक देव अवधिज्ञान से तीसरी पृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक जानते-देखते हैं। (शेष सब पूर्ववत् है।)
महाशुक्र और सहस्रार कल्प के देव अवधिज्ञान से चौथी पंकप्रभापृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक जानते-देखते हैं।
आनत, प्राणत, आरण और अच्युतदेव अवधिज्ञान से नीचे पांचवीं धूमप्रभापृथ्वी के नीचले चरमान्त तक जानते-देखते हैं।
नीचे के और मध्य के ग्रैवेयकदेव अवधिज्ञान से नीचे छठी तमःप्रभापृथ्वी के नीचले चरमान्त तक जानते-देखते हैं।

प. उवरिमगेवेज्जगदेवा णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?

प्र. भन्ते! ऊपर के ग्रैवेयकदेव अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं?

उ. गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,

उ. गौतम! वे अवधिज्ञान से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र को और

१ बारहवें दण्डक से उन्नीसवें दण्डक तक के जीवों को अवधिज्ञान नहीं होता। इसलिए उनका यहाँ कथन नहीं किया गया है।

उक्कोसेणं अहेसत्तमाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते, तिरियं जाव असंखेज्जे दीव-समुद्दे, उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

प. अणुत्तरोववाइयदेवा णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?

उ. गोयमा! संभिन्नं लोगणालिं ओहिणा जाणंति पासंति[1]।

—पण्ण. प. ३३, सु. १९८३-२००७

उत्कृष्ट अधःसप्तमपृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक, तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्र तक, ऊपर अपने विमानों तक अवधिज्ञान से जानते-देखते हैं।

प्र. भन्ते! अनुत्तरोपपातिकदेव अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं?

उ. गौतम! वे अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोकनाडी को जानते-देखते हैं।

९४. चउवीसदंडएसु ओहीणाणस्स संठाण परूवणं–

प. दं. १. णेरइयाणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

उ. गोयमा! तप्पगारसंठिए पण्णत्ते।

प. दं. २. असुरकुमाराणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

उ. गोयमा! पल्लगसंठिए पण्णत्ते।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

उ. गोयमा! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

दं. २१. एवं मणूसाण वि।

प. दं. २२. वाणमंतराणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

उ. गोयमा! पडहसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

प. दं. २३. जोइसियाणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

उ. गोयमा! झल्लरिसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

प. दं. २४. सोहम्मगदेवाणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

उ. गोयमा! उड्ढमुइंगागारसंठिए पण्णत्ते।

एवं जाव अच्चुयदेवाणं।

प. गेवेज्जगदेवाणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

उ. गोयमा! पुप्फचंगेरिसंठिए पण्णत्ते।

प. अणुत्तरोववाइयाणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

उ. गोयमा! जवणालियासंठिए ओही पण्णत्ते।

—पण्ण. प. ३३ सु. २००८-२०१६

९४. चौबीसदंडकों में अवधिज्ञान के संस्थान का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते! नारकों का अवधिज्ञान किस आकार वाला कहा गया है?

उ. गौतम! वह तप्र (नौका) के आकार का कहा गया है।

प्र. दं. २. भन्ते! असुरकुमारों का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है?

उ. गौतम! वह पल्लक (धान्य माप के पात्र) के आकार का कहा गया है।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यंत के अवधिज्ञान का संस्थान जानना चाहिए।

प्र. दं. २०. भन्ते! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिकों का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है?

उ. गौतम! वह नाना आकारों वाला कहा गया है।

दं. २१. इसी प्रकार मनुष्यों के अवधिज्ञान का संस्थान जानना चाहिए।

प्र. दं. २२. भन्ते! वाणव्यन्तर देवों का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है?

उ. गौतम! वह पटह (वाद्य) के आकार का कहा गया है।

प्र. दं. २३. भन्ते! ज्योतिष्कदेवों का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है?

उ. गौतम! वह झालर के आकार का कहा गया है।

प्र. दं. २४. भन्ते! सौधर्मदेवों का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है?

उ. गौतम! वह ऊर्ध्व मृदंग के आकार का कहा गया है।

इसी प्रकार अच्युतदेवों पर्यन्त के अवधिज्ञान का आकार समझना चाहिए।

प्र. भन्ते! ग्रैवेयकदेवों का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है?

उ. गौतम! वह फूलों की चंगेरी के आकार का कहा गया है।

प्र. भन्ते! अनुत्तरोपपातिक देवों का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है?

उ. गौतम! उनका अवधिज्ञान यवनालिका के आकार का कहा गया है।

९५. चउवीसदंडएसु ओहिनाणस्स आणुगामिताइ परूवणं–

प. दं. १. णेरइयाणं भंते! ओही किं

१. आणुगामिए, २. अणाणुगामिए, ३. वड्ढमाणए,

९५. चौबीस दण्डकों में अवधि ज्ञान के आनुगामित्वादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते! नारकों का अवधिज्ञान क्या–

१. आनुगामिक है, २. अनानुगामिक है, ३. वर्द्धमान है,

---

1. [illegible] है।)

४. हीयमाणए, ५. पडिवाई, ६. अपडिवाई,
७. अवट्ठिए, ८. अणवट्ठिए?

उ. गोयमा! आणुगामिए, णो अणाणुगामिए, नो वड्ढमाणए नो हीयमाणए, नो पडिवाई, अपडिवाई, अवट्ठिए, नो अणवट्ठिए।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते! ओही किं आणुगामिए जाव अणवट्ठिए?

उ. गोयमा! आणुगामिए वि जाव अणवट्ठिए वि।

दं. २१. एवं मणूसाण वि।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा णेरइयाणं[1]। —पण्ण. प. ३३, सु. २०२७-२०३१

४. हीयमान है, ५. प्रतिपाती है, ६. अप्रतिपाती है,
७. अवस्थित है, या ८. अनवस्थित है?

उ. गौतम! वह आनुगामिक है, किन्तु अनानुगामिक, वर्द्धमान, हीयमान, प्रतिपाती और अनवस्थित नहीं है, अप्रतिपाती और अवस्थित है।

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त के अवधिज्ञान के लिए जानना चाहिए।

प्र. दं. २०. भन्ते! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों का अवधिज्ञान आनुगामिक है यावत् अनवस्थित है?

उ. गौतम! वह आनुगामिक भी है यावत् अनवस्थित भी है।

दं. २१. इसी प्रकार मनुष्यों के अवधिज्ञान के लिए जानना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, और वैमानिक देवों का कथन नारकों के जैसा है।

९६. मणपज्जवनाणस्स लक्खणं—

मणपज्जवणाणं पुण, जणमणपरिचिंतियत्थपागडणं।
माणुसखेत्तणिबद्धं, गुणपच्चइयं चरित्तवओ ॥५५॥
—नंदी. सु. ३८

९६. मनःपर्यवज्ञान का लक्षण—

मनःपर्यवज्ञान सभी जीवों के मन में सोचे हुए अर्थ को प्रकट करने वाला है और मनुष्य क्षेत्र में सीमित तथा चारित्रयुक्त साधु के क्षयोपशम गुण से उत्पन्न होने वाला है।

९७. मणपज्जवनाणस्स भेया—

तं च दुविहं उप्पज्जइ, तं जहा—
१. उज्जुमई य, २. विउलमई य[2]।
—नंदी. सु. ३६ (ख)

९७. मनःपर्यवज्ञान के भेद—

वह (मनःपर्यवज्ञान) दो प्रकार का है, यथा—
१. ऋजुमति, २. विपुलमति।

९८. मणपज्जवणाणस्स सामित्त परूवणं—

प. से किं तं मणपज्जवनाणं?
मणपज्जवनाणे णं भन्ते! किं मणुस्साणं उप्पज्जइ, अमणुस्साणं?

उ. गोयमा! मणुस्साणं, णो अमणुस्साणं।

प. जइ मणुस्साणं–किं सम्मुच्छिममणुस्साणं, गब्भवक्कं- तिय मणुस्साणं?

उ. गोयमा! णो सम्मुच्छिममणुस्साणं, गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं उपज्जइ।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं
किं कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं?
अकम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं?
अंतरदीवग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं?

उ. गोयमा! कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं, णो अकम्मभूमिअ - गब्भवक्कंतिय - मणुस्साणं, णो अंतरदीवग- गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं,

९८. मनःपर्यवज्ञान के स्वामित्व का प्ररूपण—

प्र. भन्ते! मनःपर्यवज्ञान का क्या स्वरूप है?
भन्ते! यह मनःपर्यव ज्ञान मनुष्यों को उत्पन्न होता है या अमनुष्यों को उत्पन्न होता है?

उ. गौतम! (मनःपर्यवज्ञान) मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है, अमनुष्यों को नहीं होता है।

प्र. यदि मनुष्यों को उत्पन्न होता है तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों को उत्पन्न होता है या गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को उत्पन्न होता है?

उ. गौतम! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों को उत्पन्न नहीं होता किन्तु गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को उत्पन्न होता है।

प्र. यदि गर्भज मनुष्यों को ही मनःपर्यवज्ञान होता है तो
क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है?
अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है?
या अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों को होता है?

उ. गौतम! कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है, अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को उत्पन्न नहीं होता है, अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यों को भी उत्पन्न नहीं होता है।

---

१. (क) विया. स. [illegible]
(ख) [illegible]

२. (क) ठाणं. [illegible]
(ख) [illegible]

उक्कोसेणं अहेसत्तमाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरिमंते, तिरियं जाव असंखेज्जे दीव-समुद्दे, उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं ओहिणा जाणंति पासंति।

उत्कृष्ट अधःसप्तमपृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक, तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्र तक, ऊपर अपने विमानों तक अवधिज्ञान से जानते-देखते हैं।

प. अणुत्तरोववाइयदेवा णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?

प्र. भन्ते! अनुत्तरोपपातिकदेव अवधिज्ञान से कितने क्षेत्र को जानते-देखते हैं?

उ. गोयमा! संभिन्नं लोगणालिं ओहिणा जाणंति पासंति[1]।

—पण्ण. प. ३३, सु. १९८३-२००७

उ. गौतम! वे अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोकनाडी को जानते-देखते हैं।

९४. चउवीसदंडएसु ओहीणाणस्स संठाण परूवणं–

९४. चौबीसदंडकों में अवधिज्ञान के संस्थान का प्ररूपण–

प. दं. १. णेरइयाणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

प्र. दं. १. भन्ते! नारकों का अवधिज्ञान किस आकार वाला कहा गया है?

उ. गोयमा! तप्पगारसंठिए पण्णत्ते।

उ. गौतम! वह तप्र (नौका) के आकार का कहा गया है।

प. दं. २. असुरकुमाराणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

प्र. दं. २. भन्ते! असुरकुमारों का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है?

उ. गोयमा! पल्लगसंठिए पण्णत्ते।

उ. गौतम! वह पल्लक (धान्य माप के पात्र) के आकार का कहा गया है।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यंत के अवधिज्ञान का संस्थान जानना चाहिए।

प. दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

प्र. दं. २०. भन्ते! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिकों का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है?

उ. गोयमा! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

दं. २१. एवं मणूसाण वि।

उ. गौतम! वह नाना आकारों वाला कहा गया है।

दं. २१. इसी प्रकार मनुष्यों के अवधिज्ञान का संस्थान जानना चाहिए।

प. दं. २२. वाणमंतराणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

प्र. दं. २२. भन्ते! वाणव्यन्तर देवों का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है?

उ. गोयमा! पडहसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

उ. गौतम! वह पटह (वाद्य) के आकार का कहा गया है।

प. दं. २३. जोइसियाणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

प्र. दं. २३. भन्ते! ज्योतिष्कदेवों का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है?

उ. गोयमा! झल्लरिसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

उ. गौतम! वह झालर के आकार का कहा गया है।

प. दं. २४. सोहम्मगदेवाणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

प्र. दं. २४. भन्ते! सौधर्मदेवों का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है?

उ. गोयमा! उड्ढमुइंगागारसंठिए पण्णत्ते।

एवं जाव अच्चुयदेवाणं।

उ. गौतम! वह ऊर्ध्व मृदंग के आकार का कहा गया है।

इसी प्रकार अच्युतदेवों पर्यन्त के अवधिज्ञान का आकार समझना चाहिए।

प. गेवेज्जगदेवाणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

प्र. भन्ते! ग्रैवेयकदेवों का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है?

उ. गोयमा! पुप्फचंगेरिसंठिए पण्णत्ते।

उ. गौतम! वह फूलों की चंगेरी के आकार का कहा गया है।

प. अणुत्तरोववाइयाणं भंते! ओही किं संठिए पण्णत्ते?

प्र. भन्ते! अनुत्तरोपपातिक देवों का अवधिज्ञान किस आकार का कहा गया है?

उ. गोयमा! जवनालियासंठिए ओही पण्णत्ते।

—पण्ण. प. ३३ सु. २००८-२०१६

उ. गौतम! उनका अवधिज्ञान यवनालिका के आकार का कहा गया है।

९५. चउवीसदंडएसु ओहिनाणस्स आणुगामित्ताइ परूवणं–

९५. चौबीस दण्डकों में अवधि ज्ञान के आनुगामित्वादि का प्ररूपण–

प. दं. १. णेरइयाणं भंते! ओही किं– १. आणुगामिए, २. अणाणुगामिए, ३. वड्ढमाणए,

प्र. दं. १. भन्ते! नारकों का अवधिज्ञान क्या– १. आनुगामिक है, २. अनानुगामिक है, ३. वर्द्धमान है,

---

1. [illegible]

४. हीयमाणए, ५. पडिवाई, ६. अपडिवाई,
७. अवट्ठिए, ८. अणवट्ठिए?

उ. गोयमा! आणुगामिए, णो अणाणुगामिए, नो वड्ढमाणए नो हीयमाणए, नो पडिवाई, अपडिवाई, अवट्ठिए, नो अणवट्ठिए।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. दं.२०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं भंते! ओही किं आणुगामिए जाव अणवट्ठिए?

उ. गोयमा! आणुगामिए वि जाव अणवट्ठिए वि।

दं. २१. एवं मणूसाण वि।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा णेरइयाणं[1]। *—पण्ण. प. ३३, सु. २०२७-२०३१*

४. हीयमान है, ५. प्रतिपाती है, ६. अप्रतिपाती है,
७. अवस्थित है, या ८. अनवस्थित है?

उ. गौतम! वह आनुगामिक है, किन्तु अनानुगामिक, वर्द्धमान, हीयमान, प्रतिपाती और अनवस्थित नहीं है, अप्रतिपाती और अवस्थित है।

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त के अवधिज्ञान के लिए जानना चाहिए।

प्र. दं. २०. भन्ते! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों का अवधिज्ञान आनुगामिक है यावत् अनवस्थित है?

उ. गौतम! वह आनुगामिक भी है यावत् अनवस्थित भी है।

दं. २१. इसी प्रकार मनुष्यों के अवधिज्ञान के लिए जानना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, और वैमानिक देवों का कथन नारकों के जैसा है।

९६. मणपज्जवनाणस्स लक्खणं–

मणपज्जवणाणं पुण, जणमणपरिचिंतियत्थपागडणं।
माणुसखेत्तणिबद्धं, गुणपच्चइयं चरित्तवओ॥५५॥
—नंदी. सु. ३८

९६. मनःपर्यवज्ञान का लक्षण–

मनःपर्यवज्ञान सभी जीवों के मन में सोचे हुए अर्थ को प्रकट करने वाला है और मनुष्य क्षेत्र में सीमित तथा चारित्रयुक्त साधु के क्षयोपशम गुण से उत्पन्न होने वाला है।

९७. मणपज्जवनाणस्स भेया–

तं च दुविहं उप्पज्जइ, तं जहा–
१. उज्जुमई य, २. विउलमई य[2]।
—नंदी. सु. ३६ (ख)

९७. मनःपर्यवज्ञान के भेद–

वह (मनःपर्यवज्ञान) दो प्रकार का है, यथा–
१. ऋजुमति, २. विपुलमति।

९८. मणपज्जवणाणस्स सामित्त परूवणं–

प. से कि तं मणपज्जवनाणं?
मणपज्जवनाणे णं भन्ते! किं मणुस्साणं उप्पज्जइ, अमणुस्साणं?

उ. गोयमा! मणुस्साणं, णो अमणुस्साणं।

प. जइ मणुस्साणं–किं सम्मुच्छिममणुस्साणं, गब्भवक्कं- तिय मणुस्साणं?

उ. गोयमा! णो सम्मुच्छिममणुस्साणं, गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं उपज्जइ।

प. जइ गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं
किं कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं?
अकम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं?
अंतरदीवग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं?

उ. गोयमा! कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,
णो अकम्मभूमिअ - गब्भवक्कंतिय - मणुस्साणं,
णो अंतरदीवग- गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं,

९८. मनःपर्यवज्ञान के स्वामित्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते! मनःपर्यवज्ञान का क्या स्वरूप है?
भन्ते! यह मनःपर्यव ज्ञान मनुष्यों को उत्पन्न होता है या अमनुष्यों को उत्पन्न होता है?

उ. गौतम! (मनःपर्यवज्ञान) मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है, अमनुष्यों को नहीं होता है।

प्र. यदि मनुष्यों को उत्पन्न होता है तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों को उत्पन्न होता है या गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को उत्पन्न होता है?

उ. गौतम! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों को उत्पन्न नहीं होता किन्तु गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को उत्पन्न होता है।

प्र. यदि गर्भज मनुष्यों को ही मनःपर्यवज्ञान होता है तो
क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है?
अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है?
या अन्तरद्वीपज गर्भज मनुष्यों को होता है?

उ. गौतम! कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है, अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को उत्पन्न नहीं होता है, अन्तरद्वीपज गर्भज मनुष्यों को भी उत्पन्न नहीं होता है।

---

१. (क) विया. स. १६, उ. १०, सु. १
(ख) सम. सु. १५३

२. (क) ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ६०/१६
(ख) राय. सु. २४१

प. जइ कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

किं संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

असंखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

णो असंखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं।

प. जइ संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं–

किं पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

अपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं?

उ. गोयमा ! पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय- मणुस्साणं,

णो अपज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं।

प. जइ पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं–

किं सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

मिच्छद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

सम्मामिच्छद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं?

उ. गोयमा ! सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

णो मिच्छद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

णो सम्मामिच्छद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

प. जइ सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

किं संजय सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

असंजय सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

संजयासंजय सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्ज-वासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं?

उ. गोयमा ! संजय सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्ज-वासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

प्र. यदि कर्मभूमिज मनुष्यों को ही मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है तो–

क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है? या

असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है?

उ. गौतम ! संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है,

असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को उत्पन्न नहीं होता है।

प्र. यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता है तो

क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है

या संख्यात वर्ष की आयु वाले अपर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है?

उ. गौतम ! संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है,

संख्यात वर्ष की आयु वाले अपर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को नहीं होता है।

प्र. यदि मनःपर्यवज्ञान संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता है तो–

क्या वह संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज सम्यक्दृष्टि मनुष्यों को होता है,

संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज मिथ्यादृष्टि मनुष्यों को होता है,

या संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्यों को उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज सम्यक्दृष्टि मनुष्यों को होता है,

संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज मिथ्यादृष्टि मनुष्यों को नहीं होता है,

संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्यों को भी नहीं होता है।

प्र. यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को होता है तो–

क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज संयत (संयमी) सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को होता है,

संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज असंयत (असंयमी) सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को होता है या

संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज संयतासंयत (देशविरत) सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को होता है?

उ. गौतम ! संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को उत्पन्न होता है,

णो असंजय सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

णो संजया-संजय सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय- कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय- मणुस्साणं।

प. जइ संजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

किं पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय- कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय- मणुस्साणं,

अपमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवा- साउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय- मणुस्साणं ?

उ. गोयमा ! अपमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय- कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय- मणुस्साणं,

णो पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय- कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय- मणुस्साणं।

प. जइ अपमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय- मणुस्साणं–

किं इड्ढिपत्त-अपमत्तसंजय-समद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय- कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय- मणुस्साणं,

अणिड्ढिपत्त-अपमत्त-संजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ-गब्भवक्कंतिय- मणुस्साणं ?

उ. गोयमा ! इड्ढिपत्त-अपमत्त-संजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग- संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ- गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं,

णो अणिड्ढिपत्त-अप्पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिअ- गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं मणपज्जवनाणं समुप्पज्जइ।

–नंदी. सु. २८-३६

संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को नहीं होता है,

संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज संयतासंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को भी नहीं होता है।

प्र. यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को होता है तो–

क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज प्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को होता है ? या

संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को होता है ?

उ. गौतम ! संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को होता है,

संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज प्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को नहीं होता है।

प्र. यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है तो,

क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज ऋद्धिप्राप्त लब्धिधारी अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को होता है या

संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज लब्धिरहित अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को होता है ?

उ. गौतम ! संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज ऋद्धि सहित अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है।

संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज ऋद्धिरहित अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न नहीं होता है।

९९. केवलनाणस्स वित्थरओ परूवणं–

प. से किं तं केवलनाणं ?

उ. केवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. भवत्थकेवलनाणं च, २. सिद्धकेवलनाणं च।

प. से किं तं भवत्थकेवलनाणं ?

उ. भवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. सजोगिभवत्थकेवलनाणं च,

२. अजोगिभवत्थकेवलनाणं च।

प. से किं तं सजोगिभवत्थकेवलनाणं ?

उ. सजोगिभवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. पढमसमय-सजोगिभवत्थकेवलनाणं च,

२. अपढमसमय-सजोगिभवत्थकेवलनाणं च।

९९. केवलज्ञान का विस्तार से प्ररूपण–

प्र. केवलज्ञान क्या है ?

उ. केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. भवस्थ-केवलज्ञान, २. सिद्ध-केवलज्ञान।

प्र. भवस्थ-केवलज्ञान कितने प्रकार का है ?

उ. भवस्थ-केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सयोगिभवस्थ-केवलज्ञान,

२. अयोगिभवस्थ-केवलज्ञान।

प्र. सयोगिभवस्थ-केवलज्ञान क्या है ?

उ. सयोगिभवस्थ-केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रथमसमय-सयोगिभवस्थ केवलज्ञान,

२. अप्रथमसमय-सयोगिभवस्थ केवलज्ञान।

अहवा १. चरिमसमय-सजोगिभवत्थकेवलनाणं च,

२. अचरिमसमय-सजोगिभवत्थकेवलनाणं च।

से तं सजोगिभवत्थकेवलनाणं।

प. से किं तं अजोगिभवत्थकेवलनाणं?

उ. अजोगिभवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. पढमसमय-अजोगिभवत्थकेवलनाणं च,

२. अपढमसमय-अजोगिभवत्थकेवलनाणं च।

अहवा १. चरिमसमय-अजोगिभवत्थकेवलनाणं च,

२. अचरिमसमय-अजोगिभवत्थकेवलनाणं च।

से तं अजोगिभवत्थकेवलनाणं।

से तं भवत्थकेवलनाणं।

प. से किं तं सिद्धकेवलनाणं?

उ. सिद्धकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. अणंतरसिद्धकेवलनाणं च,

२. परंपरसिद्धकेवलनाणं च।

प. से किं तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं?

उ. अणंतरसिद्धकेवलनाणं पण्णरसविहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. तित्थसिद्धा, २. अतित्थसिद्धा,
३. तित्थगरसिद्धा, ४. अतित्थगरसिद्धा,
५. सयंबुद्धसिद्धा, ६. पत्तेयबुद्धसिद्धा,
७. बुद्धबोहियसिद्धा, ८. इत्थिलिंगसिद्धा,
९. पुरिसलिंगसिद्धा, १०. णपुंसगलिंगसिद्धा,
११. सलिंगसिद्धा, १२. अण्णलिंगसिद्धा,
१३. गिहिलिंगसिद्धा, १४. एगसिद्धा,
१५. अणेगसिद्धा।

से तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं।

प. से किं तं परंपरसिद्धकेव[illegible]णं?

उ. परंपरसिद्धकेवलनाणं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा–

अपढमसमयसिद्धा, दुसमयसिद्धा जाव दससमयसिद्धा, संखेज्जसमयसिद्धा, असंखेज्जसमयसिद्धा, अणंतसमयसिद्धा।[1]

अथवा १. चरमसमय-सयोगिभवस्थ केवलज्ञान,

२. अचरमसमय-सयोगिभवस्थ केवलज्ञान।

यह सयोगिभवस्थ केवलज्ञान है।

प्र. अयोगिभवस्थ केवलज्ञान क्या है?

उ. अयोगिभवस्थ केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रथमसमय-अयोगिभवस्थ केवलज्ञान,

२. अप्रथमसमय-अयोगिभवस्थ केवलज्ञान,

अथवा १. चरमसमय-अयोगिभवस्थ केवलज्ञान,

२. अचरमसमय-अयोगिभवस्थ केवलज्ञान।

यह अयोगिभवस्थ केवलज्ञान है।

यह भवस्थकेवलज्ञान है।

प्र. सिद्ध केवलज्ञान क्या है?

उ. सिद्धकेवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान,

२. परम्परसिद्ध केवलज्ञान।

प्र. अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान क्या है?

उ. अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान पन्द्रह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. तीर्थसिद्ध, २. अतीर्थसिद्ध,
३. तीर्थंकरसिद्ध, ४. अतीर्थंकरसिद्ध,
५. स्वयंबुद्धसिद्ध, ६. प्रत्येकबुद्धसिद्ध,
७. बुद्धबोधितसिद्ध, ८. स्त्रीलिंगसिद्ध,
९. पुरुषलिंगसिद्ध, १०. नपुंसकलिंगसिद्ध,
११. स्वलिंगसिद्ध, १२. अन्यलिंगसिद्ध,
१३. गृहिलिंगसिद्ध, १४. एकसिद्ध,
१५. अनेकसिद्ध।

यह अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान है।

प्र. परम्परसिद्ध केवलज्ञान क्या है?

उ. परम्परसिद्ध केवलज्ञान अनेक प्रकार का कहा गया है, यथा–

अप्रथमसमयसिद्ध, द्विसमयसिद्ध यावत् दससमयसिद्ध, संख्यातसमयसिद्ध, असंख्यातसमयसिद्ध, अनन्तसमयसिद्ध।

---

1. [illegible]

सिद्धकेवलनाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव, २. परंपरसिद्धकेवलनाणे चेव।
अणंतरसिद्धकेवलनाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. एक्काणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव, २. अणेक्काणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव।
परंपरसिद्धकेवलनाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. एक्कपरंपरसिद्धकेवलनाणे चेव, २. अणेक्कपरंपरसिद्धकेवलनाणे चेव।
–ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ६०/३-११

से तं परंपरसिद्धकेवलनाणं।
से तं सिद्धकेवलनाणं।
अह सव्वदव्व-परिणाम-भाव-विण्णत्तिकारणमणंतं।
सासयमप्पडिवाई, एगविहं केवलं नाणं॥

केवलनाणेणऽत्थे, नाउं जे तत्थ पण्णवणजोग्गे।
ते भासइ तित्थयरो, वइजोगसुअं हवइ सेसं॥

से तं केवलनाणं।
से तं नोइन्दियपच्चक्खं। –*नंदी सु. ३९-४४*

यह परम्परसिद्ध केवलज्ञान है।
यह सिद्ध केवलज्ञान है।
केवलज्ञान सम्पूर्ण द्रव्यों को, उत्पाद आदि परिणामों को और भाव (पर्यायों) को जानने का कारण है। वह अनन्त, शाश्वत तथा अप्रतिपाति है और वह एक ही प्रकार का है।
केवलज्ञान के द्वारा पदार्थों को जानकर उनमें जो वर्णन करने योग्य होता है उनका तीर्थंकर देव कथन करते हैं। वह उनका सम्पूर्ण वचनयोग द्रव्यश्रुत है।
यह केवलज्ञान का स्वरूप है।
यह नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष का वर्णन है।

१००. केवलिणो नाणे विसिट्ठत्तं–

प. केवली णं भंते ! आयाणेहिं जाणइ पासइ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ–
"केवली आयाणेहिं ण जाणइ, ण पासइ?"

उ. गोयमा ! केवली णं पुरत्थिमे णं मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ।
एवं दाहिणे णं, पच्चत्थिमे णं, उत्तरे णं।
उड्ढं अहे मियं पि जाणइ, अमियं पि जाणइ।

सव्वं जाणइ केवली, सव्वं पासइ केवली।
सव्वओ जाणइ केवली, सव्वओ पासइ केवली।

सव्वकालं जाणइ केवली, सव्वकालं पासइ केवली।

सव्वभावे जाणइ केवली, सव्वभावे पासइ केवली।

अणंते नाणे केवलिस्स, अणंते दंसणे केवलिस्स।
निव्वुडे (णिरावरणे) नाणे केवलिस्स निव्वुडे (णिरावरणे) दंसणे केवलिस्स[1]।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"केवली आयाणेहिं ण जाणइ, ण पासइ[2]।
–*विया. स. ५, उ. ४, सु. ३४*

१००. केवली के ज्ञान का विशिष्टत्व–

प्र. भन्ते ! क्या केवली भगवान् आदानों (इन्द्रियों) से जानते देखते हैं?

उ. गौतम ! यह शक्य नहीं है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"केवली भगवान् इन्द्रियों से नहीं जानते और नहीं देखते हैं?"

उ. गौतम ! केवली भगवान् पूर्व दिशा में परिमित भी जानते-देखते हैं और अपरिमित भी जानते-देखते हैं।
इसी प्रकार दक्षिण में, पश्चिम में, उत्तर में,
ऊपर, नीचे परिमित भी जानते-देखते हैं और अपरिमित भी जानते-देखते हैं।
केवली सब जानता है, केवली सब देखता है,
केवली सब ओर से जानता है, केवली सब ओर से देखता है,
केवली सभी काल को जानता है, केवली सभी काल को देखता है,
केवली सब भावों को जानता है, केवली सब भावों को देखता है,
केवली का ज्ञान अनन्त है, केवली का दर्शन अनन्त है,
केवली का ज्ञान निरावरण है, केवली का दर्शन निरावरण है।
इस कारण से गौतम ऐसा कहा जाता है कि–
"केवली इन्द्रियों से नहीं जानते हैं और नहीं देखते हैं।"

१०१. केवली छउमत्थाणं जाण-पासण-अंतरं–

प. केवली णं भंते ! अंतकरं वा अंतिमसरीरियं वा जाणइ पासइ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. जहा णं भन्ते ! केवली अंतकरं वा अंतिमसरीरियं वा जाणइ पासइ, तहा णं छउमत्थे वि अंतकरं वा अंतिमसरीरियं वा जाणइ पासइ?

१०१. छद्मस्थ और केवली के जानने-देखने में अन्तर–

प्र. भन्ते ! क्या केवली अन्तकर (सिद्ध) को या चरमशरीरी को जानता-देखता है?

उ. हाँ, गौतम ! वह जानता देखता है।

प्र. भन्ते ! जिस प्रकार केवली मनुष्य अन्तकर (सिद्ध) को या अन्तिमशरीरी को जानता-देखता है, क्या उसी प्रकार छद्मस्थ-मनुष्य भी अन्तकर को अथवा अन्तिमशरीरी को जानता-देखता है?

---

१. "अमियं पि जाणइ जाव निव्वुडे दंसणे केवलिस्स" (विया. स. ५, उ. ४, सु. ४/२) से इस पाठ को यहां पूर्ण किया गया है।

२. विया. स. ६, उ. १०, सु. १४

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, सोच्चा जाणइ पासइ, पमाणओ वा।

प. से किं तं सोच्चा ?

उ. सोच्चा णं केवलिस्स वा, केवलिसावयस्स वा, केवलिसावियाए वा, केवलिउवासगस्स वा, केवलिउवासियाए वा, तप्पक्खियस्स वा, तप्पक्खियसावगस्स वा, तप्पक्खियसावियाए वा, तप्पक्खियउवासगस्स वा, तप्पक्खियउवासियाए वा।

से तं सोच्चा।

प. से किं तं पमाणे ?

उ. गोयमा ! पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. पच्चक्खे, २. अणुमाणे, ३. ओवम्मे, ४. आगमे।

जहा अणुओगद्दारे तहा णेयव्वं पमाणं जाव तेण परं नो अत्तागमे, नो अणंतरागमे, परंपरागमे।

प. केवली णं भंते ! चरमकम्मं वा, चरमनिज्जरं वा जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ, पासइ।

प. जहा णं भंते ! केवली चरमकम्मं वा, चरमनिज्जरं वा जाणइ पासइ, तहा णं छउमत्थे वि चरिमकम्मं वा चरिमनिज्जरं वा जाणइ, पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, सोच्चा जाणइ पमाणओ वा।

जेसं जहा अंतकरेण आलावगो तहा चरिमकम्मेण वि अपरिसेसिओ णेयव्वो। *–विया. स. ५, उ. ४, सु. २५-२८*

१०२. केवलि-सिद्धाणं जाणण-पासण सामत्थ परूवणं–

प. केवली णं भंते ! छउमत्थं जाणइ, पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ, पासइ।

प. जहा णं भंते ! केवली छउमत्थं जाणइ पासइ, तहा णं सिद्धे वि छउमत्थं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ, पासइ।

प. केवली णं भंते ! आहोहियं जाणइ पासइ ?

उ. [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]–

प. [illegible]

उ. [illegible]

[illegible]

प्र. गौतम ! यह शक्य नहीं है, किन्तु छद्मस्थ मनुष्य वि
सुनकर अथवा प्रमाण द्वारा अन्तकर और अन्तिम
को जानता-देखता है।

प्र. भन्ते ! सुनकर का क्या अर्थ है ?

उ. गौतम ! केवली से, केवली के श्रावक से, केवल
श्राविका से, केवली के उपासक से, केवली की उप
से, केवली-पाक्षिक से, केवली-पाक्षिक के श्राव
केवली-पाक्षिक की श्राविका से, केवली पाक्षिक के उ
से अथवा केवली पाक्षिक की उपासिका से, इसमें से
के द्वारा "सुनकर" जानता और देखता है।

यह "सुनकर" का स्वरूप है।

प्र. भन्ते ! प्रमाण का क्या अर्थ है ?

उ. गौतम ! प्रमाण चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३. औपम्य, ४. आगम। (इ
किसी भी प्रमाण के द्वारा जानता व देखता है।)

जिस प्रकार से प्रमाण भेदों का अनुयोगद्वार में वर्णन
गया है उसी प्रकार यहां पर भी आत्मागम नहीं, अनंत
नहीं किन्तु परंपरागम है पर्यन्त कथन करना चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या केवली चरमकर्म को अथवा चरमनिर्ज
जानता-देखता है ?

उ. हां, गौतम ! वह जानता-देखता है।

प्र. भन्ते ! जिस प्रकार केवली चरमकर्म को या चरमनिर्ज
जानता-देखता है, क्या उसी तरह छद्मस्थ भी चरमक
चरमनिर्जरा को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! यह शक्य नहीं है। किन्तु किसी से सुनकर या प्र
द्वारा जानता-देखता है।

शेष सम्पूर्ण वर्णन अन्तकर (सिद्ध) के आलापक के
चरमकर्म का भी जानना चाहिए।

१०२. केवली एवं सिद्धों में जानने-देखने के सामर्थ्य का प्ररूपण

प्र. भन्ते ! क्या केवलज्ञानी छद्मस्थ को जानते-देखते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! जानते-देखते हैं।

प्र. भन्ते ! जिस प्रकार केवलज्ञानी, छद्मस्थ को जानते-
हैं, क्या उसी प्रकार सिद्ध भी छद्मस्थ को जानते-देखते

उ. हाँ, गौतम ! जानते-देखते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या केवलज्ञानी, आधोवधिक (प्रतिनियत
विषयक अवधिज्ञान वाले) को जानते-देखते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार परमावधिज्ञानी को भी जानते-देखते हैं।

इसी प्रकार केवलज्ञानी को भी जानते-देखते हैं।

इसी प्रकार सिद्धों के लिए भी कहना चाहिए यावत्–

प्र. भन्ते ! जिस प्रकार केवलज्ञानी सिद्ध को जानते-देख
क्या उसी प्रकार सिद्ध भी (दूसरे) सिद्ध को जानते-देखते

उ. हाँ, गौतम ! वे जानते-देखते हैं।

प. केवली णं भंते ! इमं रयणप्पभं पुढविं "रयणप्पभ पुढवी" त्ति जाणइ, पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ, पासइ।

प. जहा णं भंते ! केवली इमं रयणप्पभं पुढविं "रयणप्पभपुढवी" त्ति जाणइ पासइ ?

तहा णं सिद्धे वि इमं रयणप्पभं पुढविं "रयणप्पभ पुढवी" त्ति जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ, पासइ।

प. केवली णं भंते ! सक्करप्पभं पुढविं सक्करप्पभपुढवी त्ति जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव अहेसत्तमा

प. केवली णं भंते ! सोहम्मं कप्पं, सोहम्मकप्पे त्ति जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं ईसाणं।

एवं जाव अच्चुयं।

प. केवली णं भंते ! गेवेज्जविमाणे-गेवेज्जविमाणे त्ति जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं अणुत्तरविमाणे वि।

प. केवली णं भंते ! ईसिपब्भारं पुढविं "ईसीपब्भारपुढवी" त्ति जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

प. केवली णं भंते ! परमाणुपोग्गलं परमाणुपोग्गले त्ति जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं दुपदेसियं खंधं एवं जाव–

प. जहा णं भंते ! केवली अणंतपदेसियं खंधे "अणंतपदेसिए खंधे" त्ति जाणइ पासइ, तहा णं सिद्धे वि अणंतपदेसियं जाणइ, पासइ।

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ, पासइ।

–विया. स. १४, उ. १०, सु. १२-२४

प्र. भन्ते ! क्या केवलज्ञानी इस रत्नप्रभापृथ्वी को यह "रत्नप्रभापृथ्वी है" इस प्रकार जानते-देखते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! जानते-देखते हैं।

प्र. भन्ते ! जिस प्रकार केवली इस रत्नप्रभापृथ्वी को "यह रत्नप्रभापृथ्वी है" इस प्रकार जानते देखते हैं ?

क्या उसी प्रकार सिद्ध भी इस रत्नप्रभापृथ्वी को "यह रत्नप्रभापृथ्वी है" इस प्रकार जानते-देखते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! जानते-देखते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या केवलज्ञानी शर्कराप्रभापृथ्वी को "यह शर्कराप्रभापृथ्वी है" इस प्रकार जानते-देखते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! उसी प्रकार (केवली और सिद्ध दोनों के विषय में पूर्ववत्) समझना चाहिए।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या केवलज्ञानी सौधर्मकल्प को यह सौधर्मकल्प है इस प्रकार जानते देखते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार ईशान देवलोक के विषय में भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार अच्युतकल्प पर्यन्त के लिए कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या केवलज्ञानी ग्रैवेयकविमान को "ग्रैवेयकविमान है" इस प्रकार जानते देखते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए।

इसी प्रकार (पांच) अनुत्तर विमानों के विषय में कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या केवलज्ञानी ईषत्प्राग्भारापृथ्वी को "ईषत्प्राग्भारापृथ्वी है" इस प्रकार जानते देखते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या केवलज्ञानी परमाणुपुद्गल को यह "परमाणुपुद्गल है" इस प्रकार जानते-देखते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए।

इसी प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध के विषय में भी समझना चाहिए, इसी प्रकार यावत्–

प्र. भन्ते ! जैसे केवली अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध को "यह अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध है" इस प्रकार जानते-देखते हैं क्या वैसे ही सिद्ध भी "अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध" को अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध है इस प्रकार जानते-देखते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! वे जानते-देखते हैं।

१०३. केवलि-सिद्धेसु भासणाइ परूवणं–

प. केवली णं भंते ! भासेज्ज वा वागरेज्ज वा ?

उ. हंता, गोयमा ! भासेज्ज वा, वागरेज्ज वा।

प. जहा णं भंते ! केवली भासेज्ज वा, वागरेज्ज वा, तहा णं सिद्धे वि भासेज्ज वा, वागरेज्ज वा ?

१०३. केवली और सिद्धों में भाषा आदि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या केवलज्ञानी बोलते हैं या प्रश्न का उत्तर देते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! वे बोलते भी हैं और प्रश्न का उत्तर भी देते हैं।

प्र. भन्ते ! जिस प्रकार केवली बोलते हैं या प्रश्न का उत्तर देते हैं, क्या उसी प्रकार सिद्ध भी बोलते हैं और प्रश्न का उत्तर देते हैं ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहा णं केवली भासेज्ज वा, वागरेज्ज वा, नो तहा णं सिद्धे भासेज्ज वा, वागरेज्ज वा ?

उ. गोयमा ! केवली णं सउट्ठाणे सकम्मे सबले सवीरिए सपुरिसक्कार परक्कमे, सिद्धे णं अणुट्ठाणे जाव अपुरिसक्कारपरक्कमे।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जहा णं केवली भासेज्ज वा, वागरेज्ज वा, नो तहा णं सिद्धे भासेज्ज वा वागरेज्ज वा।

प. केवली णं भंते ! उम्मिसेज्ज वा, निम्मिसेज्ज वा ?

उ. हंता, गोयमा ! उम्मिसेज्ज वा, निम्मिसेज्ज वा।

प. जहा णं भंते ! केवली उम्मिसेज्ज वा निमिसेज्ज वा तहा णं सिद्धे वि उम्मिसेज्ज वा निम्मिसेज्ज वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । सेसं जहा वागरणं आलायगो तहा उम्मिसेण वि अपरिसेसिओ णेयव्वो।

एवं आउट्टेज्ज वा, पसारेज्ज वा।

एवं ठाणं वा, सेज्जं वा, निसीहियं वा चेएज्जा।

–विया. स. १४, उ. १०, सु. ७-११

उ. गौतम ! यह शक्य नहीं हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"केवली बोलते हैं एवं प्रश्न का उत्तर देते हैं, किन्तु सिद्ध भगवान् न बोलते हैं और न प्रश्न का उत्तर देते हैं ?

उ. गौतम ! केवलज्ञानी उत्थान, कर्म, बल, वीर्य एवं पुरुषकार-पराक्रम से सहित हैं, जबकि सिद्ध भगवान् उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम से रहित हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'केवलज्ञानी बोलते हैं एवं प्रश्न का उत्तर देते हैं, किन्तु सिद्ध भगवान् न बोलते हैं और न प्रश्न का उत्तर देते हैं।'

प्र. भन्ते ! केवलज्ञानी अपनी आंखें खोलते हैं अथवा बन्द करते हैं ?

उ. हाँ गौतम ! वे आँखें खोलते हैं और बन्द करते हैं।

प्र. भन्ते ! जिस प्रकार केवली आँखें खोलते हैं और बन्द करते हैं, क्या उसी प्रकार सिद्ध भी आँखें खोलते हैं और बन्द करते हैं ?

उ. गौतम ! यह शक्य नहीं है। शेष सम्पूर्ण वर्णन उपरोक्त सिद्ध के बोलने आदि के आलापक के समान जान लेना चाहिए।

इसी प्रकार अंगों को संकुचित करने और फैलाने सम्बन्धी आलापक जानना चाहिए।

इसी प्रकार खड़े रहने, सोने और बैठने सम्बन्धी आलापक भी जानना चाहिए।

१०४. छउमत्थेणं केवलणाणिस्स विसेसओ–

दस ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं न जाणइ न पासइ, तं जहा–

१. धम्मत्थिकायं, २. अधम्मत्थिकायं,
३. आगासत्थिकायं, ४. जीवं असरीरपडिबद्धं,
५. परमाणुपोग्गलं[1], ६. सद्दं[2],
७. गंधं[3], ८. वातं[4],
९. अयं जिणे भविस्सइ वा, ण वा भविस्सइ,
१०. अयं सव्वदुक्खाणं अंतं करेस्सइ वा, न वा करेस्सइ।

एयाणि चेव उप्पन्ननाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणइ पासइ, तं जहा–

१. धम्मत्थिकायं जाव

१०. अयं सव्वदुक्खाणं अंतं करेस्सइ वा, न वा करेस्सइ। [illegible]

१०४. छद्मस्थ से केवलज्ञानी की विशेषता–

दस पदार्थों को छद्मस्थ सम्पूर्ण रूप से न जानता है और न देखता है, यथा–

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय,
३. आकाशास्तिकाय, ४. शरीरमुक्तजीव,
५. परमाणुपुद्गल, ६. शब्द,
७. गन्ध, ८. वायु,
९. यह जिन होगा या नहीं होगा ?
१०. यह सभी दुःखों का अन्त करेगा या नहीं करेगा ?

किन्तु उत्पन्न ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले अर्हत् जिन केवली इनको सम्पूर्ण रूप से जानते देखते हैं, यथा–

१. धर्मास्तिकाय, यावत्
१०. यह सभी दुःखों का अन्त करेगा या नहीं।

१०५. [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

१०५. छद्मस्थ और केवली का परिचय–

सात हेतुओं से छद्मस्थ जाना जाता है, यथा–

१. जो प्राणी का अतिपात करता है,
२. जो मृषा बोलता है,

[illegible]

४. विया. स. ८, उ. २, सु. २०-२१

३. अदिन्नमादित्ता भवइ,
४. सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे आसादेत्ता भवइ,
५. पूयासक्कारमणुवूहेत्ता भवइ,
६. इमं सावज्ज त्ति पण्णवेत्ता पडिसेवेत्ता भवइ,
७. णो जहावादी तहाकारी यावि भवइ।
सत्तहिं ठाणेहिं केवली जाणेज्जा, तं जहा–
१. णो पाणे अइवाइत्ता भवइ जाव २-७ जहावाई तहाकारी यावि भवइ। –*ठाणं. अ. ७, सु. ५५०*

३. जो अदत्त का ग्रहण करता है,
४. जो शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का आस्वादक होता है,
५. जो पूजा और सत्कार का अनुमोदन करता है,
६. जो यह "सावद्य सपाप हैं" ऐसा कहकर भी उसका आसेवन करता है,
७. जो जैसा कहता है वैसा नहीं करता है।
सात हेतुओं से केवली जाना जाता है, यथा–
१. जो प्राणों का अतिपात नहीं करता यावत् २-७ जो जैसा कहता है वैसा करता है।

१०६. वेमाणियदेवेहिं केवलिस्स मणोवययोग विन्नाणं–

प. केवली णं भंते ! पणीयं मणं वा, वइं वा धारेज्जा?
उ. हंता, गोयमा ! धारेज्जा।
प. जे णं भंते ! केवली पणीयं मणं वा, वइं वा धारेज्जा तं णं वेमाणिया देवा जाणंति पासंति?
उ. गोयमा ! अत्थेगइया जाणंति पासंति,
अत्थेगइया न जाणंति न पासंति।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइया जाणंति पासंति, अत्थेगइया न जाणंति न पासंति?"
उ. गोयमा ! वेमाणिया देवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. मायिमिच्छादिट्ठिउववन्नगा य,
२. अमायिसम्मदिट्ठिउववन्नगा य।
तत्थ णं जे ते माइमिच्छादिट्ठीउववन्नगा ते ण जाणंति, ण पासंति।
तत्थ णं जे ते अमाइसम्मदिट्ठीउववन्नगा ते णं अत्थेगइया जाणंति-पासंति, अत्थेगइया ण जाणंति ण पासंति।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइया जाणंति-पासंति, अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति?"
उ. गोयमा ! अमाइसम्मदिट्ठी दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अणंतरोववण्णगा य,
२. परंपरोववण्णगा य।
तत्थ णं जे ते अणंतरोववण्णगा ते ण जाणंति, ण पासंति।
तत्थ णं जे ते परंपरोववण्णगा ते णं अत्थेगइया जाणंति-पासंति, अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइया जाणंति-पासंति, अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति?"
उ. गोयमा ! परंपरोववण्णगा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१०६. वैमानिक देवों द्वारा केवली के मन वचन योगों का ज्ञान–

प्र. भन्ते ! क्या केवली प्रशस्त मन और प्रशस्त वचन धारण करता है?
उ. हाँ, गौतम ! धारण करता है।
प्र. भन्ते ! केवली जिस प्रकार से प्रशस्त मन और प्रशस्त वचन को धारण करता है क्या उसे वैमानिक देव जानते-देखते हैं?
उ. गौतम ! कितने ही जानते-देखते हैं और
कितने ही नहीं जानते, नहीं देखते हैं।
प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"कितने ही देव जानते-देखते हैं, कितने ही देव नहीं जानते, नहीं देखते हैं?
उ. गौतम ! वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. मायीमिथ्यादृष्टि रूप से उत्पन्न,
२. अमायीसम्यग्दृष्टि रूप से उत्पन्न।
इनमें जो मायीमिथ्यादृष्टि हैं वे नहीं जानते हैं, नहीं देखते हैं।
किन्तु जो अमायीसम्यग्दृष्टि हैं वे कई जानते-देखते हैं और कई नहीं जानते हैं, नहीं देखते हैं।
प्र. भन्ते ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि–
"कई जानते-देखते हैं और कई नहीं जानते, नहीं देखते हैं?"
उ. गौतम ! अमायीसम्यग्दृष्टि दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अनन्तरोपपन्नक,
२. परम्परोपपन्नक।
इनमें से जो अनन्तरोपपन्नक हैं वे नहीं जानते, नहीं देखते हैं,
इनमें से जो परंपरोपपन्नक हैं वे कई जानते-देखते हैं और कई नहीं जानते, नहीं देखते हैं।
प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"कई जानते-देखते हैं और कई नहीं जानते, नहीं देखते हैं?"
उ. गौतम ! परम्परोपपन्नक (सम्यग्दृष्टि) भी दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहा णं केवली भासेज्ज वा, वागरेज्ज वा, नो तहा णं सिद्धे भासेज्ज वा, वागरेज्ज वा ?

उ. गोयमा ! केवली णं सउट्ठाणे सकम्मे सबले सवीरिए सपुरिसक्कार परक्कमे, सिद्धे णं अणुट्ठाणे जाव अपुरिसक्कारपरक्कमे।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जहा णं केवली भासेज्ज वा, वागरेज्ज वा, नो तहा णं सिद्धे भासेज्ज वा वागरेज्ज वा।

प. केवली णं भंते ! उम्मिसेज्ज वा, निम्मिसेज्ज वा ?

उ. हंता, गोयमा ! उम्मिसेज्ज वा, निम्मिसेज्ज वा।

प. जहा णं भंते ! केवली उम्मिसेज्ज वा निमिसेज्ज वा तहा णं सिद्धे वि उम्मिसेज्ज वा निम्मिसेज्ज वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । **सेसं जहा वागरणं आलावगो तहा उम्मिसेण वि अपरिसेसिओ णेयव्वो।**

एवं आउट्टेज्ज वा, पसारेज्ज वा।

एवं ठाणं वा, सेज्जं वा, निसीहियं वा चेएज्जा।

–विया. स. १४, उ. १०, सु. ७-११

उ. गौतम ! यह शक्य नहीं हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"केवली बोलते हैं एवं प्रश्न का उत्तर देते हैं, किन्तु सिद्ध भगवान् न बोलते हैं और न प्रश्न का उत्तर देते हैं ?

उ. गौतम ! केवलज्ञानी उत्थान, कर्म, बल, वीर्य एवं पुरुषकार-पराक्रम से सहित हैं, जबकि सिद्ध भगवान् उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम से रहित हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'केवलज्ञानी बोलते हैं एवं प्रश्न का उत्तर देते हैं, किन्तु सिद्ध भगवान् न बोलते हैं और न प्रश्न का उत्तर देते हैं।'

प्र. भन्ते ! केवलज्ञानी अपनी आंखें खोलते हैं अथवा बन्द करते हैं ?

उ. हाँ गौतम ! वे आँखें खोलते हैं और बन्द करते हैं।

प्र. भन्ते ! जिस प्रकार केवली आँखें खोलते हैं और बन्द करते हैं, क्या उसी प्रकार सिद्ध भी आँखें खोलते हैं और बन्द करते हैं ?

उ. गौतम ! यह शक्य नहीं है। **शेष सम्पूर्ण वर्णन उपरोक्त सिद्ध के बोलने आदि के आलापक के समान जान लेना चाहिए।**

इसी प्रकार अंगों को संकुचित करने और फैलाने सम्बन्धी आलापक जानना चाहिए।

इसी प्रकार खड़े रहने, सोने और बैठने सम्बन्धी आलापक भी जानना चाहिए।

१०४. छउमत्थेणं केवलणाणिस्स विसेसओ–

दस ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं न जाणइ न पासइ, तं जहा–

१. धम्मत्थिकायं, २. अधम्मत्थिकायं,
३. आगासत्थिकायं, ४. जीवं असरीरपडिबद्धं,
५. परमाणुपोग्गलं[1], ६. सद्दं[2],
७. गंधं[3], ८. वातं[4],
९. अयं जिणे भविस्सइ वा, ण वा भविस्सइ,
१०. अयं सव्वदुक्खाणं अंतं करेस्सइ वा, न वा करेस्सइ।

एयाणि चेव उप्पन्न-नाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणइ पासइ, तं जहा–

१. धम्मत्थिकायं जाव
१०. अयं सव्वदुक्खाणं अंतं करेस्सइ वा, न वा करेस्सइ[5]।

–ठाणं, अ. १०, सु. ७५४

१०४. छद्मस्थ से केवलज्ञानी की विशेषता–

दस पदार्थों को छद्मस्थ सम्पूर्ण रूप से न जानता है और न देखता है, यथा–

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय,
३. आकाशास्तिकाय, ४. शरीरमुक्तजीव,
५. परमाणुपुद्गल, ६. शब्द,
७. गन्ध, ८. वायु,
९. यह जिन होगा या नहीं होगा ?
१०. यह सभी दुःखों का अन्त करेगा या नहीं करेगा ?

किन्तु उत्पन्न ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले अर्हत् जिन केवली इनको सम्पूर्ण रूप से जानते देखते हैं, यथा–

१. धर्मास्तिकाय, यावत्
१०. यह सभी दुःखों का अन्त करेगा या नहीं।

१०५. छउमत्थ-केवलिणं परिययो–

सत्तहिं ठाणेहिं छउमत्थं जाणेज्जा, तं जहा–

१. पाणे अइवाएत्ता भवइ,
२. मुसं वइत्ता भवइ,

१०५. छद्मस्थ और केवली का परिचय–

सात हेतुओं से छद्मस्थ जाना जाता है, यथा–

१. जो प्राणों का अतिपात करता है,
२. जो मृषा बोलता है,

---

१. ठाणं. अ. ५, सु. ४५०
२. ठाणं. अ. ६, सु. ४७८
३. ठाणं. अ. ७, सु. ५६७
४. ठाणं. अ. ८, सु. ६१०
५. विया. स. ८, उ. २, सु. २०-२१

. अदिन्नमादित्ता भवइ,
. सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे आसादेत्ता भवइ,
. पूयासक्कारमणुवूहेत्ता भवइ,
. इमं सावज्ज त्ति पण्णवेत्ता पडिसेवेत्ता भवइ,

. णो जहावादी तहाकारी यावि भवइ।
सत्तहिं ठाणेहिं केवली जाणेज्जा, तं जहा–
. णो पाणे अइवाइत्ता भवइ **जाव** २-७ जहावाई तहाकारी यावि भवइ। *–ठाणं. अ. ७, सु. ५५०*

३. जो अदत्त का ग्रहण करता है,
४. जो शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का आस्वादक होता है,
५. जो पूजा और सत्कार का अनुमोदन करता है,
६. जो यह "सावद्य सपाप हैं" ऐसा कहकर भी उसका आसेवन करता है,
७. जो जैसा कहता है वैसा नहीं करता है।
सात हेतुओं से केवली जाना जाता है, यथा–
१. जो प्राणों का अतिपात नहीं करता **यावत्** २-७ जो जैसा कहता है वैसा करता है।

माणियदेवेहिं केवलिस्स मणोवययोग विन्नाणं–

केवली णं भंते ! पणीयं मणं वा, वइं वा धारेज्जा ?

. हंता, गोयमा ! धारेज्जा।
. जें णं भंते ! केवली पणीयं मणं वा, वइं वा धारेज्जा तं णं वेमाणिया देवा जाणंति पासंति ?
. गोयमा ! अत्थेगइया जाणंति पासंति,
अत्थेगइया न जाणंति न पासंति।
. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइया जाणंति पासंति, अत्थेगइया न जाणंति न पासंति ?"
. गोयमा ! वेमाणिया देवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. मायिमिच्छादिट्ठिउववन्नगा य,
२. अमायिसम्मदिट्ठिउववन्नगा य।
तत्थ णं जे ते माइमिच्छादिट्ठीउववन्नगा ते ण जाणंति, ण पासंति।
तत्थ णं जे ते अमाइसम्मदिट्ठीउववन्नगा ते णं अत्थेगइया जाणंति-पासंति, अत्थेगइया ण जाणंति ण पासंति।
. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइया जाणंति-पासंति, अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति ?"
. गोयमा ! अमाइसम्मदिट्ठी दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अणंतरोववण्णगा य,
२. परंपरोववण्णगा य।
तत्थ णं जे ते अणंतरोववण्णगा ते ण जाणंति, ण पासंति।
तत्थ णं जे ते परंपरोववण्णगा ते णं अत्थेगइया जाणंति-पासंति, अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"अत्थेगइया जाणंति-पासंति, अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति ?"
उ. गोयमा ! परंपरोववण्णगा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१०६. वैमानिक देवों द्वारा केवली के मन वचन योगों का ज्ञान–

प्र. भन्ते ! क्या केवली प्रशस्त मन और प्रशस्त वचन धारण करता है ?
उ. हाँ, गौतम ! धारण करता है।
प्र. भन्ते ! केवली जिस प्रकार से प्रशस्त मन और प्रशस्त वचन को धारण करता है क्या उसे वैमानिक देव जानते-देखते हैं ?
उ. गौतम ! कितने ही जानते-देखते हैं और
कितने ही नहीं जानते, नहीं देखते हैं।
प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"कितने ही देव जानते-देखते हैं, कितने ही देव नहीं जानते, नहीं देखते हैं ?
उ. गौतम ! वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. मायीमिथ्यादृष्टि रूप से उत्पन्न,
२. अमायीसम्यग्दृष्टि रूप से उत्पन्न।
इनमें जो मायीमिथ्यादृष्टि हैं वे नहीं जानते हैं, नहीं देखते हैं।
किन्तु जो अमायीसम्यग्दृष्टि हैं वे कई जानते-देखते हैं और कई नहीं जानते हैं, नहीं देखते हैं।

प्र. भन्ते ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि–
"कई जानते-देखते हैं और कई नहीं जानते, नहीं देखते हैं ?"
उ. गौतम ! अमायीसम्यग्दृष्टि दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अनन्तरोपपन्नक,
२. परम्परोपपन्नक।
इनमें से जो अनन्तरोपपन्नक हैं वे नहीं जानते, नहीं देखते हैं,
इनमें से जो परंपरोपपन्नक हैं वे कई जानते-देखते हैं और कई नहीं जानते, नहीं देखते हैं।
प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"कई जानते-देखते हैं और कई नहीं जानते, नहीं देखते हैं ?"
उ. गौतम ! परम्परोपपन्नक (सम्यग्दृष्टि) भी दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अपज्जत्तगा य, २. पज्जत्तगा य।

तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते ण जाणंति, ण पासंति।

तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते णं अत्थेगइया जाणंति-पासंतिं, अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"अत्थेगइया जाणंति-पासंति, अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति ?"

उ. गोयमा ! पज्जत्तगा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अणुवउत्ता य, २. उवउत्ता य।

तत्थ णं जे ते अणुवउत्ता ते ण जाणंति, ण पासंति।

तत्थ णं जे ते उवउत्ता ते जाणंति-पासंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"अत्थेगइया जाणंति-पासंति, अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति। *–विया. स. ५, उ. ४, सु. २९-३०*

१. अपर्याप्तक, २. पर्याप्तक।

इनमें से जो अपर्याप्तक हैं वे नहीं जानते हैं, नहीं देखते हैं, और जो पर्याप्तक हैं वे कई जानते-देखते हैं और कई नहीं जानते हैं, नहीं देखते हैं।

प्र. भन्ते ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि–

"कई जानते-देखते हैं और कई नहीं जानते, नहीं देखते हैं ?"

उ. गौतम ! पर्याप्तक (सम्यग्दृष्टि) भी दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अनुपयुक्त, २. उपयुक्त।

इसमें जो अनुपयुक्त हैं वे नहीं जानते हैं, नहीं देखते हैं और जो उपयुक्त हैं वे जानते-देखते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"कितने ही (वैमानिक देव केवली के मन को) जानते-देखते हैं और कितने ही नहीं जानते, नहीं देखते हैं।"

१०७. केवलि सद्धिं अणुत्तर देवाणं संलावो–

प. पभू णं भंते ! अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा इहगएणं केवलिणा सद्धिं आलावं वा, संलावं वा करेत्तए ?

उ. हंता, गोयमा ! पभू।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"पभू णं अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा इहगएणं केवलिणा सद्धिं आलावं वा, संलावं वा करेत्तए ?"

उ. गोयमा ! जं णं अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा अट्ठं वा, हेउं वा, पसिणं वा, कारणं वा, वागरणं वा पुच्छंति तं णं इहगए केवली अट्ठं वा **जाव** वागरणं वा वागरेइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"पभू णं अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा इहगएणं केवलिणा सद्धिं आलावं वा, संलावं वा करेत्तए।"

प. जं णं भंते ! इहगए चेव केवली अट्ठं **जाव** वागरणं वा वागरेइ तं णं अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा जाणंति पासंति ?

उ. हंता, जाणंति, पासंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जं णं इहगए चेव केवली अट्ठं वा **जाव** वागरणं वा वागरेइ तं णं अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगया चेव समाणा जाणंति पासंति ?"

उ. गोयमा ! तेसिं णं देवाणं अणंताओ मणोदव्ववग्गणाओ लद्धाओ पत्ताओ अभिसमन्नागयाओ भवंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

१०७. केवली के साथ अणुत्तर देवों का संलाप–

प्र. भन्ते ! क्या अनुत्तरौपपातिक देव अपने स्थान पर रहे हुए ही यहां रहे हुए केवली के साथ आलाप और संलाप करने में समर्थ हैं ?

उ. हां, गौतम ! समर्थ हैं।

प्र. भन्ते ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि–

"अनुत्तरौपपातिक देव अपने स्थान पर रहे हुए ही, यहां रहे हुए केवली के साथ आलाप और संलाप करने में समर्थ हैं ?"

उ. गौतम ! अनुत्तरौपपातिक देव अपने स्थान पर रहे हुए ही, जिन अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, कारणों या व्याख्याओं को पूछते हैं, उन अर्थों **यावत्** व्याख्याओं का उत्तर यहां रहे हुए केवली देते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"अनुत्तरौपपातिक देव अपने स्थान पर रहे हुए ही, यहां रहे हुए केवली के साथ आलाप और संलाप करने में समर्थ हैं।"

प्र. भन्ते ! केवली भगवान् यहां रहे हुए जिस अर्थ **यावत्** व्याख्या का उत्तर देते हैं, क्या उस उत्तर को वहां रहे हुए अनुत्तरौपपातिक देव जानते-देखते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! जानते-देखते हैं।

प्र. भन्ते ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि–

यहाँ रहे हुए केवली जिस अर्थ **यावत्** व्याख्या का उत्तर देते हैं, उस उत्तर को वहां रहे हुए ही अनुत्तरौपपातिक देव जानते-देखते हैं ?"

उ. गौतम ! उन देवों को अनन्त मनोद्रव्य-वर्गणा लब्ध हैं, प्राप्त हैं, सम्मुख की हुई हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जं णं इहगए चेव केवली अट्ठं वा जाव वागरणं वा वागरेइ तं णं अणुत्तरोववाइया देवा तत्थगइया चेव समाणा जाणंति पासंति। *–विया. स. ५, उ. ४, सु. ३१-३२*

"यहाँ रहे हुए केवली जिस अर्थ यावत् व्याख्या का उत्तर देते हैं, उस उत्तर को वहां रहे हुए ही अनुत्तरौपपातिक देव जानते-देखते हैं।"

०८. केवलिणो अस्सिं सेयकालंसि ओगाहणा सामत्थं–

प. केवली णं भंते ! अस्सिं समयंसि जेसु आगासपएसेसु हत्थं वा पायं वा बाहं वा उरूं वा ओगाहित्ताणं चिट्ठइ।

पभू णं भंते ! केवली सेयकालंसि वि तेसु चेव आगासपएसेसु हत्थं वा जाव उरूं वा ओगाहित्ताणं चिट्ठित्तए ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"केवली णं अस्सिं समयंसि जेसु आगासपएसेसु हत्थं वा जाव उरूं वा चिट्ठइ, नो णं पभू केवली सेयकालंसि वि तेसु चेव आगासपएसेसु हत्थं वा जाव उरूं वा ओगाहित्ताणं चिट्ठित्तए ?

उ. गोयमा ! केवलिस्स णं वीरियसजोगसद्दव्वयाए चलाइं उवगरणाइं भवंति, चलोवगरणट्ठयाए य णं केवली अस्सिं समयंसि जेसु आगासपएसेसु हत्थं वा जाव उरूं वा चिट्ठइ णो णं पभू केवली सेयकालंसि वि तेसु चेव आगासपएसेसु हत्थं वा जाव उरूं वा ओगाहित्ताणं चिट्ठित्तए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"केवली णं अस्सिं समयंसि जेसु आगासपएसेसु हत्थं वा जाव उरूं वा ओगाहित्ताणं चिट्ठित्तए। णो णं पभू केवली सेयकालंसि वि तेसु चेव आगासपएसेसु हत्थं वा जाव उरूं वा ओगाहित्ताणं चिट्ठित्तए।

–विया. स. ५, उ. ४, सु. ३५

१०८. केवली का वर्तमान भविष्यकालीन अवगाहन सामर्थ्य–

प्र. भन्ते केवली इस समय में जिन आकाश प्रदेशों पर अपने हाथ, पैर, बाहू और उरू को अवगाहित करके रहते हैं,

तो भंते ! क्या भविष्यत्काल में भी वे उन्हीं आकाश-प्रदेशों पर अपने हाथ यावत् उरू आदि को अवगाहित करके रह सकते हैं ?

उ. गौतम ! यह शक्य नहीं है।

प्र. भन्ते किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"केवली इस समय में जिन आकाशप्रदेशों पर अपने हाथ यावत् उरू को अवगाहित करके रहते हैं, वे उन्हीं आकाशप्रदेशों पर भविष्यकाल में अपने हाथ यावत् उरू को अवगाहित करके रहने में समर्थ नहीं है ?"

उ. गौतम ! केवली का जीवद्रव्य वीर्यप्रधान योग वाला होता है, इससे उनके हाथ आदि उपकरण चलायमान होते हैं, हाथ यावत् उरू के चलित होते रहने से वर्तमान समय में जिन आकाशप्रदेशों में केवली अपने हाथ यावत् उरू अवगाहित करके रहे हुए हैं उन्हीं आकाशप्रदेशों पर भविष्यत्काल में वे हाथ यावत् उरू को अवगाहित करके नहीं रह सकते।

इस कारण से गौतम ऐसा कहा जाता है कि–

"केवली इस समय में जिन आकाशप्रदेशों पर अपने हाथ यावत् उरू को अवगाहित करके रहते हैं, वे उन्हीं आकाशप्रदेशों पर भविष्यकाल में अपने हाथ यावत् उरू को अवगाहित करके नहीं रह सकते।

१२. केवलिस्स दस अणुत्तरा–

केवलिस्स णं दस अणुत्तरा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अणुत्तरे णाणे, २. अणुत्तरे दंसणे,
३. अणुत्तरे चरित्ते, ४. अणुत्तरे तवे,
५. अणुत्तरे वीरिए, ६. अणुत्तरा खंती
७. अणुत्तरा मुत्ती, ८. अणुत्तरे अज्जवे,
९. अणुत्तरे मद्दवे, १०. अणुत्तरे लाघवे।

–ठाणं. अ. १०, सु. ७६३

१०९. केवली के दश अनुत्तर–

केवली के दस अनुत्तर कहे गए हैं, यथा–

१. अनुत्तर ज्ञान, २. अनुत्तर दर्शन,
३. अनुत्तर चारित्र, ४. अनुत्तर तप
५. अनुत्तर वीर्य (शक्ति) ६. अनुत्तर क्षान्ति (क्रोध क्षय)
७. अनुत्तर मुक्ति (निर्लोभता) ८. अनुत्तर आर्जव,
९. अनुत्तर मार्दव, १०. अनुत्तर लाघव

११३. पंच णाणाणं उप्पाय हेउ परूवणं–

दोहिं ठाणेहिं आया केवलं आभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. सोच्चा चेव २. अभिसमेच्च चेव।

दोहिं ठाणेहिं आया केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. सोच्चा चेव, २. अभिसमेच्च चेव।

११०. पांच ज्ञानों की उत्पत्ति के हेतुओं का प्ररूपण–

इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध आभिनिवोधिक ज्ञान को उत्पन्न करता है, यथा–

१. सुनने से, २. जानने से।

इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को उत्पन्न करता है, यथा–

१. सुनने से, २. जानने से।

दोहिं ठाणेहिं आया केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. सोच्चा चेव, २. अभिसमेच्च चेव।

दोहिं ठाणेहिं आया केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. सोच्चा चेव, २. अभिसमेच्च चेव।

दोहिं ठाणेहिं आया केवलं केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. सोच्चा चेव, २. अभिसमेच्च चेव।

दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. आरंभे चेव, २. परिग्गहे चेव।

दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. आरंभे चेव, २. परिग्गहे चेव।

दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं ओहिनाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. आरंभे चेव, २. परिग्गहे चेव।

दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. आरंभे चेव, २. परिग्गहे चेव।

दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. आरंभे चेव, २. परिग्गहे चेव।

–ठाणं. अ. २, उ. १ सु. ५५

इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को उत्पन्न करता है, यथा–

१. सुनने से, २. जानने से।

इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध मनःपर्यवज्ञान को उत्पन्न करता है, यथा–

१. सुनने से, २. जानने से।

इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को उत्पन्न करता है, यथा–

१. सुनने से, २. जानने से।

इन दो स्थानों को जानकर और छोड़कर आत्मा आभिनिबोधिक ज्ञान को प्राप्त करता है, यथा–

१. आरंभ, २. परिग्रह।

इन दो स्थानों को जानकर और छोड़कर आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है, यथा–

१. आरंभ, २. परिग्रह।

इन दो स्थानों को जानकर और छोड़कर आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करता है, यथा–

१. आरंभ, २. परिग्रह।

इन दो स्थानों को जानकर और छोड़कर आत्मा विशुद्ध मनःपर्यवज्ञान को प्राप्त करता है, यथा–

१. आरंभ, २. परिग्रह।

इन दो स्थानों को जानकर और छोड़कर आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त करता है, यथा–

१. आरंभ, २. परिग्रह।

१११. पंच णाणाणं अणुप्पई हेउ परूवणं–

दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. आरंभे चेव, २. परिग्गहे चेव।

दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. आरंभे चेव, २. परिग्गहे चेव।

दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. आरंभे चेव, २. परिग्गहे चेव।

दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. आरंभे चेव, २. परिग्गहे चेव।

दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा–

१. आरंभे चेव, २. परिग्गहे चेव।

–ठाणं अ. २, उ. १, सु. ५५

१११. पांच ज्ञानों की अनुत्पत्ति के हेतुओं का प्ररूपण–

इन दो स्थानों को जाने और छोड़े बिना आत्मा विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को प्राप्त नहीं करता है, यथा–

१. आरंभ, २. परिग्रह।

इन दो स्थानों को जाने और छोड़े बिना आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त नहीं करता है, यथा–

१. आरंभ, २. परिग्रह।

इन दो स्थानों को जाने और छोड़े बिना आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त नहीं करता है, यथा–

१. आरम्भ, २. परिग्रह।

इन दो स्थानों को जाने और छोड़े बिना आत्मा विशुद्ध मनःपर्यवज्ञान को प्राप्त नहीं करता है, यथा–

१. आरंभ, २. परिग्रह।

इन दो स्थानों को जाने और छोड़े बिना आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त नहीं करता है, यथा–

१. आरंभ, २. परिग्रह।

११२. बोहि-संजम-णाणाण य उवलद्धि हेउ परूवणं–

दोहिं ठाणेहिं आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए, तं जहा–

१. खएण चेव, २. उवसमेण चेव।

दोहिं ठाणेहिं आया एवमेव केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा, केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा,

–ठाणं. अ.२, सु. १०९

११२. बोधि, संयम एवं ज्ञानों की उत्पत्ति के हेतु का प्ररूपण–

दो स्थानों से आत्मा केवली प्रज्ञप्त धर्म को सुन पाता है, यथा–

१. कर्मपुद्गलों के क्षय से, २. कर्म पुद्गलों के उपशम से।

इसी प्रकार दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध बोधि का अनुभव करता है। मुंड होकर घर छोड़कर सम्पूर्ण अनगारता में प्रव्रजित होता है। सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त होता है, सम्पूर्ण संयम के द्वारा संयत होता है। सम्पूर्ण संवर के द्वारा संवृत होता है, विशुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान को उत्पन्न करता है। विशुद्ध श्रुतज्ञान को उत्पन्न करता है, विशुद्ध अवधिज्ञान को उत्पन्न करता है। विशुद्ध मनः पर्यवज्ञान को उत्पन्न करता है।

११३. पंचविह णाणाणं उवसंहारो–

एयं पंचविहं नाणं, दव्वाण य गुणाण य।
पज्जवाणं च सव्वेसिं नाणं नाणीहि देसियं ॥

–उत्त. अ. २८, गा. ५

११३. पांच प्रकार के ज्ञानों का उपसंहार–

यह पांच प्रकार के ज्ञान सर्व द्रव्यों, गुणों और पर्यायों के अवबोधक हैं ऐसा ज्ञानी पुरुषों ने बताया है।

११४. अण्णाणाणं भेयप्पभेय परूवणं–

प. अण्णाणे णं भंते! कहिविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. मइअण्णाणे, २. सुयअण्णाणे, ३. विभंगणाणे।

प. से किं तं मइअण्णाणे ?

उ. मइअण्णाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. उग्गहो, २. ईहा, ३. अवाय, ४. धारणा।

प. से किं तं उग्गहे ?

उ. उग्गहे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अत्थोग्गहे य, २. वंजणोग्गहे य।
एवं जहेव आभिणिबोहिनाणं तहेव णेयव्वं।
णवरं–एगट्ठियवज्जं जाव नो इंदिय धारणा।
से तं धारणा। से तं मइअण्णाणे।

प. से किं तं सुयअण्णाणे ?

उ. सुयअण्णाणे जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छद्दिट्ठिएहिं सच्छंदबुद्धि मइ विगप्पियं, तं जहा–
भारहं जाव चत्तारि वेदा संगोवंगा।
से तं सुयअण्णाणे।

प. से किं तं विभंगणाणे ?

उ. विभंगणाणे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–
गामसंठिए जाव संन्निवेससंठिए-
दीवसंठिए, समुद्दसंठिए, वाससंठिए, वासहरसंठिए, पव्वयसंठिए, रुक्खसंठिए, थूभसंठिए, हयसंठिए, गयसंठिए, नरसंठिए, किन्नरसंठिए, किंपुरिससंठिए, महोरगसंठिए, गंधव्वसंठिए, उसभसंठिए, पसु पसय-विहग-वानर-णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

–विया. स. ८, उ.२, सु. २४-२८

११४. अज्ञानों के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! अज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! अज्ञान तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. मतिअज्ञान, २. श्रुत-अज्ञान, ३. विभंगज्ञान।

प्र. मति-अज्ञान कितने प्रकार का है?

उ. मति-अज्ञान चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. अवग्रह, २. ईहा, ३. अवाय, ४. धारणा।

प्र. अवग्रह कितने प्रकार का है?

उ. अवग्रह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. अर्थावग्रह, २. व्यंजनावग्रह।
जिस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञान के विषय में कहा है, उसी प्रकार यहां भी धारणा तक सम्पूर्ण वर्णन जान लेना चाहिए। विशेष–आभिबोधिकज्ञान में जो एकार्थिक शब्द कहे हैं उन्हें छोड़कर यह नोइन्द्रिय धारणा है, पर्यन्त कहना चाहिए।
यह धारणा का स्वरूप है। यह मति-अज्ञान का स्वरूप है।

प्र. श्रुत-अज्ञान क्या है?

उ. जो अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा स्वच्छंद बुद्धि एवं स्वमति से कल्पित है वह श्रुत-अज्ञान है, यथा–
महाभारत यावत् सांगोपांग चार वेद।
यह श्रुत-अज्ञान का वर्णन है।

प्र. विभंगज्ञान कितने प्रकार का है?

उ. विभंगज्ञान अनेक प्रकार का कहा गया है, यथा–
ग्रामसंस्थित यावत् सन्निवेशसंस्थित।
द्वीपसंस्थित, समुद्रसंस्थित, वर्ष-संस्थित, वर्षधरसंस्थित, पर्वत संस्थित, वृक्षसंस्थित, स्तूपसंस्थित, हयसंस्थित, गजसंस्थित, नरसंस्थित, किन्नरसंस्थित, किम्पुरुषसंस्थित, महोरगसंस्थित, गन्धर्वसंस्थित, वृषभसंस्थित, पशु, पशय (दो खुर वाले जंगली जानवर) विहग और वानर के आकार वाला है। इस प्रकार विभंगज्ञान नाना संस्थान से संस्थित कहा गया है।

११५. सत्तविह विभंगणाण परूवण–

सत्तविहे विभंगणाणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. एगदिसिलोगाभिगमे,

२. पंचदिसिलोगाभिगमे,

३. किरियावरणे जीवे,

४. मुदग्गे जीवे,

५. अमुदग्गे जीवे,

६. रूवी जीवे,

७. सव्वमिणं जीवा।

१. तत्थ खलु इमे पढमे विभंगनाणे–

जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगनाणे समुप्पज्जइ, से णं तेण विभंगनाणेण समुप्पन्नेणं अण्णयरिं एग दिसिं पासइ पाईणं वा, पडीणं वा, दाहिणं वा, उदीणं वा, उड्ढं वा जाव सोहम्मे कप्पे,

तस्स णमेवं भवइ "अत्थि णं मम अइसेसे नाणदंसणे समुप्पन्ने-एगदिसिं लोगाभिगमे",

संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु–"पंचदिसिं लोगाभिगमे", जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एवमाहंसु, **पढमे विभंगनाणे।**

२. अहावरे दोच्चे विभंगनाणे,

जया णं तहारूवस्स समणस्स वा, माहणस्स वा विभंगनाणे समुप्पज्जइ, "से णं, तेण विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं पासइ पाईणं वा जाव उदीणं वा, उड्ढं वा जाव सोहम्मे कप्पे,

तस्स णमेवं भवइ अत्थि णं मम अइसेसे नाण-दंसणे समुप्पन्ने–"पंचदिसिं लोगाभिगमे",

संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु–"एगदिसिं लोगाभिगमे", जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु, **दोच्चे विभंगनाणे।**

३. अहावरे तच्चे विभंगनाणे,

जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगनाणे समुप्पज्जइ, से णं तेण विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं पासइ पाणे अइवाएमाणे, मुसं वएमाणे, अदिन्नमादिएमाणे, मेहुणं पडिसेवमाणे, परिग्गहं परिगिण्हमाणे, राइभोयणं भुंजमाणे वा पावं च णं कम्मं कीरमाणं णो पासइ,

तस्स णमेवं भवइ–अत्थि णं मम अइसेसे नाण-दंसणे समुप्पन्ने, "किरियावरणे जीवे",

संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु–"नो किरियावरणे जीवे", जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु, तच्चे विभंगनाणे।

११५. सात प्रकार के विभंगज्ञानों का प्ररूपण–

विभंगज्ञान सात प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. एक दिशा में लोक का ज्ञान,

२. पांच दिशा में लोक का ज्ञान,

३. जीव क्रियावरण है (कर्मावरण नहीं),

४. पुद्गल निर्मित शरीर ही जीव है,

५. पुद्गलों से अनिष्पन्न शरीर

६. रूपीजीव, (रूप वाला जीव है),

७. ये सब गतिशील पदार्थ जीव हैं।

१. पहला विभंगज्ञान–

जब तथारूप श्रमण या माहण को विभंगज्ञान प्राप्त होता है तब वह समुत्पन्न विभंगज्ञान से पूर्व, पश्चिम, दक्षिण या उत्तर दिशा में यावत् सौधर्म देवलोक तक की ऊर्ध्व दिशा में से किसी एक दिशा को देखता है,

तब उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि–"मुझे अतिशय युक्त ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है जिसमें मैं एक दिशा में ही लोक को देख रहा हूँ।"

कुछ श्रमण-माहण ऐसा कहते हैं कि "लोक पांच दिशाओं में है।" जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं

–यह पहला विभंगज्ञान है।

२. दूसरा विभंगज्ञान–

जब तथारूप श्रमण या माहण को विभंगज्ञान प्राप्त होता है तब वह समुत्पन्न विभंगज्ञान से पूर्व यावत् उत्तर दिशा में तथा सौधर्म देवलोक तक की ऊर्ध्व दिशा में देखता है।

तब उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि 'मुझे अतिशय युक्त ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं पांचों दिशाओं में ही लोक को देख रहा हूँ।"

कुछ श्रमण या माहण ऐसा कहते हैं कि–"लोक एक दिशा में ही है।" जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं

–यह दूसरा विभंगज्ञान है।

३. तीसरा विभंगज्ञान–

जब तथारूप श्रमण या माहण को विभंगज्ञान प्राप्त होता है तब वह समुत्पन्न विभंगज्ञान से जीवों को हिंसा करते हुए, झूठ बोलते हुए, अदत्त ग्रहण करते हुए, मैथुन सेवन करते हुए, परिग्रह ग्रहण करते हुए और रात्रि भोजन करते हुए देखता है, किन्तु उन प्रवृत्तियों के द्वारा होते हुए कर्मबन्ध को नहीं देखता है।

तब उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि–"मुझे अतिशय युक्त ज्ञानदर्शन प्राप्त हुआ है जिससे मैं देख रहा हूँ कि–"जीव क्रिया से ही आवृत है"

कुछ श्रमण या माहण ऐसा कहते हैं कि–"जीव क्रिया से आवृत नहीं है।" जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं।

–यह तीसरा विभंगज्ञान है।

४. अहावरे चउत्थे विभंगनाणे,

जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगनाणे समुप्पज्जइ, से णं तेण विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं देवामेव पासइ, बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता, पुढेगत्तं णाणत्तं फुसिया, फुरित्ता फुट्टित्ता विकुव्वित्ता णं चिट्ठित्तए,

तस्स णमेवं भवइ अत्थि णं मम अइसेसे नाण-दंसणे समुप्पन्ने, "मुदग्गे जीवे",

संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु–"अमुदग्गे जीवे", जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु, **चउत्थे विभंगनाणे।**

४. चौथा विभंगज्ञान–

जब तथारूप श्रमण या माहण को विभंगज्ञान प्राप्त होता है तब वह समुत्पन्न विभंगज्ञान से बाह्य और आभ्यन्तर पुद्गलों को ग्रहण कर देवों को विकुर्वणा करते हुए देखता है। वे देव पुद्गलों का स्पर्श कर, उनमें हलचल पैदा कर, उनका स्फोट कर, पृथक्-पृथक् काल व देश में कभी एक रूप व कभी विविध रूपों की विक्रिया करते हैं।

यह देखकर उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि–"मुझे अतिशय युक्त ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है जिससे मैं देख रहा हूँ कि–"जीव पुद्गलों से ही बना हुआ है।"

कुछ श्रमण या माहण ऐसा कहते हैं कि–"जीव पुद्गलों से बना हुआ नहीं है।" जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं **–यह चौथा विभंगज्ञान है।**

५. अहावरे पंचमे विभंगनाणे,

जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगनाणे समुप्पज्जइ, से णं तेण विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं देवामेव पासइ, "बाहिरब्भंतरए पोग्गलए अपरियाइत्ता वा पुढेगत्तं णाणत्तं फुसिया, फुरित्ता फुट्टित्ता विउव्वित्ता णं चिट्ठित्तए",

तस्स णमेवं भवइ अत्थि णं मम अइसेसे णाणदंसणे समुप्पन्ने "अमुदग्गे जीवे",

संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु–"मुदग्गे जीवे", जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु,
पंचमे विभंगनाणे।

५. पांचवां विभंगज्ञान–

जब तथारूप श्रमण या माहण को विभंगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभंगज्ञान से बाह्य और आभ्यन्तर पुद्गलों को ग्रहण किए बिना देवों को विक्रिया करते हुए देखता है। वे देव पुद्गलों का स्पर्श कर, उनमें हलचल पैदा कर, उनका स्फोट कर, पृथक्-पृथक् काल व देश में कभी एक रूप व कभी विविध रूपों की विक्रिया करते हैं।

यह देखकर उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि–"मुझे अतिशय युक्त ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूँ कि–"जीव पुद्गलों से बना हुआ नहीं है।"

कुछ श्रमण या माहण ऐसा कहते हैं–"जीव पुद्गलों से बना हुआ है।" जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं।

–यह पांचवां विभंगज्ञान है।

६. अहावरे छट्ठे विभंगनाणे,

जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगनाणे समुप्पज्जइ, से णं तेण विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं देवामेव पासइ, बाहिरब्भंतरे पोग्गले परियाइत्ता वा अपरियाइत्ता वा, पुढेगत्तं णाणत्तं फुसिया, फुसेत्ता, फुट्टित्ता विउव्वित्ताणं चिट्ठित्तए।

तस्स णमेवं भवइ अत्थिं णं मम अइसेसे नाण-दंसणे समुप्पन्ने, "रूवी जीवे",

संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु–"अरूवी जीवे" जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु, **छट्ठे विभंगनाणे।**

६. छठा विभंगज्ञान–

जब तथारूप श्रमण या माहण को विभंगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभंगज्ञान से देवों को बाह्य और आभ्यन्तर पुद्गलों को ग्रहण करके या ग्रहण किए बिना विक्रिया करते हुए देखता है। वे देव पुद्गलों का स्पर्श कर, उनमें हलचल पैदा कर, उनका स्फोट कर, पृथक्-पृथक् काल व देश में कभी एक रूप व कभी विविध रूपों की विक्रिया करते हैं।

तब उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि–"मुझे अतिशय युक्त ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूँ–"जीव रूपी ही हैं।"

कुछ श्रमण या माहण ऐसा कहते हैं–"जीव अरूपी है" जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। **यह छठा विभंगज्ञान है।**

७. अहावरे सत्तमे विभंगनाणे

जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगनाणे समुप्पज्जइ, से णं तेण विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं पासइ सुहुमेणं वायुकाएणं फुडं पोग्गलकायं एयंतं वेयंतं चलंतं खुब्भंतं फंदंतं घट्टंतं उदीरेंतं तं तं भावं परिणमंतं,

७. सातवां विभंगज्ञान–

जब तथारूप श्रमण या माहण को विभंगज्ञान प्राप्त होता है तब वह उस विभंगज्ञान से सूक्ष्म वायु के स्पर्श से, पुद्गल-काय को कम्पित होते हुए, विशेष रूप से कम्पित होते हुए, चलित होते हुए, क्षुब्ध होते हुए, स्पंदित होते हुए, दूसरे पदार्थों का स्पर्श करते हुए, दूसरे पदार्थों को प्रेरित करते हुए, विविध प्रकार के पर्यायों में परिणत होते हुए देखता है।

तस्स णमेवं भवइ अत्थि णं मम अइसेसे नाण-दंसणे समुप्पन्ने, "सव्वमिणं जीवा",

संतेगइया समणा वा, माहणा वा एवमाहंसु-"जीवा चेव अजीवा चेव", जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु,

तस्सं णं इमे चत्तारि जीवनिकाया णो सम्ममुवगया भवंति, तं जहा-

१. पुढविकाइया, २. आउकाइया,

३. तेउकाइया, ४. वाउकाइया।

इच्चेएहिं चउहिं जीवनिकाएहिं मिच्छादंडं पवत्तेइ, **सत्तमे विभंगनाणे।** *-ठाणं. अ. ७, सु. ५४२*

तब उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि-"मुझे अतिशय युक्त ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है।" मैं देख रहा हूँ कि-"ये सभी जीव ही हैं।"

कुछ श्रमण या माहण ऐसा कहते हैं कि-"जीव भी है और अजीव भी है।" जो ऐसा कहते हैं-वे मिथ्या कहते हैं।

उस विभंगज्ञानी को इन चार जीवनिकायों का सम्यग् ज्ञान नहीं होता है, यथा-

१. पृथ्वीकाय, २. अप्काय,

३. तेजस्काय, ४. वायुकाय।

इसलिए वह इन चार जीवनिकायों पर मिथ्या दण्ड का प्रयोग करता है। **यह सातवां विभंगज्ञान है।**

११६. अण्णाणणिव्वत्ती भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं-

प. कइविहा णं भंते ! अण्णाणणिव्वत्ती पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिविहा अण्णाणणिव्वत्ती पण्णत्ता, तं जहा-

१. मइअण्णाणणिव्वत्ती, २. सुयअण्णाणणिव्वत्ती,

३. विभंगनाणणिव्वत्ती।

दं. १-२४. **एवं जस्स जइ अण्णाणा जाव वेमाणियाणं।**

-विया. स. १९, उ. ८, सु. ४०-४१

११६. अज्ञान-निर्वृत्ति भेद और चौबीसदंडकों में प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! अज्ञान-निर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है?

उ. गौतम ! अज्ञान-निर्वृत्ति तीन प्रकार की कही गई है, यथा-

१. मति-अज्ञान-निर्वृत्ति, २. श्रुत-अज्ञान-निर्वृत्ति,

३. विभंगज्ञान-निर्वृत्ति।

दं. १-२४ इसी प्रकार वैमानिकों-पर्यन्त जिसके जितने अज्ञान हों उसके उतनी अज्ञान निर्वृत्तियां कहनी चाहिए।

११७. असोच्चा पंचनाणाणं उप्पायानुप्पाय परूवणं-

प. असोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा **जाव** तप्पक्खियाए उवासियाए वा केवलं आभिणिबोहियनाणं उप्पाडेज्जा?

उ. गोयमा ! असोच्चा णं केवलिस्स वा **जाव** तप्पक्खियाए उवासियाए वा अत्थेगइए केवलं आभिणिबोहियनाणं उप्पाडेज्जा,

अत्थेगइए केवलं आभिणिबोहियनाणं नो उप्पाडेज्जा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-

"से णं असोच्चा केवलिस्स वा **जाव** तप्पक्खियाए उवासियाए वा अत्थेगइए केवलं आभिणिबोहियनाणं उप्पाडेज्जा,

अत्थेगइए केवलं आभिणिबोहियनाणं नो उप्पाडेज्जा?"

उ. गोयमा ! जस्स णं आभिणिबोहियनाणावरणिज्जं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ,

से णं असोच्चा केवलिस्स वा **जाव** तप्पक्खियाए उवासियाए वा केवलं आभिणिबोहियनाणं उप्पाडेज्जा,

जस्स णं आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ,

से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियाए उवासियाए वा अत्थेगइए केवलं आभिणिबोहियनाणं नो उप्पाडेज्जा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-

११७. अश्रुत्वा पांच ज्ञानों के उपार्जन-अनुपार्जन का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! केवली **यावत्** उसकी उपासिका से सुने बिना ही क्या कोई जीव शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान उपार्जन कर लेता है?

उ. गौतम ! केवली **यावत्** उसकी उपासिका से सुने बिना कोई जीव शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान प्राप्त करता है,

कोई जीव आभिनिबोधिकज्ञान प्राप्त नहीं करता है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-

"केवलि **यावत्** उसकी उपासिका से सुने बिना कोई जीव शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान प्राप्त करता है।

कोई जीव शुद्धआभिनिबोधिकज्ञान प्राप्त नहीं करता है?"

उ. गौतम ! जिस जीव ने आभिनिबोधिक-ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम किया है,

वह केवली **यावत्** उसकी उपासिका से सुने बिना ही शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान उपार्जन कर लेता है,

किन्तु जिसने आभिनिबोधिक-ज्ञामावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं किया है,

वह केवली **यावत्** उसकी उपासिका से सुने बिना कोई एक शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान का उपार्जन नहीं कर पाता।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-

से णं असोच्चा "केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियाए उवासियाए वा अत्थेगइए केवलं आभिणिबोहियनाणं उप्पाडेज्जा,

अत्थेगइए केवलं आभिणिबोहियनाणं नो उप्पाडेज्जा।"

"केवली यावत् उसकी उपासिका से सुने बिना ही, कोई जीव शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान प्राप्त करता है,

कोई जीव शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान प्राप्त नहीं करता है।"

एवं जहा आभिनिबोहियनाणस्स वत्तव्वया भणिया तहा सुयनाणस्स वि भाणियव्वा,

जिस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञान का कथन किया गया है उसी प्रकार शुद्ध श्रुतज्ञान के विषय में भी कहना चाहिए।

णवरं–सुयनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे भाणियव्वे।

विशेष–यहां श्रुतज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम कहना चाहिए।

एवं चेव केवलं ओहिनाणं भाणियव्वं

इसी प्रकार शुद्ध अवधिज्ञान के उपार्जन के विषय में कहना चाहिए।

णवरं–ओहिनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे भाणियव्वे।

विशेष–यहां अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम कहना चाहिए।

एवं चेव केवलं मणपज्जवनाणं भाणियव्वं,

इसी प्रकार शुद्ध मनःपर्यवज्ञान के उत्पन्न होने के विषय में कहना चाहिए।

णवरं–मणपज्जवनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे भाणियव्वे।

विशेष–मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम का कथन करना चाहिए।

एवं चेव केवलणाणं भाणियव्वं,

इसी प्रकार केवलज्ञान के उत्पन्न होने के विषय में भी कथन करना चाहिए।

णवरं–केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खए भाणियव्वे।

विशेष–यहाँ केवलज्ञानावरणीय कर्म का क्षय कहना चाहिए।

सेसं तं चेव।

शेष कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

प. असोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा **जाव** तप्पक्खियउवासियाए वा–

१. केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए **जाव** ११. केवलनाणं उप्पाडेज्जा ?

प्र. भन्ते ! केवलि यावत् केवलिपाक्षिक उपासिका से धर्म श्रवण किये बिना ही क्या–

१. कोई केवलि प्ररूपित धर्म श्रवण लाभ प्राप्त करता है यावत् ११. केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है ?

उ. गोयमा ! असोच्चा णं केवलिस्स वा **जाव** तप्पक्खियउवासिए वा–

१. अत्थेगइए केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, अत्थेगइए केवलिपण्णत्तं धम्मं नो लभेज्ज सवणयाए जाव ११. अत्थेगइए केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा।

उ. गौतम ! केवली यावत् केवलिपाक्षिक उपासिका से सुने बिना ही,

१. कोई जीव केवलि प्ररूपित धर्म श्रवण लाभ प्राप्त करता है और कोई जीव केवलि प्ररूपित धर्म श्रवण का लाभ प्राप्त नहीं करता है यावत् ११. कोई जीव केवलज्ञान उपार्जन कर सकता है और कोई जीव केवलज्ञान उपार्जन नहीं कर सकता है।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"असोच्चा णं जाव अत्थेगइए केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा ?"

प्र. भन्ते ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि–

धर्म श्रवण किये बिना यावत् कोई जीव केवलज्ञान उपार्जन कर सकता है और कोई जीव केवलज्ञान उपार्जन नहीं कर सकता है ?

उ. गोयमा ! १. जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ जाव ११. जस्स णं केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खए नो कडे भवइ,

से णं असोच्चा केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा केवलिपण्णत्तं धम्मं नो लभेज्ज सवणयाए जाव केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा।

जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ जाव जस्स णं केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं

उ. गौतम ! १. जिस जीव ने ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं किया है यावत् ११. केवलज्ञानावरणीय कर्म का क्षय नहीं किया है।

वह केवलि यावत् केवलिपाक्षिक उपासिका से बिना सुने केवलि प्ररूपित धर्म श्रवण का लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है यावत् केवलज्ञान को उत्पन्न नहीं कर पाता है।

जिस जीव ने ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम किया है यावत् जिसने केवलज्ञानावरणीय कर्म का क्षय किया है वह

खए कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा **जाव** तप्पक्खियउवासियाए वा केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, केवलं बोहिं बुज्झेज्जा **जाव** केवलनाणं उप्पाडेज्जा।

तस्स णं छट्ठंछट्ठेणं अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स पगइभद्दयाए पगइउवसंतयाए पगइपयणुकोह-माण-माया-लोभयाए मिउमद्दव-संपन्नयाए अल्लीणताए भद्दताए विणीतताए अण्णयाकयाए सुभेणं अज्झवसाणेणं सुभेणं परिणामेणं लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापोह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स विभंगे नामं अन्नाणे समुप्पज्जइ,

से णं तेणं विभंगनाणेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,

उक्कोसेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं जाणइ पासइ,

से णं तेणं विभंगनाणेणं समुप्पन्नेणं जीवे वि जाणइ, अजीवे वि जाणइ,

पासंडत्थे सारंभे सपरिग्गहे संकिलिस्समाणे वि जाणइ, विसुज्झमाणे वि जाणइ,

से णं पुव्वामेव सम्मत्तं पडिवज्जइ,

सम्मत्तं पडिवज्जित्ता समणधम्मं रोएइ,

समणधम्मं रोएत्ता चरित्तं पडिवज्जइ,

चरित्तं पडिवज्जित्ता लिंगं पडिवज्जइ,

तस्स णं तेहिं मिच्छत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं परिहायमाणेहिं सम्मद्दंसणपज्जवेहिं परिवड्ढमाणेहिं परिवड्ढमाणेहिं से विभंगे अन्नाणे सम्मत्तपरिग्गहिए खिप्पामेव ओही परावत्तइ।

प. से णं भंते ! कइसु लेस्सासु होज्जा ?

उ. गोयमा ! तिसु विसुद्धलेस्सासु होज्जा, तं जहा–

१. तेउलेस्साए, २. पम्हलेस्साए,

३. सुक्कलेस्साए।

प. से णं भंते ! कइसु णाणेसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! तिसु, १. आभिणिबोहियनाणं, २. सुयणाण ३. ओहिनाणेसु होज्जा।

प. से णं भंते ! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! सजोगी होज्जा, नो अजोगी होज्जा।

प. जइ णं भंते ! सजोगी होज्जा किं मणजोगी होज्जा, वइजोगी होज्जा, कायजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! मणजोगी वा होज्जा, वइजोगी वा होज्जा, कायजोगी वा होज्जा।

प. से णं भंते ! किं सागारोवउत्ते होज्जा, अणागारोवउत्ते होज्जा ?

केवलि **यावत्** केवलिपाक्षिक उपासिका से बिना सुने ही धर्म श्रवण का लाभ प्राप्त कर सकता है, शुद्ध बोधि लाभ का अनुभव कर सकता है **यावत्** केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है।

निरन्तर छठ-छठ का तपःकर्म करते हुए सूर्य के सम्मुख बाहें ऊंची करके आतापना भूमि में आतापना लेते हुए उस जीव की प्रकृति-भद्रता से, प्रकृति की उपशान्तता से, स्वाभाविक रूप से ही क्रोध, मान, माया और लोभ की अत्यन्त मन्दता होने से, अत्यन्त मृदुत्वसम्पन्नता से, कामभोगों में अनासक्ति से, भद्रता और विनीतता से किसी समय शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम, विशुद्ध लेश्या एवं तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए विभंग नामक अज्ञान उत्पन्न होता है।

फिर वह उस उत्पन्न हुए विभंगज्ञान द्वारा जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट असंख्यात हजार योजन तक जानता देखता है।

वह उस उत्पन्न हुए विभंगज्ञान से जीवों को भी जानता है और अजीवों को भी जानता है।

वह सारम्भी, सपरिग्रही और संक्लेश पाते हुए पाषण्डस्थ जीवों को भी जानता है और विशुद्ध होते हुए पाषण्डस्थ जीवों को भी जानता है।

तत्पश्चात् वह सर्वप्रथम सम्यक्त्व प्राप्त करता है,

सम्यक्त्व प्राप्त करके श्रमणधर्म पर रुचि करता है,

श्रमणधर्म पर रुचि करके चारित्र अंगीकार करता है,

चारित्र अंगीकार करके लिंग श्रमण वेश स्वीकार करता है। जिसमें उसके मिथ्यात्व के पर्याय क्रमशः क्षीण होते-होते और सम्यग्-दर्शन के पर्याय क्रमशः बढ़ते-बढ़ते पूर्ण सम्यक्त्व युक्त हो जाने पर वह विभंग नामक अज्ञान, सम्यक्त्व के कारण शीघ्र ही अवधिज्ञान के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

प्र. भन्ते ! उस अवधिज्ञानी के कितनी लेश्याएँ होती हैं ?

उ. गौतम ! उसके तीन विशुद्ध लेश्याएँ होती हैं, यथा–

१. तेजोलेश्या, २. पद्मलेश्या,

३. शुक्ललेश्या।

प्र. भन्ते ! उसके कितने ज्ञान होते हैं ?

उ. गौतम ! उसके तीन ज्ञान होते हैं, १. आभिनिबोधिकज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान।

प्र. भन्ते ! वह सयोगी होता है या अयोगी होता है ?

उ. गौतम ! वह सयोगी होता है, अयोगी नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! यदि वह सयोगी होता है, तो क्या मनोयोगी होता है, वचनयोगी होता है या काययोगी होता है ?

उ. गौतम ! वह मनोयोगी होता है, वचनयोगी होता है और काययोगी भी होता है।

प्र. भन्ते ! वह साकारोपयोग-युक्त होता है या अनाकारोपयोग-युक्त होता है ?

उ. गोयमा ! सागारोवउत्ते वा होज्जा, अणागारोवउत्ते वा होज्जा।

प. से णं भंते ! कयरम्मि संघयणे होज्जा ?

उ. गोयमा ! वइरोसभनारायसंघयणे होज्जा।

प. से णं भंते ! कयरम्मि संठाणे होज्जा ?

उ. गोयमा ! छण्हं संठाणाणं अन्नयरे संठाणे होज्जा।

प. से णं भंते ! कयरम्मि उच्चत्ते होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरयणी, उक्कोसेणं पंचधणुसइए होज्जा।

प. से णं भंते ! कयरम्मि आउए होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगट्ठवासाउए, उक्कोसेणं पुव्वकोडिआउए होज्जा।

प. से णं भंते ! किं सवेदए होज्जा, अवेदए होज्जा ?

उ. गोयमा ! सवेदए होज्जा, नो अवेदए होज्जा।

प. जइ णं भंते ! सवेदए होज्जा किं इत्थीवेदए होज्जा, पुरिसवेदए होज्जा, नपुंसगवेदए होज्जा, पुरिसनपुंसगवेदए होज्जा ?

उ. गोयमा ! नो इत्थीवेदए होज्जा, पुरिसवेदए वा होज्जा, नो नपुंसगवेदए होज्जा, पुरिसनपुंसगवेदए वा होज्जा।

प. से णं भंते ! किं सकसाई होज्जा, अकसाई होज्जा ?

उ. गोयमा ! सकसाई होज्जा, नो अकसाई होज्जा।

प. जइ सकसाई होज्जा, से णं भंते ! कइसु कसाएसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! चउसु संजलणकोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा।

प. तस्स णं भंते ! केवइया अज्झवसाणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा अज्झवसाणा पण्णत्ता।

प. ते णं भंते ! पसत्था अप्पसत्था ?

उ. गोयमा ! पसत्था, नो अप्पसत्था।

से णं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं वट्टमाणे—

अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिंतो अप्पाणं विसंजोएइ,

अणंतेहिं तिरिक्खजोणिय भवग्गहणेहिंतो अप्पाणं विसंजोएइ,

अणंतेहिं मणुस्सभवग्गहणेहिंतो अप्पाणं विसंजोएइ,

अणंतेहिं देवभवग्गहणेहिंतो अप्पाणं विसंजोएइ,

जाओ वि य से इमाओ नेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवगइनामाओ उत्तरपयडीओ,

तासिं च णं उवग्गहिए अणंताणुबंधी कोह-माण-माया-लोभे खवेइ,

उ. गौतम ! वह साकारोपयोग-युक्त होता है और अनाकारोपयोग युक्त भी होता है।

प्र. भन्ते ! वह किस संहनन वाला होता है ?

उ. गौतम ! वह वज्रऋषभनाराचसंहनन वाला होता है।

प्र. भन्ते ! वह किस संस्थान में होता है ?

उ. गौतम ! वह छह संस्थानों में से किसी भी संस्थान में होता है।

प्र. भन्ते ! वह कितनी ऊँचाई वाला होता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य सात हाथ उत्कृष्ट पांच सौ धनुष ऊँचाई वाला होता है।

प्र. भन्ते ! वह कितनी आयुष्य वाला होता है,

उ. गौतम ! वह जघन्य साधिक आठ वर्ष, उत्कृष्ट पूर्वकोटी आयुष्य वाला होता है।

प्र. भन्ते ! वह सवेदी होता है या अवेदी होता है ?

उ. गौतम ! वह सवेदी होता है, अवेदी नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! यदि वह सवेदी होता है तो क्या-स्त्रीवेदी होता है, पुरुषवेदी होता है नपुंसकवेदी होता है या पुरुष-नपुंसक वेदी होता है ?

उ. गौतम ! वह स्त्रीवेदी नहीं होता, पुरुषवेदी होता है, नपुंसकवेदी नहीं होता, किन्तु पुरुष-नपुंसकवेदी होता है।

प्र. भन्ते ! क्या वह सकषायी होता है या अकषायी होता है ?

उ. गौतम ! वह सकषायी होता है, अकषायी नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! यदि वह सकषायी होता है तो वह कितने कषायों वाला होता है ?

उ. गौतम ! वह संज्वलन कोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों से युक्त होता है।

प्र. भन्ते ! उसके कितने अध्यवसाय होते हैं ?

उ. गौतम ! उसके असंख्यात अध्यवसाय होते हैं।

प्र. भन्ते ! उसके वे अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं या अप्रशस्त होते हैं ?

उ. गौतम ! वे प्रशस्त होते हैं, अप्रशस्त नहीं होते हैं।

वह अवधिज्ञानी बढ़ते हुए प्रशस्त अध्यवसायों से,

अनन्त नैरयिकभव-ग्रहण से अपनी आत्मा को विसंयुक्त (अलग) कर लेता है,

अनन्त तिर्यञ्चयोनिक भव ग्रहण से अपनी आत्मा को विसंयुक्त कर लेता है,

अनन्त मनुष्यभव-ग्रहण से अपनी आत्मा को विसंयुक्त कर लेता है,

अनन्त देव-भव ग्रहण से अपनी आत्मा को विसंयुक्त कर लेता है।

जो ये नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति नामक चार उत्तर प्रकृतियां हैं,

उन प्रकृतियों के आधारभूत अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय करता है।

अणंताणुबंधी कोह-माण-माया-लोभे खवित्ता,
अपच्चक्खाणकसाए कोह--माण-माया-लोभे खवइ,

अपच्चक्खाणकंसाए कोह-माण-माया-लोभे खवित्ता,

पच्चक्खाणावरणे कोह-माण-माया-लोभे खवेइ,

पच्चक्खाणावरणें कोह-माण-माया-लोभे खवित्ता,

संजलणे कोह-माण-माया-लोभे खवेइ,
संजलणे कोह-माण-माया-लोभे-खवित्ता,
पंचविहं नाणावरणिज्जं,
नवविहं दरिसणावरणिज्जं,
पंचविहमंतराइयं
तालमत्थकडं च णं मोहणिज्जं कट्टु कम्मरयविकरणकरं अपुव्वकरणं अणुपविट्ठस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाण-दंसणे समुप्पज्जइ।

अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ का क्षय करके
अप्रत्याख्यानावरण-क्रोध-मान-माया-लोभ-कषाय का क्षय करता है;
अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ कषाय का क्षय करके,
प्रत्याख्यानावरण-क्रोध-मान-माया-और लोभ-कषाय का क्षय करता है।
प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान माया और लोभ कषाय का क्षय करके
संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय करता है।
संज्वलन क्रोध-मान-माया और लोभ का क्षय करके
पंचविध ज्ञानावरणीयकर्म,
नवविध दर्शनावरणीयकर्म,
पंचविध अन्तरायकर्म तथा,
मोहनीयकर्म को कटे हुए ताड़वृक्ष के समान बनाकर, कर्मरज को बिखेरने वाले अपूर्वकरण (आठवें गुणस्थान) में प्रविष्ट उस जीव को अनन्त, अनुत्तर, व्याघातरहित, आवरणरहित, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण एवं श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न होता है।

प. से णं भंते ! केवलिपण्णत्तं धम्मं आघवेज्जा वा जाव उवदंसेज्ज वा ?
उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णन्नत्थ एगणाएणं वा एगवागरणेण वा।

प. से णं भंते ! पव्वावेज्ज वा, मुडांवेज्ज वा ?
उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, उवदेस पुण करेज्जा।

प. से णं भंते ! सिज्झइ जाव अंतं करेइ ?
उ. हंता, गोयमा ! सिज्झइ जाव अंतं करेइ।

प. से णं भंते ! किं उड्ढं होज्जा, अहो होज्जा, तिरियं होज्जा ?
उ. गोयमा ! उड्ढं वा होज्जा, अहो वा होज्जा, तिरियं वा होज्जा।
उड्ढं होज्जमाणे सद्दावइ-वियडावइ-गंधावइ-मालवंत-परियाएसु वट्टवेयड्ढ-पव्वएसु होज्जा।
साहरणं पडुच्च सोमणसवणे वा पंडगवणे वा होज्जा।

अहो होज्जमाणे गड्डाए वा दरीए वा होज्जा,
साहरणं पडुच्च पायाले वा भवणे वा होज्जा।

तिरियं होज्जमाणे पन्नरससु कम्मभूमीसु होज्जा,

प्र. भन्ते ! वे असोच्चा केवली, केवलिप्ररूपित धर्म का कथन करते हैं यावत् उदाहरण देकर समझाते हैं ?
उ. गौतम ! यह शक्य नहीं है। वे केवल एक ज्ञात (दृष्टान्त) अथवा एक प्रश्न के उत्तर के सिवाय अन्य उपदेश नहीं करते।

प्र. भन्ते ! वे (असोच्चा केवली) किसी को प्रव्रजित करते हैं या मुण्डित करते हैं ?
उ. गौतम ! यह शक्य नहीं है, किन्तु वे उपदेश (निर्देश) करते हैं।

प्र. भन्ते ! वे सिद्ध होते हैं यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं ?
उ. हाँ, गौतम ! वे सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःखों का अन्त करते हैं।

प्र. भन्ते ! वे (असोच्चा केवली) ऊर्ध्वलोक में होते हैं, अधोलोक में होते हैं या तिर्यक्लोक में होते हैं ?
उ. गौतम ! वे ऊर्ध्वलोक में भी होते हैं, अधोलोक में भी होते हैं और तिर्यक्लोक में भी होते हैं।
यदि ऊर्ध्वलोक में होते हैं तो शब्दापाती, विकटापाती, गन्धापाती और माल्यवन्त नामक वृत्त पर्वतों में होते हैं,
तथा संहरण की अपेक्षा सौमनसवन में अथवा पाण्डुकवन में होते हैं।
यदि अधोलोक में होते हैं तो गर्त्त में अथवा गुफा में होते हैं,
तथा संहरण की अपेक्षा पातालकलशों में अथवा भवनवासी देवों के भवनों में होते हैं।
यदि तिर्यक्लोक में होते हैं तो पन्द्रह कर्मभूमि में होते हैं तथा

साहरणं पडुच्च अड्ढाइज्जदीव-समुद्द तदेक्कदेसभाए होज्जा,

प. ते णं भंते ! एगसमएणं केवइया होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं दस।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

असोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खियउवासियाए वा

अत्थेगइए केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, अत्थेगइए नो लभेज्ज सवणयाए जाव अत्थेगइए केवलनाणं उप्पाडेज्जा अत्थेगइए केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा। *–विया. स. ९, उ. ३१, सु. ८-३१*

संहरण की अपेक्षा अढाई द्वीप और दो समुद्रों के एक भाग में होते हैं।

प्र. भन्ते ! वे (असोच्चा केवली) एक समय में कितने होते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य एक, दो अथवा तीन और उत्कृष्ट दस होते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

केवलि यावत् केवलिपाक्षिक उपासिका से धर्मश्रवण किये बिना ही–

किसी जीव को केवलि प्ररूपित धर्म श्रवण प्राप्त होता है और किसी जीव को धर्म श्रवण का लाभ प्राप्त नहीं होता है यावत् कोई जीव केवलज्ञान उपार्जन करता है और कोई जीव केवलज्ञान उपार्जन नहीं करता है।

११८. सोच्चा पंचणाणाणं उप्पायानुप्पाय परूवणं–

प. सोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा जाव तप्पक्खिय उवासियाए वा आभिणिबोहियणाणं जाव केवलनाणं उप्पाडेज्जा ?

उ. गोयमा ! सोच्चा णं केवलिस्स वा जाव तप्पक्खिय उवासियाए अत्थेगइए आभिणिबोहियणाणं जाव केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए णो उप्पाडेज्जा।

सेसं जहेव असोच्चा।

तस्स णं अट्ठमअट्ठमेणं अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स पगइभद्दयाए तहेव जाव ईहापोह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स ओहिणाणे समुप्पज्जइ।

से णं तेणं ओहिनाणेणं समुप्पन्नेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,

उक्कोसेणं असंखेज्जाइं अलोए लोयप्पमाणमेत्ताइं खंडाइं जाणइ पासइ।

प. से णं भंते ! कइसु लेस्सासु होज्जा ?

उ. गोयमा ! छसु लेस्सासु होज्जा, तं जहा–

१. कण्हलेसाए जाव ६. सुक्कलेसाए।

प. से णं भंते ! कइसु णाणेसु होज्जा।

उ. गोयमा ! तिसु वा, चउसु वा होज्जा।

तिसु होज्जमाणे–

१. आभिणिबोहियनाण, २. सुयनाणं, ३. ओहिनाणेसु होज्जा,

चउसु होज्जमाणे,

१. आभिणिबोहियनाण, २. सुयनाणं, ३. ओहिनाणं ४. मणपज्जवनाणेसु होज्जा।

प. से णं भंते ! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा ?

उ. गोयमा ! एवं जोगो, उवओगो, संघयणं, संठाणं, उच्चत्तं, आउयं च एयाणि सव्वाणि जहा असोच्चाए तहेव भाणियव्वाणि।

प. से णं भंते ! किं सवेदए वा होज्जा, अवेदए वा होज्जा ?

११८. श्रुत्वा पांचज्ञानों के उपार्जन-अनुपार्जन का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! केवली से यावत् केवली पाक्षिक की उपासिका से सुनकर क्या कोई जीव आभिनिबोधिकज्ञान यावत् केवलज्ञान प्राप्त करता है ?

उ. गौतम ! केवली यावत् केवलि-पाक्षिक उपासिका से धर्म सुनकर कोई जीव आभिनिबोधिकज्ञान यावत् केवलज्ञान प्राप्त करता है और कोई जीव प्राप्त नहीं करता है।

शेष वर्णन "असोच्चा" के समान है।

निरन्तर तेले-तेले तपःकर्म से अपनी आत्मा को भावित करते हुए प्रकृतिभद्रता आदि गुणों से यावत् ईहा, अपोह, मार्गणा एवं गवेषणा करते हुए अवधिज्ञान समुत्पन्न होता है।

वह उस उत्पन्न अवधिज्ञान के प्रभाव से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग,

उत्कृष्ट अलोक में भी लोकप्रमाण असंख्य खण्डों को जानता और देखता है।

प्र. भन्ते ! वह कितनी लेश्याओं में होता है ?

उ. गौतम ! वह छहों लेश्याओं में होता है, यथा–

१. कृष्णलेश्या यावत् ६. शुक्ललेश्या।

प्र. भन्ते ! वह कितने ज्ञानों में होता है ?

उ. गौतम ! वह तीन या चार ज्ञानों में होता है।

यदि तीन ज्ञानों में होता है, तो–

१. आभिनिबोधिकज्ञान, २. श्रुतज्ञान और ३. अवधिज्ञान में होता है।

यदि चार ज्ञानों में होता है तो–

१. आभिनिबोधिकज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान और ४. मनःपर्यवज्ञान में होता है।

प्र. भन्ते ! वह सयोगी होता है या अयोगी होता है ?

उ. गौतम ! जैसे असोच्चा के योग, उपयोग, संहनन, संस्थान, ऊँचाई और आयुष्य के विषय में कहा, उसी प्रकार यहां भी योगादि के विषय में कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! वह अवधिज्ञानी सवेदी होता है या अवेदी होता है ?

उ. गोयमा ! सवेदए वा होज्जा, अवेदए वा होज्जा।

प. जइ अवेदए होज्जा किं उवसंतवेयए होज्जा, खीणवेयए होज्जा ?

उ. गोयमा ! नो उवसंतवेयए होज्जा, खीणवेयए होज्जा।

प. जइ सवेयए होज्जा किं इत्थीवेयए होज्जा जाव पुरिसनपुंसगवेयए वा होज्जा ?

उ. गोयमा ! इत्थीवेयए वा होज्जा, पुरिसवेयए वा होज्जा, पुरिसनपुंसगवेयए वा होज्जा।

प. से णं भंते ! सकसाई होज्जा अकसाई होज्जा ?

उ. गोयमा ! सकसाई वा होज्जा, अकसाई वा होज्जा।

प. जइ अकसाई होज्जा किं उवसंतकसाई होज्जा, खीणकसाई होज्जा ?

उ. गोयमा ! नो उवसंतकसाई होज्जा, खीणकसाई होज्जा।

प. जइ सकसाई होज्जा से णं भंते ! कइसु कसाएसु होज्जा ?

उ. गोयमा ! चउसु वा, तिसु वा, दोसु वा, एक्कम्मि वा होज्जा।

चउसु होज्जमाणे–

चउसु संजलणकोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा,

तिसु होज्जमाणे–

तिसु संजलणमाण-माया-लोभेसु होज्जा,

दोसु होज्जमाणे–

दोसु संजलणमाया-लोभेसु होज्जा,

एक्कम्मि होज्जमाणे–

एक्कम्मि संजलणे लोभे होज्जा।

प. तस्स णं भंते ! केवइया अज्झवसाणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा अज्झवसाणा पण्णत्ता।

सेसं जहा असोच्चाए, तहेव जाव केवलवरणाण दंसण समुप्पज्जइ।

प. से णं भंते ! केवलिपण्णत्तं धम्मं आघविज्जा, वा जाव उवदंसेज्ज वा पन्नविज्जा वा ?

उ. हंता, गोयमा ! आघविज्जा वा जाव उवदंसेज्जा वा पन्नविज्जा वा।

प. से णं भंते ! पव्वावेज्ज वा, मुंडावेज्ज वा ?

उ. हंता, गोयमा ! पव्वावेज्ज वा, मुंडावेज्ज वा।

प. तस्स णं भंते ! सिस्सा वि पव्वावेज्ज वा, मुंडावेज्ज वा ?

उ. गौतम ! वह सवेदी भी होता है और अवेदी भी होता है।

प्र. यदि वह अवेदी होता है तो क्या उपशान्तवेदी होता है या क्षीणवेदी होता है ?

उ. गौतम ! वह उपशान्तवेदी नहीं होता है, किन्तु क्षीणवेदी होता है।

प्र. भन्ते ! यदि वह सवेदी होता है तो क्या स्त्रीवेदी होता है, यावत् पुरुष-नपुंसकवेदी होता है ?

उ. गौतम ! वह स्त्रीवेदी भी होता है, पुरुषवेदी भी होता है और पुरुष-नपुंसकवेदी होता है।

प्र. भन्ते ! वह अवधिज्ञानी सकषायी होता है या अकषायी होता है ?

उ. गौतम ! वह सकषायी भी होता है और अकषायी भी होता है।

प्र. यदि वह अकषायी होता है तो क्या उपशान्तकषायी होता है या क्षीणकषायी होता है ?

उ. गौतम ! वह उपशान्तकषायी नहीं होता है, किन्तु क्षीणकषायी होता है।

प्र. यदि वह सकषायी होता है तो कितने कषायों में होता है ?

उ. गौतम ! वह चार कषायों में, तीन कषायों में, दो कषायों में अथवा एक कषाय में होता है।

यदि वह चार कषायों में होता है,

तो संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ में होता है।

यदि तीन कषायों में होता है,

तो संज्वलन मान, माया और लोभ में होता है।

यदि दो कषायों में होता है,

तो संज्वलन माया और लोभ में होता है,

यदि वह एक कषाय में होता है,

तो एक संज्वलन लोभ में होता है।

प्र. भन्ते ! उस अवधिज्ञानी के कितने अध्यवसाय बताए गए हैं ?

उ. गौतम ! उसके असंख्यात अध्यवसाय होते हैं।

शेष वर्णन असोच्चा के समान केवलवरज्ञान दर्शन की उत्पत्ति तक समझना चाहिए।

प्र. भन्ते ! वे केवलि-प्ररूपित धर्म का कथन करते हैं यावत् उदाहरण देकर समझाते हैं ?

उ. हां, गौतम ! वे केवलि-प्ररूपित धर्म कहते हैं यावत् उदाहरण देकर समझाते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या वे किसी को प्रव्रजित भी करते हैं और मुण्डित भी करते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! वे प्रव्रजित भी करते हैं, और मुण्डित भी करते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या उनके शिष्य भी किसी को प्रव्रजित करते हैं और मुण्डित भी करते हैं ?

उ. हंता, गोयमा ! पव्वावेज्ज वा, मुंडावेज्ज वा।

प. तस्स णं भंते ! पसिस्सा वि पव्वावेज्ज वा, मुंडावेज्ज वा ?

उ. हंता, गोयमा ! पव्वावेज्ज वा, मुंडावेज्ज वा।

प. से णं भंते ! सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ?

उ. हंता, गोयमा ! सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेइ।

प. तस्स णं भंते ! सिस्सा वि सिज्झंति जाव अंतं करेंति ?

उ. हंता, गोयमा ! सिज्झंति जाव अंतं करेंति।

प. तस्स णं भंते ! पसिस्सा वि सिज्झंति जाव अंतं करेंति ?

उ. हंता, गोयमा ! सिज्झंति जाव अंतं करेंति।

से णं भंते ! किं उड्ढं होज्जा, एवं पुच्छा जहेव असोच्चाए।

प. ते णं भंते ! एकसमएणं केवइया होज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं अट्ठसयं।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

सोच्चा णं केवलिस्स वा जाव केवलिउवासियाए वा जाव अत्थेगइए केवलनाणं उप्पाडेज्जा। अत्थेगइए केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा॥

–विया. स. ९, उ. ३१, सु. ३२-४४

११९. जीव चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य नाणानाणित्त परूवणं–

प. जीवा णं भंते ! किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जीवा नाणी वि, अन्नाणी वि।

अत्थेगइया एगनाणी।

जे नाणी ते अत्थेगइया दुन्नाणी,

अत्थेगइया तिन्नाणी,

अत्थेगइया चउनाणी,

जे एगनाणी ते नियमा केवलनाणी।

जे दुन्नाणी ते १. आभिणिबोहियनाणी य,

२. सुयनाणी य।

जे तिन्नाणी ते १. आभिणिबोहियनाणी य,

२. सुयनाणी य, ३. ओहिनाणी य।

अहवा १. आभिणिबोहियनाणी य, २. सुयनाणी य,

३. मणपज्जवनाणी य।

जे चउनाणी ते १. आभिणिबोहियनाणी य,

२. सुयनाणी य, ३. ओहिनाणी य, ४. मणपज्जवनाणी य।

उ. हां, गौतम ! उनके शिष्य भी प्रव्रजित करते हैं और मुण्डित भी करते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या उनके प्रशिष्य भी किसी को प्रव्रजित और मुण्डित करते हैं ?

उ. हां, गौतम ! उनके प्रशिष्य भी प्रव्रजित करते हैं और मुण्डित करते हैं।

प्र. भन्ते ! वे सिद्ध होते हैं यावत् सर्वदुःखों का अन्त करते हैं ?

उ. हां, गौतम ! वे सिद्ध होते हैं यावत् सर्वदुःखों का अन्त करते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या उनके शिष्य भी सिद्ध होते हैं यावत् सर्वदुःखों का अन्त करते हैं ?

उ. हां, गौतम ! वे भी सिद्ध होते हैं यावत् सर्वदुःखों का अन्त करते हैं।

प्र. भन्ते ! क्या उनके प्रशिष्य भी सिद्ध होते हैं यावत् सर्वदुःखों का अन्त करते हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! वे भी सिद्ध होते हैं यावत् सर्वदुःखों का अन्त करते हैं।

भन्ते ! वे ऊर्ध्वलोक में होते हैं इत्यादि प्रश्न और उत्तर "असोच्चा" के समान जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! वे एक समय में कितने होते हैं ?

उ. गौतम ! वे एक समय में जघन्य एक, दो या तीन होते हैं और उत्कृष्ट एक सौ आठ होते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"केवली यावत् केवलिपाक्षिक उपासिका से धर्म श्रवण कर यावत् कोई जीव केवलज्ञान उपार्जन करता है और कोई जीव केवलज्ञान उपार्जन नहीं करता है।

११९. जीव चौवीसदंडकों और सिद्धों में ज्ञानित्व अज्ञानित्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

उ. गौतम ! जीव ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी है।

कुछ जीव एक ज्ञान वाले हैं।

जो जीव ज्ञानी हैं, उनमें से कुछ जीव दो ज्ञान वाले हैं,

कुछ जीव तीन ज्ञान वाले हैं,

कुछ जीव चार ज्ञान वाले हैं,

जो एक ज्ञान वाले हैं, वे नियमतः केवलज्ञानी हैं।

जो दो ज्ञान वाले हैं, वे–१. आभिनिबोधिकज्ञानी,

२. श्रुतज्ञानी हैं।

जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे–१. आभिनिबोधिकज्ञानी,

२. श्रुतज्ञानी, ३. अवधिज्ञानी हैं।

अथवा १. आभिनिबोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी,

३. मनःपर्यवज्ञानी हैं।

जो चार ज्ञान वाले हैं, वे–१. आभिनिबोधिकज्ञानी,

२. श्रुतज्ञानी, ३. अवधिज्ञानी, ४. मनःपर्यवज्ञानी हैं।

जे अन्नाणी ते अत्थेगइया दुअन्नाणी,
अत्थेगइया तिअन्नाणी।
जे दुअन्नाणी ते १. मइअन्नाणी य,
२. सुयअन्नाणी य।
जे तिअन्नाणी ते १. मइअन्नाणी य,
२. सुयअन्नाणी य, ३. विभंगनाणी य।
–विया. स. ८ उ. २, सु. २९

× × × × × ×

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं नाणी, अन्नाणी ?
उ. गोयमा ! नाणी वि, अन्नाणी वि।
जे नाणी ते नियमा तिन्नाणी, तं जहा–
१. आभिणिवोहियनाणी य, २. सुयनाणी य,
३. ओहिनाणी य।
जे अन्नाणी ते अत्थेगइया दुअन्नाणी,
अत्थेगइया तिअन्नाणी।
एवं तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए[1]।
–विया. स. ८, उ. २, सु. ३०

प. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया किं णाणी अण्णाणी ?
उ. गोयमा ! णाणी वि, अण्णाणी वि।
जे णाणी ते णियमा तिण्णाणी, तं जहा–
१. आभिणिवोहियणाणी, २. सुयणाणी, ३. ओहिणाणी
जे अण्णाणी ते अत्थेगइया दु अण्णाणि, अत्थेगइया ति अन्नाणी।
जे दु अन्नाणी ते णियमा १. मइअन्नाणी य,
२. सुय-अण्णाणी य।
जे ति अन्नाणी ते नियमा १. मइ-अण्णाणी,
२. सुय-अण्णाणी, ३. विभंगणाणी वि।
सेसा णं णाणी वि, अण्णाणी वि तिण्णि

एवं जाव अहेसत्तमाए। *–जीवा. पडि. ३, सु. ८८(२)*

प. दं. २. असुरकुमारा णं भंते! किं नाणी, अन्नाणी ?
उ. गोयमा ! जहेव नेरइया तहेव असुरकुमारा।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते! किं नाणी, अण्णाणी ?
उ. गोयमा ! नो नाणी, अन्नाणी ते नियमा दु अण्णाणि, तं जहा–
१. मइ अन्नाणी य, २. सुय अन्नाणी य[2]।
दं. १३-१६. एवं जाव वणस्सइकाइया[3]।

जो अज्ञानी हैं, उनमें से कुछ जीव दो अज्ञान वाले हैं,
कुछ जीव तीन अज्ञान वाले हैं।
जो जीव दो अज्ञान वाले हैं, वे–१. मति-अज्ञानी,
२. श्रुतअज्ञानी है।
जो जीव तीन अज्ञान वाले हैं, वे–१. मति-अज्ञानी,
२. श्रुत-अज्ञानी, ३. विभंगज्ञानी हैं।

× × × × × ×

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?
उ. गौतम ! नैरयिक जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।
उनमें जो ज्ञानी हैं, वे नियमतः तीन ज्ञान वाले हैं, यथा–
१. आभिनिबोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी,
३. अवधिज्ञानी।
जो अज्ञानी हैं उनमें से कुछ दो अज्ञान वाले हैं,
कुछ तीन अज्ञान वाले हैं।
इस प्रकार तीन अज्ञान (विकल्प) से जानने चाहिए।

प्र. भन्ते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?
उ. गौतम ! ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।
जो ज्ञानी हैं वे निश्चय से तीन ज्ञान वाले हैं, यथा–
१. आभिनिवोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी, ३. अवधिज्ञानी।
जो अज्ञानी हैं उनमें कोई दो अज्ञान वाले हैं और कोई तीन अज्ञान वाले हैं।
जो दो अज्ञान वाले हैं वे नियम से १. मति-अज्ञानी और
२. श्रुत-अज्ञानी हैं।
जो तीन अज्ञान वाले हैं वे नियम से १. मति-अज्ञानी,
२. श्रुत-अज्ञानी और ३. विभंगज्ञानी है।
शेष पृथ्वियों के नैरयिक ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं पूर्ववत् तीनों हैं,
इसी प्रकार अधः सप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. २. भन्ते ! असुरकुमार ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?
उ. गौतम ! नैरयिकों के समान असुरकुमारों के लिए भी कथन करना चाहिए।
दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?
उ. गौतम ! वे ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी हैं। वे नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, यथा–
१. मति-अज्ञानी, २. श्रुत-अज्ञानी।
दं. १३-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

---

१. [illegible]   २. जीवा. पडि. १, सु. १३ (१५)   ३. जीवा. पडि. १, सु. १४-२६

प. दं. १७. वेइंदिया णं भंते! किं नाणी, अन्नाणी?

उ. गोयमा! नाणी वि, अन्नाणी वि।
जे नाणी ते नियमा दुन्नाणी, तं जहा–
१. आभिणिबोहियनाणी य, २. सुयनाणी य।
जे अन्नाणी ते नियमा दुअन्नाणी, तं जहा–
१. आभिणिबोहियअन्नाणी य, २. सुयअन्नाणी य[1]।
दं. १८-१९. एवं तेइंदिया चउरिंदिया वि[2]।

प. दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया णं, भंते! किं, नाणी, अन्नाणी?

उ. गोयमा! नाणी वि, अन्नाणी वि।
जे नाणी ते अत्थेगइया दुन्नाणी,
अत्थेगइया तिन्नाणी।
एवं तिण्णि नाणाणि तिण्णि अण्णाणाणि य भयणाए[3]।
–विया. स. ८, उ. २, सु. ३१-३४

प. सम्मुच्छिम पंचेंदियतिरिक्खजोणिय जलयराणं भंते! किं नाणी, अन्नाणी?

उ. गोयमा! णाणी वि, अण्णाणी वि,
जे नाणी ते नियमा दुन्नाणी, तं जहा–
१. आभिणिबोहिय णाणी य, २. सुयणाणी य,
जे अण्णाणी ते नियमा दुअन्नाणी, तं जहा–
१. आभिणिबोहिय अन्नाणी य, २. सुय अन्नाणि य।
थलयराणं खहयराणं एवं चेव।

प. गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्खजोणिय जलयराणं भंते! किं नाणी अन्नाणी?

उ. गोयमा! णाणी वि, अण्णाणी वि।
जे णाणी ते अत्थेगइया दुन्नाणी, अत्थेगइया तिन्नाणी।
जे दुन्नाणी ते णियमा–१. आभिणिबोहियणाणी य, २. सुयणाणी य।
जे तिण्णाणी ते नियमा–१. आभिनिवोहियणाणी, २. सुयणाणी, ३. ओहिणाणी य।
एवं अण्णाणि वि।
थलयराणं खहयराणं एवं चेव।
–जीवा. पडि. १, सु. ३५-४०

दं. २१. मणुस्सा जहा जीवा तहेव, पंच नाणाणि तिण्णि अण्णाणाणि च भयणाए[4]। –विया. स. ८, उ. २, सु. ३५

प. सम्मुच्छिम मणुस्सा णं भन्ते! किं नाणी, अन्नाणी?

उ. गोयमा! णो णाणी, अण्णाणी ते नियमा दु अण्णाणि, तं जहा–

प्र. दं. १७. भन्ते! द्वीन्द्रिय जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम! द्वीन्द्रिय जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।
जो ज्ञानी हैं, वे बिना विकल्प के दो ज्ञान वाले हैं, यथा–
१. आभिनिबोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी।
जो अज्ञानी हैं, वे नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, यथा–
१. आभिनिवोधिकअज्ञानी, २. श्रुत-अज्ञानी।
दं. १८-१९. इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और १९: चतुरिन्द्रिय जीवों के लिए जानना चाहिए।

प्र. दं. २०. भन्ते! पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।
जो ज्ञानी हैं, उनमें से कितने ही दो ज्ञान वाले हैं और कितने ही तीन ज्ञान वाले हैं।
इस प्रकार तीन ज्ञान और तीन अज्ञान (विकल्प) से जानने चाहिए।

प्र. भन्ते! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचर क्या ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम! ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं,
जो ज्ञानी हैं वे नियमतः दो ज्ञान वाले है, यथा–
१. आभिनिवोधिक ज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी,
जो अज्ञानी हैं वे नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, यथा–
१. आभिनिवोधिक अज्ञानी, २. श्रुत अज्ञानी
(सम्मूर्च्छिम) स्थलचरों खेचरों के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

प्र. भन्ते! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचर क्या ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम! ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।
जो ज्ञानी हैं वे कितने ही दो ज्ञान वाले हैं और कितने ही तीन ज्ञान वाले हैं।
जो दो ज्ञान वाले हैं वे नियमतः १. आभिनिवोधिक ज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी हैं।
जो तीन ज्ञान वाले हैं वे नियमतः १. आभिनिवोधिक ज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी, ३. अवधिज्ञानी हैं।
इसी प्रकार अज्ञानी भी जानने चाहिए।
(गर्भज) स्थलचरों खेचरों के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

दं. २१. जिस प्रकार औधिक जीवों का कथन है उसी प्रकार मनुष्यों में भी पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान विकल्प से कहने चाहिए।

प्र. भन्ते! सम्मूर्च्छिम मनुष्य क्या ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम! ज्ञानी नहीं हैं, किन्तु अज्ञानी हैं। वे नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, यथा–

---

१. जीवा.पडि.१, सु.२८
२. जीवा.पडि.१, सु.२९-३०
३. जीवा.पडि.३, सु.९७(१)
४. जीवा.पडि.१, सु.४१

१. मइ अन्नाणी, २. सुय अन्नाणी य।

प. गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं भंते ! किं नाणी, अण्णाणी ?

उ. गोयमा ! णाणी वि अण्णाणी वि।

जे णाणी ते अंत्थेगइया दुन्नाणी, अत्थेगइया तिन्नाणी, अत्थेगइया चउणाणी, अत्थेगइया एगणाणी।

जे दुण्णाणी ते नियमा– १. आभिणिबोहियणाणी, २. सुयनाणी य।

जे तिणाणी ते १. आभिणिबोहिय णाणी, २. सुयणाणी, ३. ओहिणाणी य।

अहवा १. आभिणिवोहियणाणी, २. सुयणाणी, ३. मणपज्जवणाणी य।

जे चउणाणी ते णियमा–१. आभिणिबोहियणाणी, २. सुयणाणी, ३. ओहिणाणी ४. मणपज्जवणाणी य।

जे एगणाणी ते नियमा–१. केवलणाणी।

एवं अण्णाणी वि दुअण्णाणी, ति अण्णाणी।

–जीवा. पडि. १, सु. ४१

दं. २२. वाणमंतरा जहा नेरइया।

दं. २३-२४. जोइसिय वेमाणियाणं तिण्णि नाणा तिण्णि अन्नाणा नियमा[१]। *–विया. स. ८, उ. २, सु. ३६-३७*

×× ×× ××

प. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! कप्पेसु देवा किं णाणी, अण्णाणी ?

उ. गोयमा ! णाणी वि, अण्णाणी वि।

जे णाणी ते णियमा तिण्णाणी, तं जहा–

१. आभिणिवोहियणाणी, २. सुयणाणी, ३. ओहिणाणी।

जे अण्णाणी ते णियमा तिअण्णाणी, तं जहा–

१. मइअण्णाणी, २. सुयअण्णाणी, ३. विभंगणाणी य।

एवं जाव गेवेज्जा।

अणुत्तरोववाइया णाणी, णो अण्णाणी नियमा तिण्णाणी। *–जीवा. पडि. ३, सु. २०१ (ई)*

प. सिद्धा णं भंते ! किं णाणी, अण्णाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी, नो अण्णाणी। नियमा एगणाणी-केवलणाणी। *–विया. स. ८, उ. २, सु. ३८*

१२०. गइआई वीस दार विवक्खया नाणित्तानाणित्त परूवणं–

प. निरयगइया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी वि, अन्नाणी वि।

तिण्णि नाणाइं नियमा तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

प. तिरियगइया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

१. मति अज्ञानी, २. श्रुत अज्ञानी।

प्र. भन्ते ! गर्भज मनुष्य क्या ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।

जो ज्ञानी हैं वे कितने ही दो ज्ञान वाले हैं, कितने ही तीन ज्ञान वाले हैं, कितने ही चार ज्ञान वाले हैं और कितने ही एक ज्ञान वाले हैं।

जो दो ज्ञान वाले हैं वे नियमतः १. आभिणिबोधिक ज्ञानी, २. श्रुत ज्ञानी हैं।

जो तीन ज्ञान वाले हैं वे १. आभिनिबोधिक ज्ञानी, २. श्रुत ज्ञानी, ३. अवधिज्ञानी हैं।

अथवा १. आभिनिबोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी, ३. मनःपर्यवज्ञानी हैं।

जो चार ज्ञान वाले हैं वे नियमतः १. आभिनिबोधिक ज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी, ३. अवधिज्ञानी, ४. मनःपर्यवज्ञानी हैं।

जो एक ज्ञान वाले हैं वे नियमतः एक केवलज्ञानी हैं।

इसी प्रकार अज्ञानी भी दो अज्ञान वाले और तीन अज्ञान वाले हैं।

दं. २२. वाणव्यन्तर देवों का कथन नैरयिकों के समान हैं।

दं. २३-२४. ज्योतिष्क और वैमानिक देवों में तीन ज्ञान और तीन अज्ञान नियमतः पाये जाते हैं।

×× ×× ××

प्र. भन्ते ! सौधर्म-ईशान कल्प में देव क्या ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।

जो ज्ञानी हैं वे नियमतः तीन ज्ञान वाले हैं, यथा–

१. आभिनिवोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी, ३. अवधिज्ञानी।

जो अज्ञानी हैं वे नियमतः तीन अज्ञान वाले हैं, यथा–

१. मतिअज्ञानी, २. श्रुतअज्ञानी, ३. विभंगज्ञानी।

इसी प्रकार ग्रैवेयक पर्यन्त जानना चाहिए।

अनुत्तरोपपातिक देव ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं वे नियमतः तीन ज्ञान वाले हैं।

प्र. भन्ते ! सिद्ध ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! सिद्ध ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। वे विना विकल्प के एक केवलज्ञान वाले हैं।

१२०. गति आदि बीस द्वारों की विवक्षा से ज्ञानत्व अज्ञानत्व का प्ररूपण :–

प्र. भन्ते ! नरक गति के जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।

जो ज्ञानी हैं, वे नियमतः तीन ज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं वे भजना (विकल्प) से तीन अज्ञान वाले हैं।

प्र. भन्ते ! तिर्यञ्चगति के जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

[illegible]

१. इस द्वार में गर्भजमनुष्य जीवों की अपेक्षा पृच्छा है।

उ. गोयमा ! दो नाणा, दो अन्नाणा नियमा।

प. मणुस्सगइया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! तिण्णि नाणाइं भयणाए, दो अन्नाणाइं नियमा।

देवगइया जहा निरयगइया।

प. सिद्धगइया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सिद्धा। *–विया. स. ८, उ. २, सु. ३९-४३*

×× ×× ××

२. इंदियदारं–

प. सइंदिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! चत्तारि नाणाइं तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

प. एगिंदिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा पुढविक्काइया।

वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं दो नाणा, दो अन्नाणा नियमा।

पंचेंदिया जहा सइंदिया।

प. अणिंदिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सिद्धा *–विया. स. ८, उ. २, सु. ४४-४८*

×× ×× ××

३. कायदारं

प. सकाइया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! पंच नाणाणि, तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

पुढविकाइया जाव वणस्सइकाइया नो नाणी, अन्नाणी। नियमा दुअन्नाणी, तं जहा–

१. मइअन्नाणी य, २. सुयअन्नाणी य।[1]

तसकाइया जहा सकाइया।

प. अकाइया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सिद्धा। *–विया. स. ८, उ. २, सु. ४९-५२*

×× ×× ××

४. सुहुमदारं

प. सुहुमा णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा पुढविकाइया।

प. बायरा णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सकाइया।

प. नो सुहुमानोबायरा णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गौतम ! वे नियमतः (विना विकल्प के) दो ज्ञान या दो अज्ञान वाले हैं।

प्र. भन्ते ! मनुष्य गति के जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! उनके भजना (विकल्प) से तीन ज्ञान होते हैं और नियमतः दो ज्ञान होते हैं।

देवगति के जीवों में ज्ञान और अज्ञान का कथन नरक गति के जीवों के समान है।

प्र. भन्ते ! सिद्धगति के जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! उनका कथन सिद्धों के समान है।

×× ×× ××

२. इन्द्रिय द्वार–

प्र. भन्ते ! सेन्द्रिय जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! उनके चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते हैं।

प्र. भन्ते ! एक इन्द्रिय वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों के समान है (अर्थात् अज्ञानी हैं)

दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय वाले जीवों में नियमतः दो ज्ञान और दो अज्ञान होते हैं।

पांच इन्द्रियों वाले जीवों का कथन सेन्द्रिय जीवों की तरह कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! अनिन्द्रिय जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

उ. गौतम ! उनका कथन सिद्धों के समान जानना चाहिए।

×× ×× ××

३. काय द्वार–

प्र. भन्ते ! सकायिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! सकायिक जीवों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते हैं।

पृथ्वीकायिक से वनस्पतिकायिक पर्यन्त ज्ञानी नहीं, अज्ञानी हैं। वे नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, यथा–

१. मतिअज्ञान, २. श्रुतअज्ञान।

त्रसकायिक जीवों का कथन सकायिक जीवों के समान है।

प्र. भन्ते ! अकायिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! इनका कथन सिद्धों के समान जानना चाहिए।

×× ×× ××

४. सूक्ष्म द्वार–

प्र. भन्ते ! सूक्ष्म जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

उ. गौतम ! इनका कथन पृथ्वीकायिक जीवों के समान है।

प्र. भन्ते ! बादर जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! इनका कथन सकायिक जीवों के समान है।

प्र. भन्ते ! नो-सूक्ष्म-नो-बादर जीव ज्ञानी है या अज्ञानी है ?

---

१. जीवा. पडि. ९, सु. ९२(९५)

उ. गोयमा ! जहा सिद्धा। *-विया. स. ८, उ. २, सु. ५३-५५*

×× ×× ××

५. पज्जत्तापज्जत्त दारं-

प. पज्जत्ता णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी?

उ. गोयमा ! जहा सकाइया।

प. दं. १. पज्जत्ता णं भंते ! नेरइया किं नाणी, अन्नाणी?

उ. गोयमा ! तिण्णि नाणा, तिण्णि अन्नाणा नियमा।

प. दं. २-११. जहा नेरइया एवं जाव थणियकुमारा।

दं. १२. पुढविकाइया जहा एगिंदिया।

दं. १३-१९. एवं जाव चउरिंदिया।

प. दं. २०. पज्जत्ता णं भंते ! पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया किं नाणी, अन्नाणी?

उ. गोयमा ! तिण्णि नाणा, तिण्णि अन्नाणा भयणाए।

दं. २१. मणुस्सा जहा सकाइया।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया।

प. अपज्जत्ता णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी?

उ. गोयमा ! तिण्णि नाणा, तिण्णि अन्नाणा भयणाए ए।

×× ×× ××

प. दं. १. अपज्जत्ता णं भंते ! नेरइया किं नाणी, अन्नाणी?

उ. गोयमा ! तिण्णि नाणा नियमा, तिण्णि अन्नाणा भयणा।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमारा।

दं. १२-१६. पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया जहा एगिंदिया।

प. दं. १७. बेइंदिया णं भंते ! अपज्जत्तगा किं नाणी, अन्नाणी?

उ. गोयमा ! दो नाणा, दो अन्नाणा नियमा।

दं. १८-२०. एवं जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं।

प. दं. २१. अपज्जत्ता णं भंते ! मणुस्सा किं नाणी, अन्नाणी?

उ. [illegible] भयणाए, दो अन्नाणाइं नियमा।

दं. २२. [illegible] जहा नेरइया।

उ. गौतम ! उनका कथन सिद्धों के समान है।

×× ×× ××

५. पर्याप्त-अपर्याप्त द्वार

प्र. भन्ते ! पर्याप्तक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम ! वे सकायिक जीवों के समान है।

प्र. दं. १. भन्ते ! पर्याप्त नैरयिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम ! इनमें नियमतः तीन ज्ञान या तीन अज्ञान होते हैं।

दं. २-११. पर्याप्त (असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त) पर्याप्त नैरयिक जीवों के समान है।

दं. १२. पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीव एकेन्द्रिय जीवों के समान है।

दं. १३-१९. इसी प्रकार पर्याप्त चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. २०. भन्ते ! पर्याप्त पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम ! उनमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते हैं।

दं. २१. पर्याप्त मनुष्य सकायिक जीवों के समान है।

दं. २२-२४. पर्याप्त वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक नैरयिक जीवों के समान है।

प्र. भन्ते ! अपर्याप्तक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम ! उनमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते हैं।

×× ×× ××

प्र. दं. १. भन्ते ! अपर्याप्त नैरयिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम ! उनमें तीन ज्ञान नियमतः होते हैं और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

दं. २-११. नैरयिक जीवों की तरह अपर्याप्त स्तनितकुमार देवों तक कथन करना चाहिए।

दं. १२-१६. पृथ्वीकायिक से वनस्पतिकायिक जीवों पर्यंत का कथन एकेन्द्रिय जीवों के समान हैं।

प्र. दं. १७. भन्ते ! अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम ! इनमें दो ज्ञान या दो अज्ञान नियमतः होते हैं।

दं. १८-२०. इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. २१. भन्ते ! अपर्याप्त मनुष्य ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम ! उनमें तीन ज्ञान भजना से होते हैं और दो अज्ञान नियमतः होते हैं।

दं. २२. अपर्याप्त वाणव्यन्तर जीवों का कथन नैरयिक जीवों के समान है।

प. दं. २३-२४. अपज्जत्ता जोइसिय वेमाणिया णं भंते ! किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! तिण्णि नाणा, तिण्णि अन्नाणा नियमा।

प. नो पज्जत्तगा-नो अपज्जत्तगा णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सिद्धा। *–विया. स. ८, उ. २, सु. ५६-७०*

×× ×× ××

६. भवत्थदारं–

प. निरयभवत्था णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा निरयगइया।

प. तिरियभवत्था णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! तिण्णि नाणा, तिण्णि अन्नाणा भयणाए।

प. मणुस्सभवत्था णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सकाइया।

प. देवभवत्था णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा निरयभवत्था।
अभवत्था जहा सिद्धा। *–विया. स. ८, उ. २, सु. ७१-७५*

×× ×× ××

७. भवसिद्धियदारं–

प. भवसिद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सकाइया।

प. अभवसिद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नो नाणी अन्नाणी, तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

प. नो भवसिद्धिया-नो अभवसिद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सिद्धा। *–विया. स. ८, उ. २, सु. ७६-७८*

×× ×× ××

८. सन्निदारं–

प. सण्णी णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सइंदिया।
असण्णी जहा बेइंदिया।
नो सण्णी, नो असण्णी जहा सिद्धा।
–विया. स. ८, उ. २, सु. ७९-८१

×× ×× ××

९. लद्धिदारं–

प. कइविहा णं भंते ! लद्धी पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दसविहा लद्धी पण्णत्ता, तं जहा–
१. नाणलद्धी, २. दंसणलद्धी,
३. चरित्तलद्धी, ४. चरित्ताचरित्तलद्धी
५. दाणलद्धी, ६. लाभलद्धी,

प्र. दं. २३-२४. भन्ते ! अपर्याप्त ज्योतिष्क और वैमानिक देव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! उनमें तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियमतः होते हैं।

प्र. भन्ते ! नो पर्याप्त-नो-अपर्याप्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! इनका कथन सिद्ध जीवों के समान है।

×× ×× ××

६. भवस्थ द्वार–

प्र. भन्ते ! भवस्थ नैरयिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! इनके विषय में नरक गति के जीवों के समान कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! भवस्थ तिर्यंच जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! उनमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

प्र. भन्ते ! भवस्थ मनुष्य जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे सकायिक जीवों के समान हैं।

प्र. भन्ते ! भवस्थ देव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! इनका कथन भवस्थ नैरयिक जीवों के समान है।
अभवस्थ जीवों का कथन सिद्धों के समान है।

×× ×× ××

७. भवसिद्धिक द्वार–

प्र. भन्ते ! भवसिद्धिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे सकायिक जीवों के समान हैं।

प्र. भन्ते ! अभवसिद्धिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! ये ज्ञानी नहीं हैं, किन्तु अज्ञानी हैं। इनमें तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते हैं।

प्र. भन्ते ! नो भवसिद्धिक-नो अभवसिद्धिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे सिद्ध जीवों के समान हैं।

×× ×× ××

८. संज्ञी द्वार–

प्र. भन्ते ! संज्ञी जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! सेन्द्रिय जीवों के समान हैं।
असंज्ञी जीव द्वीन्द्रिय जीवों के समान हैं।
नो-संज्ञी-नो-असंज्ञी जीव सिद्ध जीवों के समान हैं।

×× ×× ××

९. लब्धि द्वार–

प्र. भन्ते ! लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! लब्धि दस प्रकार की कही गई है, यथा–
१. ज्ञानलब्धि, २. दर्शनलब्धि,
३. चारित्रलब्धि, ४. चारित्राचारित्रलब्धि,
५. दानलब्धि, ६. लाभलब्धि,

७. भोगलद्धी, ८. उवभोगलद्धी,
९. वीरियलद्धी, १०. इंदियलद्धी

प. (१ क). नाणलद्धी णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. आभिणिवोहियनाणलद्धी जाव ५. केवलनाणलद्धी

×× ×× ××

प. (१ ख). अन्नाणलद्धी णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. मइअन्नाणलद्धी, २. सुयअन्नाणलद्धी,
३. विभंगनाणलद्धी।

×× ×× ××

प. (२) दंसणलद्धी णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सम्मद्दंसणलद्धी, २. मिच्छादंसणलद्धी,
३. सम्मामिच्छादंसणलद्धी।

×× ×× ××

प. (३) चरित्तलद्धी णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सामाइयचरित्तलद्धी, २. छेदोवट्ठावणियलद्धी
३. परिहारविसुद्धलद्धी, ४. सुहुमसंपरायलद्धी,
५. अहक्खायचरित्तलद्धी।

×× ×× ××

प. (४) चरित्ताचरित्तलद्धी णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगागारा पण्णत्ता।
(५-८) एवं दाणलद्धी, लाभलद्धी, भोगलद्धी, उवभोगलद्धी एगागारा पण्णत्ता।

प. (९) वीरियलद्धी णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. बालवीरियलद्धी, २. पंडियवीरियलद्धी,
३. बालपंडियवीरियलद्धी।

प. (१०) इंदियलद्धी णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सोइंदियलद्धी जाव ५. फासिंदियलद्धी।

प. १. नाणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी, नो अन्नाणी पंच नाणाइं भयणाए।

प. [illegible] णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नो नाणी, अन्नाणी, तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

प. [illegible] णं भंते ! जीवा किं नाणी, [illegible]

उ. [illegible] भयणाए।

७. भोगलब्धि, ८. उपभोगलब्धि,
९. वीर्यलब्धि, १०. इन्द्रियलब्धि।

प्र. (१ क). भन्ते ! ज्ञानलब्धि कितने प्रकार की कही गई हैं ?

उ. गौतम ! वह पाँच प्रकार की कही गई हैं, यथा–
१. आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि यावत् ५. केवलज्ञानलब्धि।

×× ×× ××

प्र. (१ ख). भन्ते ! अज्ञानलब्धि कितने प्रकार की कही गई हैं ?

उ. गौतम ! अज्ञानलब्धि तीन प्रकार की कही गई हैं, यथा–
१. मति-अज्ञानलब्धि, २. श्रुत-अज्ञानलब्धि,
३. विभंगज्ञानलब्धि।

×× ×× ××

प्र. (२) भन्ते ! दर्शनलब्धि कितने प्रकार की कही गई हैं ?

उ. गौतम ! वह तीन प्रकार की कही गई हैं, यथा–
१. सम्यग्दर्शनलब्धि, २. मिथ्यादर्शनलब्धि,
३. सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि।

×× ×× ××

प्र. (३) भन्ते ! चारित्रलब्धि कितने प्रकार की कही गई हैं ?

उ. गौतम ! चारित्रलब्धि पाँच प्रकार की कही गई हैं, यथा–
१. सामायिकचारित्रलब्धि, २. छेदोपस्थापनिकलब्धि,
३. परिहारविशुद्धलब्धि, ४. सूक्ष्मसम्परायलब्धि,
५. यथाख्यातचारित्रलब्धि।

×× ×× ××

प्र. (४) भन्ते ! चारित्राचारित्रलब्धि कितने प्रकारकी कही गई है ?

उ. गौतम ! वह एक ही प्रकार की कही गई है।
(५-८) इसी प्रकार दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि, उपभोगलब्धि ये सब एक-एक प्रकार की कही गई हैं।

प्र. (९) भन्ते ! वीर्यलब्धि कितने प्रकार की कही गई हैं ?

उ. गौतम ! वीर्यलब्धि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. बालवीर्यलब्धि, २. पण्डितवीर्यलब्धि,
३. बाल-पण्डितवीर्यलब्धि।

प्र. १०. भन्ते ! इन्द्रियलब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! वह पाँच प्रकार की कही गई है, यथा–
१. श्रोत्रेन्द्रियलब्धि, यावत् ५. स्पर्शेन्द्रियलब्धि।

प्र. १. भन्ते ! ज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। उनमें पाँच ज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प्र. भन्ते ! ज्ञानलब्धिरहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी हैं, उनमें तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प्र. भन्ते ! आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं, चार ज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प. तस्स अलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी वि, अन्नाणी वि।
जे नाणी ते नियमा एगनाणी, केवलनाणी।
जे अन्नाणी तेसिं तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

एवं सुयनाणलद्धीया वि।

तस्स अलद्धीया वि जहा आभिणिबोहियनाणस्स अलद्धीया।

प. ओहिनाणलद्धीया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी, नो अन्नाणी।
अत्थेगइया तिण्णाणी अत्थेगइया चउनाणी।
जे तिण्णाणी ते १. आभिणिबोहियनाणी, २. सुयनाणी, ३. ओहिनाणी।
जे चउनाणी ते १. आभिणिबोहियनाणी, २. सुयनाणी, ३. ओहिनाणी, ४. मणपज्जवनाणी।

प. तस्स अलद्धीया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी वि, अन्नाणी वि।
ओहिनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

प. मणपज्जवनाणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी, नो अन्नाणी।
अत्थेगइया तिण्णाणी,
अत्थेगइया चउनाणी।
जे तिण्णाणी ते–१. आभिणिबोहियनाणी, २. सुयनाणी, ३. मणपज्जवनाणी।
जे चउनाणी ते–१. आभिणिवोहियनाणी, २. सुयनाणी, ३. ओहिनाणी, ४. मणपज्जवनाणी।

प. तस्स अलद्धीया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी वि, अन्नाणी वि,
मणपज्जवनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

प. केवलनाणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी, नो अन्नाणी, नियमा एगनाणी-केवलनाणी।

प. तस्स अलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी वि, अन्नाणी वि।
केवलनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

प्र. भन्ते ! आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि-रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।
जो ज्ञानी हैं, वे नियमतः एकमात्र केवलज्ञानी हैं।
जो अज्ञानी हैं, उनमें तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

श्रुतज्ञानलब्धि वाले जीवों का कथन भी इसी प्रकार आभिनिवोधिक ज्ञानलब्धि वाले जीवों के समान है।

श्रुतज्ञानलब्धिरहित जीवों का कथन आभिनिबोधिक-ज्ञानलब्धिरहित जीवों के समान है।

प्र. भन्ते ! अवधिज्ञानलब्धियुक्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं।
उनमें से कई तीन ज्ञान वाले हैं और कई चार ज्ञान वाले हैं।
जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे–१. आभिनिबोधिकज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान वाले हैं,
जो चार ज्ञान वाले हैं, वे–१. आभिनिवोधिकज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. मनःपर्यवज्ञान वाले हैं।

प्र. भन्ते ! अवधिज्ञानलब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।
उनमें अवधिज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प्र. भन्ते ! मनःपर्यवज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं है।
उनमें से कितने ही तीन ज्ञान वाले हैं,
कितने ही चार ज्ञान वाले हैं।
जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे–१. आभिनिवोधिकज्ञान, २. श्रुतज्ञान ३. मनः पर्यवज्ञान वाले हैं।
जो चार ज्ञान वाले हैं, वे–१. आभिनिवोधिकज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. मनःपर्यवज्ञान वाले हैं।

प्र. भन्ते ! मनःपर्यवज्ञान लब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।
उनमें मनःपर्यवज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प्र. भन्ते ! केवलज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं वे नियमतः एकमात्र केवलज्ञान वाले हैं।

प्र. भन्ते ! केवलज्ञानलब्धिरहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।
उनमें केवलज्ञान को छोड़कर शेष चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प. अन्नाणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नो नाणी, अन्नाणी,
तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

प. तस्स अलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी, नो अन्नाणी।
पंच नाणाइं भयणाए।

जहा अन्नाणस्स लद्धिया अलद्धिया य भणिया एवं मइअन्नाणस्स सुयअन्नाणस्स य लद्धिया अलद्धिया य भाणियव्वा।

विभंगनाणलद्धियाणं तिण्णि अन्नाणाइं नियमा।

तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं भयणाए, दो अन्नाणाइं नियमा।

×× ×× ××

प. २. दंसणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी वि, अन्नाणी वि।
पंच नाणाइं, तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

प. तस्स अलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! तस्स अलद्धिया नत्थि।
सम्मद्दंसणलद्धियाणं पंच नाणाइं भयणाए।

तस्स अलद्धियाणं तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

प. मिच्छादंसणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं, तिण्णि य अन्नाणाइं भयणाए।

सम्मामिच्छादंसणलद्धिया अलद्धिया य जहा मिच्छादंसणलद्धी अलद्धी तहेव भाणियव्वं।

×× ×× ××

प. ३. चरित्तलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! पंच नाणाइं भयणाए।

तस्स अलद्धियाणं मणपज्जवनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं, तिण्णि य अन्नाणाइं भयणाए।

प. सामाइयचरित्तलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी, केवलवज्जाइं चत्तारि नाणाइं भयणाए।

तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं, तिण्णि य अन्नाणाइं भयणाए।

प्र. भन्ते ! अज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी हैं।
उनमें तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प्र. भन्ते ! अज्ञानलब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं।
उनमें पांच ज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

जिस प्रकार अज्ञानलब्धि और अज्ञानलब्धि से रहित जीवों का कथन किया है, उसी प्रकार मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञानलब्धि वाले तथा इन लब्धियों से रहित जीवों का कथन भी करना चाहिए।

विभंगज्ञान-लब्धि से युक्त जीवों में नियमतः (बिना विकल्प) तीन अज्ञान होते हैं और

विभंगज्ञान-लब्धिरहित जीवों में पांच ज्ञान भजना (विकल्प) से और दो अज्ञान नियमतः होते हैं।

×× ×× ××

प्र. २. भन्ते ! दर्शनलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।
उनमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

प्र. भन्ते ! दर्शनलब्धिरहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! कोई भी जीव दर्शनलब्धिरहित नहीं होता है।
सम्यग्दर्शनलब्धि प्राप्त जीवों में पांच ज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

सम्यग्दर्शनलब्धिरहित जीवों में तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प्र. भन्ते ! मिथ्यादर्शनलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! उनमें तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

मिथ्यादर्शनलब्धिरहित जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

सम्यग्मिथ्यादर्शन लब्धि प्राप्त और लब्धिरहित जीवों का कथन मिथ्यादर्शनलब्धि युक्त और लब्धिरहित जीवों के समान है।

×× ×× ××

प्र. ३. भन्ते ! चारित्रलब्धियुक्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! उनमें पांच ज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।
चारित्रलब्धिरहित जीवों में मनःपर्यवज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प्र. भन्ते ! सामायिकचारित्रलब्धियुक्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी हैं, उनमें केवलज्ञान के सिवाय चार ज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।
सामायिकचारित्रलब्धिरहित जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

एवं जहा सामाइयचरित्तलद्धिया अलद्धिया य भणिया, एवं जाव अहक्खायचरित्तलद्धिया अलद्धिया य भाणियव्वा।

णवरं–अहक्खायचरित्तलद्धिया पंच नाणाइं भयणाए।

जिस प्रकार सामायिक चारित्रलब्धि वाले और लब्धि रहित जीवों का कथन किया है उसी प्रकार यावत् यथाख्यात् लब्धि वाले और लब्धि रहित जीवों का कथन करना चाहिए।

विशेष–यथाख्यातचारित्रलब्धियुक्त जीवों में पांच ज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प. ४. चरित्ताचरित्तलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी?

उ. गोयमा ! नाणी, नो अन्नाणी।

अत्थेगइया दुन्नाणी,

अत्थेगइया तिन्नाणी।

जे दुन्नाणी ते–१. आभिणिबोहियनाणी य, २. सुयनाणी य।

जे तिन्नाणी ते–१. आभिणिबोहियनाणी य, २. सुयनाणी य, ३. ओहिनाणी य।

तस्स अलद्धीयाणं पंच नाणाइं, तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए। *–विया. स. ८, उ. २, सु. १०७*

प्र. ४. भन्ते ! चारित्राचारित्र लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं।

उनमें से कई दो ज्ञान वाले हैं,

कई तीन ज्ञान वाले हैं।

जो दो ज्ञान वाले हैं, वे–१. आभिनिबोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी है।

जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे–१. आभिनिबोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी, और ३. अवधिज्ञानी है।

चारित्राचारित्रलब्धिरहित जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प. ५-९. दाणलद्धियाणं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी?

उ. गोयमा ! पंच नाणाइं तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

प्र. ५-९. भन्ते ! दानलब्धि युक्त जीव क्या ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम ! दानलब्धि युक्त जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प. तस्स अलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी?

उ. गोयमा ! नाणी, नो अन्नाणी नियमा एगनाणी-केवलनाणी।

एवं जाव वीरियस्स लद्धी अलद्धी य भाणियव्वा।

वालवीरियलद्धियाणं तिण्णि नाणाइं तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

तस्स अलद्धियाइं पंच नाणाइं भयणाए।

पंडियवीरियलद्धियाणं पंच नाणाइं भयणाए।

तस्स अलद्धियाणं मणपज्जवनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं अन्नाणाणि तिण्णि य भयणाए।

प्र. भन्ते ! दानलब्धिरहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं, उनमें नियम से एकमात्र केवलज्ञान होता है।

इसी प्रकार वीर्यलब्धियुक्त और वीर्यलब्धिरहित पर्यन्त का कथन करना चाहिए।

वालवीर्यलब्धियुक्त जीवों में तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

वालवीर्यलब्धिरहित जीवों में पांच ज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

पण्डितवीर्यलब्धियुक्त जीवों में पांच ज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

पण्डितवीर्यलब्धिरहित जीवों में मनःपर्यवज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प. वालपंडियवीरियलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी?

उ. गोयमा ! तिण्णि नाणाइं भयणाए।

तस्स अलद्धियाणं पंच नाणाइं, तिण्णि य अन्नाणाइं भयणाए।

प्र. भन्ते ! वाल-पण्डित-वीर्यलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम ! उनमें तीन ज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

वालपण्डितवीर्यलब्धि-रहित जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प. १०. इंदियलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी?

उ. गोयमा ! चत्तारि नाणाइं तिण्णि य अन्नाणाइं भयणाए।

प्र. १०. भन्ते ! इन्द्रियलब्धियुक्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गौतम ! उनमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प. तस्स अलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी?

प्र. भन्ते ! इन्द्रियलब्धिरहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं?

उ. गोयमा ! नाणी, नो अन्नाणी, नियमा एगनाणी-केवलनाणी।

सोइंदियलद्धियाणं जहा इंदियलद्धिया।

प. तस्स अलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी वि, अन्नाणी वि।

जे नाणी ते अत्थेगइया दुन्नाणी,

अत्थेगइया एगनाणी।

जे दुन्नाणी ते १. आभिणिबोहियनाणी य,

२. सुयनाणी य।

जे एगनाणी ते केवलनाणी।

जे अन्नाणी ते नियमा दुअन्नाणी, तं जहा-

१. मइअन्नाणी य, २. सुयअन्नाणी य।

चक्खिंदिय-घाणिंदियलद्धियाणं अलद्धियाण य जहेव सोइंदियस्स लद्धिया अलद्धिया।

जिब्भिंदियलद्धियाणं चत्तारि नाणाइं, तिण्णि य अन्नाणाणि भयणाए।

प. तस्स अलद्धिया णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी वि, अन्नाणी वि।

जे नाणी ते नियमा एगनाणी-केवलनाणी।

जे अन्नाणी ते नियमा दुअन्नाणी, तं जहा-

१. मइअन्नाणी य, २. सुयअन्नाणी य।

फासिंदियलद्धियाणं अलद्धियाणं जहा इंदियलद्धिया य अलद्धिया य। -विया. स. ८, उ. २, सु. ८२-११६

१०. उवओगदार-

प. सागारोवउत्ता णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. [illegible] नाणाइं, तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

प. [illegible] सागारोवउत्ता णं भंते ! जीवा किं [illegible]

उ. [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

उ. गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। वे नियमतः (विना विकल्प के) एकमात्र केवलज्ञानी हैं।

श्रोत्रेन्द्रियलब्धियुक्त जीवों का कथन इन्द्रियलब्धि वाल जीवों के समान हैं।

प्र. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रियलब्धिरहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।

जो ज्ञानी हैं, उनमें से कई दो ज्ञान वाले हैं,

कई एक ज्ञान वाले हैं।

जो दो ज्ञान वाले हैं, वे-१. आभिनिबोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी हैं।

जो एक ज्ञान वाले हैं, वे केलवज्ञानी हैं।

जो अज्ञानी है, वे नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, यथा-

१. मति-अज्ञान, २. श्रुत-अज्ञान।

चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय-लब्धि युक्त और लब्धिरहित जीवों का कथन श्रोत्रेन्द्रियलब्धि युक्त और लब्धिरहित जीवों के समान है।

जिह्वेन्द्रियलब्धि वाले जीवों में चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प्र. भन्ते ! जिह्वेन्द्रियलब्धिरहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।

जो ज्ञानी हैं वे नियमतः (विना विकल्प) एकमात्र केवलज्ञान वाले हैं,

जो अज्ञानी हैं वे नियमतः (विना विकल्प) दो अज्ञान वाले हैं, यथा-

१. मति-अज्ञान, २. श्रुत-अज्ञान।

स्पर्शेन्द्रियलब्धि-युक्त और लब्धिरहित जीवों का कथन इन्द्रियलब्धियुक्त और इन्द्रिय लब्धिरहित जीवों के समान है।

१०. उपयोग द्वार-

प्र. भन्ते ! साकारोपयोग-युक्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! उनमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प्र. भन्ते ! आभिनिबोधिकज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! उनमें चार ज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

इसी प्रकार श्रुतज्ञान-साकारोपयोग-युक्त जीवों का कथन भी है।

अवधिज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवों का कथन अवधिज्ञान-लब्धियुक्त जीवों के समान है।

मनःपर्यवज्ञान-साकारोपयोग-युक्त जीवों का कथन मनःपर्यव-ज्ञानलब्धि युक्त जीवों के समान है।

केवलज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवों का कथन केवलज्ञानलब्धि-युक्त जीवों के समान है।

[illegible] अज्ञान साकारोपयोगयुक्त जीवों में तीन अज्ञान भजना से पाए जाते हैं।

एवं सुयअन्नाणसागारोवउत्ता वि।

श्रुत-अज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवों का कथन भी इसी प्रकार है।

विभंगनाणसागारोवउत्ताणं तिण्णि अन्नाणाइं नियमा।

विभंगज्ञान-साकारोपयोगयुक्त जीवों में नियमतः (विना विकल्प के) तीन अज्ञान पाए जाते हैं।

प. अणागारोवउत्ता णं भंते. ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! पंच नाणाइं, तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

प्र. भन्ते ! अनाकारोपयोग युक्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! उनमें पांच ज्ञान, तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

एवं चक्खुदंसण-अचक्खुदंसणअणागारोवउत्ता वि,

इसी प्रकार चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन-अनाकारोपयोग-युक्त जीवों का कथन करना चाहिए।

णवरं–चत्तारि नाणाइं, तिण्णि अन्नाणाइं भयणाए।

विशेष–चार ज्ञान या तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

प. ओहिदंसणअणागारोवउत्ता णं भंते ! जीवा किं नाणी अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी वि, अन्नाणी वि।
जे नाणी ते अत्थेगइया तिन्नाणी,
अत्थेगइया चउनाणी।
जे तिन्नाणी ते १. आभिणिबोहियनाणी य,
२. सुयनाणी य, ३. ओहिनाणी य।
जे चउनाणी ते १. आभिणिबोहियनाणी जाव
२-४. मणपज्जवनाणी।
जे अन्नाणी ते नियमा तिअन्नाणी, तं जहा–
१. मइअन्नाणी य, २. सुयअन्नाणी य,
३. विभंगनाणी य।
केवलदंसणअनागारोवउत्ता जहा केवलनाणलद्धिया।
–विया स. ८, उ. २, सु. ११८-१३०

प्र. भन्ते ! अवधिदर्शन-अनाकारोपयोग-युक्त जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।
जो ज्ञानी हैं, उनमें कई तीन ज्ञान वाले हैं,
कई चार ज्ञान वाले हैं।
जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे–१. आभिनिबोधिकज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान वाले हैं।
जो चार ज्ञान वाले हैं, वे–१. आभिनिबोधिकज्ञान यावत् २-४. मनःपर्यवज्ञान वाले हैं।
जो अज्ञानी हैं, उनमें नियमतः (विना विकल्प के) तीन अज्ञान पाए जाते हैं, यथा–
१. मति-अज्ञान, २. श्रुत-अज्ञान,
३. विभंगज्ञान।
केवलदर्शन-अनाकारोपयोगयुक्त जीवों का कथन केवलज्ञान-लब्धियुक्त जीवों के समान है।

११. जोगदारं–

प. सजोगी णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सकाइया।

एवं मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी वि।

अजोगी जहा सिद्धा। *–विया. स. ८, उ. २, सु. १३१-१३३*

११. योग द्वार–

प्र. भन्ते ! सयोगी जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! सयोगी जीवों का कथन सकायिक जीवों के समान है।

इसी प्रकार मनोयोगी, वनचयोगी और काययोगी जीवों का कथन भी जानना चाहिए।

अयोगी जीवों का कथन सिद्धों के समान है।

१२. लेस्सादारं–

प. सलेस्सा णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सकाइया।

प. कण्हलेस्सा णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सइंदिया।

एवं जाव पम्हलेसा।
सुक्कलेस्सा जहा सलेस्सा।

अलेस्सा जहा सिद्धा। *–विया. स. ८, उ. २, सु. १३४-१३७*

१२. लेश्या द्वार–

प्र. भन्ते ! सलेश्य जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! सलेश्य जीवों का कथन सकायिक जीवों के समान हैं।

प्र. भन्ते ! कृष्णलेश्या वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! कृष्णलेश्या वाले जीवों का कथन सेन्द्रिय जीवों के समान है।

इसी प्रकार पद्मलेश्या पर्यन्त का कथन है।

शुक्ललेश्या वाले जीवों का कथन सलेश्य जीवों के समान है।

अलेश्य जीवों का कथन सिद्धों के समान है।

१३. कसायदारं-

प. सकसाई णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सइंदिया।

कोहकसाई जाव लोहकसाई वि एवं चेव।

प. अकसाई णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! पंच नाणाइं भयणाए।

-विया. स. ८, उ. २, सु. १३८-१३९

१३. कषाय द्वार-

प्र. भन्ते ! सकषायी जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! सकषायी जीवों का कथन सेन्द्रिय जीवों के समान है।

इसी प्रकार क्रोधकषायी से लोभकषायी जीवों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! अकषायी जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! उनमें पांच ज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

१४. वेददारं-

प. सवेयगा णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सइंदिया।

एवं इत्थिवेयगा, एवं पुरिसवेयगा, नपुंसकवेयगा वि।

अवेयगा जहा अकसाइ।

-विया. स. ८, उ. २, सु. १४०-१४१

१४. वेद द्वार-

प्र. भन्ते ! सवेदक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! सवेदक जीवों का कथन सेन्द्रिय जीवों के समान है।

इसी प्रकार स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक और नपुंसकवेदक जीवों का कथन है।

अवेदक जीवों का कथन अकषायी जीवों के समान है।

१५. आहारदारं-

प. आहारगा णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! जहा सकसाई।

णवरं-केवलनाणं वि।

प. अणाहारगा णं भंते ! जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

उ. गोयमा ! नाणी वि, अन्नाणी वि,

जे नाणी तेसिं मणपज्जवनाणवज्जाइं चत्तारि नाणाइं,

तिन्नि अन्नाणाणि य भयणाए।

-विया. स. ८, उ. २, सु. १४२-१४३

१५. आहार द्वार-

प्र. भन्ते ! आहारक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! आहारक जीवों का कथन सकषायी जीवों के समान है।

विशेष-उनमें केवलज्ञान भी पाया जाता है।

प्र. भन्ते ! अनाहारक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

उ. गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।

जो ज्ञानी हैं, उनमें मनःपर्यवज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाए जाते हैं।

१६. विसयदारं-

प. आभिणिबोहियनाणस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

उ. [illegible]

१६. विषय द्वार-

प्र. भन्ते ! आभिनिबोधिकज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

उ. [illegible]

प. सुयनाणस्स णं भन्ते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दव्वओ, २. खेत्तओ, ३. कालओ, ४. भावओ।

दव्वओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ।

एवं खेत्तओ सव्वंखेत्तं, कालओ सव्वंकालं, भावओ उवउत्ते सव्वं भावं जाणइ पासइ[1]।

×× ×× ××

प. ओहिनाणस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दव्वओ, २. खेत्तओ, ३. कालओ, ४. भावओ।

१. तत्थ दव्वओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं अणंताणि रूविदव्वाइं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं सव्वाइं रूविदव्वाइं जाणइ पासइ।

२. खेत्तओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं खेत्तं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं अलोए लोयमेत्ताइं असंखेज्जाइं खंडाइं जाणइ पासइ।

३. कालओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं असंखेज्जाओ ओसप्पिणीओ उस्सप्पिणीओ अतीतं च अणागतं च कालं जाणइ पासइ।

४. भावओ णं ओहिनाणी जहण्णेणं अणंते भावे जाणइ पासइ, उक्कोसेण वि अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणमणंतभागं जाणइ पासइ[2]।

×× ×× ××

प. मणपज्जवनाणस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दव्वओ, २. खेत्तओ, ३. कालओ, ४. भावओ।

१. तत्थ दव्वओ णं उज्जुमई अणंते अणंतपएसिए खंधे जाणइ पासइ, ते चेव विउलमई अब्भहियतराए विउलतराए, विशुद्धतराए, वितिमिरतराए जाणइ पासइ।

२. खेत्तओ णं उज्जुमई जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अहे **जाव** इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिम हेट्ठिल्लाइं खुड्डागपयराइं, उड्ढं **जाव** जोइसस्स उवरिमतले, तिरियं **जाव** अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पण्णरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णाए अंतरदीवगेसु सण्णीपंचेंदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अड्ढाइज्जेहिं अंगुलेहिं अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं खेत्तं जाणइ पासइ।

प्र. भन्ते ! श्रुतज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह संक्षेप में चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. द्रव्य से, २. क्षेत्र से, ३. काल से, ४. भाव से।

द्रव्य से उपयोगयुक्त श्रुतज्ञानी सर्वद्रव्यों को जानता और देखता है।

इसी प्रकार क्षेत्र से सर्वक्षेत्र को, काल से सर्वकाल को और भाव से सर्वभावों को जानता-देखता है।

×× ×× ××

प्र. भन्ते ! अवधिज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह संक्षेप में चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. द्रव्य से, २. क्षेत्र से, ३. काल से, ४. भाव से।

१. द्रव्य से–अवधिज्ञानी जघन्य (कम से कम) अनन्त रूपी द्रव्यों को जानता देखता है। उत्कृष्ट समस्त रूपी द्रव्यों को जानता-देखता है।

२. क्षेत्र से–अवधिज्ञानी जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र को जानता देखता है। उत्कृष्ट अलोक में लोक जितने असंख्य खण्डों को जानता-देखता है।

३. काल से–अवधिज्ञानी जघन्य एक आवलिका के असंख्यातवें भाग काल को जानता-देखता है। उत्कृष्ट अतीत और अनागत असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी परिमाण काल को जानता-देखता है।

४. भाव से–अवधिज्ञानी जघन्य-अनन्त भावों को जानता-देखता है और उत्कृष्ट भी अनन्त भावों को जानता देखता है। किन्तु सर्व भावों के अनन्तवें भाग को ही जानता देखता है।

×× ×× ××

प्र. भन्ते ! मनःपर्यवज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह संक्षेप में चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. द्रव्य से, २. क्षेत्र से, ३. काल से, ४. भाव से।

१. द्रव्य से–ऋजुमति अनन्त अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध को (सामान्य रूप से) जानता व देखता है रूप से और विपुलमति उन्हीं स्कन्धों को अधिक, विपुल, विशुद्ध और स्पष्ट जानता-देखता है।

२. क्षेत्र से–ऋजुमति जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट नीचे इस रत्नप्रभा पृथ्वी के उपरितन-अधस्तन क्षुल्लक प्रतर को, ऊँचे ज्योतिषचक्र के उपरितल पर्यन्त और तिरछे लोक में मनुष्य क्षेत्र के अन्दर अढाई द्वीप समुद्र पर्यन्त, पन्द्रह कर्मभूमियों, तीस अकर्मभूमियों और छप्पन अन्तरद्वीपों में वर्तमान संज्ञिपंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मनोगत भावों को जानता-देखता है और उन्हीं क्षेत्रों को विपुलमति अढाई अंगुल अधिक विपुल, विशुद्ध और स्पष्ट क्षेत्र को जानता-देखता है।

---

१. नंदी., सु. ११४

२. नंदी., सु. २५

३. कालओ णं उज्जुमई जहण्णेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं वि पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं अतीयमणागयं वा कालं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं जाव वितिमिरतरागं जाणइ पासइ।

४. भावओ णं उज्जुमई अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणं अणंतभागं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं जाव वितिमिरतरागं जाणइ पासइ[1]।

प. केवलनाणस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दव्वओ, २. खेत्तओ, ३. कालओ, ४. भावओ।

१. तत्थ दव्वओ णं केवलनाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ।

२. खेत्तओ णं केवलनाणी सव्वं खेत्तं जाणइ पासइ।

३. कालओ णं केवलनाणी सव्वं कालं जाणइ पासइ।

४. भावओ णं केवलनाणी सव्वे भावे जाणइ पासइ[2]।

प. मइअण्णाणस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दव्वओ, २. खेत्तओ, ३. कालओ, ४. भावओ।

दव्वओ णं मइअण्णाणी मइअण्णाणपरिगयाइं दव्वाइं जाणइ पासइ।

एवं खेत्तओ कालओ भावओ णं मइअण्णाण परिगयाइं खेत्तं कालं भावाइं च जाणइ पासइ।

प. सुयअण्णाणस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दव्वओ, २. खेत्तओ, ३. कालओ, ४. भावओ।

दव्वओ णं सुयअण्णाणी सुयअण्णाणपरिगयाइं दव्वाइं [illegible]

३. काल से ऋजुमति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग को, उत्कृष्ट भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग भूत और भविष्यत् काल को जानता व देखता है। उसी काल को विपुलमति उससे कुछ अधिक यावत् सुस्पष्ट जानता व देखता है।

४. भाव से ऋजुमति अनन्त भावों को जानता व देखता है, परन्तु सब भावों के अनन्तवें भाग को ही जानता व देखता है। उन्हीं भावों को विपुलमति कुछ अधिक यावत् सुस्पष्ट जानता व देखता है।

प्र. भन्ते ! केवलज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह संक्षेप में चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. द्रव्य से, २. क्षेत्र से, ३. काल से, ४. भाव से।

१. द्रव्य से केवलज्ञानी सर्वद्रव्यों को जानता व देखता है।

२. क्षेत्र से केवलज्ञानी सर्व क्षेत्र (लोकालोक) को जानता व देखता है।

३. काल से केवलज्ञानी तीनों भूत, वर्तमान और भविष्यत् कालों को जानता व देखता है।

४. भाव से केवलज्ञानी सर्व द्रव्यों के सर्व भावों-पर्यायों को जानता व देखता है।

प्र. भन्ते ! मति अज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह संक्षेप में चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. द्रव्य से, २. क्षेत्र से, ३. काल से, ४. भाव से।

द्रव्य से मति अज्ञानी मति अज्ञान-परिगत द्रव्यों को जानता और देखता है।

इसी प्रकार क्षेत्र से काल से भाव से मति अज्ञानी मति अज्ञान परिगत क्षेत्र काल और भावों को जानता व देखता है।

प्र. भन्ते ! श्रुत अज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह संक्षेप में चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. द्रव्य से, २. क्षेत्र से, ३. काल से, ४. भाव से।

द्रव्य से श्रुत अज्ञानी श्रुत अज्ञान के विषयभूत द्रव्यों का कथन करता है, बतलाता है और प्ररूपणा करता है।

१७. संचिट्ठणा कालदारं–

प. णाणी णं भंते ! णाणी त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! णाणी दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. साईए वा अपज्जवसिए, २. साईए वा सपज्जवसिए।

तत्थ णं जे से साईए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं[1]।

प. आभिणिबोहियनाणी णं भंते ! आभिणिबोहियनाणी त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं।

एवं सुयनाणी वि।

ओहिनाणी वि एवं चेव।

णवरं–जहण्णेणं एक्कं समयं।

प. मणपज्जवनाणी णं भंते ! मणपज्जवनाणी त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं,

उक्कोसेणं देसूणं पुव्वकोडिं।

प. केवलनाणी णं भंते ! केवलनाणी त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! साईए अपज्जवसिए।

प. अन्नाणी-मइअन्नाणी-सुयअन्नाणी णं भंते ! अन्नाणी-मइअन्नाणी-सुयअन्नाणी त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! अन्नाणी मइअन्नाणी सुयअन्नाणी तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अणाईए वा अपज्जवसिए, २. अणाईए वा सपज्जवसिए, ३. साईए वा सपज्जवसिए।

तत्थ णं जे ते साईए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

उक्कोसेणं अणंतं कालं–अणंताओ उस्सप्पिणि-ओसिप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं[2]।

प. विभंगनाणी णं भंते ! विभंगनाणी त्ति कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं,

उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियाइं[3]। *–विया. स. ८, उ. २, सु. १५२-१५३*

१८. अंतरदारं–

१. णाणिस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,

उक्कोसेणं अणंतं कालं **जाव**

अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं,

१७. संचिट्ठणा काल द्वार–

प्र. भन्ते ! ज्ञानी जीव ज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! ज्ञानी दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सादि-अपर्यवसित, २. सादि-सपर्यवसित।

इनमें से जो सादि-सर्पयवसित है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक,

उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम तक रहता है।

प्र. भन्ते ! आभिनिबोधिकज्ञानी आभिनिबोधिकज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,

उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम तक रहता है।

इसी प्रकार श्रुतज्ञानी के लिए जानना चाहिए।

अवधिज्ञानी का संस्थिति काल भी इतना ही है।

विशेष–उसकी स्थिति जघन्य एक समय की है।

प्र. भन्ते ! मनःपर्यवज्ञानी मनःपर्यवज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,

उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक।

प्र. भन्ते ! केवलज्ञानी केवलज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! वे सादि-अपर्यवसित होते हैं।

प्र. भन्ते ! अज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी कितने काल तक अज्ञानी मतिअज्ञानी श्रुतअज्ञानी के रूप में रहते हैं ?

उ. गौतम ! अज्ञानी, मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. अनादि-अपर्यवसित, २. अनादि-सपर्यवसित, ३. सादि-सपर्यवसित।

उनमें से जो सादि-सपर्यवसित हैं, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त,

उत्कृष्ट अनन्तकाल तक अर्थात् काल की अपेक्षा से अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणियों तक, एवं क्षेत्र की अपेक्षा से देशोन अपार्द्धपुद्गल-परावर्त्तन तक रहते हैं।

प्र. भन्ते ! विभंगज्ञानी विभंगज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय,

उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम तक विभंगज्ञानी के रूप में रहता है।

१८. अन्तर द्वार–

१. ज्ञानी का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त्त का,

उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल का **यावत्**–

देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त तक रहता है।

---

१. जीवा. पडि. ९, सु. २३३
२. जीवा. पडि. ९, सु. २५०
३. (क) जीवा. पडि. ९, सु. २५४
(ख) पण्ण. प. १८ सु. १३४६-१३५३

२. अन्नाणिस्स दोण्ह वि आइल्लाणं नत्थि अंतरं,
साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं।
—जीवा. पडि. ९, सु. २३३

प. १. आभिणिबोहियनाणिस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ?
उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गल परियट्टं देसूणं।
२. एवं सुयनाणिस्स वि, ३. ओहिनाणिस्स वि,
४. मणपज्जवनाणिस्स वि।
प. ५. केवलनाणिस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ?
उ. गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं।
प. ६. मइअन्नाणिस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ?
उ. गोयमा ! अणाईयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं
अणाईयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं।
साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं[1]।
७. एवं सुय अन्नाणिस्स वि।
प. ८. विभंगनाणिस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ?
उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं वणस्सइकालो[2]। —जीवा. पडि. ९, सु. २५४

१९. अप्पबहुत्तदारं—
प. एएसि णं भंते ! नाणीणं, अन्नाणीण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?
उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा नाणी,
२. अन्नाणी अणंतगुणा। —जीवा. पडि. ९, सु. २३३
प. एएसि णं भंते ! जीवाणं १. आभिणिबोहियनाणीणं,

२. अज्ञानी में प्रारम्भ के दोनों भंगों का अन्तर नहीं है,
सादि-सपर्यवसित का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त्त का,
उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक छासठ सागरोपम का है।

प्र. १. भन्ते ! आभिनिबोधिकज्ञान का अन्तर कितने काल का है?
उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त,
उत्कृष्ट अनन्त काल यावत् कुछ कम अपार्द्ध पुद्गल परावर्तन का है।
२. इसी प्रकार श्रुतज्ञानी का भी, ३. अवधिज्ञानी का भी और ४. मनःपर्यवज्ञानी का भी अन्तर है।
प्र. ५. भन्ते ! *केवलज्ञानी का अन्तर कितने काल का है?*
उ. गौतम ! सादि—अपर्यवसित होने से अन्तर नहीं है।
प्र. ६. भन्ते ! मति-अज्ञानी का अन्तर कितने काल का है?
उ. गौतम ! अनादि अपर्यवसित का अन्तर नहीं है,
अनादि सपर्यवसित का भी अन्तर नहीं है।
सादि सपर्यवसित का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का,
उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम का है।
७. इसी प्रकार श्रुत-अज्ञानी का अन्तर है।
प्र. ८. भन्ते ! विभंगज्ञानी का अन्तर कितने काल का है?
उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त का,
उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का है।

१९. अल्प बहुत्व द्वार—
प्र. भन्ते ! इन ज्ञानी और अज्ञानी में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?
उ. गौतम ! १. सबसे अल्प ज्ञानी है,
२. (उनसे) अज्ञानी अनन्तगुणे हैं।
प्र. भन्ते ! इन १. आभिनिबोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी, ३.

प. एएसि णं भन्ते ! जीवाणं,
१. आभिणिबोहियनाणीणं, २. सुयनाणीणं,
३. ओहिनाणीणं, ४. मणपज्जवनाणीणं,
५. केवलनाणीणं, ६. मइअण्णाणीणं,
७. सुय अण्णाणीणं, ८. विभंगणाणीण
य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवनाणी,
२. ओहिनाणी असंखेज्जगुणा,
३-४. आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी एए दो वि तुल्ला विसेसाहिया,
५. विभंगनाणी असंखेज्जगुणा,
६. केवलनाणी अणंतगुणा,
७-८. मइअन्नाणी सुयअन्नाणी य दो वि तुल्ला अणंतगुणा। —पण्ण. प. ३, सु. २५७-२५९

प्र. भन्ते ! इन–
१. आभिनिबोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी,
३. अवधिज्ञानी, ४. मनःपर्यवज्ञानी,
५. केवलज्ञानी, ६. मतिअज्ञानी,
७. श्रुतअज्ञानी और ८. विभंगज्ञानी,
जीवों में से कौन, किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प जीव मनःपर्यवज्ञानी हैं,
२. (उनसे) अवधिज्ञानी असंख्यातगुणे हैं,
३-४. (उनसे) आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनों परस्पर तुल्य हैं और विशेषाधिक हैं।
५. (उनसे) विभंगज्ञानी असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं,
७-८. (उनसे) मति-अज्ञानी और श्रुतअज्ञानी अनन्तगुणे हैं एवं दोनों परस्पर तुल्य हैं।

२०. पज्जवदारं पज्जवाण य अप्पबहुत्तं–

प. केवइया णं भन्ते ! आभिणिबोहियनाणपज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता आभिणिबोहियनाणपज्जवा पण्णत्ता।
एवं सुयणाणस्स जाव केवलणाणस्स अणंता पज्जवा पण्णत्ता।
एवं मइअण्णाणस्स सुयअण्णाणस्स वि।

प. केवइया णं भन्ते ! विभंगनाणपज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता विभंगनाणपज्जवा पण्णत्ता।

प. एएसि णं भन्ते ! १. आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं, २. सुयनाणपज्जवाणं, ३. ओहिणाणपज्जवाणं, ४. मणपज्जवनाणपज्जवाणं, ५. केवलनाणपज्जवाणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा मणपज्जवनाणपज्जवा,
२. ओहिनाणपज्जवा अणंतगुणा,
३. सुयनाणपज्जवा अणंतगुणा,
४. आभिणिबोहियनाणपज्जवा अणंतगुणा,
५. केवलनाणपज्जवा अणंतगुणा।

प. एएसि णं भंते ! मइअन्नाणपज्जवाणं सुयअन्नाण-पज्जवाणं विभंगनाणपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा विभंगनाणपज्जवा,
२. सुयअन्नाणपज्जवा अणंतगुणा,
३. मइअन्नाणपज्जवा अणंतगुणा।

प. एएसि णं भंते ! आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं जाव केवलनाणपज्जवाणं, मइअन्नाणपज्जवाणं, सुयअन्नाण पज्जवाणं, विभंगनाणपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

२०. पर्याय द्वार और पर्यायों का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! आभिनिबोधिकज्ञान के पर्याय कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! आभिनिबोधिकज्ञान के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।
इसी प्रकार श्रुतज्ञान से केवलज्ञान पर्यन्त के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।
इसी प्रकार मति-अज्ञान और श्रुतअज्ञान के पर्यायों के लिए जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! विभंगज्ञान के पर्याय कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! विभंगज्ञान के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भन्ते ! इन १. आभिनिबोधिकज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. मनःपर्यवज्ञान और ५. केवलज्ञान के पर्यायों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. मनःपर्यायज्ञान के पर्याय सबसे अल्प हैं,
२. (उनसे) अवधिज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं,
३. (उनसे) श्रुतज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं,
४. (उनसे) आभिनिबोधिकज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं,
५. (उनसे) केवलज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं।

प्र. भन्ते ! इन १. मति-अज्ञान, २. श्रुत-अज्ञान और ३. विभंगज्ञान के पर्यायों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प विभंगज्ञान के पर्याय हैं।
२. (उनसे) श्रुत-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं,
३. (उनसे) मति-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं।

प्र. भन्ते ! इन आभिनिबोधिक ज्ञान पर्यायों यावत् केवलज्ञान पर्यायों, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंगज्ञान पर्यायों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं।

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा मणपज्जवनाणपज्जवा,

२. विभंगनाणपज्जवा अणंतगुणा,

३. ओहिनाणपज्जवा अणंतगुणा,

४. सुयअन्नाणपज्जवा अणंतगुणा,

५. सुयनाणपज्जवा विसेसाहिया,

६. मइअन्नाणपज्जवा अणंतगुणा,

७. आभिणिबोहियनाणपज्जवा विसेसाहिया,

८. केवलनाणपज्जवा अणंतगुणा।

–*विया. स. ८, उ. २, सु. १५६-१६२*

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प मनःपर्यवज्ञान के पर्याय हैं,

२. (उनसे) विभंगज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं,

३. (उनसे) अवधिज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं,

४. (उनसे) श्रुत अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं,

५. (उनसे) श्रुतज्ञान के पर्याय विशेषाधिक हैं,

६. (उनसे) मति-अज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं,

७. (उनसे) आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्याय विशेषाधिक हैं,

८. (उनसे) केवलज्ञान के पर्याय अनन्तगुणे हैं।

१२१. भावियप्पणो मिच्छद्दिट्ठिस्स ऽणगारस्स जाणणं पासणं–

प. अणगारे णं भन्ते ! भावियप्पा मायी मिच्छद्दिट्ठी वीरियलद्धीए, वेउव्वियलद्धीए, विभंगनाणलद्धीए वाणारसिं नगरिं समोहए, समोहणित्ता रायगिहे नगरे रूवाइं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ, पासइ।

१२१. भावितात्मा मिथ्यादृष्टि अनगार का जानना-देखना–

प्र. भन्ते ! राजगृह नगर में रहा हुआ मायी मिथ्यादृष्टि भावितात्मा अनगार वीर्यलब्धि से, वैक्रियलब्धि से और विभंगज्ञानलब्धि से वाराणसी नगरी की विकुर्वणा करके क्या तद्गत रूपों को जानता-देखता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह (उन पूर्वोक्त रूपों को) जानता और

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा मायी मिच्छद्दिट्ठी वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए विभंगणाणलद्धीए वाणारसिं नगरिं रायगिहं च नगरं अंतरा य एगं महं जणवयवग्गं समोहए समोहणित्ता वाणारसिं नगरिं रायगिहं च नगरं तं च अंतरा एगं महं जणवयवग्गं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ, पासइ।

प. से भंते ! किं तहाभावं जाणइ पासइ, अण्णहाभावं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो तहाभावं जाणइ पासइ, अण्णहाभावं जाणइ पासइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"णो तहाभावं जाणइ पासइ, अण्णहाभावं जाणइ पासइ ?"

उ. गोयमा ! तस्स खलु एवं भवइ–

"एस खलु वाणारसी नगरी,

एस खलु रायगिहे नगरे,

एस खलु अंतरा एगे महं जणवयवग्गे,

णो खलु एस महं वीरियलद्धी वेउव्वियलद्धी विभंगनाणलद्धी इड्ढी जुई जसे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए",

से से दंसणे विवच्चासे भवइ।

से तेणट्टेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"णो तहाभावं जाणइ पासइ, अण्णहाभावं जाणइ पासइ।" –विया. स. ३, उ. ६, सु. १-५

प्र. भन्ते ! मायी मिथ्यादृष्टि भावितात्मा अनगार अपनी वीर्यलब्धि से वैक्रियलब्धि से और विभंगज्ञानलब्धि से वाराणसी नगरी और राजगृह नगर के बीच में एक बड़े जनपद वर्ग की विकुर्वणा करके वाराणसी नगरी और राजगृह नगर के बीच में उस बड़े जनपद-वर्ग को जानता और देखता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह जानता और देखता है।

प्र. भन्ते ! क्या वह उस जनपद-वर्ग को यथाभाव से जानता-देखता है, अथवा अन्यथाभाव से जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! वह उस जनपद-वर्ग को यथाभाव से नहीं जानता-देखता है, किन्तु अन्यथाभाव से जानता-देखता है।

प्र. भन्ते ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि–

"वह यथाभाव से नहीं जानता-देखता है, किन्तु अन्यथाभाव से जानता-देखता है ?"

उ. गौतम ! उस अनगार के मन में ऐसा विचार होता है कि–

'वह वाराणसी नगरी है,

यह राजगृह नगर है।

तथा इन दोनों के बीच में यह एक बड़ा जनपद-वर्ग है।

परन्तु यह मेरी वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि या विभंगज्ञानलब्धि नहीं है और न ही मेरे द्वारा उपलब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत यह ऋद्धि, द्युति, यश, बल और पुरुषाकार पराक्रम है।"

इस प्रकार उक्त अनगार का दर्शन विपरीत होता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"वह यथाभाव से नहीं जानता-देखता, किन्तु अन्यथाभाव से जानता-देखता है"।

१२२. भावियप्पणो सम्मद्दिट्ठिस्स ऽणगारस्स जाणणं पासणं–

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा अमायी सम्मद्दिट्ठी वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए ओहिनाणलद्धीए रायगिहे नगरे समोहए समोहण्णित्ता वाणारसीए नगरीए रूवाइं जाणइ पासइ ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

प. से भंते ! किं तहाभावं जाणइ पासइ, अण्णहाभावं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! तहाभावं जाणइ पासइ, णो अण्णाहाभावं जाणइ पासइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"तहाभावं जाणइ पासइ, णो अण्णहाभावं जाणइ पासइ ?"

उ. गोयमा ! तस्स णं एवं भवइ–

१२२. भावितात्मा सम्यग् दृष्टि अनगार का जानना-देखना–

प्र. भन्ते ! वाराणसी नगरी में रहा हुआ अमायी सम्यग्दृष्टि भावितात्मा अनगार अपनी वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि और अवधिज्ञानलब्धि से राजगृह नगर की विकुर्वणा करके रूपों को जानता-देखता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह जानता-देखता है।

प्र. भन्ते ! वह उन रूपों को यथाभाव से जानता-देखता है या अन्यथाभाव से जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! वह उन रूपों को यथाभाव से जानता-देखता है, किन्तु अन्यथाभाव से नहीं जानता-देखता है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"वह यथाभाव से उन रूपों को जानता देखता है, अन्यथाभाव से नहीं जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! उस अनगार के मन में इस प्रकार का विचार होता है कि–

एवं खलु अहं रायगिहे नगरे समोहए समोहणित्ता, वाणारसीए नगरीए रूवाइं जाणामि पासामि, से से दंसणे अविवच्चासे भवइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"तहाभावं जाणइ पासइ, णो अण्णहाभावं जाणइ पासइ।"

बीओ वि आलावगो एवं चेव,

णवरं–वाणारसीए नगरीए समोहणावेयव्वो, रायगिहे नगरे रूवाइं जाणइ पासइ।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा अमायी सम्मद्दिट्ठी वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए ओहिनाणलद्धीए रायगिहं नगरं वाणारसिं च नगरिं अंतरा य एगं महं जणवयवग्गं समोहए समोहणित्ता, रायगिहं नगरं वाणारसिं च नगरिं तं च अंतरा एगं महं जणवयवग्गं जाणइ पासइ?

उ. हंता, गोयमा ! जाणइ पासइ।

"वाराणसी नगरी में रहा हुआ मैं राजगृहनगर की विकुर्वणा करके वाराणसी के रूपों को जानता-देखता हूँ।

इस प्रकार उसका दर्शन अविपरीत होता है।

इस कारण से गौतम! ऐसा कहा जाता है कि–

"वह यथाभाव से जानता-देखता है, किन्तु अन्यथाभाव से नहीं जानता-देखता है।"

दूसरा आलापक भी इसी तरह कहना चाहिए।

विशेष–विकुर्वणा वाराणसी नगरी की समझनी चाहिए और राजगृह नगर में रहकर रूपों को जानता-देखता है ऐसा समझना चाहिए।

प्र. भन्ते ! अमायी सम्यग्दृष्टि भावितात्मा अनगार अपनी वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि और अवधिज्ञानलब्धि से राजगृह-नगर और वाराणसी नगरी के बीच में एक बड़े जनपद-वर्ग की विकुर्वणा करके उस राजगृह नगर और वाराणसी के बीच में एक बड़े जनपद-वर्ग को जानता-देखता है?

उ. हाँ, गौतम, वह जानता-देखता है।

अत्थेगइए देवं पि पासइ जाणं पि पासइ

अत्थेगइए नो देवं पासइ, नो जाणं पासइ

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा देविं वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहयं जाणरूवेणं जायमाणिं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! १. अत्थेगइए देविं पासइ, णो जाणं पासइ,

२. अत्थेगइए जाणं पासइ, नो देविं पासइ,

३. अत्थेगइए देविं पि पासइ, जाणं पि पासइ,

४. अत्थेगइए नो देविं पासइ, नो जाणं पासइ।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा देवं सदेवीयं वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहए जाणरूवेणं जायमाणं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! १. अत्थेगइए देवं सदेवीयं पासइ, णो जाणं पासइ,

२. अत्थेगइए जाणं पासइ, णो देवं सदेवीयं पासइ,

३. अत्थेगइए देवं सदेवीयं पि पासइ, जाणं पि पासइ,

४. अत्थेगइए णो देवं सदेवीयं पासइ, णो जाणं पासइ।

–विया. स. ३, उ. ४, स. १-३

कोई देव को भी देखता है और यान को भी देखता है,

कोई न देव को देखता है और न यान को देखता है।

प. भन्ते ! क्या भावितात्मा अनगार, वैक्रिय समुद्घात से समवहत हुई और यानरूप से जाती हुई देवी को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! १. कोई देवी को तो देखता है, किन्तु यान को नहीं देखता है,

२. कोई यान को देखता है, किन्तु देवी को नहीं देखता है,

३. कोई देवी को भी देखता है और यान को भी देखता है,

४. कोई न देवी को देखता है और न यान को देखता है,

प. भन्ते ! क्या भावितात्मा अनगार, वैक्रिय समुद्घात से समवहत तथा यानरूप से जाते हुए, देवीसहित देव को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! १. कोई देवीसहित देव को तो देखता है किन्तु यान को नहीं देखता है,

२. कोई यान को देखता है किन्तु देवीसहित देव को नहीं देखता है,

३. कोई देवीसहित देव को भी देखता है और यान को भी देखता है,

४. कोई न देवीसहित देव को देखता है और न यान को देखता है।

१२४. भावियप्पमणगारेणं रुक्खस्स अंतो-बाहिं पासण परूवणं–

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा रुक्खस्स किं अंतो पासइ, बाहिं पासइ ?

उ. गोयमा ! १. अत्थेगइए रुक्खस्स अंतो पासइ, णो बाहिं पासइ,

२. अत्थेगइए रुक्खस्स बाहिं पासइ, णो अंतो पासइ,

३. अत्थेगइए रुक्खस्स अंतो पि पासइ, बाहिं पि पासइ,

४. अत्थेगइए रुक्खस्स णो अंतो पासइ, णो बाहिं पासइ। *–विया. स. ३, उ. ४, सु. ४/१*

१२४. भावितात्मा अनगार द्वारा वृक्ष के अन्दर और बाहर देखने का प्ररूपण–

प. भन्ते ! भावितात्मा अनगार क्या वृक्ष के आन्तरिक भाग को देखता है या बाह्य भाग को देखता है ?

उ. गौतम ! १. कोई वृक्ष के आन्तरिक भाग को तो देखता है, किन्तु बाह्य भाग को नहीं देखता है,

२. कोई वृक्ष के बाह्य भाग को देखता है, किन्तु आन्तरिक भाग को नहीं देखता है,

३. कोई वृक्ष के आन्तरिक भाग को भी देखता है और बाह्य भाग को भी देखता है,

४. कोई वृक्ष के आन्तरिक भाग को नहीं भी देखता है और बाह्य भाग को भी नहीं देखता है।

१२५. भावियप्पमणगारेणं मूलाइं पासण परूवणं–

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा रुक्खस्स किं मूलं पासइ, कंदं पासइ ?

उ. गोयमा ! १. अत्थेगइए रुक्खस्स मूलं पासइ, णो कंदं पासइ,

२. अत्थेगइए रुक्खस्स कंदं पासइ, णो मूलं पासइ,

३. अत्थेगइए रुक्खस्स मूलं पि पासइ, कंदं पि पासइ,

४. अत्थेगइए रुक्खस्स णो मूलं पासइ, णो कंदं पासइ।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा रुक्खस्स किं मूलं पासइ, खंधं पासइ ?

उ. गोयमा ! चउभंगो।

१२५. भावितात्मा अनगार द्वारा मूलादि देखने का प्ररूपण–

प. भन्ते ! भावितात्मा अनगार क्या वृक्ष के मूल को देखता है या कन्द को देखता है ?

उ. गौतम ! कोई मूल को तो देखता है, किन्तु कन्द को नहीं देखता है,

कोई कन्द को देखता है, किन्तु मूल को नहीं देखता है,

कोई मूल को भी देखता है और कन्द को भी देखता है,

कोई न मूल को देखता है और न कन्द को देखता है।

प्र. भन्ते ! भावितात्मा अणगार क्या वृक्ष के मूल को देखता है या स्कन्ध को देखता है ?

उ. गौतम ! चार-चार भंग पूर्ववत् कहने चाहिए।

एवं मूलेणं जाव बीजं संजोएयव्वं,

इसी प्रकार मूल के साथ बीज का संयोजन करके चार भंग कहने चाहिए।

एवं कंदेण वि समं बीयं संजोएयव्वं जाव बीयं।

इसी प्रकार कन्द के साथ बीज पर्यन्त का संयोजन कर लेना चाहिए।

एवं जाव पुप्फेण समं बीयं संजोएयव्वं।

इसी प्रकार पुष्प के साथ बीज पर्यन्त का संयोजन कर लेना चाहिए।

प. अणगारे णं भंते ! भावियप्पा रुक्खस्स किं फलं पासइ, बीयं पासइ?

उ. गोयमा ! चउभंगो। -विया. स. ३, उ. ४ सु. ४-५

प्र. भन्ते ! क्या भावितात्मा अनगार वृक्ष के फल को देखता है या बीज को देखता है?

उ. गौतम ! यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार से चार भंग कहने चाहिए।

१२६. छउमत्थयाईहिं परमाणुपोग्गलाईणं जाणणं पासणं-

तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-

प. छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से परमाणुपोग्गलं किं जाणइ पासइ, उदाहु न जाणइ, न पासइ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए जाणइ न पासइ, अत्थेगइए न जाणइ, न पासइ।

एवं दुपएसिए जाव असंखेज्जपएसियं खंधं भाणियव्वं।

प. छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से अणंतपएसियं खंधं किं जाणइ पासइ, उदाहु न जाणइ, न पासइ?

१२६. छद्मस्थादि द्वारा परमाणु पुद्गलादि का जानना-देखना-

(तत्पश्चात्) भगवान् गौतम ने श्रमण भ. महावीर के इस कथन को सुनकर हृष्ट तुष्ट होकर भ. महावीर स्वामी को वंदन नमस्कार किया और वंदन नमस्कार कर इस प्रकार पूछा-

प्र. भन्ते ! क्या छद्मस्थ मनुष्य परमाणु पुद्गल को जानता-देखता है अथवा जानता, देखता है?

उ. गौतम ! कोई छद्मस्थ मनुष्य जानता है किन्तु देखता नहीं, कोई जानता भी नहीं और देखता भी नहीं।

इसी प्रकार ।द्विप्रदेशी से असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या छद्मस्थ मनुष्य अनन्तप्रदेशी स्कन्ध को जानता-देखता है, अथवा न जानता, न देखता है?

एवं जाव अणंतपएसियं खंधं।

जहा परमाहोहिए तहा केवली वि।

–विया. स. १८, उ. ८, सु. १६-२३

इसी प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक कहना चाहिए।

जिस प्रकार परमावधिज्ञानी के विषय में कहा है उसी प्रकार केवलज्ञानी के लिए भी कहना चाहिए।

१२७. निज्जरा पुग्गलाणं जाणण-पासण परूवणं–

प. अणगारस्स णं भंते ! भावियप्पणो सव्वं कम्मं वेएमाणस्स, सव्वं कम्मं निज्जरेमाणस्स, सव्वं मारं मरमाणस्स, सव्वं सरीरं विप्पजहमाणस्स, चरिमं कम्मं वेएमाणस्स, चरिमं कम्मं निज्जरेमाणस्स, चरिमं मारं मरमाणस्स, चरिमं सरीरं विप्पजहमाणस्स, मारणंतियं कम्मं वेएमाणस्स, मारणंतियं कम्मं निज्जरेमाणस्स, मारणंतियं मारं मरमाणस्स, मारणंतियं सरीरं विप्पजहमाणस्स जे चरिमा निज्जरापोग्गला सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता, समणाउसो ! सव्वं लोगं पि य ते ओगाहित्ता णं चिट्ठंति?

उ. हंता, गोयमा ! अणगारस्स णं भावियप्पणो सव्वं कम्मं वेएमाणस्स जाव जे चरिमा निज्जरापोग्गला सुहुमाणं ते पोग्गला पण्णत्ता, समणाउसो ! सव्वं लोगं पि णं ते ओगाहित्ता णं चिट्ठंति।

प. छउमत्थे णं भंते ! मणुस्से तेसिं निज्जरापोग्गलाणं किंचि आणत्तं वा, नाणत्तं वा, ओमत्तं वा, तुच्छत्तं वा, गरुयत्तं वा, लहुयत्तं वा जाणइ पासइ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

छउमत्थे णं मणुस्से तेसिं निज्जरापोग्गलाणं नो किंचि आणत्तं वा, नाणत्तं वा, ओमत्तं वा, तुच्छत्तं वा, गरुयत्तं वा, लहुयत्तं वा जाणइ पासइ?

उ. गोयमा ! देवे वि य णं अत्थेगइए जे णं तेसिं निज्जरापोग्गलाणं नो किंचि आणत्तं वा, नाणत्तं वा, ओमत्तं वा, तुच्छत्तं वा, गुरुयत्तं वा, लहुयत्तं वा जाणइ-पासइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"छउमत्थे णं मणुस्से तेसिं निज्जरापोग्गलाणं नो किंचि आणत्तं वा, नाणत्तं वा, ओमत्तं वा, तुच्छत्तं वा, गरुयत्तं वा, लहुयत्तं वा जाणइ पासइ, सुहुमाणं ते पोग्गला पण्णत्ता, समणाउसो! सव्वलोगं पि य णं ते ओगाहित्ता चिट्ठंति।[१]

–पण्ण. प. १५, सु. ९९३-९९४

१२७. निर्जरा पुद्गलों का जानने देखने का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! भावितात्मा अणगार ने सभी कर्मों को वेदते हुए, सर्वकर्मों की निर्जरा करते हुए, समस्त मरणों से मरते हुए, सर्वशरीर को छोड़ते हुए तथा चरम कर्म को वेदते हुए, चरम कर्म की निर्जरा करते हुए, चरम मरण से मरते हुए, चरमशरीर को छोड़ते हुए, एवं मारणान्तिक कर्म को वेदते हुए, मारणांतिक कर्म की निर्जरा करते हुए, मारणान्तिक मरण से मरते हुए, मारणान्तिक शरीर को छोड़ते हुए जो चरमनिर्जरा के पुद्गल हैं, क्या वे पुद्गल सूक्ष्म कहे गए हैं? हे आयुष्मन् श्रमणप्रवर ! क्या वे पुद्गल समग्र लोक का अवगाहन करके रहे हुए हैं?

उ. हाँ, गौतम ! पूर्वोक्त भावितात्मा अनगार सभी कर्मों को वेदते हुए यावत् वे चरम निर्जरा के पुद्गल सूक्ष्म कहे गये हैं और हे आयुष्मन् श्रमण ! वे पुद्गल समग्र लोक का अवगाहन करके रहे हुए हैं।

प्र. भन्ते ! क्या छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा पुद्गलों के अन्यत्व, नानात्व, हीनत्व, तुच्छत्व, गुरुत्व या लघुत्व को जानता-देखता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा पुद्गलों के अन्यत्व नानात्व हीनत्व, तुच्छत्व, गुरुत्व या लघुत्व को नहीं जानता-देखता है?

उ. गौतम ! कोई कोई देव भी उन निर्जरा पुद्गलों के अन्यत्व, नानात्व, हीनत्व, तुच्छत्व, गुरुत्व या लघुत्व को किंचित् भी नहीं जानता देखता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा पुद्गलों के अन्यत्व, नानात्व, हीनत्व, तुच्छत्व, गुरुत्व या लघुत्व को नहीं जानता देखता है क्योंकि हे आयुष्मन श्रमण! वे पुद्गल सूक्ष्म हैं और सम्पूर्ण लोक की अवगाहन करके स्थित हैं।

१२८. चउवीसदंडएसु आहारपोग्गल जाणणं-पासणं-आहारण परूवणं च–

प. दं. १. णेरइया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते किं जाणंति, पासंति, आहारेंति?

उदाहु ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति?

१२८. चौबीस दण्डकों में आहार पुद्गलों को जानने-देखने और आहार करने का प्ररूपण–

प. दं. १. भन्ते ! नैरयिक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, क्या वे उन्हें जानते हैं, देखते हैं और उनका आहार करते हैं?

अथवा नहीं जानते हैं, नहीं देखते हैं, आहार करते हैं?

---

१. विया. स. १८, उ. ३, सु. ८-९ (१)

उ. गोयमा ! ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति।

दं. २-१८. एवं जाव तेइंदिया।

प. दं. १९. चउरिंदिया णं भंते! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते किं जाणंति, पासंति, आहारेंति,

उदाहु ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया ण जाणंति, पासंति, आहारेंति,

अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति।

प. दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया णं भंते ! जे पोग्गले आहारत्ताए गेण्हंति ते किं जाणंति, पासंति, आहारेंति ?

उदाहु ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति ?

उ. गोयमा ! १. अत्थेगइया जाणंति, पासंति आहारेंति

उ. गौतम ! वे न तो जानते हैं और न देखते हैं, किन्तु उनका आहार करते हैं।

दं. २-१८. इसी प्रकार त्रीन्द्रिय पर्यन्त जानना चाहिए।

प. भन्ते ! चतुरिन्द्रिय जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, क्या वे उन्हें जानते हैं, देखते हैं और उनका आहार करते हैं ?

अथवा नहीं जानते हैं, नहीं देखते हैं और आहार करते हैं ?

उ. गौतम ! कोई जानते नहीं हैं किन्तु देखते हैं, और आहार करते हैं,

कोई न जानते हैं, न देखते हैं, किन्तु आहार करते हैं।

प. दं. २०. भन्ते ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जिन पुद्गलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं, क्या वे उन्हें जानते हैं, देखते हैं और उनका आहार करते हैं,

अथवा नहीं जानते हैं, नहीं देखते हैं और आहार करते हैं ?

उ. गौतम ! १. कोई जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं

३. अणुजोगी,
४. अणुलोमे,
५. तहणाणे,
६. अतहणाणे[1] –ठाणं अ. ६, सु. ५३४

३. अनुयोगी–व्याख्या के लिए पूछा जाने वाला।
४. अनुलोम–कुशलकामना से पूछा जाने वाला।
५. तथाज्ञान–स्वयं जानते हुए भी दूसरों की ज्ञानवृद्धि के लिए पूछा जाने वाला।
६. अयथाज्ञान–स्वयं न जानने की स्थिति में पूछा जाने वाला।

१३०. विवक्खया हेऊ–अहेऊ भेय परूवणं–

१. पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा–
 १. हेऊं ण जाणइ,
 २. हेऊं ण पासइ,
 ३. हेऊं ण बुज्झइ,
 ४. हेऊं णाभिगच्छइ,
 ५. हेऊं अन्नाणमरणं मरइ।
२. पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा–
 हेउणा ण जाणइ **जाव** हेउणा अन्नाणमरणं मरइ।
३. पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा–
 हेऊ जाणइ **जाव** हेउं छउमत्थमरणं मरइ।
४. पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा–
 हेउणा जाणइ **जाव** हेउणा छउमत्थमरणं मरइ।
१. पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा–
 अहेउं ण जाणइ **जाव** अहेउं छउमत्थमरणं मरइ।
२. पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा–
 अहेउणा ण जाणइ **जाव** अहेउणा छउमत्थमरणं मरइ।
३. पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा–
 अहेउ जाणइ **जाव** अहेउं केवलिमरणं मरइ।[2]
४. पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा–
 अहेउणा जाणइ **जाव** अहेउणा केवलिमरणं मरइ।
 –ठाणं. अ. ५, उ. १, सु. ४१०

१३०. विवक्षा से हेतु-अहेतु के भेदों का प्ररूपण–

१. पांच हेतु (अनुमान व्यवहारी) कहे गए हैं, यथा–
 १. हेतु को नहीं जानता,
 २. हेतु को नहीं देखता,
 ३. हेतु पर श्रद्धा नहीं करता,
 ४. हेतु को प्राप्त नहीं करता,
 ५. अध्यवसाय के द्वारा अज्ञानमरण से मरता है।
२. पांच हेतु कहे गए हैं, यथा–
 १. हेतु से नहीं जानता **यावत्** ५. अज्ञानमरण से मरता है।
३. पांच हेतु कहे गए हैं, यथा–
 १. हेतु को जानता है **यावत्** ५. सहेतुक छद्मस्थ मरण मरता है।
४. पांच हेतु (अनुमान) कहे गए हैं, यथा–
 १. हेतु से जानता है **यावत्** ५. सहेतुक छद्मस्थ मरण से मरता है।
१. पांच अहेतु कहे गए हैं, यथा–
 १. अहेतु को नहीं जानता है **यावत्** ५. अहेतुक छद्मस्थ मरण मरता है।
२. पांच अहेतु कहे गए हैं, यथा–
 १. अहेतु से नहीं जानता है **यावत्** ५. अहेतुक छद्मस्थ मरण से मरता है
३. पांच अहेतु कहे गए हैं, यथा–
 १. अहेतु को जानता है **यावत्** ५. अहेतुक केवली मरण मरता है।
४. पांच अहेतु कहे गए हैं, यथा–
 १. अहेतु से जानता है **यावत्** ५. अहेतुक केवली मरण से मरता है।

१३१. पगारान्तरेण हेऊ भेय परूवणं–

हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. जावए,
२. थावए,
३. वंसए,
४. लूसए।

अहवा हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. पच्चक्खे, २. अणुमाणे,
३. ओवम्मे, ४. आगमे[3]।

१३१. प्रकारान्तर से हेतु के भेदों का प्ररूपण–

हेतु चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. यापक–विशेषण बहुल हेतु–जिसे प्रतिवादी शीघ्र न समझ सके,
२. स्थापक–साध्य को शीघ्र स्थापित करने वाला हेतु,
३. व्यंसक–प्रतिवादी को छलने वाला हेतु,
४. लूषक–छल का निराकरण करने वाला हेतु।

हेतु चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. प्रत्यक्ष, २. अनुमान,
३. उपमान, ४. आगम।

---
१. ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १७१ २. विया. स. ५, उ. ७, सु. ३७-४४ ३. अणु. सु. ४३६

२. मंकारे,
३. पिंकारे,
४. सेयंकारे
५. सायंकारे,
६. एगत्ते,
७. पुहत्ते,
८. संजूहे,
९. संकामिए,
१०. भिन्ने। —ठाणं. अ. १०, सु. ७४४

२. मंकार अनुयोग–मकार के अर्थ का विचार।
३. पिंकार अनुयोग–अपि के अर्थ का विचार।
४. सेयंकार अनुयोग–'से' अथवा "सेय" के अर्थ का विचार।
५. सायंकार अनुयोग–सायं आदि निपात शब्दों के अर्थ का विचार।
६. एकत्व अनुयोग–एक वचन का विचार।
७. पृथक्त्व अनुयोग–बहुवचन का विचार।
८. संयूथ अनुयोग–समास का विचार।
९. संक्रामित अनुयोग–विभक्ति और वचन के संक्रमण का विचार।
१०. भिन्न अनुयोग–क्रमभेद, कालभेद आदि का विचार।

१३५. सोउजणाणं पगारा–

१. सेलघण, २. कुडग, ३. चालिणी, ४. परिपुण्णग, ५. हंस, ६. महिस, ७. मेसे य।
८. मसग, ९. जलूग, १०. विराली, ११. जाहग, १२. गो, १३. भेरि, १४. आभीरी ॥ —नंदी. सु. ५१

१३५. श्रोताजनों के प्रकार–

१. शैलघन–चिकना गोल पत्थर, २. कुटक–घड़ा, ३. चालनी–चलनी, ४. परिपूर्णक, ५. हंस, ६. महिष, ७. मेष, ८. मशक, ९. जलौक–जौंक, १०. विडाली–बिल्ली, ११. जाहक (चूहे की जाति विशेष) १२. गौ, १३. भेरी, १४. आभीरी (भीलनी) इसके समान श्रोताजन होते हैं।

१३६. सोउजणाणं परिसदस्स पगारा–

सा समासओ तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. जाणिया, २. अजाणिया, ३. दुव्वियड्ढा।

१. जाणिया जहा–

खीरमिव जहा हंसा, जे घुट्टंति इह गुरु-गुण-समिद्धा।
दोसे अ विवज्जंति, ते जाणेह जाणियं परिसं ॥

२. अजाणिया जहा–

जो होइ पगइमहुरा, मियछावय-सीह-कुक्कुडय-भुआ।
रयणमिव असंठविया, अजाणिया सा भवे परिसा ॥

३. दुव्विअड्ढा जहा–

न य कत्थई निम्माओ, न य पुच्छइ परिभवस्स दोसेणं।
वत्थिव्व वायुपुण्णो, फुट्टइ गामिल्ल य दुविअड्ढो ॥ —नंदी. सु. ५२-५४

१३६. श्रोताजनों की परिषद् के प्रकार–

सामान्य से वह परिषद् (श्रोताओं का समूह) तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. ज्ञायिका–विज्ञपरिषद, २. अज्ञायिका–अविज्ञपरिषद् ३. दुर्विदग्धा परिषद्।

१. ज्ञायिका परिषद् का लक्षण इस प्रकार है–

जैसे उत्तम जाति के राजहंस पानी को छोड़कर दूध का पान करते हैं, वैसे ही गुणसम्पन्न श्रोता दोषों को छोड़कर गुणों को ग्रहण करते हैं। हे शिष्य ! इसे ही ज्ञायिका परिषद् (समझदारों का समूह) जानना चाहिए।

२. अज्ञायिका परिषद का लक्षण इस प्रकार है–

जो श्रोता मृग, शेर और कुक्कुट के अबोध शिशुओं के सदृश स्वभाव से मधुर भोले-भाले होते हैं, उन्हें जैसी शिक्षा दी जाए वे उसे ग्रहण कर लेते हैं वे (खान से निकले) रत्न की तरह असंस्कृत होते हैं। रत्नों को चाहे जैसा बनाया जा सकता है ऐसे ही अनभिज्ञ श्रोताओं में यथेष्ट संस्कार डाले जा सकते हैं। हे शिष्य ! ऐसे अबोध जनों के समूह को अज्ञायिका परिषद् जानना चाहिए।

३. दुर्विदग्धा परिषद् का लक्षण इस प्रकार है–

जिस प्रकार अल्पज्ञ पंडित ज्ञान में अपूर्ण होता है किन्तु अपमान के भय से किसी विद्वान् से कुछ पूछता नहीं है, फिर भी अपनी प्रशंसा सुनकर मिथ्याभिमान से वस्ति मशक की तरह फूला हुआ रहता है। हे शिष्य ! ऐसे लोगों के समूह को दुर्विदग्धा परिषद् जानना चाहिए।

१३७. चक्खुमंताणं पगारा–

तिविहे चक्खू पण्णत्ते, तं जहा–

१. एगचक्खू, २. बिचक्खू, ३. तिचक्खू,

१३७. चक्षुष्मानों के प्रकार–

चक्षुष्मान् तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. एक चक्षु, २. द्विचक्षु, ३. त्रिचक्षु

१४०. वज्ज-नट्ट गीय-आभिणयाणं चउविहत्त परूवणं–
चउव्विहे वज्जे पण्णत्ते, तं जहा–
१. तए, २. वियए,
३. घणे, ४. झुसिरे[1]।
चउंव्विहे नट्टे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अंचिए,
२. रिभिए,
३. आरभटे,
४. भसोले[2]।
चउव्विहे गेए पण्णत्ते, तं जहा–
१. उक्खित्तए,
२. पत्तए,
३. मंदए,
४. रोविंदए।
चउव्विहे अभिणए पण्णत्ते, तं जहा–
१. दिट्ठइए, २. पाडिसुए,
३. सामण्णओविणिवाइयं ४. लोगमज्झावसिए।
–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३७४

१४०. वाद्य-नृत्य-गीत-अभिनय के चतुर्विधत्व का प्ररूपण–
वाद्य चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. तत–वीणा आदि, २. वितत–ढोल आदि,
३. घन–कांस्य ताल आदि, ४. झुषिर–बांसुरी आदि।
नाट्य चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अंचित, (धीरे-धीरे नाचना),
२. रिभि, (गीत की संज्ञा से नाचना),
३. आरभट, (गाते हुए नाचना),
४. भषोल, (चेष्टाएं प्रदर्शित करते हुए नाचना)।
गेय (गीत) चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. उत्क्षिप्तक, (आरंभ में धीमे स्वर से गाना),
२. पत्रक, (मध्य में ऊँचे स्वर में गाना)
३. मंद्रक, (मन्द स्वर से गीत को उतारना)
४. रोविन्दक (धीमे स्वर में पूर्ण कर गाना)
अभिनय चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. दार्ष्टान्तिक, २. प्रातिश्रुत,
३. सामान्यतोविनिपातिक, ४. लोकमध्यावसित।

१४१. मल्लालंकाराणं चउव्विहत्त परूवणं–
चउव्विहे मल्ले पण्णत्ते, तं जहा–
१. गंथिमे,
२. वेढिमे,
३. पूरिमे,
४. संघाइमे।
चउव्विहे अलंकारे पण्णत्ते, तं जहा–
१. केसालंकारे, २. वत्थालंकारे,
३. मल्लालंकारे, ४. आभरणालंकारे।
–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३७४

१४१. माला और अलंकारों के चतुर्विधत्व का प्ररूपण–
मालायें चार प्रकार की कही गई हैं, यथा–
१. ग्रन्थिम–गुंथी हुई,
२. वेष्टिम–फूलों को लपेटी हुई,
३. पूरिम–पूरी हुई,
४. संघातिम–एक से दूसरे पुष्प को जोड़कर बनाई हुई।
अलंकार चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. केशालंकार, २. वस्त्रालंकार,
३. माल्यालंकार, ४. आभरणालंकार।

–: णाणज्झयणस्स अणुओग-पकरणं :–

–: ज्ञान अध्ययन का अनुयोग प्रकरण :–

सूत्र

१४२. आवस्सगाणुओगपइण्णा–
तत्थ चत्तारि नाणाइं ठप्पाइं ठवणिज्जाइं,
णो उद्दिस्संति,
णो समुद्दिस्संति,
णो अणुण्णविज्जंति,
सुयणाणस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ।

१४२. आवश्यक के अनुयोग की प्रतिज्ञा–
पांच ज्ञानों में से चार ज्ञान (१. मतिज्ञान, २. अवधिज्ञान, ३. मनःपर्यवज्ञान, ४. केवलज्ञान व्यवहार योग्य न होने से) स्थाप्य हैं एवं स्थापनीय हैं। (क्योंकि इन चार ज्ञानों का उद्देश) मूल पाठ का वांचन नहीं होता है।
समुद्देश (स्थिरिकरण) नहीं किया जाता है।
अनुज्ञा (अध्यापन की आज्ञा) नहीं दी जाती है (और जिसके उद्देश, समुद्देश अनुज्ञा नहीं होती है उसका अनुयोग भी नहीं होता है।)
किन्तु श्रुतज्ञान के उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होते हैं।

१. राय. सु. १०७
२. राय. सु. १०९

१. उवक्कमस्स णामाइ छ भेयाणं सरूवो–

प. से किं तं उवक्कमे ?

उ. उवक्कमे–छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. नामोवक्कमे, २. ठवणोवक्कमे, ३. दव्वोवक्कमे,
४. खेत्तोवक्कमे, ५. कालोवक्कमे, ६. भावोवक्कमे।
१-२ नाम-ठवणाओ गयाओ।

प. ३. से किं तं दव्वोवक्कमे ?

उ. दव्वोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. आगमओ य, २. नो आगमओ य। सेसं जहा आवस्सयस्स दव्वोवक्कमे।

प. से किं तं जाणयसरीरभवियसरीर वइरित्ते दव्वोवक्कमे ?

उ. जाणयसरीर भवियसरीर वइरित्ते दव्वोवक्कमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सचित्ते, २. अचित्ते,
३. मीसए।

प. से किं तं सचित्तदव्वोवक्कमे ?

उ. सचित्तदव्वोवक्कमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. दुपयाणं, २. चउप्पयाणं, ३. अपयाणं।
एक्केक्के दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. परिक्कमे य, २. वत्थुविणासे य।

प. (क) से किं तं दुपए उवक्कमे ?

उ. दुपए उवक्कमे–दुपयाणं १. नडाणं, २. नट्टाणं, ३. जल्लाणं, ४. मल्लाणं, ५. मुट्ठियाणं, ६. वेलंबगाणं, ७. कहगाणं, ८. पवगाणं, ९. लासगाणं, १०. आइक्खगाणं, ११. लंखाणं, १२. मंखाणं, १३, तूणइल्लाणं, १४. तुंबवीणियाणं, १५. कायाणं, १६. मागहाणं।
से तं दुपए उवक्कमे।

प. (ख) से किं तं चउप्पए उवक्कमे ?

उ. चउप्पए उवक्कमे–चउप्पयाणं आसाणं, हत्थीणं इच्चाइं।
से तं चउप्पए उवक्कमे।

प. (ग) से किं तं अपए उवक्कमे ?

उ. अपए उवक्कमे अपयाणं-अंबाणं, अंबाडगाणं इच्चाइं।
से तं अपए उवक्कमे।
से तं सचित्तदव्वोवक्कमे।

प. से किं तं अचित्तदव्वोवक्कमे ?

उ. अचित्त दव्वोवक्कमे खंडाईणं गुडादीणं मच्छंडीणं।
से तं अचित्तदव्वोवक्कमे।

प. से किं तं मीसए दव्वोवक्कमे ?

उ. मीसए दव्वोवक्कमे से चेव थासग- आयंसगाइमंडिए आसादी।
से तं मीसए दव्वोवक्कमे।

१. उपक्रम के नामादि छह भेदों का स्वरूप–

प्र. उपक्रम क्या है ?

उ. उपक्रम के छह भेद कहे गए हैं, यथा–
१. नाम-उपक्रम, २. स्थापना-उपक्रम, ३. द्रव्य-उपक्रम,
४. क्षेत्र-उपक्रम, ५.काल-उपक्रम, ६. भाव-उपक्रम
१-२ नाम और स्थापना-उपक्रम का स्वरूप नाम एवं स्थापना आवश्यक के समान जानना चाहिए।

प्र. ३. द्रव्य-उपक्रम क्या है ?

उ. द्रव्य उपक्रम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. आगमद्रव्य-उपक्रम, २. नो आगमद्रव्य-उपक्रम। शेष वर्णन आवश्यक के द्रव्य उपक्रम के समान कहना चाहिए।

प्र. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य उपक्रम क्या है ?

उ. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य-उपक्रम तीन प्रकार के कहे गये है, यथा–
१. सचित्तद्रव्य-उपक्रम, २. अचित्तद्रव्य-उपक्रम,
३. मिश्रद्रव्य-उपक्रम।

प्र. सचित्तद्रव्योपक्रम क्या है ?

उ. सचित्तद्रव्योपक्रम तीन प्रकार के कहे गये है, यथा–
१. द्विपद, २. चतुष्पद, ३. अपद।
ये प्रत्येक उपक्रम भी दो-दो प्रकार के हैं, यथा–
१. परिकर्मद्रव्योपक्रम, २. वस्तुविनाश द्रव्योपक्रम।

प्र. (क) द्विपद-उपक्रम क्या है ?

उ. १. नटों, २. नर्तकों, ३. जल्लों, ४. मल्लों, ५. मौष्ठिकों, ६. वेलंबकों, ७. कथकों, ८. प्लवकों, ९. लासकों, १०. आख्यायकों, ११. लंखों, १२. मंखों, १३. तूणिकों, १४. तुंबवीणकों, १५. कावडियाओं तथा १६. मागधों आदि दो पैर वालों का परिकर्म और विनाश करना।
यह द्विपद-उपक्रम है।

प्र. (ख) चतुष्पदोपक्रम क्या है ?

उ. चार पैर वाले अश्व, हाथी आदि पशुओं के उपक्रम को चतुष्पदोपक्रम कहते हैं।
यह चतुष्पद उपक्रम है।

प्र. (ग) अपद-द्रव्योपक्रम क्या है ?

उ. आम, आम्रातक आदि (विना पैर वालों) का उपक्रम।
यह अपद उपक्रम है।
यह सचित्तद्रव्योपक्रम है।

प्र. अचित्तद्रव्योपक्रम क्या है ?

उ. खाण्ड, गुड, मिश्री आदि का उपक्रम।
यह अचित्तद्रव्योपक्रम है।

प्र. मिश्रद्रव्योपक्रम क्या है ?

उ. स्यासक (घोड़े का आभूषण) दर्पण आदि से विभूषित एवं (कुंकुम आदि से) मंडित अश्वादि सम्बन्धी उपक्रम।
यह मिश्रद्रव्योपक्रम है।

प. जइ सुयणाणस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, किं अंगपविट्ठस्स-उद्देसो **जाव** अणुओगो य पवत्तइ? अहवा अंगबाहिरस्स?

उ. अंगपविट्ठस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, अंगबाहिरस्स वि,
इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च अंगबाहिरस्स अणुओगो।

प. जइ अंगबाहिरस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, किं कालियस्स उद्देसो **जाव** अणुओगो य पवत्तइ? **अहवा** उक्कालियस्स?

उ. कालियस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, उक्कालियस्स वि,
इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च उक्कालियस्स अणुओगो।

प. जइ उक्कालियस्स उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, किं आवस्सगस्स-उद्देसो **जाव** अणुओगो य पवत्तइ? **अहवा** आवस्सगवइरित्तस्स?

उ. आवस्सगस्स वि उद्देसो समुद्देसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, आवस्सगवइरित्तस्स वि,
इमं पुण पट्ठवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो।

—अणु. सु. २-५

प्र. यदि श्रुतज्ञान में उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग होते हैं तो क्या वे उद्देश **यावत्** अनुयोग अंगप्रविष्ट श्रुत में होते हैं अथवा अंगवाह्य श्रुत में होते हैं?

उ. अंगप्रविष्ट श्रुत में भी उद्देश, समुद्देश अनुज्ञा और अनुयोग होते हैं और अंगवाह्य श्रुत में भी होते हैं।
किन्तु यहाँ अंग वाह्य की अपेक्षा अनुयोग किया जाता है।

प्र. यदि अंगवाह्य श्रुत में उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग होते हैं तो क्या वे उद्देश **यावत्** अनुयोग कालिकश्रुत में होते हैं **अथवा** उत्कालिक श्रुत में होते हैं?

उ. कालिकश्रुत में भी उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग होते हैं और उत्कालिकश्रुत में भी होते हैं।
किन्तु यहाँ उत्कालिक श्रुत की अपेक्षा अनुयोग किया जाता है।

प्र. यदि उत्कालिक श्रुत के उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग होते हैं तो क्या वे उद्देश **यावत्** अनुयोग आवश्यक के होते हैं **अथवा** आवश्यकव्यतिरिक्त श्रुत के होते हैं?

उ. आवश्यक सूत्र के भी उद्देश, समुद्देश अनुज्ञा और अनुयोग होते हैं और आवश्यक से भिन्न श्रुत के भी होते हैं।
किन्तु यहाँ आवश्यक का अनुयोग प्रारम्भ किया जाता है।

१४३. आवस्सयाइपयनिक्खेवपइण्णा–

प. जइ आवस्सयस्स अणुओगो–
आवस्सयण्णं किमंगं अंगाइं?
सुयक्खंधो, सुयक्खंधा?
अज्झयणं, अज्झयणाइं?
उद्देसगो, उद्देसगा?

उ. आवस्सयण्णं णो अंगं, णो अंगाइं,
सुयक्खंधो, णो सुयक्खंधा,
णो अज्झयणं, अज्झयणाइं,
णो उद्देसगो, णो उद्देसगा।

तम्हा आवस्सयं णिक्खिविस्सामि,

सुयं णिक्खिविस्सामि,
खंधं णिक्खिविस्सामि,
अज्झयणं णिक्खिविस्सामि।
जत्थ य णं जाणेज्जा, णिक्खेवं णिक्खिवे णिरवसेसं।
जत्थ वि य न जाणेज्जा, चउक्कयं निक्खिवे तत्थ ॥१॥

—अणु. सु. ६-८

१४३. आवश्यक आदि पद के निक्षेप की प्रतिज्ञा–

प्र. यदि आवश्यक का अनुयोग है तो–
क्या वह आवश्यक–एक अंग रूप है या अनेक अंग रूप है?
एक श्रुतस्कन्ध वाला है या अनेक श्रुतस्कन्ध वाला है?
एक अध्ययन वाला है या अनेक अध्ययन वाला है?
एक उद्देशक वाला है या अनेक उद्देशक वाला है?

उ. आवश्यक श्रुत एक अंग नहीं है और अनेक अंग भी नहीं है,
वह एक श्रुतस्कन्ध वाला है, अनेक श्रुतस्कन्ध वाला नहीं है,
एक अध्ययन वाला नहीं है, अनेक अध्ययन वाला है,
एक उद्देशक वाला भी नहीं है, अनेक उद्देशक वाला भी नहीं है।

आवश्यकसूत्र एक श्रुतस्कन्ध और अनेक अध्ययन वाला है, इसलिए आवश्यक का निक्षेप करूंगा।
श्रुत का निक्षेप करूंगा,
स्कन्ध का निक्षेप करूंगा,
अध्ययन का निक्षेप करूंगा।
यदि निक्षेपों का ज्ञाता वस्तु के सभी निक्षेपों को जानता हो तो उसे उन सबका निरूपण करना चाहिए और यदि सभी निक्षेपों को न जानता हो तो चार (नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव) निक्षेप तो करने ही चाहिए।

१४४. सामाइय अज्झयणस्स अणुओगो–

तत्थ पढमज्झयणं सामाइयं तस्स णं इमे चत्तारि अणुओगद्दारा भवंति, तं जहा–

१. उवक्कमे, २. णिक्खेवे, ३. अणुगमे, ४. णए।

—अणु. सु. ७५

१४४. सामायिक अध्ययन का अनुयोग–

(आवश्यक सूत्र में) प्रथम सामायिक अध्ययन है और इसके ये चार अनुयोगद्वार हैं, यथा–

१. उपक्रम (स्वरूप जानना), २. निक्षेप (स्थापना करना), ३. अनुगम (व्याख्या करना), ४. नय (वस्तु के अनेक धर्मों में से एक धर्म का कथन करना)।

१. उवक्कमस्स णामाइ छ भेयाणं सरूवो–

प. से किं तं उवक्कमे ?

उ. उवक्कमे–छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. नामोवक्कमे, २. ठवणोवक्कमे, ३. दव्वोवक्कमे, ४. खेत्तोवक्कमे, ५. कालोवक्कमे, ६. भावोवक्कमे।

१-२ नाम-ठवणाओ गयाओ।

प. ३. से किं तं दव्वोवक्कमे ?

उ. दव्वोवक्कमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आगमओ य, २. नो आगमओ य। सेसं जहा आवस्सयस्स दव्वोवक्कमे।

प. से किं तं जाणयसरीरभवियसरीर वइरित्ते दव्वोवक्कमे ?

उ. जाणयसरीर भवियसरीर वइरित्ते दव्वोवक्कमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सचित्ते, २. अचित्ते,
३. मीसए।

प. से किं तं सचित्तदव्वोवक्कमे ?

उ. सचित्तदव्वोवक्कमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दुपयाणं, २. चउप्पयाणं, ३. अपयाणं।

एक्केक्के दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. परिक्कमे य, २. वत्थुविण्णासे य।

प. (क) से किं तं दुपए उवक्कमे ?

उ. दुपए उवक्कमे–दुपयाणं १. नडाणं, २. नट्टाणं, ३. जल्लाणं, ४. मल्लाणं, ५. मुट्ठियाणं, ६. वेलंबगाणं, ७. कहगाणं, ८. पवगाणं, ९. लासगाणं, १०. आइक्खगाणं, ११. लंखाणं, १२. मंखाणं, १३, तूणइल्लाणं, १४. तुंबवीणियाणं, १५. कायाणं, १६. मागहाणं।

से तं दुपए उवक्कमे।

प. (ख) से किं तं चउप्पए उवक्कमे ?

उ. चउप्पए उवक्कमे–चउप्पयाणं आसाणं, हत्थीणं इच्चाइं।

से तं चउप्पए उवक्कमे।

प. (ग) से किं तं अपए उवक्कमे ?

उ. अपए उवक्कमे अपयाणं-अंबाणं, अंबाडगाणं इच्चाइं।

से तं अपए उवक्कमे।

से तं सचित्तदव्वोवक्कमे।

प. से किं तं अचित्तदव्वोवक्कमे ?

उ. अचित्त दव्वोवक्कमे खंडाईणं गुडादीणं मच्छंडीणं।

से तं अचित्तदव्वोवक्कमे।

प. से किं तं मीसए दव्वोवक्कमे ?

उ. मीसए दव्वोवक्कमे से चेव थासग- आयंसगाइमंडिए आसादी।

से तं मीसए दव्वोवक्कमे।

१. उपक्रम के नामादि छह भेदों का स्वरूप–

प्र. उपक्रम क्या है ?

उ. उपक्रम के छह भेद कहे गए हैं, यथा–

१. नाम-उपक्रम, २. स्थापना-उपक्रम, ३. द्रव्य-उपक्रम, ४. क्षेत्र-उपक्रम, ५. काल-उपक्रम, ६. भाव-उपक्रम

१-२ नाम और स्थापना-उपक्रम का स्वरूप नाम एवं स्थापना आवश्यक के समान जानना चाहिए।

प्र. ३. द्रव्य-उपक्रम क्या है ?

उ. द्रव्य उपक्रम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आगमद्रव्य-उपक्रम, २. नो आगमद्रव्य-उपक्रम। शेष वर्णन आवश्यक के द्रव्य उपक्रम के समान कहना चाहिए।

प्र. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य उपक्रम क्या है ?

उ. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्य-उपक्रम तीन प्रकार के कहे गये है, यथा–

१. सचित्तद्रव्य-उपक्रम, २. अचित्तद्रव्य-उपक्रम,
३. मिश्रद्रव्य-उपक्रम।

प्र. सचित्तद्रव्योपक्रम क्या है ?

उ. सचित्तद्रव्योपक्रम तीन प्रकार के कहे गये है, यथा–

१. द्विपद, २. चतुष्पद, ३. अपद।

ये प्रत्येक उपक्रम भी दो-दो प्रकार के हैं, यथा–

१. परिकर्मद्रव्योपक्रम, २. वस्तुविनाश द्रव्योपक्रम।

प्र. (क) द्विपद-उपक्रम क्या है ?

उ. १. नटों, २. नर्तकों, ३. जल्लों, ४. मल्लों, ५. मौष्ठिकों, ६. वेलंबकों, ७. कथकों, ८. प्लवकों, ९. लासकों, १०. आख्यायकों, ११. लंखों, १२. मंखों, १३. तूणिकों, १४. तुंबवीणकों, १५. कावडियाओं तथा १६. मागधों आदि दो पैर वालों का परिकर्म और विनाश करना।

यह द्विपद-उपक्रम है।

प्र. (ख) चतुष्पदोपक्रम क्या है ?

उ. चार पैर वाले अश्व, हाथी आदि पशुओं के उपक्रम को चतुष्पदोपक्रम कहते हैं।

यह चतुष्पद उपक्रम है।

प्र. (ग) अपद-द्रव्योपक्रम क्या है ?

उ. आम, आम्रातक आदि (विना पैर वालों) का उपक्रम।

यह अपद उपक्रम है।

यह सचित्तद्रव्योपक्रम है।

प्र. अचित्तद्रव्योपक्रम क्या है ?

उ. खाण्ड, गुड़, मिश्री आदि का उपक्रम।

यह अचित्तद्रव्योपक्रम है।

प्र. मिश्रद्रव्योपक्रम क्या है ?

उ. स्थासक (घोड़े का आभूषण) दर्पण आदि से विभूषित एवं (कुंकुम आदि से) मंडित अश्वादि सम्बन्धी उपक्रम।

यह मिश्रद्रव्योपक्रम है।

से तं जाणयसरीर भवियसरीर वइरित्ते दव्वोवक्कमे।

से तं नो आगमओ दव्वोवक्कमे। से तं दव्वोवक्कमे।

प. ४. से किं तं खेत्तोवक्कमे?

उ. खेत्तोवक्कमे जण्णं हल-कुलियादीहिं खेत्ताइं उवक्कामिज्जंति।

से तं खेत्तोवक्कमे।

प. ५. से किं तं कालोवक्कमे?

उ. कालोवक्कमे जं णं नालियादीहिं कालस्सोवक्कमणं कीरइ।

से तं कालोवक्कमे।

प. ६. से किं तं भावोवक्कमे?

उ. भावोवक्कमे–दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आगमओ य, २. नो आगमओ य।

प. से किं तं आगमओ भावोवक्कमे?

उ. आगमओ भावोवक्कमे जाणए उवउत्ते।

से तं आगमओ भावोवक्कमे।

प. से किं तं नो आगमओ भावोवक्कमे?

उ. नो आगमो भावोवक्कमे–दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पसत्थे य, २. अपसत्थे य।

प. से किं तं अपसत्थे भावोवक्कमे?

उ. अपसत्थे भावोवक्कमे डोडिणि-गणियाऽमच्चाईणं।

से तं अपसत्थे भावोवक्कमे।

प. से किं तं पसत्थे भावोवक्कमे?

उ. पसत्थे भावोववकमे गुरुमादीणं।

से तं पसत्थे भावोवक्कमे।

से तं नो आगमओ भावोवक्कमे।

से तं भावोवक्कमे। –अणु. सु. ७६-९१

१४५. उवक्कमस्स आणुपुव्वी आई छ भेया–

अहवा उवक्कमे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आणुपुव्वी, २. नामं, ३. पमाणं,

४. वत्तव्वया, ५. अत्थाहिगारे, ६. समोयारे।

–अणु. सु. ९२

१४६. आणुपुव्वी उवक्कमस्स भेयाणं सरूवो–

प. से किं तं आणुपुव्वी?

उ. आणुपुव्वी–दसविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. नामाणुपुव्वी, २. ठवणाणुपुव्वी,

३. दव्वाणुपुव्वी, ४. खेत्ताणुपुव्वी,

५. कालाणुपुव्वी, ६. उक्कित्तणाणुपुव्वी,

७. गणणाणुपुव्वी, ८. संठाणाणुपुव्वी,

९. सामायारियाणुपुव्वी, १०. भावाणुपुव्वी।

यह ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्योपक्रम है।

यह नो आगम-द्रव्योपक्रम है। यह द्रव्योपक्रम है।

प्र. ४. क्षेत्रोपक्रम क्या है?

उ. हल, कुलिक आदि के द्वारा जो क्षेत्र को उपक्रान्त किया जाता है।

यह क्षेत्रोपक्रम है।

प्र. ५. कालोपक्रम क्या है?

उ. नालिका आदि के द्वारा काल का यथार्थ ज्ञान करना।

यह कालोपक्रम है।

प्र. ६. भावोपक्रम क्या है?

उ. भावोपक्रम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आगमभावोपक्रम, २. नो आगमभावोपक्रम।

प्र. आगमभावोपक्रम क्या है?

उ. उपक्रम के अर्थ का ज्ञाता एवं उसके उपयोग से युक्त।

यह आगमभावोपक्रम है।

प्र. नो आगमभावोपक्रम क्या है?

उ. नोआगमभावोपक्रम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रशस्त, २. अप्रशस्त।

प्र. अप्रशस्त भावोपक्रम क्या है?

उ. डोडणी, ब्राह्मणी, गणिका और अमात्यादि के द्वारा अन्य के भावों को जानना।

यह अप्रशस्त (नो आगम) भावोपक्रम है।

प्र. प्रशस्त भावोपक्रम क्या है?

उ. गुरु आदि के अभिप्राय को यथावत् जानना।

यह प्रशस्त (नो आगम) भावोपक्रम है।

यह नो आगमभावोपक्रम है।

यह भावोपक्रम है।

१४५. उपक्रम के आनुपूर्वी आदि छः भेद–

अथवा उपक्रम छह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आनुपूर्वी, २. नाम, ३. प्रमाण,

४. वक्तव्यता, ५. अर्थाधिकार, ६. समवतार।

१४६. आनुपूर्वी उपक्रम के भेदों का स्वरूप–

प्र. आनुपूर्वी क्या है?

उ. आनुपूर्वी दस प्रकार की कही गई है, यथा–

१. नामानुपूर्वी, २. स्थापनानुपूर्वी,

३. द्रव्यानुपूर्वी, ४. क्षेत्रानुपूर्वी,

५. कालानुपूर्वी, ५. उत्कीर्तनानुपूर्वी,

७. गणनानुपूर्वी, ८. संस्थानानुपूर्वी,

९. सामाचार्यानुपूर्वी, १०. भावानुपूर्वी।

१-२ नाम -ठवणाओ तहेव

प. ३. से किं तं दव्वाणुपुव्वी ?

उ. दव्वाणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. आगमओ य, २. नो आगमओ य। सेसं तहेव जाव जाणयसरीर–भवियसरीरवइरित्ता दव्वाणुपुव्वी– दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. उवणिहिया य,
२. अणोवणिहिया य।
तत्थ णं जा सा उवणिहिया सा ठप्पा।
तत्थं णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. णेगम-ववहाराणं, २. संगहस्स य।

प. से किं तं णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी ?

उ. णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अट्ठपयपरूवणया, २. भंगसमुक्कित्तणया, ३. भंगोवदंसणया, ४. समोयारे, ५. अणुगमे।
–अणु. सु. ९३-९८

१-२ नाम और स्थापना आनुपूर्वी का स्वरूप नाम और स्थापना आवश्यक के समान है।

प्र. ३. द्रव्यानुपूर्वी क्या है ?

उ. द्रव्यानुपूर्वी दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. आगम से, २. नो आगम से। शेष वर्णन द्रव्यावश्यक के समान यावत् ज्ञायकशरीर भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी–दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. औपनिधिकी (क्रम विशेष) द्रव्यानुपूर्वी,
२. अनौपनिधिकी (बिना क्रम विशेष) द्रव्यानुपूर्वी।
इनमें से औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी स्थापनीय है।
अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. नैगम-व्यवहारनयसम्मत, २. संग्रहनयसम्मत।

प्र. नैगमनय व्यवहारनय सम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी क्या है ?

उ. नैगम-व्यवहारनयसम्मत द्रव्यानुपूर्वी पांच प्रकार की कही गई हैं, यथा–
१. अर्थपदप्ररूपणा (पदार्थ का कथन), २. भंगसमुत्कीर्तनता (भंगों का उच्चारण,) ३. भंगोपदर्शनता (भंगों का दिखाना), ४. समवतार (मिलना), ५. अनुगम (व्याख्या)।

१४७. अट्ठपय परूवणा–

प. १. से किं तं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया ?

उ. णेगम ववहाराणं अट्ठपय परूवणया–तिपएसिए आणुपुव्वी, चउपएसिए आणुपुव्वी जाव दसपएसिए आणुपुव्वी, संखेज्जपएसिए आणुपुव्वी, असंखेज्जपएसिए आणुपुव्वी, अणंतपएसिए आणुपुव्वी।
परमाणुपोग्गले अणाणुपुव्वी।
दुपएसिए अवत्तव्वए।
तिपएसिया आणुपुव्वीओ जाव अणंतपएसिया आणुपुव्वीओ।
परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वीओ।
दुपएसिया अवत्तव्वगाइं।
से तं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया।

प. एयाए णं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं ?

उ. एयाए णं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए भंगसमुक्कित्तणया कीरइ।

१४७. अर्थपद प्ररूपणा–

प्र. १. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपद की प्ररूपणा क्या है ?

उ. त्रिप्रदेशिक आनुपूर्वी, चतुष्प्रदेशिक आनुपूर्वी यावत् दसप्रदेशिक, संख्यातप्रदेशिक, असंख्यातप्रदेशिक और अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है।
परमाणु पुद्‌गल अनानुपूर्वी रूप है।
द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्य है।
अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध यावत् अनेक अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध अनेक आनुपूर्वियां हैं।
अनेक परमाणु अनेक अनानुपूर्वी है।
अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनेक अवक्तव्य हैं।
यह नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता है।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत इस अर्थपदप्ररूपणता द्वारा आनुपूर्वी का क्या प्रयोजन है ?

उ. इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता द्वारा भंगसमुत्कीर्तना (भंगों का कथन) किया जाता है।

१४८. भंग समुक्कित्तणा–

प. २. से किं तं णेगम-ववहाराणं भंग समुक्कित्तणया ?

उ. णेगम ववहाराणं भंग समुक्कित्तणया–
१. अत्थि आणुपुव्वी, २. अत्थि अणाणुपुव्वी,
३. अत्थि अवत्तव्वए, ४. अत्थि आणुपुव्वीओ,
५. अत्थि अणाणुपुव्वीओ, ६. अत्थि अवत्तव्वयाइं।

१४८. भंगों का उच्चारण–

प्र. २. नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंग समुत्कीर्तन क्या है ?

उ. नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंग समुत्कीर्तन का स्वरूप इस प्रकार है, यथा–
१. आनुपूर्वी है, २. अनानुपूर्वी है,
३. अवक्तव्य है, ४. आनुपूर्वियां हैं,
५. अनानुपूर्वियां हैं, ६. (अनेक) अवक्तव्य हैं।

१. अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य,
२. अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य,
३. अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य,
४. अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ च,

१. अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य,
२. अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं य,
३. अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य,
४. अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च,

१. अहवा अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य,
२. अहवा अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं य,
३. अहवा अत्थि अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य,
४. अहवा अत्थि अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च,

१. अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य,
२. अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं य,
३. अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य,
४. अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च।
५. अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य,
६. अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च,
७. अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य,
८. अहवा अत्थि आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च।

एए अट्ठ भंगा।
एवं सव्वे वि छव्वीसं भंगा।
से तं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया।

प. एयाए णं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं?
उ. एयाए णं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए भंगोवदंसणया कीरइ। —अणु. सु. ९९-१०२

१. अथवा आनुपूर्वी है और अनानुपूर्वी है,
२. अथवा आनुपूर्वी है और अनानुपूर्वियां हैं,
३. अथवा आनुपूर्वियां हैं और अनानुपूर्वी है,
४. अथवा आनुपूर्वियां और अनानुपूर्वियां हैं। ४ भंग

१. अथवा आनुपूर्वी और अवक्तव्य है,
२. अथवा आनुपूर्वी है और अनेक अवक्तव्य हैं,
३. अथवा आनुपूर्वियां हैं और एक अवक्तव्य है,
४. अथवा आनुपूर्वियां और अनेक अवक्तव्य हैं। ४ भंग

१. अथवा अनानुपूर्वी और अवक्तव्य है,
२. अथवा अनानुपूर्वी और अनेक अवक्तव्य हैं,
३. अथवा अनानुपूर्वियां और एक अवक्तव्य है,
४. अथवा अनानुपूर्वियां और अनेक अवक्तव्य हैं।

१. अथवा आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य है,
२. अथवा आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अनेक अवक्तव्य हैं,
३. अथवा एक आनुपूर्वी है अनेक अनानुपूर्वियां हैं और एक अवक्तव्य है,
४. अथवा एक आनुपूर्वी अनेक अनानुपूर्वियां और अनेक अवक्तव्य हैं,
५. अथवा अनेक आनुपूर्वियां हैं एक अनानुपूर्वी और एक अवक्तव्य है,
६. अथवा अनेक आनुपूर्वियां हैं, एक अनानुपूर्वी है और अनेक अवक्तव्य हैं,
७. अथवा अनेक आनुपूर्वियां और अनेक अनानुपूर्वियां हैं, एक अवक्तव्य है,
८. अथवा अनेक आनुपूर्वियां, अनेक अनानुपूर्वियां और अनेक अवक्तव्य हैं।

इस प्रकार यह आठ भंग हुए।
यह सब मिलकर छब्बीस भंग होते हैं।
यह नैगम-व्यवहारनय सम्मत भंगसमुत्कीर्तनता है।

प्र. इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है?
उ. नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता द्वारा भंगोपदर्शन कराया जाता है।

१४९. भंगोवदंसणया–

प. ३. से किं तं णेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया?
उ. णेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया–
१. तिपएसिए आणुपुव्वी,
२. परमाणुपोग्गले अणाणुपुव्वी,
३. दुपएसिए अवत्तव्वए,
४. तिपएसिया आणुपुव्वीओ,
५. परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वीओ,

१४९. भंगों का संकेत करना–

प्र. ३. नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंग किस प्रकार दिखाए जाते हैं?
उ. नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंग इस प्रकार दिखाए जाते हैं–
१. त्रिप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है,
२. परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी है,
३. द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्य है,
४. त्रिप्रदेशिक अनेक स्कन्ध आनुपूर्वियां हैं,
५. अनेक परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वियां हैं,

६. दुपएसिया अवत्तव्वयाइं।

६. अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्य हैं।

१. अहवा तिपएसिए य परमाणुपोग्गले य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य,

१. अथवा त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और परमाणुपुद्गल आनुपूर्वी अनानुपूर्वी रूप है,

२. अहवा तिपएसिए य परमाणुपोग्गला य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य,

२. अथवा त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और अनेक परमाणुपुद्गल आनुपूर्वी अनानुपूर्वियां हैं,

३. अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गले य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य,

३. अथवा अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और परमाणुपुद्गल आनुपूर्वियां-अनानुपूर्वी है,

४. अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गला य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य।

४. अथवा अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और अनेक परमाणुपुद्गल आनुपूर्वियां अनानुपूर्वियां हैं,

१. अहवा तिपएसिए य दुपएसिए य आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य,

१. अथवा त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी अवक्तव्य रूप है,

२. अहवा तिपएसिए य दुपएसिए य आणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च,

२. अथवा त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी और अनेक अवक्तव्य रूप हैं,

३. अहवा तिपएसिया य दुपएसिए य आणुपुंव्वीओ य अवत्तव्वए य,

३. अथवा अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियां और अव्यक्तव्य रूप हैं,

४. अहवा तिपएसिया य दुपएसिया य आणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च।

४. अथवा अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपुर्वियां और अनेक अवक्तव्य रूप हैं

१. अहवा परमाणुपोग्गले य दुपएसिए य अणाणुव्वी य अवत्तव्वए य,

१. अथवा परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनानुपूर्वी और अवक्तव्य रूप है,

२. अहवा परमाणुपोग्गले य दुपएसिया य अणाणुपुव्वीय अवत्तव्वयाइं च,

२. अथवा परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनानुपूर्वी और अनेक अवक्तव्य रूप हैं,

३. अहवा परमाणुपोग्गला य दुपएसिया य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य,

३. अथवा अनेक परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनानुपूर्वियां और अवक्तव्य रूप हैं,

४. अहवा परमाणुपोग्गला य दुपएसिया य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च।

४. अथवा अनेक परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनानुपूर्वियां और अनेक अवक्तव्य रूप हैं।

१. अहवा तिपएसिए य परमाणुपोग्गले य दुपएसिए य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य,

१. अथवा त्रिप्रदेशिक स्कन्ध परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य रूप हैं,

२. अहवा तिपएसिए य परमाणुपोग्गले य दुपएसिया य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च,

२. अथवा त्रिप्रदेशिक स्कन्ध परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी अनानुपूर्वी और अनेक अवक्तव्य रूप हैं,

३. अहवा तिपएसिए य परमाणुपोग्गला य दुपएसिए य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य,

३. अथवा त्रिप्रदेशिक स्कन्ध अनेक परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी अनानुपूर्वियां और अवक्तव्य रूप हैं।

४. अहवा तिपएसिए य परमाणुपोग्गला य दुपएसिया य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च,

४. अथवा त्रिप्रदेशिक स्कन्ध अनेक परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी, अनेक अनानुपूर्वी और अनेक अवक्तव्य रूप हैं।

५. अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गले य दुपएसिए य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य,

५. अथवा अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियां, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य रूप हैं,

६. अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गले य दुपएसिया य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वयाइं च,

६. अथवा अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियां अनानुपूर्वी और अनेक अवक्तव्य रूप हैं।

७. अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गला य दुपएसिए य आणुपुव्वीओ य अणाणुपुव्वीओ य अवत्तव्वए य,

७. अथवा अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध अनेक परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियां, अनानुपूर्वियां और अवक्तव्य रूप हैं।

८. अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गला य दुपएसिया य आणुपुव्वीओ य अणाणुव्वीओ य अवत्तव्वयाइं च।

से तं णेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया।

—अणु. सु. १०३

८. अथवा अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध अनेक परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनेक आनुपूर्वियां, अनानुपूर्वियां और अनेक अवक्तव्य रूप हैं।

यह नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगोपदर्शनता है।

१५०. समोयारे–

प. ४. से किं तं समोयारे?

णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति?

किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति?

अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति?

अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति?

उ. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति,

णो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति,

णो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति।

प. णेगम-ववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति?

किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति?

अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति?

अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति?

उ. णेगम ववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं–

णो आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, णो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति।

प. णेगम-ववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाइं कहिं समोयरंति?

किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति?

अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति?

अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति?

उ. णेगम ववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाइं–

णो आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, णो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति, अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति।

से तं समोयारे।

—अणु. सु. १०४

१५०. समवतार–

प्र. ४. समवतार (समाविष्ट) क्या है?

नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य किसमें समाविष्ट होते हैं?

क्या आनुपूर्वीद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं?

अनानुपूर्वीद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं?

या अवक्तव्य द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं?

उ. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वीद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं,

अनानुपूर्वीद्रव्यों में समाविष्ट नहीं होते हैं,

अवक्तव्यद्रव्यों में समाविष्ट नहीं होते हैं।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनानुपूर्वीद्रव्य किसमें समाविष्ट होते हैं?

क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं?

अनानुपूर्वीद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं?

अवक्तव्यद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं?

उ. नैगम व्यवहारनयसम्मत–अनानुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वीद्रव्यों में और अवक्तव्यद्रव्यों में समाविष्ट नहीं होते हैं किन्तु अनानुपूर्वीद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्यद्रव्य किसमें समाविष्ट होते हैं?

क्या आनुपूर्वीद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं?

अनानुपूर्वीद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं?

अवक्तव्यद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं?

उ. नैगम व्यवहारनयसम्मत–अवक्तव्यद्रव्य आनुपूर्वीद्रव्यों में और अनानुपूर्वीद्रव्यों में समाविष्ट नहीं होते हैं, किन्तु अवक्तव्यद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं।

यह समवतार है।

१५१. अणुगमस्स भेया–

प. ५. से किं तं अणुगमे?

उ. अणुगमे णवविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. संतपयपरूवणया, २. दव्वपमाणं च ३. खेत्त, ४. फुसणा य। ५. कालो य ६. अंतरं ७. भाग, ८. भाव, ९. अप्पाबहुं चेव॥

प. १. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?

उ. णियमा अत्थि।

प्र. णेगम-ववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?

उ. णियमा अत्थि।

१५१. अनुगम के भेद–

प्र. ५. अनुगम क्या है?

उ. अनुगम नौ प्रकार के कहे गये है, यथा–

१. सत्पदप्ररूपणा, २. द्रव्यप्रमाण, ३. क्षेत्र, ४. स्पर्शना, ५. काल, ६. अन्तर, ७. भाग, ८. भाव, ९. अल्पबहुत्व।

प्र. १. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य हैं अथवा नहीं हैं?

उ. नियम से हैं।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनानुपूर्वी द्रव्य हैं अथवा नहीं हैं?

उ. नियम से हैं।

प. णेगम-ववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाइं किं अत्थि णत्थि ?

उ. णियमा अत्थि।

प. २. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखेज्जाइं असंखेज्जाइं अणंताइं ?

उ. नो संखेज्जाइं, नो असंखेज्जाइं, अणंताइं।

एवं दोण्णि वि।[1] —अणु. सु. १०५-१०७

प. ५. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्विदव्वाइं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,

नाणादव्वाइं पडुच्च णियमा सव्वद्धा।

एवं दोण्णि वि।

प. ६. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्विदव्वाणमंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं,

नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं।

प. णेगम-ववहाराणं अणाणुपुव्विदव्वाणं अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,

नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं।

प. णेगम-ववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाणं अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं,

नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं।

प. ७. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा ?

किं संखेज्जइभागे होज्जा ? असंखेज्जइभागे होज्जा ?

संखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?

उ. नो संखेज्जइभागे होज्जा, नो असंखेज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, णियमा असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा।

प. णेगम-ववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा ?

किं संखेज्जइभागे होज्जा ? असंखेज्जइभागे होज्जा ?

संखेज्जेसु भागेसु होज्जा ? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा ?

उ. नो संखेज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा।

एवं अवत्तव्वगदव्वाणि वि।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्य द्रव्य हैं या नहीं हैं ?

उ. नियम से हैं।

प्र. २. नैगम-व्यवहारनय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ. वे संख्यात भी नहीं हैं, असंख्यात भी नहीं हैं किन्तु अनन्त हैं।

इसी प्रकार शेष दोनों भी अनन्त हैं।

प्र. ५. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य काल की अपेक्षा कितने काल तक रहते हैं ?

उ. एक आनुपूर्वीद्रव्य जघन्य एक समय एवं उत्कृष्ट असंख्यात काल तक उसी स्वरूप में रहता है,

और अनेक आनुपूर्वीद्रव्यों की अपेक्षा नियमतः सार्वकालिक है।

इसी प्रकार दोनों (अनानुपूर्वी और अवक्तव्य) द्रव्यों की स्थिति भी जाननी चाहिए।

प्र. ६. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्यों का काल की अपेक्षा अन्तर कितना होता है ?

उ. एक आनुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल होता है,

अनेक द्रव्यों की अपेक्षा अन्तर नहीं है।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनानुपूर्वीद्रव्यों का काल की अपेक्षा अन्तर कितना होता है ?

उ. एक अनानुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा जघन्य एक समय, उत्कृष्ट असंख्यात काल प्रमाण है।

अनेक अनानुपूर्वीद्रव्यों की अपेक्षा अन्तर नहीं है।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्यद्रव्यों का काल की अपेक्षा अन्तर कितना होता है ?

उ. एक अवक्तव्यद्रव्य की अपेक्षा अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनन्तकाल है,

अनेक द्रव्यों की अपेक्षा अन्तर नहीं है।

प्र. ७. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यों के कितने भाग हैं ?

क्या संख्यात भाग हैं ? असंख्यात भाग हैं ?

संख्यात भागों रूप हैं ? या असंख्यात भागों रूप हैं ?

उ. आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यों के संख्यात भाग, असंख्यात भाग और संख्यात भाग रूप नहीं है, परन्तु निश्चित रूप में असंख्यात भागों रूप है।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनानुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यों के कितने भाग हैं ?

क्या संख्यात भाग हैं ? असंख्यात भाग हैं ?

संख्यात भागों रूप हैं ? असंख्यात भागों रूप हैं ?

उ. अनानुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यों के संख्यात भाग नहीं हैं,

असंख्यात भाग है, संख्यात भागों रूप नहीं है और असंख्यात भागों रूप भी नहीं है।

इसी प्रकार अवक्तव्य द्रव्यों का कथन भी समझना चाहिए।

३-४ क्षेत्र और स्पर्शना (सु. १०८-१०९) का वर्णन गणितानुयोग पृ. ३०-३२ पर देखें।

प. ८. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कयरम्मि भावे होज्जा?
किं उदइए भावे होज्जा? उवसमिए भावे होज्जा?
खइए भावे होज्जा? खाओवसमिए भावे होज्जा?
पारिणामिए भावे होज्जा? सन्निवाइए भावे होज्जा?

उ. णियमा साइपारिणामिए भावे होज्जा।
अणाणुपुव्विदव्वाणि अवत्तव्वयदव्वाणि य एवं चेव भाणियव्वाणि।

प. ९. एएसि णं भंते! णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अवत्तव्वयदव्वाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा! सव्वत्थोवाइं णेगम-ववहाराणं
अवत्तव्वयदव्वाइं **दव्वट्ठयाए,**
अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए विसेसाहियाइं,
आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं।
पएसट्ठयाए णेगम-ववहाराणं–
सव्वत्थोवाइं अणाणुपुव्वीदव्वाइं अपएसट्ठयाए,
अवत्तव्वयदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं,
आणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए अणंतगुणाइं।
दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं णेगम-ववहाराणं–
अवत्तव्वयदव्वाइं दव्वट्ठयाए,
अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए अपएसट्ठयाए विसेसाहियाइं,
अवत्तव्वयदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं,
आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं
ताइं चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणाइं।
से तं अणुगमे।
से तं णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी।

–अणु. सु. ११०-११४

प्र. ८. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य किस भाव में विद्यमान होते हैं?
क्या औदयिक भाव में, औपशमिक भाव में,
क्षायिक भाव में, क्षायोपशमिक भाव में,
पारिणामिक भाव में अथवा सान्निपातिक भाव में विद्यमान हैं?

उ. समस्त आनुपूर्वीद्रव्य सादि पारिणामिक भाव में होते हैं।
अनानुपूर्वीद्रव्यों और अवक्तव्यद्रव्यों के लिए भी इसी प्रकार कथन करना चाहिए।

प्र. ९. भन्ते! नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य, अनानुपूर्वीद्रव्य औरअवक्तव्यद्रव्य द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेश की अपेक्षा और द्रव्यप्रदेश की अपेक्षा कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम! द्रव्य की अपेक्षा नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्यद्रव्य सबसे अल्प हैं,
(उनसे) अनानुपूर्वीद्रव्य, द्रव्य की अपेक्षा विशेषाधिक हैं,
(उनसे) आनुपूर्वीद्रव्य द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे है।
प्रदेश की अपेक्षा नैगम-व्यवहारनयसम्मत–
अनानुपूर्वीद्रव्य अप्रदेशी होने से सबसे अल्प हैं,
अनसे प्रदेशों की अपेक्षा अवक्तव्यद्रव्य विशेषाधिक हैं
(उनसे) आनुपूर्वीद्रव्य प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।
द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा–नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्यद्रव्य द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प है,
(उनसे) द्रव्य और अप्रदेश की अपेक्षा अनानुपूर्वीद्रव्य विशेषाधिक हैं,
(उनसे) प्रदेश की अपेक्षा अवक्तव्यद्रव्य विशेषाधिक हैं,
(उनसे) आनुपूर्वीद्रव्य द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
और वे ही प्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।
यह अनुगम का स्वरूप है।
यह नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी का कथन हुआ।

१५२. संगहणय सम्मय अणोवणिहिया आणुपुव्वी–

प. से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी?

उ. संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अट्ठपयपरूवणया, २. भंगसमुक्कित्तणया,
३. भंगोवदंसणया, ४. समोयारे, ५. अणुगमे।

प. १. से किं तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया?

उ. संगहस्स अट्ठपयपरूवणया–तिपएसिया आणुपुव्वी, चउप्पएसिया आणुपुव्वी जाव दसपएसिया आणुपुव्वी, संखेज्जपएसिया आणुपुव्वी, असंखेज्जपएसिया आणुपुव्वी, अणंतपएसिया आणुपुव्वी, परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वी, दुपएसिया अवत्तव्वए।

१५२. संग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी आनुपूर्वी–

प्र. संग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी क्या है?

उ. संग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी पांच प्रकार की कही गई है, यथा–
१. अर्थपदप्ररूपणता (पदार्थों का कथन)
२. भंगसमुत्कीर्तनता (भंगों का उच्चारण),
३. भंगोपदर्शनता (भंगों की स्थापना), ४. समवतार (समावेश), ५. अनुगम (व्याख्या)।

प्र. १. संग्रहनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणा क्या है?

उ. संग्रहनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का स्वरूप इस प्रकार है–त्रिप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है, चतुष्प्रदेशी स्कन्ध आनुपूर्वी है यावत् दसप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है, संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है, असंख्यात–प्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है, अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है, परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी है और द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्य है।

से तं संगहस्स अट्ठपयपरूवणया।

प. एयाए णं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं ?

उ. एयाए णं संगहस्स अट्ठपयपरूवणयाए संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया कीरइ।

प. २. से किं तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया ?

उ. संगहस्स भंग समुक्कित्तणया–

१. अत्थि आणुपुव्वी,
२. अत्थि अणाणुपुव्वी,
३. अत्थि अवत्तव्वए,
४. अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य,
५. अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य,
६. अहवा अत्थि अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य,
७. अहवा अत्थि आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य।

एवं एए सत्त भंगा।

से तं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणया।

प. एयाए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं ?

उ. एयाए णं संगहस्स भंगसमुक्कित्तणयाए संगहस्स भंगोवदंसणया कज्जइ।

प. ३. से किं तं संगहस्स भंगोवदंसणया ?

उ. संगहस्स भंगोवदंसणया–

१. तिपएसिया आणुपुव्वी,
२. परमाणुपोग्गला अणाणुपुव्वी,
३. दुपएसिया अवत्तव्वए,
४. अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गला य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य,
५. अहवा तिपएसिया य दुपएसिया य आणुपुव्वी य अवत्तव्वए य,
६. अहवा परमाणुपोग्गला य दुपएसिया य अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य,
७. अहवा तिपएसिया य परमाणुपोग्गला य दुपएसिया य आणुपुव्वी य, अणाणुपुव्वी य अवत्तव्वए य।

से तं संगहस्स भंगोवदंसणया।

प. ४. से किं तं समोयारे ?

समोयारे संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति ?

किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति ?

अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति ?

अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति ?

उ. संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति,

नो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति,

नो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति।

यह संग्रहनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता है।

प्र. संग्रहनयसम्मत इस अर्थपदप्ररूपणता का क्या प्रयोजन है ?

उ. संग्रहनयसम्मत इस अर्थपदप्ररूपणता द्वारा संग्रहनयसम्मत भंगों का निर्देश किया जाता है।

प्र. २. संग्रहनयसम्मत भंगों का निर्देश किस प्रकार का है ?

उ. संग्रहनयसम्मत भंगों का निर्देश इस प्रकार है–

१. आनुपूर्वी है,
२. अनानुपूर्वी है,
३. अवक्तव्य है,
४. अथवा आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी है,
५. अथवा आनुपूर्वी और अवक्तव्य है,
६. अथवा अनानुपूर्वी और अवक्तव्य है,
७. अथवा आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य है।

इस प्रकार ये सात भंग होते हैं।

यह संग्रहनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता है।

प्र. इस संग्रहनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है ?

उ. इस संग्रहनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता के द्वारा भंगोपदर्शन किया जाता है।

प्र. ३. संग्रहनयसम्मत भंगोपदर्शनता क्या है ?

उ. संग्रहनयसम्मत भंगोपदर्शनता इस प्रकार है–

१. त्रिप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है,
२. परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी है,
३. द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्य है,
४. अथवा त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और परमाणुपुद्गल आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी है,
५. अथवा त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी और अवक्तव्य रूप है,
६. अथवा परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनानुपूर्वी और अवक्तव्य रूप है,
७. अथवा त्रिप्रदेशिक स्कन्ध परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी अनानुपूर्वी और अवक्तव्य रूप है।

यह संग्रहनयसम्मत भंगोपदर्शनता है।

प्र. ४. समवतार क्या है ?

समवतार संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य किसमें समविष्ट होते हैं ?

क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में समविष्ट होते हैं ?

अनानुपूर्वी द्रव्यों में समविष्ट होते हैं ?

अवक्तव्य द्रव्यों में समविष्ट होते हैं ?

उ. संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वी द्रव्यों में समविष्ट होते हैं,

अनानुपूर्वी द्रव्यों में समविष्ट नहीं होते हैं,

अवक्तव्य द्रव्यों में भी समविष्ट नहीं होते हैं।

एवं दोण्णि वि सट्ठाणे सट्ठाणे समोयरंति।

से तं समोयारे। —अणु. सु. ११५-१२१

१५३. संगहणयसम्मय अणुगमस्स भेयाणं वत्तव्वया–

प. ५. से किं तं अणुगमे?

उ. अणुगमे अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. संतपयपरूवणया २. दव्वपमाणं ३. च खेत्तं ४. फुसणा य। ५. कालो ६. य अंतरं ७. भाग ८. भाव

अप्पाबहुं नत्थि।

प. १. संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?

उ. णियमा अत्थि।

एवं दोण्णि वि।

प. २. संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखेज्जाइं, असंखेज्जाइं, अणंताइं?

उ. नो संखेज्जाइं, नो असंखेज्जाइं, नो अणंताइं,

णियमा एगो रासी।

एवं दोण्णि वि।[1] —अणु. सु. १२२-१२४

प. ५. संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवचिरं होंति?

उ. सव्वद्धा।

एवं दोण्णि वि।

प. ६. संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाणं कालओ केवचिरं अंतरं होइ?

उ. नत्थि अंतरं।

एवं दोण्णि वि।

प. ७. संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा?

किं संखेज्जइभागे होज्जा? असंखेज्जइभागे होज्जा?

संखेज्जेसु भागेसु होज्जा? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा?

उ. संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाणं–

नो संखेज्जइभागे होज्जा, नो असंखेज्जइभागे होज्जा,

नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा,

णियमा तिभागे होज्जा।

एवं दोण्णि वि।

प. ८. संगहस्स आणुपुव्वीदव्वाइं कयरम्मि भावे होज्जा?

उ. आणुपुव्वीदव्वाइं णियमा साइपारिणामिए भावे होज्जा।

एवं दोण्णि वि।

इसी प्रकार दोनों (अनानुपूर्वी द्रव्य और अवक्तव्य द्रव्य) भी स्वस्थान में ही समवतरित होते हैं।

यह समवतार है।

१५३. संग्रहनयसम्मत अनुगम के भेदों की वक्तव्यता –

प्र. ५. संग्रहनयसम्मत अनुगम क्या है अर्थात् कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. संग्रहनयसम्मत अनुगम आठ प्रकार के कहे गये है, यथा–

१. सत्पदप्ररूपणा, २. द्रव्यप्रमाण, ३. क्षेत्र, ४. स्पर्शना, ५. काल, ६. अन्तर, ७. भाग, ८. भाव।

इसमें अल्पबहुत्व नहीं है।

प्र. १. संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य है अथवा नहीं है?

उ. निश्चित रूप से है।

इसी प्रकार दोनों (अनानुपूर्वी और अवक्तव्य) द्रव्यों के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. २. संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य संख्यात हैं, असंख्यात है या अनन्त हैं?

उ. संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य संख्यात नहीं है, असंख्यात नहीं है और अनन्त भी नहीं हैं।

किन्तु निश्चित रूप से एक राशि है।

इसी प्रकार दोनों द्रव्य भी हैं।

प्र. ५. संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य काल की अपेक्षा से कितने काल तक रहते हैं?

उ. आनुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वी रूप में सर्वकाल रहते हैं।

इसी प्रकार दोनों द्रव्य हैं।

प्र. ६. संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्यों का काल की अपेक्षा से कितना अन्तर है?

उ. (आनुपूर्वीद्रव्यों का काल की अपेक्षा से) अन्तर नहीं है।

इसी प्रकार दोनों द्रव्य हैं।

प्र. ७. संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यों के कितने भाग प्रमाण हैं?

क्या संख्यात भाग हैं? असंख्यात भाग हैं?

संख्यात भागों रूप हैं? या असंख्यात भागों रूप हैं?

उ. संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यों के

संख्यातवें भाग नहीं हैं, असंख्यातवें भाग नहीं हैं,

अनेक संख्यात भागों रूप नहीं हैं, अनेक असंख्यात भागों रूप नहीं हैं,

किन्तु निश्चित रूप से तीसरे भाग रूप हैं।

इसी प्रकार दोनों द्रव्य भी हैं।

प्र. ८. संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य किस भाव में होते हैं?

उ. आनुपूर्वीद्रव्य नियम से सादिपारिणामिक भाव में होते हैं।

इसी प्रकार शेष दोनों द्रव्य भी हैं।

---

१. ३-४ क्षेत्र और स्पर्शन (सु. १२५-१२६) का वर्णन गणितानुयोग पृ. ३२-३३ पर देखें।

९. अप्पावहु नत्थि।

से तं अणुगमे।

से तं संगहस्स अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी।

से तं अणोवणिहिया दव्वाणुपुव्वी। *—अणु. सु. १२७-१३०*

१५४. ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी—

प. से किं तं ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी?

उ. ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. पुव्वाणुपुव्वी, २. पच्छाणुपुव्वी, ३. अणाणुपुव्वी य।

प. १. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

उ. पुव्वाणुपुव्वी—१. धम्मत्थिकाए, २. अधम्मत्थिकाए, ३. आगासत्थिकाए, ४. जीवत्थिकाए, ५. पोग्गलत्थिकाए, ६. अद्धासमए।
से तं पुव्वाणुपुव्वी।

प. २. से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

उ. पच्छाणुपुव्वी—१. अद्धासमए, २. पोग्गलत्थिकाए, ३. जीवत्थिकाए, ४. आगासत्थिकाए, ५. अधम्मत्थिकाए, ६. धम्मत्थिकाए।
से तं पच्छाणुपुव्वी।

प. ३. से किं तं अणाणुपुव्वी?

उ. अणाणुपुव्वी—एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए छगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो।
से तं अणाणुपुव्वी।
अहवा ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. पुव्वाणुपुव्वी, २, पच्छाणुपुव्वी, ३. अणाणुपुव्वी।

प. १. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

उ. पुव्वाणुपुव्वी—परमाणुपोग्गले दुपएसिए, तिपएसिए जाव दसपएसिए जाव संखेज्जपएसिए, असंखेज्जपएसिए, अणंतपएसिए।
से तं पुव्वाणुपुव्वी।

प. २. से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

उ. पच्छाणुपुव्वी—अणंतपएसिए असंखेज्जपएसिए संखेज्जपएसिए जाव दसपएसिए जाव तिपएसिए दुपएसिए परमाणुपोग्गले।
से तं पच्छाणुपुव्वी।

प. ३. से किं तं अणाणुपुव्वी?

९. (राशिगत द्रव्यों में) अल्पबहुत्व नहीं है।

यह अनुगम है।

यह संग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी है।

यह अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी है।

१५४. औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी—

प्र. औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी क्या है?

उ. औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है, यथा—
१. पूर्वानुपूर्वी (अनुक्रम), २. पश्चानुपूर्वी (विपरीतक्रम), ३. अनानुपूर्वी (व्युत्क्रम)।

प्र. १. पूर्वानुपूर्वी क्या है?

उ. पूर्वानुपूर्वी—१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय, ५. पुद्गलास्तिकाय, ६. अद्धाकाल।
इस प्रकार (अनुक्रम से निक्षेप करना) पूर्वानुपूर्वी है।

प्र. २. पश्चानुपूर्वी क्या है?

उ. पश्चानुपूर्वी—१. अद्धासमय, २. पुद्गलास्तिकाय, ३. जीवास्तिकाय, ४. आकाशास्तिकाय, ५. अधर्मास्तिकाय, ६. धर्मास्तिकाय।
इस प्रकार (विलोम क्रम से निक्षेपण करना) पश्चानुपूर्वी है।

प्र. ३. अनानुपूर्वी क्या है?

उ. अनानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है—एक से प्रारम्भ कर एक-एक की वृद्धि करने पर छह पर्यन्त स्थापित श्रेणी के अंकों को परस्पर गुणाकार करने से जो राशि आए, उसमें से आदि और अन्त के दो रूपों को कम करने पर अनानुपूर्वी हो जाती है।
यह अनानुपूर्वी है।
अथवा औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है, यथा—
१. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चानुपूर्वी, ३. अनानुपूर्वी.

प्र. १. पूर्वानुपूर्वी क्या है?

उ. पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है—परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशिक स्कन्ध, त्रिप्रदेशिक स्कन्ध यावत् दशप्रदेशिक स्कन्ध, यावत् संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, असंख्यात प्रदेशिक स्कन्ध, अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध (रूप क्रमात्मक गणना करने को पूर्वानुपूर्वी कहते हैं।)
यह पूर्वानुपूर्वी है।

प्र. २. पश्चानुपूर्वी क्या है?

उ. पश्चानुपूर्वी का स्वरूप यह है—अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध, असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध यावत् दशप्रदेशिक स्कन्ध यावत् त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, द्विप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल।
यह पश्चानुपूर्वी है।

प्र. ३. अनानुपूर्वी क्या है?

उ. अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगाइयाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो।

से तं अणाणुपुव्वी। से तं ओवणिहिया दव्वाणुपुव्वी।
से तं जाणग-सरीर भविय सरीर वइरित्ता दव्वाणुपुव्वी।
से तं नो आगमओ दव्वाणुपुव्वी। से तं दव्वाणुपुव्वी।

—अणु. सु. १३१-१३८

१५५. खेत्ताणुपुव्वी—

प. ४. से किं तं खेत्ताणुपुव्वी ?

उ. खेत्ताणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. ओवणिहिया य, २. अणोवणिहिया य।
तत्थ णं जा सा ओवणिहिया सा ठप्पा।
तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. णेगम-ववहाराणं, २. संगहस्स य।

—अणु. सु. १३९-१४१

१५६. णेगम-ववहारणयसम्मय अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी—

प. से किं तं णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ?

उ. णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. अट्ठपयपरूवणया, २. भंगसमुक्कित्तणया,
३. भंगोवदंसणया, ४. समोयारे, ५. अणुगमे।

प. १. से किं तं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया ?

उ. णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया-तिपएसोगाढे आणुपुव्वी जाव दसपएसोगाढे आणुपुव्वी, संखेज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी, असंखेज्जपएसोगाढे आणुपुव्वी,

एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी,
दुपएसोगाढे अवत्तव्वए,
तिपएसोगाढा आणुपुव्वीओ जाव दसपएसोगाढा आणुपुव्वीओ, संखेज्जपएसोगाढा आणुपुव्वीओ, असंखेज्जपएसोगाढा आणुपुव्वीओ,

एगपएसोगाढा अणाणुपुव्वीओ,

दुपएसोगाढा अवत्तव्वगाइं।
से तं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया।

प. एयाए णं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं ?

उ. एयाए णं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया कीरइ।

उ. अनानुपूर्वी का स्वरूप यह है-एक से प्रारम्भ कर एक-एक की वृद्धि करके अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध पर्यन्त की श्रेणी को परस्पर गुणित करके उसमें से आदि और अन्त रूप दो भंगों को कम करने पर प्राप्त राशि अनानुपूर्वी कहलाती है।
यह अनानुपूर्वी है। यह औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी है।
यह ज्ञायक शरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी है।

यह नो आगम द्रव्यानुपूर्वी है। यह द्रव्यानुपूर्वी का कथन पूर्ण हुआ।

१५५. क्षेत्रानुपूर्वी—

प्र. ४. क्षेत्रानुपूर्वी क्या है ?

उ. क्षेत्रानुपूर्वी दो प्रकार की कही गई है, यथा—
१. औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी, २. अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी।
इन दो भेदों में से औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी स्थाप्य है।
अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी दो प्रकार की कही गई है, यथा—
१. नैगम-व्यवहारनयसम्मत, २. संग्रहनयसम्मत।

१५६. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी—

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी क्या है ?

उ. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी पाँच प्रकार की कही गई है, यथा—
१. अर्थपदप्ररूपणता, २. भंगसमुत्कीर्तनता,
३. भंगोपदर्शनता, ४. समवतार, ५. अनुगम।

प्र. १. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता क्या है ?

उ. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का स्वरूप इस प्रकार है-तीन आकाशप्रदेशों में अवगाढ़ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी है यावत् दस प्रदेशावगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी है, संख्यात प्रदेशावगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी है, असंख्यात प्रदेशावगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी है।
आकाश के एक प्रदेश में अवगाढ द्रव्य अनानुपूर्वी है,
दो आकाशप्रदेशों में अवगाढ द्रव्य अवक्तव्य है,
तीन आकाशप्रदेशों में अवगाढ अनेक द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वियां हैं यावत् दसप्रदेशावगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वियां हैं, संख्यातप्रदेशावगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वियां हैं, असंख्यात प्रदेशावगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वियां हैं,
एक प्रदेशावगाढ अनेक परमाणु पुद्गल द्रव्य अनानुपूर्वियां हैं,
दो प्रदेशावगाढ अनेक द्रव्यस्कन्ध अवक्तव्य हैं,
यह नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का स्वरूप है।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का क्या प्रयोजन है ?

उ. इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता द्वारा नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगों का कथन किया जाता है।

प. २. से किं तं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया?

उ. णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया–

१. अत्थि आणुपुव्वी, २. अत्थि अणाणुपुव्वी, ३. अत्थि अवत्तव्वए।

एवं दव्वाणुपुव्विगमेणं खेत्ताणुपुव्वीए वि ते चेव छव्वीस भंगा भाणियव्वा।

से तं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया।

प. एयाए णं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणाए किं पओयणं?

उ. एयाए णं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए णेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया कज्जइ।

प. ३. से किं तं णेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया?

उ. णेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया–

तिपएसोगाढे आणुपुव्वी, एगपएसोगाढे अणाणुपुव्वी, दुपएसोगाढे अवत्तव्वए,

तिपएसोगाढाओ आणुपुव्वीओ, एगपएसोगाढाओ अणाणुपुव्वीओ, दुपएसोगाढाइं अवत्तव्वयाइं,

अहवा तिपएसोगाढे य एगपएसोगाढे य आणुपुव्वी य अणाणुपुव्वी य,

एवं तहा चेव दव्वाणुपुव्विगमेणं छव्वीसं भंगा भाणियव्वा।

से तं णेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया।

प. ४. से किं तं समोयारे?

समोयारे–णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति?

किं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति?

अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति?

अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति?

उ. आणुपुव्वीदव्वाइं आणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति,

नो अणाणुपुव्वीदव्वेहिं समोयरंति,

नो अवत्तव्वयदव्वेहिं समोयरंति।

एवं तिण्णि वि सट्ठाणे समोयरंति त्ति भाणियव्वं।

से तं समोयारे।

प. ५. से किं तं अणुगमे?

उ. अणुगमे णवविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. संतपयपरूवणया, २. दव्वपमाणं, ३. च खेत्तं, ४. फुसणा य। ६. कालो य अंतरं, ७. भाग, ८. भाव, ९. अप्पाबहुं चेव।

प. १. णेगम-ववहाराणं खेत्ताणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?

उ. णियमा अत्थि।

प्र. २. नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता क्या है?

उ. नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप इस प्रकार है–

१. आनुपूर्वी है, २. अनानुपूर्वी है, ३. अवक्तव्य है।

यहां द्रव्यानुपूर्वी की तरह ही क्षेत्रानुपूर्वी के भी वही छब्बीस भंग जानने चाहिए।

यह नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप है।

प्र. इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है?

उ. इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता द्वारा नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगोपदर्शनता की जाती है।

प्र. ३. नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगोपदर्शनता क्या है?

उ. नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगोपदर्शनता इस प्रकार है–

तीन आकाशप्रदेशावगाढ स्कन्ध आनुपूर्वी है, एक आकाशप्रदेशावगाढ (परमाणुसंघात) अनानुपूर्वी है तथा दो आकाशप्रदेशावगाढ (स्कन्ध क्षेत्र की अपेक्षा) अवक्तव्य है।

तीन आकाशप्रदेशावगाढ अनेक स्कन्ध आनुपूर्वियां हैं, एक आकाशप्रदेशावगाढ अनेक परमाणुसंघात अनानुपूर्वियां हैं तथा द्विआकाशप्रदेशावगाढ (द्विप्रदेश स्कन्ध आदि अनेक द्रव्यस्कन्ध) अवक्तव्य हैं।

अथवा त्रिप्रदेशावगाढ स्कन्ध और एक प्रदेशावगाढ स्कन्ध एक आनुपूर्वी और एक अनानुपूर्वी है।

इस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी के पाठ की तरह छब्बीस भंग यहां भी जानने चाहिए।

यह नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगोपदर्शनता का स्वरूप है।

प्र. ४. समवतार क्या है?

नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्यों का समावेश कहां होता है?

क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में,

अनानुपूर्वी द्रव्यों में

अवक्तव्य द्रव्यों में समावेश होता है?

उ. आनुपूर्वी द्रव्य आनुपूर्वी द्रव्यों में समाविष्ट होते हैं,

किन्तु अनानुपूर्वी द्रव्यों में,

अवक्तव्य द्रव्यों में समाविष्ट नहीं होते हैं।

इस प्रकार तीनों स्व-स्व स्थान में ही समाविष्ट होते हैं कहना चाहिए?

यह समवतार का स्वरूप है।

प्र. ५. अनुगम क्या है?

उ. अनुगम नौ प्रकार के कहे गये है, यथा–

१. सत्पदप्ररूपणता, २. द्रव्यप्रमाण, ३. क्षेत्र, ४. स्पर्शना, ५. काल, ६. अन्तर, ७. भाग, ८. भाव, ९. अल्पबहुत्व।

प्र. १. नैगम-व्यवहारनयसम्मत क्षेत्रानुपूर्वीद्रव्य है या नहीं?

उ. नियमतः है।

एवं दोण्णि वि।

इसी प्रकार दोनों (अनानुपूर्वी और अवक्तव्य) द्रव्य है।

प. २. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं संखेज्जाइं असंखेज्जाइं अणंताइं ?

प्र. २. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ. नो संखेज्जाइं, नो अणंताइं, णियमा असंखेज्जाइं।

एवं दोण्णि वि[1]। —अणु. सु. १४२-१५१

उ. (नैगम-व्यवहारनयसम्मत) आनुपूर्वी द्रव्य न तो संख्यात हैं और न अनन्त हैं किन्तु नियमतः असंख्यात हैं।

इसी प्रकार दोनों (अनानुपूर्वी और अवक्तव्य) द्रव्य हैं।

प. ५. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवचिरं होइ ?

प्र. ५. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य काल की अपेक्षा कितने समय तक रहते हैं ?

उ. एगदव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं,
उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,
णाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा।
एवं दोण्णि वि।

उ. एक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट असंख्यात काल तक,
विविध द्रव्यों की अपेक्षा सर्वकाल रहते हैं।
इसी प्रकार दोनों (अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्यों) के लिए भी जानना चाहिए।

प. ६. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणमंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

प्र. ६. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्यों का अन्तर कितने काल का है ?

उ. तिण्णि वि एगं दव्वं पडुच्च जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,
णाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं।

उ. तीनों का अन्तर एक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य एक समय का है और उत्कृष्ट असंख्यात काल का है।
अनेक द्रव्यों की अपेक्षा अन्तर नहीं है।

प. ७. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं सेसदव्वाइं कइभागे होज्जा ?

प्र. ७. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों के कितने भाग प्रमाण होते हैं ?

उ. तिण्णि वि जहा दव्वाणुपुव्वीए।

उ. द्रव्यानुपूर्वी के समान ही यहां भी तीनों द्रव्यों के लिए समझना चाहिए।

प. ८. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कयरम्मि भावे होज्जा ?

प्र. ८. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य किस भाव में रहते हैं ?

उ. तिण्णि वि णियमा सादिपारिणामिए भावे होज्जा।

उ. तीनों द्रव्य नियमतः सादि पारिणामिक भाव में ही रहते हैं।

प. ९. एएसि णं भंते! णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाणं अणाणुपुव्वीदव्वाणं अवत्तव्वयदव्वाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

प्र. ९. भन्ते! इन नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्यों, अनानुपूर्वी द्रव्यों और अवक्तव्य द्रव्यों में द्रव्यार्थता, प्रदेशार्थता और द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थता की अपेक्षा कौन किन से अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गोयमा! १. सव्वत्थोवाइं णेगम-ववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाइं दव्वट्ठयाए,
२. अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए विसेसाहियाइं,
३. आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं।
४. पएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं णेगम-ववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं अपएसट्ठयाए,
५. अवत्तव्वयदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं,
६. आणुपुव्वीदव्वाइं पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं।
७. दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए सव्वत्थोवाइं णेगम-ववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाइं दव्वट्ठयाए,
८. अणाणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए अपएसट्ठयाए विसेसाहियाइं,
९. अवत्तव्वयदव्वाइं पएसट्ठयाए विसेसाहियाइं,

उ. गौतम! १. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्य द्रव्य, द्रव्यों की अपेक्षा सब से अल्प है।
२. (उनसे) द्रव्यों की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्य विशेषाधिक हैं
३. (उनसे) द्रव्यों की अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्य असंख्यातगुणे हैं।
४. प्रदेशों की अपेक्षा नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनानुपूर्वी-द्रव्य अप्रदेशी होने के कारण सवसे अल्प हैं
५. उनसे प्रदेशों की अपेक्षा अवक्तव्य द्रव्य विशेषाधिक हैं
६. उनसे आनुपूर्वी द्रव्य प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।
७. द्रव्यों और प्रदेशों की अपेक्षा से नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्य द्रव्य सबसे अल्प है,
८. (उनसे) द्रव्य और अप्रदेश की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्य विशेषाधिक है।
९. (उनसे) अवक्तव्य द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा विशेषाधिक हैं।

[1] [illegible] पृ. ३०-३२ में देखें।

१०. आणुपुव्वीदव्वाइं दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं,
ताइं चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणाइं।
से तं अणुगमे।
से तं णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी।
–अणु. सु. १५२-१५८

१०. (उनसे) आनुपूर्वीद्रव्य द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं और वे ही प्रदेश की अपेक्षा से असंख्यातगुणे हैं।
यह अनुगम है।
यह नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी है।
यह क्षेत्रानुपूर्वी है।

१५७. संगहणय सम्मय खेत्ताणुपुव्वी परूवणा–

प. से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ?
उ. जहेव दव्वाणुपुव्वी तहेव खेत्ताणुपुव्वी णेयव्वा।
से तं संगहस्स अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी।
से तं अणोवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी।
प. से किं तं ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी ?
उ. ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुव्वाणुपुव्वी, २. पच्छाणुपुव्वी, ३. अणाणुपुव्वी[1]।
–अणु. सु. १५९-१६०

१५७. संग्रहनय सम्मत क्षेत्रानुपूर्वी की प्ररूपणा–

प्र. संग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी क्या है ?
उ. पूर्वोक्त संग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी की तरह इस क्षेत्रानुपूर्वी का भी स्वरूप जानना चाहिए।
यह संग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी है।
यह अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी है।
प्र. औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी क्या है ?
उ. औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. पूर्वानुपूर्वी २. पश्चानुपूर्वी ३. अनानुपूर्वी।

१०. भावाणुपुव्वी–

प. से किं तं भावाणुपुव्वी ?
उ. भावाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुव्वाणुपुव्वी, २. पच्छाणुपुव्वी, ३. अणाणुपुव्वी।
प. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?
उ. पुव्वाणुपुव्वी–१. उदइए, २. उवसमिए, ३. खइए, ४. खओवसमिए, ५. पारिणामिए, ६. सन्निवाइए।
से तं पुव्वाणुपुव्वी।
प. से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?
उ. पच्छाणुपुव्वी–सन्निवाइए जाव उदइए,
से तं पच्छाणुपुव्वी।
प. से किं तं अणाणुपुव्वी ?
उ. अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए छगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो।
से तं अणाणुपुव्वी।
से तं भावाणुपुव्वी[2]। –अणु. सु. २०७

१०. भावानुपूर्वी–

प्र. भावानुपूर्वी क्या है ?
उ. भावानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चानुपूर्वी, ३. अनानुपूर्वी।
प्र. पूर्वानुपूर्वी क्या है ?
उ. १. औदयिकभाव, २. औपशमिकभाव, ३. क्षायिकभाव, ४ क्षायोपशमिकभाव, ५. पारिणामिकभाव, ६. सान्निपातिकभाव इस क्रम से भावों का कथन करना,
यह पूर्वानुपूर्वी है।
प्र. पश्चानुपूर्वी क्या है ?
उ. सान्निपातिकभाव से लेकर औदयिकभाव पर्यन्त भावों का विपरीत क्रम से कथन करना,
यह पश्चानुपूर्वी है।
प्र. अनानुपूर्वी क्या है ?
उ. एक से लेकर एकोत्तर वृद्धि द्वारा छह पर्यन्त की श्रेणी में स्थापित संख्या का परस्पर गुणाकार करने पर प्राप्त राशि में से प्रथम और अन्तिम भंग को कम करने पर शेष रहे भंग अनानुपूर्वी है, यह अनानुपूर्वी का स्वरूप है।
यह भावानुपूर्वी का वर्णन है।

१५८. उवक्कम अणुओगे नाम दुवारस्स भेयप्पभेया–

प. से किं तं णामे ?
उ. णामे दसविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१५८. उपक्रम अनुयोग में "नाम" द्वार के भेद-प्रभेद–

प्र. नाम का स्वरूप क्या है ?
उ. नाम के दस प्रकार कहे गए हैं, यथा–

---

१. (४) क्षेत्रानुपूर्वी (सु. १६१-१७९) का शेष वर्णन गणितानुयोग परिशिष्ट में देखें।
(५) कालानुपूर्वी (सु. १८०-२०२) का वर्णन भी वहीं परिशिष्ट में देखें।
(६) उत्कीर्तनानुपूर्वी (सु. २०३) का वर्णन धर्मकथानुयोग परिशिष्ट में देखें।
(७) गणनानुपूर्वी (सु. २०४) का वर्णन भी गणितानुयोग परिशिष्ट में देखें।
(८) संस्थानानुपूर्वी (सु. २०५) शरीर अध्ययन में देखें।
(९) समाचारी आनुपूर्वी (सु. २०६) का वर्णन चरणानुयोग परिशिष्ट में देखें।
२. भावानुपूर्वी का शेष वर्णन आगे नाम विवक्षा में देखें।

१. एगणामे, २. दुणामे, ३. तिणामे, ४. चउणामे,
५. पंचणामे, ६. छणामे, ७. सत्तणामे, ८. अट्ठणामे,
९. णवणामे, १०. दसणामे।

प. से किं तं एगणामे?

उ. एगणामे पण्णत्ते,
णामाणि जाणि काणि वि दव्वाण गुणाण पज्जवाणं च।
तेसिं आगमनिहसे नामं ति परूविया सण्णा॥

से तं एगणामे।

प. से किं तं दुणामे?

उ. दुणामे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. एगक्खरिए य, २. अणेगक्खरिए य।

प. से किं तं एगक्खरिए?

उ. एगक्खरिए अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–
ह्री : श्री : धी : स्त्री।
से तं एगक्खरिए।

प. से किं तं अणेगक्खरिए?

उ. अणेगक्खरिए अणेगविहे, पण्णत्ते, तं जहा–

कण्णा, वीणा, लता, माला।
से तं अणेगक्खरिए।
अहवा दुनामे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. जीवनामे य, २. अजीवनामे य।

प. से किं तं जीवणामे?

उ. जीवणामे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. देवदत्तो, २. जण्णदत्तो, ३. विण्हुदत्तो, ४. सोमदत्तो।
से तं जीवनामे।

प. से किं तं अजीवनामे?

उ. अजीवनामे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–
घडो, पडो, कडो, रहो।[1]
से तं अजीवनामे। –अणु. सु. २०८-२१५

प. से किं तं तिनामे?

उ. तिनामे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. दव्वणामे, २. गुणणामे, ३. पज्जवणामे य।[2]
–अणु. सु. २१७

१. एक नाम, २. दो नाम, ३. तीन नाम, ४. चार नाम,
५. पांच नाम, ६. छह नाम, ७. सात नाम, ८. आठ नाम,
९. नौ नाम, १०. दस नाम।

प्र. एकनाम क्या है?

उ. एक नाम का स्वरूप इस प्रकार है–
द्रव्यों, गुणों एवं पर्यायों के जो कोई नाम लोक में रूढ हैं, उन सबकी "नाम" ऐसी एक संज्ञा आगम रूप निकष (कसौटी) में कही गई है।
यह एक नाम है।

प्र. द्विनाम क्या है?

उ. द्विनाम दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. एकाक्षरिक, २. अनेकाक्षरिक।

प्र. एकाक्षरिक द्विनाम क्या है?

उ. एकाक्षरिक द्विनाम अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
ह्री, श्री, धी, स्त्री आदि,
यह एकाक्षरिक नाम है।

प्र. अनेकाक्षरिक द्विनाम क्या है?

उ. अनेकाक्षरिक द्विनाम भी अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
कन्या, वीणा, लता, माला आदि,
यह अनेकाक्षरिक द्विनाम है।
अथवा द्विनाम दो प्रकार के कहे गयें है, यथा–
१. जीवनाम, २. अजीवनाम।

प्र. जीवनाम क्या है?

उ. जीवनाम अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. देवदत्त, २. यज्ञदत्त, ३. विष्णुदत्त, ४. सोमदत्त इत्यादि,
यह जीवनाम है।

प्र. अजीवनाम क्या है?

उ. अजीवनाम भी अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
घट, पट, कट, रथ इत्यादि,
यह अजीवनाम है।

प्र. त्रिनाम क्या है?

उ. त्रिनाम तीन प्रकार के कहे गये है, यथा–
१. द्रव्यनाम, २. गुणनाम, ३. पर्यायनाम।

१५९. तिणाम विवक्खया सद्दाणं इत्थिआइ लिंग सूअयपच्चय–

तं पुण नामं तिविहं।
१. इत्थी २. पुरिसं ३. णपुंसगं चेव।
एएसिं तिण्ह पि य अंतम्मि परूवणं वोच्छं॥
तत्थ पुरिसस्स अंता १. आ २. ई, ३. ऊ, ४. ओ य होंति चत्तारि।
[illegible] ओकारपरिहीणा॥

१५९. त्रिनाम की विवक्षा से शब्दों के स्त्रीलिंग आदि सूचक प्रत्यय–

उस त्रिनाम के पुनः तीन प्रकार कहे गये हैं, यथा–
१. स्त्रीनाम, २. पुरुषनाम, ३. नपुंसकनाम
इन तीनों प्रकार के नामों का बोध उनके अन्त्याक्षरों द्वारा होता है। पुरुषनामों के अन्त में "आ, ई, ऊ, ओ" इन चार में से कोई एक स्वर होता है तथा स्त्रीनामों के अन्त में "ओ" को छोड़कर शेष तीन (आ, ई, ऊ) स्वर होते हैं।

---

1. [illegible] अध्ययन में देखें।
2. [illegible] अध्ययन में देखें।

अं ति य इं ति य उं ति य अंता उ णपुंसगस्स बोद्धव्वा।
एएसिं तिण्हं पि य वोच्छामि निदंसणे एत्तो॥

आकारंतो राया ईकारंतो गिरी य सिहरी य।
ऊकारंतो विण्हू दुमो ओ अंताओ पुरिसाणं॥

आकारंता माला ईकारंता सिरी य लच्छी य।
ऊकारंता जंबू वहू य अंता उ इत्थीणं॥
अंकारंतं धन्नं इंकारंतं नपुंसकं अच्छिं।
ऊंकारंतं पीलुं च महुं च अंता णपुंसाणं॥

से तं तिणामे। —अणु. सु. २२६

जिन शब्दों के अन्त में अं, इं या उं स्वर हों, उनको नपुंसकलिंग वाला समझना चाहिए। अब इन तीनों के उदाहरण कहते हैं–
आकारान्त पुरुष नाम का उदाहरण "राया" है।
ईकारान्त का "गिरी" तथा "सिहरी" (शिखरी) है।
ऊकारान्त का विण्हू (विष्णु) और ओकारान्त का दुमो (द्रुम-वृक्ष) है।
स्त्रीनाम में "माला" यह पद आकारान्त का,
"सिरी" और "लच्छी" पद ईकारान्त का,
"जम्बू" और "वहू" ऊकारान्त नारी जाति के उदाहरण हैं।
"धन्न" यह प्राकृतपद अंकारान्त नपुंसक नाम का उदाहरण है।
"अच्छिं" यह इंकारान्त नपुंसकनाम का तथा "पीलु" "महु" ये ऊंकारान्त नपुंसक के पद हैं।

यह त्रिनाम है।

१६०. चउणाम विवक्खया आगम लोवाइणा सद्द णिप्फत्ति–

प. से किं तं चउणामे?
उ. चउणामे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. आगमेणं, २. लोवेणं,
३. पयइए, ४. विगारेणं।
प. (१) से किं तं आगमेणं?
उ. आगमेणं पउमानि पयासि कुण्डानि।
से तं आगमेणं।
प. (२) से किं तं लोवेणं?
उ. लोवेणं ते अत्र-तेऽत्र, पटो अंत्र-पटोऽत्र, घटो अत्र-घटोऽत्र, रथो अत्र-रथोऽत्र।
से तं लोवेणं।
प. (३) से किं तं पगतीए?
उ. पगतीए अग्नी एतो, पट् इमो, शाले एते, माले इमे।
से तं पगतीए।
प. (४) से किं तं विकारेणं?
उ. विकारेणं दंडस्य अग्रं-दण्डाग्रम्, सा आगता-साऽऽगता, दधि इदं-दधीदम्, नदी ईहते-नदीहते, मधु उदकं मधूदकम्, बहु ऊहते बहूहते।
से तं विकारेणं।
से तं चउणामे। —अणु. सु. २२७-२३१

१६०. चतुर्नाम की विवक्षा से आगम, लोप आदि द्वारा शब्द निष्पत्ति–

प्र. चतुर्नाम क्या है?
उ. चतुर्नाम चार प्रकार के गहे गये हैं, यथा–
१. आगमनिष्पन्ननाम, २. लोपनिष्पन्ननाम,
३. प्रकृतिनिष्पन्ननाम, ४. विकारनिष्पन्ननाम।
प्र. (१) आगमनिष्पन्ननाम क्या है?
उ. पद्मानि, पयांसि, कुण्डानि आदि,
यह सब आगमनिष्पन्ननाम है।
प्र. (२) लोपनिष्पन्ननाम क्या है?
उ. ते + अत्र – तेऽत्र, पटो + अत्र – पटोऽत्र, घटो + अत्र – घटोऽत्र, रथो + अत्र – रथोऽत्र.
यह लोपनिष्पन्ननाम है।
प्र. (३) प्रकृतिनिष्पन्ननाम क्या है?
उ. अग्नी, एतौ, पट्–एमो, शाले–एते, माले–इमे इत्यादि,
यह प्रकृतिनिष्पन्ननाम है।
प्र. (४) विकारनिष्पन्ननाम क्या है?
उ. दण्डस्य + अग्रं = दण्डाग्रम्, सा + आगता = साऽऽगता, दधि + इदं = दधीदं, नदी + ईहते = नदीहते, मधु + उदकं = मधूदकं, बहु + ऊहते =बहूहते,
यह सब विकारनिष्पन्ननाम हैं।
यह चतुर्नाम है।

१६१. पंचनाम विवक्खया ओवसग्गियाइ नामं–

प. से किं तं पंचणामे?
उ. पंचणामे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. नामिकं, २. नैपातिकं, ३. आक्खाइयं, ४. ओवसग्गियं, ५. मिस्सं य।
अश्व इति नामिकम्, खल्विति नैपातिकम्, धावतीत्याख्यातिकम्, परि-इत्यौपसर्गिकम्, संयत इति मिश्रम्।
से तं पंचणामे —अणु. सु. २३२

१६१. पांच नाम की विवक्षा से औपसर्गिक आदि नाम–

प्र. पंचनाम क्या है?
उ. पंचनाम पांच प्रकार के कहे गये है, यथा–
१. नामिक, २. नैपातिक, ३. आख्यातिक, ४. औपसर्गिक, ५. मिश्र।
जैसे "अश्व" यह नामिकनाम का, "खलु-नैपातिकनाम का, "धावति" आख्यातिकनाम का "परि" औपसर्गिक और "संयत" यह मिश्रनाम का उदाहरण है।
यह पंचनाम का स्वरूप है।

१६२. छनाम विवक्खया उदयाइ छब्भावाणं वित्थरओ परूवणं—

प. से किं तं छनामे?

उ. छनामे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. उदइए, २. उवसमिए, ३. खइए, ४. खओवसमिए, ५. पारिणामिए, ६. सन्निवाइए। —*अणु. सु. २३३*

१. उदइए भावे—

प. से किं तं उदइए?

उ. उदइए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. उदए य, २. उदयनिप्फण्णे य।

प. से किं तं उदए?

उ. उदए अट्ठण्हं कम्मपगडीणं उदएणं, से तं उदए।

प. से किं तं उदयनिप्फण्णे?

उ. उदयनिप्फण्णे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. जीवोदयनिप्फन्ने य, २. अजीवोदयनिप्फन्ने य।

प. से किं तं जीवोदयनिप्फन्ने?

उ. जीवोदयनिप्फन्ने अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—

णेरइए, तिरिक्खजोणिए, मणुस्से, देवे,
पुढविकाइए जाव वणस्सइकाइए, तसकाइए,
कोहकसायी जाव लोहकसायी,
इत्थीवेदए, पुरिसवेदए, णपुंसगवेदए,
कण्हलेसे जाव सुक्कलेसे,
मिच्छादिट्ठी, अविरए, अण्णाणी, आहारए, छउमत्थे,
सजोगी, संसारत्थे, असिद्धे।
से तं जीवोदयनिप्फन्ने।

प. से किं तं अजीवोदयनिप्फन्ने?

उ. अजीवोदयनिप्फन्ने चोद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१-२ ओरालियं वा सरीरं, ओरालियसरीर पयोगपरिणामियं वा दव्वं,

३-४ वेउव्वियं वा सरीरं, वेउव्वियसरीरपयोग-परिणामियं वा दव्वं,

एवं ५-६ आहारगं सरीरं ७-८ तेयगं सरीरं ९-१० कम्मगं सरीरं च भाणियव्वं।

पयोगपरिणामिए वण्णे, गंधे, रसे, फासे।

से तं अजीवोदयनिप्फन्ने, से तं उदयनिप्फण्णे, से तं उदए। —*अणु. सु. २३४-२३८*

२. उवसमिए भावे—

प. से किं तं उवसमिए?

उ. उवसमिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. उवसमे य, २. उवसमनिप्फन्ने य।

१६२. षड्नाम की विवक्षा से उदयादि छहभावों का विस्तार से प्ररूपण—

प्र. छहनाम क्या है?

उ. छहनाम छह प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

१. औदयिक, २. औपशमिक, ३. क्षायिक, ४. क्षायोपशमिक, ५. पारिणामिक, ६. सान्निपातिक।

१. औदयिक भाव—

प्र. औदयिकभाव क्या है?

उ. औदयिकभाव दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

१. औदयिक, २. उदयनिष्पन्न।

प्र. औदयिक क्या है?

उ. ज्ञानावरणादिक आठ कर्मप्रकृतियों के उदय से होने वाला औदयिकभाव है।

प्र. उदयनिष्पन्न क्या है?

उ. उदयनिष्पन्न दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

१. जीवोदयनिष्पन्न, २. अजीवोदयनिष्पन्न।

प्र. जीवोदयनिष्पन्न (औदयिकभाव) क्या है?

उ. जीवोदयनिष्पन्न अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य, देव,
पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक,
क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी,
स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी,
कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी,
मिथ्यादृष्टि, अविरत, अज्ञानी, आहारक, छद्मस्थ,
सयोगी, संसारस्थ, असिद्ध।
यह जीवोदयनिष्पन्न है।

प्र. अजीवोदयनिष्पन्न (औदयिकभाव) क्या है?

उ. अजीवोदयनिष्पन्न चौदह प्रकार के कहे गये है, यथा—

१-२ औदारिकशरीर, औदारिकशरीर के प्रयोग से परिणामित द्रव्य।

३-४ वैक्रियशरीर, वैयिक्रशरीर के प्रयोग से परिणामित द्रव्य,

इसी प्रकार ५-६ आहारकशरीर ७-८ तैजसशरीर और ९-१० कार्मणशरीर के भी दो दो विकल्प जानने चाहिए।

पांचो शरीरों के व्यापार से परिणामित वर्ण, गंध, रस, स्पर्श द्रव्य।

यह अजीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव है, यह उदयनिष्पन्न है, यह औदयिकभावों की प्ररूपणा हुई।

२. औपशमिक भाव—

प्र. औपशमिकभाव क्या है?

उ. औपशमिकभाव दो प्रकार के कहे गये है, यथा—

१. उपशम २. उपशमनिष्पन्न।

प. से किं तं उवसमे?
उ. उवसमे मोहणिज्जस्स कम्मस्स उवसमेणं, **से तं उवसमे।**

प. से किं तं उवसमनिप्फण्णे?
उ. उवसमनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–

उवसंतकोहे जाव उवसंतलोभे, उवसंतपेज्जे, उवसंतदोसे, उवसंत दंसणमोहणिज्जे, उवसंतचरित्तमोहणिज्जे, उवसंतमोहणिज्जे, उवसमिया सम्मत्तलद्धी, उवसमिया चरित्तलद्धी उवसंतकसायछउमत्थवीयरागे। से तं उवसमनिप्फण्णे।

से तं उवसमिए। *–अणु. सु. २३९-२४१*

३. खइए भावे–

प. से किं तं खइए?
उ. खइए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. खए य, २. खयनिप्फण्णे य।
प. से किं तं खए?
उ. खए अट्ठण्हं कम्मपगडीणं खएणं से तं खए।

प. से किं तं खयनिप्फण्णे?
उ. खयनिप्फण्णे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–
उप्पण्णणाणदंसणधरे–अरहा जिणे केवली।
खीणआभिणिबोहियणाणावरणे, खीणसुयणाणावरणे, खीणओहिणाणावरणे, खीणमणपज्जवणाणावरणे, खीणकेवलणाणावरणे, अणावरणे, णिरावरणे, खीणावरणे, णाणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के,

केवलदंसी सव्वदंसी खीणनिद्दे खीणनिद्दानिद्दे खीणपयले खीणपयलापयले खीणथीणगिद्धे खीणचक्खुदंसणावरणे, खीणअचक्खुदंसणावरणे, खीणओहिदंसणावरणे, खीणकेवलदंसणावरणे, अणावरणे, निरावरणे, खीणावरणे दरिसणावरणिज्जकम्मविप्पमुक्के,
खीणसायवेयणिज्जे, खीणअसायवेयणिज्जे, अवेयणे निव्वेयणे खीणवेयणे सुभाऽसुभवेयणिज्जकम्म-विप्पमुक्के,
खीणकोहे जाव खीणलोभे, खीणपेज्जे खीणदोसे खीणदंसणमोहणिज्जे खीणचरित्तमोहणिज्जे अमोहे निम्मोहे खीणमोहे मोहणिज्जकम्मविप्पमुक्के,
खीणणेरइयाउए, खीणतिरिक्खजोणियाउए, खीणमणुस्साउए, खीणदेवाउए अणाउए निराउए खीणाउए आउयकम्मविप्पमुक्के,
गइ-जाइ सरीरंगोवंग वंधण संघात संघयण अणेगवोंदिविंदसंघायविप्पमुक्के,

प्र. उपशम क्या है?
उ. मोहनीयकर्म के उपशम से होने वाले भाव को औपशमिक भाव कहते हैं।
प्र. उपशमनिष्पन्न क्या है?
उ. उपशमनिष्पन्न (औपशमिक भाव) के अनेक प्रकार कहे गए हैं, यथा–
उपशांतक्रोध यावत् उपशांतलोभ, उपशांतराग, उपशांतद्वेष, उपशांतदर्शनमोहनीय, उपशांतचारित्रमोहनीय, उपशांतमोहनीय, औपशमिक सम्यक्त्वलब्धि, औपशमिक चारित्रलब्धि, उपशांतकषाय छद्मस्थवीतराग आदि, यह उपशमनिष्पन्न औपशमिक-भाव है।
यह औपशमिकभाव का स्वरूप है।

३. क्षायिक भाव–

प्र. क्षायिकभाव क्या है?
उ. क्षायिकभाव दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. क्षय, २. क्षयनिष्पन्न।
प्र. क्षय (क्षायिकभाव) क्या है?
उ. आठ कर्मप्रकृतियों के क्षय से होने वाला भाव क्षायिक भाव है।
प्र. क्षयनिष्पन्न (क्षायिकभाव) क्या है?
उ. क्षयनिष्पन्न अनेक प्रकार के कहे गये है, यथा–
उत्पन्नज्ञान दर्शनधारक अर्हत् जिन केवली,
क्षीणआभिनिबोधिकज्ञानावरण वाला, क्षीणश्रुतज्ञानावरण वाला, क्षीणअवधिज्ञानावरण वाला, क्षीणमनःपर्यवज्ञानावरण वाला, क्षीणकेवलज्ञानावरण वाला, अविद्यमान आवरण वाला, निरावरण वाला, क्षीणावरण वाला, ज्ञानावरणीयकर्मविप्रमुक्त।
केवलदर्शी, सर्वदर्शी, क्षीणनिद्रा, क्षीणनिद्रानिद्रा, क्षीणप्रचला, क्षीणप्रचलाप्रचला, क्षीणस्त्यानगृद्ध, क्षीणचक्षुदर्शनावरण वाला, क्षीणअचक्षुदर्शनावरण वाला, क्षीणअवधिदर्शनावरण वाला, क्षीणकेवलदर्शनावरण वाला, अनावरण निरावरण, क्षीणावरण, दर्शनावरणीयकर्मविप्रमुक्त

क्षीणसातावेदनीय, क्षीणअसातावेदनीय, अवेदन, निर्वेदन, क्षीणवेदन, शुभाशुभ-वेदनीयकर्मविप्रमुक्त,

क्षीणक्रोध यावत् क्षीणलोभ, क्षीणराग, क्षीणद्वेष, क्षीणदर्शनमोहनीय, क्षीणचारित्रमोहनीय, अमोह, निर्मोह, क्षीणमोह, मोहनीयकर्मविप्रमुक्त,
क्षीणनरकायुष्क, क्षीणतिर्यञ्चयोनिकायुष्क, क्षीणमनुष्या-युष्क, क्षीणदेवायुष्क, अनायुष्क, निरायुष्क, क्षीणायुष्क, आयुकर्मविप्रमुक्त,
गति-जाति-शरीर-अंगोपांग-वंधन-संघात-संहनन-अनेक-शरीर वृन्द, संघात से विप्रमुक्त,

खीणसुभनामे खीणासुभणामे अणामे निण्णामे खीणनामे सुभाऽसुभणामकम्मविप्पमुक्के,

क्षीण-शुभनाम, क्षीणअशुभनाम, अनाम, निर्नाम, क्षीणनाम, शुभाशुभनामकर्मविप्रमुक्त,

खीणउच्चागोए खीणणीयागोए अगोए निग्गोए खीणगोए सुभाऽसुभगोत्तकम्मविप्पमुक्के,

क्षीण-उच्च गोत्र, क्षीण नीच गोत्र, अगोत्र, निर्गोत्र, क्षीण गोत्र, शुभाशुभ गोत्र कर्म विप्रमुक्त

खीणदाणंतराए, खीणलाभंतराए, खीणभोगंतराए खीणउवभोगंतराए खीणविरियंतराए अणंतराए णिरंतराए खीणंतराए अंतराइयकम्मविप्पमुक्के,

क्षीण दानान्तराय, क्षीण लाभान्तराय, क्षीण-भोगान्तराय, क्षीण-उपभोगान्तराय, क्षीणवीर्यान्तराय, अनन्तराय, निरंतराय, क्षीणान्तराय, अंतरायकर्मविप्रमुक्त,

सिद्धे बुद्धे मुत्ते परिणिव्वुए अंतगडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त, अंतकृत सर्वदुःखप्रहीण।

से तं खयनिप्फण्णे। से तं खइए। *—अणु. सु. २४२-२४४*

यह क्षयनिष्पन्न क्षायिकभाव है, यह क्षायिकभाव का कथन हुआ।

४. खओवसमिए भावे–

४. क्षायोपशमिक भाव–

प. से किं तं खओवसमिए?

प्र. क्षायोपशमिकभाव क्या है?

उ. खओवसमिए दुविहे पन्नत्ते, तं जहा–
१. खओवसमे य, २. खओवसमनिप्फन्ने य।

उ. क्षायोपशमिकभाव दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. क्षयोपशम, २. क्षयोपशमनिष्पन्न।

प. से किं तं खओवसमे?

प्र. क्षयोपशम क्या है?

उ. खओवसमे णं चउण्हं घाइकम्माणं खओवसमेणं, तं जहा–
१. नाणावरणिज्जस्स, २. दंसणावरणिज्जस्स,
३. मोहणिज्जस्स, ४. अंतराइयस्स।
से तं खओवसमे।

उ. चार घातिकर्मों के क्षयोपशम को क्षयोपशमभाव कहते हैं, यथा–
१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय,
३. मोहनीय, ४. अन्तराय,
यह क्षायोपशमिक भाव है।

प. से किं तं खओवसमनिप्फन्ने?

प्र. क्षयोपशमनिष्पन्न (क्षायोपशमिकभाव) क्या है?

उ. खओवसमनिप्फन्ने अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–

उ. क्षयोपशमनिष्पन्न क्षायोपशमिकभाव अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

खओवसमिया आभिनिवोहियणाणलद्धी जाव खओवसमिया मणपज्जवणाणलद्धी, खओवसमिया मइअण्णाणलद्धी, खओवसमिया सुयअण्णाणलद्धी, खओवसमिया विभंगणाणलद्धी, खओवसमिया चक्खुदंसणलद्धी एवं अचक्खुदंसणलद्धी, ओहिदंसणलद्धी सम्मद्दंसणलद्धी मिच्छादंसणलद्धी सम्मामिच्छादंसणलद्धी, खओवसमिया सामाइय चरित्तलद्धी, छेओवट्ठावणलद्धी, परिहारविसुद्धियलद्धी, सुहुमसंपराइयलद्धी, चरित्ताचरित्तलद्धी, खओवसमिया दाणलद्धी जाव खओवसमिया वीरियलद्धी, पंडियवीरियलद्धी, वालवीरियलद्धी, बालपंडियवीरियलद्धी, खओवसमिया सोइंदियलद्धी जाव खओवसमिया फासिंदियलद्धी,

क्षायोपशमिक आभिनिवोधिकज्ञानलब्धि यावत् क्षायोपशमिक मनःपर्यवज्ञानलब्धि, क्षायोपशमिक मति अज्ञान लब्धि, क्षायोपशमिक श्रुत अज्ञान लब्धि, क्षायोपशमिक विभंगज्ञान लब्धि, क्षायोपशमिक चक्षुदर्शनलब्धि इसी प्रकार अचक्षुदर्शनलब्धि, अवधिदर्शनलब्धि, सम्यग्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि, सम्यग्मिथ्यादर्शन-लब्धि, क्षायोपशमिक सामायिक-चारित्रलब्धि, छेदो-पस्थापनालब्धि, परिहारवि शुद्धिलब्धि, सुक्ष्मसंपरायिक-लब्धि, चारित्राचारित्रलब्धि, क्षायोपशमिक दान लब्धि यावत् क्षायोपशमिक वीर्यलब्धि, पंडितवीर्यलब्धि, वालवीर्यलब्धि, वालपंडितवीर्यलब्धि, क्षायोपशमिक श्रोत्रेन्द्रियलब्धि यावत् क्षायोपशमिक स्पर्शनेन्द्रियलब्धि,

खओवसमिए आयारधरे एवं सूयगडधरे, ठाणधरे, समवायधरे, विवाहपण्णत्तिधरे, नायाधम्मकहाधरे, उवासगदसाधरे, अंतगडदसाधरे, अणुत्तरोववाइय-दसाधरे, पण्हावागरणधरे, खओवसमिए विवागसुयधरे, खओवसमिए दिट्ठिवायधरे, खओवसमिए णवपुव्वी जाव चोद्दसपुव्वी खओवसमिए गणी, खओवसमिए वायए।
से तं खओवसमनिप्फन्ने।
से तं खओवसमिए। *—अणु. सु. २४५-२४७*

क्षायोपशमिक आचारांगधारी, इसी प्रकार सूत्रकृतांगधारी, स्थानांगधारी, समवायांगधारी, व्याख्याप्रज्ञप्तिधारी, ज्ञाताधर्मकथांगधारी, उपासकदशांगधारी, अन्तकृद्दशांगधारी, अनुत्तरोपपातिकदशांगधारी, प्रश्नव्याकरण-धारी, क्षायोपशमिक विपाकश्रुतधारी, क्षायोपशमिक दृष्टिवादधारी, क्षायोपशमिक नवपूर्वधारी यावत् चौदह-पूर्वधारी, क्षायोपशमिक गणी, क्षायोपशमिक वाचक, य क्षयोपशमनिष्पन्न भाव है।

यह क्षायोपशमिक भाव है।

५. पारिणामिए भावे–

५. पारिणामिक भाव–

प. से किं तं पारिणामिए?

प्र. पारिणामिकभाव क्या है?

उ. पारिणामिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. साइपारिणामिए य, २. अणाइपारिणामिए य।

प. से किं तं साइपारिणामिए ?

उ. साइपारिणामिए अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–
जुण्णसुरा जुण्णगुलो जुण्णघयं जुण्णतंदुला चेव।
अब्भा य अब्भरुक्खा संझा गंधव्वणगरा य।
उक्कावाया दिसादाया गज्जियं विज्जू णिग्घाया जूवया जक्खादित्ता धूमिया
महिया रयुग्घाओ चंदोवरागा सूरोवरागा चंदपरिवेसा सूरपरिवेसा पडिचंदया पडिसूरया इंदधणू उदगमच्छा कविहसिया अमोहा वासा वासधरा गामा णगरा घरा

पव्वया पायाला भवणा निरया रयणप्पभा सक्करप्पभा वालुयप्पभा पंकप्पभा धूमप्पभा तमा तमतमा
सोहम्मे ईसाणे **जाव** आणए पाणए आरणे अच्चुए गेवेज्जे अणुत्तरोववाइया ईसीपब्भारा परमाणुपोग्गले दुपदेसिए **जाव** अणंतपदेसिए।

से तं साइपारिणामिए।

प. से किं तं अणाइपारिणामिए ?

उ. अणाइपारिणामिए धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए अद्धासमए लोए अलोए भवसिद्धिया अभवसिद्धिया।
से तं अणाइपारिणामिए। से तं पारिणामिए।

–अणु. सु. २४८-२५०

उ. पारिणामिकभाव दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. सादिपारिणामिक, २. अनादिपारिणामिक।

प्र. सादिपारिणामिक भाव क्या है ?

उ. सादिपारिणामिक भाव अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा– जीर्ण सुरा, जीर्ण गुड़, जीर्ण घी, जीर्ण तंदुल, अभ्र, अभ्रवृक्ष, संध्या गंधर्वनगर।
तथा–उल्कापात, दिग्दाह, मेघगर्जना, विद्युत्, निर्घात, यूपक, यक्षदिप्त, धूमिका,
महिका, रजोद्घात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, चन्द्रपरिवेष, सूर्यपरिवेष, प्रतिचन्द्र, प्रतिसूर्य, इन्द्रधनुष, उदकमत्स्य, कपिहसित, अमोघ, वर्ष, (भरतादि क्षेत्र) वर्षधर (हिमवान् पर्वत आदि) ग्राम, नगर, घर,
पर्वत, पातालकलश, भवन, नरक, रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, *बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तमस्तमःप्रभा,*
सौधर्म, ईशान **यावत्** आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, ग्रैवेयक, अनुत्तरोपपातिक देवविमान, ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशिक स्कन्ध **यावत्** अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध इत्यादि,
यह सादिपारिणामिकभाव है।

प्र. अनादिपारिणामिकभाव क्या है ?

उ. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, अद्धासमय, लोक, अलोक, भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक।
यह अनादि पारिणामिक भाव है। यह पारिणामिकभाव है।

६. सण्णिवाइए भावे–

प. से किं तं सण्णिवाइए ?

उ. सण्णिवाइए एएसिं चेव उदइय-उवसमिय-खइय-खओवसमिय-पारिणामियाणं भावाणं दुयसंजोएणं तियसंजोएणं चउक्कसंजोएणं पंचगसंजोएणं जे निप्फज्जंति सव्वे ते सन्निवाइए नामे।
तत्थ णं दस दुगसंजोगा, दस तिगसंजोगा, पंच चउक्कसंजोगा, एक्के पंचगसंजोगे।

तत्थ णं जे से दस दुगसंजोगा से णं इमे–
१. अत्थि णामे उदइए उवसमनिप्फण्णे,
२. अत्थि णामे उदइए खयनिप्फण्णे,
३. अत्थि णामे उदइए खओवसमनिप्फण्णे,
४. अत्थि णामे उदइए पारिणामियनिप्फण्णे,
५. अत्थि णामे उवसमिए खयनिप्फण्णे,
६. अत्थि णामे उवसमिए खओवसमनिप्फन्ने,
७. अत्थि णामे उवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने,
८. अत्थि णामे खइए खओवसमनिप्फन्ने,

६. सान्निपातिक भाव–

प्र. सान्निपातिकभाव क्या है ?

उ. औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन पांचों भावों के द्विकसंयोग, त्रिकसंयोग चतुःसंयोग और पंचसंयोग से जो भाव निष्पन्न होते हैं वे सब सान्निपातिकभाव नाम हैं।
उनमें से द्विकसंयोगज दस, त्रिकसंयोगज दस, चतुःसंयोगज पांच और पंचसंयोगज एक भंग होता हैं (इस प्रकार सब मिलाकर ये छब्बीस सान्निपातिकभाव हैं।)

दो-दो के संयोग से निष्पन्न दस भंगों के नाम इस प्रकार हैं–
१. औदयिक-औपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव,
२. औदयिक-क्षायिक के संयोग से निष्पन्न भाव,
३. औदयिक-क्षायोपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव,
४. औदयिक-पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न भाव,
५. औपशमिक-क्षायिक के संयोग से निष्पन्न भाव,
६. औपशमिक-क्षायोपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव,
७. औपशमिक-पारिणमिक के संयोग से निष्पन्न भाव,
८. क्षायिक-क्षायोपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव,

९. अत्थि णामे खइए पारिणामियनिप्फन्ने,

१०. अत्थि णामे खयोवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने।

प. १. कयरे से नामे उदइए उवसमनिप्फन्ने?

उ. उदइए त्ति मणूसे उवसंता कसाया, एस णं से णामे उदइए उवसमनिप्फन्ने।

प. २. कयरे से नामे उदइए खयनिप्फन्ने?

उ. उदइए त्ति मणूसे खइयं सम्मत्तं एस णं से नामे उदइए खयनिप्फन्ने!

प. ३. कयरे से णामे उदइए खयोवसमनिप्फन्ने?

उ. उदए त्ति मणूसे खयोवसमियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे उदइए खयोवसमनिप्फन्ने।

प. ४. कयरे से णामे उदइए पारिणामियनिप्फन्ने?

उ. उदए त्ति मणूसे पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइए पारिणामियनिप्फन्ने।

प. ५. कयरे से णामे उवसमिए खयनिप्फन्ने?

उ. उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं, एस णं से णामे उवसमिए खयनिप्फन्ने।

प. ६. कयरे से णामे उवसमिए खओवसमनिप्फन्ने?

उ. उवसंता कसाया खओवसमियाइं इंदियाइं एस णं से णामे उवसमिए खओवसमनिप्फन्ने।

प. ७. कयरे से णामे उवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने?

उ. उवसंता कसाया पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने।

प. ८. कयरे से णामे खइए खओवसमियनिप्फन्ने?

उ. खइयं सम्मत्तं खयोवसमियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे खइए खयोवसमनिप्फन्ने।

प. ९. कयरे से णामे खइए पारिणामिय निप्फन्ने?

उ. खइयं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे खइए पारिणामियनिप्फन्ने।

प. १०. कयरे से णामे खयोवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने?

उ. खयोवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे एस णं से णामे खयोवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने।

तत्थ णं जे ते दस तिगसंजोगा ते णं इमे—

१. अत्थि णामे उदइए उवसमिए खयनिप्फन्ने,

२. अत्थि णामे उदइए उवसमिए खओवसमनिप्फन्ने,

३. अत्थि णामे उदइए उवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने,

४. अत्थि णामे उदइए खइए खओवसमनिप्फन्ने,

५. अत्थि णामे उदइए खइए पारिणामियनिप्फन्ने,

६. अत्थि णामे उदइए खयोवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने,

९. क्षायिक-पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न भाव,

१०. क्षायोपशमिक-पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न भाव।

प्र. १. औदयिक-औपशमिकभाव के संयोग से निष्पन्न (सान्निपातिक भाव) क्या है?

उ. औदयिकभाव में मनुष्यगति और औपशमिक भाव में उपशांतकषाय, यह औदयिक-औपशमिक भाव के संयोग से निष्पन्न (सान्निपातिक भाव) भंग है।

प्र. २. औदयिक क्षायिक निष्पन्न भाव क्या है?

उ. औदयिक भाव में मनुष्यगति और क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व का ग्रहण औदयिक क्षायिक निष्पन्न भाव है।

प्र. ३. औदयिक-क्षायोपशमिक निष्पन्न भाव क्या है?

उ. औदयिकभाव में मनुष्यगति और क्षायोपशमिकभाव में इन्द्रियां यह औदयिक-क्षायोपशमिकभाव है।

प्र. ४. औदयिक-पारिणामिक निष्पन्न भाव क्या है?

उ. औदयिकभाव में मनुष्यगति और पारिणामिकभाव में जीवत्व को ग्रहण करना यह औदयिकपारिणामिकभाव है।

प्र. ५. औपशमिक क्षयसंयोगजनिष्पन्नभाव क्या है?

उ. उपशांकषाय और क्षायिक सम्यक्त्व यह औपशमिक क्षयसंयोगजभाव है।

प्र. ६. औपशमिक-क्षयोपशम निष्पन्नभाव क्या है?

उ. औपशमिकभाव में उपशांतकषाय और क्षयोपशमनिष्पन्न भाव में इन्द्रियां यह औपशमिक क्षयोपशमनिष्पन्न भाव है।

प्र. ७. औपशमिक-पारिणामिक निष्पन्न भाव क्या है?

उ. औपशमिकभाव में उपशांतकषाय और पारिणामिकभाव में जीवत्व यह औपशमिक पारिणामिकनिष्पन्नभाव है।

प्र. ८. क्षायिक और क्षयोपशमनिष्पन्नभाव क्या है?

उ. क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायोपशमिक इन्द्रियां यह क्षायिक-क्षायोपशमिक निष्पन्नभाव है।

प्र. ९. क्षायिक और पारिणामिकनिष्पन्न भाव क्या है?

उ. क्षायिकभाव में क्षायिक सम्यक्त्व और पारिणामिकभाव में जीवत्व यह क्षायिकपारिणामिक निष्पन्नभाव है।

प्र. १०. क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव क्या है?

उ. क्षायोपशमिकभाव में इन्द्रियां और पारिणामिकभाव में जीवत्व यह क्षायोपशमिक पारिणामिकनिष्पन्न भाव है।

(इस प्रकार से यह द्विकसंयोगी सान्निपातिक भाव के दस भंगों का स्वरूप है)

त्रिकसंयोगज (सान्निपातिकभाव) के दस भंग इस प्रकार हैं—

१. औदयिक-औपशमिक-क्षायिकनिष्पन्नभाव,

२. औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्न भाव,

३. औदयिक-औपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव,

४. औदयिक-क्षायिक क्षायोपशमिकनिष्पन्नभाव,

५. औदयिक-क्षायिक-पारिणामिक-निष्पन्नभाव,

६. औदयिक-क्षायोपशमिक पारिणामिकनिष्पन्नभाव,

७. अत्थि णामे उवसमिए खइए खओवसमनिप्फन्ने,
८. अत्थि णामे उवसमिए खइए पारिणामियनिप्फन्ने,
९. अत्थि णामे उवसमिए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने,
१०. अत्थि णामे खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने,

प. १. कयरे से णामे उदइए उवसमिए खयनिप्फन्ने?

उ. उदए त्ति मणूसे उवसंता कसाया खइयं सम्मत्तं एस णं से णामे उदइए उवसमिए खयनिप्फन्ने।

प. २. कयरे से णामे उदइए उवसमिए खयोवसमियनिप्फन्ने?

उ. उदए त्ति मणूसे उवसंता कसाया खओवसमियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे उदइए उवसमिए खओवसमनिप्फन्ने।

प. ३. कयरे से णामे उदइए उवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने?

उ. उदए त्ति मणूसे उवसंता कसाया पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइए उवसमिए-पारिणामियनिप्फन्ने।

प. ४. कयरे से णामे उदइए खइए खओवसमनिप्फन्ने?

उ. उदए त्ति मणूसे खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे उदइएखइए खओवसमनिप्फन्ने।

प. ५. कयरे से णामे उदइए खइए पारिणामियनिप्फन्ने?

उ. उदए त्ति मणूसे खइयं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे एस णं से नामे उदइए खइए पारिणामियनिप्फन्ने।

प. ६. कयरे से णामे उदइए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने?

उ. उदए त्ति मणूसे खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे एस णं से णामे उदए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने।

प. ७. कयरे से णामे उवसमिए खइए खओवसमनिप्फन्ने?

उ. उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं, एस णं से णामे उवसमिए खइए खओवसमनिप्फन्ने।

प. ८. कयरे से णामे उवसमिए खइए पारिणामियनिप्फन्ने?

उ. उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उवसमिए खइए पारिणामियनिप्फन्ने।

प. ९. कयरे से णामे उवसमिए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने?

उ. उवसंता कसाया खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उवसमिए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने।

७. औपशमिकक्षायिक-क्षायोपशमिक निष्पन्न भाव,
८. औपशमिक-क्षायिक पारिणामिक निष्पन्नभाव,
९. औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव,
१०. क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव।

प्र. १. औदयिक-औपशमिक क्षायिकनिष्पन्नभाव क्या है?

उ. औदयिकभाव मनुष्यगति उपशांतकषाय औपशमिकभाव और क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकभाव, यह औदयिक औपशमिक-क्षायिकनिष्पन्नभाव है।

प्र. २. औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्नभाव क्या है?

उ. मनुष्यगति औदयिकभाव, उपशांतकषाय औपशमिकभाव और इन्द्रियां क्षायोपशमिकभाव, यह औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्नभाव है।

प्र. ३. औदयिक-औपशमिक पारिणामिकनिष्पन्नभाव क्या है?

उ. मनुष्यगति औदयिकभाव, उपशांतकषाय औपशमिकभाव और जीवत्व पारिणामिक भाव यह औदयिक-औपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव है।

प्र. ४. औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्न भाव क्या है?

उ. मनुष्यगति औदयिक भाव, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिकभाव और इन्द्रियां क्षायोपशमिकभाव यह औदयिक क्षायिक क्षायोपशमिकनिष्पन्नभाव है।

प्र. ५. औदयिक-क्षायिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव क्या है?

उ. मनुष्यगति औदयिकभाव क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिकभाव और जीवत्व पारिणामिकभाव, यह औदयिक-क्षायिक-पारिणामिक निष्पन्न भाव है।

प्र. ६. औदयिक - क्षायोपशमिक - पारिणामिकनिष्पन्नभाव क्या है?

उ. मनुष्यगति औदयिकभाव, इन्द्रियां क्षायोपशमिकभाव और जीवत्व पारिणामिकभाव, यह औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक निष्पन्न भाव है।

प्र. ७. औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्नभाव क्या है?

उ. उपशांतकषाय औपशमिकभाव, क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकभाव, इन्द्रियां क्षायोपशमिकभाव, यह औपशमिक-क्षायिक क्षायोपशमिकनिष्पन्नभाव है।

प्र. ८. औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव क्या है?

उ. उपशांतकषाय औपशमिकभाव, क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकभाव, जीवत्व पारिणामिकभाव, यह औपशमिक-क्षायिक पारिणामिकनिष्पन्न भाव है।

प्र. ९. औपशमिक-क्षायोपशमिक पारिणामिकनिष्पन्न भाव क्या है?

उ. उपशांतकषाय औपशमिकभाव, इन्द्रियां क्षायोपशमिकभाव और जीवत्व पारिणामिकभाव, यह औपशमिक क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्न भाव है।

प. १०. कयरे से णामे खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने ?

उ. खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने।

तत्थ णं जे ते पंच चउक्कसंजोगा ते णं इमे–

१. अत्थि णामे उदइए उवसमिए खइए खओवसमनिप्फन्ने,
२. अत्थि णामे उदइए उवसमिए खइए पारिणामियनिप्फन्ने,
३ अत्थि णामे उदइए उवसमिए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने,
४. अत्थि णामे उदइए खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने,
५. अत्थि णामे उवसमिए खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने,

प. १. कयरे से णामे उदइए उवसमिए खइए खओवसमनिप्फन्ने ?

उ. उदए त्ति मणूसे उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं एस णं से णामे उदइए उवसमिए खइए खओवसमनिप्फन्ने।

प. २. कयरे से णामे उदइए उवसमिए खइए पारिणामियनिप्फन्ने ?

उ. उदए त्ति मणूसे उवसंता कसाया, खइयं सम्मत्तं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइए उवसमिए खइए पारिणामियनिप्फन्ने।

प. ३. कयरे से णामे उदइए उवसमिए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने ?

उ. उदए त्ति मणूसे उवसंता कसाया, खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइए उवसमिए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने।

प. ४. कयरे से णामे उदइए खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने ?

उ. उदए त्ति मणूसे खइयं सम्मत्तं खओवसमियाइं इंदियाइं पारिणामिए जीवे एस णं से णामे उदइए खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने।

प्र. १०. क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव क्या है ?

उ. क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकभाव, इन्द्रियां क्षायोपशमिकभाव और जीवत्व पारिणामिकभाव, यह क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिकनिष्पन्न सान्निपातिकभाव है।

चार भावों के संयोग से निष्पन्न सान्निपातिकभाव के पांच भंगों के नाम इस प्रकार हैं–

१. औदयिक-औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक-निष्पन्नभाव,
२. औदयिक औपशमिक क्षायिक पारिणामिकनिष्पन्न भाव,
३. औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक पारिणामिक-निष्पन्नभाव,
४. औदयिक क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक-निष्पन्नभाव,
५. औपशमिक - क्षायिक - क्षायोपशमिक - पारिणामिक-निष्पन्न- भाव।

प्र. १. औदयिक - औपशमिक - क्षायिक - क्षायोपशमिकनिष्पन्न सान्निपातिक भाव क्या है ?

उ. औदयिकभाव में मनुष्य, औपशमिकभाव में उपशांतकपाय, क्षायिकभाव में क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायोपशमिकभाव में इन्द्रियां, यह औदयिक-औपशमिक-क्षायिक- क्षायोपशमिक- निष्पन्न भाव है।

प्र. २. औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिकनिष्पन्न भाव क्या है ?

उ. औदयिकभाव में मनुष्यगति, औपशमिकभाव में उपशांतकपाय, क्षायिकभाव में क्षायिकसम्यक्त्व और पारिणामिकभाव में जीवत्व, यह औदयिक औपशमिक क्षायिक पारिणामिकनिष्पन्न भाव है।

प्र. ३. औदयिक - औपशमिक - क्षायोपशमिक - पारिणामिक-निष्पन्न भाव क्या है ?

उ. औदयिक भाव में मनुष्यगति, औपशमिकभाव में उपशांतकपाय, क्षायोपशमिकभाव में इन्द्रियां और पारिणामिकभाव में जीवत्व, यह औदयिक औपशमिक क्षायोपशमिक पारिणामिकनिष्पन्न भाव है।

प्र. ४. औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक पारिणामिकनिष्पन्न भाव क्या है ?

उ. औदयिकभाव में मनुष्यगति, क्षायिकभाव में क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायोपशमिकभाव में इन्द्रियां और पारिणामिकभाव में जीवत्व यह औदयिक-क्षायिक- [illegible]

तत्थ णं जे से एक्के पंचकसंजोगे से णं इमे–

अत्थि नामे उदइए उवसमिए खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने।

प. कयरे से नामे उदइए उवसमिए खइए खओवसमिए पारिणामिय निप्फन्ने?

उ. उदए त्ति मणूसे, उवसंता कसाया, खइय सम्मत्तं, खओवसमियाइं इंदियाइं, पारिणामिए जीवे, एस णं से णामे उदइए उवसमिए खइए खओवसमिए पारिणामियनिप्फन्ने।[१]

से तं सन्निवाइए, से तं छण्णामे। –अणु. सु. २५१-२५९

पंचसंयोगज सान्निपातिकभाव का एक भंग इस प्रकार है–

औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक पारिणामिक-निष्पन्नभाव।

प्र. औदयिक-औपशमिक क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिक-निष्पन्न भाव क्या है?

उ. औदयिक भाव में मनुष्यगति, औपशमिक भाव में उपशांतकषाय, क्षायिक भाव में क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक भाव में इन्द्रियां और पारिणामिकभाव में जीवत्व, यह औदयिक-औपशमिक-क्षायिक क्षायोपशमिक पारिणामिक निष्पन्न भाव है।

यह सान्निपातिकभाव है। यह छह नाम हुआ।

१६३. सत्त णाम विवक्खया-सर मंडलस्स वित्थरओ परूवणं–

प. से किं तं सत्तनामे?

उ. सत्तनामे सत्त सरा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सज्जे, २. रिसभे, ३. गंधारे, ४. मज्झिमे, ५. पंचमे सरे। ६. धेवए चेव, ७. णेसाए सरा सत्त वियाहिया।

एएसि णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सज्जं तु अग्गजिब्भाए
२. उरेण रिसभं सरं
३. कंठुग्गएण गंधारं
४. मज्झजिब्भाए मज्झिमं।
५. णासाए पंचमं बूया।
६. दंतोट्ठेण य धेवयं।
७. मुद्धाणेण य णेसा य, सरट्ठाणा वियाहिया॥

सत्त सरा जीवनिस्सिया पण्णत्ता, तं जहा–

१. सज्जं रवइ मऊरो।
२. कुक्कुडो रिसभं सरे।
३. हंसो णदइ गंधारं।
४. मज्झिमं तु गवेलगा।
५. अह कुसुमसंभवे काले कोइला पंचमं सरं।
६. छट्ठं च सारसा कोंचा।
७. णेसायं सत्तमं गयो।

सत्त सरा अजीवनिस्सिया पण्णत्ता, तं जहा–

१. सज्जं रवइ मुइंगो।
२. गोमुही रिसभं सरं।
३. संखो णदइ गंधारं।
४. मज्झिमं पुण झल्लरी।
५. चउचलणपइट्ठाणा गोहिया पंचम सरं।

१६३. सप्त नाम की विवक्षा से स्वर मंडल का विस्तार पूर्वक प्ररूपण–

प्र. सप्त नाम क्या है?

उ. सप्त नाम सात (प्रकार के) स्वर कहे गए हैं, यथा–

१. षड्ज, २. ऋषभ, ३. गांधार, ४. मध्यम, ५. पंचम, ६. धैवत, ७. निषाद। (ये सात स्वर हैं)

इन सात स्वरों के सात स्वरस्थान कहे गए हैं, यथा–

१. षड्ज का स्थान जिह्वा का अग्र भाग है।
२. ऋषभ स्वर का स्थान वक्षस्थल है।
३. गांधार स्वर का स्थान कंठ है।
४. मध्यम स्वर का स्थान जिह्वा का मध्य भाग है।
५. पंचम स्वर का स्थान नासिका है।
६. धैवत स्वर का स्थान दंतोष्ठ संयोग है।
७. निषाद स्वर का स्थान मूर्धा (सिर) है।

जीवनिःश्रित सात स्वर कहे गए हैं, यथा–

१. मयूर षड्ज स्वर में बोलता है।
२. कुक्कुट (मुर्गा) ऋषभ स्वर में बोलता है।
३. हंस गांधार स्वर में बोलता है।
४. गवेलक (गाय और भेड़) मध्य स्वर में बोलता है।
५. कोयल वसन्तऋतु में पंचम स्वर में बोलता है।
६. क्रौंच और सारस पक्षी धैवत स्वर में बोलते हैं।
७. हाथी निषाद स्वर में बोलता है।

अजीवनिःश्रित सात स्वर कहे गए हैं, यथा–

१. मृंदग से षड्ज स्वर निकलता है।
२. गोमुखी वाद्य से ऋषभ स्वर निकलता है।
३. शंख से गांधार स्वर निकलता है।
४. झालर से मध्यम स्वर निकलता है।
५. चार चरणों पर प्रतिष्ठित गोधिका से पंचम स्वर निकलता है।

---

१. (क) विया.स.२५,उ.५,सु.४७-४८ (ख) विया.स.१७,उ.१,सु.२८-२९

६. आडंवरो धेवइयं।
७. महाभेरी य सत्तमं।

६. आडंबर (नगाड़ा) से धैवत स्वर निकलता है।
७. महाभेरी से निषाद स्वर निकलता है।

एएसि णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरलक्खणा पण्णत्ता, तं जहा–

इन सातों स्वरों के स्वर-लक्षण सात कहे गए हैं, यथा–

१. सज्जेण लहइ वित्तिं, कयं च ण विणस्सइ।
गावो मित्ता य पुत्ता य, णारीणं चेव वल्लभो॥

१. षड्ज स्वर वाले व्यक्ति आजीविका प्राप्त करते हैं उनका प्रयत्न निष्फल नहीं होता उन्हें गोधन पुत्र-मित्र आदि का संयोग प्राप्त होता है और वे स्त्रियों को प्रिय होते हैं।

२. रिसभेणं तु एसज्जं, सेणावच्चं धणाणि य।
वत्थगंधमलंकारं, इत्थिओ सयणाणि य॥

२. ऋषभ स्वर वाले व्यक्ति को ऐश्वर्य सेनापतित्व, धन, वस्त्र, गंध, आभूषण, स्त्री और शयन प्राप्त होते हैं।

३. गंधारे गीयजुत्तिण्णा, वज्जवित्ती कलाहिया।
भवंति कइणो पण्णा, जे अन्ने सत्थपारगा॥

३. गांधार स्वर वाले व्यक्ति गाने में कुशल श्रेष्ठ वृत्ति वाले, कला में कुशल कवि प्राज्ञ और विभिन्न शास्त्रों के पारगामी होते हैं।

४. मज्झिमसरसंपन्ना, भवंति सुहजीविणो।
खायइ पियइ देह, मज्झिमं सरमस्सियो॥

४. मध्यम स्वर वाले व्यक्ति सुख से जीते हैं, खाते-पीते हैं, खिलाते-पिलाते हैं और दान देते हैं।

५. पंचमसरसंपन्ना, भवंति पुढवीपई।
सूरा संगहकत्तारो, अणेगगणणायगा॥

५. पंचम स्वर वाले व्यक्ति राजा शूर संग्रहकर्ता और अनेक गणों के नायक होते हैं।

६. घेवयसरसंपन्ना, भवंति कलहप्पिया।
साउणिया वग्गुरिया, सोयरिया मच्छवंधा य॥

६. धैवत स्वर वाले व्यक्ति कलहप्रिय, पक्षियों को मारने वाले तथा हिरणों सूअरों और मछलियों को मारने वाले होते हैं।

७. चंडाला मुट्ठिया मेया, जे अन्ने पावकम्मिणो।
गोघायगा य जे चोरा, णेसायं सरमस्सिया॥

७. निषाद स्वर वाले व्यक्ति चाण्डाल फांसी देने वाले, मुट्ठीबाज विभिन्न पाप कर्म करने वाले, गौ घातक और चोर होते हैं।

एएसि णं सत्तण्हं सराणं तओ गामा पण्णत्ता, तं जहा–

इन सात स्वरों के तीन ग्राम (मूर्च्छनाओं का समूह) कहे गए हैं, यथा–

१. सज्जगामे, २. मज्झिमगामे, ३. गंधारगामे।

१. षड्जग्राम, २. मध्यमग्राम, ३. गांधारग्राम।

सज्जगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. मंगी, २. कोरव्वीया, ३. हरी य, ४. रयणी य, ५. सारकंता य। ६. छट्ठी य सारसी णाम, ७. सुद्धसज्जा य सत्तमा॥

षड्जग्राम की सात मूर्च्छनाएँ कही गई हैं, यथा–
१. मंगी, २. कौरव्वीया, ३. हरित्, ४. रजनी, ५. सारकान्ता, ६. सारसी, ७. शुद्धषड्जा।

मज्झिमगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. उत्तरमंदा, २. रयणी, ३. उत्तरा, ४. उत्तरायया।
५. आसोकंता य, ६. सोवीरा, ७. अभिरुद्धवइ सत्तमा॥

मध्यमग्राम की सात मूर्च्छनाएं कही गई हैं, यथा–
१. उत्तरमन्दा, २. रजनी, ३. उत्तरा, ४. उत्तरायता, ५. अश्वक्रान्ता, ६. सौवीरा, ७. अभिरुद्गता।

गंधारगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
[illegible]

गांधारग्राम की सात मूर्च्छनाएं कही गई हैं, यथा–
१. नंदी, २. क्षुद्रिका,
३. पूरिमा, ४. शुद्धगांधारा,
५. उत्तरगांधारा,
६. सुष्ठुतर आयामा,
७. उत्तरायत कोटिमा।

(इस प्रकार से सात स्वरों के तीन ग्राम और २१ मूर्च्छनायें जाननी चाहिए।)

[illegible]

[illegible]

उ. २. सत्त सरा णाभीओ, भवंति गीतं च रून्नजोणी यं।
पादसमया उस्साया, तिण्णि य गीयस्स आगारा॥

उ. २. सातों स्वर नाभि से उत्पन्न होते हैं, रूदन गीत की योनि है। जितने समय में किसी छन्द का एक चरण गाया जाता है, उतना उसका उच्छ्वास काल होता है और उसके आकार तीन होते हैं।

३. आइमिउ आरभंता, समुव्वहंता य मज्झगारंमि।
अवसाणे य खवेंता, तिण्णि य गेयस्स आगारा॥

१. आदि (प्रारंभ) में मृदु, २. मध्य में तीव्र, ३. अन्त में मंद,

४. छद्दोसे अट्ठ गुणे, तिण्णि य वित्ताइं दो य भणिइओ।
जाणीहिइ सो गाहिइ, सुसिक्खिओ रंगमंचम्मि॥

४. गीत के छह दोष, आठ गुण, तीन वृत्त और दो भाणितियां (भाषाएँ) होती हैं। जो इन्हें जानता है ऐसा सुशिक्षित व्यक्ति ही इन्हें रंगमंच पर गा सकता है।

५. गेयस्स छद्दोसा–
१. भीयं,
२. दुयं,
३. रहस्सं गायंतो मा य गाहिं,
४. उत्तालं
५. काकस्सरं ६. अणुनासं च होंति
गेयस्स छद्दोसा॥

५. गीत के छह दोष–
१. भीत-भयभीत होते हुए गाना।
२. द्रुत–शीघ्रता से गाना।
३. ह्स्वर–दीर्घ शब्दों को लघु बनाकर गाना।
४. उत्ताल–ताल (लय) के अनुसार न गाना।
५. काक स्वर–कौए की भांति कर्णकटु स्वर से गाना।
६. अनुनास–नाक से गाना। ये गीत के छः दोष हैं।

६. अट्ठ गुणा गेयस्स–
१. पुण्णं,
२. रत्तं च,
३. अलंकियं च,
४. वत्तं तहा,
५. अविघुट्ठं,
६. मधुरं,
७. समं
८. सुललियं अट्ठ गुणा होंति गेयस्स॥

६. गीत के आठ गुण–
१. पूर्ण–आरोह अवरोह आदि स्वर कलाओं से परिपूर्ण होना।
२. रक्त–राग से परिष्कृत होना।
३. अलंकृत–विभिन्न स्वरों से सुशोभित होना।
४. व्यक्त–स्पष्ट स्वर होना।
५. अविघुष्ट–नियत या नियमित स्वर युक्त होना।
६. मधुर–मधुर स्वरयुक्त होना।
७. सम–ताल, वीणा आदि का अनुगमन करना।
८. सुलंलित–ललित लययुक्त होना। गीत के ये आठ गुण हैं।

७. उर-कंठ-सिरविसुद्धं च,
गिच्चए मउय-रिभियपदबद्धं।
समताल पडुक्खेवं, सत्तस्सरसीभरं गेयं॥

७. गीत के ये आठ गुण और हैं–
१. उरोविशुद्ध–जो स्वर वक्ष स्थल में विशुद्ध हो।
२. कण्ठविशुद्ध–जो स्वर कण्ठ में विशुद्ध हो।
३. शिरोविशुद्ध–जो स्वर सिर से उत्पत्ति होने पर भी विशुद्ध हो।
४. मृदु–जो राग कोमल स्वर से गाया जाता है।
५. रिभित–गोलना–वहुल आलापों के द्वारा चमत्कार पैदा करना।
६. पदवद्ध–गीत को विशिष्ट पदरचना से निवद्ध करना।
७. समताल–पदोत्क्षेप जिसमें ताल वाद्य और नर्तक का वादक से सम हो (एक दूसरे से मिलते हों)
८. सप्तस्वरसीभर–जिसमें सातों स्वर समान हों।

८. निद्दोसं सारवंतं च,
हेउजुत्तमलंकियं।

८. गीतपदों के आठ गुण इस प्रकार हैं–
१. निर्दोष–वत्तीस दोष रहित होना,
२. सारवत्–विशिष्ट अर्थयुक्त होना,
३. हेतुयुक्त–अर्थसाधक हेतुयुक्त होना,
४. अलंकृत–काव्य के अलंकारों से युक्त होना,

६. आडंबरो धेवइयं।
७. महाभेरी य सत्तमं।

एएसि णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरलक्खणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सज्जेण लहइ वित्तिं, कयं च ण विणस्सइ।
गावो मित्ता य पुत्ता य, णारीणं चेव वल्लभो॥
२. रिसभेणं तु एसज्जं, सेणावच्चं धणाणि य।
वत्थगंधमलंकारं, इत्थिओ सयणाणि य॥
३. गंधारे गीयजुत्तिण्णा, वज्जवित्ती कलाहिया।
भवंति कइणो पण्णा, जे अन्ने सत्थपारगा॥
४. मज्झिमसरसंपन्ना, भवंति सुहजीविणो।
खायइ पियइ देह, मज्झिमं सरमस्सियो॥
५. पंचमसरसंपन्ना, भवंति पुढवीपई।
सूरा संगहकत्तारो, अणेगगणणायगा॥
६. धेवयसरसंपन्ना, भवंति कलहप्पिया।
साउणिया वग्गुरिया, सोयरिया मच्छबंधा य॥
७. चंडाला मुट्ठिया मेया, जे अन्ने पावकम्मिणो।
गोहायगा य जे चोरा, णेसायं सरमस्सिया॥

एएसि णं सत्तण्हं सराणं तओ गामा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सज्जगामे, २. मज्झिमगामे, ३. गंधारगामे।

सज्जगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. मंगी, २. कोरव्वीया, ३. हरी य, ४. रयणी य, ५. सारकंता य। ६. छट्ठी य सारसी णाम, ७. सुद्धसज्जा य सत्तमा॥

मज्झिमगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. उत्तरमंदा, २. रयणी, ३. उत्तरा, ४. उत्तरायया।
५. अस्सोकंता य, ६. सोवीरा, ७. अभिरु हवइ सत्तमा॥

गंधारगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. णंदी य, २. खुद्दिमा,
३. पूरिमा य चउत्थी य, ४. सुद्धगंधारा।
५. उत्तरगंधारा वि य, पंचमिया हवइ मुच्छा उ॥
६. सुट्ठुत्तरमायामा सा छट्ठी णियमसो उ णायव्वा।
७. अह उत्तरायया कोडीमा य सा सत्तमी मुच्छा॥

प. सत्त सरा कओ संभवंति? गेयस्स का भवइ जोणी?।
कइसमया उस्सासा? कइ वा गेयस्स आगारा?॥

६. आडंबर (नगाड़ा) से धैवत स्वर निकलता है।
७. महाभेरी से निषाद स्वर निकलता है।

इन सातों स्वरों के स्वर-लक्षण सात कहे गए हैं, यथा–

१. षड्ज स्वर वाले व्यक्ति आजीविका प्राप्त करते हैं उनका प्रयत्न निष्फल नहीं होता उन्हें गोधन पुत्र-मित्र आदि का संयोग प्राप्त होता है और वे स्त्रियों को प्रिय होते हैं।
२. ऋषभ स्वर वाले व्यक्ति को ऐश्वर्य सेनापतित्व, धन, वस्त्र, गंध, आभूषण, स्त्री और शयन प्राप्त होते हैं।
३. गांधार स्वर वाले व्यक्ति गाने में कुशल श्रेष्ठ वृत्ति वाले, कला में कुशल कवि प्राज्ञ और विभिन्न शास्त्रों के पारगामी होते हैं।
४. मध्यम स्वर वाले व्यक्ति सुख से जीते हैं, खाते-पीते हैं, खिलाते-पिलाते हैं और दान देते हैं।
५. पंचम स्वर वाले व्यक्ति राजा शूर संग्रहकर्ता और अनेक गणों के नायक होते हैं।
६. धैवत स्वर वाले व्यक्ति कलहप्रिय, पक्षियों को मारने वाले तथा हिरणों सूअरों और मछलियों को मारने वाले होते हैं।
७. निषाद स्वर वाले व्यक्ति चाण्डाल फांसी देने वाले, मुट्ठीबाज विभिन्न पाप कर्म करने वाले, गौ घातक और चोर होते हैं।

इन सात स्वरों के तीन ग्राम (मूर्च्छनाओं का समूह) कहे गए हैं, यथा–

१. षड्जग्राम, २. मध्यमग्राम, ३. गांधारग्राम।

षड्जग्राम की सात मूर्च्छनाएँ कही गई हैं, यथा–
१. मंगी, २. कौरव्वीया, ३. हरित्, ४. रजनी, ५. सारकान्ता, ६. सारसी, ७. शुद्धषड्जा।

मध्यमग्राम की सात मूर्च्छनाएं कही गई हैं, यथा–
१. उत्तरमन्दा, २. रजनी, ३. उत्तरा, ४. उत्तरायता,
५. अश्वक्रान्ता, ६. सौवीरा, ७. अभिरुद्गता।

गांधारग्राम की सात मूर्च्छनाएं कही गई हैं, यथा–
१. नंदी, २. क्षुद्रिका,
३. पूरिमा, ४. शुद्धगांधारा,
५. उत्तरगांधारा,
६. सुष्ठुतर आयामा,
७. उत्तरायता कोटिमा।

(इस प्रकार से सात स्वरों के तीन ग्राम और २१ मूर्च्छनायें जाननी चाहिए।)

प्र. सात स्वर किनसे उत्पन्न होते हैं, गीत की योनि (जाति) क्या है? उसका उच्छ्वास काल कितना है? और गीत के आकार कितने हैं?

उ. २. सत्त सरा णाभीओ, भवंति गीतं च रून्नजोणी यं।
पादसमया उस्साया, तिण्णि य गीयस्स आगारा॥

३. आइमिउ आरभंता, समुव्वहंता य मज्झगारंमि।
अवसाणे य खवेंता, तिण्णि य गेयस्स आगारा॥

४. छद्दोसे अट्ठ गुणे, तिण्णि य वित्ताइं दो य भणिइओ।
जाणीहिइ सो गाहिइ, सुसिक्खिओ रंगमंचम्मि॥

५. गेयस्स छद्दोसा–
१. भीयं,
२. दुयं,
३. रहस्सं गायंतो मा य गाहिं,
४. उत्तालं
५. काकस्सरं ६. अणुनासं च होंति गेयस्स छद्दोसा॥

६. अट्ठ गुणा गेयस्स–
१. पुण्णं,
२. रत्तं च,
३. अलंकियं च,
४. वत्तं तहा,
५. अविघुट्ठं,
६. मधुरं,
७. समं
८. सुललियं अट्ठ गुणा होंति गेयस्स ॥

७. उर-कंठ-सिरविसुद्धं च,

गिच्चए मउय-रिभियपदबद्धं।

समताल पडुक्खेवं, सत्तस्सरसीभरं गेयं॥

८. निद्दोसं सारवंतं च,

हेउजुत्तमलंकियं।

उ. २. सातों स्वर नाभि से उत्पन्न होते हैं, रूदन गीत की योनि है। जितने समय में किसी छन्द का एक चरण गाया जाता है, उतना उसका उच्छ्वास काल होता है और उसके आकार तीन होते हैं।

१. आदि (प्रारंभ) में मृदु, २. मध्य में तीव्र, ३. अन्त में मंद,

४. गीत के छह दोष, आठ गुण, तीन वृत्त और दो भाणितियां (भाषाएँ) होती हैं। जो इन्हें जानता है ऐसा सुशिक्षित व्यक्ति ही इन्हें रंगमंच पर गा सकता है।

५. गीत के छह दोष–
१. भीत-भयभीत होते हुए गाना।
२. द्रुत–शीघ्रता से गाना।
३. ह्स्वर–दीर्घ शब्दों को लघु बनाकर गाना।
४. उत्ताल–ताल (लय) के अनुसार न गाना।
५. काक स्वर–कौए की भांति कर्णकटु स्वर से गाना।
६. अनुनास–नाक से गाना। ये गीत के छः दोष हैं।

६. गीत के आठ गुण–
१. पूर्ण–आरोह अवरोह आदि स्वर कलाओं से परिपूर्ण होना।
२. रक्त–राग से परिष्कृत होना।
३. अलंकृत–विभिन्न स्वरों से सुशोभित होना।
४. व्यक्त–स्पष्ट स्वर होना।
५. अविघुष्ट–नियत या नियमित स्वर युक्त होना।
६. मधुर–मधुर स्वरयुक्त होना।
७. सम–ताल, वीणा आदि का अनुगमन करना।
८. सुलंलित–ललित लययुक्त होना। गीत के ये आठ गुण हैं।

७. गीत के ये आठ गुण और हैं–
१. उरोविशुद्ध–जो स्वर वक्ष स्थल में विशुद्ध हो।
२. कण्ठविशुद्ध–जो स्वर कण्ठ में विशुद्ध हो।
३. शिरोविशुद्ध–जो स्वर सिर से उत्पत्ति होने पर भी विशुद्ध हो।
४. मृदु–जो राग कोमल स्वर से गाया जाता है।
५. रिभित–गोलना–बहुल आलापों के द्वारा चमत्कार पैदा करना।
६. पदबद्ध–गीत को विशिष्ट पदरचना से निबद्ध करना।
७. समताल–पदोत्क्षेप जिसमें ताल वाद्य और नर्तक का वादक से सम हो (एक दूसरे से मिलते हों)
८. सप्तस्वरसीभर–जिसमें सातों स्वर समान हों।

८. गीतपदों के आठ गुण इस प्रकार हैं–
१. निर्दोष–बत्तीस दोष रहित होना,
२. सारवत्–विशिष्ट अर्थयुक्त होना,
३. हेतुयुक्त–अर्थसाधक हेतुयुक्त होना,
४. अलंकृत–काव्य के अलंकारों से युक्त होना,

उवणीयं सोवयारं च, मितं महुरमेव य॥

५. उपनीत-उपसंहार युक्त होना,
६. सोपचार-अविरुद्ध अलज्जनीय अर्थ का प्रतिपादन करना,
७. मित-अल्पपद और उसके अक्षरों से परिमित होना,
८. मधुर-शब्द अर्थ और प्रतिपादन की दृष्टि से प्रिय होना,

९. सममद्धसमं चेव, सव्वत्थ विसमं च जं।
तिण्णि वित्तप्पयाराइं, चउत्थं नो पलब्भइ॥

९. वृत्त छन्द तीन प्रकार का कहा गया है-
१. सम-जिसमें चारों चरण और अक्षर समान हों,
२. अर्द्धसम-जिसमें चरण और अक्षर विषम हो,
३. सर्वविषम-जिसके चारों चरण और अक्षर सभी विषम हों। इसके अतिरिक्त चौथा प्रकार नहीं पाया जाता।

१०. सक्कया पायया चेव, दुहा भणिईओ आहिया।
सरमंडलंमि गिज्जंते, पसत्था इसिभासिया॥

१०. भणितियां (गीत की भाषाएँ) दो प्रकार की कही गई हैं, यथा-
१. संस्कृत, २. प्राकृत।
ये दोनों प्रशस्त और ऋषिभाषित हैं ये स्वरमण्डल में गाई जाती हैं।

प्र. केसी गायइ महुरं?
केसी गायइ खरं च रुक्खं च।
केसी गायइ चउरं?
केसी विलंबं दुतं केसी॥

विस्सरं पुण केरिसी?

प्र. १. मधुर स्वर में कौन गीत गाती हैं?
२. कर्कश और रूक्ष स्वर में कौन गीत गाती हैं?
३. चतुरता से कौन गीत गाती हैं?
४. विलम्ब स्वर में कौन गीत गाती हैं?
५. द्रुत शीघ्र स्वर में कौन गीत गाती हैं?
६. विस्वरता से कौन गीत गाती हैं?

उ. सामा गायइ महुरं,
काली गायइ खरं च रुक्खं च।
गोरी गायइ चउरं,
काणी विलंबं दुयं अंधा॥

विस्सरं पुण पिंगला॥

उ. १. श्यामा स्त्री मधुर स्वर में गीत गाती है,
२. काली स्त्री कर्कश और रूक्ष स्वर में गीत गाती है,
३. गौरी स्त्री चतुरता से गीत गाती है,
४. काणी स्त्री विलम्ब स्वर में गीत गाती है,
५. अंधी स्त्री द्रुत स्वर में गीत गाती है,
६. पिंगला स्त्री विस्वरता से गीत गाती है।

११. अक्खरसमं पयसमं
तालसमं लयसमं गहसमं च।
निस्ससिय उस्ससियसमं,
संचारसमं सरा सत्त।

११. इन सात स्वरों के नाम इस प्रकार हैं-
१. अक्षरसम-ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत अक्षरों के अनुरूप स्वर,
२. पदसम-राग के अनुरूप पद विन्यास वाला स्वर,
३. तालसम-ताल वादन के अनुरूप गाया जाने वाला स्वर,
४. लयसम-राग रागनी के अनुरूप स्वर,
५. ग्रहसम-वीणा आदि वाद्यों के अनुरूप स्वर,
६. श्वासोच्छ्वास सम-श्वांस लेने-छोड़ने के योग्य स्थान पर रुकने वाला स्वर,
७. संचार सम-वाद्यों पर अंगुली आदि के संचार के अनुरूप स्वर,

१२. सत्त सरा तओ गामा, मुच्छणा एकविंसइ।
ताणा एकूणापण्णासा, समत्तं सरमंडलं[१]॥

१२. इस प्रकार गीत स्वर तन्त्री आदि से सम्बन्धित होकर सात प्रकार का हो जाता है। सात स्वर, तीन ग्राम और इक्कीस मूर्च्छनाएं होती हैं। प्रत्येक स्वर सात तानों से गाया जाता है, इसलिए उनके सात गुणित सात करने पर उनचास (४९) भेद हो जाते हैं, इस प्रकार स्वरमण्डल का वर्णन समाप्त हुआ।

से तं सत्तणामे। -अणु. सु. २६० (१-११)

यह सात नाम का वर्णन हुआ।

१. ठाणं अ. ७ सु. ५५३

१६४. अट्ठ नाम विवक्खया अट्ठवयण विभत्ति–

प. से किं तं अट्ठनामे ?

उ. अट्ठनामे अट्ठविहा वयणविभत्ती पण्णत्ता, तं जहा–

१. निद्देसे पढमा होइ,
२. विइया उवदेसणे,
३. तइया करणम्मि कया,
४. चउत्थी संपयावणे,
५. पंचमी य अपायाणे,
६. छट्ठी सस्सामिवायणे,
७. सत्तमी सण्णिधाणत्थे,
८. अट्ठमाऽऽमंतणी भवे।

१. तत्थ पढमा विभत्ती, निद्देसे सो इमो अहं व त्ति।
२. विइया पुण उवदेसे, भण कुणसु इमं व तं व त्ति।
३. तइया करणम्मि कया भणियं व कयं व तेण व मए वा।
४. हंदि णमो साहाए हवइ चउत्थी पयाणम्मि।
५. अवणय गिण्ह य एत्तो, इत्तो त्ति वा पंचमी अपायाणे।
६. छट्ठी तस्स इमस्स व, गयस्स वा सामिसंबंधे।
७. हवइ पुण सत्तमी तं इमग्गि आधार काल भावे य।
८. आमंतणी भवे अट्ठमी उ जह हे जुवाण त्ति।

से तं अट्ठणामे। –अणु. सु. २६१

१६५. नवनाम विवक्खया नव कव्वरसाणं परूवणं–

प. से किं तं नवनामे ?

उ. नवनामे णव कव्वरसा पण्णत्ता, तं जहा–

१. वीरो, २. सिंगारो, ३. अब्भुओ य, ४. रोद्दो य होइ बोधव्वो। ५. वेलणओ, ६. बीभच्छो, ७. हासो, ८. कलुणो, ९. पसंतो य॥

१६४. अष्ट नाम विवक्षा से आठवचन विभक्ति–

प्र. अष्टनाम क्या है ?

उ. आठ प्रकार की वचनविभक्तियों को अष्टनाम कहते हैं, यथा–

१. निर्देश प्रतिपादक अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है।
२. उपदेश क्रिया के प्रतिपादन में द्वितीया विभक्ति होती है।
३. क्रिया के प्रति साधकतम कारण के प्रतिपादन में तृतीया विभक्ति होती है।
४. संप्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है।
५. अपादान (पृथकृता) बताने के अर्थ में पंचमी विभक्ति होती है।
६. स्व-स्वामित्वप्रतिपादन करने के अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है।
७. सन्निधान (आधार) का प्रतिपादन करने के अर्थ में सप्तमी विभक्ति होती है।
८. संवोधित आमंत्रित करने के अर्थ में अष्टमी विभक्ति होती है।

१. निर्देश में प्रथमा विभक्ति होती है, जैसे–वह, यह, अथवा मैं,
२. उपदेश में द्वितीया विभक्ति होती है, जैसे–इसको कहो, उसको करो आदि।
३. करण में तृतीया विभक्ति होती है, जैसे–उसके और मेरे द्वारा कहा गया अथवा उसके और मेरे द्वारा किया गया।
४. संप्रदान, नमः तथा स्वाहाः अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है, जैसे 'विप्राय गां ददाति-ब्राह्मण को (के लिये) गाय देता है 'नमो जिनाय' जिनेश्वर के लिये मेरा नमस्कार हो 'अग्नये स्वाहा-अग्नि देवता को हवि दिया जाता है।
५. अपादान में पंचमी विभक्ति होती है जैसे वहां से दूर करो अथवा इससे ले लो।
६. स्वस्वामीसम्बन्ध वतलाने में षष्ठी विभक्ति होती है, जैसे–उसकी अथवा इसकी यह वस्तु है।
७. आधार काल और भाव में सप्तमी विभक्ति होती है, जैसे (वह) इसमें है।
८. आमंत्रण अर्थ में अष्टमी विभक्ति होती है, जैसे हे युवान्!

यह अष्टनाम है।

१६५. नव नाम की विवक्षा से नौ काव्य रसों का प्ररूपण–

प्र. नवनाम क्या है ?

उ. नवनाम के नौ काव्य रस कहे गए हैं, यथा–

१. वीररस, २. शृंगाररस, ३. अद्भुतरस, ४. रौद्ररस, ५. व्रीडनकरस, ६. बीभत्सरस, ७. हास्यरस, ८. कारुण्यरस, ९. प्रशांतरस ये नवरसों के नाम जानने चाहिए।

इन नव रसों में

१. तत्थ १. परिच्चायम्मि य २. तव-चरणे ३. सत्तुजणविणासे य। अणणुसय-धिइ परक्कमचिण्हो वीरो रसो होइ।

वीरो रसो जहा—

सो णाम महावीरो जो रज्जं पयहिऊण पव्वइओ।
काम-क्कोहमहासत्तुपक्खनिग्घायणं कुणइ॥

१. १. परित्याग करने में गर्व या पश्चात्ताप न होने, २. तपश्चरण में धैर्य, ३. शत्रुओं का विनाश करने में पराक्रम होने रूप लक्षण वाला वीररस है,

वीररस का बोधक उदाहरण इस प्रकार है—

राज्य-वैभव का परित्याग करके जो दीक्षित हुआ और दीक्षित होकर काम-क्रोध आदि रूप महाशत्रुपक्ष का जिसने विघात किया, वही निश्चय से महावीर है।

२. सिंगारो नाम रसो रइसंजोगाभिलाससंजणणो।
मंडण-विलास-विब्बोय-हास-लीला-रमणलिंगो॥

सिंगारो रसो जहा—

महुरं विलासललियं हिययुम्मादणकरं जुवाणाणं।
सामा सद्दुद्दामं दाएई मेहलादामं॥

२. शृंगाररस—रति के कारणभूत साधनों के संयोग की अभिलाषा का जनक है तथा मंडन, विलास, विब्बोक, हास्य-लीला और रमण ये सब शृंगाररस के लक्षण हैं।

शृंगाररस का बोधक उदाहरण इस प्रकार है—

कामचेष्टाओं से मनोहर कोई श्यामा (सोलह वर्ष की तरुणी) क्षुद्र घंटिकाओं से मुखरित होने से मधुर व युवकों के हृदय को उन्मत्त करने वाले अपने कटिसूत्र का प्रदर्शन करती है।

३. विम्हयकरो अपुव्वो व, भूयपुव्वो व जो रसो होइ।
सो हास विसादुप्पत्तिलक्खणो अब्भूओनाम॥

अब्भुओ रसा जहा—

अब्भुयतरमिह एत्तो अन्नं किं अत्थि जीवलोगम्मि।
जं जिणवयणेणऽत्था तिकालजुत्ता वि णज्जंति॥

३. पूर्व में कभी अनुभव में नहीं आये अथवा अनुभव में आये, किसी विस्मयकारी आश्चर्यकारक पदार्थ को देखकर जो आश्चर्य होता है, वह अद्भुतरस है। हर्ष और विषाद की उत्पत्ति अद्भुतरस का लक्षण है।

अद्भुत रस का उदाहरण इस प्रकार है—

इस जीव लोक में इससे अधिक विस्मय और क्या हो सकता है कि—"जिनवचन द्वारा त्रिकाल सम्बन्धी समस्त पदार्थ जान लिये जाते हैं।"

४. भयजणणरूव-सद्दंधकारचिंता कहासमुप्पन्नो।
सम्मोह-संभम-विसाय-मरणलिंगो रसो रोद्दो॥

रोद्दो रसो जहा—

भिउडीविडंबियमुहा ! संदट्ठोट्ठ इय ! रुहिरमोकिण्ण।
हणसि पसुं असुरणिभा ! भीमरसिय ! अतिरोद्द ! रोद्दो सि॥

४. भयोत्पादक रूप, शब्द अथवा अंधकार में कल्पनाएं उत्पन्न होना तथा दर्शन आदि से रौद्ररस उत्पन्न होता है और संमोह, संभ्रम, विषाद एवं मरण उसके लक्षण हैं।

रौद्र रस का उदाहरण इस प्रकार है—

भृकुटियों से तेरा मुख विकराल बन गया है, तेरे दांत होठों को चबा रहे हैं, तेरा शरीर खून से लथपथ हो रहा है, तेरे मुख से भयानक शब्द निकल रहे हैं, तू राक्षस जैसा होकर पशुओं की हत्या कर रहा है। इसलिए अतिशय रौद्ररूपधारी तू साक्षात् रौद्ररस है।

५. विणयोवयार-गुज्झ-गुरुदारमेरावतिक्कमुप्पण्णो।
वेजणओ नाम रसो लज्जा संकाकरणलिंगो॥

वेलणओ रसो जहा—

किं लोइयकरणीओ लज्जणियतरं ति लज्जिया होमो।
वारिज्जम्मि गुरुजणो परिवंदइ जं वहूपोत्तं॥

५. विनय करने योग्य माता-पिता आदि गुरुजनों का विनय न करने से, गुप्त रहस्यों को प्रकट करने से तथा गुरुपत्नी आदि के साथ मर्यादा का उल्लंघन करने से व्रीडनकरस उत्पन्न होता है। लज्जा और शंका उत्पन्न होना, इस रस के लक्षण हैं।

व्रीडनक रस का उदाहरण इस प्रकार है—

(कोई वधू कहती है—इस लौकिक व्यवहार से अधिक लज्जास्पद अन्य वात क्या हो सकती है—मैं तो इससे वहुत लजाती हूँ, मुझे तो इससे वहुत लज्जा शर्म आती है कि वर वधू का प्रथम समागम होने पर गुरुजन-सास आदि वधू द्वारा पहने हुए वस्त्रों की प्रशंसा करते हैं।

६. असुइ कुणव दुद्दंसणसंजोगब्भासगंधनिप्फण्णो।
निव्वेय विहिंसालक्खणो रसो होइ वीभत्सो॥

६. अशुचि-मल मूत्रादि, कुणप-शव मृत शरीर, दुदर्शन-लार आदि से व्याप्त घृणित शरीर को वार-वार देखने रूप अभ्यास से या उसकी गंध से वीभत्सरस उत्पन्न होता है। निर्वेद और अविहिंसा (त्याग) वीभत्सरस के लक्षण हैं।

वीभच्छो रसो जहा–

असुइमलभरियनिज्झर सभावदुग्गंधि सव्वकालं पि।
धण्णा उ सरीरकलिं वहुमलकलुसं विमुंचति॥

वीभत्सरस का उदाहरण इस प्रकार है–

अपवित्र मल से भरे हुए (झरनों) शरीर के छिद्रों से व्याप्त और सदा सर्वकाल स्वभावतः दुर्गन्धयुक्त यह शरीर सर्व कलहों का मूल है। ऐसा जानकर जो व्यक्ति उसकी मूर्च्छा का त्याग करते हैं, वे धन्य हैं।

७. रूव-वय-वेस-भासाविवरीयविलंबणासमुप्पन्नो।
हासो मणप्पहासो पकासलिंगो रसो होइ॥

७. रूप, वय, वेष, और भाषा की विपरीतता से हास्यरस उत्पन्न होता है, हास्यरस मन को हर्षित करने वाला है और प्रकाश-मुख नेत्र आदि का विकसित होना, अट्टहास आदि उसके लक्षण हैं।

हासो रसो जहा–

पासुत्तमसीमंडियपडिवुद्धं देयरं पलोयंती।
ही ! जह थणभरकंपणपणमियमज्झा हसइ सामा॥

हास्य रस का उदाहरण इस प्रकार है–

प्रातः सो कर उठे, कालिमा-से काजल की रेखाओं से मंडित देवर के मुख को देखकर स्तनयुगल के भार से नमित मध्यमभाग वाली कोई युवती (भाभी) 'ही-ही' करती हंसती है।

८. पियविप्पयोग-बंध-वह-वाहि-विणिवाय-संभमुप्पन्नो।
सोचिय-विलविय-पव्वाय-रून्नलिंगो रसो कलुणो॥

८. प्रिय के वियोग, बंध, वध, व्याधि, विनिपात, पुत्रादि मरण एवं संभ्रम-परचक्रादि के भय आदि से करुणरस उत्पन्न होता है। शोक, विलाप, अतिशय म्लानता रुदन आदि करुणरस के लक्षण हैं।

कलुणो रसो जहा–

पज्झातकिलामिय यं बाहागयणप्पुयच्छियं बहुसो।
तस्स वियोगे पुत्तिय दुब्बलयं ते मुहं जा यं॥

करुणरस का उदाहरण इस प्रकार है–

हे पुत्रिके ! प्रियतम के वियोग में उसकी वारंवार अतिशय चिन्ता से क्लान्त-मुर्झाया हुआ और आंसुओं से व्याप्त नेत्रों वाला तेरा मुख दुर्वल हो गया है।

९. निद्दोसमणसमाहाणसंभवो जो पसंतभावेणं।
अविकारलक्खणो सो रसो पसंतो त्ति णायव्वो॥

९. निर्दोष (हिंसादि दोषों से रहित) मन की समाधि (स्वस्थता) से और प्रशान्त भाव से जो उत्पन्न होता है तथा अविकार जिसका लक्षण है, उसे प्रशान्तरस जानना चाहिये।

पसंतो रसो जहा–

सब्भावनिव्विकारं उवसंत पसंत-सोमदिट्ठीयं।
ही ! जह मुणिणो, सोहइ मुहकमलं पीवरसिरीयं॥

प्रशान्तरस का उदाहरण इस प्रकार है–

सद्भाव के कारण निर्विकार, रूपादि विषयों के अवलोकन की उत्सुकता के परित्याग से उपशान्त एवं क्रोधादि दोषों के परिहार से प्रशान्त, सौम्य दृष्टि से युक्त मुनि का मुखकमल अतीव श्री से सम्पन्न होकर सुशोभित हो रहा है।

एए णव कव्वरसा बत्तीसादोसविहिसमुप्पण्णा।
गाहाहिं मुणेयव्वा, हवंति सुद्धा व मीसा वा॥

गाथाओं द्वारा कहे गये ये नव काव्यरस अलीकता आदि बत्तीस दोषों से उत्पन्न होते हैं और ये रस कहीं शुद्ध (अमिश्रित) भी होते हैं और कहीं मिश्रित भी होते हैं।

से तं नवनामे। –अणु सु. २६२ (१-११)

यह नवनाम का वर्णन हुआ।

१६६. दस णाम विवक्खया गुण णिप्फण्णाई णामा–

प. से किं तं दसनामे ?

उ. दसनामे दसविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. गोण्णे, २. नोगोण्णे,
३. आयाणपदेणं, ४. पडिपक्खपदेणं,
५. पाहण्णयाए, ६. अणादियसिद्धंतेणं,
७. नामेण, ८. अवयवेणं,
९. संजोगेणं, १०. पमाणेणं।

प. (१) से किं तं गोण्णे ?

उ. गोण्णे–

१६६. दस नाम की विवक्षा से गुण निष्पन्न आदि नाम–

प्र. दसनाम क्या है ?

उ. दसनाम इस प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. गौणनाम, २. नोगौणनाम,
३. आदानपदनिष्पन्ननाम, ४. प्रतिपक्षपदनिष्पन्ननाम,
५. प्रधानपदनिष्पन्ननाम, ६. अनादिसिद्धान्तनिष्पन्ननाम,
७. नामनिष्पन्ननाम, ८. अवयवनिष्पन्ननाम,
९. संयोगनिष्पन्ननाम, १०. प्रमाणनिष्पन्ननाम।

प्र. (१) गौण (गुणनिष्पन्न) नाम क्या है ?

उ. गौणनाम का स्वरूप इस प्रकार है–

खमतीति खमणो,
तपतीति तपणो,
जलतीति जलणो,
पवतीति पवणो।
से तं गोण्णे।

प. (२) से किं तं नो गोण्णे?
उ. नो गोण्णे–
अकुंतो सकुंतो,
अमुग्गो समुग्गो,
अमुद्दो समुद्दो,
अलालं पलालं।
अकुलिया सकुलिया,
नो पलं असतीति पलासो,
अमातृवाइए मातिवाहए,
अबीयवावए बीयवावए,
नो इंदं गोवयतीति इंदगोवए।
से तं नो गोण्णे।

प. (३) से किं तं आयाणपदेणं?
उ. आयाणपदेणं आवंती, चातुरंगिज्जं, अहातत्थिज्जं अद्दइज्जं, असंखयं, जण्णइज्जं, पुरिसइज्जं, एलइज्जं, वीरियं, धम्मो, मग्गो, समोसरणं जमईयं।
से तं आयाणपदेणं।

प. (४) से किं तं पडिपक्खपदेणं?
उ. पडिपक्खपदेणं णवेसु गामा-ऽऽगर-णगर-खेड-कब्बड-मडंब - दोणमुह - पट्टणाऽसम - संवाह - सन्निवेसेसु निविस्समाणेसु असिवा सिवा,
अग्गी सीयलो,
विसं महुरं, कल्लालघरेसु अंबिलं साउयं,
जे लत्तए से अलत्तए, जे लाउए से अलाउए,
जे सुंभए से कुसुंभए, आलवंते विवरीयभासए।
से तं पडिपक्खपदेणं।

प. (५) से किं तं पाहण्णयाए?
उ. पाहण्णयाए असोगवणे, सत्तवण्णवणे, चंपकवणे, चूयवणे, नागवणे, पुन्नागवणे, उच्छुवणे, दक्खवणे, सालवणे।

जो क्षमागुण से युक्त हो उसको "क्षमण" कहना,
जो तपे उसे "तपन" कहना,
जो प्रज्वलित हो उसे "ज्वलन" कहना,
जो पवे अर्थात् बहे उसे "पवन" कहना।
यह गौणनाम है।

प्र. (२) नो गौणनाम क्या है?
उ. नो गौणनाम इस प्रकार है–
अकुन्त अर्थात् भाले से रहित पक्षी को भी "सकुन्त" कहना,
अमुद्ग अर्थात् मूंग धान्य से रहित डिब्बीया को भी "समुद्ग" कहना,
अमुद्रा अर्थात् अंगूठी से रहित सागर को भी "समुद्र" कहना,
अलाल अर्थात् लार से रहित घास को भी "पलाल" कहना।
अकुलिका अर्थात् भित्ति से रहित होने पर भी पक्षिणी को "सकुलिका" कहना,
पल अर्थात् मांस का आहार न करने पर भी वृक्ष-विशेष को "पलाश" कहना,
माता को कन्धों पर वहन न करने पर भी विकलेन्द्रिय जीवविशेष को "मातृवाहक" नाम से कहना,
बीज को नहीं बोने वाले जीवविशेष को "बीजवापक" कहना,
इन्द्र की गाय का पालन न करने पर भी कीटविशेष को "इन्द्रगोप" कहना।
ये नो गौणनाम का स्वरूप है।

प्र. (३) आदानपदनिष्पन्ननाम क्या है?
उ. आदानपदनिष्पन्ननाम का स्वरूप इस प्रकार है–आवंती, चातुरंगिज्जं, अहातत्थिज्जं, अद्दइज्जं, जण्णइज्जं, पुरिसइज्जं, एलइज्जं, वीरियं, धम्मो मग्गो समोसरणं जमईयं आदि।
यह आदानपदनिष्पन्ननाम हैं।

प्र. (४) प्रतिपक्षपद से निष्पन्ननाम क्या है?
उ. प्रतिपक्षपदनिष्पन्ननाम इस प्रकार है–नवीन ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्वट, मडंब, द्रोणमुख, पट्टन, आश्रम, संवाह और सन्निवेश आदि में निवास करने पर अथवा वसाए जाने पर अशिवा (शियारनी) को "शिवा" शब्द से उच्चारित करना।
अग्नि को शीतल और विष को मधुर, कलाल के घर में "आम्ल" के स्थान पर "स्वादु" शब्द का व्यवहार होना।
इसी प्रकार रक्त वर्ण का हो उसे **अलक्तक**, लावु को अलावु, सुंभक को कुसुंभक और विपरीतभापक को "अभापक" कहना।
ये प्रतिपक्षपदनिष्पन्ननाम है।

प्र. (५) प्रधानपदनिष्पन्ननाम क्या है?
उ. प्रधानपदनिष्पन्ननाम इस प्रकार है, यथा–अशोकवन, सप्तपर्णवन, चंपकवन, आम्रवन, नागवन, पुन्नागवन, इक्षुवन, द्राक्षावन, सालवन।

से तं पाहण्णयाए।

प. (६) से किं तं अणादियसिद्धंतेणं ?

उ. अणादियसिद्धंतेणं–

धम्मत्थिकाएं, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाएं, अद्धासमए।

से तं अणादियसिद्धंतेणं।

प. (७) से किं तं नामेणं ?

उ. नामेणं–

पिउपियामहस्स नामेणं उन्नामियए।

से तं णामेणं।

प. (८) से किं तं अवयवेणं ?

उ. अवयवेणं–

सिंगी, सिही, विसाणी, दाढी, पक्खी, खुरी, णही, वाली।

दुपय चउप्पय बहुपय णंगूली केसरी कंकुही॥

परियरबंधेण भडं जाणेज्जा, महिलियं निवसणेणं।

सित्थेण दोणपागं, कविं च एगाइ गाहाए॥

से तं अवयवेणं। —अणु. सु. २६३-२७१

१६७. संजोग णिप्फण्ण णामा–

प. (९) से किं तं संजोगेणं ?

उ. संजोगेणं चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दव्वसंजोगे, २. खेत्तसंजोगे,
३. कालसंजोगे, ४. भावसंजोगे।

प. (क) से किं तं दव्वसंजोगे ?

उ. दव्वसंजोगे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सचित्ते, २. अचित्ते,
३. मीसए।

प. से किं तं सचित्ते ?

उ. सचित्ते गोहिं गोमिए,

महिसीहिं महिसिए,
ऊरणीहिं ऊरणिए,
उट्टीहिं उट्टीवाले।
से तं सचित्ते।

प. से किं तं अचित्ते ?

उ. अचित्ते–

छत्तेणं छत्ती, दंडेण दंडी,
पडेण पडी, घडेण घडी,
कडेण कडी।
से तं अचित्ते।

ये प्रधानपदनिष्पन्ननाम हैं।

प्र. (६) अनादिसिद्धान्तनिष्पन्ननाम क्या है ?

उ. अनादिसिद्धान्तनिष्पन्ननाम का स्वरूप इस प्रकार है–

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, अद्धासमय।

ये अनादिसिद्धान्तनिष्पन्ननाम है।

प्र. (७) नामनिष्पन्ननाम क्या है ?

उ. नामनिष्पन्ननाम इस प्रकार है–

जो पिता या पितामह अथवा पिता के पितामह के नाम से निष्पन्न होता है।

वह नामनिष्पन्ननाम है।

प्र. (८) अवयवनिष्पन्ननाम क्या है ?

उ. अवयवनिष्पन्ननाम इस प्रकार है–

शृंगी, सिखी, विषाणी, दंष्ट्री, पक्षी, खुरी, नखी, वाली, द्विपद, चतुष्पद, बहुपद, लांगूली, केशरी, ककुदी आदि।

इसके अतिरिक्त कमर कसने से योद्धा पहचाना जाता है, विशिष्ट प्रकार के वस्त्रों को पहनने से महिला पहचानी जाती है, एक कण के पकने से द्रोणपरिमित अन्न का पकना माना जाता है, एक ही गाथा के सुनने से कवि को पहचाना जाता है।

यह अवयवनिष्पन्ननाम है।

१६७. संयोग निष्पन्न नाम–

प्र. (९) संयोगनिष्पन्ननाम क्या है ?

उ. संयोग चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. द्रव्यसंयोग, २. क्षेत्रसंयोग,
३. कालसंयोग, ४. भावसंयोग।

प्र. (क) द्रव्यसंयोग निष्पन्न नाम क्या है ?

उ. द्रव्यसंयोग तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. सचित्तद्रव्यसंयोग, २. अचित्तद्रव्यसंयोग,
३. मिश्रद्रव्यसंयोग।

प्र. सचित्तद्रव्यसंयोग निष्पन्न नाम क्या है ?

उ. सचित्तद्रव्यसंयोग निष्पन्न नाम इस प्रकार है–गाय के संयोग से गोमान् (ग्वाला),

महिषी (भैंस) के संयोग से महिषी–पटरानी,
मेषियों (भेड़ों) के संयोग से मेषीमान्
ऊंटनियों के संयोग से उष्ट्रीपाल आदि नाम होना।
ये सचित्तद्रव्यसंयोग निष्पन्न नाम है।

प्र. अचित्तद्रव्यसंयोगनिष्पन्न नाम क्या है ?

उ. अचित्तद्रव्य संयोग निष्पन्न नाम इस प्रकार है–

छत्र के संयोग से छत्री, दंड के संयोग से दंडी,
पट के संयोग से पटी, घट के संयोग से घटी,
कट के संयोग से कटी आदि नाम होना।
ये अचित्तद्रव्यसंयोगनिष्पन्न नाम है।

प. से किं तं मीसए?

उ. मीसए–

हलेणं हालिए, सकडेणं साकडिए,

रहेणं रहिए, नावाए नाविए।

से तं मीसए।

से तं दव्वसंजोगे।

प. (ख) से किं तं खेत्तसंजोगे?

उ. **खेत्तसंजोगे–**

१. भारहे, २. एरवए, ३. हेमवए, ४. एरण्णवए, ५. हरिवस्सए, ६. रम्मयवस्सए, ७. पुव्वविदेहए, ८. अवरविदेहए, ९. देवकुरुए, १०, उत्तकुरुए।

अहवा– १. मागहए, २. मालवए,
३. सोरट्ठए, ४. मरहट्ठए,
५. कोंकणए, ६. कोसलए।

से तं खेत्तसंजोगे।

प. (ग) से किं तं कालसंजोगे?

उ. कालसंजोगे–

१. सुसमसुसमए, २. सुसमए,
३. सुसमदूसमए, ४. दूसमसुसमए,
५. दूसमए, ६. दूसमदूसमए,

अहवा– १. पाउसए, २. वासारत्तए,
३. सरदए, ४. हेमंतए,
५. वसंतए, ६. गिम्हए।

से तं कालसंजोगे। –*अणु. सु. २७२-२७८*

प्र. मिश्रद्रव्यसंयोगनिष्पन्न नाम क्या है?

उ. मिश्रद्रव्यसंयोगनिष्पन्न नाम इस प्रकार है–

हल के संयोग से हालिक, शकट के संयोग से शाकटिक, रथ के संयोग से रथिक, नाव के संयोग से नाविक आदि नाम होना।

ये मिश्रद्रव्यसंयोगनिष्पन्न नाम हैं।

यह द्रव्य संयोग निष्पन्न नाम है।

प्र. (ख) क्षेत्रसंयोग निष्पन्न नाम क्या है?

उ. क्षेत्रसंयोग निष्पन्न नाम इस प्रकार है–

१. यह भारतीय है, २. यह ऐरावतक्षेत्रीय है, ३. यह हेमवतक्षेत्रीय है, ४. यह ऐरण्यवतक्षेत्रीय है, ५. यह हरिवर्षक्षेत्रीय है, ६. यह रम्यक्वर्षक्षेत्रीय है, ७. यह पूर्वविदेहक्षेत्रीय है, ८. यह उत्तरविदेहक्षेत्रीय है, ९. यह देवकुरुक्षेत्रीय है, १०. यह उत्तरकुरुक्षेत्रीय है।

अथवा– १. यह मागधीय है, २. मालवीय है,
३. सौराष्ट्रीय है, ४. महाराष्ट्रीय है,
५. कोंकणदेशीय है, ६. कोशलदेशीय है।

ये क्षेत्रसंयोगनिष्पन्ननाम हैं।

प्र. (ग) कालसंयोग निष्पन्न नाम क्या है?

उ. कालसंयोग निष्पन्न नाम इस प्रकार है–

१. सुषमसुषमज, २. सुषमज
३. सुषमदुषमज, ४. दुषमसुषमज,
५. दुषमज, ६. दुषमदुषमज।

अथवा– १. प्रावृषिक, २. वर्षारात्रिक,
३. शारदक, ४. हेमन्तक,
५. वासन्तक, ६. ग्रीष्मक।

ये कालसंयोग से निष्पन्न नाम हैं।

१६८. पसत्थापसत्थ णामा–

प. (घ) से किं तं भावसंजोगे?

उ. भावसंजोगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पसत्थे य, २. अपसत्थे य।

प. से किं तं पसत्थे?

उ. पसत्थे–

१. नाणेणं नाणी, २. दंसणेणं दंसणी, ३. चरित्तेणं चरित्ती।

से तं पसत्थे।

प. से किं तं अपसत्थे?

उ. अपसत्थे–

कोहेणं कोही, माणेणं माणी,

मायाए मायी, लोभेणं लोभी।

से तं अपसत्थे, से तं भावसंजोगे,

से तं संजोगेणं। –*अणु. सु. २७९-२८१*

१६८. प्रशस्त-अप्रशस्त नाम–

प्र. (घ) भावसंयोगनिष्पन्ननाम क्या है?

उ. भावसंयोगनिष्पन्ननाम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रशस्तभावसंयोग, २. अप्रशस्तभावसंयोग।

प्र. प्रशस्तभावसंयोगनिष्पन्ननाम क्या है?

उ. प्रशस्तभावसंयोगनिष्पन्न नाम इस प्रकार है, यथा–

ज्ञान से ज्ञानी, दर्शन से दर्शनी, चारित्र से चारित्री आदि नाम होना।

ये प्रशस्तभावसंयोगनिष्पन्ननाम हैं।

प्र. अप्रशस्तभावसंयोगनिष्पन्ननाम क्या है?

उ. अप्रशस्तभावसंयोगनिष्पन्न नाम इस प्रकार है–

क्रोध के संयोग से क्रोधी, मान के संयोग से मानी, माया के संयोग से मायी, लोभ के संयोग से लोभी आदि नाम होना।

यह अप्रशस्तभाव है। यह भावसंयोग है।

यह संयोगनिष्पन्न नाम है।

१६९. पमाणनामस्स भेयप्पभेया–

प. से किं तं पमाणे?

उ. पमाणे णं चउव्विहे पण्णत्ते,[1] तं जहा–

१. णामप्पमाणे, २. ठवणप्पमाणे,
३. दव्वप्पमाणे, ४. भावप्पमाणे।

–अणु. सु. २८२

१. नामप्पमाणे–

प. से किं तं नामप्पमाणे?

उ. नामप्पमाणे जस्स णं जीवस्स वा, अजीवस्स वा, जीवाण वा, अजीवाण वा, तदुभयस्स वा, तदुभयाण वा पमाणे त्ति णामं कज्जइ।

से तं णामप्पमाणे। –अणु. सु. २८३

२. ठवणप्पमाणे–

प. से किं तं ठवणप्पमाणे?

उ. ठवणप्पमाणे णं सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा–

णक्खत्त-देवयकुले पासंड-गणे य जीवियाहेउं।
आभिप्पाउयणामे ठवणानामं तु सत्तविहं ॥८५॥

–अणु. सु. २८४

नक्खत्त देवय णाम ठवणा–

प. (१) से किं तं नक्खत्तणामे?

उ. नक्खत्तणामे कत्तियाहिं जाए कत्तिए, कत्तियदिण्णे, कत्तियधम्मे, कत्तियसम्मे, कत्तियदेवे, कत्तियदासे, कत्तियसेणे, कत्तियरक्खिए।

रोहिणीहिं जाए रोहिणिए, रोहिणिदिन्ने, रोहिणिधम्मे, रोहिणिसम्मे, रोहिणिदेवे, रोहिणिदासे, रोहिणिसेणे, रोहिणिरिक्खिए।

एवं सव्वणक्खत्तेसु णामा भाणियव्वा[2]।

से तं नक्खत्तणामे।

प. (२) से किं तं देवयणामे?

उ. देवयणामे-अग्गिदेवयाहिं जाए अग्गिए, अग्गिदिण्णे, अग्गिधम्मे, अग्गिसम्मे, अग्गिदेवे अग्गिदासे, अग्गिसेणे, अग्गिरक्खिए।

एवं पि सव्वनक्खत्तदेवयनामा भाणियव्वा[3]।

से तं देवयणामे। –अणु. सु. २८५

कुलाइ णाम ठवणा–

प. (३) से किं तं कुलनामे?

उ. कुलनामे-उग्गे, भोगे, राइण्णे, खत्तिए, इक्खागे, णाते कोरव्वे।

से तं कुलनामे।

१६९. प्रमाण नाम के भेद-प्रभेद–

प्र. प्रमाणनिष्पन्न नाम क्या है?

उ. प्रमाणनिष्पन्ननाम चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. नामप्रमाण, २. स्थापनाप्रमाण,
३. द्रव्यप्रमाण, ४. भावप्रमाण।

१. नामप्रमाण–

प्र. नामप्रमाणनिष्पन्न नाम क्या है?

उ. नामप्रमाणनिष्पन्न नाम इस प्रकार है–किसी जीव या अजीव का, जीवों या अजीवों का, तदुभय या तदुभयों का "प्रमाण" ऐसा जो नाम रख लिया जाता है।

यह नामप्रमाण है।

२. स्थापना प्रमाण–

प्र. स्थापनाप्रमाणनिष्पन्न नाम क्या है?

उ. स्थापनाप्रमाणनिष्पन्ननाम सात प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. नक्षत्रनाम, २. देवनाम, ३. कुलनाम, ४. पार्षंडनाम, ५. गणनाम, ६. जीवितनाम, ७. आभिप्रायिकनाम।

नक्षत्र और देव नाम स्थापना–

प्र. (१) नक्षत्र के आधार से स्थापित नाम क्या है?

उ. नक्षत्र का स्वरूप इस प्रकार है–कृत्तिका नक्षत्र में जन्मे हुए का कार्तिकिय, कार्तिकदत्त, कार्तिकधर्म, कार्तिकशर्म, कार्तिकदेव, कार्तिकदास, कार्तिकसेन, कार्तिकरक्षित आदि नाम रखना।

रोहिणी नक्षत्र में जन्मे हुए का रोहिणेय, रोहिणीदत्त, रोहिणीधर्म, रोहिणीशर्म, रोहिणीदेव, रोहिणीदास, रोहिणीसेन, रोहिणीरक्षित आदि नाम रखना।

इस प्रकार अन्य सब नक्षत्रों की अपेक्षा नाम जानने चाहिए।

ये नक्षत्र नाम हैं।

प्र. (२) देवनाम क्या है?

उ. देवनाम का स्वरूप इस प्रकार है, यथा–

अग्नि देवता से अधिष्ठित नक्षत्र में उत्पन्न हुए का आग्निक, अग्निदत्त, अग्निधर्म, अग्निशर्म, अग्निदेव, अग्निदास, अग्निसेन, अग्निरक्षित आदि नाम रखना।

इसी प्रकार से अन्य सभी नक्षत्र देवताओं के नाम पर स्थापित नामों के लिए भी जानना चाहिए।

ये नक्षत्र देवताओं के नाम हैं।

कुल आदि नाम स्थापना–

प्र. (३) कुलनाम क्या है?

उ. कुलनाम उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, ज्ञात, कौरव्य।

ये कुलनाम है।

---

१. विया. स. ५, उ. ४, सु. २७ में चार प्रकार के प्रमाण कहे हैं–
१. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३. उपमा, ४. आगम। इनका विस्तृत वर्णन अनु. सु. ४३६-४७० में है जो चरणानुयोग पृ. १८ में देखें।

२. गणि. पृ. ५९० पर नक्षत्रों के नाम देखें।

३. गणि. पृ. ५९४ पर नक्षत्रों के देवता के नाम देखें।

प. (४) से किं तं पासंडनामे?

उ. पासंडनामे-समणए, पुंडुरंगए, भिक्खू, कावालियए, तावसए, परिव्वायगे।

से तं पासंडनामे।

प. (५) से किं तं गणनामे?

उ. गणनामे-मल्ले मल्लदिन्ने, मल्लधम्मे, मल्लसम्मे, मल्लदेवे, मल्लदासे, मल्लसेणे, मल्लरक्खिए।

से तं गणनामे।

प. (६) से किं तं जीवियाहेऊं?

उ. जीवियाहेऊं-अवकरए, उक्कुरुडए, उज्झियए, कज्जवए, सुप्पए[1]।

से तं जीवियाहेऊं।

प. (७) से किं तं आभिप्पाइयनामे?

उ. आभिप्पाइयनामे अंबए, निंबए, बबूलए, पालासए, सिणए, पिलुयए, करीरए।

से तं आभिप्पाइयनामे।

से तं ठवणप्पमाणे। *–अणु. सु. २८७-२९१*

३. दव्वप्पमाणं–

प. से किं तं दव्वप्पमाणे?

उ. दव्वप्पमाणे-छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. धम्मत्थिकाए जाव ६. अद्धासमए।

से तं दव्वप्पमाणे। *–अणु. सु. २९२*

४. भावप्पमाणस्स भेया–

प. से किं तं भावप्पमाणे?

उ. भावप्पमाणे-चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सामासिए, २. तद्धितए, ३. धातुए, ४. निरुत्तिए। *–अणु. सु. २९३*

१७०. (१) समास-भेयाण परूवणा–

प. से किं तं सामासिए?

उ. सामासिए-सत्त समासा भवंति, तं जहा–

१ दंदे य २ बहुव्वीही ३ कम्मधारए ४ दिग्गं य।
५ तप्पुरिस ६ अव्वईभावे ७ एक्कसेसे य सत्तमे ॥९१॥

प. १. से किं तं दंदे समासे?

उ. दंदे समासे-

दन्ताश्च ओष्ठौच दन्तोष्ठम्,
स्तनौ च उदरं च स्तनोदरं,
वस्त्रं च पात्रं च वस्त्रपात्रम्,
अश्वश्च महिषश्च अश्वमहिषम्,
अहिश्च नकुलश्च अहिनकुलम्।

से तं दंदे समासे।

प्र. (४) पाषण्डनाम क्या हैं?

उ. पाषण्डनाम-श्रमण, पाण्डुरांग, भिक्षु, कापालिक, तापस, परिव्राजक।

ये पाषण्डनाम हैं।

प्र. (५) गणनाम क्या है?

उ. गण के आधार से स्थापित नाम को गणनाम कहते हैं–जैसे–मल्ल, मल्लदिन्न, मल्लधर्म, मल्लशर्म, मल्लदेव, मल्लदास, मल्लसेन, मल्लरक्षित।

ये गण (स्थापनानिष्पन्न) नाम हैं।

प्र. (६) जीवितहेतुनाम क्या है?

उ. दीर्घकाल तक सन्तान को जीवित रखने के निमित्त नाम रखने को जीवितहेतुनाम कहते हैं, जैसे–अवकरक, उत्कुरुटक, उज्झितक, कववरक, सूर्पक।

ये जीवितहेतुनाम हैं।

प्र. ७. आभिप्रायिकनाम क्या है?

उ. आभिप्रायिकनाम जैसे–अंबक, निम्बक, बकुलक, पलाशक, स्नेहक, पीलुक, करीरक आदि।

ये आभिप्रायिकनाम हैं।

यह स्थापनाप्रमाणनिष्पन्ननाम का वर्णन है।

३. द्रव्यप्रमाण–

प्र. द्रव्यप्रमाणनिष्पन्ननाम क्या है?

उ. द्रव्यप्रमाणनिष्पन्ननाम छह प्रकार के कहे गये है, यथा–

१. धर्मास्तिकाय यावत् ६. अद्धासमय।

यह द्रव्यप्रमाणनिष्पन्ननाम है।

४. भावप्रमाण के भेद–

प्र. भावप्रमाण निष्पन्न नाम क्या है?

उ. भावप्रमाण चार प्रकार के कहे गये है, यथा–

१. सामासिक, २. तद्धितज, ३. धातुज, ४. निरुक्तिक।

१७०. (१) समास के भेदों की प्ररूपणा–

प्र. सामासिकभावप्रमाण क्या है?

उ. सामासिकनामनिष्पन्नता के हेतु सात समास हैं, यथा–

१. द्वन्द्व, २. बहुव्रीहि, ३. कर्मधारय, ४. द्विगु, ५. ततपुरुष, ६. अव्ययीभाव, ७. एकशेष।

प्र. १. द्वन्द्वसमास क्या है?

उ. द्वन्द्वसमास का स्वरूप इस प्रकार है–

"दंताश्च ओष्ठौ च इति दंतोष्ठम्",
स्तनौ च उदरं च इति स्तनदरम्,
वस्त्रं च पात्रं च इति वस्त्रपात्रम्,
अश्वश्च महिषश्च इति अश्वमहिषम्,
अहिश्च नकुलश्च इति अहिनकुलम्,

ये द्वन्द्वसमास के रूप हैं।

---

[1] जिस माँ के बालक अल्पायु में मरने वाले होते हैं, उनके पुत्रों के ऐसे अप्रशस्त नाम रखे जाते हैं–यथा–कचरूमल, ओघडमल, दुग्गडमल, फकीरचन्द आदि।

प. २. से किं तं बहुव्रीहिसमासे?

उ. बहुव्रीहिसमासे–

फुल्ला जम्मि गिरिम्मि कुडय-कलंबा सो इमो गिरी फुल्लियकुडय-कलंबो।

से तं बहुव्रीहिसमासे।

प. ३. से किं तं कम्मधारयसमासे?

उ. कम्मधारयसमासे–

धवलो वसहो धवलवसहो,

किण्हो मिगो किण्हमिगो,

सेतो पटो सेतपटो,

रत्तो पटो रत्तपटो।

से तं कम्मधारयसमासे।

प. ४. से किं तं दिगुसमासे?

उ. दिगुसमासे-

तिण्णिकडुगा तिकडुगं,

तिण्णि महुराणि तिमहुरं,

तिण्णि गुणा तिगुणं,

तिण्णि पुरा तिपुरं,

तिण्णि सरा तिसरं,

तिण्णि पुक्खरा तिपुक्खरं,

तिण्णि विंदुया तिबिंदुयं,

तिण्णि पहा तिपहं,

पंच णदीओ पंचणदं,

सत्त गया सत्तगयं,

नव तुरगा नवतुरगं,

दस गामा दसगामं,

दसपुरा दसपुरं।

से तं दिगुसमासे।

प. ५. से किं तं तप्पुरिसे समासे?

उ. तप्पुरिसे समासे–

तित्थे कागो तित्थकागो

वणे हत्थी वणहत्थी,

वणे वराहो वणवराहो,

वणे महिसो वणमहिसो,

वणे मयूरो वणमयूरो।

से तं तप्पुरिसे समासे।

प. ६. से किं तं अव्वईभावे समासे?

उ. अव्वईभावे समासे–

अणुगामं

अणुणदीयं

अणुफरिहं अणुचरियं।

से तं अव्वईभावे समासे।

पं. ७. से किं तं एगसेसे समासे?

प्र. २. बहुव्रीहिसमास क्या है?

उ. बहुव्रीहिसमास का स्वरूप इस प्रकार है–

इस पर्वत पर पुष्पित कुटज और कदंव वृक्ष होने से यह पर्वत फुल्लकुटजकदंव है।

यह बहुव्रीहिसमास है।

प्र. ३. कर्मधारयसमास क्या है?

उ. कर्मधारयसमास का स्वरूप इस प्रकार है–

धवलो वृषभः = धवलवृषभः,

कृष्णो मृगः = कृष्णमृगः,

श्वेतः पटः = श्वेतपटः,

रक्तः पटः = रक्तपटः।

यह कर्मधारयसमास है।

प्र. ४. द्विगुसमास क्या है?

उ. द्विगुसमास का स्वरूप इस प्रकार है–

तीन कटुक वस्तुओं का समूह–त्रिकटु,

तीन मधुरों का समूह,–त्रिमधुर,

तीन गुणों का समूह,–त्रिगुण,

तीन पुरों का समूह,–त्रिपुर,

तीन स्वरों का समूह, – त्रिस्वर,

तीन पुष्करों (कमलों) का समूह, –त्रिपुष्कर,

तीन विन्दुओं का समूह,–त्रिविन्दु,

तीन पथों का समूह,–त्रिपथ,

पांच नदियों का समूह–पंचनद,

सात गजों का समूह–सप्तगज,

नौ तुरंगों (अश्वों) का समूह–नवतुरंग,

दस ग्रामों का समूह–दसग्राम,

दस पुरों का समूह–दसपुर।

यह द्विगुसमास है।

प्र. ५. तत्पुरुषसमास क्या है?

उ. तत्पुरुषसमास का स्वरूप इस प्रकार है–

तीर्थ में काक–तीर्थकाक,

वन में हस्ती–वनहस्ती,

वन में वराह–वनवराह,

वन में महिष–वनमहिष,

वन में मयूर–वनमयूर।

यह तत्पुरुषसमास है।

प्र. ६. अव्ययीभावसमास क्या है?

उ. अव्ययीभावसमास का स्वरूप इस प्रकार है–

ग्राम के समीप–अनुग्राम,

नदी के समीप–अनुनदिकम,

(इसी प्रकार) अनुस्पर्शम्, अनुचरितम् आदि।

यह अव्ययीभावसमास है।

प्र. ७. एकशेषसमास क्या है?

उ. एगसेसे समासे-
जहा एगो पुरिसो तहा बहवे पुरिसा,
जहा बहवे पुरिसा तहा एगो पुरिसो,
जहा एगो करिसावणो तहा बहवे करिसावणा,
जहा बहबे करिसावणा तहा एगो करिसावणो,
जहा एगो साली तहा बहवे सालिणो,
जहा बहबे सालिणो तहा एगो साली।
से तं एगसेसे समासे।
से तं सामासिए। —अणु. सु. २१४-३०१

१७१. (२) तद्धित-भेयाण परूवणा-

प. से किं तं तद्धियए?

उ. तद्धियए-
१. कम्मे २. सिप्प, ३. सिलोए, ४. संजोग, ५. समीवओ, ६. य संजूहे, ७. इस्सरिया, ८. वच्चेण य तद्धितणामं तु अट्ठविहं ॥९२॥

प. १. से किं तं कम्मणामे?

उ. कम्मणमे-दोस्सिए, सोत्तिए, कप्पासिए, सुत्तवेतालिए, भंडवेतालिए, कोलालिए।
से तं कम्मनामे।

प. २. से किं तं सिप्पनामे?

उ. सिप्पनामे
१. वत्थिए २. तंतिए ३. तुण्णाए, ४. तंतुवाए, ५ पट्टकारिए ६ उव्वट्टिए, ७. वरूडे, ८ मुंजकारे, ९ कट्ठकारे, १०. छत्तकारे, ११. वज्झकारे, १२. पोत्थकारे, १३. चित्तकारे, १४ दंतकारे, १५. लेप्पकारे १६. सेलकारिए, १७. कोट्टिमकारे।
से तं सिप्पनामे।

प. ३. से किं तं सिलोयनामे?

उ. सिलोयनामे-
समणे, माहणे, सव्वातिही।
से तं सिलोयनामे।

प. ४. से किं तं संजोगनामे?

उ. संजोगनामे-
रण्णो ससुरए,
रण्णो सालए,
रण्णो सड्डुए,
रण्णो जामाउए,

उ. जिसमें एक शेष रहे वह एकशेषसमास है,
जैसा-एक पुरुष वैसे अनेक पुरुष,
जैसे अनेक पुरुष वैसा एक पुरुष,
जैसा एक कार्षापण वैसे अनेक कार्षापण
जैसे अनेक कार्षापण वैसा एक कार्षापण,
जैसा एक शालि वैसे अनेक शालि, चांवल,
जैसे अनेक शालि वैसा एक शालि।
ये एकशेषसमास के उदाहरण हैं।
यह सामासिकभावप्रमाणनाम है।

१७१. (२) तद्धित के भेदों की प्ररूपणा-

प्र. तद्धित से निष्पन्न नाम क्या है?

उ. तद्धित निष्पन्न नाम इस प्रकार हैं, यथा-
१. कर्म, २. शिल्प, ३. श्लोक, ४. संयोग, ५. समीप, ६. संयूथ, ७. ऐश्वर्य, ८. अपत्य ये तद्धित निष्पन्न नाम के आठ प्रकार हैं।

प्र. १. कर्मनाम क्या है?

उ. कर्मनाम-दोष्यिक, सौत्रिक, कार्पासिक, सूत्रवैचारिक, भांडवैचारिक, कौलालिक।
ये कर्म निमित्तज नाम हैं।

प्र. २. शिल्पनाम क्या है?

उ. शिल्पनाम इस प्रकार है, यथा-
१. वास्त्रिक-वस्त्र बनाने वाला, २. तान्त्रिक-वीणा बजाने वाला, ३. तुन्नाक-रफू करने वाला, शिल्पी, ४. तन्तुवायिक-जुलाहा, ५. पट्टकार-बुनकर, ६. औद्वृत्तिक-उबटन करने वाला ७. वारुटिक-एक शिल्पी विशेष, ८. मौंजकारिक-मुंज की रस्सी बनाने वाला, ९. काष्टकारिक-बढ़ई, १०. छत्रकारिक-छाता बनाने वाला, ११. वाह्यकारिक-रथ आदि बनाने वाला, १२. पोस्तकारिक-जिल्दसाज, १३. चित्रकारिक-चित्र बनाने वाला, १४. दान्तकारिक-हाथी दांत आदि का सामान बनाने वाला, १५. लेप्यकारिक-मकान बनाने वाला, १६. सेलकारिक-पत्थर घड़ने वाला, १७. कोटिमकारिक-खान खोदने वाला या फर्श बनाने वाला।
ये शिल्प नाम हैं।

प्र. ३. श्लोकनाम क्या है?

उ. श्लोकनाम का स्वरूप इस प्रकार है-
सभी के अतिथि श्रमण, ब्राह्मण आदि।
ये श्लोकनाम हैं।

प्र. ४. संयोगनाम क्या है?

उ. संयोगनाम का स्वरूप इस प्रकार है-
राजा का ससुर-राजकीय ससुर,
राजा का साला-राजकीय साला,
राजा का साढ़ू-राजकीय साढ़ू,
राजा का जमाई-राजकीय जमाई,

रण्णो भगिणीवइ।

से तं संजोगनामे।

प. ५. से किं तं समीवनामे?

उ. समीवनामे–

गिरिस्स समीवे णगरं गिरिणगरं,

विदिसाए समीवे णगरं वेदिसं,

बेन्नाए समीवे णगरं बेन्नायडं,

तगराए समीवे णगरं तगरायडं।

से तं समीवनामे।

प. ६. से किं तं संजूहनामे?

उ. संजूहनामे–

तरंगवतिकारे, मलयवतिकारे, अत्ताणुसट्ठिकारे, बिंदुकारे।

से तं संजूहनामे।

प. ७. से किं तं ईसरियनामे?

उ. ईसरियनामे–

राईसरे तलवरे माडंबिए कोडुंबिए इब्भे सेट्ठी सत्थवाहे सेणावइ।

से तं ईसरियनामे।

प. ८. से किं तं अवच्चनामे?

उ. अवच्चनामे–

तित्थयरमाया, चक्कवट्टिमाया, बलदेवमाया, वासुदेवमाया, रायमाया, गणिमाया, वायगमाया।

से तं अवच्चनामे।

से तं तद्धिते। –अणु. सु. ३०२-३१०

राजा का बहनोई–राजकीय बहनोई।

यह संयोगनाम हैं।

प्र. ५. समीपनाम क्या है?

उ. समीपनाम का स्वरूप इस प्रकार है–

गिरि के समीप का नगर गिरिनगर,

विदिशा के समीप का नगर वैदिशा,

वेन्ना के समीप का नगर वेन्नातट,

तगरा के समीप का नगर तगरातट।

ये समीपनाम हैं।

प्र. ६. संयूथनाम क्या है?

उ. संयूथ (संकलन कर्ता) नाम इस प्रकार है–

तरंगवतीकार, मलयवतीकार, आत्मानुषष्ठिकार, विन्दुकार।

ये संयूथनाम हैं।

प्र. ७. ऐश्वर्यनाम क्या है?

उ. ऐश्वर्यनाम का स्वरूप इस प्रकार है–

ऐश्वर्य (द्योतक) नाम–राजेश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सार्थवाह, सेनापति इत्यादि।

ये ऐश्वर्यनाम हैं।

प्र. ८. अपत्यनाम क्या है?

उ. अपत्यनाम का स्वरूप इस प्रकार है–

तीर्थंकरमाता, चक्रवर्तीमाता, बलदेवमाता, वासुदेवमाता, राजमाता, गणिमाता, वाचकमाता।

ये सब अपत्यनाम है।

यह तद्धितप्रत्ययजन्य नाम है।

१७२. (३) धाउय-परूवणा–

प. से किं तं धाउए?

उ. धाउए–

भू सत्तायां परस्मैभाषा, एध वृद्धो, स्पर्द्ध, संहर्षे,

गाधृ प्रतिष्ठा-लिप्सयोर्ग्रन्थे च, बाधृलोडने।

से तं धाउए। –अणु. सु. ३११

१७२. (३) धातुओं (क्रियाओं) की प्ररूपणा–

प्र. धातुजनाम क्या है?

उ. धातुजनाम का स्वरूप इस प्रकार है–

परस्मैपदी सत्तार्थक 'भू' धातु, वृद्ध्यर्थक एध् धातु, संघर्षार्थक 'स्पर्द्ध' धातु, प्रतिष्ठा, लिप्सा या संचय अर्थक 'गाधृ' धातु और विलोडनार्थक 'बाधृ' धातु आदि से निष्पन्न।

यह धातुजनाम है।

१७३. (४) निरुत्तिए परूवणा–

प. से किं तं निरुत्तिए?

उ. निरुत्तिए–

मह्यां शेते महिषः,

भ्रमति च रौति च भ्रमरः,

मुहुर्मुहुर्लसति मुसलं,

कपिरिव लम्बते त्थच्च करोति कपित्थं,

१७३. (४) निरुक्ति (व्युत्पत्ति) की प्ररूपणा–

प्र. निरुक्तिज नाम क्या हैं?

उ. निरुक्तिज नाम का स्वरूप इस प्रकार है–

जैसे–मह्यां शेते-महिष–पृथ्वी पर जो शयन करे वह महिषि-भैंसा,

भ्रमति रौति इति भ्रमर–भ्रमण करते हुए जो शब्द करे वह भ्रमर,

मुहुर्मुहुर्लसति इति मुसलं–जो बारम्बार ऊंचा-नीचा हो वह मूसल,

कपिरिव लम्बते तथेति च करोति इति कपित्थं–कपि-बंदर के समान वृक्ष की शाखा पर चेष्टा करता है वह कपित्थ,

चिदिति करोति खल्लं च भवति चिक्खल्लं,

चिदिति करोति खलं च भवति-इति चिक्खलं-पैरों के साथ जो चिपके वह चिक्खल,

ऊर्ध्वकर्णः उलूकः

ऊर्ध्वकर्णः इति उलूकः-जिसके कान ऊपर उठे हों वह उलूक,

मेखस्य माला मेखला।

मेखस्य माला मेखला-मेघों की माला मेखला।

से तं निरुत्तिए। से तं भावप्पमाणे। से तं पमाणनामे।

ये निरुक्तिजनाम है। यह भावप्रमाणनाम का कथन है। यह प्रमाणनाम है।

से तं दसनामे। से तं नामे। *—अणु. सु. ३१२*

यह दस नाम का वर्णन है। यह नाम का वर्णन पूर्ण हुआ।

१७४. पमाणस्स भेयप्पभेया—

प. से किं तं पमाणे?

उ. पमाणे-चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. दव्वप्पमाणे, २. खेत्तप्पमाणे, ३. कालप्पमाणे, ४. भावप्पमाणे।[1] *—अणु. सु. ३१३*

१. दव्वपमाणं—

प. से किं तं दव्वपमाणे?

उ. दव्वपमाणे-दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. पएसनिप्फण्णे य, २. विभागनिप्फण्णे य।

प. से किं तं पएसनिप्फण्णे?

उ. पएसनिप्फण्णे-परमाणुपोग्गले दुपएसिए जाव अणंतपएसिए।

से तं पएसनिप्फण्णे।

प. से किं तं विभागनिप्फण्णे?

उ. विभागनिप्फण्णे-पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. माणे, २. उम्माणे, ३. ओमाणे, ४. गणिमे, ५. पडिमाणे।

प. (१) से किं तं माणे?

उ. माणे-दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. धन्नमाणप्पमाणे य, २. रसमाणप्पमाणे य। *—अणु. सु. ३१४-३१७*

धन्नमाणप्पमाणे—

प. (क) से किं तं धन्नमाणप्पमाणे?

उ. धन्नमाणप्पमाणे—

दो असतीओ पसती,
दो पसतीओ सेतिया,
चत्तारि सेतियाओ कुलओ,
चत्तारि कुलया पत्थो,
चत्तारि पत्थया आढयं,
चत्तारि आढयाइं दोणो,
सट्ठि आढयाइं जहण्णए कुंभे,
असीति आढयाइं मज्झिमए कुंभे,
आढयसतं उक्कोसए कुंभे,
अट्ठआढयसतिए वाहे।

१७४. प्रमाण के भेद-प्रभेद—

प्र. प्रमाण क्या है?

उ. प्रमाण चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. द्रव्यप्रमाण, २. क्षेत्रप्रमाण, ३. कालप्रमाण, ४. भावप्रमाण।

१. द्रव्यप्रमाण—

प्र. द्रव्यप्रमाण क्या है?

उ. द्रव्यप्रमाण दो प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. प्रदेशनिष्पन्न, २. विभागनिष्पन्न।

प्र. प्रदेशनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण क्या है?

उ. परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशों यावत् अनंत प्रदेशों से जो निष्पन्न हो वह प्रदेश निष्पन्न है।

यह प्रदेश निष्पन्न द्रव्यप्रमाण है।

प्र. विभागनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण क्या है?

उ. विभागनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

१. मान (धान मापने का पात्र), २. उन्मान (तराजू), ३. अवमान (गज), ४. गणिम (गणना), ५. प्रतिमान (सोने आदि का माप)।

प्र. (१) मान प्रमाण क्या है?

उ. मानप्रमाण दो प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. धान्यमानप्रमाण, २. रसमानप्रमाण।

धान्य मापने के प्रमाण—

प्र. (क) धान्यमानप्रमाण क्या है?

उ. धान्यमानप्रमाण इस प्रकार है—

दो असति की एक प्रसृति,
दो प्रसृति की एक सेतिका,
चार सेतिकाओं का एक कुडव,
चार कुडव का एक प्रस्थ,
चार प्रस्थों का एक आढक,
चार आढकों का एक द्रोण,
साठ आढकों का एक जघन्य कुम्भ,
अस्सी आढकों का एक मध्यम कुम्भ,
सौ आढकों का एक उत्कृष्ट कुम्भ और
आठ सौ आढकों का एक वाह होता है।

---

1. ठाणं अ. ४, उ. १, सु. २५८

प. एएणं धन्नमाणप्पमाणेणं किं पओयणं?

उ. एएणं धन्नमाणप्पमाणेणं-मुत्तोली-मुरव-इड्डर-आलिंद-अपवारिसंसियाणं धण्णाणं धण्णमाणप्पमाणनिव्वित्ति लक्खणं भवइ।

से तं धन्नमाणप्पमाणे। —अणु.सु. ३१८-३१९

प्र. इस धान्यमानप्रमाण का क्या प्रयोजन है?

उ. इस धान्यमानप्रमाण के द्वारा मुक्तोली (कोठी), मुरव (बोरी), इड्डर (छोटी बोरी), अलिंद (धान भरने का बर्तन) और अपचारि (जमीन के अन्दर की कोठी) में रखे हुए धान्य के प्रमाण का परिज्ञान होता है।

यह धान्यमानप्रमाण है।

रसमाणप्पमाणे–

प. (ख) से किं तं रसमाणप्पमाणे?

उ. रसमाणप्पमाणे-धन्नमाणप्पमाणाओ चउभागविवड्ढिए अब्भिंतरसिहाजुए रसमाणप्पमाणे विहिज्जइ, तं जहा–

४. चउसट्ठिया
८. बत्तीसिया,
१६. सोलसिया,
३२. अट्ठभाइया,
६४. चउभाइया,
१२८. अद्धमाणी,
२५६. माणी।

दो चउसट्ठियाओ बत्तीसिया,
दो बत्तीसियाओ सोलसिया,
दो सोलसियाओ अट्ठभाइया,
दो अट्ठभाइयाओ चउभाइया,
दो चउभाइयाओ अद्धमाणी,
दो अद्धमाणीओ माणी।

प. एएणं रसमाणप्पमाणेणं किं पओयणं?

उ. एएणं रसमाणप्पमाणेणं वारग-घडग-करग-किक्किरि-दइय-करोडि-कुंडिय-संसियाणं रसाणं रसमाणप्पमाण-निव्वित्तिलक्खणं भवइ।

से तं रसमाणप्पमाणे।
से तं माणे। —अणु. सु. ३२०-३२१

प्रवाही पदार्थ मापने के प्रमाण–

प्र. (ख) रसमानप्रमाण क्या है?

उ. रसमानप्रमाण धान्यमानप्रमाण से चतुर्भाग अधिक और आभ्यन्तर शिखायुक्त होता है, यथा–

४. चार पल की एक चतुःषष्ठिका होती है।
८. आठ पलप्रमाण द्वात्रिंशिका,
१६. सोलह पलप्रमाण षोडशिका,
३२. बत्तीस पलप्रमाण अष्टभागिका,
६४. चौंसठ पलप्रमाण चतुर्भागिका,
१२८. एक सौ अट्ठाईस पलप्रमाण "अर्धमानी",
२५६. दो सौ छप्पन पलप्रमाण "मानी" कही जाती है।

दो चतुःषष्ठिका की एक द्वात्रिंशिका,
दो द्वात्रिंशिका की एक षोडशिका,
दो षोडशिकाओं की एक अष्टभागिका,
दो अष्टभागिकाओं की एक चतुर्भागिका,
दो चतुर्भागिकाओं की एक अर्धमानी
दो अर्धमानियों की एक मानी होती है।

प्र. इस रसमानप्रमाण का क्या प्रयोजन है?

उ. इस रसमानप्रमाण से बारक (छोटा घड़ा), घट-कलश, करक (घड़ा), किक्किरि (भांडा), दृति (कुप्पा), करोडिका (चौड़ा बर्तन), कुंडिका (कुंडी) आदि में भरे हुए रसों के परिमाण का ज्ञान होता है।

यह रसमानप्रमाण है।

यह मानप्रमाण है।

खंडाइणं माणप्पाणे–

प. (२) से किं तं उम्माणे?

उ. उम्माणे-जण्णं उम्मिणिज्जइ, तं जहा–

१. अद्धकरिसो, २. करिसो, ३. अद्धपलं, ४. पलं, ५. अद्धतुला, ६. तुला, ७. अद्धभारो, ८. भारो।

दो अद्धकरिसा करिसो,
दो करिसा अद्धपलं,
दो अद्धपलाइं पलं,
पंचुत्तरपलसइया पंचपलसइया तुला,
दस तुलाओ अद्धभारो,
वीसं तुलाओ भारो।

शक्कर आदि मापने के प्रमाण–

प्र. (२) उन्मानप्रमाण क्या है?

उ. जिसका उन्मान किया जाए अथवा जिसके द्वारा उन्मान किया जाता है, उसे उन्मानप्रमाण कहते हैं, यथा–

१. अर्धकर्ष, २. कर्ष, ३. अर्धपल, ४. पल, ५. अर्धतुला, ६. तुला, ७. अर्धभार, ८. भार।

(इन प्रमाणों की निष्पत्ति इस प्रकार होती है–)

दो अर्धकर्षों का एक कर्ष,
दो कर्षों का एक अर्धपल,
दो अर्धपलों का एक पल,
एक सौ पांच पल अथवा पांच सौ पलों का एक तुला,
दस तुला का एक अर्धभार और
बीस तुला का एक भार होता है।

प. एएणं उम्माणपमाणेणं किं पयोयणं?

उ. एएणं उम्माणपमाणेणं-पत्त-अगलु-तगर-चोयय-कुंकुम-खंड-गुल-मच्छंडियादीणं दव्वाणं उम्माणपमाणणिव्वत्तिलक्खणं भवइ।

से तं उम्माणपमाणे। –अणु. सु. ३२२-३२३

गत्ताइ माणप्पमाणे–

प. (३) से किं तं ओमाणे?

उ. ओमाणे-जण्णं ओमिणिज्जइ, तं जहा–

हत्थेण वा, दंडेण वा, धणुएण वा, जुगेण वा, णालियाए वा, अक्खेण वा, मुसलेण वा।

दंडं धणू जुगं णालिया य अक्ख मुसलं च चउहत्थं।

दसनालियं च रज्जुं वियाण ओमाणसण्णाए ॥९३॥

वत्थुम्मि हत्थमिज्जं खित्ते दंडं धणुं च पंथम्मि।
खायं च नालियाए वियाण ओमाणसण्णाए ॥९४॥

प. एएणं ओमाणपमाणेणं किं पओयणं?

उ. एएणं ओमाणपमाणेणं-खाय-चिय-करगचित-कड-पड-भित्ति-परिक्खेव-संसियाणं दव्वाणं ओमाणप्पमाण व्विति त्तिलक्खणं भवइ।

से तं ओमाणे। –अणु. सु. ३२४-३२५

गणणाप्पमाणे–

प. (४) से किं तं गणिमे?

उ. गणिमे-जण्णं गणिज्जइ, तं जहा–

एक्को दसगं सतं सहस्सं दससहस्साइं सयसहस्सं दससयसहस्साइं कोडी।

प. एएणं गणिमप्पमाणेणं किं पयोअणं?

उ. एएणं गणिमपमाणेणं-भितग-भित्ति-भत्त-वेयण-आय-व्वय-निव्विसंसियाणं दव्वाणं गणिमप्पमाणनिव्वित्तिलक्खणं भवइ।

से तं गणिमे। –अणु. सु. ३२६-३२७

सुवण्णाइ माणप्पमाणे–

प. (५) से किं तं पडिमाणे?

उ. पडिमाणे-जण्णं पडिमिणिज्जइ, तं जहा–

१. गुंजा २. कागणी ३. निप्फावो ४. कम्ममासओ ५. मंडलओ ६. सुवण्णो।

पंच गुंजाओ कम्ममासओ,

प्र. उन्मानप्रमाण का क्या प्रयोजन है?

उ. इस उन्मानप्रमाण से १. पत्र, २. अगर, ३. तगर, ४. चोयक, ५. कुंकुम, ६. खाण्ड, ७. गुड़, ८. मिश्री आदि द्रव्यों के परिमाण का परिज्ञान होता है।

यह उन्मानप्रमाण है।

खड्डे आदि के मापने का प्रमाण–

प्र. (३) अवमान प्रमाण क्या है?

उ. जिसके द्वारा अवमान किया जाए अथवा जिसका अवमान किया जाए, उसे अवमानप्रमाण कहते हैं, यथा–

हाथ से, दण्ड से, धनुष से, युग से, नालिका से, अक्ष से अथवा मूसल से नापा जाता है।

दण्ड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष और मूसल चार हाथ प्रमाण होते हैं।

दस नालिका की एक रज्जू होती है, ये सभी अवमान कहलाते हैं।

वास्तु-गृहभूमि को हाथ द्वारा, मार्ग-रास्ते को धनुष द्वारा और खाई-कुआ आदि को नालिका द्वारा नापा जाता है। इन सबको अवमान इस नाम से जानना चाहिए।

प्र. इस अवमानप्रमाण का क्या प्रयोजन है?

उ. इस अवमानप्रमाण से खाई (कुआ), चित-ईंट, पत्थर आदि से निर्मित भवन, पीठ (चबूतरा) आदि, क्रकचित (आरो से खण्डित काष्ठ) आदि, कट, पट, वस्त्र, भींत, परिक्षेप अथवा नगर की परिखा आदि में संश्रित द्रव्यों की लम्बाई-चौड़ाई, गहराई और ऊँचाई के प्रमाण का परिज्ञान होता है।

यह अवमानप्रमाण का स्वरूप है।

गणना करने के प्रमाण–

प्र. (४) गणिमप्रमाण क्या है?

उ. जो गिना जाए अथवा जिसके द्वारा गणना की जाए उसे गणिमप्रमाण कहते हैं, यथा–

एक, दस, सौ, हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड़ इत्यादि।

प्र. इस गणिमप्रमाण का क्या प्रयोजन है?

उ. इस गणिमप्रमाण से भृत्य-नौकर, कर्मचारी आदि की वृत्ति, भोजन, वेतन के आय-व्यय से सम्बन्धित द्रव्यों के प्रमाण की निष्पत्ति होती है।

यह गणिमप्रमाण का स्वरूप है।

सोना आदि मापने के प्रमाण–

प्र. (५) प्रतिमान प्रमाण क्या है?

उ. जिसका और जिसके द्वारा प्रतिमान किया जाता है, उसे प्रतिमान कहते हैं, यथा–

१. गुंजा-रत्ती, २. काकणी, ३. निष्पाव, ४. कर्ममाषक, ५. मंडलक, ६. सुवर्ण।

पांच गुंजाओं (रत्तियों) का एक कर्ममाष होता है।

कागण्यवेक्खया चत्तारि कागणीओ कम्ममासओ।

तिण्णि निप्फावा कम्ममासओ,
एवं चउक्को कम्ममासओ।

बारस कम्ममासया मंडलओ,
एवं अडयालीसाए कागणीए मंडलओ।

सोलस कम्ममासया सुवण्णो एवं चउसट्ठीए कागणीए सुवण्णो।

प. एएणं पडिमाणप्पमाणे णं किं पयोअणं?

उ. एएणं पडिमाणप्पमाणेणं सुवण्ण-रजत-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवालादीणं दव्वाणं पडिमाणप्पमाण-निव्वत्तिलक्खणं भवइ।

से तं पडिमाणे।

से तं विभागनिप्फण्णे।

से तं दव्वपमाणे।[1] *—अणु. सु. ३२८-३२९*

काकणी की अपेक्षा चार काकणियों का एक कर्ममाष होता है।

तीन निष्पाव का एक कर्ममाष होता है।

इस प्रकार कर्ममाषक चार प्रकार से निष्पन्न (चतुष्क) होता है।

बारह कर्ममाषकों का एक मंडलक होता है।

इसी प्रकार अड़तालीस काकणियों के बराबर एक मंडलक होता है।

सोलह कर्ममाषक अथवा चौसठ काकणियों का एक स्वर्ण (सोनैया) होता है।

प्र. इस प्रतिमानप्रमाण का क्या प्रयोजन है?

उ. इस प्रतिमानप्रमाण के द्वारा सुवर्ण, रजत, मणि, मोती, संख, शिला, प्रवाल आदि द्रव्यों का परिमाण जाना जाता है।

यह प्रतिमानप्रमाण है।

यह विभागनिष्पन्नप्रमाण है।

यह द्रव्यप्रमाण है।

१७५. भावप्पमाणे संखप्पमाणभेया—

प. से किं तं संखप्पमाणे?

उ. संखप्पमाणे—अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. नामसंखा, २. ठवणासंखा, ३. दव्वसंखा, ४. ओवमसंखा, ५. परिमाणसंखा, ६. जाणणासंखा, ७. गणणासंखा, ८. भावसंखा।

प. (१) से किं तं नामसंखा?

उ. नामसंखा—जस्स णं जीवस्स वा, अजीवस्स वा, जीवाण वा, अजीवाण वा, तदुभयस्स वा, तदुभयाण वा संखा ति णामं कज्जइ।

से तं नामसंखा।

प. (२) से किं तं ठवणासंखा?

उ. ठवणासंखा-जण्णं कट्ठकम्मे वा, पोत्थकम्मे वा, चित्तकम्मे वा, लेप्पकम्मे वा, गंथिकम्मे वा, वेढिमे वा, पूरिमे वा, संघाइमे वा, अक्खे वा, वराडए वा, एक्को वा, अणेगा वा, सब्भावठवणाए वा, असब्भावठवणाए वा संखा ति ठवणा ठविज्जइ।

से तं ठवणासंखा।

प. नाम-ठवणाणं को पइविसेसो?

उ. नामं आवकहियं, ठवणा इत्तरिया वा होज्जा, आवकहिया वा होज्जा।

प. (३) से किं तं दव्वसंखा?

उ. दव्वसंखा-दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. आगमओ य, २. नो आगमओ य।

प. (क) से किं तं आगमओ दव्वसंखा?

१७५. भावप्रमाण में संख्याप्रमाण के भेद—

प्र. शंख प्रमाण कितने प्रकार का है?

उ. शंख प्रमाण आठ प्रकार के कहे गए हैं, यथा—
१. नामसंख्या, २. स्थापनासंख्या, ३. द्रव्यसंख्या, ४. औपम्यसंख्या, ५. परिमाणसंख्या, ६. ज्ञान संख्या, ७. गणनासंख्या, ८. भावसंख्या।

प्र. (१) नामसंख्या क्या है?

उ. जिस जीव का या अजीव का, जीवों का अथवा अजीवों का, तदुभय (जीवाजीव) का अथवा तदुभयों (जीवाजीवों) का "शंख" ऐसा नामकरण कर लिया जाता है।

यह नामशंख्या है।

प्र. (२) स्थापनासंख्या क्या है?

उ. जिस काष्ठकर्म में, पुस्तककर्म में, चित्रकर्म में, लेप्यकर्म में, ग्रन्थिकर्म में, वेष्टित में, पूरित में, संघातिम में, अक्ष में अथवा वराटक (कौड़ी) में एक या अनेक रूप में सद्भूतस्थापना या असद्भूतस्थापना द्वारा "शंख" इस प्रकार से स्थापन कर लिया जाता है।

यह स्थापनाशंख्या है।

प्र. नाम और स्थापना में क्या अन्तर है?

उ. नाम यावत्कथिक होता है लेकिन स्थापना इत्वरिक भी होती है और यावत्कथिक भी होती है।

प्र. (३) द्रव्यशंखा क्या है?

उ. द्रव्यशंखा दो प्रकार की कही गई है, यथा—
१. आगमद्रव्यशंखा, २. नो आगमद्रव्यशंखा।

प्र. (क) आगमद्रव्यशंखा क्या है?

---

१. क्षेत्र प्रमाण और काल प्रमाण गणितानुयोग में देखें।

उ. दव्वसंखा-जस्स णं "संखा" ति पदं सिक्खितं ठियं जियं मियं परिजियं जाव कंठोट्ठ विप्पमुक्कं गुरुवायणोवगयं,

उ. आगमद्रव्यशंखा–जिसने शंख यह पद सीख लिया, हृदय में स्थिर किया, जित किया–तत्काल स्मरण हो जाए ऐसा याद किया, मित किया–मनन किया, अधिकृत किया यावत् निर्दोष स्पष्ट स्वर से शुद्ध उच्चारण किया तथा गुरु से वाचना ली।

से णं तत्थ वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए धम्मकहाए, नो अणुप्पेहाए,

जिसने वाचना, पृच्छना, परावर्तना एवं धर्मकथा भी की है परन्तु अर्थ का अनुचिन्तन करने रूप अनुप्रेक्षा से रहित हो वह आगम से द्रव्यशंखा कहलाती है।

प. कम्हा ?

प्र. कैसे ? (इसका क्या कारण है ?)

उ. अणुवओगो दव्वमिति कट्टु

उ. सिद्धान्त में "अनुपयोगो द्रव्यम्" ऐसा कहा गया है अर्थात् उपयोग से शून्य हो वह द्रव्य कहा जाता है। (वह भाव नहीं कहा जाता है।)

१. णेगमस्स एक्को अणुवउत्तो आगमओ एका दव्वसंखा,
दो अणुवउत्ता आगमओ दो दव्वसंखाओ,
तिण्णि अणुवउत्ता आगमओ तिण्णि दव्वसंखाओ,
एवं जावइया अणुवउत्ता तावइयाओ णेगमस्स आगमओ दव्वसंखाओ।

१. **नैगमनय** की अपेक्षा एक उपयोगरहित आत्मा एक आगमद्रव्यशंखा है,
दो उपयोग रहित आत्मा दो आगमद्रव्यशंखा है,
तीन उपयोग रहित आत्मा तीन आगमद्रव्य शंखा है,
इस प्रकार जितनी उपयोग रहित आत्माएं हैं उतने ही (नैगमनय की अपेक्षा आगम) द्रव्य शंखा है।

२. एवामेव ववहारस्स वि।

२. **नैगमनय के समान ही व्यवहारनय आगमद्रव्यशंखा है।**

३. **संगहस्स** एको वा अणेगा वा अणुवउत्तो वा अणुवउत्ता वा आगमओ दव्वसंखा वा दव्वसंखाओ वा सा एगा दव्वसंखा।

३. संग्रहनय एक उपयोग रहित आत्मा (आगम से) एक द्रव्यशंखा है और अनेक उपयोग रहित आत्माएं अनेक आगमद्रव्यशंखा है, ऐसा स्वीकार नहीं करता किन्तु सभी को एक ही आगमद्रव्यशंखा मानता है।

४. उज्जुसुयस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एका दव्वसंखा, पुहत्तं णेच्छइ।

४. ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा एक अनुपयुक्त आत्मा एक आगमद्रव्यशंखा है। वह भेद को स्वीकार नहीं करता है।

५. **तिण्हं सद्दणयाणं** जाणए अणुवउत्ते अवत्थू,

५. तीनों शब्द नय आदि अनुपयुक्त ज्ञायक को असत् मानते हैं।

प. कम्हा ?

प्र. इसका क्या कारण है ?

उ. जति जाणए अणुवउत्ते ण भवइ।

से तं आगमओ दव्वसंखा।

उ. यदि ज्ञायक है तो उपयोग रहित नहीं होता है और यदि उपयोग रहित है तो वह ज्ञायक नहीं होता है।

यह आगमद्रव्यशंखा है।

प. (ख) से किं तं नो आगमओ दव्वसंखा ?

प्र. (ख) नो आगमद्रव्यशंखा क्या है ?

उ. नो आगमओ दव्वसंखा–तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जाणयसरीरदव्वसंखा, २. भवियसरीरदव्वसंखा,
३. जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वसंखा।

उ. नो आगमद्रव्यशंखा के तीन भेद कहे गए हैं, यथा–
१. ज्ञायकशरीरद्रव्यशंखा, २. भव्यशरीरद्रव्यशंखा,
३. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यशंखा।

प. (१) से किं तं जाणयसरीरदव्वसंखा ?

प्र. (१) ज्ञायकशरीरद्रव्यशंखा क्या है ?

उ. जाणयसरीरदव्वसंखा–"संखा" त्ति पयत्थाहिकार जाणयस्स जं सरीरयं ववगय-चुय-चइत-चत्तदेहं जीवविप्पजढं जाव कोई वएज्जा अहो ! णं इमेणं सरीरसमुस्सएणं "संखा" त्ति पयं आघवियं जाव उवदंसियं,

उ. 'शंखा' इस पद के अर्थाधिकार से ज्ञाता का वह शरीर, जो व्यपगत अर्थात् चैतन्य से रहित च्युत-च्यवित-त्यक्त जीवरहित है उसे देखकर यावत् कोई कहे कि–"अहो ! इस शरीर रूप पुद्गलसंघात ने शंख पद को ग्रहण किया था, पढ़ा था यावत् उपदर्शित किया था, नय और युक्तियों द्वारा शिष्यों को समझाया था, उसका वह शरीर ज्ञायक शरीरद्रव्यशंखा है।"

प. अत्थि कोई दिट्ठंते ?

प्र. इसका कोई दृष्टान्त है ?

उ. अयं घयकुंभे आसि।
से तं जाणयसरीरदव्वसंखा।

प. (२) से किं तं भवियसरीरदव्वसंखा?

उ. भवियसरीरदव्वसंखा–जे जीवे जोणीजम्मणनिक्खंते इमेणं चेव आत्तएणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं 'संखा' ति पयं सेयकाले सिक्खिस्सइ,

प. जहा को दिट्ठंतो?

उ. अयं घयकुंभे भविस्सइ।
से तं भवियसरीरदव्वसंखा।

प. (३) से किं तं जाणयसरीरभवियसरीर वइरित्ता दव्वसंखा?

उ. जाणयसरीरभवियसरीर वइरित्ता दव्वासंखा–तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. एगभविए, २. बद्धाउए, ३. अभिमुहणामगोत्ते य।

प. एगभविए णं भंते! एगभविए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

प. बद्धाउए णं भंते! बद्धाउए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं पुव्वकोडीतिभागं।

प. अभिमुहणामगोत्ते णं भंते! अभिमुहणामगोत्ते त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं,
उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

प. इयाणिं को णओ कं संखं इच्छइ?

उ. तत्थ णेगम-संगह-ववहारा तिविहं संखं इच्छइ, तं जहा–
१. एक्कभवियं, २. बद्धाउयं, ३. अभिमुहणामगोत्तं च।
उज्जुसुओ दुविहं संखं इच्छइ, तं जहा–
१. बद्धाउयं च, २. अभिमुहणामगोत्तं च।
तिण्णि सद्दणया अभिमुहणामगोत्तं संखं इच्छंति।

से तं जाणयसरीरभवियसरीर वइरित्ता दव्वसंखा।
से तं नो आगमओ दव्वसंखा, से तं दव्वसंखा।

प. (४) से किं तं ओवमसंखा?

उ. ओवमसंखा–चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अत्थि संतयं संतएणं उवमिज्जइ,
२. अत्थि संतयं असंतएणं उवमिज्जइ,
३. अत्थि असंतयं संतएणं उवमिज्जइ,
४. अत्थि असंतयं असंतएणं उवमिज्जइ।

उ. यह घृतकुम्भ–घी का घड़ा था।
यह ज्ञायकशरीरद्रव्यशंखा है।

प्र. (२) भव्यशरीरद्रव्यशंखा क्या है?

उ. जन्म समय प्राप्त होने पर जो जीव योनि से बाहर निकला है और वह भविष्य में उसी शरीर द्वारा जिनोपदिष्ट भावानुसार "शंख" पद को सीखेगा ऐसे उस जीव का वह शरीर भव्यशरीरद्रव्यशंखा है।

प्र. इसका कोई दृष्टान्त है?

उ. यह घृतकुम्भ-घी का घड़ा होगा।
यह भव्यशरीरद्रव्यशंखा है।

प्र. (३) ज्ञायकशरीरभव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यशंखा क्या है?

उ. ज्ञायकशरीरभव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यशंखा तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. एकभविक, २. बद्धायुष्क, ३. अभिमुखनामगोत्र।

प्र. भन्ते! एकभविक शंख "एकभविक" रूप में कितने समय तक रहता है?

उ. गौतम! एकभविक शंख जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट एक पूर्व कोटि पर्यन्त रहता है।

प्र. भन्ते! बद्धायुष्क जीव बद्धायुष्क रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट एक पूर्वकोटि वर्ष के तीसरे भाग तक रहता है।

प्र. भन्ते! अभिमुखनामगोत्र वाला शंख अभिमुखनामगोत्र रूप में कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रहता है।

प्र. कौन-सा नय (इन तीन शंखों में से) किस शंख को मानता है?

उ. नैगमनय, संग्रहनय और व्यवहारनय इन उक्त तीनों प्रकार के शंखों को शंख मानते हैं, यथा–
१. एक भविक, २. बद्धायुष्क, ३. अभिमुखनामगोत्र।
ऋजुसूत्रनय ये दो प्रकार के शंख स्वीकार करता है, यथा–
१. बद्धायुष्क, २. अभिमुखनाम गोत्र
तीनों शब्दनय मात्र अभिमुखनामगोत्र शंख को ही शंख मानते हैं।

यह ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यशंखा है।
यह नो आगमद्रव्यशंखा है। यह द्रव्यसंखा है।

प्र. (४) औपम्यशंखा क्या है?

उ. औपम्यशंखा चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सद्वस्तु को सद् वस्तु की उपमा देना,
२. सद्वस्तु को असद् वस्तु की उपमा देना,
३. असद्वस्तु को सद् वस्तु की उपमा देना,
४. असद्वस्तु को असद् वस्तु की उपमा देना।

१. तत्थ संतयं संतएणं उवमिज्जइ जहा—संता अरहंता संतएहिं पुरवरेहिं संतएहिं कवाडएहिं संतएहिं वच्छएहिं उवमिज्जंति, तं जहा—

पुरवरकवाडवच्छा फलिहभुया दुंदभित्थणियघोसा।
सिरिवच्छंकियवच्छा सव्वे वि जिणा चउव्वीसं ॥११९॥

२. संतयं असंतएणं उवमिज्जइ जहा—संताइं नेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणूस-देवाणं आउयाइं असंतएहिं पलिओवम-सागरोवमेहिं उवमिज्जंति।

३. असंतयं संतएणं उवमिज्जइ जहा—
परिजूरियपेरंतं चलंतबेंटं पडंत निच्छीरं।
पत्तं वसणप्पत्तं कालप्पत्तं भणइ गाहं ॥१२०॥

जह तुब्भे तह अम्हे, तुम्हे वि य होहिया जहा अम्हे।
अप्पाहेइ पडंतं पंडुयपत्तं किसलयाणं ॥१२१॥

णवि अत्थि णवि य होही, उल्लावो किसल-पंडुपत्ताणं।
उवमा खलु एस कया भवियजण विबोहणट्ठाए ॥१२२॥

४. असंतयं असंतएण उवमिज्जइ-जहा खरविसाणं तहा ससविसाणं।

से तं ओवम्मसंखा[1] —अणु. सु. ४७७-४९२

प. (६) से किं तं जाणणासंखा?

उ. जाणणासंखा—जो जं जाणइ, तं जहा—

सद्दं सद्दिओ, गणियं गणिओ, निमित्तं नेमित्तिओ, कालं कालनाणी, वेज्जो वेज्जियं।

से तं जाणणासंखा।[2] —अणु. सु. ४९६

प. (८) से किं तं भावसंखा?

उ. भावसंखा-जे इमे जीवा संखगइनाम गोत्ताइं कम्माइं वेदेंति।

से तं भावसंखा, से तं संखप्पमाणे, से तं भावप्पमाणे, से तं पमाणे। —अणु. सु. ५२०

१. इनमें से जो सद् वस्तु को सद् वस्तु से उपमित किया जाता है, वह इस प्रकार है—सद्रूप अरिहन्त भगवन्तों के प्रशस्त वक्षस्थल को सद्रूप श्रेष्ठ नगरों के सत् कपाटों की उपमा देना, जैसे—

सभी चौबीस तीर्थकर (उत्तम) नगर के कपाटों के समान वक्षस्थल, अर्गला के समान भुजाओं, देवदुन्दुभि या मेघ गर्जना के समान स्वर और श्रीवत्स से अंकित वक्षस्थल वाले होते हैं।

२. विद्यमान पदार्थ को अविद्यमान पदार्थ से उपमित करना। जैसे नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवों की विद्यमान आयु के प्रमाण को अविद्यमान पल्योपम और सागरोपम द्वारा बतलाना।

३. असद्वस्तु को सद्वस्तु से उपमित करना। जैसे—सर्व प्रकार से जीर्ण, डंठल से टूटे, वृक्ष से नीचे गिरे हुए, निस्सार और दुःखी ऐसे किसी गिरते हुए पुराने-जीर्ण पीले पत्ते ने वसंत समय प्राप्त नवोद्गत किसलयों-(कोंपलों) से इस प्रकार कहा—

इस समय जैसे तुम हो, हम भी पहले वैसे ही थे तथा इस समय जैसे हम हो रहे हैं, वैसे ही आगे चलकर तुम भी हो जाओगे।

यहाँ जो जीर्ण पत्तों और किसलयों के वार्तालाप का उल्लेख किया गया है, वह न तो कभी हुआ, न होता है और न होगा, किन्तु भव्य जनों के प्रतिबोध के लिए उपमा दी गई है।

४. अविद्यमान पदार्थ को अविद्यमान पदार्थ से उपमित करना। जैसे—खर विषाण है वैसे ही शश विषाण है और जैसे शशविषाण है वैसे ही खर विषाण है।

यह औपम्यशंखा है।

प्र. (६) ज्ञानसंख्या क्या है?

उ. संख्या ज्ञाता-जो संख्या को जानता है उसे संख्या ज्ञाता कहते हैं, यथा—

शब्द को जानने वाला शाब्दिक, गणित को जानने वाला गणितज्ञ, निमित्त को जानने वाला नैमित्तिक, काल को जानने वाला कालज्ञानी और वैद्यक को जानने वाला वैद्य।

यह ज्ञानसंख्या का स्वरूप है।

प. (८) भन्ते! भावसंख्या क्या है?

उ. इस लोक में जो जीव संख गति नाम गोत्र कर्मों का वेदन कर रहे हैं वे भाव संखा हैं।

यह भाव संखा है, यह संखप्रमाण है, यह भाव प्रमाण का वर्णन है, यह प्रमाण का वर्णन हुआ।

१५६. [illegible]—

प. [illegible]?

उ. [illegible]—

१. [illegible], २. [illegible],

३. [illegible]।

१५६. वक्तव्यता का स्वरूप—

प्र. वक्तव्यता क्या है?

उ. वक्तव्यता (कथन) तीन प्रकार की कही गई है, यथा—

१. स्वसमयवक्तव्यता, २. परसमयवक्तव्यता,

३. स्वसमय-परसमयवक्तव्यता।

१. [illegible]

२. [illegible]

प. (१) से किं तं ससमयवत्तव्वया?

उ. जत्थ णं ससमए आघविज्जइ पण्णविज्जइ परूविज्जइ दंसिज्जइ निदंसिज्जइ उवदंसिज्जइ।

से तं ससमयवत्तव्वया।

प. (२) से किं तं परसमयवत्तव्वया?

उ. जत्थ णं परसमए आघविज्जइ **जाव** उवदंसिज्जइ।

से तं परसमयवत्तव्वया।

प. (३) से किं तं ससमयपरसमयवत्तव्वया?

उ. जत्थ णं ससमए परसमए आघविज्जइ **जाव** उवदंसिज्जइ।

से तं ससमयपरसमयवत्तव्वया। *–अणु. सु. ५२१-५२४*

प्र. (१) स्वसमयवक्तव्यता क्या है?

उ. अविरोधी रूप से स्वसिद्धान्त का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन करने को स्वसमयवक्तव्यता कहते हैं।

यह स्वसमयवक्तव्यता है।

प्र. (२) परसमयवक्तव्यता क्या है?

उ. जिस वक्तव्यता में अन्य मत के सिद्धान्त का कथन **यावत्** उपदर्शन किया जाता है, उसे परसमयवक्तव्यता कहते हैं।

यह परसमयवक्तव्यता है।

प्र. (३) स्वसमय-परसमयवक्तव्यता क्या है?

उ. जिस वक्तव्यता में स्वसिद्धान्त और परसिद्धान्त दोनों का कथन **यावत्** उपदर्शन किया जाता है, उसे स्वसमय-परसमयवक्तव्यता कहते हैं।

यह स्वसमय-परसमयवक्तव्यता है।

१७७. वत्तव्वयाए नय परूवणा–

प. इयाणिं को णओ कं वत्तव्वयमिच्छइ?

उ. तत्थ **णेगम संगह ववहारा** तिविहं वत्तव्वयं इच्छंति, तं जहा–

१. ससमयवत्तव्वयं, २. परसमयवत्तव्वयं,

३. ससमयपरसमयवत्तव्वयं।

२. **उज्जुसुओ** दुविहं वत्तव्वयं इच्छइ, तं जहा–

१. ससमयवत्तव्वयं, २. परसमयवत्तव्वयं।

तत्थ णं जा सा ससमयवत्तव्वया सा ससमयं पविट्ठा,

जा सा परसमयवत्तव्वया सा परसमयं पविट्ठा,

तम्हा दुविहा वत्तव्वया, णत्थि तिविहा वत्तव्वया।

३. **तिण्णि सद्दणया** एगं ससमयवत्तव्वयं इच्छंति, णत्थि परसमयवत्तव्वया।

प. कम्हा?

उ. जम्हा परसमए अणट्ठे अहेऊ असब्भावे अकिरिया उम्मग्गे अणुवएसे मिच्छादंसणमिति कट्टु,

तम्हा सव्वा ससमयवत्तव्वया,

णत्थि परसमयवत्तव्वया,

णत्थि ससमयपरसमयवत्तव्वया।

से तं वत्तव्वया। *–अणु. सु. ५२५*

१७७. वक्तव्यता में नय का प्ररूपण–

प्र. कौन-सा नय किस वक्तव्यता को स्वीकार करता है?

उ. **नैगम, संग्रह और व्यवहार** नय तीनों प्रकार की वक्तव्यता को स्वीकार करते हैं, यथा–

१. स्वसमयवक्तव्यता, २. परसमयवक्तव्यता,

३. स्वसमय-परसमयवक्तव्यता।

२. **ऋजुसूत्रनय** स्वसमय और परसमय-इन दो प्रकार की वक्तव्यताओं को ही मान्य करते है, यथा–

१. स्वसमयवक्तव्यता, २. परसमयवक्तव्यता।

क्योंकि इस नय की अपेक्षा से तीसरी मिश्र वक्तव्यता स्वसमय-वक्तव्यता प्रथम भेद (स्वसमयवक्तव्यता) में,

और परसमय की वक्तव्यता द्वितीय भेद (परसमयवक्तव्यता) में अन्तर्भूत हो जाती है।

इसलिए वक्तव्यता के दो ही प्रकार हैं, किन्तु त्रिविध वक्तव्यता नहीं है।

३. **तीनों शब्दनय** एक स्वसमयवक्तव्यता को ही मान्य करते हैं। उनके मतानुसार परसमयवक्तव्यता नहीं है।

प्र. कैसे?

उ. क्योंकि परसमय अनर्थ, अहेतु, असद्भाव, अक्रिय, उन्मार्ग, अनुपदेश और मिथ्यादर्शन रूप है।

इसलिए सभी वक्तव्यता स्वसमय की ही है।

किन्तु परसमयवक्तव्यता नहीं है और

न ही स्वसमय-परसमयवक्तव्यता है।

यह वक्तव्यता का वर्णन है।

१७८. अत्थाहिगार सरूवं

प. से किं तं अत्थाहिगारे?

उ. अत्थाहिगारे जो जस्स अज्झयणस्स अत्थाहिगारे, तं जहा–

१७८. अर्थाधिकार का स्वरूप–

प्र. अर्थाधिकार क्या है अर्थात् सामायिक आदि छः अध्ययनों का क्या अर्थ है?

उ. जिस अध्ययन का जो अर्थ (वर्णित विषय) है उसका कथन अर्थाधिकार कहलाता है, यथा–

१. सावज्जजोगविरती, २. उक्कित्तण, ३. गुणवओ य पडिवत्ती।

४. खलियस्स निंदणा, ५. वणतिगिच्छ, ६. गुणधारणा चेव ॥१२३॥

से तं अत्थाहिगारे। –अणु. सु. ५२६

१. प्रथम अध्ययन का अर्थ सावद्ययोगविरति अर्थात् सावद्य व्यापार का त्याग, २. दूसरे अध्ययन का अर्थ उत्कीर्तन- स्तुति करना, है। ३. तृतीय अध्ययन का अर्थ गुणवान् पुरुषों का सम्मान, वन्दना, नमस्कार करना,

४. चतुर्थ अध्ययन का अर्थ है आचार में हुई स्खलनाओं दोषों आदि की निन्दा करना, ५. पांचवें अध्ययन का अर्थ व्रणचिकित्सा करना, ६. छठे अध्ययन (प्रत्याख्यान) का अर्थ है गुण धारण करना।

यह अर्थाधिकार है।

१७९. समोयारस्स भेयप्पभेया–

प. से किं तं समोयारे?

उ. समोयारे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. णामसमोयारे, २. ठवणसमोयारे, ३. दव्वसमोयारे, ४. खेत्तसमोयारे, ५. कालसमोयारे, ६. भावसमोयारे।

प. (१-२). से किं तं णामसमोयारे?

उ. नाम-ठवणाओ पुव्ववण्णियाओ।

प. (३). से किं तं दव्वसमोयारे?

उ. दव्वसमोयारे–दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आगमओ य, २. णो आगमओ य।

एवं जाव से तं भवियसरीरदव्व-समोयारे।

प. से किं तं जाणयसरीरभवियसरीर वइरित्ते दव्वसमोयारे?

उ. जाणय सरीर भवियसरीर वइरित्ते दव्वसमोयारे–तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आयसमोयारे, २. परसमोयारे, ३. तदुभयसमोयारे।

सव्वदव्वा वि य णं आयसमोयारेणं आयभावे समोयरंति।

परसमोयारेणं जहा कुंडे बदराणि,

तदुभयसमोयारेणं जहा घरे थंभो आयभावे य, जहा घडे गीवा आयभावे य।

२. अहवा जाणयसरीरभवियसरीर वइरित्ते दव्वसमोयारे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आयसमोयारे य, २. तदुभयसमोयारे य।

चउसट्ठिया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ,

तदुभयसमोयारेणं बत्तीसियाए समोयरइ आयभावे य।

बत्तीसिया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ,

तदुभयसमोयारेणं सोलसियाए समोयरइ आयभावे य।

सोलसिया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ,

१७९. समवतार के भेद-प्रभेद–

प्र. समवतार क्या है?

उ. समवतार छह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. नामसमवतार, २. स्थापनासमवतार, ३. द्रव्यसमवतार, ४. क्षेत्रसमवतार, ५. कालसमवतार, ६. भावसमवतार।

प्र. (१-२). नामसमवतार क्या है?

उ. नाम और स्थापना का वर्णन पूर्ववत् यहां भी जानना चाहिए।

प्र. (३). द्रव्यसमवतार क्या है?

उ. द्रव्यसमवतार दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आगमद्रव्यसमवतार, २. नो आगमद्रव्यसमवतार।

इस प्रकार यावत् भव्य शरीर नो आगमद्रव्यसमवतार का स्वरूप (द्रव्यावश्यक के प्रकरण में कथित भेदों के समान) जानना चाहिए।

प्र. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर व्यतिरिक्तद्रव्यसमवतार क्या है?

उ. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर व्यतिरिक्तद्रव्यसमवतार तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. आत्मसमवतार, २. परसमवतार, ३. तदुभयसमवतार।

आत्मसमवतार की अपेक्षा सभी द्रव्य आत्मभाव–(अपने स्वरूप) में ही रहते हैं,

परसमवतार की अपेक्षा कुंडे में बेर की तरह परभाव में रहते हैं,

तदुभयसमवतार की अपेक्षा घर में स्तम्भ अथवा घट में ग्रीवा के समान परभाव तथा आत्मभाव-दोनों में रहते हैं।

२. अथवा ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यसमवतार दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. आत्मसमवतार, २. तदुभयसमवतार।

जैसे आत्मसमवतार से चतुष्षष्टिका आत्मभाव में रहती है। तदुभयसमवतार की अपेक्षा द्वात्रिंशिका में भी और अपने निजरूप में भी रहती है।

द्वात्रिंशिका आत्मसमवतार की अपेक्षा आत्मभाव में रहती है।

तदुभयसमवतार की अपेक्षा षोडशिका में भी रहती है और आत्मभाव में भी रहती है।

षोडशिका आत्मसमवतार से आत्मभाव में समवतीर्ण है,

तदुभयसमोयारेणं अट्ठभाइयाए समोयरइ आयभावे य।

तदुभयसमवतार की अपेक्षा अष्टभागिकी में तथा अपने निजरूप में भी रहती है।

अट्ठभाइया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ,

अष्टभागिका आत्मसमवतार की अपेक्षा आत्मभाव में रहती है,

तदुभयसमोयारेणं चउभाइयाए समोयरइ आयभावे य।

तदुभयसमवतार की अपेक्षा चतुर्भागिका में भी समवतरित होती है और अपने निजरूप में भी समवतरित होती है।

चाउभाइया आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ,
तदुभयसमोयारेणं अद्धमाणीए समोयरइ आयभावे य।

आत्मसमवतार की अपेक्षा चतुर्भागिका आत्म-भाव में और तदुभयसमवतार से अर्धमानिका में समवतीर्ण होती है एवं आत्मभाव में भी होती है

अद्धमाणी आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ,
तदुभयसमोयारेणं माणीए समोयरइ आयभावे य।

आत्मसमवतार से अर्धमानिका आत्मभाव में एवं तदुभयसमवतार की अपेक्षा मानिका में तथा आत्मभाव में भी समवतीर्ण होती है।

से तं जाणयसरीरभवियसरीर वइरित्ते दव्वसमोयारे।
से तं नो आगमओ दव्वसमोयारे। से तं दव्वसमोयारे।

यह ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यसमवतार है।
यह नो आगमद्रव्यसमवतार है। यह द्रव्यसमवतार है।

प. (४). से किं तं खेत्तसमोयारे?

उ. खेत्तसमोयारे–दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. आयसमोयारे य, २. तदुभयसमोयारे य।
भरहेवासे आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ,
तदुभयसमोयारेणं जंबुद्दीवे समोयरइ आयभावे य।

जंबुद्दीवे दीवे आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ,
तदुभयसमोयारेणं तिरियलोए समोयरइ आयभावे य।

तिरियलोए आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ,

तदुभयसमोयारेणं लोए समोयरइ आयभावे य।

लोए आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ,
तदुभयसमोयारेणं अलोए समोयरइ आयभावे य।

से तं खेत्तसमोयारे।[1] *–अणु. सु. ५२७-५३१*

प्र. (४). क्षेत्रसमवतार क्या है?

उ. क्षेत्रसमवतार दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. आत्मसमवतार, २. तदुभयसमवतार।
आत्मसमवतार की अपेक्षा भरतक्षेत्र आत्मभाव में रहता है,
तदुभयसमवतार की अपेक्षा जम्बूद्वीप में भी रहता है और आत्मभाव में भी रहता है।
आत्मसमवतार की अपेक्षा जम्बूद्वीप आत्मभाव में रहता है,
तदुभयसमवतार की अपेक्षा तिर्यक्लोक में भी समवतरित होता है और आत्मभाव में भी समवतरित होता है।
आत्मसमवतार से तिर्यक्लोक आत्मभाव में समवतीर्ण होता है,
तदुभयसमवतार की अपेक्षा लोक में भी समवतरित होता है और आत्मभाव निजरूप में भी समवतरित होता है।
आत्मसमवतार से लोक आत्मभाव में समवतीर्ण होता है,
तदुभयसमवतार की अपेक्षा अलोक में भी समवतरित होता है और आत्मभाव निजरूप में भी समवतरित होता है।
यह क्षेत्र समवतार है।

प. (६). से किं तं भावसमोयारे?

उ. भावसमोयारे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. आयसमोयारे य, २. तदुभयसमोयारे य।
कोहे आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ,
तदुभयसमोयारेणं **माणे** समोयरइ आयभावे य।

एवं माणे माया लोभे रागे मोहणिज्जे अट्ठकम्म-पगडीओ आयसमोयारेणं आयभावे समोयरंति।
तदुभयसमोयारेणं छव्विहे भावे समोयरंति आयभावे य।
एवं जीवे जीवत्थिकाए आयसमोयारेणं आयभावे समोयरइ,

प्र. (६). भावसमवतार क्या है?

उ. भावसमवतार दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. आत्मसमवतार, २. तदुभयसमवतार।
आत्मसमवतार की अपेक्षा क्रोध आत्मभाव में रहता है और
तदुभयसमवतार से मान में और आत्मभाव में भी समवतीर्ण होता है।
इसी प्रकार मान, माया, लोभ, राग, मोहनीय और अष्टकर्म प्रकृतियां आत्मसमवतार से आत्मभाव में तथा
तदुभयसमवतार से छह प्रकार के भावों में और आत्मभाव में भी रहती है।
इसी प्रकार जीव और जीवास्तिकाय आत्मसमवतार की अपेक्षा निजस्वरूप में रहते हैं,

---

१. ५-काल समवतार (सु. ५३२) गणि. ६९१ पृ. पर देखें।

तदुभयसमोयारेणं सव्वदव्वेसु समोयरइ आयभावे य।

एत्थ संगहणि गाहा-

कोहे माणे माया लोभे रागे य मोहणिज्जे य।

पगडी भावे जीवे जीवत्थि य सव्वदव्वा य॥१२४॥

से तं भावसमोयारे। से तं समोयारे। से तं उवक्कमे।

—अणु. सु. ५३३

१८०. निक्खेव अणुओगदारस्स भेयप्पभेया-

प. से किं तं निक्खेवे?

उ. निक्खेवे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. ओहनिप्फण्णे य,

२. नामनिप्फण्णे य,

३. सुत्तालावगनिप्फण्णे य। —अणु. सु. ५३४

१८१. (१) ओहनिप्फण्णनिक्खेवो-

प. से किं तं ओहणिप्फण्णे?

उ. ओहणिप्फण्णे-चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. अज्झयणे, २. अज्झीणे,

३. आए ४. झवणा।

—अणु. सु. ५३५

१८२. अज्झयण-निक्खेवो-

प. (१) से किं तं अज्झयणे?

उ. अज्झयणे-चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. णामज्झयणे, २. ठवणज्झयणे,

३. दव्वज्झयणे, ४. भावज्झयणे।

णाम-ठवणाओ पुव्ववण्णियाओ।

प. से किं तं दव्वज्झयणे?

उ. दव्वज्झयणे-दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. आगमओ य, २. णो आगमओ य।

प. से किं तं आगमओ दव्वज्झयणे?

उ. आगमओ-दव्वज्झयणे जस्स णं 'अज्झयणे' त्ति पदं सिक्खितं ठितं जितं मितं परिजितं जाव जावइया अणुवउत्ता आगमओ तावइयाइं दव्वज्झयणाइं।

एवमेव ववहारस्स वि।

संगहस्स णं एगो वा, अणेगो वा, तं चेव भाणियव्वं।

से तं आगमओ दव्वज्झयणे।

प. से किं तं णो आगमओ दव्वज्झयणे?

उ. णो आगमओ दव्वज्झयणे-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. जाणगसरीरदव्वज्झयणे,

२. भवियसरीरदव्वज्झयणे,

३. जाणगसरीरभवियसरीरवतिरित्ते दव्वज्झयणे।

प. से किं तं जाणगसरीरदव्वज्झयणे?

तदुभयसमवतार की अपेक्षा सभी द्रव्यों में और आत्मभाव में भी रहते हैं।

इनकी संग्रहणी गाथा इस प्रकार है-

क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, मोहनीयकर्म, प्रकृतिभाव, जीव, जीवास्तिकाय और सर्वद्रव्य रहते हैं।

यह भावसमवतार है। यह समवतार है। यह उपक्रम प्रथम द्वार है।

१८०. निक्षेप अनुयोग द्वार के भेद-प्रभेद-

प्र. निक्षेप क्या है?

उ. निक्षेप तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. ओघनिष्पन्न,

२. नामनिष्पन्न,

३. सूत्रालापकनिष्पन्न।

१८१. (१) ओघनिष्पन्न निक्षेप-

प्र. ओघनिष्पन्ननिक्षेप क्या है?

उ. ओघनिष्पन्ननिक्षेप चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. अध्ययन, २. अक्षीण,

३. आय, ४. क्षपणा।

१८२. "अध्ययन" का निक्षेप-

प्र. (१) अध्ययन क्या है?

उ. अध्ययन चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. नाम-अध्ययन, २. स्थापना-अध्ययन,

३. द्रव्य-अध्ययन, ४. भाव-अध्ययन।

नाम और स्थापना अध्ययन का स्वरूप पूर्ववर्णित जैसा ही जानना चाहिए।

प्र. द्रव्य-अध्ययन क्या है?

उ. द्रव्य-अध्ययन दो प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. आगम से, २. नो आगम से।

प्र. आगम से द्रव्य-अध्ययन क्या है?

उ. जिसने 'अध्ययन' इस पद को सीख लिया है, अपने में स्थिर कर लिया है, जित, मित और परिजित कर लिया है यावत् जितने भी उपयोग से शून्य है, वे आगम से द्रव्य-अध्ययन है।

इसी प्रकार व्यवहार का भी मत है,

संग्रहनय के मत से एक या अनेक आत्माएँ एक आगमद्रव्य-अध्ययन है, इत्यादि समग्र वर्णन आगमद्रव्य- आवश्यक जैसा जानना चाहिए।

यह आगमद्रव्य-अध्ययन है।

प्र. नो आगमद्रव्य-अध्ययन क्या है?

उ. नो आगमद्रव्य-अध्ययन तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. ज्ञायकशरीरद्रव्य-अध्ययन,

२. भव्यशरीरद्रव्य-अध्ययन,

३. ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-अध्ययन।

प्र. ज्ञायकशरीरद्रव्य-अध्ययन क्या है?

उ. जाणयसरीरदव्वज्झयणे–अज्झयणपयत्थाहिगार जाणयस्स–जं सरीरयं ववगय-चुत-चइय-चत्तदेहं जाव अहो! णं इमेणं सरीर–समुस्सएणं 'अज्झयणे'त्ति पदं आघवियं जाव उवदंसियं ति।

प. जहा को दिट्ठंतो?

उ. अयं घयकुंभे आसी, अयं महुकुंभे आसी।

से तं जाणयसरीरदव्वज्झयणे।

प. से किं तं भवियसरीरदव्वज्झयणे?

उ. भवियसरीरदव्वज्झयणे–जे जीवे जोणीयजम्मण-निक्खंते इमेणं चेव आंदत्तएणं सरीरसमुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं अज्झयणे त्ति पयं सेयकाले सिक्खिस्सइ ण ताव सिक्खइ।

प. जहा को दिट्ठंतो?

उ. अयं घयकुंभे भविस्सइ, अयं महुकुंभे भविस्सइ।

से तं भवियसरीरदव्वज्झयणे।

प. से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे?

उ. जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे पत्तय-पोत्थयलिहियं।

से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झयणे।

से तं णो आगमओ दव्वज्झयणे। से तं दव्वज्झयणे।

प. से किं तं भावज्झयणे?

उ. भावज्झयणे–दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आगमओ य, २. णो आगमओ य।

प. से किं तं आगमओ भावज्झयणे?

उ. जाणए उवउत्ते।

से तं आगमओ भावज्झयणे।

प. से किं तं नो आगमओ भावज्झयणे?

उ. नो आगमओ भावज्झयणे–

अज्झप्पस्सा णयणं, कम्माणं अवचओ उवचियाणं।
अणुवचओ य नवाणं. तम्हा अज्झयणमिच्छंति ॥१२५॥

से तं णो आगमओ भावज्झयणे। से तं भावज्झयणे।

से तं अज्झयणे। *–अणु. सु. ५३६-५४६*

उ. अध्ययन पद के अर्थाधिकार के ज्ञाता का व्यपगतचैतन्य, च्युत, च्यवित त्यक्तदेह को **यावत्** देखकर कोई कहे कि अहो! इस शरीर रूप पुद्‌गलसंघात से "अध्ययन" इस पद का कथन किया था **यावत्** उपदर्शित किया था वह शरीर ज्ञायकशरीरद्रव्य-अध्ययन है।

प्र. इस विषय का कोई दृष्टान्त है?

उ. (जैसे घड़े में से घी या मधु के निकाल लिए जाने के बाद भी) यह घी का घड़ा था, यह मधुकुम्भ था ऐसा कहा जाता है।

यह ज्ञायकशरीरद्रव्य-अध्ययन है।

प्र. भव्यशरीरद्रव्य-अध्ययन क्या है?

उ. जन्मकाल प्राप्त होने पर जो जीव योनिस्थान से बाहर निकला है। उसी प्राप्त शरीर के द्वारा जिनोपदिष्ट भावानुसार "अध्ययन" इस पद को सीखेगा, लेकिन अभी वर्तमान में नहीं सीख रहा है।

प्र. इसका कोई दृष्टान्त है?

उ. (जैसे किसी घड़े में अभी मधु या घी नहीं भरा गया है, तो भी उसको) यह घृतकुम्भ होगा, यह मधुकुम्भ होगा ऐसा कहना।

यह भव्यशरीरद्रव्याध्ययन है।

प्र. ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त-द्रव्याध्ययन क्या है?

उ. पत्र या पुस्तक में लिखे हुए अध्ययन को ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त-द्रव्याध्ययन कहते हैं।

यह ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्याध्ययन है।

यह नो आगमद्रव्याध्ययन है। यह द्रव्याध्ययन है।

प्र. भाव-अध्ययन क्या है?

उ. भाव-अध्ययन दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आगमभाव-अध्ययन २. नो आगमभाव-अध्ययन।

प्र. आगमभाव-अध्ययन क्या है?

उ. जो अध्ययन के अर्थ का ज्ञाता होने के साथ उसमें उपयोगयुक्त भी हो,

यह आगमभाव-अध्ययन है।

प्र. नो आगमभावअध्ययन क्या है?

उ. नो आगमभाव-अध्ययन इस प्रकार है–

सामायिक आदि अध्ययन में चित्त को लगाने, उपार्जित कर्मों का क्षय करने और नवीन कर्मों का बंध नहीं होने देने का कारण होने से अध्ययन कहा जाता है।

यह नो आगमभाव-अध्ययन है। यह भाव-अध्ययन है।

यह अध्ययन है।

१८३. अज्झीण–निक्खेवो–

प. (२) से किं तं अज्झीणे?

उ. अज्झीणे–चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. णामज्झीणे, २. ठवणज्झीणे,
३. दव्वज्झीणे, ४. भावज्झीणे।

णाम-ठवणाओ पुव्ववण्णियाओ।

१९३. "अक्षीण" (अक्षय) का निक्षेप–

प्र. (२) अक्षीण क्या है?

उ. अक्षीण चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. नाम-अक्षीण, २. स्थापना-अक्षीण,
३. द्रव्य-अक्षीण, ४. भाव-अक्षीण।

नाम और स्थापना अक्षीण पूर्ववत् है।

प. से किं तं दव्वज्झीणे?

उ. दव्वज्झीणे-दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. आगमओ य, २. नो आगमओ य।

प. से किं तं आगमओ दव्वज्झीणे?

उ. आगमओ दव्वज्झीणे-जस्स णं अज्झीणे त्ति पदं सिक्खितं ठितं जितं मितं परिजितं तं चेव जहा दव्वज्झयणे तहा भाणियव्वं।
से तं आगमओ दव्वज्झीणे।

प. से किं तं नो आगमओ दव्वज्झीणे?

उ. नो आगमओ दव्वज्झीणे-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. जाणयसरीरदव्वज्झीणे,
२. भवियसरीरदव्वज्झीणे,
३. जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे।

प. से किं तं जाणयसरीरदव्वज्झीणे?

उ. अज्झीणपयत्थाहिकारजाणयस्स जं सरीरयं ववगय-चुत-चइत-चत्तदेहं जहा दव्वज्झयणे तहा भाणियव्वं।
से तं जाणयसरीरदव्वज्झीणे।

प. से किं तं भवियसरीरदव्वज्झीणे?

उ. भवियसरीरदव्वज्झीणे-जे जीवे जोणीजम्मणनिक्खंते एवं जहा दव्वज्झयणे तहा भाणियव्वं।
से तं भवियसरीरदव्वज्झीणे।

प. से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे?

उ. सव्वागाससेढी।
से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वज्झीणे।
से तं नो आगमओ दव्वज्झीणे। से तं दव्वज्झीणे।

प. से किं तं भावज्झीणे?

उ. भावज्झीणे-दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. आगमओ य, २. नो आगमओ य।

प. से किं तं आगमओ भावज्झीणे?

उ. आगमओ भावज्झीणे-जाणए उवउत्ते।
से तं आगमओ भावज्झीणे।

प. से किं तं नो आगमओ भावज्झीणे?

उ. नो आगमओ भावज्झीणे–
जह दीवा दीवसयं पइप्पए, दिप्पए य सो दीवो।
दीवसमा आयरिया दिप्पंति, परं च दीवेंति॥ १२६॥
से तं नो आगमओ भावज्झीणे। से तं भावज्झीणे।
से तं अज्झीणे। – [illegible]

प्र. द्रव्य-अक्षीण क्या है?

उ. द्रव्य-अक्षीण दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. आगम से, २. नो आगम से।

प्र. आगमद्रव्य-अक्षीण क्या है?

उ. आगमद्रव्य-अक्षीण जिसने "अक्षीण" इस पद को सीख लिया है, स्थिर, जित, मित, परिजित किया है इत्यादि जैसा द्रव्य-अध्ययन के प्रसंग में कहा है, वैसा ही यहाँ कहना चाहिए। यह आगम से द्रव्य-अक्षीण है।

प्र. नोआगम से द्रव्य-अक्षीण क्या है अर्थात् कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. नोआगमद्रव्य-अक्षीण तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. ज्ञायकशरीरद्रव्य-अक्षीण,
२. भव्यशरीरद्रव्य-अक्षीण,
३. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्य-अक्षीण।

प्र. ज्ञायकशरीरद्रव्य-अक्षीण क्या है?

उ. अक्षीण पद के अर्थाधिकार के ज्ञाता का व्यपगत, च्युत, च्यवित, त्यक्तदेह आदि का वर्णन जैसा द्रव्य-अध्ययन में कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।
यह ज्ञायकशरीर-द्रव्य-अक्षीण है।

प्र. भव्यशरीरद्रव्य-अक्षीण क्या है?

उ. समय पूर्ण होने पर जो जीव योनि से निकलकर उत्पन्न हुआ आदि का वर्णन जैसा भव्यशरीरद्रव्य-अध्ययन में कहा उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।
यह भव्यशरीरद्रव्य-अक्षीण है।

प्र. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्य-अक्षीण क्या है?

उ. सर्वाकाश-श्रेणि।
यह ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्य-अक्षीण है।
यह नो आगम से द्रव्य-अक्षीण है। यह द्रव्य-अक्षीण है।

प्र. भाव-अक्षीण क्या है?

उ. भाव-अक्षीण दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. आगम से, २. नो आगम से।

प्र. आगमभाव-अक्षीण क्या है?

उ. जो जानता हो और उपयोग से युक्त हो वही आगम की अपेक्षा भाव-अक्षीण है।
यह आगम से भाव-अक्षीण है।

प्र. नो आगमभाव-अक्षीण क्या है?

उ. नो आगमभाव-अक्षीण–
जैसे दीपक दूसरे सैकड़ों दीपकों को प्रज्वलित करके भी स्वयं प्रदीप्त रहता है, उसी प्रकार आचार्य भी दीपक (दीपकों) के समान स्वयं देदीप्यमान होते हैं और दूसरों को भी देदीप्यमान करते हैं।
यह नो आगमभाव-अक्षीण है। यह भाव-अक्षीण है।
यह अक्षीण है।

१८४. आय-णिक्खेवो–

प्र. (३) से किं तं आए?

उ. आए-चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. नामाए २. ठवणाए

३. दव्वाए ४. भावाए।

नाम ठवणाओ पुव्वभणियाओ।

प. से किं तं दव्वाए?

उ. दव्वाए-दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आगमओ य, २. नो आगमओ य।

प. से किं तं आगमओ दव्वाए?

उ. जस्स णं आए त्ति पयं सिक्खितं ठितं जाव अणुवओगो दव्वमिति कट्टु जाव जावइया अणुवउत्ता आगमओ तावइया ते दव्वाया।

से तं आगमओ दव्वाए।

प. से किं तं नो आगमओ दव्वाए?

उ. नो आगमओ दव्वाए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जाणयसरीरदव्वाए,

२. भवियसरीरदव्वाए,

३. जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए।

प. से किं तं जाणयसरीरदव्वाए?

उ. आयपयत्थाहिकारजाणगस्स जं सरीरगं ववगय-चुत-चइय-चतदेहं। **सेसं जहा दव्वज्झयणे।**

से तं जाणयसरीरदव्वाए।

प. से किं तं भवियसरीरदव्वाए?

उ. जे जीवे जोणीयजम्मणणिक्खंते–**सेसं जहा दव्वज्झयणे।**

से तं भवियसरीरदव्वाए।

प. से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए?

उ. जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. लोइए, २. कुप्पावयणिए,

३. लोगुत्तरिए। –अणु. सु. ५५८-५६५

१८५. लोइय दव्वाय–

प. से किं तं लोइए?

उ. लोइए-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सचित्ते, २. अचित्ते,

३. मीसए य।

प. से किं तं सचित्ते?

उ. सचित्ते-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दुपयाणं, २. चउप्पयाणं,

३. अपयाणं।

१८४. "आय" (प्राप्ति) का निक्षेप–

प्र. आय क्या है?

उ. आय चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. नाम आय, २. स्थापना-आय,

३. द्रव्य-आय, ४. भाव-आय।

नाम-आय और स्थापना-आय का वर्णन पूर्वोक्त नाम और स्थापना आवश्यक के अनुरूप है।

प्र. द्रव्य-आय क्या है?

उ. द्रव्य-आय दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. आगम से, २. नो आगम से।

प्र. आगम से द्रव्य आय क्या है?

उ. जिसने "आय" यह पद सीख लिया है, स्थिर कर लिया है यावत् उपयोग रहित होने से द्रव्य है यावत् जितने उपयोग रहित हैं उतने ही आगम से द्रव्य आय हैं।

यह आगम से द्रव्य-आय है।

प्र. नो आगमद्रव्य-आय क्या है?

उ. नो आगमद्रव्य-आय तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. ज्ञायकशरीरद्रव्य-आय,

२. भव्यशरीरद्रव्य-आय.

३. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्य-आय।

प्र. ज्ञायकशरीरद्रव्य-आय क्या है?

उ. "आय" पद के अर्थाधिकार के ज्ञाता का व्यपगत, च्युत, च्यवित त्यक्त शरीर ज्ञायकशरीर-द्रव्य आय है **शेष वर्णन द्रव्याध्ययन जैसा ही है।**

यह ज्ञायकशरीर नो आगमद्रव्य आय है।

प्र. भव्यशरीरद्रव्य-आय क्या है?

उ. समय पूर्ण होने पर योनि से निकलकर जो जन्म को प्राप्त हुआ **इत्यादि भव्यशरीरद्रव्य-अध्ययन के वर्णन के समान भव्यशरीरद्रव्य-आय है।**

यह भव्यशरीर द्रव्य-आय है।

प्र. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त-द्रव्य आय क्या है?

उ. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त-द्रव्य आय तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. लौकिक, २. कुप्रावचनिक,

३. लोकोत्तर।

१८५. लौकिक द्रव्य आय (द्विपद चतुष्पद आदि की प्राप्ति)–

प्र. लौकिक द्रव्य-आय क्या है?

उ. लौकिक द्रव्य-आय तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. सचित्त, २. अचित्त,

३. मिश्र।

प्र. सचित्त-लौकिक-आय क्या है?

उ. सचित्त-लौकिक-आय तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. द्विपद-आय, २. चतुष्पद-आय,

३. अपद-आय।

दुपयाणं दासाणं दासीणं,
चउप्पयाणं आसाणं हत्थीणं,
अपयाणं अंबाणं अंबाडगाणं आए।
से तं सचित्ते।

प. से किं तं अचित्ते ?

उ. अचित्ते-सुवण्ण-रयय-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयणाणं (संतसावएज्जस्स) आए।
से तं अचित्ते।

प. से किं तं मीसए ?

उ. मीसए-दासाणं दासीणं आसाणं हत्थीणं समाभरियाउज्जालंकियाणं आये।
से तं मीसए। से तं लोइए।

प. से किं तं कुप्पावयणिए ?

उ. कुप्पावयणिए-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सचित्ते, २. अचित्ते,
३. मीसए य।
तिण्णि वि जहा लोइए
से तं कुप्पावयणिए। —अणु. सु. ५६६-५७०

इनमें से दास-दासियों की आय द्विपद-आय है।
अश्वों हाथियों की प्राप्ति चतुष्पद-आय है।
आम, आमला के वृक्षों आदि की प्राप्ति अपद-आय है।
यह सचित्त आय है।

प्र. अचित्त-आय क्या है ?

उ. सोना-चाँदी, मणि-मोती, शंख, शिला, प्रवाल, रक्तरत्न आदि (सारवान् द्रव्यों) की प्राप्ति अचित्त-आय है।
यह अचित्त आय है।

प्र. मिश्र-आय क्या है ?

उ. अलंकारादि से तथा वाद्यों से विभूषित दास-दासियों, घोड़ों, हाथियों आदि की प्राप्ति को मिश्र-आय कहते हैं।
यह मिश्र-आय है। यह लौकिक-आय है।

प्र. कुप्रावचनिक-आय क्या है ?

उ. कुप्रावचिनक-आय भी तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. सचित्त, २. अचित्त,
३. मिश्र।
ये तीनों लौकिक-आय के समान हैं।
यह कुप्रावचनिक आय है।

१८६. लोगुत्तरिय दव्वाय–

प. से किं तं लोगुत्तरिए ?

उ. लोगुत्तरिए-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सचित्ते, २. अचित्ते,
३. मीसए य।

प. से किं तं सचित्ते ?

उ. सचित्ते-सीसाणं सिस्सिणियाणं आए।
से तं सचित्ते।

प. से किं तं अचित्ते ?

उ. अचित्ते-पडिग्गहाणं वत्थाणं कंबलाणं पायपुंछणाणं आए।
से तं अचित्ते।

प. से किं तं मीसए ?

उ. [illegible] आए।

से तं मीसए। से तं लोगुत्तरिए।
से तं जाणयसरीर-भवियसरीर-वइरित्ते दव्वाए।
से तं नो आगमओ दव्वाए। से तं दव्वाए।
—अणु. सु. [illegible]

१८६. [illegible]

[illegible]

१८६. लोकोत्तरिक द्रव्य आय (शिष्यादि की प्राप्ति)–

प्र. लोकोत्तरिक-आय क्या है ?

उ. लोकोत्तरिक-आय तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. सचित्त, २. अचित्त,
३. मिश्र।

प्र. सचित्त-लोकोत्तरिक-आय क्या है ?

उ. शिष्य-शिष्याओं की प्राप्ति सचित्त (लोकोत्तरिक) आय है।
यह सचित आय है।

प्र. अचित्त-लोकोत्तरिक-आय क्या है ?

उ. अचित्त पात्र, वस्त्र, कम्बल, पादप्रोंछन आदि की प्राप्ति को अचित्त (लोकोत्तरिक) आय कहते हैं।
यह अचित आय है।

प्र. मिश्र (लोकोत्तरिक) आय क्या है ?

उ. भांडोपकरणादि सहित शिष्य-शिष्याओं की प्राप्ति को मिश्र आय कहते हैं।
यह मिश्र आय है। यह लोकोत्तरिक आय है।
यह ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्य-आय है।
यह नो आगमद्रव्य-आय है। यह द्रव्य-आय है।

१८७. प्रशस्त-अप्रशस्त भावों की प्राप्ति–

प्र. भाव-आय क्या है ?

उ. भाव-आय दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. आगम से, २. नो आगम से।

प्र. [illegible] क्या है ?

उ. [illegible]

से तं आगमओ भावाए।
प. से किं तं नो आगमओ भावाए?
उ. नो आगमओ भावाए-दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. पसत्थे य, २. अपसत्थे य।
प. से किं तं पसत्थे?
उ. पसत्थे-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. णाणाए, २. दंसणाए,
३. चरित्ताए।
से तं पसत्थे।
प. से किं तं अपसत्थे?
उ. अपसत्थे-चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. कोहाए, २. माणाए,
३. मायाए, ४. लोभाए।
से तं अपसत्थे। से तं णो आगमओ भावाए।
से तं भावाए। से तं आए। –अणु. सु. ५७५-५७९

यह आगमभाव-आय है।
प्र. नो आगमभाव-आय क्या है?
उ. नो आगमभाव-आय दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. प्रशस्त, २. अप्रशस्त।
प्र. प्रशस्त नो आगमभाव-आय क्या है?
उ. प्रशस्त नो आगमभाव-आय तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. ज्ञान-आय, २. दर्शन-आय,
३. चारित्र-आय।
यह प्रशस्त-भाव-आय है।
प्र. अप्रशस्त-नो आगमभाव-आय क्या है?
उ. अप्रशस्त-नो आगमभाव-आय चार प्रकार की कही गई है, यथा–
१. क्रोध-आय, २. मान-आय,
३. माया-आय, ४. लोभ-आय।
यह अप्रशस्तभाव-आय है। यह नो आगमभाव-आय है।
यह भाव-आय है। यह आय है।

१८८. झवणा-णिक्खेवो–
प. (४) से किं तं झवणा?
उ. झवणा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. नामज्झवणा, २. ठवणज्झवणा,
३. दव्वज्झवणा, ४. भावज्झवणा।
णाम ठवणाओ पुव्वभणियाओ।
प. से किं तं दव्वज्झवणा?
उ. दव्वज्झवणा-दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. आगमओ य, २. नो आगमओ य।
प. से किं तं आगमओ दव्वज्झवणा?
उ. जस्स णं झवणेति पदं सिक्खियं ठितं जितं मितं परिजियं, सेसं जहा दव्वज्झयणे तहा भाणियव्वं।
से तं आगमओ दव्वज्झवणा।
प. से किं तं नो आगमओ दव्वज्झवणा?
उ. नो आगमओ दव्वज्झवणा-तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. जाणयसरीरदव्वज्झवणा,
२. भवियसरीरदव्वज्झवणा,
३. जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा।
प. से किं तं जाणयसरीरदव्वज्झवणा?
उ. जाणयसरीरदव्वज्झवणा-झवणापयत्थाहिकार जाणयस्स जं सरीरयं ववगय-चुय-चइय-चत्तदेहं, सेसं जहा दव्वज्झयणे।
से तं जाणयसरीर दव्वज्झवणा।
प. से किं तं भवियसरीरदव्वज्झवणा?

१८८. "क्षपणा" का निक्षेप–
प्र. (४) क्षपणा क्या है?
उ. क्षपणा चार प्रकार की कही गई है, यथा–
१. नामक्षपणा, २. स्थापनाक्षपणा,
३. द्रव्यक्षपणा, ४. भावक्षपणा।
नाम और स्थापना क्षपणा पूर्ववत् है।
प्र. द्रव्यक्षपणा क्या है?
उ. द्रव्यक्षपणा दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. आगम से, २. नो आगम से।
प्र. आगमद्रव्यक्षपणा क्या है?
उ. जिसने क्षपणा यह पद सीख लिया है, स्थिर, जित, मित और परिजित कर लिया है इत्यादि द्रव्याध्ययन के समान कहना चाहिए।
यह आगम से द्रव्य क्षपणा है।
प्र. नो आगमद्रव्य क्षपणा क्या है?
उ. नो आगमद्रव्य क्षपणा तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. ज्ञायकशरीर द्रव्यक्षपणा,
२. भव्यशरीर द्रव्यक्षपणा,
३. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्यक्षपणा।
प्र. ज्ञायकशरीर-द्रव्यक्षपणा क्या है?
उ. ज्ञायकशरीर-द्रव्यक्षपणा-क्षपणा पद के अर्थाधिकार के ज्ञाता का व्यपगत, च्युत, च्यवित, त्यक्त शरीर इत्यादि द्रव्याध्ययन के समान है।
यह ज्ञायकशरीरद्रव्यक्षपणा है।
प्र. भव्यशरीरद्रव्यक्षपणा क्या है?

उ. भविय सरीरदव्वज्झवणा-जे जीवे जोणीजम्म-णणिक्खंते इमेणं चेव आयत्तएणं सरीर समुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं झवणे त्ति पयं सेयकाले सिक्खिस्सइ, ण ताव सिक्खइ।

प. को दिट्ठंतो?

उ. जहा अयं घयकुंभे भविस्सइ, अयं महुकुंभे भविस्सइ।
से तं भवियसरीरदव्वज्झवणा।

प. से किं तं जाणयसरीर भवियसरीर वइरित्ता दव्वज्झवणा?

उ. जहा जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वाए तहा भाणियव्वा।
से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ता दव्वज्झवणा।
से तं नो आगमओ दव्वज्झवणा। से तं दव्वज्झवणा।

प. से किं तं भावज्झवणा?

उ. भावज्झवणा-दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. आगमओ य, २. नो आगमओ य।

प. से किं तं आगमओ भावज्झवणा?

उ. आगमओ भावज्झवणा-झवणापयत्थाहिकारजाणए उवउत्ते।
से तं आगमओ भावज्झवणा।

प. से किं तं णो आगमओ भावज्झवणा?

उ. णो आगमओ भावज्झवणा-दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पसत्था य, २. अप्पसत्था य।

प. से किं तं पसत्था?

उ. पसत्था चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. कोहज्झवणा, २. माणज्झवणा,
३. मायज्झवणा, ४. लोभज्झवणा।
से तं पसत्था।

प. से किं तं अप्पसत्था?

उ. [illegible] पण्णत्ता, तं जहा–
१. [illegible], २. दंसणज्झवणा,
३. [illegible]।
से तं अप्पसत्था। से तं नो आगमओ भावज्झवणा।
से तं [illegible]। से तं झवणा।
से तं [illegible] [illegible]

उ. समय पूर्ण होने पर जो जीव उत्पन्न हुआ और प्राप्त शरीर से जिनोपदिष्ट भाव के अनुसार भविष्य में क्षपणा पद को सीखेगा, किन्तु अभी नहीं सीख रहा है, ऐसा वह शरीर भव्यशरीरद्रव्यक्षपणा है।

प्र. इसके लिए क्या दृष्टान्त है?

उ. (जैसे किसी घड़े में अभी घी अथवा मधु नहीं भरा गया है, किन्तु भविष्य में भरे जाने की अपेक्षा) अभी से यह घी का घड़ा होगा, यह मधु का घड़ा होगा ऐसा कहना।

प्र. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्यक्षपणा क्या है?

उ. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्यक्षपणा, ज्ञायक-शरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य-आय के समान है।
यह ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यक्षपणा है।
यह नोआगमद्रव्य क्षपणा है। यह द्रव्यक्षपणा है।

प्र. भावक्षपणा क्या है?

उ. भावक्षपणा दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. आगम से, २. नो आगम से।

प्र. आगमभावक्षपणा क्या है?

उ. क्षपणा इस पद के अर्थाधिकार का उपयोगयुक्त ज्ञाता आगम से भाव क्षपणा है।
यह आगम से भावक्षपणा है।

प्र. नो आगमभावक्षपणा क्या है?

उ. नो आगमभावक्षपणा दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. प्रशस्तभावक्षपणा, २. अप्रशस्तभावक्षपणा।

प्र. (नो आगम) प्रशस्तभावक्षपणा क्या है?

उ. (नो आगम) प्रशस्तभावक्षपणा चार प्रकार की कही गई है, यथा–
१. क्रोधक्षपणा, २. मानक्षपणा,
३. मायाक्षपणा, ४. लोभक्षपणा।
यह प्रशस्तभावक्षपणा है।

प्र. अप्रशस्तभावक्षपणा क्या है?

उ. अप्रशस्तभावक्षपणा तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. ज्ञानक्षपणा, २. दर्शनक्षपणा,
३. चारित्रक्षपणा।
यह अप्रशस्तभावक्षपणा है। यह नो आगमभावक्षपणा है।
यह भावक्षपणा है, यह क्षपणा है,
यह क्षपणा ओघनिष्पन्ननिक्षेप का वर्णन पूर्ण हुआ।

[illegible]

१८२. (२) नामनिष्पन्न में सामायिक का निक्षेप–

[illegible]

णाम-ठवणाओ पुव्वभणियाओ।

दव्वसामाइए वि तहेव।

से तं भवियसरीरदव्वसामाइए।

प. से किं तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसामाइए?

उ. जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसामाइए–पत्तय-पोत्थयलिहियं।

से तं जाणयसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वसामाइए।

से तं नो आगमओ दव्वसामाइए। से तं दव्वसामाइए।

× × ×

प. से किं तं भावसामाइए?

उ. भावसामाइए-दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आगमओ य, २. नो आगमओ य।

प. से किं तं आगमओ भावसामाइए?

उ. **आगमओ भावसामाइए**–सामाइयपयत्थाहिकारजाणए उवउत्ते।

से तं आगमओ भावसामाइए। –*अणु. सु. ५९३-५९८*

नामसामायिक और स्थापनासामायिक पूर्ववत् है।

द्रव्यसामायिक भी वैसे ही जानना चाहिए।

यह भव्यशरीरद्रव्य सामायिक है।

प्र. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्यसामायिक क्या है?

उ. पत्र में अथवा पुस्तक में लिखित सामायिक पद ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य सामायिक है।

यह ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्त द्रव्य सामायिक है।

यह नो आगमद्रव्यसामायिक है, यह द्रव्य सामायिक है।

× × ×

प्र. भावसामायिक क्या है?

उ. भावसामायिक दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आगमभावसामायिक, २. नो आगमभावसामायिक।

प्र. आगमभावसामायिक क्या है?

उ. सामायिक पद के अर्थाधिकार का उपयोगयुक्त ज्ञायक आगम से भाव-सामायिक है।

यह आगम भाव सामायिक है।

१९०. भाव सामाइए समण सरूवं–

प. से किं तं नो आगमओ भावसामाइए?

उ. नोआगमओ भावसामाइए–

जस्स सामाणिओ अप्पा संजमे णियमे तवे ।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं ॥१२७॥

जो समो सव्वभूएसु तसेसु थावरेसु य ।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं ॥१२८॥

जह मम ण पियं दुक्खं जाणिय एमेव सव्वजीवाणं ।
न हणइ न हणावेइ य सम मणती तेण सो **समणो** ॥१२९॥

णत्थि य से कोइ वेसो पिओ व सव्वेसु चेव जीवेसु ।
एएण होइ **समणो**, एसो अन्नो वि पज्जाओ ॥१३०॥

१. उरग २. गिरि ३. जलण ४. सागर ५. नहतल
६. तरुगण समो य जो होइ। ७. भमर ८. मिग
९. धरणि, १०. जलरूह ११. रवि १२. पवण समो य
सो समणो ॥१३१॥

तो **समणो** जइ सुमणो, भावेण य जइ ण होइ पावमणो।
सयणे य जणे य समो, समो य माणावमाणेसु ॥१३२॥

से तं नो आगमओ भावसामाइए।

से तं भावसामाइए। से तं सामाइए।

से तं नामनिप्फण्णे। –*अणु. सु. ५९९*

१९०. भाव सामायिक में श्रमण का स्वरूप–

प्र. नो आगमभावसामायिक क्या है?

उ. नो आगमभाव सामयिक का स्वरूप इस प्रकार है–

जिसकी आत्मा संयम, नियम और तप में लीन है, उसके भाव सामायिक है, ऐसा केवली भगवान् का कथन है।

जो सर्वभूतों–त्रस, स्थावर आदि प्राणियों के प्रति समभाव धारण करता है, उसके सामायिक है, ऐसा केवली भगवान् का कथन है।

जिस प्रकार मुझे दुःख प्रिय नहीं है, उसी प्रकार सभी जीवों को भी दुःख प्रिय नहीं है, ऐसा जानकर जो स्वयं किसी प्राणी का हनन नहीं करता है, न दूसरों से करवाता है और न हनन की अनुमोदना करता है, किन्तु सभी जीवों को अपने समान मानता है, वही श्रमण कहलाता है।

जिसको समस्त जीवों में से किसी भी जीव के प्रति न द्वेष है और न राग है, इस कारण से वह श्रमण होता है। यह भी प्रकारान्तर से श्रमण का अर्थ है।

जो १. सर्प, २. गिरि, ३. अग्नि, ४. सागर, ५. आकाश-तल, ६. वृक्षसमूह, ७. भ्रमर, ८. मृग, ९. पृथ्वी, १०. कमल, ११. सूर्य और १२. पवन के समान है वह श्रमण है।

श्रमण तभी सम्भवित है जव वह सुमन (प्रशस्त मन) वाला हो और भावों से भी पापी मन वाला न हो। जो माता-पिता आदि स्वजनों में एवं परजनों में समभावी हो एवं मान-अपमान में समभाव का धारक हो।

यह नो आगमभाव सामायिक है।

यह भाव सामायिक है, यह सामायिक है।

यह नामनिष्पन्ननिक्षेप है।

१९१. (३) सुत्तालावगनिप्फण्णनिक्खेवो–

प. से किं तं सुत्तालावगनिप्फण्णे?

उ. सुत्तालावगनिप्फण्णे–'इदाणिं सुत्तालावगनिप्फण्णे निक्खेवे' इच्छावेइ, पत्तलक्खणे वि ण णिक्खिप्पइ।

प. कम्हा?

उ. लाघवत्थं।

इओ अत्थि तइये अणुओगद्दारे अणुगमे त्ति,
तहिं णं णिक्खित्ते इहं णिक्खित्ते भवइ,
इहं वा णिक्खित्ते तहिं णिक्खित्ते भवइ,
तम्हा इहं ण णिक्खिप्पइ तहिं चेव णिक्खिप्पिस्सइ।

से तं निक्खेवे। —अणु. सु. ६००

१९२. अणुगम अणुओग परूवणा–

प. से किं तं अणुगमे?

उ. अणुगमे-दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सुत्ताणुगमे य, २. निज्जुत्तिअणुगमे य। —अणु. सु. ६०१

१९३. निज्जुत्ति अणुगमस्स परूवणा–

प. से किं तं निज्जुत्ति अणुगमे?

उ. निज्जुत्ति अणुगमे-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. निक्खेवनिज्जुत्ति अणुगमे,
२. उवग्घायनिज्जुत्ति अणुगमे,
३. सुत्तप्फासियनिज्जुत्ति अणुगमे।

प. से किं तं निक्खेवनिज्जुत्ति अणुगमे?

उ. निक्खेवनिज्जुत्ति अणुगमे-अणुगए।

प. से किं तं उवग्घायनिज्जुत्ति अणुगमे?

उ. उवग्घायनिज्जुत्ति अणुगमे-इमाहिं दोहिं गाहाहिं अणुगन्तव्वो, तं जहा–

१. उद्देसे, २. निद्देसे य, ३. निग्गमे, ४. खेत्त, ५. काल, ६. पुरिसे य।

७. कारण, ८. पच्चय, ९. लक्खण, १०. णये, ११. १२. [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

से तं उवग्घायनिज्जुत्तिअणुगमे। —अणु. सु. [illegible]

१९४. [illegible]

[illegible]

१९१. (३) सूत्रालापकनिष्पन्न निक्षेप–

प्र. सूत्रालापकनिष्पन्न निक्षेप क्या है?

उ. इस समय सूत्रालापकनिष्पन्न निक्षेप की प्ररूपणा करने का प्रसंग होते हुए भी निक्षेप नहीं करते हैं।

प्र. क्यों?

उ. संक्षिप्त करने के लिए अर्थात् लघुता की अपेक्षा।

क्योंकि आगे अनुगम नामक तीसरे अनुयोगद्वार में इसका वर्णन है। अतः वहाँ पर निक्षेप करने से यहाँ निक्षेप हो गया। यहाँ निक्षेप किए जाने से वहाँ पर निक्षेप हो जाता है। इसलिए यहाँ निक्षेप नहीं करके वहाँ पर ही इसका निक्षेप किया जाएगा।

यह निक्षेपप्ररूपणा है।

१९२. अनुगम अनुयोग की प्ररूपणा–

प्र. अनुगम क्या है?

उ. अनुगम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सूत्रानुगम, २. निर्युक्त्यनुगम।

१९३. निर्युक्त्यनुगम की प्ररूपणा–

प्र. निर्युक्त्यनुगम क्या है?

उ. निर्युक्त्यनुगम तीन प्रकार की कही गया है, यथा–

१. निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम,
२. उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम,
३. सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम।

प्र. निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम क्या है?

उ. निक्षेप की निर्युक्ति का अनुगम पूर्ववत् जानना चाहिए।

प्र. उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम क्या है?

उ. उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम का स्वरूप इन गाथाओं से जानना चाहिए, यथा–

१. उद्देश, २. निर्देश, ३. निर्गम, ४. क्षेत्र, ५. काल, ६. पुरुष,

७. कारण, ८. प्रत्यय, ९. लक्षण, १०. नय, ११. समवतार, १२. अनुमत,

१३. क्या, १४. कितने प्रकार का, १५. किसको, १६. कहाँ पर,

१७. किसमें, १८. किस प्रकार, १९. कितने काल तक,
२०. कितना, २१. अन्तर, २२. अविरह,
२३. भव, २४. आकर्ष, २५. स्पर्शना, २६. निर्युक्ति।

यह उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम है।

१९४. सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति का अनुगम–

प्र. सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम क्या है?

उ. [illegible]

तो तत्थ णज्जिहिति ससमयपयं वा, परसमयपयं वा बंधपयं वा, मोक्खपयं सामाइयपयं वा, णो सामाइयपयं वा।

तो तम्मि उच्चारिए समाणे–

के सिंचि भगवंताणं केइ अत्थाहिगारा अहिगया भवंति,

के सिंचि य केइ अणहिगया भवंति, तओ तेसिं अणहिगयाणं अत्थाणं अभिगमणत्थाए पदेणं पदं वत्तइस्सामि–

१. संहिता य २. पदं चेव, ३. पदत्थो, ४. पदविग्गहो।
५. चालणा य ६. पसिद्धी य, छव्विहं विद्धि लक्खणं ॥

से तं सुत्तप्फासियनिज्जुत्तिअणुगमे।
से तं निज्जुत्तिअणुगमे। से तं अणुगमे।

–अणु. सु. ६०५

इस प्रकार से सूत्र का उच्चारण करने से ज्ञात होगा कि यह स्वसमयपद है, यह परसमयपद है, यह बंधपद है, यह मोक्षपद है, अथवा यह सामायिक-पद है, यह नो सामायिकपद है।

सूत्र का निर्दोष विधि से उच्चारण किये जाने पर कितने ही साधु भगवन्तों को कितनेक अर्थाधिकार अधिगत (ज्ञात) हो जाते हैं।

किन्हीं-किन्हीं को कितनेक अर्थाधिकार अनधिगत (अज्ञात) रहते हैं–अतएव उन अनधिगत अर्थों का अधिगम (प्राप्त) कराने के लिए एक-एक पद की प्ररूपणा करूँगा। जिसकी विधि इस प्रकार है–

१. संहिता, २. पदच्छेद, ३. पदों का अर्थ, ४. पदविग्रह, ५. चालना, ६. प्रसिद्धि। यह व्याख्या करने की विधि के छ प्रकार हैं।

यह सूत्रस्पर्शिक निर्युक्त्यनुगम है।
यह निर्युक्त्यनुगम है, यह अनुगम है।

१९५. नय अणुओगदारं–

प. से किं तं णए?

उ. सत्त मूलणया पण्णत्ता, तं जहा–

१. णेगमे, २. संगहे, ३. ववहारे, ४. उज्जुसुए, ५. सद्दे, ६. समभिरूढे, ७. एवंभूए[1]। तत्थ–

णेगेहिं माणेहिं मिणइ तत्ती **णेगमस्स १** य निरुत्ती।

सेसाणं पि नयाणं लक्खणमिणमो सुणह वोच्छं ॥
संगहियपिंडियत्थं **संगह २** वयणं समासओ बेंति।

वच्चइ विणिच्छियत्थं **ववहारो ३** सव्वदव्वेसु ॥

पच्चुप्पन्नग्गाही **उज्जुसुओ ४** णयविही मुणेयव्वो।
इच्छइ विसेसियतरं पच्चुप्पण्णं णओ **सद्दो ५** ॥
वत्थुओ संकमणं होइ अवत्थु णये **समभिरूढे ६**।
वंजण-अत्थ-तदुभयं **एवंभूओ ७** विसेसेइ ॥

णायम्मि गिण्हियव्वे अगिण्हियव्वम्मि चेव अत्थम्मि।
जइयव्वमेव इइ जो उवएसो सो नओ नाम ॥

सव्वेसिं पि नयाणं बहुविहवत्तव्वयं निसामेत्ता।
तं सव्वनयविसुद्धं जं चरणगुणट्ठिओ साहू ॥

से तं नए। *–अणु. सु. ६०६*

१९५. नय अनुयोगद्वार–

प्र. नय क्या हैं?

उ. मूल नय सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. नैगमनय, २. संग्रहनय, ३. व्यवहारनय, ४. ऋजुसूत्रनय, ५. शब्दनय, ६. समभिरूढनय, ७. एवंभूतनय।

१. जो अनेक प्रमाणों से वस्तु को जानता है, जो अनेक भावों से वस्तु का निर्णय करता है, यह **नैगमनय** की निरुक्ति अर्थात् (व्युत्पत्ति) है।

शेष नयों के लक्षण कहूँगा, जिसको तुम सुनो।

२. सम्यक् प्रकार से गृहीत एक जाति के पदार्थ ही जिसका विषय है, यह **संग्रहनय** का वचन कहा जाता है।

३. **व्यवहारनय** सर्वद्रव्यों के विषय में विनिश्चय करने के निमित्त में प्रवृत्त होता है।

४. **ऋजुसूत्रनय** केवल वर्तमानकाल को ग्रहण करता है।

५. **शब्दनय** पदार्थ की विशेषता को ही ग्रहण करता है।

६. **समभिरूढनय** वस्तु से भिन्न को अवस्तु मानता है।

७. **एवंभूतनय** व्यञ्जन अर्थ एवं तदुभय को विशेष रूप से स्थापित करता है।

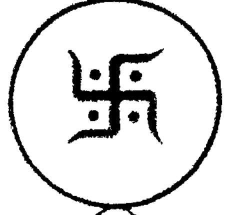
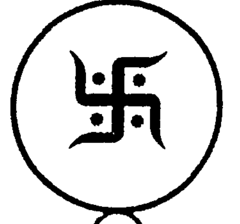
इन नयों के द्वारा हेय और उपादेय का ज्ञान प्राप्त करके तदनुकूल प्रवृत्ति करनी चाहिए। इस प्रकार का जो उपदेश है वही नय कहलाता है।

इन सभी नयों के परस्पर विरुद्ध कथन को सुनकर जो समस्त नयों से विशुद्ध सम्यक्त्व, चारित्र गुण में स्थित होता है वह साधु है।

यह नयों का स्वरूप है।

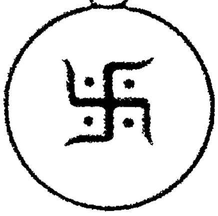
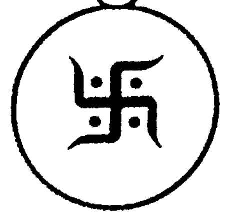


१. ठाणं. अ. ७, सु. ५५२

द्रव्यानुयोग भाग १

सम्पूर्णम्

द्रव्यानुयोग भाग १

परिशिष्ट

परिशिष्ट-१

संदर्भ स्थल सूची

द्रव्यानुयोग के अध्ययनों में वर्णित विषयों का धर्मकथानुयोग, चरणानुयोग, गणितानुयोग व द्रव्यानुयोग के अन्य अध्ययनों में जहाँ-जहाँ जितने उल्लेख हैं उनका पृष्ठांक व सूत्रांक सहित विषयों की सूची दी जा रही है, जिज्ञासु पाठक उन-उन स्थलों से पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लें।

वक्कंति अध्ययन में ३२ द्वार व २० द्वार संबंधी दो टिप्पण दिये हैं। उसी अनुसार सभी अध्ययनों में समझ लेना चाहिये।

२. द्रव्य अध्ययन (पृ. ५-२५)

धर्मकथानुयोग–

भाग १, खण्ड २, पृ. ६-८, सू. ५-१६–काल द्रव्य संबंधी सुदर्शन सेठ के प्रश्नोत्तर।

गणितानुयोग–

पृ. २०, सू. ५०–छह द्रव्य युक्त लोक।

द्रव्यानुयोग–

पृ. १७७८, सू. २४–द्रव्यादि में वर्णादि का भावाभाव।

पृ. १७७८, सू. २५–अतीत, वर्तमान और सर्वकाल में वर्णादि का अभाव।

पृ. १८२३, सू. ५३–द्रव्यादि आदेशों द्वारा सर्व पुद्‌गलों के सार्ध-सप्रदेशादि।

३. अस्तिकाय अध्ययन (पृ. २६-३५)

धर्मकथानुयोग–

भाग १, खण्ड २, पृ. ३५७-३५८, सू. ६३४-६३६–कालोदयी कृत पंचास्तिकाय संबंधी प्रश्नोत्तर।

भाग २, खण्ड ४, पृ. ३१६, सू. ३४२–मद्दुक श्रमणोपासक के पंचास्तिकाय।

गणितानुयोग–

पृ. १९, सू. ४५–लोक चार अस्तिकायों से स्पृष्ट।

पृ. २०, सू. ४९–लोक पंचास्तिकाय युक्त।

पृ. ४०, सू. ८६–रत्नप्रभादि का धर्मास्तिकायादि से स्पर्श।

चरणानुयोग–

भाग १, पृ. २७-२९, सू. ३२–प्रदेश दृष्टांत में छह प्रदेशों का वर्णन।

भाग १, पृ. ३१, सू. ३७–अस्तिकाय धर्म।

द्रव्यानुयोग–

पृ. ६, सू. १–धर्मास्तिकाय आदि के नाम।

पृ. ६, सू. ३–पूर्वानुपूर्वी के क्रम से धर्मास्तिकाय आदि के नाम।

पृ. ११, सू. ८–धर्मास्तिकाय आदि का अवस्थिति काल।

पृ. ११, सू. ९–धर्मास्तिकाय आदि की नित्यता।

पृ. १२, सू. ११–धर्मास्तिकाय आदि में कृतयुग्मादि।

पृ. १३, सू. १२–धर्मास्तिकाय आदि के अवगाढ़-अनवगाढ़।

पृ. १७७७, सू. १९–धर्मास्तिकायादि षड्‌द्रव्यों में वर्णादि।

पृ. १८२३, सू. ५२–एक आकाश प्रदेश में स्थित पुद्‌गलों के चयादि।

पृ. ११, सू. ६–पंचास्तिकाय का लक्षण।

पृ. १४, सू. १५–पंचास्तिकाय प्रदेशों का परस्पर प्रदेश स्पर्श प्ररूपण।

पृ. १८, सू. १६–पंचास्तिकाय प्रदेशों का परस्पर प्रदेशावगाढ़ का प्ररूपण।

४. पर्याय अध्ययन (पृ. ३६-८८)

द्रव्यानुयोग–

पृ. १७७७, सू. २४–पर्यायों में वर्णादि का भावाभाव।

५. परिणाम अध्ययन (पृ. ८९-९५)

गणितानुयोग–

पृ. ६७५, सू. ३९–कृष्णराजियों में जीव परिणाम, पुद्‌गल परिणाम।

पृ. ६७९, सू. ५३–तमस्काय में जीव परिणाम, पुद्‌गल परिणाम।

द्रव्यानुयोग–

पृ. १७५२, सू. ४–पुद्‌गलों के परिणाम का चतुर्विधत्व।

पृ. १७५२, सू. ५–पुद्‌गल परिणाम के पाँच भेद।

पृ. १७५३, सू. ७–पुद्‌गल परिणामों के बावीस भेद।

६. जीवाजीव अध्ययन (पृ. ९६-१००)

गणितानुयोग–

पृ. १४, सू. ३० (४)–जीव का अजीव तथा अजीव का जीव नहीं होता।

पृ. १४, सू. ३० (९-१०)–जीव और पुद्‌गलों की गति पर्याय।

पृ. १८, सू. ४०–जीव-अजीव शाश्वत और अनन्त, जीव और पुद्‌गलों का लोक के बाहर गमन अशक्य।

पृ. २३, सू. ५४–दिशाओं में जीव-अजीव।

पृ. २३, सू. ५५–आग्नेय दिशाओं में जीव-अजीव प्रदेश।

पृ. २५, सू. ५६–लोक में जीव-अजीव व उनके देश-प्रदेश।

पृ. २५, सू. ५७–लोक के एक आकाश प्रदेश में जीव-अजीव व उनके देश-प्रदेश।

पृ. ५५, सू. ११९–पृथ्वियों के चरमान्त में जीव-अजीव व देश-प्रदेश।

पृ. ५७, सू. १२३ (१)–अधोलोक में अनन्त जीव द्रव्य, अजीव द्रव्य, जीवाजीव द्रव्य।

पृ. ५७, सू. १२४–अधोलोक के आकाश प्रदेश में जीव-अजीव।

पृ. ६५५, सू. ३–ऊर्ध्वलोक क्षेत्र में जीव और अजीव तथा उनके देश-प्रदेश।

पृ. ६५६, सू. ४–ऊर्ध्वलोक क्षेत्र के एक आकाश प्रदेश में जीव-अजीव और उनके देश-प्रदेश।

द्रव्यानुयोग–

पृ. २-३, सू. २–जीवाजीव के ज्ञान का माहात्म्य।

पृ. ३, सू. ३–जीवाजीव के अस्तित्व की प्रज्ञा का प्ररूपण।

७. जीव अध्ययन (पृ. १०१-२६१)

धर्मकथानुयोग–

भाग १, खण्ड १, पृ. ३८, सू. ११९–भ. ऋषभ द्वारा छह जीवनिकाय का उपदेश।

भाग १, खण्ड १, पृ. १५५, सू. ३९३–छह छजीवनिकाय।

भाग १, खण्ड २, पृ. २८, सू. ६५–पाँच प्रकार की पर्याप्ति।

भाग १, खण्ड २, पृ. ९७, सू. २१७–चन्द्रदेव के पाँच प्रकार की पर्याप्ति।

भाग १, खण्ड २, पृ. २६७, सू. ४९८–लोक, जीव, सिद्ध, मरण आदि के सम्बन्ध में पिंगल निर्ग्रन्थ के प्रश्न।

पृ. २७२, सू. ५०८–चतुर्विध जीव की प्ररूपणा।

भाग १, खण्ड २, पृ. २७२, सू. ५०९–चार प्रकार की सिद्धि की प्ररूपणा।

भाग १, खण्ड २, पृ. २७३, सू. ५०९–चार प्रकार के सिद्ध का प्ररूपण।

भाग १, खण्ड २, पृ. ३२४, सू. ५७७–त्रसभूत प्राणी, त्रस एकार्थक।

भाग १, खण्ड २, पृ. ३३१, सू. ५८५–प्राणी व त्रस का कथन।

भाग २, खण्ड ३, पृ. १०४, सू. २३९–श्री देवी की पाँच पर्याप्तियाँ।

भाग २, खण्ड ४, पृ. ९२, सू. ४५–जीव व शरीर की भिन्नता।

भाग २, खण्ड ४, पृ. ९५, सू. ४५–जीव के नरक से मनुष्य लोक में आने में असमर्थता।

भाग २, खण्ड ४, पृ. ९७, सू. ४५–जीव के देव लोक से मनुष्य लोक में आने के चार कारण।

भाग २, खण्ड ४, पृ. ९८, सू. ४५ (३-४)–जीव की अप्रतिहत गति।

भाग २, खण्ड ४, पृ. १०३, सू. ५१–जीव का अगुरुलघुत्व।

भाग २, खण्ड ४, पृ. १०९, सू. ५५–जीव प्रदेशों का शरीर प्रमाण अवगाहन।

भाग २, खण्ड ४, पृ. १०८, सू. ५४–निर्दिष्ट जीव का अदर्शनीयत्व।

भाग २, खण्ड ५, पृ. २४, सू. ३८–जीव का शाश्वतत्व-अशाश्वतत्व।

गणितानुयोग–

पृ. १४, सू. ३० (५)–त्रस-स्थावर प्राणियों का विच्छेद नहीं होना।

पृ. ३६८, सू. ७३१–लवण समुद्र और धातकी खण्ड के जीवों की उत्पत्ति।

पृ. ३६८, सू. ७३२–धातकी खण्ड और कालोद समुद्र के जीवों की उत्पत्ति।

पृ. ३७१, सू. ७४२–कालोद समुद्र और पुष्करवर द्वीपार्ध के जीवों की उत्पत्ति।

पृ. ६७५, सू. ४०–कृष्णराजियों में जीव उत्पत्ति।

पृ. ६७९, सू. ५४–तमस्काय में जीव उत्पत्ति।

चरणानुयोग–

भाग १, पृ. ४४-४५, सू. ५९–चारों गतियों के जीवों में उत्पत्ति आदि का काल।

भाग १, पृ. १४९, सू. २४६–प्रथम तज्जीवी-तत्शरीरी।

भाग १, पृ. १५३, सू. २४७–द्वितीय पंच महाभूत जीवी।

भाग १, पृ. १५५, सू. २४८–तृतीय ईश्वरकारणिक जीवी।

भाग १, पृ. १५७, सू. २४९–चतुर्थ नियतवादी जीवी।

भाग १, पृ. १६०, सू. २५२–एकात्मवाद।

भाग १, पृ. १६१, सू. २५३–आत्मवाद।

भाग १, पृ. १६१, सू. २५६–पंचस्कंधवाद।

भाग १, पृ. २०७, सू. ३०५–जीव के कंपन आदि का कथन।

भाग १, पृ. २१२, सू. ३०७–पाप स्थानों से जीवों की गुरुता।

भाग १, पृ. २१२, सू. ३०८–विरति स्थानों से जीवों की लघुता।

भाग १, पृ. २२५-२४४, सू. ३२५-३४५–छह जीवनिकाय का वर्णन।

भाग १, पृ. २८३-२८५, सू. ४०५-४१३–आठ सूक्ष्म जीव।

भाग २, पृ. ४७, सू. ६५–जीव धर्म स्थित है या अधर्म स्थित है।

द्रव्यानुयोग–

पृ. २१, सू. १९–जीव द्रव्य के भेद।

पृ. ३८, सू. ४–जीव पर्याय का परिमाण।

पृ. ९०, सू. १–जीव परिणाम।

पृ. ११, सू. ६–जीव का लक्षण।

पृ. २३, सू. २५–जीव प्रदेश के असंखेयत्व का प्ररूपण।

पृ. २५, सू. २८–जीव आदि के अल्पबहुत्व का प्ररूपण।

पृ. २७, सू. २–जीवास्तिकाय की प्रवृत्ति।

पृ. २८, सू. ३–जीवास्तिकाय के पर्यायवाची।

पृ. ३२, सू. १०–जीवास्तिकाय के मध्य प्रदेशों का अवगाहन।

पृ. ५२४, सू. १५–जीवों द्वारा स्थित भाषा द्रव्यों के ग्रहण का प्ररूपण।

पृ. ८१८, सू. ३–जीवों में सक्रियत्व-अक्रियत्व का प्ररूपण।

पृ. ९२५, सू. ४१–हाथी और कुंथुए के जीव को समान अप्रत्याख्यान क्रिया।

पृ. ११०५, सू. ३६–जीव द्वारा पाप कर्मों का वंधन।

पृ. १२१०, सू. १६८–तुम्बे के दृष्टांत द्वारा जीवों के गुरुत्व-लघुत्व के कारणों का प्ररूपण।

पृ. १२१६, सू. १७७–अकर्म जीव की ऊर्ध्व गति होने के हेतुओं का प्ररूपण।

पृ. १२२५, सू. ७–एकेन्द्रिय जीवों में वेदनानुभव का प्ररूपण।

पृ. १५६१, सू. २३–जीव के निर्याण मार्ग।

पृ. २६३, सू. २–जीव का चौवीस दंडकों और सिद्धों में जीव द्वार द्वारा प्रथमाप्रथमत्व।

पृं. ३७७, सू. २६–जीव आहारक या अनाहारक।

पृ. ४४४, सू. २–जीव द्वारा विकुर्वणा के असामर्थ्य का प्ररूपण।

पृ. १२३३, सू. २०–सर्व जीवों के सुख-दुःख को अणुमात्र भी दिखाने में असामर्थ्य का प्ररूपण।

पृ. १२८५, सू. ३६–सभी प्राणियों की उत्पल आदि के रूप पूर्वोत्पत्ति।

पृ. १५०६, सू. ७४–सव जीवों की मातादि के रूप में अनन्त वार पूर्वोत्पत्ति।

पृ. १६७६, सू. ५–जीवों और जीवात्माओं में एकत्व का प्ररूपण।

पृ. १७०९, सू. २–जीव चरम या अचरम।

पृ. १७१२, सू. ३–जीव-जीवभाव की अपेक्षा चरम या अचरम।

९. संज्ञी अध्ययन (पृ. २७०-२७२)

द्रव्यानुयोग–

पृ. ११७, सू. २१–संज्ञी आदि जीव।

पृ. १८५, सू. ९१–कालादेश की अपेक्षा संज्ञी जीव।

पृ. २६४, सू. २–चौवीस दंडक में संज्ञी द्वार द्वारा प्रथमाप्रथमत्व।

पृ. ३७८, सू. २६–संज्ञी आहारक या अनाहारक।

पृ. ७०३, सू. १२०–संज्ञी-असंज्ञी ज्ञानी है या अज्ञानी।

पृ. १२८२, सू. ३६–उत्पल पत्र आदि के जीव संज्ञी या असंज्ञी।

पृ. १४७५, सू. ३१–रत्नप्रभा के नरकावासों में संज्ञी-असंज्ञी की उत्पत्ति और उद्वर्तन।

पृ. १५७८, सू. २२–कृतयुग्म एकेन्द्रिय असंज्ञी।

पृ. ११३६, सू. ७९–संज्ञी-असंज्ञी की अपेक्षा आठ कर्मों का वंध।

पृ. १७१३, सू. ३–संज्ञी आदि जीव चरम या अचरम।

१०. योनि अध्ययन (पृ. २७३-२८०)

धर्मकथानुयोग–

भाग २, खण्ड ३, पृ. ९३, सू. २०२–साढ़े वारह लाख योनि प्रमुख कुल कोटि जलचर की।

द्रव्यानुयोग–

पृ. २००, सू. ९९–नैरयिक आदि जीवों की योनि।

पृ. ११५९, सू. १११–योनिसापेक्ष आयु वंध का प्ररूपण।

११. संज्ञा अध्ययन (पृ. २८१-२८४)

चरणानुयोग–

भाग २, खण्ड ३, पृ. ८८, सू. २३१–चार संज्ञा।

द्रव्यानुयोग–

पृ. ८१३, सू. ६–पुलाक आदि संज्ञोपयुक्त या असंज्ञोपयुक्त।

पृ. ८३५, सू. ७–सामायिक संयत आदि संज्ञोपयुक्त या असंज्ञोपयुक्त।

पृ. १२८२, सू. ३६–उत्पल पत्र में आहार संज्ञा आदि।

पृ. १५७८, सू. २२–कृतयुग्म एकेन्द्रिय आहार आदि चार संज्ञाओं से युक्त।

पृ. ११०७, सू. ३६–आहार संज्ञोपयुक्त आदि द्वारा पाप कर्मों के वंध।

पृ. ११७२, सू. १२९–चारों संज्ञाओं में क्रियावादी आदि जीवों द्वारा आयु वंध का प्ररूपण।

पृ. १६७७, सू. ५–आहार संज्ञा आदि में जीव व जीवात्मा।

पृ. १७७७, सू. २१–आहार संज्ञा आदि में वर्णादि का अभाव।

पृ. १६०४, सू. ३–नैरयिकों में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में चार संज्ञाएँ।

पृ. १४७५, सू. ३१–रत्नप्रभा के नरकावासों में आहार संज्ञोपयुक्त जीवों की उत्पत्ति और उद्वर्तन।

पृ. १४७५, सू. ३१–रत्नप्रभा के नरकावासों में भय संज्ञोपयुक्त जीवों की उत्पत्ति और उद्वर्तन।

पृ. १४७५, सू. ३१–रत्नप्रभा के नरकावासों में मैथुन संज्ञोपयुक्त जीवों की उत्पत्ति और उद्वर्तन।

पृ. १४७५, सू. ३१–रत्नप्रभा के नरकावासों में परिग्रह संज्ञोपयुक्त जीवों की उत्पत्ति और उद्वर्तन।

१२. स्थिति अध्ययन (पृ. २८५-३४७)

धर्मकथानुयोग–

नैरयिक स्थिति–

भाग १, खण्ड २, पृ. ८, सू. १६–नैरयिकों की स्थिति।

भाग २, खण्ड ६, पृ. ९३, सू. २०२–रत्नप्रभा पृथ्वी की उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ६, पृ. ११८, सू. २५५–रत्नप्रभा पृथ्वी की उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ६, पृ. १२७, सू. १७९–रत्नप्रभा पृथ्वी की उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ६, पृ. १३३, सू. २८९–रत्नप्रभा पृथ्वी की उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ६, पृ. ९३, सू. २०२–दूसरी पृथ्वी की उत्कृष्ट तीन सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ६, पृ. ९३, सू. २०२–तीसरी पृथ्वी की सात सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ६, पृ. १२०, सू. २६१–चौथी पृथ्वी की उत्कृष्ट दस सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ६, पृ १५, सू. २९–चौथी पंकप्रभा के हेमाभ नरक में नैरयिकों की दस सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ६, पृ. १३६, सू. २९८–छठी पृथ्वी की उत्कृष्ट बावीस सागरोपम की स्थिति।

देव-देवी स्थिति–

भाग १, खण्ड २, पृ. २६, सू. ६०–शक्र देवेन्द्र देवराज की दो सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. २१, सू. ४५–देवताओं की दस सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. २८४, सू. ५२३–देवलोक में देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम।

भाग २, खण्ड ५, पृ. २६, सू. ४१–किल्विषिक देवों की तेरह सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. २१, सू. ४५–महाबल देव की दस सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. २८, सू. ६६–गंगदत्त देव की सतरह सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. ३६, सू. ८७–ब्रह्मलोक कल्प देव की दस सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. ३६, सू. ८७–वीरंगद देव की दस सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. ३८, सू. ९६–निषध देव की तेतीस सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. ९७, सू. २१८–चन्द्र देव की एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. ९९, सू. २२३–पूर्णभद्र देव की दो सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. ९९, सू. २२५–माणिभद्र देव की दो सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. ९९, सू. २२६–दत्तादि देव की दो सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. १२७, सू. २७५–ईशानेन्द्र की कुछ अधिक दो सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. १९५, सू. ३७५–मेघ नामक देव की तेतीस सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. २०७, सू. ३९७–जाली देव की वत्तीस सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. २३०, सू. ४४३–पद्म देव की दो सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. ३०२, सू. ५४८–अभिचिकुमार देव की एक पल्योपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड २, पृ. ३१८, सू. ५६७–जिनपाल देव की दो सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड २, पृ. ६४, सू. १४५–द्रुपद देव की दस सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. ७१, सू. २८–सूर्याभ देव की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. ११९, सू. ६१–सूर्याभ देव की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. ७१, सू. २८–सूर्याभ के सामानिक देव की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ५, पृ. ६८, सू. १०६–सर्वानुभूति देव की अठारह सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ५, पृ. ६९, सू. १०७–सुनक्षत्र देव की वावीस सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ५, पृ. ६९, सू. १०८–गोशालक देव की वावीस सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ५, पृ. २५, सू. ४०–किल्विषिक देव की तेरह सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ५, पृ. २७, सू. ४२–किल्विषिक देव की तेरह सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ५, पृ. ७३, सू. ११५–सुमंगल देव की तेतीस सागरोपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ६, पृ. ५०, सू. १०३–धन्य देव की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड १, पृ. ७८, सू. २२५–जयन्त विमान में वत्तीस सागरोपम की स्थिति।

भाग १, खण्ड १, पृ. २३२, सू. ५५८–निधियों की पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. १५८, सू. १०८–आनन्द गाथापति की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. १७७, सू. १२९–कामदेव की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. १८७, सू. १४७–चुलिनीपिता की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. १९९, सू. १६५–सुरादेव की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. २०९, सू. १८४–चुल्लशतक की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. २१८, सू. २०४–कुंडकौलिक की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. २३९, सू. २३१–सद्दालपुत्र की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. २५०, सू. २५६–महाशतक गाथापति की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. २५५, सू. २६८–नंदिनीपिता की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. २६0, सू. २७९–लेतिकापिता की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. २६४, सू. २८४–ऋषिभद्र पुत्रादि की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. २७५, सू. २९९–नागपौत्र वरुण की चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. २८0, सू. ३0५–भ. महावीर के श्रमणोपासकों की सौधर्मकल्प में चार पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. ९५, सू. २0७–काली देवी की ढाई पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. १0४, सू. २३९–श्री देवी की एक पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. १00, सू. २३0–शक्र की अग्रमहिषी की सात पल्योपम की स्थिति।

भाग २, खण्ड ३, पृ. १00, सू. २३१–ईशान की अग्रमहिषी की नौ पल्योपम की स्थिति।

गणितानुयोग–

मनुष्य की स्थिति–

पृ. २१६, सू. ३१९–उत्तरकुरु के मनुष्यों की काय स्थिति जघन्य कुछ कम तीन पल्योपम, उत्कृष्ट तीन पल्योपम।

देव-देवी की स्थिति–

पृ. २८६, सू. ४६९–कुटाधिप देवों की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३११, सू. ५४१–नीलवंत आदि देवों की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३४२, सू. ६४0–काल देवों की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३६९, सू. ७३६–सुदर्शन और प्रियदर्शन देवों की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३८९, सू. ७९५–अनाधृत आदि दस देवों की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४0२, सू. ८४१–देव, असुर, नाग और सुवर्ण देवों की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४१३, सू. ८६९-८७२–कुण्डलवर आदि १२ देवों की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४१४, सू. ८७७-८८0–रुचकवर आदि आठ देवों की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४१४-४१५, सू. ८८१-८८७–हारभद्र आदि बारह देवों की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४१५, सू. ८८९–देवभद्र और देवमहाभद्र आदि देवों की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. १८९, सू. २२४–विजय देव के सामानिक देवों की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. १८९, सू. २२३–विजय देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. १९६, सू. २४९–भरत देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २0४, सू. २८२–कच्छ देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २0५, सू. २८४–महाकच्छ देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २0५, सू. २८५–कच्छगावती देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २0५, सू. २८७–मंगलावती विजय देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २0६, सू. २८८–पुष्पकलावती विजय देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २0६, सू. २८९–पुष्पकलावती देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २१0, सू. २९८–हेमवत देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २११, सू. ३00–हैरण्यवत देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २१२, सू. ३0६–हरिवर्ष देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २१३, सू. ३0८–रम्यकवर्ष देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २१४, सू. ३१३–देवकुरु देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २१५, सू. ३१५–वेणु देव गरुड़ और अनाधृत देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २१६, सू. ३२१–उत्तरकुरु देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २२९, सू. ३३९–महाहिमवान् देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २३0, सू. ३४१–निषध देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २३१, सू. ३४३–नीलवंत देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २३२, सू. ३४५–रुक्मि देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २३२, सू. ३४७–शिखरी देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २३६, सू. ३५१–मन्दर देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २५१, सू. ३९४–कांचनक देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २५३, सू. ४00–दीर्घवैताढ्य गिरीकुमार देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २५५, सू. ४0३–शब्दापाती देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २५६, सू. ४0४–अरुण देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २५७, सू. ४0६–प्रभास देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २६४, सू. ४१६–माल्यवंत देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २६५, सू. ४१८–चित्रकूट देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २६५, सू. ४२0–पद्मकूट देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २६६, सू. ४२२–नलिनकूट देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २६६, सू. ४२४–एक शैल देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २६७, सू. ४२६–सोमनस देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २६७, सू. ४२८–विद्युत्प्रभ देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २६९, सू. ४३०-गन्धमादन देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २७३, सू. ४३५-क्षुद्रहिमवान्कूट देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २७७, सू. ४५०-पद्मकूट देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २८५, सू. ५६७-दक्षिणार्ध देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २९४, सू. ४९३-कृतमालक देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. २९४, सू. ४९३-नृत्यमालक देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३१३, सू. ५४४-नीलवंत द्रह कुमार देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३४७, सू. ६५३-गोस्तूप देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३५६, सू. ६८७-लवणाधिपति सुस्थित देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३७४, सू. ७५१-पद्म और पुण्डरिक देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३८१, सू. ७७४-साती और प्रभास देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३८१, सू. ७७४-अरुण और पद्म देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३८३, सू. ७७९-कृतमालक और नृत्यमालक देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३९१, सू. ८०२-श्रीधर और श्रीप्रभ देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३९२, सू. ८०६-वरुण और वरुणप्रभ देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३९३, सू. ८०९-वारुणि और वारुणकन्ता देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३९४, सू. ८१२-पुण्डरिक और पुष्पदंतदेव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३९५, सू. ८१५-विमल और विमलप्रभ देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३९६, सू. ८१८-कनक और कनकप्रभ देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३९७, सू. ८३१-कान्त और सुकान्त देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३९८, सू. ८३४-सुप्रभ और महाप्रभ देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४००, सू. ८३७-पूर्णभद्र और मणिभद्र देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४०६, सू. ८४६-कैलाश और हरिवाहन देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४०९, सू. ८५३-सुमन और सोमनसभद्र देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४१०, सू. ८५९-सुभद्र और सुमनभद्र देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४११, सू. ८६२-अरुणवरभद्र और अरुणवरमहाभद्र देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४१२, सू. ८६४-अरुणवर और अरुणवर महावर देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४१४, सू. ८७४-सर्वार्थ और मनोरमा देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४१४, सू. ८७६-सुमन और सोमनस देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४१५, सू. ८९०-देववर और देवमहावर नामक देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४१६, सू. ८९४-स्वयंभूरमणवर और स्वयंभूरमणमहावर देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ४१५, सू. ८९१-स्वयंभूरमणभद्र और स्वयंभूरमणमहाभद्र देव की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३०४, सू. ५२१-जम्बूद्वीप के छह द्रह देवियों की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३०४, सू. ५२२-मन्दर पर्वत के दक्षिण व उत्तर दिशा की द्रह देवियों की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३०४, सू. ५२३-दो द्रहों की देवियों की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३४३, सू. ६४३-क्षुद्रपाताल कलश में अर्ध पल्योपम की स्थिति वाली देवियाँ।

पृ. २९९, सू. ५०५-गंगादेवी की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३०८, सू. ५२७-श्री देवी की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३०९, सू. ५३१-धृति देवी की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३८५, सू. ७८२-श्री देवी और लक्ष्मी देवी की एक पल्योपम की स्थिति।

पृ. ३८५, सू. ७८२-धृति देवी और कीर्ति देवी की एक पल्योपम की स्थिति।

द्रव्यानुयोग-

पृ. ११८०, सू. १४४-कर्म प्रकृतियों की वंध स्थिति।

पृ. ३९, सू. ५-स्थिति की अपेक्षा पर्यायों का परिमाण।

पृ. ४६-६५, सू. ६-जघन्य उत्कृष्ट अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के पर्यायों के परिमाण।

पृ. २०१, सू. १००-क्रोधोपयुक्तादि भंगों में स्थिति स्थान।

पृ. २१९, सू. ११६-११७-संसारी जीवों की कायस्थिति।

पृ. २७७, सू. ८-शाली आदि योनियों की संस्थिति।

पृ. २७७, सू. ९-कलमसूरादि योनियों की संस्थिति।

पृ. २७८, सू. १०-अलसी आदि योनियों की संस्थिति।

पृ. २८७, सू. २-त्रस, स्थावर विवक्षा से जीवों की स्थिति।

पृ. २८७, सू. ३-सूक्ष्म वादर विवक्षा से जीवों की स्थिति।

१३. आहार अध्ययन (पृ. ३४८-३९३)

चरणानुयोग–

द्रव्यानुयोग–

१४. शरीर अध्ययन (पृ. ३९४-४४१)

धर्मकथानुयोग–

भाग १, खण्ड १, पृ. २५६, सू. ६३५-पुरुषोत्तम वासुदेव की अवगाहना।

भाग १, खण्ड १, पृ. २५७, सू. ६३८-दत्त वासुदेव की अवगाहना।

गणितानुयोग-

पृ. २१५, सू. ३१९-उत्तरकुरु के मनुष्यों की अवगाहना छह हजार धनुष की।

चरणानुयोग-

भाग २, पृ. १०४, सू. २६०-शरीर प्रत्याख्यान का फल।

भाग २, पृ. २०६, सू. ४३१-शरीर सम्पदा के चार प्रकार।

भाग १, पृ. २४०, सू. ३४०-वनस्पति शरीर व मनुष्य शरीर की समानता।

द्रव्यानुयोग-

पृ. १०९, सू. ११-ओदन आदि जीवों के शरीर।

पृ. १०९, सू. १२-लोह आदि जीवों के शरीर।

पृ. ११०, सू. १३-अस्थि चर्म आदि जीवों के शरीर।

पृ. ११०, सू. १४-अंगार आदि जीवों के शरीर।

पृ. ११६, सू. २१-सशरीरी-अशरीरी आदि जीव।

पृ. ११८, सू. २१-औदारिक शरीरी आदि जीव।

पृ. १८०, सू. ८५-शरीर निष्पन्न करने वाले जीवों में अधिकरणी अधिकरण।

पृ. १८७, सू. ९१-कालादेश की अपेक्षा शरीर।

पृ. १९४, सू. ९८-चौवीस दंडक में समान शरीर।

पृ. ५४८, सू. २-औदारिक आदि शरीर काय प्रयोग का वर्णन।

पृ. २०३, सू. १००-क्रोधोपयुक्तादि भंगों का शरीर।

पृ. २६८, सू. २-चौवीस दंडक में शरीर द्वार द्वारा प्रथमाप्रथमत्व।

पृ. ३८२, सू. २६-सशरीरी आदि आहारक या अनाहारक।

पृ. ८०२, सू. ६-पुलाक आदि के शरीर।

पृ. ७८३, सू. १८८-ज्ञायक शरीर आदि।

पृ. ८२३, सू. ७-सामायिक संयत आदि में शरीर।

पृ. ९२६, सू. ४२-शरीर के रचनाकाल में क्रियाओं का प्ररूपण।

पृ. ८५८, सू. २१-सलेश्य चौवीस दंडकों में समान शरीर वाले नहीं।

पृ. ९२३, सू. ३९-जीव चौवीस दंडकों में पाँच शरीरों की अपेक्षा क्रियाओं का प्ररूपण।

पृ. १२६५, सू. ११-एकेन्द्रिय जीवों में शरीर।

पृ. १२६८, सू. १२-विकलेन्द्रिय जीवों में शरीर।

पृ. १२६९, सू. १३-पंचेन्द्रिय जीवों में शरीर।

पृ. १२७१, सू. १८-पृथ्वी शरीर की विशालता का प्ररूपण।

पृ. १५४४, सू. ६-गर्भ में उत्पन्न सशरीर उत्पत्ति का प्ररूपण।

पृ. १५४६, सू. १३-जीव के शरीर में माता-पिता के अंगों का प्ररूपण।

पृ. १५६१, सू. २३-अन्तिम शरीर वालों का मरण प्ररूपण।

पृ. १५७८, सू. २२-कृतयुग्म एकेन्द्रिय के शरीर कितने वर्ण, गंध, रस, स्पर्श वाले।

पृ. १६७६, सू. ४-शरीर के एक भाग व समस्त भागों से सुनना, देखना, सूँघना, आस्वाद लेना, स्पर्श का अनुभव व अवभास आदि।

पृ. १६७७, सू. ५-औदारिक शरीर आदि में जीव व जीवात्मा!

पृ. १७१४, सू. ३-सशरीरी-अशरीरी औदारिक आदि चरम या अचरम।

पृ. १७७७, सू. २२-औदारिक आदि शरीरों में वर्णादि।

पृ. १८७५, सू. ११५-औदारिक शरीर प्रयोग बंध का प्ररूपण।

पृ. १८७९, सू. ११९-वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध का प्ररूपण।

पृ. १८८३, सू. १२४-आहारक शरीर प्रयोग बंध का प्ररूपण।

पृ. १८८४, सू. १२५-तैजस् शरीर प्रयोग बंध का प्ररूपण।

पृ. १८८५, सू. १२६-कार्मण शरीर प्रयोग बंध का प्ररूपण।

पृ. १८८८, सू. १२७-पाँच शरीरों के परस्पर बंधक-अबंधक का प्ररूपण।

पृ. १८९०, सू. १२८-पाँच शरीरों के बंधक-अबंधकों का अल्पबहुत्व।

पृ. १६७९, सू. ९-शरीर को छोड़कर आत्म निर्याण के द्विविधित्व का प्ररूपण।

पृ. १६९४, सू. ११-आहारक शरीर से आहारक समुद्घात का वर्णन।

अवगाहना-

पृ. ४८४, सू. १७-इन्द्रियों की अवगाहना।

पृ. १२७२, सू. १९-पृथ्वीकायिक की शरीरावगाहना का प्ररूपण।

पृ. १२७९, सू. ३६-उत्पल पत्र आदि जीवों के शरीरों की अवगाहना।

पृ. १३८१, सू. १०७-क्षेत्रकाल की अपेक्षा मनुष्यों की अवगाहना।

पृ. १५७७, सू. २२-कृतयुग्म एकेन्द्रिय शरीर की अवगाहना।

पृ. १५८४, सू. २७-सोलह द्वीन्द्रिय महायुग्मों की शरीरावगाहना।

पृ. ३९-४५, सू. ५-अवगाहना की अपेक्षा पर्यायों का परिमाण।

पृ. ४६-६५, सू. ६-जघन्य उत्कृष्ट और अजघन्य अनुत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिक तिर्यञ्च मनुष्य और देव के पर्यायों के परिमाण।

पृ. १२३, सू. २१-सिद्धों की अवगाहना।

पृ. १२५, सू. ३१-सिद्ध होते हुए जीवों की अवगाहना।

पृ. २०३, सू. १००-क्रोधोपयुक्तादि भंगों का अवगाहना स्थान।

पृ. ६९२, सू. ११७-अश्रुत्वा अवधिज्ञानी की अवगाहना।

पृ. ४२१, सू. ३१-जीवों की अवगाहना।

पृ. १६०३, सू. ३-नैरयिकों में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की अवगाहना।

१५. विकुर्वणा अध्ययन (पृ. ४४२-४७०)

१६. इन्द्रिय अध्ययन (पृ. ४७१-५०५)

१७. उच्छ्वास अध्ययन (पृ. ५०६-५१५)

१८. भाषा अध्ययन (पृ. ५१६-५३४)

१९. योग अध्ययन (पृ. ५३५-५४५)

२०. प्रयोग अध्ययन (पृ. ५४६-५६२)

२१. उपयोग अध्ययन (पृ. ५६३-५७१)

पृ. ८३१, सू. ७-सामायिक संयत आदि साकारोपयुक्त या अनाकारोपयुक्त।

पृ. १२६६, सू. ११-एकेन्द्रिय जीवों में साकारोपयोगी या अनाकारोपयोगी।

पृ. १२६८, सू. १२-विकलेन्द्रिय जीवों में साकारोपयोगी या अनाकारोपयोगी।

पृ. १२६९, सू. १३-पंचेन्द्रिय जीवों में साकारोपयोगी या अनाकारोपयोगी।

पृ. १२८१, सू. ३६-उत्पल पत्र आदि के जीव साकारोपयोगी-अनाकारोपयोगी।

पृ. १४७५, सू. ३१-रत्नप्रभा के नरकावासों में साकारोपयोगयुक्त जीव कितने उत्पन्न होते हैं, उद्वर्तन करते हैं।

पृ. १४७५, सू. ३१-रत्नप्रभा के नरकावासों में अनाकारोपयोगयुक्त जीव कितने उत्पन्न होते हैं, उद्वर्तन करते हैं।

पृ. १५७८, सू. २२-कृतयुग्म एकेन्द्रिय जीव साकारोपयोगी-अनाकारोपयोगी।

पृ. ११०६, सू. ३६-साकार अनाकारोपयोगयुक्त द्वारा पाप कर्म वंधन।

पृ. ११३८, सू. ७९-साकार-अनाकारोपयोग की अपेक्षा आठ कर्मों का वंध।

पृ. ११७२, सू. १२८-साकारोपयोगयुक्त आदि में क्रियावादी आदि जीवों द्वारा आयु बंध का प्ररूपण।

पृ. १६७७, सू. ५-साकारोपयोग आदि में जीव व जीवात्मा।

पृ. १७१३, सू. ३-साकारोपयोग आदि चरम या अचरम।

पृ. १७७७, सू. २३-साकारोपयोग आदि में वर्णादि का अभाव।

पृ. १६०४, सू. ३-नैरयिकों में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में साकारोपयोग-अनाकारोपयोग।

२३. दृष्टि अध्ययन (पृ. ५७७-५८१)

द्रव्यानुयोग-

पृ. ११७, सू. २१-सम्यग्दृष्टि आदि जीव।

पृ. १८७, सू. ९१-कालादेश की अपेक्षा दृष्टि।

पृ. १९०, सू. ९६-चौवीस दंडकों में सम्यग्दृष्टि आदि की वर्गणा।

पृ. २०४, सू. १००-क्रोधोपयुक्तादि भंगों में दृष्टि।

पृ. २६५, सू. २-चौवीस दंडक में दृष्टि द्वार द्वारा प्रथमाप्रथमत्व।

पृ. ७१६, सू. १२१-मिथ्यादृष्टि अणगार का जानना-देखना।

पृ. ७१७, सू. १२२-सम्यक् दृष्टि अणगार का जानना-देखना!

पृ. ३७९-३८०, सू. २६-सम्यक् दृष्टि आदि आहारक या अनाहारक।

पृ. १२६६, सू. ११-एकेन्द्रिय जीव मिथ्या दृष्टि।

पृ. १२६८, सू. १२-विकलेन्द्रिय जीवों में सम्यक् दृष्टि आदि।

पृ. १२६९, सू. १३-पंचेन्द्रिय जीवों में सम्यक् दृष्टि आदि।

पृ. १२८१, सू. ३६-उत्पल पत्र आदि में मिथ्यादृष्टि।

पृ. १४९४, सू. ५४-नरक पृथ्वियों में सम्यक् दृष्टि आदि का उत्पाद-उद्वर्तन।

पृ. १४९८, सू. ५७-देवों में सम्यक् दृष्टि आदि की उत्पत्ति।

पृ. १५७३, सू. १३-क्षुद्रकृतयुग्मादि सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि नैरयिकों के उत्पातादि।

पृ. १५७७, सू. २२-कृतयुग्म एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि हैं।

पृ. ९०६, सू. १५-सम्यक् दृष्टियों के आरम्भिकी आदि क्रियाओं का प्ररूपण।

पृ. ११०५, सू. ३६-सम्यक् दृष्टि आदि द्वारा पापकर्मों का बंध।

पृ. ११३५, सू. ७९-सम्यक् दृष्टि आदि की अपेक्षा आठ कर्मों का वंध।

पृ. ११७१, सू. १२८-सम्यक् दृष्टि आदि में क्रियावादी आदि जीवों द्वारा आयु बंध का प्ररूपण।

पृ. १४९४, सू. ५४-सात नरक पृथ्वियों में सम्यक् दृष्टियों का उत्पाद, उद्वर्तन।

पृ. १४९६, सू. ५७-चार प्रकार के देवों में सम्यक् दृष्टियों आदि की उत्पत्ति।

पृ. १६७६, सू. ५-सम्यक् दृष्टि आदि में जीव व जीवात्मा।

पृ. १७१३, सू. ३-सम्यक् दृष्टि आदि चरम या अचरम।

पृ. १७७७, सू. २१-सम्यक् दृष्टि आदि में वर्णादि का अभाव।

पृ. १६०४, सू. ३-नैरयिकों में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में दृष्टियाँ।

२४. ज्ञान अध्ययन (पृ. ५८२-७८७)

धर्मकथानुयोग-

भाग १, खण्ड १, पृ. ११७, सू. २९६-भ. महावीर स्वामी को मनःपर्यव ज्ञान की उत्पत्ति।

भाग १, खण्ड १, पृ. २२, सू. ४८-सुदर्शन को जाति स्मरण ज्ञान।

भाग १, खण्ड १, पृ. १६१, सू. ३२५-बहत्तर कलाओं के नाम।

भाग २, खण्ड ३, पृ. ६१, सू. १२१-बहत्तर कलाओं के नाम।

भाग २, खण्ड ३, पृ. २८२, सू. ५२१-मुद्गल को विभंग ज्ञान।

भाग २, खण्ड ३, पृ. २९१, सू. ५३२-शिव को विभंग ज्ञान।

भाग २, खण्ड ४, पृ. ९१, सू. ४४-पाँच प्रकार के ज्ञान व उसके भेद-प्रभेद।

चरणानुयोग-

भाग १, पृ. १५, सू. १५-ज्ञान इहभविक या परभविक।

भाग १, पृ. १८, सू. २५-ज्ञान गुण प्रमाण।

भाग १, पृ. २२, सू. २९-लौकिक लोकोत्तर आगम के प्रकार।

भाग १, पृ. ५१, सू. ७४-ज्ञान आराधना के तीन प्रकार।

भाग १, पृ. ५२, सू. ७५-ज्ञान आराधना का फल।

भाग १, पृ. ५५-१२३, सू. ८१-२०८-ज्ञानाचार में ज्ञान सम्बन्धी विस्तृत वर्णन।

भाग १, पृ. ७४०, सू. ८४-ज्ञान की उत्पत्ति-अनुत्पत्ति के कारण।

भाग २, पृ. ७८-८२, सू. २१६–चार प्रकार के आवश्यक।

भाग २, पृ. १७६, सू. ३५६–श्रुतज्ञान की अपेक्षा।

भाग २, पृ. १९०, सू. ३७२–आठ प्रकार के महानिमित्त।

भाग २, पृ. २०६, सू. ४३०–श्रुत सम्पदा के ४ प्रकार।

भाग २, पृ. २०७, सू. ४३३–वाचना सम्पदा के ४ प्रकार।

भाग २, पृ. २०७, सू. ४३४–मति सम्पदा के ४ प्रकार।

भाग २, पृ. २३८, सू. ४९८–श्रुत ग्रहण के लिए अन्य गण में जाने का विधि निषेध।

भाग २, पृ. २४१, सू. ५०१–आचार्य आदि को वाचना देने के लिए अन्य गण में जाने का विधि-निषेध।

भाग २, पृ. ३४२, सू. ६८३–सूत्र सीखने के हेतु।

भाग २, पृ. ३४२, सू. ६८४–स्वाध्याय का फल।

भाग २, पृ. ३४३, सू. ६८७–सूत्र वाचना के ५ हेतु।

भाग २, पृ. ३४३, सू. ६८८–सूत्र वाचना के योग्य।

भाग २, पृ. ३४४, सू. ६८९–सूत्र वाचना के अयोग्य।

भाग २, पृ. ३४४, सू. ६९०–सूत्र वाचना का फल।

भाग २, पृ. ४०४, सू. ८११–ज्ञानादि से युक्त मुनि का पराक्रम।

द्रव्यानुयोग–

पृ. २७, सू. २–जीव के आभिनिबोधिक ज्ञानं आदि की अनन्त पर्यायें।

पृ. ४१-४५, सू. ५–ज्ञान-अज्ञान की अपेक्षा पर्यायों का परिमाण।

पृ. ४९-६५, सू. ६–जघन्य-उत्कृष्ट-अजघन्य-अनुत्कृष्ट आभिनिवोधिक ज्ञान वाले नैरयिक तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के पर्यायों के परिमाण।

पृ. ५३, सू. ६–जघन्य-उत्कृष्ट-अजघन्य-अनुत्कृष्ट मति अज्ञानी पृथ्वीकायिक के पर्यायों के परिमाण।

पृ. ५९, सू. ६–जघन्य-उत्कृष्ट-अजघन्य-अनुत्कृष्ट अवधिज्ञान वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के पर्यायों के परिमाण।

पृ. ६३, सू. ६–जघन्य-उत्कृष्ट-अजघन्य-अनुत्कृष्ट अवधिज्ञान वाले मनुष्य के पर्यायों का परिमाण।

पृ. ६४, सू. ६–जघन्य-उत्कृष्ट-अजघन्य-अनुत्कृष्ट मनःपर्यव ज्ञान वाले मनुष्य के पर्यायों का परिमाण।

पृ. ६४, सू. ६–जघन्य-उत्कृष्ट-अजघन्य-अनुत्कृष्ट केवलज्ञानी मनुष्य के पर्यायों का परिमाण।

पृ. २-३, सू. २–जीवाजीव के ज्ञान का माहात्म्य।

पृ. ९१, सू. २–ज्ञान परिणाम के पाँच प्रकार।

पृ. ९१, सू. २–अज्ञान परिणाम के तीन प्रकार।

पृ. ११६, सू. २१–ज्ञानी-अज्ञानी जीव।

पृ. ११८, सू. २१–आभिनिवोधिक ज्ञानी आदि ६ प्रकार के जीव।

पृ. ११९, सू. २१–आभिनिवोधिक ज्ञानी आदि ८ प्रकार के जीव।

पृ. १८६, सू. ९१–काला देश की अपेक्षा ज्ञान।

पृ. २०४, सू. १००–क्रोधोपयुक्तादि भंगों में ज्ञान।

पृ. २६६, सू. २–चौबीस दंडकों में ज्ञान द्वार द्वारा प्रथमाप्रथमत्व।

पृ. ३८१, सू. २६–ज्ञानी आदि आहारक या अनाहारक।

पृ. ४५३, सू. १६–चौदह पूर्वी के हजार रूप करने का सामर्थ्य।

पृ. ५६८, सू. ८–केवलियों में एक समय में दो उपयोग का निषेध।

पृ. ८००, सू. ६–पुलाक आदि के ज्ञान।

पृ. ८२२, सू. ७–सामायिक संयत आदि में ज्ञान।

पृ. ८७६, सू. ३६–लेश्या के अनुसार जीवों में ज्ञान के भेद।

पृ. ८७६, सू. ३७–लेश्या के अनुसार नैरयिकों में अवधिज्ञान क्षेत्र।

पृ. १२६६, सू. ११–एकेन्द्रिय जीवों में ज्ञानी-अज्ञानी।

पृ. १२६८, सू. १२–विकलेन्द्रिय जीवों में ज्ञानी-अज्ञानी।

पृ. १२६९, सू. १३–पंचेन्द्रिय जीवों में ज्ञानी-अज्ञानी।

पृ. १२८१, सू. ३६–उत्पल पत्र के जीव ज्ञानी या अज्ञानी।

पृ. ११०६, सू. ३६–ज्ञानी-अज्ञानी द्वारा पाप कर्म भंग।

पृ. १४७५, सू. ३१–रत्नप्रभा के नरकावासों में अवधिज्ञानी की उत्पत्ति और उद्वर्तन।

पृ. ४८५, सू. १९–इन्द्रिय अवग्रह आदि के भेद।

पृ. १४७५, सू. ३१–रत्नप्रभा के नरकावासों में श्रुतज्ञानी की उत्पत्ति और उद्वर्तन।

पृ. १४७५, सू. ३१–मति अज्ञानी की उत्पत्ति और उद्वर्तन।

पृ. १४७५, सू. ३१–श्रुत अज्ञानी की उत्पत्ति और उद्वर्तन।

पृ. १४७५, सू. ३१–विभंगज्ञानी की उत्पत्ति और उद्वर्तन।

पृ. १५६७-१५६८, सू. ९–ज्ञान पर्याय की अपेक्षा कृतयुग्मादि का प्ररूपण।

पृ. १५६८, सू. १०–अज्ञान पर्यायों की अपेक्षा कृतयुग्मादि का प्ररूपण।

पृ. १५७७, सू. २२–कृतयुग्म एकेन्द्रिय में दो अज्ञान।

पृ. ११३८, सू. ७९–ज्ञानी-अज्ञानी की अपेक्षा आठ कर्मों का बंध।

पृ. ११७२, सू. १२८–आभिनिबोधिक आदि ज्ञानी व अज्ञानी क्रियावादी आदि जीवों द्वारा आयुबंध का प्ररूपण।

पृ. १६७५, सू. १–ज्ञान की अपेक्षा आत्म-स्वरूप।

पृ. १६७६, सू. ५–औत्पत्तिकी आदि बुद्धि में, अवग्रह आदि में आभिनिवोधिक आदि पाँच ज्ञानों में जीव व जीवात्मा का वर्णन।

पृ. १६७६, सू. ५–मति-अज्ञान आदि में जीव व जीवात्मा।

पृ. १७१३, सू. ३–ज्ञानी-अज्ञानी आभिनिवोधिक आदि ज्ञानी चरम या अचरम।

पृ. १७७५, सू. १३–औत्पत्तिकी आदि बुद्धियों में वर्णादि का प्ररूपण।

पृ. १७७५, सू. १३–अवग्रह आदि में वर्णादि।

पृ. १७७७, सू. २१–ज्ञान-अज्ञान आदि में वर्णादि का अभाव।

पृ. १६०४, सू. ३–नैरयिकों में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव अज्ञानी।

● ●

६. चउवीसदंडएसु जहण्णुक्कोसाइ ओगाहणाइविवक्खया पज्जवपमाणपरूवणं–

द. १. नेरइयाणं ओगाहणाइ विवक्खया पज्जव पमाणं–

प. जहण्णोगाहणगाणं भंते ! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहण्णोगाहणए नेरइए जहण्णोगाहणगस्स नेरइयस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए।
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं,
(९) तिहिं णाणपज्जवेहिं,
(१०) तिहिं अण्णाणपज्जवेहिं,
(११) तिहिं दंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

प. उक्कोसोगाहणगाणं भंते ! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"उक्कोसोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! उक्कोसोगाहणए णेरइए उक्कोसोगाहणस्स नेरइयस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले।
(४) ठिईए–१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए।

जइ हीणे-दुट्ठाणवडिए–

१. असंखेज्जइभागहीणे वा, २. संखेज्जइभागहीणे वा,

अह अब्भहिए-दुट्ठाणवडिए–

१. असंखेज्जभागअब्भहिए वा,

२. संखेज्जभागअब्भहिए वा।[1]

(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस,

६. चौवीस दण्डकों में जघन्य-उत्कृष्ट अवगाहना आदि की विवक्षा से पर्यायों के परिमाण का प्ररूपण–

दं. १. नैरयिकों के अवगाहनादि की अपेक्षा से पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! जघन्य अवगाहना वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य अवगाहना वाले नारकों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला नैरयिक दूसरे जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा (भी) तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा (भी) तुल्य है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थान पतित है,
(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस और (८) स्पर्श के पर्यायों,
(९) तीन ज्ञान,
(१०) तीन अज्ञान,
(११) तीन दर्शन पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य अवगाहना वाले नारकों के अनन्त पर्याय हैं।"

प्र. भंते ! उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! एक उत्कृष्ट अवगाहना वाला नारक, दूसरे उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा (भी) तुल्य है।
(४) स्थिति की अपेक्षा–१. कदाचित् हीन है, २. कदाचित् तुल्य है, ३. कदाचित् अधिक है।

यदि हीन है तो–दो स्थान पतित हैं–

१. असंख्यातवें भाग हीन है २. संख्यातवें भाग हीन है।

यदि अधिक है तो–दो स्थानपतित हैं–

१. असंख्यातवें भाग अधिक है,

२. संख्यातवें भाग अधिक है।

(५) वर्ण (६) गन्ध, (७) रस और

---

१. द्विस्थान पतित का सर्वत्र यह अर्थ जानना चाहिए।

(८) फासपज्जवेहिं,

(९) तिहिं णाणपज्जवेहिं,

(१०) तिहिं अण्णाणपज्जवेहिं,

(११) तिहिं दंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"उक्कोसोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

(८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तथा

(९) तीन ज्ञान

(१०) तीन अज्ञान,

(११) तीन दर्शन पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं।"

प. अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं भंते ! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! अजहण्णुक्कोसोगाहणए णेरइए अजहण्णुक्कोसोगाहणगस्स णेरइयस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,

(३) ओगाहणट्ठयाए–१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए।

जइ हीणे–

१. असंखेज्जइभागहीणे वा, २. संखेज्जइभागहीणे वा,

३. संखेज्जगुणहीणे वा, ४. असंखेज्जगुणहीणे वा,

अह अब्भहिए–

१. असंखेज्जइभागअब्भहिए वा,

२. संखेज्जइभागअब्भहिए वा,

३. संखेज्जगुणअब्भहिए वा,

४. असंखेज्जगुणअब्भहिए वा।

(४) ठिईए–१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए–

जइ हीणे–

१. असंखेज्जइभागहीणे वा, २. संखेज्जइभागहीणे वा,

३. संखेज्जगुणहीणे वा, ४. असंखेज्जगुणहीणे वा।

अह अब्भहिए–

१. असंखेज्जइभागअब्भहिए वा,

२. संखेज्जइभागअब्भहिए वा,

३. संखेज्जगुणअब्भहिए वा,

४. असंखेज्जगुणअब्भहिए वा।

५. वण्ण, ६. गंध, ७. रस,

८. फासपज्जवेहिं,

९. तिहिं णाणपज्जवेहिं,

१०. तिहिं अण्णाणपज्जवेहिं

११. तिहिं दंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

प्र. भंते ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"मध्यम अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! मध्यम अवगाहना वाला एक नारक, अन्य मध्यम अवगाहना वाले नारक से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है।

यदि हीन है तो –

१. असंख्यातवें भाग हीन है, २. संख्यातवें भाग हीन है,

३. संख्यातगुण हीन है, ४. असंख्यातगुण हीन है।

यदि अधिक है तो–

१. असंख्यातवें भाग अधिक है,

२. संख्यातवें भाग अधिक है,

३. संख्यातगुण अधिक है,

४. असंख्यातगुण अधिक है।

(४) स्थिति की अपेक्षा–१. कदाचित् हीन है, २. कदाचित् तुल्य है, ३. कदाचित् अधिक हैं।

यदि हीन है तो–

१. असंख्यातवें भाग हीन है, २. संख्यातवें भाग हीन है,

३. संख्यातगुण हीन है, ४. असंख्यातगुण हीन है।

यदि अधिक है तो–

१. असंख्यातवें भाग अधिक है,

२. संख्यातवें भाग अधिक है,

३. संख्यातगुण अधिक है,

४. असंख्यातगुण अधिक है,

५. वर्ण, ६. गन्ध, ७. रस और

८. स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से,

९. तीन ज्ञान,

१०. तीन अज्ञान,

११. तीन दर्शन पर्यायों की अपेक्षा से षट् स्थानपतित हैं।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

इस कारण से गौतम! ऐसा कहा जाता है कि–
"मध्यम अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं।

प. जहण्णठिइयाणं भंते ! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णठिइयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहण्णठिइए नेरइए जहण्णठिइयस्स नेरइयस्स–

१. दव्वट्ठयाए तुल्ले,
२. पदेसट्ठयाए तुल्ले,
३. ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए।
४. ठिईए तुल्ले।
५. वण्ण, ६. गंध, ७. रस,
८. फासपज्जवेहिं,
९. तिहिं णाणपज्जवेहिं,
१०. तिहिं अण्णाणपज्जवेहिं,
११. तिहिं दंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

एवं उक्कोसट्ठिईए वि।

अजहणुक्कोसट्ठिईए वि एवं चेव।

णवरं–सट्ठाणे चउट्ठाणवडिए।

प्र. भंते ! जघन्य स्थिति वाले नारकों के कितने पर्याय कहे गये हैं ?"

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य स्थिति वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला नारक दूसरे जघन्य स्थिति वाले नारक से

१. द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
२. प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
३. अवगाहना की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,
४. स्थिति की अपेक्षा तुल्य है,
५. वर्ण, ६. गन्ध, ७. रस और
८. स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तथा
९. तीन ज्ञान,
१०. तीन अज्ञान एवं
११. तीन दर्शन पर्यायों की अपेक्षा षट् स्थानपतित (हीनाधिक) है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले नारक के विषय में भी कहना चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले नारक के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

विशेष–स्वस्थान में चतु:स्थानपतित है।

प. जहण्णगुणकालयाणं भंते ! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकालयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहण्णगुणकालए नेरइए जहण्णगुणकालगस्स नेरइयस्स–

१. दव्वट्ठयाए तुल्ले,
२. पदेसट्ठयाए तुल्ले,
३. ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
४. ठिईए चउट्ठाणवडिए,
५. कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले,

अवसेसेहिं वण्ण–६. गंध, ७. रस, ८. फासपज्जवेहिं,

९. तिहिं णाणपज्जवेहिं,
१०. तिहिं अण्णाणपज्जवेहिं,
११. तिहिं दंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

प्र. भंते ! जघन्य गुण काले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुण काले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्यगुण काला नैरयिक दूसरे जघन्य गुण काले नैरयिक से–

१. द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
२. प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
३. अवगाहना की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,
४. स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,
५. काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,

किन्तु अवशिष्ट वर्ण, ६. गन्ध, ७. रस और ८ स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से,

९. तीन ज्ञान,
१०. तीन अज्ञान और
११. तीन दर्शनों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जहण्णगुणकालयाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

"जघन्यगुण काले नारकों के अनन्त पर्याय हैं।"

एवं उक्कोसगुणकालए वि।

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण काले (नारकों के पर्याय भी) समझ लेना चाहिए।

अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव,

इसी प्रकार अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले नैरयिको के पर्याय जान लेने चाहिए।

णवरं–कालवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

विशेष–काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा छः स्थानपतित है।

एवं अवसेसा चत्तारि वण्णा, (६) दो गंधा, (७) पंच रसा, (८) अट्ठ फासा भाणियव्वा।

(काले वर्ण के पर्यायों के समान) शेष चारों वर्ण, ६. दो गन्ध, ७. पांच रस और ८. आठ स्पर्श की अपेक्षा से भी कहना चाहिए।

प. जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते ! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

प्र. भंते ! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं णेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

उ. गौतम ! जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं?"

उ. गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी णेरइए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स नेरइयस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए–चउट्ठाणवडिए,
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस,
(८) फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,
(९) आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले,
सुयणाण–ओहिणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,
(१०) तिहिं दंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

उ. गौतम ! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिक दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिक से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५) वर्ण, (६) गन्ध (७) रस और
(८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है,
(९) आभिनिवोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,
"श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है
(१०) तीन दर्शनों की अपेक्षा (भी) षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
'जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं।'

एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि।

इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिकों के (पर्याय समझ लेने चाहिए)।

अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि एवं चेव।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट आभिनिवोधिक ज्ञानी के पर्याय भी इसी प्रकार समझने चाहिए।

णवरं–आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

विशेष–वह आभिनिवोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा स्वस्थान में षट्स्थानपतित हैं।

एवं सुयणाणी, ओहिणाणी वि।

इसी प्रकार श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी नैरियकों के पर्याय भी जानने चाहिए।

णवरं–जस्स णाणा तस्स अण्णाणा णत्थि।

विशेष–जिसके ज्ञान है उसके अज्ञान नहीं होता है।

(११) जहा णाणा तहा अण्णाणा वि भाणियव्वा।

(११) जिस प्रकार ज्ञानी नैरयिकों के पर्यायों के विषय में कहा उसी प्रकार अज्ञानी नैरयिकों के पर्यायों के विपय में भी कहना चाहिए।

णवरं-जस्स अण्णाणा तस्स णाणा न भवंति।

विशेष-जिसके अज्ञान है, उसके ज्ञान नहीं होते हैं।

प. जहण्णचक्खुदंसणीणं भंते ! नेरइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-
"जहण्णचक्खुदंसणीणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! जहण्णचक्खुदंसणी णं नेरइए जहण्णचक्खुदंसणीस्स नेरइयस्स-
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए-चउट्ठाणवडिए,
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस,
(८) फासपज्जवेहिं,
(९) तिहिं णाणपज्जवेहिं,
(१०) तिहिं अण्णाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,
(११) चक्खुदंसणपज्जवेहि तुल्ले,
अचक्खुदंसणपज्जवेहि, ओहिदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-
"जहण्णचक्खुदंसणीणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसचक्खुदंसणी वि।

अजहण्णमणुक्कोसचक्खुदंसणी वि एवं चेव।

णवरं-सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

एवं अचक्खुदंसणी वि, ओहिदंसणी वि।

प्र. भंते ! जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गये हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-
"जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिक, दूसरे जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिक से
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस और
(८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा तथा
(९) तीन ज्ञान,
(१०) तीन अज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
(११) चक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।
अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-
"जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिको के अनन्त पर्याय हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट चक्षुदर्शनी नैरयिकों (के पर्याय भी समझना चाहिए।)

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) चक्षुदर्शनी नैरयिकों के (पर्याय) भी इसी प्रकार जानने चाहिए।

विशेष-स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी नैरयिकों एवं अवधिदर्शनी नैरयिको के पर्याय जानने चाहिए।

दं. २-११. असुरकुमाराईणं ओगाहणाइ विवक्खया पज्जवपमाणं-

प. जहण्णोगाहणगाणं भंते ! असुरकुमाराणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-
"जहण्णोगाहणगाणं असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! जहण्णोगाहणए असुरकुमारे जहण्णोगाहणगस्स असुरकुमारस्स-
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,

दं. २-११. अवगाहनादि की अपेक्षा से असुरकुमारादि के पर्यायों का परिमाण-

प्र. भंते ! जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमारों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-
"जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमारों के अनन्त पर्याय हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला असुरकुमार, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमार से-
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,

(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले।
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए।
(५.-८.) वण्णाइपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,
(९) आभिणिबोहियणाण-सुयणाण-ओहिणाणपज्जवेहिं,
(१०) तिहि अण्णाणपज्जवेहिं,
(११) तिहिं दंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णोगाहणगाणं असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं उक्कोसोगाहणए वि।
एवं अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए वि।
णवरं–सट्ठाणे चउट्ठाणवडिए।
अवसेसं जहा णेरइए।
एवं जाव थणियकुमारा।

दं. १२-१६. पुढविकाइयाणं-ओगाहणाइ विवक्खया पज्जवपमाणं–

प. जहण्णोगाहणगाणं भंते ! पुढविकाइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?
उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णोगाहणगाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"
उ. गोयमा ! जहण्णोगाहणए पुढविकाइए जहण्णोगाहणस्स पुढविकाइयस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले,
(४) ठिईए तिट्ठाणवडिए,
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं,
(९) दोहिं अण्णाणेहिं,
(१०) अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णोगाहणगाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं उक्कोसोगाहणए वि।
अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव।

(३) अवगाहना की अपेक्षा भी तुल्य है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५-८) वर्ण आदि की पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(९) आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान एवं अवधिज्ञान के पर्यायों,
(१०) तीन अज्ञान के पर्यायों तथा
(११) तीन दर्शन पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमारों के अनन्त पर्याय हैं।"
इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना के विषय में भी समझ लेना चाहिए।
इसी प्रकार अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले असुरकुमारों के पर्याय जान लेना चाहिए।
विशेष–स्वस्थान में चतुःस्थानपतित हैं।
शेष वर्णन नारक के समान है।
इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त पर्यायों का कथन करना चाहिए।

दं. १२-१६. अवगाहनादि की अपेक्षा से पृथ्वीकायिकादि के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?
उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं?
उ. गौतम ! जघन्य अवगाहना वाला एक पृथ्वीकायिक दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है,
(४) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है,
(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस और (८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से,
(९) दो अज्ञानों (मति-श्रुत) की अपेक्षा और,
(१०) अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा छः स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं।"
इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों का कथन भी करना चाहिए।
अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्याय भी ऐसे ही समझने चाहिए।

णवरं–सट्ठाणे चउट्ठाणवडिए।

विशेष–स्वस्थान में (अवगाहना की अपेक्षा) चतुःस्थानपतित हैं।

प. जहण्णठिईयाणं भंते ! पुढविकाइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णठिईयाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! जहण्णठिईयाए पुढविकाइए जहण्णठिइयस्स पुढविकाइयस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए तुल्ले।
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस,
(८) फासपज्जवेहिं,
(९) मइअण्णाण-सुयअण्णाण पज्जवेहिं,
(१०) अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णठिइयाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं उक्कोसठिईए वि।

अजहण्णमणुक्कोसठिईए वि एवं चेव।

णवरं–सट्ठाणे तिट्ठाणवडिए।

प्र. भंते ! जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला पृथ्वीकायिक दूसरे जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक से
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा तुल्य है,
(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस और
(८) स्पर्श के पर्यायों,
(९) मति-अज्ञान. श्रुत-अज्ञान और
(१०) अचक्षु-दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों के अनन्त पर्याय हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले के लिए भी समझ लेना चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

विशेष–स्वस्थान में त्रिस्थानपतित है।

प. जहण्णगुणकालयाणं भंते ! पुढविकाइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकालयाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! जहण्णगुणकालए पुढविकाइए जहण्णगुणकालगस्स पुढविकाइयस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए।
(४) ठिईए तिट्ठाणवडिए।
(५) कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले।
अवसेसेहि वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए,
(९) दोहिं अण्णाणेहिं
(१०) अचक्खुदंसण पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

प्र. भंते ! जघन्यगुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य गुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं?

उ. गौतम ! जघन्य गुण काला एक पृथ्वीकायिक दूसरे जघन्य गुण काले पृथ्वीकायिक से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है,
(५) कृष्ण वर्ण पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,
तथा अवशिष्ट वर्ण (६) गन्ध, (७) रस और (८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है एवं
(९) दो अज्ञान और
(१०) अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से भी षट्स्थानपतित है।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकालयाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं उक्कोसगुणकालए वि।

अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव।

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।
एवं पंच वण्णा, दो गंधा, पंच रसा, अट्ठ फासा भाणियव्वा।

प. जहण्णमइअण्णाणीणं भंते ! पुढविकाइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?
उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णमइअण्णाणीणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"
उ. गोयमा ! जहण्णमइअण्णाणीणं पुढविकाइए जहण्णमइ-अण्णाणिस्स पुढविकाइयस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए–तिट्ठाणवडिए,
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,
(९) मइअण्णाणपज्जवेहिं तुल्ले,
(१०) सुयअण्णाणपज्जवेहिं,
(११) अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णमइअण्णाणीणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं उक्कोस मइअण्णाणी वि।
अजहण्णमणुक्कोस मइअण्णाणी वि एवं चेव।

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।
एवं सुयअण्णाणी वि।
अचक्खुदंसणी वि एवं चेव।
एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।

दं. १७-१९. विगलिंदियाणं ओगाहणाइ विवक्खया पज्जवपमाणं–

प. जहण्णोगाहणगाणं भंते ! बेइंदियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?
उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य गुण काले पृथ्वीकायिकों के अनन्त पर्याय हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्याय समझने चाहिए।
अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।
विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।
इसी प्रकार पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और आठ स्पर्शों के पर्याय कहने चाहिए।

प्र. भंते ! जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं?
उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं?"
उ. गौतम ! एक जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है,
(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस और (८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(९) मति-अज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,
(१०) श्रुत-अज्ञान के पर्यायों
(११) अचक्षु-दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य मति अज्ञानी पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं।"
इसी प्रकार उत्कृष्ट मति-अज्ञानी के लिए भी कहना चाहिए।
अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) मति-अज्ञानी के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।
विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।
इसी प्रकार श्रुत-अज्ञानी और
अचक्षुदर्शनी पृथ्वीकायिक जीवों के पर्याय भी कहना चाहिए।
इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों पर्यन्त कथन करना चाहिए।

दं. १७-१९. अवगाहनादि की अपेक्षा से द्वीन्द्रियादि के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गये हैं?
उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जहण्णोगाहणगाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! जहण्णोगाहणए बेइंदिए जहण्णोगाहणस्स बेइंदियस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले,
(४) ठिईए तिट्ठाणवडिए,
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं,
(९) दोहिं णाणपज्जवेहिं,
(१०) दोहिं अण्णाणपज्जवेहिं,
(११) अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णोगाहणगाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एव उक्कोसोगाहणए वि।

णवरं–णाणा णत्थि।

अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए जहा जहण्णोगाहणए।

णवरं–सट्ठाणे ओगाहणाए चउट्ठाणवडिए।

प. जहण्णठिईयाणं भंते ! बेइंदियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णठिईयाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! जहण्णठिईए बेइंदिए जहण्णठिईयस्स बेइंदियस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए तुल्ले
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं,
(९) दोहिं अण्णाणपज्जवेहि,[1]
(१०) अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णट्ठिईयाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसट्ठिइए वि।[2]

"जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीव से,

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेश की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा (भी) तुल्य है,
(४) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है,
(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श के पर्यायों,
(९) दो ज्ञान पर्यायों,
(१०) दो अज्ञान पर्यायों तथा
(११) अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रियजीवों के अनन्त पर्याय हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय जानने चाहिए।

विशेष–उत्कृष्ट अवगाहना वाले के ज्ञान नहीं है।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवों के पर्याय जघन्य अवगाहना वाले की तरह जानना चाहिए।

विशेष–स्वस्थान में अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है।

प्र. भंते ! जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गये हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा (भी) तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा तुल्य है,
(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श के पर्यायों
(९) दो अज्ञानों एवं
(१०) अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों के पर्यायों का भी कथन करना चाहिए।

---

१. जघन्य स्थिति वाले बेइन्द्रियों में दस स्थान हैं। एक ज्ञान स्थान नहीं है।

२. उत्कृष्ट स्थिति वाले बेइन्द्रियों में इग्यारह (११) स्थान है।

णवरं–दो णाणा अब्भहिया।

अजहण्णमणुक्कोसठिइए जहा उक्कोसठिईए।

णवरं–ठिईए तिट्ठाणवडिए।

प. जहण्णगुणकालयाणं भंते ! बेइंदियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकालयाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! जहण्णगुणकालए बेइंदिए जहण्णगुणकालयस्स बेइंदियस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए।
(४) ठिईए तिट्ठाणवडिए।
(५) कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले,
अवसेसेहिं वण्ण, (६) गंध, (७) रस,
(८) फासपज्जवेहिं,
(९) दोहिं णाणपज्जवेहिं,
(१०) दोहिं अण्णाणपज्जवेहिं,
(११) अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकालयाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसगुणकालए वि।

अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव।

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

एवं पंच वण्णा, दो गंधा, पंच रसा, अट्ठ फासा भाणियव्वा।

प. जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते ! बेइंदियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी बेइंदिए जहण्णाभिणिबोहियणाणीस्स बेइंदियस्स-

विशेष–इनमें दो ज्ञान अधिक कहना चाहिए।

जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों के पर्याय कहे उसी प्रकार अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवों के पर्याय भी कहने चाहिए।

विशेष–स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है।

प्र. भंते ! जघन्यगुण कृष्ण वर्ण वाले द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गये हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
जघन्यगुण कृष्ण वर्ण वाले द्वीन्द्रियों के अनन्त पर्याय हैं?

उ. गौतम ! एक जघन्यगुण काला द्वीन्द्रिय जीव, दूसरे जघन्य गुण काले द्वीन्द्रिय जीव से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है,
(५) कृष्णवर्ण पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,
शेष वर्ण (६) गंध, (७) रस,
(८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा
(९) दो ज्ञान पर्यायों,
(१०) दो अज्ञान पर्यायों एवं
(११) अचक्षुदर्शन पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य गुण काले वर्ण वाले द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण काले द्वीन्द्रिय जीवों के पर्याय कहने चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले द्वीन्द्रिय जीवों का कथन भी इसी प्रकार है।

विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और आठ स्पर्शों की पर्याय भी कहने चाहिए।

प्र. भंते ! जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय से–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए।
(४) ठिईए तिट्ठाणवडिए।
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,
(९) आभिणिवोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुयणाण पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।
(१०) अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।[1]

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि।
अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि एवं चेव
णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।
एवं सुयणाणी वि, मइअण्णाणी वि, सुयअण्णाणी वि, अचक्खुदंसणी वि,
णवरं–जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि,
जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि।
जत्थ दंसण तत्थ णाणा वि, अण्णाणा वि।
एवं तेइंदियाणं वि।
चउरिंदियाण वि एवं चेव।
णवरं–चक्खुदंसणं अब्भहियं।

दं. २०. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं ओगाहणाइ विवक्खया पज्जवपमाणं–

प. जहण्णोगाहणगाणं भंते ! पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णोगाहणगाणं पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहण्णोगाहणए पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिए जहण्णोगाहणयस्स पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है।
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है।
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थान पतित है,
(५) वर्ण (६) गन्ध, (७) रस और (८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(९) आभिनिवोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(१०) अचक्षुदर्शनपर्यायों की अपेक्षा भी षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–"
"जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय हैं।
इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिवोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवों के पर्याय कहने चाहिए।
अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) आभिनिवोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए।
विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।
इसी प्रकार श्रुतज्ञानी, मति-अज्ञानी श्रुत-अज्ञानी और अचक्षुदर्शनी द्वीन्द्रिय जीवों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।
विशेष–जहाँ ज्ञान है, वहाँ अज्ञान नहीं होता,
जहाँ अज्ञान है, वहाँ ज्ञान नहीं होता है।
जहाँ दर्शन होता है वहाँ ज्ञान और अज्ञान भी होते हैं।
इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीवों के पर्याय के विषय में भी कहना चाहिए।
चतुरिन्द्रिय जीवों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।
विशेष–इनके चक्षुदर्शन अधिक है।

दं. २०. अवगाहनादि की अपेक्षा से पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,

१. जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञान वाले बेइन्द्रियों में अज्ञान नहीं है, इसलिए इनमें दस स्थान हैं।

(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले,
(४) ठिईए तिट्ठाणवडिए।
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं,
(९) दोहिं णाणपज्जवेहिं,
(१०) दोहिं अण्णाणपज्जवेहिं,
(११) दोहिं दंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णोगाहणगाणं पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव।

णवरं–तिहिं णाणपज्जवेहिं, तिहिं अण्णाणपज्जवेहिं, तिहिं दंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।
जहा उक्कोसोगाहणए तहा अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि।

णवरं–ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए।
ठिईए चउट्ठाणवडिए।

प. जहण्णठिईयाणं भंते ! पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं[1] केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णठिईयाणं पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"
उ. गोयमा ! जहण्णठिईए पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिए जहण्ण-ठिईयस्स पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियस्स-
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए
(४) ठिईए तुल्ले[1]
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं,
(९) दोहिं अण्णाणपज्जवेहिं,
(१०) दोहिं दंसण पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णठिईयाणं पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
उक्कोसठिईए वि एवं चेव।

णवरं–दो नाणा, दो अन्नाणा, दो दंसणा।

(३) अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है,
(४) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है,
(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श के पर्यायों
(९) दो ज्ञान पर्यायों
(१०) दो अज्ञान पर्यायों,
(११) दो दर्शन पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के अनन्त पर्याय हैं।"
उत्कृष्ट अवगाहना वाले के पर्याय के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।
विशेष–तीन ज्ञान तीन अज्ञान और तीन दर्शन पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
जिस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिकों के पर्याय कहे उसी प्रकार मध्यम अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के लिए भी कहना चाहिए।
विशेष–अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
स्थिति की अपेक्षा भी चतुःस्थानपतित है।

प्र. भंते ! जघन्य स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के कितने पर्याय कहे गये हैं ?
उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गये हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के अनन्त पर्याय हैं ?
उ. गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दूसरे जघन्य स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा (भी) तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है।
(४) स्थिति की अपेक्षा तुल्य है,
(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श के पर्यायों,
(९) दो अज्ञान पर्यायों,
(१०) दो दर्शन पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के अनन्त पर्याय हैं।"
उत्कृष्ट स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।
विशेष–इसमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन कहने चाहिए।

---

१. जघन्य स्थिति वाले तिर्यंच पंचेन्द्रियों में दस स्थान हैं। इनमें नौवां ज्ञान स्थान नहीं है।

अजहण्णमणुक्कोसठिईए वि एवं चेव।

णवरं–ठिईए चउट्ठाणवडिए।

तिण्णि णाणा, तिण्णि अण्णाणा, तिण्णि दंसणा।

प. जहण्णगुणकालगाणं भंते ! पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णगुणकालगाणं पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहण्णगुणकालए पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिए जहण्णगुणकालगस्स पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,

(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए।

(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए।

(५) कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले,

अवसेसेहिं वण्ण, (६) गंध, (७) रस,

(८) फासपज्जवेहिं,

(९) तिहिं णाणपज्जवेहिं,

(१०) तिहिं अण्णाणपज्जवेहिं,

(११) तिहिं दंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णगुणकालगाणं पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसगुणकालए वि।

अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव।

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

एवं पंच वण्णा, दो गंधा, पंच रसा, अट्ठ फासा।

प. जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते ! पंचेंदिय- तिरिक्ख-जोणियाणं[1] केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं पंचेंदिय- तिरिक्ख-जोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणिए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियस्स–

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

विशेष–स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है

(इसमें) तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन कहने चाहिए।

प्र. भंते ! जघन्यगुण काले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के कितने पर्याय कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्यगुण कृष्ण पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्य गुण कृष्ण पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दूसरे जघन्य गुण कृष्ण पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(५) कृष्ण वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,

शेष वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस,

(८) स्पर्श पर्यायों,

(९) तीन ज्ञान पर्यायों,

(१०) तीन अज्ञान पर्यायों और

(११) तीन दर्शन पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य गुण कृष्ण पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के अनन्त पर्याय हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्टगुण कृष्ण के पर्याय भी कहने चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण कृष्ण पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित हैं।

इसी प्रकार पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और आठ स्पर्शों से (युक्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के पर्याय भी कहने चाहिए।)

प्र. भंते ! जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों के कितने पर्याय कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से–

१. जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञान वाले तिर्यंच पंचेंद्रियों में दसवाँ अज्ञान स्थान नहीं है–इसलिए इनमें दस स्थान है।

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,
(९) आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुयणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,
(१०) चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णाभिणिवोहियणाणीणं पंचेंदिय-तिरिक्ख-जोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसाभिणिवोहियणाणी वि।

णवरं–ठिईए तिट्ठाणवडिए।
तिण्णि णाणा, तिण्णि दंसणा, सट्ठाणे तुल्ले, सेसेसु छट्ठाणवडिए।

अजहण्णुक्कोसाभिणिबोहियणाणी जहा उक्कोसाभिणिबोहियणाणी।

णवरं–ठिईए चउट्ठाणवडिए।
सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

एवं सुयणाणी वि।

प. जहण्णोहिणाणीणं भंते ! पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?
उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णोहिणाणीणं पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"
उ. गोयमा ! जहण्णोहिणाणी पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिए जहण्णोहिणाणिस्स पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए तिट्ठाणवडिए,
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं,
(९) आभिणिवोहियणाण - सुयणाणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए,
ओहिणाणपज्जवेहिं तुल्ले,
अण्णाणा णत्थि,

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है
(४) स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,
(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(९) आभिनिवोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(१०) चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के अनन्त पर्याय हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिवोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको के पर्याय भी कहने चाहिए।

विशेष–स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है
तीन ज्ञान और तीन दर्शन में से स्वस्थान में तुल्य है, शेष सव में षट्स्थानपतित है।

मध्यम आभिनिवोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के पर्याय भी उत्कृष्ट आभिनिवोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के समान कहना चाहिए।

विशेष–स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,
स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

आभिनिवोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के पर्यायों के समान श्रुतज्ञानी के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं?
उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गये हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के अनन्त पर्याय हैं?"
उ. गौतम ! एक जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दूसरे जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है
(२) प्रदेशों की अपेक्षा (भी) तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है,
(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा,
(९) आभिनिवोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
अवधिज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।
(इसमें) अज्ञान नहीं कहना चाहिए।

(१०) चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं ओहिदंसण पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णोहिणाणीणं पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसोहिणाणी वि।

अजहण्णुक्कोसोहिणाणी वि एवं चेव।

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

जहा आभिणिबोहियणाणी तहा मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य।

जहा ओहिणाणी तहा विभंगणाणी वि।

चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी य जहा आभिणिबोहियणाणी।

ओहिदंसणी जहा ओहिणाणी।

जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि।

जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि।

जत्थ दंसणा तत्थ णाणा वि अण्णाणा वि अत्थि त्ति भाणियव्वं।

दं. २१. मणुस्साणं ओगाहणाइ विवक्खया पज्जवपमाणं–

प. जहण्णोगाहणगाणं भंते ! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णोगाहणगाणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहण्णोगाहणए मणूसे जहण्णोगाहणगस्स मणुसस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,

(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले।

(४) ठिईए तिट्ठाणवडिए।

(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं,

(९) तिहिं णाणपज्जवेहिं,

(१०) दोहिं अण्णाणपज्जवेहिं,

(११) तिहिं दंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

(१०) चक्षुदर्शन-पर्यायों, अचक्षुदर्शन-पर्यायों और अ दर्शन पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के अ पर्याय हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनि पर्यायों के लिए भी कहना चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनि पर्यायों के लिए भी उसी प्रकार कहना चाहिए।

विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

जिस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी के पर्याय के लिए कह प्रकार मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी के लिए कहना च

जैसा अवधिज्ञानी के लिए कहा वैसा ही विभंगज्ञानी के कहना चाहिए।

चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी के पर्यायों का आभिनिबोधिकज्ञानी के समान है।

अवधिदर्शनी का कथन अवधिज्ञानी की तरह है।

जहाँ ज्ञान है, वहां अज्ञान नहीं है,

जहाँ अज्ञान है, वहाँ ज्ञान नहीं है।

जहाँ दर्शन है, वहाँ ज्ञान और अज्ञान दोनों हो सकते हैं कहना चाहिए।

दं. २१. अवगाहनादि की अपेक्षा मनुष्यों के पर्या परिमाण–

प्र. भंते ! जघन्य अवगाहना वाले मनुष्यों के कितने पर्या गये हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य अवगाहना वाले मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला मनुष्य दूसरे अवगाहना वाले मनुष्य से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है,

(४) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है,

(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस और (८) स्पर्श के प की अपेक्षा,

(९) तीन ज्ञान पर्यायों,

(१०) दो अज्ञान पर्यायों,

(११) तीन दर्शन पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जहण्णोगाहणगाणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

"जघन्य अवगाहना वाले मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं।"

उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों के पर्यायों के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

णवरं–ठिईए–१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए,
जइ हीणे-एकट्ठाणवडिए–
असंखेज्जइभागहीणे,
अह अब्भहिए-एगट्ठाणवडिए।
असंखेज्जइभागअब्भहिए,
दो णाणा, दो अण्णाणा, दो दंसणा।

विशेष–स्थिति की अपेक्षा १. कदाचित् हीन, २. कदाचित् तुल्य, ३. कदाचित् अधिक होता है।
यदि हीन हो तो–एक स्थानपतित है।
असंख्यातवें भाग हीन है,
यदि अधिक है तो–एक स्थानपतित है,
असंख्यातवें भाग अधिक है,
उनमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन होते हैं।

अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले मनुष्यों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

णवरं–१. ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
२. ठिईए चउट्ठाणवडिए।
आइल्लेहिं चउहिं नाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,
केवलणाणपज्जवेहिं तुल्ले,
तिहिं अण्णाणपज्जवेहिं, तिहिं दंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,
केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले।

विशेष–१. अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
२. स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
आदि के चार ज्ञानों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,
तीन अज्ञान और तीन दर्शनों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।

प. जहण्णठिईयाणं भंते ! मणुस्साणं[1] केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णठिईयाणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"
उ. गोयमा ! जहण्णठिईए मणुस्से जहण्णठिईयस्स मणुसस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए तुल्ले,
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं,
(९) दोहिं अण्णाणपज्जवेहिं,
(१०) दोहिं दंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णठिईयाणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं उक्कोसठिईए वि।

प्र. भंते ! जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं ?
उ. गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला मनुष्य दूसरे जघन्य स्थिति वाले मनुष्य से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा तुल्य है,
(५) वर्ण, (६) गन्ध (७) रस, (८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा,
(९) दो अज्ञान पर्यायों और
(१०) दो दर्शन पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं।"
उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

णवरं–दो णाणा, दो अण्णाणा, दो दंसणा।

विशेष–(उनमें) दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन होते हैं।

---

१. जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों में ९वाँ ज्ञान स्थान नहीं है, इसलिए इनमें दस स्थान हैं।

अजहण्णमणुक्कोसठिईए वि एवं चेव।

णवरं–ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
ठिईए चउट्ठाणवडिए,
आइल्लेहिं चउनाणेहिं छट्ठाणवडिए,
केवलनाणपज्जवेहिं तुल्ले,
तिहिं अण्णाणपज्जवेहिं,
तिहिं दंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए,
केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले मनुष्यों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

विशेष–अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
आदि के चार ज्ञानों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,
तीन अज्ञान पर्यायों,
तीन दर्शन पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।

प. जहण्णगुणकालयाणं भंते ! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकालयाणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहण्णगुणकालए मणूसे जहण्णगुणकालगस्स मणुसस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए।
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए।
(५) कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले,
अवसेसेहिं वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए,
(९) चउहिं णाणेहिं छट्ठाणवडिए, केवलणाणपज्जवेहिं तुल्ले,
(१०) तिहिं अण्णाणपज्जवेहिं,
(११) तिहिं दंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकालयाणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

प्र. भंते ! जघन्य गुण कृष्ण मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुण कृष्ण मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्यगुण कृष्ण मनुष्य दूसरे जघन्य गुण कृष्ण मनुष्य से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५) कृष्ण वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,
शेष वर्ण, ६. गन्ध, ७. रस, ८. स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है
(९) चार ज्ञानों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,
(१०) तीन अज्ञान पर्यायों
(११) तीन दर्शन पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, केवलदर्शन पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुण कृष्ण मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं।"

एवं उक्कोसगुणकालए वि।

इसी प्रकार उत्कृष्टगुण कृष्ण मनुष्यों के पर्याय भी कहने चाहिए।

अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण कृष्ण मनुष्यों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।
एवं पंच वण्णा, दो गंधा, पंच रसा, अट्ठ फासा भाणियव्वा।

विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।
इसी प्रकार पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस एवं आठ स्पर्श वाले मनुष्यों के पर्याय भी कहने चाहिए।

प. जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते ! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

प्र. भंते ! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गये हैं ?

[illegible]

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी मणूसे जहण्णाभिणि-वोहियणाणिस्स मणुसस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,
(९) आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुयणाण–पज्जवेहिं,
(१०) दोहिं दंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि।

णवरं–ठिईए तिट्ठाणवडिए,
तिहिं णाणपज्जवेहिं, तिहि दंसणपज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए।
सट्ठाणे तुल्ले।
अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी जहा उक्कोसाभिणि-वोहियणाणी।

णवरं–ठिईए–चउट्ठाणवडिए,
सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।
एवं सुयणाणी वि।

प. जहण्णोहिणाणीणं भंते ! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णोहिणाणीणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहण्णोहिणाणी मणुस्से जहण्णोहिणाणिस्स मणुसस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए।

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्य दूसरे जघन्य आभिनिवोधिक-ज्ञानी मनुष्य से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५) वर्ण, (५) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(९) आभिनिवोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा और
(१०) दो दर्शन पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य आभिनिवोधिक ज्ञानी मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिवोधिक ज्ञानी मनुष्यों के पर्याय कहने चाहिए।
विशेष–स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है,
तीन ज्ञान के पर्यायों और तीन दर्शनों के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
स्वस्थान में तुल्य है।
अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) आभिनिवोधिक ज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों का कथन उत्कृष्ट आभिनिवोधिक ज्ञानी मनुष्यों के समान कहना चाहिए।
विशेष–स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।
इसी प्रकार श्रुतज्ञानी मनुष्यों के पर्याय भी कहने चाहिए।

प्र. भंते ! जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गये हैं ।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्य, दूसरे जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्य से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा (भी) तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित (पाठान्तर की दृष्टि से त्रिस्थानपतित) है।

(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए,
(९) केवलणाणपज्जवेहिं,
(१०) केवलदंसणपज्जवेहि य तुल्ले।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"केवलणाणीणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं केवलदंसणी वि मणूसे भाणियव्वे।

दं.२२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं ओगाहणाइ विवक्खया पज्जवपमाणं–
वाणमंतरा जहा असुरकुमारा।

एवं जोइसिया वेमाणिया।

णवरं–सट्ठाणे ठिईए तिट्ठाणवडिए भाणियव्वे।

से त्तं जीवपज्जवा।

–पण्ण. प. ५, सु. ४५५-४९९

(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(९) केवलज्ञान के पर्यायों
(१०) केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"केवलज्ञानी मनुष्यों के अनन्त पर्याय हैं।"
इसी प्रकार केवलदर्शनी मनुष्यों के लिए भी कहना चाहिए।

दं. २२-२४. अवगाहनादि की अपेक्षा से वाणव्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक के पर्यायों का परिमाण–
वाणव्यन्तर देवों के पर्यायों का कथन असुरकुमारों के समान है।

ज्योतिष्कों और वैमानिक देवों के पर्यायों का कथन इसी प्रकार है।

विशेष–स्वस्थान में स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित कहना चाहिए।

यह जीव के पर्यायों की प्ररूपणा हुई।

७. अजीवपज्जवाणं भेयप्पभेया पमाणं य–

प. अजीवपज्जवा णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. रूविअजीवपज्जवा य, २. अरूविअजीवपज्जवा य।
प. अरूविअजीवपज्जवा णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता, तं जहा–
(१) धम्मत्थिकाए,
(२) धम्मत्थिकायस्स देसे,
(३) धम्मत्थिकायस्स पदेसा,
(४) अधम्मत्थिकाए,
(५) अधम्मत्थिकायस्स देसे,
(६) अधम्मत्थिकायस्स पदेसा,
(७) आगासत्थिकाए,
(८) आगासत्थिकायस्स देसे,
(९) आगासत्थिकायस्स पदेसा
(१०) अद्धासमए।
प. रूविअजीवपज्जवा णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. खंधा, २. खंधदेसा,
३. खंधपदेसा, ४. परमाणुपोग्गले।
प. रूवीअजीवपज्जवा णं भंते ! किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?
उ. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।
प. से केणट्ठणं भंते ! एव वुच्चइ–

७. अजीव पर्यायों के भेद-प्रभेद और उनका परिमाण–

प्र. भंते ! अजीव पर्याय कितने प्रकार के कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. रूपी अजीव पर्याय, २. अरूपी अजीव पर्याय।
प्र. भंते ! अरूपी अजीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! वे दस प्रकार के कहे गए हैं। यथा–
(१) धर्मास्तिकाय,
(२) धर्मास्तिकाय के देश,
(३) धर्मास्तिकाय के प्रदेश,
(४) अधर्मास्तिकाय,
(५) अधर्मास्तिकाय के देश,
(६) अधर्मास्तिकाय के प्रदेश,
(७) आकाशास्तिकाय,
(८) आकाशास्तिकाय के देश,
(९) आकाशास्तिकाय के प्रदेश,
(१०) अद्धासमय।
प्र. भंते ! रूपी अजीव के पर्याय कितने प्रकार के कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! वे चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. स्कन्ध, २. स्कन्ध के देश,
३. स्कन्ध के प्रदेश, ४. परमाणु पुद्गल।
प्र. भंते ! रूपी अजीव पर्याय संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?
उ. गौतम ! वे संख्यात और असंख्यात नहीं हैं किन्तु अनन्त हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

१. संखेज्जगुणहीणे वा, २. असंखेज्जगुणहीणे वा,
३. अणंतगुणहीणे वा।
अह अब्भहिए–
१. अणंतभाग अब्भहिए वा,
२. असंखेज्जइभाग अब्भहिए वा,
३. संखेज्जइभाग अब्भहिए वा।
१. संखेज्जगुण अब्भहिए वा,
२. असंखेज्जगुण अब्भहिए वा,
३. अणंतगुण अब्भहिए वा।

एवं अवसेस (५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

फासा णं सीय-उसिण-निद्धलुक्खेहिं छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
–पण्ण. प. ५ सु. ५०४

१. संख्यातगुण हीन है, २. असंख्यातगुण हीन है
३. अनन्तगुण हीन है।
यदि अधिक है तो–
१. अनन्तवां भाग अधिक है,
२. असंख्यातवां भाग अधिक है,
३. संख्यातवां भाग अधिक है।
१. संख्यातगुण अधिक है,
२. असंख्यातगुण अधिक है,
३. अनन्तगुण अधिक है।

इसी प्रकार शेष (५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस और (८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

स्पर्शों में शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"परमाणु-पुद्‌गलों के अनन्त पर्याय हैं।"

९. खंधाणं पज्जवपमाणं–

प. दुपदेसियाणं खंधाणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?
उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"दुपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"
उ. गोयमा ! दुपदेसिए खंधे दुपदेसियस्स खंधस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए–१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए।
जइ हीणे–पदेसहीणे,
अह अब्भहिए–पदेसमब्भहिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए।
(५) वण्णाइहिं उवरिल्लेहिं चउहिं फासेहि य छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"दुपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं तिपदेसिए वि,

णवरं–ओगाहणट्ठयाए–१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए।
जइ हीणे–पदेसहीणे वा, दुपदेसहीणे वा।
अह अब्भहिए–पदेसमब्भहिए वा, दुपदेसमब्भहिए वा।

९. स्कन्धों के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! द्विप्रदेशिक स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?
उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं?"
उ. गौतम ! एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध, दूसरे द्विप्रदेशिक स्कन्ध से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा–१. कदाचित् हीन है, २. कदाचित् तुल्य है, ३. कदाचित् अधिक है।
यदि हीन है तो–एक प्रदेश हीन है,
यदि अधिक है तो–एक प्रदेश अधिक है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५) वर्ण आदि की अपेक्षा और उपर्युक्त चार (शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष) स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"द्विप्रदेशी स्कन्धों की अनन्त पर्याय हैं।"
इसी प्रकार त्रिप्रदेशिक स्कन्धों के पर्यायों का कथन करना चाहिए।
विशेष–अवगाहना की अपेक्षा–१. कदाचित् हीन है, २. कदाचित् तुल्य है, ३. कदाचित् अधिक है।
यदि हीन है तो–एक प्रदेश से हीन है या दो प्रदेश से हीन है।
यदि अधिक है तो–एक प्रदेश से अधिक है या दो प्रदेश से अधिक है।

एवं जाव दसपदेसिए,

णवरं–ओगाहणाए पदेसपरिवुड्ढी कायव्वा जाव दसपदेसिए नवपदेसहीणे त्ति।

प. संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! संखेज्जपदेसिए खंधे संखेज्जपदेसियस्स खंधस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठाए–१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए।
जइ हीणे–
१. संखेज्जइभागहीणे वा, २. संखेज्जइगुणहीणे वा।
अह अब्भहिए–
१. संखेज्जइ भागअब्भहिए वा,
२. संखेज्जगुण अब्भहिए वा।
(३) ओगाहणट्ठयाए वि दुट्ठाणवडिए।
(४) ठिइए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) वण्णाइउवरिल्ल चउफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

प. असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! असंखेज्जपदेसिए खंधे असंखेज्जपदेसियस्स खंधस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) वण्णाइ उवरिल्ल चउफासेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

इसी प्रकार दशप्रदेशिक स्कन्धों पर्यन्त पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।

विशेष–अवगाहना की अपेक्षा प्रदेशों की (क्रमशः) वृद्धि करना चाहिए, यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध नौ प्रदेश-हीन तक होता है।

प्र. भंते ! संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पयार्य कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! एक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा–१. कदाचित् हीन है, २. कदाचित् तुल्य है, ३. कदाचित् अधिक है।
यदि हीन है तो–
१. संख्यातवें भाग हीन है, २. संख्यातगुण हीन है।
यदि अधिक है तो–
१. संख्यातवें भाग अधिक है,
२. संख्यातगुण अधिक है।
(३) *अवगाहना की अपेक्षा भी द्विस्थानपतित है।*
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है।
(५-८) वर्णादि तथा ऊपर के चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं।"

प्र. भंते ! असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"असंख्यातप्रदेशिक स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं ?"

उ. गौतम ! एक असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध दूसरे असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५-८) वर्णादि तथा ऊपर के चार स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।"

प. अणंतपदेसियाणं खंधाणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! अणंतपदेसिए खंधे अणंतपदेसियस्स खंधस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५) वण्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"अणन्तपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
–पण्ण. प. ५, सु. ५०५-५१०

प्र. भंते ! अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?"

उ. गौतम ! एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध दूसरे अनन्त प्रदेशी स्कन्ध से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।"

१०. एगाइपदेसोगाढाणं पोग्गलाणं पज्जव पमाणं

प. एगपदेसोगाढाणं पोग्गलाणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"एगपदेसोगाढाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! एगपदेसोगाढे पोग्गले एगपदेसोगाढस्स पोग्गलस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले,
(४) ठिइए चउट्ठाणवडिए,
(५–८) वण्णाइ उवरिल्ल चउफासेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"एगपदेसोगाढाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं दुपदेसोगाढे वि जाव दसपदेसोगाढे वि।

प. संखेज्जपदेसोगाढाणं पोग्गलाणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"संखेज्जपदेसोगाढाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

१०. एकादि प्रदेशावगाढ़ पुद्गलों के पर्यायों का परिमाण

प्र. भंते ! एक प्रदेश में अवगाढ़ पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"एक प्रदेश में अवगाढ़ पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?'

उ. गौतम ! एक प्रदेश में अवगाढ़ एक पुद्गल, दूसरे एक प्रदेश में अवगाढ़ एक पुद्गल से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५-८) वर्णादि तथा अन्तिम चार स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"एक प्रदेश में अवगाढ पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।"

इसी प्रकार द्विप्रदेशावगाढ से दशप्रदेशावगाढ स्कन्ध पर्यन्त पर्यायों के लिए कहना चाहिए।

प्र. भंते ! संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?"

उ. गोयमा ! संखेज्जपदेसोगाढे पोग्गले संखेज्जपदेसोगाढस्स पोग्गलस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,

(३) ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए,

(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,

(५-८) वण्णाइ उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"संखेज्जपदेसोगाढाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

प. असंखेज्जपदेसोगाढाणं पोग्गलाणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"असंखेज्जपदेसोगाढाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! असंखेज्जपदेसोगाढे पोग्गले असंखेज्जपदेसोगाढस्स पोग्गलस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,

(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,

(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,

(५-८) वण्णाइ अट्ठफासेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"असंखेज्जपदेसोगाढाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

–पण्ण. प. ५, सु. ५११-५१४

उ. गौतम ! एक संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल दूसरे संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा द्विस्थानपतित है,

(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(५-८) वर्णादि तथा अन्तिम चार स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"संख्यात प्रदेशावगाढ पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।"

प्र. भंते ! असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं ?'

उ. गौतम ! एक असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल दूसरे असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(५-८) वर्णादि तथा आठ स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।'

११. एगाइसमयठिईयाणं पोग्गलाणं पज्जव पमाणं–

प. एगसमयठिईयाणं पोग्गलाणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"एगसमयठिईयाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! एगसमयठिइए पोग्गले एगसमयठिईयस्स पोग्गलस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,

(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,

(४) ठिईए तुल्ले,

(५-८) वण्णाइ अट्ठफासेहि य छट्ठाणवडिए।

११. एकादि समय की स्थिति वाले पुद्गलों के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं ?"

उ. गौतम ! एक समय की स्थिति वाला एक पुद्गल, दूसरे एक समय की स्थिति वाले एक पुद्गल से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(४) स्थिति की अपेक्षा तुल्य है,

(५-८) वर्णादि तथा आठ स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"एगसमयठिइयाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"
एवं जाव दससमयठिईए।

संखेज्जसमयठिईयाणं एवं चेव।

णवरं–ठिईए दुट्ठाणवडिए।
असंखेज्जसमयठिईयाणं एवं चेव।

णवरं–ठिईए चउट्ठाणवडिए।

–पण्ण. प. ५, सु. ५१५-५१८

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।"
इसी प्रकार दस समय की स्थिति वाले पुद्गल पर्यन्त पर्याय कहने चाहिए।
संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।
विशेष–स्थिति की अपेक्षा द्विस्थानपतित है।
असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों के पर्यायों का कथन भी इसी प्रकार है।
विशेष–स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है।

१२. एगाइगुणवण्ण-गंध-रस-फासयाणं पोग्गलाणं पज्जव पमाणं–

प. एगगुणकालगाणं पोग्गलाणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"एगगुणकालगाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! एगगुणकालए पोग्गले एगगुणकालगस्स पोग्गलस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले,
अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

अट्ठहिं फासेहिं छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"एगगुणकालगाणं पोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं जाव दसगुणकालए।

संखेज्जगुणकालए वि एवं चेव,

णवरं–सट्ठाणे दुट्ठाणवडिए।
एवं असंखेज्जगुणकालए वि,

णवरं–सट्ठाणे चउट्ठाणवडिए।
एवं अणंतगुणकालए वि,

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

१२. एकादिगुणयुक्त वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले पुद्गलों के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! एक गुण काले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"एक गुण काले पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम ! एक गुण काला एक पुद्गल दूसरे एक गुण काले पुद्गल से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५-८) कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है।
शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है एवं
अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा (भी) षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"एक गुण काले पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"
इसी प्रकार दश गुण काले (पुद्गल) पर्याय पर्यन्त कहने चाहिए।
संख्यातगुण काले (पुद्गलों) के पर्याय भी इसी प्रकार जानने चाहिए।
विशेष–स्वस्थान में द्विस्थानपतित है।
इसी प्रकार असंख्यातगुण काले (पुद्गलों) के पर्याय कहने चाहिए।
विशेष–स्वस्थान में चतुःस्थानपतित है।
इसी प्रकार अनन्तगुण काले (पुद्गलों) के पर्याय भी जानने चाहिए।
विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

एवं जहा कालवण्णस्स वत्तव्वया भणिया तहा सेसाण वि वण्ण-गंध-रस-फासाणं वत्तव्वया भाणियव्वा जाव अणंतगुणलुक्खे।

–पण्ण. प. ५, सु. ५१९-५२४

१३. जहण्णोगाहणगाईणं दुपदेसाइयाणं पोग्गलाणं पज्जव पमाणं

प. जहण्णोगाहणगाणं भंते ! दुपदेसियाणं पोग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णोगाहणं दुपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहण्णोगाहणए दुपदेसिए खंधे जहण्णोगाहणस्स दुपदेसियस्स खंधस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,

(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले,

(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,

(५–८) कालवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,

सेसं वण्ण–गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,

सीय-उसिण-णिद्ध-लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णोगाहणगाणं दुपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव।

अजहण्णमणुक्कोसोगाहणओ णत्थि।

प. जहण्णोगाहणयाणं भंते ! तिपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णोगाहणयाणं तिपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहा दुपदेसिए जहण्णोगाहणए,

उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव।

एवं अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

इसी प्रकार जैसे कृष्णवर्ण वाले (पुद्गलों) के पर्याय कहे वैसे ही शेष सब वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले पुद्गलों के पर्याय अनन्तगुण रूक्ष पर्यन्त जानने चाहिए।

१३. जघन्य अवगाहना आदि वाले द्विप्रदेशी आदि स्कन्धों के पर्यायों का परिमाण

प्र. भंते ! जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला द्विप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है,

(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(५-८) कृष्ण वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,

शेष वर्ण, गन्ध और रस के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा भी षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशिक स्कन्ध के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

उत्कृष्ट अवगाहना वाले भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध नहीं होते !

प्र. भंते ! जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ?"

उ. गौतम ! जैसे जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कहे उसी प्रकार यहाँ भी कहने चाहिए।

इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय भी कहने चाहिए।

इसी प्रकार अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय भी कहने चाहिए।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जहण्णोगाहणयाणं तिपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

प. जहण्णोगाहणयाणं भंते ! चउपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहा जहण्णोगाहणए दुपदेसिए तहा जहण्णो-गाहणए चउप्पदेसिए।

एवं जहा उक्कोसोगाहणए दुपदेसिए तहा उक्कोसोगाहणए चउप्पएसिए वि।

एवं अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि, चउप्पएसिए,

णवरं–ओगाहणट्ठयाए–१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए।

जइ हीणे–पदेसहीणे,

अह अब्भहिए–पदेसअब्भहिए।

एवं जाव दसपदेसिए णेयव्वं,

णवरं–अजहण्णुक्कोसोगाहणए पदेसपरिवुड्ढी कायव्वा जाव दसपदेसियस्स सत्त पदेसापरिवुड्ढिज्जंति।

प. जहण्णोगाहणगाणं भंते ! संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णोगाहणगाणं संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहण्णोगाहणए संखेज्जपदेसिए जहण्णो-गाहणगस्स संखेज्जपदेसियस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए,

(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले,

(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,

(५–८) वण्णाइ चउफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णोगाहणगाणं संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसगाहणए वि,

अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव,

"जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी स्कन्ध के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

प्र. भंते ! जघन्य अवगाहना वाले चतु:प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जैसे जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध के पर्याय कहे उसी प्रकार जघन्य अवगाहना वाले चतु:प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय भी कहने चाहिए।

जिस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कहे उसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले चतु:प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय भी कहने चाहिए।

इसी प्रकार मध्यम अवगाहना वाले चतु:प्रदेशी स्कन्ध के पर्याय जानने चाहिए।

विशेष–अवगाहना की अपेक्षा– १. कदाचित् हीन है, २. कदाचित् तुल्य है, ३. कदाचित् अधिक है।

यदि हीन है तो–एक प्रदेश हीन है,

यदि अधिक है तो–एक प्रदेस अधिक है।

इसी प्रकार दशप्रदेशी स्कन्ध के पर्याय पर्यन्त कहने चाहिए।

विशेष–अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले में एक-एक प्रदेश की परिवृद्धि करनी चाहिए।

इस प्रकार दशप्रदेशी पर्यन्त सात प्रदेश वढ़ते हैं।

प्र. भंते ! जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य अवगाहना वाले संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा द्विस्थानपतित है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है,

(४) स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,

(५-८) वर्णादि और चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य अवगाहना वाले संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले के लिए भी जानने चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों का कथन भी इसी प्रकार है।

णवरं–सट्ठाणे दुट्ठाणवडिए।

प. जहण्णोगाहणगाणं भंते ! असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णोगाहणगाणं असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! जहण्णोगाहणए असंखेज्जपदेसिए खंधे जहण्णोगाहणगस्स असंखेज्जपदेसियस्स खंधस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,

(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले,

(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,

(५-८) वण्णाइ उवरिल्लफासेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णोगाहणगाणं असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसोगाहणए वि,

अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव,

णवरं–सट्ठाणे चउट्ठाणवडिए।

प. जहण्णोगाहणगाणं भंते ! अणंतपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णोगाहणगाणं अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! जहण्णोगाहणए अणंतपदेसिए खंधे जहण्णोगाहणगस्स अणंतपदेसियस्स खंधस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,

(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले,

(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,

(५-८) वण्णाइ उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

विशेष–स्वस्थान में (अवगाहना की अपेक्षा) द्विस्थानपतित है।

प्र. भंते ! जघन्य अवगाहना वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य अवगाहना वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य अवगाहना वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है,

(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(५-८) वर्णादि तथा अन्तिम चार स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य अवगाहना वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

उत्कृष्ट अवगाहना वाले (असंख्यातप्रदेशी) स्कन्धों के पर्यायों के लिए भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

अजघन्य अनुत्कृष्ट मध्यम अवगाहना वाले पर्यायों के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

विशेष–स्वस्थान में चतुःस्थानपतित है।

प्र. भंते ! जघन्य अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है,

(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,

(५-८) वर्णादि तथा अन्तिम चार स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जहण्णोगाहणगाणं अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव,

णवरं–ठिईए वि तुल्ले।

प. अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं भंते ! अणंतपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए अणंतपदेसिए खंधे अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगस्स अणंतपदेसियस्स खंधस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५–८) वण्णाइ अट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।" –पण्ण. प. ५, सु. ५२५-५३१

"जघन्य अवगाहना वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं।"

उत्कृष्ट अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय भी इसी प्रकार जानने चाहिए।

विशेष–स्थिति की अपेक्षा तुल्य है।

प्र. भंते ! अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्ध के अनन्त पर्याय हैं ?"

उ. गौतम ! अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाला अनन्त प्रदेशी स्कन्ध दूसरे मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५-८) वर्णादि और आठ स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्ध के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

१४. जहण्णाइ ठिइयाणं परमाणुआईणं पज्जव पमाणं–

प. जहण्णठिईयाणं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णठिईयाणं परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहण्णठिईए परमाणुपोग्गले जहण्णठिईयस्स परमाणुपोग्गलस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले
(४) ठिइए तुल्ले,
(५-८) वण्णाइ दुफासेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णठिईयाणं परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसठिईए वि,

अजहण्णमणुक्कोसठिईए वि एवं चेव,

१४. जघन्यादि स्थिति वाले परमाणु आदि के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गल से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है,
(४) स्थिति की अपेक्षा तुल्य है।
(५–८) वर्णादि तथा दो स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले परमाणुपुद्गलों के पर्याय भी जानने चाहिए।

अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले परमाणुपुद्गलों के पर्याय भी इसी प्रकार जानने चाहिए।

णवरं–ठिईए चउट्ठाणवडिए।

प. जहण्णठिईयाणं भंते ! दुपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णठिईयाणं दुपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! जहण्णठिईए दुपदेसिए खंधे जहण्णठिईयस्स दुपदेसियस्स खंधस्स-

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,

(३) ओगाहणट्ठयाए–१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए।

जइ हीणे–पदेसहीणे,

अह अब्भहिए–पदेसअब्भहिए,

(४) ठिईए तुल्ले,

(५-८) वण्णाइ चउफासेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णठिईयाणं दुपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसठिईए वि।

अजहण्णमणुक्कोसठिईए वि एवं चेव,

णवरं–ठिईए चउट्ठाणवडिए।

एवं जाव दसपदेसिए,

णवरं–पदेसपरिवुड्ढीकायव्वा।

ओगाहणट्ठयाए तिसु वि गमएसु जाव दसपदेसिए नव पदेसा वड्ढिज्जंति।

प. जहण्णठिईयाणं भंते ! संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णठिईयाणं संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा ! जहण्णठिईए संखेज्जपदेसिए खंधे जहण्णठिईयस्स संखेज्जपदेसियस्स खंधस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए,

विशेष–स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है।

प्र. भंते ! जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं?

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा–१. कदाचित् हीन, २. कदाचित् तुल्य, ३. कदाचित् अधिक है,

यदि हीन है तो–एक प्रदेश हीन है,

यदि अधिक है तो–एक प्रदेश अधिक है।

(४) स्थिति की अपेक्षा तुल्य है,

(५-८) वर्णादि तथा चार स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कहने चाहिए।

अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

विशेष–स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है।

इसी प्रकार दशप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त पर्याय कहने चाहिए।

विशेष–इसमें एक-एक प्रदेश की क्रमशः परिवृद्धि करनी चाहिए।

अवगाहना के तीनों आलापकों में दशप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त नौ प्रदेशों की वृद्धि होती है।

प्र. भंते ! जघन्य स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेश की अपेक्षा द्विस्थानपतित है,

(३) ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए,

(४) ठिईए तुल्ले,

(५-८) वण्णाइ चउफासेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णठिईयाणं संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसठिईए वि,

अजहण्णमणुक्कोसठिईए वि एवं चेव,

णवरं–ठिईए चउट्ठाणवडिए।

प. जहण्णठिईयाणं भंते ! असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णठिईयाणं असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णठिईअसंखेज्जपदेसिए खंधे जहण्णठिईयस्स असंखेज्जपदेसियस्स खंधस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,

(२) पदेसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,

(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,

(४) ठिईए तुल्ले,

(५-८) वण्णाइ उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णठिईयाणं असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसठिईए वि,

अजहण्णमणुक्कोसठिईए वि एवं चेव,

णवरं–ठिईए चउट्ठाणवडिए।

प. जहण्णठिईयाणं भंते! अणंतपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णठिईयाणं अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?"

उ. गोयमा ! जहण्णठिईए अणंतपदेसिए खंधे जहण्णठिईयस्स अणंतपदेसियस्स खंधस्स–

(३) अवगाहना की अपेक्षा भी द्विस्थानपतित है,

(४) स्थिति की अपेक्षा तुल्य है,

(५-८) वर्णादि तथा चार:स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय जानने चाहिए।

अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

विशेष–स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है।

प्र. भंते ! जघन्य स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,

(२) प्रदेशों की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,

(३) अवगाहना की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है,

(४) स्थिति की अपेक्षा तुल्य है,

(५-८) वर्णादि तथा अन्तिम चार स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कहने चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थिति वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

विशेष–स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थानपतित है।

प्र. भंते ! जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं ?"

उ. गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए तुल्ले,
(५-८) वण्णाइ अट्ठफासेहि य छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णठिईयाणं अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं उक्कोसठिईए वि,

अजहण्णमणुक्कोसठिईए वि एवं चेव,

णवरं–ठिईए चउट्ठाणवडिए।

–पण्ण. प. ५, सु. ५३२-५३७

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा तुल्य है,
(५-८) वर्णादि तथा आठ स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्य स्थिति वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"
इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय जानने चाहिए।
अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों का कथन भी इसी प्रकार है।
विशेष–स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है।

१५. जहण्णाइ गुणवण्ण-गंध-रस-फासयाणं परमाणुपोग्गलाणं पज्जव पमाणं–

प. जहण्णगुणकालयाणं भंते! परमाणुपोग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?
उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।
प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकालयाणं परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"
उ. गोयमा! जहण्णगुणकालए परमाणुपोग्गले जहण्णगुण-कालयस्स परमाणुपोग्गलस्स–
(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए तुल्ले,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५) कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसा वण्णा णत्थि।

(६) गंध, (७) रस,
(८) फासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकालयाणं परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"
एवं उक्कोसगुणकालए वि।

एवमजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि,

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।
प. जहण्णगुणकालयाणं भंते! दुपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?
उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

१५. जघन्यादि गुण-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श वाले परमाणुपुद्गलों के पर्यायों का परिमाण–

प्र. भंते ! जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?
उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"
उ. गौतम ! एक जघन्यगुण काला परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गल से–
(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५) कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष वर्ण नहीं हैं।
(६) गन्ध, (७) रस,
(८) स्पर्श की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"
इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले परमाणुपुद्गलों के पर्याय कहना चाहिए।
इसी प्रकार अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले परमाणुपुद्गलों के पर्यायों का भी कथन करना चाहिए।
विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।
प्र. भंते ! जघन्यगुण काले द्विप्रदेशिक स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?
उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकालयाणं दुपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा! जहण्णगुणकालए दुपदेसिए खंधे जहण्णगुणकालयस्स दुपदेसियस्स खंधस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए तुल्ले,
(३) ओगाहणट्ठयाए–१. सिय हीणे, २. सिय तुल्ले, ३. सिय अब्भहिए।

जइ हीणे–पदेसहीणे,
अह अब्भहिए–पदेसअब्भहिए।

(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५) कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले,
(६-८) अवसेसवण्णाइउवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाण-वडिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकालयाणं दुपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

एवं उक्कोसगुणकालए वि।

अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव,

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

एवं जाव दसपदेसिए,

णवरं–पदेसपरिवुड्ढी ओगाहणाए तहेव।

प. जहण्णगुणकालयाणं भंते! संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकालयाणं संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

उ. गोयमा! जहण्णगुणकालए संखेज्जपदेसिए खंधे जहण्णगुणकालयस्स संखेज्जपदेसियस्स खंधस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले,

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुण काले द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गौतम ! एक जघन्यगुणकाला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले द्विप्रदेशी स्कन्ध से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा–१. कदाचित् हीन है, २. कदाचित् तुल्य है, ३. कदाचित् अधिक हैं।

यदि हीन है तो–एक प्रदेश हीन है,
यदि अधिक है तो–एक प्रदेश अधिक है।

(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५) कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,
(६-८) शेष वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुण काले द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण काले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कहने चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय का कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार दशप्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त पर्याय कहने चाहिए।

विशेष–अवगाहना में प्रदेश की उत्तरोत्तर वृद्धि इसी प्रकार करनी चाहिए।

प्र. भंते ! जघन्यगुण काले संख्यातप्रदेशी पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।"

उ. गौतम ! एक जघन्यगुण काला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा द्विस्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा द्विस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५-८) कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,

अवसेसेहिं वण्णाइउवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए।

अवशिष्ट वर्ण आदि तथा अन्तिम चार स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जहण्णगुणकालयाणं संखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

"जघन्य गुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

एवं उक्कोसगुणकालए वि,

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण काले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कहने चाहिए।

अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव,

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय भी इसी प्रकार कहने चाहिए।

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

प. जहण्णगुणकालयाणं भंते! असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

प्र. भंते ! जघन्यगुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

"जहण्णगुणकालयाणं असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य गुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गोयमा! जहण्णगुणकालए असंखेज्जपदेसिए खंधे जहण्णगुणकालयस्स असंखेज्जपदेसियस्स खंधस्स–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले,

अवसेसेहिं वण्णाइ उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिए।

उ. गौतम ! एक जघन्यगुण काला असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध से–

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५-८) कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,

शेष वर्ण आदि तथा अन्तिम चार स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जहण्णगुणकालयाणं असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

"जघन्यगुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

एवं उक्कोसगुणकालए वि।

इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों का कथन है।

अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव,

इसी प्रकार अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय भी कहने चाहिए।

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

प. जहण्णगुणकालयाणं भंते ! अणंतपदेसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

प्र. भंते ! जघन्यगुण काले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उ. गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

उ. गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

प. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–

"जहण्णगुणकालयाणं अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?"

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?"

उ. गोयमा! जहण्णगुणकालए अणंतपदेसिए खंधे जहण्णगुणकालयस्स अणंतपदेसियस्स खंधस्स–

उ. गौतम ! एक जघन्यगुण काला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से–

(१) दव्वट्ठयाए तुल्ले,
(२) पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिए,
(३) ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए,
(४) ठिईए चउट्ठाणवडिए,
(५-८) कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले,
अवसेसेहिं वण्णाइअट्ठफासेहि य छट्ठाणवडिए।

(१) द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है,
(२) प्रदेशों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है,
(३) अवगाहना की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(४) स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है,
(५-८) कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है,
अवशिष्ट वर्ण आदि एवं आठ स्पर्शों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–
"जहण्णगुणकालयाणं अणंतपदेसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।"

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।"

एवं उक्कोसगुणकालए वि।

इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कहने चाहिए।

अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव,

इसी प्रकार अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों का कथन करना चाहिए।

णवरं–सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

विशेष–स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

एवं नील-लोहिय-हालिद्द-सुक्किल्ल-सुब्भिगंध-दुब्भिगंध-तित्त-कडु-कसाय-अंबिल-महुररसपज्जवेहि य वत्तव्वया भाणियव्वा।

इसी प्रकार नील, रक्त, हारिद्र (पीत), शुक्ल, सुगन्ध, दुर्गन्ध, तिक्त (तीखा), कटु, कषाय, अम्ल (खट्टा), मधुर रस के पर्यायों का कथन करना चाहिए।

णवरं–परमाणुपोग्गलस्स-सुब्भिगंधस्स दुब्भिगंधो न भण्णइ,
दुब्भिगंधस्स सुब्भिगंधो न भण्णइ,
तित्तस्स अवसेसा न भण्णइ,
एवं कडुयाईण वि,
सेसं तं चेव।

विशेष–सुगन्ध वाले परमाणुपुद्गल में दुर्गन्ध नहीं कहें,
दुर्गन्ध वाले परमाणुपुद्गल में सुगन्ध नहीं कहें।
तिक्त (तीखे) रस वाले में शेष रसों का कथन नहीं करें।
कटु आदि रसों के लिए इसी प्रकार जानना चाहिए।
शेष कथन पूर्ववत् है।

के समान ही जानते-देखते हैं, किन्तु उत्कृष्ट अलोक में लोकप्रमाण असंख्य खण्डों को जानते-देखते हैं। वाणव्यन्तर देव द्वितीय से दसवें भव के समान जानते-देखते हैं। ज्योतिष्क देव जघन्य संख्यात द्वीप-समुद्रों को तथा उत्कृष्ट भी संख्यात द्वीप-समुद्रों को जानते-देखते हैं। वैमानिक अंगुल के असंख्यातवें भाग को जानते-देखते हैं किन्तु इनका उत्कृष्ट ज्ञान-क्षेत्र भिन्न है। नरक पृथ्वियों का तथा अपने विमानों तक का ज्ञान है। वैमानिकों में अनुत्तरौपपातिक देव सम्पूर्ण लोक नाड़ी को जानते-देखते हैं।

अवधिज्ञान को स्वरूप की दृष्टि से अलग-अलग आकृतियों वाला माना गया है, यथा-नौका, पल्लक, पटह, झालर आदि की आकृतियों आकृति जैसे क्षेत्र को जानने वाला) अवधिज्ञान बतलाया गया है।

देवों एवं नारकों का अवधिज्ञान आनुगामिक, अप्रतिपाती एवं अवस्थित होता है जबकि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों एवं मनुष्यों का अ आनुगामिक, अनानुगामिक, वर्द्धमान, हीयमान, प्रतिपाती, अप्रतिपाती, अवस्थित एवं अनवस्थित सभी प्रकार का होता है।

मनःपर्यवज्ञान से मन में चिन्त्यमान पदार्थों का ज्ञान होता है। इस ज्ञान के सम्बन्ध में दार्शनिकों की दो धाराएँ हैं। एक धारा आवश्य (गाथा ७६) तथा तत्वार्थ भाष्य (१.२९) के अनुसार है। इसके अनुसार मनःपर्याय ज्ञान परकीय मन में चिन्त्यमान पदार्थों को जानता है। दूसर के अनुसार मनःपर्यायज्ञान चिन्तन में लगे मनोद्रव्य की पर्यायों को साक्षात् जानता है किन्तु चिन्त्यमान पदार्थों को अनुमान से जानता है। य विशेषावश्यक भाष्य (गाथा ८१४) एवं नन्दीचूर्णि के अनुसार है। मनःपर्याय ज्ञान मनुष्य क्षेत्र में रहने वाले साधु को क्षयोपशम से होता है।

इसके स्वामित्व का विचार करने पर ज्ञात होता है कि मनःपर्याय ज्ञान संख्यातवर्ष की आयुवाले पर्याप्त कर्मभूमिज गर्भज लब्धिधारी सम्यग्दृष्टि मनुष्यों (साधुओं) को ही होता है, अन्य को नहीं।

मनःपर्यवज्ञान दो प्रकार का होता है-१. ऋजुमति और, २. विपुलमति। ऋजुमति की अपेक्षा विपुलमति मनःपर्यवज्ञान विशिष्ट एवं वि है। यह ऋजुमति की अपेक्षा सूक्ष्मतर और अधिक विशेषों को स्पष्ट रूप से जानता है। एक अन्तर यह है कि ऋजुमति ज्ञान उत्पन्न होने कदाचित् समाप्त भी हो सकता है किन्तु विपुलमति मनःपर्यवज्ञान केवलज्ञान की प्राप्ति होने तक निरन्तर बना रहता है।

केवलज्ञान अनन्त ज्ञान है। इसके द्वारा सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थों का उनकी पर्यायों सहित त्रैकालिक ज्ञान होता है। केवलज्ञान दो प्रकार का प्र है-१. भवस्थ केवलज्ञान और २. सिद्ध-केवलज्ञान। केवलज्ञानावरण का क्षय होने पर संसारस्थ वीतरागियों को जो केवलज्ञान होता है व केवलज्ञान कहलाता है तथा सिद्धों का केवलज्ञान सिद्ध केवलज्ञान कहा जाता है। वैसे इन दोनों ज्ञानों में स्वरूप की दृष्टि से कोई भेद नहीं होत केवलज्ञान सयोगी एवं अयोगी को होने से सयोगि भवस्थ केवलज्ञान तथा अयोगि भवस्थ केवलज्ञान के दो भेदों में विभक्त होता है। इन प्रथमसमय, अप्रथमसमय अथवा चरम समय और अचरमसमय इन दो-दो प्रकारों में विभक्त किया गया है। सिद्ध केवलज्ञान को अनन्तर सि परम्पर सिद्ध (द्वितीय आदि समय वाले सिद्ध) के दो प्रकारों में बाँटा जाता है। अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान इन सिद्धों के १५ प्रकार का होने से १ का माना गया है। अनन्तर सिद्ध के १५ प्रकार हैं-तीर्थ सिद्ध, अतीर्थ सिद्ध, तीर्थङ्कर सिद्ध, अतीर्थङ्कर सिद्ध आदि। परम्पर सिद्ध केवलज्ञा प्रकार का है क्योंकि ये सिद्ध अप्रथमसमय सिद्ध, द्विसमय सिद्ध, त्रिसमय सिद्ध यावत् दससमय सिद्ध, संख्यातसमय सिद्ध, असंख्यातसम अनन्तसमय सिद्ध आदि भेदों से अनेक प्रकार के होते हैं।

केवलज्ञान का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करते हुए नन्दी सूत्र में कहा गया है कि यह सम्पूर्ण द्रव्यों, परिणामों, भावों को जानने का कारण है। यह शाश्वत तथा अप्रतिपाती है तथा यह एक ही प्रकार का है।

केवलज्ञानी इन्द्रियों से नहीं जानते हैं, नहीं देखते हैं। क्योंकि इन्द्रियों से समस्त पदार्थों एवं उनकी पर्यायों को एक साथ नहीं जाना जा स केवली सभी दिशाओं में परिमित भी जानते देखते हैं और अपरिमित भी जानते-देखते हैं। वे सब ओर से जानते-देखते हैं, सभी कालों को जान हैं। उनका ज्ञान एवं दर्शन अनन्त है और निरावरण है। केवली सिद्धों एवं चरम शरीरियों को भी जानता-देखता है किन्तु छद्मस्थ ऐसा नहीं क वह किसी आप्त पुरुष से सुनकर या प्रमाण द्वारा जानता-देखता है।

प्रमाण को आगम में चार प्रकार का बतलाया गया है-१. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३. औपम्य और ४. आगम। इन चारों प्रमाणों का अनु सूत्र में विस्तार से उल्लेख है। तत्वार्थ सूत्र में तथा उत्तरकालीन जैन दार्शनिकों ने प्रमाण के दो भेद किए हैं-१. प्रत्यक्ष और २. परोक्ष। प्रत्यक्ष के पुनः दो भेद किए हैं-सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी इन्द्रिय एवं अनिन्द्रिय (मन) के भेद से दो प्रका तथा पारमार्थिक प्रत्यक्ष के सकल एवं विकल ये दो भेद किए गए हैं। सकल प्रत्यक्ष में केवलज्ञान का समावेश होता है तथा विकल प्रत्यक्ष में अव एवं मनःपर्यव ज्ञान की गणना होती है।

सिद्धों एवं भवस्थ केवलियों के केवलज्ञान में कोई अन्तर नहीं होता है। दोनों समान रूप से जानते हैं। किन्तु केवली (भवस्थ) उत्थान, क वीर्य एवं पुरुषकार-पराक्रम से युक्त होते हैं जबकि सिद्ध इनसे रहित होते हैं। इसलिए केवलियों से कोई प्रश्न पूछे जाने पर वे उसका उत्तर देते सिद्ध नहीं देते हैं। केवली अपनी आँखें बन्द करते एवं खोलते हैं, जबकि सिद्ध नहीं। इस प्रकार अंगों के संकोच-विस्तार, खड़े रहना, सोना-बैठन क्रियाओं की दृष्टि से केवली एवं सिद्धों में अन्तर है। केवली एवं सिद्धों में वेदनीय आदि चार अघाती कर्मों का तो अन्तर रहता ही है।

छद्मस्थों एवं केवलियों के ज्ञान में अन्तर प्रतिपादित करते हुए स्थानांग सूत्र में कहा गया है कि छद्मस्थ दस बातों (पदार्थों) को सम्पूर्ण जानता-देखता नहीं है जबकि केवली इन्हें सर्वभाव से सम्पूर्ण रूप में जानता देखता है। वे दस (पदार्थ) ये हैं-१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मा

अन्त करेगा या नहीं। छद्मस्थ एवं केवलियों में सात बातों का अन्तर होता है। छद्मस्थ १. प्राणों का अतिपात करता है, २. मृषा बोलता है, ३. अदत्त का ग्रहण करता है, ४. शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का आस्वादक होता है, ५. पूजा-सत्कार का अनुमोदन करता है, ६. सावद्य को सावद्य कहकर भी उसका सेवन करता है, ७. जैसा कहता है वैसा नहीं करता है। केवली का व्यवहार इन सातों बातों के विपरीत होता है, तथा वह प्राणों का अतिपात नहीं करता है आदि।

अनुत्तरोपपातिक देव अपने स्थान पर रहकर ही यहाँ रहे हुए केवलियों के साथ आलाप और संलाप कर सकते हैं। केवली के दस अनुत्तर (उत्कृष्ट) कहे गए हैं–१. अनुत्तर ज्ञान, २. अनुत्तर दर्शन, ३. अनुत्तर चारित्र, ४. अनुत्तर तप, ५. अनुत्तर-वीर्य, ६. अनुत्तर क्षान्ति, ७. अनुत्तर मुक्ति, ८. अनुत्तर आर्जव, ९. अनुत्तर मार्दव और १०. अनुत्तर लाघव। केवली प्रशस्त मन एवं वचन को धारण करते हैं। कुछ देवता इसे जानते हैं तथा कुछ नहीं।

पाँच ज्ञानों में से किसी भी विशुद्ध ज्ञान की उत्पत्ति में सुनना एवं जानना निमित्त बनते हैं तथा इन ज्ञानों की विशुद्धता के लिए आरम्भ एवं परिग्रह को जानकर छोड़ना आवश्यक है। केवली प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण कर्मपुद्गलों का क्षय या उपशम होने पर ही पाता है।

अज्ञान तीन प्रकार का होता है–१. मति अज्ञान, २. श्रुत अज्ञान और ३. विभंगज्ञान। मनःपर्याय ज्ञान और केवलज्ञान ये दो ज्ञान अज्ञान रूप नहीं होते हैं। शेष तीन ज्ञान अज्ञान रूप होते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव के ये तीनों ज्ञान ज्ञानरूप होते हैं तथा मिथ्यादृष्टि के ये तीनों अज्ञान रूप होते हैं। अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं है अपितु अशुद्ध (मिथ्यादृष्टि युक्त) ज्ञान को अज्ञान कहा गया है। मति-अज्ञान के भी आभिनिबोधिक ज्ञान की भांति चार भेद होते हैं–१. अवग्रह, २. ईहा, ३. अवाय और ४. धारण। इन चारों के भेदोपभेद भी अज्ञान में घटित होते हैं। अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा स्वच्छन्द बुद्धि से कल्पित ग्रन्थ श्रुत अज्ञान कहे गए हैं, यथा–महाभारत यावत् सांगोपांग वेद।

अवधिज्ञान जब अज्ञान रूप होता है तो उसे विभंगज्ञान कहा जाता है। यह भी मिथ्यादृष्टियों को होता है। सम्यग्दृष्टियों को अवधिज्ञान होता है। विभंग ज्ञान को ग्रामसंस्थित, द्वीप संस्थित, समुद्रसंस्थित आदि भेदों से अनेक प्रकार का कहा गया है। विभंग ज्ञान को सात प्रकार का भी कहा गया है, यथा–१. एक दिशा में लोक का ज्ञान, २. पाँच दिशाओं में लोक का ज्ञान, ३. जीव क्रियावरण है, ४. पुद्गल निर्मित शरीर ही जीव है, ५. पुद्गलों से अनिष्पन्न शरीर वाला जीव है, ६. रूपी जीव है और ७. ये सब (गतिशील पदार्थ) जीव हैं।

ज्ञानों की उत्पत्ति मुख्यतः उनके आवरण के क्षयोपशम अथवा क्षय से होती है। धर्मश्रवण आदि इसमें निमित्त मात्र बनते हैं। जब उपासिका आदि से धर्म सुने बिना ही ज्ञान प्रकट हो जाता है तो उसे अश्रुत्वा ज्ञानोपार्जन कहा जाता है तथा जब उपासिका आदि से धर्म श्रवण कर ज्ञानोपार्जन होता है तो उसे श्रुत्वा ज्ञानोपार्जन कहा जाता है।

जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। कुछ जीव ज्ञानी हैं तथा कुछ अज्ञानी हैं। जो ज्ञानी हैं उनमें कुछ जीव दो ज्ञान वाले हैं, कुछ तीन ज्ञान वाले हैं, कुछ चार ज्ञान वाले हैं तथा कुछ एक ज्ञान वाले हैं। दो ज्ञान वाले आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी हैं। तीन ज्ञान वाले इन दो को मिलाकर अवधिज्ञानी या मनःपर्यवज्ञानी होते हैं। चार ज्ञान वालों में आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधि एवं मनःपर्यव ये चार ज्ञान होते हैं। जो एक ज्ञान वाले हैं वे नियमतः केवलज्ञानी है। केवलीज्ञानी के शेष चारों ज्ञान नहीं माने गए हैं।

जो जीव अज्ञानी हैं, उनमें से कुछ दो अज्ञान वाले हैं तथा कुछ तीन अज्ञान वाले हैं। दो अज्ञान वालों के मति-अज्ञान एवं श्रुत-अज्ञान होता है तथा तीन अज्ञान वालों के विभंगज्ञान भी होता है।

२४ दण्डकों में नैरयिक जीव जब ज्ञान वाले होते हैं तो नियमतः आभिनिबोधिक, श्रुत एवं अवधिज्ञान के धारक होते हैं तथा जब अज्ञानी होते हैं तो दो या तीन अज्ञान वाले होते हैं। भवनपति एवं वाणव्यन्तरों का कथन भी नैरयिकों की भांति है। ज्योतिष्क और वैमानिक देवों में तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियमतः पाए जाते हैं। सौधर्म कल्प से लेकर नव ग्रैवेयक तक के देव ज्ञानी या अज्ञानी दोनों प्रकार के हो सकते हैं किन्तु अनुत्तरौपपातिक देव ज्ञानी ही होते हैं, अज्ञानी नहीं; क्योंकि उनमें सम्यग्दर्शन रहता है। ये देव नियमतः तीन ज्ञान वाले होते हैं। ये आभिनिबोधिक, श्रुत और अवधिज्ञान से युक्त होते हैं। पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीव नियमतः दो अज्ञान वाले होते हैं–मति अज्ञान और श्रुतअज्ञान। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक एवं श्रुतज्ञान युक्त हैं तथा जो अज्ञानी हैं वे नियमतः मतिअज्ञानी और श्रुत अज्ञानी हैं। गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। वे दो ज्ञान वाले अथवा तीन ज्ञान वाले (अवधिज्ञान युक्त) होते हैं। इसी प्रकार दो अज्ञान एवं तीन अज्ञान युक्त होते हैं। सम्मूर्च्छिम मनुष्य ज्ञानी नहीं होते, अज्ञानी ही होते हैं। उनमें नियमतः मति-अज्ञान एवं श्रुत अज्ञान पाए जाते हैं। गर्भज मनुष्य ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी। ज्ञानी होने पर वे औधिक जीवों की भांति दो, तीन, चार या एक ज्ञान वाले होते हैं तथा अज्ञानी होने पर दो या तीन अज्ञान वाले हैं। सिद्ध जीवों में नियमतः एक ज्ञान 'केवल ज्ञान' पाया जाता है।

ज्ञान और अज्ञान की प्राप्ति-अप्राप्ति का विवेचन इस अध्ययन में २० द्वारों के माध्यम से प्रस्तुत है। वे २० द्वार हैं–१. गति, २. इन्द्रिय, ३. काय, ४. सूक्ष्म, ५. पर्याप्त-अपर्याप्त, ६. भवस्थ, ७. भवसिद्धिक, ८. संज्ञी, ९. लब्धि, १०. उपयोग, ११. योग, १२. लेश्या, १३. कषाय, १४. वेद, १५. आहार, १६. विषय, १७. संचिट्ठणा (कितने काल तक), १८. अन्तर, १९. अल्प-बहुत्व और २०. पर्याय।

इन बीस द्वारों में जो विवेचन हुआ है उससे ज्ञान या अज्ञान की उपलब्धि की विभिन्न स्थितियों की जानकारी हो जाती है। लब्धि-द्वार के अन्तर्गत दस प्रकार की लब्धियों का भी निरूपण हुआ है। वे दस लब्धियां है–१. ज्ञानलब्धि, २. दर्शनलब्धि, ३. चारित्र-लब्धि, ४. चारित्राचारित्र लब्धि, ५. दानलब्धि, ६. लाभ-लब्धि, ७. भोग लब्धि, ८. उपभोग लब्धि, ९. वीर्य लब्धि और १०. इन्द्रिय लब्धि। विषय द्वार में विषय को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से चार प्रकार का कहा गया है।

आभिनिबोधिक ज्ञानी किसी अपेक्षा (आदेश) से द्रव्य से सर्वद्रव्यों को, क्षेत्र से सर्वक्षेत्र को, काल से सर्वकाल को और भाव से सर्वभावों को जानता-देखता है। श्रुतज्ञानी उपयोग युक्त (श्रुतज्ञानोपयोगयुक्त) होने पर द्रव्य से सर्वद्रव्यों को, क्षेत्र से सर्वक्षेत्र को, काल से सर्वकाल को, और भाव से सर्वभावों को जानता-देखता है। अवधिज्ञानी द्रव्य से जघन्य अनन्त रूपी द्रव्यों को, उत्कृष्ट समस्त रूपी द्रव्यों को जानता-देखता है। क्षेत्र से वह जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग को उत्कृष्ट अलोक में लोक जितने असंख्य खण्डों को जानता-देखता है। काल से अवधिज्ञानी जघन्य एक आवलिका के असंख्यातवें भाग काल को, उत्कृष्ट अतीत और अनागत असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी परिमाण काल को जानता-देखता है। भाव से वह जघन्य अनन्त भावों को जानता-देखता है और उत्कृष्ट भी अनन्त भावों को जानता-देखता है। किन्तु सर्वभावों के अनन्तवें भाग को ही जानता-देखता है। मनःपर्यवज्ञानी दो प्रकार के हैं-ऋजुमति और विपुलमति। द्रव्य से ऋजुमति अनन्त अनन्तप्रदेशिक स्कन्धों को जानता-देखता है और विपुलमति उन्हीं स्कन्धों को अधिक विपुल, विशुद्ध और स्पष्ट जानता-देखता है। क्षेत्र से ऋजुमति जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग को तथा उत्कृष्ट नीचे की ओर रत्नप्रभा-पृथ्वी के उपरितन-अधस्तन क्षुद्रक प्रतरों, ऊँचे ज्योतिषचक्र के उपरितल पर्यन्त, तिरछे लोक में मनुष्य-क्षेत्र के अन्दर अढाई द्वीप समुद्र पर्यन्त पन्द्रह कर्मभूमियों, तीस अकर्मभूमियों और छप्पन अन्तर्द्वीपों में विद्यमान संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जानता-देखता है। विपुलमति उन्हीं क्षेत्रों को अढाई अंगुल अधिक विपुल, विशुद्ध और स्पष्ट जानता है। काल से ऋजुमति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग को तथा उत्कृष्ट भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग भूत-भविष्यत् काल को जानता-देखता है। विपुलमति उसी काल को कुछ अधिक यावत् सुस्पष्ट जानता-देखता है। भाव से ऋजुमति अनन्त भावों को जानता व देखता है किन्तु सब भावों के अनन्तवें भाग को ही जानता-देखता है। उन्हीं भावों को विपुलमति कुछ अधिक यावत् सुस्पष्ट जानता-देखता है। केवलज्ञानी द्रव्य से सर्वद्रव्य को, क्षेत्र से सर्व क्षेत्र (लोकालोक दोनों) को, काल से भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों कालों को तथा भाव से सर्वद्रव्यों के सर्व भावों या पर्यायों को जानता-देखता है।

मति-अज्ञानी द्रव्य से मतिअज्ञान-परिगत द्रव्यों को, क्षेत्र से मति-अज्ञान परिगत क्षेत्र को, काल से मतिअज्ञान परिगत काल को और भाव से मति अज्ञान-परिगत भावों को जानता-देखता है। श्रुत-अज्ञानी भी द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव से अपने श्रुत अज्ञान के विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव को जानकर उनका कथन या प्ररूपण करता है। विभंगज्ञानी अपने विभंगज्ञान के विषयगत द्रव्यों, क्षेत्र, काल एवं भावों को जानता-देखता है।

संचिट्ठणा कालद्वार के अन्तर्गत यह विचार हुआ है कि आभिनिवोधिक आदि ज्ञानी उस ज्ञान से युक्त कितने काल तक रहता है। इसके अनुसार आभिनिबोधिक ज्ञानी-आभिनिबोधिक ज्ञानी के रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम तक रहता है। यही काल श्रुतज्ञानी एवं अवधिज्ञानी के लिए भी है। अवधिज्ञानी का जघन्य संस्थिति काल एक समय है। मनःपर्यवज्ञानी का संस्थिति काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक होता है। केवलज्ञानी सादि अपर्यवसित होते हैं। मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी तीन प्रकार के होते हैं-१. अनादि अपर्यवसित, २. अनादि सपर्यवसित और ३. सादि सपर्यवसित। इनमें से सादि-सपर्यवसित भेद जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट अनन्तकाल तक अर्थात् अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणियों तक रहता है। क्षेत्र की अपेक्षा यह देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्तन तक रहता है। विभंगज्ञानी का संस्थिति काल जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम तक है।

अल्प-वहुत्व द्वार के अनुसार सबसे अल्प ज्ञानी हैं तथा अज्ञानी उनसे अनन्तगुणे हैं। पाँचों ज्ञानों में सबसे अल्प मनः पर्यवज्ञानी हैं, उनसे अवधिज्ञानी असंख्यातगुणे हैं, उनसे आभिनिबोधिक ज्ञानी और श्रुतज्ञानी विशेषाधिक हैं। उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं। जितने आभिनिबोधिक ज्ञानी हैं उतने ही श्रुतज्ञानी हैं क्योंकि ये एक साथ रहते हैं। अज्ञानियों में विभंगज्ञानी अल्प हैं तथा उनसे मति-अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी अनन्तगुणे हैं। सभी ज्ञानों एवं अज्ञानों की अनन्त पर्यायें मानी गई हैं।

ज्ञान के इस प्रकरण में भावितात्मा मिथ्यादृष्टि अनगार के नगरादि की विकुर्वणा करके जानने देखने, भावितात्मा सम्यग्दृष्टि अनगार के नगरादि की विकुर्वणा करके जानने देखने, भावितात्मा अनगार द्वारा वैक्रिय समुद्घात से समवहत देवादि को जानने देखने , वृक्ष के अन्दर और बाहर देखने, वृक्ष के मूल, कन्द, फल आदि को देखने का भी निरूपण है। व्याख्याप्रज्ञप्ति में छद्मस्थ द्वारा परमाणु पुद्गल के जानने-देखने सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान महावीर ने कहा है कि कोई छद्मस्थ मनुष्य परमाणु पुद्गल को जानता है, किन्तु देखता नहीं है। कोई जानता भी नहीं है और देखता भी नहीं है। अनन्त प्रदेशी स्कन्ध को कोई छद्मस्थ मनुष्य जानते और देखते हैं, कोई जानते हैं किन्तु देखते नहीं हैं। कोई जानते नहीं किन्तु देखते हैं तथा कोई जानते भी नहीं और देखते भी नहीं। परमावधिज्ञानी मनुष्य जिस समय परमाणु पुद्गल को या अनन्त प्रदेशी स्कन्ध को जिस समय जानता है उस समय देखता नहीं तथा जिस समय देखता है उस समय जनता नहीं है। केवलज्ञानी के लिए भी ऐसा ही माना गया है क्योंकि ज्ञान साकार होता है तथा दर्शन निराकार होता है। निर्जरा-पुद्गलों, आहार-पुद्गलों आदि के जानने-देखने का भी इस अध्ययन में निरूपण हुआ है।

ज्ञान से जुड़ी अनेक वातों या तथ्यों का भी इस अध्ययन में समावेश हुआ है, यथा-प्रश्नों के ६ प्रकार, विवक्षा से हेतु भेद, दस प्रकार के वाद-दोष, १० प्रकार के शुद्ध वचनानुयोग, श्रोताओं के १४ प्रकार, श्रोतृजनों की परिषद् के ३ प्रकार, तीन प्रकार के चक्षुष्मान, ज्ञात या उदाहरण के चार-चार प्रकार, काव्य के चार प्रकार, वाद्य, नृत्य, गीत और अभिनय के चार प्रकार, मालाओं के चार प्रकार, अलंकारों के चार प्रकार आदि।

प्रश्न छह प्रकार के होते हैं-१. संशय प्रश्न, २. व्युद्ग्रह प्रश्न, ३. अनुयोगी, ४. अनुलोम, ५. तथाज्ञान और ६. अतथाज्ञान। इनमें से चार प्रकार के प्रश्न अच्छे हैं-संशय प्रश्न, अनुयोगी (व्याख्या के लिए पूछा गया), अनुलोम (कुशल कामना से पूछा गया प्रश्न) और अतथाज्ञान (स्वयं न जानने की स्थिति में पूछा गया प्रश्न)। दो प्रकार के प्रश्न अनुचित हैं-व्युद्ग्रह प्रश्न (कपट से दूसरे को पराजित करने के लिए पूछा गया प्रश्न) और तथाज्ञान (स्वयं जानते हुए भी पूछा गया प्रश्न)। यदि इसमें दूसरों को ज्ञान कराने की भावना हो तो यह उचित है।

हेतु के तीन प्रकार से चार-चार भेद किए गए हैं। प्रथम प्रकार में हेतु के चार भेद हैं–१. यापक, २. स्थापक, ३. व्यंसक और ४. लूपक। द्वितीय प्रकार में हेतु के चार भेद वे ही है जो प्रमाण के चार भेद हैं–१. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३. उपमान और ४. आगम। तृतीय प्रकार में हेतु के चार प्रकार हैं–१. विधि साधक विधि हेतु, २. विधिसाधक निषेध हेतु. ३. निषेध साधक विधि हेतु और ४. निषेध साधक निषेध हेतु ।

काव्य के चार प्रकार हैं–१. गद्य, २. पद्य, ३, कथ्य और ४. गेय। वाद्य चार प्रकार के हैं–१. तत, २. वितत, ३. घन और शुषिर। नाट्य, गेय एवं अभिनय के चार-चार प्रकार निरूपित हैं। मालाओं के चार प्रकार हैं–१. गुंथी हुई, २. फूलों से लपेटी हुई, ३. पूरी हुई और ४. एक से दूसरे पुष्प को जोड़कर बनाई हुई।

अलंकार का अर्थ है शोभावर्धक। इसके चार प्रकार हैं–१. केशालंकार, २. वस्त्रालंकार, ३. माल्यालंकार और ४. आभरणालंकार।

अन्त में ज्ञान अध्ययन का अनुयोग प्रकरण है। इसमें अनुयोग की विधि निरूपित है। प्रारम्भ में कहा गया है कि पाँच ज्ञानों में से श्रुतज्ञान में ही उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होते हैं, शेष चार ज्ञानों में उद्देश, समुद्देश एवं अनुज्ञा नहीं होने से इनमें अनुयोग की भी प्रवृत्ति नहीं होती है।

श्रुतज्ञान में प्रवृत्त अनुयोग अंगप्रविष्ट एवं अंगबाह्य द्विविध आगमों में प्रवृत्त होता है। अंगबाह्यों में यह कालिक एवं उत्कालिक दोनों प्रकार के आगमों में प्रवृत्त होता है। उत्कालिक श्रुतों में आवश्यक सूत्र एवं आवश्यक व्यतिरिक्त सूत्रों में भी अनुयोग किया जाता है। यहाँ आवश्यक सूत्र के प्रथम सामायिक अध्ययन में अनुयोग का निरूपण किया गया है।

अनुयोग के चार द्वार हैं–१. उपक्रम (स्वरूप जानना), २. निक्षेप (स्थापना करना), ३. अनुगम (व्याख्या करना) और ४. नय (वस्तु के अनेक धर्मों में से एक धर्म का कथन करना)। उपक्रम के छह भेद हैं–१. नाम, २. स्थापना, ३. द्रव्य, ४. क्षेत्र, ५. काल और ६. भाव। इन भेदों का स्वरूप निरूपण करने के अनन्तर उपक्रम के पुनः छह भेद किए गए हैं–१. आनुपूर्वी, २. नाम, ३. प्रमाण, ४. वक्तव्यता, ५. अर्थाधिकार और ६. समवतार। आनुपूर्वी नाम, स्थापना आदि के भेद से १० प्रकार की कही गई है।

उपक्रम अनुयोग में नाम द्वार के दस प्रकार निरूपित हैं–एक नाम, दो नाम, तीन नाम यावत् दस नाम। इन नामों का उदाहरण देकर विवेचन करते हुए व्याकरण, साहित्य, संगीत आदि से भी उदाहरण दिए गए हैं। पाँच नामों में नामिक, नैपातिक, आख्यातिक, औपसर्गिक और मिश्र नाम देकर, आठ नामों में आठ विभक्तियों का विवेचन कर व्याकरण ज्ञान को प्रकट किया गया है। सात नामों से स्वर के सात प्रकार दिए गए हैं–१. षड्ज, २. ऋषभ, ३. गांधार, ४. मध्यम, ५. पंचम, ६. धैवत और ७. निषाद। इनमें संगीत ज्ञान प्रकट हुआ है। ये सातों स्वर नाभि से उत्पन्न होते हैं। गीत में छह दोष, आठ गुण, तीन वृत्त और दो भणितियाँ होती हैं। नौ नामों में साहित्य के नव रसों का उल्लेख हुआ है, यथा–१. वीर, २. शृंगार, ३. अद्भुत, ४. रौद्र, ५. व्रीडन, ६. वीभत्स, ७. हास्य, ८. कारुण्य और ९. प्रशान्त रस। इन रसों को उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है।

छह नामों के अन्तर्गत छह भावों का विस्तृत वर्णन निहित है। छह भाव हैं–१. औदयिक, २. औपशमिक, ३. क्षायिक, ४. क्षायोपशमिक, ५. पारिणामिक और ६. सान्निपातिक।

तत्त्वार्थ सूत्र में सान्निपातिक भाव का उल्लेख नहीं है, किन्तु आगम में इसे पृथक् भाव के रूप में स्थान दिया गया है।

प्रमाण-द्वार के अन्तर्गत प्रमाण के चार भेद किए गए हैं–१. नाम प्रमाण, २. स्थापना-प्रमाण, ३. द्रव्य प्रमाण और ४. भावप्रमाण। इन सभी भेदों की व्याख्या करते हुए भाव-प्रमाण के अन्तर्गत समास, तद्धित, धातु एवं निरुक्ति पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। प्रमाण के भिन्न प्रकार से भी चार भेद किए गए हैं, यथा–१. द्रव्य प्रमाण, २. क्षेत्र प्रमाण, ३. काल प्रमाण और ४. भाव प्रमाण। यहाँ प्रमाण शब्द परिमाण का द्योतक प्रतीत होता है।

'वक्तव्यता-द्वार' के तीन प्रकार हैं–१. स्वसमय वक्तव्यता, २. परसमय वक्तव्यता और ३. स्वसमय-परसमय वक्तव्यता। समय का अर्थ होता है सिद्धान्त। जिसमें अविरोधी रूप से स्वसिद्धान्त का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण आदि किया जाय वह स्वसमय वक्तव्यता है। अन्य मत के सिद्धान्त का कथन, प्रज्ञापन आदि करना परसमय वक्तव्यता है तथा दोनों सिद्धान्तों का जिसमे कथन हो उसे स्वसमय-परसमय वक्तव्यता कहा गया है। वक्तव्यता में नय का भी प्ररूपण हुआ है।

अर्थाधिकार का अर्थ है वर्ण्य विषय का अधिकार। यथा-आवश्यक सूत्र के सामायिक सूत्र के सामायिक आदि छह अध्ययनों में प्रथम अध्ययन का अर्थाधिकार सावद्ययोगविरति है, दूसरे अध्ययन का अर्थाधिकार उत्कीर्तन है, आदि।

'समवतार' छह प्रकार का निरूपित है–१. नाम, २. स्थापना, ३. द्रव्य, ४. क्षेत्र, ५. काल और ६. भाव।

अनुयोग के द्वितीय द्वार निक्षेप को तीन प्रकार का कहा गया है–१. ओघ निष्पन्न, २. नाम निष्पन्न, ३. सूत्रालापक निष्पन्न। इन तीन के भेदोपभेदों का उदाहरणों के साथ इस अध्ययन में जो विवेचन हुआ है वह निक्षेप के जिज्ञासुओं के लिए पूर्णतः पठनीय है। अनुयोग के तृतीय द्वार अनुगम को दो प्रकार का कहा गया है–१. सूत्रानुगम और २. निर्युक्त्यनुगम। निर्युक्त्यनुगम को निक्षेप, उपोद्घात एवं सूत्रस्पर्शिक के भेद से तीन प्रकार का माना गया है। सूत्रार्थ को समझने में इनकी बहुत बड़ी भूमिका है। चतुर्थ द्वार 'नय' के सात भेद हैं–१, नैगम, २. संग्रह, ३. व्यवहार, ४. ऋजुसूत्र, ५. शब्द, ६. समभिरूढ और ७. एवंभूत नय। इन नयों के द्वारा हेय और उपादेय को जानकर तदनुकूल प्रवृत्ति की जानी चाहिए।

इस प्रकार इस ज्ञान-अध्ययन में मात्र पाँच ज्ञानों एवं तीन अज्ञानों का ही निरूपण नहीं है, अपितु ज्ञान से सम्बद्ध विविध सामग्रियों एवं अनुयोग-पद्धति का भी इसमें संकलन निहित है। इसे पढ़कर ज्ञान के सम्बन्ध में अवश्य ही नवीन जानकारी मिलेगी।

□

निवोधिक ज्ञानी किसी अपेक्षा (आदेश) से द्रव्य से सर्वद्रव्यों को, क्षेत्र से सर्वक्षेत्र को, काल से सर्वकाल को और भाव से सर्वभावों को
ता है। श्रुतज्ञानी उपयोग युक्त (श्रुतज्ञानोपयोगयुक्त) होने पर द्रव्य से सर्वद्रव्यों को, क्षेत्र से सर्वक्षेत्र को, काल से सर्वकाल को, और भाव से
ो जानता-देखता है। अवधिज्ञानी द्रव्य से जघन्य अनन्त रूपी द्रव्यों को, उत्कृष्ट समस्त रूपी द्रव्यों को जानता-देखता है। क्षेत्र से वह जघन्य
ासंख्यातवें भाग को उत्कृष्ट अलोक में लोक जितने असंख्य खण्डों को जानता-देखता है। काल से अवधिज्ञानी जघन्य एक आवलिका के
ं भाग काल को, उत्कृष्ट अतीत और अनागत असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी परिमाण काल को जानता-देखता है। भाव से वह जघन्य
ों को जानता-देखता है और उत्कृष्ट भी अनन्त भावों को जानता-देखता है। किन्तु सर्वभावों के अनन्तवें भाग को ही जानता-देखता है।
ानी दो प्रकार के हैं–ऋजुमति और विपुलमति। द्रव्य से ऋजुमति अनन्त अनन्तप्रदेशिक स्कन्धों को जानता-देखता है और विपुलमति उन्हीं
अधिक विपुल, विशुद्ध और स्पष्ट जानता-देखता है। क्षेत्र से ऋजुमति जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग को तथा उत्कृष्ट नीचे की ओर
थ्वी के उपरितन-अधस्तन क्षुद्रक प्रतरों, ऊँचे ज्योतिषचक्र के उपरितल पर्यन्त, तिरछे लोक में मनुष्य-क्षेत्र के अन्दर अढाई द्वीप समुद्र पर्यन्त
ूमियों, तीस अकर्मभूमियों और छप्पन अन्तर्द्वीपों में विद्यमान संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जानता-देखता है। विपुलमति उन्हीं
ढाई अंगुल अधिक विपुल, विशुद्ध और स्पष्ट जानता है। काल से ऋजुमति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग को तथा उत्कृष्ट भी पल्योपम
तवें भाग भूत-भविष्यत् काल को जानता-देखता है। विपुलमति उसी काल को कुछ अधिक यावत् सुस्पष्ट जानता-देखता है। भाव से ऋजुमति
ों को जानता व देखता है किन्तु सब भावों के अनन्तवें भाग को ही जानता-देखता है। उन्हीं भावों को विपुलमति कुछ अधिक यावत् सुस्पष्ट
ाता है। केवलज्ञानी द्रव्य से सर्वद्रव्य को, क्षेत्र से सर्व क्षेत्र (लोकालोक दोनों) को, काल से भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों कालों को तथा
द्रव्यों के सर्व भावों या पर्यायों को जानता-देखता है।

अज्ञानी द्रव्य से मतिअज्ञान-परिगत द्रव्यों को, क्षेत्र से मति-अज्ञान परिगत क्षेत्र को, काल से मतिअज्ञान परिगत काल को और भाव से मति
गत भावों को जानता-देखता है। श्रुत-अज्ञानी भी द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव से अपने श्रुत अज्ञान के विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव
र उनका कथन या प्ररूपण करता है। विभंगज्ञानी अपने विभंगज्ञान के विषयगत द्रव्यों, क्षेत्र, काल एवं भावों को जानता-देखता है।

ड़णा कालद्वार के अन्तर्गत यह विचार हुआ है कि आभिनिबोधिक आदि ज्ञानी उस ज्ञान से युक्त कितने काल तक रहता है। इसके अनुसार
धिक ज्ञानी-आभिनिवोधिक ज्ञानी के रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम तक रहता है। यही काल श्रुतज्ञानी
ज्ञानी के लिए भी है। अवधिज्ञानी का जघन्य संस्थिति काल एक समय है। मनःपर्यवज्ञानी का संस्थिति काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट
कोटि तक होता है। केवलज्ञानी सादि अपर्यवसित होते हैं। मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी तीन प्रकार के होते हैं–१. अनादि अपर्यवसित,
सपर्यवसित और ३. सादि सपर्यवसित। इनमें से सादि-सपर्यवसित भेद जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट अनन्तकाल तक अर्थात् अनन्त उत्सर्पिणी
ियों तक रहता है। क्षेत्र की अपेक्षा यह देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्तन तक रहता है। विभंगज्ञानी का संस्थिति काल जघन्य एक समय तथा
ोन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम तक है।

-बहुत्व द्वार के अनुसार सबसे अल्प ज्ञानी हैं तथा अज्ञानी उनसे अनन्तगुणे हैं। पाँचों ज्ञानों में सबसे अल्प मनःपर्यवज्ञानी हैं, उनसे अवधिज्ञानी
ुणे हैं, उनसे आभिनिबोधिक ज्ञानी और श्रुतज्ञानी विशेषाधिक हैं। उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं। जितने आभिनिबोधिक ज्ञानी हैं उतने ही
ैं क्योंकि ये एक साथ रहते हैं। अज्ञानियों में विभंगज्ञानी अल्प हैं तथा उनसे मति-अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी अनन्तगुणे हैं। सभी ज्ञानों एवं
ो अनन्त पर्यायें मानी गई हैं।

के इस प्रकरण में भावितात्मा मिथ्यादृष्टि अनगार के नगरादि की विकुर्वणा करके जानने देखने, भावितात्मा सम्यग्दृष्टि अनगार के नगरादि
णा करके जानने देखने, भावितात्मा अनगार द्वारा वैक्रिय समुद्घात से समवहत देवादि को जानने देखने, वृक्ष के अन्दर और बाहर देखने,
ऊ, कन्द, फल आदि को देखने का भी निरूपण है। व्याख्याप्रज्ञप्ति में छद्मस्थ द्वारा परमाणु पुद्गल के जानने-देखने सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर
गवान महावीर ने कहा है कि कोई छद्मस्थ मनुष्य परमाणु पुद्गल को जानता है, किन्तु देखता नहीं है। कोई जानता भी नहीं है और देखता
। अनन्त प्रदेशी स्कन्ध को कोई छद्मस्थ मनुष्य जानते और देखते हैं, कोई जानते हैं किन्तु देखते नहीं हैं। कोई जानते नहीं किन्तु देखते हैं
जानते भी नहीं और देखते भी नहीं। परमावधिज्ञानी मनुष्य जिस समय परमाणु पुद्गल को या अनन्त प्रदेशी स्कन्ध को जिस समय जानता
ाय देखता नहीं तथा जिस समय देखता है उस समय जनता नहीं है। केवलज्ञानी के लिए भी ऐसा ही माना गया है क्योंकि ज्ञान साकार होता
ान निराकार होता है। निर्जरा-पुद्गलों, आहार-पुद्गलों आदि के जानने-देखने का भी इस अध्ययन में निरूपण हुआ है।

से जुड़ी अनेक बातों या तथ्यों का भी इस अध्ययन में समावेश हुआ है, यथा–प्रश्नों के ६ प्रकार, विवक्षा से हेतु भेद, दस प्रकार के वाद-दोष,
र के शुद्ध वचनानुयोग, श्रोताओं के १४ प्रकार, श्रोतृजनों की परिषद् के ३ प्रकार, तीन प्रकार के चक्षुष्मान, ज्ञात या उदाहरण के चार-चार
त्य के चार प्रकार, वाद्य, नृत्य, गीत और अभिनय के चार प्रकार, मालाओं के चार प्रकार, अलंकारों के चार प्रकार आदि।

ह प्रकार के होते हैं–१. संशय प्रश्न, २. व्युद्ग्रह प्रश्न, ३. अनुयोगी, ४. अनुलोम, ५. तथाज्ञान और ६. अतथाज्ञान। इनमें से चार प्रकार
के हैं–संशय प्रश्न, अनुयोगी (व्याख्या के लिए पृछा गया), अनुलोम (कुशल कामना से पृछा गया प्रश्न) और अतथाज्ञान (स्वयं न जानने
से पूछा गया प्रश्न)। दो प्रकार के प्रश्न अनुचित है–व्युद्ग्रह प्रश्न (कपट से दूसरे को पराजित करने के लिए पूछा गया प्रश्न) और तथाज्ञान
हुए भी पूछा गया प्रश्न)। यदि इनमें दूसरों को ज्ञान कराने की भावना हो तो यह उचित है।

हेतु के तीन प्रकार से चार-चार भेद किए गए हैं। प्रथम प्रकार में हेतु के चार भेद हैं–१. यापक, २. स्थापक, ३. व्यंसक और ४. लूपक। द्वितीय प्रकार में हेतु के चार भेद वे ही है जो प्रमाण के चार भेद हैं–१. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३. उपमान और ४. आगम। तृतीय प्रकार में हेतु के चार प्रकार हैं–१. विधि साधक विधि हेतु, २. विधिसाधक निषेध हेतु. ३. निषेध साधक विधि हेतु और ४. निषेध साधक निषेध हेतु ।

काव्य के चार प्रकार हैं–१. गद्य, २. पद्य, ३, कथ्य और ४. गेय। वाद्य चार प्रकार के हैं–१. तत, २. वितत, ३. घन और शुषिर। नाट्य, गेय एवं अभिनय के चार-चार प्रकार निरूपित हैं। मालाओं के चार प्रकार हैं–१. गुंथी हुई, २. फूलों से लपेटी हुई, ३. पूरी हुई और ४. एक से दूसरे पुष्प को जोड़कर बनाई हुई।

अलंकार का अर्थ है शोभावर्धक। इसके चार प्रकार हैं–१. केशालंकार, २. वस्त्रालंकार, ३. माल्यालंकार और ४. आभरणालंकार।

अन्त में ज्ञान अध्ययन का अनुयोग प्रकरण है। इसमें अनुयोग की विधि निरूपित है। प्रारम्भ में कहा गया है कि पाँच ज्ञानों में से श्रुतज्ञान में ही उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होते हैं, शेष चार ज्ञानों में उद्देश, समुद्देश एवं अनुज्ञा नहीं होने से इनमें अनुयोग की भी प्रवृत्ति नहीं होती है।

श्रुतज्ञान में प्रवृत्त अनुयोग अंगप्रविष्ट एवं अंगवाह्य द्विविध आगमों में प्रवृत्त होता है। अंगवाह्यों में यह कालिक एवं उत्कालिक दोनों प्रकार के आगमों में प्रवृत्त होता है। उत्कालिक श्रुतों में आवश्यक सूत्र एवं आवश्यक व्यतिरिक्त सूत्रों में भी अनुयोग किया जाता है। यहाँ आवश्यक सूत्र के प्रथम सामायिक अध्ययन में अनुयोग का निरूपण किया गया है।

अनुयोग के चार द्वार हैं–१. उपक्रम (स्वरूप जानना), २. निक्षेप (स्थापना करना), ३. अनुगम (व्याख्या करना) और ४. नय (वस्तु के अनेक धर्मों में से एक धर्म का कथन करना)। उपक्रम के छह भेद हैं–१. नाम, २. स्थापना, ३. द्रव्य, ४. क्षेत्र, ५. काल और ६. भाव। इन भेदों का स्वरूप निरूपण करने के अनन्तर उपक्रम के पुनः छह भेद किए गए हैं–१. आनुपूर्वी, २. नाम, ३. प्रमाण, ४. वक्तव्यता, ५. अर्थाधिकार और ६. समवतार। आनुपूर्वी नाम, स्थापना आदि के भेद से १० प्रकार की कही गई है।

उपक्रम अनुयोग में नाम द्वार के दस प्रकार निरूपित हैं–एक नाम, दो नाम, तीन नाम यावत् दस नाम। इन नामों का उदाहरण देकर विवेचन करते हुए व्याकरण, साहित्य, संगीत आदि से भी उदाहरण दिए गए हैं। पाँच नामों में नामिक, नैपातिक, आख्यातिक, औपसर्गिक और मिश्र नाम देकर, आठ नामों में आठ विभक्तियों का विवेचन कर व्याकरण ज्ञान को प्रकट किया गया है। सात नामों से स्वर के सात प्रकार दिए गए हैं–१. षड्ज, २. ऋषभ, ३. गांधार, ४. मध्यम, ५. पंचम, ६. धैवत और ७. निषाद। इनमें संगीत ज्ञान प्रकट हुआ है। ये सातों स्वर नाभि से उत्पन्न होते हैं। गीत में छह दोष, आठ गुण, तीन वृत्त और दो भणितियाँ होती हैं। नौ नामों में साहित्य के नव रसों का उल्लेख हुआ है, यथा–१. वीर, २. शृंगार, ३. अद्‌भुत, ४. रौद्र, ५. व्रीडन, ६. बीभत्स, ७. हास्य, ८. कारुण्य और ९. प्रशान्त रस। इन रसों को उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है।

छह नामों के अन्तर्गत छह भावों का विस्तृत वर्णन निहित है। छह भाव हैं–१. औदयिक, २. औपशमिक, ३. क्षायिक, ४. क्षायोपशमिक, ५. पारिणामिक और ६. सान्निपातिक।

तत्त्वार्थ सूत्र में सान्निपातिक भाव का उल्लेख नहीं है, किन्तु आगम में इसे पृथक् भाव के रूप में स्थान दिया गया है।

प्रमाण-द्वार के अन्तर्गत प्रमाण के चार भेद किए गए हैं–१. नाम प्रमाण, २. स्थापना-प्रमाण, ३. द्रव्य प्रमाण और ४. भावप्रमाण। इन सभी भेदों की व्याख्या करते हुए भाव-प्रमाण के अन्तर्गत समास, तद्धित, धातु एवं निरुक्ति पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। प्रमाण के भिन्न प्रकार से भी चार भेद किए गए हैं, यथा–१. द्रव्य प्रमाण, २. क्षेत्र प्रमाण, ३. काल प्रमाण और ४. भाव प्रमाण। यहाँ प्रमाण शब्द परिमाण का द्योतक प्रतीत होता है।

'वक्तव्यता-द्वार' के तीन प्रकार हैं–१. स्वसमय वक्तव्यता, २. परसमय वक्तव्यता और ३. स्वसमय-परसमय वक्तव्यता। समय का अर्थ होता है सिद्धान्त। जिसमें अविरोधी रूप से स्वसिद्धान्त का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण आदि किया जाय वह स्वसमय वक्तव्यता है। अन्य मत के सिद्धान्त का कथन, प्रज्ञापन आदि करना परसमय वक्तव्यता है तथा दोनों सिद्धान्तों का जिसमे कथन हो उसे स्वसमय-परसमय वक्तव्यता कहा गया है। वक्तव्यता में नय का भी प्ररूपण हुआ है।

अर्थाधिकार का अर्थ है वर्ण्य विषय का अधिकार। यथा-आवश्यक सूत्र के सामायिक सूत्र के सामायिक आदि छह अध्ययनों में प्रथम अध्ययन का अर्थाधिकार सावद्ययोगविरति है, दूसरे अध्ययन का अर्थाधिकार उत्कीर्तन है, आदि।

'समवतार' छह प्रकार का निरूपित है–१. नाम, २. स्थापना, ३. द्रव्य, ४. क्षेत्र, ५. काल और ६. भाव।

अनुयोग के द्वितीय द्वार निक्षेप को तीन प्रकार का कहा गया है–१. ओघ निष्पन्न, २. नाम निष्पन्न, ३. सूत्रालापक निष्पन्न। इन तीन के भेदोपभेदों का उदाहरणों के साथ इस अध्ययन में जो विवेचन हुआ है वह निक्षेप के जिज्ञासुओं के लिए पूर्णतः पठनीय है। अनुयोग के तृतीय द्वार अनुगम को दो प्रकार का कहा गया है–१. सूत्रानुगम और २. निर्युक्त्यनुगम। निर्युक्त्यनुगम को निक्षेप, उपोद्घात एवं सूत्रस्पर्शिक के भेद से तीन प्रकार का माना गया है। सूत्रार्थ को समझने में इनकी बहुत बड़ी भूमिका है। चतुर्थ द्वार 'नय' के सात भेद हैं–१, नैगम, २. संग्रह, ३. व्यवहार, ४. ऋजुसूत्र, ५. शब्द, ६. समभिरूढ और ७. एवंभूत नय। इन नयों के द्वारा हेय और उपादेय को जानकर तदनुकूल प्रवृत्ति की जानी चाहिए।

इस प्रकार इस ज्ञान-अध्ययन में मात्र पाँच ज्ञानों एवं तीन अज्ञानों का ही निरूपण नहीं है, अपितु ज्ञान से सम्वद्ध विविध सामग्रियों एवं अनुयोग-पद्धति का भी इसमें संकलन निहित है। इसे पढ़कर ज्ञान के सम्बन्ध में अवश्य ही नवीन जानकारी मिलेगी।

□

२४. णाणऽज्झयणं

सुत्त

१. पंचविहणाणं–

प. कइविहे णं भन्ते ! नाणे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे नाणे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आभिणिबोहियनाणे, २. सुयनाणे,
३. ओहिनाणे, ४. मणपज्जवनाणे,
५. केवलनाणे[1]। *–विया. स. ८, उ. २, सु. २२*

२. णाणणिव्वत्ती भेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भन्ते ! णाणणिव्वत्ती पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा णाणणिव्वत्ती पण्णत्ता, तं जहा–

१. आभिणिबोहियनाणणिव्वत्ती जाव
५. केवलनाणणिव्वत्ती।

एवं एगिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं जस्स जइ णाणा तस्स तइ णाणणिव्वत्ती भाणियव्वा। *–विया. स. १९, उ. ८, सु. ३८-३९*

३. पंच णाणाणं दुविहत्तं–

तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. पच्चक्खं च, २. परोक्खं च[2]। *–नंदी. सु. २*

४. परोक्ख णाणस्स भेया–

प. से किं तं परोक्खं ?

उ. परोक्खं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–

१. आभिणिवोहियनाणपरोक्खं च,
२. सुयनाणपरोक्खं च[3]।

जत्थ आभिणिवोहियनाणं तत्थ सुयनाणं,
जत्थ सुयनाणं तत्थ आभिणिवोहियनाणं।
दोऽवि एयाइं अण्णमण्णमण्णुगयाइं,

तह वि पुण एत्थ आयरिया णाणत्तं पण्णवेंति–

अभिणिवुज्झइ त्ति आभिणिवोहियं नाणं सुणेइत्ति सुयं।

"मईपुव्वं जेण सुयं, ण मईसुयपुव्विया।"

अविसेसिया मई–
मईनाणं च मईअन्नाणं च।

२४. ज्ञान-अध्ययन

सूत्र

१. पांच प्रकार के ज्ञान–

प्र. भन्ते ! ज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आभिनिबोधिकज्ञान, २. श्रुतज्ञान,
३. अवधिज्ञान, ४. मनःपर्यवज्ञान,
५. केवलज्ञान।

२. ज्ञाननिर्वृत्ति के भेद और चौबीसदंडकों में प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! ज्ञाननिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! ज्ञाननिर्वृत्ति पांच प्रकार की कही गई है, यथा–

१. आभिनिबोधिकज्ञान–निर्वृत्ति यावत्
५. केवलज्ञान- निर्वृत्ति।

इस प्रकार एकेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिकों पर्यन्त जिसमें जितने ज्ञान हों तदनुसार उसमें उतनी ज्ञाननिर्वृत्ति कहनी चाहिए।

३. पांच ज्ञानों का द्विविधत्व–

वह ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. प्रत्यक्ष, २. परोक्ष।

४. परोक्ष ज्ञान के भेद–

प्र. परोक्षज्ञान कितने प्रकार का है ?

उ. परोक्षज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आभिनिवोधिकज्ञान,
२. श्रुतज्ञान।

जहां आभिनिवोधिकज्ञान है वहाँ श्रुतज्ञान भी है,
जहां श्रुतज्ञान है वहां आभिनिवोधिकज्ञान भी है।
ये दोनों ही अन्योऽन्य अनुगत-(एक दूसरे के साथ रहने वाले) हैं।

फिर भी आचार्य इन (दोनों) में भिन्नता का प्रतिपादन करते हैं–

जो सन्मुख आए हुए पदार्थों को प्रमाणपूर्वक अभिगत करता (जान लेता) है वह "आभिनिवोधिक ज्ञान है और जो सुना जाता है वह "श्रुतज्ञान है।"

"श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है किन्तु मतिज्ञान श्रुतज्ञानपूर्वक नहीं होता है।"

सामान्य रूप से मति–
मतिज्ञान और मति–अज्ञान रूप है।

---

१. (क) ठाणं. अ. ५, उ. ३, सु. ४६४(१)
(ख) नंदी. सु. १ (ग) अणु. सु. १
(घ) तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिनिबोहियं।
ओहिनाणं तइयं, मणनाणं च केवलं। –उत्त. अ. २८, गा. ४

२. ठाणं अ. २, उ. १, सु. ६० (१)

३. ठाणं अ. २, उ. १, सु. ६० (१७)

विसेसया मई–
सम्मदिट्ठिस्स मई मईनाणं,
मिच्छादिट्ठिस्स मई मईअन्नाणं।
अविसेसियं सुयं–
सुयनाणं च, सुयअन्नाणं च।
विसेसियं सुयं–
सम्मदिट्ठिस्स सुयं सुयनाणं,
मिच्छादिट्ठिस्स सुयं सुयअन्नाणं। –नंदी. सु. ४५-४६

वही मति-विशेष रूप से–
सम्यक्दृष्टि की मति-मतिज्ञान है।
मिथ्यादृष्टि की मति-मति अज्ञान है।
सामान्य रूप से श्रुत–
श्रुतज्ञान और श्रुत–अज्ञान रूप है।
वही श्रुत विशेष रूप से–
सम्यक्दृष्टि का श्रुत-श्रुतज्ञान है।
मिथ्यादृष्टि का श्रुत-श्रुतअज्ञान है।

५. आभिणिबोहियनाणस्स पज्जव णामाणि–

१. ईहा,
२. अपोह,
३. वीमंसा,
४. मग्गणा य
५. गवेसणा।
६. सण्णा
७. सई,
८. मई,
९. पण्णा,

सव्वं आभिणिबोहियं॥ –नंदी. सु. ६०

५. आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायवाची नाम–

१. ईहा–सदर्थ का पर्यालोचन।
२. अपोह–निश्चय करना।
३. विमर्श–ईहा और अवाय के मध्य में होने वाली विचारधारा।
४. मार्गणा–अन्वय धर्मों का अन्वेषण करना।
५. गवेषणा–व्यतिरेक धर्मों से व्यावृत्ति करना।
६. संज्ञा–अतीत में अनुभव की हुई और वर्तमान में अनुभव की जाने वाली वस्तु की एकता का अनुसंधान–ज्ञान करना।
७. स्मृति–अतीत में अनुभव की हुई वस्तु का स्मरण करना।
८. मति–जो ज्ञान वर्तमान विषय का ग्राहक हो।
९. प्रज्ञा–विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न यथावस्थित वस्तुगत धर्म का पर्यालोचन करना।

ये सब आभिनिवोधिकज्ञान के पर्यायवाची नाम हैं।

६. आभिणिबोहिय नाणस्स उक्किट्ठा ठिई–

आभिनिबोहियनाणस्स णं उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। –सम. सम. ६६, सु. ४

६. आभिनिबोधिक ज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति–

आभिनिवोधिकज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति छियासठ सागरोपम की कही गई है।

७. आभिणिवोहियणाणस्स भेया–

प. से किं तं आभिणिबोहियनाणं?
उ. आभिणिबोहियनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा–
१. सुयणिस्सियं च, २. असुयणिस्सियं च[1]। –नंदी सु. ४७

७. आभिनिबोधिकज्ञान के भेद–

प्र. आभिनिवोधिकज्ञान कितने प्रकार का है?
उ. आभिनिबोधिकज्ञान [illegible] का कहा गया है, यथा–
१. श्रुतनिश्रित, २. अश्रुतनिश्रित।

८. असुय-णिस्सिय मई णाणस्स भेया–

प. से किं तं असुयणिस्सियं?
उ. असुयणिस्सियं चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा–
१. उप्पत्तिया, २. वेणइया,
३. कम्मया, ४. पारिणामिया।
बुद्धी चउव्विहा वुत्ता, पंचमा नोवलब्भइ[2]॥

८. अश्रुतनिश्रित मति ज्ञान क भेद–

प्र. अश्रुतनिश्रित कितने प्रकार का है?
उ. अश्रुतनिश्रित चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. औत्पातिकी, २. वैनयिकी,
३. कर्मजा, ४. पारिणामिकी।
ये चार प्रकार की बुद्धियां शास्त्रकारों ने वर्णित की हैं, पांचवां भेद उपलब्ध नहीं होता है।

१. उप्पत्तिया बुद्धी–

पुव्वं मदिट्ठमसुयमवेइयतक्खणविसुद्धगहियत्था।
अव्वाहयफलजोगा, बुद्धी उप्पत्तिया णामं॥

१. औत्पातिकी बुद्धि–

पूर्व में बिना देखे, बिना सुने और बिना जाने पदार्थों के विशुद्ध अर्थ–(अभिप्राय) को जिस बुद्धि के द्वारा तत्काल ग्रहण कर लिया जाता है और जिसका अव्याहत (बाधा रहित फल होता है वह औत्पातिकी बुद्धि कही जाती है।

१. ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ६० (१६)
२. ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३६४ (१)

१. भरह २. सिल, ३. मिंढ, ४. कुक्कुड, ५. तिल, ६. वालुय, ७. हत्थी य, ८. अगड ९. वणसंडे १०. पायस, ११. अइया, १२. पत्ते, १३. खाडहिला १४. पंच पियरो य।

१. भरहसिल २. पणिय ३. रुक्खे, ४. खुड्डग, ५. पड, ६. सरड, ७. काय, ८. उच्चारे। ९. गय १०. घयण, ११. गोल, १२. खंभे १३. खुड्डग १४-१५. मग्गित्थि १६. पति १७. पुत्ते। १८. महुसित्थ, १९-२०. मुद्दियंके य, २१. णाणए २२. भिक्खु २३. चेडगणिहाणे। २४. सिक्खा य २५. अत्थसत्थे, २६. इच्छा य महं २७. सयसहस्से॥

१. भरत, २. शिला, ३. मेंढे, ४. कुक्कुट, (मुर्गा) ५. तिल, ६. बालुक, (बालु), ७. हस्ती, (हाथी), ८. अगड (कूप), ९. वनखंड, १०. खीर, ११. अतिग, १२. पत्र, १३. खाडहिला (गिलहरी) १४. पंचपिता।

१. भरतशिला, २. पणित (प्रतिज्ञा), ३. वृक्ष, ४. खुड्डग (अंगूठी), ५. पट (वस्त्र), ६. सरट (गिरगिट), ७. काक (कौए), ८. उच्चार (मलपरीक्षा), ९. गज (हाथी), १०. घृत (भांड), ११. गोल (लाख की गोली), १२. स्तम्भ, १३. क्षुद्रक, १४. मार्ग, १५. स्त्री, १६. पति, १७. पुत्र। १८. मधुसिक्थ (मधुच्छत्र), १९. मुद्रिका, २०. अंक, २१. नाणक (मोहरें), २२. भिक्षु, २३. चेटकनिधान, २४. शिक्षा, २५. अर्थशास्त्र (नीतिशास्त्र) २६. इच्छा, महत् (अधिक इच्छा), २७. शतसहस्र। ये औत्पतिकी बुद्धि के उदाहरण हैं।

२. वेणइया बुद्धी–

भरणित्थरणसमत्थातिवग्गसुत्तत्थगहियपेयाला।
उभयोलोगफलवती विणयसमुत्था हवइ बुद्धी॥

१. णिमित्ते २. अत्थसत्थे य
३. लेहे ४. गणिए य ५. कूव ६. अस्से य।
७. गद्दभ ८. लक्खण ९. गंठी
१०. अगए ११. रहिए य १२. गणिया य॥
१३. सीया साडी दीहं च तणं अवसव्वयं च कुंचस्स।
१४. निव्वोदए य १५. गोणे घोडग पडणं च रुक्खाओ॥

२. वैनयिकी बुद्धि–

कार्य भार के निरस्तरण (वहन करने) में समर्थ, त्रिवर्ग-(धर्म, अर्थ, काम) के सूत्रार्थों का सार ग्रहण करने में प्रधान इस लोक और परलोक में फल देने वाली वैनयिकी बुद्धि होती है।

१. निमित्त, २. अर्थशास्त्र,
३. लेख, ४. गणित, ५. कूप, ६. अश्व,
७. गर्दभ, ८. लक्षण, ९. ग्रन्थि,
१०. अगड, ११. रथिक, १२. गणिका,
१३. शीताशाटिका (गीली धोती), लम्बे तृण, बांई ओर क्रोंच पक्षी,
१४. नीव्रोदक, १५. बैलों की चोरी, अश्व का मरण और वृक्ष से गिरना ये वैनयिकी बुद्धि के उदाहरण हैं।

३. कम्मिया बुद्धी–

उवओगदिट्ठसारा कम्मपसंगपरिघोलणविसाला।
साहुक्कारफलवती कम्मसमुत्था हवइ बुद्धी॥

१. हेरण्णिए २. करिसए
३. कोलिय ४. डोए य ५. मुत्ति ६. घय ७. पवए।
८. तुण्णाग ९. वड्ढई य १०. पूविए य
११. घड १२. चित्तकारे य॥

३. कर्मजा बुद्धि–

उपयोग से कार्यों का सार देखने वाली, कार्य करते-करते और चिन्तन करते-करते व्यापक होने वाली और प्रशंसा प्राप्ति रूप फलवाली वह कर्मजा बुद्धि होती है।

१. सुवर्णकार, २. किसान,
३. जुलाहा, ४. दर्वीकार, ५. मोती, ६. घी, ७. नट,
८. दर्जी, ९. वढ़ई, १०. हलवाई,
११. घट, १२. चित्रकार ये कर्म से उत्पन्न बुद्धि के उदाहरण हैं।

४. परिणामिया बुद्धी–

अणुमाण-हेउ-दिट्ठंतसाहिया वयविवागपरिणामा।
हिय णिस्सेयस फलवती बुद्धी परिणामिया णामं॥

१. अभए, २. सेट्ठि, ३. कुमारे,
४. देवी, ५. उदिओदए हवइ राया।
६. साहू य णंदिसेणे
७. धणदत्ते ८. सावग ९. अमच्चे॥
१०. खमए, ११. अमच्चपुत्ते
१२. चाणक्के चेव १३. थूलभद्दे य।
१४. [illegible]
१५. [illegible]

४. पारिणामिकी बुद्धि–

अनुमान, हेतु और दृष्टान्त से (कार्य) सिद्ध करने वाली, आयु के परिपक्व होने से प्राप्त होने वाली, स्वपर हितकारी तथा मोक्षरूपी फल देने वाली पारिणामिकी बुद्धि होती है।

१. अभयकुमार, २. सेठ, ३. कुमार,
४. देवी, ५. उदितोदय राजा,
६. साधु (शिष्य) और नन्दिषेण,
७. धनदत्त, ८. श्रावक, ९. अमात्य,
१०. क्षपक, ११. अमात्यपुत्र,
१२. चाणक्य, १३. स्थूलिभद्र,
१४. नासिक का सुन्दरीनन्द,
१५. वज्रस्वामी,

१६. चलणाहण १७. आमंडे
१८. मणी य १९. सप्पे य २०. खग्गि २१. थूभिंदे।
परिणामियबुद्धीए, एवमाई उदाहरणा
से तं असुयणिस्सियं। —नंदी सु. ४८-५२

१६. चरणाहत, १७. आंवला,
१८. मणि, १९. सर्प, २०. गेंडा, २१. स्तूप-भेदन।
ये पारिणामिकी बुद्धि के उदाहरण हैं।
यह अश्रुतनिश्रित (आभिनिबोधिक ज्ञान) है।

९. उप्पत्तियाई बुद्धीसु वण्णाइअभाव परूवणं—

प. अह भंते ! १. उप्पत्तिया २. वेणइया ३. कम्मया ४. परिणामिया, एस णं कइवण्णा कइगंधा कइरसा कइफासा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! उप्पत्तिया जाव परिणामिया एस णं अवन्ना जाव अफासा पण्णत्ता। —विया. स. १२, उ. ५, सु. ९

९. औत्पत्तिकी आदि बुद्धियों में वर्णादि के अभाव का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! १. औत्पातिकी २. वैनयिकी, ३. कार्मिकी और ४. पारिणामिकी बुद्धि कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाली कही गई हैं ?

उ. गौतम ! औत्पातिकी यावत् पारिणामिकी ये चारों बुद्धियां वर्ण यावत् स्पर्श से रहित कही गई हैं।

१०. सुयणिस्सिय मई णाणस्स भेया—

प. से किं तं सुयणिस्सियं मईनाणं ?

उ. सुयणिस्सियं मईनाणं चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—
१. उग्गहे, २. ईहा ३. अवाए, ४. धारणा[1]। —नंदी. सु. ५३

१०. श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के भेद—

प्र. श्रुतनिश्रित मतिज्ञान कितने प्रकार का है ?

उ. श्रुतनिश्रित मतिज्ञान चार प्रकार का कहा गया है, यथा—
१. अवग्रह, २. ईहा, ३. अवाय, ४. धारणा।

११. उग्गहाईणं लक्खणाणि—

अत्थाणं उग्गहणं तु उग्गहं, तह वियालणं ईहं।
ववसायं तु अवायं, धरणं पुण धारणं बिंति॥ —नंदी सु. ६७

११. अवग्रह आदि के लक्षण—

अर्थों के सामान्य ज्ञान को अवग्रह, अर्थों के पर्यालोचन (विचारणा) को ईहा, अर्थों के निर्णयात्मक ज्ञान को अवाय और स्मृति में धारण करने को धारणा कहते हैं।

१. उग्गह परूवणं—

प. से किं तं उग्गहे ?

उ. उग्गहे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. अत्थोग्गहे य, २. वंजणोग्गहे य[2]।

प. से किं तं वंजणोग्गहे ?

उ. वंजणोग्गहे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. सोइंदियवंजणोग्गहे, २. घाणेंदियवंजणोग्गहे,
३. जिब्भिंदियवंजणोग्गहे, ४. फासेंदियवंजणोग्गहे।
से त्तं वंजणोग्गहे।

प. से किं तं अत्थोग्गहे ?

उ. अत्थोग्गहे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. सोइंदियअत्थोग्गहे, २. चक्खिंदियअत्थोग्गहे,
३. घाणिंदियअत्थोग्गहे, ४. जिब्भिंदियअत्थोग्गहे,
५. फासिंदियअत्थोग्गहे, ६. णोइंदियअत्थोग्गहे[3]।
तस्स णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा पंच णामधेया भवंति, तं जहा—
१. ओगिण्हणया, २. उवधारणया,
३. सवणता, ४. अवलंबणता,
५. मेहा।
से तं उग्गहे। —नंदी. सु. ५४-५६

१. अवग्रह का प्ररूपण—

प्र. अवग्रह कितने प्रकार का है ?

उ. अवग्रह दो प्रकार का कहा गया है, यथा—
१. अर्थावग्रह, २. व्यंजनावग्रह।

प्र. व्यंजनावग्रह कितने प्रकार का है ?

उ. व्यंजनावग्रह चार प्रकार का कहा गया है, यथा—
१. श्रोत्रेन्द्रियव्यंजनावग्रह, २. घ्राणेन्द्रियव्यंजनावग्रह,
३. जिह्वेन्द्रियव्यंजनावग्रह, ४. स्पर्शेन्द्रियव्यंजनावग्रह।
यह व्यंजनावग्रह का वर्णन हुवा।

प्र. अर्थावग्रह कितने प्रकार का है ?

उ. अर्थावग्रह छह प्रकार का कहा गया है, यथा—
१. श्रोत्रेन्द्रियअर्थावग्रह, २. चक्षुरिन्द्रियअर्थावग्रह,
३. घ्राणेन्द्रियअर्थावग्रह, ४. जिह्वेन्द्रियअर्थावग्रह,
५. स्पर्शेन्द्रियअर्थावग्रह, ६. नोइन्द्रियअर्थावग्रह।
अर्थावग्रह के समानार्थक नानाघोष तथा नाना व्यंजन वाले पांच नाम इस प्रकार हैं, यथा—
१. अवग्रहणता, २. उपधारणता,
३. श्रवणता, ४. अवलम्बनता,
५. मेधा।
यह अवग्रह का वर्णन हुआ।

---

१. उग्गह ईहाऽवाओ य, धारणा एव होंति चत्तारि।
आभिणिवोहियनाणस्स भेयवत्थू समासेणं॥ —नंदी सु. ६६

२. राय. सु. २४१

३. (क) पण्ण. प. १५, सु. १०१७-१०१९
(ख) सम. सम. ६, सु. ६
(ग) ठाणं. अ. ६, सु. ५२५

२. ईहा परूवणं–

प. से किं तं ईहा ?

उ. ईहा छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सोइंदियईहा, २. चक्खिंदियईहा,
३. घाणिंदियईहा, ४. जिब्भिंदियईहा,
५. फासिंदियईहा, ६. णोइंदियईहा।

तीसे णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा पंच णामधेया भवंति, तं जहा–

१. आभोगणया, २. मग्गणया,
३. गवेसणया, ४. चिंता,
५. वीमंसा।

से तं ईहा। *–नंदी सु. ५८*

३. अवाय परूवणं–

प. से किं तं अवाए ?

उ. अवाए छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सोइंदियावाए, २. चक्खिंदियावाए,
३. घाणिंदियावाए, ४. जिब्भिंदियावाए,
५. फासिंदियावाए, ६. णोइंदियावाए।[1]

तस्स णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा पंच णामधेया भवंति, तं जहा–

१. आवट्टणया, २. पच्चावट्टणया,
३. अवाए, ४. बुद्धी,
५. विण्णाणे।

से तं अवाए। *–नंदी. सु. ५९*

४. धारणा परूवणं–

प. से किं तं धारणा ?

उ. धारणा छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सोइंदियधारणा, २. चक्खिंदियधारणा,
३. घाणिंदियधारणा, ४. जिब्भिंदियधारणा,
५. फासिंदियधारणा, ६. णोइंदियधारणा।

तीसे णं इमे एगट्ठिया णाणाघोसा णाणावंजणा पंच णामधेया भवंति, तं जहा–

१. धारणा, २. साधारणा,
३. ठवणा, ४. पइट्ठा,
५. कोट्ठे।

से तं धारणा। *–नंदी. सु. ६०*

१२. विसयग्गहण विवक्खया उग्गहाणं भेया–

चउव्विहा मई पण्णत्ता, तं जहा–

१. उग्गहमई, २. ईहामई,
३. अवायमई, ४. धारणामई।

२. ईहा की प्ररूपणा–

प्र. ईहा कितने प्रकार की है ?

उ. ईहा छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय-ईहा, २. चक्षुरिन्द्रिय-ईहा,
३. घ्राणेन्द्रिय ईहा, ४. जिह्वेन्द्रिय-ईहा,
५. स्पर्शेन्द्रिय-ईहा, ६. नोइन्द्रिय-ईहा,

ईहा के समानार्थक नानाघोष और नाना व्यंजन वाले पांच नाम इस प्रकार हैं, यथा–

१. आभोगनता, २. मार्गणता,
३. गवेषणता, ४. चिन्ता,
५. विमर्श।

यह ईहा का वर्णन हुआ।

३. अवाय की प्ररूपणा–

प्र. अवाय कितने प्रकार का है ?

उ. अवाय छह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय-अवाय, २. चक्षुरिन्द्रिय-अवाय,
३. घ्राणेन्द्रिय-अवाय, ४. जिह्वेन्द्रिय-अवाय,
५. स्पर्शेन्द्रिय-अवाय, ६. नोइन्द्रिय-अवाय।

अवाय के समानार्थक, नानाघोष और नाना व्यंजन वाले पांच नाम इस प्रकार हैं, यथा–

१. आवर्तनता, २. प्रत्यावर्तनता,
३. अवाय, ४. बुद्धि,
५. विज्ञान।

यह अवाय का वर्णन हुआ।

४. धारणा की प्ररूपणा–

प्र. धारणा कितने प्रकार की है ?

उ. धारणा छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रिय-धारणा, २. चक्षुरिन्द्रिय-धारणा,
३. घ्राणेन्द्रिय-धारणा, ४. जिह्वेन्द्रिय-धारणा,
५. स्पर्शेन्द्रिय-धारणा, ६. नोइन्द्रिय-धारणा,

धारणा के समानार्थक नानाघोष और नाना व्यंजन वाले पांच नाम इस प्रकार हैं, यथा–

१. धारणा, २. साधारणा,
३. स्थापना, ४. प्रतिष्ठा,
५. कोष्ठ।

यह धारणा का वर्णन हुआ।

१२. विषयग्रहण की अपेक्षा अवग्रहादि के भेद–

मति चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. अवग्रहमति, २. ईहामति,
३. अवायमति, ४. धारणामति,

---

1. [illegible]

अहवा चउव्विहा मई पण्णत्ता, तं जहा–

१. अरंजरोदगसमाणा, २. वियरोदगसमाणा,
३. सरोदगसमाणा, ४. सागरोदगसमाणा,

–ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३६४(२-३)

(क) छव्विहा उग्गहमई पण्णत्ता, तं जहा–

१. खिप्पमोगिण्हइ,
२. बहुमोगिण्हइ,
३. बहुविहंमोगिण्हइ,
४. धुवमोगिण्हइ,
५. अणिस्सियमोगिण्हइ,
६. असंदिद्धमोगिण्हइ।

(ख) छव्विहा ईहामई पण्णत्ता, तं जहा–

१. खिप्पमीहइ,
२. बहुमीहइ,
३. बहुविहमीहइ,
४. धुवमीहइ,
५. अणिस्सियमीहइ,
६. असंदिद्धमीहइ।

(ग) छव्विहा अवायमई पण्णत्ता, तं जहा–

१. खिप्पमवेइ,
२. बहुमवेइ,
३. बहुविहमवेइ
४. धुवमवेइ,
५. अणिस्सियमवेइ,
६. असंदिद्धमवेइ।

(घ) छव्विहा धारणा (मई) पण्णत्ता, तं जहा–

१. बहुं धरेइ,
२. बहुविहं धरेइ,
३. पोराणं धरेइ,
४. दुद्धरं धरेइ,
५. अणिस्सियं धरेइ,
६. असंदिद्धं धरेइ।

–ठाणं अ. ६, सु. ५१० (१-४)

अथवा मति चार प्रकार की कही गई है, यथा–

१. घड़े के पानी के समान, २. गढ़े के पानी के समान,
३. तालाव के पानी के समान, ३. समुद्र के पानी के समान

(क) अवग्रहमति छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. शीघ्र ग्रहण करना,
२. वहुत ग्रहण करना,
३. वहुत प्रकार की वस्तुओं को ग्रहण करना
४. ध्रुव ग्रहण करना,
५. अनिश्रित (सहारा लिए बिना) ग्रहण करना,
६. असंदिग्ध ग्रहण करना।

(ख) ईहामति छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. शीघ्र ईहा करना,
२. बहुत ईहा करना,
३. बहुत प्रकार की वस्तुओं की ईहा करना,
४. ध्रुव ईहा करना,
५. अनिश्रित ईहा करना,
६. असंदिग्ध ईहा करना।

(ग) अवायमति छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. शीघ्र अवाय करना,
२. वहुत अवाय करना,
३. बहुत प्रकार की वस्तुओं का अवाय करना,
४. ध्रुव अवाय करना,
५. अनिश्रित अवाय करना,
६. असंदिग्ध अवाय करना।

(घ) धारणा (मति) छह प्रकार की कही गई है, यथा–

१. बहुत धारणा करना,
२. बहुत प्रकार की वस्तुओं की धारणा करना,
३. पुरानी वस्तुओं की धारणा करना,
४. दुर्द्धर की धारणा करना,
५. अनिश्रित की धारणा करना,
६. असंदिग्ध की धारणा करना।

१३. पगारान्तरेण सुय असुयणिस्सियाणं भेया–

सुयनिस्सिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अत्थोग्गहे चेव, २. वंजणोग्गहे चेव।

असुयनिस्सिए वि एवमेव।

–ठाणं अ. २, उ. १, सु. ६० (१९-२०)

१३. प्रकारान्तर से श्रुत-अश्रुत निश्रितों के भेद–

श्रुतनिश्रित दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. अर्थावग्रह, २. व्यंजनावग्रह,

अश्रुतनिश्रित भी इसी तरह दो प्रकार का है।

१४. वंजणुग्गह परूवगं दिट्ठंते–

अट्ठावीसइविहस्स आभिणिबोहियनाणस्स वंजणोग्गहस्स परूवणं करिस्सामि-पडिबोहगदिट्ठंतेणं, मल्लगदिट्ठंतेण य।

प. (क) से किं तं पडिबोहगदिट्ठंतेणं ?

१४. व्यंजनावग्रह प्ररूपक दृष्टांत–

प्रतिबोधक दृष्टांत और मल्लक दृष्टांत द्वारा अट्ठाईस प्रकार के आभिनिवोधिक-ज्ञान (मतिज्ञान) के व्यंजनावग्रह की प्ररूपणा करूँगा।

प. (क) प्रतिवोधक (जगाने वाले) का दृष्टान्त क्या है ?